


शाल भारत

सम्पादक : श्रीराम शर्मा

जून, १९५०

THE MODERN REVIEW

(Founded by R. Chatterjee in January 1907)

SUBSCRIPTION

PAYABLE IN ADVANCE—*Annual:* inland Rs. 12-8; foreign Rs. 20 or foreign equivalent. *Half-yearly:* inland Rs. 6-4, foreign Rs. 10 or foreign equivalent.

The price of a single current or available back number or specimen copy is Re. 1, by V. P. P. Re. 1-5. The price of a copy outside India Rs. 1-12 or foreign equivalent. Terms strictly Cash.

Outstationed-Cheques must include exchange Charges. Old subscribers should renew subscriptions quoting respective 'subscribing number' or every possibility of being enlisted afresh and issued V. P. P. under undetected old number.

If old subscribers do not renew subscriptions or give notice of discontinuation in due time, the next issue is sent by V. P. P. on the presumption that, that is their desire.

The Modern Review regularly appears on the 1st of every month. Complaints of non-receipt of any month's issue should reach this office at least by the 15th of that month quoting the "Subscribing Number", or no complaint may be entertained. Many a packet be lost in postal transit regularly every month hence all possible remedial measures should be taken by all.

SCALE OF CHARGES FOR ADVERTISEMENTS OF ORDINARY POSITION

Single Insertion.	Rs.	As.
Per ordinary page (8″×6″)	80	0
„ Half-page or one column	42	0
„ Quarter page or Half column	22	0
„ Quarter column (2″×3″)	12	0
„ One-eighth column (1″×3″)	7	

Rates for special spaces on enquiry.

Advertisers desirous of effecting stoppage or change in standing advertisements, in any issue, should send stop orders or revised copies within 15th of the preceding month.

The Modern Review reserves the right to discontinue any advertisement or to delete or alter words or phrases which in the editor's opinion are objectionable.

We cannot undertake any responsibility for the blocks being broken or mutilated while printing, though every possible care is taken. We do not undertake responsibility of blocks if delivery is not taken within 15 days after stop order.

THE "MODERN REVIEW" OFFICE,
120-2, UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.

প্রবাসীর পুস্তকাবলী

রামায়ণ (সচিত্র) ৺রামানন্দ চট্টোপাধ্যায়	১০৷০
সচিত্র বর্ণপরিচয় ১ম ভাগ— রামানন্দ চট্টোপাধ্যায়	।০
সচিত্র বর্ণপরিচয় ২য় ভাগ—ঐ	।=
চাটার্জ্জির পিক্‌চার এল্‌বাম (১, ৪, ৫, ৮ ও ৯ বাদে) প্র.ত্যক সংখ্যা	৪৲
উর্বসী (মনোজ্ঞ গল্পসমষ্টি)— ঐ	২৲
সোনার খাঁচা— শ্রীসীতা দেবী	২৷০
আজব দেশ (ছেলেমেয়েদের সচিত্র) ঐ	১৲
বজ্রমণি (শ্রেষ্ঠ গল্পসমষ্টি) ঐ	২৲
উদ্যানলতা (উপন্যাস)— শ্রীশান্তা ও সীতা দেবী	২৷০
কালিদাসের গল্প (সচিত্র)—শ্রীরঘুনাথ মল্লিক	৪৲
গীত উপক্রমণিকা—(১ম ও ২য় ভাগ) প্রত্যেক	১৷০
জাতিগঠনে রবীন্দ্রনাথ—ভারতচন্দ্র মজুমদার	১৷০
কিশোরদের মন—শ্রীদক্ষিণারঞ্জন মিত্র মজুমদার	৷০
চণ্ডীদাস চরিত—(৺কৃষ্ণপ্রসাদ সেন) শ্রীযোগেশচন্দ্র রায় বিদ্যানিধি সংস্কৃত	২৷০
মেঘদূত (সচিত্র)— শ্রীযামিনীভূষণ সাহিত্যাচার্য্য	৪৷০
জয়না—শ্রীহেমলতা দেবী	১৷০
খেলাধুলা (সচিত্র)—শ্রীবিজয়চন্দ্র মজুমদার	১৷০
বিলাপিকা—শ্রীযামিনীভূষণ সাহিত্যাচার্য্য	১৶০
ন্যাপল্যাণ্ড (সচিত্র)—শ্রীলক্ষ্মীশ্বর সিংহ	১৷০

ডাকমাশুল স্বতন্ত্র।

প্রবাসী কার্য্যালয়
১২০-২, আপার সার্কুলার রোড, কলিকাতা

प्यारी बहिनों !

न तो मैं नर्स हूँ, और न डाक्टर हूँ, और न वैद्यक ही जानती हूँ, बल्कि आप ही की तरह एक गृहस्थ स्त्री हूँ। विवाहके एक वर्ष बाद दुर्भाग्यसे मैं लिकोरिया (श्वेत प्रदर) और मासिक धर्मके दुष्ट रोगोंमें फँस गई थी, मुझे मासिक-धर्म साफ न आता था, अगर आता था तो बहुत कम और दर्दके साथ जिससे बहुत दुख होता था। सफेद पानी या (श्वेत प्रदर) अधिक जानेके कारण मैं दिन प्रति दिन कमजोर होती जा रही थी, चेहरेका रंग पीला पड़ गया था, घरके कामसे जी घबराता था, हर समय जी चकराता, कमर दर्द करती और शरीर टूटता रहता था मेरे पतिदेवने मुझे सैकड़ों रुपयेकी औषधि सेवन कराई, परन्तु किसीसे भी रत्ती भर लाभ न हुआ। इसी प्रकार मैं लगातार दो वर्ष तक बड़ा दुःख उठाती रही। सौभाग्यसे एक सन्यासी हमारे दरवाजेपर भिक्षाके लिए आये। मैं दरवाजेपर आटा डालने आई तो महात्माजीने मेरा मुख देखकर कहा—'बेटी तुझे क्या रोग है, जो इस आयुमें चेहरेका रंग रूईकी भाँति सफेद हो गया है।' मैंने सारा हाल कह सुनाया, उन्होंने मेरे पतिको डेरेपर बुलाया, और उनको नुस्खा बतलाया, जिसके केवल १५ दिन सेवन करनेसे ही मेरे तमाम गुप्त रोगोंका नाश हो गया। ईश्वरकी कृपासे अब मैं कई बच्चोंकी मा हूँ। मैंने इस नुस्खेसे अपनी कई बहनोंको अच्छा किया है और कर रही हूँ। अब मैं इस अद्भुत औषधिको अपनी दुखी बहिनोंकी भलाईके लिए असल लागत पर बांट रही हूँ। इसके द्वारा मैं लाभ उठाना नहीं चाहती। क्योंकि ईश्वरने मुझे बहुत कुछ दे रखा है। एक बहनके लिए पन्द्रह दिनकी दवा तयार करनेपर २॥≈) दो रुपये चौदह आने असल लागत खर्च होती है, और महसूल डाक अलग है।

यदि कोई बहिन इस दुष्ट रोगमें फँस गई हो तो वह मुझे जरूर लिखें। मैं उनको अपने हाथसे औषधि बनाकर वी॰ पी॰ पार्सल द्वारा भेज दूंगी। यह मेरा धर्म है कि मैं किसी बहनसे दवाकी कीमत असल लागतसे एक पैसा भी ज्यादा न लूंगी।

जरूरी सूचना—मुझे केवल स्त्रियोंकी इस दवाईका ही नुस्खा मालूम है, इस लिए कोई बहन मुझे और रोगकी दवाईके लिए न लिखें।

प्रेमप्यारी अग्रवाल, १०६ बुढ़लाढ़ा

जिला हिसार [पूर्वी पंजाब]

विषय-सूची : जून १९५०

आवश्यकता है।

हमारे सीप, नट तथा एलूमिनियमके बटन बेचनेके लिये एजेण्टों और स्टाकिस्टोंको जरूरत है। आमदनी ३००) रु० तक माहवार। नियम मुफ्त।

बम्बे बटन वर्क्स, (V. B.)

अमृतसर ३

भारतमें गाय

श्रीसतीशचन्द्र दास गुप्त प्रणीत
ग्रन्थकारकी बहुख्यात
COW IN INDIA
का अनुवाद है

२ खंडोंमें करीब १६०० पन्ने हैं
मूल्य १३) : तेरह रुपये

हरेक गृहस्थ
गो-पालन सीखें

गांधीजीका अभिमत :
"गो-पालनका सबसे ज़ादा जानने-वाला सतीशचन्द्र दास गुप्त है।... मैं समझता हूँ कि वह इस शास्त्रकी अच्छी किताब है। ..."

खादी प्रतिष्ठान
१५, कॉलेज स्कायर, कलकत्ता-१२

=প্রবাসী=

১২০।২, আপার সার্কুলার রোড, কলিকাতা।

গ্রাহক-গ্রাহিকাদের জন্য ঃ—

দেশী সডাক বার্ষিক মূল্য ৭।০ ; ঐ ষাণ্মাসিক ৩৸০ ; ঐ প্রতি সংখ্যা ।৵০। বিদেশী সডাক বার্ষিক মূল্য ১৩।০ বা ২১ শিলিং; ঐ ষাণ্মাসিক ৬৸০ বা ১০। শিলিং ; ঐ প্রতি সংখ্যা ১ শিলিং নয় পেনী মূল্য অগ্রিম দেয়। বৎসর বৈশাখ হইতে আরম্ভ হয়। টাকা মনিঅর্ডারে অগ্রিম পাঠানোই ভাল, বাহিরের ব্যাঙ্কের চেকের সঙ্গে অতিরিক্ত ।৵০ ব্যাঙ্ক কমিশনও দেয়। প্রবাসী বাংলা মাসের ১লা তারিখে প্রকাশিত হয়। যথাসময়ে প্রবাসী না পৌছিলে ১৫ তারিখের ভিতর স্থানীয় ডাকঘরের রিপোর্ট ও নির্দ্দিষ্ট গ্রাহক নম্বর সহ পত্র লিখিতে হইবে। পুরাতন গ্রাহক-গ্রাহিকাগণ, তাঁহাদের চাঁদা যে সংখ্যার সহিত নিঃশেষ হইবে, সেই সংখ্যা পাইবার পর ২০ দিনের ভিতর পুনর্ব্বার চাঁদা বা প্রবাসী লইতে অনিচ্ছাজ্ঞাপক পত্র না পাঠাইলে, তাঁহারা পরবর্ত্তী সংখ্যা ভিঃ পিঃতে লইয়া চাঁদা দিতে ইচ্ছুক এই বিশ্বাসে ভিঃ পিঃ প্রেরণ করা হয়। চিঠিপত্র বা টাকা পাঠাইবার সময় গ্রাহক-নম্বর উল্লেখ না করিলে কার্য্যসাধনে গোলমাল অবশ্যম্ভাবী।

বিজ্ঞাপনদাতাদের জন্য ঃ—

মাসিক মূল্য—সাধারণ পূর্ণ একপৃষ্ঠা (৮ইঃ × ৬ইঃ) ৬০৲
" " অর্দ্ধ পৃষ্ঠা (৪ইঃ × ৬ইঃ)
বা এক কলম (৮ইঃ × ৩ইঃ) ৩২৲
" " সিকি পৃষ্ঠা (২ইঃ × ৬ইঃ)
বা অর্দ্ধ কলম (৪ইঃ × ৩ইঃ) ১৮৲
" " অষ্টমাংশ পৃষ্ঠা (১ইঃ × ৬ইঃ)
বা সিকি কলম (২ইঃ × ৩ইঃ) ১০৲

বিশেষ বিশেষ পৃষ্ঠায় বিজ্ঞাপনের মূল্য পত্রে জ্ঞাতব্য

প্রবাসী প্রকাশিত হইবার অন্ততঃ এক সপ্তাহ পূর্ব্বে 'বিজ্ঞাপন' অগ্রিম মূল্যসহ কার্য্যালয়ে পৌঁছান চাই। মূল্যসহ বিজ্ঞাপন প্রবাসী প্রকাশিত হইবার অন্ততঃ ১০।১৫ দিন পূর্ব্বে কার্য্যালয়ে পৌঁছিলে প্রুফ দেখাইবার ব্যবস্থা করা হয়। প্রুফ দেখার দোষে যদি কোন ভুল থাকে তজ্জন্য আমরা দায়ী নহি। যাঁহারা বিজ্ঞাপনের প্রুফ দেখার ভার আমাদের উপর দিবেন, তাঁহারা সামান্য ভুল-ত্রুটির জন্য অভিযোগ করিলে গ্রাহ্য হইবে না। এক বৎসরের জন্য কণ্ট্র্যাক্ট করিলে এবং বৎসরের সম্পূর্ণ মূল্য অগ্রিম জমা দিলে টাকায় ৵০ হিসাবে বাদ দেওয়া হয়।

কর্মাধ্যক্ষ—প্রবাসী কার্য্যালয়

=आश्चर्यजनक वशीकरण फूल=

एक आश्चर्यजनक आविष्कार

वशीकरण विद्या द्वारा यह फूल तैयार किया गया है। इस फूलके अधिकारी जिस किसीको अपने हाथमें लानेके लिए एक आश्चर्यजनक शक्ति प्राप्त करेंगे। जिसको आप पसन्द करते हैं, उसको यह फूल सिर्फ हाथमें देने ही से आपका कठपुतली बन जायगा, चाहे कितने ही कठोर दिलके क्यों न हों। इसे एक बार ग्रहण कीजिए। और इसके विस्मयकर फल प्रतीक्षा कीजिए। मूल्य ३॥।=) डाकखर्च फ्री।

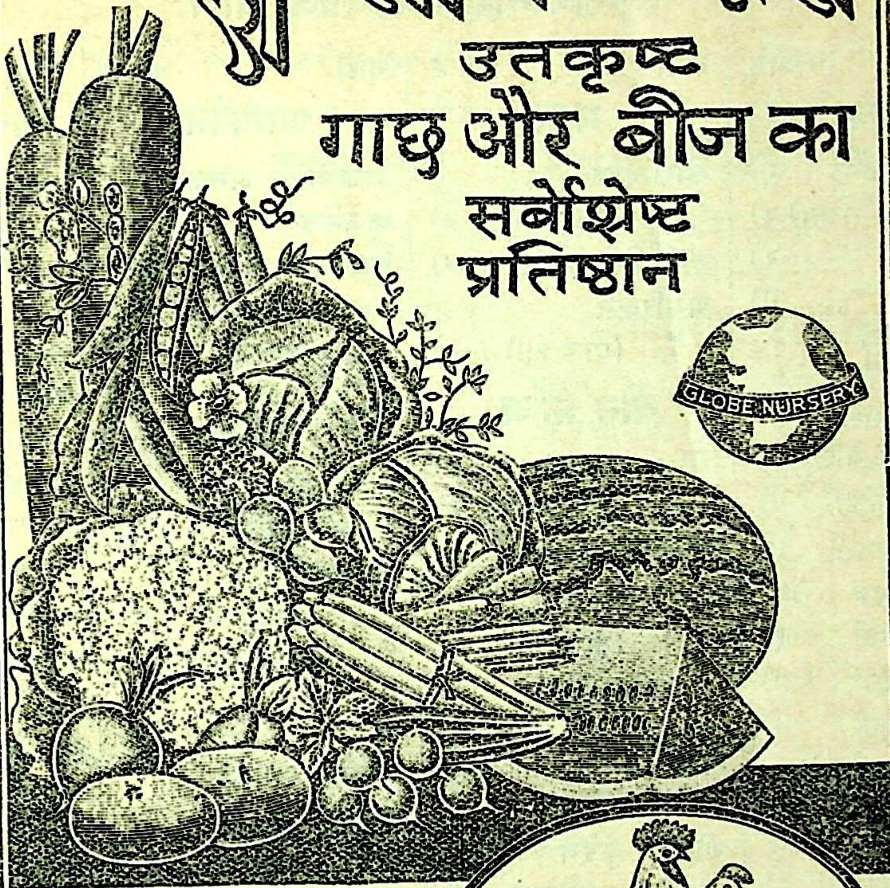
नोट—१) रु० पेशगी आना चाहिए।

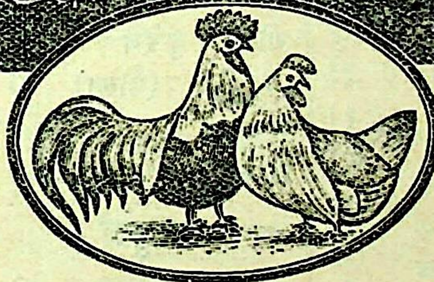
मैजिक शो

ताशके चारों पंजेको क्षण मात्रमें सादा पत्ती, फिर [illegible] और पुनः ज्यों-का-त्यों पंजा बनाना। विधिसहित सारा सामानका मूल्य २ रु० १४ आने (दो रु० चौदह आ०) झूठा साबित होनेपर दूना क़ीमत वापस।

नोट—कुल क़ीमत अग्रिम भेजें, पार्सल रजिष्ट्री द्वारा भेजा जायगा। दोनों चीजोंका आर्डर देनेसे १ रु० १२ आना अग्रिम आना चाहिए।

मिलनेका पता—
कृष्णप्रसाद भगत
पो०—काठीकुण्ड बाजार
जिला—संताल परगना, दुमका। (बिहार)





नाम	औंस
बन्धगोभी	
ग्लोब ग्लोरी	२॥)
माउण्टेन हेड	२।)
प्राइड अफ इण्डिया	२॥)
शालगम	
लाल वो सादा	१)
राक्षसी	१)

नाम	औंस
फुलगोभी	
स्नोवल लेट	८)
स्नोवल आर्ली	८)
ग्लोब बेटर	४)
प्राइज कुइन	२)
बेनारसी	२)

नाम	औंस
गांठगोभी	
ह्वाईट भियेना (सादा)	१॥)
पर्पल भियेना (लाल	१॥)
चुकन्दर (बीट)	
लाल गोल	१॥)
इजीपशीयन	१:।)
इक्लिप्स	१॥)

नाम	औंस
गाजर	
लं अरेंज	१⁄)
अक्सहार्ट	१⁄)
राक्षसी	१⁄)
लेटुस (सालाद)	
विग बोष्टन	१॥⁄)
टम थाम्ब	१॥⁄)
बारमासा	१।'⁄)

ग्लोब नर्शरी

निउ मार्केट, कलेज ष्ट्रीट मार्केट, शियालदह ष्टेसन मेन

कलकत्ता

ग्लोब नार्शरी का ताजा बीज

नाम	औंस
मिरचा	
चाईनीज जायेण्ट	२)
सुर्यमनी (खूब तीता)	२)
आचारवाला	२)
पटनाई	॥)
मुली	
बम्बई १नं० (६ पौंड)	॥)
काशो (५) पौंड)	॥)
लाल लम्बी	॥)
सादा लम्बी	॥)
लाल गोल	१)
नेवार	॥)
जौनपुरी	॥)
बैंगन (भांटा)	
मुक्तकेशी	१)
कुली (गुच्छादार)	१)
बारमासा	१)
रामनगर	२)
६ सेरा	३)
काला गोल	२)
प्याज	
राक्षसी	१॥)
रेड ग्लोब	१॥)
होईट ग्लोब	१॥)
बम्बई (पौंड १०)	॥॥)
पटनाई (पौंड १०)	॥॥)
तम्बाकु	
हिंली	१)
मोतीहारी	१)
अमेरिकन	२)

नाम	औंस
मटर	
लाल दाना (पौंड १॥)	⸗)
दार्जिलिंग (पौंड १॥)	⸗)
अमेरिकन (पौंड १॥)	⸗)
बीन फ्रेंच	
लाल (पौंड १॥)	⸗)
सादा (पौंड १॥)	⸗)
पीला (पौंड १॥)	⸗)
सयाबीन (पौंड १॥)	⸗)
टोमेटो	
एक्सेलेंट	२॥।)
पारफेकसन	२॥।)
गोल्डेन कुईन (पीला)	२)
सेचलेश	॥।⸗)
लार्ज रेड	॥।⸗)
खरबूज	
लखनऊ	॥)
राक्षसी	१॥)
सर्दा (काबुलका)	१॥)
खेड़ो	
बीरभुम	१)
तरबूज	
राक्षसी	१)
आईस क्रीम	१)
गोयालन्द	॥)
भागलपुर	॥)

नाम	औंस
पामकीन	
राक्षसी (२ मनका)	१॥)
क्रुकनेक	१)
सेमथकींग	१॥)
राई	
चाईनीज	॥)
पपीता	
रांची (पाकेट ॥)	४)
राक्षसी (पाकेट ॥)	४)
अफ्रिकनवण्डर (पाकेट १)	८)
स्कोयास	
राक्षसी	२)
भेजिटेबल मारो	१)
हवाईट वुस	२)
सिलेरी	
सादा वो लाल	१।)
सीम देशी	
अलतापाटी	॥)
हरा	॥)
सादा	॥)
हाथीकान	॥)
उच्छे (करेली)	
बारमासा	॥)
करेला	
देशी बड़ा	१)
साधारण	॥।)
कोहड़ा	
देशी बड़ा	।)

नाम	औंस
चिचीड़ा (परोरा)	
राक्षसी	१॥)
काला वो सादा	१॥)
लौकी	
लम्बी	॥)
गोल	॥)

नाम	औंस
ककड़ी पतली लम्बी	२)
कोहड़ा सादा (भतुआ)	।)
खरतरोई (झिङ्गा)	॥)
खीरा देशी	॥)
,, आमेरीकन	२)
गुढमी (काचरा)	१॥)
घीयातरोई (नेनुआ)	।)
टेपारी	२)
दीलपसन्द	१)
फुटी	।)
बरबटी (बोरो)	॥)
रामतरोई (भिण्डी)	।⸗)
सकरकन्द (आंकआलु)	॥)
साग पालम (पौंड १॥)	⸗)
,, खट्टी पालम	१)
,, काटवा डाटा	१)
,, चौलाइ	॥।)
,, लाल शाग	॥)
,, पुइ शाग	॥)
डुङ्गाडालसिस (घेरा देने केलिये प्रति पौंड	३)
दूब घास	,, ५॥)

☞ सागमें फुल बीज इस समय लगाने को लायक १२ प्रकार का १२ पाकेट का दाम ५) है।

ग्लोब नर्सरी

निउ मार्केट, कलेज ष्ट्रीट मार्केट, शियालदह ष्टेसन मेन
कलकत्ता

हमलोग का बाछाई किया हुया फल गाछ

गाछ क आर्डर के साथ अपने नजदीक रेल ष्टेशन का नाम तथा आधा किमत पहले पेशगी भेजने होगा

नाम	प्रतेयक
आम की कलम	
आलफान्स	२)
किशनभोग	२)
कोहितुर	४)
चापा (चांपाफुल की सुगन्ध)	४)
चोरसा पाती	१॥)
गुलाब खास	१॥)
दोफला	१॥)
फजली	२)
बम्बई काला	२)
लंगड़ा बेनारस	२)
सफेदा लखनऊ	२॥)
मालदहो	१)
हिमसागर	२)
बारमासा	१॥)
तोतापुरी	३)
लिची	
मजफरपुर	१॥)
बेदाना (असली)	२)
सहारनपुरी	१)
बम्बई	।॥)
नीबू	
कागजी बारमासा	।॥)
पाती बारमासा	१)
कामकोयाट (टबमें फलता है)	२)
बाताबी नीबू	
लाल वो सादा	।॥)
चीन का बामन	।॥)
कलसे	१)
ग्रेपफ्रुट (अमेरीकन)	२)

नाम	प्रतेयक
कमला नीबू	
दार्जिलिंग	१)
मालटा, नागपुरी	१)
सन्तरा, श्रीहट्ट, काशी	१)
मोजम्बीक	१॥)
अमरुद	
काशी, इलाहाबाद	।॥)
ग्लोबसीन (बीनाबीजका)	१)
नेपालका	।॥)
केला	
अमृतमान	।॥)
कानाई बाशी	१॥)
काबुलो (गाछ से फलका कांदी बड़ा होता है)	।॥)
चांपा	॥)
चिनीचांपा	॥)
सिङ्गापुर	१॥)
मर्त्तमान असल	।॥)
जामरुल (सफेद जामुन)	
सफेद	॥)
लाल	।॥)
साहाका	।॥)
केग	१)
बेर	
नारिकेली	१)
काशीका	१)
सपेटा (चिकु)	
बड़ाजातका ७०)सौ	१)
बारामासा ७०) "	१)

नाम	प्रतेयक
सुपारी (कसैली)	
बड़ा (३५ सौ)	॥)
छोटा (२०) सौ)	।)
आनारस	
कुइन (३५) सौ)	॥)
किउजायेण्ट	।॥)
मरोसास	।॥)
नारीयल	
देशी १नं (१००)सौ	१॥)
हाजारी (५६) सौ)	।॥)
३ बर्षमें फलता है	४)
आखरोट	
काबूलका	१)
देशी	।॥)
अङ्गूर	
लम्बावो गोल	॥)
काबुलका	॥)
किसमिस असल	१)
आपेल (सेव)	।॥)
अमड़ा	॥)
आमपोच	॥)
आलुचा	॥)
आलुबखरा	॥)
आंशफल	॥)
अनार	।॥)
इमली लाल	॥)
कैथ (कदबेल)	।)
करौंदा	॥)
कमरख चीना	१)
कटहल	।✓)
खजुर आरबका	।॥)

नाम	प्रतेयक
गुलाब जामून	॥)
चालता	॥)
जामुन काला	।✓)
जलपाई	।॥)
डूरियान	।॥)
न्यासपाती पेशावरी	☉)
नोड़	।)
पनीयाला	।)
पोच (आड़ू)	१)
फलसा	।)
बादाम	।✓)
बिलम्बो	॥)
बेदाना काबूलका	।॥)
बेल (श्रीफल)	।॥)
ब्रेडफ्रुट (रुटीफल)	२)
बड़हर (मादार)	।)
म्याङ्गोष्टीन (गाव)	॥)
महुया	।)
रामफल (नोना)	॥)
लकेट	॥)
शहतुत (तुत)	॥)
शरीफा	॥)
होरनी	।)
मसाले का गाछ	
इलाची छोटा, बड़ा	॥)
कबाब चिनि	॥)
गोलमरिच	।॥)
तेजपाता	१)
दालचिनि	।॥)
पान कर्पुर	।॥)
लवङ्ग	१)
हिंग	॥)
चन्दन सादा	१॥)
इउकेलिपटास	।॥)

सुगन्धित फूल वो पाताबाहारी गाछ।



गुलाब

नाम	प्रत्येक
अमेरिकान बिउटी—लाल	१)
एडभोकेट—लाल	१)
एन्टनि साउटन—गोलापी	१)
एप्रीकट—पोला	१)
एमि भाईवार्ट—सादा	१)
क्यारोलाईन डि आर्डेन—लाल	१)
क्यापटेन एफ वोलड—लाल	१)
ईटयेल डि फ्रान्स—भेलभेट रं	१)
इटयेल डि लियन—पोला	१)
एलिजावेथ भिगनिरन—गोलापी	१`
डाचेज अफ अलबनि—घोर गोलापी	१)
फ्लोरो डि डाचार—घोर लाल	१)
गोल्डेन फेयारो—सादा	१)
गरजियास—कमलालेवू रं	१)
ग्रासेन टेप्लोज—चमकोला लाल	१)
फिल्ड मार्शल—भेलभेट रं	१)
फ्राउ कार्ल ड्रुस्कि—सादा	१)
हिज मयाजेष्टी—लाल	१)

नाम	प्रत्येक
लेडि हिलिंडन—पोला	१)
मिसेस वी आर क्याण्ट—लाल	१)
मर्गिट क्रिष्टो कालायुक्त गोलापी	१)

पाम

	प्रत्येक
एरीका	॥)
चायना	॥)
प्रीचार्डिया	१॥)
वटल पाम	॥)

झाउ

आरकेरीया कुकी	२)
जूनिप्रास	।॥)
थूजा (पाटा झाउ)	।॥)
चाइनेन्सि	।॥)

क्रोटन

	प्रति दर्जन
हमलोग के पसन्दानुसार १२ प्रकार का बागान साजाने के लिये	८)
बाराण्डा साजाने के लिये	१०)
रास्ता साजाने के लिये	८)

रास्ता के किनारे के लिये छायादार गाछ

शिरिश	८)
छातिम	८)
देशी झाउ	८)
जारुल	८)
देवदारु	८)
अर्ज्जुन	८)
शागवान	८)
शिशु	८)
कृष्णचुड़ा	८)

नाम	प्रत्येक

बिबिध फूल गाछ

अशोक	॥)
कनेल सादा लाल	।)
गन्धराज डबल	।✓)
टगर	।)
बकफुल	॥)
स्थल पद्म	।)
चमेलि	।)
बेल फूल	।)
नवमल्लिका	॥)
जेसमिन	।)
जही पोला	।✓)
„ डबल	।✓)

म्यग्नोलिया

ग्राण्डिफ्लोरा	५)

चापा

पोला	।)
सादा चोना	१)

ओड़हुल (जबा)

सादा डबल	॥)
नील डबल	॥)
लाल डबल (सम्मुखो)	॥)

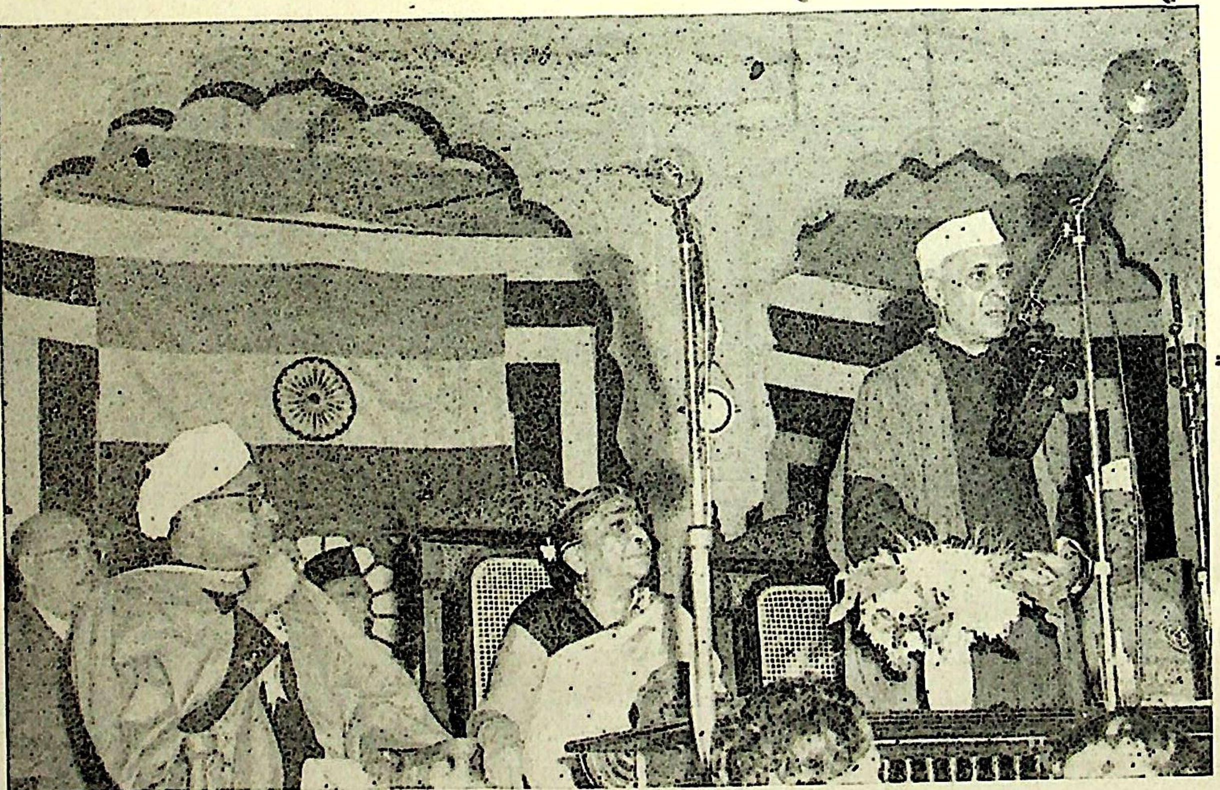
करबी

काश्मो सुगन्धि	॥)
सादा डबल	।)

रङ्गन

सादा	॥)
पोला	१)
जाभा (सुगन्धि)	।)
रोजोया (गुलाबो)	।।)

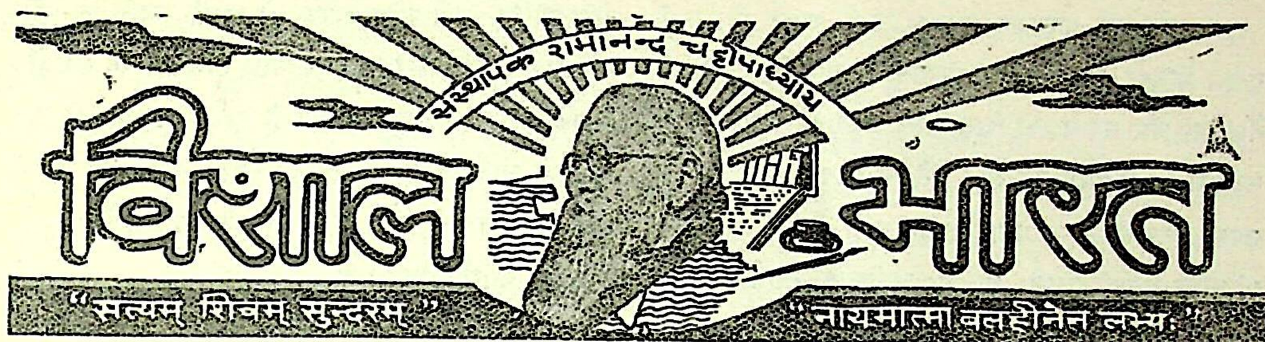
☞ इस समय बोने के लायक १२ प्रकार के १२ प्याकेट देशी तरकारी यों का बीज का दाम १॥) है।



इलाहाबादमें विज्ञान-कांग्रेसके ३६वें अधिवेशनके प्रारम्भमें भाषण देते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] जलसा [श्री देवीप्रसाद राय चौधरी



भाग ४५, अंक ६] कलकत्ता, जून, १९५० [पूर्णांक २७०

सम्पादकीय विचार

मनोवृत्ति बदलिये

स्वतन्त्र भारतमें अबकी बार पहले-पहल निर्वाचन होंगे। संविधानमें प्रत्येक बालिग़को मत देनेका अधिकार दिया है। व्यवस्थापिका परिषदों और नगर-पालिका सभाओं—दोनोंके निर्वाचन शीघ्र ही होनेवाले हैं। इन निर्वाचनोंके लिए जनताको अभीसे तैयारी करनी चाहिए। तैयारीका अर्थ यह नहीं है कि गुट्ट, पार्टी अथवा दलबन्दीका निर्माण किया जाय। ये तो गन्दे और भद्दे तरीक़े हैं। तैयारीसे मतलब मानसिक तैयारीसे है, अर्थात् हम लोग, जिन्हें चुनावमें मतदान देना है, अपनेको ईमानदार और समझदार बनायँ, मनोवृत्तियोंको स्वार्थ एवं संकीर्णतासे ऊपर करें। प्रायः चुनावोंके समय यह देखा जाता है कि मतदाता उचित व्यक्तिको उचित स्थानके लिए न चुनकर अपने सगे-सम्बन्धियों, इष्ट मित्रों और बिरादरीवालोंको वोट दिलानेका प्रयत्न करते हैं। परिणाम यह होता है कि अनधिकारी लोग चुन जाते हैं और अधिकारी रह जाते हैं। आगे चलकर अनाधिकारी लोग घोर निराशा और भारी खेदका कारण बनते हैं। यहाँ तक कि उनकी अनौचित्यपूर्ण करतूतोंके कारण चुननेवाले व्यक्तिकी आत्मा भी थर्रा उठती है। हमारी यह संकीर्णता या स्वार्थान्धता आगे चलकर देशके लिए कितनी विघातक होती है, इसका वोट देते समय प्रायः अनुमान भी नहीं किया जाता। अगर स्वतन्त्र भारतमें भी हमारी संकीर्ण और अनुदार मनोवृत्ति रही, तो स्वतन्त्रताका कुछ भी अर्थ नहीं है और ऐसी स्वतन्त्रता देशको कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा सकती। मनोवृत्ति एक दिनमें नहीं बदला करती। जो गन्दगी हमारे मस्तिष्कों और हृदयोंसे आई हुई है, उसे हम क्षणमात्रमें कैसे दूर कर सकते हैं। उसके लिए अभ्यास और साधनकी आवश्यकता है, इसलिये हम कहते हैं कि मतदातागण अपनी चुनाव-सम्बन्धी मनोवृत्तिको विशुद्ध और परिष्कृत बनानेका अभीसे अभ्यास करें। वे सोचें कि हमारे किसी ग़लत वोट द्वारा देशका कितना अनर्थ हो सकता है। जो भूल किसी भ्रम, अविवेक या स्वार्थवश हो जाती है, उसका संशोधन परिशोधन अत्यन्त कठिन हो जाता है। आज हम जिन भयंकर भूलोंके लिए हृदयसे पश्चात्ताप कर रहे या बुरी तरह झींक रहे हैं, क्या उन्हींको करनेके लिए हम फिर तैयार हो जायँगे? क्या महात्मा गांधीका यही आदेश है? क्या स्वतन्त्र भारत इसी प्रकारका सन्देश देती है? यदि नहीं तो हमें अपनी संकीर्ण और स्वार्थान्ध मनोवृत्तिको बदलनेकी तुरन्त तैयारी करनी चाहिए और अपनेको ऐसा बनाना चाहिए कि हमारे हृदयोंमें संकीर्णता, अनुदारता और स्वार्थके लिए कोई स्थान ही शेष न रहे।

परिव्रजन-प्रथा

भारत वर्षमें परिव्रजन प्रथाका बड़ा आदर था यानी गृहस्थ भोगकर, जो लोग साधु-संन्यासी हो जाते थे, वे देशमें नैतिकता और सदाचारकी शिक्षा द्वारा जनताका कल्याण किया करते थे। ये परिव्राजक स्वयं ऐसे चरित्रवान होते थे कि उनका जनतापर तुरन्त प्रभाव पड़ता था। उनमें न किसी सांसारिक भोगकी लिप्सा थी, न व्यक्तिगत स्वार्थ-लिप्साकी भावना। वे निरीह और निर्भय भावसे जन-कल्याण-कामनामें संलग्न रहते थे। जिसमें कोई दोष देखते थे, उसकी कड़ी और खरी आलोचना करते थे। परिव्राजकोंका कोई स्वार्थ तो था ही नहीं, जो उनकी बात किसीको बुरी लगती। एक-दो, दस-बीस नहीं, सैकड़ों-सहस्रों अनुभवी विद्वान् और बुद्धिमान परिव्राजक देशमें भ्रमण करते रहते थे। आज इस ग्राम नगरमें तो कल उस पुर-परिवारमें। ये लोग ही एक प्रकारसे समाजके सच्चे नेता, समालोचक और मार्ग-दर्शक थे। यही कारण था कि उस समयका समाज इतना निर्दोष, परिष्कृत और सदाचार सम्पन्न था। आज प्रथम तो परिव्राजक हैं ही नहीं, हैं भी तो निर्भय भावनासे जनताके दोष-दर्शन करानेका उनमें साहस नहीं। जहाँ जैसा देखा, वहाँ वैसा कह दिया। जनता भी जानती है कि अमुक साधु-संन्यासी हमारी रोटियोंपर पल रहा है, अतः वह हमारी आलोचना कर ही कैसे सकता है। भारतकी पुण्यमयी परिव्रजन-प्रथासे सारा साहित्य भरा पड़ा है। ऋषि मुनियोंकी गुण-गरिमाके गीत आज सैकड़ों वर्ष बाद भी बड़े आदरसे गाये जा रहे हैं। क्या इस युगमें भी परिव्रजन-प्रथाका प्रचार नहीं हो सकता? क्या आज निरीह साधु-संन्यासियोंका अभाव है? आज तो हमारे देशका प्रत्येक ग्राम-नगर, पुर-परिवार ऐसे परिव्राजकोंकी प्रतीक्षा कर रहा है, जो निरीह और निर्भय होकर लोक-कल्याण-कामनासे उपदेश दें और देशसे दुराचार तथा भ्रष्टाचारका अन्तकर नैतिकता एवं सदाचारकी वृद्धि करें जिस कार्यको क़ानूनका कोड़ा, सेनाकी सबलता और पुलिसका प्रहार नहीं कर सकते, उसको निरीह, निष्काम, परिव्राजक-मण्डल बड़ी आसानीसे कर सकेगा—ऐसी हमारी धारणा है। भारतके वर्त्तमान नैतिक पतनको दूर करनेके लिए परिव्राजकोंका प्रचार शीघ्र-से-शीघ्र होना चाहिए—ऐसे परिव्राजकोंका जो अपनी व्यक्तिगत और सांसारिक कामनाओंको त्यागकर निरीह निःस्वार्थ बन सके हों। जिनके विशुद्ध हृदय जन-कल्याण ही नहीं, जीवन-मात्रकी हित-भावनासे ओतप्रोत हों। यह युग गुफाओं-कंदराओंमें बैठकर योग साधनका नहीं, वरन् पतित मानवके उद्धारका है।

विद्रोही कांग्रेसीका पत्र

हमारे पास यू॰पी॰के विद्रोही कांग्रेसके नेता श्री त्रिलोकी सिंहजीका पत्र आया है। यह पत्र यू॰ पी॰ के कांग्रेस-जनोंमें बाँटा गया है। पत्र इस प्रकार है—

२६, लाटूश रोड, लखनऊ।
ता॰ २-५-५०

प्रिय साथियो,

इस समय देशमें कांग्रेसपर जो संकट आया हुआ है, वह आपको भली-भाँति मालूम है।

अभी हालमें बिहारमें भाषण देते हुए पं॰ जवाहरलाल नेहरूने स्वयं यह कहा है कि कांग्रेस-जन कांग्रेसके आदर्शों तथा सिद्धान्तोंसे दूर बहते चले जा रहे हैं। जिम्मेदार व्यक्ति साम्प्रदायिक संकीर्णताके बहावमें बह रहे हैं। अगर यही हाल रहा, तो कांग्रेस दफ़न हो जायगी और देशका भविष्य खतरेमें पड़ जायगा।

सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी, आचार्य विनोबा भावे, श्री कुमारप्पा, कांग्रेसकी इस दशापर समय-समयपर भारी दुःख प्रकट करते रहते हैं। हमारे प्रदेशमें तो और भी बुरा हाल है। प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी और धारा सभाओंमें दोनों जगह उन लोगोंका बहुमत है। उनकी मनोवृत्तियाँ कांग्रेसके आदर्शों तथा सिद्धान्तोंसे कितनी दूर हैं, इसे सभी लोग अच्छी तरह जानते हैं।

यह दल अपना बहुमत बनाये रखनेके लिए प्रादेशिक कांग्रेस कमेटीके दफ़्तर और अपने सरकारी पदोंका दुरुपयोग जैसे हो वैसे अपनी ताक़त बढ़ाने तथा अपने पदोंसे चिपटे रहनेके लिए कर रहा है। और जो लोग इस अन्याय तथा भ्रष्टाचारके विरुद्ध तनिक भी आवाज़ उठाते हैं, उन्हें कुचल रहा है।

हमारे कुछ साथियोंने सब साथियोंकी सलाहसे कांग्रेसके अध्यक्षसे अपील की कि वे इस अवस्थाको दूर करें। धारा-सभाके कई सदस्यों और मन्त्रियों तकके खिलाफ़ किये गये भ्रष्टाचारके आरोपोंकी जाँच करायें तथा प्रदेशमें कांग्रेसके आनेवाले चुनाव स्वतन्त्र रूपसे बिना पक्षपातके करानेके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी ओरसे प्रबन्ध करें। दो साथियों—श्री राधेश्यामको तथा मुझे—इस अपराधमें प्रदेशके बहुमत दलने निकाल दिया है। ३० से अधिक सदस्योंने इस पापके विरोध-स्वरूप उनके साथ बैठना शुरू किया।

इसीको बहाना बनाकर वर्किंग कमेटीने श्री राधेश्याम तथा मेरी अपीलपर विचार करनेसे इनकार कर दिया। अपील करनेवालेसे कोई अपराध हो जानेपर, उस अपराधको साबित करके उसके लिए दण्ड देनेकी प्रथा तो संसार भरमें प्रचलित है, लेकिन अपराधके आरोपको सिद्ध किये बिना ही, उसके बहाने जाँच करनेसे इनकार करनेकी कार्य-समितिकी नई नीति अश्रुत पूर्व है। न्यायालय मान-हानिके मुकदमे चलाते हैं, जुर्म साबित होनेपर उसपर सजा भी देते हैं, लेकिन उसकी वजहसे न्याय करनेसे इनकार नहीं करते।

अपने अन्याय-पीड़ित साथियोंके साथ बैठनेके अपराधमें १६ सदस्य और निकाल दिये गये हैं। इन साथियोंका निश्चय है कि कांग्रेस और महात्मा गांधीके बताये हुये परम्परागत सत्याग्रहकी भावनाके अनुसार, जो कुछ भी होगा उसे सहर्ष भुगत लेंगे, परन्तु भयवश अन्यायके सामने सिर नहीं झुकावेंगे।

हमारे सामने सवाल यह है कि क्या हम कांग्रेस और कांग्रेसके आदर्शों तथा सिद्धान्तोंको योंही मिटने दें, या फलकी इच्छाको छोड़कर अपने कर्त्तव्यका पालन करें। अपने विद्रोह द्वारा कांग्रेसको पुनर्जीवित करें। उसमें नया जीवन डालें। जनतासे निकट सम्पर्कमें रहनेवाली जन-कांग्रेसकी स्थापना करें और इस तरह कांग्रेसके आदर्शों, उसके सिद्धान्तों तथा कार्य-क्रमको पूरा करें। अथवा औरोंकी तरह चुपचाप हाथपर हाथ रक्खे बैठे रहें। अपने मतलब-से-मतलब रक्खें और जो कुछ हो रहा है, उसे होने दें।

इन सब बातोंपर अच्छी तरह विचार करके स्वदेश तथा उद्देश्य तथा कांग्रेसके आदर्शों व सिद्धान्तोंकी रक्षाका कोई मार्ग तय करनेके लिए सब साथियोंका एक सम्मेलन करनेका आयोजन किया जा रहा है। इस सम्मेलनमें प्रदेशके हर जिलासे १६-२० प्रमुख साथी बुलाये जा रहे हैं। सम्मेलन १०-११ जूनको लखनऊमें होगा। हमें आशा और विश्वास है कि सब साथी इसमें पधारकर अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे। सब साथियोंके ठहरने तथा खानेका प्रबन्ध किया जायगा। सम्मेलनका ठीक समय व स्थान बादमें दिया जायगा।

जयहिन्द !

श्री त्रिलोकी सिंहजीके पत्रमें जो गूढ़ बात निहित है, वह यह है कि क्या कांग्रेसको इसी मार्गपर चलने दिया जाय, अर्थात् उसमें जो सत्ताधारी हैं, उनकी निरंकुश नीतिको अबाध रूपसे चलने दिया जाय या उसको वैधानिक ढँगसे ठीक किया जाय अथवा कांग्रेसको छोड़ दिया जाय। हम उत्तर प्रदेशकी राजनीतिके विषयमें गत कई महीनोंसे लगातार लिख रहे हैं, क्योंकि उत्तर प्रदेशकी राजनीतिका असर सम्पूर्ण देशकी राज-नीतिपर पड़ता है। श्री त्रिलोकी सिंहजीने अपनी इस गश्ती चिट्ठीसे कांग्रेसियोंका ध्यान जो आकर्षित किया है, पर कांग्रेसमें आजकल जो कुछ हो रहा है, वह कोई नई बात तो नहीं है। अभी गत मार्च १९५० में प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रण्ड रसलने अपने एक लेखमें लिखा है कि जब कभी एक विचारधाराकी रक्षा किसी सत्ता-गुटकी रक्षासे समन्वित हो जाती है, तब सत्ता—पदलोलुपता—उन लोगोंके दिमागमें जो नीतिके प्रवर्त्तक होते हैं—विचारधाराको डुबा देती है। नाममात्रके लिए विचारधारा जीवित रहती है, पर सार्वजनिक सहायताकी प्राप्तिकी खातिर एक चालबाजीसे अधिक बढ़ी नहीं होती। पदलोलुपता तो शासकोंके लिए होती है और विचारधारा मूर्खों और पिट्ठुओंके लिए। (Whenever the defence of an ideology becomes identified with defence of some power-groups, power politics tend to swamp the ideology in the minds of those who direct policy. The ideology survives nominally, but as littile more

than a trick for enlisting popular support.... Power-Politics for rulers ideology for dupes and under-lings.) अब सवाल यह है कि क्या यू०पी०के दोनों दल सेवा भावसे प्रेरित हैं अथवा स्वार्थपरतासे। क्या एक दल रावणका अनुयायी है और दूसरा रामका? अथवा दोनों ही एक ही थैलीके चट्टे-बट्टे हैं। हमारी निजी राय तो यह है कि सत्ताका मोह तो दोनोंको है और उसका नशा बहुमत-वालोंमें इतना है कि वे सूझ-बूझ खो बैठे हैं। आखिर कतिपय कांग्रेसी एम० एल० ए०ओंकी जाँच करानेमें श्रीमान् पंतजी क्यों हिचकते हैं। एक बार जांच करा दें, यदि आरोप झूठे हों, तो अल्पदलवालोंकी शक्ति मिट्टीमें मिल जाय, पर तहक़ीक़ात न करानेका बालहठ क्यों है? कांग्रेस कमेटीने इतनी जल्दी इन लोगोंको कांग्रेससे निष्काशित करके कोई अच्छा काम नहीं किया। श्री त्रिलोकी सिंहजीने जो सम्मेलनका आयोजन किया है, उसमें हमें आशा है कि कांग्रेसकी बुनियादी कमजोरीकी भी चर्चा होगी।

उत्तर प्रदेशका राजनीतिक दिवाला

डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी और श्री नियोगीके इस्तेफोंके कारण केन्द्रमें परिवर्तन अवश्यम्भावी हो गये। फलस्वरूप नेहरू मन्त्रिमण्डल दुवारा चुना गया। मन्त्रिमण्डलमें श्री मुंशी, श्री श्रीप्रकाशजी, उड़ीसाके मुख्य मन्त्री श्री महताबजी, उत्तर प्रदेशके मुख्य मन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्तजी तथा श्री राजाजीके लेनेकी वात आई। पर इस ख़बरसे उत्तर प्रदेशमें एक बम-चक-सी मच गई। लखनऊसे बड़ी हड़बड़ीमें सात आदमियोंका एक डेपूटेशन—सप्तऋषि मण्डल नई दिल्ली पहुँचा और मानों मुँहमें तिनका दाबकर दुहाई दी कि 'भारतके सबसे बड़े सूबे उत्तर प्रदेशको पन्तजीकी सेवाओंसे वंचित न किया जाय।' हमें इस बातसे मतलब नहीं कि श्रीमान् पन्तजी उत्तर प्रदेशमें रहते हैं या केन्द्रमें जाते हैं। आज तो प्रत्येक कार्यकर्त्ताको अपने स्थानपर डटकर कार्य करना है और विश्व-इतिहासका निचोड़ यह है कि राजनीतिमें कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना भी महान् हो, अनिवार्य नहीं होता। हमें इससे बहस नहीं कि पन्तजी कहाँ रहते हैं, वरन् आपत्ति तो इस बातकी है कि उत्तर प्रदेशमें पन्तजीको रखनेके जो ढँग अख्तियार किये गये, वे उत्तर प्रदेशकी राजनीतिके दिवालियेपनके द्योतक हैं। यदि विरोधमें कोई डेपूटेशन चला जाता तो क्या उत्तर प्रदेशका मान बढ़ता। हम जानते हैं, उड़ीसामें महताबजी बड़े लोकप्रिय हैं, पर उड़िया-भाइयोंने कोई डेपूटेशन उन्हें वहाँ रखनेके लिए नहीं भेजा। आज लोगोंमें रोष तो इतना है कि वे किसी मन्त्रीको काले झण्डे भी दिखा सकते हैं और उस प्रकारके डेपूटेशनको हम माननीय नेहरूजीका अपमान समझते हैं। नेहरूजी उत्तर प्रदेशके विषयमें सब जानते हैं और नेहरूजी तथा पन्तजीके बीच जो तय होता, वह सबको मान्य होना चाहिए था। बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि उस डेपूटेशनमें श्री चन्द्रभान गुप्त भी थे। जिनके विरुद्ध आरोपोंके कारण ही यह चखचख चल रही है। उत्तर प्रदेशसे तो विरोधी डेपूटेशन भी जा सकता है। जब जिम्मेदार व्यक्ति ऐसे कामोंके लिए डेपूटेशन ले जायँ, तो हम महामन्त्रीकी शक्ति डूबते सूर्यके प्रकाशके समान है। उत्तर प्रदेशमें अनेक योग्य व्यक्ति हैं। पाठक यह न समझें कि उत्तर प्रदेशका वर्त्तमान मन्त्रिमण्डल उस सूबेकी बुद्धिमत्ता और कार्यक्षमताका द्योतक है।

अधिक अन्न उपजाओ बनाम सिनेमा प्रवृत्ति

बम्बईकी बढ़ोत्तरीके सिलसिलेमें हमें यह पढ़नेको मिला कि वहाँ २० और सिनेमाघर बनाये जायँगे। हमें अनेक सूबोंके नगरोंका पता है कि चुस्कीकी बरफ और सिनेमाके लिए अपेक्षाकृत बिजलीका कनैक्शन मिल जाता है। यदि खाद्य समस्या विषम है, तो क्यों न वह बिजली कुओंसे पानी खींचनेके काममें लगाई जाय। यदि आधे सिनेमा ही बन्द कर दिये जायँ, तो देशपर कौन-सी गाज गिरेगी। हमारे ख़यालसे हमारी स्वतन्त्रताका यह अभिशाप है कि जब हमारे पास यथेष्ट भोजन न हों, तब हम अपनी बिजलीको विलास वस्तुओंमें खर्च करें। इस प्रकारकी मनोवृत्ति दूषित है। यदि हम देश-पर संकट समझते हैं, तो क्यों न हम स्वार्थके दायरेसे उठकर ऐसा काम करें, जिसमें व्यक्तिगत स्वार्थकी अपेक्षा लोकके स्वार्थका अधिक ख़याल किया जाय।

तृतीय महायुद्धके विषयमें

'विशाल भारत'के इस अंकमें बर्टाण्ड रसलका 'तृतीय महायुद्ध अवश्यम्भावी' शीर्षक लेख छपा है। रसल साहबने अपनी बुद्धिसे युद्ध निवारणके जो कारण बताये हैं, वे महायुद्धके लिए रोक-थाम भले ही हों, पर उनसे बुनियादी ढँगसे युद्धोंका निवारण नहीं हो सकता। रूसका मुक़ाबला अधिक विध्वंसक हथियारोंसे हो सकता है, पर अमेरिकाका सर्वनाश और अधिक विध्वंसक हथियारोंसे होगा। आख़िर इन युद्धोंके पीछे विश्वके बाज़ारोंपर अधिकार प्राप्तकी मनोवृत्ति तो है ही। युद्धोंका विवरण तो तब ही होगा, जब हम बुनियादी तरीकेसे निवारण करें, अर्थात् उद्योगोंका विकेन्द्रीकरण करें और कुटीर उद्योगोंका अवलम्बन करें। आवश्यकताएँ कम करें तथा शारीरिक श्रमको महत्त्व दें, बाबू बनकर तथा नोट कमानेकी प्रवृत्तिमें पड़कर हम विश्व-शान्तिके पोषक नहीं बन सकते। सीधी-सी बात यह है कि हमें सर्वोदयकी नीतिका पालन करना पड़ेगा और गांधीजीके मार्गपर चलकर ही हम विश्व-शान्ति स्थापित कर सकते हैं और आगामी महायुद्धको रोक सकते हैं। पर गांधीजीका प्रोग्राम दिखानेका नहीं है। उनकी नीतिके अनुसार हमारे देशके अनेक मन्त्रियोंको हटना पड़ेगा, क्योंकि आज गांधीजीकी आड़ तो सब ही लेने लगे हैं।

पाकिस्तानी समाचार पत्रोंकी सद्भावना

गत ७ मईको दिल्लीमें पाकिस्तान समाचार पत्र सम्मेलनके अध्यक्ष पीरअली मोहम्मद रशीदीने पाँच हज़ार सिखोंकी सभामें कहा :—

"पाकिस्तानमें रह गये सिखोंके गुरुद्वारोंको वापस दिलाने और उनकी पवित्रता बनाये रखनेमें पाकिस्तानके समाचार पत्र यथाशक्ति सहयोग करेंगे। यदि हम इतना भी नहीं कर सकते, तो सभ्य जाति होनेका हमारा दावा निरर्थक होगा। मुझे उम्मीद है कि जब अगली बार मैं भारत आऊँगा, तो इस मामलेमें अपने सिख भाइयोंको कुछ विशिष्ट परिणाम दिखा सकूँगा।

पाकिस्तानी प्रेसने अब साम्प्रदायिक कटुताके कुचक्रको ख़त्म करके वातावरणमें परिवर्तन लानेका दृढ़ निश्चय कर लिया है। शायद अभी तक बुराईकी शक्तियोंको पूर्ण पराजय नहीं मिली है। कुछ बदमाश लोग अपने स्वार्थोंके लिए अब भी साम्प्रदायिक भावनाओंको उभाड़ना चाहते हैं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्तमें सत्य और प्रेमकी विजय होगी।"

जमींदार (लाहौर) के सम्पादक मौलाना अख़तरअलीने कहा, "पुरानी बातोंको भुलाकर अब सिखों और मुसलमानोंके पुनर्मिलनका समय आ गया है। नेहरू-लियाक़त समझौता दोनों देशोंके इतिहासमें एक युगान्तकारी घटना है। अब हम ठीक रास्तेपर हैं और हमारी सफलता निश्चित है।

"हमारी जो यहाँ आवभगत हुई है, उससे हम गद्‌गद हो गये हैं। मुझे डर है कि जब हम मुस्लिम अल्प-संख्यकोंके प्रति भारतमें हुए उल्लेखनीय परिवर्तनकी बात पाकिस्तानियोंको बतायँगे, तो उन्हें यक़ीन नहीं आयेगा। मुझे तो भारतमें मुसलमान उतना ही खुशी और आज़ाद दिखाई दिया, जितना पाकिस्तानमें।"

अखिल भारतीय राष्ट्रिय सिखपार्टीके अध्यक्ष सरदार उत्तमसिंह दुग्गलने पाकिस्तानी सम्पादकोंके निश्चयका स्वागत किया और उसे 'शानदार निश्चय' कहा। उन्होंने कहा "सिख यह चाहते हैं कि पाकिस्तान सरकार ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दे कि वे पाकिस्तानके गुरुद्वारोंकी तीर्थ-यात्रापर जा सकें। पाकिस्तानके ऐसा करनेपर दोनों देशोंके बीच सम्बन्ध बहुत हद तक सुधर जायँगे।"

पंजाबकी कांग्रेस कमेटीके भूतपूर्व अध्यक्ष डा० किचलूने प्रत्येक भारतीय और पाकिस्तानीसे अपील की कि "वह पिछली बातें भूल जाय और दोनों देशोंके बीच सद्‌भावना व मित्रताका जो नया युग शुरू हुआ है, उसका स्वागत करे।"

हम जानते हैं कि रशीदी साहबकी बातोंसे कुछ लीगियोंको बुरा लगा है; पर हमारा विश्वास है कि पाकिस्तानी प्रेसमें जो सद्‌भावनाका परिवर्तन हुआ है, वह परिस्थितिको देखते हुए ईमानदारीका परिवर्तन है। यदि दोनों देशोंके समाचार पत्रोंने पारस्परिक सद्‌भावनाको जोर दिया, तो हमारी सब कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी।

लियाक़त-नेहरू समझौतेका पूर्वपृष्ठ

लियाक़त-नेहरू समझौतेके ऊपर हम गत मास काफ़ी लिख

चुके हैं। और हमें आशा है कि 'विशाल भारत' के पाठकोंने समझ लिया होगा कि इस समझौतेके अतिरिक्त और कोई चारा भी तो नहीं था। जो युद्धकी बढ़-बढ़कर बातें करते हैं, उनके सम्बन्धमें हम लिख चुके हैं कि घोषित अथवा अघोषित युद्धकी बात इस समय कुत्सित मनोवृत्ति है। युद्धसे हम पूर्वी बंगालके हिन्दुओंको बचा सकते हैं। भारतके मुसलमानोंको खतम करनेसे न पाकिस्तानके हिन्दुओंकी रक्षा होती है न हमारे संविधानकी नीतिकी। हमने स्पष्ट कर दिया था कि पाकिस्तानको भी सद्भावनाके अतिरिक्त मार्ग नहीं था। हमने एक प्रतिष्ठित व्यक्तिसे बातें की। उन्होंने कहा कि जब पाकिस्तानको यह आशंका हुई कि कहीं भारत पाकिस्तानपर हमला न कर दे, तब पाकिस्तानके प्रधान मन्त्रीने इंगलैण्डके प्रधान मन्त्रीको सहायताके लिए लिखा। कहते हैं, सहायताके लिए मंजूरी तो मिली, पर उसकी शर्तें पाकिस्तानको गुलामीके गर्तमें डालने वाली थीं। तब लियाकतअली खाँ साहबने यही ठीक समझा कि कोरी अकड़से काम न चलेगा और क्यों न भारत वर्षकी सद्भावनाकी परीक्षा की जाय। हमारे खयालसे इसके अतिरिक्त यह भी कारण हो सकता है कि अफगानिस्तान और पख्तूनस्तानकी समस्याएँ पाकिस्तानको परेशान कर रही हैं। तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यदि कहीं पाकिस्तान और भारतमें लड़ाई छिड़ जाती, तो ऐंग्लो अमेरिकन गुट दोनों देशोंको इतना कमजोर और बेबस बना देता कि वे कहींके न रहते और उन्हें उसी गुटकी शरण लेनी पड़ती।

आगेकी बात

नेहरू-लियाकत समझौतेसे जो हालत बदली है, उससे हम तो व्यक्तिगत रूपसे यह महसूस करते हैं कि दोनों देशोंकी भलाई इसीमें है कि सैन्य-संचालनमें करोड़ों रुपया न फूँककर, दोनों देश एक संयुक्त रक्षा स्कीम तैयार करें। और पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगालका वही सम्बन्ध हो, जो कनाडा और अमेरिकाका है।

प्रचारका महत्त्वपूर्ण दायित्व

हमने ऊपर परिव्रजनके सम्बन्धमें लिखा था। पुरातन कालमें हमारे यहाँ सैकड़ों साधु-संन्यासी बिना किसी पार्टीके खयालसे—सचाई और ईमानदारीसे—उपदेश करते थे, लोगोंकी आलोचना करते थे। पर वे स्वयं किसी पद अथवा अधिकारके चक्करमें न पड़ते थे। इसीलिये जनतामें उनकी प्रतिष्ठा थी। आज एक कठिनाई कांग्रेसजनोंमें यह है कि पहले जो सेवक बनते थे, वे आज पदलोलुप बन रहे हैं। साधु-संन्यासियोंका जो काम करते थे, उनमें से आज अधिकांश सत्ताके मदमें चूर हैं। फलस्वरूप जनता उनका आदर नहीं करती। नेहरू-लियाकत समझौतेकी सफलताके लिए ऐसे प्रचारकोंकी आवश्यकता है, जो सचाई और ईमानदारीसे समझौतेकी शर्तोंका प्रतिपादन कर सकें। पुराने जमानेके नारद तथा परिव्राजकोंका स्थान समाचार पत्रोंने ले रखा है। इसलिये इस समझौतेको सफल बनानेके लिए समाचार पत्रों, सम्वाददाताओं तथा प्रकाशन अधिकारियोंको अपना महत्त्व समझना चाहिए। भारत-पाकिस्तानके बीच जो दिल्ली समझौता हुआ है, वह तब ही कार्यान्वित हो सकता है, जब सरकारी और गैर सरकारी लोग ईमानदारीसे अपने आचरणों द्वारा समझौतेकी शर्तोंको व्यवहृत करें और उनका प्रचार भी करें। गत २० अप्रैलको भारतीय संघके समस्त राज्योंके प्रकाशन विभागोंके त्रिदिवसीय सम्मेलनमें भारत सरकारके सूचना मन्त्री श्री दिवाकरने अध्यक्ष-पदसे भाषण करते हुए इस बातपर जोर दिया कि भारत-पाकिस्तान अल्पसंख्यक समझौतेको क्रियान्वित करनेमें सरकारी और गैर सरकारी प्रचारको रचनात्मक प्रयोग देना चाहिए। प्रतिनिधियोंका स्वागत करते हुए श्री दिवाकरजीने कहा :—

"जबतक हम देशके सब राज्योंमें समान स्तरकी प्रकाशन-व्यवस्थाका एक ढाँचा नहीं बना लेते, तबतक हमें प्रति तिमाही परस्पर मिलते रहना चाहिए। अब क्योंकि देशभरमें एक ही प्रकारकी शासन-व्यवस्था कायम हो गई है, इस बातकी आवश्यकता है कि लोगोंमें यह नई भावना भरी जाय। हमें प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए कि जनता स्वयं ऐसा महसूस करने लगेगी—हमें आगे बढ़कर जनताको नये लोकतन्त्रके लाभ समझाने चाहिए। हम जानते हैं कि अधिकांश जनता इस तरहकी कार्रवाइयोंके विरुद्ध है। किन्तु इतना काफी नहीं है। हमें

देशके प्रत्येक नागरिकको उसके कर्त्तव्यका बोध कराना चाहिए कि वह सक्रिय रूपसे ऐसी सब कार्रवाइयों व उसकी पिट्ठू संस्थाओंका डटकर विरोध करें।"

कश्मीरका बजट

सन् १९५०-५१ के कश्मीरके बजटमें आमदनी ४ करोड़ २४ लाख ३ हजार थी और अनुमानित व्यय ४ करोड़ २८ लाख ९८ हजार। इसके अनुसार घाटा हुआ ४ लाख ९५ हजार रुपयेका। विचारणीय बात यह है कि कश्मीरकी वर्त्तमान सरकारके पदारूढ़ होनेसे पूर्व १ करोड़ ३३ लाख १२ हजार रुपयेका घाटा था। स्पष्ट है कि वर्त्तमान सरकारके सतत परिश्रमसे ही १ करोड़ ३३ लाखका घाटा कम होते-होते ५ लाख रह गया है। पाठक इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि पिछले वर्षोंमें पाकिस्तानी आक्रमणोंके कारण कश्मीर सरकारकी व्यवस्था बिल्कुल अस्त-व्यस्त हो गई थी और वर्त्तमान कश्मीर सरकारके लिए यह एक श्रेयकी बात है कि उसने भीषण परिस्थितिमें भी अपनी आर्थिक व्यवस्थाको सुधार लिया। कश्मीरकी आमदनीके मुख्य स्रोत है, जंगलात और खेती। राज्य-कर्मचारियोंको भत्ता देनेमें भी १७ लाख खर्च करना पड़ा। हाँ, राज-परिवारके लिए केवल ६ लाखकी व्यवस्था की गई है। पुलिसके लिए २६ लाख, शिक्षाके लिए ३७ लाख, चिकित्साके लिए १५ लाख और शरणार्थी पुनः संस्थापनके लिए १० लाख रखे हैं। रेशमके उद्योगके लिए बजटमें लगभग २८ लाख रुपये रखे गये हैं। रियासतकी रक्षाकी जिम्मेदारी इस समय भारत सरकारपर है। इसलिये कश्मीर सरकारको इस मदमें कोई खर्च नहीं करना पड़ रहा है।

कश्मीर बजटके उपर्युक्त आंकड़ोंसे पाठक यह समझ सकते हैं कि भारतके अन्तर्गत कश्मीरका भविष्य कितना उज्ज्वल है और वहाँके किसानोंको उससे कितनी राहत मिलती है।

राष्ट्रीय ईंधन-अनुसन्धानशाला

गत २२ अप्रैलको राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजीने बिहार के डिगवाडीह (धनबाद) नगरमें ग्यारह अनुसंधानशालाओंकी इस शृंखलाकी तीसरी ईंधन-अनुसन्धानशालाका उद्घाटन किया। स्मरण रहे कि वैज्ञानिक अनुसन्धानके लिए देशमें ग्यारह राष्ट्रिय प्रयोगशालाएँ खोलनेका भारत सरकारका आयोजन है। राष्ट्रिय रासायनिक प्रयोगशाला और राष्ट्रिय भौतिक प्रयोगशालाका उद्घाटन हो चुका है। राष्ट्रिय ईंधन-अनुसन्धानशालाके विषयमें हम हिन्दुस्तानसे निम्नांकित पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं :—

यद्यपि भारतमें लोहेका कच्चा खनिज अपरिमित मात्रामें विद्यमान है, तथापि उसकी खनिज कोयलेकी प्राकृतिक सम्पदा अपरिमित नहीं है। इसलिये यह आवश्यक है कि कोयलेके समुचित संरक्षण, अपव्ययहीन उपयोग तथा यान्त्रिक प्रक्रियाओं से उसकी क़िस्म सुधारनेका यत्न किया जाय। सन् १९२८ और १९३६ में कोयला कमीशनने इन समस्याओंके वैज्ञानिक अध्ययन और अनुसंधानकी आवश्यकतापर बल दिया था, जिसके फलस्वरूप १९४० में एक ईंधन-अनुसंधान-समितिकी स्थापना की गई। १९४६ में इस सम्बन्धमें एक और कमीशन बैठाया गया और उसने भी इसपर बल दिया। ईंधन-अनुसंधानोंके लिए एक केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान क़ायम किया गया और भारत सरकारके वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसन्धान विभागके डायरेक्टर डा० शान्तिस्वरूप भटनागरने भी भारत सरकारको यह राय दी कि सरकारके युद्धोत्तर विकासके कार्य-क्रममें ईंधन-सम्बन्धी अनुसन्धानशाला को भी प्रस्तावित राष्ट्रीय अनुसन्धानशालाओंकी शृंखलामें स्थान दिया जाय। भारत सरकारने इस सिफारिशको स्वीकार कर लिया और इसके लिए १९४४ में आवश्यक द्रव्यकी स्वीकृति भी दे दी, किन्तु उसके बाद भी ६ वर्षतक यह योजना खटाईमें पड़ी रही। लेकिन अब स्वतन्त्र भारतकी राष्ट्रिय सरकारके प्रयत्नसे वह दिन आया है, जब कि पिछले २० वर्षसे उद्योगपतियों द्वारा की जा रही माँग पूरी हुई है।

इस अनुसन्धानशालाका मुख्य कार्य देशमें पाई जानेवाली अथवा तैयार की जाने योग्य ठोस, द्रव और गैस—तीनों प्रकारकी ईंधन-सम्बन्धी सब समस्याओंका क्रियात्मक प्रयोगोंसे अध्ययन तथा भारतीय कोयलेका भौतिक और रासायनिक अनुसन्धान करना होगा, ताकि देशमें पाये जानेवाले विविध प्रकारके कोयलों की मात्रा और क़िस्मका ठीक-ठीक अन्दाज लगाया जा सके,

और बिना अपव्ययके उसका अच्छे-से-अच्छा उपयोग किया जा सके। यों, पिछले तीन वर्षोंमें धनबादमें एक अस्थायी प्रयोगशालामें अनुसन्धानका काम किया जा रहा था, जिससे अब इस नई अनुसन्धानशालाको कोयलेके रासायनिक और भौतिक अनुसन्धान और झरिया, रानीगंज और बोकारोके कोयला क्षेत्रोंकी कुछ खानोंके उत्खननकी सम्भावनाओंका अध्ययन करनेमें सहूलियत हो जायगी। इस अस्थायी प्रयोगशालाने रासायनिक प्रक्रियासे संश्लेषण द्वारा द्रव ईंधन (तेल) तैयार करनेकी ओर भी काफ़ी ध्यान दिया। अबतक वह कोयलेके ३०० नमूनोंका भौतिक और रासायनिक गुणोंके अध्ययनके लिए विश्लेषण कर चुकी है।

नई अनुसन्धानशालामें वहाँकी स्थानीय परिस्थितियों एवं आवश्यकताओंकी उपेक्षा किये बिना आधुनिकतम साधनोंकी व्यवस्था की गई है। सभी प्रयोगशालाओंमें एयर-कण्डीशनिंग की व्यवस्था है। कुछ प्रयोगशालाओंमें भट्ठियाँ भी हैं। यह ध्यान रखा गया है कि एक प्रयोगशालाके विषैले, हानिकार वाष्प दूसरीमें न जाने पायँ। इसके लिए आमोनियाका प्रयोगकर पानी ठण्डा करनेवाले 'वेदरमेकर्स' लगाये गये हैं, जो कमरोंके भीतर तापमान और नमीको क़ायम रखेंगे, जिसका प्रभाव यह होगा कि एक कमरेकी उष्णता या वाष्प आदि दूसरे कमरेपर किसी क़िस्मका प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। खराब और प्राणघातक गैसों व वाष्पोंके लिए अलग स्थान सुरक्षित हैं, ताकि उनसे प्रयोगकर्त्ताओंके स्वास्थ्यपर बुरा असर न पड़े। प्रयोगशालाके कमरे इस ढँगसे बनाये गये हैं कि आवश्यकता पड़नेपर उनकी मध्यवर्त्ती दीवारें तोड़कर उन्हें उपेक्षाकृत लम्बी प्रयोगशालाओंमें परिणत किया जा सकता है।

अनुसन्धानशालाके डायरेक्टर डा० जे० डब्लू० ह्विटेकर हैं, जो भारतके वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान डायरेक्टर डा० शान्तिस्वरूप भटनागरके परामर्शसे कार्यका संचालन करेंगे।

इस संस्थाके अधीन ६ प्रादेशिक कोयला अध्ययन प्रतिष्ठान होंगे। कोयलेके भौतिक और रासायनिक अध्ययनके लिए यह अत्यावश्यक है। यह प्रतिष्ठान रानीगंज, झरिया, बोकारो-रामगढ़-करणपुरा, पूर्वी रियासतों (विन्ध्यप्रदेश), मध्यप्रदेश और आसामके कोयला-क्षेत्रोंके लिए क्रमशः दिशेरगढ़, डिगवाडीह, राँची, उमरिया, काम्पटी और डिब्रूगढ़में खोले जायँगे। रानीगंज और झरियाके प्रादेशिक अध्ययन प्रतिष्ठान तो अब भी काम कर रहे हैं और शेषके निर्माणका कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ हो रहा है। रानीगंज कोयला-क्षेत्रमें भी क्षेत्रके पूर्वी सिरेके कोयलेकी जाँच और विश्लेषणका काम किया जा रहा है, ताकि यह मालूम किया जा सके कि यहाँके कोयलेको संश्लेषणात्मक रासायनिक तेलके निर्माणमें प्रयुक्त किया जा सकता है या नहीं। बोकारो क्षेत्रमें दामोदर घाटी कारपोरेशनकी प्रार्थना पर बरमो खानकी जाँच प्रारम्भ कर दी गई है। मध्यप्रदेशके कोयलेकी जाँचके लिए भी काफ़ी प्रारम्भिक कार्यवाही कर ली है।

विज्ञानका प्रसार और उदार संस्कृति

गत २२ एप्रिलको राष्ट्रिय-ईंधन-अनुसन्धानशालाके उद्घाटन-समारोहपर भाषण करते हुए प्रधान मन्त्री माननीय नेहरूजीने कहा, "स्वतन्त्रता प्राप्त होनेके बाद देशमें अच्छी और बुरी दोनों ही प्रकारकी शक्तियोंका उदय हो रहा है। संकीर्णताकी ओर ले जानेवाली शक्तियाँ संस्कृतिके नामपर सिर उठा रही हैं, यद्यपि संस्कृति वस्तु हृदय और मनकी विशालता को प्रोत्साहित करती है। अतः ऐसे समय आवश्यक है कि हमारे भावी नागरिकों यानी आजके बालकोंके मनोंको विज्ञान इस प्रकार ढाले कि वे नूतन सत्योंका साक्षात्कार करते हुए बढ़े हों और सीधे सच्चे रहनेका साहस उत्पन्न करें। वे पुरानी मान्यताओंसे केवल इसलिये न बँधे रहें कि वे प्राचीन हैं, वरन् नूतन सत्यके प्रकाशमें उनमें सुधार भी कर सकें। वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ केवल अनुसन्धान संस्थाएँ नहीं होतीं, वरन् वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मनोवृत्तिकी भी प्रतीक होती हैं। विज्ञान हमारे मनोंकी संकीर्णता दूर करता है और संस्कृतिको उदार बनाता है और वह प्रगतिको रोकनेवाली कट्टरताका विरोधी है। हमें विज्ञानका प्रयोग अपने निजी स्वार्थोंकी पूर्तिके लिए नहीं, वरन् मानवताकी दशा सुधारनेके लिए करना चाहिए।"

बात तो ठीक है; पर विज्ञानके प्रचार और प्रसारके साथ प्रत्येक प्रकारकी कुत्सितता बढ़ जाती है।

उच्च शिक्षा-सम्बन्धी सिफ़ारिशें

पाठकोंको याद होगा कि कुछ दिनों पूर्व विश्वविद्यालय-शिक्षा-कमीशनकी नियुक्ति हुई और भारतीय संघके विभिन्न सूबोंमें घूमकर उस कमीशनने गवाहियाँ लीं। कमीशनने जो सिफ़ारिशें की थीं, उनपर गत २३ अप्रैलको केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदायी मण्डलने विचार किया। कमीशनकी सिफ़ारिशोंको अधिकांशमें साधारण सुधारोंके साथ स्वीकार कर लिया गया। चयन स्तम्भमें 'विशाल भारत'के इसी अंकमें हम उन स्वीकृत सिफ़ारिशोंको दे रहे हैं। हम कई बार लिख चुके हैं कि हमारे विश्वविद्यालयोंमें जो पढ़ाई चल रही है, उसकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है, ४-५ वर्षके लिए पढ़ाई बन्द करके अध्यापक तथा विद्यार्थी शारीरिक श्रमका महत्त्व समझें। आज जो विद्यार्थी पढ़ते हैं, उनमें से अधिकांश नौकरीके इच्छुक होते हैं। कृषिकी डिग्री जो विद्यार्थी पाते हैं, वे कृषि-विभागमें नौकरीकी टोह करते हैं, हालाँकि उनके घरपर दो-दो सौ बीघाकी काश्त होती है और फिर अधिकांश विद्यार्थी शृंगारकी वस्तुएँ खरीदते हैं। यन्त्रोंमें जिस प्रकार चीजें बनाई और पेली जाती हैं, उसी प्रकार हमारे वर्त्तमान कालेज और स्कूलोंमें हमारे विद्यार्थी एक ढाँचेमें ढलते हैं। निर्जीवता और निकम्मापन वर्त्तमान शिक्षाका दोष है। उच्च शिक्षाके लिए माध्यम अंगरेज़ीके बजाय भारतीय भाषाको बनाया जाय और यह परिवर्तन थोड़े से थोड़े समयमें होना चाहिए। विश्वविद्यालयोंकी कक्षाओंमें विद्यार्थियोंको राष्ट्रभाषा और अंगरेज़ीका भी ज्ञान प्राप्त करना होगा। कुछ विषयों अथवा सब ही विषयोंके माध्यमको राष्ट्रभाषाकी सिफ़ारिश की है। राष्ट्रभाषाकी लिपि देवनागरी ही रखी गई है, पर उसके दोष दूर करनेकी भी बात उसमें है। केन्द्रीय सलाहकार बोर्डने राष्ट्रभाषाको लोकप्रिय बनानेके लिए कई उपायोंपर भी विचार किया है। जन-साधारणकी रुचिके अनुसार हिन्दीमें सस्ती और आकर्षक पुस्तकें प्रकाशित करनेकी बात कही गई है। रेडियो द्वारा हिन्दीके पाठ प्रसारित करनेका भी सुझाव है। सरकारी नौकरोंके लिए हिन्दी परीक्षाओंकी व्यवस्था की गई है। कमीशनने अन्तर्राष्ट्रीय शैल्पिक और वैज्ञानिक शब्दावलीको ज्यों-की-त्यों लेनेकी सिफ़ारिश की थी, पर बोर्डने सुझाव रखा है कि विदेशी शब्दोंको अपनी भाषामें ज़रूर लें और उनका उच्चारण भारतीय भाषाकी स्वरावलीके अनुसार हो। वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करनेके लिए एक बोर्ड तैयार किया गया है। शिक्षकोंके वेतन-स्तरको ऊँचा उठानेकी सिफ़ारिश है।

अब देखना यह है कि इन सिफ़ारिशोंपर अमल कब तक होता है।

भारत-पाकिस्तान-व्यापारिक समझौता

गत २५ अप्रैलको भारत और पाकिस्तानके बीच एक व्यापारिक समझौता हुआ। समझौतेकी मूल बातें इस प्रकार हैं:—

"दोनों देशोंमें लगभग ३४ करोड़ रुपयेके सामानका आदान-प्रदान होगा। पाकिस्तान अपने पटसन बोर्डके जरिये भारतीय पटसन मिल संघको एक निर्धारित मूल्यपर और निर्धारित तिथियोंपर ४० लाख मन पटसन देगा। भारत २०,००० टन पटसनसे बना सामान पाकिस्तानके पटसन बोर्डको देगा। इसके अलावा पाकिस्तान भारतसे ४५,००० गाँठ सूती कपड़े, ५,००० गाँठ सूती धागा, ७,००० टन सरसोंका तेल, ५,००,००० पौण्ड तम्बाकू, ५,००० टन इस्पातकी चद्दरें, १,००० टन पहिये, टायर और धुरियाँ, १२,००० टन इमारती लकड़ी, ५०,००० टन सीमेंट, तथा ५० लाख रुपयेका ऊनी सामान और खरीद सकता है। यह आदान-प्रदान भारतीय रुपयोंमें होगा, जिसके लिए रिज़र्व बैंकमें एक अलग हिसाब रहेगा और उसकी क़ीमत बराबर होगी।

स्वतन्त्र व्यापारकी प्रणालीसे पाकिस्तान भारतको वनस्पतियाँ, फल, मछलियाँ, दूध तथा दूधसे बना हुआ सामान, पानके पत्ते, बिनौला, सोडा ऐश तथा खालें देगा और भारत बिना लाइसेंसके पाकिस्तानको चमड़ा, मसाले, साबुन, पेन्ट, दवाइयाँ, सिगरेट, सीनेकी मशीनें, बिजलीके पंखे, रेशम व हाथ-करघेके कुछ क़िस्मके कपड़े भेजनेकी अनुमति प्रदान करेगा। पाकिस्तानने भारतको १,५०,००० टन गेहूँ देनेका प्रस्ताव रखा है, जिसपर दोनों देशोंकी सरकारोंके मध्य शीघ्र ही बात-चीत जारी होगी। इन चीज़ोंको शीघ्रातिशीघ्र इधरसे उधर

भेजनेके लिए दोनों सरकार अपने समस्त परिवहन साधनों और शासन-तन्त्रका उपयोग करेगी। दोनों ओरके प्रतिनिधि यथासम्भव बार-बार और नहीं तो कम-से-कम महीनेमें एक बार मिलते रहेंगे।"

यह समझौता तुरन्त ही लागू हो जाता है और ३१ जुलाई, १९५० तक जारी रहेगा।

हमारे खयालसे भारत और पाकिस्तानके बीच जो व्यापारिक गतिरोध था, वह खतम हो गया है। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि इस गतिरोधके कई कारणोंमें एक कारण भारतीय रुपयेका अवमूल्यन था। पौंडका अवमूल्यन हुआ था और रुपयेका भी अवमूल्यन हुआ था। पर पाकिस्तानने अपने रुपयेका मूल्य ज्यों-का-त्यों ही रखा था। फलस्वरूप भारत और पाकिस्तानके व्यापारमें भारतको पाकिस्तानी माल का अधिक मूल्य चुकाना पड़ता और पाकिस्तान अपेक्षाकृत भारतीय मालको सस्ते भावोंपर खरीद सकता था। यह बात हम इसलिये लिखते हैं कि अब भी दोनों देशोंकी रुपयेकी दरें पहले जैसी ही हैं, पर इस समझौते द्वारा दोनों देशोंका व्यापार संतुलित रहेगा और कोई रास्ता ऐसा निकाल लिया जायगा, जिससे किसी देशको कोई घाटा न रहे। समझौतेमें यह भी व्यवस्था की गई है कि समय-समयपर दोनों देशोंके प्रतिनिधि मिलकर विचार करें कि समझौता किस प्रकार सफल हो सकता है। मालके आदान-प्रदान और यातायात-सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी मिलकर तय कर ली जायँगी। पाकिस्तान भारतको डेढ़ लाख टन गेहूँ देगा, रूई भी देगा और बदलेमें कोयला लेगा। हमारे खयालसे यह समझौता दोनों देशोंके सम्बन्धको और अच्छा बनायेगा।

ज़मीनकी कटनकी विभीषिका

गत २१ मईके समाचार पत्रोंमें हमने निम्नांकित पंक्तियाँ पढ़ीं :—

पाकिस्तानकी मिट्टी आँधियों और पानीकी लहरोंसे बड़े तीव्र वेगसे उड़ाई और बहाई जा रही है। राजधानीसे देशके अन्तरालमें जानेवाली एकमात्र मुख्य सड़कपर यात्रा करनेवाला कोई भी व्यक्ति अनायास ही अरब सागरसे आनेवाली इन पीली आँधियों और रेतीले तूफानोंका दृश्य देख सकता है।

कराचीमें कहीं हरियाली या सब्जी नहीं है। इसके उपनगरोंसे बाहर निकलते ही पत्रहीन सेंहड़का इलाक़ा शुरू हो जाता है। हरियालीका कहीं चिह्न भी नजर नहीं आता। कहीं-कहीं रूखी-सी विरल घास दीख पड़ती है; मानों आँधियों और तूफानोंसे नंगी पहाड़ियों और घाटियोंमें हल्की-सी मुस्कान हो। समुद्र-तटसे सैकड़ों मील भीतर तक शायद ही कहीं थूहरसे बड़ा कोई हरा झाड़ या वृक्ष हो, जिसके पादमूलमें शरण लेकर आश्रयविहीन सूखी मिट्टी क्रूर आँधी-तूफान के थपेड़ोंसे अपनी रक्षा कर सके।

पाकिस्तानको पानीकी जितनी आवश्यकता है, वृक्षोंकी उससे कहीं अधिक है। पंजाबमें भी, जहाँ बड़ी-बड़ी कूलंकषा नदियाँ कल्लोल कर रही हैं, नये जंगल लगानेकी उतनी ही आवश्यकता है। पंजाबमें सिंचाईके लिए नहरोंका जाल बिछा हुआ है। इस नहरी इलाक़ेमें ही पाकिस्तानकी सबसे अधिक कृषि-सम्पदा केन्द्रित हुई पड़ी है। वहाँ एक सर्वथा नई समस्या पैदा हो गई है। नदियोंके बेकार पानीके जगह-जगह इकट्ठा हो जाने और जलशक्तिके मानवीय बलसे संगठित न किये जानेके कारण वहाँ २३,५०,००० एकड़ जमीन कृषिके लिए निकम्मी हो गई है और जिस चालसे यह बेकार पानी मिट्टीको बहा रहा है, यदि वह इसी तरह जारी रही, तो हर बरस ४०,००० एकड़ और शायद दो लाख एकड़ तक पंजाबकी उर्वरखेज जमीन खराब होती जायगी। इसके मुक़ाबलेमें इस जमीन को सुधारकर कृषि-योग्य बनानेका काम अत्यन्त मन्द गतिसे—३३,००० एकड़ प्रतिवर्ष—हो रहा है। अन्य उर्वर क्षेत्रोंमें भी नदियोंने जमीन काटकर बहुत बड़ा नुकसान पहुँचाया है। रावलपिंडी जिलेमें यह चीज़ खास तौरसे दीख पड़ती है।

भूमि-विशेषज्ञोंका कहना है कि भूमिकी रक्षाके लिए किसी भी देशकी कम-से-कम २० प्रतिशत जमीनपर जंगलातका होना आवश्यक है। लेकिन पाकिस्तानकी केवल ४ प्रतिशत भूमिमें जंगल है और पाकिस्तान सरकार इसके खतरेको खूब अच्छी तरह महसूस करती है।

सवाल केवल पाकिस्तानका ही नहीं है। भारतवर्षमें भी जमीनकी कटनके कारण स्थिति काफ़ी गम्भीर है। राजस्थानकी मरुभूमि बड़ी तेज़ीसे उत्तर प्रदेशकी ओर बढ़ रही है। भूमिकी यह कटन—जमीनका यह क्षयरोग—कई सौ वर्षोंसे अबाध रूपसे जारी है। जंगलात और पेड़ोंके अंधाधुंध कटनेसे स्थिति और भी ख़राब हो गई है। मैदानी इलाक़ोंमें जलानेको लकड़ी नहीं मिलती। 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन बिल्कुल ठीक है; पर उसके पीछे लोग पड़े हैं और बिना सोचे जंगल काटे जा रहे हैं। और हमारे सत्ताधारी यह नहीं समझते कि खाद्यान्न पैदा करनेके लिए अच्छे पशुओंकी आवश्यकता है और अच्छे पशुओंके लिए चारेकी। गत द्वितीय महायुद्धमें बड़ी क्रूरतासे पेड़ोंको काटा गया है। कारखानोंमें एक दिनमें अगणित तोपें और राइफलें बनाई जा सकती हैं और प्रत्येक मौसममें। पर पेड़ और खेतीके लिए निश्चित समय चाहिए। अमेरिका तो अपनी पिछली भूलोंका मार्जन कर रहा है। पर हमारे यहाँ तो सरकारी और ग़ैर सरकारी ध्यान नहीं दे रहे हैं। हम प्रायः लिखा करते हैं कि वृक्षारोपण और वृक्ष संरक्षण कार्यको हमें बड़े जोरोंसे चलाना है। इराक, मिश्र और हड़प्पा आदि की संस्कृतियाँ नष्ट हो गईं, क्योंकि जंगलातके कटनेसे जमीनकी कटन हुई और फिर शहरोंकी बरबादी और आज वहाँ पुरानी सभ्यताके भग्नावशेष हैं। जो स्थिति पाकिस्तानकी है, वह अनेक अंशोंमें हमारी भी है। यदि हमने सक्रिय रूपसे इस समस्याको हल नहीं किया, तो हमारी ख़ैर नहीं।

हमारे छात्रोंका ज्ञान-स्तर

पता चला है कि प्रधान मन्त्री पं० नेहरूजीने विभिन्न राज्योंके शिक्षामन्त्रीके नाम एक गश्ती पत्र भेजा है, जिसमें विश्वविद्यालयके छात्रोंके गिरते हुए स्तरके प्रति चिन्ता प्रकट की है। नेहरूजीने विभिन्न शिक्षा मन्त्रियोंके नाम जो पत्र भेजा, उसके कुछ अवतरण इस प्रकार हैं:—

"चुने हुए छात्रोंमें से भी बहुत ही कम छात्रोंको भारतके इतिहास, उसकी परम्पराओं तथा महत्ताओंका साधारण ज्ञान रहता है। उदाहरणके लिए दो ही छात्र अजन्ताके सम्बन्धमें पूछे गये प्रश्नका सही उत्तर दे सके थे। सर फ़ीरोजशाह मेहताके बारेमें तो एक भी छात्र कुछ नहीं बतला सका। सारनाथके सम्बन्धमें किसीने भी प्रश्नका उत्तर नहीं दिया। अतएव यह आवश्यक है कि उच्च पदोंपर नियुक्त किये जानेवाले छात्रोंको भारतका पर्याप्त ज्ञान करवाया जाय, उस भारतकी, जिसकी सेवाके लिए उन्हें चुना जा रहा है। भारतीय इतिहास तथा नये विधानके सिद्धान्तोंके गहरे अध्ययनको अनिवार्य विषय बनाना चाहिए। इस सम्बन्धमें उत्तर प्रदेशकी बहुत आलोचना की गई है। पत्रमें कहा गया है कि कुछ वर्ष पहलेकी तुलनामें इस राज्यके छात्रोंका अंगरेज़ीका स्तर बहुत नीचे गिर गया है। अर्थशास्त्रमें प्रथम श्रेणीमें एम० ए० पास छात्रोंका भी अवमूल्यनके सम्बन्धमें बहुत ही अस्पष्ट विचार है। दुरावस्था यहाँ तक है कि वैधानिक इतिहास पढ़ानेवाले लेक्चरों तकको मन्त्रिमण्डल शासन-प्रणालीका पूर्ण ज्ञान नहीं है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इतिहासमें एम० ए० करनेवाले छात्रोंने मीराबाई और कबीरके नाम तक नहीं सुने थे।

बहुत ही प्रतिभा-सम्पन्न २० छात्रोंसे प्रश्न पूछा गया था कि विधानके अन्तर्गत सभी शासकीय अधिकार राष्ट्रपतिको सौंप दिये गये हैं। मन्त्रिमण्डल तो केवल राष्ट्रपतिको सलाह तथा सहायता देनेके लिए है। इसके अलावा राष्ट्रपति सभी सेनाओंके प्रधान सेनापति है। ऐसी स्थितिमें विधानके अन्दर क्या व्यवस्था की गई है, जिससे राष्ट्रपतिको अधिनायक (डिक्टेटर) बननेसे रोका जा सके? किसी भी छात्रने यहाँ तक कि वैज्ञानिक क़ानूनके अध्यापकों तकने उक्त प्रश्नका समुचित उत्तर नहीं दिया। हर व्यक्तिने केवल यही उत्तर दिया कि हमारे राष्ट्रपतिके समान ही अधिकार-प्राप्त कोई भी ऐसा नहीं निकला, जो संसदके आर्थिक नियन्त्रणके अधिकारकी ओर संकेत करता।"

उपर्युक्त पंक्तियोंको पढ़कर किस भारतवासीकी आँखें लज्जासे नीची न होती होंगी। हमारा विश्वविद्यालयोंसे सीधा सम्बन्ध नहीं है, पर हम एक बात अच्छी तरह जानते हैं कि अनेक कालेजोंके विद्यार्थी इस बातके लिए हड़ताल करते हैं कि वे तिमाही और छमाही परीक्षा न देंगे और कोर्सकी तैयारीसे पहले अधिक छात्र इस बातमें अधिक समय

नष्ट करते हैं कि अमुक परीक्षा-पत्रका निरीक्षक कौन है। हिन्ट्स (hints) के लिए जो धमाचौकड़ी मचती है, वह देखने ही लायक है। दो-चार बी०ए०के छात्रोंने हमसे दो-चार बार अंगरेजीके निबन्ध बोलकर लिखानेकी प्रार्थना की, ताकि वे निबन्धको रटकर परीक्षामें लिख आवें। परीक्षकोंसे सिफ़ारिश कराकर नम्बर बढ़वानेके तो अनेक उदाहरण हमें मालूम हैं। परीक्षामें नकल करनेकी प्रवृत्ति घटनेकी बजाय बढ़ गई है। विश्वविद्यालयके प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण अनेक विद्यार्थियोंको बीसों बार हमने अंगरेजीमें कुछ बोला है, पर उसमें अनेक स्पेलिंग और विराम चिह्नोंकी ग़लतियाँ मिलती हैं। बीसों 'साहित्यरत्न' पास व्यक्तियोंको हम देखते हैं, जो कभी-कभी बीस-बीस पंक्तियोंमें दस-दस ग़लतियाँ करते हैं। इस भयावह स्थितिको ठीक करनेके लिए विश्वविद्यालयोंको परीक्षाओंका स्तर कुछ कठिन करना चाहिए। विश्वविद्यालय कमीशनने जो सिफ़ारिशें की हैं, उनपर अमल करनेसे हालत शायद कुछ सुधरे।

सिडनी-सम्मेलन

गत मई मासमें सिडनी (आस्ट्रेलिया) में राष्ट्र मण्डलीय देशोंके प्रतिनिधियोंपर जो सम्मेलन हुआ था, वह सकुशल समाप्त हो सका। प्रारम्भमें तो समाचार पत्रोंमें यह छपा कि उपयुक्त सम्मेलनकी सफलता आशाजनक नहीं। पहला मतभेद तो यह था कि दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देशोंकी आर्थिक सहायता दीर्घ कालीन योजनाओंसे की जाय अथवा अल्पकालीन योजनाओंसे और फिर योजनाओंके लिए रुपया कहाँसे आय। समाचार पत्रोंका कहना है कि सम्मेलन सफलतापूर्वक समाप्त हो गया। शायद उस सफलताका कारण यह हो कि इस सम्मेलनका मुख्य निर्णय है कि एशियाके दक्षिण-पूर्वी देशोंको राष्ट्रमण्डलीय देश आर्थिक विकास तथा शैल्पिक विकासके लिए आगामी तीन वर्षोंमें ८० लाख पौंड खर्च करनेको मिले। अभी यह पता नहीं चला कि कौन देश कितना धन देगा। असली बात यह है कि दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देशोंमें कम्यूनिज़्मकी बाढ़ बड़ी जोरसे आ रही है। ऐंग्लो अमेरिकन नीतिका वहाँ दिवाला पिट गया है। सैनिक तथा सामुद्रिक दृष्टिसे योजनाओंपर पानी फिर गया है। इसलिये दक्षिणी-पूर्वी एशियाकी आर्थिक स्थिति सुधारनेके पीछे अमेरिका और इंगलैण्डके स्वार्थकी बात है। हमें शिकायत यह है कि आस्ट्रेलियाने भारतको जो गेहूँ दिया था, उसकी बढ़ाकर क़ीमत ली थी। अमेरिका तकसे गेहूँ लेनेमें जो कठिनाई पड़ी, उसे हम जानते हैं। ऐसी दशामें हमें यह आशंका होने लगी कि सिडनी-सम्मेलनमें जहाँ दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देशोंकी सहायताकी बात है, वहाँपर आस्ट्रेलिया अमेरिका और इंगलैण्डके व्यापारको बढ़ानेकी भी बात है। दक्षिणी-पूर्वी एशियामें स्वयं धरा ही क्या है। सहायताके मानी हम दान-दक्षिणा नहीं समझते, पर उसके मानी ऐसे भी नहीं, जिससे कोई देश चूल्हेसे निकलकर भट्ठीमें जा पड़े। मलायामें जो अंगरेजोंने करोड़ों रुपया फूँक दिया, उससे क्या हुआ। हमें यह आशंका है कि इस प्रकारकी सहायतासे दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देश राजनीतिक शतरंजके मोहरें न बन जायँ और कहीं वे बड़े राष्ट्रोंकी व्यापारिक गुलामीमें न फँस जायँ। इस बातपर कौन विश्वास करेगा कि अंगरेज़ मलायाकी भलाई चाहते हैं। व्यापारपर गोरोंकी नज़र है। दीर्घकालीन परिणामोंपर अधिक ज़ोर देना चाहिए और तब ही हम समझेंगे कि सिडनी-सम्मेलनका मंशा वास्तवमें सहायता देनेका है।

अफ़ग़ानिस्तान और पठानिस्तान

गत १८ मईका सैनफ्रैंसिसकोका समाचार है कि विश्व समस्या कौंसिलकी बैठकमें, भाषण देते हुए, पाकिस्तानके प्रधान मन्त्री मि० लियाकत अलीने क्रोधभरे शब्दोंमें कहा कि उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्तमें स्वतन्त्र पठान राज्यके चलनेवाले आन्दोलनके पीछे निरंकुश और तानाशाही अफ़ग़ानिस्तान सरकारका हाथ है, जो अत्यन्त शरारतपूर्ण तथा बेईमानीसे भरा हुआ है। फेयरमाउण्ट होटल, जहाँ उक्त बैठक हो रही थी, के समीपवर्ती क्षेत्रोंमें रहनेवाले पठान सड़कके किनारे एकत्र हो गये थे और पठानिस्तानके नारोंसे अंकित पट्टियाँ हाथमें लिये हुये थे। पाकिस्तानके प्रधान मन्त्रीको यह सब देखकर अत्यन्त क्रोध आ गया और अपने बैठकमें उन्होंने उक्त शब्द कहे।

हमारे ख़यालसे पठानोंकी माँग माकूल है और पठानिस्तान

बननेसे पाकिस्तानकी सीमा भी सुरक्षित हो जायगी, ठीक उस भाँति जिस भाँति स्वतन्त्र नेपाल चीन और भारतके बीच एक बफर राज्यका काम करता है।

यदि सत्य है तो स्तुत्य !

हमें 'कर्मवीर'में यह पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि खैरागढ़ राज्यकी रानी महोदयाने हिन्दीके यशस्वी लेखक श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शीजीको १५०) मासिक खर्च और अपने राज्यके मकानोंमें से एक श्रेष्ठ मकान देनेका पुण्य कार्य किया है। स्मरण रहे कि खैरागढ़ उन छोटी रियासतोंमें से है, जो अपनी स्वेच्छा से भारतीय संघमें विलीन हो चुकी हैं। ऐसी दशामें महारानीजी का यह पुण्य कार्य और भी स्तुत्य है। इस प्रकारका कार्य करके वे जो पुण्य कमायेंगी, उससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी और हिन्दी-साहित्यसेवी सगर्व उनका स्मरण करेंगे कि इस गये गुज़रे ज़मानेमें भी कलावादियोंका मान करनेवाले व्यक्ति हमारे देशमें हैं।

नेहरूजीकी कराँची-यात्रा

भारतके प्रधान मन्त्री माननीय नेहरूजी केवल दो दिनके लिए पाकिस्तानकी राजधानी कराँची गये और २८ अप्रैलको वापस आ गये। कराँची पहुँचनेपर उनका जो भव्य स्वागत हुआ, बच्चों, बूढ़ों, महिलाओं तथा सरकारी अफ़सरोंने जो अभिवादन किया वह इस बातका द्योतक है कि हमारे पाकिस्तानी भाइयोंकी रगोंमें मानवी खून संचारित हो रहा है। उनके स्वागत तथा सम्पर्कसे ऐसा प्रतीत होता था, मानों हम १९२०-२१ के भारत के दृश्य देख रहे हों। वहाँके समाचार पत्रका यह शीर्षक कितना मर्मस्पर्शी है कि ताज़ी ख़बर आई है कि नेहरू हमारे भाई हैं। दिल्लीमें जो समझौता हुआ था, उससे वातावरण तो बदल ही चुका था। पाकिस्तानकी जनताने तथा सरकारी कर्मचारियोंने नेहरूजीके स्वागतमें अपनी आँखें बिछा दीं। हर ज़ुबानपर यह था कि नेहरूजी गांधीजीके योग्य शिष्य हैं। नेहरू-लियाक़त-कराची-वार्त्ताके विषयमें सरकारी विज्ञप्तिसे पता चलता है कि दोनों प्रधान मन्त्रियोंके कराची-मिलनसे दिल्ली समझौतेको कार्यान्वित करनेमें सन्तोषजनक प्रगति हुई है और आशा है कि अल्पसंख्यकोंका एक दूसरे देशमें आना-जाना धीरे-धीरे घटता जायगा। दोनों प्रधान मन्त्रियोंने कश्मीर शरणार्थियोंकी सम्पत्ति और नहरी पानीपर विचार-विनिमय किया। ज़फ़रुल्ला साहब तकने विदेशी-मन्त्रीकी हैसियतसे कहा कि कश्मीर-मामलेको संयुक्त राष्ट्र-संघसे वापस लिया जा सकता है और पारस्परिक रूपसे उसका निपटारा हो जायगा।

हमारे ख़यालसे इस प्रकारकी यात्राओंसे भारत और पाकिस्तानके बीच जो भ्रम पैदा हो गये हैं, वे दूर हो जायँगे और स्थिति सुधर जायगी।

चन्द्रनगरका पुनर्मिलन

गत २ मई १९५० को लगभग २५० वर्ष बाद चन्द्र-नगर भारतमें फिर मिल गया है। यहाँ हमें चन्द्रनगरके पुराने इतिहासकी चर्चा नहीं करनी है। बस, इतना लिखना है कि भारतके जिन स्थानोंपर विदेशियोंका अधिकार है, वे विदे-शियों तथा भारतवासियोंके लिए कलंकके प्रतीक हैं। गोआ, डामन, ड्यू, पांडीचेरी तथा चन्द्रनगर आदि भारतीय स्वत-न्त्रताके लिए खुली छुरीके समान हैं और हमें विश्वास है कि वे सब धीरे-धीरे भारतके अधीन हो जायँगे।

दिनकरजीका सम्मान

हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि हिन्दीके प्रसिद्ध कवि श्री रामधारी सिंहजी 'दिनकर'को उनके प्रसिद्ध काव्य 'कुरुक्षेत्र' पर १००१) का पुरस्कार दिया गया और उनका प्रयागमें साहित्यकार-संसदके मैदानमें स्वागत और सम्मान किया गया। साहित्यसेवी और लोकसेवीको रुपयों अथवा मुहरोंसे विभूषित करना उनकी प्रतिष्ठाको नहीं बढ़ाता; क्योंकि बड़प्पनकी कसौटी रुपया-पैसा नहीं है, वरन् सहृदयता और श्रद्धा ही किसीके नाम अथवा प्रतिष्ठाके लिए काफ़ी होते हैं। कोई आदमी इसलिये बड़ा नहीं होता कि उसके पास रुपया ज़्यादा है, वल्कि इसलिये कि वह बड़ा लोकसेवी है। श्री दिनकर जीको हम व्यक्तिगत रूपसे भी जानते हैं। हिन्दीके वे इने-गिने कवियोंमें से हैं। हमें प्रसन्नता है कि लोगोंने उनके प्रति श्रद्धा और स्नेह संसद द्वारा प्रकट किया।

भ्रष्टाचारके विरुद्ध चेतावनी

भ्रष्टाचारके विरुद्ध हमने जो मोर्चा-सा खड़ा कर रखा है,

उसका क्या असर होता है, इसकी हमें चिन्ता नहीं है। आदमीको अपने आदर्शपर डटा रहना चाहिए और सचाई और ईमानदारीके साथ अपनी बात कहनेमें कोई संकोच नहीं करना चाहिए। हमारा चरित्र कोढ़की भाँति फूट-फूटकर प्रकट हो रहा है। सचाई और ईमानदारी कांग्रेसकी बपौती नहीं है, वरन् वे तो प्रत्येक व्यक्तिके आचरणों द्वारा प्रकट होनी चाहिए। आखिर खाद्यान्नमें दूकानदार मिलावट क्यों करते हैं? बग़ैर टिकट चलनेका लोग प्रयत्न क्यों करते हैं? बेईमानीसे अधिक पैसे लेनेके प्रयत्न क्यों होते हैं? इसी सिलसिलेमें आचार्य कृपलानीजीने गत ३० अप्रैलको बेतियामें ज़िला राजनीतिक सम्मेलनका उद्घाटन करते हुए कहा, गांधीजीने हमको अंगरेज़ोंसे लड़नेको कहा। और हमने अहिंसक रूपमें उनका मुकाबला किया तथा स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमें सफल हुए। लेकिन अभी हमें जनताके लिए आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है। रचनात्मक कार्यके रूपमें गांधीजीने हमें रास्ता दिखा दिया है—प्रत्येक ग्रामको स्वावलम्बी बनानेका। उन्होंने अपने देशवासियोंसे कहा था कि उत्पादनका विकेन्द्रीकरण करनेसे रक्तहीन क्रान्ति होगी। हम गांधीजीकी सलाहको ठुकराते आ रहे हैं। हमने देख लिया है कि धार्मिक आधारपर देशका विभाजन स्वीकार करनेमें कितना अधिक रक्तपात हुआ है। गान्धीजीकी इच्छा तथा उनकी सलाहके विरुद्ध हमारे नेताओंने इस विभाजनको चुना। अब भी गांधीजीके कार्यक्रमको कार्यान्वित नहीं किया जा रहा है। कांग्रेसजन आमतौरपर भ्रष्ट हो गये हैं। उनको चाहिए कि स्वार्थरहित होकर जनताकी सेवा करें और इस प्रकार लोगोंका विश्वास पुनः प्राप्त करें। गांधीजी चाहते थे कि लोग स्वयं कातकर खादी तैयार करें। किन्तु किसीने इसपर ध्यान नहीं दिया। और इसका परिणाम यह है कि देशमें सदा कपड़ेका संकट रहता है। भारतमें उत्पादनके लिए जन-शक्तिका सदुपयोग नहीं किया जा रहा है और उत्पादनपर ही देशकी समृद्धि निर्भर है। कुछ लोग मेरी साफ़-साफ़ बातोंको पसन्द नहीं करते। लेकिन मैं इन्हें कहे बिना नहीं रह सकता, क्योंकि देशमें चारों ओर जो भ्रष्टाचार फैला हुआ है। वह एक बड़े ख़तरेका रूप धारणकर हमें निगल सकता है।

ग्रामीण विश्वविद्यालय

आजकल ग्रामीण विश्वविद्यालयोंकी आवश्यकतापर काफ़ी प्रकाश डाला जा रहा है। सबसे पहले हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजीने इसके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट किये थे। उसके बाद अन्य कई व्यक्ति भी इसपर विचार कर रहे हैं। हमने कई बार लिखा है कि देशके औद्योगीकरण तथा शहरोंको बढ़ानेकी प्रवृत्तिके कारण देहातका ह्रास होगा। मूल समस्या है, ग्रामीण संस्कृति बनाम शहरी संस्कृति। यदि देशको बचाना है और बचाना है विभिन्न प्रकारके साम्राज्यवादोंसे, तो हमें अपने विश्वविद्यालयोंको ग्रामीण संस्कृतिका केन्द्र बनाना होगा, जिनके द्वारा हमारे विद्यार्थी शारीरिक श्रमको उतना ही महत्त्व दें, जितना कि किताबी ज्ञानको। जब तक हम देहातकी बनी चीज़ों और कुटीर-धन्धों द्वारा बनी चीज़ोंका उपयोग नहीं करेंगे और हमारे विद्यार्थी और अध्यापक सजीव डाइनिमोंके समान न होंगे, जो देहातोंमें स्फूर्त्ति-संचार करके देहातोंकी आवश्यकताको पूरा कर सकें और उनको ज्ञान-दान न दे सकें, तो किसी किताबी शिक्षासे काम नहीं चलेगा। इसलिये शिक्षाके सारे दृष्टिकोणको बदलना है और उसीके हिसाबसे काम करना है।

दक्षिणी अफ्रीकाका जातीय क्षेत्र-विधेयक

दक्षिणी अफ्रीकाकी मलान-सरकार अपने यहाँ जातीय क्षेत्र-विधेयक पेश कर रही है, जिसके अनुसार भारतीयोंको वहाँसे मजबूरन खदेड़ दिया जायगा। दक्षिणी अफ्रीकाके लिए भारत और पाकिस्तानके बीच पिछले दिनों दक्षिणी अफ्रीकामें ही विचार-विनिमय हुआ था और यह तय पाया था कि दक्षिणी अफ्रीकी सरकारके साथ गोलमेज़ सम्मेलन किया जाय। उस सिलसिलेमें स्थान तथा तारीखोंके सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार हो रहा था। भारतीय डेलीगेशन पण्डित हृदयनाथ कुँजरूके नेतृत्वमें अफ्रीका गया था। और हम उनकी इस बातसे सहमत हैं कि यदि पृथक्करण विधेयक स्वीकृत हो गया, तो सम्मेलन करनेका कोई हेतु न रह जायगा, क्योंकि प्रस्तावित गोलमेज़-सम्मेलन

सम्बन्धी समझौतेकी भावनाके यह विरुद्ध है। और इस प्रकार प्रस्तावित गोलमेज-सम्मेलनके लिए मलान सरकारने दरवाजा बन्द कर दिया है। यहाँपर यह लिखना भी आवश्यक है कि सिडनी सम्मेलनमें दक्षिणी अफ्रीकाका कोई प्रतिनिधि शामिल नहीं हुआ था। दक्षिणी अफ्रीकाकी इस प्रकारकी नीति दो-एक पीढ़ीके बाद अफ्रीका निवासी गोरोंके लिए विघातक साबित होगी। यदि तीसरा महायुद्ध अमेरिका और रूसकी तनातनीसे सम्भव हुआ तो चौथा महायुद्ध अफ्रीकन समस्याको लेकर होगा।

भयंकर रेल-दुर्घटना

गत ७ मईके प्रातः ढाई बजे पाँच अप पंजाब मेल जसीडीह और सिमुलतलाके बीच पटरीसे उतर गई। मेलके दो डिब्बे चकनाचूर हो गये। अन्य दो डिब्बोंको काफ़ी क्षति पहुँची और इञ्जनको भी काफ़ी नुकसान हुआ। इस दुर्घटनाके कारण १०० से अधिक व्यक्ति मरे और लगभग उतने ही घायल हुए। तहक़ीक़ातसे पता चला है कि यह रेल-दुर्घटना विध्वंसात्मक कार्यवाहीका परिणाम है। पटरीसे "फिश प्लेटें" हटा दी गई थीं और एक पटरी अन्दरकी ओर धकेल दी गई थी। उसी मेलके कुछ यात्रियोंका अनुमान है कि ३०० के लगभग व्यक्ति मारे गये होंगे और ५०० से अधिक घायल हुए होंगे। पंजाब मेल जब किसी पुल या पुलियासे तेज गतिसे नीचे गिर पड़े अथवा उतर जाय, तो जान-मालकी हानिका अनुमान हम कर सकते हैं। यह तो निश्चय ही है कि उस पंजाब मेलको गिरानेके लिए पटरी खराब की गई, क्योंकि यदि ऐसी बात न होती तो दुर्घटनाके बाद वहाँ चीत्कार करते हुए व्यक्तियोंको लूटनेका प्रयास नहीं किया जाता। इस प्रकारकी दुर्घटनाओंसे जनता आतंकित हो जाती है और रेल-यात्रा करनेसे घबराती है। तोड़-फोड़ करनेवाले देशके शत्रु इसे अपनी सफलता भले ही समझ लें, पर इस प्रकारके खूँखार भेड़ियोंको भुगतना ही पड़ेगा। अच्छा तो यह रहे कि सूबेमें गाँवोंके निकट-पटरियोंकी देखभालकी व्यवस्था उन्हीं गाँवोंके सुपुर्द कर दी जाय और इस प्रकारकी लाइनें बनाई जायँ, जो खराब न हों।

पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तानकी तनातनी

पाठकोंको मालूम है कि पखतूनिस्तानके मामलेको लेकर पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तानमें तनातनी चल रही है। भारत विभाजनसे पूर्व भारत और अफ़ग़ानिस्तानके बीच विभाजक सीमा डुरण्ड लाइन थी। विभाजनके बाद इस दृष्टिसे अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तानके बीच डुरण्ड लाइन ही विभाजक सीमा होनी चाहिए थी। पर विभाजनके समय ही अफ़ग़ानिस्तानने इसका विरोध किया। उधर पाकिस्तानकी ओरसे डुरण्ड लाइनको ही विभाजक सीमा रखनेपर जोर दिया गया। पठानों और अफ़ग़ानोंने पाकिस्तानी मनोवृत्तिका प्रबल विरोध किया है और मि० लियाकतअली खाँने राष्ट्रमण्डलके देशोंसे डुरण्ड लाइनकी सुरक्षाके लिए आश्वासनकी माँग की है। इस माँगसे अफ़ग़ानिस्तानमें काफ़ी रोष है और भारतीय अफ़ग़ान राजदूत सरदार नजीबुल्ला खाँने गत १० मईको कहा, "पाकिस्तानी प्रधान मन्त्रीके वक्तव्यसे अफ़ग़ानिस्तानमें बहुत आश्चर्य फैला है। अफ़ग़ान सूत्र डुरण्ड लाइनको पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तानकी सीमाका क़ानूनी आधार नहीं मानते। यदि इस प्रकारका कोई आश्वासन दिया गया, तो उसका अर्थ यह होगा कि जो राष्ट्र दूसरे राष्ट्रोंके आत्मनिर्णय और स्वतन्त्रताके अधिकारको आधुनिक जगतकी मूल शर्त मानते हैं, वे पाकिस्तानकी दमन नीतिमें सहायक हो रहे हैं। पाकिस्तान पख्तून राष्ट्रको उसके उचित अधिकारोंसे वंचित करानेका प्रयत्न कर रहा है। भारतसे ब्रिटिश सत्ताके उठ जानेके बाद डुरण्ड लाइनका कोई क़ानूनी अस्तित्व नहीं रहा। यह लाइन ब्रिटेन और अफ़ग़ानिस्तानके बीच एक सन्धिके द्वारा निश्चित हुई थी। अफ़ग़ानिस्तानने इसका अस्तित्व शेष न रहनेकी सूचना ब्रिटिश और पाकिस्तानी दोनों सरकारोंको भारतके स्वतन्त्र होते ही दे दी थी। दूसरे इस तथाकथित सीमा-रेखाको राष्ट्रमण्डलीय रेखा कहना आश्चर्यजनक बात है। पख्तून राष्ट्रने स्वतन्त्र पखतूनिस्तानकी स्थापना करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया है। अफ़ग़ान-सरकार शान्तिमय उपायोंसे प्रयत्न कर रही है कि पाकिस्तान-सरकार इस स्थितिको महसूस करे और मैत्री भाव तथा शान्तिपूर्ण वार्त्ताओं द्वारा इस प्रश्नको हल कर दे।

पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान दोनोंका हित इसीमें है कि समस्या शान्तिके साथ हल हो जाय। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि कराची-सरकार इस तर्कको स्वीकार करने और इस बात पर भरोसा करनेके बदले कि अफ़गानिस्तान गत शताब्दीमें छिने हुए प्रदेशकी एक इंच भूमिकी भी मांग नहीं कर रहा है, बाहरी दुनियाके सामने वस्तुस्थितिको अस्वीकार कर रही है। और वह पख्तून स्वतन्त्रताके विरुद्ध सैनिक उपायों तथा दमनका प्रयोग कर रही है।"

पखतूनिस्तान हमारे ख़यालसे बनके रहेगा। लाखों पठानोंकी आत्माकी आन्तरिक पुकारको डूरण्ड लाइन या संयुक्त राष्ट्र संघ अथवा राष्ट्र मण्डलीय आश्वासन नहीं रोक सकता।

आगामी चुनाव

भारतके प्रधान चुनाव कमिश्नर श्री सुकुमार सेनने १० मईको बताया कि भारतमें चुनाव अगले वर्ष मई मासमें समाप्त होंगे।

रिज़र्व बैंक द्वारा स्थितिका सिंहावलोकन

गत ११ मईको रिज़र्व बैंकने भारतके नौ राज्योंकी आर्थिक स्थिति एक बुलेटिनके साथ प्रकाशित की है, जिसमें बताया गया है कि :—

बचतकी आवश्यकता इसलिये होगी कि अगर अगले २-३ वर्षोंमें क़ीमतों और आमदनियोंमें कमी हो गई, तो राज्योंकी आय भी कम हो जायगी, किन्तु खर्चा उसी अनुपातमें कम नहीं हो सकेगा। बिक्री-करपर संविधानमें जो पाबन्दियाँ लगाई गई हैं, वे सन् १९५१-५२ से कार्यान्वित हो जायँगी और तब इस करसे राज्योंको आय नहीं हो सकेगी। और न अब कोई नया कर लगानेकी गुंजाइश ही बाक़ी रह गई है।

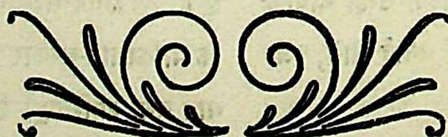
बम्बई, मद्रास, बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, मध्यप्रदेश, आसाम और उड़ीसाका सन् १९५०-५१ का आय का बजट २८२·५६ करोड़ रुपया बताया है और उनके खर्चे का बजट २८४.२९ करोड़ रुपया है। इस प्रकार सब राज्योंके बजटमें मिलकर कुल १.७३ करोड़ रुपयेका घाटा है।

इस वर्षके खर्चका बजट १९४९-५० के संशोधित खर्चके बजटसे ९ करोड़ रुपये कम हैं, किन्तु फिर भी वह १९४८-४९ के व्ययसे ३४ करोड़ रुपये ज़्यादा हैं। आयका बजट पिछले सालकी वास्तविक आयसे २४.३ करोड़ रुपये ज़्यादा हैं।

युद्धोत्तर पुनर्निर्माणकी योजनाओंमें और भी अधिक बचत करनी पड़ेगी, क्योंकि राज्योंको न तो जनतासे ही ऋण मिलने की कोई बहुत उम्मीद है और न केन्द्रीय सरकारसे।

स्व० स्वामी भवानीदयालजी

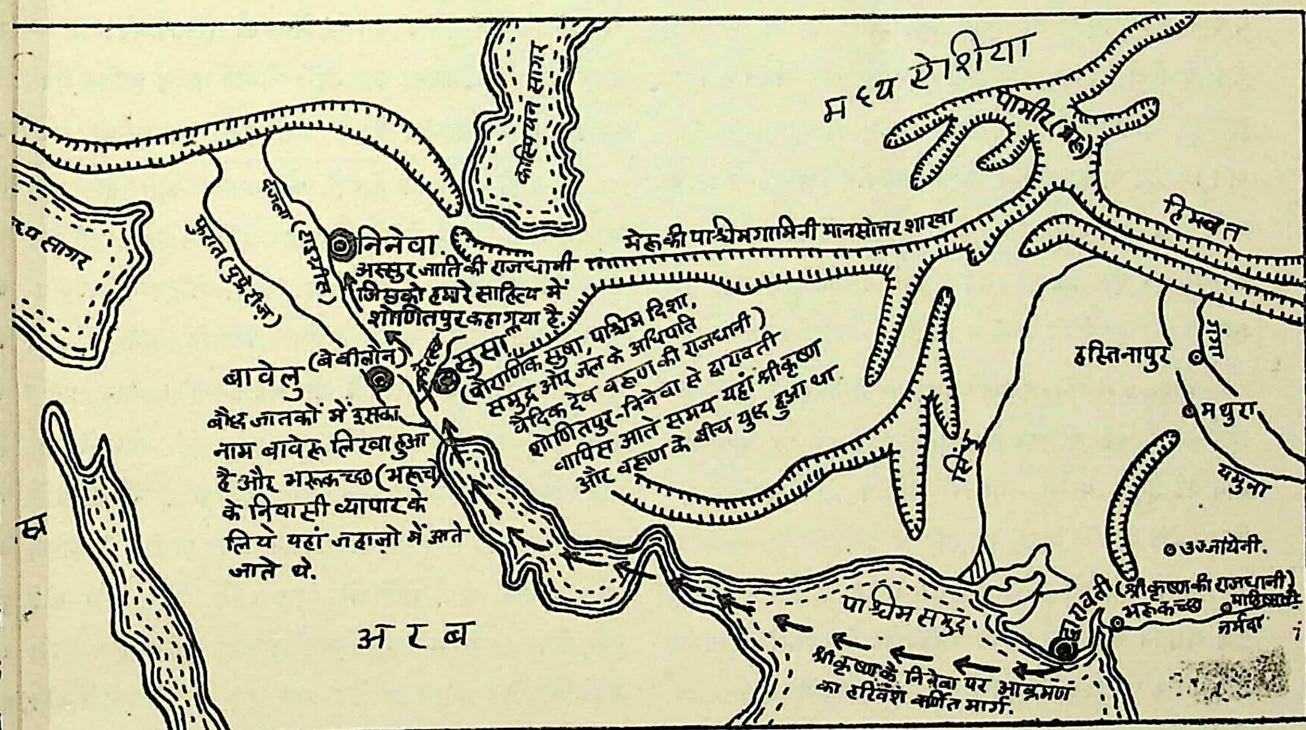
'विशाल भारत'के पाठकोंको यह जानकर अति क्लेश होगा कि स्वामी भवानीदयालजी संन्यासी गत ९ मईको परलोक सिधार गये। विशाल भारतसे स्वामीजीका विशेष तथा घनिष्ठ सम्बन्ध था। बन्धुवर पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और स्वामीजी ने प्रवासी भाइयोंके लिए जो काम किया वह प्रवासी भारतीयोंके इतिहासमें अक्षुण्ण है। जब-जब स्वामीजीको प्रवासी भाइयोंको किसी गुत्थीको सुलझानेकी आवश्यकता होती, तब वे विशाल भारत कार्यालयमें आया करते। उनका जन्म दक्षिण अफ्रीकामें हुआ था। सन् १९११-१२ में महात्माजीके साथ उन्होंने सत्याग्रह किया। राजनीतिक कार्यके अतिरिक्त साहित्य-जगतमें उनका विशेष कार्य था। बिहार प्रान्तीय साहित्य सम्मेलनके देवघर अधिवेशनके वे सभापति भी थे। कई वर्षसे वे अजमेरसे 'प्रवासी' मासिकका सम्पादन कर रहे थे। बीमारीके दिनोंमें भी उनका उत्साह अदम्य था। दक्षिण अफ्रीकाकी वर्तमान परिस्थितिमें स्वामीजीका उठ जाना एक बड़ी क्षति है और हमारा यह दुर्भाग्य है कि इस समय हम स्वामीजीकी सेवाओंसे वंचित हो रहे हैं। भाई बनारसीदासजीसे हमारा आग्रह है कि वे स्व० स्वामीजीपर एक लेख 'विशाल भारत'में लिखें।



प्राचीन भारतीय साहित्यमें पुरातन इराक़की राजधानियाँ

अमृत पंड्या

[इस लेखके विद्वान लेखक श्री अमृत पंड्या एक प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता हैं। इस लेखमें उन्होंने पुरातन इराक़ (बेबीलोनिया—असीरिया) की राजधानियोंपर जो प्रकाश डाला है, वह भारतीय साहित्यकी एक देन है। क्या श्रीकृष्णने उत्तर इराक़ (असीरिया) पर आक्रमण किया था ? श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्ध तथा उषाकी विवाह-गाथा इतिहासकी दृष्टिसे विचारपूर्ण है। हरिवंश पुराण हमने पढ़ा है। पुराणोंके ऐतिहासिक तथा भौगोलिक महत्त्वके हम क़ायल हैं। वाणासुर शोणितपुर तथा इस लेखकी अन्य खोजपूर्ण बातोंपर हम इस विषयके अन्य विद्वानोंके विचारोंकी प्रतीक्षा करेंगे।—सम्पादक]



भारतीय साहित्यके अनुसार बेबीलोन, निनेवा और सुसाकी भौगोलिक स्थिति इस नक्शे द्वारा बतलाई है।

मानव इतिहासकी आदि नागरिक सभ्यताएँ

इतिहास कहता है कि नागरिक सभ्यताका उदय सर्वप्रथम पश्चिम एशियामें फ़ुरात और दजलाकी घाटी (वर्त्तमान इराक़) में ईस्वी सन् पूर्व (ई॰ पू॰) चौथी सहस्राब्दिके पूर्वार्धमें हुआ। इस सभ्यताको पुराविद् सुमेरीयन सभ्यता (Sumerian Civilization) कहते हैं। इसके दो-तीन सदी पश्चात् नागरिक सभ्यता मिश्र (Egypt) में आरम्भ होती है। हमारे देशका इतिहास ई॰ पू॰ १५०० के क़रीबसे शुरू होता है, जब कि चरवाहे आर्य भारतमें आये। नागरिक जीवनका आरम्भ यहाँ मौर्यकाल (ई॰ पू॰ ३२३—१८४ के क़रीब) से कुछ सदी पूर्व हुआ। १९२१ में जब सिन्धु घाटीके मोहेंजोदरो और हड़प्पा नामक स्थानोंमें खुदाइयाँ हुईं, तब इससे एक ऐसी भारतीय नागरिक सभ्यता प्रकाशमें आई, जो सुमेरीय नागरिक सभ्यतासे कुछ ही सदी बादकी थी और तत्कालीन सुमेर और मिश्रकी नागरिक सभ्यताओंसे कई बातोंमें उत्कृष्ट थी, और पता लगा कि भारतमें नागरिक

सभ्यताका आरम्भ आर्योंके आगमनसे पूर्व हो चुका था। इस भारतीय सभ्यताको पहले पुरातत्ववेत्ता सिन्धु-सभ्यता (Indus Civilization) कहते थे; परन्तु यह नाम कहकर अब इसे हड़प्पा सभ्यता (Harappa culture) कहा जाता है।

भारत और पुरातन इराक़

भारत और इराक़ क़रीब-क़रीब नज़दीक होनेसे यह स्वाभाविक है कि सुमेरीय और हड़प्पा सभ्यताओंके बीच निकटका सम्बन्ध रहा हो। पुरातत्व द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है। ये दोनों सभ्यताएँ इतनी समान प्रतीत होती हैं कि पुरातत्ववेत्ता दोनोंका उद्‌गम किसी एक ही सभ्यताको मानते हैं। यह तो हुई इतिहासपूर्वकाल (Protohistoric Period) की बात। हड़प्पा सभ्यताको भारतमें आर्योंके आगमनके पूर्वकी आर्येतर सभ्यता माना गया है। कहते हैं कि आर्यलोग भारतमें ई० पू० १५ वीं सदीके क़रीब आये, परन्तु इस प्रश्नका पूरा हल होना अभी बाक़ी है।* सम्भव है कि ये लोग यहाँ इससे पहले भी आ चुके हों और शायद हड़प्पा सभ्यता इन भारतीय आर्योंकी एक सभ्यता रही हो, तो आश्चर्य नहीं

प्राचीन इराक़की जातियाँ और राज्य

फ़ुरात (Euphrates) और दजला (Tigris) की घाटीमें आदिकालमें एक जंगली-से लोग बसते थे, जिनको सेमाइट (Semites) कहा जाता है। ई० पू० ४००० के क़रीब शायद उत्तरकी ओरके ईरानी उच्च प्रदेशोंपर से कृषिका ज्ञान लेकर एक जाति आई, जो उपर्युक्त नदियोंके मुखके निकट प्रदेश (वर्त्तमान दक्षिणी इराक़) में आ बसे और इस प्रदेशको वे 'शुमिर' कहने लगे। इन 'शुमिरवासी' (Sumerians—इनके वास्तविक नामका पता नहीं) लोगोंने मानव-जातिके सबसे पहले नगर बसाये और देशके आदिवासी सेमाइटोंको सभ

---

* केवल भाषा-विज्ञानके आधारपर ये सिद्धान्त उपस्थित किये गये हैं, जिनको अब विद्वान लोग शंकासे परे स्वयंसिद्ध मान बैठे हैं। परन्तु भारतका प्राचीन आर्य-साहित्य इन सिद्धान्तोंके विपरीत उत्तर भारतमें आर्य-सभ्यताका अस्तित्व बहुत प्राचीन कालसे होनेका विवरण बताता है। पुरातत्वकी कुछ अद्यतन खोजें इस अभिप्रायकी ओर ही ढलती-सी प्रतीत हैं। ई० पू० १४ वीं सदीमें पश्चिम एशियामें वैदिक देव, वरुण, इन्द्र, नासत्य इत्यादिको पूजनेवाले राज्यकर्ता मौजूद थे। मोहेंजोदरो और हड़प्पामें जिस चित्रलिपिकी मुद्राएँ मिली हैं, उस लिपिके परीक्षक डा० लैंगडन, सिडनी स्मिथ, प्रभृतिने सर जानमार्शलके हड़प्पा सभ्यताके ग्रन्थमें ही अपना स्वतन्त्र मत व्यक्त करते हुए कहा है कि आर्य-सभ्यता भारतमें, हम समझते हैं, उससे अधिक प्राचीन प्रतीत होती है (S. Langdon and C. F. Gadd on the Indus script in 'Mahenjodaro and the Indus Civilization (Edited by Sir John Marshall, Vol. II, pp. 414 and 432)

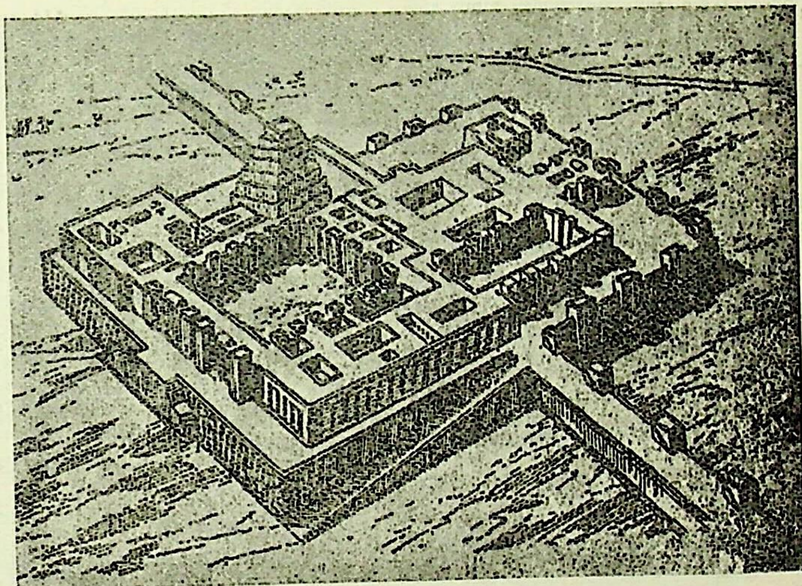
हाल ही में पश्चिम भारतसे मध्यभारत होते हुए उत्तर प्रान्तके मेरठ जिलेमें गंगाके प्रदेश तक इतिहास पूर्वकालकी ऐसी सभ्यताके बहुसंख्यक अवशेष प्राप्त हुए हैं, जो हड़प्पा सभ्यता-कालके पूर्वसे आरम्भ होकर हड़प्पा-सभ्यताके विनाशके बाद तक इन प्रदेशोंमें जारी रही है और वह इतनी बलवान प्रतीत होती है कि उसने हड़प्पा-सभ्यताका प्रवेश इन प्रदेशोंमें नहीं होने दिया। हड़प्पा सभ्यतासे वह स्वतन्त्र प्रतीत होती है और मार्केकी बात तो यह है कि जिन-जिन प्राचीन स्थानोंका वर्णन प्राचीन आर्य-साहित्यमें मिलता है, वहाँ और कोई नहीं, केवल इसी सभ्यताके अवशेष प्राप्त होते हैं। इस सभ्यताके जिस नगरके अवशेष प्राप्त हुए हैं, उसको प्राचीन आर्य-साहित्यमें माहिष्मती कहा गया है और इसके स्थापक राजाओंके रचे हुए मन्त्र ऋग्वेदमें प्राप्त होते हैं। इन खोजों कुछ ऐसा निर्देश मिलता है कि पाश्चात्य विद्वान भारतीय आर्य सभ्यता और उसके कालके विषयमें जो कुछ समझते और बताते आये हैं, वे वास्तविकतासे कुछ दूर हैं। हमको इस विषयमें अधिक खोज करनेकी आवश्यकता है। कुछ भी हो परन्तु एक बात निश्चित् है कि भारतीय आर्योंके प्राचीन साहित्यमें इन लोगोंके पुरातन इराक़वासियोंके साथ सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्ध (Caltural and Commercial Connection) की बातें कहीं-कहीं पर मिलती हैं।

ताया और इसके परिणामस्वरूप मध्य और उत्तरी इराक़में सेमाइटोंकी सल्तनत क़ायम हुई, जिनको क्रमशः अक्कद और असीरिया कहा जाता है। ई० पू० २५००के पश्चात् ये आदिवासी सेमाइट सुमेरीयनों द्वारा सभ्य और सुशिक्षित बनकर ऐसे प्रबल बन गये कि अक्कदके लोगोंने सुमेरीय राज्यका नाश कर दिया और कुछ समय पश्चात् बावेलु (बादमें ग्रीसवासियोंने इसको बेबीलोन (Babylon) नाम दिया।) नगरके एक सेमाइट शासकने मध्य और दक्षिण इराक़पर आधिपत्य स्थापित कर एक नया राज्य स्थापित किया, जिसको ग्रीसवासी बेबीलोनिया (Babylonia) कहने लगे थे। परन्तु उत्तर इराक़के सेमाइटकी जो अश्शुर (Ashshur) कहलाते थे, वे इस नये राज्यसे स्वतन्त्र रहे। इन अश्शुरोंको ग्रीसवासी असीरियन (Assyrians) कहते थे और इनके देशको असीरिया (Assyria)। असीरिया के राजाओंकी वंशावली ई० पू० २५वीं सदीसे प्राप्त होती है और आरम्भके अश्शुर राजाओंके नाम भाषा शास्त्रके आधारपर आर्य जातिके प्रतीत होते हैं। ई० पू० १८वीं सदीमें बेबीलोनियापर उत्तरके उच्च प्रदेशोंकी ओरसे आर्य जातिके सरदारोंके नेतृत्वमें काश्शी नामक जातिके लोग आये और वहाँ इन आर्य सरदारोंका राज्य क़ायम हुआ। ई० पू० १४वीं सदीमें उत्तरके अश्शुर लोग (Assyrians) जो कि स्वभावसे अत्यन्त निर्दय और रक्तपिपासु थे, खूब प्रबल हुए और उन्होंने सारे बेबीलोनियापर अपना राज्य स्थापित कर अन्य देशोंपर अपना साम्राज्य जमाना शुरू किया। इसके पश्चात् ई० पू० ७वीं सदीमें फिर बेबीलोनवासी एक सदीके लिए प्रबल बने और ई० पू० ५वीं सदीके मध्य कालमें ईरानके राजाओंने असीरिया और बेबीलोनिया—इन दोनोंको समाप्त कर दिया। (प्राचीन इराक़ और भारतके कालक्रमका ढाँचा पृष्ठ ४२० पर है।)

प्राचीन भारतीय आर्य-साहित्यमें पुरातन इराक़से सम्बन्धके प्रमाण

भारतके प्राचीन आर्य-साहित्यमें इन पुरातन इराक़वासी जातियोंके साथके निकट सम्पर्कके सूचक ये तीन प्रमाण अबतक उपलब्ध हुए हैं :—

(१) अथर्ववेदमें अनेक स्थानोंपर अक्कदीय (Akkadian) भाषा और देवोंके नाम आते हैं, यह बात लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने भली-भाँति प्रतिपादित की है।



असीरिकी राजधानी निनेवा (शोणितपुर) के असुर सम्राटोंका राजप्रासाद जिसके अवशेष खुदाईमें प्राप्त हुए हैं।

(२) शतपथ ब्राह्मणमें जल प्रलयकी जो कथा मिलती है, वह सुमेरियन और बेबीलोनियन जल-प्रलयकी कथासे क़रीब-क़रीब मिलती आती है। महाभारत तथा अनेक पुराणोंमें भी यह कथा मिलती है।

(३) बौद्धजातक कथाओंके 'बावेरू जातक'में लिखा हुआ है कि भरूकच्छ (गुजरातमें नर्मदा मुखपर वर्त्तमान भरूच या भड़ोच) के व्यापारी और मल्लाह व्यापारके लिए 'बावेरू' जाते-आते थे। बावेरू यह बेबीलोनका वास्तविक नाम (बावेलु) था। यह नगर बेबीलोनियाकी राजधानी था।

इनके अतिरिक्त और भी थोड़े-से प्रमाण उपलब्ध हैं, परन्तु वे संदिग्ध हैं। स्पष्ट केवल उपर्युक्त तीन ही हैं। प्रस्तुत

ई० पू० इराक

३१०३—२०९४ सुमेरियन राज्यवंश।

२०९४—१७४६ बेबीलोनियन राज्यवंश।

१७४६—११६९ 'काश्शी' आर्योंका राज्य।

११६९—९११ बेबीलोनका इसिन और अन्य राज्यवंश।

९११—६१२ असीरियन राजाओंका सारे इराक़पर आधिपत्य (इससे पूर्व ये केवल उत्तर इराक़के राजा थे)

६१२—५३९ पुनः बेबीलोनका राज्य।

५३९—३३० ईरानके सायरस द्वितीय द्वारा इराक़पर आधिपत्य।

भारत

पश्चिमोत्तर भारतमें हड़प्पा-सभ्यताका काल (ई० पू० ३००० से १७००) गंगा-घाटी और राजपूतानेसे लेकर कन्याकुमारी तकके भारतका इतिहास अज्ञात।

उत्तर भारतमें ई० पू० १५वीं सदीके क़रीब आर्योंका आगमन।

अज्ञात

... ...

बुद्ध और महावीरका काल।

शिशुनाग और नन्दवंश।

लेखमें हम यह बतायेंगे कि हमारे प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें इराक़की दो और पुरातन राजधानियोंका उल्लेख और भौगोलिक वर्णन मिलता है। ये राजधानियाँ थीं—सुसा और निनेवा। इराक़की पूर्वी सीमापर ज़ॅग्रोस नामक पर्वतश्रेणीकी तलहटीमें और दजला (टाइग्रिस) से मिलनेवाली छोटी-सी केरखा नदीके तटपर सुसा नामक प्राचीन नगर था। यह इस समय भी एक छोटे-से क़स्बेके रूपमें विद्यमान है। एशियाके सबसे प्राचीन नगरोंमें सुसाकी गिनती होती है। सुमेरियनोंके सजातीय एलामाइट (Elamites) लोगोंकी यह राजधानी थी। बादमें ईरानके आरवीमीनीयन राजवंशने इसको राजधानी बनाया। निनेवा उत्तर इराक़में असीरियन लोगोंकी राजधानी थी। सुसाकी भाँति यह भी प्रागैतिहासिक नगर था। इन दोनों राजधानियोंके प्राचीन भारतीय वर्णनके साथ-साथ हम कुछ ऐसी नई ऐतिहासिक बातें जानेंगे, जो अबतक हमारी कल्पनाके परे थी ; जैसे हमारे वेद, पुराणादि साहित्यमें जिन लोगोंको असुर कहा गया है और आरम्भ कालमें जिनके साथ हमारा आनुवंशिक सम्बन्ध था, वे और कोई नहीं, परन्तु असीरियन लोग थे। श्रीकृष्णने अपनी राजधानी द्वारावती (द्वारका) से असीरियापर आक्रमण किया था। हमारे वैदिक देव वरुण वास्तवमें दक्षिण इराक़के एक सुमेरियन देव थे, इत्यादि।

मेरु पर्वतका वर्णन

क़रीब-क़रीब प्रत्येक प्राचीन पुराणमें एक खण्ड भूगोल सम्बन्धी होता है। इस खण्डमें पृथ्वीके पर्वत, नदी, खण्ड-देश इत्यादिका वर्णन होता है। पुराणोंमें मेरु पर्वतको बहुत महत्त्व दिया गया है और पर्वतोंका वर्णन इससे प्रारम्भ होकर उन्हें इसकी भिन्न-भिन्न शाखाएँ बनाया गया है। वायुपुराणको पुराणोंमें प्राचीन और प्रमाणभूत माना जाता है। इसमें मेरुका वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है :—

"जम्बूद्वीपके मध्यभागमें महा मेरु पर्वतके चारों ओर 'इलावृत' नामक खण्ड है। यह पर्वत राजाकी भाँति श्वेतवर्ण (बरफ़के कारण ?) से सुशोभित है। मेरु पर्वतके पूर्वमें भद्राश्व नामक देश है। पश्चिममें केतुमाल, उत्तरमें कुरुदेश और दक्षिणमें भरत-खण्ड है...मेरुके चारों दिशाओंमें चार बड़े पाद (पाये अर्थात् पर्वतश्रेणी) हैं, जिनके आधारपर यह सप्त द्वीपमय पृथ्वी टिकी हुई होनेसे यह (पर्वत) अचल है। (ये पाद हैं) पूर्वमें मन्दर ; दक्षिणमें गन्ध मादन, कैलाश और हिमवत् ; पश्चिममें मानसोत्तर और उत्तरमें सुपार्श्व। मेरु पर्वतके ये पाद पूर्व और पश्चिममें समुद्र तक फैले हुए हैं।"

(वायुपुराण, पूर्वार्ध, अध्याय ३४

उपर्युक्त वर्णनमें 'भरत-खण्ड'को मेरुके दक्षिणमें कहा गया है। 'भरत-खण्ड' यह वर्त्तमान भारत ही है—यह बात इसमें बहनेवाली नदियोंके पुराण-वर्णित नामोंसे सिद्ध हो जाती है। पुराणोंमें 'भरत-खण्ड'को 'हिमवत्' पर्वतके दक्षिणमें स्थित कहा गया है और 'हिमवत्'को मेरुकी दक्षिण ओर जानेवाली शाखा

बताया है। अतः ज्ञात होता है कि मेरु पर्वत भरत-खण्ड और हिमवत्के उत्तरमें था और इसमें से चारों दिशाओंमें चार पर्वतश्रेणियाँ निकलती थीं, जिनमें से पूर्व और पश्चिमकी ओरकी पर्वतश्रेणियाँ समुद्र तक चली जाती थीं।

मेरु पामीर था

अब यदि हम एशियाके पार्वत्य नक्शेको देखें, तो पता चल जायगा कि मेरु पर्वत वास्तवमें पामीर रहा होगा। पामीर और उसकी शाखाओंका वर्णन करते हुए भूगोलविद् सी० मोरीसनने कहा है :—

"नक्शा देखनेसे हमें ज्ञात होता है कि एशिया महाद्वीपका सर्वोच्च भाग भारतके उत्तरमें स्थिति है। हम जानते हैं कि हिमालय दुनियाका उच्चतम पर्वत है, परन्तु एशियाके सर्वोच्च प्रदेशका केन्द्र नहीं है। यह तो वास्तवमें उस केन्द्रकी केवल एक शाखा है। यह केन्द्र तो पामीरकी पार्वत्यग्रन्थि (Knot) है, जिसमें से अन्य पर्वतश्रेणियाँ भिन्न-भिन्न दिशाओंमें फूटती हैं ; उत्तरमें थियेन-शान, दक्षिणमें कराकोरम और हिमालय, पूर्वमें कुएन-लुन और पश्चिमी पर्वतश्रेणी हिन्दुकुशके रूपमें आगे जाकर ज़ॅग्रोस और टॉरस बन जाती है।" (Our World, पृ० २४५)



असुर (असीरियन) सम्राट असुर-बानी-पाल (असुर बाण या बाणासुर) शिकारको जा रहा है।

मेरु पर्वतकी पूर्व और पश्चिम (मानसोत्तर) शाखाएँ दोनों ओर तक जाती हुई बताई हैं और इसी प्रकार पामीरकी इन दोनों दिशाओंमें जानेवाली पर्वत शाखाएँ समुद्र तक विस्तीर्ण हैं। हमको अब कुछ शंका न रहनी चाहिए कि मेरु पर्वत यह वास्तवमें मध्य एशियाका पामीर ही था।

वरुणकी राजधानी सुषा (सुसा) नगरी

मेरु पर्वतकी पश्चिम शाखाको, जो समुद्र तक जाती थी, उसको पुराणोंमें मानसोत्तर कहा गया है और यह पामीरसे पश्चिमकी ओर समुद्र तक जानेवाली हिन्दुकुश—ज़ॅग्रोस शाखा होनी चाहिए। मेरु पर्वतसे निकलनेवाली प्रत्येक शाखा या पर्वतश्रेणीके ऊपर या उसके सिरेके निकट चारों दिशाओंके दिग्पालोंकी भिन्न-भिन्न राजधानियाँ थीं। इनके विषयमें मत्स्यपुराण कहता है :—

"मेरु पर्वतके पूर्वमें मानस पर्वतके शिखरपर पवित्र और सुवर्णमयी 'वस्त्वेकसारा' नामक महेन्द्र (इन्द्र) की नगरी स्थित है। मेरु पर्वतके दक्षिणमें मानस पर्वतके पृष्ठ भागमें 'संयमन' नामक नगरमें यमका निवास है। मेरु पर्वतके उत्तरमें मानस पर्वतपर चन्द्रकी 'विभावरी' नगरी है। मेरु पर्वतके पश्चिममें मानसोत्तर पर्वतके सिरेपर 'सुषा' नामक वरुणकी पुरी स्थित है।" (मत्स्यपुराण, अध्याय १२४)

यदि हम एशियाके नक्शेको देखें, तो वास्तवमें पामीरसे निकलकर पश्चिमकी ओर जानेवाली हिन्दुकुश-ज़ॅग्रोस पर्वत-श्रेणीके सिरेपर समुद्र (ईरानकी खाड़ी) के क़रीब ही 'सुसा' नामक नगरीका नाम हमको दिखाई देगा। ईरानकी खाड़ीपर बसरासे कुछ अन्तरपर बन्दर शापुर स्थित है। यहाँसे तेहरान को जो रेलवेलाइन जाती है, उसपर बन्दर शापुरसे १४० मील उत्तरकी ओर ज़ॅग्रोस पर्वतके एक सिरेके नीचे केरखा नदीके किनारे 'सुसा' नामक क़स्बेका स्टेशन है। इस समय ईरानकी खाड़ीमें फुरात और दजला नदियाँ इस तेज़ीसे बहाई हुई मिट्टी डाल रही हैं कि जिससे इस खाड़ीका सागर-तीर दक्षिणकी ओर प्रत्येक ३० वर्षमें एक मीलके हिसाबसे बढ़ता चला जा रहा है। इससे ज्ञात होता है कि अबसे क़रीब ४२०० वर्ष पूर्व यानी ई० पू० २२५० तक सुसा नगरी सागरके किनारे थी।

सुसाके विषयमें अंगरेज़ी विश्वकोषके १४ वें संस्करणमें इस प्रकार लिखा हुआ है :—

"सुसा—बाइबिल—वर्णित शुशान, बहुत प्राचीन नगर है। सेमाइट और ईरानी—इन दो जातियोंके निवासप्रदेशोंकी सीमापर स्थित होनेसे दोनों देशोंपर राज्य करनेवाले राजाओंके लिए बतौर राजधानीके यह नगर बहुत अनुकूल पड़ता था। इस खुदाईमें मानवजातिकी प्राचीनतम नागरिक संस्कृतिके अवशेष प्राप्त हुए हैं। ग्रीक लेखकोंने लिखा है कि इस नगरकी परिधि १५ से २० मील की थी। बादमें ईरानके सम्राट डेरीयस (दारायश) प्रथमने इसे अपनी राजधानी बनाया..."

पुराणोंका सुषा वास्तवमें यही सुसा था ; इसके लिए हम एक और प्रमाण देते हैं। मत्स्यपुराणमें सुसाके अक्षांशका भी वर्णन है :—

"धर्मकी व्यवस्था और प्रजाकी रक्षाके लिए मानस पर्वतके पृष्ठभागपर चार लोकपाल नियुक्त हैं। दक्षिण अयनमें सूर्य आग्नेय दिशामें उदय होकर ज्योतिष्चक्रको साथ लिये धनुषसे छूटे हुए बाणकी भाँति, आकाशमें निरन्तर गति करता है। (इस समय) जब सूर्य इन्द्रकी 'अमरावती' नगरीके मध्यभागमें पहुँचता है, तब वह यमकी 'संयमनपुरी'की ओर पूर्वदिशाके भागमें (आग्नेय) उदित हुआ दिखाई देता है। (और) चन्द्रकी 'विभावरी' नगरीकी ओर पश्चिम भाग (वायव्य) में जब अस्त होता है, तब वह वरुणकी 'सुषा' नामक पुरीमें उदय हुआ दृष्टिगत होता है। जब 'विभावरी' नगरीमें मध्य रात्रि होती है, तब सूर्य 'अमरावती' में अस्त होता हुआ दीख पड़ता है, और 'सुषा'पुरीमें जब मध्याह्नका सूर्य होता है, तब चन्द्रपुरी (विभावरी) में सूर्योदय होता है। जब यमपुरी (संयमनपुरी) में आधी रात होती है, तब पूर्वकी ओर इन्द्रपुरी (अमरावती) में सूर्य उदय होकर पश्चिममें वरुणकी नगरी 'सुषा'में वह अस्त होता है।"

(मत्स्यपुराण, अध्याय १२४)

वैदिक वरुण और उनकी असुर जाति

अपने प्राचीन साहित्यमें वरुणको 'जल', पश्चिम दिशा', 'समुद्र' और 'पश्चिम समुद्र' (अरब सागर) का अधिपति कहा गया है। "वरुण प्राचीनतम वैदिक देवोंमें से एक हैं। उसको सर्वव्यापी आकाशका मानवरूप कहा गया है और स्वर्ग तथा पृथ्वीका निर्माता और संरक्षक बताया गया है। वेदोंके कुछ अवतरणों द्वारा ज्ञात होता है कि वह 'जल'का भी देव था। पुराणोंके अनुसार वह समुद्र, नदियाँ, जल, पश्चिम दिशा, इत्यादिका देव है। उसका वाहन मकर है, संज्ञा मत्स्य है और शस्त्र नागपाश है..."

('Varuna', in the Classical Dictionary of Hindu Mythology and Religion, by J. Dowson, London, 1928, pp. 336-338)

सुषाके इस स्थान संशोधनसे हमको पता लग जाता है कि वरुण देवकी राजधानी सुसा थी और वरुण भारतके नहीं अपितु दक्षिण इराक़के निवासी थे। वरुणको ऋग्वेदमें कई

स्थानोंपर 'असुर' कहा गया है, इससे यह बात अधिक स्पष्ट होती है ; जैसे :—

इमामूष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्रवोचम्
(ऋग्वेद ५, ८५, ५)।

(मित्रावरुणा) द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया।
(ऋग्वेद, ५,६३,३)।

वरुण...असुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि
(ऋग्वेद १,२४,१४)

ऐसे बहुतसे उदाहरण ऋग्वेदमें से दिये जा सकते हैं।

असुर, उत्तरी इराक़के असीरियन थे

इस लेखके प्रारम्भमें हम देख चुके हैं कि उत्तर इराक़ (असीरिया) के प्राचीन निवासी अश्शुर कहलाते थे। पुराने बाइबल (Old Testament) में इनको अस्सुर जाति कहा गया है, तब क्या हमारे प्राचीन साहित्यमें वर्णित 'असुर' वे असीरियन लोग थे ? 'असुरों'के विषयमें खूब छानबीन हुई है और सर्वप्रथम १८९६ में चॅड्विक नामक विद्वानने यह मत प्रतिपादित किया कि भारतीय साहित्यके असुर ये असीरीयन लोग थे (Hommel, Proc. Biblical Archæology. 1899, P. 132.) इसके अतिरिक्त नीचेके निबन्धोंमें भी इस विषयकी चर्चा हुई है।

(1) Early Zoroastrianism by J. H. Moulton, p. 32.

(2) "Were the Asuras Assyrians ?" by H. Skold, Journal of Royal Asiatic Society, 1924, p. 265.

प्रो० बेल्वल्करका भी यही मत है कि 'असुर' लोग असीरियन थे, नहीं कि बादके इरानी 'अहुर'। उत्तर इराक़में प्राचीन असीरियाकी राजधानी 'निनेवा'की खुदाईमें सुप्रसिद्ध अश्शुर (असीरियन) राजा असुर-बानी पालका मृत्तिका-फलकोंपर कुरेदकर लिखी हुई असीरियन और बेबीलोनियन लिपियोंमें लिखित हजारों पुस्तकोंका एक बृहत् पुस्तकालय प्राप्त हुआ है और इसमें पारसी देव 'अहुर मज़्द' का नाम 'अस्सर-मजश' लिखा हुआ है। इससे पता चलता है कि ईरानमें 'स'का 'उच्चारण' 'ह' होना यह बादकी घटना है।

शोणितपुरकी शोधमें हम आगे जाकर देखेंगे कि वास्तवमें हमारे साहित्यके 'असुर' ये 'असीरियन' लोग ही थे। असीरियन और आर्योंका प्राचीन सम्बन्ध असीरियाके इतिहास द्वारा भी ज्ञात होता है, यथा :—

"At an early period, perhaps a thousand years before Thathumes III battled with the Mitannians (B. C. 1412) in northern Syria, an early wave of one of the peoples of Aryan speech may have occupied the Assyrian cities. Mr. Jones points out in this connection that the names of Ushpia, Kikia, and Adasi, who were early rulers of Assyria appear to be of Aryan origin."

(D. A. Mackenzie, Myths of Babylonia and Assyria, p. 278)

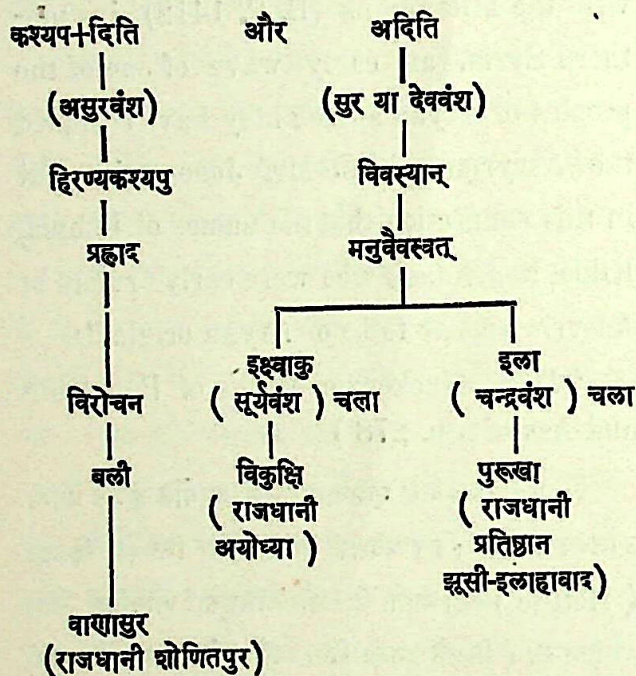
ई० पू० २७०० से एशियामाइनरमें आर्योंके होनेके प्रमाण उपलब्ध हो चुके ; इस प्रदेशकी प्राचीन प्रजा जिसको हिटाइट (Hettite) कहा जाता है और जिसका वास्तविक नाम खत्तीया था (मिश्रमें इनको खेता और बेबीलोनियामें खत्ती कहते थे ; बाइबलमें इनको हिटाइट कहा गया है, इसीलिये पाश्चात्य विद्वान् इस जातिको इस नामसे पुकारते हैं) वे आर्य भाषाभाषी थे—यह बात तो अब खूब प्रसिद्ध हो चुकी है। ई० पू० १८वीं सदीमें बेबीलोनियाको काश्शी नामक आर्य जातिने अपने अधिकृत किया, यह सर्वविदित बात है। ई० पू० १४वीं सदीमें फ़िलिस्तीनमें और असीरियाके निकट आर्य राजाओंके छोटे-छोटे राज्य थे, यह बात मिश्रके तल-अल-अमरनाके लेखों द्वारा ज्ञात हो चुकी है। ये लोग वैदिक देव इन्द्र, वरुण, मित्र, इत्यादिके उपासक थे—यह भी हम जानते हैं। इस प्रकार असीरियन और आर्योंके कुछ समुदाय एक ही प्रदेशमें रहते थे, यह बात पश्चिम एशियाका प्राचीन इतिहास हमें बताता है*।

---

* विशेष विवरणके लिए देखिये, 'The Aryans', by V. Gordon Childe, 1926, Chapter II.

असुरोंसे हमारा सम्बन्ध

हमारे प्राचीन साहित्यके अनुसार तो हम भारतीय आर्य और असुर एक ही वंशकी दो शाखाएँ हैं। पुराणोंके अनुसार ब्रह्माका पौत्र मरीचि था। उसका पुत्र कश्यप हुआ। कश्यपके दिति और अदिति नामक दो पत्नियाँ थीं। इनमें से दितिसे असुर वंश और अदितिसे सुरवंशका इस प्रकार प्रारम्भ हुआ—



शतपथ ब्राह्मण १४,४,१,१ के अनुसार असुर ज्येष्ठ और देव कनिष्ठ थे (कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः) काठक संहिता, ३१,८ में लिखा है कि जब देव बड़े हुए तो उन्होंने असुरोंसे कुछ भूमि-राज्य माँगा। असुरोंने यह बात स्वीकार न की। दोनोंमें १२ बार घोर युद्ध हुए, जो देवासुर संग्राम कहलाते हैं और जो मत्स्यपुराण (२४,३७) के अनुसार तीन सौ वर्षतक जारी रहे। वायुपुराण, अध्याय ९१, के अनुसार चन्द्रवंशके मूलपुरुष पुरूरवाका मूलस्थान असुर-देशमें था, परन्तु माता इलाकी कृपासे उसे प्रतिष्ठानका राज्य मिला।

वैदिक वरुण दक्षिण इराक़के एक सुमेरियन देव थे

यदि हमारे प्राचीनतम वैदिक देव वरुण इराक़के निवासी असुर थे, तो क्या इराक़के पुरातन इतिहासमें उनका पता लगता है? मेरा उत्तर है कि 'हाँ'। दक्षिण इराक़वासी सुमेरियन जातिके 'जल', 'समुद्र', 'बुद्धि', 'सभ्यता', इत्यादि देव 'एआ'का जो वर्णन सुमेरके साहित्यमें मिलता है, उसकी हम यदि ऋग्वेद और पुराणोंमें वर्णित वरुणसे तुलना करें, तो दोनों देव हमको एक ही प्रतीत होंगे।

सुसाके पश्चात् हमारे प्राचीन साहित्यमें असीरिया (प्राचीन उत्तरी इराक़) की राजधानी निनेवाका विवरण मिलता है।

असुर राजधानी निनेवा

श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्ध और उषाका वृतान्त सुप्रसिद्ध है। पुराणोंमें यह कथा मिलती है, परन्तु सबसे अधिक विस्तारपूर्वक यह हरिवंश पुराणमें वर्णित है। हरिवंशके १३ अध्याय इससे भरे हुए हैं। प्राचीनताकी दृष्टिसे हरिवंश खास महत्त्व रखता है। सुप्रसिद्ध पुराविद डा० रमाप्रसाद चन्दा लिखते हैं :—

"हरिवंश उसके वर्त्तमान स्वरूपमें यद्यपि बहुत प्राचीन ग्रन्थ नहीं है; परन्तु व्याकरणाचार्य पाणिनिके समयमें वह अपने मूलस्वरूप विद्यमान था, इस बातके प्रमाण अष्टाध्यायीमें प्राप्त होते हैं...पाणिनि कम-से-कम ई० पू० पाँचवी सदीमें हुए थे और इस समय वैदिक कालीन कथा-साहित्य वैदिक विद्यालयोंमें प्रचलित था। अतः हरिवंशमें वर्णित यादवोंके वृष्णि और अंधक कुलकी कथाएँ वैदिक कालसे प्रचलित रही होंगी और क़रीब-क़रीब उसी रूपमें वे इस पुराणमें प्राप्त होती हैं।"

(The Indo-Aryan Races, Part I, p. 27)

वृष्णि और अन्धक कुलसे सम्बन्धित अनिरुद्धकी कथा हरिवंशमें किस रूपमें मिलती है, यह जरा देखें। श्रीकृष्ण आवर्त्त-सुराष्ट्र (गुजरात-सौराष्ट्र) के शासक यादव गणराज्यके नेता थे। उनकी राजधानी सौराष्ट्रमें द्वारका थी।

हरिवंश वर्णित उषा-अनिरुद्धकी कथा

हरिवंशके वर्णन अनुसार उषाका पिता बाणासुर असुर जातिका राजा था। इसका दूसरा नाम असुर बाण लिखा हुआ मिलता है। इसकी राजधानीका नाम शोणितपुर था, जिसका दूसरा नाम हरिवंशमें रुधिरपुर भी लिखा हुआ है।

संक्षिप्तमें कथा (हरिवंश, विष्णुपर्व, अध्याय ११६ से १२८) इस प्रकार है—एक समय भगवान शंकर अपने पुत्र

कार्तिकेयको खिला रहे थे। यह देखकर असुर बाण (बाणासुर) की इच्छा हुई कि मैं शिवका पुत्र बनूँ और उनकी तपस्या करने लगा। शिव प्रसन्न हुए और उसे इच्छित वरदान देते हुए पार्वतीसे बोले कि उमा, बाणासुरको अपना कार्तिकेयसे छोटा पुत्र बनाओ। रुधिरपुर, जहाँ अग्निमें कार्तिकेय उत्पन्न हुआ, वहाँ उसकी राजधानी होगी, जो शोणितपुर कहलायगी...बाणासुरके उषा नामक पुत्री थी। उसने स्वप्नमें एक ऐसा राजकुमार देखा, जिसपर वह मोहित हो गई। उषाकी सखी थी अप्सरा चित्रलेखा, जो चित्रकलामें निपुण थी। उषाको विकल देखकर उसने सब देश-प्रदेशोंके राजकुमारके चित्र बना-बनाकर दिखाये। और इनमें से जिस राजकुमारपर उषा मोहित हुई, वह द्वारावती* नगरीके स्वामी कृष्णका पौत्र (उनके पुत्र प्रद्युम्नका पुत्र) अनिरुद्ध था। अप्सरा चित्रलेखा द्वारावती गई। रातको सोते हुए अनिरुद्धका हरणकर उसे शोणितपुर, उषाके पास ले आई। उषा-अनिरुद्धका गांधर्व विवाह हुआ। बाणासुरको पता चलते ही उसने अनिरुद्धको कैदमें डाल दिया। इस ओर अनिरुद्धके रातको एकाएक खो जानेसे द्वारावतीमें हाहाकार मच गया। श्रीकृष्णने चारों दिशाओंमें दूत भेजनेकी तैयारी की, इतनेमें वहाँ नारदजी आ पहुँचे और किस प्रकार अनिरुद्धको हरकर चित्रलेखा शोणितपुर ले गई और वहाँ किस प्रकार बाणासुरने उसे बन्दी बना रखा है, वर्णन किये। यह सुनते ही श्रीकृष्ण शोणितपुरपर आक्रमण करनेके लिए सैन्यको तैयार किया। शोणितपुर कैसे जाया जाय, इस विषयमें नारद बोले, "हे माधव, गरुड़के वाहन बिना शोणितपुर पहुँचना कठिन है, क्योंकि शोणितपुर यहाँ (द्वारावती) से ग्यारह हज़ार योजन दूर है," यह सुन श्रीकृष्ण बल्देव, प्रद्युम्न और नारदको लेकर गरुड़पर बैठकर शोणितपुरको चले। शोणितपुर निकट आते ही इन सबके अंगकी कान्ति म्लान होने लगी। बल्देवने इसका कारण पूछा। श्रीकृष्णने उत्तर दिया कि प्रतीत होता है कि बाणासुरका शोणितपुर अब निकट आया है और उसने नगरके रक्षणके लिए चारों ओर जो अग्निको रखा है, उसकी ज्वालाओंसे अपना वर्ण म्लान हो रहा है। इसपर गरुड़ने आकाश गंगामें डुबकी लगाकर पानी प्राप्त किया और इससे अग्निको बुझाया। आगे चलकर श्रीकृष्णने कल्माष, कुसुम, दहन, घोषण और तपन इन पाँच जातवेदसो (अग्नि) को पराजित किया। शोणितपुर पहुँचनेपर श्रीकृष्ण और बाणासुरके बीच ससैन्य युद्ध हुआ, जिसमें बहुत मुश्किलके बाद श्रीकृष्णने बाणासुरको पराजित किया। अनिरुद्धको कारावाससे छुड़ाकर उषाके साथ उसका विवाह धूमधामसे किया। शोणितपुरसे द्वारावती वापस जाते वक्त बाणासुरके मन्त्री कुभांडने कहा कि हे महाबाहु श्रीकृष्ण, बाणासुरकी अमृत समान दूध देनेवाली गायें वरुणके पास हैं और उनका दूध पीनेसे मनुष्य अत्यन्त बलवान और दुर्जय बनता है। शोणितपुरसे प्रस्थानकर द्वारावती आते समय मार्गमें वरुणकी राजधानी आई, जिसके निकट सागर-तटपर श्रीकृष्णने गायोंको चरते देखा, अतः उनको पकड़नेके लिए उनका पीछा किया गया। गाय दौड़कर वरुणके राजमहलमें घुस गई। इसपर गरुड़ने वरुणके नगरमें प्रवेश किया और वरुणके सैन्यको श्रीकृष्ण और उनके साथियोंने समुद्रमें भगा दिया। अतः वरुण स्वयं श्रीकृष्णसे युद्ध करने बाहर निकले। उनके पीत वर्णके छत्रमें से पानी बह रहा था—ऐसे ये जलके स्वामी थे। अन्तको वरुण परास्त हुए। फिर श्रीकृष्ण द्वारावती आये। बाणासुर और वरुणकी श्रीकृष्ण द्वारा पराजय और उषा-अनिरुद्धके विवाहके समाचार जानकर सारे नगर और यादवोंको अपार हर्ष हुआ। उषाके साथ कई असुर कन्याएँ आई थीं, जिनका विवाह योग्य यादव वरोंके साथ किया गया।

बाणासुरका शोणितपुर निनेवा था

उपर्युक्त कथासे ज्ञात होता है कि शोणितपुर द्वारावतीसे बहुत अधिक (ग्यारह हज़ार योजन) दूर था। वह द्वारावतीसे पश्चिम दिशामें था, क्योंकि पश्चिमके दिक्पाल वरुणका नगर

* द्वारावतीका अर्थ होता है 'द्वारोंवाली नगरी'। गुजरातीमें द्वारका अर्थ होता है बन्दरगाह। बेबीलोन जिसका वास्तविक नाम 'बाबेलु' था, इसका अर्थ भी 'द्वारोंवाली नगरी' होता है। द्वारावती बड़ा बन्दरगाह था और यादव सामूहिक व्यापार करके खूब धनाढ्य हुए थे—यह बात महाभारत और हरिवंश द्वारा ज्ञात होती है।

मार्गमें आता था। शोणितपुर द्वारावतीसे पश्चिम दिशामें था, इसका एक और प्रमाण यह है कि मार्गमें (वरुणकी राजधानीके निकट) समुद्र आता था। वरुणकी राजधानी सुसा थी—यह हम भली-भाँति देख चुके हैं। शोणितपुरसे द्वारावती वापस आते समय मार्गमें यह नगर आया था। अतः शोणित-पुर सुसाकी दिशामें उससे आगे रहा होना चाहिए। परन्तु शोणितपुर नाम नक्शेमें हमें कहीं नहीं मिलता। हमें भूलना नहीं चाहिए कि 'शोणितपुर'का अन्य नाम हरिवंशमें 'रुधिर-पुर' भी दिया हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि असुर जातिकी इस राजधानीका यह नाम नहीं था, परन्तु उसका जो कुछ वास्तविक नाम रहा होगा, उसका यह शोणितपुर या रुधिरपुर नाम संस्कृतानुवाद प्रतीत होता है। सुसाके परे पश्चिमोत्तरमें अश्शुर (अस्सुर) जातिका देश था, जिसकी राजधानीका नाम था निनेवा। निनेवा बहुत बड़ा नगर था, इसके अवशेषोंकी खुदाई हो चुकी है। निनेवाके आसपास पेट्रोलियम (खनिज तेल) के कुएँ बड़ी संख्यामें हैं। प्राचीनकालमें इन कुओंमें से अग्निकी ज्वालाएँ निकला करती थीं। अब इन कुओंको बाँध लिया गया है और खनिज तेलको शुद्ध करनेके लिए यहाँ यन्त्र लगाये गये। श्रीकृष्ण जब शोणितपुरके निकट आये और उनकी तथा उनके साथियोंके शरीरकी कान्ति, जिन ज्वालाओंसे म्लान होने लगी, वे ज्वालाएँ शायद इन खनिज तेलके कुदरती सोतोंकी रही हों, तो आश्चर्य नहीं। परन्तु निनेवा और शोणित (रुधिर) पुरके नामका मेल तो बैठता नहीं है। इसका उत्तर हमको हिब्रु (पुराना) बाइबल (Bible, Old Testament) द्वारा मिल जाता है। अस्सुर लोग बादमें बड़े अत्याचारी हो गये थे और इन्होंने यहूदियोंपर बहुत जुल्म किये। उस समय अस्सुर जाति या असीरियाका राजा था असुर-बानी-पाल। इससे बढ़कर प्रतापी अन्य राजा वहाँ नहीं हुआ। इसने अपना साम्राज्य सारे पश्चिम एशिया पर स्थापित कर लिया था। यह बहुत बड़ा विद्याव्यसनी भी था। निनेवाकी खुदाईमें इसका हजारों ग्रन्थोंका पुस्तकालय प्राप्त हुआ है। यहूदियोंपर अत्याचार करनेके कारण उनके एक पैग़म्बर नाहुमने निनेवाको 'रुधिर नगर' या 'खूनी शहर' का नाम दिया था, क्योंकि वहाँ असीरियन लोग अपने यु बन्दियोंपर घातक अत्याचार करते थे। "The Israel tish prophet Nahum described Nineveh a 'The Bloody City', "The City of Bloods (Standard History of the World, vol. Assyrian Civilization. p. 222) नाहुमने निनेवा 'रुधिर नगर' कहकर अनेक शाप दिये हैं जिनका वर्णन पुरा बाइबल (The Bible, old Testament, Nahun chapters II and III)में दिया गया है। इस प्रकार हमा प्राचीन साहित्यमें अस्सुर राजधानी निनेवाका नाम शोणित रुधिरपुर क्यों दिया है, इस बातका रहस्योद्घाटन हो जाता है

इस प्रकार हम अपने प्राचीन साहित्यमें असीरिया राजधानीको खोज निकालनेमें समर्थ होते हैं। शोणितपुर हमारे साहित्यमें असुर जाति और उसके राजाओंकी राजधान कहा गया है और केवल भौगोलिक वर्णनोंके आधारपर शोणित पुरको खोजते-खोजते हम अनायास ही अस्सुर जातिके दे असीरियामें और वहाँके 'असुर' पदवीधारी राजाओंके बीच अ पहुँचते हैं और वहीं हम निनेवाके रूपमें शोणितपुरको पा हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे प्राची साहित्यके असुर वास्तवमें असीरियन लोग ही थे, न कि बाद समयके पारसियोंके पूर्वज 'अहुर'।

अस्सुर या अशुर

असीरियन भाषाके अनुसार 'अस्सुर' या 'अशुर' शब्द अर्थ होता है, 'पवित्र', 'शुभकर्त्ता' और 'दयालु' ('Ashu the National God of Assyria,' in the Myth of Babylonia and Assyria, by D. A, Macke nzie, p. 326) हमारे यहाँ प्रारम्भमें 'असुर' शब्द अर्थ होता था, 'बुद्धिमान्', 'प्राणवान्' और 'बलवान्' (V K. Rajwade, 'Asura' Prosc. first Orienta Conference, Poona, 1922. p. 1) ई० पू० १४ सदीके पश्चात् ज्योंही अस्सुरों या असुरोंको पश्चिम एशिया साम्राज्य विस्तारनेका मौका मिला, त्योंही स्वभावतः वे निर्द और अत्याचारी होते गये और 'असुर' शब्दका अर्थ भी उनके

दुष्कार्योंके साथ बदलने लगा और यहाँ तक कि बादमें किसी भी निर्दय, अत्याचारी, बर्बर और असभ्यको असुर कहा जाने लगा। चुरिया नागपुर प्रदेशमें एक वन्य जाति है और उसका नाम भी बर्बरताके कारण असुर पड़ गया है। यही बात 'यवन', 'म्लेच्छ', इत्यादि शब्दोंके विषयमें हुई और बादमें हम वास्तविक असुरों, यवनों इत्यादिको भूलकर किन्हीं और लोगोंको इन नामोंसे सम्बोधन करने लगे।

बाणासुर और असीरियन राजवंशावली

अब एक प्रश्न और हल करना है। वह यह कि जब असुर बाण या बाणासुर असीरियनों*का राजा सिद्ध होता है, तब उसका नाम असीरियन राजवंशावलीमें मिलना चाहिए। वास्तवमें यह नाम मिलता है। असीरियाकी वंशावलीके विषय में यह याद रखना चाहिए कि वह सम्पूर्ण प्राप्त नहीं होती है। वहाँ लेखन-कार्य ईंटोंपर होनेसे ईंटें टूटी हुई मिलनेसे बेबीलोनियन और असीरियन साहित्यका कोई लेख या पुस्तक सम्पूर्ण नहीं मिला। असीरियन राजवंशावली ई० पू० २५ वीं सदीके क़रीबसे प्राप्त होती है। आरम्भिक राजाओंके नाम भाषा-शास्त्र के आधारपर आर्य प्रतीत होते हैं (Kings of Assyria can be traced back to 2400 B. C., the two earliest, Ushpia and Kikia, being possibly Mitanni Aryans', The New Illustrated World History, 1947, P. 14) इसके पश्चात् १५ वीं सदी ई० पू० तकके कालमें तीन राजाओंके नाम मिलते हैं; वे थे बेल-सुमीली, इर्ब-चुल और अशुर-इद्दीन-अरवी। इसके पश्चात् ई० पू० १४४० से ई० पू० १०७० के क़रीब तक १६ राजाओंके नाम मिलते हैं, जिनमें से कुछके नाम थे अशुर-बेल-निसीशु, बुजुर-अशुर, अशुर-उपल्लित, बेल-उक्ष्श, बेल-छश, बेल-कुदुर-उजुर, अशुर-दयन-प्रथम, अशुर-रिस्-इलिम, तिगलथ पिलेसर-प्रथम, अशुर-बिलकला इत्यादि। इसके पश्चात् क़रीब १५० वर्ष तक किसी राजाका नाम प्राप्त नहीं होता। ई० पू० ९३० से ई०पू० ६२५ तकके १७ राजाओंकी वंशावली सम्पूर्ण प्राप्त होती है, इनमें से प्रसिद्ध थे अशुर-मजुर, अशुर-इजिर-पाल, शलमनेसर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ, अशुरदमन-द्वितीय और तृतीय, अशुर-बानी-पाल, अशुर एमिद-इलिन इत्यादि। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अधिकांश असीरियन राजा अशुर उपाधिधारी होते थे। इनमें जो प्रतापी हुए उनमें से अशुर-बानी-पालका नाम हमारे 'असुर-बाण' नामसे बहुत कुछ समानता रखता। 'अशुर-बानी-पाल' नाममें 'पाल' यह उपाधि थी, अतः शेष नाम 'अशुर-बानी' ही रह जाता है। अब इसमें और 'असुर-बाण'में खास कोई अन्तर नहीं रह जाता।

परन्तु एक मुश्किल उपस्थित होती है। वह यह कि इस अशुर-बानीका राज्यकाल ई० पू० ६६८ से ६२६ तकका था। श्रीकृष्णका समय यह तो कभी नहीं हो सकता और न ई० पू० ३१०२ हो सकता है जैसा कि हमारे ज्योतिषी मानते है। इतिहासकारोंने श्रीकृष्ण और महाभारतका काल निर्णय करनेमें बहुत श्रम किया है। पुराणोंमें महाभारत और उसके पश्चातके नन्दवंश तकके जिन राजाओंके राज्यकाल दिये गये हैं, उनके आधार पर के० पी० जायसवालके मतानुसार महाभारत युद्ध ई० पू० १४२४ में, प्रधान और शामशास्त्रीके अनुसार क्रमशः १४५१ और १४१२ में हुआ था (Chronology of Ancien India, by S. N. Pradhan, p. 248)। असीरियाकी वंशावलीमें एक ही नामके अनेक (चार तक) राजा हुए हैं। अतः श्रीकृष्णका समकालीन अशुर-बानी-पाल या बाणासुर उपर्युक्त ई० पू० सातवीं सदीके अशुर-बानी-पालके पूर्वका रहा होना चाहिए।

श्रीकृष्णके जीवनकी एक अज्ञात और गौरवमयी घटना इस प्रकार प्रकाशमें आती है और साथ-ही-साथ यह भी ज्ञात होता है कि भारतके प्राचीन आर्य, जिनको आधुनिक विद्वान हड़प्पा सभ्यताका विध्वंसकर उत्तर भारतमें आ बसनेवाले अर्ध जंगली चरवाहे कहते हैं, वे पश्चिम एशियाके महान् सभ्यता केन्द्रोंसे अपरिचित नहीं थे और उन देशोंसे कुछ सम्बन्ध रखते थे। पुराणोंमें सभी बातें ऊलजलूल नहीं हैं और उसके ऐतिहासिक और भौगोलिक वृत्तान्त कुछ तथ्य अवश्य रखते हैं।

* हमें याद रहे कि यह नाम ग्रीक लोगोंने असुरोंको दिया था। आजके इतिहासमें इतर-युरोपीय जातियोंके लिए उनके वास्तविक नहीं परन्तु बाइबल, ग्रीक और रोमन साहित्यमें प्रयुक्त नामोंका उपयोग होता है। यह प्रथा अब मिटनी चाहिए।

करुण रसावतार कालिदास

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

कविकुल गुरु कालिदासका आजसे एक हजार वर्ष पहले जितना आदर था, आज भी उतना ही है। कोमल-कान्त पदावलिके प्रसिद्ध महाकवि जयदेवने इस महाकविको अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए लिखा है :—

'कविकुल गुरुः कालिदासो विलासः।'

कालिदास वस्तुतः सरस्वतीका मूर्त्तिमान विलास हैं। परन्तु जब हम कालिदासका नाम लेते हैं, तब हमारे सामने रसराज श्रृंगार रसके महाकविका चित्र सामने आता है। इस दृष्टिसे कालिदास कविता-कामिनीके गलेका कण्ठहार ही नहीं, प्रत्युत उसका मध्य-मणि हैं। कुछका मत है, श्रृंगारमें सब रस समाविष्ट हैं। सब रसोंका उत्पत्ति-स्थान और स्रोत श्रृंगार है। इसमें जो सफल हो, वह महाकवि और श्रेष्ठ कवि है। श्रृंगार रसका आविष्कार और परिपाक कालिदासके समान अन्य किसीने नहीं किया है, इस विषयमें दो मत नहीं हैं। अतः कालिदास कविकुल गुरु हैं। परन्तु श्रृंगारके समान कालिदासने करुण रसका भी सफलतापूर्वक आविष्कार और परिपाक किया है। यह साधारणतः नहीं माना जाता। करुण रसका आदर्श कवि भवभूति माना जाता है। करुण रसका नाम लेते ही करुण रस-विभोर भवभूति और उसकी ये पंक्तियाँ सामने आ जाती हैं :—

"परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्त्तिरथवा शरीरिणी,
विरहव्यथेव वनमेति जानकी॥"

परन्तु कलाकी दृष्टिसे करुण रसका आविष्कार करनेमें कालिदास भवभूतिसे आगे हैं। कालिदासके नाटकों और काव्योंमें जो श्रृंगार रस दिखाई देता है, वह वस्तुतः करुण विप्रलम्भ रस है। साहित्यदर्पणके रचयिता विश्वनाथने इसका लक्षण इस प्रकार किया है :—

"यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुण विप्रलम्भाख्यः।"

पुनः कालान्तरमें प्राप्त होनेवाले दूरस्थ नायक या नायिकामें से एकके विरहमें दूसरेको जब दुःख होता है, उस समय शोक स्थायी भावकी छटा होनेसे करुण विप्रलम्भ श्रृंगार होता है क्योंकि इस समय दुःख आत्यन्तिक नहीं होता, और शोक स्थायी भाव भी क्षणिक होता है। दूसरी बात यह कि यहां भी श्रृंगारकी प्रधानता होती है। क्योंकि भविष्यमें प्राप्त होनेवाले रति-सुख-स्वादकी आशा बनी रहनेसे रति ही यहां स्थायी भाव माना जाता है। इसलिये मेघदूत करुण रस नहीं, करुण विप्रलम्भ है। क्योंकि यक्षका शाप 'वर्ष भोग्येन' साल-भरका ही है। उसको विश्वास है कि एक वर्षके विरहके बाद भेंट होनेपर उन दोनोंका काल और अधिक आमोद-प्रमोद और सुखसे बीतेगा। इसलिये आचार्योंने विप्रलम्भका वर्णन किया है :—

"विप्रलम्भे रति स्थायी
पुनः सम्भोगहेतुकः।"

नायक-नायिकाका यह विश्वास कि कुछ कालके विरहके अनन्तर वे पुनः एकत्र होंगे, मिलेंगे, और यह विचार तथा कल्पना ही उनको जीवित रखती है। अतः यह रति ही स्थायी भाव है। करुण-विप्रलम्भका मेघदूत सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इससे यह भी प्रकट है कि कालिदासको करुण रस अत्यधिक प्रिय था। यही कारण है कि कालिदासने अपनी रचनाओंमें करुण रसको अज-विलाप, रति-विलाप—सीता-त्याग आदिमें प्रमुखतासे स्थान दिया है। कालिदासको कविकुल गुरु बनानेमें करुण रसका एक बड़ा भाग है।

करुण रस ही एकमात्र रस है

परन्तु कालिदासकी करुणा-मूर्त्ति भवभूतिके समान यह मान्यता नहीं है कि करुण ही एकमात्र रस है, जैसे पानी एक

ही है, बुलबुले, भँवर, उत्तुंग तरंग उसके विविध प्रकार हैं, वैसे ही विभिन्न आश्रयों द्वारा करुण रस—श्रृंगार, वीर, हास्य, वीभत्स आदि रसोंके रूपमें प्रकट हुआ है। भवभूति करुणको छोड़कर दूसरा कोई रस माननेको उद्यत नहीं :—

"एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्
आवर्त बुद्बुद तरङ्गमयान्विकारा—
नन्ते यथा सलिलमेवहि तत्समस्तम् ॥"

भवभूतिका उत्तर रामचरित्र इस कारण अनेकोंकी दृष्टिमें संस्कृतका सर्वश्रेष्ठ नाटक है। स्व० द्विजेन्द्रलाल तो भवभूति पर मुग्ध हैं। उनका कहना है कि यदि छाया सीतामें भवभूति प्राण-संचार कर देता और उसको जीवित प्राणमयी सीता बना देता, तो यह विश्वका एक अनोखा चमत्कार होता और सारा मानव समाज 'धन्य-धन्य' पुकार उठता। परन्तु यह 'भिन्न रुचिर्हिलोकः' के अनुसार अपनी-अपनी पसन्दका प्रश्न है। साहित्य-शास्त्रकी कसौटीपर रसाविष्कार और परिपोष पद्धतिकी दृष्टिसे विचार करना आवश्यक है।

करुणरस क्या है?

भवभूतिने करुण रसका एक पूरा नाटक ही लिखा है। कालिदासकी ऐसी कोई रचना उपलब्ध नहीं। परन्तु उसकी विभिन्न रचनाओंमें ऐसे स्थल विद्यमान हैं। अज-विलाप और रति-विलाप इसी प्रकारके हैं। इन दोनोंको शुद्ध करुण रस ही मानना चाहिए। विप्रलम्भ श्रृंगार नहीं। यद्यपि कविका कहना है कि गंगा-यमुना नदियोंके संगमपर देह-त्याग करके स्वर्गमें अधिक सुन्दर देह धारण करके नन्दन वनमें इन्दुमतीके साथ अज पुनः रमण करने लगा। यथा :—

"तीर्थे तोय व्यतिकरभवे जन्हुकन्या सरय्वोः
देहत्यागादमरगणयता लेख्यमासाद्य सद्यः
पूर्वाकाराधिकतररुचा सङ्गतः कान्तयाऽसौ
लीलाभारेस्वरयत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु ॥"

रघुवंशके समान कुमार सम्भवमें भी कविने आकाशवाणी द्वारा रतिको आश्वासन दिया है कि जब पार्वती अपनी तपस्या द्वारा शंकरपर विजय पा लेंगी, और शंकर पार्वतीसे विवाह करेंगे, तो उनको यथेच्छ ऐहिक सुखोपभोग मिलनेसे मदन पुनः जीवन लाभ करेगा। आकाशवाणी इस प्रकार है :—

"परिणेस्यति पार्वती यदातपसा
तत्प्रवली कृतो हरः।
उपलब्ध सुखः स्मरं तदा वपुषा
स्वेन नियोजमिष्यति ॥"

निस्सन्देह यहाँ प्रियसे पुनर्मिलनकी प्रत्याशा विद्यमान है। यही नहीं यह आशा उनकी पूरी भी होती है। परन्तु यथार्थ बात यह है कि जब अजने देहत्याग किया था, तब उसको इन्दुमतीके पुनः पानेकी कोई आशा नहीं थी। यह इससे प्रमाणित है कि विलाप कर रहे अजको कुलगुरु वशिष्ठने अपने शिष्यों द्वारा यह प्रबोध वचन सन्देशके रूपमें भेजा था कि राजन् आप क्यों रोते हैं? क्या इस प्रकार रोनेसे इन्दुमती पुनः मिल जायगी? यदि आप इन्दुमतीका अनुमरण करके अनुसरण करेंगे, तब भी वह न मिलेगी। क्योंकि प्रत्येक प्राणीकी परलोकमें जगह स्व-स्व कर्मके अनुसार निश्चित होती है। इस प्रबोध वचनके होते हुए :—

"रुदताकुत एवसापुनर्भवता
नानु मृताऽपि लभ्यते।
परलोक जुषां स्वकर्मभिः मतयो
भिन्न पथाहि देहिनाम् ॥"

इससे प्रकट है कि अजने देहत्याग निराशामें किया और उस समय इन्दुमतीके मिलनेकी आशा सर्वथा नहीं थी। यही बात रति-विलापकी है। क्योंकि रतिके सामने तो केवल शिवके तीसरे नेत्रसे दग्ध मदनकी पुरुषा कृतिमात्र थी—

'ददृशे पुरुषाकृति क्षितौ हरकोपानल भस्म केवलम्।'

राखकी ढेरीके सिवाय और कुछ था ही नहीं, पुनर्मिलनकी आशा कहाँ? करुण रसकी उत्पत्तिके लिए निम्न साधनोंकी आवश्यकता है—१ स्थायी भाव—शोक, २ अनुभाव—रुदन, अश्रुपात, ३ व्यभिचारिभाव—निराशा, दैन्य, ४ आलम्बन विभाव—प्रिय व्यक्ति, ५ उद्दीपन विभाव—प्रिय व्यक्तिकी स्मृति, ६ भाव—अनुकम्पा—इतने साधनोंसे रसका आविष्कार और परिपोष पूर्ण रूपसे होता है। इस दृष्टिसे यदि रति-विलाप

और अज-विलापको देखेंगे, तो कालिदासका अद्भुत चमत्कार दिखाई देगा।

रति व अज-विलाप

शंकर भगवानके कोपसे मदन भस्म हो गया। रतिका इस समयका विलाप किसी भी नव विवाहिता विधवाके विलाप के समान है। वह मदनको स्मरण करके कहती है कि एक बार भूलसे तूने दूसरी स्त्रीका नाम ले लिया था, तब तुझे मैंने मेखलासे बाँध दिया था, क्या तुझे वह स्मरण है? क्या वह तुझे याद है, जब मैंने अपने आभूषणके कमलसे तुझे मारा था और उस समय कमलका पराग तेरी आँखोंमें चला गया था, तो तू गुस्सेसे तमतमा गया था :—

"स्मरसि स्मर मेखला गुणैरुत
गोत्रस्खलितेषु बन्धनम्।
च्युत केशर दूषितेक्षणान्यवतंसोत्पल
ताडनानि वा॥"

रतिका शोक थामे थमता नहीं। उसका विलाप और जोरदार हो जाता है। उसको स्मरण हो आता है कि एक समय था, जब मदनने मेरी बिलकुल शरण आकर याचना की और सकम्प मेरा आलिंगन किया। यह और एकान्तमें किये सुख कर्मको स्मरण करके रति कहती है कि उसको शान्ति नहीं मिल रही है :—

'शिरसा प्रणिपत्य याचितान्युपगूढानि
सवेपथूनि च।
सुरतानि च तानि ते रहःस्कर
संस्मृत्य न शान्तिरस्ति मे॥"

पर अजका विलाप इससे भिन्न है। वह परिताप करता है, और सफाई देता है कि इन्दुमति! मनसे भी मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जो तुझे अप्रिय हो, फिर क्यों तू मुझे छोड़ गई! मैं पृथिवीपति तो नामका ही था। मेरा सर्वस्व प्रेम तो तेरेपर ही था। अजका आत्मनिवेदन दर्शनीय है :—

'मनसाऽपि न विप्रियंमया कृतपूर्व
तव किं जहासि माम्।
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे
भाव निबन्धना रतिः॥"

इन्दुमतीके बिना अजका सारा संसार अन्धकारपूर्ण हो गया है। दुनियामें उसके लिए कुछ शेष नहीं रहा। वह निराश होकर कहता है, धीरज समाप्त हो गया, सुरतक्रीड़ा खतम हो गई, गान थम गया, बसन्तादि ऋतुएँ निरुत्सव हो गईं, अलंकार धारण करनेका अब कोई प्रयोजन नहीं रहा और आजसे मेरी शय्या शून्य हो गई है।

उद्दीपन विभाव किस प्रकार उत्पन्न किया गया है, यह देखने योग्य है :—

"धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं
गेयमृतुर्निरुत्सवः।
विगतामरण प्रयोजनं परिशून्यं
शयनीयमद्यमे॥"

कालिदास द्वारा नियोजित प्रत्येक शब्द अपने स्थानपर बिलकुल 'फिट' बैठा है और पढ़नेवालेके मनमें करुण रसका उद्रेक करता है और अज तथा रतिके प्रति सहानुभूति उत्पन्न किये बग़ैर न रहेगा। रतिका मूर्च्छासे उठकर अपने सामने मानवाकृतिमें मदनका भस्म देखना और हे प्राणनाथ, क्या अभी तुम जीवित तो हो, पूछना और अपने सामने पुरुष आकारको शव देखकर फिर पछाड़ खाकर गिर पड़ना और मूर्च्छित हो जाना—नाटकीय चमत्कार उत्पन्न करता है और कठोर-से-कठोर हृदयको भी करुणा विचलित कर देता है :—

"अयि जीवित नाथ जीवसीत्यभिधायो—
त्थिततया तया पुनः।
ददृशे पुरुषाकृति क्षितौ हरकोपानल—
भस्म केवलम्॥"

इसी प्रकार इन्दुमतीके अभावमें अज अपनेको असहाय और किंकर्त्तव्यविमूढ़ माना है, क्योंकि इन्दुमती केवल उत्तम गृहिणी ही उसके लिए नहीं थी, प्रत्युत मन्त्री, एकान्तमें प्रिया, ललितकलाओंमें एक प्रिय शिष्या भी थी। अतः अज यमपर क्रुद्ध है और कहता है कि क्रूर मृत्युने तुझको मुझसे छीनकर

मेरा क्या बाक़ी रखा है ? अर्थात् सर्वस्व अपहरण कर लिया है :—

"गृहिणी सचिवः सखी मिथः
प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणा विमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद
किं न मे हृतम् ॥"

परन्तु कुमार सम्भव और रघुवंश महाकाव्यके इन प्रकरणोंके प्राण अन्य दो श्लोक हैं, जो श्री जोशीके मनमें अगर वाङ्मयकी अनुपम सम्पदा हैं । वस्तुतः वे भारतीय संस्कृतिकी अनमोल निधि हैं । भारती संस्कृतिकी नर-नारीके पारस्परिक सम्बन्धकी उदात्त भावनाको मूर्तरूपमें सुन्दर शब्दोंमें रख दिया है और करुण रसका परिपाक और परिपोष चरम सीमापर पहुँच गया है । रति कहती है :—

"शशिना सहयाति कौमुदी
सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
प्रमदा पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि
विचेतनैरपि ॥"

यह एक सनातन नियम चला आ रहा है, चाँद और चाँदनी एक साथ जाते हैं और रहते हैं, बिजली मेघमें विलीन होती है, इसी प्रकार विद्वानोंने नियम बनाया है—स्त्री पतिमार्गकी पथिक हो, फिर रति पूछती है—भला, मदन उसको यहाँ छोड़कर क्यों चला गया। अजके सामने दूसरी ही समस्या है । माला गिरनेसे इन्दुमती मर गई ; पर वह स्वतः जीवित रहा । यह क्या आश्चर्यकी बात नहीं ! इसलिये अज अपने आपको ईश्वरेच्छाका परिणाम मानता है और कहता है कि यह उसीका नियम है कि विष भी कभी-कभी अमृत हो जाता है, और अमृत भी विष हो जाता है । अक्षर-वाङ्मयके अन्दर प्रतिभा-विलास और रस परिपोषकी दृष्टिसे यह चमत्कारपूर्ण माना जायगा :—

"स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं
निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेन्
अमृत वा विष मीश्वरेच्छया ॥"

मनुष्य जब कारण ढूँढ़नेमें अपनेको असमर्थ पाता है, तब अपने भाग्यको दोष देता है, या ईश्वरेच्छा कहकर सन्तोष करता है । अजकी यही मानसिक स्थिति है । 'सत्य शिव सुन्दर' साहित्य कैसा होता है, इसका यह एक उत्तम उदाहरण है । कल्पना-विलास, सत्यान्वेषिणी बुद्धि और करुण रस शनैः शनैः परिदोष इसका यह अद्भुत त्रिवेणी संगम है । इस रचना कौशलके ही कारण कालिदास कवि-कुलगुरु हैं ।

परन्तु रति-विलाप और अज-विलापमें सीता-त्यागकी अपेक्षा करुण-रसके परिपोषके लिए अवकाश न्यून है । क्योंकि जो जन्मता है, वह मरता जरूर है । आस्तिक कालिदासकी मान्यता है कि 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्' 'मृ' मनुष्यका मरना उसकी प्रकृति है, स्वाभाविक धर्म है । अतः शोक व्यर्थ है । कविकौशल कुछ करे और दिखावे, पर दैवीय अन्याय और मानव-कृत अन्यायमें पार्श्व-भूमिकी दृष्टिसे एक महान् अन्तर है । दैव और निसर्ग द्वारा जो होता है, वह अपरिहार्य है, पर मानव-कृत अन्याय इस कोटिमें नहीं आता । इस दृष्टिसे सीता-त्यागका विषय भवभूतिके लिए करुण रसका परिपाक दिखानेकी दृष्टिसे उपयुक्त पार्श्व-भूमि है । कालिदासने भी इस विषयपर अपनी कलम चलाई है । दोनोंको देखनेसे मालूम होगा कि वस्तुतः कालिदास कवि-सम्राट् हैं ।

सीता-त्याग

भवभूतिने शिकायत की है, सीता सदृश निर्दोष सति नारीको भी लोगोंने अपवादरहित नहीं छोड़ा :—

"सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतोह्य वचनीयता ।
यथास्त्रीणां तथावाचं साधुत्वे दुर्जनोजनः ॥"
"देव्या अपि हि वैदेह्याः सापवादे, यतोजनः ।
रक्षो गृहस्थितिर्मूलमग्नि शुद्धौ त्वनिश्चयः ॥"

सीतापर अग्नि-परीक्षाके बाद भी अपवाद लगाना भवभूतिको सह्य नहीं । परन्तु आश्चर्यकी बात है कि 'उत्तर राम चरित' नाटकके रचयिताने स्वतः यह अपराध किया है । स्व० श्री रंगाचार्य रड्डीके मतानुसार वनवाससे लौटनेके एक मास बाद रामका राज्याभिषेक हुआ । इसके पन्द्रह दिनों बाद रामने सीताके विनोदके लिए आलेख-दर्शन कराया है । इसी

आलेख-दर्शनके समय 'दुर्मुख'ने सीतापवादकी बात रामसे आकर कही, और इसपर रामने सीताका तत्क्षण परित्याग कर दिया। सीता इस समय 'आसन्न प्रसवा' थी। लक्ष्मण उसको वाल्मीकि मुनिके आश्रममें जिस दिन छोड़ आये, उसी दिन वह 'प्रसूत' हुई। यह सीताके चरित्रको निष्कलंक सिद्ध करनेमें असमर्थ है। दूसरी बात यह कि सीता दो मासके अन्दर पूर्ण-गर्भा हो गई, यह अस्वाभाविक वस्तुस्थिति विरोधी बात है। पाठकोंके मनमें सीताके प्रति सहानुभूति जगानेमें यह असमर्थ है। अतः भवभूतिने प्रारम्भमें ही रसोत्पत्तिके समय ही एक ऐसी अक्षम्य भूल की है कि उसका कितने ही कौशलसे परि-पोष करनेपर भी इसकी स्मृति आते ही अन्तःकरणमें संमिश्र भावनाका उदय होना स्वाभाविक है और पाठकका मन तद्रूप न हो सकेगा।

भवभूतिने एक और भारी गलती की है। रामने सीताके साथ अन्याय किया है। राम दोषी है, परन्तु भवभूतिके राम कभी अपना दोष स्वीकार नहीं करते। उलटे भवभूतिके राम कहते हैं :—

> "अपूर्व कर्म चाण्डालमयि मुग्धे
> विमुञ्च माम्।
> श्रितासि चन्दन भ्रान्त्या दुर्विपाक
> विषद्रुमम् ॥"

निरपराध सीता द्वारा यह बात न कहाकर भवभूतिने रामसे कहवाई है। निरपराध-व्यक्तिकी असहाय और दीन अवस्थाके प्रति साधारणतः सबकी सहानुभूति होती है। इस सहानुभूतिका करुण रसके परिपोषके लिए यदि उपयोग अनिष्ट हो, तो निरपराध व्यक्तिका रौद्ररूप प्रगट होना चाहिए न कि दूसरेका। भवभूतिने रसाविष्कार और कलाकी दृष्टिसे इसलिये यहाँ भारी भूल की है। क्योंकि असहाय और दीन व्यक्ति ही अपने साथ अन्याय होनेपर अपनी दीनावस्थाका वर्णन करता और रोष करता है।

इसका यह अर्थ नहीं कि भवभूति करुण रसका परिपाक करनेमें असमर्थ रहा है। करुणरस-वर्णन-उद्दीपन-विभावमें भव-भूति अनेक जगह कालिदाससे भी बढ़ गया है। वासन्ती द्वारा रामको यह उपालम्भ देना कि भोली सीताको यूँही मधुर व प्रिय झूठे वचनोंसे लुभाते रहे कि तूही मेरा जीवन है, तू मेरा हृदय है, तू मेरे आँखोंका कौमुदी है, अंगोंके लिए अमृत है, करुण रससे परिपूर्ण है :—

> "त्वं जीवितं, त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
> त्वं कौमुदी नयनयो रमृतं त्वमङ्गे।
> इत्यादिभिः प्रिय शनैरनुरुह्य मुग्धां
> तामेव शान्त मथवा, किमतः परेण ॥"

सखीके दुःखसे दुःखी होनेके अत्यधिक आवेगके कारण वासन्तीका यह कहकर मूर्छित हो जाना दर्शकोंके हृदयमें निस्सन्देह करुणा सागरको उत्पन्न करेगा। यही क्यों, वासन्ती यहींपर शान्त नहीं हो जाती। वह रामसे कहती है, तुम कठोर हृदय हो, और तुम्हें तो केवल अपना यह प्रिय है, परन्तु सीता-त्याग क्या उससे अधिक अपयशका कारण है, जो हरिणीके सदृश भोली सीताको नृशंस और क्रूर पशुओंसे युक्त जंगलमें छोड़ दिया है :—

> अयि कठोर! यशः किलते प्रियं
> किमयशो ननु घोरमतः परम्।
> किमभवद्विपिने हरिणीदृशः
> कथय नाथ! कथ वत मन्यसे ॥"

निस्सन्देह भवभूतिके करुण रसका परिपोष बहुत जोरदार और सुन्दर है। परन्तु संविधानक और करुण रसकी प्रक्रिया का जहाँ तक प्रश्न है, वहाँ कालिदास भवभूतिसे कई योजन आगे है। कालिदास यहाँ भवभूतिकी अपेक्षा अधिक सहृदय ठहरता है।

सीताके साथ जनताके हृदयमें सहानुभूति उत्पन्न करनेके लिए उसका निष्कलंक चरित्र और सर्वथा सन्देहरहित चित्रित करना आवश्यक है। इस प्रथम बातको भवभूतिके समान कालिदास नहीं भूला है। सीताके विषयमें जनापवाद सुननेपर राम अपने सब बन्धुओंको बुलाते हैं और कहते हैं कि वे हृदयसे जानते हैं कि सीता सर्वथा विशुद्ध है, परन्तु क्या किया जाय, लोकापवाद मेरे मतसे अधिक बलवान है। भूमिकी छायासे चन्द्र भी कलंकित हो जाता है, इसी प्रकार जनापवादसे सीताका विशुद्ध चरित्र कलंकित हो गया है :—

"अवैमि चैनामनघेति
किन्तु लोकापवादो बलवान् मतोमे।
छायाहि भूमेः शशिनो मलाचेन्नाऽऽरोपिताशुक्ति-मतः प्रजाभिः॥"

राम सीताका परित्याग करनेके लिए विवश है और निर-पराध सीताका निष्कासन किया जा रहा है, इस अनुभूतिसे रसिकोंके हृदयमें करुणाका अंकुर अंकुरित हो जाता है। निरपराध सीता प्रिय गंगा नदीके किनारे ले जायी जाती है। सीताको इस समय नहीं मालूम कि उसका रामने परित्याग कर दिया है। उस समय वह प्राकृतिक दृश्योंको देखनेका आनन्द ले रही है। यह गाढ़ अन्धकार प्रदेशमें जाते हुए विद्युद्दीप चमकनेके समान मालूम होता है। इसके बाद लक्ष्मण जब रामका विचार सीताको बताता है, और सीता जब घरको लौट रहे लक्ष्मणको कहती है कि राजा रामको—आर्यपुत्र रामको नहीं कहना कि सबके समक्ष अग्नि द्वारा विशुद्ध प्रमाणित मुझको छोड़कर क्या उचित किया है? लोकापवादके कारण मेरा परित्याग करना क्या रामके प्रसिद्ध वंशके अनुरूप हुआ है?

"वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा
वन्हौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवाद श्रवणादहासिः
श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य॥"

कितना गहन अन्धकार है। रसिक हृदय करुणासे आप्लावित हो उठता है। कालिदासका अनुपम कौशल यहाँ प्रगट होता है। लोकापवाद सुनकर बिना न्याय किये परित्याग करना अनुचित है, यह आरोप लगाकर भी सीता अगले जन्ममें रामको ही अपना पति बनानेकी इच्छा प्रगट करती है और कामना करती है कि रामसे पुनः विरह न हो। इक्ष्वाकु कुलके मंगलके लिए वह सूर्यकी ओर दृष्टि रखकर तप करनेका लक्ष्मणको वचन देकर वापस भेजती है। दुःखी सीताका हृदय कितना महान् है, उदात्त है, परिशोधकी भावनासे सर्वथा रहित है। कालिदासने भारतीय महिला समाजके आदर्श तेजस्विनी सीताको इस रूपमें चित्रित करके काव्य जगत्में एक अनुपम चमत्कार किया है और भारतीय संस्कृतिकी उच्चताकी एक नयी मर्यादा स्थापित की है:—

"साहं तपः सूर्य निविष्ट दृष्टिः, उर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथामे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्त्ता नच विप्रयोग॥"

कालिदास इसी कारण एक हजार वर्षोंसे भी अधिक कालसे कविकुल गुरु माने जाते हैं और यह उचित भी है।

नदी मातृक तथा देवमातृक देश

वैद्य रणजित राय

अनुजों तथा भार्या समेत वन-वन विचरण करते हुए धर्मराजने एक वनेचरको वेषान्तरमें दुर्योधनके शासनका समा-चार जानने भेजा। लौटकर दुर्योधनकी दक्षताका वर्णन करते हुए अन्य बातोंके साथ वनेचरने यह भी कहा कि दुर्योधनने अपने राज्यको 'अदेव मातृक' किंवा 'नदी मातृक' बना दिया है। परिणामतया, समस्त राज्यमें धान्यकी समृद्धि ही समृद्धि दीख पड़ती है।

तात्पर्य, प्राचीनोंने शासनके कौशलका एक चिह्न देश (भूमि) की नदी मातृकता बताया है। देशका देवमातृक होना उनके मन गर्हित था। संक्षेपमें दोनों शब्दोंका अर्थ देख लें।

देव शब्दका अर्थ है पर्जन्य या मेघ। सो जिस देश या भूमिकी माता देव हो—जिसमें धान्योत्पत्तिका आधार मेघ हो उसे 'देवमातृक' कहते हैं। इसके विपरीत जो देश धान्योत्पत्ति या कृषिके लिए पर्जन्यके आश्रित न होकर नदियों तथा नदियोंसे निकाली नहरोंके आश्रित हो, उसे 'नदी मातृक' कहा जाता है। दोनों शब्दोंमें बहुव्रीहि समास है।

देशकी नदी मातृकताका महत्त्व समझानेकी वस्तु नहीं है। 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलनके अंग रूपमें नदियोंपर बाँध बाँधने और उनसे नहरें निकालने तथा कृषि और उद्योगों की समृद्धिके लिए उनका उपयोग करनेमें हमारे नेता प्राचीनोंकी पद-पद्धतिका ही अनुसरण कर रहे हैं।

तृतीय विश्व-युद्ध अवश्यम्भावी

बर्ट्रण्ड रसल

सन् १००० ईस्वीमें विश्वके अन्तकी आशंका की गई थी ; पर तबसे अबतक विश्वके लिए समय साधारणतया तथा गम्भीरतया इतना चिन्ताका समय नहीं रहा, जितना कि आजकल पश्चिमी विश्वको है ; मेरा निजी खयाल यह है कि विश्वके लिए वर्त्तमान चिन्ता वैसी ही निराधार साबित होगी जैसी कि पहले । पर मैं स्थितिको चिन्ताहीन सम्भावनासे मुक्त नहीं पाता हूँ। पर रोगकी गतिविधि जाननेसे पूर्व रोगका निदान किया जाता है । इसलिये हमें तनावके कारणोंको जान लेना चाहिए । यह कारण कई प्रकारके हैं—आर्थिक, राजनीतिक तथा सैद्धान्तिक । समस्या बेहद सरल हो जाती है, यदि हम इन कारणोंमें से किसी एक पर जोर दें और अन्योंको उसमें से निकाल दें ।

पहले आर्थिक कारणोंको लीजिये । विश्वमें धनी राष्ट्र हैं और गरीब राष्ट्र हैं ; और गरीब राष्ट्रोंमें धनी व्यक्ति हैं और धनी राष्ट्रोंमें गरीब व्यक्ति हैं । मोटे तौरपर धनी राष्ट्र और धनी व्यक्ति स्वभावतः अमेरिकाकी ओर हैं और गरीब राष्ट्र और गरीब व्यक्ति रूसकी ओर हैं । फलस्वरूप यह रूसके हितकी बात है कि दुनिया गरीब बनी रहे और अमेरिकाका हित इसमें है कि दुनिया सम्पन्न हो जाय । निस्सन्देह कम्यूनिस्ट इस बातको मानते हैं कि जिस गरीबीके वे पक्षपाती हैं, वह सार्वभौम सम्पन्नताके लिए एक अस्थायी साधन है ; पर फ़िलहाल समृद्धि उनका शत्रु है ।

यदि किसी स्थायी ढँगसे इस तनावमें कमी करनी है, तो विभिन्न राष्ट्रोंमें आर्थिक समताकी ओर अधिक पहुँच चाहिए। चीन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके जीवनके मापदण्डकी विषमता दो देशोंकी मैत्रीको कठिन बना देती है । जहाँ तक भारतवर्षका सम्वन्ध है, वहाँ तक यह कठिन कृत्य पूरा होता दिखाई पड़ रहा है । और इसके लिए नेहरू और ब्रिटिश सरकारकी सामूहिक राजनीतिको धन्यवाद है ।

वर्ण असमानताका तनाव

एशिया और अफ्रीकामें आर्थिक तथा वर्ण-भेद सम्बन्धी कारणोंका निकटतम सम्बन्ध है । १९वीं शताब्दीमें गो[रे] लोगोंके पास सम्पत्ति-सत्ता तथा प्रतिष्ठा थे । एशियामें अ[ब] वह बात नहीं है और यह संदिग्ध बात है कि अफ्रीकामें ऐसी स्थिति कबतक चलेगी । अंगरेजोंके साथ समानताका दा[वा] कम्यूनिज़्मके लिए एक तीव्र प्रेरणा है । पश्चिमी देशों[के लिए] एक कठिनाई है, जिससे कि रूस मुक्त है । विश्वके ऐसे भा[ग] हैं, जो समताकी माँग करते हैं और उसकी पूर्ति पश्चिमके दे[श] स्वतन्त्राके रूपमें समता देकर ही कर सकते हैं, और उसक[ा] नतीजा अराजकता होगा । इसके विपरीत मौस्को वह चीज़ [दे] सकता है, जो कि पेशगी समता समझी जाती है । यद्य[पि] वास्तवमें वह रूसी साम्राज्यवादको समर्पण कर देना है इससे कम-से-कम एक लाभ तो यह है कि उससे अराजकत[ा] नहीं फैलेगी ।

राजनीतिक दृष्टिसे यह संघर्ष वास्तवमें पहले तीन संघर्षों [के] समान ही है । अर्थात् वे संघर्ष जिनको कि स्पेन, फ्रांस औ[र] जर्मनीने उत्तेजित किया था, जब उन्होंने विश्व-विजयकी कामना की थी । बस, एक ही राजनीतिक नवीनता है, वह यह [कि] पहले इङ्गलैण्ड बचावका नेतृत्व करता था और अब उ[स] कामको अमेरिका करता है । पहलेके संघर्षोंमें भी पंचम क[ॉलम] (Fifth Column) उसी तरहसे थे, जिस प्रकार कि आ[ज] हैं । इङ्गलैण्डमें १५८८ में कैथोलिक थे, १७९३ में क्रान्ति[-] कारी थे और १९४० में फ़ासिस्ट थे । स्पेनके उत्थानसे ढाँ[चा] एक-सा ही रहा है । यानी एक राष्ट्रने अपने आपको इतन[ा] शक्तिशाली समझा कि वह विश्वपर शासन कर सकता है औ[र] ऐसा राष्ट्र अन्तमें ऐसे राष्ट्रोंके समझौतेसे हरा दिया गया, [जो] अपनी आज़ादीको खोनेके लिए इच्छुक न थे । इस प्रकार[के] मेल-जोलमें हमेशा एक नेता रहा है, जिसने कि पहले दो संघर्षों[में]

अन्तिम विजय द्वारा अपार लाभ उठाया। पर उसने सार्वभौम सत्ताके लिए प्रयत्न नहीं किया। आजकल भी वह बात लागू है। कम्यूनिस्टों और उनके मित्रोंसे हम अमेरिकन साम्राज्यवादके बारेमें बहुत कुछ सुनते हैं। पर अमेरिकामें वैसी दृढ़ता नहीं है, जैसी कि रूसमें केवल एक ही विचारधारा रूपी शिलापर राष्ट्र उत्पन्न करनेकी प्रवृत्ति है, जिसमें कि केवल केन्द्रसे ही शासन होता हो। और न अमेरिकामें वाशिंगटनमें स्थापित प्रणालीके अतिरिक्त अन्य शासन प्रणालियोंके लिए वैसी असहिष्णुता है, जैसी कि रूसमें।

वर्त्तमान संघर्षमें सिद्धान्तोंकी टक्करका जो भाग है, वह एक दृष्टिसे बहुत बड़ा है और दूसरी दृष्टिसे वह ढकोसलेबाजीकी एक शक्लके समान ही बुरा है। जब कभी किसी विचारधाराकी रक्षा किसी सत्ता गुटकी रक्षासे समन्वित हो जाती है, तो पदलोलुपता (Power Politics) विचारधाराको डुबा देती है, उन लोगोंके दिमागमें जो नीतिका संचालन करते हैं। नामके लिए तो विचारधारा (Idealogy) जीवित रहती है, लेकिन वह वास्तविक रूपमें लोकप्रियता प्राप्त करनेके लिए एक चालाकीसे बढ़कर और कुछ नहीं होती।

१६वीं शताब्दीमें कैथोलिक विचारधारा स्पेनिश साम्राज्यवादमें समाविष्ट हो गई थी। प्रोटेस्टैन्ट विचारधारा समुद्री डकैतियोंके मुनाफ़ेमें समाविष्ट हो गई थी। प्रारम्भमें इटली और पश्चिमी जर्मनीमें नैपोलियनका स्वागत हुआ था, क्योंकि वह क्रान्तिका दूत ख़याल किया गया था। पर जब नौबत उसके भाइयोंके व्यक्तिगत शासन और फ्रांसीसी युद्धोंके लिए अनिवार्य भर्तीकी आई, तब स्पष्ट हो गया कि स्वतन्त्रता, समता और मित्रताका स्थान पदलोलुपताने ले लिया है। कम्यूनिस्ट दुनियामें भी अब वही बात है यानी शासकोंके लिए पदलोलुपता, भ्रान्त व्यक्तियों और पिछलगुओंके लिए विचारधारा।

नवीन ऐतिहासिक तत्व

मैं यह नहीं चाहता कि मैं यह सुझाव रखूँ कि विश्वकी वर्त्तमान परिस्थितिमें कोई नई बात नहीं है। इसके विपरीत कुछ बातें नई हैं। कम्यूनिस्ट विचारधारा पहलेके साम्राज्यवादोंकी विचारधाराओंकी अपेक्षा अति उग्र तथा अधिक क्रियाशील है। कार्ल मार्क्सका भ्रान्तिमूलक तर्क किन्हीं अंशोंमें बुद्धिवादी लोगोंको जो अपील करता है, वह सैण्ट पौलने सैण्ट अगस्टाइनसे जो अपील की थी, उससे कुछ भिन्न नहीं है। यह अपील दुधारी होती है। नाम मात्रके लिए तो वह दिमागसे सम्बन्ध रखती है, पर वास्तवमें उसका सम्बन्ध भावनाओंसे होता है। हर तरहके असन्तुष्ट व्यक्तियोंके लिए यह क्रान्ति और शत्रुओंके दण्ड देनेकी बात कहती है। प्रत्येक प्रकारके पीड़ितोंके लिए संकटमोचन और अन्यायसे मुक्ति देने की बात कहती है। और यह इस दशामें और भी ठीक प्रतीत होती है; क्योंकि वह रहस्यपूर्ण फ़ार्मूलाके हिसाबसे प्रारम्भ होती है। जिसका दावा यह होता है कि उसने सम्पूर्ण अन्यायके मूल कारणोंका अन्वेषण कर लिया है। एक पाश्चात्य बुद्धिवादी युवक जो अपने पितासे घृणा करता है, एक यहूदी जिसने यहूदी विरोधी आन्दोलनमें बहुत भुगता है, एक चीनी जो कि एक शताब्दीसे विदेशी उद्दण्डतासे क्रोधित है, दक्षिणी अमेरिका का मूल निवासी जो कोर्टे और पिज़ारोकी स्मृतिसे घृणा करता है—ये सब बड़ी आसानीसे इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लेते हैं कि पूँजीकी सत्ता ही उनके दुःखोंका कारण है।

दूसरी बात जो नई है वह यह है कि संघटनकी रूपरेखा बहुत ही संघटित है। यह ठीक है कि ज्यूजिट्स सुसंगठित थे और उन्होंने अपने विरोधी सुधार-आन्दोलनमें जो कुछ किया, उसको प्रत्येक जानता है, पर उनकी संख्या बहुत कम थी और कैथोलिक्स उनकी श्रेणीसे बाहर अपेक्षाकृत बहुत कम संगठित थे। इसके अतिरिक्त उनमें से बहुत-से ज्यूजिट्सके सक्रिय विरोधमें थे। ट्रौट्सकाइट्सको नष्ट करनेकी पहले इतनी सामर्थ्य न थी, जितनी कि अब है। यह ठीक है कि संगठनकी इस प्रकारकी कठोरतामें स्वयं अपने दोष होते हैं। टिटो इसके विरुद्ध विद्रोह करता है। कुछ अंगरेज कम्यूनिस्टोंको हिटलर-स्टैलिन समझौता पूरी तरह पसन्द न था। कुछ इटैलियन कम्यूनिस्टोंकी समझमें यह नहीं आया कि कार्ल मार्क्सने यह कैसे सिद्ध किया कि उनको ट्रीस्टीपर इटैलियन अधिकार की बात छोड़ देनी चाहिए। पर सब बातें मिलाकर कम-से-कम

अबतक यह तो है ही कि बुराइयोंकी अपेक्षा भलाइयाँ ज़्यादा हैं। यह बात ठीक बनी रहेगी या नहीं यह अधिक विवादास्पद है। तीसरी चीज़ जो नई है, वह यह वस्तुस्थिति है कि अब केवल दो बड़े ही राष्ट्र हैं और चौथी बात है हथियारोंकी रूपरेखा, जिनका कि प्रयोग अवश्य होगा, यदि ठण्डा युद्ध गर्म हो गया।

क्या ठण्डा युद्ध गर्म हो जायगा? इसके बारेमें मैं उससे अधिक कुछ नहीं जानता, जितना कि समाचार पत्रोंका कोई श्रमशील पाठक जानता है। पर मैं जानता हूँ कुछ बातें ऐसी हैं, जो कही जा सकती हैं। मैं इस बातपर विश्वास नहीं करता कि क्रैमलिनके साथ कोई सच्ची मित्रता सम्भव है। जब कभी क्रैमलिन सोचता है कि युद्धके लिए समय उपयुक्त नहीं है, तो वह इस बातको राजी हो जायगा कि वह समझदारीकी ऐसी दिखावट करे, जिससे पाश्चात्य देशके लोगोंको चैन मिले। लेकिन कम्यूनिज़्मका तरीका ही ऐसा है, जिससे यह प्रकट होता है कि वास्तविक सन्धि सम्भव नहीं और जल्दी ही और बादमें कम्यूनिज़्मकी विजय अवश्यम्भावी है (हेगलके तर्कके ढँगने वही बात जर्मनीके लिए सिद्ध की) मार्क्सवादी सिद्धान्तके कुछ अंश वास्तवमें ऐसे हैं, जिनको क्रैमलिनने (मास्कोमें कम्यूनिस्ट सरकारका स्थान) मतलबसे छोड़ दिया है, पर उस भागको जो युद्धकी अवश्यम्भाविता और विजयकी निश्चिततासे सम्बन्धित है, मौजूद है। और मेरा विश्वास है कि उसपर स्टालिनसे लगाकर नीचे तकका हर कम्यूनिस्ट बड़ी ईमानदारी से विश्वास करता है। वे ख़याल करते हैं कि हम अपनी ओरसे यह बात समझ लें कि युद्ध अवश्यम्भावी है, इसलिये हम जो शान्तिकी बात कहते हैं, वह झूठ होनी चाहिए और विश्वशान्तिके लिए हमारी हार्दिक इच्छा उनके ख़यालसे एक ढकोसला होना चाहिए। जबतक ऐसे विचार चलते और पनपते हैं, तबतक वास्तविक शान्तिके लिए आशा करना मूर्खता है।

तब रूसके विरुद्धपूर्ण युद्ध रोकनेके लिए क्या आशा है। मेरी दृष्टिसे एकमात्र आशा यह है कि रूससे अपेक्षाकृत वास्तविक रूपमें अधिक शक्तिशाली रह। जाय, जबतक कि नवीन वातावरण परिस्थितिको पूरे तौरसे न बदल दे। विभिन्न नई बातें हैं, जो ये प्रभाव उत्पन्न कर सकती हैं। स्टालिनके निधनके बाद उनके उत्तराधिकारत्वके विषयमें विवाद हो सकता है, टिटोइज़्म फैल सकता है। मेरा विश्वास है कि स्थायी रूपसे चीन मास्कोकी आज्ञाका पालन नहीं करेगा, बशर्त्ते कि पश्चिमी राष्ट्र चीनी कम्यूनिज़्मके प्रति सहनशीलता दिखाते हैं। स्वयं रूसमें असन्तोष फैल सकता है। उक्रेनमें पहलेसे ही बहुत काफ़ी हैं। समय रूसी अफ़सरोंको सुस्त और अयोग्य बना सकता है, जैसे वे ज़ारके कालमें थे। यह लगभग निश्चित ही है कि वैज्ञानिकोंके लिए स्वतन्त्रताका अभाव दस बरसके भीतर या उसके आसपास रूसकी युद्ध मशीनको पारिभाषिक दृष्टिसे अमेरिकाकी युद्ध मशीनके मुक़ाबले उतना कारगर न बनाये। ऐसे कारणोंसे यदि युद्ध एक दशाब्दीके लिए रोका जा सकता है, तो यह सम्भव है, युद्ध कभी भी नहीं हो।

इस प्रकार हम इस नतीजेपर आते हैं कि युद्धमें निर्णायक कारण यह हुआ कि शक्ति-संचालनमें जिसकी शक्ति अधिक होगी वह ही जीतेगा। युद्धके बारेमें मैं कोई अधिकारी नहीं हूँ और यह मेरा काम भी नहीं कि मैं सैनिक अवसरोंका अनुमान लगाऊँ, पर रूसके साथ हार या जीत सैन्य-शक्तिके अतिरिक्त अन्य चीज़ोंपर भी अवलम्बित रहेगी। पश्चिमी यूरोप पहलेकी अपेक्षा अब कम्यूनिज़्मके अधिक विरुद्ध है—उसका कारण है मार्शल सहायता। चीनको हम खो चुके हैं—कम-से-कम फिलहाल, क्योंकि च्यांग काई शेकको हम बहुत दिनों तक सहायता देनेमें जुटे रहे। वर्त्तमान दक्षिणी अफ्रीका सरकारकी नीति मास्कोके लिए विशाल प्रोपेगेण्डाका मूल रखती है। फिलिस्तीनकी समस्या न सुलझनेवाली समस्या है। अगर अमेरिका और ब्रिटेन यहूदियोंका पक्ष लेते हैं, तो सम्पूर्ण अरब राष्ट्र मास्कोसे मित्र-भाव रख सकते हैं। अगर अरब और अमेरिकी यहूदी शासनके विरुद्ध वोट देते हैं और वाशिंगटनमें अर्ध प्राथक्यवादी अपना स्थान ले लेते हैं; यदि कड़ी निष्पक्षता बरती जाती है, तो प्रत्येक पक्ष दूसरेको यह समझेगा कि उसके साथ अन्यायपूर्ण पक्षपात किया गया। और उसका परिणाम होगा—दोनों प्रकारके दोष। दोनों पक्षों

इतनी क्षमता नहीं है कि युद्धमें, यदि वह निकट पूर्वमें हो तो, वे अपनेको बचा सकें।

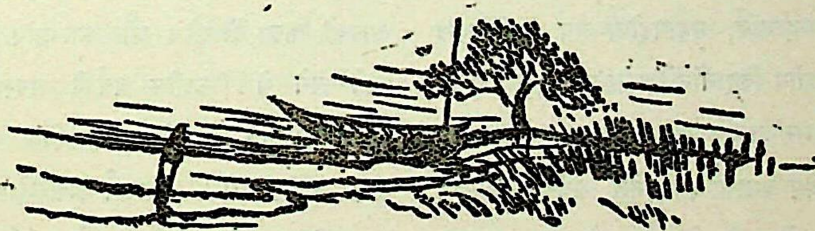
प्रोपेगेण्डाका प्रोग्राम

मेरा ख़याल है कि प्रोपेगेण्डासे बहुत कुछ सफलता मिल सकती है, उसकी अपेक्षा जो अब किया जाता है। अधीन राष्ट्रोंके क्रमिक पुनर्जीवनपर ज़ोर देना चाहिए और यही बात सोवियत् शासनके अन्तर्गत काम करनेवालोंकी बुरी अवस्थापर ज़ोर देना चाहिए। टिटोका समर्थन बड़ी दृढ़तासे होना चाहिए। इसी प्रकार पोलैण्ड, बल्गेरिया और हंगरीमें इस प्रकारके आन्दोलनोंमें दृढ़ता दिखानी चाहिए। ट्रूमैनके चौथे विन्दुपर कार्यरूप से काम होना चाहिए। पूरे तौरसे अथवा सम्भव राजस्वकी अन्तिम सीमा तक पूरा करना चाहिए। सन्दिग्ध क्षेत्रोंके वलिष्ट तथा युवक बुद्धिवादियोंके निकट इंगलैण्ड और अमेरिका में ट्रेनिंग होनी चाहिए, जिस प्रकार मास्कोमें युवक कम्यूनिस्टों की होती है। वर्त्तमान परिस्थितिमें जो हो रहा है, उसके कहीं अधिक इस बातको विधेयात्मक रूपसे स्पष्ट कर देना चाहिए कि पश्चिमी राष्ट्र क्या चाहते हैं और यदि मास्कोकी जीत होती है, तो मानव जगतके लिए क्या हो जायगा। इन तरीक़ोंमें जो धन व्यय होगा, वह सौ गुना उससे अधिक कारगर होगा, जितना कि उतना धन वास्तविक युद्धमें बादमें ख़र्च किया जायगा।

यदि युद्ध होता है, तो निस्सन्देह वास्तविक अस्त्र-शस्त्र ही अन्तमें युद्धका निर्णय करेंगे। मैं उन लोगोंसे सहमत नहीं हूँ, जो हाइड्रोजन बम बनानेके विरुद्ध हैं। युद्धके हथियारोंका समान रूपसे सीमित कर देनेकी दलीलें केवल बहसकी ख़ातिर ही टिक सकती हैं; यदि वह बहस पूर्णरूपेण पूर्णशान्तिवादकी दृष्टिसे की जाय, क्योंकि युद्धके लिए तब तक नहीं लड़ा जाता, जब तक जीतनेकी आशा न हो। मेरा ऐसा भी ख़याल है, जिनका कारण मैंने ऊपर दिया है, कि पश्चिमी देशोंकी शक्तिमें वृद्धि युद्धको कम सम्भव बनाती है। विश्वकी वर्त्तमान मनोवृत्तिमें मैं यह ख़याल नहीं करता कि एटैमिक युद्धको सीमित करनेके समझौतेसे सिवाय हानिके कुछ लाभ होगा, क्योंकि प्रत्येक पक्ष यह सोचेगा कि दूसरा पक्ष इससे बच रहा था।

आगामी युद्ध—यदि वह आता है तो—इस क्षण तक मानव जातिपर जितनी दुर्घटनाएँ घटी हैं, उन सबमें महानतम दुर्घटना होगी। उस दुर्घटनासे बढ़कर एक और बड़ी दुर्घटना, मैं सोच सकता हूँ। वह होगी समस्त जगतमें क्रैमलिनकी शक्तिका फैलाव। सौभाग्यसे एकको रोकनेके लिए वही साधन हैं, जो दूसरेको रोकनेके लिए। वे वही हैं, जो मानव-स्वतन्त्रताके पक्षकी शक्तियोंको शक्तिशाली बनाते हैं। यह दुःखकी बात है कि समस्याके गुरुत्वकी अनुभूतिके प्रति इतनी अपर्याप्तता है। मेरी इच्छा है कि कोई परम मेधावी वक्ता पश्चिमी राष्ट्रोंको, उनके ऊपर जो ख़तरा है, उसके प्रति उन्हें जाग्रत कर सके और उनके विवादोंके टुचेपनके प्रति भी उन्हें जागरूक कर सके। हम चाहे कुछ करें, हम एक सूत्रमें बँधे रहेंगे, क्योंकि समान मौत मरनेके लिए समन्वित रहनेकी अपेक्षा समान त्राणके लिए एक सूत्रमें बँधे रहना अपेक्षाकृत अच्छा है।

(यू० एन० वर्ल्डसे अनुवादित)



आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान

जगदीशकुमार सिंह

भारतीय शिक्षाके इतिहासमें बौद्धकालका अपना विशेष स्थान है। शिक्षाके क्षेत्रमें जितनी उन्नति इस कालमें हुई उतनी और कभी नहीं। नालन्दा, विक्रमशिला, तक्षशिला उदन्तपुरी, सारनाथ आदि शिक्षाके प्रमुख केन्द्र थे। इन शिक्षा-केन्द्रोंसे ज्ञानका जो उज्ज्वल प्रकाश निकलता था, उससे भारतमात्र ही आलोकित नहीं होता था, वरन् ज्ञानकी शुभ्र किरणें भारतकी प्राकृतिक सीमाएँ लाँघकर समस्त विश्वको प्रकाश-दान देती थीं। सुदूर देशोंके ज्ञानपिपासु अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करने इन शिक्षा-केन्द्रोंमें आया करते थे। आवश्यकता पड़नेपर इन विद्यालयोंके अध्यापकोंको ज्ञान-प्रचार करनेके लिए विदेशोंमें भी जाना पड़ता था। उन भारतीय ज्ञान प्रचारकोंमें प्रमुख स्थान शान्तिरक्षित, दीपंकर श्रीज्ञान और रत्नाकर शान्तिका है। शान्तिरक्षित नालन्दाके प्रधानाचार्य थे और आठवीं शताब्दीमें ज्ञान-प्रचार करनेके लिए तिब्बत गये थे। अन्तिम दोनों विद्वानोंका सम्बन्ध विक्रमशिलासे था और वे क्रमशः तिब्बत और लंका गये थे। यहाँ मैं केवल दीपंकर श्रीज्ञानके जीवनपर ही प्रकाश डालूँगा।

दीपंकर श्रीज्ञानका जन्म 'सहोर'के राज्यपरिवारमें ९८० ई० में (राहुल सांकृत्यायनके मतानुसार ९८२ ई० में) हुआ था। 'सहोर' कहाँ था, इस विषयमें देश-विदेशके विद्वानोंमें काफ़ी मतभेद रहा है। अपनी परम्परागत नीति—किसी भी विद्वान्को बंगवासी सिद्ध कर देने—के अनुसार बंगदेशीय विद्वानोंने आचार्य दीपंकर श्रीज्ञानको बंगाली बना डाला। शरत् चन्द्रदास, विनयतोष भट्टाचार्य, महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण आदि बंगदेशीय विद्वानोंने 'सहोर'को ढाका जिलेके विक्रमपुर परगनेका 'साभर' नामक स्थान निश्चय कर डाला। परन्तु इसके लिए वे यथेष्ट प्रमाण दे सकनेमें सर्वथा असमर्थ रहे। बौद्ध-साहित्यके अधिकारी विद्वान् महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने प्रामाणिक तिब्बती पुस्तकोंके आधारपर—भागलपुर जिलेका 'सबोर' नामक स्थान (जो विक्रमशिलाके पास ही है) को प्राचीन 'सहोर' सिद्ध किया है। 'सबोर'को उन्होंने 'सहोर' का ही अपभ्रंश माना है। (सबोरके पक्षमें उन्होंने जो-जो प्रमाण दिये हैं, स्थानाभावके कारण यहाँ मैं उनका उल्लेख नहीं कर सकता।)

दीपंकर श्रीज्ञान भंगलदेश (वर्त्तमान भागलपुर) के राजा धर्मराज कल्याणश्रीके पुत्र थे। दीपंकरकी माताका नाम प्रभावती था। राजा कल्याणश्रीका राजप्रासाद कांचनध्वज भंगल (पुर) में अवस्थित था, जिसका दूसरा नाम सहोर भी था। प्रासादके समीप ही, उत्तर दिशामें विक्रमलपुरी (विक्रमशिला) थी।

दीपंकर श्रीज्ञानका बचपनका नाम था चन्द्रगर्भ। समय आनेपर चन्द्रगर्भकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। बाल्यकालमें ही इन्होंने अपनी प्रतिभा तथा तीक्ष्णबुद्धिका परिचय दिया। आपकी शिक्षा भिन्न-भिन्न कालमें, विभिन्न स्थलोंपर भिन्न-भिन्न अध्यापकों द्वारा हुई थी। विशेष शिक्षा आपने सुप्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक पंडित जेतारीसे प्राप्त की थी। दीपंकर शीघ्र ही बौद्ध धर्मके हीनयान और महायान सम्प्रदायके अच्छे ज्ञाता समझे जाने लगे थे। आपके अन्यान्य शिक्षकोंमें प्रमुख स्थान अवधूतिया (सिद्ध), राहुलगुप्त, शीलरक्षित, आचार्य धर्मरक्षित आदि विद्वानोंका है। अवधूतियाके पास आपने १२ से १८ वर्षकी अवस्था तक शिक्षा प्राप्त की थी। कृष्णगिरि संघमें प्रवेश करनेपर वहाँके आचार्य श्री राहुलगुप्तने आपको शिक्षा दी थी। और अब आप 'गुह्य ज्ञान वज्र' कहे जाने लगे थे। उन्नीस वर्षकी अवस्थामें आपने उदन्तपुरी विश्वविद्यालयके तत्कालीन महासंघिक आचार्य शीलरक्षितसे दीक्षा ग्रहण की। आचार्य शीलरक्षितने 'गुह्य ज्ञान वज्र'का नाम 'दीपंकर श्रीज्ञान' रखा और इसी नामसे आप सर्वत्र विख्यात हुए। तिब्बतमें आप आचार्य अतिशाके नामसे प्रसिद्ध

हुए। ३१ वर्षकी अवस्थामें आचार्य धर्मरक्षितने आपको बौद्ध-भिक्षुओंके सर्वोच्च वर्गमें प्रविष्ट कराया। कहा जाता है कुछ काल तक आपने नारोपासे भी शिक्षा ग्रहण की थी।

भारतीय शिक्षा समाप्तकर दीपंकर पूर्वीय बौद्धोंके प्रधान केन्द्र स्वर्णद्वीपको चल पड़े। वहाँके प्रधानाध्यापक चन्द्रकीर्त्तिसे दीपंकरने गुप्त ज्ञान प्राप्त किया। बारह वर्षों तक वहाँ अध्ययन करनेके बाद ये लंका होते हुए भारत लौट आये।

स्वर्णद्वीप-प्रवासके बाद भारत लौटनेपर दीपंकर श्रीज्ञान बौद्ध-धर्मके रहस्योंके भारत-विख्यात विद्वान समझे जाने लगे थे। व्रजासन (गया) में आपने अनेक तीर्थिक अविश्वासियोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया। इससे आपकी यश-सुरभि और भी व्याप्त हो उठी।

दीपंकरकी कीर्त्ति-गाथा मगधके भाग्य-विधाता, पालवंशी सम्राट् नयपालके पास पहुँची। आपकी विद्वतापर मुग्ध होकर नयपालने आपको १०३४ या १०३८ ई० में विक्रमशिला विश्वविद्यालयके प्रधानाचार्यके पदपर प्रतिष्ठित किया। यह विश्वविद्यालय उस समय भारतवर्षका सर्वश्रेष्ठ शिक्षाकेन्द्र समझा जाता था। अधिकारी विद्वान् ही इसके अध्यापक हो सकते थे और प्रधानाचार्यकी तो बात ही अलग है। दीपंकरके समान विश्वविख्यात विद्वानको पाकर विक्रमशिला निहाल हो उठी।

विश्वविख्यात नालन्दा विश्वविद्यालयका निरीक्षण-कार्य विक्रमशिला विश्वविद्यालयके अध्यापकोंके ही अधीन रहा करता था। दीपंकरके कालमें, तीन निरीक्षकोंमें से एक यह भी थे।

दीपंकर श्रीज्ञानका प्रभाव केवल विद्वत् समाजपर ही नहीं था। देश-विदेशके सभी गण्यमान्य व्यक्ति इन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते थे। एक बार चेदिनरेश कर्णदेवके साथ मगधाधिपतियोंका युद्ध उपस्थित हुआ। रणचण्डीकी जीभ वीरोंके रक्तपानके लिए लपलपा रही थी। परन्तु मनस्वी दीपंकरके प्रयत्नसे युद्ध स्थगित हो गया और एक बहुत बड़ी विपत्ति आते-आते टल गई। इस तरह हम देखते हैं कि दीपंकरका प्रभाव सर्वव्यापी था। सभी उन्हें सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे।

अब तक दीपंकरकी ख्याति विश्वव्यापिनी हो चुकी थी। उत्तरके हिमवायु और दक्षिणके मानसून वायुको रोक लेनेवाला अटल गिरिराज हिमालय भी इनकी यश-सुरभिको फैलनेसे न रोक सका। आपकी ख्याति तत्कालीन तिब्बत सम्राट 'येशे-ओ' की कानोंमें पहुँची। तिब्बतका बौद्ध धर्म दूषित हो चला था। 'येशे-ओ' को उसे सुधारनेकी बड़ी चिन्ता थी। परन्तु उन्हें कोई सुयोग्य सम्पादक मिल नहीं रहा था। दीपंकरका पता लगते ही, उन्हें तिब्बत बुलानेके लिए वे लालायित हो उठे। शीघ्र ही उन्होंने 'नाग-चा' नामक कुशल राजदूत (पोप तुरुस दि रोमके अनुसार दूतका नाम 'गुङ-थङ-पा' था) को विक्रमशिला भेजा, दूत मार्गके कष्टोंको झेलता दीपंकर श्रीज्ञानके पास विक्रमशिला पहुँचा।

राजदूतने दीपंकर श्रीज्ञानको अपने सम्राटकी प्रार्थना सुनाई। आचार्य बड़े पेशोपेशमें पड़े, क्योंकि इस समय उनके सुदृढ़ करोंमें अनेक संस्थाओंके संचालनका उत्तरदायित्वपूर्ण सूत्र था। परन्तु स्वयं भूखे रहकर भी दूसरोंको दान देना इन्हें श्रेयस्कर प्रतीत हुआ। राजदूतको अपने चलनेकी स्वीकृति सुना दी। इन्हें कोई रोक न सका। मार्गमें पड़नेवाली बाधाओं की इन्होंने कल्पना तक न की। सम्राटने सुरक्षाके लिए तीन सौ अश्वारोहियोंको इनके साथ भेजा था।

भारतका यह नररत्न १०४२ ई० में तिब्बत सम्राट्के सम्मुख उपस्थित हुआ। तिब्बत-सम्राट्ने इस मनस्वी विद्वानका हार्दिक स्वागत किया और 'जोवो-जे'की उपाधिसे विभूषित किया। 'जोवो-जे'का अर्थ है 'प्रभुस्वामी' अथवा 'भट्टारक'। इससे स्पष्ट पता लगता है कि तिब्बतवासियोंके हृदयमें इस भारतीय मनीषीका कितना आदर था।

तिब्बत पहुँचते ही दीपंकर श्रीज्ञानने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। वे बौद्ध धर्मका परिमार्जन करनेमें लग गये। कुरीतियोंका मूलोच्छेद होने लगा। अनेक शिष्योंको आपने शिक्षा दी। आपके प्रोत्साहनसे अनेक मठोंका निर्माण हुआ। तेरह वर्षके अथक परिश्रमसे तिब्बतमें वज्रपातकी जड़ जम गई, जो आजतक लामा धर्मके रूपमें प्रचलित है।

तिब्बतके धर्म, संस्कृति, कला और साहित्यपर इस भार-

तीय विद्वान्‌का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। आपने वहाँ बौद्ध धर्मको नवजीवन प्रदान किया। वहाँकी संघ-व्यवस्था भी आपने ही सुव्यस्थित की। इन सब कारणोंसे तिब्बतवासी आज भी इनकी पूजा करते हैं। तिब्बतके धार्मिक युगके एक भागको यदि हम दीपंकर-युग कहें, तो अत्युक्ति न होगी। आज तिब्बत का कोई मठ आपके चित्रको सुरक्षित रख अपनेको सौभाग्य-शाली समझ रहा है, कोई आपके भिक्षापात्रको पाकर ही फूला नहीं समाता। कोई आपके जूतोंको ही सुरक्षित रख सकनेमें अपना गौरव समझता है, तो कोई आपकी हस्तलिखित पुस्तकें पाकर ही अपनेको धन्य समझ रहा है।

तिब्बतवासियोंके इस आचरणको देख-सुनकर प्रत्येक भारतीयको गर्व होता है कि सचमुच भारत कभी जगदगुरु था। परन्तु कितने ऐसे भारतीय हैं, जो तिब्बतमें पूजित होनेवाले भारतीय दीपंकर श्रीज्ञानका नाम भी जानते हैं? सचमुच यह कितने खेदका विषय है कि अधिकांश भारतीय उनके नाम तकसे अपरिचित हैं! दीपंकर श्रीज्ञान प्रकाण्ड विद्वान्, उच्च-कोटिके धर्मज्ञ तथा धर्म-सुधारक ही नहीं थे, वरन् वे एक धुरन्धर लेखक भी थे। तिब्बतीय भाषाके सुन्दर ज्ञाता होनेके अतिरिक्त आप तिब्बतीय बौद्ध धर्मके एक श्रेष्ठ लेखक भी थे। बहुतसे भारतीय ग्रन्थोंका आपने तिब्बतीय भाषामें अनुवाद भी किया था। मौलिक और अनुवाद, कुल मिलाकर लगभग २०० पुस्तकोंका प्रणयन आपने किया। इनमें से ८३ तो सिर्फ संस्कृत भाषामें तान्त्रिक पुस्तकें हैं। इनकी प्रमुख पुस्तकें हैं—'चर्यागिति', 'धर्मधातुदर्शनगीति', धर्म गीतिका', 'वज्रासन वज्रगीति', 'बोधिपथ प्रदीप' आदि।

आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान काफ़ी बूढ़े हो चले थे। उनकी अवस्था ७३ वर्षकी हो चुकी थी। तिब्बतमें ही लापा नगरके समीप 'नेथन'में आपने १०५४ ई० में शरीर-त्याग किया।

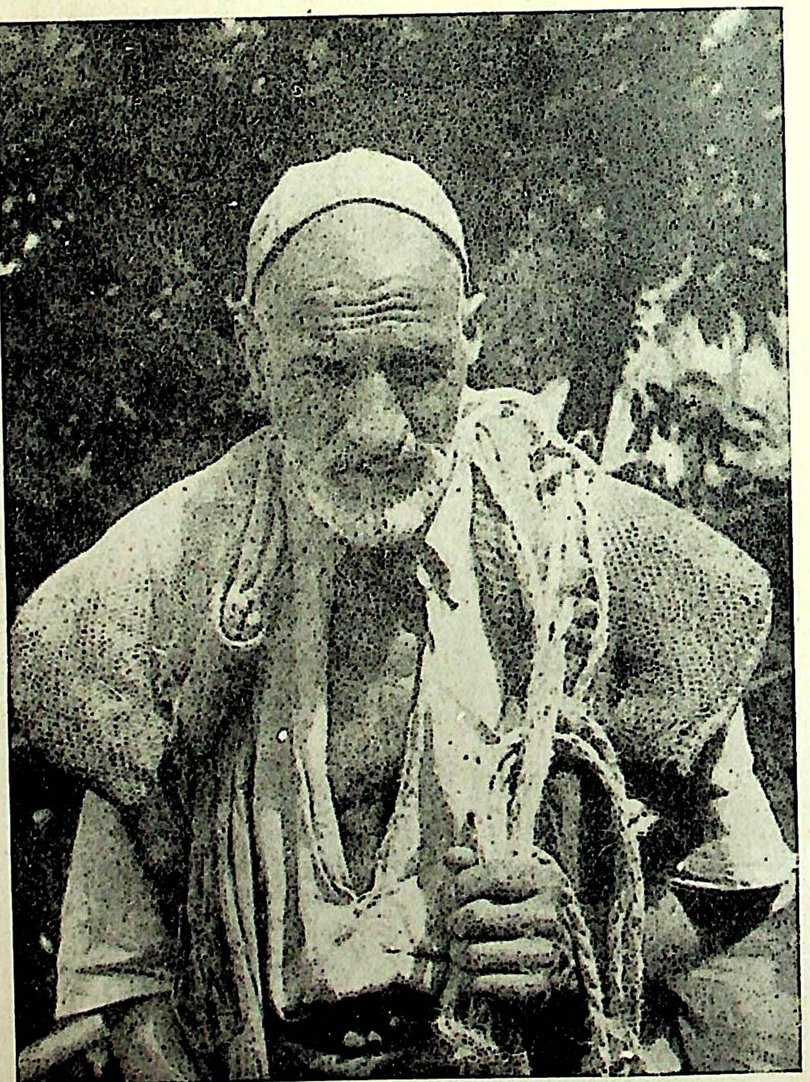
आज दीपंकर श्रीज्ञान नहीं हैं, परन्तु उनकी यश-सुरभि आज भी विक्रमशिलाके ध्वंशावशेषोंसे निकलकर समस्त विश्वको सुरभित किये देती है। उनकी आत्मा आज भी भारतीयोंको आदर्श मार्गकी ओर संकेत कर रही है। वे अमर हैं।

केला और आपका स्वास्थ्य

डा० रविकिशोर नशीने

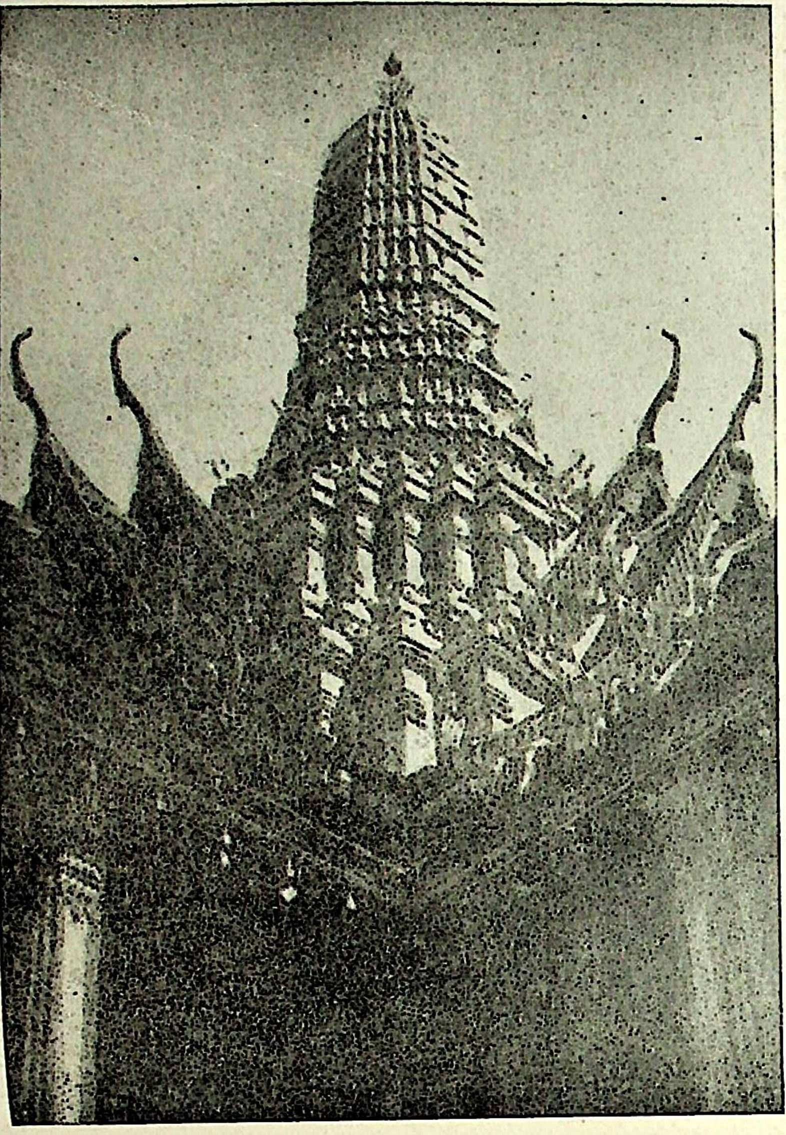
हाल ही में मैंने केलेकी उपयोगितापर अनेक साप्ताहिक पत्रोंमें एक ही प्रकारके लेख पढ़े। उक्त लेखके लेखकका नाम प्रकाशित नहीं है। आप लोगोंने भी तो किसी न किसी पत्रमें वह लेख देखा या पढ़ा होगा। वह लेख किसी अनुभवी डाक्टरका लिखा हुआ होता तो उसमें इतनी त्रुटियाँ न होतीं। कहीं-कहींपर तो निराधार बातें भी लिख दी गई हैं जिनका संशोधन आवश्यक है। डा० ऐलेक्सिस कैरोलने कहा है कि 'यदि आजके डाक्टर निकट भविष्यमें भोजन विशेषज्ञ नहीं हो जावे तो आजके भोजन-शास्त्री भविष्यके डाक्टर हो जायँगे'। मैंने यहाँ इस विषयपर जो भी बातें लिखी हैं, उन्हें एक चिकित्सककी हैसियतसे लिखा है और यह जानते हुये कि चिकित्सकका कार्य कितना महत्त्वपूर्ण रहता है कि जिसके बलपर जीवनका दारोमदार रहता है। स्थाना-भावके कारण इसमें बहुत-सी ज्ञातव्य बातें नहीं लिखी जा सकीं इसका हमें अत्यन्त खेद है। फिर भी अधिक बातोंको थोड़ेमें हमने देकर इसकी पूर्ति भी कर दी है। मैंने सत्य बातें साफ़-साफ़ खुले तौरपर लिखी हैं ताकि आम जनता उनसे अनभिज्ञ न रहे। वह अच्छी तरह समझ जाय और उत्तम रीतिसे उसका उपयोग विधिपूर्वक कर सकें। वे स्वयं निर्णय करें, किसीपर इसके लिये निर्भर न रहें।

उक्त लेखके परिचयके कालममें लिखा है—"केलेमें ए बी, सी, डी और ई बिटामिन 'पौष्टिक तत्व' होते हैं।" पर मैं यहाँ स्पष्टतया बता देना चाहता हूँ कि केलेके फलोंमें बिटामिन बी से डी या ई तक कदापि नहीं पाये जाते। बिटामिन ए की केवल झलकमात्र रहती है। बिटामिन बी, वन और सी अच्छी मात्रामें पाये जाते हैं। इसके

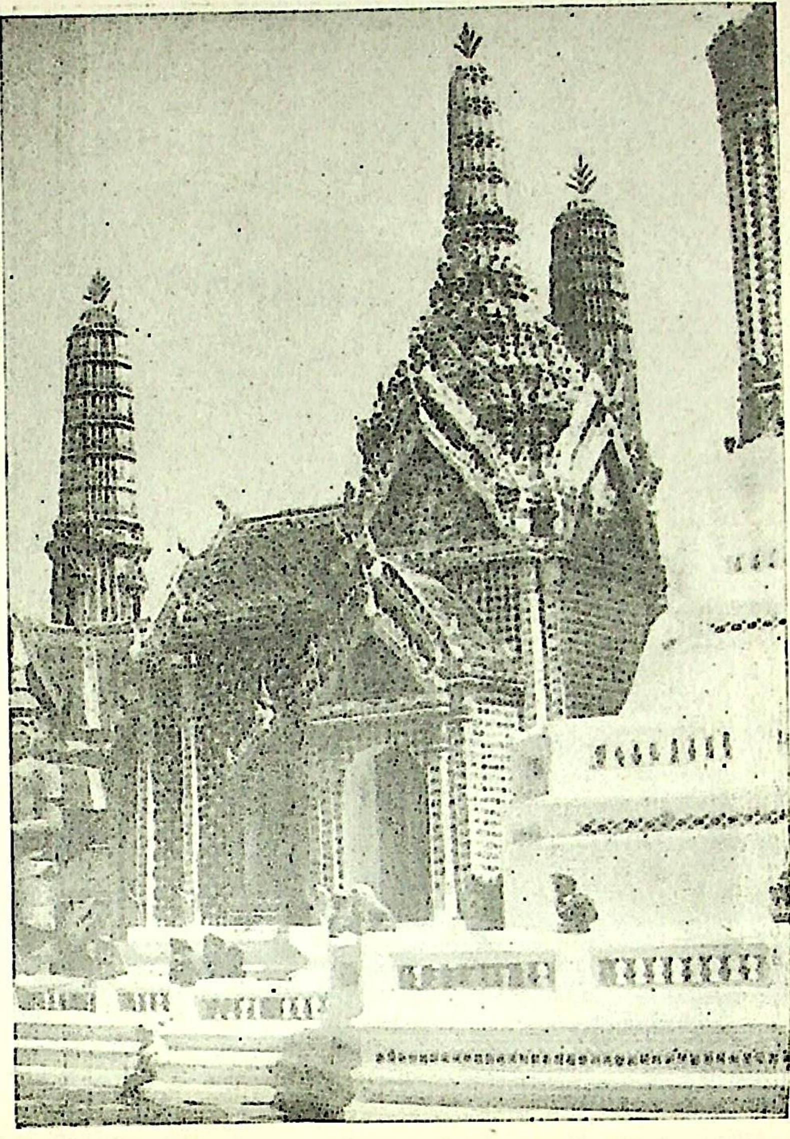


शिमलाकी ओर जाते हुए कश्मीरका श्रमिक ।

कालीबाड़ीके समक्ष पथपर अस्थायी गृह ।



बैंकाकका 'वाट फ्रा केउ" मन्दिरका एक शिखर ।



एक आधुनिक थाई मन्दिर (वाट फ्रा केउ) ।

अलावा खनिज क्षार या लवण जैसे चूना, मैग्नेसियम, फास्फोरस, लोहा, गन्धक और ताँबाका कुछ अंश भी व्याप्त रहता है।

ताजा केलेके फलमें शर्करा और श्वेतसार 'कार्बोहाइड्रेट्स' (Carbohydrates) अच्छी मात्रामें ३४·४ प्रतिशत और मांसवर्धक पदार्थ 'प्रोटीन' (Protein) मामूली मात्रामें १·३३ प्रतिशत पाया जाता है।

कार्बोहाइड्रेट्समें कार्बन हाइड्रोजन (Corbon hydrogen) और आक्सीजन (Oxygen) का सम्मिश्रण रहता है। इस पदार्थसे शरीरको गर्मी और शक्ति मिलती है, इसी पदार्थसे मनुष्य जी सकता है। हमारे भोजनमें इसकी मात्रा अक्सर जैसा कि हमारे घरोंमें होता है अधिक मात्रामें होती है। इसका परिणाम होता है—खासकर 'मधुमेह' (Diabetes) बदहजमी, वायुका प्रकोप, अतिसार, जोड़ोंमें दर्द आदि भी होते हैं। उदाहरण इस पदार्थका गुड़, चीनी आदि हैं।

प्रोटीनमें कार्बन हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन (Nitrogen) और गन्धक (Sulphur) का सम्मिश्रण रहता है। प्रोटीनसे सेलों (Cells) और तन्तुओंको बनाना, उनके बिगड़ जानेपर उसे पुनः अच्छी अवस्थामें ला देना होता है। इस प्रोटीनके सम्बन्धमें यह बात स्मरण रखने की है कि हमारे भोजनमें इसकी मात्रा न कम ही हो या न ज़्यादा ही हो। बराबर रहनी चाहिए।

स्वास्थ्यके लिए 'केलेके फल'के ही भोजनकी प्रधानता दी जाय, तो यह भोजन 'गरिष्ठ' होगा। क्योंकि यह फल ६५ प्रतिशत जल अपनेमें संचित रखता है। मानलो कि छिलका उतारा हुआ केला औसत वजनमें पाँच औंसका हो, तो प्रतिदिन हमें ऐसे २५ फलका उपयोग शरीरमें शक्ति उत्पन्न करनेके लिए और ऐसे ५० फल शरीरमें प्रोटीन पूर्तिके लिए उपयोगमें लाने होंगे। उक्त लेखमें बतलाया गया है कि "प्रति दिन एक केलेकी व्यवस्था आसानीसे कर सकते हैं" तब फिर आप ही बताइये कि जब केवल एक ही केलेकी व्यवस्था की जायगी, तो शरीर और मस्तिष्कका क्या हाल होगा। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिन व्यक्तियोंने केलेका उपयोग खानेके लिए किया है, उनके उदर हदसे ज़्यादा बढ़ गये और वे काफ़ी मोटे हो गये थे।

कच्चे केलेके फल सुखा तथा आटा बनाकर कुछ लोग इस्तेमाल करते हैं। कहीं-कहीं तो इस आटेका व्यापार भी होता है। इस केलेके आटेकी समानता हम गेहूँके आटेसे कदापि नहीं कर सकते। इसे अच्छी तरह समझनेके लिए नीचे लिखी तालिकाको मनन करें :—

पदार्थ	केलेका आटा	गेहूँका आटा
शर्करा	८०,० प्रतिशत	७६,४ प्रतिशत
प्रोटीन	४,० "	७,६ "
चरबी	०,५ "	१,४ "
खनिज लवण	०,५ "	०,५ "
गीलेपनकी झलक	१३,० "	१३,८ "

इससे साफ़ प्रतीत होता है कि केलेके आटेके ये भोजनकी अपेक्षा कार्बोहइड्रेट्स और खनिज लवण बहुत ही अच्छी मात्रामें मिलता है, पर खेद है कि प्रोटीन जिसकी शरीरमें इतनी ही आवश्यकता है जितनी कार्बोहाइड्रेट्सकी, उतनी ही कम मात्रामें मिलता है। फिर भला हम केवल केलेके आटेको ही भोजनका मुख्य साधन कैसे बना सकते हैं।

साधारण तौरपर काम करनेवाले आदमीके लिए लगभग २ छटाँक प्रोटीन, ६ छटाक कार्बोहाइड्रेट्स, डेढ़ छटाँक चरबी या चिकनाई और १ छटाँकसे कुछ कम खनिज लवणकी आवश्यकता होती है।

"एक जर्मन डाक्टरने बहुत-से रोग फलाहारसे ठीक किये हैं। वह तो यहाँ तक कहता है कि किसी देशका रहनेवाला अपने देशके फलोंसे वे सब अंश प्राप्त कर सकता है, जो उसके शरीरके लिए आवश्यक हैं।"

"मैं भी ६ माससे फलाहारपर रहा हूँ और इस कालमें मेरे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों ही अच्छे थे। मैं उन दिनोंमें बीमार भी नहीं पड़ा।"

तरकारियोंमें यह पुष्टिकारक पदार्थ नहीं है, जो फलोंमें है, क्योंकि तरकारियोंका पुष्टिकारक अंश पकानेमें निकल जाता है और बिना पकाये तरकारियाँ खाई नहीं जा सकतीं।

"अन्नोंमें सबसे अच्छी चीज गेहूँ है। इसमें पुष्टिकारक अंश उचित संख्यामें मौजूद हैं। मनुष्य केवल गेहूँ खाकर जीवित रह सकता है—महात्मा गांधी।"

केलेमें पाये जानेवाले विटामिनोंके संक्षिप्त मुख्य कार्य

विटामिन 'ए' वह खाद्योच्च पदार्थ है, जो शरीरके बाढ़के लिए जिम्मेदार है। यह साधारणतः स्वास्थ्यको बनाये रखने और शरीरको बीमारीसे बचनेके योग्य बनानेमें सहायक होती है। इसके मिलनेसे पाचनशक्ति ठीक रहती है, भूख लगती और आयु बढ़ती है। इसकी कमी होना चर्म रोगोंको निमन्त्रण देना है।

विटामिन 'बी' वनका नाम "एण्टीवेरीवेरी विटामिन" भी है। यह स्नायु संस्थानको ठीक हालतमें रखती है। हृदय और मस्तिष्कको इस पौष्टिक तत्वकी आवश्यकता रहती है। इस तत्वका कार्य कार्बोहाइड्रेट्का शरीरमें उत्तम रीतिसे वितरित करना है।

विटामिन 'सी' दाँतोंके बनने और दाँत और हड्डियोंको ठीक हालतमें रखनेमें सहायक होती है। इसकी कमीसे स्करभी नामक रोग हो जाता है। पायोरिया, रक्तका जाना, हृदयकी धड़कन, जल्दी-जल्दी साँस लेना, वजनका घटना, शारीरिक क्षीणता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। रक्त, पित्त, चर्म और खूनकी बीमारियोंसे यह बचाती है।

केलेमें पाये जानेवाले खनिज लवणोंके संक्षिप्त मुख्य कार्य

'चूना' यह शरीरका मुख्य तत्व है। शरीरके कड़े हिस्सोंको बनानेमें सहायता पहुँचाता है जैसे दाँत, हड्डियाँ आदि। यदि भोजनमें चूनेकी कमी हो तो शिशुकी बाढ़ रुक जावेगी। उनकी हड्डियोंमें बढ़नेमें ताकत न रहेगी। वे या तो बहुत नरम हो जावेंगी या शीघ्र टूटनेवाली होंगी। चूनेकी कमीके कारण घाव जल्द आराम नहीं होते। हाजमा बिगड़ जाता है। रक्तकी कमी 'अमीनिया' हो जाती है। हृदयकी गतिमें अन्तर हो जाता है। स्नायुसंस्था बड़ी कमजोर हो जाती है। मस्तिष्क किसी भी कार्यके लायक नहीं रहता।

'मैगनेसियम'की कमीसे शरीर और मस्तिष्कमें विकार उत्पन्न होने लगता है जैसे सिर दर्द, आँखोंकी कमजोरी, आँखोंसे दूरका न दिखाई देना। इस लवणकी कमीसे बार-बार सर्दी लगना, नाक बहना, हाजमा बिगड़ जाना और कब्जियत होती है।

'फास्फोरस' शरीरके स्नायु मण्डल एवं मस्तिष्कपर ही आधिपत्य रखता है। इसकी कमीसे मानसिक अधो 'मेण्टल ब्रेकडाउन' और शरीरमें शिथिलता आ जाती है। इस लवणकी कमीसे स्त्रियोंमें मासिक धर्ममें गड़बड़ी, "खास मासिक स्रावका अधिक मात्रामें अनेक दिनों तक जाते रहना" हो जाती है।

'लोहा' शरीरके पोषक एवं सुचारु रूपसे संचालनमें प्र स्थान रखता है। शरीरकी ऊष्णताको बढ़ाता है और उस संचालन करता है। शरीर इस क्षारके कारण शक्तिमान, प्र और सुखदायक प्रतीत होता है। इसकी कमीसे छूत बीमारीका लगना, रातमें नींद न आना, रातमें पसीना आ आदि हो जाते हैं।

'गन्धक' रक्तको शुद्ध करता है। इसकी कमीसे अर्थरा टिस (Arthritis) रोग हो जाता है। नाखूनमें वह अवल आ जाती है, जब वे जरासे जोरमें टूटने लगते हैं।

'ताँबा'के बिना लोहा अपना कार्य शरीरमें संचाल करनेमें असमर्थ होता है। लाल रक्तकण (Red blood corpulse) की तादाद बढ़ानेमें सहायक होता है।

फल कब खाये जाँय ?

अनुसंधान द्वारा यह प्रमाणित किया गया है कि यदि 'फल' मुख्य भोजन "चाहे दोप्रहरका भोजन हो या रात्रिका के कम-से-कम १ घण्टा पहले खाये जायँ, तो आमाशयसे लेकर बड़ी आँतोंमें पाये जानेवाले 'बैक्टिरिया' नामक कीटाणु आमा शयसे कोलनकी ओर चले जाते हैं और अन्तमें मर जाते हैं हाँ, यदि मुख्य भोजन केवल केला और दूधका ही हुआ तो वे कीटाणु नाममात्रके लिए ही मर सकेंगे।

ग्रीक सेनेटोरियमके प्रधान डाक्टर जे० एच० केला (Dr. J. H. Kellogy) ने यह प्रयोग किया है कि दस व्यक्तियों को दस सप्ताह तक दो केले दोप्रहरके भोजनके डेढ़ घण्टे पूर्व दो केले शामके भोजनके डेढ़ घण्टे पूर्व और दो केले रात्रि सोनेसे पहले सेवन कराया गया। उनके स्वास्थ्यका सूक्ष्मता अवलोकन किया गया। पर उन दसों व्यक्तियोंमें से किसी भी किसी नई व्याधिके लक्षणोंका उल्लेख नहीं किया।

तीन व्यक्ति, जिन्हें पहलेसे ही कब्ज़ियतकी शिकायत थी, छः या आठ दिनके पश्चात् उनकी कब्ज़ियत जाती रही और उनका शौच नियमानुसार प्रतिदिन बड़ी तादादमें और नर्म होता रहा। चार व्यक्तियोंको वायु प्रकोप 'गैस फारमेशन' प्रथम तीन दिन तक रहता रहा। बादको कोई लक्षण नहीं। तीन मास बाद यह देखा गया कि दस व्यक्तियोंमें छः व्यक्तियों ने पूर्ववत् केले खाना जारी रखा, क्योंकि इससे उनकी शारीरिक और मानसिक थकावट बहुत ही घट गई थी और उनका शौच क्रम प्रतिदिन नियमानुसार हो गया था।

डा० काम्सटाक, एड्डी और अन्य अनुसन्धानाचार्य इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि प्रधान भोजनोंके पहले या दो प्रधान भोजनके बीचमें, यदि दूध और केलेका सम्मिश्रण उपयोगमें लाया जाय, तो भोजनकी सामग्री बिना बढ़ाये या बिना तीसरा भोजन किये, हम शारीरिक एवं मानसिक शक्तियोंको बढ़ा सकते हैं।

डा० एम० एल० पाण्डेय, जो तपेदिकके प्राकृतिक इलाजके लिए प्रसिद्ध हैं, लिखते हैं, "क्षयके रोगीको यदि दस्त आते हों, तो खूब पके हुए केले देना चाहिए...किन्तु तेज़ ज्वरमें केला कदापि न देना चाहिए"।

सारांश

"केला ठण्डा और तर होता है। कफ पैदा करता है। शक्तिदायक खाद्य पदार्थ है। शक्ति स्फूर्त्ति और रक्त पैदा करता है। स्वप्नदोष और प्रमेहमें भी लाभदायक है। किसी-किसीको कुछ कब्ज़ भी करता है और किसी-किसीके कब्ज़को दूर भी करता है। वे व्यक्ति जिनकी पाचन-शक्ति क्षीण है, इस फलका उपयोग ज़्यादा तादादमें न करें। केलेके ऊपर यदि शुद्ध दूध सेवन किया जाय, तो वह स्त्रियोंको श्वेत प्रदर रोगके लिए उपयोगी है। गर्मी और रक्तके दोषोंको दूर करता है। पुरानी पेचिश, दस्त और संग्रहणीके लिए अनुभूत है। सीमाप्रान्तके केले लम्बे, पीले, लेसदार और दुष्प्राप्य होते हैं"।

केले खानेके बाद यदि गरिष्ठताका अनुभव हो, तो इलायची खा लेनेपर वह दूर हो जाती है।

पक्षियोंका आवागमन

त्रिलोकचन्द्र मज़ूचुरिया

आमके वृक्षोंपर बैठी हुई कोयलकी पुकार वसन्त ऋतुमें मनको अत्यन्त भाती है, परन्तु वह कोयलकी कू-कू की आवाज़ फिर कहाँ चली जाती है।

पक्षियोंका आना-जाना अत्यन्त प्राचीन समयसे विख्यात है। महाकवि तुलसीदासकी चौपाइयोंमें उसका प्रमाण मिलता है। कहा जाता है कि भारतीय महीनोंके कुछ नाम प्राचीन पक्षियोंके आने-जानेपर निर्भर थे। पक्षियोंका देशान्तर टिड्डी दलके उड़ानसे अत्यन्त विपरीत है। टिड्डी-दल एक स्थानसे उड़ते हैं और मार्गकी वनस्पतिको नष्ट कर देते हैं, परन्तु उनका दल कभी भी जहाँसे उड़ता है, वहाँ नहीं पहुँचता। पर पक्षी जो एक मौसममें दूसरे स्थानको चले जाते हैं, वे फिर अपने पुराने घोंसलोंमें सुहावनी ऋतुके आनेपर आ जाते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि सभी पक्षी एक ऋतुमें दूसरे स्थानोंको चले जाते हैं। कुछ ऐसे भी पक्षी होते हैं, जो सर्वदा एक ही स्थानपर रहते हैं।

कुछ पक्षी ग्रीष्म ऋतुमें किसी देशको चले जाते हैं और वहाँ रहकर फिर शरद ऋतुमें दूसरे स्थानोंको प्रस्थान कर देते हैं। ऐसे पक्षी बुलबुल अबाबील एवं कोयल हैं। ये पक्षी बड़े-बड़े समुदायोंमें पाये जाते हैं। अन्य प्रकारके पक्षी शरद ऋतुमें दूसरे स्थानोंको चले जाते हैं और ठण्डमें वहाँ रहकर वसन्त ऋतुमें फिर उत्तरकी ओर चले जाते हैं। भारतवर्षमें सितम्बरके महीनेमें खंजन, लावा व अन्य चहचहानेवाले पक्षी

और कुछ सारस, बत्तख शीतकालमें भी आते हैं। परन्तु कुछ चिड़ियाँ एक गाँवसे दूसरे गाँवमें तथा कभी-कभी एक मुहल्लेसे दूसरे मुहल्लेमें चली जाती हैं। कुछ पक्षी एक वर्षमें दो बार दिखाई देते हैं, जब कि वे एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाते हैं।

इस प्रकार पक्षियोंको आवागमनके आधारपर कई भागोंमें विभाजन किया जा सकता है। पक्षियोंके आवागमनका मुख्य उद्देश्य उदर-पूर्तिकी समस्या है। यदि पक्षी एक ही स्थानपर रहें, तो उस स्थानके सभी कीड़े एवं अन्न समाप्त हो जायँ। जब पक्षी दूसरे स्थानपर कुछ समयके लिए चले जाते हैं, तब वहाँ कीड़े बढ़ जाते हैं और भोजनकी समस्या पक्षियोंके लौटनेपर नहीं रहती। परन्तु केवल यही नहीं, पक्षियोंके सामने दूसरी समस्या मौसमकी होती है। कुछ पक्षी शीतकालमें अपने आपको जीवित नहीं रख सकते हैं। इस कारण वे गर्म देशोंको प्रस्थान कर देते हैं तथा अन्य पक्षी गर्म देशोंसे ठंडे देशोंको चले जाते हैं। पक्षियोंकी अधिक संख्या आवागमनसे नष्ट हो जाती है। इस प्रकार पक्षियोंको महान् कठिनाइयोंके सामने अपने जीवन-निर्वाह करने पड़ते हैं। वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध कर दिया है कि पक्षियोंकी सफर करनेकी महान् आकांक्षा परम्परागत है। प्रकृति उनको आवागमनकी शक्ति एवं योग्यता देती है, जिसके कारण वे सफर करनेके लिए व्याकुल हो उठते हैं। मेथ्यू आरनोल्डने भी अपनी कविताओंमें पक्षियोंकी आवागमनकी आतुरताको वर्णन किया है। पक्षियोंका आवागमन एक अनोखी प्रणाली है, जिसमें नाना प्रकारकी विचित्रताएँ हैं। देशान्तरका समय अत्यन्त निश्चय रहता है, यद्यपि उनको लम्बा सफर खराब मौसममें करना पड़ता है। इसका एकमात्र उदाहरण अबाबील है, जो ठीक अप्रैलके मध्यमें इंगलैण्ड पहुँच जाता है। यह एक आश्चर्यजनक घटना है, जब कि नर-पक्षी सर्वप्रथम दूसरे स्थानोंको जानेके लिए उड़ान प्रारम्भ करते हैं। बादमें उसके मादा-पक्षी और सबसे बादमें बच्चे उड़ते हैं। परन्तु जब यह पक्षियोंका समुदाय लौटता है, तब सबसे पहले बच्चे होते हैं तथा उनके पीछे मादा और नर-पक्षी होते हैं। ... कहा जाता है कि बच्चे उसी स्थानसे होकर आते हैं, जहाँ उनके पूर्वज आये थे। वे उन्हीं स्थानोंपर विश्राम ... करते हैं।

वैज्ञानिकोंकी दृष्टिसे पक्षी इतना लम्बा सफर नदियों ... बड़े-बड़े पहाड़ोंकी सहायतासे करते हैं। परन्तु प्रोफे... न्यूटनके अनुसार पक्षी हजारों मील समुद्रके ऊपरसे केव... दिशाओंके ऐन्द्रिय ज्ञान द्वारा ही करते हैं। पक्षी जब ए... स्थानसे दूसरे स्थानको जाते हैं, तब कुछ तो नीचे ही रहते हैं, परन्तु अन्य अधिक ऊँचाईपर उड़ते हैं। प्राचीन काल... पक्षियोंके उड़ानकी ऊँचाई पूर्णरूपसे मालूम नहीं थी। पर... वायुयानके अनुसंधानके उपरान्त यह ज्ञात हुआ है कि अधि... तर पक्षी देशान्तरके समय १३०० फीटकी निचाईपर रहते एवं ३००० फीटकी ऊँचाईपर बहुत कम पाये जाते हैं। वायु... यानके चालकोंने अबाबीलको १००० फीटकी ऊँचाईपर औ... सारसोंको ४५०० फीटकी ऊँचाईपर तथा कबूतरोंको ५०० फी... की ऊँचाईपर उड़ते हुए देखा है। कई पक्षियोंके देशान्तर... समयकी गति अत्यन्त तीव्र होती है। वे एक मील... मिनटमें उड़ते हैं। यदि हवा उनके उड़ानके विरुद्ध न... होती, तो कभी-कभी पक्षी एक मील एक मिनटमें जाते हैं... जब वायुका प्रभाव उनके उड़ानके विरुद्ध होता है, तब उन... गतिमें बहुत कमी हो जाती है। कुछ पक्षी दिनमें देशान्तर... प्रस्थान करते हैं तथा कुछ रातके समय। वैज्ञानिकोंने ... दर्शन-यन्त्र द्वारा पक्षियोंको चन्द्रमाके सामनेसे उड़ते हुए दे... है। इस प्रकार पक्षियोंका आवागमन एक महान् एवं रह... पूर्ण घटना है। पक्षी अपने आपको बिना देशान्तर या आ... गमनके जीवित नहीं रख सकते हैं। प्राणी-विद्याके म... विशेषज्ञ डा० वेलासने बताया है कि जो पक्षी आवागमन ... करते, वे जीवित नहीं रह सकते। एक दिन होगा, जिस... उनका पृथ्वीपर कोई भी चिह्न शेष नहीं रहेगा।

इस प्रकार पक्षियोंका आवागमन या देशांतर एक म... एवं रहस्यपूर्ण प्रणाली है।

गुलामी

ख़लील जिब्रान

मनुष्य जीवनके गुलाम हैं और यह गुलामी ही उनके दिनों को दुःख और अति क्लेशसे परिपूर्ण कर देती है तथा उनकी रात्रोंमें आँसू और सन्तापकी बाढ़ लाती है।

मेरे जन्म-दिनको सात सहस्त्र वर्ष व्यतीत हो गये और उसी दिनसे मैं जिन्दगीके गुलामोंको अपनी भारी बेड़ियाँ घसीटते हुए देख रहा हूँ।

मैं पृथ्वीके पूर्व और पश्चिममें घूमा हूँ और जीवनके प्रकाश तथा छायामें भटकता फिरा हूँ। मैंने मनुष्यताके जलूसको प्रकाशसे अन्धकारमें जाते हुए देखा है। और तब हरएक मनुष्य, गर्व-रहित आत्माओं द्वारा, जो कि गुलामीके जुएके भारसे झुकी जा रही थी, नर्कमें खींच लाया गया था। बलवान, बन्दी बनाकर गर्व-च्युत कर दिये गये और भक्तगण घुटनोंपर झुके मूर्त्ति-पूजामें लीन हैं। मैंने बेबीलोनसे काहिरा तक और इन्दौरसे बगदाद तक (गुलाम) मनुष्यका पीछा किया और रेतपर उसकी बेड़ियोंके चिह्नोंको ध्यानसे देखा है। मैंने चंचल समयकी वेदनामय प्रतिध्वनियोंको अनन्त भूस्थल और घाटियों द्वारा दुहराये जाते सुना है।

मैंने, मन्दिरों और वेदियोंको देखा है और मैं महलोंमें गया हूँ तथा सिंहासनोंके सम्मुख बैठा हूँ। मैंने शिष्योंको शिल्पकारकी गुलामी करते, शिल्पकारको स्वामीके लिए गुलामी करते, स्वामीको सैनिकके लिए गुलामी करते, सैनिकको शासक (राज्य संचालक) के लिए गुलामी करते, शासकको राजाके लिए गुलामी करते, राजाको पुजारीके लिए गुलामी करते और पुजारीको मूर्त्तिके लिए गुलामी करते देखा है।......और मूर्त्ति क्या है? केवल शैतान द्वारा सजायी गई मिट्टी है और (जो कि) खोपड़ियोंकी पहाड़ीपर निर्माणित की गई है।

मैं धनिकोंके महलोंमें गया हूँ और निर्धन झोपड़ियोंको भी देखा हूँ। मैंने, अपनी माके स्तनोंसे गुलामीका दूध चूसते हुए बच्चेको और वर्णमाला द्वारा आज्ञानुकूलताका पाठ पढ़ते हुए बालकोंको देखा है।

नव-युवतियाँ मर्यादा और धर्मशीलताके वस्त्र पहनती हैं और पत्नियाँ शुश्रूषा तथा क़ानूनी संकोचकी शय्यापर नयनोंमें नीर भरकर सोती रहती हैं।

मैं समयके साथ, कांगोके किनारेसे यूफ़रत्सके तट तक, नाइलके मुखसे सीरियाके मैदानों तक, ऐथेन्सकी रंगभूमिसे रोमके चर्च तक, क़स्तुनतुनियाँकी गन्दी गलियोंसे अलैक्जैण्ड्रिआके महलों तक, रहा हूँ।...पर मैंने गुलामीको सभी जगह, गर्वयुक्त, अज्ञानके जलूसमें घूमते हुए पाया है।

मैंने युवकों और युवतियोंको अपना तारुण्य मूर्त्ति (गुलामी) के पदोंपर त्यागते हुए, यह कहते हुए कि वह ईश्वर है, और उसके क़दमोंपर मदिरा तथा इत्र बहाते हुए, यह कहकर कि वह महारानी है, उसकी मूर्त्तिके सम्मुख सुगन्धित धूप जलाते हुए, यह कहकर कि वह भविष्यवक्ता है, उसके सामने घुटने टेक कर भक्ति करते हुए, यह कहकर कि वह धर्म है, उसके लिए युद्ध करते हुए और प्राण त्यागते हुए, यह कहकर कि वह स्वदेश-भक्ति है, उसकी इच्छापर अपनेको न्यौछावर करते हुए, यह कहकर कि वह पृथ्वीपर ईश्वरकी छाया है, उसके लिए घरों तथा संस्थाओंको नष्ट-भ्रष्ट करते तथा उजाड़ते हुए, यह कहकर कि वह बन्धुत्व है, उसके लिए लड़ते-झगड़ते और चोरी तथा परिश्रम करते हुए, यह कहकर कि वही भाग्य और वही सुख है और उसके लिए हत्या करते हुए, यह कहकर कि वह समानता है, देखा है।

उसके भिन्न नाम हैं, परन्तु वास्तवमें (वह) एक ही है। उसके विभिन्न आकार हैं, पर वह एक ही तत्वोंसे बनी है। वास्तवमें वह एक अमर व्यथा है, जिसे कि हरएक पीढ़ी अपने उत्तराधिकारियोंको वसीयतमें दे जाती है।

मैंने अन्धी गुलामीको देखा, जो कि मनुष्योंके वर्त्तमानको उनके पुरखोंके विगत-कालसे संयुक्त करती है और नये शरीरोंमें पुरातन-कालकी आत्माएँ बसा कर उन्हें, उनकी परम्परागत प्रथाओंको स्वीकार करनेके लिए मजबूर करती है।

मैंने मूक गुलामीको देखा, जो कि एक मनुष्यके जीवनको उस पत्नीसे बाँधे रहती है, जिससे वह घृणा करता है। और एक स्त्रीके शरीरको एक घृणित पतिकी शय्यापर निवासित रखती है और दोनोंके जीवनको आध्यात्मिक रूपसे नष्ट कर देती है।

मैंने बहरी गुलामीको देखा, जो कि आत्मा और हृदयका गला घोंट देती है। और मनुष्यको केवल ध्वनिकी एक खोखली प्रतिध्वनिमें तथा शरीरकी एक दीन छायामें परिवर्तित कर देती है।

मैंने लँगड़ी गुलामीको देखा, जो कि मनुष्यकी गर्दनको निर्दय शासकके शासनके तले (झुकाये) रखती है और शक्तिशाली शरीरों तथा निर्बल मस्तिष्कोंको लोभके पुत्रोंको सौंप देती है कि वे उनकी शक्तिके औजार बनकर प्रयोगमें आयँ।

मैंने कुरूप गुलामीको देखा, जो कि विस्तीर्ण आकाशसे, अभागे घरानोंमें, शिशु-आत्माके रूपमें उतरती है, जहाँ कि आवश्यकता अज्ञानताके समीप रहती है और दीनता निराशाके निकट वास करती है और बच्चे दुखियोंकी तरह बढ़ते और अपराधियोंकी भाँति (जीवित) रहते तथा तिरस्कृत और अस्वीकृत सत्ताकी भाँति मरते हैं।

मैंने धूर्त्त गुलामीको देखा, जो कि वस्तुओंको उनके नामों के अतिरिक्त दूसरे नामोंसे पुकारती है।...(जो) धूर्त्तताको एक बुद्धिमत्ता और शून्यताको एक ज्ञान और निर्बलताको कोमलता तथा भीरुताको कड़ा प्रतिषेध कहती है।

मैंने ऐंठी हुई गुलामीको देखा, जिसके कारण निर्बलकी जिह्वाएँ काँपती हुई हिलती (बोलती) हैं और अपने विचारोंके अतिरिक्त बोलती हैं और वह अपनी प्रतिज्ञाओंको पूर्ण करनेमें असमर्थ रहता है और केवल एक खाली बोरेकी भाँति रह जाता है, जिसे एक बच्चा भी उठाकर लटका सकता है।

मैंने झुकी हुई गुलामीको देखा, जो कि एक राष्ट्रको दूसरे राष्ट्रके क़ानून और क़ायदोंके माननेके लिए प्रवृत्त करती है। और (यह) झुकाव दिन-पर-दिन बढ़ता ही जाता है।

मैंने अनन्त गुलामीको देखा, जो कि राजतन्त्रके पुत्रोंको सम्राटका मुकुट पहनाती है और योग्यतापर ध्यान नहीं देती।

मैंने काली गुलामीको देखा, जो कि अपराधीके पुत्रोंको लज्जा और कलंकसे दाग देती है। और भावनाकी गुलामीको भी देखा, जो दुष्ट शक्तियोंके क्रमको तथा छुआछूतके रोगोंको बनाये रखती है।

जब मैं दुराचारी सदियोंका पीछा करते हुए थक जाता हूँ और पथरीले मनुष्योंके जलूसको देखते-देखते शिथिल पड़ जाता हूँ, तब मैं जीवनकी छायाकी घाटीके एकान्तमें विचरता रहता हूँ, जहाँ कि विगत-काल अपनेको पापमें छिपानेका प्रयास करता है और भविष्यकी आत्मा अपनेको तहकर आराम करती है; परन्तु अत्यधिक दूरीमें। वहाँ रक्तकी धारामें तथा आँसुओंकी नदीमें, जो कि विषैले सर्पकी भाँति रेंगती और अपराधीके स्वप्नोंके समान ऐंठती है, मैं गुलामीके प्रेतोंकी भयानक फुसफुसाहट सुनता हूँ तथा शून्यको तकता रहता हूँ।

जब कि मध्यरात्रि आई और प्रेतात्माएँ छिपे स्थानोंसे बाहर निकल आईं, तब मैंने एक निष्कपट (नारी) आत्माको देखा। (यह) प्रेतात्मा अपने घुटनोंपर झुकी हुई थी और चन्द्रमाकी ओर टकटकी लगाये देख रही थी। मैं उसके पास पहुँचकर बोला, "तुम्हारा क्या नाम है ?"

"मेरा नाम आज़ादी है," एक मृतककी यह डरावनी छाया बोली।

तब मैंने पूछा, "तुम्हारे बच्चे कहाँ हैं ?"

"आँसू भरकर क्षीण तथा हाँफती हुई आज़ादी बोली, "एक (बच्चे) की फाँसीपर लटककर मृत्यु हो गई, दूसरा पागल होकर मर गया और तीसरा अभी तक उत्पन्न ही नहीं हुआ।"

वह बचकर आगे बढ़ गई और आगे भी बोली, परन्तु मेरी आँखोंकी धुन्ध और हृदयकी चीत्कारोंने मुझे देखने या सुनने नहीं दिया।

—अनु० नरेन्द्र चौधरी

'अवहट्ठ' कौन भाषा थी ?

विपिन विहारी त्रिवेदी

इधर एक प्रश्न देखनेमें आया कि—"अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओंके बीचकी सम्भावित कड़ी 'अवहट्ट' भाषामें जैसे रणमल्लछन्द, सीताहरण, कीचकवध आदिकी गुजरातमें, ज्ञानेश्वरी आदिकी महाराष्ट्रमें, सिद्धवाणी आदिकी बङ्गालमें, कीर्तिलता आदि की मिथिलामें रचना हुई, वैसे ही यदि पृथ्वीराज रासोकी रचना भी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्रान्तीय प्रयोग मिश्रित 'अवहट्ट'में ही मानी जाय, तो भाषा विषयक विषमताका समाधान हो सकता है ?"

इस प्रश्नका अर्थ यह होता है कि अपभ्रंश साहित्यके बाद आधुनिक भारतीय भाषाओंमें जो प्रारम्भिक रचनाएँ हुई हैं, उन्हें 'अवहट्ट' भाषाकी रचना कहा जाय और इस 'अवहट्ट' भाषाका रूप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्रान्तीय प्रयोग मिश्रित समझा जाय।

जहाँ तक आधुनिक भारतीय भाषाओं हिन्दी, गुजराती, महाराष्ट्री, बङ्गला आदिकी प्रारम्भिक रचनाओंका प्रश्न है, निःसन्देह उनमें पूर्ववर्त्ती और परवर्त्ती भाषाओंका अभिसन्धिकालीन रूप देखा जाता है और उस भाषाको कोई नाम देनेका प्रयत्न किया जाना सम्भव है; परन्तु उसे 'अवहट्ट' नाम दे डालना सर्वथा अनुपयुक्त होगा, क्योंकि 'अवहट्ठ' या 'अवहट्ट' अपभ्रंश शब्दका ही एक विकृत रूप है और इसका प्रयोग छठी शताब्दीमें ही होने लगा था। देखिये Dr. G. V. Tagre M. A., Ph. D. (Bombay 1946) अपनी प्रकाशित (1948) थीसिस "The Historical Grammar of Apabhramsa" पृष्ठ ४ पर लिखते हैं—

'From the 6th century A. D. the term Apabhramsa or Avahmsa or Avahatta designated a literary dialect in the works of grammarians and rhetoricians. Chanda is the first Prakrit Grammarian to recognise it as such and the copper plate of Dharasena II of Valabhi is the first inscribed record of this term in this Connotation."

संस्कृत 'अपभ्रष्ट' शब्दसे 'अवहट्ठ' शब्दका विकास (या विकार) समझनेके लिए हमें कतिपय प्राकृतोंकी शरण लेनी पड़ेगी। अर्द्धमागधी प्राकृतमें दो स्वरोंके मध्यमें स्थित प के स्थानपर सर्वत्र व ही होता है; यथा—पापक> पावग, संलपित> संलवित, सोपचार> सोवयार, अतिपात> अतिवात, उपनीत> उवणीय, अध्युपपन्न> अज्झोववण्ण, उपगूढ> उवगूढ, आधिपत्य> आहेवच्च, तपक> तवय, व्यपरोपित> ववरोपित आदि। मागधी प्राकृतमें भी मध्यवर्त्ती प का कहीं-कहीं और कहीं-कहीं लोप होता है; यथा—शपथ> सवह, शाप> साव, उपसर्ग> उवसग्ग, रिपु> रिउ, कपि> कइ आदि। महाराष्ट्री प्राकृतमें ष्ट के स्थानपर ट्ठ हो जाता है: यथा—मुष्टि> मुट्ठि, पुष्ट> पुट्ठ, काष्ठ> कट्ठ, इष्ट> इट्ठ आदि। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि 'अपभ्रष्ट' शब्दके 'प' के स्थानपर अर्द्धमागधी और मागधीके नियमोंके अनुसार 'व' हुआ और 'ष्ट' के स्थानपर महाराष्ट्रीके नियमके अनुसार 'ट्ठ' हुआ तथा 'भ' के स्थानपर 'ह' होकर 'अवहट्ठ' शब्दका रूप स्थित हुआ। इसी भाँति संस्कृत 'अपभ्रंश' शब्दसे 'अवहंस' की निष्पत्ति समझ लेनी चाहिए। इस व्युत्पत्तिके साथ-ही-साथ हमें यह स्मरण रखना उचित होगा कि प्राकृत काल (६०० ई० पू०—६०० ई०; H. T. Sheth) में ही 'अवहट्ठ' (या 'अवहट्ट') शब्द विकसित हो चुका था तथा साहित्यमें स्थान भी पा चुका था।

अनुमान है कि १४वीं शताब्दीके मैथिल कवि विद्यापति की पूर्वी अपभ्रंश रचना 'कीर्तिलता'में आये निम्न पदके कारण हिन्दी साहित्यिक जगतमें उपर्युक्त प्रश्नों सदृश्य अनर्गल संशयोंका जन्म हुआ—

सक्कय वाणी वहुअ (न) भावइ,
पाउँअ रसको मम्म न पावइ।
देसिल वअना सब जन मिट्ठा,
तँ तैसन जम्पओ अवहट्ठा॥

डा० बाबूराम सक्सेनाने स्वसंपादित कीर्तिलता पृष्ठ ७ में इसका अर्थ इस प्रकार किया है—

"संस्कृत भाषा बहुत लोगोंको (दुर्गम होनेके कारण) भली नहीं लगती, प्राकृत भाषा रसका मर्म नहीं पाती। देशी भाषा (वचन) सब लोगोंको मीठी लगती है, इसीसे अवहट्ट (अपभ्रंश) में रचना करता हूँ।"

स्पष्ट है कि डा० सक्सेना देशी भाषा और अपभ्रंशमें भेद नहीं मान रहे हैं। परन्तु पं० रामचन्द्र शुक्ल अपने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' संस्करण २००३ वि०, पृष्ठ ५ में इस प्रकरणपर इस प्रकार लिखते हैं—

"देसिल वअना सब जन मिट्ठा, तें तैसन जंपओं अवहट्ठा॥

अर्थात् देशीभाषा (बोलचालकी भाषा) सबको मीठी लगती है, इससे वैसा ही अपभ्रंश (देशी भाषा मिला हुआ) मैं कहता हूँ। विद्यापतिने अपभ्रंशसे भिन्न प्रचलित बोलचालकी भाषाको 'देशी भाषा' कहा है।"

अस्तु शुक्लजीने अपभ्रंश और देशी-भाषामें भिन्नता मान ली।

श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरीने सम्भवतः शुक्लजी और डा० सक्सेनाके विचारोंकी आधारशिलापर संशयात्मक रूपसे खड़े होकर अपनी नवीन कल्पना जोड़ी। अपने संकलन 'विद्यापतिकी पदावली' परिचय, पृ० ११ पर आपने लिखा है—

"कीर्तिलता कविकी तरुण वयसकी रचना है। इसकी भाषा संस्कृत-प्राकृत मिश्रित मैथिली है। कविने इस भाषाका नामकरण 'अवहट्ट' भाषा किया है। कीर्तिलताके प्रथम पल्लवमें कविने स्वयं कहा है—

देसिल बअना सब जन मिट्ठा।
ते तैसन जम्पओं अवहट्ठा॥

देशी भाषा सबको मीठी लगती है, यही जानकर मैंने अवहट्ठ भाषामें इसकी रचना की है।"

बेनीपुरीजीने अपनी उक्ति 'संस्कृत-प्राकृत मिश्रित मैथिली विद्यापतिने अवहट्ट नाम दिया'का कोई आधार नहीं बतलाया जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि अपभ्रंश शब्द दो विकृत रूप अवहंश और अवहट्ट छठी ईसवी शताब्दी ही प्रचलित थे। विद्यापतिके विवेचित पदमें 'अवहट्ट' का किसी नवीन भाषाके नामकरणसे सम्बन्धित नहीं, वरन् अपभ्रंशका ही द्योतक है। पण्डित विद्यापति अवहट्ट शब्द प्रचार और उसके अर्थसे भलीभाँति परिचित रहे होंगे, इस विपरीत विश्वास करनेका साहस निराधार ही कैसे किया सकता है।

Dr. Jules Bloch ने भी इस पदके अर्थोंमें शंका की थी, जिसका उचित समाधान डा० हीरालाल जैनने कर दिया था। इस प्रसंगके लिए डा० जैन सम्पादित 'पाहुड दोहा' भूमिका पृष्ठ ३३–४६ द्रष्टव्य होगी। विवेचित पदका उक्त अर्थ संगत है कि "देशी वचन सब जनोंको मीठे होते हैं, इस लिए उसी अपभ्रंशमें रचना करता हूँ।"

देशी वचन (देसिल वयना) से किसी आधुनिक भारतीय भाषाका अर्थ समझ लेना सरासर अन्याय है। नाट्य-शास्त्र १७ वें अध्यायमें आचार्य भरतने प्राकृत व देशी भाषाओं ऊपर प्रकाश डालते हुए तीन प्रकारके शब्दों—समान, विभ्रष्ट और देशीका प्रचलित होना स्वीकार किया है (समानशब्दं विभ्रष्टं देशीमतमथापि वा ॥१४।३॥)। और जिसे भरत मुनिने देशी भाषा या विभाषा कहा है, उसीको आचार्य दण्डी अपने काव्यादर्शमें अपभ्रंश कहा है—

तदेतद्वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुराप्ताश्चतुर्विधम्॥१।३२॥

भामह, रुद्रट, राजशेखर, नमिसाधु, वाग्भटने अपभ्रंश ही देशी भाषा कहा है। चण्ड, हेमचन्द्र प्रभृत वैयाकरणोंने देश भाषाको अपभ्रंश कहा और उसे अर्द्धमागधी, शौरसेनी महाराष्ट्री प्राकृतों सदृश एक प्राकृत मान लिया। आचार्य हेमचन्द्रने तो 'देशी नाम-माला' नामक एक कोष भी रच डाला।

१० वीं शताब्दीके कवि स्वयम्भूने अपने अपभ्रंश रामायण काव्य 'पउमचरिउ'की भाषाको देशी भाषा कहा—

वद्धमाए - मुह - कुहर - विणिग्गय
राम कहा - णइ एह कयागय।
दीह समास पवाहालंकिय
सक्कय - पायय पुलिणालंकिय।
देसीभासा - उभय तडुज्जल
कवि दुक्कर घणसद्दसिलायल।
अत्थबहल कल्लोलाणिट्ठिय
आसामय - समऊह - परिट्ठिय।
एह राम कह - सरि सोहंती
गणहरदेवहं दिट्ठ वहंती॥

सुपासणाह चरिउ (१० वीं शती) के रचयिता पद्मदेवने भी पूर्ववर्त्ती अपभ्रंश काव्यको देशीभाषाकी रचनायें कहकर उल्लेख किया है—

वायरणु देसिसद्दत्थगाढ
छंदालंकार विसाल पोढ।
ससमय - परसमय - वियारसहिय
अवसद्दवाय दूरेण रहिय॥
जइ एवमाइ - बहुलक्खणेहिं।
इह विरइय कव्व वियक्खणेहिं।
ता इयरकईयणसंकिएहिं
पयडिव्वउ किं अप्पउ ण तेहिं॥

णेमिणाह चरिउके कर्त्ता लक्ष्मणदेव भी अपने ग्रन्थकी भाषाको देशी भाषा कहते हैं :—

ण समाणमि छन्दु न बन्धभेउ
णउ हीणाहिउ मन्तासमेउ।
णउ सक्कउ पायउ देस - भास
णउ सद्दु वण्णु जाणमि समास।

इसी प्रकार कवि पादलिप्तने अपनी तरङ्गवती कथाको देशी-वचन कहा है—

पालित्तएण रइया वित्थरओ तह य देसिवयणेहिं।
नामेण तरंगवई कहा विचित्ता य विउला य॥

इन अवतरणोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि वैयाकरण जिसे अपभ्रंश कहते थे, उसमें रचना करनेवाले कवि उसे देशीभाषा कहते थे। पतंजलि आदिने अपभ्रंश नाम अनाहत अर्थोंमें दिया था, क्योंकि वे अपभ्रंश या देश भाषाको संस्कृतका विकास नहीं, वरन् विकार समझते थे (प्राकृत वैयाकरणोंने उसे भाषाका लक्षण-द्योतक मानकर स्वीकार कर लिया था)। अनुमान है कि इस अवज्ञाभावको लक्षित करके ही अपभ्रंश रचनाओंके कवियोंने अपनी कृतियोंकी भाषाको अपभ्रंशके स्थानपर देशी भाषा कहना अच्छा समझा होगा।

बोधोपलब्धि

'मुकुर'

परमानन्द - लहर लहराती मेरे इन नूतन प्राणोंमें,
बाँध नहीं सकता हूँ जिसको लय - छन्दों - तालों - गानोंमें।
दूर हुईं सारी प्रवृत्तियाँ और बुद्धिका नाश हो गया,
'इदं' और 'अनिदं' दोनोंके स्पष्ट ज्ञानका ह्रास हो गया।
नहीं दिखायी देता कुछ भी और नहीं कुछ सुन पाता हूँ,
शून्य व्योमकी नीरवतामें निज हृदयस्पन्दन पाता हूँ।

वह संसार मिटा हिमकण-सा, लगता है जैसे सपना हो,
देख रहा था जिसे कहाँ वह? जैसे यह न नयन अपना हो।
इस आनन्द-उदधि लहरोंमें डूब रहा पर जान न पाता,
स्वयं वही या बदल गया हूँ, अपनेको पहचान न पाता!
सीमाहीन अमृत-सागर यह मैं जिसमें कर रहा रमण हूँ,
यह अक्षर है ज्योति चतुर्दिक, स्वयं ज्योतिका बना गगन हूँ!

एकांकी नाटक—

शरणार्थी

प्रताप मगनलाल

(रातका प्रथमार्ध। आसमानपर चन्द्रमा खिल उठा है, और दूरसे किसीके मुरली बजानेकी मधुर आवाज़ आती है।)

प्रताप—कितना सुहावना है यह समय, और कितना मनोहर यह दृश्य...प्रतीत होता है, मानों विश्वके सौन्दर्यका सम्मेलन यहाँ भरा हुआ हो, और इस अलौकिक सौन्दर्यके उपासक हम दोनोंके सिवाय कोई और है ही नहीं। वह देखो, उस पहाड़के पीछे, थाली जैसा सुनहरा चाँद किस तरह नई नवेली दुलहनकी भाँति अपना तेजस्वी मुखड़ा, बादलोंमें छिपा रहा है। कितना सुन्दर नृत्य है वह! और उस नृत्यके साथ प्रकृतिने भी किस तरह मुरली बजानेवालेको मदहोश करके छोड़ा है, जो वह भी मुरलीके मधुर स्वरोंसे उस नृत्यको और भी संजीवन बना रहा है। आ—हा...हा...हा! कुदरतने भी कैसा रंग जमाया है! कैसा विलक्षण है यह! कैसी अद्‌भुतता! मगर,...अरे...तुम्हारी आँखोंमें आँसू! ये आँसू किस लिए? यहाँ तुम्हारा जी नहीं लगता क्या?—बहती हुई नदीका यह कलरव, आसमानपरसे सुधाकी वर्षा बरसानेवाले चन्द्रका यह नृत्य और उस नृत्यको संजीवन बनानेवाली मुरलीकी यह मद-भरी तान—ऐसे स्वर्गीय सौन्दर्यके प्रति आज तुम्हें इतनी नफ़रत क्यों, चन्द्रिके? बोलो चन्द्रिके? आज तुम इतनी गुमसुम, इतनी उदास और इतनी बेचैन क्यों? मुझसे कोई अपराध तो नहीं हो गया? और अगर हुआ भी हो तो मुझे...।

चन्द्रिका—(बीच ही में बोल उठती है)...नहीं, नहीं, ऐसा न कहिये डाक्टर बाबू! न तो आपने कोई अपराध किया है और न तो मुझे इस स्वर्गीय सौन्दर्यसे ही नफ़रत है। अपराध तो मुझ ही से हुआ है और क्षमा भी मुझीको माँगनी चाहिए, (कहते-कहते चन्द्रिकाका गला रुँध जाता है)।

प्रताप—(अचम्भेमें पड़कर) अपराध? और वह भी तुमने किया है? कैसी बहकी-बहकी बातें करती हो आज चन्द्रिके? आज तुम्हें हो ही क्या गया है? स्वास्थ्य तो ठीक है न? देखूँ तो तुम्हारी नब्ज़?

चन्द्रिका—(दो क़दम पीछे हटकर जवाब देती है) नहीं, नहीं, नब्ज़ देखनेकी कोई जरूरत नहीं। मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। मुझे कुछ भी नहीं हुआ है। आप निश्चिन्त रहें डाक्टर बाबू!

प्रताप—(कृत्रिम हास्य हँसकर) वा...ह, यह भी कैसा विचित्र ढोंग है तुम्हारा। एक तरफ़से कहती हो कि "मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ, और दूसरी तरफ़ रोती भी जा रही हो—सच-सच बताओ चन्द्रिके, आज क्या बात है, जो तुम मुझसे दूर-दूर भागती जा रही हो,—बोलो चन्द्रिके—बोलो! क्या मुझपर कोई सन्देह हो रहा है?

चन्द्रिका—(रोनी-सी आवाज़में जवाब देती है)—ऐसा न कहिये डाक्टर बाबू, ऐसा न कहिये। ऐसी जली-कटी बातें सुनाकर कटे हुए पर नमक न छिड़कें आप। मुझे आपपर कोई सन्देह नहीं। आप तो मेरे देवता हैं, मेरे गुरु हैं, मेरे सर्वस्व हैं—किन्तु...सोच रही हूँ...।

प्रताप—(उत्सुक होकर) क्या सोचती हो? बोलो।

चन्द्रिका—(जरा काँपती हुई आवाज़में)—सोचती हूँ कि कहीं हमारा यह स्वप्न, स्वप्न ही बनकर न रह जाय, हमारे वे वादे, हमारी वे प्रतिज्ञाएँ और हमारे वे इकरार, कहीं स्वप्नके वादे बनकर न रह जायँ। मुझे डर है कि अन्य उपन्यासके नायक तथा नायिकाकी भाँति हमें भी कहीं एक दूसरेकी याद-ही-यादमें घुट-घुटकर मरना न पड़े। (कुछ देर तक रुककर फिर बोलती है)—कहाँ आप एक डाक्टर—ईश्वरके ही अवतार—और कहाँ मैं एक अनाथ शरणार्थिनी! कहाँ आपके राजमहलोंकी जगमगाहट और कहाँ हमारी

इस 'रेफ्यूजी कैम्प'का आलोक। कहाँ आपकी प्रतिष्ठा और कहाँ हमारी। हम शरणार्थी रहे जैसे भूले-भटके पथिक, और आप ?—आप ठहरे हम सभी बेबसोंके देवता—इतना महान् अन्तर हम दोनोंमें होते हुए भी, क्या आपके पिताजी मुझे अपने घरकी बहू बनानेको राजी हो जायँगे ? क्या वे इस बात की स्वीकृति देंगे भी ? कहिये डाक्टर बाबू, क्या ऐसा होना कभी सम्भव है ?

प्रताप—(सन्तोषकी साँस लेकर) ब...स ? इतनी-सी बात और...इतनी बड़ी चिन्ता ? मैं तो सचमुच ही डर गया था कि कहीं...हूँ...हूँ...हूँ। खैर, अच्छा ही हुआ जो तुमने सच-सच बात कह दी। (कुछ क्षण रुककर)—देखो चन्द्रिके, हमें यह न भूल जाना चाहिए कि यह जमाना बड़े ही जोरोंसे बदलता जा रहा है, और बदलते हुए इस जमानेके साथ हमें भी बदलना होगा। प्रेमका ही रोना रोने बैठनेसे अब कुछ भी न होगा। हाथ-पर-हाथ धरे बैठकर, ईश्वरका नाम रटकर, अब हमारा कोई काम न हो सकेगा। अब तो हमें कमर कसकर तथा अपनी प्यारी ज़िन्दगीकी परवाह न करके, काम करना होगा। हमें तो बहुत कुछ करना है। सिर्फ करना ही है कहकर कुछ भी न होने पायगा। हमें तो यह 'बहुत कुछ' जो है उसे करके ही दिखलाना होगा। रोना-धोना अब हमें शोभा नहीं देता, चन्द्रिके। अब तो हमें पत्थरका कलेजा करके, सारी मुसीबतें, सारी यातनाएँ तथा सारे संकटोंका मुकाबला बड़ी ही बहादुरीसे करना होगा। हमारी पस्त-हिम्मती, हमारी कायरता और हमारी भीरुताको किसी एक कोनेमें रखकर, हमें न केवल हमारे पड़ोसी तथा गृहपरिवारके लोगोंकी सेवा करनी है, बल्कि हमें तो सारे विश्व-भरमें बापूजी का "शान्ति तथा एकता" के पैगाम प्रसारित करना है। जिन-जिन स्थानोंमें अन्याय ही ने न्यायका रूप धारण किया है, जहाँ घोरतम पशुताका अब भी राज चल रहा है, और जहाँ आज भी भेद-भाव, छुआछूत तथा ऊँच-नीचकी दुर्गन्ध फैलती जा रही है—वैसे सभी स्थानोंपर जाकर, इन्सानियतके कर्त्तव्य, फर्ज तथा क़ानूनका सच्चा सबक सिखाना है। उन भूले हुए राहगीरोंको हमें यथार्थ मार्ग दिखाना है। रोने-पीटनेका समय अब हमारे पास रहा ही कहाँ ? हमें तो अब उस मंजिल तकका रास्ता तय करना है, जो दूर और बहुत ही दूर है। हमें अब यह न देखना चाहिए कि हम अपनी उस मंजिल तक पहुँच भी सकते हैं या अपने कार्यको अधूरा ही रखकर चल बसते हैं।

हमें तो केवल यही देखना है कि उस मंजिल तक पहुँचनेके लिए कितने क़दम हम आगे बढ़ सकते हैं। आखिरी दमतक हमें चलते ही रहना होगा। चन्द्रिके, बस यही हमारा धर्म है ! यही हमारा मजहब और यही हमारा कर्त्तव्य भी है।... अब रहा मेरी तुम्हारी शादीका सवाल ! वह भी आसान है चन्द्रिके, जैसा कि मैं तुम्हें पहलेसे ही कहता आया हूँ। मैंने तुम्हें अपनी साथिन बनानेको इसलिये नहीं चुना है कि तुम केवल सुन्दर हो, मगर तुम्हें मेरे सुख-दुःखका हिस्सेदार बनानेमें मुझे इसलिये आनन्द हो रहा है कि तुम मेरी बनकर, मेरे ही नहीं बल्कि हम दोनोंके कर्त्तव्य पूरा करनेके लिए उसमें हाथ बँटा सको। तुम इस कार्यके क़ाबिल हो और इसीलिये मैं तुम्हें अपनी बनानेमें कोई खतरा नहीं देखता। जबतक कि जात-पाँतका मामला है, तुम्हें इस विषयको लेकर भी ज़्यादा चिन्तित न होना चाहिए। तुम तो जानती ही हो चन्द्रिके, कि मैं जात-पाँत मानता ही नहीं। जब हम—मानव—सिर्फ एक ही मिट्टीके पुतले हैं, तो फिर इसमें सन्देह ही क्या है कि हम एक नहीं। कौन है वह महामूर्ख, जो हम दोनोंके परस्पर मिलने तथा शादी करनेमें सिर्फ इसलिये रुकावट ला सकता है कि हम दोनों भिन्न-भिन्न जातिके हैं, भिन्न-भिन्न देश तथा भिन्न-भिन्न समाजके हैं ? (जरा दूरीपरसे किसीके गला साफ करनेकी आवाज आती है और प्रतापकी बात वहीं रुक जाती है।)

चन्द्रिका—(जरा घबराकर) शायद कोई इस तरफ आ रहा है। चलो भाग चलें यहाँसे...।

प्रताप—इस तरफ तो कोई नहीं आ रहा है चन्द्रिके ! हाँ, उस तरफसे अवश्य कोई जा रहा है। किन्तु चन्द्रिके, आज तुम इतनी विचलित-सी क्यों दीख पड़ती हो ? बात-बातमें इस तरह घबरा जानेका कोई मतलब ? क्या अब भी कोई शंका रह गई है ?—बोलो चन्द्रिके !

चन्द्रिका—(बेचैन-सी होकर ही जवाब देती है) न जाने आज मेरा दिल इतना क्यों धड़कने लगा है। बस, यों ही कुछ डर-सा लग रहा है।

प्रताप—(व्याकुल होकर) दिल घबरा रहा है ? तो जाओ, जाकर आराम करो। चन्द्रिके, अरे बातों-ही-बातों में तो बिलकुल ही यह भूल गया कि आज रातको पिताजीने किसी आवश्यक कामके लिए मुझे जरा जल्दी बुलाया था। रातके ग्यारह बज गये हैं और अभी तक मैं तो यहाँ ही पड़ा हूँ और पिताजी तो बेचारे घरपर लाल-पीले होते होंगे।

चन्द्रिका—बड़े अकड़ू प्रतीत होते हैं आपके पिताजी !

प्रताप—अरे कुछ पूछो मत, वे तो लकीरके फकीर हैं—लकीरके फकीर।

चन्द्रिका—(चिन्तित होकर) तब तो......

प्रताप—(ढाढ़स बँधाते हुए)—तुम तो नाहक ही घबराने लगती हो, चन्द्रिके !

चन्द्रिके—(बड़ी ही प्रसन्न हो उठती है) 'स...च'

प्रताप—(उसीका अनुसरण करता है) सच नहीं तो झूठ थोड़े ही कह रहा हूँ। अरे...रे इसमें शरमा जानेकी बात ही क्या है ? देखो तो सही, शर्मके मारे तुम्हारा सारा मुखड़ा गुलाब कि भाँति सूर्ख हो गया है। लेकिन आज तो यह गुलाब कुम्हलाया हुआ-सा जान पड़ रहा है। देखना, कल कैसा खिल उठता है, क्यों ?

चन्द्रिका—(और भी अधिक शरमा जाती है)—जाइये, आप भी बड़े शरारती हैं।

प्रताप—(माज़ाकमें) हाँ भाई, अब तो हम भी शरारती बनने लगे।...और तुम ?—तुम तो रही हमारे देव-मन्दिरकी इदेष्टवी, क्यों ?

चन्द्रिका—(शरमाती हुई) फिर कर दीं शरारतें शुरू ? जाइये, मैं आपसे नहीं बोलूँगी।

प्रताप—(मज़ाकमें) इतना गुस्सा न करो देवीजी ! मुझ जैसे आवारेको रूठी हुई देवीको मनाना तक नहीं आता।... हँसो...ज़रा हँस दो न, चन्द्रिके...जोरसे...ज़रा और भी जोरसे, ताकि तुम्हारी इस हँसीकी मधुर ध्वनि उस वक्त तक मेरे कानोंमें गूँजती रहे, जबतक कि हमारा फिरसे संयोग न हो। हँसो और खूब हँसो...।

(प्रताप तथा चन्द्रिका दोनों हँस देते हैं)।

प्रताप—अच्छा, तो देवीजी, अब हमें इजाजत दीजिये-नमस्ते ! (चन्द्रिका भी अभिवादन करती है—नमस्ते)

- २ -

चन्द्रिका—(कुछ घबरायी हुई-सी) क्या यही डाक्टर प्रताप बाबूका घर है न ?

सुरेश—(प्रतापके बड़े भाई) प्रतापका नहीं, बल्कि कहो कि उसके बापका घर है यह। (सुरेश कड़ककर जवाब देता है।)

चन्द्रिका—(वैसी ही घबराहटमें) जी, माफ कीजियेगा मेरा मतलब था कि डा० प्रताप बाबू क्या इसी मकान रहते हैं ?

सुरेश—(तंग होते हुए-से) हाँ भाई, हाँ। एक दफा तो दिया। जल्दी कहो क्या काम है ?

चन्द्रिका—(वैसी ही घबराहटमें) किसनचन्दका दम घुट रहा है, इसलिये उनको बुलाने आई हूँ।

सुरेश—(व्यंग हँसी हँसकर) किसनचन्दका दम घुट रहा है या खुद तुम्हारा दम, अपने डा० जीको मिलनेके लिए घुट रहा है।

चन्द्रिका—(और भी ज़्यादा घबरा जाती है) जी, आप क्या कह रहे हैं ?...वहाँ किसनचन्द भैयाकी जान जा रही है और आपको यहाँ मजाक सूझ रहा है ?...मैं आपके पैरों पड़ती हूँ। फौरन बतलाइये कि वे कहाँ हैं।

सुरेश—अरे वा...ह ! बड़ी ही चुस्त लड़की जान पड़ती हो और बातचीत भी तो ऐसी करती हो गोया कुछ जानती ही नहीं। मगर, अजी देवीजी, मैं पूछता हूँ कि उस जंगली डाक्टरमें क्या सुर्खाबका पर लगा है, जो उसीके पीछे पड़ी रहती हो। हमपर भी कभी-कभी दया करती रहो न। (कहकर वह चन्द्रिकाका हाथ पकड़ लेता है।)

चन्द्रिका—(अपनेको छुड़ानेका प्रयत्न करते हुए) छोड़ो-छोड़ो मुझे...बदतमीज कहींके...छोड़ दो, मुझे।

सुरेश—(अपनी दानवता प्रदर्शित करते हुए) अजी देवीजी, मेरी ओर भी तो ज़रा देखो सही। आखिर मुझमें क्या चीज नहीं है, जो कि तुमने उस उल्लू डाक्टरमें देख ली है। मैं भी तो नवजवान हूँ, काफ़ी खूबसूरत भी हूँ और पैसेकी तो कोई कमी नहीं। देखो, मेरी ओर भी तो देखो, प्यारी!

चन्द्रिका—(काँपते हुए) शर्म नहीं आती तुम्हें किसी पराई युवतीको छेड़ते हुए!

सुरेश—शर्मकी क्या बात है प्रिये? हम पैदा ही तो मौज करनेके लिए हुए हैं, तो फिर मौज क्यों न उड़ायें? आओ प्रिये, हम तुम दोनों मिलकर...।

चन्द्रिका—(सुरेशको जोरसे एक तमाचा लगा देती है) नीच कहींके! तुम्हें अपनी मा-बहन भी है या नहीं? (छूट जाती है।)

सुरेश—(क्रोधमें) क्या इतनी हिम्मत तेरी, कि तू मेरे घरमें आकर मुझपर ही हाथ उठाये। (यह कहकर वह चान्द्रिका को फिर पकड़ लेना चाहता है, मगर चन्द्रिका एक-दो क़दम पीछे हटते हुए चीख मारती है। इतनेमें ही सुरेशके पिता कमरेमें प्रवेश करते हुए बोल उठते हैं।)

पिता—क्या माजरा है यहाँ? कौन है यह लड़की?

सुरेश—(अपनेको सँभालकर) देखिये न पिताजी, कल तक तो यह प्रतापको बनाती रही और आज अब मुझे भी फुसलाने आई है। कहती है कि चलो हम दोनों भाग जायँ यहाँसे। और जब मैंने डाँटकर दूर हटनेको कहा तो लगी चिल्लाने हरामजादी!

पिता—(नयनोंमें से अंगार बरसाते हुए) क्यों री छोकरी, क्या तेरा ही नाम चन्द्रिका है न? तूने ही मेरे बेटे प्रतापको फुसलाकर पागल बनाकर छोड़ा है न? अरी कुलटा, तू अपनी माकी कोखमें ही क्यों न मर गई। क्यों यहाँ आकर और मेरे बेटेको अपने जालमें फुसलाकर उसपर कलंक चढ़ा रही हो। अरी ओ पिशाचिनी, अब भी तू क्यों मर नहीं जाती!

चन्द्रिका—(काँपते हुए) किन्तु पिताजी, आप मेरी भी तो सुनें...।

पिता—(बीच ही में बोल उठते हैं) खबरदार यदि मुझे पिताजी कहा तो! जाने कितने ही बापोंकी बेटी होगी। और कहती है पिताजी। शर्म नहीं आती तुझे किसी भद्र पुरुषके सामने बोलते हुए? दूर हट यहाँसे, अरी ओ कलंकिनी दूर हट, वरना यहाँपर ही तेरा गला घोंटकर तुझे खत्म कर दूँगा। भाग जा यहाँसे...जा...भाग...

(प्रतापका प्रवेश)

प्रताप (कुछ भी न समझकर)—क्या बात है पिताजी? यह झगड़ा किसलिए? अ...रे...चन्द्रिका,...तु...म और यहाँ? पिताजी, बात क्या है, साफ़-साफ़ बता दीजिये। मैं नहीं चाहता कि किसी अनाथ लड़कीपर इस तरह जुल्म किया जाय।

सुरेश—(पिताजीका पक्ष लेते हुए) देखा न पिताजी, इस कलंकिनीने कैसा जादू चला दिया है प्रतापपर?

पिता—(वैसे ही क्रोधमें) चुप रहो तुम सुरेश! और प्रताप, मैं पूछता हूँ कि यह कैसा खेल है तुम्हारा? तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुम भी एक पढ़े-लिखे डाक्टर होकर अपने ही पिताके सामने जबान चलाते हो? शर्म नहीं आती तुम्हें ऐसा करते हुए? क्या इसीलिये मैंने तुम्हें डाक्टर बनने तककी शिक्षा दी कि तुम अपने ही पिताके सामने जबान चलाओ? क्या इसीलिये मैंने हजारों रुपये बहाकर तुम्हें इनसान कहने योग्य बनाया कि तुम मेरे ही साथ बेइमानी करके सारे हिन्दू समाजकी आँखोंमें मुझे गिरा दो? मेरी आयु, मेरी इज़्ज़त और मेरे नामपर पानी फेर दो? (कुछ देर तक रुककर)—प्रताप, यह मत भूल जाना कि तुम उस श्री पंडित आचार्यके पुत्र हो, जिनकी उपस्थितिसे ही क्या, बल्कि जिनका नाम सुनकर ही सारा हिन्दू-समाज डोल उठता है! तुम उस बापके बेटे हो, जिसका एक-एक शब्द हिन्दू-समाज सर आँखोंपर कबूल करता है! और तुम उस बापके भी बेटे हो, जो तुम-जैसे हजारों आवारा छोकरे खरीद सकता है। यह मत समझो प्रताप कि डाक्टरीकी डिग्री हासिल करके तुम आसमानसे कोई तारा तोड़ लाये हो और न यह भी समझो कि इसी डिग्रीके कारण तुम्हारा नाम रोशन होता जा रहा है। नहीं, तुम्हारा यदि

ऐसा ही समझना है कि तुम अपने ही कार्यके प्रभावसे सभीके सामने मान तथा आदर पा रहे हो, तो तुम्हारी बड़ी ही ग़लती हो रही है। तुम्हें यह न भूल जाना चाहिए, प्रताप, कि यह सब इसलिये हो रहा है कि तुम्हारे पीछे श्री पंडित आचार्यके धनका बल है। उसी रोब तथा शक्तिके आधारपर तुम्हें लोग और खासकर हमारा हिन्दू-समाज पास फटकने देता है। वरना, जाने किस नरकमें तुम भी आज सड़ रहे होते !...ऊँ... ह...बड़े आये कहनेवाले "पिताजी मैं नहीं चाहता कि किसी अनाथ लड़कीपर इस तरह ज़ुल्म किया जाय"। शर्म नहीं आती तुम्हें ऐसी बेहूदी बातें करते ? क्या इतनी ही जल्दी भूल गये तुम गीता, महाभारत और रामायणके वह उपदेश ? इस निगोड़ीने क्या तुमपर इतना जादू कर दिया है कि तुम यह भी भूल जाने लगे कि तुम्हारा समाज क्या है ? तुम्हारा धर्म क्या है ? क्या इतनी ही जल्द भूल गये तुम्हारे वह बचपनके ही नहीं, बल्कि जवानीके भी वे वादे और प्रतिज्ञाएँ, जो कि तुमने गीताको अपने सीनेसे लगाकर किये थे ? किस बड़े मुँहसे तुमने कहा था कि मैं इस पवित्र गीताको गवाह रखकर यह कहता हूँ—यह वादा करता हूँ कि मैं अपने समाज और धर्मका, चाहे क़ुरबानी भी क्यों न देनी पड़े, रक्षा करूँगा। बोलो, कहाँ गये तुम्हारे वे वादे और कहाँ गईं तुम्हारी वे प्रतिज्ञाएँ ?...(कुछ देर तक रुककर)...कल रात तुम दोनों सरस्वतीके किनारे बड़ी रात तक बैठकर बड़े-बड़े मनसूबे जो बाँध रहे थे, मैंने सब-के-सब सुन लिये हैं। लेकिन प्रताप, तुम इतना ही ख़याल रखो कि जबतक तुम्हारे यह पिता श्री पंडित आचार्यजी इस भूमिपर खड़े हैं—जबतक कि उनका अस्तित्व है, तबतक तुम दोनोंकी शादीकी बात तो अलग रही, बल्कि कभी भी आइन्दा परस्पर मिलने तक नहीं पाओगे। आजसे तुमपर कड़ी निगरानी रखी जायगी। आख़िर तुमने अपने पिताको समझ क्या रखा है ? तुम्हें समाज तथा धर्मका भी डर है या नहीं ? कौन जाने किस तवायफ़की बेटी होगी यह ? कौन जाने यह निगोड़ी कितनोंकी बन चुकी होगी ?

प्रताप—(तमतमाकर) पिताजी ! आपको चाहे जो भी अधिकार हो, मगर इतना अधिकार तो हर्गिज़ नहीं ! आप किसी अनजान, निर्दोष, यतीम तथा बेबस युवतीपर दो तथा कलंक और गालियोंकी झड़ी बरसा दें।

पिता—(क्रोधसे) ख़ामोश—अब भी पिताके साथ ज़बान चला रहा है। ज़बान ही खींच लूँगा आइन्दा ए शब्द भी मुँहसे निकला तो !—बड़ा आया मुझे अपने अधिकार के पाठ सिखाने—तू एक उच्च तथा प्रतिष्ठित खानदानका बेटा होकर ऐसा नीच कार्य करते हुये शरमाता नहीं ? चुल्लू-भर पानीमें डूब क्यों नहीं मरता ! गधा कहींका ! वह लड़का—वह बेटा, जो अपने पितासे ज़बान लड़ाये ; वह बेटा, जो अपने समाज तथा धर्मके कायदे-क़ानूनको न मानकर उसका उल्लंघन करना चाहता है, उसको, यदि मेरा वश चलता, तो प्राण-दण्ड की ही सजा देता। वह बेटा, जो किसी एक नीच जाति लड़कीके लिए अपने पवित्र धर्म तथा समाजका त्याग करे और उसपर कलंक लगानेकी कोशिश करे, उसके लिए इस सृष्टि तो क्या, नरकमें भी स्थान नहीं ! जा...दूर...हट... कुत्ते कहींके—यहाँसे दूर हट ! समाज तथा धर्म-द्रोही कु मेरी नज़रसे दूर हट !

प्रताप—धर्म और समाज...समाज और धर्म। सा देशमें बस इन्हीं दो शब्दोंके नारे लगाये जा रहे हैं। मा भारतवासियोंके लिए अब कोई और काम करनेको रहा नहीं। बस, धर्म और समाजके ही डरसे सारी मानव जा लताके सदृश काँप रही है। गोया यही समाज और ध हमारे रक्षक हैं, हमारे सर्वस्व हैं, हमारे जीवन हैं। मानता हूँ कि धर्म तथा समाज मानव-जातिके लिए उतने आवश्यक और अनिवार्य भी हैं, जितना कि स्वादिष्ट भोजन लिए नमक, लेकिन हम दोनोंके समाज तथा धर्मके अस मतलब समझनेमें बड़ा ही गहरा फ़र्क़ है। पिताजी ! आप मेरे ख़यालसे, धर्म तथा समाजका जो अर्थ लगाया है, वह ब ही विचित्र है। आपके धर्म तथा समाजके कायदे-क़ानून मुताबिक़ कोई हिन्दू जातिका मरता हुआ आदमी पानीकी दो बूँदोंके लिए तड़प भी रहा हो, वहाँ भी धर्म तथा समाजका सवाल उपस्थित हो जाता है। अगर कहीं खानेको भी

चाहे, तो वहाँ भी धर्म तथा समाजका सवाल खड़ा हो जाता है। चाहे कोई मरे या जिये, चाहे कोई हँसे या रोये, खाये या पीये, उठे या बैठे, चाहे कोई विधवा हो जाय या यतीम,—किन्तु आपका समाज और धर्म तो हमेशा मानवकी हरएक गतिमें, हरएक हरकतमें रुकावट तो डालता ही रहेगा।—कैसा समाज है यह···और कैसा धर्म!—समाज और धर्मकी कोई मर्यादा भी तो होती होगी, या बस···जो भी मनमें आये, वह बक दिया या कर दिया, और फिर लगे कहने कि यह सब कुछ समाज और धर्मकी मर्यादाके अन्दर-ही-अन्दर हो रहा है।···क्या इसी दग़ाबाज़ीको आप समाज कहते हैं? क्या ऐसे धोखे और फरेबको धर्मसे परिचित करा रहे हैं?

पिता—(बीच ही में बोल उठते हैं) ख़बरदार, अगर एक भी शब्द हमारे धर्म और समाजके ख़िलाफ़ अपनी ज़बान से निकाला। समाज और धर्म क्या चीज़ है, वह तो जानता ही नहीं और आया है यहाँ मुझे इसका पाठ सिखाने। बड़ा आया समाज-सुधारक—इसके पहले कि मुझे अपनी शक्तिका प्रयोग तुझपर करना पड़े, मैं तुझे फिर सचेत कर देता हूँ कि ख़बरदार यदि समाज और धर्मका नाम लेकर, फिर कभी बहस करने आया तो।...यह जानता भी है कि यह तेरा, तेरे बापका तथा तेरे इस भाईका घर इसीलिये अभी तक बना रहा है कि हम हिन्दुओंका समाज है—धर्म है।

प्रताप—(क्रोधमें आकर) धिक्कार है ऐसे समाजको, थू है ऐसे धर्मपर और लानत है उनको जो अन्धे तथा बहरे होकर ऐसे धर्म तथा समाजका अनुसरण करते हैं।

पिता—(गरज उठते हैं) चुप रह कुत्ते कहींके...वरन...

प्रताप—मेरी अशिष्टता, मेरी बेअदबी और इस गुस्ताखी के लिए क्षमा करें, पिताजी! मगर, जबतक कि केवल मेरे ही धर्म तथा समाजका नहीं, बल्कि हमारी सारी मानव-जातिका सवाल है, मैं तो यही कहता हूँ और आख़िरी दम तक कहता रहूँगा कि हमारा धर्म वह नहीं है, जो हमें यह सिखाये कि हम भिन्न-भिन्न देशके वासी होनेके कारण एक नहीं हो सकते। हम जो कि बड़ी-बड़ी पदवियाँ हासिल करके इन सुनहरे आसन पर विराजते हैं, वे उच्च जातिके हैं और दूसरे सब-के-सब हलके दरजेके हैं। हमारा धर्म यह नहीं है, जो हमें यह भी सिखाये कि हम हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी या भिस्ती हैं। नहीं हमारा वह धर्म है, जो हमें एक-दूसरे क़ौमके परिवारके घर जाकर भोजन करनेसे धर्म-द्रोही कहता है। उस धर्मको मैं धर्म नहीं कहता, जो किसी पराई बेटीको अपनी बेटी स्वीकार करनेमें कोई बाधा या रुकावट लाता है। उस धर्मको मैं धर्म नहीं मानता, जो किसी अनाथ तथा बेबस और लाचार युवतीको, मौका पाते ही उसे फुसलाने, उसके साथ शरारत और बदतमीज़ी करने तथा उसपर कलंक लगानेका साहस करता है। मैं उस समाजपर थूकता हूँ, जो स्त्री-समाजको विधवा होनेके बाद, पैरों तले कुचल देता है, मुझे ऐसे समाजसे घृणा है, जहाँ मानव-समाजकी तबाहीका ही सबक सिखाया जाता है। मैं उस समाजको धिक्कारता हूँ, जो अपनी मा, बहन और बेटीको पैरोंके सामने तो क्या, बल्कि ख़ुद अपने परिवारके सदस्योंके सामने नीच ठहराकर, उसके साथ बलात्कार तथा हर प्रकारके ग़ैरमुनासिब बरताव करके उन्हें दण्ड दिया जाता है। मैं उस समाजके ख़िलाफ़ हूँ, जो हमें यह शिक्षा देता है कि सिर्फ हिन्दू या किसी एक ही क़ौमका धर्म सच्चा है और बाक़ी सब झूठा है। मुझे ऐसे समाजसे अवहेलना है, जो विश्वकी आँखोंमें धूल झोंक कर यह करनेकी कोशिश करता है कि मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ। मैं ऐसे धर्म तथा समाजका कट्टर विरोधी हूँ, जो हमें यह सिखाता है कि किसी मेहतरको स्पर्श करनेसे उच्च ख़ानदानके बेटे अपना समाज और धर्म दोनों ही खो बैठते हैं। मैं ऐसे धर्म तथा समाज और उसके अनुयायिओंकी बरबादीके सिवा और कुछ भी नहीं चाहता। ऐसे समाज और धर्म तथा उनके सेवकोंका अस्तित्व ही न होना चाहिए इस संसारमें···और...।

चन्द्रिका—चुप हो जाइये डाक्टर बाबू, मैं आपके पैरों पड़ती हूँ! आपसे भीख माँगती हूँ! आपसे प्रार्थना करती हूँ और किसीके लिए न सही, किन्तु मुझ-जैसी शरणार्थी अभागिनी तथा नीच और नादान लड़कीके लिए तो चुप रहिये। (चन्द्रिकाकी इस रोनी-सी आवाज़को सुनकर प्रताप और भी आग-बबूला हो जाता है।)

प्रताप—कौन कहता है कि तुम नीच और नादान हो?

किसके पास इसका सबूत है, यह बतानेका कि तुम गिरी हुई हो ? तुम्हें शरणार्थिनी होनेके कारण आजका यह समाज यदि बुरी निगाहोंसे देखे, तो भी मुझे इसकी परवाह नहीं। मेरे लिए तुम उतनी ही पवित्र हो, जितना कि गिरिराज या गंगाका पानी। धर्म और मजहबके झूठे और अर्थहीन झगड़े-फ़सादके कारण, तुम सभी निर्दोष होते हुए भी, अपना प्यारा वतन, अपना प्यारा मुल्क, अपनी सबसे ज़्यादा प्यारी वस्तुएँ, अपने मा-बाप, भाई-बहन, पति और बेटे—इन सभीको छोड़नेके लिए मजबूर जो हुए हो, इसके लिए यह समाज ही जिम्मेदार नहीं तो और कौन है ? आज जो समाज तुम्हें शरणार्थियोंके रूपमें देखकर, तुमसे घृणा करता है, तुम्हें धिक्कारता है, उसने कभी भी यह सोचनेका प्रयत्न तक किया है कि तुम लोगोंकी दुर्दशाका असली कारण क्या है ? "अल्लाह हो अकबर और हर हर महादेव"के ये दो भिन्न-भिन्न समाजके नारेने ही तो तुम्हें बरबाद कर दिया है। ये दोनों समाज अपने ही हाथों खुद ही विनाशके मार्गपर जा रहे हैं और साथमें हमको भी घसीट ले जाना चाहते हैं !...पिताजी, आपने इस निर्दोष लड़कीपर झूठे इल्जाम जो लगाये हैं और जो कलंक लगाया है, वह सिर्फ़ इसीलिये न कि यह लड़की खुद आपकी अपनी नहीं ? काश, आपको भी कोई एक जवान लड़की होती ! काश, उसे भी आपके समाजके इस अर्थहीन झगड़े-फ़सादके कारण शरणार्थिनी बनना पड़ता ! और उस अवस्थामें वह भी किसी शरणार्थियोंके सेवकको ही अपना जीवन-साथी बनाकर आशीर्वादके लिए आपके पास आती, तब भी क्या आप उसके साथ ऐसा ही व्यवहार करते जैसा कि आज आप हमारे साथ कर रहे हैं ? क्या आप अपनी बेटीकी जिन्दगीकी फ़िक्र तक नहीं करते ? क्या आप उसे बरबाद ही करके छोड़ देते ? बोलिये पिताजी, क्या यही है, आपका वह धर्म, जिसका अनुसरण करनेको आप मुझे कहते हैं ?

पिता—(जरा कुछ शान्त होकर) बस करो प्रताप, बस करो ! मुझसे यह सब बरदाश्त नहीं किया जाता।

प्रताप—(अपने ही आवेशमें) अब आपसे क्यों बरदाश्त किया जाने लगा यह सब, पिताजी ? जिस नमकहराम प्रतापने सारा भण्डाफोड़ करके आपकी आँखें, जो कि हि[...] धनके ही अभिमानके परदेसे ढँकी हुई थीं, खोल दी हैं ? [...] आपके उस भयानक तथा रुद्र समाजके नग्न रूपको भी प्र[...] करके उसकी नीति जो आपके सामने रख दी है वह भी [...] अब आपसे बरदाश्त की जाने लगी ?...पिताजी, आज जब[...] हमारे भारतवर्षमें हज़ारों ही नहीं, बल्कि लाखों और करो[ड़ों] शरणार्थी सब कुछ लुटाकर, गँवाकर तथा अपना सर्वस्व छो[ड़कर] दाने-दानेके लिए मुहताज होकर आपके सामने अपनी झो[ली] फैलाते हैं, तब आप अपनी बेइमानीसे एकत्रित की हुई पूँजी[के] अभिमानसे उनकी हालतकी बातें पूछनी तथा थोड़ी कुछ ह[म]दर्दी और सहानुभूति दरशानेकी तो बात ही छोड़ें, किन्तु उन[की] ओर देखने तककी कोशिश नहीं करते ! और जब क[भी] देखते भी हैं, तब आँखें ऐसी लाल करके देखते हैं, मा[नो] उनका शरणार्थी बनना कोई महापाप ही क्या, बल्कि इ[ससे] भी बड़ा और अक्षम्यवाद हो !...

एक तरफ़ जब कि अपने ही मा-बाप, भाई-बहन औ[र] बेटे-बेटियाँ दाने-दानेके लिए और पानीकी एक-एक बूँदके लि[ए] मुहताज होकर रोते हैं, तड़पते हैं, चीखते हैं, चिल्लाते हैं औ[र] मरते भी हैं, तब आप बड़ी ही खुशीसे अपने दिली दोस्तों[को] किसी बारमें ले जाकर बड़े ही मजेमें शराब उड़ाते हैं। अ[...] खासे और अनेक प्रकारके मसालेदार भोजन बड़े ही शौ[क] करते हैं। मित्रोंकी शादीके शुभअवसरपर पार्टियाँ दी जा[ती] हैं, आमोद-प्रमोद तथा रँगरेलियाँ मनानेकी सामग्री इ[क]ट्ठी करके बड़े ही तमाशे किये जाते हैं। उम्दा-उम्दा मिठाइ[याँ] पेटमें जगह न होनेपर भी जबरदस्ती ठूँसी जाती हैं। क[्या] यही है आपका धर्म, जो आपका समाज हमें सिखाना चाह[ता] है ? धिक्कार है ऐसे धर्मको, थू है ऐसे समाजको और लान[त] है उस धर्म तथा समाजके सेवकोंको, जो इनसानियतका झू[ठा] दावा और झूठा ढोंग करते हैं। थू है उनकी अक्ल औ[र] किस्मतपर भी !...मैं अपने ही आवेशमें बहुत कुछ कह [गया] हूँ पिताजी, ऐसे कटु शब्दोंका भी मैंने इस्तेमाल किया [है] जिनका प्रयोग करना मेरे लिए मुनासिब न था ; किन्तु मैं ऐ[सा] करनेको विवश था, लाचार था, मजबूर था। अपनी [...]

गुस्ताखी, इस बेअदबी और इस अशिष्टताके लिए मैं फिर एक बार आपसे क्षमा माँगकर विदा लेता हूँ। और यह विदा भी मेरी अन्तिम विदा होगी! पिताजी, मुझे आपके धनकी कोई जरूरत नहीं और न तो जरूरत है उसकी शक्तिकी भी। आज इसी ही हालतमें आपका घर त्यागकर और उन लाखों और करोड़ों शरणार्थियोंमें से एक होकर...।

पिता—शरणार्थी? (घबराकर)।

प्रताप—हाँ पिताजी, मैं भी आज उन लाखों और करोड़ों शरणार्थियोंमें से एक होकर आपको अन्तिम बार प्रणाम कर रहा हूँ। आइन्दा मैं 'रेफ्यूजी कैम्प' में ही रहकर मेरे उन तड़पते हुए मा, बाप, भाई, और बहनोंकी सेवा-सुश्रूषा करनेमें ही अपनी सारी जिन्दगी बिता दूँगा...हाँ, और भी एक बात कहनेको रह गयी है, वह यह है कि आजसे मैं, मेरा सारा भार और सम्पूर्ण जिम्मेदारी इस नन्हीं-सी युवतीके सिर चढ़ा रहा हूँ, पिताजी! यही चन्द्रिका मेरी जीवन-साथिन बनकर रहेगी...आओ, चन्द्रिका हम अपने पिताजीका अन्तिम आशीर्वाद ले लें। (प्रताप और चन्द्रिका दोनों झुककर पिताके चरण छूते हैं। मगर पिता तो पत्थरके समान खड़े ही रह जाते हैं और उनके नयनोंमें से गंगा-जमुना प्रवाहित होने लगती है।)

प्रताप—(चन्द्रिकाके साथ खड़ा होकर)—अरे... पिता...आप रोते हैं? यह आँसू किस लिये, पिताजी?

पिता—(शान्त भावसे, भारी दिलसे)—हाँ बेटा, मैं रो रहा हूँ—तुम्हारी विदाईपर नहीं, बल्कि खुद अपने ही कुकर्मों पर। और साथ ही हँस भी रहा हूँ कि प्रताप...मेरा बेटा प्रताप...(और उनका गला भर आता है) एक सच्चा देश-सेवक निकला!—धन्य हो तुम प्रताप, और धन्य हो...तुम भी...मे...री...बेटी।

चन्द्रिका—पि...ता...जी...? (और वह भी रोती हुई-सी जान पड़ती है।)

पिता—जाओ, मेरे प्यारे पुत्र, जाओ। मेरी दुआएँ हमेशा तुम्हारे ही साथ हैं। ईश्वर तुम दोनोंको मुसीबतें झेलनेकी शक्ति दें।......

श्री लौरेंज़ो बौटिस्टासे भेंट

श्रीराम शर्मा

गत दो मार्च १९५० को, प्रातःकालके १० बजे, सिरदर्दसे परेशान लेटा हुआ था। 'सारीडन'की दो गोलियाँ खा ली थीं, पर दर्द कम न होता था। ऐसा मालूम होता था, मानों दिमाग़ भीतरसे कट-कटकर निकल रहा हो। किसीकी आवाज़ तक सह्य न थी। आशा थी कि आध घण्टेमें दवाका असर होगा, पर लेटनेके ५ मिनट बाद ही किसीने दरवाजा खटखटाया। कुछ देर तो मैं चुप रहा, पर जब खटखटाहटकी आवाज़ और बढ़ गई, तब उठकर किवाड़ खोले और देखा कि युनाइटेड प्रेसके एक मित्र खड़े हैं। पहले ही इसके कि मैं कुछ बोलूँ, वे बोल उठे, फिलिपाइनके डेलीगेट लौरेंज़ो बौटिस्टा साहब आगरा कैण्ट स्टेशनपर रातसे पड़े हुए हैं। भारत सरकारके शिक्षामंत्री मौलाना आजादने आगरा विश्वविद्यालयके वाइस-चान्सलरको तार दिया था कि वे उनके ठहरनेकी व्यवस्था करें। परन्तु वाइस-चान्सलर साहब बाहर गये हैं, तार शायद उन्हींके नामसे है। इसलिये किसीने खोला नहीं। रजिस्ट्रारको फोन किया तो शायद उन्होंने जवाब दे दिया कि बौटिस्टा साहब किसी होटलमें ठहर जायँ। रातके साढ़े दस बजे कुछ इन्तजाम नहीं हो सकता। स्टेशनसे यूनाइटेड प्रेसके आफिसको फोन किया गया, तो मैं सीधा आपके पास चला आया हूँ कि बौटिस्टाका क्या प्रबन्ध हो। उपर्युक्त बातें सुनकर बड़ा क्षोभ हुआ। यूनाइटेड प्रेसके मित्रसे मैंने कहा, "मैं चलनेमें असमर्थ हूँ। आप कृपा कर स्टेशन चले जायँ और ताँगेमें बिठाकर बौटिस्टा साहबको मेरे मकानपर ले आयँ। उनसे यह भी कह दें कि मेरे यहाँ अंगरेजी ढंगकी कोई सुविधा न होगी। फर्शपर सोना पड़ेगा और हिन्दुस्तानी ढंगका भोजन मिलेगा। हाँ, स्नेह और सेवामें कोई

कमी न होगी ।" ये बातें मैंने उन्हें एक काग़ज़पर लिखकर भी दे दीं, और मैं लेट गया ।

लगभग पौन घण्टे बाद एक 'पिक अप' मकानके सामने आकर रुकी । युनाइटेड प्रेसके मित्र उसमेंसे उतरे और उन्होंने मुझसे कहा, "आगरा यूनिवर्सिटीके रजिस्ट्रार साहबने 'पिक-अप' भेज दी है और इसीसे बौटिस्टा साहब तुरन्त सेंट जान्स कालेजमें व्याख्यान देने जायँगे ।" आगे बढ़कर मैंने बौटिस्टा साहबका स्वागत किया । अभिवादनके बाद उन्हें अपने कमरेमें ले आया । उनका सामान भी रख लिया । रजिस्ट्रार महोदयने जिस विद्यार्थीको उन्हें लेने भेजा था, उसने बौटिस्टा साहबको कालेज ले जानेकी बड़ी जल्दी की । संकेत रूपसे मैंने कहा, "व्याख्यान सुननेके लिए विद्यार्थी भी होंगे, या केवल रस्म-अदायगीके लिए ही उन्हें ले जाया जा रहा है ?" विद्यार्थी मेरी बातको न समझ सके । आखिर थोड़ी ही देरमें बौटिस्टा साहब कालेज चले गये और पन्द्रह मिनट बाद ही कुछ क्षुब्ध-से लौट आये । परमात्माने मनुष्यको जो दो आँखें दी हैं, वे दिखाने और देखनेके लिए ही नहीं हैं, वरन् वे हृदय-कोशके लिए दो प्रहरी भी हैं । भीतर और बाहरकी हालत जाननेके लिए वे बैरोमीटरका काम भी करती हैं । बौटिस्टा साहबकी मुखाकृतिसे मैं समझ गया कि उनके मनमें यह धारणा बन गई थी कि उनके व्याख्यानकी बात एक मखौल-सी ही थी । होलीकी छुट्टियाँ होनेवाली थीं । लड़कोंको अपने-अपने घर जानेकी पड़ी थीं । समय भी हो चुका था । भाषणकी रस्म-अदायगीके लिए समय भी न रह गया था । पर क्या किया जाय और किसको दोषी ठहराया जाय ? अतएव इस परिस्थितिका विश्लेषण करनेकी भी आवश्यकता नहीं है ।

बातोंके दौरानमें मालूम हुआ कि बौटिस्टा साहब फिलिपाइनसे शान्ति-सम्मेलनमें सम्मिलित होने प्रतिनिधि बनकर आये थे । शान्तिनिकेतन और सेवाग्रामके अधिवेशनोंके उपरान्त उन्हें भारतकी विभिन्न प्रगतियोंको, विशेषकर भारतीय जीवन और गांधीजीके भारतीय जीवनपर प्रभावको देखनेके लिए एक प्रकारसे आमन्त्रित किया गया है । भारत सरकारके व्ययसे वे आगामी पहली जुलाई तक भारतवर्षमें भ्रमण करेंगे । पूरा प्रोग्राम दिल्लीमें तैयार किया गया है । उनमें घटा-बढ़ी गुंजाइश नहीं है । ऐसा आदेश है कि होटलोंमें न ठहरा भारतीय गृहस्थोंके यहाँ वे ठहरें, ताकि वे भारतीय जीवनकी रूप-रेखाको समझ सकें । उनके ठहरनेके स्थानोंपर समझदार व्यक्तियोंकी छोटी-छोटी सभाएँ की जायँ, जिनमें विचार-विनिमय करके वे भारतीय संस्कृति तथा अपने देश फिलिपाइनकी संस्कृतिकी तुलना कर सकें, और गांधीजीकी विचारधाराका अध्ययन कर सकें ।

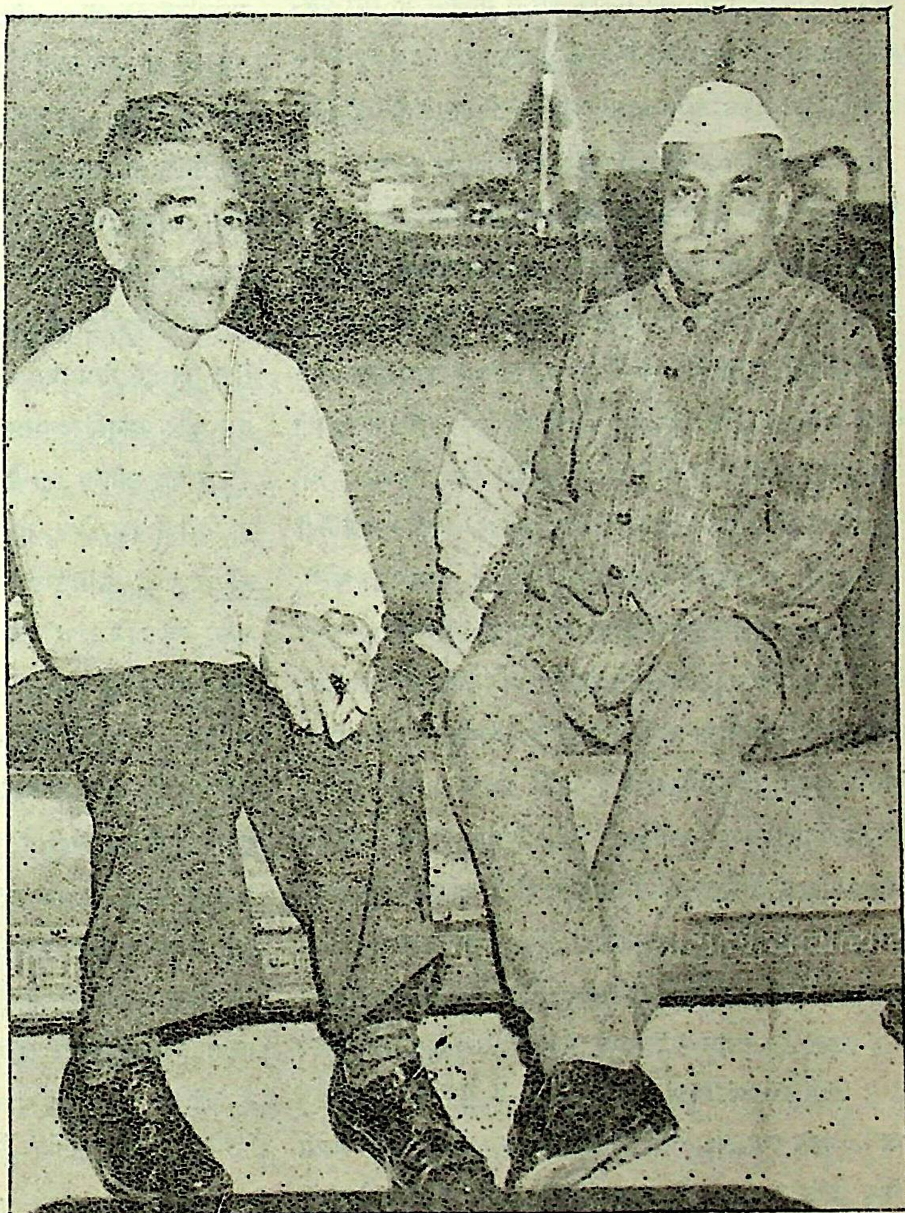
आगरेके लिए इन पंक्तियोंका लेखक शान्ति-सम्मेलनका क्षेत्रीय सेक्रेटरी (Zonal Secretary) था, इसीलिये, आशा यह थी कि श्री बौटिस्टाके आगमनका समाचार उसे दि[या] जायगा । पर शान्ति-सम्मेलन तो समाप्त हो गया और बौटिस्टाकी इस यात्राका प्रबन्ध भारत सरकारके हाथमें था, [इस]लिये इन पंक्तियोंके लेखकके पास उनके आगरा-आगमनका समाचार न आना कोई आश्चर्यकी बात न थी ।

श्री बौटिस्टाको अपने प्रोग्रामके अनुसार तीसरी मार्च शामको जयपुर चला जाना था । इसलिये सबसे आवश्यक [बात] तो यह थी कि जयपुर और अहमदाबादको अपने मित्रोंको [पत्र] लिख दिये जायँ, ताकि श्री बौटिस्टाको अपनी यात्रामें ग्वालि[]यर और आगरेकी-सी कठिनाइयोंका सामना न करना पड़े । राजस्थानके प्रधान मन्त्री श्री हीरालालजी शास्त्री तथा उद्योग मन्त्री श्री सिद्धराजजी ढड्ढाको पत्र लिख दिये । अहमदाबादके लिए गुजरातके प्रसिद्ध कलाकार अपने मित्र श्री रविशंकर रावलको भी पत्र लिख दिया । सभीसे यह विशेष आग्रह कि[या] कि श्री बौटिस्टा हमारे राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादके आदेशानुसार यात्रा कर रहे हैं । वे हमारे राष्ट्रके अतिथि हैं । उन्हें अ[पने] घरोंपर ही ठहराना चाहिए ।

श्री बौटिस्टाने भी अपनी लम्बी-चौड़ी डाक तैयार [की] और थोड़ा विश्राम किया । यह तय पाया कि सायंकाल आठ बजे थोड़ेसे मित्रोंकी मण्डलीमें उनके साथ विचार-विनिमय होगा ।

सायंकालके भोजनके उपरान्त हम लोगोंकी बैठक जमी । नगरके कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति एकत्र हुए । वार्त्तालाप अध[]

विचार-विनिमयके पूर्व हम लोग सांस्कृतिक तथा राजनीतिक चर्चा करना चाहते थे, पर श्री वौटिस्टाने कहा, "मैं यह पसन्द करूँगा कि मैं दक्षिणी-पूर्वी एशियाकी राजनीतिक परिस्थितिपर चर्चा करूँ, और उस विषयपर बात न करूँ, जिसको कि आप लोग मुझसे कहीं अधिक जानते हैं। अर्थात् गांधीवादी जीवनकी वार्त्तापर मैं विचार करूँ। गांधीवादी जीवनके विषयमें तो मुझे आपसे सीखना है। उस विषयमें मैं आपको कुछ बता नहीं सकता! यदि मैं गांधीवादी जीवनपर बोलना शुरू करूँ, तो मुझे आशंका है कि मैंने इस विषयमें जो कुछ प्राप्त किया है, मैं उसे खो बैठूँगा। इसलिये गांधीवादी जीवनके विषयमें तो मैं मौन ही रहूँगा। मुझे तो अपनी इस यात्रामें गांधीजीके सिद्धान्तों और उसके उपदेशोंको कुछ ग्रहण करना है। दक्षिणी-पूर्वी एशियाकी राजनीतिक परिस्थिति, जिसके बारेमें दो दिन पूर्व मैंने समाचार-पत्रोंमें पढ़ा था, बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यह समाचार लन्दनका है, जिसके अनुसार आस्ट्रेलियाके प्रधान मन्त्री अगले महीने फिलिपाइनके प्रेसिडेण्टसे प्रशान्त-समझौतेके सम्बन्धमें गम्भीर वार्त्तालाप करने जा रहे हैं। मेरा ख़याल है, आपमें से अधिकांश लोगोंने इस प्रस्तावके बारेमें अच्छी तरहसे नहीं जाना है, जिसको कि लगभग तीन मास पूर्व हमारे प्रेसिडेण्ट क्वीरिनोने उस समय किया था, जब कि च्यांग काई शेक मनीला गये थे। हमारे प्रेसिडेण्टसे उन्होंने कहा था कि एशियाके दक्षिणी-पूर्वी भागमें कम्यूनिज़्मका प्रसार रोकनेके लिए वे एक गुटके निर्माणके लिए प्रेरणा दें। भारतवर्षमें मेरे टिकनेसे मुझे दक्षिणी-पूर्वी एशियाके राष्ट्रोंके कई नेताओंके विचारोंको अत्यन्त निकटसे जाननेका अवसर मिला है। हिन्देशियाके डाक्टर सुकर्ण, भारतीय प्रजातन्त्र दिवसपर जब भारत में आये, तब मैं उनसे मिला था और ३० मिनट तक मेरी



राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद श्री० लौरेंज़ो वौटिस्टाके साथ

उनसे प्राइवेट बातचीत हुई थी। कलकत्तेमें बर्माके प्रधान मन्त्री थाकिन नूसे भी मेरी प्राइवेट भेंट हुई। वे भगवान बुद्ध की स्मृति सम्बन्धी सामग्री लेने कलकत्ते आये थे। मेरी उनकी बर्माकी परिस्थितिपर व्यक्तिगत रूपसे बड़ी गम्भीर भेंट हुई। जब मैं कोलम्बोमें था, तब लंकाके प्रधान मन्त्रीसे भी मेरी प्राइवेट भेंट हुई। कोलम्बोमें मैं उन्हींके मकानपर ठहरा था। पं० जवाहरलाल नेहरू और भारतके विदेशी विभागके सेक्रेटरीसे भी मेरी भेंट हुई। फिलिपाइनके प्रेसिडेण्टसे निकटतम सम्पर्क होने के कारण, और अपने देशके विदेशी विभागके मन्त्रीसे सम्पर्क रखनेके कारण मुझे इस संघटनकी सम्भावनाओंको समझनेमें काफ़ी मदद मिली है। इसलिये मैं स्पष्ट रूपसे बता दूँ कि दक्षिणी-पूर्वी एशियाके राष्ट्रोंका यह प्रशान्त-समझौता पूरी तरह असफल रहेगा। कारण यह है कि इन राष्ट्रोंने अपनी स्वतन्त्रता अभी-अभी प्राप्त की है और इनमें से कोई भी गवर्नमेण्ट उस समय तक देशके शासन-सूत्रको अपने हाथमें नहीं रख सकती, जबतक कि जिन बातोंके लिए वे हस्ताक्षर करेंगे, उनको निभा सकें। आशंका यह है कि वह समझौता कोरा कागजी समझौता रह जायगा। उदाहरणके लिए मान लीजिये, कि 'प्रशान्त-समझौता'का संघटन हो गया है। थाकिन नू बर्माके प्रधान मन्त्री हैं, और वे बर्माके प्रधान मन्त्री इसलिये हैं कि बर्मामें चुनाव लगातार तरीकेसे स्थगित होते आ रहे हैं। मान लीजिये चुनाव होता है, और थाकिन नू प्रधान मन्त्री नहीं बनाये जाते, तब फिर उस समझौतेपर हस्ताक्षर करनेवालेकी हैसियतसे समझौतेकी बातोंको वह कैसे कार्यान्वित कर सकते हैं। च्यांग काई शेकके साथ भी वही बात हो रही है। इस समझौतेके प्रस्तावको रखनेवालोंमें से वे एक हैं। च्यांगके अधीन अब एक टापू ही है, पहले एशिया महाद्वीपका आधा भाग उनके अधीन था। मान लीजिये, च्यांग काई शेककी बची-खुची सत्ता भी नहीं रहती, फिर उनके हस्ताक्षरोंके क्या मानी होंगे? हिन्देशियाकी भी वही बात है। मान लीजिये सोवियत रूस मंचूरियाकी ओर बढ़ता है, तो उस समझौतेपर हस्ताक्षर करनेवालोंमें से एक भी तो समझौतेकी शर्तको कार्यान्वित न कर सकेगा और ठीक यही बात मेरे देशके लिए लागू है।

आपमें से किसीने मेरे देशकी राजनीतिक परिस्थि[ति] सम्बन्धमें प्रश्न किया था। वर्त्तमान अवस्थामें फिलिपाइ[न] राजनीतिक स्थिति बड़ी खतरनाक है। कारण समझना आसान है। फिलिपाइनमें स्वतन्त्रता मिलनेसे पूर्व एक सुसंगठित दल था। यह दल वह था, जिसने लगातार वर्ष तक संगठित रूपसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाने स्वतन्त्र[ता] माँग की थी। यह दल जनताकी कल्पना-शक्तिको प्रभा[वित] कर सका, पर जब आज़ादी आई, तब प्रेसिडेण्टके पदके [लिए] आम चुनाव हुआ। वह तथाकथित सुसंगठित दल, [जिसे] हम भारतवर्षके कांग्रेस-दलका रूपान्तर कह सकते हैं, सत्ताके पारस्परिक द्वेषके कारण तीन क्षेत्रोंमें बट गया। तीन हिस्सोंमें विभाजित हो गया—अर्थात् राष्ट्रीय दल, दल और कम्यूनिस्ट दल। मेरे देशमें कम्यूनिस्ट दल का[नूनी] दृष्टिसे एक स्वीकृत दल है। अगर कम्यूनिस्ट दल [अके]ले ही विरोधी दल होता, तो प्रेसिडेण्ट क्वीरिनो (Quirino) जो आजकल प्रेसिडेण्ट हैं, निरन्तर अनेक वर्षों तक पदपर बने रहते। पर जब विरोध उन्हीं लोगोंसे हो, जो निकटतम मित्र थे, तब खतरा बहुत ज़्यादा बढ़ जाता है। अगर कहीं सरदार पटेल और डा० राजेन्द्रप्रसाद पं० नेह[रू के] विरोधमें हों, तो नेहरूजीकी स्थिति टिकाऊ नहीं हो सक[ती]। यहाँपर ऐसी बात नहीं है, पर मेरे देशमें ऐसा ही हो रहा है।

मेरा देश इस प्रशान्त-समझौतेके बनानेमें अगुआ है। इस समझौतेमें वे राष्ट्र भी आनेकी सोच रहे हैं, जो इस[के] वास्तविक अंग हो सकते हैं; और नेतृत्व इसका वे लोग [कर] रहे हैं, जिनकी स्थिति अनिश्चित है। च्यांग काई शेक, था[किन] नू, क्वीरिनो और स्वयं सुकर्णको इसमें सन्देह है कि वे [कितने] दिनोंतक अपने स्थानोंपर टिक सकेंगे।

इसलिये इस समय प्रशान्त-समझौते (Pacific pa[ct]) का बनाना, जब उसे बनानेवालोंकी सरकारोंका जीवन ही डाँवाडोल है, कोरा प्रहसन है। जब मैं फिलिपाइनोंकी हैसि[यतसे] यह सन्देह करता हूँ कि वहाँकी वर्त्तमान सरकार मित्रों[के] विरोधके कारण चल सकती है; तब आप स्थितिको सम[झ] सकते हैं। मित्र शब्दका प्रयोग मैंने इसलिये किया कि फि[लिपाइन]

पाइन सरकारके आज जो विरोधी हैं, वे पहले मित्र थे। यह बात दक्षिणी-पूर्वी एशिया भरके लिए लागू है। ऐसी दशामें हम कह सकते हैं कि वहाँकी सरकारोंमें से कोई भी प्रशान्त-समझौतेके नैसर्गिक अंश हो सकते हैं, जो धड़ल्लेसे किसी कागज पर हस्ताक्षर कर सकें और उसको दक्षिणी-पूर्वी एशियामें विश्व-शान्तिके लिए लाभकारी बनायें। यदि मैंने जो बात अभी कही है कि प्रस्तावित 'प्रशान्त-समझौता' असफल रहेगा, तो फिर दक्षिणी-पूर्वी एशियाके राष्ट्रोंके पास ऐसे कौन-से उपलब्ध साधन हैं, जिनसे कम्युनिज़्मको रोका जाय। मैं जोरदार शब्दोंमें कहता हूँ कि कम्यूनिज़्मको रोकनेका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन गांधीवादी जीवन है। गांधीवादी मार्गके लिए राजनीतिक जगतमें पूरा क्षेत्र है, अर्थात् राजनीतिज्ञ पद-लोलुपता और सत्ता-हथियानेकी प्रवृत्तिके स्थानमें राष्ट्रसेवा और लोकसेवासे प्रेरित हों—सत्ताको केवल सत्ताकी खातिर ग्रहण न करें, तो दक्षिणी पूर्वी-एशियन प्रशान्त-समझौता एक वास्तविकता हो सकती है। ऐसा होनेपर ही फिलिपाइन, संयुक्त राष्ट्रों, बर्मा, कोरिया और चीनके राजनीतिक कार्योंमें सुधार हो सकता है। हम देखते हैं कि गांधी-मार्गके कारण ही भारतीय जनताका ऐक्य और उसकी रक्षा सम्भव है और वह भारतवर्षके लिए बड़ी मूल्यवान सिद्ध हो रही है। यह गांधीवादी मार्गका ही परिणाम है कि एक भारतीय राष्ट्र बन सका है और विभिन्न विचारों और धर्मोंके लोग भारतीय राष्ट्रके सूत्रमें बँध गये हैं। जहाँ पहले प्रतिद्वन्द्वी थे और एक दूसरेके विरोधी थे, वहाँपर गांधीजीके सिद्धान्तोंने ही एक संयोजक और संगठित ऐक्यमें सबको विकसित किया है। विदेशी दर्शक यह कह सकते हैं कि यह सब ऐक्य छिन्न-भिन्न हो जायगा। पर मैं यह बलपूर्वक कहता हूँ कि भारतीय ऐक्य न केवल इस वर्षके लिए ही, वरन् अगले वर्षके लिए भी सुरक्षित है और मैं तो यह भी कहता हूँ कि वह शताब्दी पर्यन्त रक्षित रह सकता है। नेहरूजीके, पटेलके और राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादके निधन होनेपर इस देशमें अन्य नेता पैदा हो जायँगे। 'प्रशान्त-समझौता' तभी सफल हो सकता है, जब दक्षिणी-पूर्वी एशियाके सब राष्ट्र, जिन्होंने अभी अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की है, सत्ता हथियानेके दृष्टिकोणको बदल दें और सत्ताको लोकसेवाका साधन समझें।

प्रश्न—जब आप कहते हैं कि आप सम्पूर्ण दक्षिणी-पूर्वी एशियाके राष्ट्रोंके लिए प्रशान्त-समझौता चाहते हैं, तब क्या आपका यह अभिप्राय है कि वह गांधीजीके सिद्धान्तोंपर आधारित हो?

उत्तर—प्रशान्त-समझौतेका सुझाव हमारे प्रेसिडेण्टके सामने च्यांग काई शेकने अटलाण्टिक-समझौतेके ढंगपर सुझाया था। उसका कोई सम्बन्ध गांधीजीके सिद्धान्तसे न था।

प्रश्न—क्या आपके यहाँ मजदूर और मशीनोंकी वही समस्या है, जो हमारे यहाँ है! क्या आपको उन्हें वैसेही भुगतना पड़ता है जैसे हमें, भारतवर्षमें?

उत्तर—हाँ, एक ही बात है। ऊँचे वेतनोंकी माँग, कल-कारखानोंका बन्द होना और उनकी तोड़-फोड़की बातें। हमारे यहाँ कपड़ेकी मिलें नहीं हैं। हमारे मुख्य उद्योग हैं, चीनी और नारियल! आर्थिक दृष्टिसे हम संयुक्तराष्ट्र अमेरिकापर निर्भर हैं!

प्रश्न—अभी आपने प्रशान्त-समझौतेकी जो बात कही कि वर्तमान स्थितिमें चीन, फिलिपाइन, बर्मा और हिन्देशियाकी वर्तमान सरकारोंकी डावाँडोल स्थितिके कारण समझौता सम्भव नहीं; पर मैं तो यह कहता हूँ कि बहसकी खातिर यह हम मान भी लें कि वहाँकी सरकारें वर्षोंके लिए स्थायी भी हों, तब भी यह समझौता भविष्यके लिए सफल नहीं हो सकता और न वह कारगर हो सकता है। कारण यह है कि इस समझौतेके करनेवाले लोगोंके पास आधुनिक युद्धके लिए न तो सामग्री है और न कोई साधन। हाँ, कटानेके लिए मानव नामके जन्तु करोड़ों हैं। भारतवर्षको ही लीजिये। यहांके विशेषज्ञोंसे मैंने बातें कीं। भारतवर्ष २१ दिनसे अधिक आधुनिक लड़ाई नहीं लड़ सकता। पाकिस्तानका ढेर ११ दिनमें हो जायगा। आपके देशको प्रत्येक वस्तुके लिए अमेरिकापर अवलम्बित रहना पड़ता है। इस समझौतेको सफल बनानेके लिए इन देशोंको अमेरिकाके अधीन रहना पड़ेगा—व्यापारिक आर्थिक तथा सैनिक दृष्टिसे। आपके देशने तो पहलेसे ही अमेरिकाको समुद्री तथा वायुयान-अड्डे दे रखे हैं। इस

समझौतेके मानी होंगे एक प्रकारसे एशियामें अमेरिकाका व्यापार-साम्राज्यवाद! किन्हीं अंशोंमें वह राजनीतिक साम्राज्यवाद भी होगा। कम्यूनिज़्मके विरुद्ध जो लड़ाई है, वह इस समय रूस और ऐंग्लो अमेरिकन गुटोंके बीच लड़ाई है। ये दोनों गुट अपनी सत्ता बनाये रखना चाहते हैं और अपनी रक्षा करना चाहते हैं। हमलोग तो केवल तोपोंके लिए खुराक ही दे सकते हैं। इस समय दुनियामें आवश्यकता यह है कि हम मानव-जीवनका पुनर्निर्माण करें। आज कम्यूनिस्ट साम्राज्यवाद और पूँजीपति साम्राज्यवादमें वही अन्तर है, जो साँपनाथ और नागनाथमें है। हमें अपनी आवश्यकताओंको कम करना चाहिए। यथासम्भव बड़े-बड़े कारखाने नहीं खोलना चाहिए। उद्योग-धन्धोंका विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। कुछ खास उद्योगोंको छोड़कर सबको कुटीर धन्धोंमें परिवर्तित कर देना चाहिए, नहीं तो हम लोग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे कम्यूनिस्ट अथवा पूँजीपति साम्राज्यवादको प्रोत्साहित कर रहे हैं।

उत्तर—मैं आपसे इस विषयमें पूरी तरह सहमत हूँ। मुझे आपकी इस बातसे इन विचारोंमें और भी पुष्टि मिली है। आपकी यह बात बिलकुल ठीक है कि प्रशान्त-समझौता दक्षिणी-पूर्वी एशियामें बिना बड़े राष्ट्रोंकी सैनिक सहायताके सम्भव नहीं। बड़े राष्ट्रोंकी सैनिक सहायतासे दक्षिणी-पूर्वी एशियाकी अप्रिय सरकारोंकी रक्षा होगी और वे विदेशी शक्तिके इशारेपर नाचेंगे और ऐसा होना ठीक नहीं है। इस प्रशान्त-समझौतेकी बातको मैं गांधीजीके सिद्धान्तोंके पोषणके लिए भी आगे रख रहा हूँ। दक्षिण-पूर्व एशियाके राष्ट्रोंमें अभी ढाई बरस पहले ही अपनी आज़ादी प्राप्त की है, भारतवर्षको छोड़कर वे अपनी आज़ादी खो भी सकते हैं। भारतवर्ष अपवादरूपमें इसलिये है कि उसने अपनी स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष किया था, यातनाएँ झेली थीं। भारतवर्षकी आज़ादी तीन टाँगोंकी तिपाईकी तरह सुरक्षित है। इसकी तीन टाँगे हैं—पटेल, नेहरू और राजेन्द्रप्रसाद। पर मेरे देशमें और बर्मामें उस स्टूल (तिपाई) की एक ही टाँग रह गई है। हिन्देशियामें जो सुकर्णके साथ लड़े थे, आज वे उनके विरुद्ध विद्रोही हैं। फिलिपाइनमें जो क्यूरिनोके साथ लड़े थे, वे उनके विरोधी हैं। बर्मामें जो आज़ादीके लिए लड़े थे, थाकिन नू के विरोधी हैं। इसलिये आप दक्षिणी-पूर्वी एशिया[...] कई राष्ट्रोंका ख़तरा समझते हैं। स्वतन्त्रता शब्द तो के[...] भारतवर्षके लिए ही लागू है। यहाँ नेहरूको लोग सहाय[...] दे रहे हैं और नेहरू प्रेसिडेण्टको सहायता दे रहे हैं और स[...] दार पटेल उन दोनोंको सहायता दे रहे हैं। यह सब इसलि[...] है कि गांधीजीकी राजनीति और सत्ता लेनेका गांधीजी[...] तरीका केवल सत्ताके लिए नहीं; वरन् सेवाके लिए है[...] कम्यूनिस्ट लोग हर जगह अपनी शक्ति बढ़ा रहे हैं। उस[...] कारण यह है कि उस तिपाईकी दो टाँगें टूट गई हैं, बस ए[...] टाँग बची है। नतीजा कम्यूनिस्टोंकी शक्तिका बढ़[...] है। राजनीतिमें गुटबन्दीके कारण उसी अनुपातसे कम्[...]निस्टोंकी शक्ति बढ़ रही है। यदि गांधीजीके सिद्धान्त[...] आचरण किया जाय, तो राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रताको क़ायम र[...] सकते हैं।

च्यांग काई शेककी असफलताका कारण यह है कि उन[...] सरकार लोकप्रिय होनेके स्थानमें साम्राज्यवादी थी। च्यां[...] काई शेक चीनके युद्ध-नेताओंके ऊपर सैनिक अधिकार प्रा[...] करनेके लिए एक महान् नेता थे। चीनके युद्ध-नेता लोगों[...] सताते थे और च्यांग काई शेकने उन सबपर सैनिक विजय पाई[...] च्यांग काई शेककी एक बड़ी कमजोरी यह थी कि जब उन्हों[...] युद्ध-नेताओंपर विजय पाई, तब वे सैनिक और ग़ैर सैनि[...] लोगोंका समन्वय नहीं कर सके। नैपोलियन एक महान् त[...] तेजस्वी सैनिक था, पर वह सिविल शासन और सैनिक-शासन[...] समन्वय करनेमें असफल रहा। इस प्रकारका समन्वय कि[...] महान् सैनिकने नहीं किया। २७ वर्ष तक च्यांग काई शे[...] चीनके महानतम सैनिक नेता रहे। मानव-शक्तिकी एक सी[...] होती है। हाँ, गांधीजीकी बात दूसरी है, पर गांधी तो २००[...] वर्षोंमें केवल एक ही पैदा होता है।

समय बहुत हो गया था, रात भी पैंग बढ़ा रही थी[...] किन्तु विचार-विनिमयका रस किसी तरह कम नहीं हो र[...] था। पर श्री बौटिस्टा थके हुए भी थे। आरामकी [...] जरूरत थी, इसलिये यह रातकी बैठक ख़तम हुई। [...]

दिन अपने गाँव जानेका प्रोग्राम बना। पर समयपर मोटर नहीं आई और हम लोगोंने अपने समयका सदुपयोग किया। बौटिस्टा साहबने लेखकके बच्चोंसे बातें कीं और बताया कि उनकी छोटी लड़की चौदह वर्षकी है।

३ मार्च, ५० की शामको श्री प्रकाशनारायण शिरोमणिके यहाँ चायपार्टी श्री बौटिस्टाको दी गई। चायपार्टीमें शहरके प्रसिद्ध गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। सब आयोजन आत्मीयता और घरके सदस्योंके अनुरूप था। शिरोमणि बन्धुओंके बच्चोंके नृत्यगानसे प्रभावित होकर बौटिस्टा साहबने कहा—"यह घर तो बड़ा कलाविद् तथा कलाप्रेमी है।" फिलिपाइनके संगीत तथा बाजोंकी भी चर्चा हुई। होलीके दिन थे, इसलिये चायके साथ होली उत्सवपर बननेवाले पक्वान्न ही निमन्त्रितोंको खिलाये गये।

श्री बौटिस्टा विनोदी भी बहुत हैं। कहने लगे, "मैं आपकी पन्द्रह वर्षीया बेटीको अपने यहाँ ले जाऊँ एवं उसकी शिक्षा-दीक्षा अपने ढंगसे करूँ और अपनी पन्द्रह वर्षकी लड़की आपको दे दूँ तो कैसा रहे?" मैंने कहा, "मुझे ले चलिये और मनीलाके चिड़िया घरमें रख दीजिये।"

श्री बौटिस्टा—"मैं तो आपको वहाँके मन्दिरमें रखूँगा।"

गाड़ीका समय हो चुका था। आगरा फोर्ट स्टेशन पर फर्स्ट क्लासके डब्बेमें बिठाकर हम लोगोंने उनसे विदा ली।

तिब्बतपर लाल आँखें

गणेशप्रसाद अग्रवाल

उत्तर-पूर्वी तिब्बतसे अभी हालमें जो समाचार प्राप्त हुए हैं, उनसे पता चलता है कि तिब्बतके इर्द-गिर्दके प्रदेशोंमें एक 'तिब्बतकी जन-सरकार' स्थापित की गई है। इस प्रदेशकी जन-संख्या ८०,००० है और उनमें साम्यवादी विचारधाराको माननेवाले लोगोंकी संख्या और बढ़ाई जा रही है।

इस प्राथमिक 'तिब्बती सरकार'का कार्य-क्रम बहुत सीधा-सादा है। इसका उद्देश्य तिब्बतकी लासा-स्थित सरकारसे सत्ता छीन कर 'पानसेन' लामाको तिब्बतमें फिरसे सत्तारूढ़ करनेका है। तिब्बतके आधुनिक इतिहासमें 'पानसेन' लामाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैसे सन् १९२३ तक उसका तिब्बतमें कोई विशेष स्थान न था। पर उसके बाद उसने तिब्बतके शासक 'दलाई लामा'के विरुद्ध व्यवस्थित विरोधी प्रचार-कार्य किया है। 'दलाई लामा' 'ईश्वरका अवतार' माना जाता है, पर 'पानसेन' लामाको भी तिब्बतकी जनता 'अपरिमित प्रकाश'का अवतार मानती है। उसकी शक्ति और प्रभाव तिब्बती जनतापर बहुत अधिक है। इस समय 'पानसेन' लामा चीनमें ताशीयूनको नामक स्थानमें रहता है और आतुरतापूर्वक उस दिनकी राह देख रहा है, जब वह तिब्बतके शासकके रूपमें तिब्बत लौटेगा।

राजनीतिक एवं आध्यात्मिक झगड़ोंके कारण दलाई लामासे मनमुटाव हो जानेकी वजहसे 'पानसेन' लामा तिब्बतसे भागकर चीन चला गया था। वैसे तो ये दोनों पुराने लामा, जिनमें संघर्ष हुआ था, अब मर चुके हैं। किन्तु तिब्बती जनताने उनके दूसरे अवतारोंको ढूँढ़ निकाला है। 'दलाई' लामा सन् १९३५में और 'पानसेन' लामा सन् १९३८में ढूँढ़ा गया था। इस समय इन दोनोंकी आयु क्रमशः १४ और १२ वर्षकी है।

तिब्बती जनतामें प्रचलित विश्वासके अनुसार 'अपरिमित प्रकाश' ही वह आध्यात्मिक-शक्ति है, जो 'दयाके देवता (ईश्वर)' का मार्ग-दर्शन करती है। अतएव अधिकांश तिब्बतियोंका विश्वास है कि 'पानसेन' लामा (अपरिमित प्रकाशके अवतार) की शक्ति भी 'दलाई' लामा (ईश्वरके अवतार) की शक्तिसे अधिक है और अगर अधिक नहीं है, तो दोनोंकी शक्ति बराबर तो है ही। जनताकी इस मनोवृत्तिके कारण ही दोनों लामाओंका प्रभाव तिब्बत-प्रदेशमें समान रूपसे शक्तिशाली है।

दोनों लामा एकान्त जीवन व्यतीत करते हैं और उन्हें रूढ़िगत-अनुशासनोंका पालन करते हुए अध्ययनपूर्ण जीवन बिताना पड़ता है। उनके लिए यह अनिवार्यतः आवश्यक समझता जाता है कि 'लामावाद'की सैद्धान्तिक और भौतिक पृष्ठभूमि, विकास और इतिहासका उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। किसी भी स्त्रीका उनके जीवनपर प्रभाव नहीं पड़ने दिया जाता। यहाँ तक कि उनकी माताओंको भी उनसे मिलने-जुलनेकी आज्ञा कभी-कभी और बड़ी कठिनाईसे दी जाती है। उनके भोजनकी प्रत्येक वस्तु पहले चख लेनेके बाद ही उनके पास पहुँचाई जाती है।

इस प्रकार ये दोनों किशोर-लामा तिब्बतके एक-छत्र शासक बननेके लिए आपसमें प्रतिस्पर्द्धा कर रहे हैं। 'दलाई' लामा इस समय शासक हैं और 'पानसेन' लामा तिब्बती-जनताके असन्तोषी तत्वोंका प्रतिनिधित्व करता है।

तिब्बतकी इस 'प्राथमिक' सरकारने यह माँग की है कि 'पानसेन' लामाको उसके चीनी संरक्षकोंके साथ तिब्बत लौटने की आज्ञा दी जाय। यह माँग 'दलाई लामा'की सरकारने ठुकरा दी है। किन्तु दलाई लामाकी सरकार इस बातसे सचेत है कि कहीं 'पानसेन' लामाके ये संरक्षक बलपूर्वक तिब्बतमें घुसनेकी कोशिश न करें। इनकी संख्या बहुत बड़ी न हो और उनमेंके अधिकांश 'हँसिया और हथौड़ा'की नीतिमें विश्वास करनेवाले न हों और इसीलिये तिब्बतपर आक्रमण किये जानेके मार्गों सिंकियांग, सिनिंग और चामडोकी पश्चिमी सीमाओंपर की चौकी और भी मजबूत कर दी गई है।

राष्ट्रवादी चीनके पतनके पश्चात् चीनकी पीली भूमि लाल रँगसे रँगी जा चुकी है। माओकी विशाल रणवाहिनी भारतके सीमावर्त्ती प्रदेशोंके चारों ओर घूम रही है।

इस समय तिब्बतके लाल-पीले वस्त्रोंमें सुसज्जित योगियों को मंचू-सम्राटोंसे नहीं, बल्कि माओ-जि-तुंगके अनुयायियोंसे लोहा लेना है। संसारकी प्रमुख शक्तियोंने साम्यवादके प्रवाहको रोकनेकी गरजसे लाल चीनकी सरकारको मान्यता प्रदान कर दी है। किन्तु राजनीतिक-मैत्रीके बलपर साम्यवाद की शक्तिको कबतक रोका जा सकेगा, इसका उत्तर इतिहास ही देगा।

भारतके लिए उसके उत्तरी प्रदेशकी सीमासे लगे तिब्बतमें एक स्वतन्त्र-सरकारका होना बहुत ही जरूरी। यही कारण है कि 'पाँचसेन' लामा द्वारा चीनकी लाल सरकारसे किये गये गठ-बन्धनका समाचार हमारे लिए महत्त्वका है। निकट भविष्यमें ही तिब्बतमें ऐसी आकस्मिक घटनाओंके घटित होनेकी आशंकाएँ हैं, जो किसी भी इतिहासको बना और बिगाड़ सकती हैं। यही वह दृष्टि है, जिसके कारण तिब्बतकी समस्या और स्थितिपर ठीक विचार करना हमारे लिए आज अनिवार्य हो गया है।

तिब्बत प्रदेशका क्षेत्रफल ४,६३,२०० वर्ग मील। उसकी जनसंख्या ३५ से लेकर ५० लाख तक कूती जाती। यह प्रदेश संसारके नक्शेमें ७८ डिग्रीसे लेकर १०३ अक्षांशों तथा ५० डिग्रीसे लेकर ३६० डिग्री तकके देशांतरों बीच स्थित है। इस प्रदेशकी औसतन ऊँचाई समुद्र-तल ११,००० फुट ऊँची है और देश साधन-सामग्री और सुरक्षा दृष्टिसे बहुत गरीब है। उसकी शिक्षा-प्राप्त-सैन्य-संख्या अधिक-से-अधिक १०,००० होगी। यह सेना मध्यवर्ती प्रदेश, पूर्वी और पश्चिमी तिब्बत तथा उत्तरके रैंगिंग विभागोंमें विभक्त है। भारतकी ओरकी उसकी सीमाएँ नेपाल, सिक्किम, भूटान, आसाम और लद्दाखके प्रदेशोंकी सीमाओं मिलती हैं। उसके उत्तर और पश्चिममें चीनके तुर्किस्तान मँगोलिया, क्वाँसु, श्वेजान और युनान प्रान्त स्थित हैं।

तिब्बतका प्रारम्भिक इतिहास बहुत कुछ रहस्योंके गर्भ छिपा हुआ है। केवल ७ वीं शताब्दिसे उसके सम्बन्धमें क्रम बद्ध किन्तु फिर भी अधूरा-सा वर्णन मिलता है। तिब्बत सर्वप्रथम शासक सोंग त्सेनगामपाओ माना जाता है उसकी युद्ध-प्रियता एवं सांस्कृतिक-प्रवृत्तियोंने ही हिमालय उस पार बर्फ और अनजाने पहाड़ोंमें ढँके हुए इस प्रदेश महत्त्व प्रदान किया। उसकी सेनाओंने उत्तरी बर्मा, पश्चिमी चीन तथा अन्य कितने ही प्रदेशोंपर विजय-पताका लहराई और चीनके सम्राट तकको अपनी एक पुत्री इस शक्तिशाली

व्यक्तिको ब्याह देनेके लिए मजबूर होना पड़ा। यह चीनी राजकुमारी बुद्ध-धर्मकी पक्की अनुयायिनी थी और उसने नैपालकी एक दूसरी प्रभावशाली राजकुमारीकी मददसे अपने पतिको बौद्ध-धर्ममें दीक्षित करनेके कार्यमें सफलता प्राप्त की। किन्तु कुछ समय बाद चीनका भाग्य पलटा और तबसे अबतक बराबर तिब्बतमें चीनका काफ़ी राजनीतिक प्रभाव रहा है।

राजनीतिक शक्ति प्राप्त होनेके फलस्वरूप तिब्बतपर सांस्कृतिक-बलोंका प्रभाव पड़ा और मक्खन तथा खोआ बनानेकी कला, जौकी शराब बनानेकी विद्या, पनचक्कियोंके ज्ञान तथा खगोल, ज्योतिष और आयुर्वेद आदि विज्ञानोंके ज्ञानके लिए तिब्बत अधिकतर चीनका ऋणी है। चीनपर तिब्बतकी प्रभाव-शक्ति हमेशा लासामें उसके राजदूत द्वारा व्यक्त होती रही है। इन राजदूतोंका तिब्बतके आन्तरिक-शासनमें निर्णयात्मक हाथ रहता था और उसकी विदेश-नीति तो पूर्णतया इन्हींके हाथोंमें रहती थी। किन्तु तिब्बतकी स्वतन्त्रता-प्रेमी जनता कभी भी चीनी शासन या प्रभावको चुपचाप नहीं सह पाई और जब कभी उसे अवसर मिला, वह चीनी-शासकोंके विरुद्ध विद्रोह करती रही है और इसका बदला लेनेके लिए चीनी सम्राटोंको कई खर्चीले युद्ध लड़ने पड़े, ताकि उनकी सत्ता तिब्बतमें अक्षुण्ण बनी रहे।

इस प्रकार तिब्बतको अनेक बार चीनी आक्रमणकारियोंका सामना करना पड़ा है। सन् १२०६ में उसपर चंगेज़ खाँने विजयका झण्डा लहराया और १३ वीं शताब्दिके मध्यमें उसे कुबलाई खाँके आक्रमणका शिकार होना पड़ा।

सन् १६४० में मँगोल-आक्रमण हुआ। फलस्वरूप तिब्बतमें दलाई लामाकी सत्ता स्थापित हुई। दस वर्ष बाद दलाई लामा इस सत्ताको चीनके मंचू-शासकोंने भी मान्यता प्रदान कर दी। किन्तु फिर भी चीन हमेशा तिब्बतमें अपने हितोंके प्रति जागरूक रहा और जब सन् १७१७ में जुंगारियोंने तिब्बतपर आक्रमण कर उसे हथिया लिया, तब चीनने अपनी सेना भेजकर उनको वहाँसे मार भगाया। इसी प्रकार जम्मूके महाराजा गुलाब सिंहने जब तिब्बतपर आक्रमण किया, तब चीनकी फौजोंने तिब्बतकी सहायता की।

चीन और तिब्बतके बीच राजनीतिक सम्बन्ध किस रूपके थे। इस प्रश्नका उत्तर बड़ा कठिन है, क्योंकि इतिहासमें इससे मिलता-जुलता कोई और उदाहरण नहीं है। यह तो निर्विवाद है कि तिब्बतियोंने कभी भी चीनियोंका सत्कार नहीं किया। वे हमेशा उन्हें अपनी राष्ट्रियताके शत्रु ही मानते और समझते आये हैं। उन्होंने हमेशा अपने शासक और प्रेरणात्मक-बलके रूपमें दलाई लामाकी ओर ही देखा है। इसमें उनको अपने धार्मिक अन्धविश्वासोंका भी बड़ा सहारा रहा है। इस धार्मिक विश्वासके फलस्वरूप ही वे हमेशा यह विश्वास करते रहे कि चूँकि दलाई लामा ईश्वरका अवतार है, इसलिये चीनका सम्राट बाह्य-रूपमें कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, लेकिन उसकी आध्यात्मिक सत्ता दलाई लामाके आगे कुछ भी नहीं है। इस सम्बन्धमें चीनका दृष्टिकोण कुछ और ही रहा है। चीनकी दृष्टिमें तिब्बत हमेशा उसका एक अधीनस्थ प्रदेश रहा है और जब कभी चीन शक्तिशाली रहा है, उसने तिब्बतके साथ ऐसा ही बर्ताव भी किया है। उसके राजदूतोंने तिब्बतमें कमोवेश प्रान्तीय शासकोंकी तरह शासन किया है और तिब्बती लोगोंके प्रति उनका व्यवहार अधिकतर विजयीका विजितके प्रति जैसा ही रहा है।

इस प्रकारकी स्थिति १९वीं शताब्दिके अन्त तक जारी रही। लेकिन इसके बाद जब चीन आन्तरिक गृह-युद्धों और राज्यक्रान्तियोंमें बुरी तरह फँस गया, तब तिब्बतियोंने इस परिस्थितिका लाभ उठाया और वे धीरे-धीरे शासन-सूत्रको अपने हाथोंमें लेते गये। इस प्रकारकी स्वतन्त्र होनेकी मनोवृत्तिका प्रत्यक्ष उदाहरण उस समय सामने आया, जब योंगिस-लुटेरोंके आक्रमण करनेपर, दलाई लामाके राजधानीसे भाग जानेपर, चीनियोंने उसे शासनाधिकारोंसे वंचित कर देनेकी घोषणा की। यह घोषणा तिब्बती-जनता द्वारा अपमानजनक और घृणाकी दृष्टिसे देखी गई और सन् १९१२ में तो उन्होंने चीनको कर (भेंट) देना भी बन्द कर दिया। लेकिन चीनकी सत्ता उस समय भी जब वह अत्यन्त मजबूत थी, कभी भी तिब्बतमें मजबूत और शक्तिशाली आधारोंपर नहीं टिकी है। कभी-कभी तो वह नहींके बराबर ही रही है। सन् १९२० के

बाद तिब्बत प्रत्येक मामले और दृष्टिकोणसे चीनसे स्वतन्त्र हो गया और तबसे अबतक उसकी स्थिति एक सर्वतन्त्र राष्ट्रकी-सी चली आ रही है।

भारतने, तिब्बतमें, उसके अपनी सीमासे इतने पास और मिले होते हुए भी कभी भी कोई विशेष राजनीतिक रस नहीं लिया। किन्तु इसके विपरीत दोनों देशोंके बीच सांस्कृतिक सम्बन्धोंका इतिहास बहुत पुराना और महत्त्वपूर्ण है। बौद्ध-धर्म, सन्त पद्मसम्भव, उसके लेख और साहित्यिक पुस्तकों तथा अन्य धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजोंकी परम्पराके लिए वह भारतका ही ऋणी है। भारतके तिब्बतके प्रति जो राजनीतिक सम्बन्ध रहे, उनमें केवल तीन घटनाएँ और उस समयकी भारतकी तटस्थ नीति उल्लेखनीय है। पहली घटना ई० स० १७९३ के क़रीब हुई, जब गोरखोंने तिब्बतके ताशी-लुंफो नामक स्थानपर आक्रमण किया। यह आक्रमण असफल रहा। क़रीब ६२ वर्ष बाद गोरखोंने फिर आक्रमण किया, किन्तु आन्तरिक झगड़ोंके कारण उन्हें वापस लौट आना पड़ा। यह दूसरी घटना थी। तीसरी घटना तब हुई, जब सन् १८४१ में जम्मूके महाराज गुलाब सिंहने तिब्बतपर आक्रमण किया। इस आक्रमणमें सरदार जोरावर सिंहकी अध्यक्षतामें ५००० डोंगरा राजपूत-सैनिकोंने भाग लिया था। युद्धमें किसी भी पक्षकी निश्चित हार या जीत नहीं हुई और लद्दाखकी सन्धि द्वारा इस युद्धका अन्त हो गया। इस सन्धि द्वारा तिब्बत और जम्मू दोनोंने आपसमें शान्ति रखनेकी प्रतिज्ञा की थी। नैपाल और तिब्बतके बीच भी सन् १८५६में एक शान्ति-सन्धि हो गई, जिसके अनुसार तिब्बतने नैपालको १०,००० रुपये प्रतिवर्ष भेंटके रूपमें देना स्वीकार कर लिया। यहाँपर बाबू चन्द्रादासका उल्लेख भी कर देना उचित जान पड़ता है। उन्होंने सन् १८७९ और १८८३ में दो बार तिब्बतकी यात्रा की और भारत तथा तिब्बतके तुलनात्मक इतिहासका अध्ययन किया।

ब्रिटेनने भी प्रारम्भमें तिब्बतके राजनीतिक मामलोंमें कोई विशेष हिस्सा नहीं लिया, क्योंकि उस समय भारतमें साम्राज्य विस्तारके कार्यमें उसे अधिक लाभकी आशा थी। एकाध बार तिब्बतसे सम्बन्ध स्थापित करनेके प्रयत्न अवश्य किये। सन् १७७४ में वारेन हेस्टिंग्जने मि० बोगीकी अध्यक्षतामें एक शिष्ट-मण्डल तिब्बत भेजा था और इसके बाद दूसरा ही मण्डल कप्तान टर्नरकी अध्यक्षतामें भेजा गया।

१९वीं शताब्दिके मध्यमें रूस एक साम्राज्यवादी शक्तिके रूपमें संसारके सामने आया। उसी समयसे ब्रिटेनने तिब्बतके मामलोंमें अधिक दिलचस्पी लेनी आरम्भ की। १८७[illegible] में ब्रिटेनने अपने तिब्बतके सम्पर्कोंको पुनर्जीवित करनेके [illegible] किये और क़रीब १२ वर्ष बाद सिक्किमके रास्तेसे तिब्बत [illegible] चनेके लिए एक सड़क बनानेके प्रस्तावपर क्रियात्मक [illegible] की गई। इसके अगले साल ही तिब्बतियोंने भारतीय [illegible] घुसना प्रारम्भ किया और उन्हें मार भगानेके लिए ब्रिटिश भारतसे सेना भेजनी पड़ी। सन् १८८३ में जब तिब्बतियों[illegible] गाटोंगके अंगरेजी कैम्पपर हमला किया, उस समय [illegible] देशोंके सम्बन्ध काफ़ी बिगड़ गये। किन्तु सन् १८९० [illegible] सन्धि द्वारा युद्ध रुक गया। इस सन्धि द्वारा चीनने सिक्किम के सम्बन्धमें अंगरेजी दावोंको मान लिया और दोनों देशों[illegible] बीचकी सीमाओंकी परिभाषा भी निश्चित कर दी गई। [illegible] वर्ष बाद चीनने भारत और तिब्बतके बीच होनेवाले व्यापार सम्बन्धमें एक व्यापारिक समझौता किया। किन्तु तिब्बतियों[illegible] इस समझौतेको माननेसे इसलिये इन्कार कर दिया, क्योंकि [illegible] सम्बन्धमें उनकी राय नहीं ली गई थी।

सन् १९०३ में एक ब्रिटिश शिष्ट-मण्डल भेजा गया [illegible] इस मण्डलने शीघ्र ही लासापर आक्रमण करनेका रूप ले लिया [illegible] फलस्वरूप सन् १९०४ में एक सन्धि की गई और इसके [illegible] स्वरूप तिब्बतको ७५ लाख रुपये हर्जाने तौरपर देनेके [illegible] मजबूर किया गया। बादमें यह रक़म घटाकर २५ लाख [illegible] कर दी गई और तीन हफ़्तोंमें इसका भुगतान चीन द्वारा [illegible] गया। यह एक रहस्यपूर्ण और आश्चर्यजनक बात है [illegible] तिब्बतियोंके व्यवहारके लिए चीनने यह रक़म देनी कैसे [illegible] क्यों स्वीकार कर ली ? इसके बाद और विशेषकर [illegible] तिब्बतपर स्थापित बहुत पुराने राजनीतिक प्रभुत्वके समाप्त हो जानेके बाद तिब्बत और ब्रिटेनके बीचके सम्बन्ध [illegible]

सुधरते गये। यहाँ तक कि सन् १९०९ में राजधानीसे भाग कर दलाई लामाने भारतमें ही शरण ली थी।

तिब्बतमें ब्रिटेनकी नीतिके संचालनका मुख्य आधार यह था कि तिब्बतके आन्तरिक मामलोंमें यथासम्भव हस्तक्षेप न किया जाय, किन्तु उसके विदेशी मामलों, सम्बन्धों और आस-पासके प्रदेशोंमें होनेवाली घटनाओंका सतत् अध्ययन करते हुए सचेत रहा जाय। अंगरेजोंका ध्येय तिब्बतसे व्यापारी-सम्बन्धों को दृढ़ करना और उसे रूस और भारतके बीचमें एक स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें स्थापित रहने देना था। उन्होंने कभी भी चीनका तिब्बतमें जो स्थान या प्रभाव था, उसको खुलेआम चुनौती नहीं दी और न उसे अस्वीकार ही किया। बल्कि सन् १९०६ की पेकिंग-सन्धि द्वारा तथा सन् १९०७ के रूसके साथ किये गये समझौते द्वारा तो अंगरेजोंने तिब्बतके ऊपर चीनके प्रभुत्व को और भी शक्तिशाली बना दिया। क्योंकि इन सन्धियों द्वारा उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि तिब्बतके सम्बन्धमें वे जो भी बातचीत करेंगे, वे सब चीनके द्वारा ही होंगी।

अब निकट भविष्यमें क्या होनेवाला है ? आजकी जैसी स्थिति है, उसको देखते हुए अगर लाल चीनने अपना पंजा तिब्बतपर जमानेका निर्णय कार्यान्वित किया, तो तिब्बत उसके लिए एक आसान शिकार सिद्ध होगा। यद्यपि मुख्य भूमिमें अपने आपको अच्छी तरहसे जमानेमें उन्हें कुछ समय लगेगा, तथापि वे इस बीचमें प्रचार-युद्ध और जनताके असन्तोषी-वर्ग को साम्यवादमें दीक्षित करनेका कार्य करके ही सन्तोष मान लेंगे। किन्तु अगर सैनिक-कार्यवाहीका ही आश्रय लिया गया, तो परिणामका अन्दाजा आसानीसे लगाया जा सकता है।

यह भी सम्भव है कि तिब्बतमें चीनकी साम्यवादी-सरकार किसी प्रकारके युद्धके बाद शान्ति-समझौते या सन्धि-जैसी वस्तुको स्वीकार करनेका खतरा उठाना ठीक न समझे : क्योंकि अगर ऐसा किया गया, तो उसकी प्रतिक्रिया अन्य प्रदेशोंपर अच्छी नहीं होगी। अतएव अधिकतर तो वह ऐसे सरल मार्गका अवलम्बन लेगी, जिससे तिब्बतके अन्दर क्रान्ति के बीज बो दिये जायँ और विद्रोह या विद्रोहके डरसे दलाई लामाकी शक्तिको छिन्न-भिन्न कर दिया जाय। इस प्रकारकी अप्रत्यक्ष कार्यवाहीका प्रमाण इससे अधिक और क्या हो सकता है कि अभी हालमें लाल चीनकी सरकारने 'पानसेन' लामाको 'संरक्षण' प्रदान किया है। वैसे साधारण समयमें भी लासाकी सरकारके लिए तिब्बतमें शान्ति क़ायम रखनेका काम काफ़ी कठिन होता है, फिर अगर बाहरी तत्वोंकी सहायतासे कोई क्रान्ति या विद्रोह किया गया, तो उसका सफलतापूर्वक सामना करना क़रीब-क़रीब असम्भव ही होगा। साथ-ही-साथ साम्य-वादी चीन तिब्बतमें पुराने चीनी प्रभुत्वके प्रश्नको भी उठा सकता है या फिर तिब्बतमें व्यापक प्रचार-कार्य द्वारा साम्य-वादी विचारधाराके मजबूत हो जाने और आन्तरिक शासनके कमजोर हो जानेपर "शान्ति और सुरक्षा" स्थापित करने या "चीनी हितोंकी रक्षा" करनेके नामपर सैनिक-कार्यवाही कर वहाँ पर अपना प्रान्तीय-शासक नियुक्त कर देगी। चीन और तिब्बत के बीच जो सदियों पुराने सम्बन्ध रहे हैं, उन्होंने तिब्बतमें एक ऐसा वर्ग उत्पन्न कर दिया, जो चीनका बड़ा मजबूत पक्ष-पाती है। इस तत्वका साम्यवादियों द्वारा अपने लाभके लिए अधिक-से-अधिक उपयोग किया जायगा। यहाँपर एक बातका बहुत अधिक ध्यान रखना चाहिए और वह यह है कि अगर ऊपर लिखी हुई परिस्थितियाँ वास्तवमें अस्तित्वमें आईं, तो तिब्बतमें एक भीषण और अभूतपूर्व ढंगका क्रान्तिकारी परि-वर्तन होगा। यह परिवर्तन विश्वके इतिहासकी एक अनोखी घटना होगी ; क्योंकि मध्ययुगीन सामन्तशाही सभ्यतामें रहनेवाले एक रूढ़िवादी देशको अचानक बीसवीं सदीकी विचारधारा और नीतिको अपनाना पड़ेगा। और ऐसा उसे ऐसी स्थितिमें करना पड़ेगा, जब कि उसके लिए वहाँपर उपयुक्त आदर्शवादी पृष्ठभूमि और प्रजातन्त्रीय-शासन-प्रणालीकी शिक्षाका नितान्त अभाव होगा। ऐसी हालतमें वहाँपर जो भी कुछ हो जाय, वह थोड़ा है।

अब यह प्रश्न रह जाता है कि इन परिस्थितियोंका सामना करनेके लिए भारत क्या करे ? अगर भारतकी सुरक्षाको संरक्षित और भयमुक्त रखना है, तो यह अनिवार्यतः आवश्यक है कि तिब्बत स्वतन्त्र रहे। तिब्बतके साथ अच्छे-से-अच्छे और मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखनेमें ही भारतका सर्वाधिक

हित है और उसे इस बातकी कोशिश करनी चाहिए कि इस प्रकारका सम्बन्ध व्यापक और गहरा बनता चला जाय। ब्रिटेनकी 'अलग रहने'की नीति भारत और तिब्बत दोनोंके लिए विनाशकारी सिद्ध होगी। तिब्बतकी स्वतन्त्रताका स्वीकार और उसकी रक्षा तथा उसकी आवश्यकताओंकी पूर्ति भारत द्वारा पूरी की जानी चाहिए। तिब्बतमें होनेवाली घटना भारतका हित स्वाभाविक होनेके साथ-साथ तात्कालिक भी अतएव तिब्बतके भविष्यका प्रश्न भारतीय नेताओंकी दर्शिता और कार्यक्षमताकी कठिन कसौटी है। देखना है इस अग्नि-परीक्षामें से वे किस प्रकार सफलतापूर्वक निकलते

कात्यायन वररुचि

त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री

विधाता सद्गुणालंकृत पुरुषरत्नका जिन करोंके द्वारा सृजन करता है, विश्वके अलंकारस्वरूप उसी पुरुष-पुंगवका उन्हीं करोंके द्वारा विनाश भी कर देता है! इससे उसका अवैदग्ध्य ही व्यजित होता है।

सृजति तावदशेष गुणाकरं, पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः।
तदपि तत्क्षण भंगि करोति चेदहह कष्टमपंडितता विधेः॥

विख्यात् वार्तिककार 'कात्यायन वररुचि' का इतिवृत्त लिखते समय राजर्षि भर्तृहरिकी पूर्वोक्त अमरवाणी मेरे कर्ण-कुहरोंमें गूँज-सी रही है। हमारे चरितनायक शम्भुसेवक प्रसिद्ध पुष्पदन्तके अंशावतार थे। गिरिनन्दिनीका कोपभाजन बननेके कारण इन्हें नर-देह धारण करनी पड़ी थी। इनका उद्भव कौशाम्बीमें एक दरिद्र ब्राह्मण-परिवार—ईसासे पूर्व तृतीय शतकमें हुआ था। इनके पिताका नाम 'सोमदत्त' या 'अग्निशिख' एवं माताका नाम 'वसुदत्ता' था। जन्मके थोड़े ही दिनोंके पश्चात् इनके पिता दिवंगत हो गये। तदनन्तर इनकी माताको दारुण दुःखोंका सामना करना पड़ा, यहाँ तक कि उन्हें अपने प्राणाधिक पुत्रके पालन-पोषणके लिए दास्य-वृत्ति भी स्वीकार करनी पड़ी।

एक दिन इनके घर संध्या समय दो ब्राह्मण-कुमार आये। एकका नाम 'व्याडि' था और दूसरेका 'इन्द्रदत्त'। इनकी माताने उन दोनोंका अत्यन्त आदर किया और रात्रिमें उनसे 'प्रातिशाख्य'का प्रवचन करनेका अनुरोध किया। उन दोनोंने अपने कलित कण्ठसे 'प्रातिशाख्य'का पाठ करना प्रारम्भ किया। बालक वररुचिने उसे हृदयंगम कर लिया और अविकल रूपसे उनके सामने पुनः प्रवचनकर सबको आश्चर्यान्वितकर म मुग्ध कर दिया। अब उन ब्राह्मण-कुमारोंके हर्षका पार न था। 'व्याडि'ने गद्गद् होकर कहा, हे मातः! 'इन्द्रदत्त' मेरे पूज्य पितृव्यका पुत्र है। हम दोनोंके मा पिता बाल्यावस्थामें ही परलोकवासी हो गये और हम अनाथ होकर विश्वमें भटकने लगे। कुमार कार्त्तिकेयसे स्व आदेश पाकर हम लोग पाटलिपुत्र आचार्य 'वर्ष' की खो गये। वहाँ जब लोगोंसे 'वर्ष'के विषयमें हम लोगोंने पू तो उत्तर मिला कि यहाँ 'वर्ष' नामका विद्वान् नहीं, अ एक मूर्ख रहता है और उसका वह घर है।

जब हम लोग 'वर्ष' के घरमें प्रविष्ट हुए, तब हमें प्रतीत हुआ, मानों यही विपदाका जन्मक्षेत्र है। चूहोंने बनाकर उसकी दीवारोंको जर्जर कर दिया था। उनकी मानों करुणाकी प्रतिकृति थी। वे स्वयं उसी घरमें एक शीर्ण कम्बलपर मौन मन विषण्ण होकर निषण्ण थे। पतिव्रता पत्नीके द्वारा उनका वृत्तान्त श्रुतिगत हुआ। उन्हीं ही हम लोगोंसे कहा कि एकश्रुतधर ब्राह्मण-कुमारके समक्ष ये अपनी विद्याओंका प्रकाशन कर सकेंगे। तुम लोग कथित ब्राह्मण-कुमारका अन्वेषण करो, अवश्य ही सर्वार्थसिद्धि होगी। उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करके हमलोग एकश्रुतधर खोजमें चले और महीनोंसे भटकते-भटकते श्रान्त-क्लान्त हो तुम्हारे घर आये। यहाँ तुम्हारे बुद्धिमान् बालकको देख कृतकृत्य हो गये, यह अवश्य ही एकश्रुतधर छात्र है। तुम इसके भविष्यको उज्ज्वल देखना चाहती हो, तो ममता

परित्याग कर उसे आचार्य 'वर्ष' के श्रीचरणोंमें समर्पित कर दो। यह सुनकर 'वसुदत्ता' ने कहा, मैं तुम्हारे प्रस्तावका अभिनन्दन करती हूँ। इसके जन्मके समय आकाशवाणी हुई थी कि "यह एकश्रुतधर होगा, आचार्य 'वर्ष' से शिक्षा ग्रहण कर व्याकरण शास्त्रमें प्रसिद्धि प्राप्त करेगा।" मैं स्वयं आचार्य 'वर्ष' को अपने प्रिय पुत्रका गुरु बनानेके लिए बहुत दिनोंसे चिन्तित थी, किन्तु उनका पता अज्ञात होनेके कारण मैं विवश थी। आज तुम लोगोंके मुखसे वर्षाचार्यके विषयमें जानकर अत्यन्त पुलकित हो रही हूँ।

प्रातःकाल 'वसुदत्ता'ने वाष्पगद्गद् कण्ठसे अपने पुत्रको आशीर्वाद दिया—'वत्स! तुम पुण्यपथमें अग्रसर हो, तुम्हारे मार्गके शूल भी फूल हों। मनस्विन्! तुम यशस्वी बनो।" एवं अन्यान्य समयोचित शिक्षाएँ प्रदानकर वररुचिको 'व्याडि' एवं 'इन्द्रदत्त' का अनुगामी बना दिया।

कुछ कालोपरान्त जब ये तीनों ब्राह्मण-कुमार 'वर्ष' की सेवामें उपस्थित हुए, तब 'वररुचि'को देखकर 'वर्ष' को अधिक आह्लाद हुआ और उन्होंने उस बालकको कुमार कार्त्तिकेयका मूर्त्त प्रसाद ही माना। सूर्योदय होनेपर वर्षने पवित्र भूमिमें अपने तीनों शिष्योंके समक्ष दिव्यवाणीमें ओंकारका उच्चारण किया। अब क्या था, स्कन्दके आशीर्वादसे उन्हें सांगोपांगों वेदोंका ज्ञान हो गया। एक बार सुनकर 'वररुचि', दो बार सुनकर 'व्याडि' तथा तीन बार सुनकर "इन्द्रदत्त" गुरुमुखोच्चरित वाणीको सुननेमें समर्थ होते थे। विपश्चित् 'वर्ष' के अश्रुतपूर्व पांडित्यको अवलोकन कर बुधवर्ग अत्यन्त विस्मित हुआ। राजा नन्दको जब यह समाचार कर्णगोचर हुआ, तब वे स्वयं वर्षके सम्मुख उपस्थित हुए और उनके घरको सुन्दर बनवाकर धन-धान्यसे परिपूर्ण कर दिया। यौवनके उद्गम-कालतक वररुचिको सम्पूर्ण शास्त्र हस्तामलकवत् हो गये। इन्हें सद्गुणसम्पन्न जानकर 'वर्ष' के अनुज 'उपवर्ष' ने अपनी शुभलक्षणा सुता 'उपकोशा' का पाणिग्रहण 'वर्ष' की अनुमति लेकर इनके साथ कर दिया। 'वररुचि' ने अपनी माता 'वसुदत्ता' को भी कौशाम्बीसे पाटलिपुत्र बुलवा लिया और सानन्द अध्ययन-अध्यापन करते हुए जीवन यापन करने लगे।

कुछ कालके अनन्तर 'वर्षाचार्य'के यहाँ छात्रोंका बहुत बड़ा समुदाय एकत्र हुआ। उनमें से एक छात्रका नाम 'पाणिनि' था। वह पहले अत्यन्त मूर्ख था, जिससे विद्यार्थी उसे बार-बार तिरस्कृत करते थे। एक दिन उसे अपना अपमान असह्य हो गया और वह खिन्न होकर उत्तर दिशाकी ओर चला गया, वहाँ हिमालयपर भगवान् चन्द्रमौलिकी उसने उपासना की। भगवान्ने प्रसन्न होकर उसे नव्य व्याकरण शास्त्र प्रदान किया। वह पुनः पाटलिपुत्र आ गया और वररुचिको ही शास्त्रार्थके लिए आह्वान् किया। आचार्य वर्षकी अध्यक्षतामें दोनोंमें सात दिनतक वाद-विवाद होता रहा, किन्तु किसीकी जय-पराजय नहीं हुई। आठवें दिन जब पुनः शास्त्रार्थ होने लगा, तब भगवान् पिनाक-पाणिने आकाशमें स्थित होकर अत्यन्त भयंकर हुँकार की, जिससे वररुचिके वर्गका ऐन्द्र व्याकरण नष्ट हो गया और पाणिनीको विजयश्रीने वरण किया।

इस घटनाका 'वररुचि'के ऊपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और वह परिवारका भी परित्याग कर, उत्तरा खण्डमें जाकर निराहार आशुतोषकी आराधनामें तल्लीन हो गये। भगवान्के अनुग्रहसे इन्हें भी पाणिनीय शास्त्रका ज्ञान हो गया और इन्हीं गंगाधरकी आज्ञाको शिरोधार्य कर इन्होंने 'वार्त्तिक' लिखकर नव्य व्याकरणकी न्यूनताओंकी पूर्ति की।

यह महान् कार्य करनेके पश्चात् जब ये पाटलिपुत्र आये, तब 'वर्ष', 'उपवर्ष' एवं 'वसुदत्ता'ने इन्हें आनन्दाश्रुओंसे परिप्लावित कर दिया। पति-पद-पद्मपरायणा पतिव्रता उपकोशा सुखसिन्धुमें विलीन हो गई।

प्रातःकाल गुरु 'वर्ष'के आदेशसे इन्होंने 'व्याडि' और 'इन्द्रदत्त'को भी नव्य व्याकरण सुनाया, परिणामस्वरूप इन लोगोंको भी पाणिनीयका सम्यक् रीतिसे ज्ञान हो गया।

एक दिन इन तीनों सहपाठियोंने आचार्य 'वर्ष'से गुरु-दक्षिणा माँगनेके लिए साग्रह अनुरोध किया। तदनन्तर विद्वान् 'वर्ष'ने एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ माँगीं। इन तीनों सहाध्यायियों (वररुचि, व्याडि और इन्द्रदत्त) ने विचार किया कि इतना वृहद् कोष पाटलिपुत्र नरेश 'नन्द'को छोड़कर भला और कौन प्रदान कर सकता है? अतः वहीं चलना श्रेयस्कर है।

ऐसा विचारकर अनन्त-ज्ञानमण्डित ये तीनों पण्डित राजप्रासाद की ओर चले। किन्तु ज्योंही गगनचुम्बी मणिमहलमें प्रविष्ट हुए, त्यों ही नन्द नरेशका शरीरपात हो गया और रानियोंके करुण क्रन्दनसे इन लोगोंका हृदय विदीर्ण होने लगा। क्षणकाल में ही मनः कल्पित सैकतसौध धाराशायी हो गया। आशा निराशामें परिणत हो गई। "हतविधिलसितानां हा विचित्रो विपाकः" कहकर 'व्याडि'ने दीर्घ निःश्वास लिया और कहा कि चलो, लौटें।

वहाँसे तीनों गंगा तटपर एक निर्जन देव-मन्दिरमें चले आये और एक स्फटिकशिलापर बैठ गये। 'वररुचि'ने कहा कि अन्य कोई उपाय सोचो, तब 'इन्द्रदत्त'ने कहा कि यदि तुम लोग मेरी सम्मतिसे सहमत हो सको, तो मैं एक कौतूहलवर्द्धक कार्य करूँ। 'व्याडि'ने कहा—बोलो। 'इन्द्रदत्त'ने कहा कि मैं योगबलसे अपने स्थूल शरीरमें से सूक्ष्म शरीरको निकालकर राजाके मृत कलेवरमें प्रविष्ट करा कर कुछ कालतक मृत महीपतिको जीवित कर सकता हूँ। फिर तत्काल यदि 'कात्यायन' (वररुचि) आकर गुरुदक्षिणाकी याचना कर दे, तो मैं एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ प्रदान करनेके लिए प्रधान मन्त्रीको आदेश भी दे सकता हूँ, किन्तु मेरे इस त्यक्त तनुकी रक्षाका भार तुम्हारे (व्याडिके) ऊपर होगा। 'व्याडि'ने कहा—'एवमस्तु'।

'इन्द्रदत्त'ने 'शुभस्य शीघ्रम्' कहकर अपनी योजनाको कार्यान्वित किया। 'व्याडि' उसके शरीरकी रक्षामें अस्त-व्यस्त हो गया। 'कात्यायन' (वररुचि) राजसदनकी ओर चले। परिजन अभी विमानादिके निर्माणमें लगे थे, तबतक राजाने अँगड़ाई ली और 'नमः वासुदेवाय' कहकर उठ बैठे। अभी रुदन-क्रन्दन हो रहा था, अब शहनाइयाँ बजने लगीं, तोरण पताकाएँ सजने लगीं और तोपें गरज-गरजकर दिक्कुंजरोंके कर्णकुहरोंको बधिर करने लगीं। सशोक अशोक हो गये।

सहसा "स्वस्ति राजन्!" कहकर 'वररुचि' राजाके समक्ष उपस्थित हो गये और एक करोड़ स्वर्ण मुद्राओंकी याचना कर दी। राजाने शकटाल (मन्त्री) को स्वर्ण मुद्राओंके प्रदान करनेके लिए बिना 'ननु नच'के आदेश दे दिया। चतुर मन्त्री इस दृश्यको देखकर आश्चर्य-चकित रह गया, फिर कुछ सोचकर शीघ्र बोला—'देव! जो आज्ञा'। इन्हें अवश्य एक क स्वर्ण मुद्राएँ मैं प्रदान कर दूँगा। ये किंचित् कालतक प्र करें, क्योंकि परिजन उत्सवोंमें व्यस्त हैं। ऐसा कहकर उ यनके रहने एवं भोजनादिकी व्यवस्था कर दी और कार्यालयसे एक विशेष विज्ञप्ति प्रकाशितकर सम्पूर्ण रा पदाधिकारियोंको आज्ञा दे दी कि जहाँ कहीं शव हो उसे प्रवाहित मत करो, बल्कि उसे अग्निमें दग्धकर भस्मावशेष दो। शवोंके दग्ध करनेमें जो व्यय होगा, उसे राज्य व करेगा। इस कार्यके लिए एक विशेष विभाग खोल दिया ग

उक्त विभागके गुप्तचरोंने 'इन्द्रदत्त'के शरीरका भी लगा लिया। 'व्याडि'से छीनकर इन्द्रदत्तका शरीर अग्निदे सादर समर्पित कर दिया गया। इसके पश्चात् 'वररुचि' एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ प्रदान कर दी गईं। 'वररुचि' जब स्व मुद्राएँ लेकर उस देव-मन्दिरमें पहुँचे, तब इन्होंने 'व्याडि' विलापलीन देखा एवं जब दुःखद वृत्तान्त सुना, तब व्याडि कहा, मित्र, "त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले"। क्या तुम भी समझाना पड़ेगा! श्री मद्भगवद्गीताका महामन्त्र तुम विस्मृत हो गया!

अव्यक्तादीनि भूतानि, व्यक्त मध्यानि भारत।
अव्यक्त निधनान्येव, तत्रका परिदेवना ॥[1]

वयोवृद्ध व्यासकी विमल वाग्धारासे अपने हृदय शोकाग्निको निर्वापित करो। क्या तुम्हें स्मरण नहीं?

जातस्यहि ध्रुवोमृत्युः, ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येर्थे, न त्वं शोचितुमर्हसि ॥[2]

वयस्य व्याडि! चलो, उठो, गुरुदेवके श्रीचरणोंमें स

१ हे भारत! जन्मसे पूर्व प्राणी अलक्षित रूपमें ही रहता है जन्मके पश्चात् जबतक जीवित रहता है, तबतक अवश्य दृष्टिगत होता है। किन्तु मरणोत्तर कालमें फिर अदृश्य हो जाता है, अतः विश्वके एक अटल सत्यको जानते हुए भी विलापकी क्या आवश्यकता है?

२ जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है और जो मरता है, वह अवश्य पुनर्जन्म ग्रहण करता है। अतः एक अपरिहार्य वस्तुके लिए तुम्हें शोकाकुल होना उचित नहीं।

मुद्राएँ अर्पित करें और उन्हें भी वस्तुस्थितिका ज्ञान कराकर इन्द्रदत्त (योगनन्द) के पास चलकर, सारा वृत्तान्त कहकर अपने भविष्यके विषयमें विचार-विनिमय करें।

'वररुचि' 'व्याडि'के साथ गुरु-गृहकी ओर चले और घर पहुँचकर गुरुवरके श्रीचरणोंमें वह बृहद्‌कोष अर्पित किया। निस्पृह गुरु वर्षने उन लोगोंके पत्र-पुष्पको सप्रेम स्वीकार किया और 'इन्द्रदत्त'का वृत्तान्त सुनकर विस्मित हो गये। फिर इन लोगोंके नेत्रोंसे अश्रु-प्रवाह देखकर कहने लगे—

अहन्यहनि भूतानि, गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति, किमाश्चर्यमतः परम्॥[3]

तत्पश्चात् 'वररुचि' एवं 'व्याडि'ने पूज्य गुरुदेवसे विदा लेकर इन्द्रदत्त (योगनन्द) के महलकी ओर प्रस्थान किया। दोनों ही व्यक्ति योगनन्दसे एकान्तमें मिले। व्याडिने रो-रोकर योगनन्दसे उसके पूर्व शरीरके दग्ध होनेका वृत्तान्त कहा। उस समय योगनन्दकी मनोदशा विचित्र थी, उसके नेत्र अश्रु प्रपूरित थे। फिर व्याडिने कहा कि जो बात बीत गई उसके लिए चिन्ता करना व्यर्थ है, अब तो यह देखना है कि "कः कालः, कानिमित्राणि। सहृदय सुहृद ! सुनो ! हम तुमसे एक उचित परामर्श करने आये हैं। मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि तुम 'शकटाल' सचिवको बन्दीगृहमें डालकर उसके स्थानपर कात्यायन वररुचिको अपना प्रधान मन्त्री बना लो, अवश्य ही इस मणिकाञ्चन संयोगसे तुम दोनोंका पथ प्रशस्त होगा। क्योंकि शकटाल तुम्हारे चरित्रको पूर्णतः जानता है, वह अवसर देख कर तुम्हारा वध कर देगा और पूर्वनन्दके पुत्र चन्द्रगुप्तको राजगद्दीपर बिठा देगा।

'व्याडि'की बातोंको सुनकर 'योगनन्द'ने कहा—अभिन्न मेरे ! मैं नृप-पद पाकर प्रसन्न नहीं हूँ। यह राज्य मेरे लिए विडम्बना है। मैं तुम्हारे विचारोंका अभिनन्दन करता हूँ। मेरा विचार है कि तुम भी हम लोगोंके साथ राज्यके सुखोंका उपभोग करो। यह सुनकर 'व्याडि' ने कहा, "मैं राज्य-सुखोंमें लिप्त नहीं होना चाहता, तुम वररुचिको अपने आश्रममें रखो। मैं अन्यत्र किसी तपोवनमें जाकर साधना करूँगा।" यह कह कर 'व्याडि'ने वहाँसे प्रस्थान किया। तदनन्दर 'योगनन्द'ने 'शकटाल' सचिवको उसके पुत्रों समेत, बन्दीगृहमें डाल दिया और उन्हें खानेके लिए अपर्याप्त रूपसे सत्तू और जल प्रदान करने लगा।

शकटालने अपने शतपुत्रोंसे कहा, यह सत्तू और जल तो एक व्यक्तिके लिए भी पर्याप्त नहीं, एक सौ एक (१०१) व्यक्तियोंकी तो बात ही क्या ? अतः इसे वही खाये जो 'योगनन्द'का प्रतिकार दे सके। पुत्रोंने साश्रु होकर एक स्वरसे कहा—"आप ही इसे खाइये, हम सबमें आप ही समर्थ हैं।" 'शकटाल' ने वैसा ही किया। कुछ ही दिनों बाद उसके पुत्रोंको बुभुक्षाके कारण तड़प-तड़पकर प्राणोंका विसर्जन करना पड़ा और शकटाल अपने वक्षस्थलपर शिला रखकर पुत्र-शोकको प्रतिक्रियाकी भावनासे सहन करता रहा।

इधर वररुचिने उसके रिक्त स्थानकी पूर्ति की। कुछ काल पश्चात् 'योगनन्द' कामदेवोपासनामें इस भाँति तल्लीन हो गया कि राज्य-कार्यको भी भूल गया। इससे वररुचि अत्यन्त चिन्तित हुए और उन्होंने 'योगनन्द' से कहा, आप पूर्वसचिव 'शकटाल'को बन्दीगृहसे मुक्त कर दें। क्योंकि वह राज्य-कार्यमें कुशल-व्यक्ति है। उससे आपको भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं, मेरे रहते वह आपका कोई अनिष्ट नहीं कर सकता। 'योगनन्द' ने वररुचिकी बात मान ली और उसे कारागारसे मुक्त कर दिया। चतुर 'शकटाल' पुनः अपने पूर्व पदपर प्रतिष्ठित हो गया और वैतसीवृत्तिका आश्रय लेकर 'वररुचि' को सहयोग देने लगा। किन्तु योगनन्दके कुकृत्योंको वह भुला नहीं सका और अवसरकी प्रतीक्षामें रहा।

एक दिन 'योगनन्द' अपने महामति मन्त्रियों समेत रम्य रथपर बैठकर किसी वनस्थलीमें मनोविनोदार्थ गये थे। लौटते समय एक रानीको एक पथिककी ओर वातायनसे उन्मुख होती देखकर सैनिकोंको आदेश दिया कि इस मनुष्यको पकड़कर वध्यभूमिकी ओर ले चलो। इसे प्राणदण्ड दिया जायगा। वह व्यक्ति जब वध्यभूमिकी ओर ले जाया जा रहा था, तब

३. प्रतिदिन प्राणी यमगृहकी ओर प्रस्थान कर रहे हैं, फिर भी जो शेष हैं, वे चाहते हैं कि सदैव जीवित रहें, इससे बढ़कर आश्चर्यजनक बात और क्या हो सकती है।

विपणि (बाज़ार) में एक मृत-मत्स्य यह दृश्य देखकर हँस पड़ा। राजाको मृत-मत्स्य-हास्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कुछ कालके लिए उसे प्राणदण्डसे मुक्तकर कारागारका अतिथि बना दिया और वररुचिसे मृत-मत्स्य-हास्यका रहस्य पूछा। वररुचिने कहा, मैं विचारकर कल उत्तर दूँगा।

'वररुचि' बड़े असमंजसमें पड़े और एकान्त स्थानमें जाकर सरस्वतीका चिन्तन करने लगे। कुछ कालके पश्चात् शुक्लाम्बर-धारिणी वीणापुस्तकरञ्जितहस्ता भगवती भारती उनके सम्मुख उपस्थित होकर कहने लगीं, "तुम गंगा-तटपर श्मशानमें तालवृक्षके नीचे जाना, किसी प्रकारका भय मत करना, तुम सबको देख सकोगे, तुम्हें कोई नहीं देख सकेगा। वहीं तुम्हें मृत-मत्स्य-हास्यका रहस्य उपलब्ध होगा।" यह कहकर सरस्वती तिरोहित हो गईं।

शारदाके आदेशसे जब 'वररुचि' श्मशानमें तालवृक्षके नीचे गये, तब निशीथ बेलामें एक भयंकर पिशाचिनी अपने पुत्रों सहित उपस्थित हुई। उसके लड़के जब उससे मांस माँगने लगे, तब उसने कहा कि जिस पथिकका वध होनेवाला था, उसका वध आज रोक दिया गया है, कल जब वह मारा जायगा, तब मैं तुम लोगोंको उसका मांस दूँगी। उसके लड़कों ने पूछा, "वह आज क्यों नहीं मारा गया ?" तब उस पिशाचिनीने कहा—'जब वह वध्यभूमिकी ओर ले जाया जा रहा था, तब एक मृत-मत्स्य हँस पड़ा, अतः उसका वध कुछ कालके लिए स्थगित कर दिया गया। फिर जब उसके पुत्रोंने मृत-मत्स्यके हास्यका कारण पूछा, तब उस पिशाचिनीने रहस्योद्‌घाटन करते हुए कहा, "अन्तःपुरमें बहुत-सी रानियाँ व्यभिचारिणी हो गई हैं, और उनके यहाँ बहुत-से छद्मवेशी पुरुष रहते हैं, किन्तु राजाको इन बातोंका पता नहीं है। वह पथिक ब्राह्मण तो नितान्त निर्दोष है। मृत-मत्स्य-हास्यका यही रहस्य है।"

प्रातःकाल जब वररुचिने 'योगनन्द'के समक्ष मृत-मत्स्यके हास्यका रहस्योद्‌घाटन किया, तब 'योगनन्द'ने छद्मवेशी युवकों एवं रानियोंको दण्डित किया, किन्तु साथ ही उसे 'वररुचि'के विषयमें दुःशंकाएं होने लगीं कि अवश्य ही रानियोंके साथ इसका बुरा व्यवहार है, अन्यथा इस बातका पता इसे लगा ? फलतः उसने सचिव 'शकटाल'को एकान्तमें ले कहा कि मैं तुम्हें मन्त्री रखना चाहता हूँ, तुम किसी वररुचिका वध कर दो। शकटालने कहा—'राजन्! जो आ शकटालने शून्यसदनमें जाकर अपने मनमें विचारा कि, नन्द अत्यन्त दुष्ट है और वररुचि मेरा उद्धारक है, अतः जघन्य कर्मकर मैं अधन्य न बनूँ, मेरे लिए यही श्रेयस्कर कि मैं 'वररुचि'को अपने घरमें सुरक्षित रूपसे रख दूँ, राजासे कह दूँ कि मैंने उसका वधकर उसे गंगाकी गड़वा दिया।

उसने सारी कथा 'वररुचि'को सुनाकर अन्य व्यक्ति कर 'वररुचि'को अपने घरमें छिपा दिया और राजासे वध वधका वृत्तान्त कह दिया। राजा शकटालका अब आदर करने लगा और इधर शकटालके सदनमें 'वररुचि' वद्‌भजन-पूजनमें अपना पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे।

एक दिन राजा योगनन्दके सम्मुख अत्यन्त समस्या उपस्थित हो गई, जिसे सुलझानेमें शकटाल असमर्थ रहे। उस समय योगनन्दको अपने सखा एवं वररुचिका स्मरण हो आया और वह उनका नाम लेकर नयन हो गया। 'शकटाल'ने बुद्धिमान् 'वररुचि'को प्रकट का अनुकूल अवसर देखकर कहा यदि आप मेरे अपराध लिए मुझे क्षमा प्रदान करें तो मैं आपकी सेवामें वररुचि उपस्थित करूँ। राजाने कहा—'एवमस्तु' उसे उपस्थित

शकटालने 'वररुचि'को राजाके सम्मुख उपस्थित योगनन्दने हर्षित होकर वररुचिको अपने हृदयसे लगा और अपने पूर्वकृत्यके लिए क्षमायाचना की। वररुचिके होनेका सुखद समाचार सुनकर वृद्ध 'वर्षाचार्य' एवं 'उप चार्य' राजमहलमें आये और वररुचिको हृदयसे लगाकर कर कहने लगे कि तुम्हारे वधका वृत्तान्त सुनकर 'उप चितानलमें भस्मसात् हो गई और तुम्हारी मातासे भी शोक असह्य हो गया, अतः उसका हृदयविदीर्ण हो गया वह भी दिवंगत हो गई।

इस विकट संकटसे वररुचि विचलित होकर विलाप

लगे और फिर सबसे विदा लेकर बद्रिकाश्रम तपस्यार्थ चले गये। वहीं कुछ वर्षोंके पश्चात् उन्हें एक यात्रीसे ज्ञात हुआ कि सचिव 'शकटाल'ने चतुर 'चाणक्य'की कूटनीतिका आश्रय लेकर 'योगनन्द'को तत्तनय 'हिरण्यगुप्त'के सहित यमलोक भेज दिया और 'पूर्वनन्द'के पुत्र 'चन्द्रगुप्त'का राज्याभिषेक किया।

उक्त समाचार सुनकर 'वररुचि' अत्यन्त दुःखी हुए और वहाँसे विन्ध्याचलकी ओर प्रयाण किये। यहाँ विन्ध्यवासिनीने इन्हें स्वप्नमें आदेश दिया—"तुम विन्ध्याटवीमें जाकर कुवेर-किंकर 'काणभूति'से मिलकर उसका उद्धार करो।" देवीसे आदेश पाकर जब ये 'काणभूति'के निकट गये, तब इन्हें तत्काल अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया, मानों इनकी चिरनिद्रा भंग हो गई। तत्पश्चात् इन्होंने 'काणभूति'के सम्मुख शम्भु-मुख-निसृत ललित कथाओंका प्रवचन किया, जिसे बादमें 'काण-भूति'से सुनकर गणोत्तम 'गुणाढ्य'ने सात लाख श्लोकोंमें ग्रथित किया।

'काणभूति'को अपने दिव्य दर्शन और पवित्र प्रवचनसे कृत-कृत्यकर 'कात्यायन वररुचि'ने धारणाके द्वारा निज तनको तृणवत् त्यागकर शिव-लोकमें जाकर पुण्योपार्जित अपने पूर्व-पदको पुनः प्राप्त किया।

यद्यपि शताब्दियोंसे विश्वविश्रुत वार्त्तिककार 'कात्यायन वररुचि' शम्भु-सभाको अलंकृत कर रहे हैं, तथापि उनकी कीर्ति कोकिला अनन्त कालसे विश्व-वाटिकामें कलकूजन कर रही है। इसमें रत्तक-मात्र भी सन्देह नहीं कि ज्यों-ज्यों विद्याका विकास होगा, त्यों-त्यों इनकी अमर आत्माके अलौकिक आलोकसे जगत् अत्यधिक आलोकित होगा।

चयन

गुरुदेव टागोर

र० चिदंबरेश

भारतीय इतिहासमें ६ मई, १८६१ का दिन सदा स्मरणीय रहेगा। इसी दिन कलकत्तामें सुप्रसिद्ध ठाकुर-परिवारमें हमारे समयके सबसे बड़े कवि और द्रष्टा रवीन्द्रनाथका जन्म हुआ था। यह उनकी ८९ वीं जयन्ती थी। वे भारतके ही नहीं, अखिल मानव-समाजके कवि थे। उनके लिए "सारा इतिहास एक अखण्ड और समग्र है, और वह है मनुष्यका इतिहास। राष्ट्रिय इतिहास उसी बड़े इतिहासके खण्ड-मात्र हैं।"

सन् १९४० के आरम्भकी बात है। उनकी मृत्युके ठीक एक वर्ष पूर्व शान्तिनिकेतनमें आक्सफोर्ड युनिवर्सिटीकी ओरसे उन्हें साहित्याचार्य (डी० लिट्०) की उपाधि देनेके लिए एक विशेष पदवी-दान-समारोह हुआ था। उस समय युनिवर्सिटीकी ओरसे श्री ए० हेण्डरसनने कविकी अप्रतिम गुण-सम्पद्की चर्चा करते हुए जो कहा था, उसके अन्तिम शब्द ये थे—"और अधिक मैं क्या कह सकता हूँ! आप बहुमुखी प्रतिभावान कवि और लेखक हैं, प्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं, ऐसे दार्शनिक हैं जिनकी दार्शनिकता शब्द और कृति दोनोंमें प्रकट हुई है, विद्या और सत्-सिद्धान्तके पक्षपाती हैं, जनताके अधिकारोंके निष्ठावान संरक्षक हैं, अपने जीवन और चारित्रकी पवित्रता द्वारा सारी दुनियाका आदर पाये हुए हैं। तो मैं अब पेश करता हूँ सरस्वतीके अत्यधिक प्रिय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरको, जिन्हें 'नोवल पुरस्कार' मिल चुका है, और आपसे विनय करता हूँ कि आप उन्हें अब आक्सफोर्डकी विजय-माला, साहित्याचार्यकी उपाधि दें।"

एटम बम आ गया है, हाइड्रोजन बमकी शोध हो रही है, और राष्ट्रोंके आपसी सम्बन्ध खिंचते ही जा रहे हैं। स्थितिमें लोग निराशामें डूब गये हैं। विश्व-शान्तिकी तो नहीं ही रही, भगवान् और भलाई (सत्प्रवृत्तियों) लोग बहुत ज़्यादा श्रद्धा खो बैठे हैं। आपसी द्वेष ईर्ष्या और हिंसाके इस सूखे-सँकरे अन्धकारपूर्ण वाता कविके शब्द ठण्डी और ताज़ी बयारका संजीवन असर हैं। वे हिंसासे नफ़रत करते थे। एक बार जापानमें किन्हीं दो जापानी वीरोंके कृत्यपर अपनी राय देनेके लिए गया। ये दोनों आपसमें बहादुरीके साथ लड़े और कविने अपने अनुपम ढंगसे कहा, "उन्होंने द्वेष किया एक-दूसरेको मारा और लोगोंने उनकी स्तुति की। भगवान्को शर्म आई और उसने इस दुःखद यादको हरी घाससे ढक दिया।"

वे हमेशा दुनियासे नीति और धर्मकी अन्तिम विश्वास रखनेके लिए कहते थे। हिंसा कितनी भी पाशवी देखनेमें ज़ोरदार क्यों न हो, आख़िर उसकी एक सीमा आ है। लेकिन भलाई, प्रेम, सौन्दर्य, सत्य और अहिंसा और शाश्वत हैं। शान्तिनिकेतनके सन् १९४० के पदवी समारंभके भाषणमें उन्होंने कहा था, "भयानक है यह दुःख बढ़ रहा है, और कोई भी क़ीमती चीज़ हासिल हो रही है। एकके बाद एक देशपर विनाशकी छाया चढ़ती रही है। बर्बरताका ताण्डव चल रहा है। विज्ञानका पाकर अधिकारकी प्यास बढ़ती ही जा रही है। ऐसे समयमें कहना कि सारी दुनियाको एक सूत्रमें बाँधनेवाला कोई प्रकट हो रहा है, शायद कविकी कल्पना मानी जायगी। हिंसाका दौर वर्त्तमानमें कितना ही तीव्र क्यों न हो, वह दिन नहीं चल सकता; उसकी हद है और वह ख़तम जायगा। हम लोगोंको—जो वर्त्तमानके उस पार रहनेवाले

जो कालसे भी परे जीवनके निवासी हैं—अपना यह विश्वास क़ायम रखना चाहिए कि मानव-संस्कृति अटूट क्रमसे किसी चरम लक्ष्यकी दिशामें निरन्तर बढ़ती ही रहेगी।"

कविकी सारी रचनाएँ—गीतांजलि, वनमाली, नौका डूबी, चित्रा, आदि—की बुनियादमें एक ही तत्व है—प्रेम, सत्य, सौन्दर्य। ये गूढ़ विधायक शक्तियाँ न होतीं, तो दुनिया कभीकी खतम हो गयी होती। हिंसा जैसी असत् शक्तियाँ हिंसाका अन्त नहीं कर सकतीं, आगसे कभी आग नहीं बुझ सकती; क्योंकि वे तो परस्पर अपना अन्त कर लेनेके लिए ही हैं। कविने कहीं कहा है, "डरावनी आँधियोंकी इस दुनियाको सौन्दर्यका गीत ही शान्त रखता है। हमारे आसपास रही हर चीजका अन्तिम रहस्य प्रेम है। अनन्तकी बाँसुरी लगातार प्रेमकी रागिनी बजा रही है। प्रेम ही वह सत्य है, जो बाक़ी सारे सत्योंको सत्य बनाता है। जब प्रेम अपनी सीमाएँ तोड़ देता है, तब वह सत्यको पहुँच जाता है।" और यह सत्य ही तो भगवान् है।

रवीन्द्रनाथका यह अत्यन्त गहरा, फिर भी सरल जीवन-दर्शन किसी जीवनसे विरत बुद्धिवादीका विचार नहीं है, या निष्क्रिय कल्पना-विलासीका सपना नहीं है। वे पक्के यथार्थ-वादी थे। भगवान्को उन्होंने मन्दिरों और मसजिदोंमें नहीं, लाखों मेहनतकशोंकी मूर्त्तिमें देखा था। उन्होंने कहा है—"भगवान् राह देखता है कि कब उसके भक्त उसका मन्दिर प्रेमकी दीवारोंपर बनायेंगे; पर वे तो उसका निर्माण पत्थरोंसे करते हैं।" और "उसे वहाँ खोजो जहाँ वह किसान सख्त भूमि जोत रहा है और वह पत्थरफोड़ा सड़कके पत्थर तोड़ रहा है।" जो लोग आज इस संकट-कालमें भी मन्दिरों और मसजिदोंके निर्माणपर और अर्थहीन पूजाओं और अन्य अनुष्ठानोंपर लाखों रुपया खर्च करते हैं, उन्हें इस सलाहसे सबक लेना चाहिए। आखिर भगवान्को खुश करनेके लिए एक ही चीजकी जरूरत है—उसकी इस मनोहर सृष्टिसे प्यार करना और उसीमें उसका दर्शन करना।

बीते युगोंके महापुरुषोंकी तरह गुरुदेवने भी अपनी अमर रचनाओं द्वारा दुःखी दुनियाको प्रेम, आशा और विश्वासका ही सन्देश दिया है। उनकी शिक्षामें आध्यात्मिक और भौतिक पूर्वी और पश्चिमीय, पुराने और नये जीवन-मूल्योंका अत्यन्त सुन्दर मेल हुआ है। आनन्द और सौन्दर्यकी उनकी कल्पना पुराने भारतीय ऋषियोंके मतके ही अनुसार है। वे कहते हैं "सौन्दर्य आनन्दकी भाषा है, वह आनन्दको शकल देता है और प्रकट करता है। लेकिन याद रखना चाहिए कि आनन्द विषयोंके सुखसे अलग चीज है और सौन्दर्य भी बाहरी आकर्षकता नहीं है। अहंताकी विरक्तिसे आनन्दका जन्म होता है, और वह आत्माकी स्वतन्त्रतामें पनपता है। सौन्दर्य सत्यका ऐसा सम्पूर्ण प्रकाशन है, जो केवल अपनी सचाईसे ही, किसी अन्य प्रलोभनका सहारा लिये बिना, हमारा हृदय तृप्त कर देता है।"

सारी दुनिया उनके लिए एक ही संयुक्त परिवार-जैसी थी और उन्होंने कभी ऐसा अनुभव नहीं किया कि उसका कोई हिस्सा उनके लिए विदेश है। संसार उन्हें उनके इस विश्वव्यापी बन्धुत्व और प्रेमके लिए हमेशा याद करेगा। गांधीजीने अपनी एक प्रार्थना-सभामें गुरुदेवका गुणगान करते हुए कहा था—

"हमारे लिए वे अपनी गीतांजलि छोड़ गये हैं, जिसने उन्हें सारी दुनियामें मशहूर कर दिया। तुलसीदासजी हमारे लिए अपनी अमर रामायण छोड़ गये हैं। वेदव्यासजीने महाभारतकी शकलमें हमारे लिए मानवजातिका इतिहास छोड़ा है। ये सब निरे कवि नहीं थे। ये तो गुरु थे। गुरुदेवने भी सिर्फ कविके नाते ही नहीं, ऋषिकी हैसियतसे भी लिखा है।

"नई-नई चीजें पैदा करनेकी उनकी ताकतने हमको शान्तिनिकेतन, श्रीनिकेतन और विश्वभारती जैसी संस्थाएँ दी हैं। अपनी इन संस्थाओंमें वे भावरूपसे विराजमान हैं, और ये अकेले बंगालको ही नहीं, बल्कि समूचे हिन्दुस्तानको उनकी विरासतके रूपमें मिली हैं। शान्तिनिकेतन तो हम सबके लिए असलमें यात्राका एक धाम ही बन गया है।"

(हरिजन सेवक, १९-५-'४६)

हर साल मैट्रिक पास और बी० ए० पास विद्यार्थियोंको प्रेसमें दबाई हुई कपासकी गाँठोंकी तरह ढेर तैयार कर देनेवाली आजकी शिक्षा-प्रणालीसे रवीन्द्रनाथ बहुत नाखुश थे।

वे खुद तो स्कूलों और कालेजोंके इस यान्त्रिक शासनसे बचपनमें ही बच गये थे, और इसे वे अपना सौभाग्य मानते थे। तो भी अपने स्कूलके उन कुछ ही दिनोंकी याद करते हुए उन्होंने कहा है : "हम लोगोंको किसी संग्रहालयके निर्जीव नमूनोंकी तरह जड़ बनकर बैठना पड़ता था, फिर फूलोंपर ओलोंकी तरह ऊपरसे हम लोगोंपर पाठोंकी वर्षा कर दी जाती थी।" इसी कारण सन् १९०१ में केवल पाँच विद्यार्थी लेकर शान्तिनिकेतनमें उन्होंने प्रकृतिके खुले आँगनमें अपना स्कूल खोला।

टामस हार्डीके शब्दोंमें वे यह समझ गये थे कि "दुनियाका उद्धार विचारोंके अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देनसे ही होगा"। इसीलिये सन् १९२० में उन्होंने एक विश्व (सारे जगत) के विद्यालयके प्रतीकरूप विश्वभारतीका आरम्भ किया। सारी दुनियाकी एकताको मानकर मानव सिद्धान्तोंकी भूमिपर खोला गया यह पहला विद्यालय है। बादमें ब्रुसेल्सकी १९३६ की विश्व-शान्ति परिषद्को उन्होंने एक अतिशय प्रेरक सन्देश भी भेजा था। उसमें उन्होंने कहा था, "हम शान्ति तबतक नहीं पा सकते, जबतक उसकी पूरी क़ीमत चुकाकर उसके योग्य नहीं बनते। यह क़ीमत है : शक्तिशाली अपने लोभका त्याग करें और कमज़ोर अपने भयका।" सांस्कृतिक और शैक्षणिक भूमिकाके अभावमें ये बड़े-बड़े जगद्‌व्यापी राजनीतिक संगठन किसी कामके न होंगे, यह उन्होंने बखूबी समझ लिया था। विश्वभारती उसी भूमिका को निर्माण कर सची शान्ति क़ायम करनेकी प्रवृत्ति करनेवाला एक अहम स्थल है।

पण्डित नेहरू अपनी 'भारतकी कहानी' में गुरुदेवके प्रति श्रद्धाका इज़हार करते हुए कहते हैं :

"पूर्व और पश्चिमके आदर्शोंके समन्वयकी सबसे अधिक और सफल चेष्टा भारतीयोंमें उन्होंने की है। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयताका आधार तंग नहीं होने दिया, उसे व्यापक बनाया। भारतके सबसे बड़े आन्तर्राष्ट्रीयतावादी हैं, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगमें विश्वास रखकर उन्होंने निरन्तर उसके लिए कोशिश की है, भारतका सन्देश वे दूसरे देशोंके पास ले गये हैं और उनका सन्देश यहाँ लाये हैं। लेकिन इस सबके बावजूद उनके पैर तो भारतकी ही भूमिपर सुस्थिर हैं और उनका दिमाग़ उपनिषदोंकी शिक्षासे भरपूर।...गांधीजीकी लेकिन भिन्न क्षेत्रमें, भारतके लिए उनकी सबसे बड़ी सेवा है कि उन्होंने हम लोगोंको विचारके उन सँकरे घेरोंसे, हम क़ैद हो गये थे, निकलनेके लिए बाध्य किया और दुनियाके व्यापक सवालोंपर हमारा ध्यान बरबस टागौर भारतके सर्वश्रेष्ठ मानवतावादी थे।"

उनके निर्वाणपर राष्ट्र-पिताने विशेष ध्यान देकर सप्ताह विश्वभारतीके लिए पैसा इकट्ठा करनेमें लगाया। याद रखें कि विश्वभारतीका आजके भारतमें वही महत्त्व जो किसी समय तक्षशिलाका था; और वह सरकारकी जनताकी हर प्रकारकी सहायताकी पात्र है। उस अवसर गांधीजीने एक ओजस्वी अपीलमें कहा था।

"जब मैं यह कहता हूँ कि बंगलोरकी 'रिसर्च इन्स्टि के मुकाबले, जिसे टाटाने तीस लाख रुपये दिये हैं, शान्ति निकेतन कहीं ज़्यादा सहायता पानेका अधिकारी है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं करता। मुझे पता नहीं कि 'रि इन्स्टिट्यूट'को हिन्दुस्तानके बाहर कहीं कोई जानता है नहीं! लेकिन शान्तिनिकेतनको तो जहाँ-जहाँ गुरुदेवका पहुँचा है, वहाँ-वहाँ सब लोग जानते हैं, और उस रूपमें जानते हैं, जिसने कविको अपनी महान् रचनाओंके प्रेरित किया। गुरुदेव उसे अपना खिलौना कहा करते अगर यह खिलौना न रहता, तो उनकी काव्य-प्रतिभा उर्वर न बन पाती। शान्तिनिकेतनने तो अपने कला संस्कृतिके विद्यालय द्वारा, जिसमें देशके कोने-कोनेसे विद्या खिंचे चले आते हैं, अनेक चित्रकार, कवि और महान् वि तैयार किये हैं। आज जो लोग नम्र भावसे उसकी सेवा लगे हुए हैं, उनमें श्री क्षितिमोहन सेनके समान विद्वान् श्री नन्दलाल बसुके समान कलाकार भी हैं। ये दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें अद्वितीय हैं।" (हरिजन-सेवक, २४-५-

राष्ट्र-पिताका यह निवेदन सूचित करता है कि विज्ञानकी उन्नतिको ही सब कुछ मान लेना ठीक नहीं उससे हमारी बड़ी हानि हो सकती है। दुनियापर आज हिं

विष-भरे बादल मँडरा रहे हैं, सिरपर तीसरे महायुद्धकी आपत्ति छा रही है, और हमारे दुर्भाग्यसे दुनियाकी शान्ति कुछ इने-गिने लोगोंकी मुट्ठीमें है। ऐसी भयानक हालतमें कविकी पुण्य-वाणी हमें सहारा देती है और सत्य तथा उसकी अन्तिम विजयमें हमें आशा बँधाती है। अपनी मृत्यु-शय्यासे एक ऐतिहासिक वक्तव्य देते हुए उन्होंने कहा था—

"मैं अपने आसपास नज़र डालता हूँ, तो मुझे आजकी इस उद्धत सभ्यताके टूट-टूटकर गिर रहे अवशेष व्यर्थताके एक विशाल ढेरकी भाँति जहाँ-तहाँ बिखरे हुए दिखाई देते हैं। फिर भी मैं मनुष्य (की अन्तिम सिद्धि) में अपनी आशा छोड़ूँगा नहीं। आजकी इस विनाश-लीलाके बाद जब वातावरण सेवा और त्यागके भावोंसे निर्मल हो जायगा, तब मनुष्यके इतिहासका नया अध्याय खुलेगा। आज मेरी नजर उसीपर लगी है। मैं सोचता हूँ वह प्रकाश हमारे आकाशके ही क्षितिजसे—पूर्वसे ही प्रकट होगा। मुझे कोई संशय नहीं कि वह दिन आयेगा, जब अपराजित मनुष्य अपने जयके मार्ग पर फिर बढ़ चलेगा, सारी बाधाएँ पार करेगा और अपना खोया हुआ मानवीय ऐश्वर्य और अधिकार फिर हासिल करेगा।"

शक्तिकी उद्दण्डता कैसी आफत ढा सकती है, यह हम आज देख रहे हैं, और शीघ्र ही ऋषियोंकी इस प्राचीन वाणीका सत्य हमारे निकट प्रकाशित हो जायगा कि:—

"अधर्मसे मनुष्य कुछ काल तक बढ़ता है, सुखका संग्रह करता है, शत्रुओंपर विजय भी पाता है, लेकिन अपने मूलसे ही वह नष्ट हो जाता है।" (पं० जवाहरलालकी 'भारतकी कहानी'से)। (हरिजन सेवक)

शिक्षा परामर्शदायी

केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदायी मण्डलकी दो दिनोंकी बैठक आज समाप्त हो गई। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोगने जो सिफारिशें की थीं, उनमें से अधिकांश मामूली सुधारोंके साथ स्वीकार कर ली गई। मण्डलने यह भी निश्चय किया कि जैसा कि विधानमें उल्लेख किया गया है, हिन्दीका विकास होना चाहिए।

समितिने निश्चय किया कि अन्तर्राष्ट्रीय टेकनिकल तथा वैज्ञानिक परिभाषिक शब्द ग्रहण किये जायँ। जो शब्द लिये जायँ उन्हें उपयुक्त ढंगसे अपनी शब्दावलीमें सम्मिलित किया जाय। उन शब्दोंका उच्चारण भारतीय भाषाके उच्चारणकी प्रणालीके अनुकूल होना चाहिए और भारतीय लिपिके ध्वनि-चिन्होंके अनुसार ही उनका अक्षर-विन्यास नियत किया जाना चाहिए।

उच्च शिक्षाका माध्यम

समितिने आयोगकी यह सिफारिश मंजूर कर ली है कि उच्च शिक्षाका माध्यम अंगरेजीके बजाय कोई भारतीय भाषा होनी चाहिए। अंगरेजी जितनी जल्दी हटायी जा सके, हटा दी जानी चाहिए। आयोगने यह सिफारिश भी की है कि माध्यमिक तथा विश्वविद्यालके स्तरपर विद्यार्थियोंको प्रादेशिक भाषा, संघीय भाषा तथा अंगरेजीका ज्ञान हो जाना चाहिए। उच्च शिक्षा प्रादेशिक भाषाके जरिये दी जानी चाहिए और साथमें यह विकल्प भी रहना चाहिए कि कुछ या सब विषयोंकी शिक्षाका माध्यम संघीय भाषाको बनाया जा सकता है। संघीय भाषाके लिए एक लिपि अर्थात् देवनागरी लिपि ग्रहण की जानी चाहिए और उसकी त्रुटियाँ दूर की जानी चाहिए।

वैज्ञानिकों तथा भाषा-शास्त्रियोंकी एक समितिका निर्माण

आयोगकी यह सिफारिश परामर्शदात्री समितिने स्वीकार कर ली कि वैज्ञानिकों तथा भाषा-शास्त्रियोंकी एक समिति बनाई जाय और वह एक वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करे। यह शब्दावली सब भारतीय भाषाओंके लिए समान होगी। इस समितिका कार्य ऐसी व्यवस्था करना भी होगा कि विभिन्न वैज्ञानिक विषयोंकी पुस्तकें सब भारतीय भाषाओंमें तैयार की जायँ। प्रान्तीय सरकारोंको यह व्यवस्था करनी होगी कि माध्यमिक शिक्षालयों, डिग्री कालेजों तथा विद्यालयोंकी सब श्रेणियोंमें संघीय भाषाकी शिक्षा दी जायँ।

मण्डलने, जो गत शनिवारसे विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की सिफारिशोंपर विचार कर रहा था, विश्वविद्यालयोंकी शिक्षा के प्रायः सभी पहलुओंपर विचार-विमर्श किया। विश्व-

विद्यालयों और महा विद्यालयों (कालेजों) के शिक्षक वर्ग शिक्षाके स्तर, पाठ्यक्रम, स्नातकोत्तर (पोस्ट ग्रेजुएट) अध्यापन व गवेषणा पेशोंकी शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, शिक्षाका माध्यम, परीक्षाएँ, छात्र व उनकी प्रवृत्तियाँ तथा उनकी सुख-सुविधाएँ, स्त्री-शिक्षा विश्वविद्यालयों व उनके वित्तके नियम व नियन्त्रण आदि समस्त विषयोंके साथ-साथ पृथक-पृथक विश्वविद्यालयों नये विश्वविद्यालयों व ग्राम विद्यालयोंके बारेमें आयोग द्वारा की गई सिफारिशोंपर विचार किया गया।

वेतन-मान

विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयोंके शिक्षक वर्गके सम्बन्धमें मण्डलने आयोगकी यह सिफारिश स्वीकृत कर ली कि शिक्षक और उसकी जिम्मेवारियोंके महत्त्वको महसूस किया जाय और जिन विश्वविद्यालयोंमें वित्तके अभावके कारण सेवाकी शर्त अच्छी नहीं है और फलस्वरूप शिक्षकोंमें उत्साह नहीं है वहाँ स्थिति सुधारी जायँ।

इस प्रयोजनकी सिद्धिके लिए आयोगकी सिफारिशपर मण्डलने विश्वविद्यालयोंके शिक्षकोंके लिए निम्न वेतन-दर स्वीकृत किये। प्रोफेसर रु० ९००-५०-१३५० ; रीडर रु० ६००-३०-९०० ; लेक्चरर रु० ३००-२५-६०० ; इन्स्ट्रक्टर व फेलो रु० २५० तथा गवेषण फेलो रु० २५०। जिन महाविद्यालयोंमें स्नातकोत्तर अध्यापनकी व्यवस्था नहीं है, उनके शिक्षकोंके लिए निम्न वेतन-दर स्वीकृत किये गये, लेक्चरर रु० २००-४०० जेष्ठ पद ४००-२५-६०० ; आचार्य (प्रिंसिपल) रु० ६००-४०-८००। जिन महाविद्यालयोंमें स्नातकोत्तर अध्यापनकी भी व्यवस्था है उनके शिक्षकोंके वेतन दर इस प्रकार स्वीकृत किये गये। लेक्चरर रु० २०० जेष्ठ पद रु० ५००-२५-८०० और आचार्य रु० ८००-४०-१२००।

किन्तु यह नये दर इन पदोंपर नियुक्त वर्तमान व्यक्तियोंसे योग्य व्यक्तियोंका अच्छी तरह चुनाव करनेके बाद उन्हीं पर लागू किये जायेंगे। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयोंमें अवकाश ग्रहण करनेकी आयु सामान्यतः ६० वर्ष होगी, किन्तु योग्यतर व्यक्तियोंका सेवाकाल चार वर्षके लिए और बढ़ाया जा सकेगा, किन्तु यह आयु सम्बन्धी नियम उन शिक्षकोंपर लागू नहीं होगा, जो सरकारी नौकर हैं।

अध्यापनका स्तर

शिक्षाके स्तरके सम्बन्धमें मण्डलने निश्चय किया है डिग्री कालेजोंमें प्रवेशका अधिकारी होनेके लिए योग्यताका स्तर वही होना चाहिए, जो इस समय इण्टर परीक्षाका है। यह भी निश्चय किया गया कि प्रा (प्रिडिग्री) पाठ्यक्रमके निर्धारणका काम तवतक रखना चाहिए, जबतक कि सेकेण्डरी शिक्षा आयो विषयपर विचार न कर ले।

अयोगने इस विषयपर जो अन्य सिफारिश की है, से कुछ यह है। धन्धोंकी शिक्षा देनेके लिए अधिक शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की जायँ, हाई स्कूलों और इण्टर कालेजोंके शिक्षकोंके लिए शिक्षण पद्धतिकी पुनरा कक्षाएँ चलाई जायँ ; शिक्षा देनेवाले विश्वविद्यालयों और विज्ञान विभागोंमें छात्रोंकी अधिकतम संख्या और सम्बद्ध कालेजोंमें १५०० निधारित कर दी जाय; भरमें कामके दिनोंकी संख्या बढ़ाकर अधिकतम १८० जाय, जिसमें परीक्षाके दिन शामिल न हों।

मण्डलने यह भी सिफारिश की है कि किसी भी पाठ् के लिए कोई पाठ्य पुस्तकें निश्चित न की जायँ और करनेवाले लोगोंकी शिक्षाके लिए सायंकालीन शालाएँ चला परीक्षण किया जाय और सभी शिक्षा संस्थाओंमें शि विकास किया जाय।

आयोग द्वारा आर्ट्स और विज्ञानके शिक्षाक्रमके की गई सिफारिशें स्वीकृत कर ली गई है। इस सम्ब आयोगने यह सिफारिशें की है।

(१) छात्रोंको १२ वर्षकी स्कूली शिक्षा या उसके स स्तरकी शिक्षा (आज कलके इण्टरमीजियेटके स्तरके बरा पानेके बाद आर्ट्स और विज्ञानकी फैकल्टियोंमें तथा उन पेशोंवाली उच्च शिक्षा-संस्थाओंमें, जिनके अधिक विशिष्ट की जरूरत नहीं, प्रविष्ट किया जाय।

(२) 'मास्टर' (एम० ए० आदि) की डिग्री आ विद्यार्थियोंको बैचलर (बी० ए० आदि) की उपाधि करनेके बाद एक वर्षका अध्ययन करनेपर दी जाय।

(३) सामान्य शिक्षाके सिद्धान्तों और व्यावहारिक प्रयोगको शीघ्र लागू किया जाय, ताकि अत्यधिक विशिष्ट अध्ययनको सुधारा जा सके।

स्नातकोत्तर शिक्षाक्रम

मण्डलने स्नातकोत्तर अध्यापन और गवेषणाके सम्बन्धमें आयोगकी सिफारिशें स्वीकृत कर ली है और इस बातपर विशेष बल दिया है कि पीएच० डी० के छात्र सम्बद्ध विश्वविद्यालयके अन्तेवासी छात्र होने चाहिए। मण्डलने यह भी निश्चय किया कि पीएच० डी० के छात्रको किसी विषयका उथला विशेषज्ञ ही नहीं होना चाहिए, बल्कि उस विषयपर उनका गहरा ज्ञान होना चाहिए। पीएच० डी० की परीक्षामें निबन्ध (थीसिस) के अलावा परीक्षार्थीकी उस विषयके समूचे क्षेत्रके सामान्य ज्ञानकी परीक्षा भी सम्मिलित होनी चाहिए।

आयोगने यह भी सिफारिशकी कि देशमें प्राचीन व नवीन भाषा तथा साहित्य, दर्शन, धर्म, इतिहास और ललित कलाकी गवेषणाके लिए उपलब्ध पर्याप्त साधनोंका उचित उपयोग किया जाय। देशमें वैज्ञानिकों या विज्ञान सम्बन्धी कार्य करनेवालोंकी कमीको देखते हुए आयोगने सिफारिश की है कि विज्ञानकी शिक्षा अधिक लोगोंको दी जाय, ताकि उनमें से कुछ असाधारण योग्यताके व्यक्ति देशको प्राप्त हो सके। इस कार्यके लिए आयोगने एम० एस० सी० और पीएच० डी० के वस्तुतः अच्छे छात्रोंको अधिक छात्रवृत्तियाँ देनेकी सिफारिश की है।

यह भी सिफारिश की गई है कि विश्वविद्यालयोंका मुख्य कार्य आधारभूत अनुसन्धान होना चाहिए। किन्तु अपने विशिष्ट क्षेत्रकी खास व्यावहारिक समस्याओंको हाथमें लेनेसे भी उन्हें रोका नहीं जाना चाहिए।

आयोगने कृषि, व्यवसाय, शिक्षा, इञ्जीनियरिंग और टेकनालोजी, क़ानून और औषध विज्ञानके सम्बन्धमें जो सिफारिशें की है, वे भी मण्डलने अतिस्वल्प संशोधनोंके साथ स्वीकृत कर ली है।

क़ानूनके कालेजोंमें प्रवेशके सम्बन्धमें मण्डलने निश्चय किया है कि क़ानूनके कालेजमें प्रविष्ट होनेसे पूर्व तीन वर्ष तक आम अध्ययन किया जाय और क़ानूनकी उपाधि प्राप्त करनेके लिए आवश्यक शिक्षाक्रम केवल दो वर्षका हो, लेकिन उसके बाद सम्बद्ध उच्च न्यायालयों द्वारा निर्धारित समय तक व निर्धारित ढंगसे क्रियात्मक शिक्षा प्राप्त की जाय। मण्डलसे छात्रोंको सामाजिक सेवाकी शिक्षा देने सम्बन्धी सिफारिशें भी स्वीकृत कर ली है।

धार्मिक शिक्षाके सम्बन्धमें मण्डलने यह तय किया है कि सभी शिक्षा संस्थाएँ अपने यहाँ कुछ मिनटके दैनिक मौन-ध्यान की व्यवस्था कर सकती हैं। इसके अलावा महान् धार्मिक नेताओंके जीवन चरित्र पढ़ाये जाने चाहिए और दर्शन व धर्मकी केन्द्रभूत समस्याएँ कालेजकी शिक्षाके तीसरे वर्षमें ली जानी चाहिए। मण्डलने यह भी संकल्प किया कि धार्मिक विचारधाराकी शिक्षा विश्वविद्यालयोंमें दी जा सकती है।

मण्डलने परीक्षा प्रणालीके सम्बन्धमें आयोगकी सिफारिशों पर यथासम्भव अमल करनेके लिए विश्वविद्यालयोंसे कहा है। आयोगने सिफारिश की है कि शिक्षा मन्त्रालय व विश्वविद्यालय शिक्षा सम्बन्धी परीक्षाके वैज्ञानिक तरीकोंका सर्वाङ्गपूर्ण अध्ययन करें, और भारतीय शिक्षाक्षेत्रमें उनका प्रयोग किया जाय।

छात्रोंकी प्रवृत्तियों व उनकी सुख-सुविधाओं तथा स्त्री शिक्षाके सम्बन्धमें आयोगकी सिफारिशें सामान्यतः स्वीकृत कर ली गई हैं।

विश्वविद्यालयोंका नियन्त्रण

मण्डलने विश्वविद्यालयोंके विधान और नियन्त्रणके सम्बन्धमें, संविधानको, जिसमें विश्वविद्यालयोंकी शिक्षा केन्द्रका विषय मानी गई है, ध्यानमें रखते हुए आयोगकी सिफारिशें स्वीकृत कर ली है। विश्वविद्यालयोंके वित्तके विषयमें आयोग की सिफारिशें स्वीकृत करते हुए मण्डलके प्रस्तावमें कहा गया है कि इन सिफारिशोंपर अमल करना विश्वविद्यालयोंको इनके लिए प्राप्त वित्तकी मात्रापर निर्भर है। केन्द्रीय व इतर विश्वविद्यालयोंमें से एक-एकको लेकर उनके बारेमें आयोगने जो सिफारिशें की है, उनपर मण्डलने यह राय दी है कि भारत सरकार इन सिफारिशोंपर प्रत्येक सम्बद्ध विश्वविद्यालयके अधिकारियोंसे बातचीत करे।

आयोगकी नये विश्वविद्यालय खोलने विषयक सिफारिश

तथा उनके इस कथनको भी, कि ग्रामीण क्षेत्रोंमें उच्च शिक्षापर अधिक ध्यान दिया जाय, मण्डलने स्वीकृत कर लिया है।

मण्डलके प्राइवेट शिक्षा देनेवाली संस्थाओंसे होनेवाली तथा उन्हें नियन्त्रित करनेके उपायों एवं सरकारी चिकित्सा अधिकारियोंकी प्राइवेट प्रैक्टिसके बारेमें भी एक प्रस्ताव स्वीकृत किया।

हिन्दीका प्रचार

अन्तमें मण्डलने हिन्दीको लोकप्रिय बनाने, विशेषकर अहिन्दी भाषी राज्योंमें उसका प्रचार करनेके उपायोंपर विचार किया। इस सम्बन्धमें उसने निम्न सुझाव स्वीकृत किये।

(१) इस सम्बन्धमें सबसे आवश्यक क़दम यह होगा कि आम जनताकी दिलचस्पीके विविध विषयोंपर हिन्दीमें सस्ती व आकर्षक पुस्तकें प्रकाशित की जायँ।

(२) ग्रामोफोनके ऐसे रिकार्ड तैयार किये जायँ, जिनसे शिक्षककी सहायताके विना लोग आसानीसे हिन्दी सीख सकें।

(३) स्कूलों और आम जनताके लिए रेडियोपर हिन्दी शिक्षाके पाठ दिये जायँ।

(४) हिन्दीमें प्रचारात्मक चलचित्र तथा नये सामा[illegible] चलचित्र अधिक संख्यामें बनाये जायँ। हिन्दीके मनोरं[illegible] चलचित्रोंमें भी सुधार किया जाय, ताकि सुसंस्कृत लोग उन[illegible] ओर अधिक आकृष्ट हों।

(५) केन्द्रीय सरकारके कर्मचारियोंकी हिन्दीकी योग्यता परीक्षाएँ ली जायँ और सफल परीक्षार्थियोंको पुरस्कार दि[illegible] जायँ।

(६) केन्द्रीय शासन विभागकी प्रतियोगिता परीक्षाओं[illegible] हिन्दीकी परीक्षा भी सम्मिलित की जाय, किन्तु अहिन्दी भा[illegible] राज्योंके परीक्षार्थियोंके मार्गमें वह बाधक न बने।

मण्डलने केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयसे इन सुझावोंपर विच[illegible] करने और उन्हें यथासम्भव क्रियान्वित करनेके लिए कहा है।

मण्डलका अगला अधिवेशन ट्रावनकोर कोचीन राज्[illegible] करनेका निश्चय किया गया।

शामको मण्डलके सदस्योंके लिए शिक्षा मन्त्री मौ[illegible] आजादने राजकीय भवनमें एक स्वागत आयोजन किया[illegible] सदस्योंके अलावा श्री गोपालस्वामी आयंगर और श्री [illegible] आर० अम्बेडकर भी इसमें सम्मिलित हुए।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड कलकत्ता।

विशाल भारत

के

प्रति अंकका विज्ञापन-दर

...धारण पूरा पृष्ठ	६०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	३२)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	१८)
,, चौथाई कालम	१०)
...के पीछेका पूरा पृष्ठ	७०)
,, आधा पृष्ठ	४०)
...रके दूसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	७०)
...रके तीसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	६५)
...ोके सामनेका पूरा पृष्ठ	७०)
,, आधा पृष्ठ	४०)
,, चौथाई पृष्ठ	२५)

अन्तिम पाठ्य-सामग्रीके सामनेका पृष्ठ	८०)
कवरका दूसरा पृष्ठ	९०)
,, तीसरा पृष्ठ	८०)
,, चौथा पृष्ठ	१२५)
,, चौथे पृष्ठका दूसरा कलर ३०) फी कलर।	
रिडिंग मैटरके साथ पूरा पृष्ठ	१००)
,, आधा पृष्ठ	५५)
,, चौथाई पृष्ठ	२८)
,, चौथाई कालम	१५)

अन्तिम फरमाके अन्तमें छापा जायगा।

जोड़पत्र

'विशाल भारत'के आकारका ९½×७ इंच

(विज्ञापनदाता द्वारा मुद्रित)

८ पृष्ठ	१२५)
४ पृष्ठ	८०)
२ पृष्ठ	४५)

नोट :—उपरोक्त दर जनवरी १९४९ से शुरू हुआ है।

मैनेजर, 'विशाल भारत' १२०।२, अपर सरकूलर रोड,

कलकत्ता ९



विशाल भारत

सम्पादक : श्रीराम शर्मा

जुलाई, १९५०

THE MODERN REVIEW

(Founded by R. Chatterjee in January 1907)

SUBSCRIPTION

PAYABLE IN ADVANCE—*Annual:* inland Rs. 12-8; foreign Rs. 20 or foreign equivalent. *Half-yearly:* inland Rs. 6-4, foreign Rs. 10 or foreign equivalent.

The price of a single current or available back number or specimen copy is Re. 1, by V. P. P. Re. 1-5. The price of a copy outside India Re. 1-12 or foreign equivalent. Terms strictly Cash.

Outstationed-Cheques must include exchange Charges. Old subscribers should renew subscriptions quoting respective 'subscribing number' or every possibility of being enlisted afresh and issued V. P. P. under undetected old number.

If old subscribers do not renew subscriptions or give notice of discontinuation in due time, the next issue is sent by V. P. P. on the presumption that, that is their desire.

The Modern Review regularly appears on the 1st of every month. Complaints of non-receipt of any month's issue should reach this office at least by the 15th of that month quoting the "Subscribing Number", or no complaint may be entertained. Many a packet be lost in postal transit regularly every month hence all possible remedial measures should be taken by all.

SCALE OF CHARGES FOR ADVERTISEMENTS OF ORDINARY POSITION

SINGLE INSERTION.	Rs.	As.
Per ordinary page (8″×6″)	80	0
„ Half-page or one column	42	0
„ Quarter page or Half column	22	0
„ Quarter column (2″×3″)	12	0
„ One-eighth column (1″×3″)	7	

Rates for special spaces on enquiry.

Advertisers desirous of effecting stoppage or change in standing advertisements, in any issue, should send stop orders or revised copies within 15th of the preceding month.

The Modern Review reserves the right to discontinue any advertisement or to delete or alter words or phrases which in the editor's opinion are objectionable.

We cannot undertake any responsibility for the blocks being broken or mutilated while printing, though every possible care is taken. We do not undertake responsibility of blocks is delivery is not taken within 15 days after stop order.

THE "MODERN REVIEW" OFFICE,
120-2, UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.

প্রবাসীর পুস্তকাবলী

রামায়ণ (সচিত্র) ৺রামানন্দ চট্টোপাধ্যায়

সচিত্র বর্ণপরিচয় ১ম ভাগ—
রামানন্দ চট্টোপাধ্যায়

সচিত্র বর্ণপরিচয় ২য় ভাগ—ঐ

চাটার্জির পিক্‌চার এল্‌বাম ১—১৭
(১—৯ নাই, ১০—১৭ আছে) প্রত্যেক সং

উষসী (মনোজ্ঞ গল্পসমষ্টি)— ঐ

সোনার খাঁচা— শ্রীসীতা দেবী

আজব দেশ (ছেলেমেয়েদের সচিত্র) ঐ

বজ্রমণি (শ্রেষ্ঠ গল্পসমষ্টি) ঐ

উদ্যানলতা (উপন্যাস)—
শ্রীশান্তা ও সীতা দেবী

কালিদাসের গল্প (সচিত্র)—শ্রীরঘুনাথ মল্লিক

গীত উপক্রমণিকা—(১ম ও ২য় ভাগ) প্রত্যেক

জাতিগঠনে রবীন্দ্রনাথ—ভারতচন্দ্র মজুমদার

কিশোরদের মন—শ্রীদক্ষিণারঞ্জন মিত্র মজুমদার

চণ্ডীদাস চরিত—(৺কৃষ্ণপ্রসাদ সেন)
শ্রীযোগেশচন্দ্র রায় বিদ্যানিধি সংস্কৃত

মেঘদূত (সচিত্র)—
শ্রীযামিনীভূষণ সাহিত্যাচার্য্য

জল্পনা—শ্রীহেমলতা দেবী

খেলাধূলা (সচিত্র)—শ্রীবিজয়চন্দ্র মজুমদার

বিলাপিকা—শ্রীযামিনীভূষণ সাহিত্যাচার্য্য

ল্যাপল্যাণ্ড (সচিত্র)—শ্রীলক্ষ্মীশ্বর সিংহ

ডাকমাশুল স্বতন্ত্র।

প্রবাসী কার্য্যালয়
১২০।২, আপার সার্কুলার রোড, কলকাতা

प्यारी बहिनों !

न तो मैं नर्स हूँ, और न डाक्टर हूँ, और न वैद्यक ही जानती हूँ, बल्कि आप ही की तरह एक गृहस्थ स्त्री हूँ। विवाहके एक वर्ष बाद दुर्भाग्यसे मैं लिकोरिया (श्वेत प्रदर) और मासिक धर्मके दुष्ट रोगोंमें फँस गई थी, मुझे मासिक-धर्म साफ न आता था, अगर आता था तो बहुत कम और दर्दके साथ जिससे बहुत दुख होता था। सफेद पानी या (श्वेत प्रदर) अधिक जानेके कारण मैं दिन प्रति दिन कमजोर होती जा रही थी, चेहरेका रंग पीला पड़ गया था, घरके कामसे जो घबराता था, हर समय जी चकराता, कमर दर्द करती और शरीर टूटता रहता था मेरे पतिदेवने मुझे सैकड़ों रुपयेकी औषधि सेवन कराई, परन्तु किसीसे भी रत्ती भर लाभ न हुआ। इसी प्रकार मैं लगातार दो वर्ष तक बड़ा दुःख उठाती रही। सौभाग्यसे एक सन्यासी हमारे दरवाजेपर भिक्षाके लिए आये। मैं दरवाजेपर आटा डालने आई तो महात्माजीने मेरा मुख देखकर कहा—'बेटी तुझे क्या रोग है, जो इस आयुमें चेहरेका रंग रूईकी भाँति सफेद हो गया है!' मैंने सारा हाल कह सुनाया, उन्होंने मेरे पतिको डेरेपर बुलाया, और उनको नुस्खा बतलाया, जिसके केवल १५ दिन सेवन करनेसे ही मेरे तमाम गुप्त रोगोंका नाश हो गया। ईश्वरकी कृपासे अब मैं कई बच्चोंकी मा हूँ। मैंने इस नुस्खेस अपनी कई बहनोंको अच्छा किया है और कर रही हूँ। अब मैं इस अद्भुत औषधिको अपनी दुखी बहिनोंकी भलाईके लिए असल लागत पर बांट रही हूँ। इसके द्वारा मैं लाभ उठाना नहीं चाहती। क्योंकि ईश्वरने मुझे बहुत कुछ दे रखा है। एक बहनके लिए पन्द्रह दिनकी दवा तयार करनेपर २॥।≶) दो रुपये चौदह आने असल लागत खर्च होती है, और महसूल डाक अलग है।

यदि कोई बहिन इस दुष्ट रोगमें फँस गई हो तो वह मुझे जरूर लिखें। मैं उनको अपने हाथस औषधि बनाकर वी० पी० पार्सल द्वारा भेज दूंगी। यह मेरा धर्म है कि मैं किसी बहनसे दवाकी कीमत असल लागतस एक पसा भी ज्यादा न लूंगी।

जरूरी सूचना—मुझे केवल स्त्रियोंकी इस दवाईका ही नुस्खा मालूम है, इस लिए कोई बहन मुझे और रोगकी दवाईके लिए न लिखें।

प्रेमप्यारी अग्रवाल, १०६ बुढ़लाड़ा

जिला हिसार [पूर्वी पंजाब]

विषय-सूची :जुलाई १९५०

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

अभी छप गई :—विवेकानन्द कृत—ज्ञानयोग ३) ; सरल राजयोग ॥) ; विवेकानन्दजीसे वार्तालाप १।) ; वेदान्त—सिद्धान्त और व्यवहार—स्वामी शारदानन्द—विवेकानन्दजीके गुरु भाई कृत ।≈)

१. श्रीरामकृष्णवचनामृत—अनु० 'निराला', तीन भागोंमें, प्रथम भाग, मूल्य ६) रु० ; द्वितीय भाग, मूल्य ६) रु० तृतीय भाग, मूल्य ७॥) रु० ।

२. श्रीरामकृष्णलीलामृत (विस्तृत जीवनी)—पं० द्वारकानाथ तिवारी, दो भागोंमें, प्रत्येक भागका मूल्य ५) रु० ।

३. विवेकानन्द-चरित—श्री मजूमदार, मूल्य ६) रु० ।

४. विवेकानन्दजीके संगमें (वार्तालाप)-श्रीशरच्चन्द्र, ५) रु०

स्वामी विवेकानन्द कृत—भारतमें विवेकानन्द ५) रु० पत्रावली (दो भागोंमें) प्रत्येक भागका मूल्य २≈) ; महापुरुषोंकी जीवनगाथायें १।) ; राजयोग १≈) ; स्वाधीन भारत ! जय हो ! १≈); कवितावली ॥≈) ; मनकी शक्तियाँ ॥) ; ईशदूत ईसा ।≈) भारतीय नारी ॥।) ; शिक्षा ॥≈) ; धर्मरहस्य १) ; मेरी समर नीति ।≈) ; धर्मविज्ञान १॥≈) ; मेरा जीवन तथा ध्येय ॥) ; मरणोत्तर जीवन ॥) ; श्रीरामकृष्ण धर्म तथा संघ ॥≈); कर्मयोग १॥≈) ; हिन्दू-धर्म १॥) ; प्रेमयोग १≈); भक्तियोग १≈); आत्मानुभूति १।) ; परिव्राजक १।) ; प्राच्य और पाश्चात्य १।) ; शिकागो-वक्तृता ॥≈) ; मेरे गुरुदेव ॥≈) ; हिन्दू-धर्मके पक्षमें ॥≈) ; वर्तमान भारत ॥) ; पवहारी बाबा ॥) ; विवेकानन्दजीकी कथायें १।) ; श्रीरामकृष्ण-उपदेश ॥≈)

परमार्थ-प्रसंग

स्वामी विरजानन्द—स्वामी विवेकानन्दजीके संन्यासी शिष्य तथा रामकृष्ण मिशनके अध्यक्ष-कृत, सचित्र, आर्ट पेपर पर छपी हुई, कपड़ेकी जिल्द मूल्य ३॥।) ; कार्डबोर्डकी जिल्द मूल्य ३।)

"इस पुस्तकमें आध्यात्मिक जीवनके सम्बन्धमें बहुमूल्य एवं व्यवहार्य उपदेश पाये जाते हैं ।"

श्रीरामकृष्ण आश्रम, (वि), धन्तोली, नागपुर-१, सी० पी०

पाठशालाओं, लाइब्रेरियों, पुरस्कार, भेंट तथा स्वाध्यायके लिये प्राचीन तथा नवीन

साहित्य

हिन्दी रत्न, भूषण, प्रभाकर (पंजाब)
प्रथमा, विशारद (मध्यमा),
साहित्य-रत्न [उत्तमा] (प्रयाग)
मैट्रिक, एफ० ए०, बी० ए०
(पंजाब) की
पाठ्य एवं सहायक पुस्तकें,
प्राप्त करनेका ठिकाना

योगेन्द्रपाल खन्ना

एण्ड सन्स लिमिटेड
टेलीफोन नं० ४५४४८
एम-२७, कनाट सर्कस, नईदिल्ली

विवाहित जीवनको सुखमय बनानेवाली

५) रु० में ८ पुस्तकें

(१) पतिपत्नी जीवन (सचित्र) १॥), (२) विवाहित जीवन मनोरंजन (सचित्र) १॥), (३) सोहाग रात (सचित्र) १॥), (४) स्वास्थ्य और संभोग (सचित्र) १॥), (५) प्रेमचित्रावली (रंगीन) १॥); (६) गर्भ निरोध (सचित्र) १॥), (७) गोरे खूबसूरत बनो (सचित्र) १॥), (८) वशीकरण विद्या (सचित्र) १॥) । पूरा सेट ५) रु० डा० खर्च ॥।) अलग

पता:—मिलाप ट्रेडिंग कम्पनी
पो० नं० २१ अलीगढ़ (यु० पी०)

—व्यापार सिद्धि—

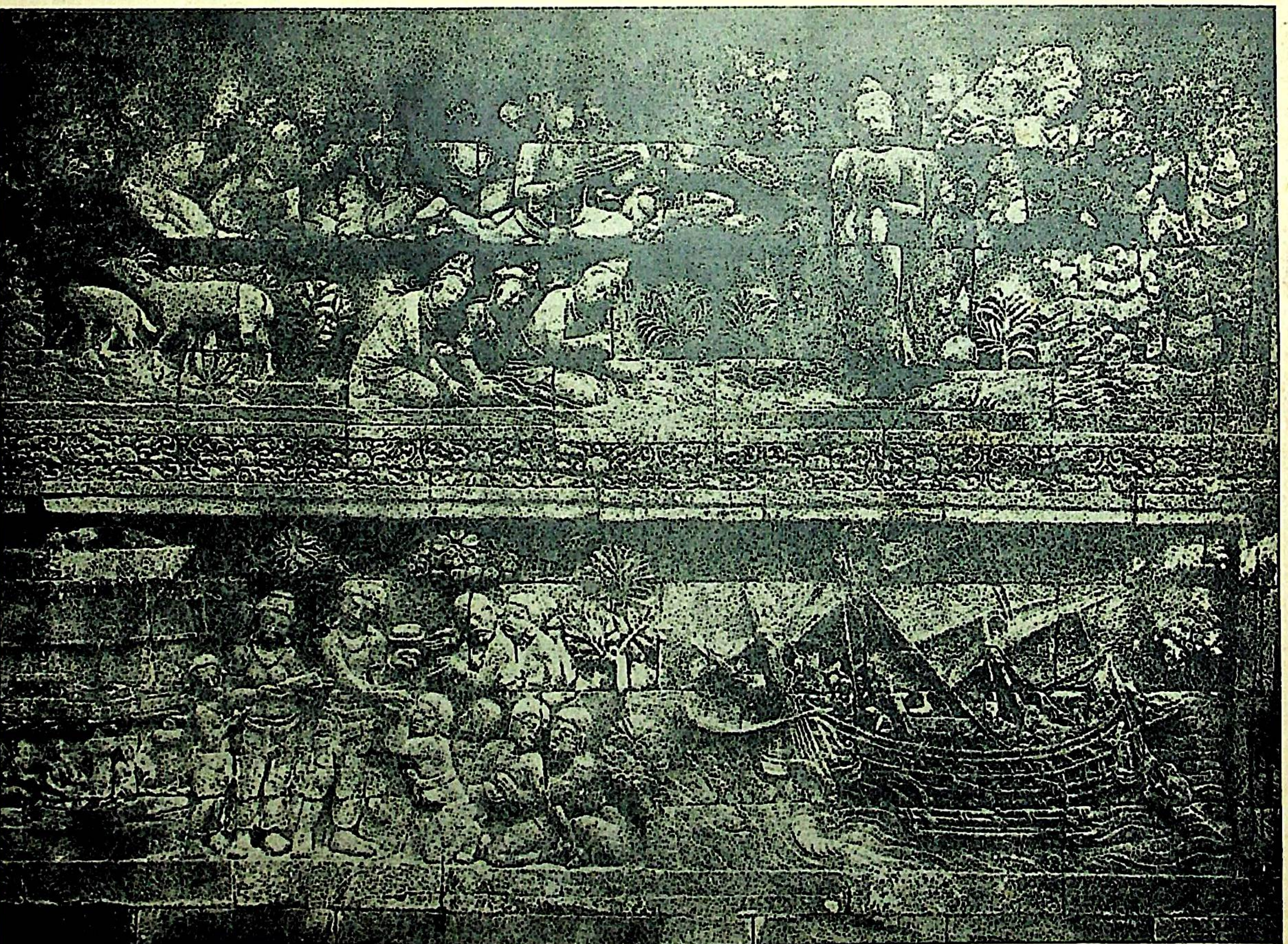
महाकर्षण यन्त्रको विजय योगमें बैठकके नीचे लगाकर ऊपर बैठनेसे महालक्ष्मी लाभ होता है । ग्राहकोंका तांता लग जाता है । बतला लेनेपर वह अन्यत्र नहीं जाता । समय और मन्त्रोंमें अपरिमित शक्ति है, कोई आश्चर्य नहीं । मंगाकर अनुभव करें । सिखानेका भी प्रबन्ध है । पारिश्रमिक २॥) रु० मात्र

पता—कान्ह शर्मा गौड़ "विशारद" नोखा (बीकानेर, राजस्थान) B. K. S. Ry.

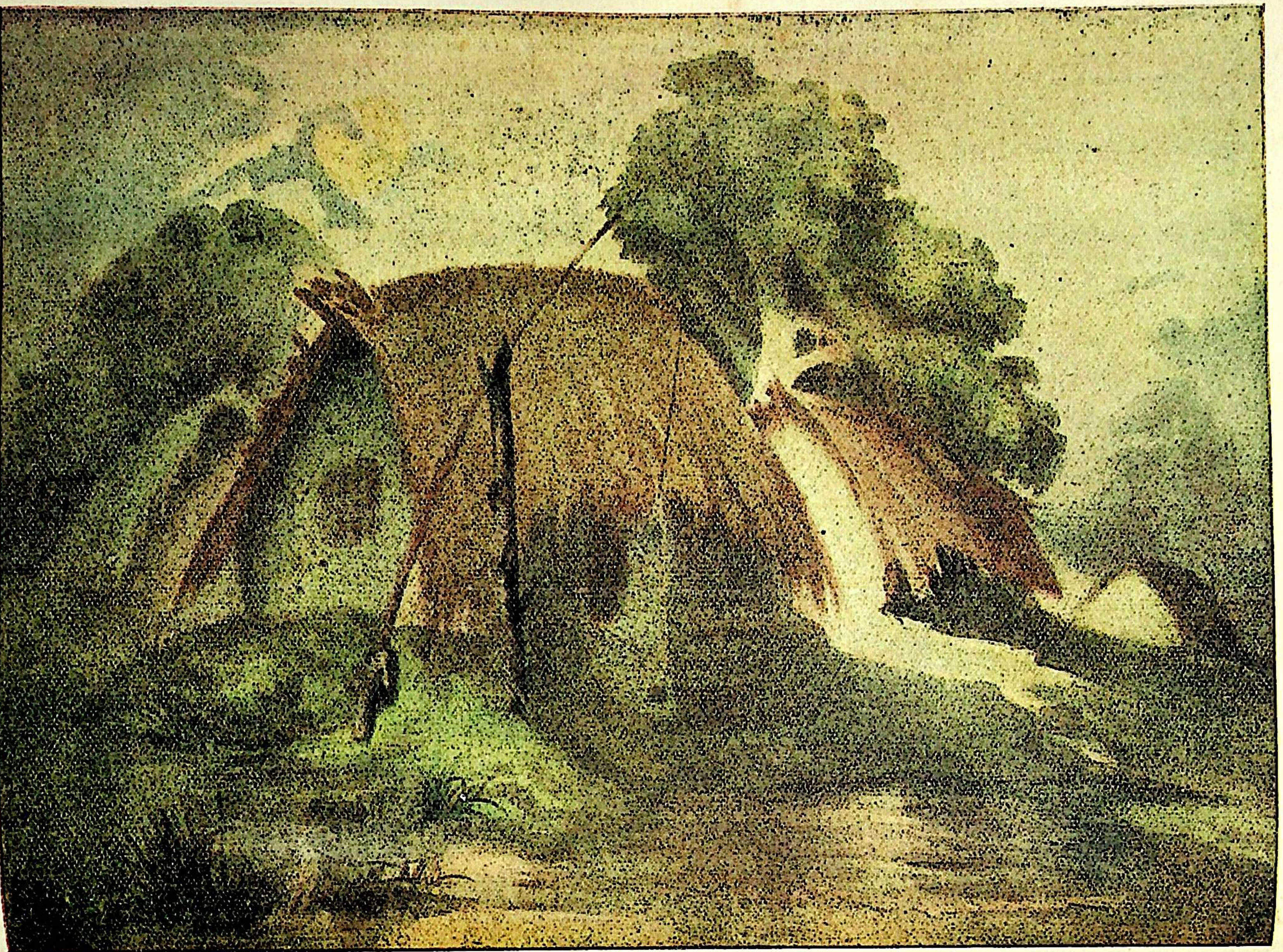
फोल्डीज बाँसुरी

होशियार कारीगरोंकी बनी हुई पीतलकी विलायती पाइप चमकदार पालिश, ट्यून्ड की हुई उच्च श्रेणी की सुरीली बांसुरी जिसके २ टुकड़े करके जेबमें रख सकते हैं । मू० ३॥।) पोस्टेज पैकिंग १।) बांसुरी शिक्षक मू० १॥) पोस्टेज ॥)

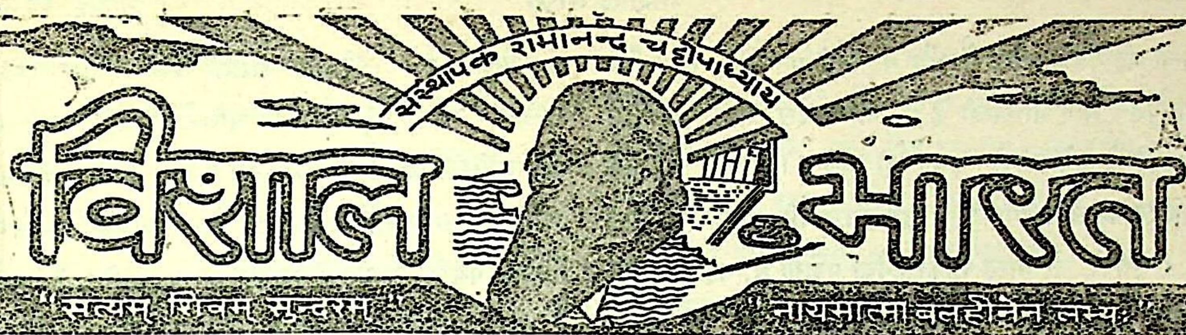
पता—
बंगाल ट्रेडर्स (VBE)
अलीगढ़, यू० पी०



ऊपर :—ललितविस्तारकी कहानी। नीचे :—भारतीयोंकी समुद्र-पथसे यवद्वीप-यात्रा एवं शोभायात्रा।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]   सुप्त ग्राम   [श्री देवीप्रसाद राय चौधरी



भाग ४६, अंक १] कलकत्ता, जुलाई, १९५० [पूर्णांक २७१

सम्पादकीय विचार

कोरिया-समस्याकी गम्भीरता

कोरियाके सम्बन्धमें हम लिख चुके हैं कि दक्षिण कोरियामें इतनी शक्ति नहीं कि वह उत्तरी कोरियाकी कम्यूनिस्ट सेनाओंको रोकनेमें सफल हो सके। इसका मुख्य कारण यह है कि दक्षिणी कोरियाके कर्मचारियोंकी मनोवृत्ति वैसी है जैसी कि कोमिन्टॉग सरकार तथा राष्ट्रवादी चीनकी। कम्यूनिस्टोंने पहलेसे ही वहाँ गुप्त प्रवेश कर लिया था। सवाल यह है कि क्या उत्तरी कोरियामें इतना दम है कि वह बिना बातके इस तरहकी लड़ाई मोल ले। हमारे मतसे उत्तरी कोरियाका दक्षिणी कोरियापर आक्रमण कम्यूनिस्ट रूसकी ओरसे एक आजमाइश है कि उसकी प्रतिक्रिया अमेरिकापर क्या होगी। दक्षिणी कोरिया और फारमूसा—दो ही स्थान ऐसे हैं जो रूस और कम्यूनिस्ट चीनकी बगलमें छुरीकी तरह हैं और इनका खात्मा उनके कार्यक्रममें होना ही चाहिए। यदि अमेरिकाने कुछ नहीं कहा होता तो रूसकी नैतिक और सैनिक विजय होती और युद्धकी आगामी योजनाओंके लिए उसे आश्वासन मिलता। संयुक्त राष्ट्र संघकी बैठक हुई और उस बैठकके निर्णयसे पूर्व अमेरिकाने यह निश्चय कर लिया कि उत्तरी कोरियाके इस आक्रमणको रोकना चाहिए। कोरियापर आक्रमण अमेरिकाकी नजरसे संगीन मामला है। अमेरिकाने यह निश्चय किया कि हर हालतमें इस आक्रमणको रोकना चाहिए। विश्वके २१ राष्ट्रोंने अमेरिकाका साथ दिया। अमेरिकाने दक्षिणी कोरियाकी आर्थिक सहायताके लिए पाँच करोड़ डालरकी मंजूरी दे दी। उधर उत्तरी कोरियाकी सेनाने दक्षिणी कोरियाकी राजधानीपर अधिकार कर लिया। अमेरिकाने कोरियाका जल-घेरा डाल दिया है और कोरियामें थल-सेना जा रही है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्डकी जल-सेना अमेरिकाके सुपुर्द कर देनेकी खबर आई है। हमारे देश भारतने भी दक्षिणी कोरियाको सहायता देनेका वचन दिया है और केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलकी बैठकमें यह निर्णय हुआ है कि संयुक्त राष्ट्रके सदस्य देश दक्षिणी कोरियाके सशस्त्र आक्रमणकारियोंको भगानेमें आवश्यक मदद दें। इस प्रकारकी घोषणासे कहा जाता है कि भारतकी वैदेशिक नीतिमें कोई अन्तर नहीं है। अमेरिकाने यह भी घोषणा की है कि यदि फारमूसापर कम्यूनिस्ट चीनने आक्रमण किया तो अमेरिका उसकी रक्षा करेगा। कहनेको तो यह पुलिस कार्यवाही है, पर दक्षिणी कोरियाकी समस्या बड़ी गम्भीर समस्या है। दक्षिणी कोरियाकी सेना निकम्मी, और शासन गन्दा है। अमेरिकाने यह भी घोषणा की है कि अमेरिकन वायु-सेनाकी प्रगति दक्षिणी कोरिया तक ही सीमित न रहे वरन् उत्तरी कोरियाके हवाई अड्डोंको भी वह नष्ट करे। इन २१ राष्ट्रोंकी इस कार्यवाहीको रूस ग़ैरक़ानूनी मानता है पर इस क़ानूनी शब्दावलीसे स्थिति साफ़ नहीं होती। असली बात है कि अब प्रत्यक्ष रूपसे कोरियामें रूस और अमेरिकाके पिट्ठू लड़ रहे हैं। हमारे खयालसे अमेरिकाने ठीक किया है क्योंकि ये सब चिह्न

भावी महायुद्धके प्रतीक हैं और यह अघोषित युद्ध सम्भावित महायुद्धके लिए मोर्चेबन्दी है। अगर इस समय कमजोरी दिखाई तो अमेरिकाको दबना ही पड़ेगा। स्वयं भारतको अमेरिकाका साथ देना पड़ा। पाकिस्तान भी अमेरिकाके साथ है। रूसको, जो भारत-पाकिस्तानका पड़ोसी है, यह बात नहीं पसन्द आई। विश्वकी वर्त्तमान परिस्थिति यह है कि अधिकांश देश किसी-न-किसी प्रकार दो गुटोंमें बँटा है। हम कितने ही तटस्थ रहें पर सक्रिय सहानुभूतिसे ही लोग जान सकते हैं कि हम किधर हैं। हमारा निजी अनुमान है कि इस कोरिया युद्धसे महायुद्धकी आग नहीं भड़क सकती। दक्षिणी-पूर्वी एशियाको अमेरिका काफ़ी सहायता देगा और अपनी बेबसीमें उन्हें अमेरिकाका साथ देना पड़ेगा। भारतका अमेरिकाका साथ देना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है जिसका असर समस्त एशियापर पड़ेगा।

'ज़मीनके शोषक'

गत जूनकी ग्राम-उद्योग-पत्रिकामें श्री जे० सी० कुमारप्पा 'जमीनके शोषक' शीर्षकके अन्तर्गत लिखते हैं :—

राजकीय सत्ता प्राप्त होनेके बाद देशमें अधिक-से-अधिक उत्पादन हो—इसकी हम भरसक कोशिश कर रहे हैं। इसके एक जरियेके तौरपर ऐसा सुझाया गया है कि किसान और सरकार—इनके बीच कोई मध्यस्थ न रखा जाय। देशके कोई-कोई भागोंमें इन मध्यस्थोंकी दससे अधिक किस्में हैं और उनके जमीनके ऊपरके हक भी उतने ही किस्मके हैं। यदि सच देखा जाय तो जमीन पूरे समाजकी मिल्कियत होनी चाहिए जिससे समाजका भरण-पोषण होता रहे। इसलिए कानूनकी रूसे जमीन किसी एक व्यक्तिकी मिल्कियत नहीं मानी जानी चाहिए। कम-से-कम तिजारतके लिए जो लोग जमीन खरीदना चाहते हैं उन्हें तो ये हक मिलने ही न चाहिए।

शुरू-शुरूमें जमीनके मालिकोंकी बेदखलीका यह आदर्श हम शायद न प्राप्त कर सकें। पर फिलहाल, उनकी जमीनकी मिल्कियत मान्य करते हुए भी, हम उन्हें उतना ही फायदा करनेके हक़दार समझेंगे जितना कि बैंकोंमें मियादी रकमपर सूद मिलता है। कोई नामी-गिरामी बैंक मियादी रक़ सालाना २३/४ से २१/२ प्रतिशतसे अधिक सूद नहीं देता। कोई जमींदार अपनी पूँजी जमींनमें लगाता है तो उसे इतना ही मुनाफा प्राप्त करनेका हक़ है। आजकी सम बँटाईकी पद्धतिमें जमीनकी उपजका आधा मालिकको है और आधा काश्त करनेवालेको। इसका परिणाम यह है कि जमीनके मालिकको निर्ख १२१/२ प्रतिशत मुनाफ़ा जाता है और काश्त करनेवालेको अपने आधे हिस्से काश्तका सारा खर्च करना पड़ता है और उसीपर अपनी बसर भी करनी पड़ती है। कई बार तो अन्तमें काश्त वाला घाटेमें ही रहता है। जमीन-मालिकोंकी यह आ हिस्सा बाँट, काश्तकारोंमें उनके बारेमें काफ़ी मनमुटाव फै रही है। इसलिए जमीन-मालिकोंको चाहिए कि इस मुटावको महसूस करके वे अपने जमीनपर के हकोंम कम करें।

हमारे सुझावके अनुसार यदि उन्हें किसी उद्योगमें लगानेवाले पूँजीपतियोंके समकक्ष रखना हो तो उनका लगभग १० प्रतिशत कच्चे मुनाफेके आसपास चाहिए। अधिक उन्हें मिलनेसे काश्तकारके ऊपरका बोझ बढ़ जाता और उसे अपनी मिहनतका पूरा मुआवजा नहीं मिलता।

यह हालत समाजके हितकी दृष्टिसे भयानक है, इससे खेतीपर काम करनेवाले मजदूरोंकी कामपर से श्रद्धा रही है। अन्नकी कमी पूरी करनेकी दृष्टिसे भी खेतीपर काम करनेवाले मजदूरको अपनी मिहनतका पूरा मुआ मिलना जरूरी है। बटाईके सौदे और जमीनें पट्टेपर प्रथाओंको न्याय और सामाजिक हितकी दृष्टिसे चाहिए। अभी भी कई जमीनोंके मालिक इस अन्यायको सूस नहीं करते। देशके क़रीब सभी भागोंमें काश्तके लि युक्त खतरा मौजूद है। इसलिए अब समय आ गया है सरकार हस्तक्षेप करके इस खतरेसे देशको बचावे। हमें है कि नये अन्न और कृषि-मन्त्रीकी नियुक्तिके साथ-साथ परिस्थिति सुधर जायगी और इस समस्याकी जब ही उस दी जावेगी।

अराजकतावाद या आर्षयुग

प्रिंस क्रुरोपाटकिनने अपने ग्रन्थोंमें एक ऐसे युगकी कल्पना की है, जिसमें न राजाकी आवश्यकता है न राज्य की ; न दण्डकी, न विधान की ; न पुलिसकी और न सेना की। अर्थात् नागरिक लोग इतने शिष्ट, सभ्य, सदाचारी और नैतिक बन जायँ कि उनके सम्बन्धमें अपराधोंकी कल्पना ही न की जा सके। कोई किसीको किसी प्रकारकी हानि पहुँचानेकी चेष्टा ही न करे। चेष्टा हीं क्यों ? हानिका विचार भी मनमें न आने दे। जहाँ मस्तिष्कमें दूषित विचारोंका प्रवेश तक नहीं, वहाँ कथन और कार्यमें दूषणका अधिकार कैसे हो सकता है। प्रिंस क्रुरोपाटकिनके इस कल्पित 'स्वर्ग'की सर्वत्र कामना की जाती है। कुछ लोग इसे असम्भव सुख-स्वप्न बताते हैं और कुछ कोरी कल्पना। परन्तु इसे नई भावना, नई उपज अथवा मौलिक सूझकी संज्ञा सब लोग देते हैं। जिस देश और जिस संस्कृतिमें सैकड़ों-सहस्रों वर्ष पूर्व जनताका सरल, सुन्दर और सात्विक जीवन रहा हो, उसके लिए प्रिंस क्रुरोपाटकिनकी उपर्युक्त विचार-धारामें न तो कोई नवीनता है और न कोई विशेष आकर्षण। महाभारतमें 'स्वराज्य' या आर्षयुगकी कैसी सुन्दर कल्पना की गई है।

न राज्यं न च राजाऽऽसीन्न दण्डो न च दाण्डिकः
धर्म्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्तिस्म परस्परम्।

न राज्य था, न राजा ; और न दण्ड था, न दण्ड देनेवाला। प्रजाजन धर्मके द्वारा ही परस्पर व्यवहार और एक-दूसरेकी रक्षा करते थे। वस्तुतः जिस युगमें ऐसा सरल, स्वाभाविक और सदाचरण युक्त व्यवहार होगा, वह कितना सुन्दर, सात्विक आदर्श और कल्पनातीत रहा होगा। व्यष्टिको समष्टिमें मिला देने अथवा व्यक्तिगत स्वार्थको प्राणिमात्रकी कल्याण-कामनामें लीन कर देनेसे ही इस आर्षयुगका उदय हो सकता है। प्रिंस क्रुरोपाटकिनने आर्षयुग अथवा कृतयुगको अराजकवाद (अनारकिज़्म) के नामसे पुकारकर कुछ अच्छी सूझ-समझका परिचय नहीं दिया। अराजकता अथवा 'अनारकी' तो शासन अथवा राष्ट्रकी अस्त-व्यस्त अवस्थाका ही बोध कराती है, उसमें सात्विक भावना या शान्तिके चिह्न नहीं दीख पड़ते। जिस आर्षयुगकी ओर महाभारतके उक्त श्लोकमें संकेत किया गया है, उसका मूल मन्त्र तो सबकी कल्याण-कामना और सबके लिए सुख-शान्तिकी चाहके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। कहा भी है—

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुखःमाप्नुयात

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

काशी नागरी प्रचारिणी-सभा और हिन्दी साहित्य-सम्मेलनने हिन्दी-प्रचारके लिए जो प्रशंसनीय प्रयत्न किये हैं, वे कभी विस्मृत नहीं किये जा सकते। सम्मेलनकी परीक्षाएँ तो बहुत ही लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं, सहस्रों परीक्षार्थी और परीक्षार्थिनियाँ उनमें प्रतिवर्ष सम्मिलित होते तथा लाभ उठाते हैं। हम सम्मेलनकी आन्तरिक गतिविधियोंसे अधिक सम्बद्ध नहीं हैं, परन्तु इतना आभास हमें अवश्य है कि भीतर-ही-भीतर सम्मेलनमें कुछ दलबन्दीकी भद्दी भावनाएँ बढ़ रही हैं। उसमें भी उखाड़-पछाड़ और हार-जीतके भाव दिखाई देने लगे हैं। कभी उसमें यह दल 'वाक आउट' करता है और कभी वह दल स्थायी समिति छोड़कर भागता है। वार्षिक सम्मेलन होते हैं तो उनमें सारी शक्तियाँ पद-प्राप्तिके लिए कानाफूँसी (कनवेसिंग) में लगा दी जाती हैं। उस समय न किसी प्रकारका ठोस कार्यक्रम बनता है और न कोई क्रियात्मक विचार-धारा निश्चित होती है। एक ओर सरकारी रेडियोका ज़ोरदार 'बॉयकाट' किया जाता है, दूसरी ओर सरकारके आगे बड़े विनीत भावसे सहायताके लिए हाथ पसारा जाता है। फिर रेडियोका बहिष्कार उस समय समाप्त या शिथिल कर दिया जाता है, जब दो-चार व्यक्तियोंको छोटी-मोटी नौकरियाँ मिल जाती हैं। जहाँ तक हम जान सके हैं, सम्मेलनके बहिष्कार आन्दोलनमें सैद्धान्तिक आधार उतना नहीं होता जितना वैयक्तिक। सम्मेलनकी परीक्षाओंकी लोकप्रियताके साथ-साथ 'रीडरबाजी'का भी रोग बढ़ने लगा है, अर्थात् कितने ही प्रकाशक और लेखकोंको सम्मेलनके साथ इसीलिए सम्पर्क या सहयोग स्थापित करनेको विवश होना पड़ा है कि उनकी पुस्तकें पाठ्यक्रममें आ जायँगी और अनायास ही वे

सहस्रोंकी संख्यामें बिक सकेंगी। हमने तो यहाँ तक सुना है, कि अनेक प्रवीण प्रकाशक मनचाहे लेखकों और साहित्यिकोंको अपने व्ययसे सम्मेलनके वार्षिक महाधिवेशनमें ले जाते और उन्हें स्थायी समिति, परीक्षा-समिति, कोर्स-समिति और न जाने किस-किस समितिका सदस्य बनानेका प्रयत्न करते हैं। यह भी देखने और सुननेमें आता है कि सम्मेलनमें एक दल दूसरेपर और दूसरा तीसरे-चौथेपर चढ़ाईकर विजय पानेकी चेष्टा करता रहता है। किसी साहित्य-संस्थाके लिए ऐसी चेष्टा निश्चय ही लज्जा और दुःखकी बात है। सम्भव है, हमारी उपर्युक्त सूचनाएँ गलत हों, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलनका गौरव दिनोंदिन कुछ कम अवश्य होता जाता है। उसके उपर्युक्त कारण न होंगे तो और कुछ होंगे, परन्तु दालमें काला जरूर है। हम सम्मेलनके सबल समर्थक और सच्चे हितैषी हैं और एक क्षणको भी नहीं चाहते कि उसमें विशृंखलता, आपा-धापी या दलबन्दीका प्रवेश हो। हम तो उसका वही सौम्य, सच्चा और शुद्ध रूप देखना चाहते हैं, जो कभी था। सम्मेलनके प्राण श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तमदास-टण्डनसे हमारी विनम्र विनती है कि वे सम्मेलनका संशोधन करनेमें विलम्ब न करें, उसमेंसे उन सारे तत्वोंको दूर कर दें जो व्यक्तिगत स्वार्थ-भावना या दलबन्दीके आधारपर एकत्र हो गये हैं। हमारा हिन्दी साहित्य-सम्मेलन बाक़ायदा विश्वविद्यालय बनने जा रहा है, वह देशकी प्रतिष्ठित संस्था बन चुका है। जिस सम्मेलनका मूलारोपण महामना मालवीयके करकमलोंसे हुआ था, जिसके अध्यक्ष-पदको राष्ट्रपिता बापू प्रतिष्ठित कर चुके हैं, जिसकी परीक्षाएँ घर-घरमें गुरुमन्त्रकी तरह जपी जाती हैं उसकी हीनावस्था हम एक क्षणको भी नहीं देख सकते।

नैतिकताके लिए ?

अंगरेज सरकारकी तरह आज हमारी राष्ट्रिय सरकार भी पुलिस और सेनापर करोड़ों रुपये पानीकी तरह बहा रही है। अदालतोंमें जजों और मजिस्ट्रेटोंकी संख्या बढ़ाती जाती है। शुष्क शिक्षापर विपुल धन-राशि व्यय करनेमें अग्रसर है, परन्तु नैतिकता-प्रसारके लिए उसके पास क्या साधन हैं? इस कार्यको वह किस प्रकार करना चाहती है, यह बात समझनेपर भी हमारी समझमें नहीं आती। यानी रो इलाजके लिए तो काफ़ी जोश है, परन्तु रोगकी रोक-थाम कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। अन्धेको कुएँमें से निकालने लिए तो डोली-डण्डा तैयार हैं, परन्तु उसे कुएँमें गिरनेसे ब के लिए कोई उपाय नहीं। अभिप्राय यह कि इस विषयमें उपेक्षापूर्ण नीति भूतपूर्व विदेशी सरकारकी थी वही वर्तमान स्वदेशी सरकारकी भी है। सरकारी सूचना-विभागकी ओर प्रत्येक राज्यमें सैकड़ों व्यक्ति काम करते हैं। परन्तु नैतिकता शिक्षा देनेके लिए कितने कार्यकर्त्ता हैं? ऐसा कौन-सा कार्य-क्षेत्र है जिसमें भ्रष्टाचार नहीं फैला हुआ और अनैति काम नहीं कर रही। चोरबाजारी, बेईमानी, झूठ, म रिश्वत, रियायत, सिफ़ारिशका बोलबाला है। इनका इ क़ानूनकी कुनैन खिलाकर किया जाता है; कड़वी कु नहीं, मीठी! जो रोगीको बुरी और बदज़ायका न लगे। भी उस रोगीको जिसका रोग सबके सामने हो, इसके लि ऐसे अगणित रोगी हैं, जिनके रोगोंका आज तक इलाज न हुआ और सड़ाँद दिनोंदिन बढ़ रहा है। सरकारकी ओर एक विभाग क़ायम किया गया—'भ्रष्टाचार निरोधक विभाग' (एंटी करप्शन डिपार्टमेण्ट); उसमें रखे गये हैं कौन?— पुलिसके कार्यकर्त्ता! कैसा सुन्दर चुनाव और कितनी सूझ-समझ रही! क्या सरकार नैतिकता प्रसार-विभाग स्थापित कर उसका काम ईमानदार लोगोंको नहीं सौंप सकती? लोगोंको, जिन्होंने परोपकारके नामपर स्वार्थसिद्धिका सबक न सीखा, जो दम्भ-दुर्गमें बैठकर दलबन्दीके दलदलमें नहीं जिनका पवित्र जीवन आपाधापी, पदलोलुपता और अधिक लिप्साके पाप-पंकमें न पड़कर सर्वथा सात्विक और स्वार्थ बना हुआ है। क्या ऐसे व्यक्तियोंका मिलना कठिन है? हाँ, अवश्य कठिन है। उन्हें खोजना पड़ेगा। वे अ डिप्लोमे या डिग्रियाँ दिखा-दिखाकर स्वार्थी और घमण्डी सरकारी अधिकारियोंके आगे नौकरी माँगनेके लिए पल्ला पसारेंगे। सरकारको स्वयं ऐसे व्यक्ति खोजकर उनसे सहायता लिए प्रार्थना करनी पड़ेगी, उन्हें खोजना होगा और अ

समयकी आवश्यकताके लिए काम करनेको कहना पड़ेगा। बिना नैतिकता-प्रसारके अनैतिकतासे बचनेका प्रयास उतना ही निरर्थक है जितना किसी पौदेके पत्तोंपर पानी छिड़ककर उसकी जड़ मज़बूत करनेकी कल्पना।

वन-वैभव

मानव-समाजके लिए कितने ही पशु-पक्षी जिस प्रकार परिवार रूप हैं, उसी प्रकार वृक्षोंकी भी गणना है। जो लोग वृक्षोंको काटते हैं, वे आत्म-हनन करते हैं क्योंकि वृक्षोंके बिना प्राणियोंका जीवन नहीं रह सकता। एक प्रकारसे वृक्ष ही जीवन हैं। हम वृक्षोंकी रक्षा और वृद्धिके सम्बन्धमें इन पृष्ठोंपर अनेक बार लिख चुके हैं, और आगरा जिला विकास-संघके अध्यक्षकी हैसियतसे इस दिशामें कुछ क्रियात्मक काम भी कर सके हैं। हमें हर्ष है कि केन्द्रीय सरकारके कृषि-मन्त्री माननीय श्री के० एम० मुन्शीने अपना मन्त्रित्व-पद सँभालते ही सबसे अधिक वन-वैभव या वृक्ष-रक्षापर बल दिया है, वे निश्चित रूपसे एक ठोस और विस्तृत वृक्ष-योजनाको कार्य-रूपमें परिणत करनेकी कोशिश कर रहे हैं। हाल ही में माननीय मुन्शीजीने देहलीकी एक सभामें वन-पूजाकी महिमा दरसाते हुए कहा—

"वृक्षोंकी नीली छटाके लिए हमारे पूर्वजोंमें जो प्रेम था वह हममें भी होना चाहिए, हमें अपनी वन-प्रधान संस्कृति की ओर अभिमुख होना चाहिए। वृक्षोंकी छायामें उसने जन्म लिया; वृक्षोंके पत्तोंपर प्रभातमें जो जल-कण पड़ते हैं, उनका उसने जलपान किया और समीरमें डोलती हुई पत्रावलियोंमें से आती हुई चन्द्र-किरणके साथ उसने नृत्यकलाका पाठ पढ़ा है। वृक्ष ही जल है, जल रोटी है और रोटी ही जीवन है। वृक्षोंको हम काटने लगे! वृक्षारोपण आज एक फैशन बन गया है, परन्तु उसमें जो धार्मिक श्रद्धाका तत्व था, वह चला गया। हमारी सारी संस्कृति वन-प्रधान है, ऋग्वेद जो हमारी शक्तिका मूल है, वन-देवियोंकी अर्चना करता है। मनुस्मृतिमें वृक्ष-विच्छेदकको बड़ा पापी माना गया है। उसके लिए दण्डका विधान किया है। मत्स्य पुराणमें कहा गया है, जो आदमी वृक्षोंको नष्ट करता है, उसे दण्ड दिया जाय। तालाबों, सड़कों या सीमाके पास वृक्षोंको काटना बड़ा गम्भीर अपराध था। उसके लिए दण्ड भी बड़ा कड़ा रहता था। अग्नि पुराणमें लिखा है कि जो वृक्ष-रक्षा करता है, वह तीस सहस्र पितरोंका उद्धार करता है, वृक्षोंका रोपण स्नेहपूर्वक और परिपालक पुत्रवत् करना चाहिए। पुत्र और तरुमें भी भेद है, क्योंकि पुत्रको हम स्वार्थके कारण जन्म देते हैं, परन्तु 'तरु-पुत्र'को तो परमार्थके लिए ही लगाते हैं। ऋषि मुनियोंकी तरह वृक्षोंकी भी पूजा करनी चाहिए, क्योंकि वृक्ष तो द्वेष वर्जित हैं; जो उन्हें छेदन करते हैं, उन्हें भी वे छाया, पुष्प और फल देते हैं। महान् सम्राट् अशोकने मार्गके दोनों ओर वृक्ष रोप दिये थे, जिससे मनुष्य और पशु-पक्षियोंको छाया मिल सकती थी। आम्र-वृक्षोंके समूह भी लगा दिये थे। क्या स्वतन्त्र भारतमें आज तेईस सौ वर्ष बाद हम सम्राट् अशोकका सन्देश नहीं सुनेंगे? क्या हम भी मार्गों, तालाबों और अन्य स्थानोंपर वृक्ष लगाकर मनुष्य और पशु-पक्षियोंको सुख न पहुँचायँगे। हमारे ऋषि-मुनि तपोवनोंमें ही निवास करते थे, वे वहीं अपने संस्कार, आत्मसंयम और भावनाओंको सुदृढ़ बनाते थे। भारतीय स्मरण-भण्डार नन्दनवनके सौन्दर्यसे भरा हुआ है। महिलाओंमें श्रेष्ठ सीताजीके भव्य आत्म-समर्पणकी विश्वासपूर्ण करुणा अशोक वनसे सम्बन्ध रखती है। हमारे जीवनका उल्लास वृन्दावनके साथ लिपटा हुआ है। वृन्दावनको हम कैसे भूल सकते हैं। वहाँ कृष्ण भगवान्ने यमुना-तटपर नर्तन करते हुए, डालियों और पुष्पोंकी तालके साथ, अपनी वेणु बजाई थी। उनकी ध्वनि आज भी हमारे कानोंमें सुनाई देती है, और भगवान्ने ही कहा था—'अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां—मैं वृक्षोंमें अश्वत्थ हूँ। हमको पूर्वजोंकी ज्वलन्त संस्कृति मिली है, परन्तु हम उनके योग्य नहीं रहे। हम अपने वनोंको काट डालते हैं। हम वृक्षोंका आरोपण करना भूल गये। वृक्ष-पूजाका हमारे जीवनमें स्थान नहीं रहा। हमारी स्त्रियोंमें से शकुन्तलाकी आत्मा चली गई है। शकुन्तला वृक्षोंको पानी दिये बिना पानी ग्रहण न करती थी। अब हमारी स्मृति कुण्ठित हो चुकी है, इसको फिरसे जीवित करना चाहिए। हमें अपनी वन-प्रधान संस्कृतिकी ओर अभिमुख होना चाहिए

क्योंकि वनोंकी छायामें ही उसने जन्म लिया है। यदि प्रत्येक स्त्री-पुरुष वृक्षोंके महत्त्वको समझे और पुत्रवत् उनका परि-पालन करे तो भारतका प्रत्येक नगर और प्रत्येक गाँव जीवनो-ल्लाससे ओत-प्रोत हो जायगा।"

माननीय श्री के० एम० मुन्शीने कैसे सुन्दर शब्दोंमें वन-वैभवका महत्त्व बतलाया है। आवश्यकता है, कि हम अपने पूज्य पूर्वजोंका अनुसरण करते हुए वनोंके प्रति अपनी निष्ठा और श्रद्धाको दृढ़ करें, वृक्षोंकी हत्याके अपराधसे बचें और उन्हें सरस तथा सफल बनावें। ऐसा करके हम कुछ वृक्षोंका उपकार न करेंगे बल्कि अपनी ही कल्याण साधना करेंगे, क्योंकि वृक्षोंके बिना हमारा तथा हमारे कुटुम्बी पशु-पक्षियोंका जीवन क़ायम नहीं रह सकता।

हैदराबाद आर्य महासम्मेलन

गत २० से २५ मई तक हैदराबाद (द०) में एक बहुत बड़ा आर्य सम्मेलन हुआ। स्वतन्त्र हैदराबादमें सम्भवतः यह सबसे बड़ा और प्रथम महासम्मेलन था। कहनेको तो यह 'आर्य-महासम्मेलन' था परन्तु उसमें सभी विचार-धाराओंके लोग सम्मिलित थे। सभापति श्री अयोध्या प्रसादजीका जुलूस बड़ी शानसे निकाला गया। उनके रथमें इक्कीस जोड़ी बैल जुते हुए थे, लगभग दो सौ संस्थाओंका प्रदर्शन था। जुलूसमें सम्मि-लित लाख-सवा लाख जनता बड़ी ही शान्त, सुव्यवस्थित और उत्साहपूर्ण थी। कुछ लोग तो इस शोभा यात्रा (जुलूस) को 'विजय-यात्रा' के नामसे पुकार रहे थे। आर्य महासम्मेलनके इस विराट् जुलूसने कितने ही संकीर्ण परम्पराओंको भंग कर दिया। अर्थात् जिन मार्गोंपर केवल सम्प्रदाय विशेषके जुलूस ही निकल सकते थे, उनपर होकर भी यह महान् जुलूस गुज़रा। जो बाजे केवल समुदाय विशेषके लिए निश्चित थे वे भी इस जुलूसमें निरन्तर बजते रहे। जुलूसमें शिक्षा, संस्कृति, कृषि, राष्ट्रियता, धर्म, समाज-संशोधन सभी भावनाओंका पूरा और प्रशंसनीय प्रदर्शन था। आर्य महासम्मेलनमें 'संकीर्णता' नहीं थी, उसके विशाल सभामण्डपमें एक द्वार था—श्वैउल्लाह द्वार—जो हैदराबादके राष्ट्रिय शहीद तथा प्रसिद्ध पत्रकार श्वैउल्लाहकी स्मृतिमें बनाया गया था। सम्मेलनका सारा कार्यक्रम उदारतापूर्ण और व्यापक था। यहाँ तक कि उसके अध्यक्ष श्री अयोध्या प्रसादजीने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषणमें आर्यसमाजको सलाह दी थी कि उसे संकीर्ण भावना त्यागकर अधिकाधिक उदारताका आश्रय लेना चाहिए। आर्यसमाजका कार्यक्षेत्र सारा संसार है, उसे उसी रूपमें अपनी गति-विधि निश्चित करनेकी आवश्यकता है। समाजका मुख्य लक्ष्य रच-नात्मक कार्योंपर ही रहना चाहिए, इत्यादि। इस महासम्मेलनमें श्री बंकटलाल ओझाके उद्योगसे समाचार-पत्र-प्रदर्शिनी और चित्र-प्रदर्शिनी बड़ी सफल और सुन्दर रही। महिला-सम्मेलन बहुत प्रभावशाली था। शिक्षा-सम्मेलनसे गम्भीर चिन्तनका प्रमाण मिलता था। कवि-सम्मेलन तो हैदराबादमें इतनी सफ-लतासे पहली ही बार हुआ बताया गया। इस सम्मेलनमें हैदराबादके कई सुप्रसिद्ध उर्दू शायरोंने भी अपनी उत्कृष्ट नज़्में पढ़ीं। उस समय जनताकी तादाद ५०-६० हज़ारसे कम न थी। यों नित्य ही सन्ध्या समय इतने ही श्रोताओंका जमाव रहता था। वहाँ एक ख़ास बात थी, पचास हज़ारसे अधिक श्रोता एकत्र होनेपर भी किसी प्रकारकी चखचख नहीं होती थी। सब लोग बड़ी शान्तिसे रात्रिके बारह-बारह बजे तक बैठे रहते थे। महासम्मेलनका प्रबन्ध बहुत प्रशंसनीय था। स्वयं सेवक बड़े विनीत और कर्त्तव्यपरायण थे। भण्डारमें लग-भग तीन सहस्र अतिथि भोजन करते थे, परन्तु इतने लोगोंकी भोजन-व्यवस्था बड़ी सुन्दर और सराहनीय थी। अकेले सौभाग्यवती शान्ताबाई सारा प्रबन्ध करती थीं। एक दिन अतिथियोंको हैदराबादके ऐतिहासिक दर्शनीय स्थानों की भी झाँकी कराई गई। आर्य महासम्मेलनकी सफलताका मुख्य कारण यह था कि उसके आयोजक और संयोज़क प्रायः वे ही अनुभवी और लोकप्रिय सज्जन थे जो कांग्रेस और हिन्दी-प्रचार आन्दोलनका कार्य भी बड़ी योग्यता और सफलतासे करते रहे हैं। श्री विनायकरावजी विद्यालंकार जो अब हैदराबाद राज्यके मन्त्रिपदपर अधिष्ठित हैं, श्री नरेन्द्रजी जो कांग्रेस के हिन्दीके ख्यातनामा व्यक्ति या कार्यकर्त्ता हैं, महासम्मेलनके स्वागताध्यक्ष और प्राण थे। श्री मनोहरलालजी स्वागतमन्त्री थे। व्याख्यान वाचस्पति श्री प्रकाशवीर शास्त्री सम्मेलनके

प्रधानमन्त्री थे। अभिप्राय यह कि सब ही लोग सार्वजनिक सेवक और सच्चे कार्यकर्त्ता थे। इस विराट् सम्मेलनमें हमको भी विशेष रूपसे आमन्त्रित किया गया था। परन्तु हम जा न सके। सारा वृत्तान्त हमें अपने विशेष प्रतिनिधि द्वारा ही ज्ञात हुआ। हमारे प्रतिनिधिको हैदराबादमें यह भी मालूम हुआ कि वहाँ दिसम्बरमें अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके लिए भी बड़ा सुन्दर आयोजन किया गया था, परन्तु वह इसलिए विशेष सफल न हो सका कि उस समय उसमें कुछ लोग दलबन्दीकी भद्दी भावना लेकर, हैदराबादकी सीमामें प्रविष्ट हुए थे, और वही अन्त तक उनके हृदयोंमें काम करती रही।

साहित्यिक चोरी

गत २७ मईके एक पत्रमें शान्तिनिकेतनसे श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी लिखते हैं :—"अशोकके फूल' नामक अपना एक निबन्ध-संग्रह भेज रहा हूँ। इस महीनेके 'विशाल भारत'में श्री पुरुषोत्तम शर्मा 'भास्कर' नामके एक सज्जनने 'रवीन्द्रनाथके राष्ट्रिय गान'—नामक एक लेख छपाया है। वह मेरा लेख है। पहले विश्वभारती पत्रिकामें छपा था। बादमें अशोकके फूल (पृ० ३६८) में श्री पुरुषोत्तम शर्मा 'भास्कर'जीने, पूरा लेख बिना कामा, फुलस्टाप बदले, अपने नामसे छपा दिया।"

श्री द्विवेदीजी न केवल 'विशाल भारत'के प्रसिद्ध लेखक ही हैं वरन् वे 'विशाल भारत' परिवारके विशेष व्यक्ति हैं। हम उनके स्वभावसे भलीभाँति परिचित हैं। यदि उनको वेदना न हुई होती तो वे अपनी कृतिकी चोरीपर कुछ नहीं लिखते। हमें पता नहीं कि भास्करजीने ऐसा दुस्साहस क्यों किया। अगर उन्होंने द्विवेदीजीके लेखके आधारपर लिखा होता और उस लेखकी स्वीकृति माननेमें यदि भूल हो गई होती तो वह क्षम्य हो सकती थी, पर पूरे लेखको, बिना कामा फुलस्टाप बदले, अपने नामसे छपाना घोर अनैतिकता है। लोहे, चीनी तथा किसी खाद्य सामग्रीमें भ्रष्टाचार करनेकी अपेक्षा मानसिक भोजनकी चोरी करना घोरतम अन्याय और अनैतिकता है। साहित्यिक चोरी, जिसे अंगरेज़ीमें प्लीजिरिज़्म कहते हैं, किसी लेखकको ऊँचे स्तरपर नहीं ले जाती। हमें आशा है कि हमारे पाठक और लेखक इस ओर ध्यान रखेंगे। हमें दुःख और ग्लानि है कि श्री भास्करजी की चर्चा हमें इस प्रकार करनी पड़ी। हमारा उनका न व्यक्तिगत परिचय है और न उनके प्रति हमारा कोई द्वेष है। कर्त्तव्यवश हमें ये शब्द लिखने पड़े हैं।

पत्रकार अपने प्रति उदासीन क्यों ?

बन्धुवर पं० बनारसीदास चतुर्वेदीने गत जूनमें 'पत्रकार अपने ही प्रति उदासीन क्यों' शीर्षकसे एक लेख लिखा है जो हिन्दीके कई पत्रोंमें प्रकाशित हुआ है। लेखके प्रारम्भमें भूमिका-स्वरूप चतुर्वेदीजीने—हम चौबेजी शब्दसे ही उन्हें सम्बोधित करेंगे—विलायती पत्रकार-कलाकी चर्चा की है और पत्रकारोंकी दुर्दशापर चौबेजीने कुछ आँसू भी बहाए हैं। भूमिकाके बाद चौबेजीका लेख इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

जहाँ तक हिन्दी-पत्रकारोंके संगठनका सम्बन्ध है, इस समय तीन भटके हुए भाइयोंके उदाहरण हमारे सामने उपस्थित हैं। सर्वश्री हरिशंकर शर्मा, श्रीराम शर्मा और मूलचन्द अग्रवाल। हरिशंकरजी ऐसे व्यक्ति हैं जो वस्तुतः श्रमजीवी पत्रकार नामसे पुकारे जाने योग्य हैं। श्रीरामजी भी उसी कोटिके पत्रकार हैं। और भाई मूलचन्दजीसे तो हमें यह आशा भी थी कि जिस प्रकार लार्ड नार्थक्लिफने विलायतके श्रमजीवी पत्रकारोंके संगठनका समर्थन किया था और उसमें सहायता दी थी उसी प्रकार मूलचन्दजी भी हम लोगोंका साथ देंगे। किन्तु यह एक आश्चर्य और दुःखकी बात है कि जिन लोगोंसे हमें सबसे अधिक सहायता मिलनेकी आशा थी, वे ही श्रमजीवी पत्रकारोंके संगठनके विरोधी हैं।

श्रीरामजी तथा हरिशंकरजी श्रमजीवी पत्रकार संगठनके इसलिए विरोधी हैं कि वे पत्रकारिताको मिशन मानते हैं, वृत्ति नहीं। पर वस्तुस्थितिसे मुँह मोड़ना ठीक नहीं। और यह खयाल तो और भी लगा है कि शारीरिक श्रम करनेवालों तथा मानसिक श्रम करनेवालोंके बीच कोई विभाजक-रेखा होनी चाहिए। श्रमजीवी पत्रकारोंका संगठन केवल रुपये, आने, पाइयोंके लिए ही नहीं है। उसका एक नैतिक आधार है और

वस्तुतः उसका नैतिक पहलू आर्थिक पहलूसे कहीं अधिक मजबूत है।

रहे मूलचन्दजी। उन्होंने 'श्रमजीवी पत्रकारोंसे' नामक एक लेख हाल ही में लिखा है। उसमें उन्होंने कई बातें ऐसी लिखी हैं जो विचारोत्तेजक हैं। उनके कथनका सारांश यह है :—

(१) सहकारी सम्पादकोंकी मनोवृत्ति बदल गई है और उनमें ६० फ़ी सदी कम्यूनिस्ट हो गये हैं, शेष १० फ़ी सदी बीचमें लटके हुए हैं।

(२) श्रमजीवी पत्रकार नाम रखकर सहकारी सम्पादकोंने बाह्य जगतमें अपना सम्मान कुछ भी नहीं रखा। उनकी बहन-बेटियोंकी शादी भी कठिन होती जायगी, क्योंकि लोग मजदूरोंके यहाँ विवाह करनेमें काफी संकोच करते हैं।

(३) संचालक स्वयं भूखे-नंगे हैं। भूखोंसे बढ़िया भोजन की माँग की जा रही है।

(४) श्रमजीवी पत्रकार सरकारको इस बातके लिए नहीं कोसते कि वह राष्ट्रिय सरकारके विरोधी पत्रोंको तो विज्ञापन देती है और हिन्दी पत्रोंके साथ सौतेली मा जैसा व्यवहार करती है।

(५) यदि श्रमजीवी पत्रकारोंको इस क्षेत्रमें सन्तोष नहीं तो उन्हें उससे बाहर जानेसे कौन रोकता है ?

(६) जब पत्र-संचालकोंके पास बैंक बैलेंस होने लगे तब अपनी न्यायोचित माँगोंकी पूर्ति उनसे करानी चाहिए।

श्री मूलचन्दजीके तर्क नं० ३ व ५ में कुछ दम है और उनपर उन्हें सहानुभूतिके साथ विचार करना चाहिए। जहाँ तक पत्रकारोंके कम्यूनिस्ट बन जानेका प्रश्न है, हमारा यह खयाल है कि यदि श्रमजीवी पत्रकारोंका संगठन कर दिया जाय तो उससे कम्यूनिस्ट बननेसे वे रुक सकते हैं। कम्यूनिज़्म तो निराशायुक्त आदमियोंमें ही फैलता है। जब पत्रकारोंका अपना संघ हो जायगा तो उनके जीवनमें आशाका कुछ संचार ही होगा।

रही श्रमजीवी पत्रकारोंकी बहन-बेटियोंकी शादीकी बात, सो हमारा खयाल है कि बाबूजीने यह बात मजाकमें ही लिखी है। 'श्रमजीवी' शब्दमें गौरवकी हानि नहीं वृद्धि है। और बाबूजीके इस तर्कको, कि यदि इस क्षेत्रसे पत्रकारोंको सन्तोष नहीं है तो बाहर निकलनेसे कौन रोकता है, हम ... यत्ता युक्त मानते हैं।

हम बन्धुवर मूलचन्दजीके सम्मुख एक व्यावहारिक ... जन रखते हैं, वह यह कि जिस प्रकार लार्ड नार्थक्लिफ ... अपने पत्रोंके कालम पत्रकार संगठनके लिए खोल दिये थे ... प्रकार वह भी अपने पत्रोंके कालम इस शुभ यज्ञके लिए ... दें। इसका जो नैतिक प्रभाव पड़ेगा उसका मूल्य रुपये, ... नहीं आँका जा सकता। वेतन, छुट्टी आदिके प्रश्न तो ... आनेपर स्वयं ही हल होंगे, पर वक्तपर दी हुई यह सहायता पत्रकार-कलाके इतिहासमें एक उदाहरण बन जायगी। ... हमारी यह अपील उनसे ही नहीं, अन्य संचालकोंसे भी ... यह बात असम्भव है कि हिन्दी-पत्रकार सदा इसी ... असंगठित रहेंगे। वे एक-न-एक दिन संगठित होंगे ... अवश्य होंगे। जो भी दूरदर्शी संचालक इस संकट-कालमें ... नैतिक सहायता देगा वह किसी भी प्रकार घाटेमें न रहेगा ... दर असल यह सौदा मुनाफेका है।

दोष निस्सन्देह श्रमजीवी पत्रकारोंका भी है। हम लोगोंने अपने पक्षको संयत भाषामें तथ्यों तथा आँकड़ोंके साथ जनताके सम्मुख रखा ही कहाँ है ? जो कुछ लिखा जाय संयत भाषामें लिखा जाना चाहिए और यह समझकर लिखा जाय कि पत्रकारों तथा संचालकोंके हितोंमें कुत्ते-बिल्ली जैसी कोई स्वाभाविक शत्रुता नहीं है। वे एक-दूसरेसे सम्बद्ध हैं और कितने ही अंशोंमें उनमें समन्वय हो भी सकता है। पारस्परिक कटुता उत्पन्न किये बिना इस प्रश्नपर विचार-परिवर्त्तन करना चाहिए।

चौबेजीने श्री मूलचन्दजी अग्रवाल, बन्धुवर हरिशंकर शर्मा तथा इन पंक्तियोंके लेखकको तीन भटके हुए भाई ... है। अच्छा होता कि चौबेजी इन गुमराहोंको विचित्र साथी (Strange bed fellows) कहते। श्री मूलचन्द अग्रवालके विषयमें हमें कुछ नहीं लिखना ; क्योंकि उन्हें हम गुमराह नहीं समझते हैं। उनका ध्येय पैसा कमाना है उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली है। हमारी और उनकी लाइन अलग-अलग

है। चौबेजीने हमें जो उनसे नत्थी किया है, यह चौबेजीका पौंगापन है। पौंगापन शब्दको हम फिर इसलिये और दुहराते हैं कि बालूमें से तेल निकालनेके चौबेजीके प्रयासको हम इतना बुरा न कहेंगे, जितना उनका यह आशा करना कि श्री मूलचन्द अग्रवाल लार्ड नार्थक्लिफ हो सकते हैं। लार्ड नार्थक्लिफके बारेमें हमने कुछ पढ़ा है। 'फ्लीट स्ट्रीट'के कई व्यक्तियोंसे हमने इस विषयमें चर्चा की है। लार्ड नार्थक्लिफ अपने अधीन पत्रकारोंको काफ़ी रुपया देकर उनके स्वास्थ्य-सुधार अथवा लेख लिखनेको बाहर भेज दिया करते थे। इस प्रकारकी मनोवृत्ति अभी हमारे यहाँके पूँजीपतियोंमें नहीं है। इस कामको श्री मूलचन्दजी और डालमियाँ तो क्या श्री घनश्यामदास बिड़ला भी नहीं करते। हिन्दीके पत्रकारों की दशा उन अन्धे मशालचियोंकी-सी है, जो दूसरोंको प्रकाश दिखाते हैं, पर स्वयं जिन्हें प्रकाशकी आवश्यकता है; चौबेजी भी ऐसे मशालचियोंमें से हैं। पत्रकारोंकी रट लगानेसे काम नहीं चलेगा। अगर चौबेजीका यह ख़याल है कि ट्रेड यूनियन अथवा पत्रकार-संघके प्रोपेगैण्डासे पत्रकारोंकी कुछ हालत सुधरी है, तो हम उन्हें बताना चाहते हैं कि उनकी यह ख़ामख़याली है। समयकी माँग है, चीज़ोंकी गिरानी है, इसलिये वेतन स्वतः ही कुछ बढ़ रहा है। चौबेजीके जन्म-स्थान फिरोज़ाबादमें ३०) प्रतिदिन मज़दूरी पानेवाले कारीगर हैं। आठ-दस रुपया रोज़ वेतनवाले तो हज़ारों मजदूर वहाँ होंगे। हमारा तात्पर्य यह कभी नहीं है कि पत्रकारोंको अधिक वेतन न मिले। हम चाहते हैं, उन्हें और भी सुविधाएँ मिलें। पर वे सब ट्रेड यूनियन द्वारा अभी सम्भव नहीं; तब सवाल कोरी मज़दूरीका रह जाता है। इसके अतिरिक्त चौबेजी हमें बतावें कि संघिष्ट, कम्यूनिस्ट, समाजवादी, कांग्रेसी तथा स्वतन्त्र पत्रोंके पत्रकारोंको कैसे संगठित किया जायगा। उदाहरणके लिए संघिष्ट और कम्यूनिस्ट पत्रकारोंका संगठन क्या इसी बातपर हो सकता है कि उन्हें अपनी आर्थिक-स्थिति ठीक करनी है। समझदार व्यक्ति केवल रोटीके लिए ही नहीं जीता। उसके सामने एक आदर्श होता है। सब प्रकारके पत्रकारोंका एक संगठन करना मेंडकोंको तौलना है। चौबेजी मदहखांकी तरहसे ऊँट भले ही बिठा लें, पर वे मेंडक नहीं तौल सकते। चूँकि चौबेजीका और हमारा पारस्परिक स्नेह है। इसलिये हम इस विषयको पाठकोंके लाभार्थ विवाद रूपमें 'विशाल भारत'में दे सकते हैं। चौबेजीको चुनौती है कि वे अपना पक्ष रखें। हम अपना रखेंगे। फैसला पाठकोंपर है। इस विषयमें चौबेजी जो मठा घोलते हैं, उसकी सफ़ाई होनी चाहिए। हमें आशा है कि बन्धुवर चौबेजी और अन्य पत्रकार बन्धु हमारी रायका स्वागत करेंगे।

सरदार बनाम सेठजी

पाठकोंको याद होगा कि पिछले दिनों सेठ रामकृष्ण डालमियाँ तथा सरदार पटेलके बीच गांधी-स्मारक-कोषके सम्बन्धमें कुछ पत्र-व्यवहार हुआ। हमें दुःख है कि इस प्रकारके पत्र-व्यवहारको प्रकाशनसे दूर रखना चाहिए था या फिर एक आदर्श और सिद्धान्तकी ख़ातिर किसी बातका पूरी तरहसे निरूपण हो जाना चाहिए था। उस पत्र-व्यवहारकी मूल बात यह थी कि डालमियाँजीने सरदार पटेलको सूचना दी कि गांधी-स्मारक-कोषमें सेठों और उद्योगपतियोंकी ओरसे जो पाँच करोड़का दान दिया गया, वह सात्विक दान न था, वरन् उसके पीछे, डालमियाँजीके कथनानुसार, उद्योगपतियोंकी यह भावना थी कि सरकार उनपर इनकम टैक्सकी कड़ी धाराएँ लागू न करे। सरदार पटेलने डालमियाँजीको उत्तर दिया कि अगर उन्होंने हीनाभावसे दान दिया हो, तो वे अपने दानकी रक़म वापस कर लें और दानकी वापसीके लिए कोषके अधिकारियोंको सुझाव भी उन्होंने भेजा। बात यहीं समाप्त हो जाती तो कोई बात न थी। सम्भव है, डालमियाँजीकी बात ठीक होती, क्योंकि वे स्वयं उद्योगपति हैं और उनको वे समझते हैं। पर उन्हींके निकट सम्बन्धियोंने श्री रामकृष्ण डालमियाँकी बातपर खेद प्रकट किया। इस सिलसिलेमें डालमियाँजीने एक और शिगूफ़ा छोड़ा और अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्तिकी बात कही। सरदार पटेलके उत्तरसे डालमियाँजीको सन्तुष्ट हो जाना चाहिए, पर डालमियाँजीकी भी तो विचित्र खोपड़ी है, फिर उन्होंने एक तीर छोड़ा, अर्थात् सरदारको दूसरा पत्र लिखा, जिसमें अनेक अप्रासंगिक बातें थीं, जिनका

तात्पर्य था कि गांधी-स्मारक-कोष युद्ध-कोषकी तरह था और उसके धन-संग्रहमें सरकारकी ओरसे चालें चली गईं। एक उदाहरण देते हुए सेठजीने कहा कि 'लिमिटेड कम्पनियाँ अपने कोषमें ऐसा चन्दा नहीं दे सकती थीं', इसलिये सरकारने आर्डिनेंस बनाकर उन्हें सहूलियत प्रदान की और गांधी-स्मारक-कोषमें चन्देमें दिये जानेवाले धनको इनकम टैक्ससे बरी कर दिया। इस प्रकार सेठोंसे सिर्फ पाँच करोड़ चन्दा वसूल करनेमें सरकारने दो करोड़ रुपयेकी उस रक़मको गँवा दिया, जो इनकम टैक्सके रूपमें सरकारी कोषमें आती।

मामला यहीं तक नहीं रहा। सेठजीने भारतकी वैदेशिक नीतिकी ऊल-जलूल टीका-टिप्पणी भी की। माननीय नेहरूजीको भी कुछ ताव-सा आ गया और पार्टी सभामें उन्होंने कहा—

"इस देशमें एक ऐसा आदमी भी है, जिसका चेहरा भद्दा, अक्ल भोंडी और लेखनी कुरूप है और जिसने इतना धन कमाया है कि अब वह वैदेशिक नीतिपर भी अपनेको अधिकारी मानता है।" डालमियाँजीने अपनी रटमें सरदारको फिर लिखा कि जनतामें एक भावना फैली हुई है कि सरदार पटेल विरोध और विरोधियोंको क्षमा नहीं करते। इसलिये डालमियाँजीने सरदार पटेलको उपदेश दिया कि सरदार पटेल अपने शेष थोड़े जीवनमें क्षमाका महत्त्व सीख लें, ताकि लोग कह सकें कि सरदार क्षमाशील हैं। अगर डालमियाँजीकी अरज बनी रहती, तो हम उसके भी क़ायल होते, चाहे वह मूर्खतापूर्ण ही होती। पर डालमियाँजीने अपना रोना भी रोया कि लोग उन्हें और उनके कुटुम्बियोंको मार डालनेकी धमकी देते हैं। यह उन शब्दोंकी प्रतिक्रिया है, जो सरदार जैसे महापुरुषोंके मुँहसे निकलते हैं। हमें पता नहीं कि डालमियाँजीके मनमें जो भ्रान्तिपूर्ण द्वन्द हैं, उसके कारण वे ऐसे पत्र लिखते हैं, अथवा इस प्रकारकी चर्चासे वे देशका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। कौन जाने उनकी यह कोई पेशबन्दी हो। हमने यह जाननेकी कोशिश की कि डालमियाँजीके पत्रोंमें महात्माजीके चित्र तथा चर्चा रहती है या नहीं। हमें यह जानकर ऐसा आभास हुआ कि उनके सचित्र पत्रोंमें महात्माजीके चित्रोंके प्रति अनुराग नहीं। सरदार पटेलने डालमियाँ-प्रसंगको बन्द करते हुए कहा "आपका दिमाग़ ठिकाने नहीं मालूम पड़ता। अतएव सम्बन्धके पत्र-व्यवहारको मैं यहीं ख़तम करता हूँ।" हम भी यह कहकर इस नोटको समाप्त करते हैं कि रुपयेका बल कोई बल नहीं होता और विभिन्न प्र बहकोंके पीछे पड़ना भी कोई अच्छी बात नहीं है।

कांग्रेसकी वर्तमान स्थिति

पाठकोंको हम यह स्पष्ट बता देना चाहते हैं कि कां विषयमें जो हम इन पंक्तियोंमें लिख रहे हैं, वह कोरी बातें नहीं हैं और न वे किसीसे सुनी-सुनाई हैं। हम कांग्रेसी हैं और अपनी शक्ति-भर कांग्रेसमें काम भी करते पर गत दो वर्षोंसे कांग्रेस संचालन और संगठनकी जो गति सामने आ रही है और जो बातें हम देखते और भुगतते उनके अनुसार हम बार-बार स्वयं यह प्रश्न करते हैं आखिर यह हो क्या रहा है और कांग्रेस अपने उद्देश आदर्शसे क्यों हटती जा रही है। कांग्रेस किसी साइनबोर्ड नाम नहीं है और न उस दफ़्तरका नाम है, जिसपर कांग्रेस साइनबोर्ड टँगा रहता है और न कांग्रेस वे रजिस्टर हैं, जि साधारण योग्य और कर्मठ सदस्योंके नाम लिखे रहते। कांग्रेस एक विचारधारा है और उसी विचारधाराको मानने का वह संगठन है, जिसका उद्देश्य देशसेवा, लोकसेवा और र नात्मक कार्य करना है—अहिंसात्मक ढँगसे वर्गहीन समाज स्थापना। घृणा, द्वेष, ऊँच-नीचकी भावना स्वार्थपरता, और शोषणके लिए उसमें स्थान नहीं है। मानव है और कमजोरियाँ बहुत कुछ अंश तक क्षम्य हो सकती पर जब आपा-धापी, स्वार्थ और सत्य और अहिंसाके ना गुण्डागीरीको प्रोत्साहन मिले, तब दिलमें चोट लगती है आखिर हम कहाँ जा रहे हैं। हम तो अपनी मनोभावना भी व्यक्त करते हैं कि अच्छा हुआ विश्वकी विभूति महा गाँधीको परमात्माने अपने यहाँ बुला लिया और उनके शरीरको कांग्रेसकी वह गन्दगी देखनेको न मिली, जिसको हम सब देख रहे हैं। पाठकोंको हम यह भी बता दें

हम नवीन स्थापित संस्था जन-कांग्रेसके सदस्य नहीं हैं। कांग्रेसके प्रति हमें श्रद्धा है। उसके सिद्धान्तोंके प्रति हमारी आस्था है; पर लानत है उस सोनेपर, जिससे नाक छप जाए। इसलिये लानत है उन कांग्रेसियोंपर, जिनके कारण कांग्रेस को बदनामी मिल रही है। महात्मा गांधीने एक बार कहा था, मुझे इससे बहस नहीं है कि रामके पिता दशरथ थे या नहीं; पर रामका जो रूप मेरे सामने है, उसे मैं मानता हूँ।" ठीक इसी प्रकार कांग्रेसके प्रति हमारी श्रद्धा है। कांग्रेसके हम योग्य तथा कर्मठ सदस्य भी हैं। हमने अभी तक इतना ही किया है कि हम सूबा-कमेटीमें नहीं गये। हमारे मित्रोंको इससे क्लेश हुआ; पर यदि हम कहीं अपने हृदयकी मनोव्यथा कह पाते, तो हम बताते कि कांग्रेसजनोंमें चाहे वे वास्तविक हों, चाहे कथित कितना भ्रष्टाचार है और सूबोंके पदाधिकारीं, कतिपय मन्त्रियोंसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे अनैतिकताको कितना प्रोत्साहन मिलता है। देश भरमें कांग्रेस पंचायतोंके चुनाव हुए हैं और सूबा-कांग्रेस-कमेटियोंके चुनाव हुए हैं। योग्य तथा कर्मठ सदस्योंके लिए विधानमें जो शर्तें हैं, उनके बारेमें हमें बीसों जिलोंसे, पता चला है कि शायद बहुत कम फी सदी लोगोंने उनका पालन किया है। दलबन्दीकी दौड़में लोगोंने विधानको बलाए ताक़ रख दिया है। अनेक स्थानोंपर पेशेवर गुण्डे कर्मठ सदस्य बन गये हैं। चुनावके दिनोंमें माँगकर खादी पहनकर दफ़्तर पहुँचते हैं। हम सरकारी कर्मचारियों तथा सरकारसे सम्बन्धित लोगोंके पतनकी निन्दा करते थे, पर सूबा-कांग्रेस-कमेटियोंके चुनावमें अनेक कांग्रेसजनोंने सरकारी अफ़सरों अथवा शासनसे सम्बन्धित व्यक्तियोंके कान काट लिये।

आखिर यह सब क्यों है? इसका उत्तर कोई कठिन नहीं है, हम जो लिख रहे हैं, उसे हम साबित कर सकते हैं। दलबन्दीका मूल कारण है, स्वार्थपरता और सत्ताको हथियानेकी प्रवृत्ति। जिलोंमें जो जिम्मेदार कांग्रेस कार्यकर्ता बनते हैं, उनमें से अनेक लोगोंने अपनी बिरादरीके व्यवधान क़ायम कर रखे हैं। चोरबाजारियोंसे मदद लेनेमें वे नहीं चूकते। कोई कितना भी अनैतिक कार्य करे, लोहे, चीनी और सीमेंटकी चोरबाज़ारी करे; पर यदि वह दलके लीडरको वोट देता है, तो उसके काले कारनामोंकी पोल नहीं खुलती, पेशेवर डकैतोंको शेर की पदवी दी जाती है। देश जहन्नुममें जाय, उन्हें उसकी चिन्ता नहीं, गान्धीजीके नामपर कालिख लगे, उन्हें तो एन-केन प्रकारेण अपनी आपा-धापी करनी है। जानवरकी लाशपर कौवे, गीदड़ और कुत्ते मुँह मारते और माँस नोंचते हैं। ठीक उसी प्रकार, ऐसा प्रतीत है, कांग्रेसके शवपर नहीं—जीवित कांग्रेसपर वे आक्रमण कर रहे हैं।

प्रश्न होता है, आखिर उसकी रोक-थाम क्यों नहीं होती। उत्तर सीधा-सा है। आज हमारे चरित्रका वास्तविक रूप सामने है और कांग्रेसमें आनेका उद्देश्य लोगोंने अपनी आर्थिक-स्थितिको सुधारनेका साधन बना लिया है। हर्जानेके तौरपर पार्टीबन्दी की सहायतासे अनेक लोगोंको हज़ारोंकी क्षतिपूर्ति की गई है और सच्चे तपस्वी सतीकी भाँति खप रहे हैं। यह ठीक है कि उन्हें इसी प्रकार मर खपना चाहिए, पर कांग्रेस संगठनकी ओरसे तथा कतिपय मन्त्रियोंकी ओरसे इस प्रकार अनैतिक कार्य करनेवालोंको प्रोत्साहन क्यों मिलता है। हमें तो यह प्रतीत होता है कि यदि यही हालत रही, तो कांग्रेस तिलक छापकी एक चीज रह जायगी और शायद विवेकहीन तथा अनैतिक प्रवृत्तियोंके बोझको कांग्रेस तथा मन्त्रिमण्डल न सँभाल सके। पापके भारसे जैसे धरती माता गायका रूप धर भागी थी और पाप (कलियुग) कसाई बन इसके पीछे पड़ा था, उसी प्रकार कांग्रेस-रूपी गाय आज रंभाती भाग रही है। द्रौपदीका जिस समय चीर खिंच रहा था, उस समय बिलखती द्रौपदीको देखनेवाले बड़े-बड़े दानी धर्मध्वज लोग मौजूद थे। आज कांग्रेसकी दुर्गति हो रही है, तब शूरवीर, दानी, महारथी सभी तो उस दशाको देखते हैं। पर बोलबाला हो रहा है, कांग्रेसके धृतराष्ट्रों, शकुनियों और शिशुपालोंका। दुर्योधनोंकी भी कमी नहीं है और ये मोर्चे जमे हुए हैं, सूबा-कमेटियोंसे देहातके मण्डलों तक। कहीं-कहीं तो मन्त्री लोग तक इन मोर्चेमें शामिल हैं। एकाध मन्त्रीका तो यह खयाल भी है कि बिना उनके शासन चल नहीं सकता। टिटहरी जिस प्रकार बादल गरजने पर अपने पंजे ऊपरको फैलाकर लेट जाती है और यह खयाल

करती है कि वह बादलको गिरनेसे रोक रही है। वही हालत हमारे कई मन्त्रियोंकी है। हमारा अनुमान है कि अगर कांग्रेसकी आन्तरिक स्थितिको नहीं सँभाला गया और अनैतिकता और भ्रष्टाचारके जो कारण हैं, उनका निवारण नहीं हुआ, तो कोरे अनुशासनसे काम नहीं चलेगा। जी हूजूर, मन्त्रियों की चिरौरी करके शासन और विधानमें घुसेंगे। देखनेमें तो कांग्रेसकी शक्ति बुझते चिरागकी शक्तिकी तरह चमकेगी; पर शीघ्र ही जो अनैतिकतामें योग देते हैं, उन सबका ढेर होगा। फर्रुखसियरने सैयद बन्धुओंकी प्रेरणासे सिक्ख गुरुकी आँखे निकलवाई थीं, अमानुषिक कृत्य किये थे। पर अन्तमें फर्रुखसियरको साधारण आदमियों द्वारा महलसे घसीटा गया। वही दुर्गति उसकी हुई। इसलिये अनैतिकता और भ्रष्टाचारके लिए, जो पार्टी क़ायम करता है, सत्य, अहिंसा और गांधीके नामपर हिंसा, चोरबाजारी और अनैतिकताको प्रोत्साहन देता है। वह उन्हीं व्यक्तियों द्वारा पदच्युत भी होगा। जो तलवारके बूतेपर शासन क़ायम रखते हैं, वे तलवारके घाट उतरते भी हैं। यह बात केवल तलवारके लिए लागू नहीं है, मंशा इसका यह है कि जो हिंसा और अत्याचार करते हैं, वे उसीके द्वारा नष्ट होते हैं।

उत्तर प्रदेशमें जन-कांग्रेसकी स्थापना

गत ११, १२ जूनको लखनऊमें उ० प्र० के विद्रोही कांग्रेसियोंका अधिवेशन हुआ। उसके सभापति थे उ० प्र० के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता पं० श्रीकृष्ण पालीवाल। जन-कांग्रेसका झंडा वही है, जो कांग्रेसका। उसका उद्देश्य है, कांग्रेसके भ्रष्टाचारको दूर करना। खबर है, उत्तर प्रदेशके अनेक जिलोंसे लगभग ३०० व्यक्ति अधिवेशनमें शामिल हैं, उत्तर प्रदेशके मन्त्रिमण्डलकी कटु आलोचना हुई। जहाँ तक समाचार पत्रोंका सम्बन्ध है, वहाँ तक जन-कांग्रेसकी स्थापना तथा पं० श्रीकृष्ण पालीवालके भाषणके विषयमें 'नेशनल हैरल्ड' पत्रिका आदिमें उनकी कटु आलोचना हुई। पर हिन्दीके कई पत्रोंने सहानुभूति दिखाई। गत मास इस विषयमें हम काफ़ी लिख चुके हैं। जन-कांग्रेसके विषयमें हमारी बातें अभी पालीवालजीसे नहीं हुई। हमारा मतभेद उससे यह है कि जन-कांग्रेसके प्रवर्तक तथा सदस्य धारा-सभाओंको छोड़कर अपने-अपने [illegible] काम नहीं करते और आजादीसे पूर्व जैसे नंगे-भूखे [illegible] देहातोंमें वे काम करते थे, वैसे ही धारा-सभासे इस्तीफा दे[illegible] आ जायँ और महात्माजीके रचनात्मक कार्योंमें योग दें, तो [illegible] खुद उसमें शामिल हो जायँ। उत्तर प्रदेशके मन्त्रिमण्डल [illegible] सूबा-कमेटीसे हमें यह भी कहना है कि सौजन्य और [illegible] माँग है कि वे रसद विभागके मन्त्री श्री चन्द्रभान गुप्तकी [illegible] शुरू करवा दें। उनपर लगाये गये आरोप अगर ग़लत [illegible] हों, तो आरोप लगानेवालोंपर मानहानिका मुकदमा च[illegible] अगर मुकदमा न भी चले, तो उनका ढेर स्वयं ही हो [illegible] और मन्त्रिमण्डलकी प्रतिष्ठा बढ़ जायगी। जाँच न [illegible] उनकी प्रतिष्ठा घट रही है। इस बातका कोई भी मूल्य [illegible] कि मुख्य मन्त्रीने उनको निराधार पाया है, क्योंकि [illegible] विश्वास है कि मुख्य मन्त्री श्री चन्द्रभान गुप्तको [illegible] विश्वासपात्र समझते हैं। यह दलील कि हर किसीकी [illegible] जाँच नहीं कराई जा सकती, ग़लत है, क्योंकि आरोप [illegible] वालोंकी प्रतिष्ठा कम नहीं है। क्या हम आशा करें कि [illegible] नीय पं० नेहरू देशकी खातिर, कांग्रेस तथा अपने [illegible] खातिर इस मामलेको अपने हाथमें लेकर तहक़ीक़ात करा[illegible] कुछ लोगोंको बिना तहक़ीक़ात किये, कांग्रेससे निकाल [illegible] काम न चलेगा। उत्तर प्रदेशके विरोधी दलका विद्रोह [illegible] तूफ़ानका आभास-मात्र है। वह तो विरोधी हवाका [illegible] है। अगर तहक़ीक़ात हो जाय तो विरोध भी मिट [illegible] और कांग्रेसकी प्रतिष्ठा भी बढ़े, क्योंकि आरोप साबित न [illegible] तो विरोधियोंकी शक्तियाँ अपनी मौत आप मर जायँगी।

जन कांग्रेसकी ओरसे जवाब

उत्तर प्रदेशकी सूबा कांग्रेस कमेटीने पं० श्रीकृ[illegible] पालीवाल तथा अन्य सदस्योंसे यह जवाब तलब किया उनको कांग्रेससे क्यों न अलग कर दिया जाय। पालीवाल[illegible] इसका जवाब एक लेखमालासे दिया है, जो 'सैनिक'में प्र[illegible] हुई है। उन्होंने कहा है कि जब वे और उनके अन्य [illegible] स्वयं ही कांग्रेससे अलग हो गये हैं, तब फिर न जवाब [illegible] करनेका सवाल उठता है और न उसका जवाब देनेका।

पालीवालजीने 'खुला जवाब' शीर्षकके अन्तर्गत जो आरोप लगाये हैं, वे बड़े संगीन हैं, और हम नहीं समझते कि जिन व्यक्तियोंके नाम उस लेखमें हैं, उनपर वे लोग मुक़दमा क्यों नहीं चलाते। हमारे ख़यालसे उन लेखोंके कारण 'सैनिक'के सम्पादक मुद्रक तथा पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवालपर मानहानिका मुक़दमा चलना चाहिए। पाठकोंके लाभार्थ उस लेखको हम यहाँ देते हैं। उस लेखको हम गत २६ जूनके दैनिक 'सैनिक'से ले रहे हैं। क़ानूनन इस लेखके देनेपर हम पर भी मुक़दमा चल सकता है, यदि सैनिकपर मुक़दमा चलाया गया तो। पर हम जानते हैं कि किसी लेखको सार्वजनिक हितके लिए उद्धृत करना उतना ख़तरनाक नहीं है, जितना किसीको स्वतन्त्र रूपसे लिखना। 'खुला जवाब' शीर्षकसे जो दूसरा लेख निकला है, वह इस प्रकार है :—

कल हमने यह लिखा था कि मन्त्रिमण्डलके कुछ सदस्यों, विशेषतः श्री चन्द्रभान गुप्त और श्री हरगोविन्द सिंह पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी, श्री प्रेमकिशन खन्ना एम० एल० ए० शाहजहाँपुर, श्री फूलसिंह एम० एल० ए० सहारनपुर, तथा मन्त्री प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी, श्री वंशीधर मिश्र एम० एल० ए० लखीमपुर-खीरी, श्री दाऊदयाल खन्ना एम० एल० ए० मुरादाबाद, चौधरी बदनसिंह एम० एल० ए० बदायूँ, इत्यादि गुप्त गुट्टके लोगोंके ख़िलाफ़ जो लिखित आरोप जिम्मेदार शख्सोंने अपने नामसे दिये हैं, उनकी निष्पक्ष और सन्तोषजनक जाँच कहीं नहीं की गई। निष्पक्ष जाँचसे ये आरोप निराधार साबित कर दिये जाते, तो जिनके ख़िलाफ़ आरोप थे उनकी बदनामी मिट जाती और झूठे तथा द्वेषपूर्ण आरोप करनेवालोंके ख़िलाफ़ जो कार्रवाई की जाती, उसका सब लोग समर्थन करते! ऐसी दशामें जाँच क्यों नहीं की गई? उच्च सत्ता द्वारा जाँच करानेमें इस हद तक अड़चन क्यों डाली गई? इस अकारण दुराग्रहसे तो यही शक हो सकता है कि आरोपोंमें कुछ सचाई है, तभी तो उनकी जाँच करके उस सचाईको जाहिर होनेसे रोका जा रहा है और आरोप लगानेवालोंके ख़िलाफ़ ज़रा-ज़रा-सी बात बनाकर अनुशासनकी कार्रवाई की जा रही है। ऐसी दशामें ऐसी कांग्रेसमें कौन रहे? क्या ऐसी कांग्रेसमें रहकर उसमें फैले हुए भ्रष्टाचारको होने दिया जाय? इसके अतिरिक्त आजकी कांग्रेस सरकारकी रबड़की मुहर भर रह गई है। अंगरेज़ी राजकी अमन सभाकी तरह उसका काम यह हो गया है कि जनताकी आवाजका विरोध करे और सरकारके झूठे-सच्चे गीत गाये। होना तो यह चाहिए था कि स्वाधीन भारतमें सरकार कांग्रेसकी जनताकी होती। हो यह गया है कि कांग्रेस सरकारकी हो गई है। वह अपने आदर्शों तथा सिद्धान्तों से दूर हटती जा रही है। वह जनताकी आवाज न होकर सरकारकी आवाज हो गई है। उसमें परमिट-प्रेमियों, मेम्बरीके मजनुओं तथा स्वार्थ-साधकोंकी भीड़ है। अवसरवादी आज कांग्रेसपर इस तरह भिनभिना रहे हैं, जिस तरह मक्खियाँ शीरेपर भिनभिनाती हैं। ऐसी दशामें सामाजिक क्रान्ति और कांग्रेसके जनताके राजके आदर्शको माननेवालोंके लिए सिवा इसके और चारा ही क्या है कि वे कांग्रेसके इस सरकारी स्वरूपसे असहयोग करें और सदासे जनताकी सेवा करनेवाली कांग्रेसके असली स्वरूपको नई कांग्रेस जन-कांग्रेसके द्वारा प्रकट करें। आज जनतामें कांग्रेसके प्रति भारी असन्तोष है। कांग्रेसका प्रभाव इतना कम हो गया है कि पूरी सरकारी ताक़त लगाकर वह तिरशठ फ़ीसदी वोट ला पाती है। चन्द महीनोंमें उसके हारनेकी नौबत आ जायगी। सरकारी कांग्रेसको छोड़कर जनताकी कांग्रेस क़ायम करके हम कांग्रेसका विरोध नहीं कर रहे हैं। हम तो जनताको कांग्रेस-विरोधी पार्टियोंकी गोदमें जानेसे रोक रहे हैं। आप क्या करें, इसकी हमें रत्ती-भर परवा नहीं। जो आपके जीमें आये, वह आप दिल खोलकर करें। प्रह्लादने इस बातकी कब परवा की थी कि हिरण्यकशिपु रामका नाम लेनेपर उसके ख़िलाफ़ अनुशासनकी कार्रवाई करेगा? गोस्वामी तुलसीदासजी भगवानके भक्त थे, विरोधी नहीं, लेकिन उनके मुरलीधारी स्वरूपको देखकर उन्होंने यही कहा था :—

"कहा कहौं छवि आजकी भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे, धनुषबाण ले हाथ॥

आजकी परमिट, लाइसेंस, नौकरी, मेम्बरी स्वार्थ-साधनावाली कांग्रेसके स्वरूपको हमारा मस्तक नहीं नव सकता, हमारा मस्तक तो उस जनताकी कांग्रेसके लिए ही नव सकता है, जो

श्रेणीहीन समाजकी स्थापनाके लिए पूंजीवाद चोरबाजारी, मुनाफेखोरी वगैरहके खिलाफ जन-मतको व्यक्त करें।

अन्तर्राष्ट्रिय रंगमंच

ग्रीष्म कालमें यों तो प्रकृतिमें गरमी अधिक बढ़ ही जाती हैं, पर राजनीतिक और सैनिक प्रवृत्तियाँ भी थोड़ी-बहुत अपेक्षाकृत उष्ण हो जाती हैं। साधारण पाठकोंको छोटी-छोटी बातोंकी स्थितिका पता न चलता होगा। आँधीसे पूर्व जैसे हवा रुक जाती है, उसी भाँति अन्तर्राष्ट्रिय स्थिति धीरे-धीरे बिगड़ रही है और स्थिति बिगड़नेके कारण दो हैं। अमेरिकाके साथी और रूस तथा उसके साथी। सभी तरफसे खींचतान मची है। अभी पिछले दिनों संयुक्त राष्ट्र संघके श्री त्रिगवेली अमेरिकासे यूरोप आये और मास्को गये। स्टालिनसे भेंट की और लौटकर उन्होंने पश्चिमी यूरोपके राजनीतिज्ञोंसे बात की। उनकी इस यात्राका उद्देश्य यह था कि वे रूसकी मनोदशा समझनेकी कोशिश करें और संयुक्त राष्ट्रमें रूसको सक्रिय भाग लेनेमें सफल हो सकें। अमेरिकामें एक भावना है कि कम्यूनिस्ट विरोधी एक मोर्चा बनाना चाहिए, पर अधिकांशका मत है कि बिना रूसके सहयोगके संयुक्त राष्ट्र मखौल ही होगा। भारतके प्रधान मन्त्री पं० नेहरूने भी यह ही कहा कि बिना रूसके शामिल हुए राष्ट्र संघ ठीक नहीं। श्री लीने अपने बयानमें मास्कोसे लौटनेपर कहा कि रूसका विचार संयुक्त राष्ट्र संघका बहिष्कार करना नहीं है। असलमें रूस और अमेरिकामें ठंडा युद्ध चल रहा है, वह विश्वकी बिगड़ी परिस्थितिमें कभी भी गरम युद्धमें परिवर्तित हो सकता है। गत २४ जूनका समाचार है कि श्री ली पुनः यूरोप जायँगे और रूस तथा पश्चिमी राष्ट्रोंके गतिरोधको दूर करनेका एक और प्रयत्न करेंगे। इधर लीके विरुद्ध अमेरिकामें यह आरोप लगाया जा रहा है कि वे कम्यूनिस्टोंसे सहानुभूति रखते हैं। श्री लीने इस प्रकारकी भावनाकी भर्त्सना की है। मलाया, हिन्देशिया, स्याम और कोरियाकी जो परिस्थिति है, उससे यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि इन देशोंमें कभी भी युद्धाग्नि भड़क सकती है।

इधर समाचार मिला है कि कश्मीरके उत्तर, चीनके पश्चिमी सूबे सीक्यांगमें रूस अपने हवाई अड्डे बना रहा है, क्योंकि आशंका यह है कि कश्मीरमें ऐंग्लो अमेरिकन गुट्ट की ओरसे उसके विरुद्ध एक मोर्चा खड़ा किया जायगा। रूसके सीक्यांगमें अपनी सैनिक शक्ति बढ़ानेके समाचारसे इंगलैंडके कई पत्रोंमें खलबली मच गई और वे इस बातपर जोर दे रहे हैं कि पाकिस्तान और भारतवर्ष सब मामलोंको सुलझाकर ऐंग्लो अमेरिकन गुट्टमें शामिल हो जायँ। उधर रूसका खयाल है कि ऐंग्लो अमेरिकन गुट द्वारा कश्मीरसे रूसपर हमला होगा।

इन पंक्तियोंके लिखते समय समाचार मिला है कि उत्तरी कोरियाने दक्षिणी कोरियापर आक्रमण कर दिया। आज २७ जूनके दो पहर तक हमें युद्धकी प्रगतिका पता नहीं, पर उत्तरी कोरिया रूसी या कम्यूनिस्ट मददसे दक्षिणी कोरियापर २४ या ४८ घण्टेमें अधिकार कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्रमें विरोध होगा। पर जब हिटलरने जैकोस्लावियापर अधिकार किया था, तब राष्ट्र संघने उसका क्या कर लिया था? इसी प्रकार रूसकी स्थिति ख़ुश्कीपर दृढ़ है और इन सब आक्रमणोंमें नियत गतिविधिसे काम होगा। मोर्चा कोरिया तक ही नहीं, वह दुनियामें फैला है। रूसी विचारधाराको सहायता मिलनेका कारण महँगाई आदि परिस्थितियाँ हैं। पहलेसे ही कम्यूनिस्टोंका प्रचार विभाग दूसरे देशोंमें बढ़ जाता है। फौजोंसे भी भयंकर प्रचारक पहुँचकर भीतरसे ही विध्वंसक प्रवृत्तिसे काम करते हैं।

भूतपूर्व और वर्त्तमान समाजवादियोंका विवाद

समाजवादी नेता श्री दामोदर स्वरूप सेठ तथा भूतपूर्व समाजवादी श्री चन्द्रभान गुप्तके बीच अभी एक विवाद चल पड़ा। विवादका कारण श्री सेठजीका बयान था, जो उन्होंने विद्रोही कांग्रेसके विषयमें दिया था। बयानकी खास बात यह कि आखिर उत्तर प्रदेशके मन्त्रिमण्डलके विरुद्ध लगे आरोपोंकी जाँच करनेमें हर्ज क्या है। आरोपका सम्बन्ध श्री चन्द्रभान गुप्तसे है। उत्तर देते हुए वे कहते हैं, "मैं अपने बारेमें तहक़ीक़ात करानेसे भयभीत नहीं हूँ। मैं विनम्र भावसे कहता हूँ कि मेरा सम्पूर्ण जीवन एक खुला अध्याय है और मैं किसी भी तहक़ीक़ातका मुक़ाबला कर लूँगा। पर मैं सेठजी

पूछता हूँ कि क्या जाँच कमेटीका नियुक्त कराना झूठे और बनावटी आरोपोंके कारण ठीक होगा, सो भी इस प्रकारके व्यक्तियों द्वारा, जिन्होंने यह अपना पेशा बना लिया है कि वे उन लोगोंको जलील करें, जिनको वे अपनी चालबाजीके शिकार होनेमें इतना शक्तिशाली समझते हैं कि वे उनकी चालबाजीके शिकार नहीं हो सकते। श्री सेठ स्वयं सरकारमें होते तो वे ऐसे बनावटी आरोपोंकी तहक़ीक़ातकी इजाजत नहीं देते। ऐसा होनेसे किसी सरकारका चलाना सम्भव नहीं है। मैं श्री सेठसे प्रार्थना करूँगा, जिनका विश्वास राजनीतिक जीवनमें उचित ढँगों और साधनोंमें है, कि वे परिस्थितिके कारण विचलित न हों और न वे नये मित्र बनायें तथा सहायता दें, जिनसे सदा अलग रहे हैं, क्योंकि उनके ढँग अपवित्र हैं।"

उपर्युक्त रिपोर्ट हम गत २६ जूनके 'नेशनल हैरल्ड'से ले रहे हैं। श्री चन्द्रभान गुप्तके विषयमें जो आरोप लगाये गये हैं, उनकी तहक़ीक़ात हो जानेसे न आसमान फट पड़ेगा और न श्री चन्द्रभान गुप्तके चले जानेसे—यदि आवश्यकता हो—उत्तर प्रदेशकी राजनीति रसातलको चली जायगी। राजनीतिमें कोई भी व्यक्ति, चाहे कितना ही महान् हो, अनिवार्य नहीं है, फिर श्री गुप्त तो साधारण व्यक्ति हैं। यदि उनका जीवन खुला रहा है, तो जाँचके बारेमें वे अपनेको गुप्त अध्याय क्यों बनाते हैं। 'विशाल भारत'में हमने श्री चन्द्रभान गुप्तको एक मामलेमें चुनौती दी थी। उत्तर प्रदेशके सूचना-विभागके डाइरेक्टर श्री अमोलक चन्दजीने वायदा किया था कि हमारे लिखेका वे प्रतिवाद भेजेंगे। वह आजतक नहीं आया। श्री चन्द्रभान गुप्तको हम अपना एक मन्त्री समझते हैं, इसलिये हमने उनके और अपने बीच होनेवाले पत्र-व्यवहारको नहीं छापा। मुख्य मन्त्रीजीको भी हमने लिखा था। अगर श्री चन्द्रभानजीको आपत्ति न हो तो हम सारे मामले तथा पत्र-व्यवहारको छाप दें। हमारा दावा है कि उस मामलेमें श्री चन्द्रभान गुप्तने अन्याय और पक्षपातसे काम लिया तथा क़ायदे-क़ानूनको ताक़पर रख दिया, क्योंकि उन्हें अपने दोस्तका काम करना था। श्री चन्द्रभान गुप्तका जीवन एक खुला अध्याय है—इसलिये वे उस अध्यायको भी खुला रखेंगे, ताकि पाठक जान सकें कि उनके कहने और करनेमें कितना अन्तर है। हम ये सब बातें विरोधी दलकी ओरसे नहीं लिख रहे हैं। हम सचाई और ईमानदारीके क़ायल हैं। उनके विरोधी दलके हम सदस्य नहीं।

स्व० साने गुरुजी

हमें यह लिखते दुःख होता है कि गत मास मराठीके प्रसिद्ध लेखक तथा भारतके दार्शनिक श्री साने गुरुजीका निधन हो गया। वे पहले कांग्रेसके पुजारी थे। उनकी वाणीमें जादू था और उनका दर्शन-मात्र स्फूर्त्ति और प्रेरणा देनेवाला था। 'कर्मवीर'ने उनके बारेमें ठीक ही लिखा है:—

"श्री साने गुरुजी अपने गुरुजनों, मित्रों, शिष्यों, सम्पर्कशीलों, पाठकों, उदासीनों, और आलोचकों तकमें अत्यन्त स्नेहसे श्रद्धा-पुष्प चढ़ाने योग्य व्यक्ति थे। उनके प्यारमें बिजली संकेत, उनके रोषमें फौलादकी लाली, उनकी श्रद्धामें अटूट वात्सल्य, और उनके स्नेहमें देवोपम आत्म-समर्पण था। उस व्यक्तित्वके प्रति रहनेवाला आकर्षण कालके बन्धनोंको चुनौती देता-सा दीखता—बच्चे-बच्चियाँ, तरुण-तरुणियाँ, वृद्ध-वृद्धाएँ—समयके ये समस्त प्राणवान चिह्न, एक-सी लगनसे श्री सानेजीपर न्यौछावर-से होते। समयकी तरह ही, उस अनहोने व्यक्तित्वसे 'पात्र' पराजित थे। वह जब बोलता, मानों ग़रीबोंके वकील, आवश्यकता पीड़ितोंके सहायक, और डाँवाडोल होताके संकेत-दाताकी तरह बोलता। उसके प्रभावित तारुण्य, यद्यपि कहता सदा उसे गुरुजी ही, किन्तु इस तरह मानों अन्तःकरणमें कहे हुए 'मा' शब्दको जीभपर 'गुरुजी'के रूपमें अनुवाद या रूपान्तर करके बोल रहा हो। वह सदा देशकी 'नारेबाजियों'से खेला। किन्तु जो नारेबाजियाँ पीढ़ियोंको प्रतिभाहीन बनाती हैं, राजनीतिज्ञोंको ईमानके मैदानमें मानवताका कोढ़ी बना छोड़ती हैं, प्रचारकको जन विश्वासके मैदानमें अन्तःकरणहीन असत्यभाषी करके छोड़ती हैं, उन्हीं नारोंने, और उनके द्वारा आनेवाली जन-जीवनकी करुणाने उसे अमर, उसकी वाणीको शाश्वत आर्षवाणी और उसके अस्तित्वको जीवन और मरणसे एक-सी प्रेरणा देनेवाला बना दिया।

कांग्रेसका वह कितना बड़ा पुजारी। गांधीजीके नेतृत्व,

निवेदन, निर्माण और विनाशमें उसका कितना भारी विश्वास, किन्तु स्वराजके पश्चात् उसका पथ 'समाजवाद' रहा। उसके आँसू उसके हृदयकी भाषा बोलते, उसके हाथ-पाँव उसके संकल्पोंका सेवामें अनुवाद करते, और उसके विचार, कागज और कलम ढूँढ़ने और उनपर उतर पड़नेके लिए, जीवनकी लाचारियोंकी तरह उतावले हो उठते। वह गुप्तांगोंकी तरह अपनी सामर्थ्यको छुपाता, छुपाये रहता, किन्तु निर्माणकी महान साधना सन्तोंके ओज ; और प्रभुके वरदानके तेजकी तरह उसके जीवन, उसकी कलम और उसकी सेवा-भावनापर उतर पड़ती।

स्व० नारायण बाबू

गत २३ जूनके 'योगी'में यह समाचार पढ़कर हमें शोक हुआ कि १७-६-५० को 'योगी'के संस्थापक श्री नारायणप्रसाद सिंहजीका देहान्त मुजफ्फरपुरसे ३० मील दूर चन्दौली गाँवमें हो गया। स्व० नारायण बाबू बिहारके एक कर्मठ कार्यकर्त्ता थे। प्रकाशन तथा प्रचारकी दुनियासे वे दूर रहते थे। ठोस कार्य करनेकी उनमें अपूर्व क्षमता थी। वे कोरे कर्मठ कार्यकर्त्ता ही न थे। चिन्तन, कार्य-कौशल और क्रियात्मक कल्पना-शक्ति उनमें अपूर्व थी। गुटबन्दीसे दूर सौजन्यके सखा और अविचलित रूपसे सचाईके साथी स्व० नारायण बाबू बिहारकी एक विशेष हस्ती थे। यों तो कलकत्तेमें हमारा उनका काफ़ी विचार-विनिमय हुआ था, पर बिहारके गत भीषण भूकम्पके दिनोंमें स्व० रामदयाल बाबू और स्व० नारायण बाबूके साथ रहनेका हमें अवसर मिला। मुजफ्फरपुरसे सीतामढ़ी और सीतामढ़ीसे मुजफ्फरपुर तक कई दिनों तक हमारा उनका साथ था और तब हमने उनके वास्तविक रूपको अति निकटसे देखा। आधुनिक बिहारकी जितनी विशुद्ध प्रवृत्तियाँ हैं, उनमें उनका विशेष हाथ था। जहाँ वे दृढ़ थे, वहाँ वे विनयशील भी ऊँचे दर्जेके थे। हमें मालूम है श्रद्धेय डा० राजेन्द्रप्रसादकी तनिक भावभंगीसे उनकी आज्ञा-पालनके लिए वे तुरन्त तत्पर हो जाते थे। इसी जुलाई मासमें हमारा विचार पटना उतरनेका था और वहाँसे स्व० नारायण बाबूके गाँव जानेका था। हमें दुःख है कि भगवानकी यह इच्छा थी और वहाँ पहुँचनेसे पहले ही वे चल दिये।

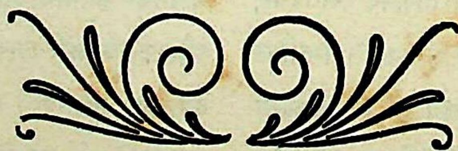
'हिन्दीके प्रसिद्ध साप्ताहिक 'योगी'के वे संस्थापक थे। श्री व्रजशंकर वर्मा तथा श्री राजेन्द्र शर्माको उनसे [illegible] स्फूर्ति मिली थी और उनके प्रोत्साहनसे ही 'योगी'ने [illegible] रमाई थी। 'योगी' परिवार तथा स्व० नारायण बाबूके परि[illegible] वालोंके लिए हम सहानुभूति प्रकट करते हैं और ऐसा करते हमें संकोच होता है, क्योंकि वे अपने ही थे। और [illegible] आदमियोंसे ऐसे अवसरपर सहानुभूति प्रकट नहीं की [illegible] वह तो हृदयसे ही प्रकट की जाती है। और हमारी भाषाका कमजोर मानवने अभीतक आविष्कार [illegible] किया है।

स्व० स्वामी सहजानन्दजी

हमने ऊपर श्री नारायण बाबूके निधनका जिक्र किया। बिहारके एक और उद्भट किसान नेता स्वामी सहजानन्द[illegible] गत २६ जूनको चल बसे। स्वामीजीने युवावस्थामें ही [illegible] लेकर अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य और कार्यसे बिहारके किसानोंकी बड़ी सेवा की। जो स्व० स्वामीजीको जानते हैं, वे [illegible] हैं कि उनके कटु शब्दोंके पीछे उनकी ईमानदारी थी। बिहार को इन दो व्यक्तियोंके निधनसे काफ़ी धक्का लगा है।

स्व० वजीर अली

हमें यह जानकर दुःख हुआ कि भारतके प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी वजीर अलीका, जो भारतसे पाकिस्तान चले गये थे, पिछले दिनों कराँचीमें देहान्त हो गया। वजीर अली [illegible] नामी खिलाड़ी थे और भारतीय क्रिकेटके उत्थानमें उनका काफ़ी हाथ था। उनकी आयु अभी ४७ वर्षकी थी।



कुमाऊँसे हिमालयके दृश्य

अशोक

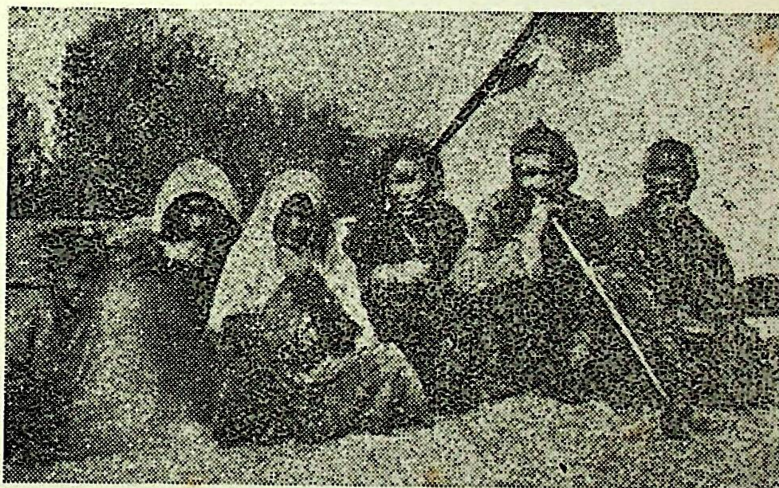
उत्तर प्रदेशके उत्तरमें स्थित पर्वतीय प्रदेश, जिसमें अल्मोड़ा, गढ़वाल, टिहरी तथा नैनीतालके जिले स्थित हैं, कुमाऊँ या कुमायूँ कहलाता है। कुमाऊँ समूचे हिमालयकी आधार-भूमि है और भारतवर्षकी दो सर्वोच्च श्रेणियों (नन्दादेवी और कामेत) के ठीक मूलमें बसा है। गंगा, यमुना, शारदा तथा कर्णालीके उद्‌गम स्थान इसी प्रदेशमें हैं। समुद्रतटसे, ऊँचाईके अनुसार, इस प्रदेशकी तीन मुख्य वाहियाँ हैं, जो अति प्राचीन कालसे उपगिरि वहिर्गिरि, तथा अन्तर्गिरिके नामसे प्रसिद्ध हैं।

अन्तर्गिरिं च कौन्तेयस्तथैव च वहिर्गिरिम् ।
तथैवोपगिरिं चैव विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥

महाभारत सभा० २७ (३)

उपगिरि पहली वाही है, जो हरिद्वार, लालढांग, टनकपुर तक तराईके ठीक उत्तरमें स्थित है और जिसकी समुद्रतटसे ऊँचाई तीन हजार फीट तक है। वहिर्गिरिमें कुमाऊँके रमणीक स्थान बसे हैं, यह समुद्रतटसे तीन हजार फीटसे लेकर नौ हजार फीटतककी ऊँची पर्वतमालाओंसे आच्छादित है। हिमालयकी तीसरी श्रृंखला जिसे अन्तर्गिरि अथवा गर्भश्रृंखला कहा गया है, वही सबसे दुर्गम और संसार भरमें सबसे अद्वितीय है, इस श्रृंखलामें तिब्बत और अल्मोड़ेकी सीमापर बसे केवल ३० मील चौड़े भू-भागमें ८० ऐसी चोटियाँ हैं, जिनकी ऊँचाई बीस हजार फीटसे अधिक है।

कुमाऊँकी एक और भौगोलिक विशेषता है। यह प्रदेश भारतकी ऐसी सीमापर है, जहाँ एक ओर नैपाल और दूसरी ओर तिब्बतके राज्य हैं। कुमाऊँसे तिब्बतमें बेरोकटोक आया-जाया जाता है। कैलाश और मानसरोवरके तीर्थोंके कारण भारतका एक वृहत् जनसमुदाय प्रतिवर्ष इन तीर्थोंकी यात्रा करने कुमाऊँ होकर ही तिब्बत जाता है। ये तीर्थ तिब्बतमें हैं और तिब्बतियोंकी भी हिन्दुओंकी भाँति इनपर अपार श्रद्धा है। बौद्ध तथा हिन्दू धर्मकी महान् मूर्तिमय सन्धि-सी कैलाशकी चोटी तिब्बत और भारतको मानों एक ही कुटुम्बमें सम्मिलित कर लेती है। तिब्बत और भारतकी सीमा मानचित्रमें ही दीख पड़ती है, क्योंकि उस सीमाके दोनों ओरके निवासियोंका रहन-सहन वेश-भूषा तथा खान-पान बिलकुल एक-सा है।



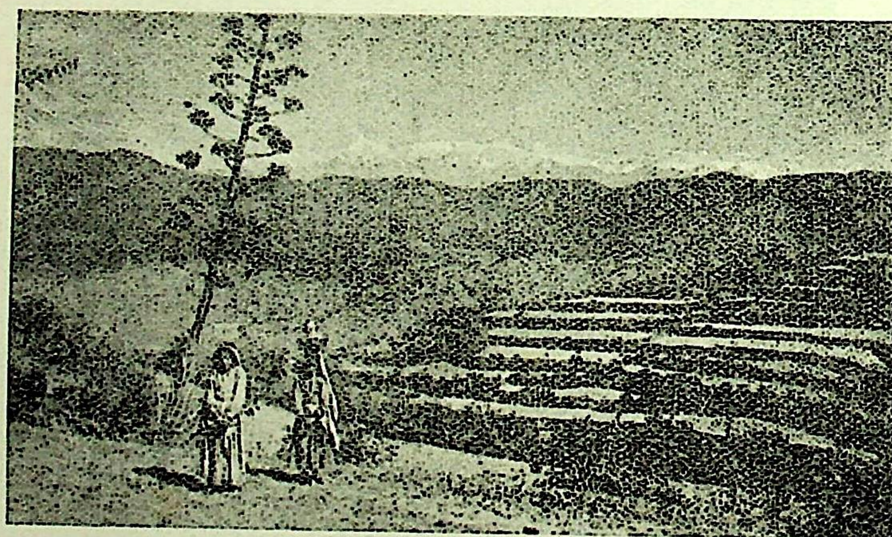
एक मार्च्छा परिवार
ये भारतवासी हैं, पर हैं तिब्बतियोंसे बिलकुल अभिन्न

हिमालयकी गर्भश्रृंखलाकी इन श्रेणियोंका एक साथ दर्शन करना कुमाऊँकी अनेक सुगम गिरिमालाओंसे सुलभ है। पर्यटक बहुधा हिमालय प्रदेशमें भ्रमणार्थ ग्रीष्म ऋतुमें आते हैं। इस ऋतुमें इन श्रेणियोंका दर्शन नहीं मिल सकता, क्योंकि उन दिनों उत्तर दिशामें धुँध छाया रहता है और हिमालय नित्यशः बादलोंका आवरण धारण किये रहता है। कभी-कभी एक-एक वर्षाके उपरान्त कुछ क्षणोंके लिए ही उनके अनावृत दर्शन हो जाते हैं।

हिमालयका दर्शन या तो वसन्तमें (फरवरी, मार्च और

अप्रैलमें) बिलकुल स्पष्ट हो जाता है या पतझड़में (अक्टूबर नवम्बर और दिसम्बरके महीनोंमें)। मार्चके महीनेमें शीतार्तके उपरान्त हिमालयकी समस्त गर्भश्रृंखला हिमाच्छादित हो जाती है। घाटियाँ पटकर समतल हो जाती हैं, हिमनद ठोस सड़कोंका काम देने लगती हैं, पर नवम्बरके महीनेमें अत्यधिक वर्षाके कारण केवल वे ही श्रेणियाँ हिमाच्छादित रहती हैं, जो तेरह हजार फीटसे अधिक ऊँची हैं। इस महीनेमें हिम-श्रेणियोंकी कगारें तथा उनके अत्यधिक ढालू पार्श्व बर्फके गलकर फिसल जानेसे नीलवर्णके हो जाते हैं, हिम-श्रेणियाँ तब आकाशमें तैरती हुई-सी लगती हैं।

कुमाऊँके उन सब स्थानोंसे हिमालयका दर्शन हो जाता है, जो समुद्रतटसे छः या सात हजार फीटसे अधिक ऊँचे हैं। मसूरीके दाएँ पार्श्वकी डिपो पहाड़ी, पौड़ीकी नागदेव तथा कण्डोलिया चोटी, नैनीतालकी 'चीना-पीक' तथा अल्मोड़ेमें रानीखेत और कौसानीसे हिमालयकी उन लगभग सभी प्रमुख ऊँची श्रेणियोंका दर्शन हो जाता है, जो भारत और तिब्बतकी सीमापर हैं।



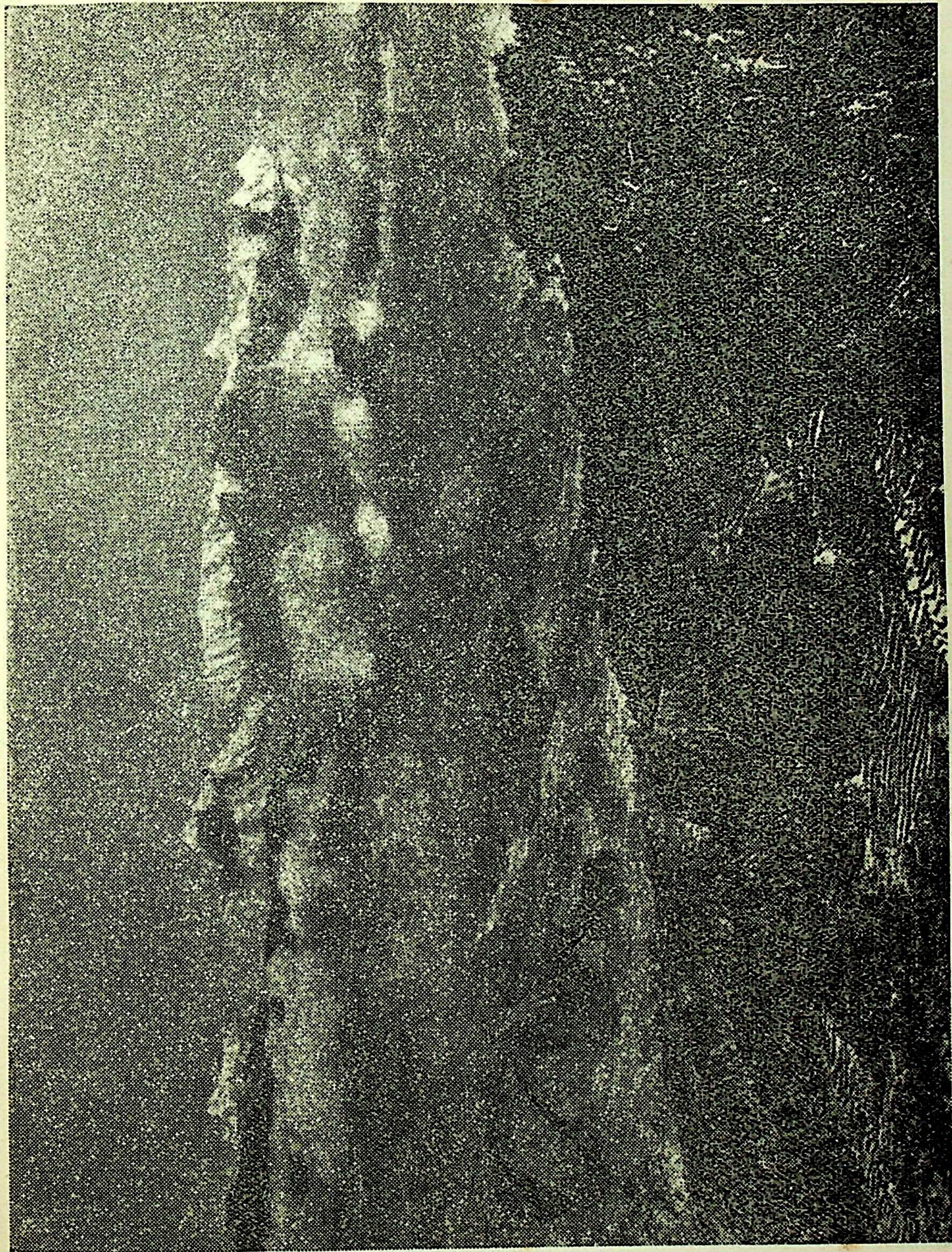
मझरवालीसे हिमालय (सीढ़ीके आकारके खेत)

कौसानी और रानीखेत मोटर सड़कके किनारे हैं और इस गर्भश्रृंखलाके ठीक मध्यमें बसे हैं। अतः इन दो स्थानोंसे हिम-श्रेणियोंकी लगभग २२० मील लम्बी परिधि क्षितिजके एक छोरसे दूसरे छोर तक कतार बाँधे खड़ी दीखती है। बहुधा छोटे पर्वतों, वृक्षों तथा झाड़ियोंके कारण हिमालयकी इस लम्बी गिरिश्रृङ्खलाका कोई-न-कोई भाग ओटमें आ जाता और ऐसे उपयुक्त स्थानका ढूँढ़ना कठिन हो जाता है, क्षितिजपर केवल हिम-श्रेणियोंके और कुछ भी दृष्टि नहीं। रानीखेतमें दर्शकके लिए ऐसे तीन स्थान हैं, जहाँ वह हिम-श्रेणियोंकी इस लम्बी पंक्तिको विस्तृत और सर्वांग देख सकता है। एक ऐसा ही उपयुक्त स्थान रानीखेत टेलीफोन ऐक्सचेंज'के पास है। दूसरा रानीखेत अल्मोड़ा सड़कके किनारे सातवें मीलपर मझरवालीके निकट और तीसरा रानीखेत रामनगर सड़कके पास कथालेके टिब्बेपर है।

मझरवालीसे हिमालयकी श्रेणियाँ

मझरवालीके पास खड़े होकर जो दृश्य दीखता है, रानीखेतसे दीखनेवाले दृश्यसे भी सुन्दर है, क्योंकि यहाँ दर्शकस्वयं भी क्षितिजकी वृत्ताकार परिधिपर खड़ा-सा होता है। यहाँसे पूरे वृत्तपर लगभग ३०० अंशकी परिधि पर्वतमालाएँ खड़ी दीखती हैं। क्षितिजके उत्तर-पूर्वार्धमें यमुनोत्री (टेहरी) से लेकर वैताड़ी बजांग (नैपाल) तक २०० मील लम्बी हिम-श्रेणियोंकी पंक्ति दिखाई देती हैं तथा दक्षिण पश्चिमार्धमें दूधातोली खांखरा पर्वतोंकी नीली श्रेणियोंसे परिवेष्टित गगास नदीकी घाटी दीखती है।

फोटोग्राफर या चित्रकार इतनी लम्बी हिममालाका चित्र नहीं खींच सकता ; क्योंकि इतनी दूर विखरी इन हिम-श्रेणियोंको केन्द्रित 'फोकस' करना सुगम नहीं है, चित्रकार ही इस दुर्द्धर्ष विशालता एक दृष्टिमें अनुमान लगा सकता है। जो हिम-श्रेणियाँ इस स्थानसे दीखती हैं, उनमें से सबसे पश्चिम मोत्तर कोनेपर बन्दरपूँछ (यमुनोत्री) हिम-श्रेणियाँ हैं, रानीखेतसे अधिक स्पष्ट ये पौड़ीसे दीखती हैं। इनके पूर्व चार बड़ी हिम-श्रेणियाँ भारती खूँट (२१५८०), केदारनाथ



रानीखेतसे गगासकी घाटी तथा हिमालय (बादल उत्पन्न हो रहे हैं)
बाँई ओर प्रथम हिम-श्रेणी नन्दाघूंटी उसके आगे नन्दाकना । पश्चात् तीन हिम-श्रेणियाँ त्रिशूलकी हैं ।

(२२७७०) तथा दो ओर २११४०,२१६६५ फीट ऊँची विना नामकी श्रेणियाँ हैं। इन श्रेणियोंके उपरान्त गंगोत्रीका ग्लेशियर पर्वतोंके क्रमको भंग कर देता है।

इस ग्लेशियरके पूर्वमें चौखम्बाकी विशाल चार ऊँची श्रेणियाँ दीखती हैं, जिनमें २३४२० फीट ऊँची बदरीनाथ श्रेणी भी एक है। इस श्रेणीके पीछे भी चार छोटी-छोटी श्रेणियाँ



हिमालय, अधोभागमें बादलोंका आवरण पहिने हुए सामने चीड़का पेड़ तथा अग्रभागमें काला देवदास वन प्रथम ऊँची श्रेणी त्रिशूल तथा अन्तिम पिरामिडके आकारकी श्रेणी नन्दादेवी, भारतकी सर्वोच्च पर्वत-श्रेणी।

दीखती हैं, जिनमें सतोपन्थ (२३२४०) फीट ऊँची है। चौखम्भाका दृश्य पौड़ीसे बड़ा ही स्पष्ट दीखता है।

रानीखेतसे चौखम्भाकी हवाई-दूरी (Distance as the crow flies) ६८ मील है। चौखम्भाके उपरान्त फिर यह श्रृङ्खला टूट जाती है और किंचित पूर्वकी ओर नीलकान्त (नीलकण्ठ) की २१६४० फीट ऊँची श्रेणी अकेली आकाशको भेदती खड़ी दीखती है। नीलकण्ठ और चौखम्भाके बीचका वह टूटा भाग ही बदरीनाथ पुरीकी घाटी है, जिसमें बदरीनाथका मन्दिर स्थित है।

नीलकण्ठके उत्तर-पूर्व किन्तु उसके बिलकुल सन्निकट ६ और हिम-श्रेणियाँ हैं। ये नारायण पर्वत, माना (२३८६०) तथा कामेत (२५४४७) हैं। कामेत भारतकी दूसरी सर्वोच्च श्रेणी है। यह बदरीनाथसे २५ मील पूर्वमें स्थित है। कामेतके पीछे एक और श्रेणी २४१४० फीट ऊँची आई है।

कामेतके उपरान्त हिमाच्छादित श्रेणियोंको दूनागिरी तथा भटकोटके निकटवर्त्ती पर्वत कुछ दूर तक ढक देते हैं, पर इन पर्वतोंके पीछेसे गौरी पर्वत तथा हाथी पर्वत, जो प्रत्येक लगभग २२००० फीट ऊँचे हैं, झाँकते रहते हैं। कुछ पूर्वकी ओर नन्दाकना (२०७००) तथा नन्दाघूँटी है, जिसके उपरान्त फिर हिम-श्रेणियोंका अनवरत क्रम आरम्भ हो जाता है। सबसे प्रथम भव्य हिम श्रृंग इस श्रृङ्खलोंमें त्रिशूल है, जो दर्शकके ठीक सामने दीख पड़ता है। इसकी तीन चोटियाँ, प्रत्येक लगभग २३००० फीट ऊँची, स्पष्ट दीखती हैं। त्रिशूलके निकट १५००० और २०००० हजारके मध्यमें बसी लगभग २५ हिम-श्रेणियाँ ४० वर्गमीलमें फैली हैं। उनके उपरान्त हमारे देशकी सबसे बड़ी श्रेणी नन्दादेवी (२५६४५) है। यह किंचित भूरे रंगकी तथा पिरामिडके आकारकी है, इसीसे मिली हुई २४३९१ फीट ऊँची एक और हिम-श्रेणी है। नन्दादेवीके पूर्व तम्बूके आकारकी श्रेणी नन्दाकोट (या टेण्टमाउण्ट) है। फिर पूर्वकी ओर चिपलाधारकी पर्वतश्रेणी १३२५३ से १४७८० फीट तक ऊँची कई मील तक पंचचूली नामक हिम-श्रेणियोंके चरणोंमें पड़ी लकीर-सी लगती है। शरद ऋतुमें हिम इसके केवल सिरेपर ही रहता है, क्योंकि हिम रेखा यहाँ पर १३००० फीटपर स्थित है।

पंचचूलीके पास भारतकी सीमाका अन्त हो जाता है। इसके पूर्वमें जो ऊँची हिम-श्रेणियोंका क्रम है, वह सब नैपालमें हैं। इनमें से आपिलेख (२३३९०) तथा शिपुलेख (२०४६०) रानीखेतसे दीख पड़ती हैं।

कौसानीसे हिम-श्रेणियाँ

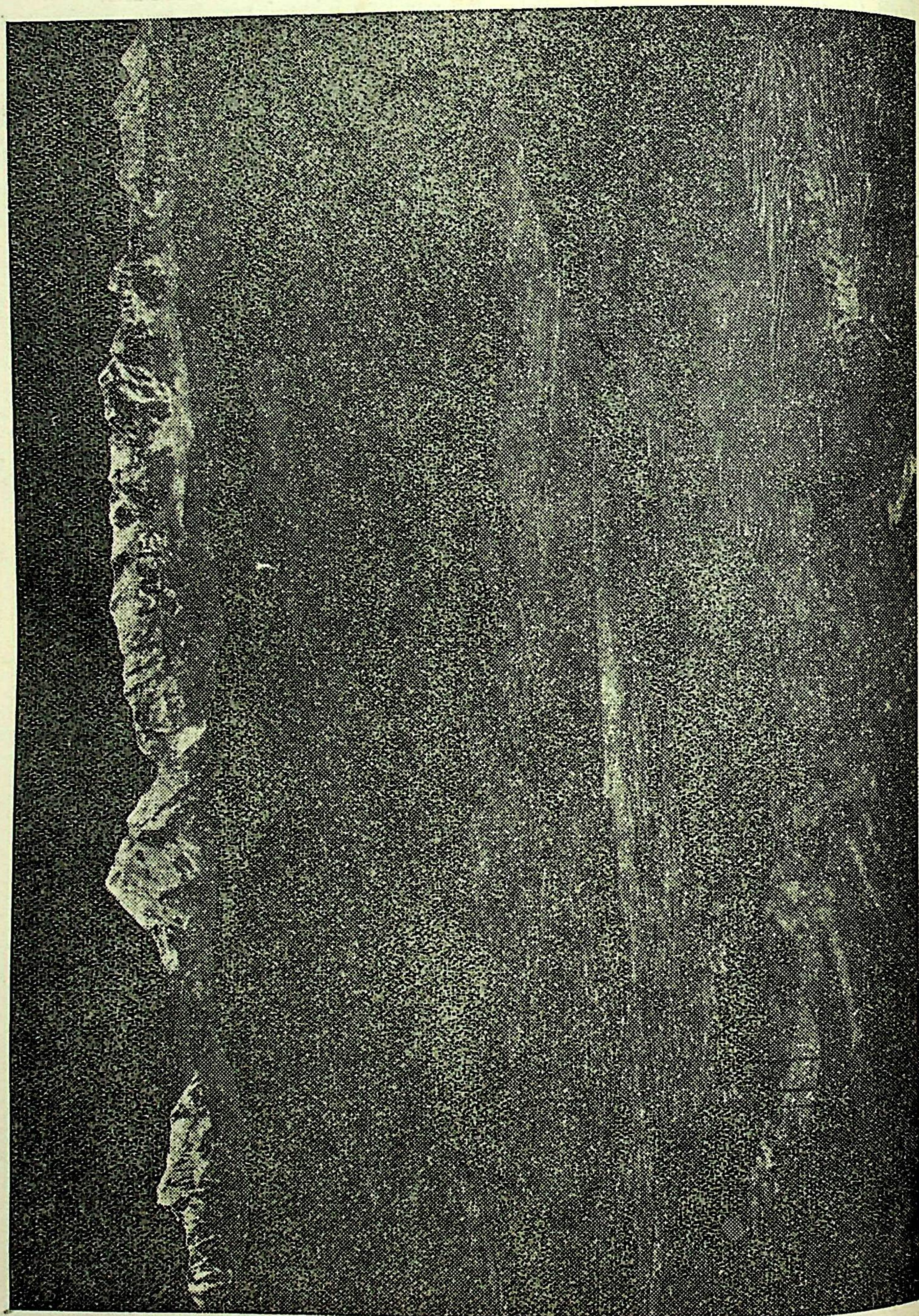
कौसानी रानीखेतके ठीक उत्तरमें स्थित है। यहाँसे त्रिशूल की हवाई दूरी केवल २२ मील है। अतः त्रिशूलका कौसानीसे बड़ा ही भव्य दृश्य दीखता है। विशाल हिम-श्रेणियोंकी ठीक गोदमें कत्यूरकी दूनमें बसे अनेकों गाँव इस दृश्यको और भी चित्ताकर्षक बना देते हैं। भटकोट और दूनागिरीके पहाड़ कौसानीसे पीछे रह जाते हैं। अतः चौखम्भाके उपरान्त ग्वालदमके निकटके बुग्याल (काई उगे हुए भूरे पर्वत) श्वेत हिम-श्रेणियोंकी आभाको द्विगुणित कर देते हैं। मार्चमें ये बुग्याल भी हिमाच्छादित हो जाते हैं और कामेतसे लेकर त्रिशूल तक सारा क्षितिज स्फटिक-सा श्वेत दीख पड़ता है।

कौसानीसे नन्दादेवी, त्रिशूलकी ओटमें आ जानेसे उतनी स्पष्ट नहीं दीख पड़ती है। नैपालके हिमालय भी बहुत दूर पूर्वमें रह जाते हैं।

बेनी नागसे हिमालय

नन्दादेवी तथा पंचचूलीका दृश्य बेनीनाग नामक स्थान से, जो अल्मोड़ेके उत्तर-पूर्व भी लगभग ४० मील दूरी पर है, इतना भव्य और निकट लगता है कि उसका सौन्दर्य सारी घाटीको एक दिव्य आभासे आलोकित कर देता है। इस स्थानसे नन्दाकोटकी हवाई दूरी केवल १५ मील है और पंचचूलीकी १८ मील। पंचचूलीके पाँच श्रेणियोंके मध्य सबसे प्रमुख श्रेणी तीक्ष्ण भालेकी नोंककी भाँति आकाशको भेदती हुई चली गई है। यह भाला स्वयं भी पाँच धारियों (Pentagular) का बना पंचकोण सूच्याकार (Conical) है।

इस स्थानसे क्षितिजके उत्तर-पश्चिममें त्रिशूल पर्वतके दक्षिणी भागमें स्थित अनेक हिम-श्रेणियाँ दीखती हैं। फिर नन्दादेवीकी दोनों छोटी-बड़ी गुम्बदके आकारकी भूरी श्रेणियाँ



कौसानीसे हिमालय

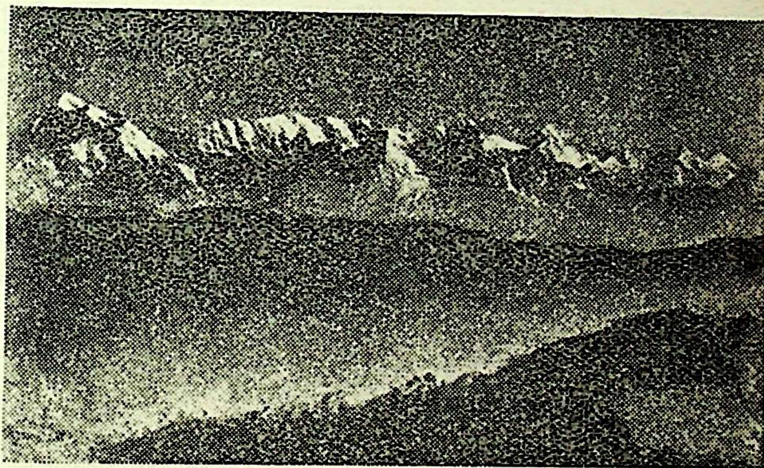
हैं। उसके उपरान्त नन्दाकोटका विशाल टेंट-सा पर्वत है। नन्दाकोट और नन्दादेवीके बीचमें बसा हुआ पिंडरका हिमनद (पिंडरी ग्लेशियर) इस स्थानसे बिलकुल सामने ही दीख[ता] है, यद्यपि उसकी हवाई दूरी लगभग १६ मील है। नन्दा...

उपरान्त पंचचूलीकी श्रेणियोंपर क्षितिजका भारतीय छोर समाप्त हो जाता है।

हिम-श्रेणियाँ सारे कुमाऊँमें किसी भी स्थानसे इतनी सन्निकट नहीं हैं, जितनी वे बेनीनागसे हैं। बेनीनाग स्वयं एक रमणीक स्थान है। यह समुद्रतटसे ५८०० फीट ऊँचे एक लगभग चौरस पर्वतके उत्तरी ढाल पर बसा है। इस ढालू पर्वतकी श्रेणीका क्षेत्रफल ६० वर्गमील है, जिसमें लगभग ३०० एकड़में चायका एक बगीचा है। पहाड़के मध्यमें ३०० फीट ऊँचाईसे गिरनेवाला एक बड़ा ही सुन्दर जल-प्रपात भी है।

पूर्वी अल्मोड़ेसे हिमालय

बेनीनागसे दर्शक ज्यों-ज्यों पूर्वकी ओर जाता है, पश्चिम की हिम-श्रेणियाँ अदृश्य होने लग जाती हैं, अन्तमें कंडालीछिना नामक स्थानमें पहुँचकर, जो पिथौरागढ़से १२ मील उत्तर-पूर्वमें शारदाके दाएँ पार्श्वपर खड़ी एक पहाड़ीपर स्थित है, पंचचूली श्रेणी पश्चिमाकाशके छोरपर खड़ी दीखती है और एक नया ही भू-भाग नितान्त नये क्षितिजको सम्मुख ला देता है। इस चोटीपर सात नामका एक गाँव है, जिसके सिरेपर एक टिब्बेसे सारे क्षितिजपर आच्छादित हिमालयका लगभग वैसा ही दृश्य दीख पड़ता है, जैसा कि मक्करवालीसे ; पर ये सब श्रेणियाँ नैपालमें स्थित हैं। पंचचूलीके उपरान्त तीन बड़ी बादामी रंगकी श्रेणियाँ एक साथ हैं, फिर एक नीलवर्णकी बड़ी ऊँची हिम-श्रेणी है, उसके उपरान्त एक बहुत ही लम्बा पर्वत है, जिसपर २१ चोटियाँ उल्टे आरेके दाँतोंकी भाँति चमकती आकाशकी ओर खड़ी दीखती हैं। इस दनदानेदार पर्वत श्रेणीके उपरान्त भी दक्षिण-पूर्वमें समतल नैपाली मैदानमें विलीन होनेसे पूर्व हिमालयकी अठारह बड़ी श्रेणियाँ तथा ग्यारह बड़े हिमनद इस स्थानसे गिने जा सकते हैं। इन पर्वतों तक पहुँचना तो दूर रहा, मानवने अभी तक इन्हें अपने नामकरणसे भी अपावन नहीं किया है। पावन हिम-शृङ्गोंका यह अनवरत क्रम, ऐसी विराट हिममाला, भारतमें भी अन्यत्र इतनी अटूट नहीं है, जितनी कि इस स्थानसे देखनेवाली श्रेणियोंमें झलकती है। 'नगाधिराज' तथा 'देवतात्मा' हिमालयका दृश्य नील शरदाकाशमें क्षण-क्षण बदलता रहता है। सूर्यकी किरणें उसको नये-नये रंगोंसे प्रतिक्षण रंजित करती रहती हैं। संध्याके समय तो ये रँग इतनी शीघ्रतासे परिवर्तित होने लगते हैं कि आँखें चकरा जाती हैं। इन विशाल श्रेणियोंसे परिवेष्ठित आकाशके नीचे एकान्त स्थानमें बैठा हुआ दर्शक जब उस अतुल सौन्दर्यको बिखेरनेवाले उदार हस्तकी कल्पना करता है, तो सोचता है कि सचमुच नर-जन्म लेकर संसारमें आना कितना सुन्दर है। मानव कितनी सुन्दर वस्तुओंको देख सकता है! तब हर्षातिरेकसे हृदयमें एक टीस-सी उत्पन्न हो जाती है, इसही यह अनुभूति इतनी प्रबल और तीव्र होती है, वह दुःखातिरेककी असह्य वेदनासे बहुत कुछ सामञ्जस्य रखती है। दुखः सुख और जीवन-मृत्युको



सन्ध्याके अंधकारमें हिमालय श्रान्त और क्लान्त।
(सन्ध्याकालमें लिया गया चित्र)

लाँघ देनेवाली यह अनोखी पीड़ा हिमालयकी प्रतिक्षण बदलती दिव्य ज्योतिके आलोकसे उद्भासित होकर दर्शकको विह्वल कर देती है। ज्यों-ज्यों आकाशमें तारे जुटने लगते हैं और चाँदनीका प्रकाश बिखरने लगता है, हिमालय भी श्रान्त, क्लान्त और विवर्ण-सा होने लगता है। दूर जहाँ तक दर्शककी दृष्टि जाती है, उसे कठोर हिमकी ही शीतलता वातवारणमें व्याप्त जान पड़ती है। तब प्रकृतिके सारे अभिनय इसी विशाल देवकी सेवाके हेतु हुए जान पड़ते हैं। स्वयं रात्रि भी अधखुले दिगम्बरों पर उँगली रखे चुपचाप उसीकी निद्राकी समाप्तिकी प्रतीक्षामें पहरा देनेके हेतु निश्चल खड़ी लगती है। समूचे भारतको अपने स्नेह सलिलसे अभिसिंचित करनेवाले हिमालयकी यह निद्रा सचमुच बड़ी ही मर्मस्पर्शी और गम्भीर लगती है।*

* लेखककी शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'कुमाऊँका नैसर्गिक सौन्दर्य' से।

राठौर नरेश पृथ्वीराज और उनकी 'वेलि'

उसकी कतिपय काव्यगत विशेषताएँ

विपिनविहारी त्रिवेदी

बीकानेर राज्य और नगरकी स्थापना करनेवाले राव बीकाकी पाँचवीं पीढ़ीमें होनेवाले राव कल्याणमलके तीन पुत्र हुए—रायसिंह, पृथ्वीराज और रामसिंह। पृथ्वीराज दर्शन, ज्योतिष, संगीत, संस्कृत, छन्द शास्त्रके पण्डित थे और वीरता इनकी पैतृक सम्पत्ति थी। कर्नल जेम्स टाडने इनके लिए उचित ही लिखा है—

"Prithiraj was one of the most gallant chieftains of the age, and like the Troubadour princes of the west, could grace a couso with the soul inspiring effusions of the muse, as well as aid it with his sword, nay, in an assembly of the bards of Rajasthan the, palm of merit was unanimously awarded to the Rathore cavalier."

राजनीतिक कारणों वश तथा अपने बड़े भाईके लाभके लिए ये अकबरके दरबारमें रहते थे और मुग़ल सम्राट्के प्रीतिपात्र थे। इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम पत्नी परम सुन्दरी लालां देकी असामयिक मृत्युसे इन्हें बड़ा धक्का पहुँचा था। फिर इनका दूसरा विवाह जैसलमेरके रावल हरराजकी कन्या चाँपा देसे हुआ। वह सुन्दरी, चतुर और हँसमुख तो थी ही परन्तु साथ ही कुशल कवियित्री भी थी। उसने हमारे चरित्र नायकके जीवनको पुनः हरा-भरा कर दिया।

मारवाड़में यह वार्त्ता अत्यन्त प्रसिद्ध है कि एक बार केश सँवारते हुए पृथ्वीराजने अपनी दाढ़ीसे एक सफेद बाल निकाल कर फेंका, जिसे चाँपा देने देख लिया और मुँह फेरकर हँसने लगी। पृथ्वीराजने दर्पणके प्रतिबिम्बमें उसका भाव लक्ष्यकर लज्जित स्वरमें निम्न दोहा पढ़ा—

पीथल धौला आविया, बहुली लग्गी खोड़।
कामण मत्त गयन्द ज्यों, उभी मुक्ख मरोड़॥

[ओ पीथल, बाल सफेद होने लगे तथा अन्य अनेक कमियाँ प्रकट होने लगीं और सामने तुम्हारी प्रेयसी मदांध सदृश खड़ी है तथा अपना मुँह फेरे हुए (हँस रही) है।

परन्तु कवियित्री चाँपा देने तुरन्त निम्न दोहा कह उनकी ग्लानि मिटाई—

हल तौ धूना धोरियाँ, पंथज गग्घां पाव।
नराँ तुराँ अरु बन फलाँ, पक्काँ पक्काँ साव॥

[हलके लिए बहुत दिन सिखाये हुए बैल, मार्ग के लिए पथिकोंके मज़बूत पैर जिस प्रकार वांछित होते हैं, वैसे ही मनुष्य, घोड़े और फल पकने पर ही रसदायक हुआ करते हैं।]

पृथ्वीराज बड़े स्पष्ट वक्ता थे। वे अपने बड़े भाई तथा सम्राट अकबरकी अन्यायोचित बातोंका विरोध करनेमें भी न चूकते थे। जातीय स्वाभिमानसे उनका हृदय रिक्त न था।

महाराणा प्रतापने सन् १५७८ ई० में शहबाज़ के ज़रियेसे भेजी हुई अकबरकी शर्तें ठुकरा दीं, तब इन्होंने उनकी प्रशंसामें कुछ अच्छे छन्द लिखे, जिनमें से दो यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

नर जेथि निमाणा नीलज नारी
अकबर गाहक वट अवट।
आवै तिणि हाटै ऊदावत
बेचे किम रजपूत वट॥

[उस हाटमें जहाँ मनुष्योंका सम्मान और स्त्रियोंकी लाज लिये जाते हैं और अकबर इनका खरीदनेवाला है, वहाँ ऊदाका पुत्र अपनी रजपूती बेंचने कैसे आ सकता है।

जासी हाट बात रहसी जगि
अकबर ठगि जासी अेकार।
रहि राखियो खत्री ध्रम राणै
सगलौ ई बरतै संसार॥

[यह हाट समाप्त हो जायगी, परन्तु उसकी कहानी बनी रहेगी और किसी-न-किसी दिन अकबर ठग जायगा। राणाने पृथ्वीपर क्षत्रिय-धर्मकी रक्षा की है, जिसका आचरण संसार करेगा।]

नौरोजके मीना बाजार और पृथ्वीराजकी सुन्दरी रानी चाँपा देको अकबर द्वारा उसमें आनेके निमन्त्रण विषयक वार्त्ताको लेकर अनेक प्रकारकी बातें प्रसिद्ध हैं। जो कुछ भी हुआ हो, वह दुर्घटना सफलता पूर्वक समाप्त हो गई।

एक और प्रसिद्ध घटना इस प्रकार सुनी जाती है। एक भील एक चकवा-चकवीके जोड़ेको पिंजड़ेमें बन्द करके दिल्लीके बाजारमें लाया। किसीने हँसीमें उनसे पूछा कि तुम रातमें कहाँ थे। उन्होंने मनुष्यकी बोलीमें उत्तर दिया कि इसी पिंजड़ेमें। इसपर वह पिंजड़ा दरबार पहुँचाया गया। खान-खाना अब्दुल रहीमने इसी प्रसंगको लेकर एक पंक्ति रची—

सज्जन वारू कोड़धाँ या दुर्जनकी भेंट।

परन्तु आगे वे इसे पूरा न कर सके, तब अकबरने सीमान्त प्रदेश (N. W. F. P.) के अटक नगरके उस पारसे पृथ्वीराजको बुलवाया, जिन्हें इसीलिये बादशाहने वहाँ भेज दिया था, क्योंकि वे अपनी मृत्युके छः मास बाद मथुराके विश्रान्त घाटपर होने और एक सफेद कौवेके प्रकट होनेकी भविष्यवाणी कर चुके थे। पृथ्वीराज लौट चले, परन्तु विश्रान्त घाट पहुँचकर उनकी मृत्यु हो गई तथा उस समय वहाँ एक सफेद कौआ भी देखा गया। उन्होंने रहीमके छन्दका अन्तिम चरण इस प्रकार पूरा किया था—

रजनीका मेला किया वेहके अच्छर मेट॥

भक्त प्रवर नाभादासने इनकी गणना अपने भक्तमालमें प्रथम श्रेणीके भक्तोंमें करते हुए इनके काव्यकी प्रशंसा की है—

रुक्मिणी लता वर्णन अनुप, वागीस वदन कल्याण सुव।
नरदेव उभै भाषा निपुण, प्रथीराज कविराज हुव॥

रचनाएँ

कवि द्वारा प्रणीत वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, दसरथ रावउत, वसुदेव रावउत, गंगा लहरी नामक काव्य-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। मित्रबन्धु द्वारा उल्लिखित प्रेमदीपिका, कृष्ण-रुक्मिणी-चरित्र ग्रन्थ अभी तक देखनेमें नहीं आये।

ग्रन्थोंके अतिरिक्त योद्धा कविने पर्याप्त संख्यामें फुटकर गीत, सवैये, दोहे, सोरठे, छप्पय आदि लिखे हैं और राजस्थान में इन्हीं फुटकर रचनाओंको लेकर पृथ्वीराजकी प्रसिद्धि है, 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री'को लेकर नहीं।

वैसे 'वेलि' कविकी श्रेष्ठतम रचना है। यह एक खण्ड काव्य है, जिसमें श्रीमद्भागवद्के दशम स्कन्धकी 'रुक्मिणी अपहरण'की कथाको अपनी बुद्धि द्वारा कहीं-कहीं मौलिक रूप देनेका साहस करते हुए कविने उसे एक स्वतन्त्र और नवीन रूप दे दिया है। यह कथा डिंगलके अर्द्ध सममात्रिक छन्द 'वेलियो गीत'में है और इसमें ३०५ छन्द हैं। Dr. L. P. Tessitori कहते हैं—

"Indeed the musicality of the verses is such that nothing could more conspicuously prove the error of them who hold that Dingal is too harsh for errotical or idyllic subjects, and is fit only for heroic themes."

"ग्रन्थकी साहित्यिक भाषा डिंगल है और काव्य सौष्ठव, अलंकार चातुर्य, भाव गांभीर्य, भाषा लालित्य, अर्थ गौरव आदि सभी दृष्टियोंसे अपने रंग-ढंगका अनूठा है, अनुपम है। वैसे ग्रन्थ है श्रृङ्गार रस प्रधान, पर वीर, रौद्र, वीभत्स आदि रसोंकी सम्यक् व्यंजना भी कविने प्रसंगानुकूल की है।...... वेलिके कथानकमें सरसता, उसकी कवितामें कोमलता, उसके प्राकृतिक वर्णनमें काल्पनिक कमनीयता, उसकी भाषामें प्रांजलता एवं भावोंमें मौलिकता है।" राजस्थानी साहित्यकी रूप-रेखा पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ६१-२।

वेलिके सम्पादक और राजस्थानी भाषाके पण्डित Dr. Tessitori की प्रशंसा समुचित है—

"In a less picturesque but more accurate language one would say today that this little poem by Prithiraj is one of the most perfect productions of the Dingal literature, a marvel ingenuity, in which like in the Taj of Agra, elaborateness of detail is combined with simplicity of conception, and exquisiteness of feeling is glorified in immaculateness of form."

वेलिके काव्य सौन्दर्यमें सर्वप्रथम हम भावाभिव्यंजनाको लेंगे।

ग्रंथके माहात्म्यका वर्णन करते हुए कविका कथन है कि उसके अक्षरोंके समूह ही पत्ते हैं, दोहलोंमें वर्णित यश ही इसकी सुगंधि है और इसके नव रस रूपी तंतुओंकी रात-दिन वृद्धि होती रहती है। यथा—

पत्र अक्खर दल द्वाला जस परिमल,
नव रस तँतु विधि अहो निसि। २९२।

अर्थात् कविने एक प्रकारसे दावा किया है कि उसने अपने प्रन्थमें नव रसोंकी अभिव्यंजना की है।

परन्तु उसका यह दावा अनेक अंशोंमें सही नहीं, क्योंकि उसके इस खंड काव्यमें हमें प्रधान रस शृङ्गार मिलता है और उसके बाद गणनामें आते हैं रौद्र, वीभत्स। शेष रस अति गौण हैं और किसी-किसी रसका तो स्पर्श मात्र भरा हुआ है। सबसे पहले हम अन्य रसोंकी परिस्थिति देखेंगे।

इसमें हास्य, अद्भुत और करुण रसोंका अभाव है। पहले हास्यको ही ले लीजिये। छन्द १३६ में बलरामकी वक्रोक्ति पर कि सालेके केश काट लिये कृष्ण मुसकराये; छन्द १७२ में सफल स्वाभाविक अलंकारके बलसे दिखाया गया है कि कृष्ण और रुक्मिणीके रति-भाव जानकर भौंहोंसे हँसती हुई सखियाँ एक-एक करके बाहर चली गईं; छन्द १७९ में कृष्णके साथ रति-सुख-लाभ करनेपर चित्रशालाओंमें खिलखिलाहट हुई (चौकि-चौकि ऊपरि चित्रसाली, हुइ रहियो कहकहाहट)। इन तीनों ही स्थलोंपर हास्य रसका परिपाक नहीं हो सका है। केवल हँस पड़ना कहकर ही हास्यकी निष्पत्ति नहीं हो जाती।

अद्भुत वार्त्ताका प्रसंग छन्द १३७ मात्रमें है। हरिने रुक्मके सिरपर हाथ रखे और उसके केश पुनः पैदा कर दिये—'हा लिया जाइ लगाया हूँता, हरि सालै सिर थापै हत्थ।' इस आश्चर्यजनक अनहोनी बातकी चर्चा की गई है, जिसमें विभाव, अनुभाव और संचारियोंका अभाव है। विरोधाभास द्वारा कृष्णके "कित करण अकरण अन्नथा करणं, सगले ही थोके समत्थ" कहकर इस अलौकिक घटनाका समाधान कर दिया गया है।

करुणाका भी कोई प्रसंग नहीं है। शिशुपालके सा[थ] विवाह होनेकी बात सुनकर रुक्मिणीका शोक, चिंता और [कृष्ण]को बुलानेका पत्र (छन्द ४२-५, ५७-६६) करुणाके [स्थल] नहीं हैं, इसे भलीभाँति समझ लेना चाहिए। छन्द २८-[२९] कवि पूर्व ही कह चुका है कि रुक्मिणीने भगवान् अनन्त[का] अधिकार सभी विद्याओंमें पाकर, हरिके गुणोंको भलीभाँ[ति] समझकर, उन्हें वरण करनेको इच्छासे शिव और पार्वती[का] पूजन आरम्भ किया।

सांभलि अनुराग थयौ मनि स्यामा
वर प्रापति वंछती वर।
हरि गुण भणि, ऊपनी जिका हरि
हरि तिणि वन्दै गवरि हर ॥ २९ ॥

इस उल्लेख मात्रने इस प्रसंगके रसको सर्वथा बदल दि[या] है। रुक्मिणीके हृदयमें कृष्णके प्रति पूर्वानुराग स्थापित [था;] जब पति रूपमें उनकी प्राप्तिमें बाधा पड़ी, तो विरह-जन्य शो[क]का उदय हुआ और फिर उन्होंने अपनी प्रेमकथा लिख[कर] कृष्णके पास पत्र प्रेषित किया। तथा यह भी लिख दिया कि नगरके निकट अम्बिकाके मन्दिरमें पूजाके बहाने आऊँगी, हे पुरुषोत्तम, लग्नके तीन दिन मात्र हैं—

त्रिणि दीह लगन वेला आज तै
घणूँ किसूँ कहि जै आघात।
पूजा मिसि आविसि पुरखोतम
अम्बिकालय नयर आरात ॥ ६६ ॥

अस्तु यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रसंग करु[णा]का नहीं है, वरन् विप्रलम्भ शृङ्गारका है, जिसमें शोक आ[दि] संचारी रूपमें आये हैं। भाई रुक्मके परास्त होने [और] बन्दी किये जानेपर अगले प्रसंगमें रुक्मिणीके शोककी सूच[ना] कविने ध्वनि-मात्रसे दी है, उसे प्रतिष्ठित नहीं किया है।

युद्ध-वीर रस, रौद्र तथा वीभत्सके अच्छे चित्रण कवि [कर] सका है। युद्ध-वीरके स्थल, जिनमें युद्धोत्साहकी चर्चा प्रधान है, दो हैं। एक तो छन्द ७४ में, जहाँ कृष्णको गया हुआ सुन[कर] और युद्धका निश्चय जानकर बलराम अपने युद्ध-विद्या-विशारद[ों] को लेकर चलते हैं और दूसरे वहाँ जब कि रुक्मिणीके [...]

हरण पर उनके पक्षवालोंने हल्ला मचाया (छन्द ११२) तो उस पक्षके योद्धागणोंने बहुरूपियों सदृश अपने वेश पलटे तथा युद्धके लिए सन्नद्ध हो गये—

सम्भलत धवल सर साहुलि सम्भलि
आल्हदा ठाकुर अलल।
पिंड बहुरूप कि भेख पालटे
केसरिया ठाहे किंगल ॥ ११३॥

इसी तैयारीकी योजना छन्द ११४-१६ तक है। फिर क्या था, दोनों पक्षोंकी सेनाएँ घनघोर युद्धमें रत हो गईं और रौद्र तथा वीभत्सके सफल चित्रण कवि कर सका। इन दोनों रसोंके मेल भी दृष्टिगोचर होते हैं, जो कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। स्वभावोक्ति और सांग रूपकों द्वारा इन रसोंकी अवतारणामें पूरी सहायता मिली है। छन्द ११७-३२ में इन रसोंकी सिद्धि द्रष्टव्य होगी। वीभत्सका उदाहरण देखिये—

रिण अङ्गणि तेणि रुन्हिर जलतलिया
घणा हाथ हूँ पड़े घणा।
ऊधा पत्र बुदबुद जल आकित
तरि चाले जोगिणी तरण ॥१३२॥

यहाँ रणांगणमें प्रवाहित रुधिरकी धारा आलंबन है और उसमें जलके बुदबुदोंकी आकृतिवाले उलटे किये योगिनियोंके खप्पर अर्थात् योद्धाओंकी बहती हुई खोपड़ियाँ उद्दीपन हैं, इस दृश्यका देखना अनुभाव है—और इन सबसे स्थायी भाव जुगुप्साको जन्म मिलता है।

भयानक रसका भी अभाव ही समझना चाहिए। युद्धकी विभीषिका देखकर कायरोंका काँप उठना मात्र कहनेसे—

काँपिया उर काइराँ असुभ कारियौ
गाजँति नीसाणे गड़ड़े।...।१२०।

ही भयानक रस नहीं पैदा हो सकता।

यहाँ हमें एक दोषकी ओर भी संकेत करना है और वह है वीभत्सका शृंगारसे सम्मिश्रण। आचार्योंने इनकी मैत्री असंगत ठहराई है और वह है भी। इनका मेल केवल रस भंग करनेके और कुछ नहीं कर सकता। देखिये—

लिखमीवर हरखि निगर भर लागी
आयु रयणि त्रूटन्ति इम।
क्रीड़ाप्रिय पोकारि किरीटी
जीवितप्रिय घड़ियाल जिम।१८१।

रति-प्रेमी कृष्णको रात्रिके अवसानमें कुक्कुटकी पुकार वैसे ही कष्टदायक हुई जैसे मृत्योन्मुख मनुष्यको घड़ियालका शब्द दुःखदायी होता है। जहाँ तक अलंकारका सम्बन्ध है, उपमा काफ़ी अच्छी है, परन्तु प्रेम-प्रसंगमें मृत्युका लाना उपयुक्त नहीं हुआ।

एक दूसरे स्थलपर पुष्पासवोंका पान करते हुए और रजस्वला नायिका-रूपी पुष्पवती लताओंका स्पर्श तथा आलिंगन करते पवनके वमनकी भी चर्चा अच्छी नहीं है—

पुहपवती लता न परस पमूँके
देतौ अँगि आलिंगन दान।
मतवालौ पै ठाहि न मण्डै
पवन वमन करतौ मधु पान।२६२।

वसंत वर्णनमें एक प्रसंग और है, जहाँ कवि नारियलके फलोंकी गिरीको मज्जा कहता है और उसे मांगलिक दही बतलाता है—

फुट वानरेण कच नालिकेर फल
मज्जाति किरि दधि मँगलिक।...।२३४।

मलिक मुहम्मद जायसीने भी इन विरोधी रसोंका मेल अपने पद्मावतमें दिखाया है। क्षत्रिय कुमार बादल अपनी नवागता नवोढ़ा पत्नीसे युद्धार्थ विदा लेने जाता है, वह अपना घूँघट खींच लेती है, परन्तु उसके सामने न देखनेपर मुँह खोल देती है, तब वह पीठ फेर लेता है और वह विचार करने लगती है कि—

मकु पिउ दिस्टि समानेउ सालू।
हुलसी पीठि कढ़ावौं फालू॥
कुच तूँबी अब पीठि गड़ोवौं।
गहै जो हूकि गाढ़ रस धोवौं॥
(गोरा बादल युद्ध यात्रा खण्ड);

["शायद मेरी तीखी दृष्टिका साल उसके हृदयमें पैठ

गया है, वह साल पीठकी ओर हुलसकर जा निकला है। इससे मैं वह गड़ा हुआ तीरका फल निकलवा दूँ, जैसे धँसे हुए काँटे आदिको तूँबी लगाकर निकालते हैं, वैसे ही अपनी कुच-रूपी तूँबी जरा पीठमें लगाऊँ और पीड़ासे चौंककर जब वह मुझे पकड़े, तब मैं गाढ़े रससे उसे धो डालूँ, अर्थात् रसमें मग्न कर दूँ।" रामचन्द्र शुक्ल]

"Perhaps a dart has pierced my beloved's eye; let me pull it out by the head as it quivers in his back. Let me now press the rondure of my breast against his back: if he clasps me in a spasm of pain, I will bathe him with vehement delight."—A. G. Shirreff.

शृङ्गारको वीरसे मिश्रित करनेकी योजना पृथ्वीराज रासोमें पूर्ण रूपसे पाई जाती है, जिसमें वीरके स्थानपर रौद्र और वीभत्सके समावेश भी किये गये हैं। वैसे जायसीपर फ़ारसीकी ऊहात्मक शैलीका अंशतः प्रभाव पड़ना भी असम्भव नहीं है। पृथ्वीराजने कवि परम्पराका अनुमोदन किया है।

वेलिका माहात्म्य वर्णन करते हुए कविका कथन है कि इसका पाठ भावी मुक्तिका विधायक और अन्तःकरणमें ज्ञान तथा आत्मामें हरि भक्तिका जातक है—

सरसती कण्ठि स्त्री ग्रिहिं मुखि शोभा
भावी मुगति तिकरि भुगति।
उवरि ग्यान हरि भगति आतमा
जपै वेलि तौं अे जुगति।२७६।

साथ ही प्राणी इसका पाठ कर भवसागरसे पार उतर जाते हैं—

प्राणिया भवसागर वेलि पढ़ि
थिया पारि तरि पारि थिया।२८८।

तथा यह मुक्तिकी नसेनी और स्वर्गका सोपान है—

मुगति तणी नीसरणी मण्डी
सरगलोक सोपान इल।२६४।

इन कई उल्लेखों द्वारा निर्वेदकी ध्वनि भले ही निकाल ली जाय, परन्तु शान्त रसकी अवतारणा करनेमें ये स्थल सफल नहीं हो सके हैं। वैसे वेलिका पाठ 'भाव' या 'भक्ति'का उद्बोधन करनेमें उपयुक्त है।

अब हमें अन्तमें शृङ्गार रसकी विवेचना करनी है, जि[...] कि प्रस्तुत काव्य ओत-प्रोत है। संभोग और विप्रलंभ दोनो[ं] चर्चा कविने विशद रूपसे की है, परन्तु सम्भोग अधिक [...] और ओजस्वी रूपमें है।

वलिका बन्धन करनेवाले हरिने पूर्ण शृङ्गार किये [...] अनन्य सुन्दरी मुग्ध नवोढ़ा राजकुमारी रुक्मिणीको दे[...] मन्दिरके पार्श्वसे हाथ पकड़कर अपने रथपर बिठा लिया [...] चल दिये—

बलि बँधि समरथि रथि लै बैसारी
स्यामा कर साहे सुकरि।...।११२।

तथा विषम युद्धमें प्रतिपक्षियोंको पराजित करते द्वा[...] आ गये। विवाहके शेष संस्कार किये गये। और प्रथम मि[...] की योजना हुई। इस परिस्थितिका चित्रण कविने ब[ड़ी] कुशलतासे किया है। सन्ध्याकाल हुआ, रात्रि बढ़ने [...] और 'रति वंछति रुक्मणि रमणि' संकुचित होने लगीं [...] दूसरी ओर कृष्ण प्रियतमासे मिलनेके लिए व्यग्र हो[...] और उन्होंने कठिनाईसे रात्रिका मुख देखा—

पति अति आतुर त्रिया मुख पेखण
निसा तणौ मुख दीठ निठ।१६३।

डा० टेसीटरीका इस स्थलका वर्णन देखिये—

"We now come to the most exquisite pictu[re of] the poem: the falling of the night, the impa[tient] expectation of Krsna, and the coming of Rukmi[ni to] his thalamus. The shyness of the maid and [the] unbounded joy of Krsna at her arrival, are desc[ribed] with all the mastership which we should expect [from] a Rajput of refinement who has had many experiences of that kind in his life."

प्रज्वलित दीपकोंके समान कामियोंके मनमें क[...] जाग्रत हो उठी (१६४)। यहाँ पर विप्रलंभका बड़ा अच्छा चित्रण कवि कर सका है। सहवाससे पूर्व मिलन[की] व्यग्रताका होना अति स्वाभाविक है, सखियाँ रुक्मि[णीको] लेकर क्रीड़ा गृहकी ओर चलीं, जहाँ कृष्ण आतुरतासे [...] प्रतीक्षामें टहल रहे हैं—

ऊभी सहु सखिअे प्रसंसिता अति
क्रितारथी प्री मिलण क्रित।

अटति सेज द्वार वीचि आहुटि
सुति दे हरि घरि समासित ।१६६।

तब तक वधाईदारोंकी भांति नूपुरोंने और सुगन्धियोंने रुक्मणीके आगमनकी उन्हें सूचना दी—

हंसागति तणौ आतुर थ्या हरिसूँ
वाथाऊआ जेही वहे ।
सूँधावासि अनै नेउर सदि
क्रमि आगै आगमन कहे । १६६ ।

सखीका सहारा लिए लज्जा-रूपी लंगरोंसे बँधे हुए मदोन्मत्त हाथीके समान वे वहां लाई गईं (१६७); हरि रोमांचित हो उठे और गोदमें लेकर उन्हें शय्यापर बिठाया (१६९); फिर उनके रति भावको पहचानकर भौंहोंसे हँसती हुई सखियाँ एक-एककर वाहर चली गईं (१७२); एकान्त स्थानमें रति-क्रीड़ा प्रारम्भ हुई (१७३); रतिके अन्तमें गजेन्द्र द्वारा म्लान दशाको प्राप्त कमलिनी सदृश रुक्मिणी वहाँ पड़ी थीं (१७४); उनके ललाटपर प्रस्वेद-कण थे (१७५); मुखपर पीलापन था, हृदय धड़क रहा था और सुरतान्त खेद था, नूपुर शान्त थे और वे चुप थीं—

त्री वदनि पीतता, चिति व्याकुलता
हियै धगधगी खेद हुइ ।
धरि चखु लाज पगे नेउर धुनि
करे निवारण कण्ठ कुइ । १७६ ।

उनकी केश-पाशि खुल गई थी, मोतियोंकी माला टूट गई थी और कंचुकीके बन्द भी खुल गये थे तथा कटि-मेखला मुक्त थी (१७८)। रति-क्रीड़ामें निमग्न इन प्रेमियोंको प्रातःकाल हुआ और लक्ष्मीपतिको कुक्कुटकी पुकार अति दुःखदायी प्रतीत हुई (१८१)।

संभोग शृंगारमें रतिका चित्रण पूरा है। एकान्त रतिका संकेत करके कविने अपनी काव्य मर्मज्ञताका परिचय दिया है। उसने अश्लीलतासे अपने काव्यकी सफल रक्षाके प्रयत्नका पूरा निर्वाह किया है अन्यथा जैसे कुछ स्थल उसने चुने उनमें फिसल जाना ही अधिक स्वाभाविक था।

शृंगार-वर्णनके अन्तर्गत षट् ऋतुओंका वर्णन करके कविने प्रादेशिक जानकारी, प्रकृति ज्ञान, ज्योतिष आदिकी अपनी अभिज्ञता प्रदर्शित की है। ये वर्णन परंपरा भुक्त न होनेके कारण अपनी मौलिकतासे अभिभूत करनेकी पूरी सामर्थ्य रखते हैं। इन्हें पढ़ते समय कालिदासके कुमारसम्भव और मेघदूतकी विचारधाराका जागरण होने लगता है।

दिन जेही रिणी रिणाई दरसणि
क्रमि क्रमि लागा संकुड़ण ।
नीठि छुडै आकास पोस निसि
प्रौढा करखण पंगुरण ।२२०।

इस छन्दमें रात्रिके अवसानमें प्रौढ़ा नायिका द्वारा खींचे जाते हुए नायकके वस्त्रकी उपमा देकर कविने नायिका भेदका सम्यक् ज्ञान प्रदर्शित किया है। जिस नायिकामें लज्जा न्यून और काम अधिक हो तथा जो रति-कलामें परम प्रवीणा हो, उसे प्रौढ़ा कहते हैं। 'रति प्रीता प्रौढ़ा'का 'कवीन्द्र' रचित एक स्वरूप देखिये—

अरसौंहैं नैन करि, सरसौहैं मुसकराति,
त्यों-त्यों अकुलाति ज्यों-ज्यों होत आली प्रात री।
दोऊ वे परसपर पीवत अधर रस,
चूमि-चूमि चटकीलौ मुख जल जात री।
भनत कविंद भरि-भरि अंक है निसंक
नेह भरे फिरि-फिरि दोऊ बतरात री।
बिछुर न करत दुहूँके गात ही तें दुवौ,
लपटि लपटि जात नेक न अघात री॥

'वस्तु वर्णन'के अन्तर्गत रुक्मिणीके वयःसंधि, यौवनागम, नखशिख और शृंगारकी चर्चा अभीष्ट होगी। कविने इनका वड़ी कुशलतासे चित्रण किया है। ये स्थायी भावको प्रगति देनेमें पूर्ण समर्थ हैं, जैसा कि ऐसे स्थलोंसे अपेक्षित हुआ करता है।

स्वप्नावस्था-रूपी वयःसंधिकालके बाद यौवनकी जाग्रति हुई (१५); मुखपर लालिमा आई, जिसे सूर्योदय समझकर सन्ध्यावन्दन करनेके लिए ऋषि सदृश पयोधर जग उठे (१६); यौवनागमके कारण बालाके हृदयमें शान्ति नहीं (१७); लज्जा पैदा हो गई और कामस्थल छिपानेके प्रयत्न प्रारम्भ हो गये

(१८) ; शैशवावस्था व्यतीत होते ही यौवन-रूपी वसंत अपने परिवार गुण-गति मतिको लेकर आ गया (१६) ; सुडौल तथा परिपूर्ण कुचोंपर श्यामता बढ़ी (२४) ; उन्नत नितम्ब-प्रदेश और कदलि सदृश उरुओंवाली सुन्दरी (२६) के चरणोंके नखोंकी द्युति कमल-दलपर पड़े जल-बूँदोंके समान हुई (२७)।

छन्द ८१-१०१ तक कविने रुक्मिणीके ललित श्रृंगारका अति मनोहर वर्णन किया है। सफल उत्प्रेक्षाओं द्वारा इन उल्लेखोंको उसने तीव्रतम करके अपनी रसज्ञताका पूरा परिचय दे डाला है। एक-आध छन्द पर्याप्त होगा—

धूप देनेके लिए वह (रुक्मिणी) दोनों हाथोंसे अपनी केशराशि बिखराने लगी, मानों कृष्णके मन-रूपी मृगको फँसानेके लिए कामदेवका जाल फैलाने लगी हो—

लागी विहुँ करे धूपणै लीध
केस पास मुगता करण।
मन म्रिग चै कारणै मदन ची
वागुरि जाणे विसतरण। ८२।

राजकुमारीके कुचोंकी कंचुकी हाथीके कुम्भस्थलकी अन्धेरी (जालीदार आवरण) है अथवा शिवसे युद्ध करनेके लिए कामका कवच है या कि कृष्णके स्वागतार्थ मण्डप सजाया गया है और कंचुकीकी डोरियाँ बाँधकर, मानों तम्बू खड़ा किया गया है—

इभ कुँभ अन्धारी कुच सु कंचुकी
कवच सम्भु काम कि कलह।
मनु हरि आगमि मण्डे मण्डप
बन्धण दधि कि वारिगह। ९०।

श्रृंगार करके श्यामाने देवीके मन्दिरकी ओर जानेकी इच्छा की, मुक्ताजटित जूतियोंके बहाने, मानों हंस उनकी चालकी स्पर्धा छोड़कर पैरोंमें लोट रहे हैं—

सिणगार करे मन कीधौ स्यामा
देवि तणा देहरा दिसि।
होडि छंडि चरणे लागा हँस
मोती लगि पाणही मिसि। १००।

अलंकार

वेलिमें वयण सगाई, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, अनु[illegible] और चित्रा नामक शब्दालंकारोंका प्रयोग हुआ है [illegible] अर्थालंकारोंमें दृष्टान्त, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, [illegible] निदर्शना, माला, विशेषोक्ति, स्वभावोक्ति, रूपक, उल्ले[illegible] सन्देह, पर्यायोक्ति, दीपक, अतिशयोक्ति, उदात्त, पुनरु[illegible] प्रकाश, विभावना, तुल्ययोगिता, एकावलि, हेतु, परिकर, सं[illegible] समुच्चय, काव्यार्थापत्ति, व्यतिरेक, अपन्हुति, अनु[illegible] व्याघात, अधिक, भ्रान्तिमान, समासोक्ति, मीलित, परि[illegible] कुर, अन्योन्य, विशेष, प्रतीप और उदाहरणका।

३०५ छन्दों मात्रावाले काव्यमें उपर्युक्त ४४ प्र[illegible] अलंकारोंका प्रयोग सुनकर साधारणतः यही अनुमान [illegible] कि वेलि कोई रीतिभुक्त रचना है, जिसमें अलंकारोंका चम[illegible] और ज्ञान-प्रदर्शन मात्र करनेके लिए काव्य रचना की [illegible] है। परन्तु ग्रन्थका परिशीलन करनेपर पता चलता है [illegible] पृथ्वीराजके अलंकार काव्यकी आत्मा रसके साधक हैं [illegible] बाधक। वे बहुत ही स्वाभाविक रूपसे लाये गये हैं तथ[illegible] प्रसाद गुणमें सहायक और भावोत्तेजनामें पूर्ण योग देनेवाले [illegible]

जहाँ तक शब्दालंकारका सम्बन्ध है 'वयण सगा[illegible] प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। प्रत्येक दोहलेकी प्रत्येक पं[illegible] प्रथम और अन्तिम शब्दोंके प्रथम वर्णोंमें जो अनुप्रास [illegible] है, उसे डिंगलमें 'वयण सगाई' कहते हैं। डिंगल का[illegible] इस शब्दालंकारका बहुतायतसे प्रयोग होता है और यह [illegible] साहित्यका एक विशेष चमत्कार है। वेलिमें इस अलंकार[illegible] नियमतः सर्वत्र प्रयोग हुआ है, परन्तु कहीं-कहीं प्रयोग आ[illegible] जनक भी है।

अन्तरंग-वयण-सगाईके दृष्टान्त इस प्रकारके हैं—

(१) स्रीपति कुण सुमति, तूझ गुण जु तवति। छं० [illegible]

(२) सैसव तनि सुखपति, जोवण न जाग्रति। छं० १४[illegible]

यमकका प्रयोग छन्द ३,२९,३५,३८,१४६,१४७,१[illegible] १६३ में मिलेगा और अनुप्रासका छन्द ७,१७,१४७,[illegible] में। श्लेषका प्रयोग छन्द ६८,१२५,१८८,२१२,२५७,[illegible] में देखा जा सकता है। चित्रालंकारका प्रयोग केवल [illegible]

२२३ में हुआ है। इस अलंकारमें कुछ विशेष चमत्कार नहीं होता और न यह रसका उपकारी ही है, केवल रचना करनेवाले कविकी एक प्रकारकी निपुणता मात्र है तथा इसे कष्ट काव्य माना गया है।

वक्रोक्तिके प्रयोगमें कविने कुशलता दिखाई है। उसने काकु वक्रोक्तिका प्रयोग ही अधिक किया है। एक स्थल देखिये—

आणे असुर नाग नेत्रे नहि
राखियौ जइ मँदर रई।
महण मथे मूँ लीध महमहण
तुम्हाँ किँणे सीखव्या तई।६२।

अर्थालंकारोंमें कविको उत्प्रेक्षा अत्यन्त प्रिय है, इसीसे वेलिमें ४० उत्प्रेक्षाएँ मिलती हैं और इसके बाद गणनामें आते हैं रूपक, जिनकी संख्या ३८ है, फिर प्रयोग संख्यानुसार उपमा, स्वभावोक्ति, अपन्हुति और अतिशयोक्ति आदि आते हैं।

पहले उत्प्रेक्षाको लीजिये, जिसका कविने अत्यन्त सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। गम्योत्प्रेक्षाका उदाहरण देखिये—

उस चन्द्राननीने चरणोंमें सुवर्णके नूपुर सजाकर घुँघुरू पहने, मानों चरण-रूपी कमलोंके परागकी भ्रमरोंसे रक्षाके लिए पीली वर्दीवाले पहरेदार नियुक्त किये हों—

चरणे चामीकर तणाँ चँद्राणणि
सजि नूपुर घूघरा सजि।
पीला भमर किया पहराइत
कमल तणा मृकरंद कीजि।९७।

दो वस्तूत्प्रेक्षाएँ भी देखिये। रुक्मिणीकी वेणी और माँगकी शोभा उल्लेखनीय है—

कबरी किरि गुन्थित कुसुम करम्बित
जमुण फेण पावन्न जग।
उतमँगि किरि अम्बरि आधोअधि
माँग समारि कुमार मग।८५।

राजकुमारीके नीले वर्णके चीरके अन्दर अंग-प्रत्यंगपर नाना प्रकारके नगोंसे आलोकित आभूषणोंकी अवली है, मानों कामदेवने घर-घरमें प्रसन्न होकर दीपमालाएँ जला रखी हों। रुक्मिणीके शरीरका आश्रय पाकर उसे अब आत्म-गौरवका भान होने लगा है—

अन्तर नीलम्बर अवल आभरण
अङ्गि अङ्गि नग नग उदित।
जाणे सदनि सदनि संजोई
मदन दीपमाला मुदित।१०१।

रहीमने हाथीके धूल उड़ानेमें अहल्याका उद्धार करनेवाले रजकणको ढूँढ़नेकी बात कही थी—

धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥

परन्तु पृथ्वीराजने इसमें एक दूसरा ही कारण देखा। रुक्मिणीने अपने वक्षस्थलपर मोतियोंका हार धारण किया, जिससे उरस्थल और हाथी कुम्भस्थलकी शोभामें महान् अन्तर पड़ गया। गजमुक्ता होते हुए भी हाथीने जब सादृश्यता न पाया, तो वह स्पर्धाकी लाजसे अपने ऊपर धूल फेंकने लगा—

आरोपित हार घणौ थियौ अन्तर
ऊरस्थल कुम्भस्थल आज।
सु जु मोती लहि लहै न सोभा
रज तिणि सिरि नाखै गजराज।६४।

इस उक्ति द्वारा कविने असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षाका चमत्कार दिखाया है। जायसीने भी ऐसी उत्प्रेक्षाएँ की हैं। यथा—

(१) सहस किरिन जो सुरुज दिपाई।
देखि लिलार सोउ छपि जाई॥
(२) दारिउँ सरि जो न कै सका,
फाटेउ हिया दरकि।

उत्प्रेक्षाके बाद हम रूपकोंको लेंगे। कविने सांग और निरंग रूपकोंकी सफल आयोजना की है और इनमें सांगके द्वारा युद्ध और ऋतुवर्णनोंको प्रभावोत्पादक बना दिया है। राजकुमारी रुक्मिणीका आनन्द ही चन्द्रोदय है, अति हँसना ही चन्द्रकी ज्योत्स्ना और उनके दाँत तारागणोंकी भाँति शोभित हैं; नेत्र ही कुमुदिनी हैं, नासिका ही दीपशिखा है, काले केश ही अन्धकार है और मुख ही पूर्णिमाका चन्द्र है—

आणंद सु जु उदौ उहास हास अति

राजति रद रिखपति रुख।

नयन कमोदणि दीप नासिका

मेन केस राकेस मुख ।२२।

युद्ध-क्षेत्र-रूपी लोहारके ऐरणपर संतप्त रुक्मको देखकर स्वयं कुपित होते हुए माधवने अपने शरीरको लोहारका बायाँ हाथ और अपने मनको सँड़सी बनाया, परन्तु रुक्मिणीके अश्रु-बिन्दु देखकर द्रवीभूत हुए—

रुकमइयौ पेखि-तपति आरणि रणि

पेखि रुकमणी जल प्रसन।

तणु लोहार वाम कर निय तणु

माहवि किउ साँडसी मन।१३२।

वसन्तके प्रकट होते ही कोक संगीत प्रकट हुआ, शिशिर ऋतुकी शोभाकी यवनिका उठी और अभिनेताओंने अपने मन्त्र पढ़कर ऋतुराज वसन्तपर वनराजिकी पुष्पांजलि डाली—

प्रगटै मधु कोक सँगीत प्रगटिया,

सिसिर जवणिका दूरि सरि।

निज मन्त्र पढ़े पात्र रितु नाँखी

पुहपञ्जलि वणराय परि।२४८।

एक निरंग रूपक भी देखिये—श्रावण अपने कृष्णवर्णवाले वर्तुलाकार और प्रान्तस्थ श्वेत अभ्रोंकी कोरवाली घटाओंको लेकर मूसलाधार वृष्टिसे पृथ्वीको जल प्लावित करने लगा। दिशाओं-दिशाओंसे बादल पिघल चले, वे रुकते नहीं हैं, विरहिणी स्त्रीके नेत्र हो रहे हैं—

काली करि काँठलि ऊजल कोरण

धारे स्रावण धरहरिया।

नालि चालिया दिसोदिसि जल प्रभ

थम्भि न विरहणि नयण थिया।१६५।

'स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रिया रूप वर्णनम्' (मम्मट)। बालक आदिकी स्वाभाविक चेष्टा या प्रातिकृक दृश्यके चमत्कारिक वर्णनको स्वभावोक्ति अलंकार कहते हैं। वेलिमें स्वभावोक्तिका प्रयोग काफ़ी अच्छा दिखाई देता है और यह कविके युद्धक्षेत्र तथा प्रेम-क्षेत्रके अनुभवका सफल व्यक्तीकरण है।

युद्ध-क्षेत्रमें दौड़ते हुए घोड़ोंके नथुने इतने जोरसे बज... हैं कि नगाड़ोंका निर्घोष नहीं सुनाई देता—

... ... सद नीहस नीसाण न सुणिजै

वरहासाँ नासाँ वाजन्ति।११५।

कृष्ण और रुक्मिणीके नेत्रों और उनके मुखकी चेष्टा... जब उनके रति-भावोंको पहचान लिया, तब वे हँसती हुई एक-एक करके सखियाँ उस क्रीड़ा-गृहसे ... हो गईं—

वर नारि नेत्र निज वदन विलासा

जाणियौ अंतहकरण जई।

हसि-हसि भ्रूहे हेक हेक हुइ

ग्रिह बाहिरि सहचरी गई।१७२।

जिस उपायसे किसी व्यक्ति द्वारा कुछ कार्य सिद्ध ... जाय, उसी उपायसे दूसरे किसी व्यक्ति द्वारा वह कार्य ... कर दिया जाय, तो उसे व्याघात कहते हैं। वेलिमें व्याघा... (१३७, १८२, १८६, १८७, १९२, २१८) पाँच ... और पाँचो अनूठे। हम सांख्य मिश्रित व्याघातका एक उदा... हरण लेते हैं।

सूर्यने उदय होकर संयोगिनी स्त्रियोंके वस्त्र, ... और कुमुदिनीकी शोभाको बन्धन दे दिया तथा घरों, ... तालों, भ्रमरों और गौशालोंको मुक्त किया—

सञ्जोगणि चीर रई कैरव स्री

घर हट ताल भमर गोघोख।

दिणयर ऊगि अेतलाँ दीधा

मोखियाँ बन्ध बन्धियाँ मोख।१८५।

और भी—

वाणिजाँ वधू गो वाछ अस्तैविट

चोर चकव विप्र तीरथ वेल।

सूर प्रगटि अेतलाँ समपिया

मिलियाँ विरह विरहियाँ मेल।१८६।

भागवतके श्लोक—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्

गोपानां स्वजनो सतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः

मृत्युर्भोजपते विराडविदुषां तत्वं परं योगिनाम्

वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ।

॥१७४३।१०॥

से पृथ्वीराजको यदि निम्न उल्लेखालंकार लिखनेकी प्रेरणा मिली हो तो कौन आश्चर्य है—

कामणि कहि काम काल कहि केवी
नाराइण कहि अवर नर ।
वेदारथ इम कहै वेदवँत
जोगतत्त जोगेसवर ।७६।

अन्य कुछ अलंकारोंके उदाहरण भी देखिये—

(१) राम क्रिसन आया राजा रै,
तो को अचरिज मनुहार तणौ । ७८ । (काव्यार्थापत्ति)
लिखमी आप नमे पाइ लागी,
अचरिज को लाधे अरथ । ७३ ।

(२) किरि कठचीत्र पूतली निज करि,
चीत्रारै लागी चित्रण । २ । (दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा)

(३) जोवै जाँ ग्रहि ग्रहि जगन जागवै,
जगनि जगनि कीजे जप ताप ।
मारगि मारगि अंब मौरिया,
अम्बि अम्बि कोकिल आलाप । ५० । (एकावलि)

(४) अम्ह कजि तुम्ह छंडि अवर वर आणै,
अेठिति किरि होमै अगनि ।
सालिगराम सूद्र ग्रहि संग्रहि,
वेद मन्त्र स्लोकाँ वदनि । ६० । (निदर्शना)

(५) राजि दूरि द्वारिकाँ विराजौ,
दिन नेड़ौ आइयौ दुरी । ६५ । (समुच्चय)
अेक उजाथर कलह्रि अेवाहा,
साथी सहु आखाढ़ सिध । ७४ । ”

(६) सिणगार करे मन कीध्रो स्यामा,
देवि तणा देहँरा दिसि ।
होडि छंडि चरणे लागा हँस,
मोती लगि पाणही मिसि । १०० । (कैतवापन्हुति)

(७) तारोवरि अस चित्राम कि लिखिया,
नहखरता नर वरै नर । ११४ । (अत्युक्ति)

(८) अनि पँखि बन्धे चक्रवाक असन्धे
निसि सन्धे इम अहोनिसि । (पर्याय)
कामणि काम तणी कामागनि
मन लायाँ दीपकाँ मिसि ।१६४। (कैतवापन्हुति)

(६) पति अति आतुर त्रिया मुख पेक्खण,
निसा तणौ मुख दीठ निठ ।
चन्द्र किरण कुलटा सु निसाचर,
द्रवड़ित अभिसारिका द्रिठ । १६३ । (दीपक)

(१०) वरसतै दड़ड़ नड़ अनड़ वाजिया,
सघण गाजियौ गुहिर सदि ।
जलनिधि ही सामाइ नहीं जल,
जलवाला न समाइ जलदि । १६६ । (अधिक)

(११) भ्रमि तिणि संध्यावन्दण भूला,
रिखिय न लखै सकै दिन राति । २०१ । (भ्रान्तिमान)
वणि वणि मालणि केसरि वीणति,
भूली नख प्रतिबिंब भ्रम । २५७ । ”

(१२) फिरियौ पछि वाउ उतर फरहरियौ,
सहुवे सूहव उर सरग ।
भुयँग धनी प्रिथमी पुड़ भेदे,
विवरे पैठा वे बरग । २१७ । (परिकरांकुर)

(१३) पोढाडै नाद वेद परबोधे,
निसि दिन वाग विहार नितु ।
माणग मैण अेणि विधि माणै,
रुकमणि कन्त वसन्त रितु । २६८ । (उदात)

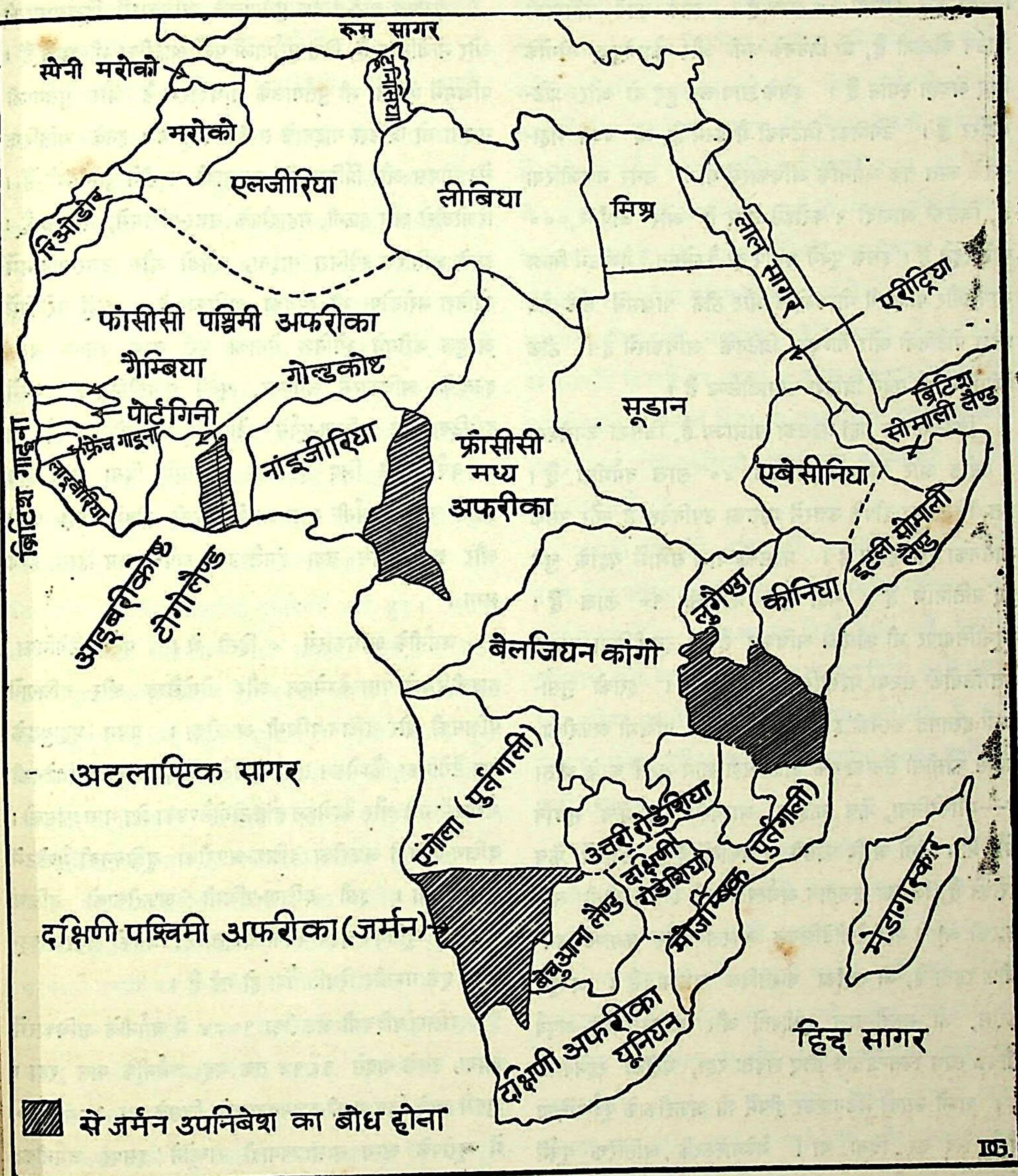
इस प्रकार देखते हैं कि जहाँ तक काव्य सौन्दर्यका प्रश्न है पृथ्वीराजका वेलि ग्रन्थ अप्रतिम है। वेलिका माहात्म्य वर्णन करते हुए कविने उसे पर्याप्त गौरव दिया है (२७८-३०५)।

अफ़रीकाके परतन्त्र देश और राष्ट्रसंघ

सत्यप्रकाश मित्तल

अफ़रीकाका विशाल महाद्वीप एक करोड़ १५ लाख वर्ग-मीलमें फैला है। अफ़रीकाकी छूतसे यूरोपको बचानेके लिए रूमसागर बीचमें पूर्वसे पश्चिम तक चला गया है। यहाँकी आबादी १४ और १५ करोड़के बीच है। लोग अधिकतर काले हैं, जिन्हें नीग्रो, हबशी आदिके नामसे याद किया जाता है। एक जमाना था, जब यहाँ आज़ाद लोग रहते थे। उनकी स्वतन्त्र सत्ता थी। उनकी अपनी आदिम आर्थिक और शासन-व्यवस्था थी और अपने सामाजिक रीति-रिवाज थे। जिस आज़ादीसे चमनमें बुलबुल रहते हैं, वनमें मृग विचरण करते हैं, उसी तरह यहाँके इन लोगोंका स्वतन्त्र और निश्छल जीवन था। उस ज़मानेमें इसे 'अँधेरा महाद्वीप' कहते थे। ज्यों-ज्यों, इसका एकके बाद दूसरा भाग प्रकाशमें आया, यहाँके निवासियोंका स्वतन्त्र मस्ती-भरा जीवन मुर्झाने लगा। यूरोपके सभ्य लोगोंने इनको हबशी और जंगलीका नाम दिया। अपनी तोपों और गोलियोंके बलसे इनको परास्तकर कहीं पुर्तगाल, कहीं फ्रांस और कहीं ब्रिटेनने इनके देशोंपर अधिकार स्थापित किया और अचानक इनके स्वामी बन गये। अमेरिकामें गोरोंको खेतोंमें काम करानेके लिए मज़दूरोंकी आवश्यकता हुई, तो इन हबशियोंको पकड़-पकड़कर इनका पशुओंकी तरह व्यापार शुरू हुआ। सभ्योंने इस व्यापारसे मोटे मुनाफ़े कमाये। अमेरिकाके बाज़ारमें गुलामोंकी मंडियाँ लगती थीं और दाम देनेवाला ख़रीदकर इनका मनचाहा उपयोग करता था। जब अमेरिकाकी मण्डीमें गुलामोंका व्यापार शिथिल हो गया, तब सभ्योंको अपने मानवीय कर्तव्योंका स्मरण आया और १८८५ में भगवानसे अपने गुनाहोंकी क्षमा माँगकर यूरोपके साम्राज्यवादियोंने आपसमें एक समझौता किया कि आगे ऐसा पाप न करेंगे; साथ ही अपने-अपने क्षेत्रोंकी सीमाएँ भी निर्धारित कर लीं। दस वर्ष पूर्व तक अफ़रीकाके चप्पे-चप्पेपर यूरोपके साम्राज्यवादियोंका पूर्ण अधिकार था। मिश्र, एबीसीनियाँ और पश्चिमी तटपर छोटा-सा लाइबीरिया आज आंशिक रूपसे स्वतन्त्र कहे जा सकते हैं। मिश्रकी पुरानी सभ्यता दुनिया-भरमें प्रसिद्ध है। इसपर अंगरेज़ोंका अधिकार था, द्वितीय महायुद्धके बाद तक ब्रिटेनकी सेना यहींपर थी। एबीसीनिया पर १९३६ में इटलीने अधिकार कर उसको अपने साम्राज्यका अंग बना लिया था। युद्धमें इटलीकी पराजयके बाद यह स्वतन्त्र हो गया। लाइबीरियामें वहाँके निवासियोंकी अपेक्षा रबरके बगीचोंके मालिकों, अमेरिकनोंका ही प्रभाव अधिक है। इन तीन देशोंको छोड़कर आज भी समस्त अफ़रीका परतन्त्र है, गुलाम है।

७० वर्ष पूर्व तक समुद्र-तटके देशोंपर ही यूरोपवासियोंने अधिकार किया था। अन्दर बियाबान जंगल और रेगिस्तान थे, जिनमें घुसकर साम्राज्य-विस्तारकी आवश्यकता उस समय तक महसूस नहीं की गई थी। इसके कई कारण थे। इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल और हालैण्ड-जैसे देशोंके पास इतने बड़े-बड़े साम्राज्य सँभालनेको थे। दूसरी शक्तियाँ उस समय तक मैदानमें नहीं आई थीं। दूसरे देशोंको तो साम्राज्यकी उस समय आवश्यकता महसूस हुई, जब उनकी अन्दरूनी राजसत्ता दृढ़ हुई और वहाँ पूँजीवादका विकास हुआ। जर्मनी और इटली आदि ऐसे ही देश हैं। एक बात और है, उसके पूर्व १०० वर्षका काल यूरोपमें बहुत हलचल और क्रान्तियोंका था। प्रत्येक देश अपनी आन्तरिक व्यवस्थामें ही अधिक लगा था। जर्मनी, इटली-जैसे देशोंको संतुष्ट करनेके लिए १८८५ और ९० में अफ़रीकाके बारेमें समझौते हुए। इस समय अफ़रीकामें ब्रिटेनके अधिकारमें सबसे अधिक भाग हैं। मिश्रको हालमें ही स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है। दक्षिण-अफ़रीका यूनियन ठीक महाद्वीपके दक्षिणमें है। यहाँ ७५ लाख नीग्रो और २० लाख गोरे बसते हैं, और यह कनाडा और आस्ट्रेलियाकी भाँति स्वतन्त्र उपनिवेश है।



इसके साथ उत्तर-पश्चिममें लगा हुआ दक्षिण-पश्चिमी अफ़रीकाका देश है, जो यूनियनको मैण्डेटमें मिला है और जिसके विषयमें राष्ट्रसंघसे यूनियनका विरोध हो गया है। दक्षिण-अफ़रीका यूनियनके ठीक उत्तरमें दक्षिण रोडेशिया है, इसमें १२ लाख ५० हज़ार मूल निवासी और ५०,००० गोरे हैं, जो विशेषकर ब्रिटेनके हैं। यहांपर कालोंके प्रति दूसरे स्थानोंकी अपेक्षा अच्छा व्यवहार है। इसके अलावा तीन प्रोटेक्टोरेट—बैसोटोलैण्ड, बेचवानालैण्ड और स्वज़ीलैण्ड हैं,

जिनकी कुल आबादी १० लाख हैं। इनके पूर्वमें केनियाकी क्राउन कोलोनी है, जो ब्रिटेनके धनी और फ़ैशनेबुल लोगोंके लिए अच्छा स्थान है। इसके साथ लगे हुए दो और प्रोटे-क्टोरेट हैं। टैंगेनिका ब्रिटेनकी मैण्डेटमें है, जो प्रथम महा-युद्धके अन्त तक जर्मनोंके अधिकारमें था। उधर नाइजीरिया है, जिसकी आबादी २ करोड़से ऊपर है और जहाँ २,००० गोरे रहते हैं। इसके पूर्वमें समीप ही कैम्मेरून, मैण्डेटमें मिला भाग और पश्चिममें गोल्डकोस्ट और ठीक पश्चिममें छोटे-छोटे प्रदेश पोर्टगिनी और गैम्बिया ब्रिटेनके अधिकारमें हैं। ठीक ऐबीसीनियाके पूर्वमें ब्रिटिश सोमालीलैण्ड है।

ब्रिटेनके बाद यहाँ फ्रांसका साम्राज्य है, जिसकी जनसंख्या ४ करोड़ और जिसका क्षेत्रफल ४० लाख वर्गमील है। एलजीरिया महाद्वीपके उत्तरमें फ्रांसका उपनिवेश है और उसके शासनका एक हिस्सा है। फ्रांसकी धारा सभामें यहाँके चुने हुए प्रतिनिधि हैं। यहाँ कुल फ्रांसीसी १० लाख हैं। ट्यूनीसियापर भी फ्रांसका अधिकार है। ट्यूनीसिया नगरमें अतालियोंकी संख्या फ्रांसीसियोंसे अधिक है। इसको मुसो-लिनी हस्तगत करनेकी इच्छा रखता था। पश्चिमी अफ़रीका, जहाँसे फ्रांसीसी सेनाका एक काफ़ी बड़ा भाग भरती करके आता है—मौरिटेनिया, फ्रेंच गाइना, आइवरीकोस्ट, फ्रेंच सूडान और फ्रेंच कांगो आदि फ्रांसके अधिकारमें हैं। उत्तरमें फ्रेंच मरोक्को है, जिसका सुलतान अर्धस्वतन्त्र है। फ्रांसीसी सर-कारकी ओरसे यहाँ रेजीडेंशियल जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ रहता है, जो यहाँका वास्तविक शासक है। अब्दुल करीम, जो सालों-साल मुसीबतों और कठिनाइयोंमें अपूर्व शौर्यके साथ स्वतन्त्रताके लिए लड़ता रहा, यहींका रहनेवाला है। बादमें उसको मेडेगास्कर द्वीपमें जो अफ़रीकाके पूर्व-दक्षिण में है, क़ैद कर दिया था। मेडेगास्करके अतिरिक्त पूर्वमें ब्रिटिश सोमालीलैण्डके उत्तरमें फ्रेंच सोमालीलैण्ड फ्रांसका है। विषवत् रेखाके आर-पार और मध्य अफ़रीकामें बेलजियमके अधिकारमें बेलजियन कांगो है, जिसका क्षेत्रफल १० लाख वर्गमील है, जब कि स्वयं बेलजियमका क्षेत्रफल १२ हज़ार वर्गमील मात्र है।

यूरोपके छोटे-से देश पुर्तगालके अधिकारमें हिन्दमहा... ओर मोजेम्बिक है, जिसे पुर्तगाली पूर्वी अफ़रीका भी कहते... पश्चिममें एंगोला भी पुर्तगालके अधिकारमें है और पुर्त... गाइना जो ब्रिटिश गाइनाके समीप स्थित है। इनके अति... सेंट थोमस और प्रिंसिप द्वीप गाइनाकी खाड़ीमें पुर्तगालके... रिओडोरो और इफ़नी, महाद्वीपके उत्तर-पश्चिममें, स्पेनके... इनके अतिरिक्त स्पेनिश गाइना, फ़र्नेंडो और उत्तर-पश्चि... स्पेनिश मरोक्कोपर भी स्पेनका अधिकार है। यहीं मरो... अब्दुल करीमने स्पेनिश सेनाको बुरी तरह पछाड़ा... इटलीके अधिकारमें लीबिया, पूर्वमें एबिसीनियाके ... इरीट्रिया और दक्षिण-पूर्वमें इटेलियन सोमालीलैण्ड है... दस वर्ष तकके लिए इटलीकी संरक्षतामें दिया गया। इटली और जर्मनी साम्राज्य-विस्तारकी होड़में पीछे... और इनको फ्रांस तथा इंगलैण्डकी अपेक्षा कम हिस्सा लगा।

जर्मनीके अधिकारमें ४ हिस्से थे। पूर्वमें टैंगेनि... नाइजीरियाके पास कैम्मेरून और टोगोलैण्ड और दक्षि... पश्चिमकी ओर दक्षिण-पश्चिमी अफ़रीका। प्रथम महायु... बाद टैंगेनिका, कैम्मेरून तथा टोगोलैण्डके कुछ हिस्से ब्रिटेन... मैण्डेटमें गये और कैम्मेरून तथा टोगोलैण्डका शेष भाग फ्रांस... दक्षिण-पश्चिमी अफ़रीका दक्षिण-अफ़रीका यूनियनकी मैण्डे... दिया गया। इसी दक्षिण-पश्चिमी अफ़रीकाको दक्षि... अफ़रीका यूनियन हड़प करना चाहता है, जिसको लेकर रा... संघमें एक गम्भीर स्थिति पैदा हो गई है।

दक्षिण-पश्चिमी अफ़रीका १८८४ में जर्मनीके अधिका... आया, उसके बादसे १९१४ तक यह जर्मनीके पास र... शुरूमें इसके लिए काफ़ी कशमकश हुई, जिसके बाद १८८... में यूरोपके अन्य साम्राज्यवादी राष्ट्रोंने इसपर जर्मनी... अधिकार स्वीकार किया। १९१४-१८ के महायुद्धमें जर्मनी... पराजय हुई और उसके साम्राज्यपर मित्र राष्ट्रोंका अधि... हो गया। प्रथम महायुद्धके बाद राष्ट्रसंघका संगठन हु... और उसके द्वारा, जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, अफ़री... में जर्मन साम्राज्यको १९२० में ब्रिटेन, फ्रांस और बे...

अफ़्रीका यूनियनके अधिकारमें दे दिया गया। उसके बादसे अब तक यह देश इन्हीं शक्तियोंके हाथमें है।

दक्षिण-अफ़्रीका यूनियन अफ़्रीकाके दक्षिण भागके पश्चिमी हिस्सेमें स्थित है, जिसकी पश्चिमी सीमा एटलांटिक महासागरके तटसे मिलती हुई उत्तरसे दक्षिण तक जाती है। कटाफटा न होनेके कारण बन्दरगाहोंके लिए यह अच्छा तट नहीं है। इस देशका क्षेत्रफल जर्मनी, फ्रांस या भारतके किसी बड़े-से-बड़े प्रान्तसे अधिक है। ३ लाख १७ हज़ार वर्गमील क्षेत्रके इस देशमें ३॥ लाख बंटू, होटेंटो और बेस्टार्ड क़बीलोंके लोग रहते हैं। हरेरो क़बीलेके १०,००० लोगोंको जर्मनोंने प्रथम महायुद्धके पूर्व मारकर बाहर निकाल दिया था। ये लोग इस समय बेचवानालैण्डमें बसे हैं, परन्तु अपने देशको लौटनेके लिए बहुत उत्सुक हैं। इस देशमें गोरोंकी कुल जनसंख्या ३१,००० है, जिनमें ३० प्रतिशत जर्मन हैं और शेष ब्रिटेन या दक्षिण-अफ़्रीका यूनियनसे आये हुए। इसका काफ़ी बड़ा भाग खेती-योग्य नहीं समझा जाता, पर इसके मध्यमें सुन्दर घासके मैदान हैं, जिनकी ज़मीन बहुत उपजाऊ और पशुपालनके लिए बहुत उपयुक्त है। इसी भागमें यूरोपियन बसते हैं, जिन्होंने यहाँकी भूमिके ८६ प्रतिशतपर अपना अधिकार कर लिया है। श्री रेवरेण्ड स्काटने राष्ट्रसंघकी संरक्षण समितिके सामने गत २६ नवम्बरको बोलते हुए कहा था कि इन मूल निवासियोंके खेतोंपर कब्ज़ा करनेके लिए और इनको वहाँसे मार भगानेके लिए दक्षिण-अफ़्रीका यूनियनकी सरकारने उनपर बम बरसाये। श्री स्काटने यह भी बताया कि १०,००० हरेरो अपने देशमें आनेके लिए उत्सुक हैं, परन्तु उनको घुसने नहीं दिया जाता। इस देशमें खनिज पदार्थोंका अच्छा ज़ख़ीरा है। यूनियन सरकार दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीकाको अपने लिए कितना ज़रूरी समझती है, यह यूनियनके एक भूतपूर्व मन्त्री, श्री फ़ैन एच० हीफ़ियरके हिटलरकी उपनिवेशोंकी माँगके उत्तरमें लिखे १६३६ के लेखसे उद्धृत नीचेकी पंक्तियोंमें स्पष्ट होता है। वे लिखते हैं—

"दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीकाके मैण्डेटके नतीजेके तौरपर जो नई अवस्था थी, उससे युद्धके बादके सालोंमें बर्लिन सरकार और दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीकाके उपनिवेश दोनों ही सहमत दिखाई पड़ते थे। १९२३ में दक्षिण अफ़्रीका यूनियनकी सरकारने जर्मन सरकारसे एक सन्धि की थी, जिसे लन्दनकी सन्धि कहते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप ही दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीका में रहनेवाले जर्मन राष्ट्रके व्यक्ति यूनियनकी प्रजा हो जाते थे। इस सन्धिके आरम्भिक भागमें ही जर्मन सरकारने स्पष्ट स्वीकार किया है कि दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीकाका भविष्य अब दक्षिण-अफ़्रीका यूनियनसे बँध गया है। आगे चलकर यूनियनके लिए इसके महत्त्वके बारेमें लिखते हैं,—"इसके बन्दरगाहोंसे ब्रिटेनसे केप तकका सामुद्रिक मार्ग हवाई बेड़े और पनडुब्बियोंसे नियन्त्रित किया जा सकता है। दूसरे यूनियनके शहरी केन्द्र दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीकासे वायुयानकी पहुँचके अन्दर आते हैं।"

ऊपरकी पंक्तियोंसे यूनियनकी सरकारी मनोवृत्ति और उसके लिए दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीकाके सामरिक महत्त्वका अनुमान लगता है। इसके अलावा पिछले युद्धमें नये सामरिक हथियारों और अणुबमके आविष्कारके बाद ब्रिटेन युद्धके समयके लिए दक्षिण-अफ़्रीकाको सुरक्षित स्थान समझता है, ताकि अवसर आनेपर दक्षिण-अफ़्रीकाका आधार बनाकर वहाँसे युद्ध जारी रखा जा सके।

प्रथम महायुद्ध तक यहाँ दासताकी प्रथा थी। १९२४ में लीग आफ़ नेशन्सकी ओरसे एक दासता-उन्मूलन-समिति बनाई गई, जिसके बाद यहाँसे गुलामी प्रथा उठी। १६३० तक यहाँ बेगार-प्रथा थी और मज़दूरी करनेसे कोई मूल निवासी इनकार नहीं कर सकता था। इनकी मज़दूर टुकड़ियाँ बना कर काम लिया जाता था और इसके बदलेमें टैक्स वसूल किया जाता था। १६३० में इस प्रथाके विरुद्ध क़ानून अवश्य बनाया गया, परन्तु आज भी वहाँ बेगार और बरबस मज़दूरी ली जाती है। क़ानून बेगार और अत्याचारसे रक्षा नहीं करता।

१९२५ में यूनियनकी धारा सभाने दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीकाका विधान सम्बन्धी ऐक्ट पास किया, जिसके अनुसार दक्षिण-पश्चिम अफ़्रीकामें एक धारा सभा, मन्त्री-मण्डल और मूल

निवासियोंकी एक मन्त्रणा समितिका निर्माण हुआ। इस विधानने यहाँके मूल निवासियोंको प्रत्येक अधिकारसे वंचित रखा। न उनको वोटका अधिकार मिला और न उनका प्रतिनिधित्व धारा सभा में लिया गया। एक मन्त्रणा-समिति बनाई गई, जिसका कार्य जब-तब गोरी सरकारको परामर्श देना था। यह २५ हज़ार गोरोंकी हुकूमत ३॥ लाख अफ़्रीका निवासियोंपर शासन और शोषण करनेके लिए स्थापित की गई। पर १९३३ में इस विधानको वापस ले लिया गया। जर्मनों और दूसरे गोरोंमें कड़ा विरोध था। उन्होंने जर्मन भाषाको राजकीय तौरपर स्वीकार नहीं किया और जर्मनीसे आनेवालोंपर नागरिक अधिकारोंके सम्बन्धमें कई तरहके प्रबन्ध लगा दिये, जब कि यूनियन और इङ्गलैण्डसे आनेवाले गोरोंको आसानीसे नागरिक अधिकार मिलते थे। इसी तरहके कुछ प्रतिबन्ध भूमिके सम्बन्धमें थे, जिनसे जर्मनोंको उतनी सुविधाएँ नहीं थीं, जितनी ब्रिटेन और यूनियनके गोरोंको प्राप्त थीं।

दक्षिण-अफ़्रीका यूनियन रंग-भेद-भावके लिए दुनियामें बदनाम है। यहाँ कुछ हिन्दुस्तानी भी हैं। उनपर तरह-तरह के बन्धन हैं और सामाजिक व्यवहार बहुत अपमानजनक है। इस विषयमें राष्ट्रसंघके निर्देशके अनुसार उन्हें सब प्रजातान्त्रिक अधिकार मिल जाने चाहिए थे; परन्तु राष्ट्रसंघके निश्चयको कार्यान्वित करनेसे यूनियन इनकार कर रही है। इससे भी बुरा व्यवहार वहाँके मूल निवासी नीग्रोसे है। यूनियनके चारों प्रदेशोंमें नीग्रो लोगोंकी जनसंख्या ७५,००,००० से ऊपर है और यूरोपियनोंकी क़रीब २०,००,०००। परन्तु इन काले लोगोंको मनुष्येतर प्राणी समझा जाता है। इनकी बस्तियाँ अलग, इनके स्कूल अलग। यूरोपियनोंके होटलोंमें इनको घुसनेकी आज्ञा नहीं। जितने सम्मानित और आर्थिक दृष्टिसे लाभप्रद कार्य हैं, उनपर गोरोंका एकाधिकार है। कितने ही स्थानोंपर तो क़ानूनी दृष्टिसे वे नहीं पहुँच सकते, परन्तु सरकार गोरी है और पुलिस और सेना गोरी है और धन, सम्पत्ति, भूमि—सबपर यूरोपके सभ्योंका अधिकार है, इसलिये गोरे सामाजिक क़ानूनोंके कारण भी बहुत-से पेशे नीग्रो लोग नहीं कर सकते। चाहे वह कितना ही योग्य और शिक्षित क्यों न हो। राजनीतिक दृष्टिसे भी इनको वंचित र[illegible] है। देशमें जो क़ानून बनते हैं, आर्थिक और राज[illegible] नीतियाँ तय की जाती हैं, उनमें नीग्रो लोगोंकी कोई [illegible] नहीं; यद्यपि प्रजातान्त्रिक दृष्टिसे देखा जाय तो १०० [illegible] नीग्रो हैं और वे वहाँके वास्तविक स्वामी हैं। काले आ[illegible] वोटका अधिकार नहीं और काला प्रतिनिधि धारा सभा [illegible] नहीं सकता। प्रजातन्त्रके हामियों और मानवीय सम[illegible] ठेकेदारोंका असली रूप दक्षिण-अफ़्रीका यूनियनमें मिल[illegible] यहाँ डाक्टर मलान और जनरल स्मट्सका प्रजातन्त्र चल[illegible]

औरेंज फ्रीस्टेट्समें यूरोपियनोंमें बोअरोंका बहुमत [illegible] ये हालैण्डसे आये हुए हैं। इनका और ब्रिटेनसे आये [illegible] खूब विरोध रहता है। १८९९-०१ में बोअर युद्ध हुआ जिसमें अन्तमें बोअरोंको हार हुई। प्रजातन्त्रको [illegible] लिए इस यूनियनके गोरे इतने कटिबद्ध हैं कि राष्ट्रसंघ, [illegible] वता धर्म, संसारवाले किसी चीज़का भय उनको ठीक [illegible] आनेको मजबूर नहीं कर सकता। भय है तो बहुमतसे, [illegible] तन्त्रसे, जो काले और गोरोंको समान कर देगा। पापी [illegible] वृत्तिको सदा यही चिन्ता रहती है कि यदि बहुमतका रा[illegible] हो गया, तो अत्याचारोंका बदला चुकाया जायगा।

राष्ट्रसंघकी जनरल एसेम्बलीने नवम्बर १९४[illegible] दक्षिण-अफ़्रीका यूनियनके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव किया, दक्षिण-पश्चिमी यूनियनके मैंडेण्टके विषयमें था। उस प्रस्ता[illegible] यूनियनको दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीकाके शासन और प्र[illegible] रिपोर्टें देने, और उस प्रदेशको राष्ट्रसंघकी संरक्षण समि[illegible] सुपुर्द करनेके लिए आदेश था। उस समय यूनियनने [illegible] आश्वासन दिलाया कि आइन्दा वह इस कर्त्तव्यकी पूर्ति क[illegible] इस सम्बन्धमें उसने अपनी रिपोर्टें पेश कीं, जिनमें शास[illegible] सम्बन्धमें तो नहीं; पर वहाँकी आर्थिक, शिक्षा-सम्बन्धी [illegible] सामाजिक उन्नतिका विवरण दिया। वास्तविकता यह [illegible] कि मैण्डेटके क्षेत्रमें बहुत असन्तोष था और वहाँके लोगोंकी [illegible] ख़राब थी। इसपर संरक्षण समितिमें आलोचना शुरू हु[illegible] यूनियनको, जो अपनी ग़लतीपर पछता रही थी, इस [illegible] चनाको कारण बनाकर अपनी ग़लतीको सुधारनेका [illegible]

मिल गया। पिछले नवम्बरमें यह मामला फिर संरक्षण समितिमें पेश हुआ। उसी समय दक्षिण-पश्चिमी अफ़रीकाके निवासियोंकी ओरसे श्री रेवरेण्ड स्काट ईसाई मिश्नरीको संरक्षण समितिसे बातचीत करनेकी अनुमति संरक्षण समितिने बहुमतसे दे दी। इसपर यूनियनका प्रतिनिधि इस क़दर बिगड़ा कि उसने उस मीटिंगमें जिसमें रेवरेण्डस्काट बोलनेवाले थे, शामिल न होनेका एलान कर दिया।

दक्षिण-अफ़रीका यूनियनने इस सम्बन्धमें जो नीति बरती, वह खुली बग़ावत थी और राष्ट्रसंघके बुनियादी वसूलों और राष्ट्रसंघकी परम्पराओंके बिल्कुल विपरीत थी। ब्रिटेन और अमेरिकाने भी यूनियनका साथ दिया और ११ हाथ जो विरोधमें उठे, उनमें दो इन महान् प्रजातान्त्रिक राष्ट्रोंका प्रतिनिधित्व कर रहे थे। टर्की, नार्वे और स्वेडन तो विरोध करके, मानों अपनी विवशता प्रकट कर रहे थे। हालैंड, बेलजियम, फ्रांस, आस्ट्रेलियाने भी अपनी जातीय भेदकी और साम्राज्यवादी नीतिका समर्थन किया। किन्तु एशियाके देश इस मसलेपर संगठित हो गये और बड़े-बड़े राष्ट्रोंके प्रभावको ठुकरा दिया। यह एक अपूर्व बात थी, जो भावी आशाओंकी ओर संकेत करती है।

यूनियनके प्रतिनिधिने कहा था कि राष्ट्रसंघ यूनियनकी आन्तरिक व्यवस्थामें दखल दे रहा है, जो उसकी शक्ति और अधिकारके अन्दर नहीं है। यूनियनकी सरकार इसे अपना अपमान समझती है और इस गम्भीर स्थितिको कदापि बर्दाश्त करनेको तैयार नहीं है। यूनियन इसके विरोधमें अपने प्रतिनिधिको इस मसलेसे सम्बन्धित मीटिंगोंमें नहीं भेजेगी; और उसने नहीं भेजा। इस घटनासे जुड़ी हुई घटना तब हुई जब संरक्षण समितिमें परतन्त्र देशोंके सम्बन्धमें सूचनाके लिए पूर्वनिश्चित कमेटीके नये मेम्बर चुननेका मसला पेश हुआ। ब्रिटेन और फ्रांसके प्रतिनिधियोंने उस चुनावमें भाग नहीं लिया और सूचनाके सम्बन्धमें अपनी सरकारोंके अधिकारको सुरक्षित रखनेका एलान किया। रेवरेण्ड स्काटकी संरक्षण समितिकी मुलाक़ातका भी ब्रिटेनकी ओरसे कड़ा विरोध हुआ। ब्रिटेनने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि वह अपने उपनिवेशों और साम्राज्यके परतन्त्र देशोंके विषयमें संरक्षण समितिके अनुकूल व्यवहार करने और सूचनाएँ देनेको बाध्य नहीं समझता। उसकी ओरसे यह भी कहा गया कि छोटे-छोटे देश जिनकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं और न जिनका प्रभाव है, वोटोंके बहुमतसे बेतुकी चीजें पास करा लेते हैं। ऐसा मालूम होता है कि राष्ट्रसंघकी हस्ती लीग आफ़ नेशन्सकी तरह या तो साम्राज्यवादी और शक्तिशाली राष्ट्रोंके स्वार्थोंके लिए इस्तेमाल हो, अन्यथा वे उसको प्रभावहीन और निर्बल बनानेमें देर न लगायँगे, फिर नतीजा कुछ भी हो। प्रजातन्त्रका दम भरनेवाले, जातीय समानता और मानव सम्मानके उच्चादर्शोंका प्रतिपादन करनेवाले ब्रिटेन और अमेरिका-जैसे प्रभावशाली देशोंका समर्थन यदि राष्ट्रसंघको प्राप्त नहीं होगा, तो अवश्य ही इसकी गति लीग आफ़ नेशन्ससे भी खराब होगी। इस समय राष्ट्रसंघकी प्रतिष्ठाको नष्ट करना युद्धको दावत देना है। इंगलैंड अपने साम्राज्यकी रक्षा अमेरिकाकी सहायताके अभावमें नहीं कर सकता और अमेरिका रूसके विरोधके लिए इंगलैण्ड, फ्रांस और दूसरी सम्राज्यवादी शक्तियोंका सहयोग आवश्यक समझता है। दक्षिण-अफ़रीकाकी साम्राज्यविस्तारकी लिप्साको इन्हीं राष्ट्रोंकी शक्तिका सहारा है, अन्यथा २० लाखके गोरोंकी उस दुर्बल हुकूमतको राष्ट्रसंघकी प्रतिष्ठाको इतनी बेहूदगीसे खराब करनेका साहस कभी नहीं हो सकता था।

एक बात भी भूलनेकी नहीं है। एशियाके बाद स्वतन्त्रता-संग्रामका क्षेत्र अफ़रीका होगा। वहाँ नई शक्तियाँ उदय हो रही हैं। सदियोंसे दासतामें पड़े करोड़ों अफ़रीका निवासियोंमें एक नई चेतना और आज़ादीकी प्रचण्ड भावना पैदा हो चुकी है। इस समय यह जहाँ-तहाँ छुटपुट फूटती दीख रही है, परन्तु वह समय दूर नहीं जब दुनियाका ध्यान एशिया और अफ़रीका अधिकाधिक आकृष्ट करेगा और ये दो महाद्वीप संसारकी राजनीतिके अखाड़े होंगे। अफ़रीकाके देश तो परतन्त्र हैं और उनको आज़ादीके लिए संघर्षमें ही शक्ति लगानी होगी, और एशियाके देश, जापानको छोड़कर, औद्योगिक दृष्टिसे अविकसित और पिछड़े हैं। इनको अपनी आर्थिक अवस्थाको सुधारनेके लिए टेकनिकल ज्ञान और

मशीनरीके लिए विशेषकर अमेरिकाकी सहायताकी आवश्यकता है। इस समय संसार भरमें ऐसी सहायताके लिए अमेरिका ही एकमात्र देश है। दूसरी ओर एशियाके देश अपनी स्वतन्त्रताके लिए साम्राज्यवादी शक्तियोंके अरुचिकर प्रभावसे मुक्त होना चाहते हैं, जो उनके आर्थिक और राजनीतिक विकासमें बाधक हैं। इधर अमेरिकाके लिए अपनी पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्थाके दवावके कारण अपने मालको दुनियाके बाजारोंमें बेंचना आवश्यक है, अन्यथा उसकी आर्थिक-व्यवस्था टुकड़े-टुकड़े हो जायगी। इससे एक सम्भावना एशियाई देशोंके लिए पैदा होती है कि ये आपसमें संगठित हो जायँ और एक बार इतना निश्चय कर लें कि यदि अमेरिकाकी मदद भी प्राप्त न हो, तो भी आपसकी सहायतासे वे अपने देशोंकी आर्थिक-व्यवस्थाको सँभाल लेंगे और साथ-साथ उसमें उन्नति करते जायँगे। यह निश्चय अमेरिकाको घुटना टेका देगा। ऐसी अवस्थामें एशियाके राष्ट्र अफ़रीकाके राष्ट्रिय आन्दोलनोंको सहायता भी पहुँचा सकते हैं। इस समय तो ये देश स्वयं कमजोर हैं और बड़ी-बड़ी शक्तियोंके शिकार होनेका भय हर समय इनको रहता है, जिसके कारण ये अपनी स्वतन्त्र-नीतिका अवलम्बन कभी नहीं कर पाते। मगर संगठित हो जानेपर ये स्वयं एक भारी शक्ति बन जायँगे। हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है, जो अगुआ हो सकता है और इस बड़े काम को सम्पन्न करनेकी सामर्थ्य रखता है। इस समय तक अन्तर्राष्ट्रिय क्षेत्रमें उसने बहुत ही महत्त्वपूर्ण हिस्सा अदा किया है। परन्तु भविष्यमें कितनी दृढ़ताके साथ अपनी इस नीतिको विकसित करके मंजिल तक पहुँचनेकी सामर्थ्य भारत रखता है, यह अभी तक शंकाका विषय है।

कोई भी देश अपनी आन्तरिक नीतिसे स्वतन्त्र होकर वैदेशिक नीतिका पालन नहीं कर सकता; यद्यपि हिन्दुस्तान ऐसी ही कोशिशमें दीख पड़ता है। कांग्रेस सरकार आन्तरिक आर्थिक-व्यवस्थाके जिस दृष्टिकोणको लेकर चली थी, उसमें उसको सफलता नहीं हो सकी। वह इस देशमें मिश्रित अर्थ-व्यवस्था चलाना चाहती थी, परन्तु एक ओर तो भारतके पूँजीपति उसको असफल करनेके लिए काफ़ी आप[illegible] प्रभावशाली साबित हुए, दूसरे अमेरिकाका दबाव पड़ा। [illegible]णामस्वरूप भारत सरकारको देशके पूँजीपतियोंके [illegible] झुककर उनकी शर्त्तें स्वीकार करनी पड़ीं। पूँजीवादी [illegible] व्यवस्था भारतकी आर्थिक समस्याओंका हल नहीं [illegible] सकती, इसलिये भारत सरकारको पूँजीपतियोंके दबावके [illegible] जनतापर विश्वास कम करना होगा और अमेरिकाका [illegible] लेना पड़ेगा। ऐसी अवस्थामें एक निर्भीक वैदेशिक [illegible] लम्बे काल तक निभाना शायद कठिन हो।

राष्ट्रसंघकी एसेम्बलीको मजबूर होकर दक्षिण-[illegible] अफ़रीकाके मामलेको अन्तर्राष्ट्रिय न्यायालयमें भेजना [illegible] यह राष्ट्रसंघकी दुर्बलताका परिचायक है। राष्ट्रसंघके [illegible] इतनी सैनिक शक्ति नहीं है कि वह किसी मेम्बर राष्ट्रको [illegible] निर्णय माननेपर मजबूर करा सके। उसकी शक्ति तो [illegible] राष्ट्रोंके सहयोग और अपने उद्देश्यके नैतिक बलमें है। दुनियाके बड़े-बड़े प्रभावशाली और शक्तिशाली राष्ट्रोंका [illegible] योग राष्ट्रसंघको प्राप्त न हो और वे स्वयं अपने स्वार्थोंके [illegible] राष्ट्रसंघके विद्रोहियोंका सहयोग दें, तो राष्ट्रसंघ दुर्बल [illegible] प्रभाव क्षीण हो जाता है। यद्यपि भारतके प्रतिनिधिने [illegible] संघके अधिकारोंकी चर्चा करते हुए कहा है कि अन्तर्रा[illegible] न्यायालयकी वैधानिक राय बिलकुल दूसरी हो, तो भी रा[illegible] अपने उद्देश्योंके अधीन ही परतन्त्र और अविकसित दे[illegible] प्रगति और सहायता करनेके लिए बाध्य है, और अपने [illegible] नैतिक कर्त्तव्यके अधीन उसे नया निर्णय लेनेका पूर्ण अधि[illegible] है। लेकिन ऐसा लगता है कि ब्रिटेन और अमेरिका [illegible] पूरा प्रभाव डालकर ऐसा रास्ता निकालनेपर एशियाई दे[illegible] मजबूर करेंगे, जो उनके साम्राज्यवादी स्वार्थोंको, बिलकुल [illegible] गहरे रूपमें, हानि न पहुँचा सकें। यदि एशियाई देश अपने [illegible] पर दृढ़ रहे तो कशमकश बढ़ेगी। तब एशियाई देशोंको [illegible] साथ बढ़ना होगा। इससे अफ़रीकाके परतन्त्र देशोंको [illegible] उत्साह मिलेगा और संघर्ष तीव्र होगा। वास्तवमें परतन्त्र [illegible] का स्वतन्त्र होना ही युद्धके विरुद्ध एक गारण्टी हो सकती [illegible]

भारतने एशियाको संस्कृतिकी दीक्षा दी

डा० रघुवीर डी० लिट०

श्याम तथा आग्नेय जम्बु महाद्वीपके अन्य देशोंपर भारतीय संस्कृतिका अत्यधिक प्रभाव दिखाई देता है। श्याम देशकी थाई भाषामें संस्कृत भाषाके शब्दोंका प्राचुर्य है। यही नहीं उनकी संस्कृतिपर भी भारतीय संस्कृतिका बहुत प्रभाव पड़ा है। श्यामने भारतकी आयुर्वेद पद्धतिको भी ग्रहण किया था। वहाँ इस विषयके अनेक संस्कृत ग्रन्थ पाये जाते हैं।

प्राचीन भारतके प्रति श्रद्धा

यद्यपि आज भी हरिवर्ष (यूरोप) में भारतीयोंको "काला मनुष्य और श्वेत मनुष्यका बोझ" समझा जाता है, परन्तु एक समय भारतीयोंने ही आग्नेय महाद्वीप (एशिया) और मध्य-पूर्व जम्बु महाद्वीपके अर्ध सभ्य लोगोंको भारतीय संस्कृति की दीक्षा देकर उन्नत बनानेका प्रयत्न किया था। जिन-जिन देशोंमें भारतीय संस्कृतिका प्रसार हुआ, उन सब देशोंमें भारतके प्रति अत्यन्त प्रेम, श्रद्धा एवं आदरका भाव पाया जाता है। श्याममें यह प्रेम केवल प्राचीन भारत और भारतीयताके प्रति है, आधुनिक भारतके प्रति नहीं। उनकी दृष्टिमें आज भारतवासी और भारतवर्ष दो भिन्न वस्तु हैं। हम इसकी केवल कल्पना कर सकते हैं कि प्राचीन भारतके प्रति निरन्तर ऐसे प्रेमकी भावना बनाये रखनेके लिए उन्हें कितना मानसिक प्रयास करना पड़ता है।

थाई भाषापर संस्कृतका प्रभाव

यदि हम श्यामपर भारतीय संस्कृतिका प्रभाव देखना चाहें, तो यह अत्यावश्यक है कि हम थाई भाषापर संस्कृत भाषाके प्रभावका अध्ययन करें। यह अध्ययन बड़ा उद्‌बोधक है। यह प्रभाव उन पुस्तकोंमें भी मिलता है, जो श्याम देशके बालकोंको वर्णमाला सिखानेके लिए काम आती हैं। श्यामकी लिपि यद्यपि देवनागरी लिपिसे भिन्न है, परन्तु मराठीकी मोड़ी लिपिसे मिलती-जुलती है। श्यामी लिपिके अक्षरोंका क्रम देवनागरीके समान है।*

वर्णमालासे सादृश्य

अक्षरोंको बालकके स्मृति-पटलपर अंकित करनेके लिए उस अक्षरसे आरम्भ होनेवाले किसी-न किसी वस्तु-नामके प्रयोगका प्रचलन सभी देशोंमें है। श्याममें भी इसका अपवाद नहीं। वहाँ भी इस शैलीका उपयोग होता है। किन्तु आश्चर्यका विषय तो उन शब्दोंके परिचायक वस्तु-नाम हैं, जो ठेठ संस्कृत हैं। इतना ही नहीं ख और टवर्ग आदि जिन अक्षरोंका प्रयोग श्यामी भाषामें नहीं होता, भारतके प्रति अविचल श्रद्धा और प्रेमके कारण उनको भी उन्होंने अपनी वर्णमालामें स्थान दिया है। श्यामी वर्णमालाका चित्र देखनेसे ज्ञात होता है कि जहाँ भारतमें ख के लिए 'खजूर' और ग के लिए 'गधे' का प्रयोग किया जाता है वहाँ श्यामी भाषामें ख वर्णके नीचे 'खग' और 'खचर' शब्द इस वर्णके परिचयके लिए दिये गये हैं। ग के नीचे गगन, गजता—ये दो शब्द लिए गये हैं। गजता शब्दमें पाणिनीय व्याकरणकी स्पष्ट छाप दिखाई देती है। यह शब्द मानवता, मृदुता आदि शब्दोंके समान भाववाचक न होकर जनता शब्दके समान गजोंके समूहका द्योतक है। घ वर्णके परिचयार्थ 'घट' और 'घोष' शब्द दिये गये हैं। इसी प्रकार च के लिए 'चंकम' और 'चमु', छ के लिए 'छबि' ज के लिए 'जम' और झ के लिए झष (मछली) दिया गया है। इसी प्रकार ज्ञ—ज्ञाति, ट—टीका, टंकण, ठ—ठाकुर (देवता), ड—डंस (डांस), ढ—ढी (बुड्ढी), ण—णेर (श्रमणेर नौसखिया), त—तनु, थ—थू (थूकमा), द—दधि, दया,

---

* 'विशाल भारत'में इस विषयपर काफ़ी लिखा जा चुका है।—सम्पादक

दन्त, ध—धनजात और न—नकुल आदि शब्द वर्णोंकी पहिचानके लिए लिखे जाते हैं। ञ, ङ, ष आदि शब्दोंसे आरम्भ होनेवाले शब्द भारतीय भाषामें दिये गये हैं। सम्पूर्ण संस्कृत भाषामें झ से आरम्भ होनेवाले शब्द १५-२० से अधिक नहीं हैं। उनमेंसे झष शब्दका ज्ञान सामान्य जनको नहीं है, केवल पंडित और कवि ही ऐसे शब्दोंको जानते हैं। संस्कृत साहित्यका इतना अप्रसिद्ध शब्द भी श्यामी वर्णमालाकी शिशु-सुलभ पुस्तकोंमें विद्यमान है। क्या यह हमारे लिए आश्चर्यका विषय नहीं? उपर्युक्त उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि थाई भाषापर संस्कृत भाषाका कितना भारी प्रभाव पड़ा है। श्यामकी लिपि ताड़-वृक्षके समान है। इस लिपिके अक्षर इतने ऊँचे होते हैं कि उसकी एक पंक्तिमें अंगरेजीकी पाँच पंक्तियाँ समा जायँगी। उनकी लिपिके अक्षर २२ विन्दु (पाएंट) से छोटे नहीं बनाये जाते। श्यामी लोगोंका कहना है कि ऊँचे अक्षरोंमें विशेष सौन्दर्य है, जिसे वे नष्ट करना नहीं चाहते। प्रत्येक श्यामी सुन्दर अक्षर लिखनेका विशेष अभ्यास करता है।

श्याममें रामाख्यान

महाभारतका प्रचार जावा-सुमात्रा तक दिखाई देता है, परन्तु रामायणका प्रचार उससे भी अधिक है। आज भी थाई भाषामें रामाख्यान और रामकीर्त्ति ग्रन्थ विद्यमान हैं। श्याम देशमें बालकोंकी प्रारम्भिक शिक्षा भारतीय गुरुकुलोंके समान विहारोंमें निःशुल्क दी जाती है। अपने घरमें प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करना श्यामी लोग हीनताका द्योतक मानते हैं।

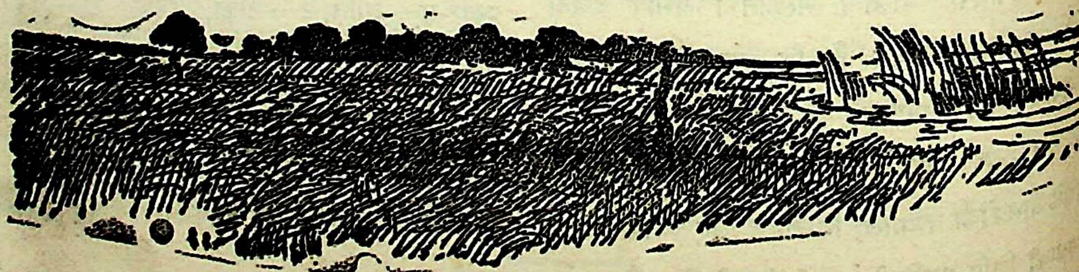
यह भारतीय संस्कृतिके विशाल चित्रका एक छो[टा] भाग है। आज कितने विद्यार्थियों एवं अध्यापकोंने भा[रतीय] संस्कृतिकी अगाधता और विस्तारकी ओर ध्यान दिया है!

जो लिया उसे आत्मसात् कर लिया

श्यामके मानव वंश और भारतके मानव वंशमें [कोई] समानता नहीं है। इसी प्रकार शिल्प-कलामें भी कोई सम[ानता] दिखाई नहीं देती। श्यामने भारतीय संस्कृतिका जो कुछ ग्रहण किया, उसमें उन्होंने कुछ परिवर्तन कर उसे आत्म[सात्] कर लिया। श्याममें अयोध्या नगरी, सरयू नदी और [श्री] रामचन्द्र विद्यमान हैं। परन्तु इन्हें वहाँ कोई भारतीय [नहीं] समझता। वे इन्हें श्यामीय ही मानते हैं। वे तो यह मानने को तैयार नहीं कि इन्हें उन्होंने भारतसे लिया है।

केवल वे लोग, जिन्होंने अंगरेजी या फ्रेंच भाषा [द्वारा] संस्कृतका तुलनात्मक अध्ययन किया है, भारतीयोंके [ऋणी] मानते हैं।

हमारे देशमें विदेशी संस्कृतिसे कुछ वस्तु ग्रहण की है, परन्तु हम उन्हें इतना पवित्र मानते हैं कि उनमें लेश[मात्र] परिवर्तनको भी सहन नहीं कर सकते। मेरी सम्मतिमें [श्यामी] लोगोंने बहुत उत्तम कार्य किया है कि उन्होंने जो वस्तु [ग्रहण की], उसे आत्मसात् कर लिया। उन्होंने हमसे राम[की] कल्पना ली, परन्तु उनकी रचना हमारी कल्पनासे भिन्न [है।] प्रभु रामचन्द्रकी कथा भी हमारी कथासे भिन्न है। [श्यामी] लोगोंने भारतीय संस्कृत साहित्य आदिको ग्रहणकर [उसमें] क्या-क्या परिवर्तन किया है, यह भी अध्ययन [का] विषय है।



कहानी—

अमिट याद

चारुचन्द्र झा

उस दिन पूर्णिमाका चाँद दूर क्षितिजके पास वातायानमें मुस्करा रहा था। गंगाकी लहरें ऊपर उठ-उठकर प्रतिक्षण उसकी आरती उतार लेना चाहती थीं और मादक पवन चतुर्दिक प्रणयका सुगन्ध बिखेर रहा था, परिमलको अपनी काया-रथपर बैठकर दूर-दूर तक दे आनेकी नशामें उसकी चंचल और उच्छृङ्खल चालके डरसे धूल-धक्कड़ दूर भागते जा रहे थे और पतली-पतली डालियाँ इस क़दर काँप रही थीं, जैसे अब उसके प्राण उसकी दौड़में विलीन हो जायँगे।

मैं घाटसे अपनी कुटियाकी ओर लौटा आ रहा था, क्योंकि उज्ज्वल चन्द्र काफ़ी सीधा हो चुका था और मल्लाहों ने नाव छोड़कर अपनी कुटियामें स्थान ले लिया था। उस समय न तो कोई मलार गानेवाला था और न विरहा। पक्षी-गण भी, इसीलिये उनका स्वर सुनायी नहीं पड़ता कि शायद अपने नीड़ोंमें सो गये थे। मैं चला आ रहा था बिना कुछ सोचे, शायद तेज़ीसे।

लेकिन मेरी गमन-साधना तो तब टूटी, जब किसीने अस्पष्ट स्वरसे मुझे पुकारा—बाबूजी, पानी!

मैं समीप गया। उस समय मेरे मनमें भय और कर्त्तव्य—दोनों ही अदम्य रूपसे खेल रहे थे। "न जाने कौन सा दुर्भाग्य मेरी ओर बार-बार निहार रहा है"—मैंने सोचा, किन्तु मेरे चेतनाहीन पैर उस ओर बढ़ते ही गये और जब मैं आवाजके काफ़ी समीप आ गया, तो वही वाणी पुनः फूट पड़ी 'बाबूजी'... पा...नी! उस समय हवा काफ़ी जोरसे बहने लगी थी और उसके झोंके हम दोनोंके बीच धूलोंका पर्वत-सदृश आकार खड़ा कर देते। तब मैं उस लाशको निहारनेमें पूरा असमर्थ हो जाता।

'पानी' शब्दकी भावना मेरे मानसमें उठी कि मैं घाटकी ओर बढ़ गया। उस समय गंगा भी अपनी उत्ताल तरंगोंके साथ इस क़दर नाच रही थी जैसे मानवके दृश्य समुद्रमें मिट जानेकी भविष्य-दुर्दशा वह भी भूल गयी हो। सहमे पैरों मैं पानीमें उतरा और अपनी धोतीको जलमें भिगोकर लौट आया, पुनः उसी शवकी ओर।

पानी देकर मैंने घाटकी झोपड़ीमें सोते तहसीलदारोंको पुकारा और देखते-ही-देखते वहाँ एक समुदाय-सा एकत्रित हो गया।

मैंने देखा, एक नारी मूर्च्छितावस्थामें लेटी थी। पानी पीनेके बाद पुनः उसकी चेतना लुप्त हो चुकी थी। उस धूमिल चाँदनीमें बिना परखे ही उसे मैंने अपनी कुटिया उठा लाया।

कर्त्तव्य कर्त्तव्य है; मानवकी विशुद्ध शारीरिक चेतना कर्त्तव्यकी ओर बढ़ ही जाया करती है। हाँ, अगर किसीकी इच्छाएँ विवेक और कर्त्तव्यपरायणताके परे होती हैं, तो भले कर्त्तव्यमुखी चेतना प्रायः मुकर जाया करती है। और आजकी दुनियामें ऐसे मानव ही देखनेको अधिक मिलते हैं। किन्तु उस समय मेरी आत्मा कर्त्तव्य-पथसे विमुख नहीं हो सकी।

× × ×

मेरी कुटिया प्रकृतिके विशुद्ध आंचलमें गंगाके किनारे स्थित थी, जिसके आगे एक छोटी-सी फुलवारी और एक कच्चा कुआँ था। अरुण प्रायः मेरे साथ रहा करता था।

प्रातः जब उसकी आँखें खुलीं और सूर्यकी प्रतिमाने मानवको विलोकनेकी क्षमता प्रसारित की, तो मेरा मानव सामने चम्पाको देख विह्वल हो उठा। मैंने सोचा, "चम्पा कैसे उस रूपमें मिल पाती मुझे? घरकी विपुल सम्पत्ति विशाल अट्टालिका, बड़ी जमींदारी और भीषण प्रभुत्वकी अधिकारिणी आज उस रूपमें कैसे मिल सकी? हा भगवान्! कालकी

अनन्त गतिका ऐसा पटाक्षेप क्या तुम्हारी ही महिमाके कारण होता है ? तब तो तुम भी बड़े अधर्मी हो धर्माधीश ! क्या सोचकर ऐसी दुनियाका निर्माण तुमने किया, मेरे देव ! सुना था, सुख-दुःखकी भीषण तरंगोंका निर्माणकर तुम निरन्तर खेला करते हो ; पर वैसा भी तेरा क्या खेल, जिसकी सजावटके लिए आँसू भी चाहिए ही ?"

अचानक उसने पानीकी पुनर्याचना की। सुराहीसे जल मिट्टीके गिलासमें लेकर मैंने उसे पिलाया। लेकिन पानी पीनेके बाद वह भी मौन नहीं रह सकी। उसकी पारखी-शक्ति क्षण-भरमें ही मुझे पहचान गई और कपोलोंपर ढुड़कते आँसूको पोंछते हुए उसने पुकारा 'रत्नगीर !'

मैं पास आ गया।

"तुम यहाँ क्या करते हो रत्न ?" पूछा उसने।

"यहीं कुछ ज्ञान-पिपासुओंको शिक्षा दिया करता हूँ, चम्पा !"

उसकी आँखें झेंप गयीं।

"लेकिन तुम्हारी यह......" मेरा प्रश्न था।

"सब सुनोगे रत्नगीर ! लेकिन एक बार क्षमा कर दो।

"क्षमा ? कैसी बात कर रही हो चम्पे !

"हूँ ! कैसी बात कर रही हूँ। मैं काफ़ी होशमें हूँ रत्न ! और जबतक तुम एक बार क्षमा नहीं कर दोगे, तबतक होशमें ही रहूँगी। मैंने तुम्हारी आत्माके साथ भारी खिलवाड़ किया था, रत्न ! उस दिनकी बातें याद हैं, जब तुम काननमें मुझसे प्रणय-दानकी याचना करने गये थे और मैं पत्थर बनकर...।"

मैं अतीतका शब्दचित्र निहारते-निहारते हतचेत-सा हो गया था, वह मेरे जीवन-निर्माणकी बातें थीं, जिसमें नियतिका वज्राघात भी सन्निहित था। भला विप्लव और विनाशकी बातोंके समक्ष कौन-सा हृदय लेकर मैं अक्षुण्ण रहता ? उसकी वाक्-शृङ्खलाको बीचमें ही काटकर मैंने कहा—चम्पे ! तुम भी कैसी बातें करने लगी ? क्या एक बार भी मेरे लिये तुम उन्हें भूल नहीं जाओगी ?

"भूल जाऊँगी और सदाके लिए भूल जाऊँगी, लेकिन इस जिन्दगीमें एक बार दुहरा लेने भरकी अनुमति दो रत्न ! क्या मालूम फिर जीवनमें ऐसा स्वर्णावसर मिले नहीं।"

हृदय थामकर मैंने कहा—'चम्पा !'

लेकिन वह कहती गई, रुकी नहीं—

"हाँ, मैं पत्थर बनकर तुमसे पेश आई थी। मैं... था—रत्नगीर ! तुम मेरे अपने अवश्य हो, पर आज... अपनत्वकी सारी भावनाएँ समुद्रकी लहरोंमें बह जाते... उस समय शायद तुम बेहोशीकी ओर बढ़ रहे थे, ... फिर भी मैं अपना हृदय कड़ा करके कहती गयी—रत्न... मैं तुम्हारी नहीं हो सकती ; क्योंकि मैं अपनी नहीं हूँ। अपने माता-पिताकी हूँ ; वे अगर चाहें तो मुझे वृक्ष... नियोंसे बन्धनयुक्त कर सकते हैं। वे चाहें तो मैं पत्थरसे... अस्वीकार नहीं कर सकती ; और यह सब सुन तुम मूर्छित होकर उस शिलाखण्डपर गिर पड़े थे, जिसकी चोटका ... अब भी तुम्हारे कपाल-प्रदेशपर एक 'अमिट याद' ... प्रदर्शित हो रहा है।"

और यह बोलते-बोलते चम्पा पुनः हतचेत हो गई।

मैंने सुराहीसे पानी पुनः उडेला और कुछ बूँद ... नीबूके रस डाल उसके मुँहमें डाल दिया। उसकी ... काफ़ी चिन्ताजनक थी, तेजीसे दम आ रहे थे। छाती निर... फूलती जा रही थी, आँखें कड़ी हो रही थीं और चेहरा रक्त... सा उजला होता जा रहा था। कुछ देरके निरन्तर उपचार... परान्त जब उसकी आँखें खुलीं, तो उसने पुनः पुकारा "... पास आकर बैठो ! आज तुमसे बहुत-सी बातें कहनी हैं न !"

मेरे पैर आप-ही-आप उस ओर बढ़ गये।

वह कहती गयी—

"लेकिन रत्न ! तुम्हें इस भाँति फटकारनेका पुरस्कार मुझे भी अच्छा मिला ; जिससे मैं खुश ही हूँ। बाबा ... शादी तुमसे इसलिये नहीं करना चाहते थे कि तुम बचपनसे ही शिक्षण कार्यके इच्छुक रहे हो और दारिद्र्यके पालनेमें डोलकर ही तुम पले हो। लेकिन बाबा तो मेरे लिए ... ऐश्वर्यवान लड़का खोजना चाहते थे और इसी कारण ...

ज़िन्दगी तुम्हें नहीं सौंपी गई। फलस्वरूप मेरी शादी जिससे की गई उसे तो तुम जानते ही हो।

लेकिन मेरे नये पतिदेव अजीब निकले न! क्या जाने मैं उन्हें क्यों नहीं भाने लगी। मैंने लाख कोशिश की कि वे मेरे आराध्यदेव बने रहें, मैं उन्हें अपनी अन्तरात्माका स्वामी अभी भी मान रही हूँ, पर न जाने क्यों मुझे उन्होंने उसी दिन ठुकरा दिया, जिस दिन उनकी आज्ञानुसार मैंने शराब नहीं पीया; उनके शराबी मित्रोंसे हँस-हँसकर बातें नहीं कीं और उनके कुकर्मोंका भागी बनना अस्वीकार कर दिया। मैं उनकी आँखोंका काँटा बन गई और वे मेरे समीप न आने लगे। रात-दिन नगरकी सुन्दरी कमलाके दुमंजिलेपर रास-रंग होने लगा और रुपये पानीकी तरह बहाये जाने लगे। पर मुझे इससे क्या! मैं उनके नामपर ही जीने लगी। पर पापका घड़ा अधिक दिन नहीं टिकता रत्न!

"एक दिन अपव्ययकी कहानी उनके पिताजी तक पहुँची और कोषकी चाभी उन्होंने अपने पास ले ली। फिर व्ययकी धारा उनकी घड़ी और साइकिलपर बहने लगी। पर अतृप्त प्यास घासपर आच्छादित ओस-कणोंको चाटनेसे नहीं बुझती। तब उनकी आँखें मेरे आभूषणोंपर पड़ीं। वे मेरे पास आकर अपनी मधुर-मधुर बातोंसे अपना काम बनानेकी इच्छा करने लगे। परन्तु जब अपनी सिरोहीसे अपना सिर काटना मैंने अस्वीकार कर दिया, तो कल फ्लिर खेलनेके बहाने गंगाकी धारामें......"

और अचानक उसे भयानक हिचकी उठी। आह, मेरी चम्पे! छातीसे खूनके उतने बड़े लोथड़े। उसकी मौत हो गई, दम निकल आये, उसकी आत्मा चली गई; अब वह इस दुनियामें नहीं है। काश, अगर दयालु लहरोंने कृपाकर उसे किनारेपर न ला दिया होता, तो मौत-दर्शनका भी भागी समुद्रकी फेनिल लहरें ही होतीं।

अरुण बाहर गा रहा था—

"यह मानव जीवन!

बरबस अपूर्ण है अपूर्ण।

इसके रास्ते जग-जीवनके दिनमाण हैं और 'अपनो' का नेह जोड़ मोहकी पथशालामें यह विश्राम लिया करता है।

भगवन्! लेकिन अच्छी पथशाला और अच्छा पथ सपना ही है; क्यों?

क्या तुम इतने अयोग्य हो कि पथ भी नहीं बाँट पाते?"

और हवा भी उसी भाँति बह रही थी, भौंरे गा रहे थे, कलियाँ हँस रही थीं, वातायन स्वरयुक्त था।

तत्वज्ञानका विषय

श्री राधाकान्त शुक्ल

तत्वज्ञानका विषय बड़ा ही गहन, नीरस और शुष्क है फिर भी भारतीय आर्य-संसारकी अन्य जातियोंकी अपेक्षा तत्वज्ञानमें अग्रणी रहे हैं। इतना ही नहीं, जितने प्रकारके तत्वज्ञान हैं उनमें अग्रणी वेदान्तज्ञानके भी वह अग्रणी रहे हैं। भारतमें तत्वज्ञानकी चर्चा अति प्राचीनकालसे होती चली आ रही है। ऋगवेदमें भी इसकी चर्चा की गई है। जब मनुष्य प्राणि-जगतके रहस्यका विचार करने लगता है, तब उसका मन जो छलाँगें भर सकता है, और बुद्धि-ज्ञानसे जिन-जिन सिद्धान्तोंकी रूप-रेखा खींच सकता है, उन सारे-के-सारे सिद्धान्तोंका वर्णन ऋगवेदके सूक्तोंमें किया गया है। वेदके अन्तिम भाग उपनिषद् हैं। उनमें मनुष्य और सृष्टिके सम्बन्धका सिद्धान्त, जिसे तत्वज्ञानके नामसे पुकारा गया है, विवेचन बहुत ही सुन्दर रूपमें किया गया है।

भगवत् गीता, अनुगीता, महाभारतके शान्तिपर्वका मोक्ष-धर्म, उद्योगपर्व, वनपर्व आदिमें तत्वज्ञानका वर्णन आया है। महाभारतमें आर्योंके समस्त तत्वज्ञानका समावेश तथा उल्लेख किया गया है। श्री मद्भागवतके भी विभिन्न स्कन्धोंमें तत्वज्ञान-सम्बन्धी वर्णन किया गया है।

संसारमें दो भिन्न वर्गोंके प्राणी हैं। एक ईश्वरवादी और दूसरे निरीश्वरवादी हैं। ईश्वरवादियोंका विश्वास है कि सृष्टिकी रचना ईश्वरसे हुई और वही आदि पुरुष है, पर निरीश्वरवादी लोग ईश्वर अथवा आदिपुरुषको नहीं मानते। उनका कथन है कि आदिमें पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—चार तत्व वर्त्तमान थे, उन्हींके समिश्रणसे समस्त जगतकी उत्पत्ति हुई है। बादमें आकाश तत्वका भी पता लगाया गया और यह सिद्धान्त मान लिया गया कि इन्हीं पाँच महाभूतोंसे समस्त सृष्टिकी रचना हुई। ईश्वरकी महिमामें विश्वास करनेवालोंको आस्तिक तथा अविश्वासियोंको नास्तिक नामसे पुकारा जाता है।

ईश्वरमें विश्वास रखनेवाले तत्वज्ञानी पुरुषोंने तर्क किया कि आखिर पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायुकी उत्पत्ति जब आकाशसे हुई तो फिर आकाशकी उत्पत्तिका कारण तथा कर्त्ता कौन है? इसलिये वह और आगे बढ़े और उन्होंने अपनी कल्पना की और सिद्धान्तोंका निरूपण किया।

संसारमें तीन प्रकारके पदार्थ हमारी दृष्टिके सामने आते हैं। एक तो पृथ्वीके समान ठोस, दूसरे जलके समान द्रव और तीसरे वायुके समान अदृश्य। इनके अतिरिक्त उष्णता का ज्ञान भी सबको है, इसलिये अग्नि तत्वका भान सबको हो जाता है। आकाश तत्वकी खोजप्राचीन आर्योंने की, जिसे आधुनिक वैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे हैं। अनुभवकी बात है कि ठोस पदार्थ उष्णतासे द्रव बन जाते हैं और पतले पदार्थ अधिक उष्णतासे वायु बन जाते हैं—इसका अर्थ यही निकलता है कि पृथ्वी जल-रूप थी और जल वायु-रूप था। इसलिये जल भी किसी-न-किसी तत्वसे निकला हुआ होना चाहिये। वेदान्ती तत्वज्ञानियोंने अपनी बुद्धिमत्तासे पता लगाया और उस स्थानपर पहुँचे तथा सिद्धान्त बनाया कि समस्त सृष्टि एक ही मूल-तत्व अर्थात् आकाशसे उत्पन्न है। उसके पश्चात् उन्होंने यह भी पता लगाया कि आकाश की उत्पत्ति भी परब्रह्मसे हुई है। उपनिषदोंमें स्पष्ट कहा गया है कि परमात्मासे आकाशकी उत्पत्ति हुई, आकाशसे वायुकी, वायुसे अग्निकी, अग्निसे जलकी और जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई। उपनिषदोंका यह भी मत है कि इन [illegible] लय विरुद्ध क्रमसे होगा अर्थात् पहले पृथ्वी, फिर जल [illegible] बाद अग्नि और अग्निके बाद वायुका अन्त होगा। [illegible] यह कि भारतीय विद्वानोंने विकासवाद और प्रत्याहार [illegible] ज्ञान बहुत पूर्व प्राप्त कर लिया था।

प्रत्येक प्राणीमें श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और [illegible] पाँच इन्द्रियाँ वर्त्तमान हैं। इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस [illegible] गन्ध—ये पाँच गुण हैं। इन गुणोंके अनुसार प्रत्येक [illegible] धर्म है। पृथ्वीका धर्म गन्ध, जलका धर्म रस, [illegible] आनन्द जिह्वासे मिलता है, अग्निका धर्म रूप, जो [illegible] दिखाई देता है और वायुका धर्म स्पर्श, जो त्वचासे ग्रहण [illegible] अब शब्द अथवा श्रोत्रसे ग्रहण विशिष्ट धर्म जिस तत्व [illegible] आखिर वह भी तो होना चाहिये। इस प्रकार आकाश [illegible] एक तत्व माना गया। इस प्रकार पाँच तत्व, पाँच इ[illegible] और पाँच गुण हुए। इन पाँच तत्वोंमें एककी अपेक्षा [illegible] अधिक बढ़ते हुए गुण वर्त्तमान हैं। पृथ्वीमें पाँचों [illegible] शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। इसी प्रकार [illegible] चार, अग्निमें तीन, वायुमें दो और आकाशमें एक गुण है।

सांख्योंके चौबीस तत्व

सांख्यमतके सिद्धान्तके कर्त्ता कपिल भगवान् थे। [illegible] योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने कहा है :—

> यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
> न तदस्ति विना यत्-यान्मया भूतं चराचरम्॥
>
> (गीता, अध्याय १०।

हे अर्जुन, जो सब भूतोंकी उत्पत्तिका कारण है वह [illegible] ही हूँ; क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं [illegible] जो मुझसे रहित हो। इसलिये सब कुछ मेरा ही स्वरूप है।

इसी दसवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है :—

> अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
> गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥
>
> (गीता, अध्याय १०।२६)

सब वृक्षोंमें पीपलका वृक्ष और देव-ऋषियोंमें नारद [illegible] तथा गन्धर्वोंमें चित्ररथ और सिद्धोंमें कपिलमुनि हूँ।

इस प्रकार भगवान् कपिल, जो ईश्वरके अवतार माने जाते हैं, कहते हैं :—

आत्मदर्शन रूप ज्ञान ही पुरुषके मोक्षका कारण है और वही उसकी अहंकार रूप हृदयग्रन्थिका छेदन करनेवाला है। वह आत्मा ही पुरुष है। वह अनादि, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, अन्तःकरणमें स्फुरित होनेवाला और स्वयम् प्रकाश है। उस सर्वव्यापक पुरुषने अपने पास स्वतः ही प्राप्त हुई अव्यक्त और त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको लीलासे ही स्वीकार कर रखा है। इस प्रकृतिको अपने सत्वादि गुणोंसे उन्हींके अनुरूप तरह-तरह प्रजा रचते देख वह तत्काल उसके ज्ञानको आच्छादित करनेवाली आवरणशक्तिके द्वारा उसीमें मोहित हो गया, अपने स्वरूपको भूल गया। इस प्रकार प्रकृतिमें अपनेपनका अध्याय हो जानेसे पुरुष-प्रकृतिके द्वारा किये जानेवाले कर्मोंमें अपना कर्तृत्व मान लेता है। इस कर्तृत्वाभिमानसे ही अकर्त्ता, स्वाधीन, साक्षी और आनन्दस्वरूप पुरुषको कर्मोंका बन्धन, भोगके विषयमें परतन्त्रता तथा जन्म-मृत्युरूप दुःख परम्परा प्राप्त होती है। कार्यरूप शरीर, कारणरूप इन्द्रिय तथा कर्त्तारूप इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओंमें पुरुष जो अपनेपनका आरोप कर लेता है, उसमें प्रकृति ही कारण है तथा वास्तवमें प्रकृतिसे परे होकर भी प्रकृतिस्थ हो रहा है, उस पुरुषको सुख-दुःखोंके भोगनेमें कारण मानते हैं। तात्पर्य यह कि यद्यपि भोक्तृत्व और कार्यत्वादि सभी अहंकारगत ही हैं, तथापि विकार जड़में ही होता है, इस कार्यत्वादिमें उपाधि प्रधान है और भोक्तृत्व चेतनमें ही रह सकता है, इसलिये उसमें उपहितकी प्रधानता मानी गई है। (श्रीमद्भागवत अ० २६।१-८)

प्रकृति त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य और कार्य-कारणरूप है तथा स्वयं निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्मोंका आश्रय है। यही प्रधान नामक तत्व है। पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रा, चार अन्तःकरण और दस इन्द्रिय—इन चौबीस तत्वों को सांख्य विद्वान् प्रकृतिका कार्यरूप ब्रह्म मानते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच महाभूत हैं; गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच तन्मात्राएँ हैं; श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और पायु—ये दस इन्द्रियाँ हैं तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चारके रूपमें एक ही अन्तःकरण अपनी संकल्प, निश्चय, चिन्ता और अभिमानरूप चार प्रकारकी वृत्तियोंसे लक्षित होता है। इसलिये तत्वज्ञानी पुरुषोंने सगुण ब्रह्मके स्थानमें इन चौबीस तत्वोंकी संख्या बतलाई है। इनके अतिरिक्त कालको पचीसवाँ तत्व माना जाता है। कुछ विद्वानोंका मत है कि पुरुषरूप भगवान् ही पचीसवाँ तत्व है। जो सत्वगुण, स्वच्छ, शान्त और भगवान्‌की उपलब्धिका स्थान-रूप चित्त है, वही महत्तत्व है।

ईश्वरवादी सिद्धान्त

ईश्वरवादी लोगोंका कथन है कि मायापति भगवान्‌की जब एकसे अधिक होनेकी इच्छा हुई, तो उन्होंने अपनेमें स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार कर लिया। कालने तीनों गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया। स्वभावने उनका रूपान्तर कर दिया और कर्मने महत्तत्वको जन्म दिया। फिर रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धिपर महत्तत्वमें जो विकार हुआ, उससे ज्ञान, क्रिया और द्रव्यरूप तमःप्रधान अहंकार बना। यह अहंकार भी विकारको प्राप्त होकर तीन प्रकारका वैकारिक, तैजस और तामस हो गया। जो क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्ति प्रधान हैं। तामस अहंकारमें विकार होनेसे आकाशकी उत्पत्ति हुई। आकाशके विकारसे वायुकी उत्पत्ति हुई। काल, कर्म और स्वभावसे वायुमें भी विकार हुआ, जिससे तेज (अग्नि) उत्पत्ति हुई। तेजके विकारसे जलकी उत्पत्ति हुई। जलके विकारसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई। वैकारिक अहंकारसे मनकी और इन्द्रियोंके दस अधिष्ठातृ देवताओंकी भी उत्पत्ति हुई—ये दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति हैं। तैजस अहंकारके विकारसे श्रोत्र, त्वचा, घ्राण, नेत्र और जिह्वा पाँच ज्ञानेन्द्रियों और वाक्, हस्त, पाद, मूत्रेन्द्रिय और गुदा पाँच कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई। इसीके साथ-ही-साथ ज्ञानशक्तिरूप बुद्धि और क्रियाशक्तिरूप प्राण भी तैजस अहंकारसे ही उत्पन्न हुए।

वेदान्तिक सिद्धान्त

तत्वज्ञानी लोग तत्वोंकी संख्या अलग-अलग निर्धारित

करते हैं। कुछ लोग छह, कुछ सात, कुछ चार, कुछ नौ, कुछ ग्यारह, कुछ सत्रह, कुछ पच्चीस, कुछ छब्बीस और कुछ अट्ठाइस बतलाते हैं। इस प्रकार अधिक-से-अधिक संख्या २८ की होती है। सत्व, रज, तम—तीन गुण; पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी आदितत्व; श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, नासिका और रसना—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ—पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ज्ञानेन्द्रियोंके पाँच विषय आदि सभी मिलकर अट्ठाइस होते हैं।

सृष्टिके आरम्भमें कार्य (ग्यारह इन्द्रियाँ और पंचभू) और कारण (महत्तत्व आदि) के रूपमें प्रकृति रहती है। वही सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी सहायतासे जगतकी स्थिति, उत्पत्ति और संहार-सम्बन्धी अवस्थाएँ धारण करती हैं। अव्यक्त पुरुष तो केवल साक्षीमात्र बना रहता है। महत्तत्व आदि कारणतत्व पुरुषकी ईक्षण शक्तिसे बल प्राप्त करके विकृतिकी ओर अग्रसर होते हैं तथा प्रकृतिके आश्रयसे एक दूसरेके सहयोगसे इस ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं।

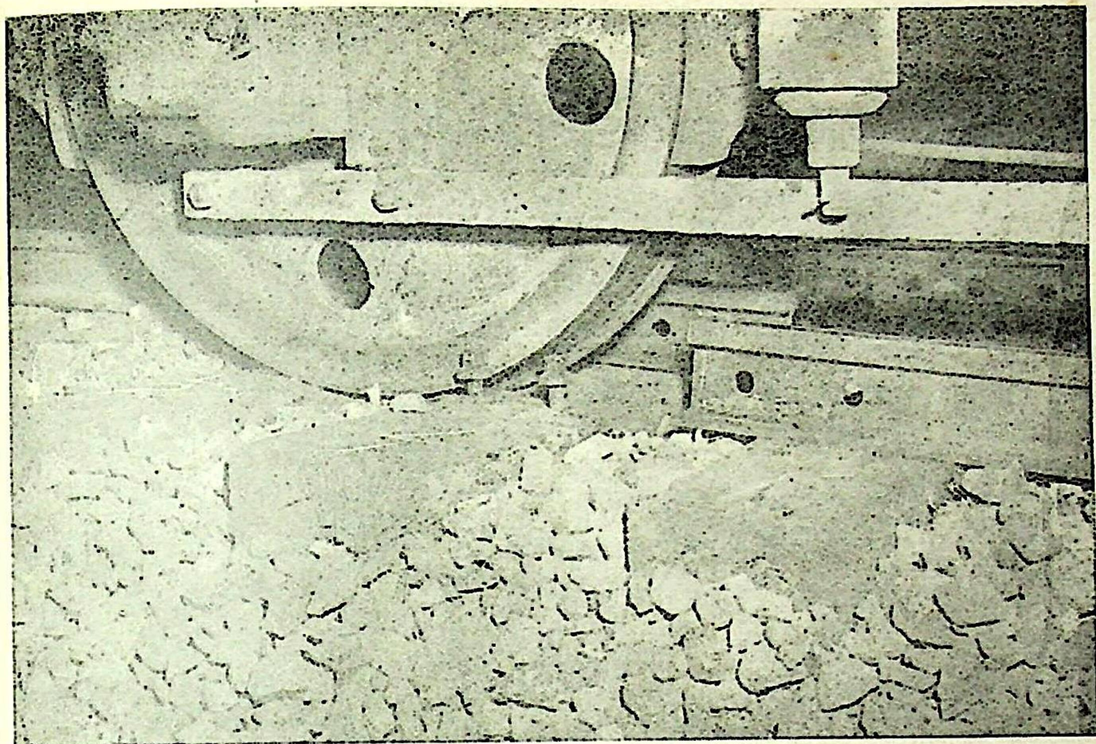
मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥
सत्त्वं रजस्तमइति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।

(गीता, अध्याय १४।३,४,५)

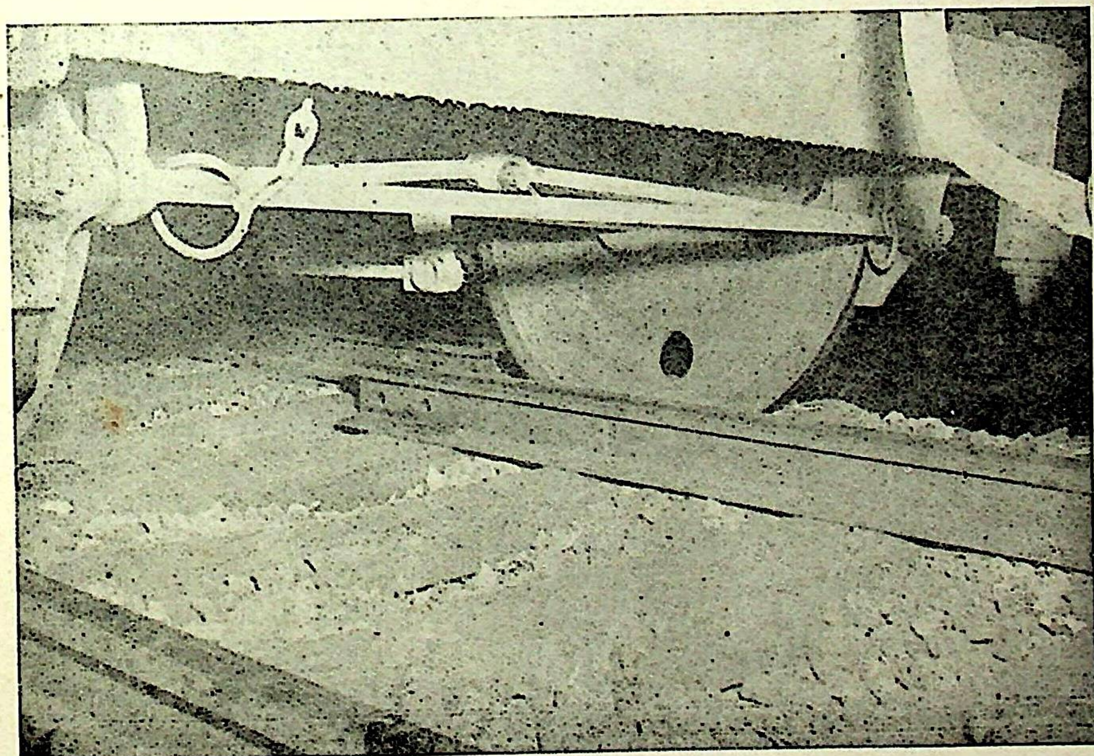
श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन, मेरी महत् ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया सम्पूर्ण भूतोंकी योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है और मैं उस योनिमें चेतनरूप बीजको स्थापन करता हूँ। उस जड़-चेतनके संयोगसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है। तथा नाना प्रकारकी सब योनियोंमें जितनी मूर्त्तियाँ उत्पन्न होती हैं, उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भ धारण करनेवाली माता है और मैं बीजको स्थापन करनेवाला पिता हूँ। सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ऐसे यह प्रकृतिसे उत्पन्न हुए तीनों गुण इस अविनाशी जीवात्माको बाँधते हैं।

विश्वके तत्वज्ञानी जो तत्वोंकी संख्या केवल चार करते हैं, उनका मत है कि समस्त संसारमें जितने पदार्थ हैं, सबकी उत्पत्ति पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुसे है। वस्तुओंका समावेश इन्हींमें कर लेते हैं। पाँच तत्व माननेवाले तत्वज्ञानी आकाशको भी सम्मिलित कर लेते हैं और कहते हैं कि आकाशसे ही अन्य तत्वोंकी उत्पत्ति हुई। जो लोग केवल छह तत्व स्वीकार करते हैं, वे कहते हैं कि पाँच भूत और छठा परमपुरुष परमात्मा है। उनका कथन है कि परमात्मा अपने बनाये हुए पंचभूतोंसे युक्त होकर देह आदि सृष्टिकी रचना करता है और उनमें जीवरूपसे प्रवेश करता है। इस मतके अनुसार जीवका परमात्मामें और देह आदिका पंच महाभूतोंमें समावेश हो जाता है। तत्वोंकी संख्या सात माननेवालोंका कहना है कि पाँच महाभूत, परमात्मा और जीव सात हैं। परमात्मा साक्षी और जीव साक्ष्य जगत्का अधिष्ठान है। जो लोग नौ तत्व मानते हैं, वे आकाश आदि पाँच भूत और मन, बुद्धि, अहंकार और पुरुष नौ तत्वोंको मानते हैं। ग्यारह संख्या माननेवाले पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और इनके अतिरिक्त एक आत्माका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। तेरह तत्व माननेवाले कहते हैं कि पाँच आकाशादि पंचभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक मन, जीवात्मा और परमात्मा ये तेरह तत्व हैं। सोलह तत्व स्वीकार करनेवाले पाँचभूत, पाँच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और एक आत्मा मानते हैं। सत्रह संख्या माननेवाले विद्वानोंकी गणना भी इसी प्रकार है, अन्तर केवल इतना है कि वे मनको आत्मासे भिन्न मानते हैं।

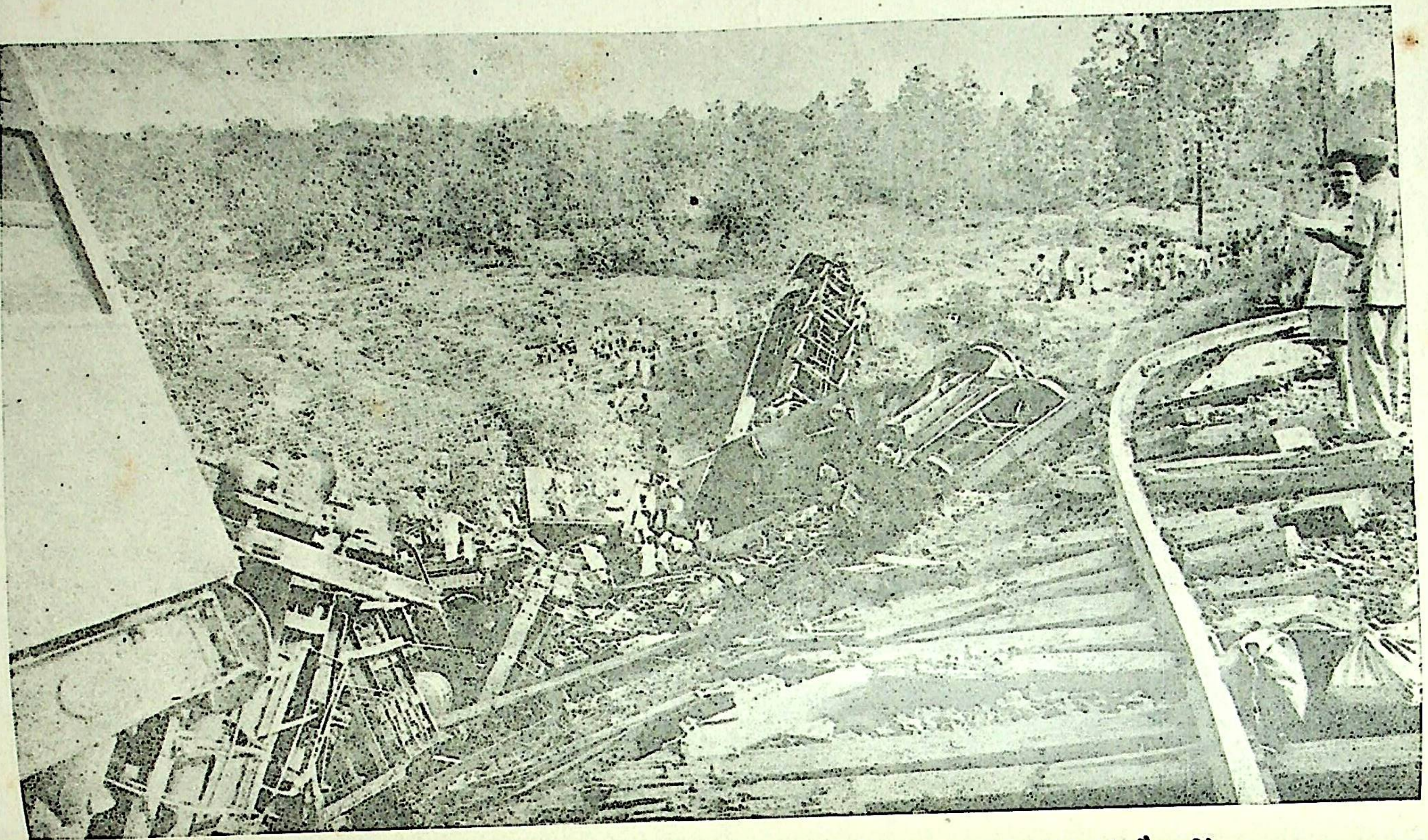
इस प्रकार तत्वज्ञानी महापुरुषोंने तत्वोंकी संख्या भिन्न बतलाई है और सभीका कथन उचित है, कोई भी युक्तहीन नहीं है। तत्वज्ञानी पुरुषोंको किसी भी मतमें बुराई नहीं दिखलाई पड़ती है, उनके लिए सब कुछ ठीक है। उनका आशय तो केवल इतना ही है कि तत्वोंको किसी भी दशामें प्राप्त करके परमपुरुष परमात्माकी प्राप्ति कर लेना अथवा परमशान्तिको पा लेना ही मुख्य ध्येय है।



चित्रमें रेलगाड़ीके उलटनेकी अवस्था—स्क्रूको ढीला किया हुआ, फिसबोल्टको खोलकर हटाया हुआ—साफ दिखाई पड़ती है।



इस लाइनमें रेल-बोल्ट भी टूटा है। रेल और पटरी भी जीर्णावस्थामें है। (आनन्दबाजारके सौजन्यसे)



साबोटाज ; रेल लाइनके स्लीपरों और पटरियोंसे लाइनच्युत इञ्जनका ध्वंसावशेष । (आनन्दबाजारके सौजन्यसे)

भगवान् श्रीकृष्णने एकादश अध्यायके बाईसवें श्लोकमें कहा है, "प्रकृतिसे महत्तत्व बनता है और महत्तत्वसे अहंकार उत्पन्न होता है। अहंकारके तीन भेद हैं—सात्विक, तामस और राजस। यह अहंकार ही अज्ञान और सृष्टिकी विविधताका मूल कारण है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है; उसका इन पदार्थोंसे न तो कोई सम्बन्ध है और न कोई विवादकी बात है। अस्ति-नास्ति (है-नहीं), सगुण-निर्गुण, भाव-अभाव, सत्य-मिथ्या, आदिरूपसे जितने भी वाद-विवाद हैं, सबका मूल कारण भेद-दृष्टि ही है। इसमें सन्देह नहीं कि इस विवादका कोई प्रयोजन नहीं है; यह सर्वथा व्यर्थ है; तथापि जो लोग मुझसे—अपने वास्तविक स्वरूपसे—विमुख हैं, वे इस विवादसे मुक्त नहीं हो सकते। तात्पर्य यह कि पुरुष और प्रकृतिमें महान् भेद होनेपर भी अज्ञानवश वह दिखाई नहीं देता। इनके विवेक और आत्मानुभूतिका उपाय यही है कि मनुष्य आत्मपरायण हो जाय।"

नास्तिक सिद्धान्त

निरीश्वरवादी सिद्धान्तको ही चारवाक मत कहा जाता है। इन लोगोंका मत है कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुसे ही समस्त सृष्टिकी रचना होती है और इन तत्वोंके विभिन्न विकारों तथा गुणोंसे ही सृष्टिकी विभिन्न वस्तुएँ तथा प्राणी उत्पन्न होते हैं। पर यदि सोचा जाय तो प्रश्न उठता है कि जब मनुष्यके शरीरसे प्राण-पखेरू उड़ जाता है, तो पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—चारों तत्व उसमें वर्त्तमान रहते हैं, पर उसमें चेतना नहीं होती। वह कर्म करनेके अयोग्य होता है। इससे सिद्ध है कि जीव अथवा प्राण इन चार वस्तुओंसे अवश्य ही कोई भिन्न पदार्थ है, जिसके वर्त्तमान रहनेपर चेतना शक्ति जाग्रत रहती है और अभावपर वह वस्तु अथवा प्राणी मृतक हो जाता है।

'मत्स्य'का ऐतिहासिक 'पाण्डुपौल'

प्रभुदत्त शर्मा 'पथिक'

वैसे तो मत्स्य प्रदेश बहुत प्राचीन कालसे ही अपने प्राकृतिक दृश्यों और ऐतिहासिक स्थलोंकी रमणीयता तथा महत्ताके कारण प्रसिद्ध रहा है। प्रकृतिकी आनन्ददायिनी अङ्कमें अरावलीके तुङ्ग शिखरोंसे आवृत इस प्रदेशमें ऐसे सुन्दर और चित्ताकर्षक दृश्य मिलते हैं, जिनको देखकर हृदयमें असीम आनन्दकी लहर दौड़ उठती है। प्रकृति नटीका जितना लावण्यमय रम्य रूप इन स्थलोंमें उन्मुक्त रूपसे फैला हुआ मिलता है, उतना सम्भवतः ही कहीं मिल सके। नारयणी नलदेश्वर, नीलकण्ड, अजबगढ़ इत्यादि कितने ही स्थल इस प्रदेशके अन्तर्गत ऐसे हैं, जिनमें यात्रियोंको प्रकृतिका रम्य रूप साकार-सा दृष्टिगोचर होता है! मार्गोंकी दुर्गमता तथा पहाड़ व वनोंकी सघनताके कारण यद्यपि इन स्थलोंका सौन्दर्य उपेक्षित पड़ा हुआ है, तथापि जो कोई प्रकृति-प्रेमी एक बार भी इन स्थलोंको अपने भौतिक चक्षुओंसे देख लेता है, वह फिर कभी भी उन दृश्योंकी रमणीयताको अपने हृदय-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकता। 'पाण्डुपौल' भी इन्हीं स्थलोंके अन्तर्गत, अलवर राज्यमें एक वह प्राकृतिक व ऐतिहासिक स्थल है, जो प्रकृति-प्रेमियों व यात्रा-जिज्ञासुओंके लिए सदैव एक अतृप्तिका कारण बना रहता है।

जिन लोगोंने थोड़ा-बहुत भी महाभारतका अध्ययन किया होगा, वे जानते हैं कि महाभारतके विराट पर्वमें एक स्थान पर ऐसा प्रसंग है कि यदि भारतवर्षमें किसी प्रदेशमें गुप्त-से-गुप्त स्थान मिल सकते हैं, तो वह प्रदेश 'मत्स्य प्रदेश' ही है (वर्त्तमान अलवर, भरतपुर, करौली, धौलपुर व जयपुरका कुछ भाग)। इसीलिये जब जुएकी शर्तके अनुसार पाण्डवोंको एक वर्ष अज्ञातवासमें रहना पड़ा, तो उन्होंने अपने आपको दुर्योधनकी सेनाओं व दूतोंसे सुरक्षित व अज्ञात रखनेके लिए इसी प्रदेशको अपना निवासस्थान चुना था। इस प्रदेशके

तत्कालीन राजा विराट्के यहाँ ही उन्होंने शरण पाई थी। इस राजाके नामपर आज भी अलवर और जयपुरकी सीमापर 'राठ' नामका एक शहर मिलता है। सम्भवतः यही विराट राजाकी राजधानी थी। पाण्डव लोग जब अपना अज्ञातवास समाप्तकर विराटनगरसे हस्तिनापुर लौटे, तब उन्हें मार्गोंकी असुविधाओंके कारण अलवर व जयपुरमें व्याप्त अरावलीकी श्रृङ्खलाओंमेंसे अपना मार्ग बनाते हुए निकलना पड़ा था। इन्हीं अरावली, श्रृङ्खलाओंमें, अलवर राज्यके अन्तर्गत 'पाण्डुपौल' भी एक स्थल है, जहाँपर जनश्रुतियोंके अनुसार पराक्रमी पाण्डवोंने अरावलीके एक तुङ्ग श्रृङ्गको विदीर्णकर अपना मार्ग बनाया था और कुछ समयके लिए वहाँपर निवास भी किया था।

यह प्राकृतिक सौन्दर्यका आगार 'पाण्डुपौल' अरावलीकी विश्रृङ्खल श्रृङ्खलाओंसे आवृत मत्स्यकी राजधानी अलवर नगरसे ३५ मीलकी दूरीपर दक्षिण-पूर्व दिशामें स्थित है। यहाँ जानेके लिए केवल दो ही साधन हैं। एक तो 'कार' अथवा 'बसें' तथा दूसरा मनुष्यके पैर। पाण्डुपौल पहुँचनेके लिए हमें अलवर शहरसे दक्षिणको आनेवाली सड़क पकड़नी होगी। यह सड़क पक्की है, और रात-दिन यातायातके साधनोंसे भरी रहती है। सड़कके दोनों ओर बंजर भूमि बहुत दूर तक दिखाई देती है। कहीं-कहीं सड़कके किनारे ही कुछ कच्चे घरोंके समूह भी मिलते हैं, जिनके इर्द-गिर्द कुछ हरे-भरे खेतोंके भी दर्शन हो जाते हैं। सड़कपर बहुत थोड़ी-थोड़ी दूरपर ही सुझाव हैं, किन्तु पेड़ोंकी सघनता कहीं भी नहीं मिलती। २१ मील चलनेके उपरान्त अब हम एक भीषण व जनशून्य जङ्गलके अन्दर पहुँच जायँगे। इस स्थलको 'सिरसका' कहते हैं, अथवा दूसरे शब्दोंमें 'शेरोंका घर' कहिये। यहाँके जङ्गलमें आप दिनमें भी अकेले चलनेका साहस नहीं कर सकते। चारों ओर पहाड़ोंपर पट्टे कटे हुए हैं। क़दम-क़दमपर 'ओदियाँ' (वह स्थान जहाँपर बैठकर राजा लोग शिकार करते हैं) बनी हुई हैं, जहाँपर अलवरके मृगयाव्यसनी भूतपूर्व अलवरेन्द्र शेरोंके शिकार किया करते थे। जंगल बड़ा बीहड़ है। यहाँ पर ही आपको अलवरनरेश द्वारा बनवाई गई एक बहुत सुन्दर कोठी मिलेगी, जिसमें भुस-भरे मरे हुए शेर, बघेरे, चीते इत्यादिका बहुत अच्छा संग्रह है। इस कोठी में आजकल एक-दो पुलिसके सिपाही तथा नौकर-चाकरोंके अ[तिरिक्त] और कोई नहीं रहता है। आगे यह सड़क थानागा[जी] होती हुई राजस्थानकी राजधानी जयपुरसे जा मिलती है।

'पाण्डुपौल' जानेके लिए अब आपको इस सड़कको छोड़कर बाँईं ओर मुड़ना होगा। यह सड़क कुछ-कुछ कंकरीली त[था] पक्की-सी ही है। इस मार्गको 'काली घाटी' कहते हैं। [यह] घाटी अलवर राज्यकी बड़ी प्रसिद्ध व दुर्गम घाटियोंमें से ए[क] है। यह १२ मील लम्बी है। इस घाटीकी दुर्गमताका अनु[मान] मान इसीसे लगाया जा सकता है कि ड्राइवर लोग इस घाटी[से] जानेकी अपेक्षा ६० मीलका चक्कर खाकर 'टहला' जाना अच्छा समझते हैं। इस घाटीसे सामान ले जाने, ले आनेवाले 'ट्रक' अपनी दरसे दुगुना किराया लेते हैं। शेर तथा जंगली जान[वर] चीते इत्यादिका मार्गमें पाया जाना तो एक साधारण बात है। सड़कके दोनों ओर पलास, बाँस, कटी[ली] झाड़ियाँ व अनेक प्रकारके जंगली पेड़ोंकी इतनी बहुलता है कि सारा पहाड़ बिलकुल अदृश्य है। घाटीके दोनों ओर पहाड़ बिलकुल सीधे हैं, जिनके कारण मध्याह्नके समय भी सन्ध्या ही रहती है। मार्ग सर्वथा शून्य ही मिलता है, कि[न्तु] इस ऐसी भयंकर व भीषण सघन घाटीमें भी कहीं-कहीं यहाँकी निवासिनी छोटी-छोटी बालाएँ भी अकेली पशुओंको चराती हुई दिखाई देती हैं। कहीं-कहींपर स्त्रियाँ अपनी पहाड़ी पोशाक पहने पहाड़के ढालोंपर घास काटती हुई मिलती हैं। निश्चय ही उनके साहस और व्यक्तित्व प्रशंसा[के] योग्य हैं। घाटीको पार करनेके लिए लगभग २०० फु[ट] ऊँचा-सीधा पहाड़ चढ़ना पड़ता है। पहाड़की चोटीपर चढ़कर नीचेका जो दृश्य दिखाई देता है, उसका तो वर्णन लेखनी[के] सामर्थ्यसे बाहर है। किन्तु 'पाण्डुपौल' पहुँचनेके लिए घाटी[के] मध्यसे ही आपको घाटीसे विदा लेनी पड़ेगी। इस घाटी[में] ६ मील पार करनेपर घाटीसे ४०° का कोण बनाते हुए क[च्चा] मार्ग लेना पड़ेगा। यह मार्ग पूर्णतः पहाड़ी व कच्चा है।

अब इस दुर्गम मार्गमें ही आपको यात्राका आनन्द

मिलेगा। रास्ता कच्चा होनेके कारण इतना खराब है कि वर्षा कालमें तो दलदल व चिकनाहटके कारण सवारियोंका आना-जाना भी बन्द हो जाता है। मार्ग इतना ऊँचा-नीचा है कि पग-पगपर बसें उछलती हैं। यदि सावधानीसे न चलाया जाय, तो ऐसे स्थल भी आते हैं, जहाँ पर अपने पथसे १ फुट भी इधर-उधर होते ही, बस सैकड़ों फुट नीचे गढ़ेमें गिरे और सबका सफाया हो जाय। कहींपर मार्गके दोनों ओर पेड़ इस तरह सटे मिलते हैं कि बड़ी कठिनाईसे उनको चीरते हुए चलना पड़ता है। दोनों ओरको पहाड़, जिसपर उगे हुए नारियल, पलास, बाँस, मकई तथा अन्य अनेकों ही प्रकारके पेड़ सूर्यकी चमकती हुई किरणोंमें मनको मोह लेते हैं। कहींपर पहाड़का कोई भाग इतना बाहर निकला हुआ है कि बहुत बचाकर चलाना पड़ता है, तो कहीं वह बिलकुल कन्दरा रूपमें परिवर्तित हो गया है। बस कभी तो पहाड़की चोटीपर चढ़ती हुई, मालूम देती है और कभी एकदम कूएँके पेंदेमें गिरती हुई-सी। बीच-बीचमें ऐसे दचके (Jerks) लगते हैं कि कभी किसीका सर फूटता है, तो कभी किसी बातूनकी जीभ कटती है।

इस प्रकार ६ मीलका दुर्गम पथ पार कर अब आप पाण्डु-पौलकी तलहटीमें आ पहुँचे। यहाँसे पाण्डुपौलके मन्दिर व 'दह'के लिए घाटीकी ऊँची चढ़ाई प्रारम्भ होती है। यहाँसे आपको पैदल चलना पड़ेगा, क्योंकि रास्ता बेहद खराब है। वैसे तो मोटर गाड़ियाँ उसपर भी जाती ही हैं। अभी पाण्डु-पौलकी 'दह', जो कि यात्रियोंका आकर्षण है, यहाँसे तीन मील दूर है। अब आप ऊपर चढ़ियेगा। घाटीकी उँचाई धीरे-धीरे बढ़ती है और गोल चक्करमें आपको सड़कपर चलना पड़ेगा। यहाँपर ही आपको पानीका एक नाला बहता हुआ मिलेगा। भीषण वर्षामें तो इस नालेका पानी, जो आपकी सड़कके बाँई ओर बह रहा है, इतना बढ़ जाता है कि आपकी सड़क इसीमें डूब जाती है। गर्मीमें इसका पानी कम हो जाता है। यह सड़क पहाड़का हृदय चीरकर बनाई गई है। दाँई ओरका पहाड़ बिलकुल खड़ा है (Steep), जिसकी ऊपरकी चोटी घाटीसे नहीं दिखाई देती। यहाँके शिला-खण्ड इस प्रकार निकल रहे हैं, जो ऐसे मालूम देते हैं, मानों वे अभी धराशायी होने-वाले हैं। सड़कके बाँई ओर कलकल ध्वनि करता हुआ जल कभी शिलाओंपर से बहता है, तो कभी एक प्रपातका रूप धारण करता है। मानों जीवनके उत्थान-पतनको अपनी चेष्टाओंसे अभिव्यक्त कर रहा हो। बाँई ओर पहाड़पर फिर वृक्षोंकी बहुलता है, जिनमें नाना प्रकारके फूल-पत्तोंकी प्राकृतिक शोभा मनको मोह लेती है। ऐसा जान पड़ता है कि मानों प्रकृति नटी ही अपना अवगुण्ठन उतारकर एकान्तमें ध्यानस्थ होकर अपने प्रियतमको रिझानेके लिए नृत्य कर रही हो।

लगभग आधी अथवा कुछ मील भरसे कुछ अधिकको चढ़ाई चलनेके उपरान्त आपको बाँई ओर एक जलाशय-सा दिखाई देगा। इसे ही 'माकरूँदाकी दह' कहते हैं। यह प्रकृति-निर्मित जलाशय है। जल-प्रवाहके कारण यह स्थान काफ़ी गहरा है, लगभग १५ फुट चौड़ा तथा २० फुट लम्बा। चारों ओर बड़ी-बड़ी विशालकाय शिलाएँ पड़ी हैं, जिनपर बैठ कर लोग स्नान करते हैं। गहराईकी अधिकताके कारण लोग इसमें तैरते भी हैं। दहका जल बिलकुल स्वच्छ और शीतल है।

आगे फिर घाटीमें बढ़िये। यह उपत्यका इतनी रम्य तथा गहन है कि आगे बढ़नेको जी नहीं चाहता। स्थान-स्थानपर ऐसी गुप्त कन्दराएँ तथा गड्ढे मिलते हैं, जहाँपर आयु पर्यन्त मनुष्य छिपकर रह सकता है। इसे देखकर आपको विश्वास हो जायगा कि पाण्डव यहाँ अवश्य आये होंगे।

आधे घण्टेकी श्रमकणोत्पादक चढ़ाईके बाद आप इस उपत्यकाको पार करके एक समतल मैदानपर जा पहुँचेंगे, यह हनुमानजीका मन्दिर है। लगभग १०० वर्गगज क्षेत्रमें यह मन्दिर बना हुआ है। चारों ओर यात्रियोंके निवासके लिए 'तिबारे' बने हुए हैं। बीचमें हनुमानजीका एक छोटा-सा मन्दिर है। कहते हैं, इसकी स्थापना बाबा निर्भयदासने आजसे ३०० साल पहले की थी। मन्दिरकी दीवारें अभी दृढ़ हैं। इन हनुमानजीमें लोगोंकी बहुत श्रद्धा है, जो इसीसे जानी जा सकती है कि हजारोंकी संख्यामें जनता वहाँ 'भादों' बदी षष्ठीको मेलेमें भाग लेनेके लिए पैदल पहुँच जाती है। यहाँ पर केवल एक पुजारी रहता है।

अभी यहाँसे भी आगे चलना है। यहाँसे 'पौल' अभी

एक मील और दूर है और यह मार्ग इतना भीषण है कि आप वहाँ अकेले नहीं जा सकते। शेरकी बदबू सूँघ-सूँघकर पैर रखना पड़ता है! यहाँसे मार्ग इतना तंग तथा संकीर्ण है, और उसमें भी बाँस इत्यादि पगडंडीपर इतनी बुरी तरह फैले हुए हैं कि वस्त्रोंको काँटोंसे छुड़ा-छुड़ाकर चलना पड़ता है। मार्गमें थोड़ी-थोड़ी दूरपर ही छोटी-छोटी सरिताएँ मिलती हैं। वर्षा ऋतुमें इनमें इतने वेगसे जल बहता है कि दह जानेवाले यात्रियोंको इन्हें तैर-तैरकर पार जाना पड़ता है। ऐसी चार सरिताएँ पार करनेपर आप मैदानमें जा पहुँचेंगे। यहाँ पहाड़ोंके मध्यमें आपको प्राकृतिक खेत उगे हुए मिलेंगे, जहाँपर किसी भी पक्षीका चिह्न नहीं मिलता। पहाड़ घने वृक्षोंसे परिपूर्ण है।

अब आप एक मीलका तंग मार्ग, भीमकाय और भयावह गिरिमालाओंमेंसे पार कर आये। यही दहका द्वार है। यहाँ पर आपको एक भारी जल-प्रपातकी ध्वनि सुनाई देगी। यहाँसे पहाड़पर सीढ़ियाँ चढ़नी आरम्भ होती हैं। पहले लोग रस्सियाँ बाँध-बाँधकर इस पहाड़पर चढ़ते थे, किन्तु अब स्त्रियाँ और बच्चे भी यहाँ सरलतासे पहुँच जाते हैं। ये सीढ़ियाँ संख्यामें १४७ हैं। इन सीढ़ियोंकी बगलमें ही एक बहुत वेगशालिनी जलधारा पहाड़के एक बगोदे (Tunnel) में से निकलकर गिरती है। इस प्रपातकी उँचाई लगभग २५० फुट है। वर्षा ऋतुमें इसका प्रवाह इतना तीव्र रहता है कि बहुत शक्तिशालिनी जल-विद्युत पैदा की जा सकती है, किन्तु ग्रीष्ममें जल गतिकी शिथिलताके कारण यह असम्भव है।

अब आप सीढ़ियाँ समाप्त कर चुके। जिस बगोदेके नीचे आप खड़े हैं, इसकी परिधि लगभग ३५ गज है। ... गोल हिस्सा पहाड़से बिलकुल कटकर अलग होकर गिर गया है, किन्तु पहाड़के ऊपरी भागमें जो दोनों ओरके पहाड़ोंपर टि... हुआ है एक भी दरार नहीं है। इस बगोदे (Tunnel) ... अन्दरका जो पत्थर है, वह बिलकुल लावा मिट्टी-सा दिखाई देता है, किन्तु वह यथार्थमें बहुत कठिन प्राचीन चट्टानें हैं। इसे देखकर सबको आश्चर्य होता है। जनश्रुति है कि ... पाण्डव लोग हस्तिनापुर वापस जा रहे थे, तो इस स्थान... पहाड़के सामने आनेके कारण उनका मार्ग अवरुद्ध हो गया, तब महाबली भीमने अपनी भीमकाय गदासे पर्वतमें भी छेद कर दिया और ऊपरसे अपना मार्ग बना लिया। इसीलिये इस स्थलको 'पाण्डुपौल' कहते हैं।

इस 'पौल' पर खड़े होनेसे बहुत ही शीतल और तीव्र गतिसे बहनेवाली हवाका अनुभव होता है। यह हवा सब मौसमोंमें एक-सी ही रहती हैं। इस पौलसे ऊपर दो 'दह' (प्राकृतिक जल कुण्ड) हैं। इनका पानी बहुत शीतल और स्वच्छ है। इन्हीं दहोंमें से जलका उद्भव होता है। यात्री लोग यहींपर विश्राम करते हैं तथा भोजन करते हैं। इस पौलपर खड़े होकर दोनों दहोंका तथा पहाड़ोंकी प्रकृतिका जो सौन्दर्य तथा मनोमुग्धकारी दृश्य नेत्रोंको मिलता है, उसे देखकर कश्मीरकी डल-झीलका सौन्दर्य भी फीका लगता है। आगे पौलपरसे एक छोटा-सा तंग मार्ग पहाड़ोंमें होता हुआ भरतृहरिको चला जाता है। यही है मत्स्यका ऐतिहासिक 'पाण्डुपौल'।

आत्म-निवेदन

लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर'

मैं कवि हूँ, पर सृष्टि-सर्जना होती पा प्रेरणा तुम्हारी।
पंक्ति-पंक्तिमें भाव तुम्हारा, शब्द-शब्दमें हृदय तुम्हारा,
मेरे गीतोंके प्यालेमें, प्राण! छलकता प्रणय तुम्हारा;
मैंने है साकार किया जिसको वह है कल्पना तुम्हारी।
स्नेह-सिक्त मृत्तिका-पिण्डसे, जब प्रतिमा-निर्माण किया है

तुमने अपने अमृत-स्पर्शसे, स्पन्दनमय सप्राण किया है;
मूर्तिकार मैं हूँ, पर अंकित करता हूँ भावना तुम्हारी।
फूल खिलाये हैं तुमने, मैं चुन-चुन जिन्हें सजा देता हूँ,
झंकृत करते तार तुम्हीं, मैं जिनको छेड़ बजा देता हूँ,
मैं हूँ एक पुजारी, मन्दिरमें होती अर्चना तुम्हारी।

कवीन्द्र रवीन्द्रकी गीतांजलि

जयन्तप्रसाद बागची

अर्द्ध शताब्दीसे भी अधिक अपने दीर्घ साहित्यिक जीवनमें कवीन्द्र रवीन्द्र विश्व-साहित्य, विशेषतः बँगला-साहित्य को, अपने विविध कलात्मक दानोंसे पुष्ट करते रहे। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभाके बलपर कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबन्ध, समालोचना आदि वाङ्मयके सभी अंगोंकी उन्होंने पुष्टि की। बँगला-साहित्यके इतिहासमें तो वर्त्तमान शताब्दी 'रवीन्द्र-युग' के नामसे व्याख्यात की जाती है।

रवीन्द्रनाथके ग्रन्थोंमें 'गीतांजलि' सबसे अधिक प्रसिद्ध है; क्योंकि इसी ग्रन्थपर उन्हें सन् १९१३ में 'नोवल पुरस्कार' प्राप्त हुआ था। प्रस्तुत निबन्धमें इसी कृतिपर संक्षिप्त आलोचनात्मक दृष्टि डाली जायगी।

रवीन्द्र साहित्यसे अपरिचित बहुत-से सज्जन 'गीतांजलि' को 'गीतात्मक प्रबन्ध-काव्य' या 'प्रबन्धात्मक गीति-मुक्तक' समझते हैं। पर ये दोनों धारणाएँ भ्रमपूर्ण हैं; इनमें तात्विक अंश केवल इतना ही है कि यह एक गीति-काव्य है।

वास्तवमें 'गीतांजलि' सम्वत् १९६३-६७ में रचित कविके गेय पदोंका संग्रह है। ये पद एक-दूसरेसे स्वतन्त्र तथा अपनेमें पूर्ण हैं। हाँ, कविके शब्दोंमें, इन गीतोंमें भावोंकी एकता रहनेके कारण इन्हें 'गीतांजलि'के नामसे एक काव्य-ग्रन्थका रूप दिया गया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'गीतांजलि' एक गीति-काव्य है, अतः गीति-काव्यके लक्षणानुसार इसमें कविका ध्यान काव्यके भावात्मक पक्षकी ओर गया है, कलात्मक पक्षकी ओर नहीं। कहनेका तात्पर्य यह है कि उन्होंने हृदयके विविध भावोंके मार्मिक उद्गारको ही अपना मुख्य लक्ष्य रखा है, अलंकार-नैपुण्य, शब्द-क्रीड़ा, उक्ति-वैचित्र्य आदि काव्यके बहिरंगोंको नहीं। इस तत्वकी ओर कविने स्वयं एक स्थलपर संकेत किया है—

आमार ए गान छेड़ेछे तार सकल अलंकार।
तोमार काछे राखेनि आर, साजेर अहंकार॥
(गीत-संख्या १२६)

(हे प्रभो! मेरे इस गीतने अपनी सारी आलंकारिक कृत्रिमता छोड़ दी है; इसे आभूषणोंका गर्व नहीं)।

सच पूछिये तो यही भावात्मक काव्यकता प्राण है। जयदेव, विद्यापति, सूर, तुलसी, मीरा आदि सभी महान् गीति-काव्य-कारोंने भावपक्षको ही प्राधान्य दिया है, कलापक्षको नहीं। 'गीतांजलि'की पश्चिमी देशोंमें इतनी प्रसिद्धिका कारण केवल उसका भाव-सौन्दर्य न था; विदेशी आलोचकोंने उसमें एक ऐसी विचित्रता पाई, जिसके दर्शन उनके निजी साहित्योंमें कठिनतासे होते थे। वह था 'रहस्यवाद'। एक आलोचक महोदयने कहा है, "बँगलाके कवीन्द्र रवीन्द्रको कबीरका ऋण स्वीकार करना पड़ेगा। अपने रहस्यवादका बीज उन्होंने कबीर ही में पाया। परन्तु उसपर पाश्चात्य भड़कीली पालिश भी है।" इसके उत्तरमें मुझे केवल इतना ही निवेदन करना है कि स्वयं कबीर अपने रहस्यवादके लिए सूफियोंके ऋणी हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें इस्लामके कट्टर एकेश्वरवाद और वेदान्तके मायावादका रूखा संस्कार भी कबीरपर पूरा-पूरा था, साथ ही प्रकृतिके प्रसारमें भगवान्की कलाका दर्शन करनेवाली भावुकता उनमें न थी। सच तो यह है कि सूफी और भारतीय पद्धतियोंके समन्वय द्वारा रवीन्द्रने रहस्यवादका एक ऐसा स्वरूप उपस्थित किया है, जिसके साथ हृदयका पूर्ण रागात्मक सामंजस्य स्थापित हो जाता है।

जहाँ तक पाश्चात्य भड़कीली पालिशका प्रश्न है, ऐसा प्रतीत होता है कि आलोचक महोदयने कही-सुनी बातोंके आधारपर अपनी राय क़ायम की है; उन्हें रवीन्द्र-साहित्यका तनिक भी ज्ञान नहीं। वास्तवमें समन्वित रहस्यवादके दिव्य भारतीय स्वरूपपर ही पाश्चात्य आलोचक इतने मुग्ध हुए तथा पश्चिममें रवीन्द्रकी इतनी प्रतिष्ठा हुई।

रहस्यवादका अर्थ है, अज्ञात शक्तिको जाननेकी इच्छा या ललक। जिस अज्ञात शक्ति द्वारा संसार-चक्र निरन्तर प्रवर्त्तित हो रहा है, उसे जाननेकी इच्छा मानवमें सदैव बनी रहती है। उपनिषदोंके 'नेति नेति' तथा वेदान्तके रूखे उपदेशोंसे उसकी तृप्ति नहीं होती। भावुक हृदय, अपनी अनुभूतिके बलपर, उस अज्ञात शक्ति या जगदन्तरात्मामें विविध गुणोंका आरोप करता है। प्रकृतिके प्रत्येक रूपमें, जगत्के सभी क्रिया-व्यापारोंमें, उसे अज्ञातकी दिव्य शक्ति काम करती हुई दिखाई देती है। यही रहस्यवादका मूल है।

प्रत्यक्षानुभूतिकी सजीवताके लिए, रहस्यवादके अन्तर्गत परमात्माको पिता, माता, प्रिया, प्रियतम, पुत्र अथवा सखा इन लौकिक रूपोंमें देखा जाता है। परमात्माकी प्रियतमके रूपमें कल्पना 'माधुर्य भावात्मक रहस्यवाद'के नामसे अभिहित की जाती है।

'गीतांजलि'का रहस्यवाद 'माधुर्य भावात्मक रहस्यवाद' ही है, क्योंकि इसमें अज्ञात शक्ति या परमात्माकी कल्पना प्रियतमके रूपमें की गई है। परमात्मा प्रियतम है, जीवात्मा उसकी प्रियतमा। जीवात्माकी परमात्मासे मिलनेकी इच्छा, प्रियतमाकी प्रियतमसे मिलनेकी लालसा समझनी चाहिए।

जीवात्माको प्रेमिकाका रूप दिया गया है तथा इसी बहाने विरह-वेदना, प्रार्थना, उपालम्भ, उद्वेग, आश्वासन, मिलन, सौन्दर्य-भावना आदि शृंगार (संयोग एवं वियोग) की सभी अवस्थाओंके बहुत ही मार्मिक चित्र उपस्थित किये गये हैं।

सर्वप्रथम जीवात्मा विरहिणीके रूपमें हमारे सामने आता है। विरहाग्निमें जलती हुई वियोगिनी कहती है:—

"यदि तोमार देखा ना पाई प्रभु ए जीवने
तबे तोमाय पाई नि जेन से कथा रय मने
× × ×
जतई उठे हाँसि, घरे जतई वाजे बाँशि,
ओगो जतई गृह साजाई आयोजने,
तोमाय घरे हयनि आना, से कथा रय मने॥"

(गीत-संख्या २५)

(हे प्रभो ! यदि इस जीवनमें तुम्हारे दर्शन न हुए, तो समझ लो फिर दर्शन न होंगे।...घरमें दूसरे लोग चाहे उत्सव मनावें, पर यह मत भूलो कि मैं तुम्हें इस घरमें ... सकी ; तुम्हारे बिना मुझे आनन्द कहाँ ?)

पर प्रियतम नहीं आते ; विरहिणी व्याकुल होकर ... है :—

'सकल जीवन उदास करिया, कत गाने सुरे गलिया ...
तोमार विरह उठेछे भरिया, आमार हियार माझे ...

(गीत-संख्या ...

(तुम्हारे विरहमें मेरे जीवनमें उदासी छा गई है। ... गीत भी इसी विरहके व्यंजक हैं। मेरा हृदय विरहसे भरा हुआ है)।

एक स्थलपर विरहिणीके 'झुँझलाहट'की बहुत ही ... व्यंजना हुई है। विरहिणी कल्पना करती है कि उसकी ... वस्थामें प्रियतम समीप आये, पर वह उनके दर्शन न ... सकी। इसपर वह अपने आपको फटकारती है :—

'से जे पासे एसे बसेछिल, तबु जागिनि
कि घूम तोरे पेयेछिल, हतभागिनी।'

(गीत-संख्या ६१)

(वह अर्थात् प्रियतम मेरे पास आकर बैठे थे, पर मैं ... जागी। अरी अभागिन् ! तू ऐसी सोई कि प्रियतमके दर्शन न कर सकी !)

विप्रलम्भ शृंगारके अन्तर्गत, कवि-परम्परासे, उपालम्भ ... रीति चली आ रही है, अर्थात् वियोगिनी अपने प्रियतम ... सप्रेम फटकारती है। गीतांजलिमें भी इस रीतिका ... किया गया है।

जब विरह-वेदना असहनीय हो जाती, पर प्रियतम ... आते, तो विरहिणी (जीवात्मा) मीठे उलाहने देने लगती ... इस भावकी व्यंजना करनेवाले दो उत्तम अवतरण लीजिए—

(i) आमि कखनो बा भूलि, कखनो बा चलि,
तोमार पथेर लक्ष्य धरे।
तुमि निष्ठुर सम्मुख हते,
जाओ जे सरे॥ (गीत-संख्या ...

(मैं भूली-भटकी, उठती-गिरती किसी प्रकार तुम्हें ...

समीप आनेकी चेष्टा करती हूँ ; पर हे निर्दय, तुम बार-बार मुझसे दूर भागते हो)।

(ii) एई करेछ भालो, निठुर, एई करेछ भालो।
एमूनि करे हृदये मोर, तीव्र दहन जालो ॥
(गीत-संख्या १२)

(हे निर्दय, यही तुम्हारे लिए उचित है ! मेरे हृदयकी विरह-वेदनाको जितना चाहो बढ़ाओ)।

पर इस उपालम्भसे भी कोई लाभ नहीं होता। विवश होकर विरहिणी (जीवात्मा) प्रियतमसे प्रार्थना करती है—

(i) हे एका सखा, हे प्रियतम, रएछे खोला ए द्वार मम।
सम्मुख दिए स्वपनसम, जेओ ना मोरे हेलाय ठेले ॥
(गीत-संख्या १९)

(मेरे एकमात्र साथी हे मेरे प्रियतम, तुम्हारे लिए मैं द्वार खोल अकेली बैठी हूँ। तुम आओ, मेरी उपेक्षा कर चले मत जाओ)।

(ii) दूर थेके चिन्ते नारि, कोन् दिके जे कि निहारि।
तुमि आमार हृद्‌विहारि, हृदय पाने हासिया चाओ ॥
(गीत-संख्या ३३)

(मैं दूरसे तुम्हारे दर्शन कैसे करूँ ? मेरे हृदयमें विहार करनेवाले मेरे प्रियतम, हँसकर मेरी ओर देखकर मेरे हृदयकी पीड़ा दूर करो)।

विरह-वेदना, उपालम्भ एवं प्रार्थनासे अभीष्ट-प्राप्तिकी सम्भावना होती है ; प्रियतम सदय होकर विरहिणी प्रियतमाको अपने पास बुलाते हैं। अब प्रियतमाके हृदयमें शंका उठती है—क्या उसमें प्रियतमकी प्रियतमा बननेकी योग्यता है ? क्या वह इस प्रेमका भार उठा सकती है। वह सोचती है—

(i) तोमार प्रेम जे बईते पारि
एमन साध्य नाई ! (गीत संख्या ६७)

(तुम्हारे प्रेमका भार सहनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं)।

(ii) एई शंकाय काँपे आमार प्राण।
पाशे तोमार हबे कि आज स्थान ?

(मुझे इसी बातकी शंका है कि क्या मैं सचमुच तुम्हारे समीप आज बैठूँगी ? क्या मुझमें इतनी योग्यता है ?)

पर इस शंकाका समाधान वह शीघ्र ही कर लेती है ; जब प्रियतमके रूप-सागरमें गोता मार ही बैठी, फिर डूबनेका भय कैसा ? यदि डूब भी गई तो मरकर अमर हो जायगी !

'रूप-सागरे डुब दिएछि, अरूप रतन आशा करि
घाटे घाटे घूरब ना आर, भासिए आमार जीर्ण तरि।
× × ×
सुधाय एबार तलिए गिए अमर हए रब मरि ॥'
(गीत-संख्या ४८)

(मैंने प्रियतमके रूप-सागरमें डुबकी इसीलिये लगाई है कि शायद कोई अमूल्य रत्न मेरे हाथ लगे। अब यदि डूब गई तो मरकर भी अमर हो जाऊँगी।)

क्रमशः मिलनकी घड़ी पास आती जाती है ; प्रियतम अभिसारके लिए बुलाते हैं। वियोगिनी, प्राकृतिक बाधाकी उपेक्षा करती हुई, अभिसारिका बनकर बाहर निकलती है—बिछुड़े हुए प्रियतमसे मिलनेके लिए।

'आजि झड़ेर राते तोमार अभिसार,
परानसखा बन्धु हे आमार। (गीत-संख्या २५)

(हे मेरे प्राणोंके प्राण प्रियतम ! आज रातको, जब तेज आँधी चल रही है, मैं तुमसे मिलनेके लिए अभिसारिका बन कर बाहर निकली हूँ।)

अन्तमें दोनों बिछुड़े प्रेमी मिलते हैं ; जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। प्रियतमा अपने प्रियतमके दिव्य स्वरूप पर मुग्ध होकर कहती है—

(i) तुमि केमन करे गान कर जे गुणी
अवाक् हए शुनि केवल शुनि।
मने करि अमनि सुरे गाई।
कण्ठे आमार सुर खुँजे ना पाई ॥ (गीत-संख्या २३)

(हे गुणिन् ! तुम्हारा गीत कितना मधुर है ; मैं सुनकर चकित रह जाती हूँ। इच्छा उठती है कि मैं भी ऐसा ही गाऊँ, पर मेरे स्वरमें वह माधुर्य कहाँ !)

(ii) 'ओगो प्रिय, आजके आमार सकल पराण व्येपे।
थेके थेके हरष जेन उठ्ये कँपे कँपे ॥' (गीत-संख्या ३५)

(हे प्रिय! आज हर्षसे मेरे शरीरमें रोमांच हो रहा है। मैं बार-बार काँप उठती हूँ।)

'गीतांजलि' में व्यंजित रहस्यवादके संक्षिप्त विवेचनको समाप्त करनेसे पूर्व हम इस बातको फिर एक बार दुहरा देना चाहते हैं कि यह रहस्यवाद 'माधुर्य भावात्मक रहस्यवाद' है, अर्थात् जीवात्माको प्रेमिकाके रूपमें रखकर उसे प्रियतम परमात्माके विरहमें व्याकुल तथा मिलनमें उत्फुल्ल दिखाया गया है। इस भावकी व्यंजनाके लिए श्रृंगारका आश्रय लिया गया है। पर इस श्रृंगारका स्वरूप स्पष्ट है। उसका आधार आध्यात्मिक है, लौकिक कदापि नहीं।

'गीतांजलि'में कविके भक्त-हृदयका रूप परमोज्ज्वल रूपमें उपलब्ध होता है। जैसा कि ग्रन्थके शीर्षकसे स्पष्ट है, कविने अपने गीत-पुष्पोंको भगवान्के श्रीचरणोंमें निवेदित किया है। उनकी रहस्यमयी भावनाएँ भक्तिकी कोटिमें ही रखी जावेंगी, क्योंकि अज्ञात शक्तिमें माधुर्य भावका आरोप कर उसका चिन्तन सगुण भक्तिका ही एक अंग है। भक्तिके सीधे-सादे रमणीय चित्र भी 'गीतांजलि'में कई मिलते हैं। हरि-वन्दनाका एक उदाहरण लीजिये, जिसका भाव यह है कि सभी परिस्थितियोंमें हरि (अर्थात् महाशक्ति) ही एकमात्र आश्रय हैं—

'बाँयान बाँचि मारेन हरि,
बल भाई धन्य हरि
× × ×
सुधा दिए मातान जखन
धन्य हरि धन्य हरि।
व्यथा दिए काँदन जखन,
धन्य हरि धन्य हरि॥' गीत-संख्या १५)

इस उद्गारके साथ महाप्रभु चैतन्यकी प्रसिद्ध उक्ति 'हरेर्नाम हरेर्नाम केवलम्'की तुलना की जा सकती है। मानव-हृदयमें विविध भावनाओंका संघर्ष होता रहता है, तरह-तरहके प्रलोभनोंमें वह पड़ सकता है। सहायताके लिए उसकी आँखें भगवान्की ओर ही उठती हैं—

'अन्तर मम विकसित कर, अन्तरतम हे।
निर्मल कर, उज्ज्वल कर, सुन्दर कर हे॥
(गीत-संख्या ५)

(हे अन्तर्यामी! मेरे हृदयको विकसित करो, इसे स्वच्छ और निष्पाप बनाओ।)

जब जीवनमें निराशा छा जाती है, चारों ओर ... राज्य होता है, उस समय भी आनन्दस्वरूप भगवान् ही ... को आश्वासन दे सकते हैं—

'जीवन जखन शुकाए जाय
करुणा - धाराय एसो।
सकल माधुरी लुकाए जाय,
गीत - सुधारसे एसो॥' (गीत-संख्या ...)

(हे प्रभो! जब जीवनमें शुष्कता अर्थात् निरानन्दता ... हो, [तब] करुणाके बादल बनकर इसे सींचो। जब ... सारी मधुरता नष्ट हो जाय, अपनी अमृतमयी वाणी... उसे माधुर्य प्रदान करो।) यह गीत महात्मा गान्धीजी... प्रिय एवं प्रायः उनकी प्रार्थना-सभामें गाया जाता था।

'गीतांजलि'का ढाँचा भावात्मक या भक्ति-प्रधान है ... भी अपनी अलौकिक प्रतिभाके बलपर, कवीन्द्र रवीन्द्र... काव्यमें स्थान-स्थानपर प्रगतिवादकी झलक दिखाई है। यह प्रगतिवाद निरीश्वरवादका समर्थक नहीं।

हमारे समाजने अपने एक बहुत बड़े अंशको ... अस्पृश्य कहकर मानवी अधिकारोंसे वंचित कर रखा ... 'गीतांजलि'की रचनाके समय अछूतोंकी समस्या ... थी। समाजके इस अन्यायपर कविने तीव्र आघात किया ...

'हे मोर दुर्भागा देश, जादेर करेछ अपमान,
अपमाने हते हबे तादेर समान।
× × ×
मानुषेर परशेरे प्रतिदिन ठेकाइया दूरे
घृणा करियाछ तुमि मानुषेर प्राणेर ठाकुरे।
× × ×
शतेक शताब्दी धरे नामे शिरे असम्मान भार,
मानुषेर नारायणे तबुओ कर ना नमस्कार।'
(गीत-संख्या ...)

(मेरे अभागे देशवासियों, जिनका तुम आज अपमान ... हो, समय आनेपर अपमानित होकर उन्हीं जैसी दशा ...

होगी।...अछूत समझकर तुम मनुष्यके स्पर्शसे दूर भागते और इस प्रकार मानव-हृदयमें बसनेवाले भगवान्के प्रति घृणा प्रदर्शित करते हो। न जाने कबसे गुलामीका अपमान सह रहे हो, पर जिन मनुष्योंमें नारायणका निवास है, अछूत समझकर उन्हें तनक भी श्रद्धा नहीं दिखाते।)

धार्मिक पाखण्डपर भी कविकी दृष्टि गई है। हम श्रमसे दूर भागते हैं; समझते हैं कि आसन मारकर बैठते ही हमारे कर्त्तव्यकी इतिश्री हो गई। कवि ऐसा नहीं समझते, उनकी दृष्टिमें धर्मका वाह्याडम्बर केवल ढोंग है, कोरा पाखण्ड है। वास्तवमें संसारके साधारण-से-साधारण व्यापारमें भी हम नारायणकी नित्य एवं दिव्य कलाके दर्शन कर सकते हैं। इसीलिये वे कहते हैं:—

'भजन पूजन साधन आराधना
समस्त थाक् पड़े।
रुद्धद्वारे देवालयेर कोने
केन आछिस् ओरे?
× × ×
नयन मेले देख देखि तुई चेये
देवता नाई घरे।
तिनि गेछेन जेथाय माटि भेंगे
करछे चाषा चाष,
पाथर भेंगे काट्छे जेथाय पथ,
खाट्चे बारो मास
रौद्र जले आछेन सबार साथे,
धूला ताँर लेगेछे दुई हाते
ताँरि मतन शुचि बसन छाड़ि
आयरे धूलार परे!
मुक्ति? ओरे मुक्ति कोथाय पाबि?
मुक्ति कोथाय आछे?
आप्नि प्रभु सृष्टि बाँधन परे
बाँधा सबार काछे।' (गीत-संख्या १२०)

(अरे 'भक्त'! भजन, पूजन, साधन, आराधना आदि धर्मके वाह्याडम्बरोंका त्याग कर दे। मन्दिरका द्वार बन्दकर अकेले यहाँ क्या कर रहा है? जरा आँखें खोलकर तो देख; तेरे देवता यहाँ कहाँ! जानता है वे कहाँ हैं? वे वहाँ हैं, जहाँ तेरा अन्नदाता किसान हल चला रहा है या वहाँ हैं, जहाँ गरीब मजदूर अपना खून-पसीना एक करके पत्थर तोड़-तोड़कर मार्ग बना रहा है। तेरे देवता इन्हीं लोगोंका हाथ बँटा रहे हैं। उनके दोनों हाथ धूलि-धूसरित हो रहे हैं। अपने स्वच्छ एवं सात्विक वस्त्रोंका त्यागकर तू भी वहीं जा।

मुक्ति चाहता है? अरे, मुक्ति मिले कहाँसे? जिनसे मुक्तिकी आशा रखता है, उन्हें स्वयं तो संसारकी सृष्टि, पालन एवं संहारके बन्धनसे छुटकारा नहीं मिला। फिर तुझे मुक्ति देंगे कहाँसे?)

ऊपर दिये हुए अवतरणमें कविने कायिक श्रमकी मर्यादा (Dignity of Labour) की ओर बड़ा ही मार्मिक एक सूक्ष्म संकेत किया है। साथ ही साधारण-से-साधारण नरमें भी उन्होंने नारायणके दिव्य स्वरूपको देखा है।

निष्कर्ष रूपमें हम यही कह सकते हैं कि 'गीतांजलि' एक अनूठी कृति है—इसमें मानवताके प्रति एक नया सन्देश है। कवि और काव्यकी आत्माका उद्घाटन करनेके लिए बड़ी गहराई तक जानेकी आवश्यकता होती है।

'गीतांजलि'की सम्यक् विवेचनामें दार्शनिकता, लाक्षणिकता, रहस्यवाद, प्राचीन और अर्वाचीन प्रभाव, रसात्मकता, छन्द-योजना, भाषा, अलंकार, वाग्वैदग्धा, उक्ति—वैचित्र्य आदि न जाने कितने विषय आ जाते हैं, जिनका समावेश एक छोटे-से निबन्धमें असम्भव समझिये। इन दृष्टियोंसे पूर्ण विवेचन तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें ही किया जा सकता है। अस्तु, महाकवियोंकी अमर प्रतिभाकी ओर संकेत करनेवाले एक प्रसिद्ध संस्कृत श्लोकको उद्धृतकर हम इस निबन्धकी समाप्ति करते हैं—

'जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरा मरणजं भयम्॥

आन्ध्र जाति-आन्ध्र भाषा

पि॰ वि॰ आर॰ सूर्यनारायण

आन्ध्र जाति बहुत पुरानी है। इसकी प्रशंसा 'ऐतरेय ब्राह्मण' में लक्षित है। यह 'ऐतरेय ब्राह्मण' ऋग्वेद में है। विद्वानोंका अनुमान है कि यह 'ऐतरेय ब्राह्मण' ईसासे एक हजार सालके पहले लिखा गया।

एक बार विश्वामित्रने, अपनी आज्ञाका उल्लंघन करनेसे, अपने बच्चोंको शाप दिया। शापाहत होकर वे आन्ध्र, पुण्ड्र, पुलिन्द आदि जातियोंमें पैदा हो गये। ऐसा ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा हुआ है। ऊपरकी कहानीसे यह स्पष्ट होता है कि 'आन्ध्र' भी आर्य जातिके थे। विन्ध्यादिके आसपास ही रहते थे। उनकी प्रशंसा रामायण और भारतमें भी दीख पड़ता है।

'मेगस्तनीस्'की लिखी बातोंसे स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्तके साम्राज्यकाल तक ही आन्ध्र जातिने महासाम्राज्यका सम्पादन किया। इसके बाद अशोकके १२वें शिला-लेखसे यह व्यक्त होता है कि उसके समयमें आन्ध्र-साम्राज्य अशक्त बनकर मौर्योंकी अधीनता स्वीकार कर चुका। 'शुगभृत्य'के कालमें आन्ध्र साम्राज्यने उन्नतिकर मगध साम्राज्यको ही ग्रस लिया। इसके बाद शातवाहन आ गये। आन्ध्र-भृत्य-वंशज 'शातवाहन कर्ण'के नामसे प्रसिद्ध हो गये। इस तरह प्राचीन आन्ध्र-साम्राज्य क़रीब पाँच शताब्दियों तक अत्यन्त उन्नति पाकर नष्ट हो गया।

ईसाके बाद तीसरी सदीमें पल्लवोंने फिर आन्ध्र देशका रूप स्थिर किया। चौथी सदीमें चित्तूर, कड़पा, कोलार और अनन्तपूर ज़िले इसमें मिल गये। यह विषय उस समयके ताम्र-पत्रोंसे व्यक्त होता है। सातवीं सदीमें 'वेंगी' नगर आन्ध्र राजधानी बन गया। उस समयसे चालुक्य राजाओंने प्रान्तीय भाषा 'तेलुगु'का उद्धार करके उसकी और आन्ध्रकी एकता की।

आन्ध्रोंकी भाषा आन्ध्र भाषा कहलाती है। इसके और दो नाम हैं—तेनुगु, तेलुगु। इन शब्दोंकी उत्पत्तिके बा विद्वानोंका मतभेद है। आन्ध्र लोग आर्योंके सम्बन्धी होने कारण पहले उनकी भाषा भी आर्य भाषाओंसे निकली हु एक प्राकृत हुई होगी। उनके अति प्राचीन ग्रन्थ 'शालिवाह सप्तशति'में, जो 'हाल' नामक कविसे लिखा गया है, पुरा प्राकृत भाषा ही दीख पड़ती है। 'गुणाढ्य'के लिखे 'बृहत्कथा' नामक ग्रन्थमें भी वही भाषा लक्षित होती है इससे यह सुव्यक्त होता है कि आन्ध्रोंकी पहली भाषा पुरा प्राकृत ही थी।

क्रमशः आन्ध्र लोग विन्ध्य पर्वतके दक्षिणमें रहने द्राविड़ोंसे मिलकर उसी दिशाकी तरफ बढ़ने लगे। द्रावि भाषामें दक्षिणको 'तेनू' बोलते हैं। तेनू+अगु' अर्थात् दक्षि प्रान्तमें रहनेवाले हैं। विन्ध्यके उत्तरसे दक्षिणकी तरफ बढ़ने कारण आन्ध्रोंका 'तेलुगुलु' नाम पड़ गया होगा। यह 'आन्ध्र' नाम पहले जातिगत और देशगत होकर बाद भाषागत हो गया।

इसके बाद 'तेलुगु' शब्द है। कुछ पण्डित बताते हैं कि 'तेलुगु' शब्द 'त्रिलिंग' शब्दसे निकला है। आन्ध्र प्रान्त द्राक्षाराम, श्रीशैल और कालेश्वर नामक तीन पुण्य क्षेत्र हैं इन तीनों स्थानोंमें तीन शिवलिंग हैं। इन लिंगोंसे रक्षि होनेके कारण इस प्रान्तका 'त्रिलिंग' नाम पड़ गया। धीरे धीरे वही तेलुगु बन बैठा।

और कुछ पण्डित लोग कहते हैं कि 'त्रिलिंग' श 'त्रिकलिंग' शब्दसे निकला है। आन्ध्र देशके समुद्र प्रान्त 'कलिंग' नामक' संज्ञा पुराने समयसे भी आ रही है। कलिंग शब्द विशाल भू-भागको लगता था। गंगाके दक्षिणी किनारे लेकर गोदावरीके उत्तरी किनारे तक कलिंग नामसे पुका जाता था। इस विशाल भू-खण्डके अन्तर्भागोंकी, उ कलिंग, मध्यकलिंग और त्रिकलिंग नामक संज्ञाएँ व्यवहृत थी

'उत्तर कलिंग' शब्द आजकल 'उत्कल' या 'ओरिस्सा'के रूपमें बदल गया है। मध्य कलिंग और त्रिकलिंग शब्द आन्ध्र प्रान्तके ही नाम थे। ये स्थान गोदावरीके उत्तरमें थे। इस त्रिकलिंगकी भाषा देशके नामसे ही पुकारी जाती थी। चलते-चलते बोलचालके कारण 'त्रिकलिंग'में से 'क'कार निकल गया। अतः 'त्रिलिंग' नाम रह गया। वही शब्द 'तेलुगु'के रूपमें बदल गया।

टालैमी नामक ग्रीक वैज्ञानिकने भी अपने भौगोलिक-शास्त्र-ग्रन्थमें भारतके वर्णनके समय आन्ध्र प्रान्तको 'ट्रिलिंगान्' नाम दिया है। ये वैज्ञानिक ईसाके बाद दूसरी सदीमें थे। इस 'ट्रिलिंगान्' और 'त्रिलिंग' शब्दोंका साम्य ज़्यादातर दीख पड़ता है। इस तरह 'तेलुगु' शब्द भी प्राचीन गौरवसे नहीं गिर जाता।

साम्राज्य-संचालनके लिए शालिवाहनोंने प्राकृत भाषा अपनाई। उत्तर हिन्दुस्थानमें आन्ध्रोंकी, साम्राज्य बढ़ानेकी आशा नष्ट होनेके बाद उसी वंशज चालुक्य राजा सिर्फ आन्ध्र प्रान्तका पालन करने लगे और उसी समयसे देशीय भाषा ही राजकीय कार्य-संचालनके लिए भी अपनाई गई। इन्हीं चालुक्योंके समयमें आन्ध्र-राज्यके पूर्व और पश्चिमके प्रान्तोंमें विभेद उपस्थित हो गया। इसका प्रभाव भाषापर भी पड़ गया। उस समय पूर्व-प्रान्तमें रहने वालोंकी भाषा 'तेलुगन्नड़' और पश्चिममें रहनेवालोंकी भाषा 'हलगन्नड़'के नामोंसे बुलाई जाती थी। यही तेलुगन्नड़ प्राचीन-आन्ध्रभृत्य-संपर्कजनित चालुक्य राजाओंको पसन्द आई और समय गुजरते-गुजरते 'तेलुग'के रूपमें बदल गई। चालुक्य राजाओंने स्व-जातिगत-साम्प्रदायिक 'प्राकृत' शब्दोंको और देशीय 'तेलुगन्नड़' शब्दोंको मिलाकर एक खिचड़ी भाषा तैयार की और उसकी वृद्धि कराई। इसी समयसे आन्ध्र, तेनुगु और तेलुगु शब्द आपसमें व्यवहृत होने लगे। ये शब्द जातिगत और भाषागत वैरुध्य छोड़कर इस तरह आपसमें मिल गये कि आजकल उनका पार्थक्य समझना भी कठिन हो गया है।

आन्ध्र, तेनुगु और तेलुगु शब्दोंकी उत्पत्तिको देखनेसे यह स्पष्ट रूपसे व्यक्त होता है कि द्राविड़ों और आर्योंके सम्मेलनसे ही एक महती आन्ध्र-जाति बन गई। उनके आचार-विचारोंमें, भाषामें आर्यों और द्राविड़ोंका प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होता है।

अभिज्ञान-शाकुन्तल और प्राकृतिक वर्णन

विजयेन्द्रकुमार माथुर

कालिदासके प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान-शाकुन्तलका भौगोलिक दृष्टिसे अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी स्थानीय पार्श्वभूमि उत्तरप्रदेशके बिजनौर, मेरठ तथा मुज़फ्फरनगर नामक तीन जिलोंके कतिपय भागों द्वारा बनी है। हस्तिनापुर जिला मेरठमें, शचीतीर्थ तथा शक्रावतार जिला मुजफ्फरनगरमें और कण्वका आश्रम तथा दुष्यन्तका आखेट-वन जिला बिजनौरके उत्तर-पूर्वी भागमें स्थित हैं।

कालिदास प्रकृतिके महान् कवि हैं। उनकी सभी रचनाओंमें प्रकृतिके वर्णन आश्चर्यजनक रूपसे यथातथ्य हैं। जहाँ-जहाँ उन्होंने किसी विशेष स्थानके सम्बन्धमें प्राकृतिक दृश्यों, पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधोंके चित्र खींचे हैं, वहाँ सभी स्थलोंपर ये चित्र स्थानीय परिस्थितियोंके अनुसार सर्वथा सत्य हैं। जहाँ-जो वस्तु पाई जाती है, इसका उन्हें विशेष ध्यान रहा है। बहुत छोटी-छोटी तथा ऊपरी दृष्टिसे देखनेपर महत्त्व न रखनेवाली बातोंका भी उन्होंने बहुत ही सूक्ष्म रूपसे तथा विशेष ध्यानपूर्वक वर्णन किया है। इस महान् कविकी प्रतिभाका संचार प्रकृतिके उजले तथा अँधेरे, विस्तृत तथा संकीर्ण सभी क्षेत्रोंमें समान रूपसे हुआ है। अनेक प्रसंगोंमें आनेवाले तथा कथानककी दृष्टिसे क्षुद्र अथवा उपेक्ष्य दीखनेवाले वर्णनोंका यदि हम वैज्ञानिक अध्ययन करें, तो यह ज्ञात होता है कि ये वर्णन निरर्थक अथवा केवल आलङ्कारिक मूल्य रखनेवाले नहीं हैं, वरन् एक सूक्ष्म तथा सम्पूर्ण चित्रके अपरिहार्य अंग हैं।

हमारे इस लेखका उद्देश्य शकुन्तला नाटकके कुछ ऐसे ही विशिष्ट वर्णनोंको प्रकाशमें लाना है।

प्रथम अंकके प्रारम्भ ही में रथासीन दुष्यन्त एक मृगका पीछा करता हुआ दिखाई देता है—रथवान् मृग तथा राजाको देखकर कहता है—

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्य कार्मुके।
मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामिव पिनाकिनम्॥

अर्थात् धनुष खींचे हुए तुम्हें तथा इस काले हिरनको देखते हुए मुझे तो तुम मृगके पीछे भागते हुए शिवके समान जान पड़ते हो।

यह वर्णन कण्वके आश्रमके पास ही के वन-प्रदेशका है। यह वन-प्रदेश गढ़वालकी तराईमें स्थित है। पुनश्च अंक ६ में इसी आश्रमका वर्णन करते हुए दुष्यन्त कहता है—

कार्या सैकतलीन हंस मिथुना स्रोतोवहा मालिनी,
पादास्ताभभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बित वल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
श्रृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमाना मृगीम्॥

"मुझे अभी इस चित्रमें इतने दृश्य और दिखाने हैं—मालिनी नदी, जिसके रेतीले तटोंपर हंसोंके जोड़े बैठे हैं, नदीके दोनों ओर फैली हुई हिमालयकी तलहटी, जहाँ हरिण विश्राम कर रहे हैं; आश्रमके वृक्षकी शाखापर लटके हुए वल्कल वस्त्र तथा उसके नीचे काले मृगके सींगपर अपनी बाईं आँखको खुजाती हुई मृगी"—इन दोनों पद्योंसे यह स्पष्ट है कि कालिदासको कण्वके आश्रमसे लगे हुए वन-प्रदेशमें रहनेवाले जंगली काले हरिणोंके विषयमें पूरा-पूरा ज्ञान था, क्योंकि दो बार उन्होंने एक ही स्थानके प्रसंगमें कृष्ण-मृगोंका वर्णन किया है। यों तो द्वितीय अंक (पद्य ६) में भी सामान्य हरिणोंका वर्णन है, किन्तु उपर्युक्त स्थलोंपर कृष्ण मृगके विशेष कथनसे यह स्पष्ट ही है कि कालिदासको इस विशिष्ट वन-प्रदेशके रहनेवाले पशुओंके विषयमें प्रत्यक्ष अनुभव था, क्योंकि गढ़वाल की तराईमें अवस्थित इस घने जंगलमें आज भी काले हरिण पाये जाते हैं। दूसरे अंकमें (छन्द ६) आखेट सम्बन्धी प्रसंगमें कुछ अन्य जंगली जानवरोंका वर्णन है—

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं श्रृंगैर्मुहुस्ताडितम्
छायाबद्ध कदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विस्रब्धं क्रियतां वराह ततिभिर्मुस्ताक्षतिपल्वले।
विश्राम लभतामिदश्च शिथिलज्या बन्धमस्मद्धनुः

"भैंसोंको तालाबके पानीमें सींघोंसे बार-बार पानीको ... कर डुबकियाँ लगाने दो, हरिणोंको छायामें इकट्ठे बैठकर ... करने दो, तड़ागमें शूकरोंके समूहको चुपचाप मोथा-... विनाश करने दो तथा हमारे धनुषको जिसकी डोरी ढीली ... दी गई है, आज विश्राम ले लेने दो।"

इस प्रसंगमें जंगली भैंसों, हरिणों तथा शूकरोंका ... आया है। इन पशुओंकी स्वाभाविक क्रियाओंका सत्य ... होनेके अतिरिक्त यह वर्णन इस बातका भी परिचायक है ... कालिदासको इस स्थान-विशेष अर्थात् गढ़वालकी ... स्थित वन-प्रदेशमें वास्तवमें पाये जानेवाले वन्य पशु... पूरा-पूरा ज्ञान था। इन घने जंगलोंमें जंगली भैंसे, हरिण... वन्य शूकर बहुतायतसे मिलते हैं। वन्य शूकरोंका शिकार ... इधरके शिकारियोंका विशेष प्रिय-विनोद है।

इसी श्लोकमें मुस्ता घासका भी उल्लेख है। बिजनौर ... पार्श्ववर्ती जिलोंमें यह घास (Cyperus rotund...) नदियोंके कछारों, छिछले तालाबों तथा सामान्यतः ... स्थानोंमें प्रचुरतासे उगती है और इसको स्थानीय भा... 'मोथा' कहते हैं। इसकी जड़ें कुछ मीठी होनेके कारण ... सुअर इसे बड़े चावसे खाते हैं और इसी कारण इसका ... एक नाम वराह भी है। कालिदासके प्रकृति-वर्णनकी ... ही उसका सौन्दर्य है। मोथा घास-जैसी उपेक्ष्य वस्तुका ... उचित प्रसंग तथा विशिष्ट स्थानकी पार्श्वभूमिमें वर्णन ... जो मनोहर चित्र खींचा है, वह बहुत ही प्रभावोत्पादक ... वास्तविक है।

प्रथम अंकके छन्द २६ में एक जंगली हाथी द्वारा ... आश्रममें किये गये उपद्रवका वर्णन है। गढ़वालकी ... कजली वनमें अब भी अनेक जंगली हाथी हैं और कभी ... भटककर वे ग्रामोंकी सुनसान सड़कोंपर चले आते हैं। ... कण्वके आश्रमके निकट, पास ही के वन-प्रदेशमें ...

हाथीका चला आना और वहाँ उपद्रव मचाना—यह वर्णन बहुत ही स्वाभाविक तथा सत्य जान पड़ता है। (अनेक भौगोलिक आधारोंके बलपर यह लगभग निश्चित है कि कालिदास द्वारा वर्णित कण्वके आश्रमकी स्थिति बिजनौर जिलेके मँडावर नामक क़स्बेके पास रही होगी। आजकल तराईका वन-प्रान्त इस स्थानसे २५ मीलके लगभग है, सम्भव है कालिदासके समयमें यह आश्रमके और अधिक निकट था)। चतुर्थ अंकमें शकुन्तलाके पतिगृहके लिए जाते समयका हृदयग्राही चित्र है—इसी प्रसंगमें आश्रमके पास ही किसी तड़ागके निकट चक्रवाकके जोड़ेका बहुत ही मार्मिक वर्णन है—

"शकुन्तला—हला प्रेक्षस्व, नलिनी पत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्ती आतुरा चक्रवाकी आरटति। दुष्करमहं करोमि—

अनसूया—सखि! मा एवं मन्त्रयस्व—

एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाद दीर्घतराम्
गुर्वपि विरहदुःखमाशा बन्धः साहयति।

चकवा-चकई भारतके उत्तरके पहाड़ी देशोंसे जाड़ा शुरू होनेके साथ-साथ ही नीचे उतर आते हैं और नदियों तथा तड़ागोंके छिछले किनारोंपर ये पक्षी प्रायः दिखलाई पड़ते हैं। लेखकने स्वयं शीतकालमें बिजनौर तथा मुजफ्फरनगर जिलोंमें गंगा तथा अन्य नदियोंके किनारेकी सुनसान रेतीमें इन सुन्दर चिड़ियोंके जोड़ोंको विचरते हुए देखा है और प्रत्येक बार उसे कालिदासके उक्त वर्णनका स्मरण हो आया है।

कालिदासने अपने इस अमर नाटकमें प्रत्येक प्रसंगमें स्थानकी यथातथ्यताके अतिरिक्त समय तथा ऋतु-औचित्यका भी पूरा-पूरा ध्यान रखा है।

यह स्पष्ट ही है कि नाटकका आरम्भ ग्रीष्म ऋतुके प्रारम्भमें हुआ है। प्रस्तावनामें सूत्रधार कहता है—'तदियमेव तावत् अचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्म समयमधिकृत्य गीयताम्' इत्यादि प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय अंकोंमें आनेवाले अन्य वर्णनोंसे भी यह स्पष्ट ही दीखता है कि वे ग्रीष्मऋतुके परिचायक हैं—यथा; 'प्रियंवदा-तेन हि अस्यां प्रच्छाय शीतलायां सप्तपर्ण वेदिकायां मुहुर्तकमुपविश्य परिश्रम विनोदं करोतु। आर्यः—अंक १।

दूसरे अंकमें उपर्युक्त श्लोक ६ में वर्णित जंगली भैंसोंका तालाबके पानीमें डुबकियाँ लगाना, हरिणोंका छायामें बैठकर जुगाली करना तथा सुअरोंका तड़ागमें घुसना—ये सब बातें ग्रीष्म ही की निर्देशक हैं।

तृतीय अंकके विष्कंभक कण्वके आश्रमका एक शिष्य कहता है—'किं ब्रवीषि—आतपलंघनाद्बलवदस्वस्था शकुन्तला, अर्थात् शकुन्तला कठिन धूपके प्रहारसे बहुत अधिक अस्वस्थ है'—

इसी अंकका ११ वाँ श्लोक—

स्मर एव ताप हेतुर्निर्वापयिता स एवमे जातः
दिवस इवाभ्र श्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य॥

यहाँ ग्रीष्मके अवसानमें बादलोंके छानेपर उमसका बढ़ना तथा फिर शीतल बूँदोंसे तापका दूर होना—यह उपमा ग्रीष्म-ऋतुके वातावरणमें कितनी सुन्दर तथा उपयुक्त है।

पुनः इसी अंकमें २० वें श्लोकमें दुष्यन्तका शकुन्तलाके प्रति यह कथन—'किं शीकरैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं संचालयामि नलिनीदल तालवृन्तम्'—भी ग्रीष्म ही का परिचायक है।

अतः उपर्युक्त उद्धरणोंसे यह स्पष्ट ही है कि कालिदासके अनुसार शकुन्तला और दुष्यन्तका प्रथम मिलन ग्रीष्ममें हुआ। यह भी अनुमान-सिद्ध दीखता है कि दुष्यन्तके हस्तिनापुर लौट जानेके थोड़े ही दिनों पीछे वर्षा आरम्भ हो गई होगी, और जैसा इस प्रदेशमें स्वाभाविक रूपसे होता है जूनके अन्तमें प्रारम्भ होकर वर्षाऋतु सितम्बर तक रही होगी। इस कालमें गंगाके अधिक बढ़ जानेके कारण नावों द्वारा यातायात भी बन्द हो जाता है और बहुत सम्भव है कि कण्वका यही अनुमान रहा हो कि दुष्यन्तका शकुन्तलाका काफ़ी समय तक न बुलानेका कारण वर्षाऋतुमें आने-जानेकी कठिनाई ही थी। किन्तु चौमासेके समाप्त होनेपर भी जब दुष्यन्तने कोई सन्देश न भेजा, तो ऋषिको अवश्य ही चिन्ता हुई होगी और शरद ऋतुके आते ही उन्होंने शकुन्तलाको उसके पतिके पास भेजना निश्चय किया—निम्न उद्धरणोंसे भी यह तथ्य प्रमाणित होता है—

कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसन्ध्या
दार्भमुच्चत्युटज पटलं वीतनिद्रो मयूरः।
वेदि प्रान्तात् खुरविलिखादुत्थितश्चैषसद्यः
पश्चादुच्चैर्भवति हरिणः स्वाङ्गमायच्छमानः ॥

अंक ४, श्लोक ४।

यह वर्णन शकुन्तलाके पतिगृह जानेके दिनके प्रातःकालका है—"जंगली बेरियोंपर पड़ी हुई ओसको प्रातःकालकी धूप रंगीन बना रही है—नींदसे जागा हुआ मोर कुशके छप्परपर से नीचे उतर रहा है। यज्ञवेदीके पासकी भूमिपर, जहाँ खुरोंके चिह्न बने हुए हैं, उठा हुआ यह हरिण अपने शरीरको—अँगड़ाई लेते समय—फैलाकर पश्च भागसे ऊँचा हो रहा है।"

यहाँ सवेरेकी ओस तथा हरिणका यज्ञवेदीकी उष्णभूमिमें रातको सो जानेका वर्णन शीतकालके आरम्भका प्रबल प्रमाण है। जंगली बेरियोंपर शरदऋतु (कार्तिक) में ही इस प्रदेशमें फूल और फल आते हैं और उनके पत्ते घने हो जाते हैं। गंगा तथा मालिनी नदीके खादरमें ये छोटी-छोटी झाड़ियाँ (झड़बेरियाँ) शीतऋतुके आरम्भ होते ही खूब छा जाती हैं और यह बात स्वाभाविक ही है कि कालिदासकी तीक्ष्ण दृष्टिसे यह मौसमी दृश्य बच न सका।

ऊपर इसी (चतुर्थ) अंकके—'एषापि प्रियेण बिना' इत्यादि श्लोकका उल्लेख आ चुका है, जिसमें चक्रवाकके जोड़ेका वर्णन आया है। यह पक्षी उत्तरी भारतमें अक्टूबर मासमें उत्तरसे आकर यहाँकी नदियों तथा झीलोंके किनारोंपर मार्च तक ठहरता है। इसका इस स्थानमें वर्णन भी शकुन्तलाकी यात्राके समयका सूचक है—

कण्व शकुन्तलाके जाते समय कहते हैं—

शममेष्यति ममशोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्
उटजद्वारि विरूढं नीवारबलिं विलोकयतः। अंक ४, श्लो[illegible]

'वत्से! तूने जिन नीवार (एक प्रकारका मोटा [illegible]) दानोंसे पहले कभी पूजा की थी, वे अब मेरी कुटीके [illegible] उग आये हैं—इनको देखते हुए मेरा शोक कैसे कम हो[illegible] नीवार-धान्यके उगनेका समय अन्य चावलोंकी भाँति [illegible] ऋतुका आरम्भ ही है।

शकुन्तलाके दुष्यन्त द्वारा परित्यागके पश्चात् उसकी [illegible] हुई अँगूठी शचीतीर्थके मछियारेको मिली। अँगूठीसे [illegible] ही दुष्यन्तको अपनी परित्यक्ता पत्नीकी स्मृति हो आई [illegible] शोकके कारण उसने सब राज-काजके कामोंमें ढिलाई [illegible] यहाँ तक कि उसने उस वर्षका वसन्तोत्सव भी बन्द [illegible] दिया। यह स्पष्ट ही है कि इतनी घटनाओंको [illegible] शीतकालके आरम्भ या मध्यसे लेकर वसन्तके प्रारम्भ [illegible] रही होगी। छठे अंकके आरम्भमें द्वितीय चेरीके इस वचन[illegible] 'कथमुपस्थितो मधुमासः' यह स्पष्ट ही है कि इस अंककी [illegible] घटनाएँ वसन्त ऋतुकी हैं। अंकके अन्तमें दुष्यन्त [illegible] राक्षसोंके विरुद्ध युद्धमें सहायता देने इन्द्रलोक जाता है—[illegible] प्रतीत होता है कि वहाँसे लौटनेमें उसे ३-४ वर्ष अवश्य [illegible] होंगे; क्योंकि वापस आते समय उसने प्रथम बार अपने [illegible] शकुन्तलाके पुत्र सर्वदमनको देखा, जो अवश्य ही कम-से [illegible] ३ या ४ वर्षका रहा होगा। इसी समय उसका शकुन्तलासे [illegible] इतने दिनोंके पीछे, पुनर्मिलन हुआ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णनसे यह सिद्ध हो जाता है कि [illegible] नाटकमें कालिदासने कथानककी मुख्य बातोंके अतिरिक्त [illegible] तथा समयके अनुकूल सभी छोटे-छोटे गौण तथ्योंका भी [illegible] पूरा ध्यान रखा है, जिससे उनका निर्मित कथा-चित्र [illegible] दृष्टियोंसे सम्पूर्ण तथा यथातथ्य बन सका है।



प्रनाली-विहीन ग्रन्थियाँ (Endocrine Glands)

विष्णुदेव पोद्दार

आजकलके चिकित्सा-युगमें दो बातें बहुत सुननेमें आती हैं। एक तो भोजनके सम्बन्धमें विटेमिनोंका नाम और दूसरा स्वास्थ्यके सम्बन्धमें 'हौरमोनों'का नाम। शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंसे विविध ग्रन्थि-रस स्रवित होकर रुधिरमें मिलते रहते हैं और इन रसोंका पर्याप्त मात्रामें निकलना स्वास्थ्य एवं शौर्यके लिए आवश्यक है। यदि ये रस उचित परिमाणमें न निकलें, तो शरीरकी वृद्धि रुक जाती है।

शरीरमें दो प्रकारकी ग्रन्थियाँ हैं। एक तो प्रनाली-युक्त, जिनसे रस नस-नाड़ियों द्वारा निकलकर रक्तके साथ मिल जाता है। लाला ग्रन्थि, जिससे लार निकलती है, इसी प्रकारकी एक ग्रन्थि है। इन ग्रन्थियोंका स्राव 'बहिः स्राव' कहलाता है। दूसरे प्रकारकी ग्रन्थियाँ प्रनाली-विहीन होती हैं, जिनसे स्राव बाहर न निकलकर अन्दर-ही-अन्दर सीधा रुधिरमें मिल जाता है अथवा शरीर उनको सोख लेता है। यह रस अन्तःस्राव कहलाता है। चुल्लिका (Thyroid), पीयूष (Pituitary) आदि इसी तरहकी प्रनाली-विहीन ग्रन्थियाँ (Endocrine Glands) हैं। यह दूसरी प्रकारका ग्रन्थि-समूह बड़े महत्त्वका है। जैसे बिजलीसे चलनेवाली मशीनके लिए बिजली आपेक्षित है, उसी भाँति मानव-शरीर रूपी कारखानेमें यह विद्युतशक्ति (Endocrine Glands) प्रनाली-विहीन ग्रन्थियोंके अन्तःस्रावपर निर्भर करती है।

शरीरको स्वस्थ और सचेष्ट रखनेमें जितना महत्त्व इन स्रावोंका है, उतना और किसीका नहीं है। इन ग्रन्थियोंसे स्रवित रासायनिक पदार्थोंको हम 'हौरमोन' कहते हैं। इसे अपनी भाषामें हम 'ओजस्' कह सकते हैं। हर एक प्रनाली-विहीन ग्रन्थिसे एक विशेष हौरमोन निकलती है, जो कि रुधिर या लसिका (लिम्फ) के साथ जाकर किसी दूरस्थ अंगको क्रियाशील बनाती है तथा हमारे स्नायु-मण्डलको और कोष्ठों (Cells) को प्रभावित करती है। विशेषज्ञोंका तो यह कहना है कि किसी जाति-विशेषकी उन्नति इन ग्रन्थियोंके विकासपर निर्भर करती है। आजकल अनेक पशुओंकी उपर्युक्त ग्रन्थियोंसे अन्तःस्राव लेकर औषधियाँ तैयार की जाती हैं और उनके द्वारा अनेक रोगोंका उपचार किया जाता है। इस प्रकारके उपचारको 'ओरगेनोथिरेपी' (Organotherapy) कहते हैं। इसका आजकल अधिक प्रचार हो रहा है। योगिक आसनोंका इन ग्रन्थियोंपर विशेष प्रभाव होता है। इन आसनोंमें भी सर्वांगासन अधिक उपादेय है। आसन इन ग्रन्थियोंको सुस्वस्थ दशामें रखकर अन्तःस्रावोंको पर्याप्त मात्रामें निकालनेमें सहायता करते हैं। इस दृष्टिसे आसनोंके अभ्यासीको इन ग्रन्थियोंका ज्ञान विशेष महत्त्व रखता है।

चुल्लिका और उपचुल्लिका ग्रन्थियाँ
(Thyroid and parathyroids)

टेटुँएके दोनों ओर अण्डाकार दो चुल्लिका ग्रन्थियाँ (थायरोयड) स्वर-नालसे संयुक्त रहती हैं। ये ५-६ सेन्टीमीटर लम्बी और ३० ग्राम भारी होती हैं। प्रत्येक चुल्लिका-ग्रन्थिके साथ ६-७ मिलीमीटर लम्बी दो-दो उपचुल्लिका-ग्रन्थियाँ होती हैं। इन सबसे अन्तःस्राव हुआ करता है। चुल्लिका, ग्रन्थि इतनी महत्त्वकी है कि प्रयोग द्वारा मालूम किया गया है कि यदि यह ग्रन्थि शरीरसे बाहर निकाल दी जाय, तो मस्तिष्कके व्यापार—बुद्धि, विचार और ज्ञान विलुप्त होने लगेंगे। दिमागी मोटर चलानेके लिए आवश्यक विद्युत-शक्ति थायरोयड-ग्रन्थिसे आती है। इसी भाँति पाचक-संस्थानमें परिवर्तन, शरीरकी वृद्धि, तौल और हृदयके कार्य-संचालनपर इस ग्रन्थि-समूहका प्रभाव पड़ता है। उपचुल्लिका-ग्रन्थिके निकाल देनेपर शरीरमें विषाक्त पदार्थोंका संचय बढ़ जाता है। मांस-पेशियोंकी संचालन शक्ति क्षीण होने लगती है। टिटेनस रोग आ घेरता है।

थायमस (Thymus)

बच्चोंकी वक्षास्थिके पीछे यह ग्रन्थि होती है, जो प्रौढ़ावस्थामें बहुधा लुप्त हो जाती है। यह स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषमें अधिक वजनदार होती है। इस ग्रन्थिका शिशु-वृद्धिसे सम्बन्ध रहता

है। इस ग्रन्थिको बच्चोंके शरीरसे निकाल देनेपर प्रायः सूखाका रोग हो जाता है।

पाइनियल (Pineal)

यह ग्रन्थि मस्तिष्कके नीचे और तालूके ऊपर क़रीब ८ मिलीमीटर लम्बी होती है। कौमार्य तक यह ग्रन्थि बढ़ती रहती है, उसके बाद क्षीण होने लगती है और केवल सूत्र या धागे रह जाते हैं। मस्तिष्क रेणुकाके उत्पन्न होनेका इससे सम्बन्ध है। इस ग्रन्थिके रसको सूई द्वारा शरीरमें पहुँचानेसे रक्तचाप कम हो जाता है। बच्चोंकी वृद्धिको यह संयमित रखती है और उनमें लैंगिक लक्षणोंकी उत्पत्तिको रोकती है।

पीयूष-ग्रन्थि (Pituitary)

पीयूष या पिट्यूटरीको श्लैष्मिक पिण्ड भी कहते हैं, जो कि मस्तिष्कमें स्थित है। इसके दो भाग हैं। एक तो पुरोपिण्ड, जिसकी गठन स्पष्टतः ग्रन्थिमय होती है और छोटा पश्चपिण्ड, जिसमें कोष्ठ और सूत्र रहते हैं। पश्चपिण्डका सम्बन्ध रक्त-चापसे है। इसके रसका उपयोग बहुमूत्र या मधुमेहमें और गर्भाशय-संकोचनके लिए किया जाता है। शरीरकी वृद्धि-गति पर पुरोपिण्डके रसका विशेष प्रभाव पड़ता है। यह लैंगिक रसों का विरोधी है। जबतक शरीरकी वृद्धि होती रहती है, तबतक लैंगिक चिह्नोंका प्रतिरोध होता रहता है। यदि शरीरमें से यह ग्रन्थि निकाल ली जाय, तो शीघ्र मृत्युकी आशंका रहती है।

सुप्रारीनल (Adrenals)

एडरीनल या सुप्रारीनल उपवृक्क-ग्रन्थियाँ हैं, जो वृक्क (Kidneys) के ऊपर होती हैं। इसके मेडूला और कोर-टेक्स दो भाग हैं।

मेडूला या मध्यरसका हृदयकी धड़कन और रक्तचापपर विशेष प्रभाव पड़ता है। भावावेशकी अवस्थामें अधिक रस निकलनेसे शरीरपर विषैला प्रभाव पड़ता है। इस रसकी अधिक मात्रा देनेसे शरीर चेतनाहीन होने लगता है, श्वास बन्द होने लगता है, हृदय बैठने लगता है और रुधिरकी धम-नियाँ फूट जाती हैं। कोरटेक्स या वल्क जीवनके लिए परमा-वश्यक है। इसके निकालनेसे मृत्यु निश्चित है। इसके अन्तः स्रावका सम्बन्ध लिंग-ग्रन्थियोंसे भी है। अण्डकोषोंको निकाल लेनेका प्रभाव उपवृक्क-ग्रन्थियोंकी चेष्टाओंपर भी पड़ता मधुमेह या डायबिटीज रोगमें ये ग्रन्थियाँ खराब हो जाती

प्रजनेन्द्रियाँ (Reproductory organs)

इनसे भी अन्तःस्राव हुआ करता है। इसका प्रमाण है कि अण्डकोषोंके छेदन करनेपर बहुत-से लैंगिक लक्षण वर्तित हो जाते हैं। शुक्र ग्रन्थियोंसे वीर्यका बहिःस्राव है और ग्रन्थिके मध्यमें कोष्ठोंसे अन्तःस्राव होता है। यह स्राव लैंगिक लक्षणोंपर अपना प्रभाव डालते हैं। इन के अन्तःस्रावका स्वास्थ्यपर बहुत लाभदायक परिणाम है। डिम्ब ग्रन्थियोंके अन्तःस्रावका प्रभाव नारीके जीवनपर विशेष रूपसे पड़ता है, यह सब स्वीकार करते डिम्ब, योनि, गर्भाशय और दुग्ध-ग्रन्थियोंमें ऋतु-परि इन्हींके आधारपर होता है। यदि डिम्ब-ग्रन्थियाँ निकाल जायँ, तो ये आवर्त-परिवर्तन बन्द हो जायँ। इन ग्रन्थि रस-स्राव रुधिरमें जाकर मिलता है और शरीरके भिन्न पहुँचता है। ऋतु-काल निश्चित होनेका कारण भी कि डिम्ब-ग्रन्थिसे अन्तःस्राव निश्चित आवर्त अवधि निकलता है।

क्लोम-ग्रन्थि (Pancreas)

क्लोम-ग्रन्थिके बहिःस्रावकी उपयोगिताका तो पता था ही, परन्तु सन् १८८६ ई० में वैज्ञानिकोंने द्वारा मालूम किया कि इस ग्रन्थिसे एक अति उपयोगी स्राव भी निकलता है। इस ग्रन्थिके निकाल देनेपर शर्करा अधिक आने लगती है, जैसा कि मधुमेहमें बहुधा है, वही लक्षण प्रकट होने लगते हैं। मूत्र अधिक मात्रामें लगता है और मनुष्यकी शक्तिका ह्रास होने लगता है। है कि यह ग्रन्थि मधुमेहको रोकनेमें सहायक है और खराबीसे यह रोग होता है।

योगके आसनोंका इन ग्रन्थियोंपर आश्चर्यजनक परिणाम होता है। जननेन्द्रियके दुरुपयोग और मात्रामें वीर्यनाशसे इन ग्रन्थियोंको बड़ा भारी धक्का जिससे ये निष्प्राण होने लगती हैं। इन चेतनाहीन ग्रन्थि पुनर्जीवित करनेकी अद्भुत क्षमता आसनोंमें है।

अस्थिर पृथ्वीके रहस्य

श्यामाचरण दुबे

'पृथ्वीकी तरह स्थिर' और 'समुद्रकी तरह गम्भीर'—ये उपमाएँ हमने बराबर सुनी हैं, किन्तु भू-गर्भ विद्या-विशारदोंके अनुसन्धानोंसे पता चलता है कि पृथ्वी न स्थिर है, और न समुद्र गम्भीर। पृथ्वी हमेशा घटती-बढ़ती रहती है—कुछ भाग इसके सिकुड़ते रहते हैं, कुछ फैलते रहते हैं, कुछ भाग ऊँचे होते रहते हैं तथा कुछ भाग नीचे होते रहते हैं। समुद्रमें भी कहीं बाढ़ आती रहती है, कहीं वह सूख जाता है।

पृथ्वी कभी भी शान्त नहीं रहती। मेरे कहनेका मतलब केवल यह नहीं कि वह सूर्यके चारों ओर चक्कर लगाया करती है। चक्कर तो वह लगाया ही करती है, उसका अन्तराल भी कभी शान्त नहीं रहता। उसमें बराबर अशान्तिके लक्षण दिखाई पड़ते रहते हैं, कहीं वह खसकती रहती है, कहीं सूखती रहती है और कहीं ऊपर उठती रहती है। यही अशान्ति जब काफ़ी बड़े परिमाणकी होती है, तब भूचालोंके रूपमें दिखाई पड़ती है, वैसे तो प्रतिवर्ष क़रीब-क़रीब ६०,००० भूचाल आया करते हैं।

वास्तवमें यह सारा विश्व एक तरहसे बालूकी नींवपर खड़ा है, किसी सघन दृढ़ आधारपर नहीं। हाल ही में उत्तर अमेरिकाके समुद्री शक्तिके अध्यक्षोंने, लांग-समुद्रतटके जहाजके कारखानेको बन्द कर दिया है। यह बात सुनकर कैलिफोर्नियाके सीनेटर नौ-लैण्डने नेवी-सेक्रेटरीका मजाक उड़ाया और उनपर यह लाँछन लगाया कि नेवी-सेक्रेटरीने अपनी सनकमें जहाजका कारखाना बन्द कर ५४०० आदमियोंको बेकार कर दिया। नेवी-सेक्रेटरी, किम्बालने बहुत शान्तिपूर्वक उत्तर दिया कि लोंग-समुद्रतटवर्त्ती जहाजके कारखानेको बन्द करनेका कारण मेरी सनक नहीं, पृथ्वीकी सनक है। भू-गर्भ-शास्त्रियोंने यह पता लगाया है कि लोंग-समुद्रतट, जहाँ जहाजका कारखाना था, वहाँकी जमीन प्रतिवर्ष १५ इंच नीचे खिसकती जा रही है। इसलिये यदि उस जगह बाँध न बाँधे जायँ, तो दो-तीन वर्षोंके अन्दर जहाजका कारखाना पैसफिक सागरके बड़े पेटमें चला जायगा। इसलिये ऐसी बालूकी नींवपर कारखाना क़ायम रखना ख़तरेसे खाली नहीं।

उत्तर-अमेरिकाके पूर्वी समुद्रतटकी ओर भी या तो पृथ्वी धँसती जा रही है या समुद्र बढ़ता आ रहा है। पिछले बीस वर्षोंमें समुद्रतलसे न्यूयार्क शहरकी ऊँचाई ४ इंच कम हो गई है। इसके पहले ४० वर्षोंमें केवल १ इंच कम हुई थी। इस प्रकार उत्तर-अमेरिकाका पूरा धरातल अस्थिर है। किन्तु भू-गर्भ-शास्त्री अभी यह भविष्यवाणी नहीं कर पा रहे हैं कि वाल-स्ट्रीटके वक्षस्थलपर जहाज कब चलने लगेंगे, और गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ मछलियोंकी केलि-कुंज कब बनेंगी, जिस प्रकार प्राचीन वेनिसमें आज समुद्र लहरें मार रहा है। कुछ भी हो, उत्तर-अमेरिकाका पूरा समुद्रतट आज परिवर्तनशील परिस्थितिमें दिखाई पड़ रहा है।

अमेरिकन समुद्रतटके निरीक्षक डा० एच० ए० मार्नर (Dr. H. A. Marner) इसकी विवेचना करनेमें असफल हैं कि समुद्रका तल क्यों उठता जा रहा है। उन्होंने बार-बार शहरोंकी ऊँचाई समुद्रतलसे नापी है। अपनी नाप-जोखमें उन्हें कोई भी अशुद्धि नहीं मिलती, किन्तु वे देखते हैं कि कुछ शहरोंकी ऊँचाई समुद्रतलसे कम होती जा रही है। उनकी समझमें इसके दो ही कारण हो सकते हैं या तो उत्तर-अमेरिकाकी पृथ्वी धँसती जा रही है, या गरमीके कारण आर्कटिक और अण्टारकटिक समुद्रोंकी बर्फ गल रही है, जिससे कि समुद्रका तल ऊँचा उठ रहा है। किन्तु अलास्काका तट समुद्रसे ऊँचा होता जा रहा है। यदि अमेरिकाके अन्य भागोंमें समुद्रकी ऊँचाई बढ़ रही है, तो अलास्काके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ समुद्र सूख रहा है। इसलिये ऐसा मालूम होता है कि कहीं पृथ्वीका धरातल धँस रहा है और कहीं ऊँचा उठ रहा है।

अमेरिकाके पश्चिम समुद्रतटकी ओर और भी विषम-विकृतिके लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। १९०६ में सैनफ्रैंसिसकोमें एक बहुत बड़ा भूचाल आया था, जिससे कि पृथ्वीमें एक बहुत बड़ी दरार पड़ गई थी। सैन-एण्ड्रियसके पास सरवेयरोंने इस दरारपर चिह्न लगा दिये थे। पिछले वर्ष इन चिह्नोंका जब निरीक्षण करनेके लिए वे गये, तो पता चला कि कैलिफोर्निया रियासतका एक बड़ा भाग उत्तर-पश्चिमकी ओर घूमता जा रहा है। दरारके चिह्न पिछले ६३ वर्षोंमें १० फुट उत्तर-पश्चिमकी ओर चले गये हैं। कैलिफोर्नियाकी ज़मीन नीचे भी धँसती जा रही है। इसका कारण भू-गर्भ-शास्त्रियोंने यह बतलाया है कि पृथ्वीकी निचली सतहका अधिकांश पानी निकाल लेनेसे ऐसा हुआ है। यहाँ पृथ्वी एकाएक नहीं धँसती, धीरे-धीरे धँसती है। सैनजोस घाटीमें २० से ४० मीलकी दूरीपर ५ फुट नीचे ज़मीन धँस रही है।

किन्तु कैलिफोर्नियाके पास पृथ्वीके स्तरमें इस परिवर्तनसे भू-गर्भ-शास्त्री अधिक चिन्तित नहीं हैं। उनका अनुमान है कि सैन-एण्ड्रियसके दरारके चारों ओरकी ज़मीन, पिछले २ करोड़ वर्षोंमें कभी भी स्थिर नहीं रही।

उत्तर-अमेरिकाके धरातलकी इस परिवर्तनशीलताके कारण कुछ शहरोंके बीचकी दूरीमें भी अन्तर पड़ता जा रहा है। १९२६ और १९३५ के बीच वैंकोवर, ओटावासे १६ फुट नज़दीक आ गया और वाशिंगटन डी० सी०, सैन-डिगो (कैलिफोर्निया) से ४० फुट दूर हो गया। १८७३ में इंगलैण्ड और ग्रीनलैण्डकी दूरी सबसे पहले नापी गई थी। १९०७ में जब यह दूरी फिर नापी गई, तो पता चला कि इन ३४ वर्षोंमें ग्रीनलैण्ड इंगलैण्डसे ३५ गज़ अधिक दूर हो गया है। भूगोलके कुछ विद्वानोंने इसे नापनेकी ग़लती बतलाया। दूसरोंने इसे घूमती हुई पृथ्वीका प्रमाण बतलाया।

पृथ्वीके धँसने और ऊपर उठते रहनेके प्रमाण अन्य भागोंमें भी मिलते हैं। नेपुल्सकी खाड़ीके पास बेई (Baiae) का एक छोटा-सा भू-खण्ड है। ईसाके १०० वर्ष पहले रोमके राजाने बेईमें एक विशाल महल बनवाया था। खम्भे जिनपर छत खड़ी थी, ४० फुट ऊँचे थे। किन्तु महलके बनते ही पृथ्वी धँसने लगी। रोमके बादशाहने अन्य खम्भे बनवाकर स... सहारा दिया, किन्तु पृथ्वी धँसती गई। थोड़े ही दिनों... फुटकी ऊँचाई तक महलमें पानी भर आया। महलमें म... के अड्डे जम गये। किन्तु फिर थोड़े दिनोंके बाद, जिस प्र... बेई भू-खण्डकी पृथ्वी धीरे-धीरे धँसी थी, उसी प्रकार ... धीरे ऊपर उठने लगी। १७४१ में यह समुद्रतलके ... ऊपर हो गई। किन्तु ८० वर्ष बाद यह फिर धँसने ... और महल पानीके अन्दर चला गया।

शेल्ड (Scheldt) नदीके मुहानेपर नीदरलैण्डके गाँ... धँसना और भी आश्चर्यजनक रहा। १५३० की ... रातको एकाएक वे उत्तर-सागरके पेटमें समा गये। कुछ ... कहते हैं कि जब समुद्रमें तूफ़ान आते हैं और लहरें ... हैं, तो इन डूबे हुए गाँवोंके गिरजाघरोंके घण्टे सुनाई ... हैं। ये घण्टे लहरोंसे टकराकर बज उठते हैं।

इसी प्रकार ज़मीनके कुछ भाग ऊपर भी उठते हैं। ... वर्ष पहले स्कैनडिनेविया द्वीप-समूह बर्फ़के समुदसे ऊपर ... लगा। तबसे प्रति शताब्दीमें ३ फुटकी गतिसे यह ... समूह ऊपर उठ रहा है। अफ़रीकाका पूर्वी समुद्रतट ... भी तीव्र-गतिसे ऊपर उठ रहा है। यह १०० वर्षोंमें ... ऊँचा उठ जाता है। किन्तु एड्रियाटिक सागरमें इटलीके ... पैलामारोलाकी उठान और भी अद्भुत है। १८२१ ... १८६२ के बीचमें यह २१३ फुट ऊँचा उठ गया, अर्थात् ... वर्ष क़रीब १ गज ऊँचा उठता रहा।

ऊँचा उठनेवाले और नीचे धँसनेवाले द्वीप-समूहोंकी ... श्रेणी ही है, जो तमाम भूमध्य सागर और पैसफ़िक ... फैली है। १८०५ के लगभग सिसलीके पास एक ... दिखाई पड़ा, १८३१ तक इसका क्षेत्रफल ४ वर्गमील ... गया। चतुर्थ विलियम और नेयल्सके राजाओंने इसे ... अपने अधिकारमें करनेके लिए सेना तैयार की। दोनों ... ओर बढ़े, किन्तु युद्धका अवसर ही न मिला। द्वीप ... भूमध्य सागरके पेटमें समा गया।

इसी प्रकार ट्रिनीडाडके राजाने देखा कि एक दिन ... बियन सागरके तलपर एक द्वीप दिखाई दे रहा है। ...

अंगरेजी फ़ौज पहुँची और उसने अपना झण्डा द्वीपपर गाड़ दिया, किन्तु दूसरे ही क्षण द्वीप गायब हो गया। पैसफ़िक सागरका फालकन द्वीप और भी अद्भुत है। कभी-कभी यह दिखाई पड़ जाता है। कुछ राष्ट्र अपना अधिकार जमानेके लिए दौड़ते हैं। उसपर अपना अधिकार भी कर लेते हैं, फिर यह गायब हो जाता है। थोड़े दिनोंके बाद फिर दिखाई देता है, और गायब हो जाता है। एक बार इसकी ऊँचाई समुद्रतलसे ३०० फुट ऊँची हो गई थी।

पैसफ़िक सागरके टुआना द्वीपकी विचित्रता और भी करुण रही। इसपर १३००० आदमियोंकी एक बस्ती थी। अधिकांश निवासी मछुए थे। एक दिन मछुए मछली मारनेके लिए सुबह अपने घरसे निकले। शामको लौटनेपर देखा कि उनके द्वीपका कहीं पता ही नहीं। उनके घरोंके ऊपर समुद्र लहरें मार रहा है।

अभी हाल ही में द्वितीय विश्व-युद्धकी समाप्तिके बाद टोकियोसे क़रीब २०० मील दक्षिणकी ओर एक यूरानिया द्वीप दिखायी पड़ा। जापानियोंने इसे ईश्वरकी अनुकम्पा समझा, सोचा भगवानने युद्धकी पराजयकी कमीको पूरा करनेके लिए हमें यह भेंट दिया है। बड़ी खुशीसे वे द्वीपकी ओर दौड़े और उसपर अपना अधिकार किया। किन्तु कुछ ही महीनोंके बाद थोड़े-से जापानियोंको भी लेकर द्वीप फिरसे समुद्रके पेटमें घुस गया।

यह तो पृथ्वीकी विचित्रताके उदाहरण हुए। समुद्रोंमें भी कहीं-कहीं बाढ़ आ रही है और कहीं ये सूखते जा रहे हैं। उत्तर कैरोलिनाके तटपर अटलांटिक समुद्र बढ़ता आ रहा है। उत्तर कैरोलिना स्टेट कालेजके प्रोफेसर सी० ई० फेल्टनर (C. E. Feltner) ने कहा है कि तटके लोग यदि अपना घर छोड़कर दूर नहीं चले जाते, तो थोड़े ही दिनोंमें समुद्रकी लहरें उन्हें बहा ले जायँगी।

अभी हाल ही में रूसके वैज्ञानिक ए० चैप्लिजीन (A. Chaplygin) ने कहा है कि कैस्पियन सागर सूखता जा रहा है। इसलिये उसके आसपासके उद्योगोंको बहुत हानि पहुँच रही है। मछुओंके उद्योग-धन्धे बन्द होते जा रहे हैं। उत्तर तटके ओर ८००० वर्गमील समुद्र सूख चुका है। १९३१ से वाल्गा नदी जितना पानी इसमें डालती है, उससे कहीं अधिक पानी सूख जाता है। अब रूसके वैज्ञानिक यह सोच रहे हैं कि समुद्रको सूखनेसे बचानेके लिए, उत्तर सगारमें गिरनेवाली कुछ नदियोंकी धारा कैस्पियन सागरकी ओर मोड़ दी जाय।

भू-गर्भ-विद्या-विशारदोंका तो कहना है कि पृथ्वी और समुद्रमें वर्त्तमान समयके ये परिवर्तन, प्राचीन कालमें होनेवाले परिवर्तनोंकी तुलनामें कुछ नहीं हैं। करोड़ों वर्ष पहले विश्वका नक्शा बिलकुल भिन्न था। आजके पहाड़ोंपर ऐसी बहुत-सी चट्टानें पाई जाती हैं, जो हज़ारों वर्षों तक समुद्रके नीचे रहीं। हिमालय और आल्प्स पहाड़की ऊँची-ऊँची चोटियोंपर समुद्री जीवोंके अवशेष पाये गये हैं। बाँफके पास आज भी मूँगेकी सीपियोंके चिह्न पाये जाते हैं। इससे पता चलता है कि आज जो कनैडियन राकी है, वहां कुछ दिन पहले समुद्र लहरें मार रहा था।

वर्त्तमान भू-गर्भ-शास्त्री अपने सिद्धान्तोंसे इन तथ्योंका उत्तर देनेका प्रयत्न करते हैं कि पृथ्वी इतनी अस्थिर क्यों है? क्यों इतनी घनाकार मालूम पड़नेवाली पृथ्वीके अन्दरसे भूचाल की छोटी-छोटी लहरें भी मालूम पड़ जाती हैं? वे कहते हैं कि पृथ्वीकी तह बहुत पतली है। यह केवल १० से २० मील तक मोटी है। चट्टानों और मिट्टीकी यह तह एक विशाल समुद्रके वक्षस्थलपर छोटी-सी नावकी तरह तैर रही है। कुछ भू-गर्भ-शास्त्रियोंको तो यह आश्चर्य होता है कि हमारी पृथ्वी-रूपी छोटी-सी नाव अबतक इतनी स्थिर कैसे है। वह विशाल समुद्रके वक्षस्थलपर तैरती और इधर-उधर घूमती क्यों नहीं रहती।

हाल ही में जर्मनीके भू-गर्भ-विद्या-विचक्षण एलफ्रेड वेगनरने बहुत ही नवीन सिद्धान्त विश्वके सामने रक्खा है। उनका कहना है कि आज जो पृथक-पृथक द्वीप और विशाल भू-खण्ड दिखाई पड़ रहे हैं, वे किसी समय परस्पर सम्बद्ध पृथ्वी-खण्ड थे। क्रमशः पृथ्वीके चक्कर खाते रहनेसे वे एक दूसरेसे पृथक हो गये, समुद्र उनके बीच-बीचमें आ गया।

अमेरिका पश्चिमकी ओर चला गया और टूटकर दो हो गया। इसे महाद्वीपीय-प्रवाह (Continental drift) का सिद्धान्त कहते हैं। कुछ लोगोंका विचार है कि वेगनर साहब अपने सिद्धान्तको सिद्ध करनेके लिए प्रमाण एकत्र करने ग्रीनलैण्डकी ओर गये थे। वहाँ बर्फकी आँधीने उन्हें समाप्त कर दिया।

दक्षिण अफ़रीकाके अलेक्जेण्डर-डू-ट्वाय (Alexander-du-toit) ने वेगनरके सिद्धान्तको प्रमाणित माना है। उन्होंने बहुत-से महाद्वीपोंका निरीक्षण किया है, और पृथ्वीके गर्भसे बहुत-से प्रमाणोंको एकत्र किया है। दक्षिण-अमेरिकाके पास फाकलैण्ड द्वीप वनस्पति और जीव-जन्तुओंके दृष्टिकोणसे दक्षिण अफ़रीकासे मिलता-जुलता है, दक्षिण अमेरिकासे नहीं। इससे पता चलता है कि यह अफ़रीकाका एक भाग था। ऐसे ही बहुत-से प्रमाणोंसे अलेक्जेण्डर साहब इस सिद्धान्तपर पहुँचे हैं कि प्राक्-ऐतिहासिक कालमें आजके सब महाद्वीप एक ही भू-खण्डके भाग थे।

सिंसीनाटी विश्वविद्यालय (Cincinnati University) के भू-गर्भ-शास्त्रके प्रोफेसर डा० केनेथ ई० कोस्टर (Dr. Kenneth E. Coster) भी वेगनरके सिद्धान्तको प्रमाणित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। उन्होंने दक्षिण अमेरिकामें ४ वर्ष तक भ्रमण किया है, और यह पता लगाया है कि अफ़रीका और ब्राजीलके कोयलोंके स्तरोंमें जो भिन्नता पाई जाती है, उसका कारण महाद्वीपीय उद्गमकी भिन्नता नहीं, वरन् स्थानीय परिस्थितियाँ हैं। मूल उद्गम दोनोंका एक ही है, वातावरणकी स्थानीय परिस्थितियोंके कारण उनके स्तरों… भिन्नता आ गई है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि … अमेरिका और अफ़रीका, दोनों किसी समय पृथ्वीके ए… भू-खण्ड थे।

वनस्पति-शास्त्रके विद्वान्, जो पृथ्वीके गर्भमें छिपे… वनस्पतियोंका अध्ययन करते हैं, उन्होने पता लगाया है… 'फर्न' (Firn) नामकी एक वनस्पति क़रीब १० करोड़… पहले दक्षिण गोलार्द्धके तमाम देशोंमें पाई जाती थी। … अवशेष आज भी भारत अफ़रीका, दक्षिण अमेरिका, … लिया और न्यूजीलैण्डके भू-गर्भमें मिलते हैं। इससे… चलता है कि ये सब देश उस समय परस्पर संश्लिष्ट ए… भू-खण्ड थे। इस भू-खण्डका नाम इन विद्वानोंने गोण्डवा… लैण्ड (Gondwanaland) रखा है। कुछ समयके… इस भू-खण्डके टुकड़े-टुकड़े हो गये, और इसका मध्यवर्ती… दक्षिण पोलकी ओर खिसककर अण्टारकटिका (Antarc-tica) हो गया।

इन सब अनुसन्धानोंसे पता चलता है कि हमारी … कितनी अस्थिर और परिवर्तनशील है। यह किस प्रकार… अकल्पनीय महासमुद्रके ऊपर छोटी-सी नावकी भाँति तैर… है कौन जानता है कि अमेरिकाके ऐटम-बम और रूसके ह… जन-बमकी फैक्टरियाँ कल महाद्वीपीय प्रवाहकी धारामें … सदाके लिए लुप्त हो जाय। किन्तु अपनेको महान् सम… वाला मनुष्य इस क्षण-भंगुर जीवनमें, दूसरोंकी गला … ही अपनेको महान् समझ रहा है।

भारत और स्याम : रीति-रिवाज़की दृष्टिसे

रघुनाथ शर्मा

गत जनवरीके 'विशाल भारत'में भारत और स्यामकी सांस्कृतिक समतापर इन पंक्तियोंके लेखकने कुछ प्रकाश डाला था। इस लेखमें इन पंक्तियोंका लेखक स्याम देशके रीति-रिवाज तथा रहन-सहनकी ओर पाठकोंकी दृष्टि आकर्षित करेगा।

यह बताया जा चुका है कि यह देश भारतके कितना समीप है, और भारतीय संस्कृतिसे कितना ओत-प्रोत है। अतः भाषाके बाद यहांके रीति-रिवाज तथा रहन-सहनकी चर्चा करनी है।

१—स्याममें बच्चोंके जन्मपर प्रायः चोटी रख दी जाती है। बादमें वह विधिपूर्वक मुण्डन संस्कार द्वारा काटी जाती है। इसी तरह लड़कियोंके कर्णबेध संस्कारकी भी प्रथा है; और इन दोनों अवसरोंपर प्रायः सभी बन्धु-बान्धव इकट्ठे होते हैं। रामलीलाके गान-वाद्य आदि किये तथा कराये जाते हैं।

२—यज्ञोपवीत-संस्कार-प्रथाका रूप यह है कि प्रत्येक बालकको ब्रह्मचारीकी शक्लमें प्रायः बीस वर्षकी आयु तक रहना पड़ता है; और रहना पड़ता है, उन्हें पीत वस्त्रोंमें तथा मन्दिरोंमें ही। वहाँ उन्हें धार्मिक तथा सामाजिक शिक्षा दी जाती है।

यह प्रथा प्रत्येक थाई बच्चेके लिए प्रायः अनिवार्य है और उन्हें 'सवनेन' अर्थात् 'श्रवणेन' नामसे सम्बोधित किया जाता है। विवाह इस संस्कारके बाद ही प्रायः होता है।

३—पाणिग्रहण अर्थात् विवाह—इसे यहाँपर 'स्वयं फोन' अर्थात् 'स्वयंवर'के नामसे पुकारा जाता है। यह रीति भी पूर्णतया भारतीय पुरातन रीतिके अनुरूप ही सम्पन्न होती है। इस अवसरपर भिक्षुलोग माङ्गलिक मन्त्रोच्चारकर आशीर्वाद देते हैं तथा वयोवृद्ध लोग वर-वधूके सिरपर जलाभिषेककर गृहस्थधर्म सम्बन्धी धर्मोपदेश देकर आशीर्वाद देते हैं। बादमें भिक्षुओंको वस्त्रादि दान दिये जाते हैं तथा सम्मिलित प्रीतिभोज आदि होते हैं। यहाँपर जायदादका हक़ लड़के-लड़कियोंका एक-सा माना जाता है, और इसी अवसरपर लड़कियाँ अपने हक़को बटवारेमें पाती हैं। सम्मिलित परिवारकी प्रथा यहाँपर नहीं है। शादीके बाद उसी दिनसे दम्पति निर्धारित घरमें रहना प्रारम्भ करते हैं, और प्रत्येक समय दोनों अपने माता-पिता बन्धु-बान्धवोंसे भेंट-मुलाक़ात सेवा-सुश्रुषा आदिके लिए जाया-आया करते हैं।

यहाँ लड़कियाँ अपना पति चुननेमें स्वतन्त्र होती हैं, पर दोनों पक्षोंके माता-पिता आदिकी सम्मति प्राप्त करना अनिवार्य है। माता-पिता आदि भी अपनी इच्छासे योग्य वर-वधूका चुनाव प्रायः कर देते हैं, पर इसके लिए भी लड़के-लड़की की सम्मति प्राप्त करना अनिवार्य है।

किसी विशेष कारणसे स्त्री-पुरुष एक-दूसरेको छोड़ देनेमें पूरे स्वतन्त्र हैं। यहाँपर विधवा-विवाह सम्मानित दृष्टिसे देखा जाता है। परदेकी प्रथा यहाँ नामको भी नहीं है।

४—राज्याभिषेकको यहाँपर राज्याभिषेक ही कहते हैं,—और यह प्रथा भी यहाँ ठीक वैसे ही सम्पन्न की जाती है, जैसे भारतमें प्रचलित शास्त्रविधि-विधान रीतिके समान।

कई एक पुनीततोया नदियोंके जलसे राजाको स्नान कराया जाता है। (जिनमें भारतकी कुछ नदियाँ भी सम्मिलित हैं) कई दिनों तक भिक्षुसंघ मन्त्रोच्चारण करते हैं, तथा ब्राह्मण पुरोहित लोगों (जिन्हें यहाँ पुरोहित ही कहा जाता है) द्वारा ही यह प्रथा सम्पन्न की जाती है। उन कई एक अवसरोंपर महाराजको विशेष वस्त्र पहनाये जाते हैं, तथा गोरोचनादिका तिलक किया जाता है।

५—विदेश गमनागमनके उपलक्ष्यमें तथा बीमारी आदि कई एक अवसरोंपर 'मनौती' मनानेकी प्रथा भी यहाँपर है, जो प्रायः रामलीला आदिके रूपमें ही होती है।

कथा तथा उपदेशोंके अवसरपर घुटने टेककर बैठनेकी रीति

यहाँपर अबाल-वृद्ध, सर्वसाधारणके एक-सी है। ऐसे अवसरोंपर पूर्ण निस्तब्धता एक विशेष गुणके रूपमें यहाँ पाई जाती है।

६—परस्पर मिलनेके समय प्रणाम करनेका ढँग एकदम भारतीय ही है। अर्थात्—दोनों हाथ उठाकर तथा जोड़कर प्रणाम आदि किये जाते हैं। छोटे बड़ोंके सामने नतजानू हो प्रणाम करते हैं तथा झुककर ही आगेसे गुजरते हैं। छोटे बात भी बड़ोंके समक्ष घुटने टेककर तथा झुककर ही करते हैं।

७—अभिवादन तथा प्रत्याभिवादनके लिए समस्त देश भरमें 'स्वस्ति' यह एक ही शब्द व्यवहारमें लाया जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरा अन्य कोई भी शब्द व्यवहारमें यहाँ नहीं है। घरमें आये अतिथिका सम्मान इनके जीवनका प्रधान अंग है।

८—शवको यहाँपर शव ही कहते हैं और उसे यहाँ जलानेकी ही प्रथा है। यहाँ शवको कई दिनों तक रखनेका रिवाज है, और बड़े महोत्सवके साथ उसे दाह-संस्कार करनेका भी। शवको एक प्रकारकी काष्ठ निर्मित पेटिकामें बहुत-सी सुगन्धित वस्तुओंसे भरकर घरमें अथवा मन्दिरोंमें रख दिया जाता है; और कई दिनों तक भिक्षुओं द्वारा मन्त्र पाठ कराया जाता है। इस अवसरपर हरएक अपनी शक्ति-अनुरूप खर्च करना अपना कर्त्तव्य समझता है, जिनमें भिक्षुओंको दान-भोजनादि सम्मिलित है और ऐसे ही सह भोजनादि भी।

हस्त रेखा दिखाने तथा ज्योतिष द्वारा भाग्यके शुभाशुभ आदिपर इस देशवासियोंका प्रायः पूरा विश्वास है, विशेषकर देहातोंमें वयोवृद्ध भिक्षुओं द्वारा मन्त्रित चिकित्सा आदिका भी।

इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-सी छोटी-मोटी भारतीय यहाँपर प्रचलित हैं। इस देशके लोगोंका घरोंमें रहन बहुत सादा-सुव्यवस्थित तथा साफ-सुथरा होता है। बड़े घरों तकमें चाहे कितना भी सामान क्यों न हो चतुराईसे रखा रहता है। स्यामका प्रत्येक घर, दूकान, कार्यालय शिल्पका एक अनुकरणीय नमूना होता है। लेकर छोटे-बड़े सब-के-सब बहुत ही साफ-सुथरे रहते हैं।

मैले-कुचैले रहना इनके स्वभावमें ही नहीं है, तरह रहने, रखने तथा देखने आदिसे उन्हें घृणा भी परिस्थितिके अनुरूप गृहस्थीके सभी सामान इनके घरोंमें जाते हैं, चाहे वे बहुमूल्य ही क्यों न हों। हरएक प्रिय वस्तु संग्रह ये लोग अवश्य रखते हैं, व्यवहारके उद्देश्यसे—संग्रह उद्देश्यसे नहीं।

स्त्रियाँ दो-एक साधारण भूषणोंको छोड़ अधिक चाँदी तथा हीरक जमाकर रखनेकी बिलकुल आदी नहीं हैं और न सिल्मे-सितारे आदि लगे वस्त्रोंकी ही। यहाँके लोग अपव्यय समझते हैं और देश-जातिके अहितकर भी।

एक बुनियादी आर्थिक सिद्धान्त

रामेश्वर गुप्त

उन्नति धनकी बचत (Saving of money) पर निर्भर रहती है। फिर वह उन्नति चाहे व्यक्तिकी हो अथवा राष्ट्रकी। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि व्यक्ति और राष्ट्र यानी समाजकी उन्नति अन्योन्याश्रित हैं। उन्नतिका यहाँ अर्थ है—भौतिक एवं सांस्कृतिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति। भौतिक उन्नति अर्थात् जीवनकी आवश्यक वस्तुएँ यथा भोजन, कपड़ा, मकान अच्छे मिलें और बहुतायतसे मिलें। सांस्कृतिक उन्नति अर्थात् रहन-सहनमें स्वच्छता हो, कलात्मकता हो, साहित्य, कला, विज्ञानका खूब पठन-पाठन हो इत्यादि। उन्नती बचत—जो उन्नतिकी आधारशिला है—निर्भर करती है त्याग एवं हमारी कंजूसीपर। त्याग अर्थात् जो कुछ भी अपने परिश्रमसे पैदा करते हैं, वह सारा-का-सारा स्वयं न उसमेंसे कुछ अंश समाजके लिए छोड़ दें, अथवा जो कुछ हम सामाजिक काम करते हैं, उसकी क़ीमत पूरी न ले क़ीमतका कुछ अंश समाजके लिए ही छोड़ दें या समाज किसी अन्य दूसरे रूपमें लौटा दें। कंजूसी, अर्थात् जो साधारणतया खर्च हो जाना चाहिए था, उसको अपने स्वयं आराममें कमी करें, खर्च न करें और बचाकर

गाँठमें रख लें। यही अपनी गाँठमें कंजूसीसे दबाया हुआ पैसा यदि हम, चाहे ब्याजके बदलेमें ही सही, समाज अथवा सरकार (स्टेट) को उद्योगोंमें लगानेके लिए दे देते हैं, तो वही कंजूसी एक त्याग एक बहुत बड़ी समाज अथवा राष्ट्र-सेवा बन जाती है।

उपर्युक्त बातें कुछ उदाहरणोंसे समझमें आ सकेंगी। पहले हम इस बातको लेते हैं कि व्यक्तिकी उन्नति धनकी बचत (Saving) पर निर्भर करती है। ऐसे एक व्यक्तिका उदाहरण लीजिये, जिसकी इतनी कमाई है कि वह साधारणतया खा-पी भर ले। फिर यह मान लीजिये कि यह व्यक्ति ऐसे समाजमें रहता है, जिसका संगठन व्यक्तिवाद (Individualism) एवं प्रचलित पूँजीवादी आर्थिक संगठनके सिद्धान्तों पर है। जैसा रूसको छोड़कर दुनियाके लगभग और सभी देशोंमें है। ऐसी हालतमें जितना वह कमाता है, यदि वह सारा-का-सारा खाने-पीनेमें ही खर्च कर दे, तो किसी भी प्रकारकी सांस्कृतिक उन्नति नहीं कर सकता। किन्तु यदि वह किसी प्रकार कंजूसी करके अपने खाने-पीनेसे कुछ बचा लें, तो उसके पास कुछ दिनोंमें ऐसा साधन हो सकता है, कि वह अपनी सांस्कृतिक उन्नति कर सके। यथा अपने बचे हुए पैसेसे वह पुस्तकें उपलब्ध करके अपने ज्ञानको बढ़ा सकता है, या किसी कलामें दिलचस्पी लेकर (जैसे चित्रकला, संगीत, काव्य, साहित्य इत्यादि) उसमें कुछ प्रवृत्त हो सकता है। अथवा अपने अवकाशके समय किन्हीं महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर भ्रमण करनेके लिए जा सकता है इत्यादि। इन बातोंसे अपनी सांस्कृतिक उन्नति कर सकता है अथवा वह अपने बचे हुए पैसेको किसी छोटे-मोटे उद्योगमें लगा सकता है और इस प्रकार और अधिक पैसा पैदा करके अपने जीवन-स्तरको उच्चतर बना सकता है। अथवा वह यह भी न करे और हम केवल निर्मम भौतिक दृष्टिसे ही देखें, तो बचे हुए पैसेका उसके पास इतना जबरदस्त सहारा हो सकता है कि वह आजके जमानेमें आजकी हालतोंमें प्रतिपल मनुष्यके अन्तरको डराने रहनेवाले इस चिन्ताभारसे कि "आज तो खानेको मिल गया, कल क्या होगा"—बचा रह सकता है। पैसेके बलपर इस चेतनामय जीवनमें ऐसी दृढ़ता रहना कोई कम बात नहीं है, बल्कि यही तो मानसिक आनन्दका प्राथमिक आधार है। ऐसे ही 'योगी' एवं 'महात्मा' आध्यात्मिक उन्नति करनेमें सफल हुए हैं, जिनके पास प्रतिदिन एक सेर दूध एवं चार केले अथवा आधा सेर बकरीका दूध एवं चार सन्तरोंका बराबर प्रबन्ध रहा है। ऐसे सैकड़ों संन्यासी देखनेमें आते हैं, जो भोजनके प्रतिदिनके निश्चित प्रबन्धके अभावमें दबे हुए-से रह जाते हैं, निम्न भिक्षावृत्ति बरबस उनके दिलोंमें घरकर बैठती है और जिस परमात्मा, जिस 'परमतत्व' या मोक्षकी खोजमें वे घरसे निकले थे, उससे वे और भी दूर चले जाते हैं।

राष्ट्रिय उन्नति

फिर ऐसे ही (पूँजीवादी, व्यक्तिवादी) समाजमें ऐसे व्यक्तिका उदाहरण लीजिये, जो इतना कमाता है कि साधारणतया काफ़ी अच्छी तरह खाने-पीने-पहननेके बाद भी उसके पास पर्याप्त पैसा बच जाता है। इस अतिरिक्त पैसेको वह व्यक्ति यदि मौज-बहारमें ही उड़ा देता है, तो समाज या राष्ट्रके प्रति वह एक अक्षम्य अपराध करता है। वह अतिरिक्त पैसा, विशेष मौज-बहारसे बचाकर उसे किसी उत्पादक उद्योगमें लगाना ही चाहिए। यदि यह अतिरिक्त पैसा कृषि या अन्य प्रकारके उद्योगोंमें नहीं लगाया जाय, तो राष्ट्र तथा देशकी उन्नति हरगिज नहीं हो सकती। औद्योगिक उन्नतिका आधार यही बचा हुआ पैसा (Saved money) ही पूँजी है। उपर्युक्त व्यक्ति या ऐसी ही स्थितिवाले व्यक्तियोंका अतिरिक्त पैसा उत्पादक उद्योगोंमें लगे—उससे और भी अधिक कमाई अथवा और भी अधिक पूँजीकी बचत होगी। वह अधिक कमाई अथवा बचत किया हुआ पैसा और भी नये-नये उद्योगों में लगे; इसी ढंगसे देश अथवा राष्ट्रका औद्योगिक विकास होता है। एवं देशमें राष्ट्रिय धनकी अभिवृद्धि होती है। पिछले १००-१२५ वर्षोंमें ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस इत्यादि देशोंके औद्योगिक विकासकी कहानी इसी प्रकारकी है। और इस बातसे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि बचत किये हुए (Saved money) रुपयेके आधारपर बढ़ते हुए इन देशोंने अभूतपूर्व भौतिक एवं सांस्कृतिक उन्नति की। भौतिक उन्नति-यहाँ तक कि अच्छे खाने-पीनेके अलावा लगभग प्रत्येक मज-

दूरके पास आज अपनी स्वयंकी मोटरकार है और स्वयंका रेडियो है और सांस्कृतिक उन्नति यहाँ तक कि प्रायः सभी लोग शिक्षित हैं—पहलेसे बहुत अधिक स्वच्छ एवं स्वस्थ हैं एवं बीमारियोंसे मुक्त हैं। (पिछले महायुद्धसे उत्पन्न विशेष परिस्थितियोंकी बात हम यहाँ छोड़ देते हैं)।

समाजवादी संगठनमें पैसेकी बचतका महत्त्व

औद्योगिक एवं आर्थिक विकासकी जो बात कही गई है, उसके सम्बन्धमें यह बात कही जा सकती है कि यह औद्योगिक एवं आर्थिक विकास तो मजदूरोंका शोषण करके हुआ है। १९वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें साम्यवाद (कम्यूनिज़्म) के प्रवर्त्तक कार्लमार्क्स (Karl Marx) ने एक नया सिद्धान्त निकाला था, जिसे 'अतिरिक्त क़ीमतका सिद्धान्त' (Theory of surplus value) कहते हैं। इसके अनुसार—मानों एक मजदूर सूत (yarn) बनाता है। जिस और जितनी चीज़का (रूई मान लो २४ रतल) वह सूत बनाता है—मान लो उसकी क़ीमत पहलेसे ही २०) रु० है। इस चीजका सूत बनानेमें मानों २) रु० का कोयला, तेल इत्यादि और लग जाता है। उपर्युक्त चीजमें से सूत बननेके बाद मानों उसकी क़ीमत ३०) रु० है। इस ३०) रु०में से २०) रु० तो प्रारम्भिक चीजकी क़ीमतके गये; २) रु० सूत बनते वक्त अन्य कुछ सामान लगा, उसके गये; अब बाक़ीके जो ८) रु० बचे, वह उस चीजकी 'अतिरिक्त क़ीमत' (Surplus value) हुई। यह अतिरिक्त क़ीमत केवल मजदूरके परिश्रम से ही सूतमें पैदा हुई। अतएव यह सब-की-सब मजदूरकी जेबमें जानी चाहिए। किन्तु पूँजीपति इसमें से केवल एक भाग ही मानों २) रु० ही मजदूरको देता है, और बाक़ी ६) रु० खुद रख लेता है। इस प्रकार वह मजदूरका शोषण करता है। और इस शोषणकी कमाईपर पूँजीपति और भी मोटा होता है—अर्थात् उस कमाईको और उद्योगोंमें लगाकर और भी पैसा कमाता है। आज यह उपर्युक्त क़ीमतका सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं। यहाँ तक कि बहुत-से समाजवादी अर्थशास्त्री भी इसको नहीं मानते कि ८) रु० जो अतिरिक्त क़ीमत सूतकी आई, वह केवल मजदूरके परिश्रमका फल है। यह २) रु० सूतकी कुल क़ीमत प्रारम्भिक चीज़के २०) रु०; तेल इ… के २) रु० और मज़दूरके परिश्रमके अलावा, कई अन्य … बातोंपर निर्भर है—जैसे बाज़ारकी स्थिति यानी बाज़ारमें … की माँग और ज़रूरत इत्यादि। ऐसी स्थितिमें यह भी … हो सकता है कि चीज़की क़ीमत केवल २३-२४ रु० ही … जाय या ३५-३६ रु० भी हो जाय, तब तो मज़दूरके … उत्पन्न की हुई अतिरिक्त क़ीमत एक दशामें उपर्युक्त … गये बजाय ८) रु० के १) या २) ही रह जायेगी और … दशामें १३) या १४)। मज़दूरने उस चीज़पर … तो उतना ही किया, फिर यह फ़र्क़ क्यों?

ख़ैर हम अपनी ओरसे बहसके लिए यह मान भी … यह अतिरिक्त क़ीमत केवल मज़दूरके परिश्रमसे आती है, … भी हमारी इस बातमें कि औद्योगिक उन्नतिका आधार … बचतपर ही अवलम्बित है। कोई फ़र्क़ नहीं आता। … गिक उन्नति करनी है, तो उसमें कहीं-न-कहींसे पैसा … बचाकर लगानी ही पड़ेगी। हमारी इससे कोई बहस नहीं … वह पैसा पूँजीपतिकी जेबमें से आता है या मज़दूरकी … उपर्युक्त ८) रु० की अतिरिक्त क़ीमतमें से मानलो पूँ… मज़दूरका शोषण करके ६) रु० खुद ले गया, तो औ… उन्नति या विकासके लिए यह ६) रु० उद्योगमें लग ही … चाहिए। फिर मानलो यह ६) रु० पूँजीपतिके पास न … मज़दूरके ही पास रह जाता है तो भी, यदि औद्योगिक … या विकास करना है, तो यह रुपया मज़दूर द्वारा बचाया … उद्योगमें लग ही जाना चाहिए। यदि मज़दूर उस … ६) रु०की कमाईको योंही उड़ा देता है और कंजूसी … नचाता नहीं तो उन्नति सम्भव नहीं।

हम इसी बातका एक दूसरी दृष्टिसे भी विचार करें … मानों एक चालू उद्योग है, जिसमें कुल मिलाकर १०० … और क्लर्क काम करते हैं। मान लो उस उद्योगमें … कमाई होती है, सबकी सब बराबर उन १०० आदमियों … दी जाती है। और कमाईका एक पैसा भी उन १०० … करोंके अलावा किसी दूसरेके पास नहीं जाता। … स्थितिके लिए हम कहेंगे कि इसमें शोषण बिलकुल …

होता। इस प्रकार इन १०० आदमियोंके पास बँटवारेमें जो धन बराबर-बराबर आता है। मान लो वे उसमें से एक भी पैसा बचाकर किसी उद्योगमें नहीं लगाते। फिर मानो उन १०० आदमियोंके अलावा कोई बड़ा १०१ वाँ आदमी उस उद्योगमें आता है और जबरदस्ती या किसी तरीक़ेसे ऐसा प्रबन्ध करता है कि उद्योगकी कुल कमाईका आधा हिस्सा तो स्वयं अकेला ले जाता है और बाक़ीका बचा हुआ हिस्सा उन १०० आदमियोंमें बराबर-बराबर बाँट देता है। स्वयं अकेला जो आधा हिस्सा ले जाता है, मान लो वह किसी उद्योगमें लगा देता है। तो ऐसी स्थितिमें हम कहेंगे कि वह बड़ा आदमी उन १०० आदमियोंका शोषण करता है। किन्तु मान लो वे ही १०० आदमी, जब कि पूरी कमाईमें उनको हिस्सा मिल रहा था, आराम एवं मौजकी भावनाको त्यागकर, कमाईका आधा-आधा भाग बचाकर सब किसी एक उद्योगमें लगा देते, तो ऐसी स्थितिमें हम उसे शोषण न कहकर 'त्याग' या ज़्यादा-से-ज़्यादा 'कंजूसी' कहते। तात्पर्य इतना ही है कि शोषण कहिये या त्याग या कंजूसी—किसी भी प्रकार हो रुपयेकी बचत होनी चाहिए—तभी औद्योगिक विकास और उसके द्वारा राष्ट्रिय धनमें वृद्धि होकर फिर सम्पूर्ण राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है।

रूसमें भी, जहाँका आर्थिक संगठन समाजवादी है, इंगलैण्डमें भी, जहाँ कई उद्योगोंका राष्ट्रियकरण हो चुका है—ऐसी बात बिलकुल भी नहीं कि किसी कारखानेमें जितने भी मजदूर काम करते हों, उस कारखानेकी कमाई सब-की सब उन मजदूरोंके पास ही चली जाती हो। उन मजदूरों द्वारा जितनी भी अतिरिक्त क़ीमत पैदा की जाती है—वह अतिरिक्त क़ीमत जो कि मार्क्सके सिद्धान्तके अनुसार सब-की-सब मजदूरोंके पास चली जानी चाहिए थी—मजदूरोंको न दी जाकर, उसका विशेष भाग सरकार ही (दूसरे शब्दोंमें राज्य या स्टेट कहिये) अपने पास रख लेती है और सरकार उस रुपयेको या तो विशेष औद्योगिक विकासके लिए किसी उद्योगमें ही लगा देती है—या फिर लोगोंकी सांस्कृतिक उन्नति—यथा शिक्षा, स्वास्थ्य आदिकी उन्नति—के लिए खर्च करती है। आपने देखा—मजदूरका तो शोषण ही हुआ—जितनी भी अतिरिक्त क़ीमत (Surplus Value) उसने पैदा की थी, वह सब-की-सब समाजवादी समाजमें भी उसको न मिली। पूँजीवादी समाजसे फ़र्क़ इतना ही रहा कि 'अतिरिक्त क़ीमत' कुछ इने-गिने लोगों (पूँजीपतियों) के हाथमें जानेके बजाय सरकारके हाथमें गई—जो उसका उपयोग विशेष औद्योगिक विकास या सांस्कृतिक उन्नतिके लिए करती है। इसी प्रकार पूँजीवादी संगठनमें यदि पूँजीपति लोग 'अतिरिक्त क़ीमत' उद्योगोंके विकासमें लगाते हैं—या शिक्षा (स्कूल, कालेजों) में लगाते हैं, तो ठीक ही है, किन्तु यदि वे ऐसा नहीं करते और अपनी कमाई मौज-बहारमें उड़ाते हैं, तो उन्हें समाज और राष्ट्रका दुश्मन समझना चाहिए।

किन्तु यह बुनियादी बात तो आपने देख ही ली होगी कि उन्नतिके लिए पैसेकी बचत (Saving of money) तो होनी ही चाहिए—चाहे वह बचत शोषण द्वारा हो, चाहे स्वेच्छासे त्याग द्वारा। शोषण और त्याग—दोनों वास्तविकतः तो एक ही वस्तु हैं—सिर्फ़ दृष्टिकोणका भेद हैं। यदि हम समाज सेवाकी भावनासे प्रेरित होते हैं, तो हम इसे त्याग कहेंगे, और यदि हम इस भावनासे प्रेरित होते हैं कि पूँजीपति या सरकार (स्टेट) हमारे पाससे हमारी मेहनतका पैसा जबरदस्ती लेती है, तो हम इसे शोषण कहेंगे। उत्तम स्थिति तो यही है कि हम "समाजके प्रति हमारा कुछ उत्तरदायित्व है" इस भावनासे प्रेरित हों—और हम कुछ बचायें—त्याग करें। यही त्याग समाज अथवा राष्ट्रकी उन्नतिके मूलमें है। यह एक आदि सत्य है और यह सत्य तब तक बना रहेगा, जब तक सारी दुनियामें किसी प्रकार—किसी अभूतपूर्व वैज्ञानिक उन्नति द्वारा हो या जनसंख्यामें किसी अचानक अभूतपूर्व कमी द्वारा हो—ऐसी स्थिति नहीं आ जाती कि सब वस्तुओंका बाहुल्य न हो जाय कि जो जितना चाहे समाजके भण्डारमें से खुशी-खुशी उठा ले। ऐसी स्थिति अभी तक न तो रूसमें और न अमेरिकामें और न और कहीं आई है। पता नहीं भविष्यमें कभी ऐसी स्थिति सम्भव है या नहीं। जब तक ऐसी स्थिति नहीं आती, तब तक तो उन्नतिका आधार त्याग, कंजूसी (त्याग द्वारा धनकी बचत, कंजूसी द्वारा धनकी बचत) ही है।

'प्रसाद'की सौन्दर्यानुभूति

रामसुरेश त्रिपाठी

प्रसादजी क्रान्तदर्शी थे। वे जीवनके मनोरम व्यापारों और रूपोंकी अभिव्यंजना ही नहीं करते थे, उनका विश्लेषण भी करते थे। उनकी कला-कृतियोंमें जहाँ प्रेमके विविध भावोंकी अभिव्यक्ति है वहाँ प्रेमकी व्याख्या भी है; जहाँ सौन्दर्यके अपूर्व चित्र बिखरे पड़े हैं, वहाँ सौन्दर्यकी परिभाषा भी है। सौन्दर्य देखनेमें सरल है, अनुभवमें रसमय है, पर विचारमें गहन जान पड़ता है। दार्शनिक और कलाकार दोनों ही अपनी परिस्थिति और भावनाके अनुकूल इसे विभिन्न रूपमें देखते-परखते रहे हैं। प्रसादजीने सौन्दर्यके रूपको देखा है, उसके हृदयको देखा है और उसकी आत्माके भी दर्शन किये हैं। केवल दर्शन ही नहीं, केवल अनुभव ही नहीं, उन्होंने भारतीय साहित्यमें शताब्दियों बाद सौन्दर्यके उज्ज्वल रूपकी पुनः प्रतिष्ठा भी की है।

सौन्दर्य कलाका साध्य और साधन—दोनों है। यह कलाका साध्य है, क्योंकि कलाका उद्देश्य सौन्दर्य-सृष्टि करना है। यह साधन है क्योंकि कलाजन्य आनन्द या रसानुभूतिका यह हेतु भी है। जैसे कलामें वैसे जीवनमें भी सौन्दर्यके ये दोनों पहलू हैं। सौन्दर्य जीवनका ध्येय है, क्योंकि सौन्दर्य पूर्णता है। अपूर्णसे पूर्ण होनेका प्रयत्न ही जीवन है। सौन्दर्य जीवनका साधन भी है क्योंकि यह जीवनके लिए पाथेय है। भेदमें अभेद, अनेकमें एकाकार होना जीवनका उत्कर्ष है। और इस एकतामें सौन्दर्य सहायक होता है। प्रसादजी सौन्दर्यके इस दूसरे पहलूको महत्त्व नहीं देते। उनके लिए सौन्दर्यकी निरपेक्ष महत्ता है। वह साध्य है; पर साध्य साधनसे नितान्त भिन्न नहीं होता। अतः जब कवि अवयवोंके संस्थान विशेष, उनके परस्पर संगठन या संतुलनमें सौन्दर्यको देखता है तो वह यथार्थसे बहुत दूर नहीं है। प्रकृतिके नाना क्षेत्रोंमें इसे ढूँढ़ना भी इसीलिए साधार है। किन्तु जब कभी उसके स्वरूपका प्रश्न आता है प्रसादजी सदा उसे लौकिक धरातलसे ऊँचा उठा देते हैं। उनके मतमें सौन्दर्यका अवतरण दिव्य लोकसे हुआ है। वह चेतनाका अमर वरदान है।

प्राचीन कालके कलाविद् रूप, सौन्दर्य और लावण्यमें भेद मानते थे। बिना शृंगारके भी जिसके कारण अंग भू[illegible] से जान पड़ें वह रूप है; अंगोंके यथोचित सन्निवेशका सौन्दर्य है और मोतीके पानीकी तरह अंगोंपर भासित होने तरलताको लावण्य कहते हैं।[1] किन्तु इसके आगे वे नहीं सके थे। उनकी सौन्दर्य-भावना मूर्त तक ही टिकी प्रसादकी दृष्टिमें सौन्दर्य मूर्त-अमूर्त सबको स्पर्श करता है वह एक तेज है जिसमें सब पुनीत और दिव्य हो जाते हैं अवश्य ही कालिदासने सौन्दर्यको क्षितिजसे आनेवाली तरल ज्योति'के रूपमें देखा था; देखा नहीं था उसकी कल्प की थी। अजातशत्रुमें मल्लिकाका सौन्दर्य भी अन्तरि उतरता हुआ हीरक-कुसुम-सा द्योतित किया गया है। यनीमें यह प्रभा 'अम्बर चुम्बी हिमशृंगोंसे' प्रवाहित होने 'विद्युतकी प्राणमयी धारा'के रूपमें व्यक्त है। जिससे भव्य होती है वह सौन्दर्य है। कुंकुमकी कमनीयता उषाकी लाली उसके वैभव-विलास हैं। वसन्तका सौन्दर्यका हास है। गोधूलीकी ममता, 'प्रभातकी स्मि और मध्याह्नका उभार उसमें साथ-साथ झिलमिलाते हैं कलियाँ उसीके अभिनन्दनमें खिलती हैं। कोमल [illegible] अपनी अस्फुट ध्वनिमें उसीके जय-गीत गाते हैं। देख दुःख और सुख दोनों आनन्दमें डूब जाते हैं, तन्मय हो जाता है वह सौन्दर्य है।

---

1. अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद् भूषणादिना।
येन भूषितवद् भान्ति तद् रूपमिति कथ्यते॥
अङ्गप्रत्यङ्गकानां यः सन्निवेशो यथोचितम्।
संश्लिष्ट संधिबंधः स्यात् तत् सौन्दर्यमुदाहृतम्॥
मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते॥

सौन्दर्यका अधिष्ठान प्रसादजीने लोक-जीवनमें, मुख्य रूपमें, नारीके भीतर माना है। नारीमें जो सौन्दर्यका विकास है वह उसका उत्कृष्ट रूप है। नारी कविके शब्दोंमें 'सौन्दर्य-प्रतिमा' है। निर्जीव वस्तुओंकी अपेक्षा सजीव प्राणी सुन्दर लगते हैं; क्योंकि उनमें गति है, चेतनाकी झलक है। सचेतनोंमें भी कल्पनाशील अधिक सुन्दर हैं क्योंकि उनमें विभ्रमके साथ-साथ आत्माकी आभा भी अधिक दीप्त है। कल्पनाशीलोंमें भी नारी-गत सौन्दर्य अनोखा है। केवल इसलिए नहीं कि नारीमें अवयवोंकी कोमलता है, इसलिए भी नहीं कि उसमें 'छाया-पथमें तारक-द्युति-सी झिलमिल करनेकी मधुलीला' है किन्तु इसलिए भी कि वह मानवका 'शीतल-विश्राम' है। नारीकी दृष्टिमें नरका सौन्दर्य पौरुषकी मात्रासे नापा जाता है, वह सापेक्ष है। परन्तु नरके लिए नारीकी छवि स्वतः रमणीय है। वह सौन्दर्यका मूल केन्द्र है। "रमणीका रूप—कल्पनाका प्रत्यक्ष—सम्भावनाकी साकारता और दूसरे अतीन्द्रिय रूप-लोक, जिसके सामने मानवीय-महत् अहम्-भाव लोटने लगता है। जिस पिच्छल भूमिपर स्खलन विवेक बनकर खड़ा होता है। जहाँ प्राण अपनी अतृप्त अभिलाषाका आनन्द निकेतन देखकर पूर्ण वेगसे धमनियोंमें दौड़ने लगता है। जहाँ चिन्ता विस्मृत होकर विश्राम करने लगती है। वही रमणीका रूप[२] है।" इस रूपकी छाया-मायासे प्रसादकी दृष्टि और उनकी कृति आक्रान्त है।

सौन्दर्यका विकास यौवनमें निखर उठता है। यदि यौवन जीवनका वसन्त है तो सौन्दर्य उसमें पंचमकी पुकार है। यौवन सौन्दर्यकी अँगड़ाई है। चन्द्रगुप्तमें यौवनके विषयमें सुवासिनी कहती है, "अकस्मात् जीवन-काननमें, एक राका रजनीकी छायामें छिपकर मधुर वसन्त-घुस आता है। शरीरकी सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सौन्दर्यका कोकिल 'कौन?' कहकर सबको रोकने-टोकने लगता है।" प्रसादजीने यौवन और सौन्दर्यका व्यापक सम्बन्ध दिखाया है। अंकुर सुन्दर है पर स्तवक भारसे झुकी लता सबका हृदय खींच लेती है। यौवनमें सौन्दर्यका गतिशील रूप और उसका स्थिर रूप दोनों लिपटे रहते हैं। प्रत्येक स्पन्दन सजीव और प्रत्येक परिवर्तन अभिनव होता है। यौवन अरूपको रूपमें, कुरूपको सुरूपमें, सुरूपको दीप्तिमें ढालता रहता है। सौन्दर्य यौवनको प्रीतिमें, प्रीतिको कभी परिणयमें और कभी उन्मुक्त प्रणयमें बिखेरता रहता है।

सौन्दर्यका उपर्युक्त चित्रण उस सिद्धान्तकी ओर संकेत करता है जो सौन्दर्यका सम्बन्ध यौनभावसे मानता है। डारविनके बाद उनके अनुयायी सौन्दर्य-भावनाका स्रोत काम-भावना में देखने लगे हैं। स्वयं डारविनने सौन्दर्यकी सत्ता स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षणमें मानी है। विल डुरेण्टके अनुसार तो प्रकृति-गत सौन्दर्य भी हमारी यौन-भावनासे रंजित रहता है। इस सिद्धान्तमें कुछ तथ्य सम्भव है। वैदिक ऋषियोंको उषा एक युवतीके रूपमें देख पड़ी। चन्द्रिका, दीपशिखा, लताएँ संसारकी सुन्दरतम वस्तुएँ स्त्रीत्वसे द्योतित की गईं। विश्वकी गाथाओंमें सौन्दर्यके प्रतीक रति और काम माने गये। साहित्य में प्रकृतिका उद्दीपन विभावके रूपमें वर्णन भी इसी तथ्यका संकेत करता है। और प्रसादजी तो इस क्षेत्रमें किसीसे पीछे नहीं हैं। प्रकृतिके रम्य रूप उन्हें नारीके प्रतीकसे लगते हैं। उनके यहाँ भी प्रेम-कुसुम सौन्दर्य-लतामें ही खिलता है। इसके अतिरिक्त, प्रसादजी जब कहते हैं कि सौन्दर्य नस-नसमें मूर्च्छना समान मचलता हुआ गूँजता है तथा हृदयकी कोमल भावनाओंपर मानसरोवरमें चाँदनीकी तरह फिसलता रहता है, तो वे सौन्दर्यके मूलको उसी सीमित क्षेत्रमें निहारते हुए-से जान पड़ते हैं। साथ ही लज्जा और सौन्दर्यका सम्बन्ध भी उपर्युक्त सिद्धान्तकी पुष्टि करता है। क्योंकि प्रसादजीके मतमें, और आधुनिक मनोविज्ञानके मतसे भी, लज्जा 'रतिकी प्रतिकृति' है। सौन्दर्यमें लज्जाका भाव, शीलका द्योतक केवल वाह्य रूपमें होता है। वस्तुतः वह एक मनकी मरोर है, वासनाकी विकृति है। प्रसादके कई गीतोंमें लाज भरे सौन्दर्य की शालीनता और वासनाके उन्मद राग साथ-साथ झलकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि प्रसादका सौन्दर्य-बोध इस यौवनवती मधुमयी भूमिमें दूरतक प्रसार पाया है और उसकी अभिव्यक्ति भी मधुर भावनाओंसे ओत-प्रोत है।

---

२. कामना पृ० ७०।

फिर भी प्रसादजीकी अनुभूति प्रकृतिवादियों-सी नहीं है। क्योंकि उनकी दृष्टि केवल बाह्य अवयवोंमें ही उलझी नहीं रह जाती। नारीके देहमात्रमें सौन्दर्य ढूँढ़नेवालोंको उन्होंने एक हलकी फटकार यों दिलवाई है—

पर तुमने तो पाया सदैव उसकी सुन्दर जड़ देह मात्र,
सौन्दर्य-जलधिसे भर लाये केवल तुम अपना गरल पात्र।
(कामायनी)

प्रकृतिका भी सौन्दर्य यदि केवल यौन भावनाओंसे आरोपित होता तो कविको 'वरुणाकी कछार'में 'जगत् नश्वरताके लघुत्राण, लता-पादप सुमनोंके पुंज' नहीं दिखाई देते और न वह अमर सन्देश ही सुनाई देता जो विश्वको पवित्र करता है। प्रसादजी केवल ऊपरी सौन्दर्यको महत्त्व नहीं देते। अवश्य ही वे बाह्य सौन्दर्यको भीतरी सौन्दर्यका प्रतिरूप मानते हैं ('हृदयकी अनुकृति बाह्य उदार'—कामायनी) फिर भी उसकी पूर्णता शीलगत सौन्दर्यमें है। दया सुन्दर है। करुणा सुन्दर है। प्यार सुन्दर है। प्रेम और सौन्दर्य करुणाकी छायामें पनपते हैं। श्रद्धाकी शोभाको कविने 'नित्य यौवन छविसे अभिराम, विश्वकी करुण कामना मूर्त्ति'के रूपमें अंकित किया है। बाह्य सौन्दर्यका आश्रय भीतरी सौन्दर्यतक पहुँचनेके लिए है। जैसे प्रेमका प्रकृतरूप सृष्टिकी एक स्थूल प्रक्रियासे सम्बद्ध है, पर चिर विकसित मानवताने उसे भौतिक तथा मानसिक स्तरसे ऊँचा उठाकर एक आध्यात्मिक रूप दे दिया है जो विश्व-प्रेम और ईश्वर प्रेमसे भी एक डग आगे बढ़कर स्वयं ईश्वर होनेका भी दावा करता है वैसे ही सौन्दर्य भी गोल मटोल अंगों और हरी-भरी क्यारियोंसे परे कबका पहुँच चुका है और अब 'सत्य'के आसनपर बैठ रहा है। मूर्तसे अमूर्तमें, स्थूलसे सूक्ष्ममें सौन्दर्यका प्रसार नैतिक तथा सांस्कृतिक सौन्दर्य का उद्‌बोधन करता है। पर गुणका प्रत्यक्ष द्रव्यके सहारे ही सम्भव है। अमूर्त सौन्दर्य मूर्तके द्वारा ही व्यक्त हो सकता है। "सौन्दर्य-बोध बिना रूपके हो नहीं सकता। सौन्दर्यकी अनुभूतिके साथ-साथ हम अपने संवेदनको आकार देनेके लिए उनका प्रतीक बनानेके लिए बाध्य हैं। इसलिए अमूर्त सौन्दर्य बोध कहनेका कोई अर्थ नहीं रह जाता।"[3] इसीलिए आन्तरिक सौन्दर्यके आधारभूत शरीरको भी काव्यमें सर्वाङ्ग सुन्दर चि[त्रित] करनेकी परम्परा है। हमारे आराध्य जहाँ करुणामय [हैं] वहाँ 'कामकोटि शत सुन्दर' भी हैं। यथार्थमें मूर्त सौ[न्दर्य] और अमूर्त सौन्दर्य दो पृथक् वस्तु नहीं हैं किन्तु एक ही [के] दो पहलू हैं। दृश्यकी दर्शनीयता अमूर्तमें आरोपित [है] अमूर्तकी शुद्धतासे दृश्य आलोकित होता रहता है। [एक] एकके सहारे दूसरेको सजीव बनाये रहता है। इरावतीमें [एक] पात्र नृत्यका समर्थन करता हुआ कहता है "जिसकी [...] ज्वालामें मनुष्य व्याकुल हो जाता है उस विश्वनि[यन्ता] मंगलमय नटराज नृत्यका अनुकरण, आनन्दकी भावना [...] कालकी उपासनाका बाह्य रूप है और साथ ही कलाकी, सौ[न्दर्य] की अभिवृद्धि है जिससे हम बाह्यमें, विश्वमें सौन्दर्य भावना [...] सजीव रख सके हैं।" इस सजीवतामें व्यक्तिका उल्ल[ास] समाजका स्वास्थ्य और संस्कृतिका अभ्युदय निहित है।

सौन्दर्यके प्रति प्रसादजीके विचार उनके दार्शनिक सिद्धा[न्तों] से भी अनुप्राणित हैं। प्रसादजी आनन्दवादी थे। आ[त्मा] आनन्दमय है। आनन्दसे ही जगत् है। सृष्टिके मू[लमें] आनन्दमयी प्रेरणा है। और जीव अन्तमें आनन्दमें ही [लीन] हो जाता है।

आनन्दादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्दे[न] जातानि जीवति। आनन्दमभिविशन्ति।
—तैत्तिरीय उपनिषद्—भृगुवल्ली [...]

उपनिषदोंके आनन्दवादको व्यावहारिक रूप देनेके [लिए] शैवागमोंमें प्रेमकला और सौन्दर्यकलाकी प्रतिष्ठा की गई। [...] विश्व चितिका विशाल रूप है। प्रेम और सौन्दर्य [...] आधार हैं। प्रसादजीने इस भावको 'एक घूँट'में एक [...] द्वारा यों व्यक्त किया है—"विश्व चेतनाके आकार [धारण] करनेकी चेष्टाका नाम जीवन है। जीवनका लक्ष्य सौन्दर्य [है] क्योंकि आनन्दमयी प्रेरणा जो उस चेष्टा या प्रयत्नका मूल [...] है, स्वस्थ—अपने आत्मभावमें, निर्विशेष रूपसे—[...] सफल हो सकती है।" आनन्द सौन्दर्यका और सौ[न्दर्य] आनन्दका अभिव्यंजक है। प्रसादके शब्दोंमें "आन्[तरिक] अन्तरंग सरलता है और बहिरंग सौन्दर्य है।" [...]

३. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला पृ० १३

केवल आकृति नहीं हो सकती। वह किसी सत्ताकी आकृति है। सत्ता एक है। चिति है। जगत्में फैले लहलहे रंग चितिकी मुसकान हैं। परमाणुओंके नृत्यमें सौन्दर्य है। वायुकी गतिमें मनोहर संगीत है। प्रकृतिकी प्रत्येक थिरकनमें एक लय है। जीवनका प्रवाह स्वयं सौन्दर्य है।

चितिका स्वरूप यह नित्य जगत्
वह रूप बदलता है शत शत
क्षण विरह मिलनमय नृत्य निरत
उल्लास पूर्ण आनन्द सतत्।
× × ×
जीवन धारा सुन्दर प्रवाह
सत, सतत, प्रकाश सुखद अथाह। (कामायनी)

दुख, विषाद भ्रम हैं। आँख और मनके खेल हैं। जीवनमें समरसता लाकर इच्छा, ज्ञान और क्रियाके सहयोगसे, प्रेम और सहानुभूतिकी आँखसे देखें तो यह जला जगत् वृन्दावन बन जायगा। सौन्दर्यके पुनीत दर्शन होंगे। आनन्दवाद पृथ्वीको स्वर्ग बनानेके लिए है। कुरूपताका पर्दा हटाकर विमल ज्योतिको जगानेके लिए है। संसारको क्षणिक समझना भी भ्रम है। दृश्य क्षणिकता तो परिवर्तन है जो प्रकृतिके नित्य-नवीन रूपको प्रकट करनेके लिए है और क्षण-क्षणमें नवीनको ही तो सुन्दर कहते हैं।

विश्व-व्याप्त सौन्दर्यके इस मंगलमय रूपमें सौन्दर्य विषयाश्रित (आबजेक्टिव) है अथवा स्वाश्रित (सबजेक्टिव) यह विवाद-ग्रस्त प्रश्न ही नहीं उठता। प्रसादके लिए आनन्दका स्वरूप एक है। प्रेमका स्वरूप एक है। सौन्दर्यका स्वरूप एक है। प्रेम चाहे लौकिक हो या अलौकिक, उसका आधार तो हृदयकी चेतना है जो एक है, अद्वितीय है। सौन्दर्य चाहे बाह्य हो या आन्तरिक, दृश्यगत हो या द्रष्टागत, दीपशिखाकी लचकती लौमें हो या प्रलयाग्निकी प्रचण्ड ज्वालामें, वह तो किसी अनन्त रमणीयकी विभा है। सौन्दर्य तो एक ज्योति है, ज्योतिमानके संकेतके लिए; छवि है, छबिमानको दिखानेके लिए; आकर्षण है, द्वैतसे अद्वैत करनेके लिए। और जिस तरह ज्योति ज्योतिमानसे भिन्न नहीं, चन्द्रिका चन्द्रसे भिन्न नहीं, उसी तरह सौन्दर्य शिवसे भिन्न नहीं। जो सत्य है वही शिव है, जो शिव है वही सुन्दर है।

अपने सुख-दुखसे पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर
चितिका विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर। (कामायनी)

इस ऊँची भाव-भूमिके सहारे सौन्दर्यने इतना व्यापक प्रसार पाया है कि केवल जीवनकी हरियाली नहीं, उसका उजड़ा हुआ रूप भी उस आलोकसे आलोकित हो उठा है। संसारमें जो अशुभ और उपेक्षित है वह भी रम्य और ग्राह्य हो गया है। जो ज्वालाओंका मूल है वह 'ईशका रहस्य वरदान' बन गया है। यहाँ प्रसाद द्रष्टासे लगते हैं। आहत पक्षीके करुण-स्वरमें जिसने सौन्दर्य देखा वह कवि हो गया। अनाथकी लुटी आँखोंमें जिसने सौन्दर्य देखा वह महात्मा बन गया। 'देवसेना'की अतल वेदनामें, 'मालविका'के तलवारकी धारपर सो जानेवाले उज्ज्वल त्यागमें सौन्दर्यका रहस्य छिपा है। स्कन्द-गुप्तमें जयमाला कहती है—"जीवन रहस्यके चरम सौन्दर्यकी नग्न और भयानक वास्तविकताका अनुभव केवल सच्चे वीर हृदयको होता है।" कालिदासने जीवनका सत्य मृत्यु माना है। प्रसादजी इस सत्यमें सौन्दर्य देख रहे हैं।

मृत्यु अरी चिर निद्रे तेरा
अंक हिमानी-सा शीतल।
अन्धकारके अट्टहास सी
मुखरित सतत चिरंतन सत्य,
छिपी सृष्टिके कण-कणमें तू
यह सुन्दर रहस्य है नित्य। (कामायनी)

प्रसादकी सौन्दर्यानुभूतिमें उनकी रहस्यानुभूतिकी भी छाय है। रहस्यके मूलमें आनन्द है। सौन्दर्य उसका आकार है रहस्यकी अनुभूतिमें सत्यकी एक झलक जीवनको दिव्य बना देती है। अनुभवका एक क्षण अनन्त बन जाता है। सौन्दर्यकी एक रेखा असीमका स्पर्श करने लगती है। नीले आकाशमें, खिलते फूलमें, शिशुकी कोमल हँसीमें किसी अव्यक्तकी झलक है; पर वह क्या है कहा नहीं जा सकता—

हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम
यह मैं कैसे कह सकता (कामायनी)

किन्तु विश्वका विकास उसी अनन्त रमणीयका उन्मीलन है। अतः चर-अचर सबमें उसीके लावण्य-कण प्रवाहित हैं। प्रकृतिके खण्ड-खण्डमें फैली हुई इस विभूतिकी अलग-अलग अनुभूति भी रसमयी है। और जिस तरह बिन्दु समुद्रमें मिलकर अगाध बन जाता है उसी तरह सौन्दर्यकी हलकीसे-हलकी अनुभूति भी विमल हृदयमें अनन्त छवि बन जाती है। प्रसादके 'चिर सुन्दर' तथा 'दिव्य तुम्हारी अमर अमिट छवि' जैसी उक्तियोंका यही रहस्य है।

प्रभावकी दृष्टिसे सौन्दर्य अन्तर्मुखी है। तनमयता इसकी क्रिया है, समरसता विकास है और रसानुभव फल है। सौन्दर्य-दर्शनकी गहरी मुद्रामें आँखें प्रायः मुँद जाती हैं पर हृदयमें सदाके लिए रेखाचित्र खिंच जाते हैं जो सदा सुखद हैं। जीवनमें दिव्यताका संचार सौन्दर्य-दर्शनसे होता है। रमणीयता ही पवित्रता है। वह विमल ज्योति है जो आत्मा झलका जाती है। वह पावन धारा है जहाँ जगत्का धुलता रहता है।

भगवति ! वह पावन मधुधारा
देख अमृत भी ललचाये,
वही रम्य सौन्दर्य शैलसे
जिसमें जीवन धुल जाये। (कामायनी)

प्रसादजीने अपने नेत्र और अपना हृदय, अपनी क और अपना प्रातिभ ज्ञान—इन सबका सहारा लिया सौन्दर्यकी अनुभूतिमें। उनका सौन्दर्य बाह्य अवयवोंको लाँघकर हृदय लोकमें आलोकित होता है और अन्तमें आत्मा दीप्ति बन जाता है जिसके बाहर प्रकाश और भी रस है।

स्वाध्याय और सत्साहित्य-सृजन

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

आज जिस विषयपर हम विचार करनेके लिये एकत्रित हुये हैं वह है स्वाध्याय और सत्साहित्य-सृजन। बहुधा इस विषयपर विवाद हुआ है। कुछ विचारकोंके मतानुसार साहित्य-स्रष्टाके लिए स्वाध्यायी होनेकी आवश्यकता नहीं है और कुछ विचारकोंका यह मत है कि साहित्यका सृजन बिना गम्भीर स्वाध्यायके सम्भव नहीं है। इस प्रश्नका 'हाँ' या 'नहीं'में उत्तर देनेके पहले हमें यह देखना होगा कि एक सत्साहित्य-स्रष्टामें किन विशेष गुणोंकी आवश्यकता होती है।

मेरे मतानुसार सात-आठ ऐसी विशेष बातें हैं जिनके बिना सत्साहित्यका सृजन सम्भव नहीं प्रतीत होता। एक साहित्य स्रष्टामें पहला आवश्यक गुण है—कल्पना-शक्ति। कल्पना शक्तिके आधारपर ही एक साहित्य-स्रष्टा जीवनकी साधारण परिस्थितियोंको एक कथानकका स्वरूप देता है और उनमें चमत्कार उत्पन्न कर सकता है।

शब्द-सामर्थ्य

दूसरा गुण जो आवश्यक है वह है उसका शब्द-सामर्थ्य। यदि शब्द दारिद्र्यको लेकर कोई व्यक्ति साहित्यका सृजन करना चाहे तो वह वैसा कर सकता है, किन्तु उसके साहित्यमें उस व्यापकताका समावेश नहीं हो पायगा जो जीवनके प्रत्येक अंगका स्पर्श कर सके। शेक्सपीयरके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि वही एक ऐसा साहित्य-स्रष्टा है जिसने आंग्ल भाषाके सबसे अधिक शब्दोंका प्रयोग किया है। और इस कथनमें इसलिए भी सत्यता है कि शेक्सपीयरने अपने काव्य अथवा नाटकोंमें फिर चाहे वे नाटक दुःखान्त हों अथवा सुखान्त जीवनके जिन भिन्न-भिन्न स्वरूपोंका दिग्दर्शन हमें कराया है वह बिना वृहत् शब्द भण्डारके सम्भव नहीं है।

तीसरा गुण है मानव-स्वभावकी अध्ययन-पटुता। यदि एक साहित्य-स्रष्टा इस गुणसे विहित है तो वह अपने साहित्यमें अमरत्वका समावेश नहीं कर सकेगा। मानव-स्वभावका अध्ययन करते समय एक साहित्यकारके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह निष्पक्ष होकर मानवको देखे। किसी वाद-विवादकी दृष्टिसे कोई साहित्य-रचयिता मानव-स्वभावको देखेगा तो वह मानवके यथार्थ स्वरूपको देखनेमें समर्थ न हो सकेगा। इस विषयमें यदि मैं एक उदाहरण दूँ तो मेरी बात स्पष्ट हो जायगी। बहुत वर्ष पहले मैंने रूसी क्रान्ति-उत्तरकालके एक ख्यातनामा उपन्यासकार फिडियोर डोस्टोवस्कीका 'सीमेण्ट' नामक उपन्यास पढ़ा था। आप जानते हैं कि रूसी क्रान्तिकारी कौटुम्बिक जीवनको श्रेणी-विहीन समाजकी स्थापनामें एक प्रकारकी बाधा मानते हैं। अतः केवल प्रचारकी दृष्टिसे यदि ग्लेडकोफ कौटुम्बिक जीवनके उन्मूलनका चित्र अपने उपन्यासमें खींचनेका प्रयास करता तो कदाचित वह बहुतोंकी दृष्टिमें भर्त्सनाका पात्र न होता। परन्तु डोस्टोवस्कीने अपनेको इस वाद-विवादकी शृंखलामें जकड़ने नहीं दिया। उसके उपन्यास की नायिका 'दाशा' नामक एक युवती है, जिसकी 'नुरका' नामकी तीन-चार वर्षकी पुत्री है। रूसमें बच्चोंके लिए पर्यकालय (नर्सरी होम) खोल दिये गये थे। दाशा उसको वहाँ भेज देती है, दिन-रात क्रान्तिमूलक सामाजिक कार्योंमें व्यस्त रहती है और सप्ताहमें एक-दो बार अपनी नुरकासे मिलने वहाँ चली जाती है। एक बार वह जाती है और देखती है जैसी उसकी बेटी बहुत गम्भीर, वयस प्राप्त बालिकाके सदृश व्यवहार कर रही है। उसकी आँखोंमें एक अस्वाभाविक गाम्भीर्य है। वह उसे गोदमें उठा लेती है और उससे पूछती है, 'नुरका, मेरी प्राण, तू क्या चाहती है?' नुरका कहती है, 'अम्माँ मुझे कुछ नहीं चाहिये।'—'नहीं बेटी, तू अवश्य कुछ चाहती है। बता तू क्या चाहती है?' तीन वर्षकी नुरका फिर गम्भीरतापूर्वक कहती है, 'नहीं अम्माँ, मुझे कुछ नहीं चाहिये।'

उसके इस गम्भीर वाक्यको सुनकर दाशाका हृदय झकझोर उठता है। वह फिर बड़े प्यारसे उससे पूछती है, 'नहीं नुरका, तू बता क्या चाहती है?'

तब नुरका अपनी माके गलेमें हाथ डालकर प्रेमसे कहती है, 'अम्माँ, मैं चाहती हूँ तुम्हें; और मैं चाहती हूँ अंगूर।'

जिस समय मैंने यह वर्णन पढ़ा फिडियोर डोस्टोवस्कीके आगे मेरा मस्तक झुक गया। कौटुम्बिक जीवनका उन्मूलन

करनेके सिद्धान्तको मानते हुए भी डॉस्टोवस्कीने निष्पक्ष होकर मानव-स्वभावको यथार्थ रूप देखनेका साहस किया, वही साहस सच्चे साहित्य-स्रष्टाकी विभूति है। इसलिए मैं यह कहता हूँ कि साहित्य-स्रष्टा निष्पक्ष होकर मानव-स्वभावको समझनेका प्रयास करें तभी वे ऊँचे साहित्यका निर्माण कर सकेंगे।

साहित्य-सृजनमें यथातथ्य-ग्राह्य (Grip on Fundamentals) की भी आवश्यकता है। जीवनमें कुछ तथ्य ऐसे हैं जो शाश्वत हैं। यदि इन शाश्वत तत्त्वोंको साहित्यकार हृदयंगम नहीं कर सकेंगे तो उनके साहित्यमें छिछलापन आ जायगा। यह चौथा गुण है जिसे प्रत्येक साहित्य-स्रष्टाको अपने भीतर प्रतिष्ठित करनेका प्रयास करना चाहिये।

कला-सौष्ठव

पाँचवा गुण है कला-सौष्ठव। अंगरेजीमें जिसे 'टेकनीक' कहते हैं उसे मैंने कला-सौष्ठवका नाम दिया है। किस परिस्थितिको किस प्रकार, किस सम्भाषणको किन शब्दोंमें व्यक्त किया जाय—इसका ज्ञान साहित्यकारके लिए आवश्यक है। यदि यह सामर्थ्य एक साहित्यकारमें नहीं है तो उसका चरित्र-चित्रण एवं परिस्थिति निदर्शन अस्वाभाविक हो जायगा।

परिस्थिति-सृजन-सामर्थ्य (Power to Create Situations) भी एक आवश्यक गुण है जो एक साहित्यकारमें होना चाहिए। बिना इस सामर्थ्यके हम साहित्यमें चमत्कार नहीं ला सकते। इसलिये मैं इस गुणको भी साहित्य-स्रष्टाका एक आवश्यक गुण मानता हूँ।

सातवाँ आवश्यक गुण है व्यापक जीवन-दर्शन-सामर्थ्य (Power of Presenting Life in Varied Forms) यदि हम अपने साहित्यको व्यापक स्वरूप देना चाहते हैं तो हमें यह विशेषता भी अपनेमें लानी पड़ेगी। इसके बिना हम केवल एकांगी होकर रह जायँगे। मैं यह नहीं कहता कि यदि किसी साहित्यकारका चित्रपट बहुत बड़ा और व्यापक नहीं है तो वह साहित्यका सृजन कर ही न सकेगा। छोटे चित्रपटमें भी एक कुशल चितेरा ऐसे रंग भरेगा और ऐसी रेखाएँ उतारेगा जो उस कृतिको अमर कृति बना देंगी। उदाहरणके लिए रूसके दो दिग्गज ले लीजिये। एक हैं टाल्सटाय, दूसरे हैं तुर्गनेव। टाल्सटायका अनाकरेनिना और तुर्गनेवका लिज़ा—ये दो उपन्यास ले लीजिये। अनामें आप टाल्सटायके महान् सामर्थ्यका अवलोकन करेंगे। तत्कालीन रूसी सामाजिक जीवनका कदाचित ही ऐसा कोई अंग हो जिसका चित्रण अनामें आपको न मिले। अना एक महान् उपन्यास है। किन्तु तुर्गनेवकी लिज़ामें जीवनके व्यापक दर्शन नहीं हैं। एक घटना है—लिज़ा अपने प्रेममें निराश होती है और अन्ते मठमें ब्रह्मचारिणीके रूपमें दीक्षित हो जाती है। किन्तु उपन्यासका एक-एक पृष्ठ मानव-हृदयकी वेदनासे और फलताकी आहसे परिपूर्ण है। लिज़ा भी मानवकी टोह (Eternal Quest) की प्रतिरूप बन गई है। कुछ आलोचकोंका तो यहाँ तक मत है कि जहाँ अनाक एक महान् उपन्यास है वहाँ लिज़ा निश्चय एक उपन्यास है। टाल्सटायका चित्रपट विशाल है। तुर्ग चित्रपट तनु है, बहुत छोटा है परन्तु क्या चित्रपट है देखते रहिए और आनन्द-विभोर होते रहिए। जहाँ जी व्यापक दर्शन सत्साहित्य-स्रष्टामें मिलता है वहीं सत्सा स्रष्टामें जीवनके एक अंगका दर्शन भी ऐसे उन्नत रूपमें है कि मानव-हृदय चिदानन्दका अनुभव करने लगता है।

समाधि सामर्थ्य

इन गुणोंके अतिरिक्त एक गुण और है जो मेरी सम प्रत्येक सत्साहित्य-स्रष्टामें विद्यमान रहता है। वह है स सामर्थ्य (Power of Meditation)। यदि यह सामर्थ्य है तो उस साहित्य-स्रष्टाकी कृतिमें संश्लेषणका अभा जायगा।

ऊपर मैंने जिन आठ आवश्यक गुणोंका विवेचन कि वे गुण एकाधिक रूपमें प्रत्येक सत्साहित्यमें आपको कि मिलेंगे। प्रश्न यह है कि क्या उपर्युक्त गुणोंका विकास स्वाध्यायके सम्भव है? इसका उत्तर बड़ा कठिन है इसका उत्तर 'हाँ' और 'नहीं'—दोनों रूपमें देना चाहि लोकोत्तर साहित्य-स्रष्टा ऐसे हो सकते हैं जो बिना अध्य बिना पठनके साहित्य-सृजन कर सकें। पर ऐसा बहुत होता है। इस श्रेणीमें आप हमारे मन्त्र द्रष्टा वैदिक ऋ एवं उपनिषद्कारोंको रख सकते हैं। स्वाध्यायका अर्थ हम केवल पुस्तकोंके पठन-पाठन तक सीमित रखें तो क जा सकता है कि कदाचित् पुराकालके महान् साहित्य-स्र सम्मुख इस प्रकारकी पठन-पाठन सामग्री उपस्थित न और फिर भी उन्होंने अमर साहित्यका निर्माण किया। यदि स्वाध्यायके अर्थको हम मनन, चिन्तन एवं निदि रूपमें ग्रहण करें तो हमें यह कहनेपर बाध्य होना पड़े बिना स्वाध्यायके सत्साहित्यका सृजन असम्भव है सम्मतिमें तो प्रामाणिक मार्ग-दर्शक यही सिद्धान्त है कि हित्यके सृजनके लिए स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है। नवयुवक साहित्य-स्रष्टाओंको सदा यह तत्व अपने रखना चाहिये।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड कलकत्ता।

—विशाल भारत—

सम्पादक : श्रीराम शर्मा

भाग ४५] जनवरी—जुलाई, १९५० [पूर्णाङ्क २७०

लेखक-सूची

विशाल भारत

के

प्रति अंकका विज्ञापन-दर

साधारण	पूरा पृष्ठ	६०)
,,	आधा पृष्ठ या एक कालम	३२)
,,	चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	१८)
,,	चौथाई कालम	१०)
चित्रके पीछेका	पूरा पृष्ठ	७०)
,, ,,	आधा पृष्ठ	४०)
कवरके दूसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ		७०)
कवरके तीसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ		६५)
सूचीके सामनेका	पूरा पृष्ठ	७०)
,, ,,	आधा पृष्ठ	४०)
,, ,,	चौथाई पृष्ठ	२५)

अन्तिम पाठ्य-सामग्रीके सामनेका पृष्ठ		८०)
कवरका दूसरा पृष्ठ		९०)
,,	तीसरा पृष्ठ	८०)
,,	चौथा पृष्ठ	१२५)
,,	चौथे पृष्ठका दूसरा कलर ३०) फी कलर ।	
रिडिंग मैटरके साथ	पूरा पृष्ठ	१००)
,,	आधा पृष्ठ	५५)
,,	चौथाई पृष्ठ	२८)
,,	चौथाई कालम	१५)

अन्तिम फरमाके अन्तमें छापा जायगा ।

क्रोड़पत्र

'विशाल भारत'के आकारका ९½×७ इंच

(विज्ञापनदाता द्वारा मुद्रित)

८ पृष्ठ	१२५)
४ पृष्ठ	८०)
२ पृष्ठ	४५)

नोट :—उपरोक्त दर जनवरी १९४९ से शुरू हुआ है ।

मैनेजर, 'विशाल भारत' १२०।२, अपर सरकूलर रोड,

कलकत्ता ९



विशाल भारत

सम्पादक : श्रीराम शर्मा

अगस्त, १९५०

प्यारी बहिनों !

न तो मैं नर्स हूँ, और न डाक्टर हूँ, और न वैद्यक ही जानती हूँ, बल्कि आप ही की तरह एक गृहस्थ स्त्री हूँ। विवाहके एक वर्ष बाद दुर्भाग्यसे मैं लिकोरिया (श्वेत प्रदर) और मासिक धर्मके दुष्ट रोगोंमें फँस गई थी, मुझे मासिक-धर्म साफ न आता था, अगर आता था तो बहुत कम और दर्दके साथ जिससे बहुत दुख होता था। सफेद पानी या (श्वेत प्रदर) अधिक जानेके कारण मैं दिन प्रति दिन कमजोर होती जा रही थी, चेहरेका रंग पीला पड़ गया था, घरके कामसे जो घबराता था, हर समय जी चकराता, कमर दर्द करती और शरीर टूटता रहता था मेरे पतिदेवने मुझे सैकड़ों रुपयेकी औषधि सेवन कराई, परन्तु किसीसे भी रत्ती भर लाभ न हुआ। इसी प्रकार मैं लगातार दो वर्ष तक बड़ा दुःख उठाती रही। सौभाग्यसे एक सन्यासी हमारे दरवाजेपर भिक्षाके लिए आये। मैं दरवाजेपर आटा डालने आई तो महात्माजीने मेरा मुख देखकर कहा—'बेटी तुझे क्या रोग है, जो इस आयुमें चेहरेका रंग रूईकी भाँति सफेद हो गया है!' मैंने सारा हाल कह सुनाया, उन्होंने मेरे पतिको डेरेपर बुलाया, और उनको नुस्खा बतलाया, जिसके केवल १५ दिन सेवन करनेसे ही मेरे तमाम गुप्त रोगोंका नाश हो गया। ईश्वरकी कृपासे अब मैं कई बच्चोंकी मा हूँ। मैंने इस नुस्खेस अपनी कई बहनोंको अच्छा किया है और कर रही हूँ। अब मैं इस अद्भुत औषधिको अपनी दुखी बहिनोंकी भलाईके लिए असल लागत पर बांट रही हूँ। इसके द्वारा मैं लाभ उठाना नहीं चाहती। क्योंकि ईश्वरने मुझे बहुत कुछ दे रखा है। एक बहनके लिए पन्द्रह दिनकी दवा तयार करनेपर २॥≶) दो रुपये चौदह आने असल लागत खर्च होती है, और महसूल डाक अलग है।

यदि कोई बहिन इस दुष्ट रोगमें फँस गई हो तो वह मुझे जरूर लिखें। मैं उनको अपने हाथस औषधि बनाकर वी० पी० पार्सल द्वारा भेज दूंगी। यह मेरा धर्म है कि मैं किसी बहनसे दवाकी कीमत असल लागतस एक पसा भी ज्यादा न लूंगी।

जरूरी सूचना—मुझे केवल स्त्रियोंकी इस दवाईका ही नुस्खा मालूम है, इस लिए कोई बहन मुझे और रोगकी दवाईके लिए न लिखें।

प्रेमप्यारी अग्रवाल, १०६ बुढ़लाढ़ा

जिला हिसार [पूर्वी पंजाब]

विषय- सूची : अगस्त १९५०

१०००रु० नगद इनाम ?

जो चाहोगे वही मिलेगा ।



अब आप किसी तरफ से निराश न हों। इस तान्त्रिक अँगूठीको पहनने से दिल में आप जिस स्त्री या पुरुष का नाम लेंगे वह देखते ही देखते फौरन वश में हो जायगा, चाहे वह कितना हो पत्थर दिल क्यों न हो, सात समुन्द्र फांद, सात ताले तोड़, आपके कदमों में हाजिर होगा, कठोरता तथा शत्रुता को छोड़ आपका हुकुम मानने लगेगा, दिलपसन्द सगाई-शादी होगी, नौकरी मिलेगी, वांझ स्त्री के सन्तान होगी, मुर्दा रूहों से बातचीत होगी, जमीन में दबी दौलत सुपने में दिखाई देगी, लाटरी-सट्टा-जुआ-मुकद्दमे में जीत मिलेगी, परीक्षा में पास होंगे, व्यापार में लाभ होगा, दुष्ट ग्रह शान्त होंगे, बदकिस्मती दूर होगी, खुशकिस्मत बन जाओगे, जीवन सुख शान्ति तथा प्रसन्नता से व्यतीत होगा ।

तान्त्रिक अंगूठी १-१५-०, स्पेशल ३-०-०, स्पेशल पावरफुल ३-१५-० तीन रुपये पन्द्रह आने जिसका बिजली के करेन्टकी तरह फौरन असर होता है। यह तान्त्रिक अँगूठी ग्रहण तथा शुभ मुहूर्त्त में तैयार की गई है। सूर्य पूर्व की बजाय पश्चिमसे उदय हो सकता है लेकिन इस तान्त्रिक अँगूठीका असर कभी खाली नहीं जाता। ठीक न होने पर दुगुनी कीमत वापस की गारंटी है। मिथ्या साबित करनेवाले को १००० नकद इनाम। एक बार ज़रूर आजमायश करें ।

प्रिन्सीपल--शाइनिङ्ग मैस्मरेजिम हाऊस

(V. B. C.) करतारपुर (E. P.)

१९५०—५१ में

क्या होने वाला है ?





जो पूछोगे जवाब मिलेगा, सिर्फ पोस्ट कार्ड पर किसी दिलपसन्द फूलका नाम भेज दें, बस फिर हम १९५०—५१ के आपके सब सही हाला[त] विस्तार के साथ लिखकर सिर्फ १।) स[वा] रुपये में वी० पी० द्वारा भेज देंगे, अगर आपने कभी भी किस[मत] के बारे में नहीं पूछा तो अब जरूर पूछें ।

श्री पं० देवदत्त शास्त्री राज ज्योतिषी

(V. B. C.) करतारपुर (E. P.)

केवल एक दिन में

मैजिक मिस्मरिजम द्वारा

★लड़के को ज़मीन पर लिटा और चादर से ढक कर अजी[ब] अजीब प्रश्नों के ठीक ठीक उत्तर पूछना ★किसी भी सम[य] दर्शकों की घड़ियों में ६।। इत्यादि बजा देना ★दहकते कोयलों पर न[ंगे पैर] चलना व दर्शकों को चलाना ★मुंह में से आग की लपटें निकालना ★पानी के अन्दर आग के अङ्गारों का नाच कराना ★बन्द लिफाफ़ों के अन्दर का लिखा बता देना ★बड़े ताशों का छोटे होते नाख़ून की बराबर होकर गा[यब हो] जाना ★बन्द सन्दूक में से आदमी का निकल जाना ★इत्यादि स[ब] प्रकार के अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी मैजिक सीखिये और

→ दूसरे ही दिन ←

नवाब राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों के चित्त को प्रफुल्लित कर तथा [बड़े-बड़े] विद्वानों, विज्ञान—वेत्ताओं और प्रोफेसरों की बुद्धि चक्कर और हैरत में डालकर मनमाना धन, मान और यश प्राप्त कीजिये ।

★किसी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं। यह सब एक दिन में न आवे तो कीमत वापिस। इस पूरे कोर्स का मूल्य केवल पाँच रुपया।

★देहली के प्रतिष्ठित पत्र 'वीर अर्जुन', बिहार सरकार के कृषि-निर्देशक श्री लक्ष्मीनारायण जी तथा कलाविभाग कलकत्ता के अध्यक्ष श्री शिवनारायण जी की ज़ोरदार सिफारिश के साथ हजारों प्रशंसापत्र प्राप्त।

"२५" दी यूनाइटेड मैजिक कम्पनी लिमिटेड,

मुरादाबाद यू० पी० (भारत)

पाठकोंको सूचना :—

विशाल भारतका

मूल्य निम्नलिखित है :—

वार्षिक चन्दा	६)
छमाही	५)
एक प्रति	॥।)
विदेशके लिए	
वार्षिक चन्दा	१४)
छमाही	७)
एक प्रति	१।)

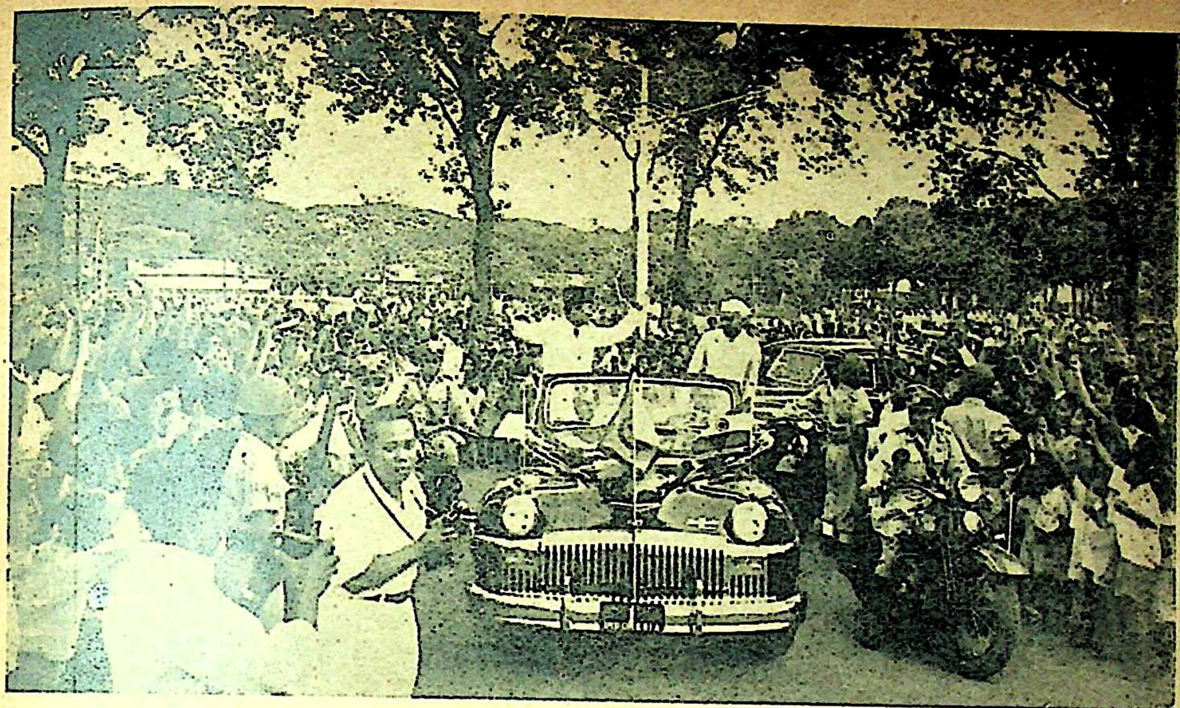
नमूनेकी प्रति मुफ्त नहीं भेजी जाती।

नमूनेकी प्रतिके लिए ॥।-) आनेका डाक टिकट भेजना चाहिए।

—मैनेजर

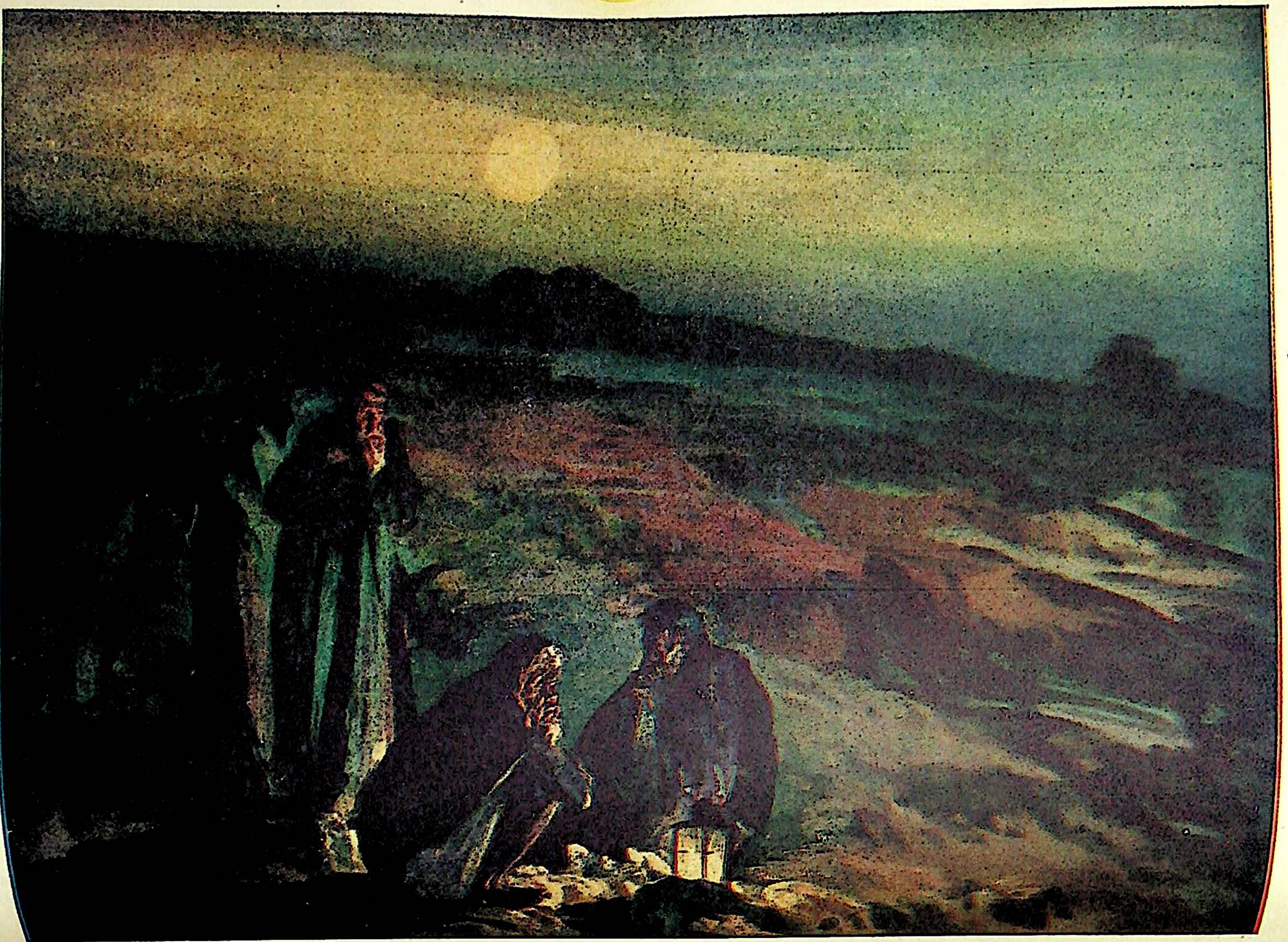
[कृपया उलट कर देखिये]

[कृपया इसकी पिछली ओर भी देखिये]



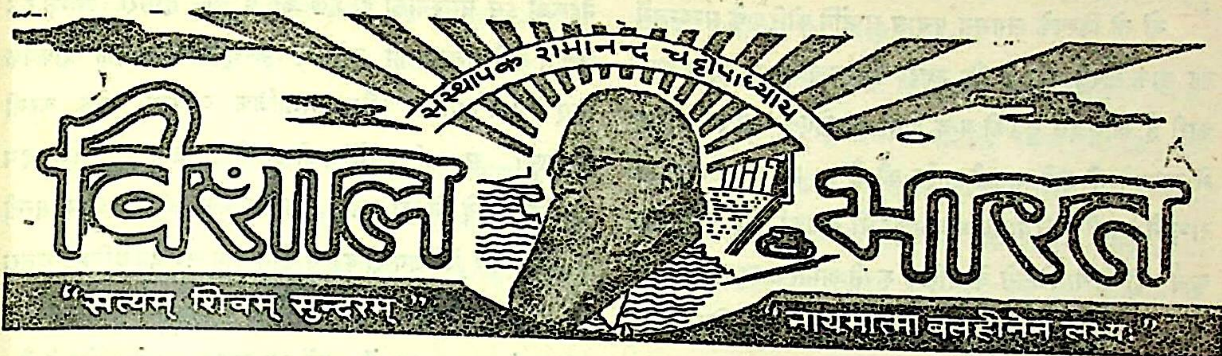
जकार्तामें इन्डोनेशियन जन-समूहके बीच पं० नेहरू, प्रेसीडेंण्ट सुकर्णोके साथ ।

हिन्देशिया यात्राके बाद पालम हवाई अड्डेपर पं० नेहरू अफगान-राजदूत तथा अपने अन्यान्य सहयोगियोंके साथ ।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

[श्री देवीप्रसाद राय चौधरी



भाग ४६, अंक २] कलकत्ता, अगस्त, १९५० [पूर्णांक २७२

सम्पादकीय विचार

कोरियाका युद्ध

इन पंक्तियोंके लिखते समय (तारीख २६-७-५०) कोरियामें उत्तरी कोरियाकी सेना अपनी प्रगतिपर है और दक्षिणी कोरियामें अमेरिकनोंके पास बहुत थोड़ा इलाका रह गया है अर्थात् दक्षिणी कोरियाका तीन चौथाई भाग उत्तरी कोरियाके अधीन हो चुका है। यह ठीक है कि अमेरिकाका एक नया डिवीजन वहाँ पहुँच गया है और उत्तरी कोरियाकी सेनाओंने यःन डाकपर पुनः अधिकार कर लिया है। अमेरिका जी-जानसे कोशिश कर रहा है कि किसी प्रकार उत्तरी कोरियाके कम्यूनिस्टोंकी प्रगति रुक जाय। पर स्थिति अभी तक गम्भीर है।

अमेरिकन हारके कारण

पाठक पूछ सकते हैं कि आखिर अमेरिकाकी अजेय शक्तिका कोरियामें लज्जास्पद प्रदर्शन क्यों हो रहा है? इस प्रश्नका उत्तर सीधा है। कोरियामें उत्तरी कोरियाके सैनिकों और अमेरिकन सैनिकोंका अनुपात दस और एकका है। इसके अतिरिक्त अमेरिकाके पास विध्वंसक सामग्री और बढ़िया हथियार भी कोरियामें नहीं थे; क्योंकि अमेरिकाके पास कोरियामें विशाल पैमानेकी लड़ाईके लिए सैनिक-सामग्री नहीं थी। अब युद्ध-सामग्री पहुँचाई जा रही है पर कम्यूनिस्टोंकी चाल यह है कि पूरी अमरीकी सहायता पहुँचनेके पूर्व ही दक्षिणी कोरियाको हथिया लिया जाय।

वास्तविकता क्या है?

वर्त्तमान कोरिया-युद्धके विषयमें बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह युद्ध क़ानूनी तौरपर तो उत्तरी और दक्षिणी कोरियाका है पर वास्तवमें अप्रत्यक्ष रूपसे यह युद्ध रूस और अमेरिकाका है। जिस प्रकार दक्षिणी कोरियाको अमेरिका सब युद्ध-सामग्री दे रहा है उसी प्रकार उत्तरी कोरियाकी सहायता रूस कर रहा है। इस बातकी पुष्टि उत्तरी कोरियाके सरकारी क्षेत्रोंसे भी हुई है। कोरिया-युद्ध भावी तृतीय महायुद्धकी भूमिका मात्र है। इससे यह स्पष्ट है कि रूस और अमेरिकाकी युद्ध-प्रवृत्ति के लिए कोरियाका युद्ध निर्णायक होगा। रूस चाहता है कि दक्षिणी कोरियामें अमेरिकन सेनाओंकी उपस्थिति उसके पेटमें भुकी छुरी है और फारमूसा एक ऐसा अड्डा है जहाँसे कम्यूनिस्ट चीनपर आक्रमण हो सकता है। यदि इन दो क्षेत्रोंपर कम्यूनिस्टोंका अधिकार हो जाय तो फिर प्रशान्त महासागरके इस ओर रूसका कोई बाल बाँका नहीं कर सकता और दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रोंमें कम्यूनिज़्मका प्रचार और प्रसार बड़ी आसानीसे हो सकेगा। उधर अमरीकाका खयाल है कि यदि अमेरिकाको दक्षिणी कोरियासे हाथ धोने पड़े तो अमरीकी सैन्य-कीर्त्तिको धक्का लगेगा और भावी तृतीय महायुद्धमें अमेरिकाको भयंकर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा।

माननीय नेहरूजीकी अपील

यों तो विश्वके लगभग पचास राष्ट्रोंने कोरियाके सम्बन्धमें यह साफ तौरसे कहा है कि उत्तरी कोरियावाले ही आक्रमण-कारी हैं और इस युद्धको बन्द होना चाहिए। सुरक्षा परिषद में भारतने भी इसी बातकी ताईद की है। पर लगभग पचास राष्ट्रोंने उत्तरी कोरियाको आक्रमणकारी बताकर कोई ऐसा ठोस कार्य नहीं किया जिससे वे सक्रिय रूपसे अमेरिकाका साथ देते। असलमें रूस और अमेरिकाको छोड़कर युद्धका दम किसी और में नहीं है। कोरी सहानुभूतिसे काम नहीं चलता। इस समय अप्रत्यक्ष रूपसे उत्तरी कोरियाको सहायता देनेमें रूसका लाभ ही है। पर हमें यहाँ माननीय नेहरूजीके उस पत्रकी चर्चा करनी है जो उन्होंने स्टालिनको लिखा और उसकी नकल एटली और अमेरिकाको भी भेज दी। नेहरूजीके पत्रका मन्शा है कि लड़ाईका क्षेत्र बढ़ने न पाय और सद्भावनासे समस्याका हल कर लिया जाय। कूटनीतिज्ञ स्टालिनने नेहरूजीके पत्रका स्वागत किया और कहा कि कम्यूनिस्ट चीनको विश्व-राष्ट्र सम्मेलनमें स्थान मिल जाना चाहिए। नेहरूजीके पत्रका अमेरिकामें अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा और उत्तर मिला कि चीनकी सदस्यता कोरिया समस्यासे सम्बन्धित नहीं है। जब कोरियामें युद्ध है तब या तो उत्तरी कोरियावाले ही पीछे हटें या सैन्य-शक्तिसे उन्हें पीछे हटाया जाय। भारतके प्रधान मन्त्रीने तो यहाँ तक कह दिया कि शान्तिकी खातिर वे कहीं भी जा सकते हैं। हमारे खयालसे नेहरूजीकी अपील स्टालिनके लिए व्यर्थ-सी है। 'मान न मान मैं तेरा मेहमान'वाली नीति अन्तर्राष्ट्रिय स्थितिमें इस समय अच्छी नहीं है। भारत जब किसी गुटमें नहीं है और जब वह सुरक्षा-परिषदका साथ देता है तब फिर इस प्रकारकी अपील अनावश्यक ही थी; क्योंकि कोरियाका प्रश्न कश्मीर जैसा नहीं है। कोरियाका प्रश्न अमेरिकाके लिए जीवन-मरणका प्रश्न है। वहाँका प्रश्न अब शान्तिसे हल होनेका नहीं। अमेरिका और रूसकी बात न होती तो अन्य देश मान भी लेते। हमारी आपत्ति इस अपीलके बारेमें यह है कि हमारा मुख्य काम देशकी आन्तरिक स्थितिको सुधारनेका है। माननीय नेहरूजीके निजी सूबे उत्तर प्रदेशमें दो दलोंकी वही मनोवृत्ति है जो रूस और अमेरिका की। [illegible] नेहरूजी इस समस्याको ही हल कर दें तो हमारी आन्त[illegible] स्थिति बड़ी मज़बूत हो जाय। कम्यूनिस्ट-खतरेको रोकने [illegible] लिए देशकी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था ठीक [illegible] चाहिए। साथ ही हममें अभी इतनी शक्ति नहीं है कि [illegible] दूसरोंके झगड़े निपटा सकें। खाने-पीनेकी चीज़ें जबतक [illegible] न होंगी और बेरोज़गारी दूर न होगी तब तक कम्यूनिस्ट [illegible] दूर नहीं हो सकता। दूसरे देशोंको उपदेश देनेकी [illegible] हम स्वयं मज़बूत बन लें। हमें इस समय अपनी [illegible] यह ठीक है कि औरोंके मामलेको हम छोड़ नहीं सकते [illegible] बेकारकी अपीलोंसे भी कोई लाभ नहीं।

हमारे निजी मतसे अमेरिकाने जो कोरियामें मोर्चा [illegible] है वह युक्ति-युक्त है और रूस कोरियामें सिवा अस्त्रों-शस्त्रों [illegible] शक्तिके अलावा और किसीसे नहीं समझाया जा सकता। [illegible] दशामें भावी महायुद्धको रोकने और टालनेके लिए [illegible] निस्टोंको वहाँ हराना आवश्यक है। टैंकों और हवाई [illegible] तथा अन्य भयंकर हथियारोंसे ही वह इस समय सम[illegible] अगर अमेरिकाको वहाँसे हटना भी पड़ा तो हमारा अनुमान [illegible] कि जिस प्रकार फिलिपाइनमें गत द्वितीय महायुद्धमें उसे [illegible] आना पड़ा था ठीक उसी प्रकार कोरियामें उसे फिर [illegible] पड़ेगा।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी और जमाया तेल

पाठकोंके लाभार्थ हम कांग्रेस वर्किंग कमेटीके उस [illegible] की नकल देते हैं जो उसने देहरादूनमें गत २२ मई [illegible] १९४९ को पास किया था। स्मरण रहे गो-सेवा-संघ [illegible] की ओरसे श्रीमती जानकी बाई बजाज (स्व० सेठ जमना[illegible] बजाजकी पत्नी) और श्री राधाकृष्ण बजाजने वर्किंग कमेटी [illegible] मिलकर वनस्पति घीके बारेमें अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया [illegible] और वर्किंग कमेटीसे प्रार्थना की कि वह शुद्ध घीमें मिलावट [illegible] लिए वनस्पतिके प्रयोगको बन्द करनेमें अपना प्रभाव डाले [illegible] जो बातें तय हुईं थीं वे ये थीं—

(१) प्रधानता देनेकी नीतिमें क्रमवार व्यवस्थाकर [illegible] स्पति बनानेके लिए यन्त्रोंके आयातको भविष्यमें बन्द करने [illegible] लिए क़दम उठाये जाने चाहिए।

(२) अब आगे लाइसेंस नहीं दिए जाने चाहिए।

(३) रंग उड़ा दिया जा सकेगा—इस बातका भय न रखते हुए वनस्पतिके पदार्थोंको रंग देना तुरन्त शुरू कर दिया जाना चाहिए।

हमें दुःख है कि कांग्रेस वर्किंग कमेटीके इस प्रस्तावके होने पर भी हमारी केन्द्रीय सरकार जमाये तेल (वनस्पति घी) को कोई रंग नहीं दे सकी। सबसे बड़ी बात यह है कि वनस्पति घी-मालिकोंने अपने-अपने अखबारों द्वारा वनस्पति घीके पक्षमें एक उग्र आन्दोलन खड़ा कर दिया है। वैज्ञानिकोंके नाम भी उसकी उपयोगिताके लिए दिये जाते हैं। डा० एस० एस० भटनागर तथा अन्य वैज्ञानिकोंके जो फतवे वनस्पति घीके बारेमें छपे जा रहे हैं हम उनके जरा भी क़ायल नहीं। वे ठीक उसी प्रकार हैं जैसे विदेशी पत्रोंमें ह्विस्कीकी उपयोगितामें विज्ञापन छपे जाते हैं। भारत सरकारने प्रस्तावको भारतीय संसदमें रखा है। हमें आशा है भारतकी म्यूनिसिपैलिटियाँ तथा अन्य संस्थाएँ आगामी ३१ अगस्त तक अपनी राय अवश्य भेज देंगी ताकि लोग जान सकें कि वनस्पति घी स्वास्थ्यके लिए कितना घातक है।

उत्तर प्रदेश सूबा कांग्रेस-कमेटीकी कार्य-समिति

गत २ अप्रैलको उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस-कमेटीकी कार्य समितिकी बैठक प्रान्तीय कार्यालय लखनऊमें श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनके सभापतित्वमें हुई। कार्यवाहीकी मई १९५० की बुलेटीन हमें अभी मिली है उसके २३वें पृष्ठपर 'झाँसीके श्री कृष्णचन्द्र शर्माका विषय' शीर्षकसे जो कार्यवाही छपी है वह इस प्रकार है :—

झाँसीकी जिला कांग्रेस कमेटीकी तारीख २८ जनवरीकी बैठकमें स्वीकृत प्रस्ताव पढ़ा गया। इस प्रस्तावमें माँग की गई थी कि चूँकि श्री कृष्णचन्द्र शर्माने अगस्त '४२के आन्दोलनमें माफी माँगकर जेलसे रिहाई हासिल की थी, इसलिए उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाय और उन्हें केन्द्रीय धारासभाकी सदस्यतासे, जहाँ वह हाल ही में चुनकर भेजे गये हैं, त्यागपत्र देनेको कहा जाय। इस प्रस्तावके साथ श्री कृष्णचन्द्र शर्माकी जेलसे रिहाईके सम्बन्धमें डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटके तारीख ८ सितम्बर '४२ के आदेश की नकल भी थी। कार्य-समितिमें इस प्रश्नपर काफ़ी देर तक विचार हुआ।

समितिने निश्चय किया कि झाँसी जिला कमेटीको लिखा जाय कि यदि श्री कृष्णचन्द्र शर्माके सम्बन्धमें यह बात जिसका उल्लेख ऊपर है, उनके चुनावके पहले प्रान्तीय कार्य-समिति अथवा सम्बन्धित अधिकारियोंके सामने रखी जाती तो उस समय इसपर विचार होता और यह हो सकता था कि वह न चुने जाते, किन्तु अब उनके चुनावके बाद इस सम्बन्ध में कुछ कार्यवाही नहीं हो सकती।

श्री मोहनलाल गौतमने कार्य-समितिका ध्यान एक छपे परचेकी ओर दिलाया, जो दिल्लीमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकके अवसरपर बाँटा गया था और जिसमें श्री कृष्णचन्द्रके चुनावके सम्बन्धमें यह लिखा था कि उनका चुनाव केवल इस कारण हुआ कि वे श्री मोहनलाल गौतमके सम्बन्धी हैं। श्री गौतमजीने बताया कि यह बात ग़लत है कि वे उनके सम्बन्धी हैं। यह छपा पर्चा जिला कांग्रेस कमेटीके सभापति श्री रामेश्वरप्रसाद शर्मा और शहर कमेटीके सभापति श्री कालीचरणके नामसे बाँटा गया था। निश्चय हुआ कि श्री रामेश्वरप्रसाद शर्मा और श्री कालीचरणने अपने नामसे जो पर्चा छापकर बाँटा और उसमें श्री मोहनलाल गौतमपर जो आक्षेप किया वह अनुशासनके विरुद्ध है। कार्यसमिति उसकी इस कार्यवाहीको बहुत ही अनुचित तथा आपत्तिजनक समझती है। समितिने यह भी निश्चय किया कि उन्हें चेतावनी दी जाय कि वे भविष्यमें इस प्रकार की कार्यवाही न करें।

पाठकोंको स्मरण होगा कि हमने 'विशाल भारत' में झाँसीके इस चुनावके बारेमें एक अवसर-प्राप्त डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटका पत्र भी छापा था और श्री कृष्णचन्द्र शर्माका माफ़ीनामा, जिसके कारण वे जेलसे छूटे थे। हमें दुःख है कि उत्तर प्रदेशकी कांग्रेस सूबा-कमेटीकी कौंसिलने जिसमें माननीय पंतजी, माननीय टंडनजी तथा श्रीमती सुचेता कृपलानी जैसे व्यक्ति हों और उनकी उपस्थितिमें उपर्युक्त कार्यवाही हो वह कम आश्चर्यजनक नहीं है। यह ठीक है कि बिना सोचे-समझे झाँसीके कार्यकर्त्ताओंने श्री गौतमजीके विरुद्ध रिश्तेदारीके

आरोप लगाए और बेबुनियाद आरोपोंके लिए उनकी भर्त्सना भी होनी चाहिए, पर असली बात तो यह है कि उत्तर प्रदेश-सूबा-कमेटीके तत्वावधानमें भारतीय संसदके लिए झाँसीसे जो चुनाव हुआ वह कहाँ तक ठीक है। और उस ग़लत चुनावकी लीपापोती इन शब्दोंसे क्यों की गई है कि चुनावके पहले प्रान्तीय कार्य-समिति अथवा सम्बन्धित अधिकारियोंके सामने श्री कृष्णचन्द्र शर्माकी वह बात रखी जाती तो उसपर विचार होता और यह हो सकता था कि वे न चुने जाते, किन्तु उनके चुनावके बाद इस सम्बन्धमें कोई कार्यवाही नहीं हो सकती। बहुत खूब! आखिर उत्तर प्रदेशका वह सप्त-ऋषि मण्डल, जिसने श्री कृष्णचन्द्र शर्माको चुना, भर्त्सना और अविश्वासका पात्र नहीं है। क्या जिलेसे इस मामलेमें पूछा गया था? जब चुनावमें मनमानी और घरजानी हुई तथा दोस्तों और रकीबोंको भेजा तो झाँसीसे श्री कालीचरण और श्री रामेश्वर-प्रसाद शर्मा आखिर सूबाको कैसे खबर देते। इसके अतिरिक्त क्या उत्तर प्रदेशकी सूबा-कांग्रेस-कमेटी और चुनाव करनेवाले अपनी जिम्मेदारीसे बच सकते हैं और अपनी भयंकर भूलका भण्डाफोड़ होनेसे अपने क्रोधका प्रदर्शन इस प्रकार क्यों करते हैं। अगर विचार होता तो यह हो सकता था कि वे न चुने जाते यानी चुनावकी गुंजाइश तब भी पूरी थी। किसीने उस वक्त न बताया और जब बात बताई जाती है तब श्री कृष्णचन्द्र शर्मासे क्यों नहीं कहा जाता है कि वे इस्तीफा दे दें। क्या सूबा-कांग्रेस-कमेटीका वह फैसला वेद-वाक्य है या इसी बहानेसे श्री कृष्णचन्द्र शर्माको वहाँ रखना है। श्री कालीचरणजी तथा श्री रामेश्वरप्रसादके विरुद्ध तो अनुशासनकी धमकी दी जाती है पर चुने हुए व्यक्तिसे माफ़ीनामा तक नहीं माँगा जा सकता। इसे हम पक्षपात कहें या बुद्धिकी बलिहारी। रामराज्यकी चर्चा की जाती है और गाँधीजीकी दुहाई दी जाती है। पर हमारी सूबा-कांग्रेस-कमेटियों और मन्त्रियोंमें अनुशासनके मामलेमें इतना भी दम नहीं कि वे उस आदमीके बारेमें कुछ कर सकें जिससे देश और कांग्रेसको क्षति पहुँचती है। क्या हम पाकिस्तानियोंसे भी गए-बीते हैं? पाकिस्तानमें कई मन्त्रियों तक पर मुकदमें चलाए गए, पर हमारे यहाँ अपनी ग़लतीको दूसरेकी अनुशासनकी [...] देकर दबा दिया जाता है। इस प्रकारकी बातें बतानेसे [...] नहीं चलेगा। क्योंकि बातें तो बन जाती हैं पर घर [...] जाते हैं। इस प्रकारका प्रस्ताव उस पुरानी नौकरशाही [...] मनोवृत्तिका द्योतक है जिसके कारण साधारण दरोगाकी [...] गुजारियोंको सूबेकी सरकार तक समर्थन करती थी।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका विधानमें संशोधन

गत पहली जुलाईको पटनेमें अ० भा० हिन्दी सा[...] प्रतिनिधियोंकी बैठकमें सम्मेलनके विधानके संशोधनके प्र[...] बड़ी गरमागरम बहस हुई। पटनेका यह अधिवेशन एक [...] कार्यके लिए आयोजित किया गया था। पटनेके अधि[...] मंशा सम्मेलनकी नियमावलीमें संशोधन करना था। [...] बहस इस बातकी थी कि सम्मेलनका नाम क्या रहे। [...] यह कहता था कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके पहले [...] भारतीय शब्द जोड़ दिया जाय। कुछ सदस्योंने हिन्दी[...] सम्मेलनका नाम बनाए रखने पर जोर दिया। बहस[...] जब मत लिए गए तब संशोधनके पक्षमें सात वोट आ[...] विपक्षमें एक सौ सोलह। पाँच व्यक्ति तटस्थ थे और [...] समय उन्तीस गैरहाजिर रहे। तटस्थ व्यक्तियोंमें [...] श्रीमान् पुरुषोत्तमदासजी टंडन। यदि हम वहाँ हो[...] संशोधनके पक्षमें ही वोट देते। हिन्दी-साहित्य-सम्मे[...] पहले अखिल भारतीय शब्द जोड़ देनेसे हिन्दीका [...] होता नहीं वरन् उससे अहिन्दी भाषा-भाषियोंका [...] होता। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके इलाहाबादी गुट[...] जो संकीर्णताका आक्षेप है वह भी मिट जाता। नियमा[...] दूसरी धाराका भी वाचन हुआ। उसमें भी संशोध[...] किए गए। बहसमें इतनी गरमागरमी हुई कि स्थिति [...] बाहर प्रतीत हुई। खैर हुई कि दिन भरके वाद-विवाद [...] तीव्र मतभेदके उपरान्त जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ [...] सम्मतिसे हुआ। इस सिलसिलेमें ११ सदस्योंकी [...] नियुक्त कर दी गई है। जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है [...] प्रकार है :—

सम्मेलनके इस विशेष अधिवेशनके सम्मुख [...]

नियुक्त नियमावली—समितिकी बनायी नियमावली तथा स्थायी समितिके संशोधन—उपस्थित किये गये। सम्मेलनके इस अधिवेशनमें अब इतना समय नहीं है, जिससे नियमावलीकी प्रत्येक धाराको लेकर उसपर विचार किया जा सके और नियमावलीके निर्माणका कार्य भी इतना आवश्यक है कि उसको अधिक दिनके लिए स्थगित नहीं किया जा सकता। अतएव यह सम्मेलन निम्नलिखित ११ व्यक्तियोंकी एक समिति नियुक्त करता है और उसको पूर्ण अधिकार देता है कि हैदराबादमें निश्चित मन्तव्यको सामने रखते हुए तथा जहाँ उचित समझे, नए सिद्धान्तोंका समावेश करते हुए नई नियमावली बना ले। यह समिति अपने ८ सदस्योंकी स्वीकृतिसे नियमावलीका जो अंश बना देगी, वह सम्मेलनका बनाया हुआ समझा जायगा। जो प्रस्तावित नियम ऐसे बहुमतसे स्वीकृत नहीं हो सकेगा, वह सम्मेलनके आगामी वार्षिक अधिवेशनमें स्वीकृतिके लिए रखा जायगा।

इस समितिके ग्यारह व्यक्तियोंके नाम हैं :—

(१) श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डन (इलाहाबाद) (२) श्री रामवृक्ष बेनीपुरी (पटना) (३) श्री चन्द्रबली पाण्डे (काशी) (४) श्री उमानाथ (पटना) (५) श्री कन्हैयालाल मिश्र (प्रयाग) (६) श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन (वर्धा) (७) श्री रामनाथ सुमन (प्रयाग) (८) श्री प्रभात मिश्र (प्रयाग) (९) श्री रामचरण अग्रवाल (प्रयाग) (१०) श्री मौलिचन्द्र शर्मा (दिल्ली) (११) श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ (काशी)।

श्रीमान् टण्डनजीका ग़लत तर्क

इसमें किसीकी दो रायें नहीं हैं कि श्रीमान् पुरुषोत्तमदास टंडनको अमर करनेके लिए उनकी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी सेवायें काफ़ी हैं। राजनीतिक क्षेत्रमें तो वे प्रायः मठा ही घोला करते हैं। विचारोंको बदलने और किसी प्रकारके विरोधकी किसीको शिकायत नहीं हो सकती। महात्मा गांधीके विरोध, संघियोंका समर्थन तथा अन्य ऐसी ही उनकी बातें लोगोंको मालूम हैं। उसकी हमें चर्चा नहीं करनी। हिन्दीके हम समर्थक रहे हैं। पर साहित्य-सम्मेलनके प्लेटफार्मसे भी टंडनजी कभी-कभी विचित्र बातें कहते हैं। उदाहरणके लिए समाचार पत्रोंसे हम उनके पटनेमें दिए भाषणके कुछ वाक्य देते हैं। पता नहीं वे वाक्य उन्हींके हैं या रिपोर्टरने बदल दिए हैं। गत तीसरी जौलाईके 'हिन्दुस्तान'में जो उनका भाषण छपा है उसमें ये वाक्य हैं। "हिन्दीसे ही भारतीय राजनीतिकी रक्षा संभव है......ऐसे ही लोगोंको आगेसे वोट दिया जाय जिन्हें हिन्दीसे ही प्रेम हो।" यदि 'हिन्दीसे ही' के स्थानमें 'हिन्दीसे भी' होता तो भी बात क्षम्य थी। भारतीय राजनीतिकी रक्षा अथवा किसी देशकी रक्षा केवल राष्ट्रभाषासे ही संभव नहीं। जर्मन राजनीतिकी रक्षा जर्मन भाषासे न हो सकी और जापानी राजनीतिकी रक्षा जापानी राष्ट्रभाषासे न हो सकी। उत्तर प्रदेशमें स्वयं टंडनजी सूबा कांग्रेस-कमेटीके अध्यक्ष हैं। उत्तर प्रदेशकी राजनीति जितनी दूषित है और खतरेमें है उतनी पहले वह कभी नहीं थी। क्यों न स्वयं टण्डनजी वहाँकी राजनीतिकी रक्षा हिन्दी द्वारा कर लें। आज राजनीतिकी रक्षा तो ठीक तौरसे कांग्रेस भी नहीं हो रही। असलमें किसी देशकी राजनीतिकी रक्षा किसी एक बातसे नहीं होती। टण्डनजीका तर्क हिन्दीके विषयमें भ्रामक है। आज तो कांग्रेसके होनेपर भी भारतीय राजनीति सुरक्षित नहीं। जहाँ तक वोटोंका सम्बन्ध है क्या स्वयं टण्डनजी ऐसे ही व्यक्तियोंको वोट देते हैं जो हिन्दीको ही महत्त्व देते हैं? क्या स्वयं टण्डनजीने इसे निभाया है। इसके अतिरिक्त बार-बार कबीर और तुलसीका नाम लेनेसे काम न चलेगा, साथ ही सन्त कवियोंकी कविताएँ हिन्दी-साहित्य ही की नहीं वरन् विश्व-साहित्यकी विभूति हैं। उन्हींके बूते हम अपना सिर ऊँचा कर सकते हैं। पर हम अपने वर्तमान साहित्यको कैसे उच्च बनायें जिससे विश्व-साहित्यमें उसकी गणना हो सके। साहित्य-सम्मेलनकी भावनाएँ महान् हैं। पर हिन्दीके राष्ट्रभाषा बन जानेसे हिन्दीवालोंकी जिम्मेदारियाँ बढ़ गई हैं। इसी दृष्टिसे हम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके स्थानमें अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन शब्द चाहते हैं। टण्डनजीने हिन्दीको पन्द्रह बरस तकका बनवास दिये जानेकी बात कही। पर हिन्दी रूपी सीताका त्राण हिन्दीके दाक्षिणात्य भक्तोंसे होगा। हिन्दी उत्तर प्रदेश और बिहारकी ही नहीं है और हमें प्रसन्नता

होगी यदि हमारे दक्षिणके भाई उसकी सेवा कर सकें। हमें आशा है श्रीमान् टण्डनजीकी हमने जो आलोचना की है उसका हमारे मित्र बुरा न मानेंगे।

आय-कर-जाँच-कमीशनकी सफलता

अब तक १,१४,२६,००,००० रुपए आयकरमें वसूल किये जा चुके हैं। पहले १,०४,०४,००,००० रुपएका अनुमान था। फिर संशोधित अनुमान १,००,६६,००,००० रुपएका था। इससे ४५,७४,००,००० रुपए राज्योंकी माँग अलग है। इसी प्रकार आयकरकी आमदनी मूल अनुमानसे १८६ लाख रुपए अधिक हुई।

आयकरकी आमदनीमें वह वृद्धि आयकर वसूली आन्दोलनके फलस्वरूप हुई है, जिसमें अब भी शिक्षित कर्मचारियोंके अभावमें बहुत हानि रहती है। आयकर विभागमें कुल ७०० अफसर हैं जिनमें से प्रत्येकको प्रतिवर्ष १००० मामले निबटाने पड़ते हैं।

केन्द्रीय आय बोर्डने कार्यकर्त्ताओंके शिक्षणके लिये एक संस्था बनानेका प्रस्ताव रखा था; किन्तु अनुभवी कार्यकर्त्ताओंके अभावमें उसपर अमल नहीं हो सका। केवल कलकत्ता और बम्बईमें जन-सम्पर्क अफसर रखे गये हैं।

आयकर-जाँच-कमीशनने छिपी हुई आयोंका पता लगाया है जिनकी रकम २८५ लाख रुपए होती है। उनपर १८० लाख रुपए कर मिलेगा। राजस्व विभाग इस सम्बन्धमें जाँच कमीशनके सुझावोंका समावेश करते हुए एक विधेयक प्रस्तुत कर रहा है। यह विधेयक संसदके अगले अधिवेशनमें रखा जायगा।

रेल दुर्घटनाओंकी रोक-थाम

भारतवर्षमें रेल दुर्घटनाएँ पिछले दिनोंसे इतनी बढ़ गई हैं कि अब रातके सफरमें लोग आतंकित रहते हैं। साधारणतः लोगोंका विचार है कि रेल-दुर्घटनाएँ रेलवे कर्मचारियोंकी असावधानी, उपद्रवियोंकी कार्यवाहियों तथा अनुपयुक्त इंजनोंके कारण होती हैं। इस सिलसिलेमें मुख्य रेलवे आयुक्त श्री वरवलेने एक वक्तव्य दिया है उसमें उन्होंने कहा है :—

रेलवे-अधिकारियोंने रेल-दुर्घटनाओंको रोकनेके लिए जो उपाय किए हैं, उनके बारेमें कई भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। उन्हें दूर कर देना चाहता हूँ।

अक्तूबर १९४९ से अबतक ५ बड़ी रेल-दुर्घटनाएँ हुईं। इसमें से चार दुर्घटनाएँ बाकायदा साजिशके फलस्वरूप हुईं। इनमें हताहतोंकी संख्या अत्यधिक रही। ऐसी दुर्घटनाएँ रेलवे अधिकारियोंके काबूसे बाहर हैं और यदि ये दुर्घटनाएँ न हों तो भारतीय रेलोंमें मुसाफिर लोगोंका हताहत होना बहुत कम हो जाय। रेल-दुर्घटनाएँ एकदम बन्द हो जायँ, ऐसा तो सम्भव नहीं; लेकिन यह दुर्घटनाएँ कम-से-कम हों, यह कोशिश अवश्य की जायगी। भारतमें हमारे रेल-कर्मचारियोंको जो शिक्षा दी जाती है, उसकी तुलना यदि विश्वके दूसरे देशोंके रेल-कर्मचारियोंको दी जानेवाली शिक्षासे की जाय, तो हमें भारतके रेल-कर्मचारियोंको यह श्रेय देना ही पड़ेगा कि वे अपने कर्तव्यके पालनके प्रति काफी जागरूक हैं। हजारों रेल-कर्मचारी बड़ी मेहनतसे काम करते हैं। यदि कुछ रेल-कर्मचारियोंसे गलती हो जाय तो उनकी आलोचना शुरू हो जाती है। रेलगाड़ियाँ अब पहलेकी अपेक्षा ज्यादा सफर तय करने लगी हैं। अप्रैल १९५० में सरकारकी प्रथम श्रेणीकी रेलवेमें ट्रेनें ८५,००,००० मील चलीं, जबकि अप्रैल १९४८ में यह रास्ता ७७,००,००० मीलका था। यह हिसाब बड़ी लाइनोंके सम्बन्धमें है। छोटी लाइनोंपर चलनेवाली ट्रेनें अप्रैल १९५० में ३५,००,००० मील चलीं, जब कि अप्रैल १९४८ में यह रास्ता ३२,००,००० मील था। पिछले दिनों निरीक्षण विभागने जो छानबीन की, उसमें हम सबसे सवाल-जवाब किए गए। उक्त विभागका निर्णय भी यही था। यह विभाग एकदम स्वतन्त्र है और रेलवे बोर्डके मातहत नहीं है। रेलवे कर्मचारियोंमें सक्षमता बढ़ानेके लिए रेलवे बोर्डने नियन्त्रण नियम काफी कठोर कर दिये हैं। इससे उनपर नियन्त्रण पहलेकी अपेक्षा ज्यादा अच्छा किया जा सकेगा और उनमें अनुशासन भी कायम होगा।

रेलवे अधिकारी कुछ ऐसे उपाय कर रहे हैं कि जिनसे फिशप्लेटोंका निकालना अथवा रेलपथोंको तोड़ना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायगा।

अखिल भारतीय रेलवे-कर्मचारी फेडरेशन तथा रेलवे अधिकारियों—दोनोंकी राय यह है कि रेलवे-कर्मचारियोंमें अपना कर्त्तव्य-पालन करनेकी भावना कूट-कूटकर भरी होनी चाहिए। फेडरेशनने अपने तमाम सदस्योंको इसी विषयमें गश्ती चिट्ठियाँ भेज दी हैं।

कैनाडा, अमरीकासे मँगाए गए लोकोमोटिव इञ्जन ज्यादा वजनी है और भारतीय रेल-पथपर चलनेके अयोग्य है; इस सुझावका प्रतिवाद करते हुए श्री वरदलेने कहा, कि भारतके रेलवे इञ्जीनियरोंने जो रूप-रेखा तैयार करके भेजी, उक्त इञ्जन उसीके अनुसार बनाए गए। हमने उनकी अच्छी तरहसे परख की है। हमें सन्तोष है कि यह इञ्जन हमारे यहाँके रेल-पथके लिए वजनी साबित न होंगे। धुरीपर अधिकतम भार १८·५ टन है जो पहलेसे काफी हलका है। इन आलोचनाओंमें कोई सार नहीं कि नए इञ्जन ज़्यादा वजनी हैं और रेल-पथको पहलेकी अपेक्षा कहीं ज़्यादा नुकसान पहुँचाते हैं। चित्तरञ्जनके इञ्जन तैयार करनेवाले कारखानेमें सबसे पहले मालगाड़ीके लिए डब्ल्यू० जी० इञ्जन तैयार होंगे और उसके बाद मुसाफिर गाड़ियोंके लिए डब्ल्यू० पी० इञ्जन। इञ्जनोंकी पहली किश्त मार्च १९५१ तक तैयार हो जायगी और ५ सालमें उक्त कारखानेमें सब भारतीय इञ्जन ही तैयार होंगे।"

श्री जयप्रकाश बाबूकी चेतावनी

गत १० जुलाईको मद्रासमें भाषण देते हुए श्री जयप्रकाश नारायणजीने एक आम सभामें कहा, "साम्यवादी केवल उन्हीं नीतियोंको कार्यान्वित करते हैं जिनका सूत्र-संचालन एक विदेशी ताकतके हाथों हो रहा है। उनके हृदयमें जनताकी भलाईका कोई विचार नहीं है। साम्यवादी लूट-मार, आगजनी, हत्या और बलात्कार आदिका प्रचार तथा प्रयोग कर रहे हैं। जनताको उनके नीति-परिवर्तनके 'स्टण्ट'से बचना चाहिए। भारत, ब्रिटेन या जापान, कहीं भी साम्यवादी दलका उद्देश्य केवल रूसके हितका सम्वर्धन करना है जनताकी वास्तविक क्रान्ति उनका लक्ष्य नहीं है।

हम श्री जयप्रकाश बाबूकी इस से चेतावनी पूर्णतया सहमत हैं।

१३ सूत्री बनाम १८ सूत्री

उसी अपने भाषणके सिलसिलेमें श्री जयप्रकाश बाबूने आगे कहा—

"समाजवादी दलका १८ सूत्री कार्यक्रम गाँधीजीके १३ सूत्री कार्यक्रमसे उत्कृष्ट है। गांधीजीको विदेशी शासनके कारण ग्रामोद्धार, चर्खा, खादी और हरिजन उद्धार तक ही प्रवृत्तियोंको सीमित करना पड़ा था, परन्तु समाजवादी दलको आजादी मिल जानेके कारण अधिक विस्तृत क्षेत्र मिल गया है।" सवाल १३ सूत्री, १८ सूत्री और एक हजार सूत्री कार्यक्रमका नहीं है। असली बात यह है कि जो कार्यक्रम हो उसपर अमल किया जाय। कांग्रेसके गांधीजीके १३ सूत्रीय कार्यक्रममें से कितनोंपर व्यावहारिक दृष्टिसे अमल होता है। एक हजार सूत्रीय कार्यक्रम बना लीजिए और काम किसीपर न कीजिये तब फिर कार्यक्रम केवल वाणी-विलास ही होगा। शान्तिपर गीता और उपनिषदोंमें जो सर्वोन्मुखी कार्यक्रम हैं उनपर कितने काम करते हैं। असलमें वर्त्तमान स्थितिमें देशके जितने भी राजनीतिक दल हैं उन सबकी भीतरी हालत खराब है। दलबन्दीकी यह हालत है कि सर्वोदय समाज तकमें दलबन्दीकी दूषित प्रवृत्तियाँ हैं। समाजवादी दलकी तो अभी कोई स्थिति ही दृढ़ नहीं बन पाई। स्वयं कांग्रेसकी यह हालत है कि उसका कहीं गया-श्राद्ध न करना पड़े।

कांग्रेस-सुधारके लिए सुझाव

कांग्रेस संघटनमें जो कूड़ा-करकट भर गया है उसको दूर करने और उसमें जान फूँकने और उसकी इज्जतको फिरसे वापिस लौटानेके लिए भारत सरकारके भूतपूर्व पुनर्वास-मन्त्री श्री मोहनलाल सक्सेनाने १० सूत्री एक सुझाव पेश किया है। कांग्रेसमें असम्मानपूर्ण फूट और हाल ही में हुए कांग्रेस चुनावोंमें जो भद्दी चीजें की गईं उनको ध्यानमें रखते हुए इस समस्याका हल अत्यन्त आवश्यक है।

श्री सक्सेनाके निम्न सुझाव हैं:—(१) अगर कांग्रेस पार्टी सत्तामें हो तो कांग्रेसाध्यक्षको प्रधान मन्त्री बनाया जाय जैसे कि वह समस्त कांग्रेस संघटन तथा उसके पार्लमेण्टरी गुट्टका नेता रहेगा।

(२) प्रधान मन्त्री और उपप्रधान मन्त्रीको छोड़कर कोई मन्त्री कार्य समिति या प्रान्तीय कार्य-समितिका सदस्य न रह सकेगा।

(३) कांग्रेसाधिवेशनमें एक निश्चित प्रोग्राम स्वीकार किया जाना चाहिए और उसे लागू करना चाहिए।

(४) प्रान्तीय कांग्रेस-समितियाँ तथा पार्लमेण्टरी कांग्रेस पार्टियोंकी संयुक्त बैठक हो और उसमें एक प्रोग्राम तय किया जाय और प्रत्येक मन्त्री यह तय करे कि वह कितना काम कर सकेगा।

(५) छः महीने बाद अखिल भारतीय कांग्रेस-समिति और प्रान्तीय कांग्रेस समितियाँ अब तक किए गए कामपर विचार करें।

(६) केन्द्रीय और प्रान्तीय पार्टियोंमें शिकायत समितियाँ हों जिनको शिकायतोंकी जाँचका पूर्ण अधिकार हो और वे अपनी रिपोर्ट पेश करें।

(७) केन्द्रीय प्रधान मन्त्री और उपप्रधान मन्त्री और राज्यके मुख्य मन्त्रियोंको छोड़कर प्रत्येक मन्त्रीको अपने सचिवालयकी प्रगतिकी रिपोर्ट सालमें एक दफे पार्टीके सामने पेश करनी पड़ेगी और विश्वासका वोट प्राप्त करना पड़ेगा।

श्री मोहनलाल सक्सेना उत्तर प्रदेशके एक प्रतिष्ठित तथा चरित्रवान लोकसेवी हैं। जीवनभर उन्होंने साधुता और सचाईसे आजादीके लिए संघर्ष किया है। हम उनके सुझावसे सहमत हैं। पर इन सब सुझावोंसे अधिक आवश्यक बात है व्यक्तियोंके ठीक होने की। हम पहले वेदान्त दर्शनके इस विचारकी आलोचना किया करते थे कि वेदान्ती स्वयं अपनी उन्नतिका अधिक विचार करता है और सार्वजनिक उन्नतिका कम। देशके वर्त्तमान वातावरणसे हमें अपनी असंयत आलोचनाको समझनेमें बड़ी मदद मिली। वैसे हमारी सरकार और कांग्रेसमें द्वैध शासन चल रहा है उसे सँभालनेके लिए सक्सेनाजीके सुझाव बड़े कारगर हैं।

भारतीय कम्यूनिस्टोंकी पैतरेबाजी

हमने ऊपर लिखा है कि भारतमें जितने राजनीतिक दल हैं उनकी आन्तरिक स्थिति बहुत खराब है। हम गलत हो सकते हैं, पर हमारा मत यह है कांग्रेस-संगठन भीतरसे [illegible] रहा है। समाजवादी दलकी कोरी शाब्दिक लड़ाई [illegible] है। पर देशको खतरा है कम्यूनिस्ट दलसे और [illegible] मुख्य कारण वही है जो श्री जयप्रकाश बाबूने बताया है, [illegible] कम्यूनिस्ट दल अपनी शक्ति तथा आदर्शका स्रोत विदे[illegible] मानता है। ऐसा करनेमें उनकी स्वार्थपूर्ण हिंसावृत्ति ही [illegible] भारतमें उन्हें उतनी सफलता नहीं मिली जितनी अन्य दे[illegible] इसलिए भारतीय कम्यूनिस्ट दलने 'हिंसा और विध्वंस'की [illegible] नीतिको राष्ट्रिय मुक्तिके लिए कृषि-सम्बन्धी सुधारोंके आ[illegible] लनमें परिवर्त्तित कर दिया है। साम्यवादी लोग हर [illegible] सशस्त्र विद्रोहके षड़यन्त्र रचते रहनेके सिवा कुछ नहीं [illegible] इस बातका खण्डन करते हुए भी साम्यवादी दलके प्रव[illegible] श्रीपत अमृत डांग न स्वीकार किया है कि लोगोंका [illegible] मानना कुछ अस्वाभाविक नहीं है। इस मान्यताको, [illegible] कथनानुसार, साम्यवादी दलके कुछ नेताओंके कुनियोजि[illegible] हारसे ही पुष्टि मिली है। यही नहीं, बल्कि यह मा[illegible] माना है कि साम्यवादियोंकी अब तक की नीति ऐसी [illegible] "हम (साम्यवादी) अपने अनेक मित्रोंको मित्र न मानकर [illegible] शत्रु मानते थे। लोकतन्त्रीय तरीकेसे हमारी नीति [illegible] न्वित करनेके लिए तैयार सभी किसानों और मजदूरों [illegible] हम अपना मित्र नहीं मानते थे। यह नीति अब बदल [illegible] गई है। मैं यह बहुत जोरोंके साथ कहना चाहता हूँ [illegible] वर्त्तमान अवस्थाओंमें नेहरू-सरकारको उखाड़कर भारतमें [illegible] लोकतन्त्रकी स्थापना करनेके लिए सफल सशस्त्र क्रान्ति [illegible] एकमात्र उपाय है ऐसा हम नहीं मानते।"

कहनेको तो कोई कुछ कह ले, पर असली [illegible] व्यवहार। कांग्रेस-जनोंमें जो भ्रष्टाचार है उसका एक [illegible] यह है कि लोग कहते कुछ हैं और करते हैं कुछ [illegible] जिलेमें कांग्रेसके हजारों ही योग्य सदस्य मिलेंगे पर [illegible] कातकर वे नहीं पहनेंगे। जब कम्यूनिस्ट हिंसासे बँधे हैं [illegible] वे हिंसा नीतिको कैसे छोड़ सकते हैं। अहिंसाका तो दि[illegible] मात्र है। बूढ़े बाघने जिस प्रकार लालची ब्राह्मणको [illegible] कड़े दिखाकर मार खाया था उसी प्रकार भारतीय [illegible]

निस्टोंका नीति परिवर्तन पैंतरेबाजी है। अगर यह बात नहीं है तो चीनमें माओत्से तुंगकी सफलतापर उनकी निन्दा क्यों की कि उन्होंने मध्यवर्गके किसानों और छोटे कारखानेदारोंको अपने साथ रखा था। अब जो परिवर्तन है वह पर्देके भीतर बैठे किसी संकेतके अनुसार है। कारण स्पष्ट है कि कम्यूनिस्ट चुनाव लड़ना चाहते हैं और उन्होंने कह भी दिया, "हम आनेवाले चुनावों तथा धारा सभाओंका उपयोग करना चाहते हैं।" कम्यूनिस्टोंके बारेमें सब लोग जानते हैं कि वैज्ञानिक भौतिकवादकी तर्क शैली ही ऐसी है। पर उनकी नई पैंतरेबाजीके बारेमें हम यह ही कहेंगे—

कहे है शेख़ यह फिरता, कि मैं दुनिया से मुँह मोड़ा,
सचाई के सिवा यारो बता दो, इसने क्या छोड़ा?

भारतमें सामाजिक क्रांति

पाठक 'विशाल भारत'के सुलेखक तथा हमारे मित्र श्री विलफ्रेडवैलकसे परिचित हैं। श्री वैलक भारतमें विश्व-शान्ति परिषदमें आए थे और हमने जो भेंट उनसे की थी उसे हम विशाल भारतमें दे चुके हैं। स्वदेश पहुँचकर उन्होंने 'भारतमें सामाजिक क्रांति' शीर्षकसे एक लेख लिखा है। उसे हम 'हरिजन सेवक' से ले रहे हैं। आशा है पाठक उसपर विचार करेंगे।

भारतने जब अगस्त १५, सन्' ४७ को आजादी पाई और शासनका सूत्र अपने हाथमें लिया, तभी यह निश्चित हो गया कि भारतमें सामाजिक क्रांति होना अनिवार्य है। लेकिन जो प्रश्न उस समय अनिश्चित था और आजभी अनिश्चित है, वह है इस क्रांतिका स्वरूप क्या होगा? भारतकी आर्थिक रचनाका ढाँचा क्या होगा? उसका आधार स्वावलम्बी या अधिकांश स्वावलम्बी गाँव होंगे अथवा आधुनिक यन्त्र-उद्योगों से भरपूर और निवासियोंकी भीड़-भाड़से तंग शहर, जो गाँवकी उपजपर पलते हैं? गांधीजीका कहना था—और उनके विचारसे मेरी पूरी सहमति है—कि यदि भारतने दूसरा, यानी पश्चिमके उद्योगवादका रास्ता चुना, तो वे सारी बुराइयाँ जो आज पश्चिमी दुनियापर हावी हो गई हैं और उसे बढ़ते हुए वेगसे विनाशकी ओर ढकेल रही हैं, भारतमें आयेंगी और कोई उन्हें रोक नहीं सकेगा।

बड़े उद्योगोंके विदेशी और भारतीय अधिपति भारतकी इस हालतपर लोभकी आँख लगाये बैठे हैं। वे सोचते हैं, भारतके ये भूखे ग़रीब मजदूर हमारे शोषणके कितने उपयुक्त शिकार हैं। वैज्ञानिकोंके लिये—पदार्थ-वैज्ञानिक, गणित-शास्त्री, इञ्जीनियर आदिके लिए ही नहीं, वरन् मानस-शास्त्री के लिये भी, बहुत धन कमानेका कितना बड़ा क्षेत्र यहाँ है। मानस-शास्त्रीका सम्बन्ध इस तरह आता है कि उसने पश्चिम में जनसाधारणके मानसका अध्ययन करके उसका यन्त्रोंकी मानवता-विहीन क्रियाओंसे मेल बैठानेकी कला हासिल की है, और उसके द्वारा पदार्थोंको सस्तेपनका गुण प्रदान किया है और जगतके बाजारोंपर अपना कब्जा जमाकर उद्योगोंको बहुत फायदेमन्द बना दिया है।

भारत अपने लाखों दीन-दरिद्र निवासियोंका जीवन-मान जल्दी से जल्दी उठाकर, उसके जरिये साम्यवादका संकट टालनेकी आशासे यह सोचता है कि वह ब्रिटिश और अमेरिकन पूँजीकी सहायता लेकर बड़े पैमानेपर अर्थ-उत्पादन करने लगे।...' यह याद रहे कि इस होड़में चीन और जापानका सामना भी पश्चिमको शीघ्र ही करना पड़ेगा। पहले यह दलील की जाती थी कि पूर्व अपना जीवन-मान बढ़नेपर पश्चिमसे उसकी विशेष चीजें, यथा वायरलेस सेट, बिजलीका सामान आदि ज़्यादा मात्रामें खरीदने लगेगा। लेकिन जब इस पुरानी दलीलमें कोई तथ्य नहीं रह गया है। इसके सिवा भारत, चीन और जापानकी १०० करोड़ जनता जब यन्त्र-उद्योगोंके नीरस व्यवसायमें लगा दी जायगी, तब उसका कैसा और कितना भयंकर पतन होगा,...और यन्त्र-उद्योगोंकी नीरस, निर्जीव क्रियाओंको बारबार करते-करते ऊबकर उसके अधिकांश व्यक्तियोंका मन टूट-फूट जायगा, खण्ड-खण्ड हो जायगा, तब वे उससे उत्पन्न पागलपनमें न जाने कितना उत्पात, उलट-पुलट और मारकाट न करेंगे।

अमेरिकामें तो साम्यवादका आतंक लोगोंके दिमाग़पर है ही, भारतमें भी वह शीघ्र डरकी सीमा तक पहुँचा जा रहा है। तब सम्भव है कि इसी बीच अमेरिका पूर्वमें अपने साथियोंके पक्षका निर्माण करे। यह पक्ष-निर्माण सम्भव है

पश्चिममें अटलांटिक पैक्ट, मार्शल योजना और ट्रूमैन-सहायता आदिके आधारपर जो संगठन हुआ है, उससे भी बड़ा हो।

इस भयावह स्थितिसे बचनेका एक ही उपाय है। भारतको अपनी गाँवोंकी—जिनकी संख्या ७ लाख है, और जिनमें ८५ प्रतिशत निवासी रहते हैं—परम्पराकी नींवपर स्वाभाविक अर्थ-रचना खड़ी करनी चाहिये।

रिजर्व बैंकका एक महत्त्वपूर्ण बुलेटिन

भारतके रिजर्व बैंकने एक बुलेटिन निकाला है जिसमें बताया है कि भारतके सात राज्योंमें जमींदारी-प्रथा-उन्मूलनसे जमींदारोंको १४ करोड़ रुपयोंका मुआवजा दिया जायगा। बुलेटिनमें बताया गया है कि ज़मींदारी-प्रथाको उठानेसे सम्बद्ध सरकारोंकी आयमें १६·५ करोड़ रु० की वृद्धि हो जायगी। यह रकम मुआवजेके रूपमें अदा की जानेवाली कुल रकमके ४·७ प्रतिशतसे भी ज्यादा होगी। मुआवजेका कुछ अथवा समूचा हिस्सा नक़द अथवा किश्तोंकी शक्लमें अदा करना असम्भव होगा। हाँ, मद्रास इसका अपवाद है। मुआवजा या तो सालाना रूपमें और या अविक्रेय-हुण्डियोंके रूपमें अदा किया जा सकेगा।

जमींदारी-उन्मूलन योजनाओंके अनुसार जमींदारोंको सीर और खुदकाश्त जमीनें अपने पास रखनेकी छूट होगी। इससे आमदनी करनेका उन्हें पूरा हक़ होगा। ऐसी जमीनें जिन जमींदारोंके पास नहीं हैं, उनकी संख्या कुल जमींदारोंकी संख्याके १० प्रतिशतसे ज्यादा न होगी। भारतके ७ राज्यों में जमींदारी-उन्मूलनके सम्बन्धमें निम्न प्रगति हो चुकी हैः—

(१) मद्रास :—सरकार मद्रास-जागीर-उन्मूलन कानून १९४८ के मातहत जागीरोंपर कब्जा कर रही है। अब इस कानूनमें संशोधन करके यह व्यवस्था की गई है कि कुछ मुआवजा अग्रिम अदा कर दिया जाय।

(२) उत्तर प्रदेश :—जमींदारी-उन्मूलन तथा भूमि-सुधार विधेयक १९४९ इस समय विधान-सभामें पेश है। इसमें संयुक्त प्रवर-समितिने कई संशोधन किए हैं। इस राज्यमें पिछले दिनों भूमिधारी-कानून १९४९ भी पास हुआ। इसके अनुसार जमींदारी-उन्मूलन कोषके लिए काश्तकारोंसे स्वेच्छया चन्दा जमा किया जा रहा है।

(३) बिहार :—पहले इस राज्यमें जमींदारी-उन्मूलन कानून १९४६, पास किया गया था। लेकिन अब एक और 'भूमि-सुधार विधेयक' राज्यकी विधान सभामें पेश किया गया है। इसके अनुसार पहले कानूनको मंसूख कर दिया गया है। इसमें पहलेकी काफी धाराओंको क़ायम रखते हुए कुछ नई धाराएँ और जोड़ी गई हैं। यह विधेयक विधान-सभासे स्वीकृत हो चुका है और आजकल विधान-परिषदमें इसपर विचार किया जा रहा है। जागीरोंका इन्तजाम करनेके सम्बन्धमें १९४९ में जो कानून पास किया गया था, उसे पटना उच्च न्यायालयने अवैध घोषित कर दिया था। मगर इस निर्णयके खिलाफ सरकार सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करेगी।

(४) मध्यप्रदेश :—राज्यमें जमीनपर हक़-मालिकाना उड़ानेका विधेयक १९५० में स्वीकृत हो चुका है। लेकिन अभीतक इसपर राष्ट्रपतिके हस्ताक्षर नहीं हुए।

(५) पश्चिमी बंगाल :—विभाजनसे पहले बंगाल सरकार ने ज़मींदारी-उन्मूलनके सम्बन्धमें एक बिल प्रकाशित किया था। उसके बाद पश्चिमी बंगालके वित्त-मन्त्रीने अपने १९४८-४९ के बजट-भाषणमें कहा था कि सरकार शीघ्र ही जमींदारी प्रथाको उड़ानेका इरादा रखती है। लेकिन अभी तक इस बारे में कोई विधेयक पेश नहीं किया गया।

(६) उड़ीसा :—सरकारने भूमि-कर आदिके बारेमें एक कमेटी नियुक्त की है। सरकारने जागीरदारी उड़ानेके सम्बन्ध में एक विधेयक भी प्रकाशित किया है।

(७) आसाम :—ज़मींदारी हस्तगत करनेके सम्बन्धमें १९४८ में एक विधेयक पास किया गया था। लेकिन सिलहट के निकल जानेसे अब समस्या बड़ी आसान हो चुकी है। इस समय इस विधेयकपर राष्ट्रपति विचार कर रहे हैं। इसी आसाम सरकारने किसानोंकी हालत सुधारनेके लिए जागीर व्यवस्था-कानून पास करवा लिया है।

भीषण विमान-दुर्घटना

गत १७ जुलाईको पठानकोटसे १२ मीलकी दूरीपर एक

हृदय-विदारक विमान-दुर्घटना हो गई। मुसाफिर वायुयानमें १८ यात्री और चार चालक थे। वायुयान इण्डियन 'नैशनल एयर-वेज़'का था। दुर्घटनासे वायुयानके सब-के-सब २२ व्यक्तियोंकी जानें चली गईं। मृत लोगोंमें आस्ट्रियाके नए दिल्लीस्थित उप-राजदूत डा० पेरीक, संयुक्त राष्ट्रसंघकी ओरसे कश्मीरमें नियुक्त तीन दर्शक और भारतके प्रधान-मन्त्रीके निजी मन्त्री श्री द्वारकानाथ कचरू भी थे। अनुमान यह लगाया जाता है कि पठानकोटके निकट जब डैकोटा वायुयान जा रहा था तब घोर वृष्टि हो रही थी और उसपर बिजलीका आघात हुआ। इस भीषण दुर्घटनासे शोकका वातावरण छा गया है। हम मृतक व्यक्तियोंके सम्बन्धियोंसे 'विशाल भारत'की ओरसे सहानुभूति प्रकट करते हैं। श्री द्वारकानाथ कचरूसे हमारा व्यक्तिगत सम्बन्ध था। मृतक व्यक्तियोंके सम्बन्धियोंको सिवा परमात्मा और समयके और कोई सान्त्वना नहीं दे सकता। देश-भर उस दुर्घटनासे शोकाकुल है।

व्यापक दृष्टिकोण

गत १७ जुलाईको काशी विश्वविद्यालयके हजारों विद्यार्थियों और अध्यापकोंके सामने पं० नेहरूने कहा :—

हमें पूर्ण सामाजिक न्यायके साथ प्रजातन्त्रीय तरीकोंपर भारतका निर्माण करना चाहिए। इसमें हमें देर भी लग सकती है, और हम अनेक गलतियाँ भी कर सकते हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि क्या हम प्रजातन्त्रीय स्वाधीनता और सामाजिक स्वाधीनताका सर्वतोमुखी सामाजिक उत्थानके साथ समन्वय कर सकते हैं? क्या हम केन्द्रीकरण और वैयक्तिक स्वाधीनतामें समन्वय कर सकते हैं?

मुझे यूरोप और एशियामें सामाजिक उत्थानके लिए एक सामाजिक अन्तः-प्रेरणा दिखाई देती है, इसे समाजवाद कहो या जो कुछ कहना चाहो, कहो। सामाजिक उत्थानके लिए एक बड़ी प्रेरणा उठ रही है, क्या इस प्रेरणाको प्रजातन्त्रीय रहन-सहनसे सन्तुष्ट किया जा सकता है? अगर वह सन्तुष्ट नहीं करता तो प्रजातन्त्र खतम हो जायगा तथा उसका स्थान कोई और तरीका ग्रहण करेगा। किन्तु जहाँ मैं सामाजिक न्यायमें विश्वास करता हूँ वहाँ मैं यह भी मानता हूँ कि जहाँ वैयक्तिक स्वाधीनताको कुचला जाता है, उस राज्य या समाजका भी अधःपतन निश्चित है, और अन्तमें वह खतम हो जायगा। मैं वैयक्तिक स्वाधीनताके विचारको छोड़नेके लिए तैयार नहीं। समस्या यह है कि हम किस प्रकार अधिक-से-अधिक वैयक्तिक स्वाधीनता क़ायम रख सकें और उसके साथ ही सामाजिक और आर्थिक उन्नतिकी भी व्यवस्था कर सकें। अगर हम इनका समन्वय कर सकें, तो यह समझना चाहिए कि भारतने इस समस्याको हल कर लिया। यह कहना गलत है कि प्रत्येक मनुष्य समान है। कोई बुद्धिमान होता है तो कोई मूर्ख, कोई बली तो कोई दुर्बल। प्रजातन्त्रका यह अभिप्राय होना चाहिए कि सब लोगों को शिक्षा, खानपान और स्वास्थ्य आदि जीवनके आवश्यक तत्वोंको प्राप्त करनेकी समान सुविधाएँ होनी चाहिए।

राज्यकी समस्याओंको प्रजातन्त्रीय तरीक़ोंसे हल किया जाना चाहिए; किन्तु मैं यह माननेको तैयार नहीं कि १०० मूर्ख एक बुद्धिमानसे अच्छा है।

साम्यवाद या समाजवाद आर्थिक सिद्धान्त हैं। वे कुछ उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिए एक साधनमात्र हैं। वे सिद्धान्त चाहे कुछ भी हों उनकी सफलता उन व्यक्तियोंके गुणोंपर निर्भर है, जो उन्हें समाजमें कार्यान्वित करते हैं।

प्रधान मन्त्रीने कहा कि मैं समाजवादको समझ सकता हूँ, और उसे दाद दे सकता हूँ। किन्तु केवल कानून पास करनेसे ही समस्या हल नहीं हो जाती। मैं समस्याओंका सामना व्यावहारिक रूपमें करना पसन्द करूँगा।

विद्यार्थियोंके किसी दलको राजनीतिमें भाग नहीं लेना चाहिए। क्योंकि ऐसा करनेसे वह विद्यार्थियोंका दल नहीं रहता एक राजनीतिक दल बन जाता है। विद्यार्थी यदि गाँवोंमें जायँ और उनकी आर्थिक स्थितिका अध्ययन करें, तो वे काफ़ी कुछ सीखेंगे। विद्यार्थियोंको वीर और साहसी बनना चाहिए। अपने शरीर तथा चरित्रका निर्माणकर अपनी शिक्षाको देशके लिए उन्हें उपयोगी बनाना चाहिए।

मूल्य वृद्धि विभीषिका

कोरिया युद्धके प्रारम्भ होनेके कुछ ही दिनोंके बादसे हमारे देशमें मूल्य-वृद्धिकी विभीषिका सामने आ गई है। वैसे ही

जीवन-सम्बन्धी बुनियादी वस्तुओंका मूल्य इतना बढ़ा हुआ है कि लोगोंका जीवन-यापन कठिन हो गया है। कड़े नियन्त्रणके कारण लोगोंको खाद्य और वस्त्र उपलब्ध हो जाते हैं, पर असामाजिक तत्व और कंजूस उत्पादक तथा व्यवसायी स्वार्थ भावनासे वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि करने लगे हैं। भारत सरकारकी ओरसे कहा गया है कि मूल्य-वृद्धिको रोकनेके लिए उचित तथा आवश्यक कार्यवाही की जायगी। हमें आशा है भारत सरकार मूल्य-वृद्धिको रोकनेके लिए कड़े-से-कड़ा कदम उठायगी।

कश्मीर-सम्बन्धी वार्त्ता

पाठक इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि डिक्सन साहब कश्मीर-समस्याको सुलझानेके लिए भारत और पाकिस्तानकी स्वीकृतिसे संयुक्त राष्ट्र-संघ द्वारा भेजे गए हैं। कश्मीर स्थितिको मौकेपर देखनेके बाद डिक्सन साहबने पाकिस्तान और भारतके प्रधान मन्त्रियोंसे वार्तालाप किया और तीन दिन तक नेहरू-लियाकत-डिक्सन वार्त्ता चलती रही और बारह घंटेकी बातचीतके पश्चात् अनुमानतः सफल वार्त्ता की कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती। यह बात हम इस आधारपर लिख रहे हैं कि गत २२ जुलाईको सर डिक्सनने इतना ही संकेत किया कि कश्मीरमें 'जनमत-संग्रह बड़ा कठिन है। समाचार पत्रोंमें छपे सब समाचार ठीक नहीं हुआ करते। कुछ तो वस्तुस्थितिको लेकर ठीक होते हैं, कुछ अनुमानतः होते हैं। इसी अनुमानके बूते एक साहबने लिखा है कि डिक्सन साहबके सैनिक सलाहकार हौजैज साहब यह चाहते हैं कि कोरिया जन्य अन्तर्राष्ट्रिय परिस्थितिके कारण कश्मीरका विभाजन हो जाना चाहिए। जम्मू क्षेत्र भारतवर्ष को दे देना चाहिए और पाकिस्तानको, और कश्मीर-घाटी गिलगित क्षेत्र संयुक्त राष्ट्र संघके अधीन कर देना चाहिए। हम नहीं कह सकते कि यह समाचार कहाँ तक ठीक है। पाठक यह जानते हैं कि संयुक्त राष्टसंघने पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर की गई ज़्यादतियोंकी जाँच तक नहीं की। 'बुनियादी बातोंमें समझौता विघातक होता है और न्यायमें स्वार्थपरता लाना वह स्थिति पैदा करता है जो आज कोरिया और चीनकी स्थितिको लेकर हो रही है।

कश्मीर-वार्त्ताकी असफलता

गत २४ जुलाई तक कश्मीर-सम्बन्धी जो समाचार मिले हैं उनसे यह बात स्पष्ट हो गई कि नेहरू-लियाकत-डिक्सन वार्त्ता फिलहाल असफल रही। अगस्तके प्रथम सप्ताहमें यह वार्त्ता कराचीमें हुई। गत २४ जुलाईको जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई उससे पता चलता है कि कुछ सिद्धान्तोंके आधारपर कश्मीर की समस्या हल करनेकी चेष्टा की गई। इन सिद्धान्तोंको लागू करनेके लिए विभिन्न तरीक़ोंसे विचार विनिमय किया गया। बातचीतके समय समस्याके कुछ नए पहलू सामने लाए गए। उनकी बारीक़ीकी जाँच करना आवश्यक समझा गया। पाँच दिनोंमें १७ घण्टे तक बातचीत चलती रही। जो विज्ञप्ति निकाली गई है वह इतनी कूटनीतिपूर्ण है कि उससे स्पष्ट रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि इस वार्त्ताका फल क्या हुआ। पर विज्ञप्तिके शब्दोंसे यह ज़ाहिर है कि कोई भी व्यक्ति असफलताकी जिम्मेदारी नहीं लेना चाहता था इसलिए वार्त्तालापको जारी रखनेका निश्चय किया गया है। आखिर किन सिद्धान्तोंके आधारपर समस्या हल करनेकी कोशिश की गई और समस्याके नए पहलू कैसे उत्पन्न हुए और जाँच करना कैसे आवश्यक समझा गया। आखिर वे पहलू पहले क्यों नहीं पेश किए गए। हमारे अनुमानसे मुख्य बात तो यह मालूम होती है कि कश्मीर-स्थित भारतीय सेनाओंके असैनीकरण तथा तथाकथित आज़ाद कश्मीरी सेनाओंके असैनीकरणपर कोई राज़ी नहीं हुआ। पाकिस्तान तथा आज़ाद कश्मीरने कश्मीरके जिस प्रदेशपर अधिकार कर रखा है उसे कश्मीरको वापस करना पड़ेगा। पाठक इस बातको जानते हैं कि पाकिस्तानके अधीन जो कश्मीरका इलाका है उसमें आतंकके कारण कश्मीरी वापस नहीं जा रहे। पाकिस्तान या आज़ाद कश्मीरमें रहनेसे बचे-खुचे आदमी पाकिस्तानके पक्षमें वोट देंगे। ऐसी हालतमें जनमत स्वतन्त्र कहाँ हुआ! इसलिए भारत-पाकिस्तानके सम्बन्धके मामलेमें भी बात चली होगी। इसलिए कश्मीरका मामला अकेला मामला नहीं है। पाकिस्तान और भारतकी बातें बहुत होती हैं समझौते भी होते हैं, पर वे अधिकांश रूपमें व्यवहृत नहीं

होते और फिर भारत और पाकिस्तानकी विभिन्न समस्याएँ समन्वित हैं। इस नाजुक-परिस्थितिमें मामलेको स्थगित कर दिया है। इस बीच देखना यह है कि डिक्सन साहब कोई नई शकल समझौतेकी निकालते हैं। डिक्सन साहब पहले भारत सरकारसे बातचीत करेंगे तब करांची जायँगे और वहीं पर कश्मीर-समस्यापर बातचीत होगी। हमें आशा है कि भारत और पाकिस्तान इस समस्याको सुलझानेका प्रयत्न करेंगे और हमें यह भी आशा है कि हमारा देश बुनियादी बातोंमें कोई समझौता नहीं करेगा।

नौसैनिक और राजनीति

गत २४ जुलाईके भारत सरकारके असाधारण गजटमें इस आशयका एक अध्यादेश जारी किया गया है कि "नौसेनामें स्त्रियाँ भर्ती नहीं हो सकेंगी और कोई नौसैनिक किसी मजदूर संघ या कार्मिक संघ अथवा किसी संस्थाका सदस्य नहीं बन सकेगा, और न ही वह किसी प्रकारके राजनीतिक कार्यमें भाग ले सकता है।

नौसैनिकोंके लिए किसी सभामें भाग लेना, उसमें भाषण देना, किसी प्रकारके प्रदर्शनमें भाग लेना, कोई किताब, पत्र या कागजात छपाना वर्जित कर दिया गया है।"

देवनागरी लिपि-सुधार-सम्बन्धी सिफारिशें

उत्तर प्रदेशकी सरकारने देवनागरी लिपिको सरल बनानेके लिए आचार्य नरेन्द्रदेवकी अध्यक्षतामें एक समिति नियुक्त की थी, पर अभी तक उस समितिकी सिफारिशोंपर कोई कार्यवाही नहीं की गई। यह समिति ३१ जुलाई, सन् १९४७ को बैठाई गई थी और २५ मई, १६४६ को अपनी रिपोर्ट पेश की। सरकारने बारह मासका समय उन सिफारिशोंपर जनताके विचार आमन्त्रित करनेको लिया। समितिने अपना कार्य लिपि-सुधार तक ही सीमित रखा। उसका लक्ष्य यह था कि वर्त्तमान लिपिमें न्यूनतम परिवर्त्तन हो और उसमें अधिकतम सरलता आ जाय। इस दृष्टिसे उसमें नागरी-प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन तथा कई विद्वानोंको अस्वीकार किया। निषेधात्मक निश्चय और स्वीकारात्मक निश्चय स्वरोंके बारेमें समितिको दो महत्त्वपूर्ण सुझाव प्राप्त हुए थे। पहला यह कि सब स्वरोंकी मूल आकृति एक-सी होनी चाहिए और इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ आदि आकारमें ही ि, ी, ु, ू, े, ै आदि मात्राएँ लगाकर लिखे जाने चाहिए। समितिने यह सुझाव अस्वीकृत कर दिया, क्योंकि इसका अर्थ पुरातनसे पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद होता।

दूसरा यह कि इ की मात्रा (ि) भी अन्य मात्राओंकी भाँति व्यंजनके पीछे लगायी जानी चाहिए। समितिने काफी गम्भीर विचार-विमर्शके बाद इस सुझावको स्वीकृत कर लिया है, हालाँकि यह सर्वथा मौलिक परिवर्त्तन है। इस परिवर्त्तनका प्रभाव बड़ा महत्त्वपूर्ण और दूरगामी होगा। इ की मात्रा (ि) की वर्त्तमान स्थिति अर्थात् उसका व्यंजनके आदि में लगाया जाना अस्वाभाविक है और फलतः सुकुमार मति बच्चों के दिमागपर उससे व्यर्थ बोझ पड़ता है। वर्त्तमान लेखन प्रणालीके अनुसार इ की मात्रा, जो व्यंजनके आदि में लिखी जाती है, दो ढंगसे लिखी जा सकती है। एक यह कि पहले व्यंजन लिखा जाय और फिर उसमें मात्रा लगाई जाय जैसा कि उसका उच्चारण होता है। और दूसरा यह कि पहले मात्रा लिखी जाय और फिर व्यंजन लिखा जाय। पहली दशामें व्यंजन लिखनेके बाद मात्रा लिखनेके लिए हाथको पीछे लौटाना पड़ता है और दूसरी दशामें हमें मात्राको व्यंजनसे पहले सोचना पड़ता है, जबकि वस्तुतः उसका उच्चारण व्यंजनके बाद होता है और फलतः दिमागपर बोझ पड़ता है, और यदि यह व्यंजन संयुक्ताक्षर हो तो और भी अधिक बोझ पड़ता है।

इस सुझावको स्वीकृत कर लेनेसे इ और ई दोनोंकी मात्राएँ-व्यंजनके अन्तमें लगाई जायँगी, इसलिए उनमें भेद करनेके लिए समितिने ह्रस्व इकारकी मात्राके लिए नया संकेत सुझाया है। यह संकेत दीर्घ इकारकी मात्रा (ी) से अधिक लम्बा और जटिल होनेके कारण कुछ अनुपयुक्त लगेगा और नये शिक्षार्थियोंके लिए यह समझना अप्राकृतिक और कठिन होगा कि यह लम्बा और जटिल चिह्न ह्रस्व इकारकी मात्राका है।

समितिने ह्रस्व इकारकी मात्राके लिए सुझाए गये और चिह्नोंको अस्वीकृत करनेका कोई कारण नहीं दिया है। उदा-

हरणके लिए एक सुझाव यह था कि ह्रस्व इकारकी मात्रा दीर्घ इकारकी मात्रा जैसी ही हो, किन्तु उससे छोटी हो। समिति शायद ह्रस्व इकारके लिए ऐसी मात्रा चाहती थी जो अगले व्यञ्जन तक पहुँच सके। समितिका शायद यह खयाल था कि यदि इस सुझाव को स्वीकृत कर लिया जाय तो ह्रस्व और दीर्घ मात्राओंमें भेद करनेमें कठिनाई होगी। किन्तु समितिका यह खयाल सही प्रतीत नहीं होता क्योंकि अंगरेजीमें a, d ; i, l आदि अक्षर एक-से ही हैं, उनमें एक दूसरेसे केवल यही अन्तर है कि एक छोटा है और दूसरा बड़ा, किन्तु इन अक्षरोंको पहचाननेमें कभी गड़बड़ नहीं पड़ी। इसलिए इस मुद्देपर एक बार पुनः विचार किया जाना चाहिए ; क्योंकि यह परिवर्त्तन कोई साधारण परिवर्त्तन नहीं है।

वर्णमालामें वृद्धि

जहाँ तक व्यंजनोंका सम्बन्ध है, समितिने यह सुझाव रखा है कि क्ष, त्र, ज्ञ आदि जो संयुक्त व्यंजन हैं उन्हें वर्णमालासे निकाल दिया जाय और उनकी जगह क, ष ; त, र ; और ज, ञ को मिलाकर ही ये संयुक्ताक्षर लिखे जायँ। साथ ही समितिने श्र, ओम् और मराठी ळ के लिए नये संकेत अपनानेकी सिफारिश की है। इसके लिए उसने कारण भी दिये हैं, किन्तु वे अनावश्यक प्रतीत होते हैं। श्र आसानीसे साधारण तरीकेसे ही, बिना नये संकेतकी वृद्धि किये ही, लिखा जा सकता है।

ओम्के लिए समितिने 'ओ३म्' यह संकेत सुझाया है। इसका कारण स्पष्ट नहीं है। यदि समिति 'ॐ' यह संकेत सुझाती तो कोई नई बात भी होती। किन्तु ओ३म् इस ढंगसे लिखनेकी बात यदि स्वीकार की जाय तो इसे वर्णमालामें नये संकेतके रूपमें क्यों स्वीकार किया जाय, क्योंकि ओ और म् ये दोनों वर्ण और ३ का अंक तो पहले ही लिपिमें विद्यमान है। इसी प्रकार मराठी ळ भी हिन्दीमें नहीं होता, इसलिए इसे नागरी लिपिमें स्वीकृत करना समितिके आधारभूत सिद्धान्तके विरुद्ध है। मराठी भाषा तो अपनी लिपिमें अपने विशिष्ट उच्चारणको ध्वनित करनेके लिए भिन्न प्रकारके अ और ल आदि अक्षर रख सकती है।

समितिकी एक और महत्त्वपूर्ण सिफारिश यह है कि व्यंजनोंको मिलानेके लिए उन्हें एकके ऊपर एक न लिखकर एकके बाद एक लिखा जाय। उदाहरणके लिए विद्याके बजाय विद्‌या लिखा जाय। इससे छपाई और लिखाई दोनोंमें सुविधा होगी और नये सीखनेवालोंके लिए भी आसानी होगी।

समितिके सामने एक सुझाव यह भी रखा गया था कि र के लिए कोई नया संकेत निश्चित किया जाय, क्योंकि उसमें र व का भ्रम होनेकी आशंका रहती है। किन्तु समितिने इसके विपरीत र के लिए नये संकेतकी सिफारिश की है। समितिके मनमें ठीक-ठीक क्या था, यह कहना कठिन है और जब तक यह ज्ञात न हो जाय तब तक उसपर कोई मत प्रकट करना भी मुश्किल है। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि समितिने र की जगह ऐसा नया संकेत रखना पसन्द किया जिसके अन्तमें । हो, ताकि संयुक्त अक्षर लिखनेमें सहूलियत हो।

समितिने ह को बदलकर ह लिखनेका सुझाव रखा है किन्तु इन दोनोंमें इतना कम अन्तर है कि इस परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार समितिने झ को मराठी ढंगसे लिखनेकी सिफारिश की है किन्तु उसका कोई कारण नहीं दिया है। (मराठीमें यह 'झ' इस प्रकार लिखा जाता है।) समितिका मत है कि ध और भ का प्रारम्भका भाग कुछ मुड़ा हुआ होना चाहिए। यह सिफारिश उपयोगी है ; क्योंकि इससे घ और म के साथ उनके भ्रमकी आशंका नहीं रहती।

देवनागरीमें कुछ अक्षर दो भिन्न-भिन्न रचनाओंसे लिखे जाते हैं। उदाहरणके लिए ण और अ कुछ पुस्तकोंमें एक प्रकारके और कुछमें दूसरी प्रकारके पाये जाते हैं जिससे हिन्दीके पाठकोंकी कठिनाई बढ़ जाती है। इसलिए एकरूपताकी दृष्टिसे समितिने इन्हें एक ही रूपमें लिखनेकी सिफारिश की है। अनुनासिक अक्षरोंके लिए समितिने बिन्दु यानी अनुस्वारको अपनानेकी सिफारिश की है। यह सब सिफारिशें स्वीकारणीय हैं।

अंकोंमें सुधार

अंकोंके सम्बन्धमें समितिने यह सुझाव रखा है कि १, ५, ६, में घुमाव रखा जाना चाहिए। किन्तु वस्तुतः यह

घुमाव अनावश्यक है, तेजीसे लिखते समय लोग अक्सर उन्हें भूल जाते हैं। ऐसा करनेसे ६ के नये संकेत और ६ में परस्पर भ्रम हो सकता है। अच्छा यह होता कि नौ के लिए ९ यह संकेत स्वीकृत कर लिया जाता। यह संकेत समिति द्वारा सुझाये गये नये संकेतकी अपेक्षा कम आपत्तिजनक है।

ऊर्ध्व रेखा

समितिने यह सिफारिश नहीं की है कि अक्षरोंके ऊपरकी आड़ी रेखा न लिखी जाय। यह ठीक ही है क्योंकि अक्षरोंके ऊपर यह रेखा लगानेकी प्रणाली बहुत पुरानी है और इससे अक्षरका विन्यास सुन्दर हो जाता है। किन्तु यदि कोई जल्दी लिखनेमें इस रेखाकी उपेक्षा कर दे तो उसपर भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए; क्योंकि ऐसा करनेसे भ, ध आदिमें जो भ्रम हो सकता था, वह उनके नये रूपमें नहीं होगा। ध और भ के नये रूपोंमें उनके प्रारम्भिक भागको घुमावदार लिखनेकी सिफारिश की गई है।

उपर्युक्त सिफारिशें अविकल रूपसे हम हिन्दीके 'हिन्दुस्तान' से ले रहे हैं। हमारे खयालसे हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेकी अपेक्षा उसे राष्ट्रभाषाके पदपर प्रतिष्ठापूर्वक कायम रखना अपेक्षाकृत कठिन है। उसके लिए नागरी लिपिमें ऐसे सुधार किए जायँ जिसमें उसमें रोमन लिपिकी खूबियाँ तो आ जायँ पर उसकी त्रुटियाँ न आने पायँ। टाइप राइटर और शौर्ट हैण्डमें जबतक हम अंगरेजीका मुकाबिला न कर सकेंगे, तब तक व्यावहारिक दृष्टिसे हिन्दीको उतनी उपयोगिता प्राप्त नहीं हो सकती।

अन्तर्राष्ट्रिय परिस्थिति

कोरिया-युद्धके कारण विश्वभरमें बेचैनीका वातावरण पैदा हो गया है। प्रत्येक देशमें चर्चा है कि कहीं तृतीय महायुद्ध न हो जाय। अनेक अटकल लगाए जा रहे हैं। कोई कहता है कि यदि अमेरिकाने अणुबम कोरियामें प्रयोग किया तो महायुद्ध अवश्य होगा। इक्के-ताँगेवाले तक माननीय नेहरूजीकी आलोचना करते हैं। महायुद्धके आतंकसे चीजोंकी कीमतें बढ़ने लगी हैं। आतंक और बेबसीका आलम-सा छा रहा है। जहाँ तक हमारे देशका सम्बन्ध है वहाँ तक यह तो स्पष्ट है कि यदि हमारा देश किसी गुटका पिछलगुआ बन गया तो हमारे देश और हमारी खैर नहीं। ऐंग्लो अमेरिकन गुटको बुरा लगता है कि भारतने अपने आपको उसके साथ क्यों नहीं रखा। मान लीजिए भारत उस गुटमें शामिल हो गया है और यह भी मान लीजिए, महायुद्ध शुरू हो गया है तो अमरीका क्या करेगा। रूसियोंकी हवाई शक्ति कुछ ही घण्टोंके अन्दर उत्तरी भारतके प्रमुख नगरोंका ढेर कर देगी और उसका प्रभाव क्या होगा। जबतक सहायता आयगी तबतक सब डेल डबुआ हो जायगा। अगर भारत रूसका साथ देता है तो लड़ाईका सामान—तोपें, मशीनें हमें न मिल सकेंगी। हमारी सेनाएँ अंगरेजी तरीकेपर सिखाई गई हैं इसीलिए राष्ट्रिय तथा अन्तर्राष्ट्रिय हितके लिए भारतका किसी गुटमें होना हानिकर है। कोरियामें जो लड़ाई है उसका भीषण रूप सामने आ गया है और अभी तक अमरीकी सेनाके पैर टिके नहीं हैं। टिकें भी कैसे, जब उत्तरी कोरिया १२ या १५ डिवीजन लड़ाईमें झोंक रहा है और अमरीकाके पास २ या ३ डिवीजन हैं। अब वहाँ निर्णायक लड़ाई है अगर ८-१० अगस्त तक अमरीकी सेना वहाँ जम गई तो फिर उसका हटाना मुश्किल होगा।

कोरिया-युद्धसे यह साबित हो गया कि जर्मनीके साथ निःशस्त्रीकरणकी नीति अंगरेजोंके लिए ही घातक सिद्ध हुई है और अब रूसी सेनाएँ इंग्लिश चैनल तक आसानीसे पहुँच सकती हैं। टर्की अपनी सेनाएँ कोरियाको दे रहा है। इंग्लैण्डने भी समुद्री बेड़ा भेजा है। हमारा अनुमान है कि कोरिया महायुद्धके कारण फिलहाल महायुद्ध नहीं होगा; क्योंकि महायुद्धका आरम्भ करना आसान है उसका लड़ना मुश्किल। यह तय है कि अणुबमका प्रयोग अमरीका कोरियामें नहीं करेगा। पर रूसने एक नया पैंतरा बदला है। अबतक तो रूसने सुरक्षा परिषदका बहिष्कार कर दिया था पर रूसी प्रतिनिधि पहली अगस्तसे सुरक्षा परिषदका सभापति हो गया। ताकि वह उसकी कार्यवाहीमें अड़ंगा लगाता रहे, पर क्या ऐसा महायुद्ध रोका जा सकता है। महायुद्धके कीटाणु पूँजीपति-व्यवस्था और कम्यूनिस्ट-व्यवस्थामें हैं। अधिकांश लोगोंमें पाप बैठा है। दुनियाके हर भागमें कशम-

कश चल रही है पर कोरियाकी इस लड़ाईमें उसका जीवन-मरण है और विश्वके लिए एक ऐसा आतंक है जिससे सब बचना चाहते हैं। शक्तिशाली देशोंमें यह भावना है कि जो हमारे साथ नहीं है वह हमारा शत्रु है। ऐसी दशामें जो गुट-बन्दीकी रस्साकशी चल रही है वह युद्धसे अधिक भयानक है। हम प्रायः लिखा करते हैं कि जब तक प्रत्येक देश अपने दैनिक जीवनके दृष्टिकोणको नहीं बदलेगा और शारीरिक श्रमको महत्त्व नहीं देगा तब तक बड़े-बड़े आदर्शोंके होनेपर भी विश्व विनाश की ओर जायगा। अमेरिकाने तो विशाल पैमानेपर युद्धकी तैयारी शुरू की है, इंग्लैण्डमें भी तैयारियाँ हैं। सब देशोंको युद्धकी निकट सम्भावनापर विश्वास है।

भारत और कश्मीरका आर्थिक समन्वय

पाकिस्तानने मजहब तथा अपनी आवश्यकताके आधारपर कश्मीरको पाकिस्तानमें मिलानेके लिए आकाश-पातालके कुलाबे मिलाये। इधर कोरिया-युद्धके कारण एक और समाचार मिला है। सुननेमें आया है कि ब्रिटेनके फौजी जनरल स्टाफके अध्यक्ष जनरल स्लिमने भारतमें साफ कहा कि 'रूसके मामलेमें भारत और पाकिस्तानको एकमतसे काम करना चाहिए।' एक और समाचार है कि सुरक्षा परिषद चाहती है कि जम्मू भारतको, कश्मीर पाकिस्तानको और गिलगिट संयुक्त राष्ट्र-संघको मिलना चाहिए ताकि अमरीकी फौजें भेजी जायँ। स्थिति गम्भीर होनेपर भी हम 'हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड'से आँकड़े लेकर यह साबित करना चाहते हैं कि भारतकी आर्थिक शृंखला में अथवा कश्मीरकी आर्थिक शृंखलामें भारत और कश्मीर क्रमशः एक कड़ी हैं। इस विवरणसे पाठकोंको मालूम होगा कि अपनी पुष्ट आर्थिक व्यवस्थाके लिए कश्मीर भारतपर अवलम्बित है। कश्मीर राज्यने १९४४-४५, १९४५-४६ और १९४६-४७ में जो आयात किये वे क्रमशः ६३८·०८ लाख रुपये, ६५०·०० लाख रुपये और ७५९·०९ लाख रुपये थे। अक्टूबर सन् १९४७ में कश्मीर भारतीय संघमें शामिल हुआ तबसे अब तक आँकड़े नहीं मिले। सूती कपड़ा, चमड़ेकी वस्तुएँ, लोहे इत्यादिका सामान, चीनी, चाय, स्टेशनरी, बीड़ी, तमाखू, रस्सी वगैरह आदि वस्तुओंके लिए कश्मीरके लिए भारत ही वह देश है जहाँसे वह पाता है। पाकिस्तान उपर्युक्त चीजोंके लिए भारत तथा अन्य देशोंपर आश्रित है। शराब और पेट्रोल तथा मिट्टीके तेलके लिए वह दोनोंपर आंशिक रूपसे अवलम्बित है। पर वैसे वह ये चीजें विदेशसे ही लेता है। १९४४ ४५, ४५-४६, ४६-४७ में कश्मीरसे क्रमशः ८०८·६१ लाख रुपये, ९४२·८४ लाख रुपये और ९०६·[illegible] लाख रुपयोंका निर्यात हुआ था और निर्यातकी वस्तुएँ विशेषकर हैं देवदार इत्यादिकी लकड़ी, जिसकी माँग विशेषकर भारतवर्षसे है। अकेली कश्मीरकी एक तिहाई लकड़ी भारतमें खपती है। जंगलातकी अन्य उपजमें से, जैसे तारपीनका तेल इत्यादि वस्तुएँ, वह तो सम्पूर्ण ही भारतको निर्यात होती है। कश्मीरकी प्रसिद्ध शालें, दरियाँ, नमदे आदि वस्तुएँ तो अधिकांश रूपमें भारत ही जाती हैं, पाकिस्तानमें तो उनकी केवल १० प्रतिशत खपत होती है। कश्मीरी रेशम सब भारत ही आता है। कश्मीरकी एक आमदनीकी मद है कश्मीरकी यात्रा। उस मदमें से केवल १० फ़ीसदीकी आमदनी पाकिस्तानसे होती है। इससे स्पष्ट है कि पाकिस्तानमें कश्मीरी मालकी खपत बहुत कम है। अपने निर्यातसे कश्मीरको जो आमदनी होती है उसमें पाकिस्तानका भाग १० फी सदी है और जो खरीददारी होती है वह कश्मीर अपने पाकिस्तानके आयातसे $\frac{1}{5}$ से भी कम वहाँसे खरीदता है। अगर कश्मीर पाकिस्तानका एक भाग बन जाय तो आर्थिक दृष्टिसे उसकी क्या हालत होगी। ऐसी दशामें कश्मीरके व्यापारियोंकी क्या दशा होगी और भारतवासियोंकी यात्रासे जो आमदनी होती है वह तो ठप ही हो जायगी। बात सीधी-सी है। कश्मीरकी आर्थिक व्यवस्थाके लिए भारतकी आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्ध अनिवार्य है इसलिए कश्मीर पाकिस्तानको तो [illegible] दृष्टिसे छोड़ सकता है पर भारतको नहीं।



आशानगरी

कविराज रत्नाकर शास्त्री

आजसे प्रायः पाँच-छः हजार वर्ष पूर्व भारतवर्षका राजनैतिक केन्द्र हस्तिनापुर था। यह महाभारत-काल कहा जाता है। उस समय हस्तिनापुरके सम्राट् धृतराष्ट्र थे। वे शरीरसे अन्धे तो थे ही, हृदयसे भी अन्धे थे। अपने उद्दण्ड पुत्रोंको शासनका सर्वेसर्वा बनाकर अपने जीतेजी उन्होंने अन्याय और अत्याचारका पूरा विस्तार कर दिया था। हस्तिनापुर कुरुदेशकी राजधानी था। धृतराष्ट्रके ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधनके अन्यायके कारण कुरुदेशके पार्श्ववर्ती राज्य बेचैन तो थे, परन्तु वे धीरे-धीरे लोकप्रियता प्राप्त करते जा रहे थे। सच बात तो यह है कि यदि विदुर जैसा राजनीतिज्ञ प्रधान मन्त्री धृतराष्ट्रको न मिला होता तो कुरुदेशपर दुर्योधनके शासन करनेका दिन न आता। कुरुदेशमें करनाल, पानीपत, दिल्ली, सहारनपुर, बिजनौर, मुजफ्फर नगर, मेरठ, बुलन्दशहर का प्रदेशका प्रान्त था।

कुरुदेशका दूसरा पड़ोसी राज्य पांचाल देश उसके पूर्वसे दक्षिणकी ओर फैला हुआ था। बरेली, बदायूँ, पीलीभीत, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, कन्नौज और इटावाके जिले शामिल थे। पांचाल देशकी राजधानी काम्पिल्य-नगरी गंगाके किनारेपर थी। जिला फर्रुखाबादकी कायमगंज तहसीलमें काम्पिल्य राजधानीके भग्नावशेष अभीतक विद्यमान हैं। यहाँ एक छोटा-सा कस्बा कम्पिल नामसे ही विख्यात है। यहाँके तत्कालीन सम्राट्का नाम द्रुपद था। द्रुपदने दूरदर्शिताका काम यह किया कि अपनी पुत्री द्रौपदी (पांचाली) का विवाह युक्तिपूर्वक अर्जुनके साथ कर दिया, इस प्रकार दुर्योधनके प्रतिद्वन्द्वी पाण्डवोंका पूरा सहयोग द्रुपदको मिला। और पाण्डवोंको अपना अधिकार प्राप्त करनेके लिये द्रुपदका सहयोग प्राप्त हो सका।

दुर्योधनने जुएमें पाण्डवोंको हराकर १४ वर्षके लिये बनवासकी शर्तके अनुसार राज्यसे निकाल दिया। यह १४ वर्षके वनवासका अधिकांश समय पाण्डवोंने द्वैतवनमें व्यतीत किया। यद्यपि अभी पाण्डवोंसे द्रुपदका कोई रिश्ता न था, परन्तु द्रुपदने भविष्यकी भूमिका इसी समय निर्माण करनी प्रारम्भ कर दी थी। द्वैतवन वर्त्तमान इटावा जिलेमें यमुना और चम्बल नदियोंके बीचकी वनस्थली थी। यह द्रुपदके राज्यमें थो। इस घने जंगल प्रदेशमें पाण्डवोंको शरण देकर द्रुपदने पाण्डवों की सहानुभूति और अभिन्नता प्राप्त कर ली। पाण्डव ही नहीं, पाण्डवोंके सारे पक्षपाती द्रुपदके पक्षपोषक हो गये। द्रुपदके गुप्तचरोंने द्वैतवनमें तत्कालीन राजनीतिका केन्द्र स्थापित कर दिया। महाकवि भारविने अपने महाकाव्य किरातार्जुनीयका प्रारम्भ ही द्वैतवनसे किया है। द्वैतवनमें चर्मरावती (चम्बल) और यमुना नदियोंके किनारोंपर १४ वर्ष बिताकर एक वर्षका गुप्तवास जिस चक्रानगरीमें किया था वही आजका चकर-नगर (जि० इटावा) है। गुप्तवासके कालमें अपने शस्त्रास्त्र पाण्डवोंने जिस कुएमें डाल दिये थे, वह कुआँ चकर नगरमें अभी तक विद्यमान है। चक्रानगरीमें अपनी शरणदात्री ब्राह्मणीके पुत्रको बचानेके लिए भीमसेनने बकासुरका वध किया था, बकेवर (जि० इटावा) उसीका स्मारक है।

पाण्डवोंके सुयोग्य पुरोहित महर्षि धौम्य इसी प्रदेशके निवासी थे। पुराने लोगोंसे यह प्रवाद-परम्परा चली आती है कि इटावाके समीप, यमुनाके किनारे, 'धौमनपुर' ग्राम महर्षि धौम्यकी वास-भूमि थी। किसी अज्ञात कालमें उक्त पुरोहितके संस्मरणार्थ एक शिवमन्दिर किसी उदारचेताने वहाँ बनवा दिया है, इसे अभी तक 'धौम्येश्वर महादेव' कहते हैं। पांचाल देश चूँकि पाण्डवोंके बनवास और उसके बाद ही ससुराल होनेका गौरव पा सका इस कारण महाभारतकी भूमिका यहीं तैयार हुई थी। चक्रानगरीसे काम्पिल्य ले जाकर धौम्यने द्रौपदी-स्वयम्वरके लिये ही पाण्डवोंका पौरोहित्य नहीं किया अपितु महाभारतके भीषण महायुद्धका पौरोहित्य भी महर्षि धौम्यने ही किया।

इस युगका साहित्य महाभारत है। परन्तु धौम्यपुर (धूमनपुर) और चक्रानगरीके मध्यमें यमुना-तटपर एक और वैभवशाली नगरीका सौभाग्य उदय हुआ था, वह आशा-

नगरी थी। आशानगरीका साहित्य किसीने लिखा ही नहीं। फिर भी वसुधामाता अपनी सन्तानके संस्मरण भूल नहीं जाती। आशानगरीके भग्नावशेष उसकी सौभाग्य-कथा आज तक कहा करते हैं। इतिहासकार बहुधा भय और पक्षपातसे प्रेरित होकर अपनी लेखनी चलाते हैं, परन्तु वसुन्धराको न भय हिला सका न पक्षपात, वह अपनी कहानी कहे ही जाती है।

ईसाकी ११वीं और १२वीं शताब्दियोंके बीच जयचन्द और पृथ्वीराजकी ऐतिहासिक कहानी सभीको ज्ञात है। यह भी सुविज्ञात है कि पृथ्वीराजकी राजधानी दिल्ली थी, परन्तु जयचन्दकी वास्तविक राजधानी 'आशानगरी' थी। अपने जीवनमें ही जयचन्दने आशानगरी त्यागकर कन्नौजकी नगरीको सौभाग्यशालिनी बना दिया, यह भी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। आज आशानगरीके भग्नावशेष द्वैतवनकी उपत्यकामें यमुना-तटपर परित्यक्ताकी व्यथामयी कथायें कहते हैं। इस सुविस्तीर्ण खेटकपर जयचन्दका भग्न-भवन और नगर सन्निवेशके चिह्न खूब ही स्पष्ट देखे जाते हैं। इस ऐतिहासिक स्थानको आज 'आसई-का-खेड़ा' कहते हैं। लेखकने यह स्थान स्वयं जाकर देखा है। इटावासे औरैया जानेवाली ग्रांडट्रङ्क रोडपर इकदिल नामक क़स्बेसे दक्षिणकी ओर प्रायः चार-पांच मीलकी दूरीपर आसईका यह ऐतिहासिक खेड़ा विद्यमान है।

आज आसईका खेड़ा अनुमानसे १५ या २० वर्ग मील तो होगा ही। शताब्दियोंसे उसका न जाने कितना भाग यमुनाकी धारा बहाकर ले गई है। यद्यपि यमुनाका प्रवाह उसे सैकड़ों वर्षोंसे समुद्रके गम्भीर गह्वरमें निरवधि विश्रामके लिए प्रेरित करता रहता है, फिर भी भारतके प्राचीन इतिहासका सन्देश देनेके लिए वर्षा, आतप और शिशिरकी वेदनाएँ सहकर भी वह आशानगरीकी आन लिए, द्वैतवनके किनारे पाण्डवोंकी भाँति अपना गुप्तवास व्यतीत कर रहा है। आज तो आसईमें थोड़े-से झोंपड़े ही दिखाई देते हैं। उसका वह सौन्दर्य और वैभव तो न जाने कबका विलीन हो चुका है।

इस लेखमें कुछ स्थूल परिचय ही पाठकोंको देना है। वे संस्मरण जो-कुछ घण्टोंमें देखे और सुने जा सके, वही इस लेखमें समाविष्ट किये गये हैं। कुछ घण्टोंमें जो कुछ मैंने देखा [illegible] आधारपर यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आ[illegible] भग्नावशेषोंकी एक-एक ईंटके नीचे १०वीं से १२वीं शता[illegible] इतिहास विद्यमान है। वह कविकी कल्पनासे कहीं सुन्दर [illegible] हमारा इतिहास और संस्कृति नष्ट हो चुकी, यह कहना [illegible] है। ऐसे हृदयोंकी आवश्यकता है जो उन भग्नावशेषोंमें [illegible] हुई सांस्कृतिक भावनाओंको जाग्रत कर सकें।

आशानगरीके भग्नावशेषोंमें जो कुछ मिला है उससे प्र[illegible] होता है कि वह स्थान वैदिक, जैन और बौद्ध धर्मोंका, सम[illegible] समयपर, मुख्य केन्द्र रह चुका है। जैन सम्प्रदायके लोग [illegible] उसे अभी तक तीर्थ मानकर अपने बच्चोंका मुण्डन कराने [illegible] जाते हैं। उस तीर्थके स्नानका भी कुछ अदृष्ट महत्त्व है। इटावा जिलेमें आसईके खेड़ेका हरेक पत्थर देवता समझा जा[illegible] है। मुझे भग्न प्रतिमायें उठाकर देखते हुए एक आदमी[illegible] कहा—'बाबू' यहांके टुकड़े घर मत ले जाना, रातको [illegible] देवता अपनी-अपनी मूरतमें आते हैं, तुम जिसे ले जाओगे [illegible] देवता तुमसे नाराज़ हो जायगा। क्योंकि यहांके देवता अप[illegible] आबादी छोड़ते नहीं हैं, हमारे सब काम इन्हींके भरोसे चल[illegible] हैं।' वहांके कृषक-समुदायने हलकी नोकसे वसुधाके अन्तस्तल को चीरकर अन्न ही नहीं, न जाने कौन-कौन-सी अमूल्य वस्तुएं पाई हैं। मूर्तियां, सिक्के, बर्त्तन, आभूषण और कला वहांके भू-गर्भके प्रमुख उपादान हैं। मैंने देखा कि उस सूखे हु[illegible] खेड़ेपर ईंट-पत्थरोंके बीच बड़ी सुन्दर खेती होती है।

इधर-उधर बिखरे हुए मलबेके बीचमें लोगोंने बड़े सुन्दर खेत बनाये हैं। ऊँचे खेड़ेके चारों ओर यमुनाके घने जंगलका सुहावना दृश्य है। बीचमें ऊँचे टीलेपर खेतोंका दृश्य ब[illegible] मनोहारी लगता है। खेतोंके निर्माण करनेमें वहाँ बड़ी-ब[illegible] खत्तियाँ निकली हैं, जिनमें गेहूँ, बेझर और मूँग भरी हुई निकली हैं। वे अन्नके दाने आज प्रायः १ हज़ार वर्षके बा[illegible] भी अपने स्वरूपमें पूरे पहचाने जाते हैं, खत्ती भरी हुई दीखती है, परन्तु दानेको आप उठाना चाहें तो दाना राख हो जा[illegible] है। दानेका जीवन समाप्त हो चुका है, परन्तु उसकी प्रतिमा मौजूद है। एक नहीं, अनेकों खत्तियाँ आशानगरीका वैभव

वर्णन करती हुई निकली हैं। बाज़ार, दूकानें, कोठे, अलमारियाँ, सड़कें और पत्थरके सुन्दर-सुन्दर पदार्थ !

आशानगरीके खेड़ेपर खोदने-खादनेमें सैकड़ों धातु एवं प्रस्तरकी प्रतिमायें मिली हैं। दुःख है कि आज भी उनके क़द्रदां हमारे प्रान्तमें नहीं हैं। मैं तो एक दिन कुछ घण्टों ही उन प्रतिमाओंके बीच गया था। सच तो यह है कि उस थोड़े-से समयमें उन मूर्तियोंने मुझसे जो दर्दभरी अपनी व्यथायें कहीं उनसे मेरा हृदय भर आया। भूमिका अन्न खाकर वसुधा माताका जो ऋण हमने अपने ऊपर लादा है उससे हम थोड़ा बहुत तभी उऋण हो सकते हैं, जब उसके गर्भसे निकलनेवाली इन अमूल्य वस्तुओंकी क़द्र करना सीख लें।

आसईके भूगर्भसे निकली हुई प्रतिमायें तीन श्रेणियोंमें विभक्त की जा सकती हैं

(१) बौद्ध प्रतिमायें—(त्रिचीवर युक्त)

(२) जैन प्रतिमायें—(नग्न प्रतिकृति)

(३) वैदिक प्रतिमायें—(दशावतार मूर्तियाँ)

वैदिक और जैन धर्मावलम्बी आज भी आशानगरीके पुराने सम्बन्धको भूले नहीं हैं। जैनधर्मके ४थे या ५वें तीर्थंकर श्री विमलनाथ स्वामी, इसी पांचाल देशके सम्राट् थे। इसी क्षेत्रमें तपश्चर्या करते हुए उन्होंने जैन-सिद्धान्तोंके उपदेश दिये थे। वैदिक धर्मावलम्बी अभी तक आसईके पत्थर या प्रतिमायें ले जाकर मन्दिरोंमें उन्हें देव-भावसे पूजते हैं। परन्तु बौद्ध लोग शायद आशानगरीको भूल गये हैं। यद्यपि बौद्ध प्रतिमायें ही आसईमें सबसे अधिक उपलब्ध होती हैं। कुछ वैदिक अवतार मूर्तियाँ लोगोंने इकट्ठी करके आसईके निकट एक ग्राममें छोटा-सा मन्दिर बना लिया है। मन्दिरकी दीवारें मूर्तियोंसे ही बना दी गई हैं, शेषनागपर भगवान विष्णुका क्षीर-सागर शयन एक प्रतिमामें अत्यन्त सुन्दर रूपसे चित्रित है। हाँ, बीच-बीचमें एकाध बौद्ध या जैन प्रतिमा भी जुड़ गई है। इतिहास की अनभिज्ञतामें यह सम्भव होगा ही। जिन्हें ग्रामीण समझ गये कि ये उनके सुपरिचित देव हैं, उन्हें प्रमुख स्थान दे दिया है और जिन्हें नहीं पहचाना उन्हें यत्र-तत्र जोड़ दिया है।

धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रामें समाधिस्थ हुए भगवान बुद्धकी जो प्रतिमा आजकल सर्वोत्तम समझी जाती है, लोगोंका कहना है कि उसे प्रदान करनेका श्रेय सारनाथको ही है। परन्तु ठीक वैसी ही बुद्ध भगवानकी प्रतिमा मैंने आसईमें देखी, जो आकार में काफ़ी लम्बी-चौड़ी है। लोगोंने सैकड़ों मूर्त्तियाँ चुनचुन कर अपने झोपड़ोंके चबूतरे बना लिये हैं। अनेक अत्यन्त उत्कृष्ट कलामयी प्रतिमायें हैं जिनमें युवतियोंके उल्लास, यौवन, और नृत्यके हाव-भाव बड़ी सफलतापूर्वक चित्रित किये गये हैं। वस्त्र, आभूषण और भावभङ्गी इतनी आकर्षक बनी है, मानों सब कुछ सजीव हो। नाचती हुई युवतियोंकी अंगुलियों और बाहुओंमें संगीत है, ताल है, अनुराग है, इङ्गित और माधुर्यकी व्यञ्जना और ध्वनि तक है। गोस्वामीजीकी वह चौपाई याद आ जाती है—"गिरा अनैन नैन बिनु बानी।" बस, देखनेकी ही चीज़ है। सम्राट जयचन्दके कला-प्रेमका यह जीता-जागता नमूना है। मैंने ऐसी कितनी ही प्रतिमायें गाँवके मुखियाके घरमें बुरी तरह पड़ी देखीं। भिल्लनीके हाथ लगे अमूल्य मोतियोंकी भाँति वह उनकी कद्र नहीं जानता। वह उनकी मूकभाषाको सुन नहीं सकता, और भाव-व्यञ्जनाको समझ नहीं सकता। उसे तो सुननेवाले ही सुनते और समझते हैं। मुखिया बेचारा कहींसे सुन आया है कि 'ये मूर्तियाँ रखे रहो, कभी अच्छे दामोंमें बिक जायँगी।' यह उसकी कृपा है कि उसने इन्हें चबूतरे और दीवारोंकी चुनाईमें नहीं दाबा। शिक्षित और आत्माभिमानी विद्वत्समुदाय उद्योग करें तो क्या इटावामें इन ऐतिहासिक अमूल्य रत्नोंसे एक सुन्दर संग्रहालय स्थापित नहीं हो सकता ?

आशानगरीका मध्यकालीन इतिहास अभी प्रकाशमें नहीं आया। परन्तु आप प्रतीक्षा करेंगे तो एक दिन अवश्य आयगा। मौर्यकालीन, शुङ्गकालीन तथा गुप्तकालीन मूर्त्ति-कलाओंका एकत्र अध्ययन करनेके लिये आसईसे अधिक उत्तम स्थान दूसरा नहीं। धातु-निर्मित देव मूर्त्तियाँ भी वहाँ उपलब्ध हुई हैं, जो एकाध मन्दिरमें हैं। कहते हैं कितने ही वर्ष पूर्व यहाँ मिली हुई एक धातु-निर्मित मूर्त्ति किसी अंगरेज कलक्टरने कलकत्ता म्यूज़ियमको भिजवा दी थी। यहाँकी मूर्त्तियाँ प्रायः भूरे रंगके पत्थरपर बनी हुई हैं। पत्थरपर उभार

देकर बनाई हुई शुङ्गकालीन प्रतिमायें बहुत हैं। परन्तु वे गुप्तकालीन कलाके मुक़ाबिलेमें उदास प्रतीत होती हैं। शुङ्ग-कालीन कलामें वैदिक देवताओंके चित्रण ही अधिक हैं, उनकी किसी घटनाके चित्रणके लिये कई-कई आकृतियाँ करनी पड़ी हैं, परन्तु गुप्तकालीन प्रतिमायें अकेली ही अपने हाव-भावको पूरा प्रकट करती हैं।

आजसे ७००-८०० वर्ष पूर्व आशानगरी महाराज जयचन्दकी राजधानी रह चुकी है। एक बार महाराज जयचन्दकी सेनाके ऊँटोंमें खाजका रोग फैला। राजवैद्यने कड़ुवे तेलकी मालिशका उपचार बताया। परन्तु फौजके हज़ारों ऊँटोंके तेलकी मालिश होना कुछ मामूली बात नहीं थी। महाराजने महलमें तेलके ठेकेदार नगरके तेलीको बुलाकर तेल सप्लाई करनेका हुक्म दिया। तेलीने भी महाराजकी आज्ञाका ध्यान रखकर एक बड़ा तालाब खुदवाया, जो प्रायः दो बीघा पक्केसे कम न होगा। तालाब पक्का बनवाकर तेलीने उसे कड़ुवे तेलसे लबालब भरवा दिया। लोगोंको चिन्ता थी कि तेली इतना तेल कैसे देगा? परन्तु जब उसने तेलका तालाब तैयार करा देनेकी खबर महाराजको दी तो सबके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। महाराज तेलीका यह अध्यवसाय देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उसे मूल्यके अतिरिक्त बहुत-कुछ पारितोषिक भी दिया। वह ऐतिहासिक तालाब टूटी-फूटी दशामें है, परन्तु आशानगरीके अतीत वैभवकी कहानी तो कहता ही है।

लोगोंका कहना है कि एकबार महाराज जयचन्दने बड़ा-भारी यज्ञ किया। यज्ञके समाप्त होनेपर महाराजने आज्ञा दी कि आशानगरीके मार्गसे आने-जानेवाले प्रत्येक व्यक्तिको महलमें भोजन कराके जाने दिया जाय। ब्राह्मणोंको भोजनोपरान्त एक-एक स्वर्णमुद्रा भी दक्षिणामें दी जाय। शहरके चारों ओर पहरा बैठा दिया गया। उन दिनों पांचालसे विराटदेश (ग्वालियर) तथा विदर्भ (विराट) को जानेका मुख्य मार्ग आशानगरी होकर ही था। बड़ा चलता हुआ मार्ग था। जो उस मार्गसे आता उसे महलमें भोजन करना अनिवार्य हो गया। इसी समय यज्ञमें अतिथि रूपसे आये हुए राजाओंको घोड़े बेचनेके विचारसे कुछ व्यापारी आ निकले। व्यापारी ब्राह्मण थे। सिपाहियोंने उन्हें रोककर महलमें भोजनके लि[ये] चलनेको कहा। व्यापारियोंने भोजन करनेसे इन्कार कि[या।] सिपाही बोले—सम्राट्की आज्ञासे यहाँका यही नियम है। उन्होंने उत्तर दिया—तो हमारा भी यह नियम है कि [जो] हमारे घोड़े खरीदेगा, हम उसीके घर भोजन कर सकते हैं। सम्राट्से कहना हम व्यवसायी ब्राह्मण हैं, भिखमङ्गे नहीं। यह सूचना महाराजके पास पहुँची। उन्होंने घोड़ेवालोंको बुलाकर कहा—अपने घोड़ोंका मूल्य बताओ, मैं उन्हें ख[रीद] लेता हूँ, परन्तु तुम्हें बिना भोजन किये यहाँसे न जाने दि[या] जायगा। घोड़े ख़रीदे गये। अश्व-व्यवसायी ब्राह्मणोंने भोज[न] कर लिया। भोजनके उपरान्त अपने नियमके अनुसार एक-एक गिन्नी राजाने दक्षिणा भी दे दी। ब्राह्मण गिन्नी लेक[र] महलसे बाहर होते जाते थे और दो-दो गिन्नियाँ महलकी ड्योढ़ीपर छोड़ते जाते थे। दरवानने महाराजको यह सूचना दी। महाराजने उन्हें फिर पकड़वा मँगाया। महाराजने उनसे ऐसा करनेका कारण पूछा। वे बोले, 'आप गिन्नियोंको बड़ी चीज़ समझकर देते हैं। पर हमें उसकी दरकार नहीं, इ[सी] लिये हम अपनी ओरसे एक-एक गिन्नी और छोड़े जाते हैं, जिन्हें गिन्नियाँ चाहिये उन्हें दे दें। हमें जिसकी आवश्य[क]ता नहीं वह दक्षिणा हम लेकर क्या करेंगे? दक्षिणा व[ही] लेना उचित है जिसकी हमें आवश्यकता हो।' राजाने कहा 'तो फिर अपनी आवश्यकता बताओ, मैं वही दूँगा'। व्यवसायी ब्राह्मणोंने घोड़ोंके लिये आशानगरीके चारों ओरकी भूमि, त[था] रहनेके लिये समस्त आशानगरी ही माँग ली। राजा कु[छ] चिन्तित तो हुए, परन्तु अब क्या था, देना तो था ही। सम्राट् हँसकर बोले—तो जाओ, यही देता हूँ। उन्होंने वह दक्षि[णा] स्वीकार कर ली। पर उनकी अयाचकताका अभिमान आशा-नगरीके वैभवने परास्त कर दिया।

नगरीके श्रेष्ठियोंको जब यह पता चला तो अपनी फरियाद लेकर महाराजके पास आये। "हमारी उपार्जित सम्पत्ति हमसे बिना पूछे आपने दान कैसे कर दिया?" दूसरोंकी सम्पत्ति देकर पुण्य-उपार्जन करनेकी धृष्टता तो धर्मशास्त्रके अनुसार पाप है। महाराज़ चिन्तित हुए। लोग सम्राट्

शासनमें रहनेको तैयार थे, व्यवसायी ब्राह्मणोंके नहीं। नागरिकोंने नगरी देनेमें तब तकके लिये आपत्ति की, जब तक उनकी और सम्पत्तिकी सुरक्षाका प्रबन्ध न हो जाय। राजा चुप हो गये। प्रातःकाल मन्त्रीको बुलाकर कहा—'आज नगरीके प्रत्येक व्यक्तिकी सम्पत्तिका मूल्य लिखा जायगा'। प्रत्येक व्यक्तिको बुलाकर उसकी सम्पत्तिका मूल्य लिखा जाने लगा। लोगोंने सोचा—'दक्षिणा देते-देते महाराजके कोषमें कमी आ गई है। शायद सम्पत्तिपर नया टैक्स लगे, इस कल्पनासे दस हज़ारके स्वामीने अपनी सम्पत्ति पाँच हज़ार ही लिखाई। दो-चार दिनमें कूत-मूल्यकी सूची तैयार हो गई। अब महाराजने घोषणाकी 'अपनी सारी सम्पत्तिको लोग ज्यों-का-त्यों यहीं छोड़ दें। सम्पत्तिका कूत-मूल्य लिख गया है। कल प्रातःकाल नगरी दान कर दी जायगी, और नगरी खाली करते समय जो लोग मेरे साथ रहना चाहते हैं मेरे पीछे आ जायँ। उनकी सम्पत्तिका मूल्य उन्हें दिया जायगा।" प्रातःकाल होते ही सम्राट्‌ने नगरी छोड़ दी। सारे नागरिक सम्राट्‌के पीछे चल दिये। क्षण-भरमें आशानगरी खाली हो गई। लोग अपने साम्पत्तिक मूल्यको कम लिखानेपर चिन्तित थे परन्तु अपने प्रिय सम्राट्‌का अनुगमन करनेपर अभिमान और आह्लादसे पूर्ण थे। जन-शून्य नगरी और उसके वैभवपर घोड़ेवाले व्यवसायी ब्राह्मणोंका अधिकार हो गया। वे अपनी सफलतापर फूले न समाते थे। पर कौन जानता है कि वैभव किसके साथ रहना पसन्द करेगा? वे आज तक 'घुड़वार ब्राह्मण' कहे जाते हैं। असईके वर्त्तमान अधिवासी प्रायः घुड़वार ब्राह्मणोंके वंशज हैं।

महाराज जयचन्द पुत्रवत् प्यारी प्रजाको यमुना-तटसे लेकर गंगाके किनारे जा बसे। वह नवीन आवास नई 'कान्यकुब्ज-नगरी' बन गई। आज वही तो कन्नौज है। कन्नौजमें आबाद होकर पूर्वलिखित सम्पूर्ण मूल्य महाराजने प्रजाको दे दिये। ब्राह्मणोंके इस नैतिक पतनके साथ आशानगरीका भी पतन हो गया। थोड़ेसे घुड़वार विशाल आशानगरीको न सम्हाल सके, न भोग सके। एक पतिपरायणा विधवाकी भाँति आशानगरी दिन-दिन क्षीण होती गई। परन्तु इससे क्या, आशानगरी यमुनाकी वन-वीथियोंमें आज भी यह आशा लिये बैठी है कि उसके खोये हुए वैभवको स्वतन्त्र भारतके सपूत फिरसे समुन्नत करेंगे।

भगवान्‌का मोहिनी-अवतार

रामलाल

अखण्ड, अनन्त, अज और अनादि भगवदीय सत्ताकी लीलाका पर्याय—अवतार है। माना, भारतीय शास्त्र भगवान्‌के कतिपय विशेष अवतारोंकी महिमाका बखान बड़ी लम्बी-चौड़ी भाषामें करता है तो भी यदि विचारसे काम लिया जाय तो ऐसा दीख पड़ता है, और सच भी है, कि भगवान्‌की लीला तो क्षण-क्षणमें हो रही है और उनके अनेक अवतार असंख्य कार्यकी भूमिकायें हैं। इतना कहकर मौन हो जाना पड़ता है कि वेदके अधिष्ठाता ब्रह्मा, वाणीके देवता शेष और शारदा, अक्षरके अधिपति गणेश आदि भी भगवान्‌के कार्योंको गणनाकी सीमामें नियन्त्रित नहीं कर सकते। श्रुतिने तो 'एकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्'में ही भगवान्‌की समस्त लीलाओंका सामञ्जस्य कर दिया है। यह ऐसा सूत्र है जो भगवान्‌को प्रकृतिके विलासमें कभी-कभी ओत-प्रोत कर देता है या प्रकृतिको ब्रह्ममें लीनकर सृष्टिका चित्र बदल देता है।

परमात्माको एक ही समय एक स्वरसे 'माता, धाता और पितामह' कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं होता। वे तो हैं ही और वेदान्तने सर्वत्र जीव, जड़, और जङ्गममें उनकी जो एकात्मकता प्रतिष्ठित की है वह इस रहस्यका संकेत है कि परमात्मा शक्तिमान हैं पर साथ ही अपनी विभिन्न कलाओंमें जीव मात्रको नचा रहे हैं। यह एक इतिहासगत बात है कि एक समय ऐसा भी था जब दैत्योंको अधीन करनेके लिए उन्हें 'नारी' मोहिनीका अवतार लेना पड़ा, परा और अपरा शक्तिकी समन्वय भूमिपर स्वलीलाका विस्तार करना पड़ा। यह तथ्य है कि रावणको मारनेके लिए रामकी ही आवश्यकता थी,

कंसको मिटानेके लिए रासेश्वर कृष्णका ही अवतार होना था। शान्ति-सरिताके तटपर विश्व और जीवमात्रकी अशान्तिकी चिता जलानेके लिए तथागतका ही अवतरण वाञ्छनीय था। यह सच है कि परमात्मा बिना इन रूपोंके ही अभीष्टका सम्पादन कर देते पर 'एकाकी न रमते'की महत्ता अधूरी रह जाती, भगवदीय लीलापर आस्तिकका विश्वास ही नहीं रह जाता, शास्त्रवाक्योंका मखौल उड़ाया जाता। परमात्माकी अवतार-लीलाका यह रहस्य है।

भगवान्का मोहिनी अवतार अमृत-मन्थनके अवसरपर हुआ था। यह अवतार सिद्ध करता है कि जब मानवताकी शक्ति समाप्तप्राय हो जाती है, दैवी-सम्पत्तिपर दानवताका आधिपत्य स्थापित हो जाता है, नन्दन-वनमें आग लग जाती है, गगन-गंगामें विषकी लहरें आन्दोलित होने लगती हैं, कैलास-पर शिवकी समाधि टूट जाती है; उस समय भगवान् सौन्दर्य सागरके मनोरम तटपर 'रमणी'के रमणीय अवतारसे, मोहिनीके सम्मोहन बाणसे दानवताकी छाती छेद डालते हैं, अमृतके दुश्मन राहुका गला काट डालते हैं, ब्रह्मा, विष्णु और शिवको मोहितकर जगत्को ब्रह्ममय कर देते हैं। मोहिनी अवतार सौन्दर्यकी निधि है, भगवत्ताका सागर है। एक विचित्र प्रश्न उठता है कि शुम्भ-निशुम्भका अन्त कर देनेवाली भवानी क्या दैत्योंके विनाशके लिए क्षम न थी या सुन्द-उपसुन्दको मृत्युके मुखमें डालनेके लिए तिलोत्तमाकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा क्या इस कार्यके लिए निर्बल थे। इसका समाधान यह है कि तत्कालीन दैत्य सेनापति बलिका पराक्रम बहुत बढ़ चुका था, उनके पुण्यकी पताका इन्द्रके रंगमहलपर फहराने ही वाली थी और विशेष बात तो यह थी कि दैत्योंके हाथमें अमृत-कलश था, सागर-मन्थनकी तपस्याका अमर-रस था। देव तो हार ही चुके थे, शिव विषपान कर ही चुके थे, ऐसी स्थितिमें यदि भगवान् अपना कच्छप-वेष त्यागकर महामाया सुन्दरीकी कायामें प्रवेश न करते, शत-शत काम विमोहित भगवती रतिका वरण-कर दैत्योंका दिमाग न मोहते तो यह असम्भव था कि इन्द्र दैत्यराज बलिको पराजित करते। और यह भी पूर्णरूपसे सच है कि अमृतके अधिकारसे उन्मत्त दैत्योंको पराजय देनेके लिए भगवान्की अमृतमयी सत्ताकी ही आवश्यकता थी, मोहि[illegible] अमृतका वारुणी रूप है।

'कृष्णः सौन्दर्य सार सर्वस्वम्'की उक्तिसे यह विश्वास [illegible] जाता है कि जब तक ब्रह्म अमूर्त है, सौन्दर्य-बोध हो ही [illegible] सकता है, जब ब्रह्म और माया, पुरुष और प्रकृति एक [illegible] हो जाते हैं तब रसमूलक सौन्दर्यकी निष्पत्ति होती है। मोहि[illegible] अवतारमें सत्य-शिवकी साधना जब विषपान करने पर [illegible] दैत्योंको नीचा नहीं दिखला सकी, तब सौन्दर्यने मायाका वे[illegible] धारणकर अपना विधान सफल करना चाहा। अमूर्तका मू[illegible] हो जाना सौन्दर्यका वैदिक रूप है और इस वैदिक स्पष्टी [illegible] व्याख्या पौराणिकों और लोकमतवालोंने अच्छी तरह की है, यद्यपि यह सच है कि उसपर भिन्न-भिन्न मान्यताका रंग है। भागवत, महापुराण, शिवपुराण, पद्मपुराण आदिमें भी भगवान्की मोहिनी महत्ता अच्छी तरह स्वीकार की गई है।

समुद्र-मन्थनकी ऐतिहासिकता संकेत करती है कि विश्वके प्राणीमात्रको अमृतत्वका दान देनेके लिये जब दैवी और आसुरी सम्पत्तिके पारस्परिक संघर्षका बाजार गर्म होता है तब भगवान् को मोहिनी-अवतार धारण करना पड़ता है। देव और मानवों को रत्न देनेमें समर्थ मोहिनी भगवान् ही हैं। और की बात और ही है, लक्ष्मीको पानेके लिये भगवान्को समुद्र-मन्थनकी योजना बनानी पड़ती है। लक्ष्मीके प्रकट होनेपर ब्रह्मा आदि श्री सूक्तसे अभिनन्दन करते हैं, यह घटना संकेत करती है कि लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये महान् श्रम करना पड़ता है। जब दैवी और आसुरी शक्ति संयुक्त होकर विकट तपस्या करती हैं तब लक्ष्मीका प्राकट्य सम्भव होता है।

अमृत-मन्थनके कथानकपर विचार करनेसे ऐसा दीख पड़ता है कि सृष्टिमें अनवरत देव और असुरका संघर्ष चल रहा है, दोनोंका ध्येय सौन्दर्य-बोध है, पर एक ओर सृजन है, दूसरी ओर विनाश अथवा संहार है। इस रूपकके रहस्यकी जानकारी अमृत-मन्थनके इतिहास-विवेचनसे हो जाती है। विश्वमें एक ऐसा समय भी आया था जब भगवान क्षीर-सागर में पूर्णरूपसे निद्रामग्न हो चले। महर्षि दुर्वासाके शापसे तीनों लोक और इन्द्र आदि श्रीहीन हो गये थे। दैत्योंने

अपने अस्त्रोंसे देवोंको पराजित कर दिया था। देवता इन्द्रके साथ सुमेरु पर्वतपर ब्रह्माके पास गये। वे उन्हें लेकर वैकुण्ठ में गये और वेदवाणीसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। भगवान् प्रकट हो गये। उनकी झाँकी परम रमणीय, मोहिनी और दिव्य थी। मरकत मणिके समान शरीर था। सुनहले रेशमी रंगका पीताम्बर था। सिरपर मणिमय किरीट था। कमरमें करधनी और हाथमें कंगन थे। गलेमें हार और चरणोंमें नूपुर था। वक्षपर कौस्तुभ मणि और वनमाला थी। भगवानने कहा—'इस समय असुरोंपर कालकी कृपा है। दानवोंसे सन्धि करनेपर काम बनेगा। अविलम्ब अमृत निकालनेका प्रयत्न होना चाहिये। क्षीर-सागरमें जड़ी-बूटी और औषधि डालकर मन्दराचलको मथानी और वासुकी नागको नेती बना कर मेरी सहायतासे मन्थन करो।'

देवों और असुरोंमें सन्धि हो गई और सागर-मन्थनके पहले चरणमें उन्हें कालकूट विष मिला। यह शत्रुता या रोषका रूपक कहा जा सकता है। शिव इसका पानकर नीलकण्ठ हो गये। गंगा और चन्द्रमा तथा व्यालके अलंकार पहननेवाले शंकरके सिवा इस कार्यको सम्पन्न करनेकी क्षमता दूसरे किसी में थी भी नहीं। काल-कूटका जल पाप था, मल था। भगवानने अमृत-मन्थनके समय कच्छप अवतार धारण किया और मन्दराचलका भार अपनी पीठपर उठा लिया। कामधेनु, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, कौस्तुभ मणि, पद्मराग, कल्पवृक्ष, अप्सरायें, लक्ष्मी, वारुणी आदिके निकलनेके उपरान्त हाथमें अमृतका कलश लिये धनवन्तरि प्रकट हुए। देवों और दैत्योंमें अमृतके लिये झगड़ा खड़ा हो गया। दैत्योंके हाथमें अमृत जानेका आशय यह होता कि ब्रह्माकी प्रलय अवधिके पहले ही सृष्टिका संहार हो जाता। भगवान्‌ने दानवोंके पुरुषत्वपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये, दैत्योंको पराजित करनेके लिये 'मोहिनी' अवतार लिया, नारीका रूप ग्रहण किया। शरीर का रंग नीलकमलके समान श्याम था। नई जवानीके भारसे स्तन उभरे हुए थे, कमर पतली थी। लम्बे केश-पाशोंमें बेलेकी माला लगा रखी थी। कण्ठमें आभूषण और भुजामें बाजूबन्द थे। कमरमें करधनी और चरणमें नूपुर थे। अपनी लज्जाभरी मुसकान, नाचती हुई तिरछी भौंहों, और विलासोन्मत्त चितवनसे मोहिनी भगवान् दैत्य सेनापतिके चित्तमें बार-बार कामोद्दीपन करने लगे। असुर काममोहित हो गये। उन्होंने कलश मोहिनीके हाथपर रखकर न्यायपूर्वक बाँट देनेका अनुरोध किया। मोहिनीने हाथमें कलश धारण किया। समस्त सौन्दर्य-राशिने उनके चरणकी धूलि ली। भगवान् मोहिनीकी साड़ी अत्यन्त रमणीय थी। नितम्बोंके भारसे गति मन्द-मन्द-सी थी, कलशके समान स्तन और गजकी सूँड़के समान जाँघ थी। नूपुर झंकरित थे। कानमें कनक-कुण्डल हिल रहे थे। नासिका, कपोल तथा मुख अत्यन्त सुन्दर थे।

भगवान्‌के कृष्ण अवतारमें मोहन और मोहिनीका किसी न किसी स्तर-विशेषसे सम्मिलन बाकी रह जाता है। यद्यपि दोनों एक ही तत्त्वके दो रूप हैं, पर मोहिनी अवतारमें प्रकृति और पुरुष एकाकार हो जाते हैं। भगवान्‌के नारी रूपका परिणाम यह था कि शिवको भी मोह हो गया। मोहिनीके लावण्य, रूप और माधुर्य-वर्णनमें केवल इतना ही कहकर मौन हो जाना पड़ता है।

> 'चित्रे निवेश्य परिकल्पित सत्त्वयोगा
> रूपोच्चयेन मनसा विधिनां कृतानु।'

शकुन्तला प्रकृति मूलक है इसलिए वह विधिकी मानस सृष्टिका परम रमणीय सौन्दर्य है, पर मोहिनी तो शाश्वत, सनातन, चिरन्तन सत्य सौन्दर्यकी शिवमयी कल्पना या मानसिक सृष्टि नहीं, अभिव्यंजना है। अन्य भगवदीय लीलाओंमें, अवतारोंमें इतनी मधुर भगवदीय रमणीयताकी झाँकी असम्भव है। व्यासकी लेखनीने भले ही रास-रसकी सुन्दरताकी उत्कृष्टता स्वीकार की, रसके आचार्य हित हरिवंशने भले ही गाया हो :—

> मोहिनी मोहन रंगे। प्रेम सुरंगे,
> मत्त मुदित कल नचत सुधंगे
> सकल कला-प्रवीण, कल्याण रागिणीलीन
> कहत न बनै माधुरी अंग-अंगे।
> तरनि-तनया तीर त्रिविध सखी समीर,
> मानौ मुनि व्रत धर्‍यो कपोती कोकिल कीर,
> नागरी नव किसोर मिथुन मनसि चोर
> सरस गावत दोउ मंजुल मदिर घोर
> कंकन-किंकिन ध्वनि मुखर नूपुरनि सुनि
> हित हरिवंश रस बरसे नव तरुनि॥

पर मोहिनी लीलाका रहस्य तो कुछ और ही सरस और निगूढ़ है। भगवान् कृष्णकी रासलीलामें शिवको गोपी बननेपर इतना स्मरण तो रहता ही है कि उन्होंने रासके लिये नारीका रूप धारण किया है, पर मोहिनी लीलामें तो आत्म-विस्मरणसे अभिभूत हो जाते हैं। अपने ही विशेष अंशसे मोहित हो जाते हैं, यह बहुत बड़ी अनासक्ति है। भारतीय सौन्दर्य-चिन्तनकी यह पराकाष्ठा है।

राधा-कृष्ण, शिव-शक्ति, और सीतारामको 'त्वं स्त्री त्वं

पुमानसि, त्वं कुमार उत वा कुमारी' की वैदिक कसौटीपर कसनेपर केवल भगवत्तत्वकी ही प्रधानता सर्वत्र दीखती है। दैत्यका पुरुषत्व भगवान्के नारीत्वके सामने नत हो गया। मोहिनी अवतारकी यह महत्ता है।

भगवान्ने अमृत देवताओंको दिया, उनपर पक्षपातका दोष मढ़ा जा सकता है; भगवान् दोषोंसे परे हैं, ऐसा तो है ही। पर साथ-ही-साथ अमृत और असुरत्वका संयोग राक्षसत्वकी सृष्टि करता, राक्षसोंसे भूमिको मुक्त करनेके लिये भगवान्ने रजोगुणी असुरोंको अमृतसे वंचित रखा। राक्षसत्व दानवताकी अन्तिम सीढ़ी है। महापतित अवस्था है। अमृतत्वकी रक्षाके लिये भगवान्को विकट युद्ध करना पड़ा। देवोंको अमृत-पान करनेके बाद दैत्योंने युद्धके लिये ललकारा। बलि और इन्द्रमें जमकर युद्ध हुआ। भगवानके प्रकट होनेपर असुरोंकी माया विलीन हो गई। कालनेमिने भगवान्पर त्रिशूल चलाया, उन्होंने उसे पकड़ लिया। माली और सुमाली के सिर भगवान्ने काट डाले। माल्यवान्का सिर चक्रसे अलग कर दिया। बलि मारा गया। नारदके उपदेशसे दैत्योंने बलिके शवको लेकर अस्ताचलकी यात्रा की। वह संजीवनी विद्यासे फिर जीवित हो उठा। दैत्योंकी पराजय सिद्ध करती है कि अमृत उनके लिये है जो दैवी गुणोंसे सम्पन्न हैं। यदि इन्द्र राक्षस हो जाय तो वह भी अमृतत्वसे च्युत हो जाता है। ईश्वरीय विधानमें सदा सत्यकी विजय स्वीकार की गई है। देवत्व सत्यके ही अनुशीलनसे इतना उच्च समझा जाता है, और है ही। भगवान्के मोहिनी अवतारने असुरोंको देवत्व-पथके अनुसरणका संदेश दिया।

भगवान् शिव-शक्तिके अधिपति हैं पर मोहिनीके रूप और लावण्यने उनकी शक्ति क्षीण कर दी। उनके मस्तिष्कपर कालकूट इतना प्रभावशाली हो गया था कि अनंग-अरि होनेपर भी वे नारीके रंगमें, सतीके सामने ही मोहिनीके आकर्षणमें अपने आपको भूल गये। वे स्वयं मोहिनी भगवान्के दर्शनके लिए बैलपर सवार होकर उनके धाम गये। भगवान्ने उनका सप्रेम स्वागत किया। शिवने भगवान्का मोहिनी रूप देखनेकी इच्छा प्रकट की। भगवान्ने कहा वह रूप तो कामी पुरुषोंके लिए ही आदरणीय है। भगवान्ने मोहिनी रूप दिखाया, शिवकी समझमें यह बात ही न आ सकी कि वे साक्षात् भगवान्का दर्शन कर रहे हैं। उन्होंने देखा कि सामने ही एक सुन्दर उपवन है। भाँति-भाँतिके वृक्ष और फल-फूल लगे हैं, ... समलंकृत हैं। एक स्त्री गेंद उछालकर खेल रही है। ... और हार हिल रहे हैं। चरणोंपर ठुमुक-ठुमुककर ... है।...शंकरजीका मन हाथसे निकल गया। वायुने मोहिनीकी साड़ी करधनीके साथ उड़ा ली। मोहिनीके अंग-प्रत्यंग ... और मनोहर थे। वह इधर-उधर वृक्षकी ओटमें छिप ... और निकल जाती। शिवने विवेकको ताकपर रखकर मोहिनीका जूड़ा पकड़ लिया और अंकमें कसकर जी-भर आलिंगन किया। भगवान्ने शिवका भुजपाश छुड़ाकर भागना आरम्भ किया और शिवजी पीछे-पीछे दौड़ने लगे। भगवान्की मायाका ... होनेपर वे बहुत लज्जित हुए। भगवान्ने मोहिनी शरीर परित्यागकर अपना वास्तविक रूप प्रकट किया। मोहिनी के सामने शिवके पुरुषत्वकी पराजय यह सिद्ध करती है ... जीव या ईश्वरके प्रमुख अंशके वशकी भी यह बात नहीं है ... वह भगवान्की मोहिनी माया, अलौकिक-लीलाका पार ... सके। वह भगवान्की ही तरह अपरिसीम, अनन्त और अव्यक्त है। अगम, अचिन्त्य और अभेद है। मोहिनी ... भगवान्की परम रहस्यमयी लीला-भूमि है। नारीकी ... महिमा है, भारतीय धर्मशास्त्रमें उसकी कितनी पूजा है, ... है, इसका आभास ही नहीं अपितु स्पष्टीकरण मोहिनी अवतारसे कर दिखाया। ब्रह्माण्ड पुराणका यह वचन '... सदा देवाः स्वेच्छाचार विहारिणी' प्रकट करता है कि ... परमाशक्तिको जाननेवाला दूसरा कोई नहीं है, वह स्वयं अपने आपको जानती है। भारतमें भगवान्की प्रत्येक ... और अवतारोंकी उपासना प्रचलित-सी रहती आई है। भारतीय जीवनमें भगवदीय लीलाओंका बड़ा सामञ्जस्य है। ... मोहिनीकी लीलाको ध्यानमें रखकर यह कहना पड़ता है ... उनके स्वरूपकी उपासनासे मानव, जीवमात्र परमधाम ... गोलोकमें निवास करनेवाली अनिर्वचनीय आत्माका साक्षात् कर अमृतत्व लाभ कर सकते हैं। सौन्दर्य उपासना सिद्धि ... मोहिनीका स्तवन, सत्य-शिवके सौन्दर्यका स्मरण और ... है। निस्सन्देह वह परमोत्कर्षका युग रहा होगा जिसने मोहिनी ... भगवान्का अवतरण देखा। जब देव और दानव समान ... शक्ति सम्पन्न होते हैं और मानव भ्रममें पड़ जाता है ... किसका आदर्श वरणीय है तब विश्व-कल्याणके लिए मोहिनी भगवान्का अवतार होता है।



कल्पनाको भी जीने दीजिए

राघी

हिन्दी साहित्य जीना चाहता है, पनपना चाहता है, समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वको पूरा करना चाहता है। लेकिन उसके मार्गमें सौ बाधाएँ हैं, और उसकी एकके ऊपर सौ समस्याएँ हैं। उन्हींमें से एकको मुझे इस लेखमें लेना है।

हिन्दीके जिस साहित्यकार-वर्गके मस्तिष्कमें होकर नये साहित्यका सृजन होता है उसकी कुछ अपनी, अपेक्षाकृत अधिक सँकरी, संकीर्णताएँ हैं; और जिस विशाल जन-वर्गके लिए उस साहित्यका सृजन होता है, उसकी कुछ अपनी सीमित, जमी-जकड़ी-सी रुचियाँ हैं। लेखक-वर्ग अपनी साधारण सीमासे बाहरकी चीज़ दे नहीं सकता और साधारणसे कुछ आगे अपनी विशेष सीमाकी जो थोड़ी-बहुत चीज दे भी सकता है उसे देते हुए वह कुछ डरता-झिझकता है। पाठक-वर्ग अपनी सीमित, पुरानी रुचियोंके बाहरकी चीज ले नहीं सकता और थोड़ी-बहुत जितनी कुछ ले भी सकता है उसका देनेवाला उसे समीप नहीं दीखता। इस प्रकार हिन्दी साहित्यकी प्रगति, उसकी उपयोगिता बहुत-कुछ रुकी हुई है।

मुझे अपना आशय स्पष्ट करना है, वह अभी स्पष्ट नहीं हुआ! नहीं हुआ न? मैं कहना चाहता हूँ कि साहित्यका प्राण, उसकी प्रेरक शक्ति है कल्पना। और कल्पनाके सम्बन्ध में हमारा लेखकवर्ग बहुत संकीर्ण है; हमारे पाठक-वर्गकी रुचि बहुत अपूर्ण, एकांगी है।

इसी लेखमें आगे यथावसर मैं कहूँगा कि संसारकी दूसरी समृद्ध भाषाओंके साहित्यकी कल्पना और पाठकोंकी रुचि इतनी संकीर्ण नहीं है। यह कल्पना क्या है?

साहित्य-शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकोंने कल्पनाकी क्या-क्या परिभाषाएँ की हैं, मुझे अभी तक उन्हें पढ़नेका अवसर नहीं मिला; लेकिन आपकी और अपनी प्रस्तुत आवश्यकताके लिए मोटे शब्दोंमें मैं कह सकता हूँ कल्पना, वह विचार और भावना है जो हमें अपनी तात्कालिक परिस्थितियों और व्यक्तिगत स्वार्थोंके बाहरकी, सार्वकालिक परिस्थितियों और सार्वजनिक हितोंकी बात सोचना सिखाती है। अपनी परिस्थितियों और सुखों-दुःखोंसे घिरे रहते हुए भी हम बहुत-कुछ कल्पनाके पीछे ही दूसरोंकी परिस्थितियों और सुखों-दुःखोंका अनुमान करते हैं, उनसे सहानुभूति और सहयोगकी अपनी क्षमता जगाते हैं और उनकी सहानुभूति और सहयोग अपने लिए प्राप्त करते हैं। कल्पनाके बूते हम असहाय, एकाकी न रहकर सुख-जीवी सामाजिक प्राणी बनते हैं। कल्पनाके सहारे हम अपने जीवन की आगे-पीछेकी परिस्थितियोंका, जीवनमें काम करनेवाले कारणों और परिणामोंका अनुसन्धान करते हैं, जीवनकी अदृश्य गहराइयोंमें पैठते हैं, दूरदर्शी बनते हैं।

हमारी कल्पनाका क्षेत्र जितना ही विस्तृत-व्यापक होगा उतना ही हमारा जीवन निर्बन्ध होगा। उतना ही अधिक हम अपने प्रियजनों, पड़ोसियों और मानव-मात्रको समझ सकेंगे। हमारे जीवनकी परिधि तो इससे भी बड़ी है—पशु-जगत् और वनस्पति-जगत् भी हमारे जीवन-परिवारमें सम्मिलित हैं। मानव समाजकी बहुत-सी विद्याओं और विज्ञानोंने मनुष्यके इन दूरवर्ती परिजनोंके सम्बन्धमें खोजें की हैं; लेकिन उन खोजोंसे जन-साधारणका कोई जानकारी-पूर्ण नाता नहीं है; क्योंकि जन-साधारणकी कल्पना और सहानुभूतिका उन खोजोंमें कोई स्थान नहीं है।

मैं जन-साधारणकी बात कह रहा हूँ—उस जन-साधारण की जिसकी संख्या, मोटे तौरपर, संसारके अधिक शिक्षित देशोंमें निन्यानबे प्रतिशत और हिन्दी-भाषी संसारमें उससे भी अधिक है। यह साधारण जन वनस्पतियोंके बीच रहता है, लेकिन उन्हें उगाने और खानेके आगे उनसे वह कोई सम्बन्ध नहीं रखता। वह पशुओंके बीच रहता है, लेकिन उन्हें पालतू बनाने और उनसे काम लेनेके आगे वह उनकी कोई परवाह नहीं करता। वह दो अरब दूसरे इन्सानोंके बीच

रहता है, लेकिन उनकी परिस्थितियोंकी उसे कोई जानकारी नहीं। अपनी जाति और प्रान्तसे बाहरके स्वदेशवासियोंसे उसका प्रत्यत्त-अप्रत्यत्त सामाजिक और व्यावसायिक नाता रहता है, फिर भी उनमें उसकी कोई रुचि नहीं। जिन पड़ोसियोंके बीच वह रहता है, उनसे उसकी कोई निकटकी आत्मीयता नहीं। अपने प्रियजनोंके हृदयोंमें उतरकर उनके भीतरी दुःख-सुखको समझनेकी उसे कोई उत्सुकता नहीं। और तो और अपने जिन आत्मीय-जनोंसे उसका गहरा प्रेमका नाता था, उनके आँखसे ओझल होने (मरने ?) के चार दिन बादसे उनकी भी खैर-खबरकी उसे कोई चिन्ता नहीं !

वह कितना अल्पज्ञ, असावधान, आत्म-केन्द्रित, अकृतज्ञ और अदूरदर्शी है !

यह क्यों ? इसलिए कि अपने छोटे-से स्वार्थ-वृत्तसे बाहरकी बातको समझनेकी उसमें समाई नहीं है।

और यह क्यों ?

इसलिए कि उस छोटे-से स्वार्थ-वृत्तसे बाहरकी बातोंके सम्बन्धमें उसकी कल्पना बहुत सीमित है।

और फिर यह क्यों ?

इसलिए कि अपने जिस साहित्यसे उसे मानसिक आहार और पोषण प्राप्त होता है उस साहित्यमें ही कल्पनाके पर कतरे हुए हैं।

अब वस्तु-स्थितियोंपर आइये, विशेषकर हिन्दी साहित्यको सामने रखकर।

कल्पनाका सम्बन्ध, साहित्यमें, सबसे अधिक कथा-साहित्य से है। हिन्दीका कथा-साहित्य—कहानी, उपन्यास, नाटक—बहुत संकीर्ण है—कहना चाहिए, हो गया है। मौन-प्रेम और अर्थ-संघर्ष, ये ही दो उसकी प्रमुख और बहुत बड़ी सीमातक एकमात्र धाराएँ रह गई हैं। उसका उससे प्रेम यों चला और उसने उसका शोषण यों किया—इन्हीं दो कल्पनाओंने असंख्य कथाओंका रूप धारण करके कथा-जगतके निन्यानवे प्रतिशत क्षेत्रको घेर रखा है।

कल्पनाकी इन दो धाराओंमें हिन्दी-भाषी जगत इतना घिर गया है कि वह अपने जीवनको इन दोनोंसे बाहर देख ही नहीं पाता। परिणाम यह है कि मांसल-आकर्षण और पैसेकी पकड़ने उसे बहुत-कुछ कामुक और क्षुद्र स्वार्थी बना दिया है ; उसकी रुचियोंके साथ-साथ उसका दृष्टिकोण भी बहुत संकीर्ण हो गया है। कला और यथार्थवादके नामपर कल्पना और जन-रुचिकी सीमाओंको और भी तंग किया जा रहा है।

भारतीय साहित्य पहले इतना संकीर्ण नहीं था ; दूसरे देशोंका साहित्य अब भी इतना संकीर्ण नहीं है। कला और यथार्थवादके नामपर हमने अपने कल्पना-जगतसे बहुत-सी उपयोगी चीज़ोंको निकाल बाहर किया है। हमारे प्राचीन साहित्यकी कल्पनामें हमने पशु-जगतको अपने साथ रखा था। कुत्ते, बिल्ली, सिंह और सियार आपसमें ही नहीं, कभी-कभी मनुष्यके साथ भी मनुष्यकी बोलीमें बात करते थे। सोचने और सीखनेकी बहुत बड़ी सामग्री इन कल्पनाओंमें होती थी। संस्कृतकी पंच-तन्त्र और हितोपदेश जैसी पुस्तकें ऐसी ही शिक्षाओंकी मनोरंजक खानें थीं। पशु-वर्गको साथ रखते हुए हमारे पुराने कथाकारोंने अपने चरित्र-नायकोंकी शारीरिक और मानसिक क्षमताओंका क्षेत्र बहुत व्यापक बना रखा था—क्योंकि अकेला द्विपाद मनुष्य तो इतना विविधतापूर्ण अभिनय नहीं कर सकता था ! पशु-वर्गके, एक श्रेणी नीचे के मानसिक विकाससे अपने विकासकी तुलना करके मनुष्य वर्ग से एक श्रेणी ऊपरके विकासका भी कुछ अनुमान कर सकता था। पशु-वर्गका ही नहीं, हमारे कल्पना-साहित्यमें हमारे मर कर बिछुड़े हुए पुरखों-प्रियजनोंका भी स्थान था ; उनके निवास-स्थान, पितृ-लोक की भी कल्पना थी। उनकी स्मृति बनाये रखनेका एक सूत्र हमारे पास था ; बीते हुए स्नेह और श्रद्धाको बसानेका एक कोमल-सा कोना हमारे हृदयोंमें था। हमारी कल्पनामें स्वर्ग और उसके निवासी देवताओंके लिए स्थान था। मनुष्यकी सोती हुई आन्तरिक शक्तियोंकी—जिनके रहस्य नवीन मानसिक और योग-सम्बन्धी विज्ञानोंके द्वारा अब धीरे-धीरे खुल रहे हैं—कल्पना और जिज्ञासा हम इन कथाओंके द्वारा कर सकते थे। भूत-प्रेत, नरक और यमदूतोंकी कल्पनाएं हमें अपने लोकान्तर जीवनके अँधेरे-से-अँधेरे पहलू तककी बात सोचनेकी प्रेरणा देती थीं।

लेकिन आजका हिन्दी कथाकार कहता है :

"स्वर्ग-नरक, भूत-प्रेत, पितरों-देवताओं, परलोक-पुनर्जन्म और विचित्र असम्भव-सी सिद्धियों-शक्तियोंकी कल्पनाएँ हम क्यों करें? इन्हें हमने कभी देखा नहीं है, इनकी वास्तविकताका कोई प्रमाण हमारे सामने नहीं है और न इनसे हमारे जीवनका कोई सम्बन्ध है। कल्पना उसकी होनी चाहिए जो वास्तविक हो, यथार्थ हो। उन कल्पनाओंमें कोई रस नहीं। हृदयके आकर्षणों, द्वन्द्वों और जीवनके संघर्षोंमें ही इतनी सामग्री और इतना रस भरा पड़ा है कि हमें उनसे बाहर अयथार्थ कल्पनाओंपर जानेकी आवश्यकता नहीं है। वैसी कल्पनाएँ तो वास्तविक जीवनसे अपरिचित, अपक्व हृदयों-मस्तिष्कोंके लिए हैं।"

लेकिन हमारे कथाकारके 'वास्तविक' जीवनसे बाहरके उन पात्रों और परिस्थितियोंके अस्तित्वका अगर कोई प्रमाण नहीं है तो उनके नास्तित्वका भी तो कोई प्रमाण उसके पास नहीं है। और सच तो यह है कि उनके अस्तित्वके प्रमाणपर प्रमाण, आजकी खोजों और बौद्धिक अनुमानोंके आगे, खुलते जा रहे हैं। हिन्दीके कलाकारके पास उनकी ओर आँखें उठानेकी फुर्सत नहीं है। तर्क और प्रत्यक्षीकरणका अनुरागी पाश्चात्य संसार अपने प्रयोगों और अनुसन्धानों द्वारा भूतों-प्रेतो, देवों-पितरों, परियों और हमारे प्राचीन यक्ष-गन्धर्व-किन्नर आदि देवताओंके अस्तित्वपर अधिकाधिक विश्वास जगाता जा रहा है और उसकी विविध भाषाओंका साहित्य-भण्डार ऐसी कल्पनाओंसे भी भरने लगा है।

इधर हिन्दीका यथार्थवादी कलाकार (और 'अयथार्थवादी' कलाकारोंकी गिनती हिन्दीमें नगण्य ही है) अलौकिकतासे घबराता है, आदर्शवादितासे कतराता है; इन दोनोंमें वह 'कला'की हत्या देखता है।

लेकिन इसमें कलाकी हत्या कैसे है? हमारा कलाकार जिसे अलौकिक और अयथार्थ कहता है, क्या पूरे विश्वासके साथ वह उसे अलौकिक और अयथार्थ कहनेके लिए तैयार है? क्या अपने 'रस' और 'कला'की सीमाओंमें अब किसी विस्तारका वह अवकाश नहीं देखता?

मेरे एक सह-लेखक मित्रने एक बड़ी सार्थक, विचार-प्रेरक कहानी लिखी। उस कहानीके पात्रोंमें कुछ पालतू पशु भी थे जो मनुष्यकी बोली बोलते थे। प्रायः एक दर्जन पत्र-सम्पादकोंके पाससे लौटकर वह कहानी मेरे मित्रकी 'मुर्दा-फ़ाइल'में (खो या फट न गई हो तो) आराम कर रही है। सम्पादकोंकी राय है कि वह कहानी अस्वाभाविक अतः कलाहीन है; उसमें पशु-पात्रोंका समावेश है इसलिए वह 'बड़ों'के कामकी नहीं है और चूँकि उसमें एक गम्भीर विचार भी है इसलिए वह बच्चोंके भी कामकी नहीं है।

हिन्दी-साहित्यके नये स्रष्टाओं और पोषकोंकी ऐसी ही प्रवृत्ति है! तो फिर हिन्दी-साहित्यकी एक बड़ी बाधक समस्या, जैसी कि वह मुझे दीख पड़ती है, यह है:—

हिन्दीका नया उगता हुआ साहित्य कला और यथार्थताके नामपर अपनी कल्पनाको जितना सीमित-संकुचित करता जा रहा है वह समाजके मानसिक विकासके लिए घातक है, उसकी रुचियों और जिज्ञासाओंको कुण्ठित करनेवाला है। कल्पना ही नवीन खोज और विचारकी अग्रदूतिका है। उसकी यह संकीर्णता साहित्य-भोजी व्यक्तिको लौकिक संघर्ष और भावना अथवा भावुकता (Sentimentality) से ऊपर नहीं आने देती। हिन्दी साहित्यकी यदि ऐसी ही संकुचित और अदूरदर्शी प्रवृत्ति रही तो चीनी लड़कीके पैरकी तरह उसका सारा, साष्टांग शरीर अविकसित रह जायगा और न तो वह संसारके दूसरे शिक्षित साहित्योंके समकक्ष हो सकेगा और न ही हिन्दी-भाषी समाज दूसरे समाजोंके साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चल सकेगा।

अन्तमें इस समस्याका एक छोटा-सा प्रारम्भिक हल भी मैं इस लेखकी अन्तिम पंक्तिमें रख देना चाहता हूँ। वह यही कि हिन्दीमें दूसरी भाषाओंके उत्कृष्ट खोज और कथा-सम्बन्धी साहित्यका अधिक-से-अधिक अनुवाद हो, जिससे हमारे लेखक संसारके अधिक खुले हुए दृष्टिकोणोंको देख और दिखा सकें और हमारे पाठक अपनी रुचियोंको अधिक व्यापक और विकसित बना सकें।

क्या हिन्दी-जगतके कला-पारखी आलोचक और साहित्यकार इस समस्यापर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझेंगे?

प्राचीन भारतीय सिक्कोंसे धार्मिक ज्ञान

वासुदेव उपाध्याय

भारतवर्ष सदासे धर्मप्रधान देश रहा है और यहाँके जीवन में धार्मिक भावनाएँ रग-रगमें सन्निहित हैं। समाजका कोई भी कार्य इससे अछूता नहीं रह सकता। भारतीय संस्कृतिका यही प्राण है और संसारने इस महत्ताको भलीभाँति समझ लिया है। भारतीय साहित्यमें अन्य विषयोंके अतिरिक्त इतिहासमें भी धार्मिक विचारोंके प्रभावका अच्छी प्रकार अध्ययन किया जा सकता है। कुछ समय पहले अधिक लोगोंका मत था कि इतिहास-विषयक साहित्यमें भारतीय बहुत पिछड़े हैं परन्तु शनैः-शनैः यह धारणा लुप्त होती चली जा रही है। भारतवर्षके जातीय इतिहासके निर्माणमें साहित्यिक प्रमाणोंको पुरातत्व-सम्बन्धी विषयोंने जान भर दिया है और इस आधारपर भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनता सिद्ध हो चुकी है। पुरातत्वके इतिहासमें मुद्राशास्त्रको एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है जिसके द्वारा ऐतिहासिक बातोंका पता लगाना आसान हो गया है। धार्मिक इतिहासकी जानकारी जिन साधनोंसे होती है उसमें भारतके प्राचीन सिक्कोंका नाम भी लिया जा सकता है। यों तो मुद्राओंके द्वारा राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाओंका ज्ञान सुलभ हो जाता है परन्तु धार्मिक अवस्थाका ज्ञान कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जिस प्रकार अमुक कालीन सिक्कोंसे राजाकी शासन-तिथि, साम्राज्यकी सीमा तथा विभिन्न शासकोंके कार्योंका ज्ञान होता है उसी तरह सिक्कोंसे तत्कालीन प्रधान धार्मिक मतों तथा विचारोंके सम्बन्धमें भी विशेष परिचय प्राप्त किया जाता है। विभिन्न मतोंके प्रचारके अध्ययनके लिए तत्सम्बन्धी साहित्यको न देखकर भारतीय सिक्कोंका ही विवेचन किया जायगा जो उन धार्मिक प्रवाहोंपर अधिक प्रकाश डालते हैं। उन सिक्कोंपर किसी तरहकी धार्मिक प्रशस्ति नहीं मिलती है परन्तु सिक्कोंपर अंकित चिह्न तथा लेख तत्कालीन धार्मिक प्रचलित सिद्धान्त तथा मतके द्योतक समझे जाते हैं और उन्हींके संकलनसे सम्पूर्ण इतिहास खड़ा करनेका प्रयत्न प्रस्तुत निबन्धमें कि... गया है।

सिक्कोंपर अंकित चिह्न

यह कहा जा चुका है कि किसी काल-विभागके ध... अवस्थाके ज्ञानमें चिह्नोंसे अधिक सहायता मिलती है। ... वर्षमें सबसे प्राचीनतम सिक्के आहत (पंचमार्क) मुद्राके ... प्रचलित थे। उनपर विभिन्न प्रकारके आहत चिह्नोंके ... कुछ ठीक ढंगसे नहीं कहा जा सकता है। अनुसन्धानमें ... खुदे चिह्नोंका विचित्र अर्थ लगाया जाता है। यह ... कठिन है कि उनका वास्तविक तात्पर्य क्या था। ... मार्क सिक्कोंके विभिन्न चिह्नोंके विवेचनमें न जाकर यह ... युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि चिह्नों द्वारा धार्मिक भावनाएँ व्यक्त करनेकी प्रथा बहुत दिनोंसे भारतमें चली आ रही ... ईसा-पूर्व शताब्दियोंमें बौद्ध-कलामें चिह्नको ही प्रधान ... दिया गया था। बुद्ध धर्मके प्रतीक बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, ... तथा चरणचिह्नको कलामें स्थान मिलता रहा और उसी ... पर ललित कलाको बौद्ध-कला कहते हैं। सम्भव है ... सिक्के बनाते समय उन संस्थाओंने भी उसी रीतिको ... और चिह्नों द्वारा धार्मिक विचारोंके प्रकट करनेकी ... समावेश किया। बुद्ध धर्मके प्रतीकोंकी तरह हिन्दू ... वलम्बियोंने भी अपने चिह्नको यथास्थान उपयोग किया ... उनके विचार स्पष्ट हो जाते हैं। वृक्षके बाद शिवके ... नन्दिको प्रधान स्थान दिया गया था। यों तो भा... शिवकी उपासना अत्यन्त प्राचीन कालसे चली आ ... परन्तु नन्दिके सिवाय त्रिशूल आदि चिह्न बहुत ... जाते हैं। मोहं-जो-दड़ोकी मुद्राओंपर शिवकी आकृति ... वाहन (बैल) की आकृति भी अंकित मिलती है। ... मत है कि स्यात् उसी समयसे नन्दि शैव धर्मका चिह्न हो ... जिसका प्रयोग सिक्कोंपर भी होने लगा। ईसा-पूर्व ...

उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम भारतमें ऐसे सिक्के प्रचलित थे जिनपर नन्दिकी आकृति पायी जाती है। विभिन्न जातियों की मुद्राएँ त्रिशूल या नन्दिकी मूर्त्तिको लेकर तैयार की जाती थीं। इसकी इतनी प्रसिद्धि हुई कि बादके शताब्दियोंमें नन्दिका सदा प्रयोग होता रहा। प्राचीन कालके गण राज्यों यौधेय, अर्जुनायन, औदुम्बर तथा मालवाके सिक्कोंपर नन्दिका चिह्न पाया जाता है। आजकल भी त्रिशूल तथा नन्दिको देखकर कोई दूरसे ही शिवमन्दिरका सही अनुमान कर लेता है उसी तरह प्राचीन जनपदोंमें सिक्कोंको देखकर शैवमतके प्रसारका अनुमान किया जा सकता है। अयोध्या, अवन्ति तथा कोशाम्बीके सिक्के नन्दिकी आकृतिके साथ ढाले जाते थे जिससे पता लगता है कि भारतके पश्चिमी भाग तथा मध्य-देशमें शैवमतका अधिक प्रचार था। यही राजधर्म था अन्यथा राजकीय मुद्राओंपर नन्दि या त्रिशूलको अंकित न कराया जाता। इतना ही नहीं पांचाल (वर्तमान रामनगर, उत्तरप्रदेश) शासकने तो सिक्कोंपर शिवलिंग तैयार करनेकी आज्ञा दे रखी थी। उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें शैवमतका इतना जोर था कि विदेशी शासकोंको भी इसे अपनाना पड़ा। यह नहीं कहा जा सकता कि उस प्रदेशमें राज्य करनेवाले भारतीय यूनानी राजा शैवधर्मावलम्बी हो गये थे परन्तु जनतामें प्रचलित धर्मका इन लोगोंने आदर किया और शैवधर्मके प्रतीक शिवके वाहन—नन्दिको अपने सिक्कोंपर स्थान दिया। भारतीय यूनानी राजा अपलदतस तथा मिलिन्दके सिक्के इस बातके प्रमाण हैं। जिनपर नन्दिकी आकृति मिलती है। भारतके उत्तर-पश्चिम तथा गांधार प्रदेशोंमें प्रचलित शैव मतका प्रभाव समीपर पड़ा। कोई इससे बच न सका। ईसा-पूर्व पहली शतीमें शक वंशी राजा मोअको भी इस धर्मके सामने झुकना पड़ा। तक्षशिलासे तैयार जितने मोअके सिक्के मिले हैं सबपर शिवके वाहन बैल (नन्दि) की आकृति मिलती है। उसके पुत्र अयसने भी वैसा ही किया। पार्थियन राजा गुदफरके सिक्के नन्दियुक्त मिलते हैं। सबसे विचित्र सिक्के कुषाण वंशके मिलते हैं जिनका शासन ईसवी सन्‌के बाद आरम्भ हुआ था। उस समय शैवमत राजधर्मका स्थान ग्रहण कर चुका था। कुषाणोंका सर्वप्रथम शासक वीम कदफिसने ऐसे सोनेके सिक्के चलाए थे जिनपर भगवान शिव नन्दिके साथ स्वयं विराजमान हैं। राजाकी पदवी—"महरजस राजाधिराजस सर्वलोक ईश्वरस्य महीश्वरस्य वीमकदफिसस"—से उपर्युक्त कथनमें तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि कुषाण कालमें शिवमत राजधर्म हो गया था। गान्धार प्रान्तमें दो शताब्दियोंसे प्रचलित शैवमतको शासकने अंगीकार किया था और अपनेको शिवभक्तके रूपमें सिक्कों द्वारा घोषित किया था। उसके उत्तराधिकारियोंके शासन-कालमें शैवमतको वह स्थान प्राप्त न था। देश-कालके कारण कनिष्क आदि राजाओं ने बुद्धधर्मको अपनाया परन्तु शैवमतका निरादर न कर सके। जनताकी अवहेलना करना आसान काम न था अतएव अन्य चिह्नोंके साथ नन्दिको भी सिक्कोंपर स्थान दिया गया। यह राजाओंके धार्मिक सहिष्णुता फल था। कनिष्कके सिक्कोंपर यूनानी, बौद्ध, पारसी तथा हिन्दू-देवताओंके नाम खुदे मिले हैं। शिवके लिए महेश (ओइशो) शब्दका प्रयोग मिलता है। उसके उत्तराधिकारियोंकी नीतिमें कोई परिवर्तन न हो पाया। कुषाण शासक वासुदेवने शिवको प्रधान देवता माना और अपने विचारोंको व्यक्त करनेके लिए भगवान् शिवकी आकृतिको सिक्कोंपर तैयार कराया था। उसके सिक्कोंपर शिवके वाहन नन्दि तथा त्रिशूल चिह्न भी दिखलाए (खुदे) गए हैं। पिछले कुषाण नरेश तथा ससैनियन राजाओंने भी इसीका अनुकरण किया था परन्तु भद्दी-आकृतिके कारण साफ चित्र दिखलाई नहीं पड़ता। तो भी ओइशो (महेश) लेखको पढ़कर भ्रांतिका निवारण किया जा सकता है और किया जाता है।

ईसवी सन्‌के पश्चात् राजपूताना, मालवा तथा सौराष्ट्रमें शिवमतका प्रचार इतना बढ़ गया था कि किसी दूसरे धर्मकी कोई बात सोच ही न सकता था। दूसरी सदीमें ग्वालियरके समीप शासन करनेवाले नाग वंशके लेख तथा सिक्के यह प्रमाणित करते हैं कि राजागण शैवमतके परम अनुयायी थे। उनके सिक्कोंपर केवल नन्दिकी आकृति ही खुदी नहीं मिलती वरन् राजाके कन्धोंपर शिवलिंगकी मूर्त्ति ढोनेका वर्णन आता

है। ऐसी मूर्ति भी मिली है जिसके देखनेसे उनके नामोंका वास्तविक अर्थ लगाया जा सकता है। लेखोंमें शिवलिंगके ढोनेके कारण नागवंशी राजा 'भार शिव' कहे जाते हैं। प्राचीन इतिहासमें नाग शासक इसी नामसे प्रसिद्ध हैं। उस भू-भागमें शैवमत शताब्दियों तक प्रचलित रहा। हूण, मैत्रक तथा मध्य कालीन राजाओंके सिक्के उसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। गुप्त-कालीन सिक्कोंका वर्णन आगे किया जायगा। इस सिलसिले में हूण सिक्कोंका अध्ययन किया जाय तो सब बातें स्पष्ट हो जाती हैं। पाँचवीं सदीसे पंजाबसे मध्य भारत तक हूण राज्य करने लगे। जितने समय तक उन्होंने राज्य किया भारतीय धर्मके प्रभावसे पृथक न रह सके। यद्यपि वे भारतीय संस्कृतिके समर्थक न थे तथापि लोकमें प्रचलित धर्मको उन्होंने अपनाया। हूण राजा मिहिरकुलने नन्दिकी आकृतिके साथ सिक्के तैयार कराये थे और उसी स्थानपर 'जयतु वृष'का लेख भी खुदवाया। इसका तात्पर्य यह है कि विदेशी आक्रमणकारी भी भारतमें आकर धर्म तथा समाजका आदर करने लगे और अन्तमें उसीमें विलीन हो गये। छठी शताब्दीमें सौराष्ट्रके शासक वलभी नरेशोंने भी शैवमतको स्वीकार किया और सिक्कोंपर शिवके चिह्न त्रिशूलको खुदवाया था। परममाहेश्वर मौखरी राजाओंके सिक्के भी इसी श्रेणीमें रखे जाते हैं।

पूर्व मध्यकालीन राजपूतानेके राजाओंने भी उसी प्राचीन परिपाटीका अनुकरण कर शिव भक्तिका परिचय दिया था। उनके वास्तविक धार्मिक भावनाओंके विषयमें कुछ अधिक ज्ञात नहीं है परन्तु उनके सिक्कोंके अध्ययनसे पता चलता है कि भगवान शिवमें उनकी आस्था अवश्य थी, उनके द्वारा तैयार सिक्कों पर नन्दिकी आकृति मिलती है। चूँकि यह चिह्न शताब्दियोंसे प्रचलित था अतएव उन राजपूत राजाओंने उसे अपनाया और राजकीय मुद्रापर स्थान दिया। यही कारण है कि तोमर, चौहान, नारवार तथा अन्य राजपूत राजवंशोंके सिक्के नन्दि युक्त मिलते हैं। सम्भवतः उनके पास दूसरा कोई विकल्प न था। साहित्यिक प्रमाणोंसे भी यह बात सिद्ध होती है कि उस स्थानपर पाशुपत तथा कापालिक नामक शैव सम्प्रदायोंका प्रचार था। इस प्रकार साहित्य तथा मुद्राशास्त्रके प्रमाणे पारस्परिक पुष्टि की जाती है।* पश्चिमी भा[रतके] अतिरिक्त पूर्वी भारतमें भी शैवमतके प्रचारको जान सभीको प्रसन्नता होगी। छठी सदीमें गौड़ (बंगाल) का राजा शशांक शिवका परम भक्त था। शैवधर्ममें अ[पने] विश्वासको प्रकट करनेके लिए शशांकने चतुर्भुजी शिव[की] मूर्त्तिको सिक्कोंपर खुदवाया था। शिवके साथ नन्दि भी विद्यमान है जिसके कारण सन्देह करनेका कोई अवसर नहीं है। ऐसे सिक्के उत्तरी बंगालमें थोड़े समय तक प्रचलित रहे। उसी समय शासन करनेवाले मौखरी नरेशोंके लिए 'परम माहेश्वर'की उपाधि मिलती है। मुसलमानोंके आक्रमण कालमें भी ओहिन्दके राजा शिवको अपना उपास्य देव मानते रहे तथा अपने सिक्कोंपर वृषभका चित्र तैयार करवाये।

पुरातत्व-सम्बन्धी खोजसे सिद्ध होता है कि गुप्तोंके स[म]युगमें शिवके साथ विष्णु-पूजाका प्रचार हो गया था जिसके फल स्वरूप गुप्त नरेश 'परम भागवत'की उपाधिसे विभूषित किए गये थे। विष्णु-पूजाके उत्कर्षका यह युग था जो गु[प्त] सिक्कोंके अध्ययनसे भी पता लगता है। ब्राह्मण धर्मके उत्थान से, चौथी सदीसे, वैष्णवधर्मका प्रसार होने लगा था। चौथी तथा पाँचवीं सदीमें गुप्त सम्राटोंने एक लम्बा-चौड़ा राज्य विस्तृत कर लिया था जिसकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। गुप्तकालीन सोने, चाँदी तथा ताँबेके सिक्के वैष्णवधर्म के प्रचारके ज्वलन्त उदाहरण हैं। प्रायः सिक्कोंपर गरुड़ध्वज (विष्णुके वाहन गरुड़की पताका) दिखलाई पड़ता है और लेख में 'परमभागवत'की उपाधि खुदी मिलती है। इस राजकीय पदवीकी विशेषता है कि गुप्त नरेश एक राज्य अथवा महा[राज] सम्राट्की पदवियोंको न धारणकर धार्मिक पदवी (परमभागवत) को रखना ही श्रेयस्कर समझते थे। सिक्कोंपर कभी राजाओं के हाथमें विष्णु-चक्र भी दिखलाई पड़ता है। इन सब बातों

---

* उदयपुरके पास एकलिंगके प्रसिद्ध मन्दिरपर खुदे लेख तथा चित्रकी प्रशस्तिमें भी उन सम्प्रदायोंके वर्णन मिलते हैं। चीनी यात्री ह्वेनसांगके यात्रा विवरणमें भी ऐसा उल्लेख मिलता है।

प्रकट होता है कि वैष्णव मतको गुप्तकालमें राष्ट्रिय धर्मका स्थान अवश्य मिल गया था। प्रायः सभी सिक्कोंके दूसरी ओर विष्णुकी भार्यालक्ष्मीकी मूर्त्ति खुदी मिलती है जिससे तत्कालीन सिक्के बनानेवालोंके दूरदर्शिताका परिचय मिलता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि गुप्तसिक्कोंपर गरुडध्वज, चक्र, लक्ष्मी तथा परमभागवतकी पदवीसे यह आभास मिलता है कि विष्णुपूजा का अत्यधिक प्रचार था तथा कई शताब्दियों तक विष्णुधर्म राजधर्मका स्थान ले चुका था। पिछले गुप्तनरेशोंने भी वंशकी इस परिपाटीको क़ायम रखा और उसी चिह्नके साथ सिक्के तैयार करते रहे। मध्यकालीन धार्मिक अवस्थाका इतिहास बतलाता है कि बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रान्तमें वैष्णव मतका प्रचलन था और गहरवाल, चन्देल तथा कलचूरि राजवंशोंके टकसाल घरोंसे गुप्तशैलीके सिक्के (लक्ष्मी युक्त) बनते रहे। चौथीसे बारहवीं सदीतक यानी आठ सौ वर्षों तक लक्ष्मी सिक्कोंपर प्रधान स्थान पाती रहीं जिससे अनुमान किया जाता है कि लोगोंके दिलमें वैष्णवमत गहरा स्थान बना चुका था। सारे अध्ययनसे पता लगता है कि शिवपूजा कश्मीरसे लेकर मालवा और सौराष्ट्र (भारतके पश्चिमी भाग) तक प्रचलित था और बिचले भागमें वैष्णव धर्मकी प्रधानता १२ वीं सदीमें रही। जब मुसलमानोंने विजयकर दिल्लीमें राज्य स्थापित किया तब उनके सामने भी मुद्रा तैयार करनेका प्रश्न आया। मुसलमान सुल्तानोंको, विधर्मी होनेपर भी, देशमें प्रचलित मुद्रा-शैलीको अपनाना पड़ा और उत्तर-पश्चिममें शिव के प्रतीक नन्दिको अपनाकर वृषभकी मूर्तिके साथ कई सौ वर्षों तक सिक्के तैयार करते रहे। अन्तमें यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि सिक्कोंके अध्ययनसे प्राचीन भारतकी धार्मिक अवस्थाके समझनेमें पर्याप्त सहायता मिलती है।

सान्ध्य गीत

लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर'

किस जीवनकी सुधिके घन मम मन अम्बरमें छाये?

एक अपरिचित किसी लोकसे
आ पहुँचे खग-दम्पति,
एक डालपर तृण-तिनकोंसे
निज संसार बसाये।
पर अदृश्य दोनोंके सुखपर
हँसा, अँधेरा छाया;
आँधी आई, गिरा घोंसला,
पात-पात छितराये।
दोनों पंछी उड़े विकल हो
दो विपरीत दिशाको;
क्या जाने, दोनोंका पथ मिल
एक कभी हो पाये?१॥

श्री-विहीन यह सांझ बाँझ-सी;
मेरे दृग भर आये।
उड़ कर युगल कपोत-कपोती
दूर देशसे आये,
सटा चंचुसे चंचु और
नयनोंसे नयन मिलाये।
किसी विहगका बना घोंसला
एक ठूँठपर देखा,
दोनोंकी आँखोंमें करुणा-के
बादल घिर छाये।
आह भरी, निःश्वास भरे
फिर हुए तिमिरमें ओझल,
कौन बताए, वे दोनों क्या पहुँच नीड़ तक पाये?२॥

शापावधि और मेघदर्शन-दिवस

रञ्जन साहित्याचार्य

'विशाल भारत'के विगत दिसम्बर '४६ के अंकमें मैंने 'मेघदूतपर एक विहंगम दृष्टि' शीर्षक एक लेख लिखा था ; जिसकी टिप्पणीमें यक्षकी शापावधिके विषयपर यत्किंचित् प्रकाश डालनेकी चर्चा चलाई गई थी। आज उसी शापावधि विषयक कतिपय बातोंपर मैं अपनी विचार-धारा प्रस्तुत कर रहा हूँ।

वर्त्तमान युगमें प्रायः ऐसा दृष्टिगत होता है कि पुरातन कवियोंमें, विशेषतः संस्कृत साहित्यके कवियोंकी रचनाओंकी पाठ भिन्नताको लेकर, आधुनिक आलोचना-जगत् उलझा हुआ-सा रहता है। उक्त विषयका सम्यक् रीतिसे निराकरण न होनेपर वह अत्यधिक दुर्बोध, जटिल और समस्यात्मक बन जाता है। किसी भी आशंकाके समाधानके लिए केवल सुन्दर युक्ति और पुष्ट प्रमाणकी आवश्यकता है वाग्वितण्डाकी नहीं।

मेघदूत महाकवि कालिदासकी मधुर और सरस रचना है। इसकी महत्ता चिर प्राचीन और चिर प्रख्यात है। मेघदूतका कथानक वियोग-वेदना-विकल तथा करुणाश्रुस्नात है। इसमें अलकाधिपति यक्षराट् कुबेर द्वारा अभिशप्त एक यक्षकी कथाका कोमलतासे आर्द्र चित्रण है।

अभिशापका समय एक वर्षका है। यक्ष अपने देवत्वसे च्युत होकर रामगिरि (चित्रकूट पर्वत)पर एकान्त वास कर रहा था। इसने आठ मासकी शापावधिको बड़ी कठिनतासे बिताया। तब तक आषाढ़में वर्षा आ गई। आकाशमें घुमड़ते घन-घमण्डको देखकर इसके धैर्यका बाँध टूट गया। प्रिय-मिलनकी आतुरता हाहाकार कर उठी। विरहोन्मत्त यक्षने मेघको कल्पनादूत बनाकर उसे अपनी प्रियाके पास प्रणय-सन्देश दे आनेको कहा।

यक्षको मेघदर्शन आषाढ़के ठीक प्रथम दिवसको हुआ—

"तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी,
नीत्वा मासान्कनकवलय भ्रंशरिक्त प्रकोष्ठः।
आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श॥"

मेघदूतके प्रति साग्रह अभिरुचि रखनेवाले कई साहित्यानुरागी विद्वान् बन्धु 'आषाढ़स्य प्रथमदिवसे'के स्थान 'आषाढ़स्य प्रशमदिवसे' पाठान्तरकी कल्पना करते हैं। मेघदूतके कतिपय विख्यात टीकाकारोंने 'प्रथम' शब्दके पाठको मान्यता देकर 'प्रथमदिवसे'के पक्षमें ही बहुमत स्थापित किया है। परन्तु विश्रुत प्रतिष्ठ टीकाकार चारित्रवर्धनाचार्य द्वारा सम्पादित 'चारित्रवर्धिनी' टीकाके आधारपर कतिपय साहित्यानुरागी 'प्रथम'के स्थानपर 'प्रशम' पाठकी कल्पनाके लिए बाध्य हो उठते हैं जो सर्वथा अयुक्तियुक्त, प्रमाणविहीन तथा भ्रान्तिमूलक है।

चारित्रवर्धिनीकार मेघदूतके उक्त पदकी व्याख्या करते समय लिखते हैं—

"आषाढस्य प्रथमः प्रवरश्चासौ दिवसश्च। यस्मिन् दिवसे स मासः पूर्त्ति-मियर्त्ति-सा, आषाढ्यमावास्येति भावः। [illegible] प्रवरत्वं च कृष्यादिकार्याणां तस्मिन्प्रारभ्यमाणत्वात्।" (मेघदूत, सटीक, प्रकाशक चौ० सं० सीरीज १६३१ ई०, पृ० सं० ३)

अर्थात् आषाढ़का प्रमुख दिन, जिस दिन उक्तमास [illegible] होता है अर्थात् आषाढ़ी अमावस्या ; कृषि आदि उसी दिन प्रारम्भ होते हैं, इसलिए उक्त दिनको प्रमुखता प्राप्त हुई।

तनिक विचारिये। कैसी तर्कहीन विचार-पद्धति है। [illegible] आषाढ़ी अमावस्या ही आषाढ़का प्रमुख दिवस है। [illegible] आदि उक्त दिनसे ही प्रारम्भ होते हैं। कृषक तो ज्येष्ठ [illegible] ही, जब रोहिणी नक्षत्रका शुभागमन होता है, बीज [illegible] प्रारम्भ कर देते हैं, तो फिर आषाढ़ी अमावस्याको ही [illegible] कार्यके लिए किस तरह प्रमुखता दी जा सकती है अतः [illegible] विचार निर्मूल और असंगत है। चारित्रवर्धिनीकारके [illegible]

कथनसे उनके ही कथनका स्पष्ट विरोध होता है। देखिये—

"प्रथमदिवस इति पाठे मासस्य अवसानो दिवसः स एव प्रथमदिवसः। प्रथमः प्रख्यातो विष्णुदिवसः प्रथमैकादशी त्यर्थः।" (वही मेघदूत, पूर्वमेघ, पृ० सं० ४)

अर्थात् 'प्रथमदिवस' पाठमें मासका अन्तिम दिवस ही प्रथम दिवस हुआ। प्रथम प्रख्यात विष्णुका दिवस अर्थात् प्रथम-एकादशी।

अभी-अभी आचार्यवरने 'प्रथमदिवस'को आषाढ़ी अमावस्या मान लिया और अभी तुरन्त 'प्रथम दिवस'का अर्थ प्रथम एकादशी किया। कैसी क्लिष्ट कल्पना है? विचार सर्वथा छिछला और निस्सार-सा प्रतीत होता है। अस्तु

अब तनिक आचार्यजीके विचारानुसार शापावधिके दिनकी गणना कीजिए।

"शापान्तो मे भुजगशयना दुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥"

उत्तर मेघमें यक्षके कथनानुसार चार मास पूर्ण होते हैं। शापावधि वर्ष भरकी है। आठ महीने बीत चुके हैं। चार मास और बिताने हैं। शापमुक्तिका दिन 'हरिबोधिनी एकादशी' है जो कार्तिक कृष्णादि मासके शुक्लपक्षका ग्यारहवाँ दिन है।

चारित्रवर्धनाचार्यजीकी चारित्रवर्धिनी टीकाके अनुसार यदि 'प्रथम दिवस'को आषाढ़का अन्तिम दिन अर्थात् अमावस्या मानते हैं (यहाँ आचार्यजी शुक्लादि चान्द्रमासके अनुसार आषाढ़ी अमावस्याको आषाढ़ मासका अन्तिम दिवस मान रहे हैं।) तो हरिबोधिनी एकादशी तक चार माससे दस दिन अधिक हो जाते हैं। उक्त अवसरपर 'प्रथम दिवस'का 'प्रथम एकादशी' अर्थ करनेसे आचार्यजीका क्या तात्पर्य सिद्ध होता है यह दुर्बोध है।

इदमित्थं 'प्रथमदिवसे' को 'प्रशमदिवसे' माननेके लिए उल्टी-सीधी व्याख्या-व्युत्पत्ति करना बुद्धिका व्यामोहमात्र है। उक्त रीति जिज्ञासुओंको किसी भी वस्तुके रहस्यान्वेषणसे दूर ही रख देती है।

'प्रथम' और 'प्रशम'के विवादसे उद्धार पानेके लिए लब्धप्रतिष्ठ सुविख्यात टीकाकार दिवाकर महामहोपाध्याय श्री मल्लिनाथजीकी टीका द्रष्टव्य और मननीय है, जो कि शंकाग्रस्त चित्तको बिल्कुल विगत-संदेह बना देती है। महामहोपाध्यायजी 'प्रथमदिवसे' माननेके पक्षमें हैं, जिसकी उन्होंने ठोस और युक्तियुक्त आलोचना की है। देखिये :—

'केचित् आषाढस्य' 'प्रथम दिवसे' इत्यत्र 'प्रत्यासन्ने नभसि' इति वक्ष्यमाण नभोमास प्रत्यासत्त्यर्थं 'प्रशम दिवसे' इति पाठं कल्पयन्ति। तदसंगतम्। प्रथमातिरेके कारणाभावात्। नभोमासस्य प्रत्यासत्त्यर्थमिति-उक्त मिति चेन्न। प्रत्यासत्तिमात्रस्य मास प्रत्यासत्त्यैव प्रथमदिवसस्याप्युपपत्तेः।... इति सुष्ठूक्तं 'प्रथमदिवसे' इति।"

(वही मेघदूत, पूर्वमेघ, पृ० सं० ३)

"अर्थात् कोई-कोई विद्वान् आषाढ़स्य 'प्रथमदिवसे' इस स्थलपर 'प्रत्यासन्ने नभसि' आदि वक्ष्यमाण श्रावण मासकी प्रत्यासत्ति (निकटवर्तिता) के लिए 'प्रशमदिवसे' पाठान्तरकी कल्पना करते हैं,—वह असंगत है। 'प्रथम' शब्दको छोड़ने का कोई कारण नहीं है। श्रावण मासकी प्रत्यासत्तिके लिए कहें तो यह भी ठीक नहीं। कारण, प्रत्यासत्ति शब्दसे समस्त आषाढ़ माससे श्रावण मासकी प्रत्यासत्ति सूचित होती है। इसलिए 'प्रथम दिवस' कहनेपर श्रावण मासकी प्रत्यासत्तिमें कोई हानि नहीं होगी। इसलिए ठीक ही 'प्रथमदिवसे' कहा गया है।"

अब यह निर्विवाद है कि 'प्रशमदिवसे' पाठान्तरसे 'प्रथमदिवसे' पाठ ही मान्य और शुद्ध है। मल्लिनाथकी टीकाके प्राचीन रहनेसे उसका ही कथन विश्वसनीय है। "वृद्धानां वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते।"

इतना होनेपर भी महामहोपाध्यायने शापावधिकी दिन गणनाके सम्बन्धमें अनिश्चित-सी बातें कहीं हैं। दिनगणनाके आधारपर आपने 'प्रथमदिवसे'को सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं की। यों ही एक मास-प्रत्यासत्तिकी युक्ति दिखलाकर आगे निकल गये हैं। यह एक तरहसे धूलि-प्रक्षेप ही कहा जायगा। वस्तुतः 'प्रथमदिवसे' पाठ तभी समुचित, सुसंगत तथा अधिकारी तौरपर मान्य हो सकता है, जब कि दिनगणनाके क्रममें कोई विषमता उत्पन्न न हो।

दिनगणनाके क्रममें महामहोपाध्यायने तो न जाने गिननेका कौन-सा तरीका अपनाया है, जिससे उनके मतसे चार महीनेके पूर्ण होनेमें बीस दिन कम रह जाते हैं। ये महोदय "स्वपक्षेऽपि कथं सा, विंशति दिवसैर्न्यूनत्वादिति संतोष्टव्यम्" कहकर सन्तोष कर लेते हैं। गणनाके क्रम यों हो सकते हैं—

कृष्णादि मासके अनुसार यदि आषाढ़के प्रथमदिवस अर्थात् आषाढ़ कृष्ण प्रतिपद्‌को मेघदर्शन होता है तो "हरिबोधिनी एकादशी" तक चार महीनेसे पच्चीस दिन अधिक हो जाते हैं। आषाढ़के 'प्रशमदिवस' अर्थात् आषाढ़ी पूर्णिमाको मेघ-दर्शन होता है तो 'हरिबोधिनी एकादशी' तक चार महीनेमें पाँच दिन कम रह जाते हैं।

शुक्लादि मासके अनुसार—आचार्यजी तथा महामहोपाध्यायजी दोनोंके व्याख्या-विचारसे उक्त एकादशीतक चार महीनेसे दस दिन अधिक हो जाते हैं। अन्तर इतना ही है कि शुक्लादि चान्द्र मासके आधारपर आचार्यजी प्रथम दिवसको आषाढ़ी अमावस्या मानते हैं तथा महामहोपाध्यायजी प्रथम दिवसको आषाढ़ी पूर्णिमावाला आषाढ़ मासका प्रथम दिवस अर्थात् आषाढ़ शुक्ल प्रतिपद मानते हैं। ऐसी परिस्थितिमें महामहोपाध्यायजी चार महीनेमें बीस दिन कम रह जानेकी बात किस हिसाबसे करते हैं, यह नहीं ज्ञात होता।

फलतः दिनगणनाके क्रममें महामहोपाध्यायजी भी स्वयं विभ्रान्त हो गये हैं; अतः उनकी व्याख्या भी भ्रान्तिमूलक हो उठी है। ऐसी दशामें 'प्रथम दिवसे'को भी समुचित पाठ कहनेमें प्रश्नसूचक चिह्न लग जाता है।

इन दोनों टीकाकारोंके अतिरिक्त मेरी भी कुछ सप्रमाण युक्तियाँ हैं, जिनके आधारपर 'प्रथमदिवसे'पाठ ही समुचित प्रतीत होता है, थोड़ा ध्यान देनेका कष्ट कीजिए—

मासके दो भेद हैं, सौर और चान्द्र। चान्द्र मासके भी दो प्रकारके होनेका प्रमाण प्राप्त है। स्मार्तोंके प्रमुख स्मृति ग्रन्थ 'निर्णयसिन्धु'में श्री त्रिकाण्डमण्डनाचार्य लिखते हैं—

"चान्द्रोऽपि शुक्लपक्षादिः कृष्णादिर्वेति च द्विधा।"

चान्द्र मास यज्ञादि कर्मोंके लिए शुभ होता है। ज्योतिष शास्त्रका वाक्य है—"विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनः स्मृतः।" अर्थात् विवाहादि कर्मोंमें सौरमास तथा यज्ञादि कर्मोंमें सावन (चान्द्र) मास विहित है। यज्ञादौके आदि शब्दसे प्रत्येक शुभकर्मका सूचन होता है। चान्द्रमासमें शुक्लादिमास शुभ कर्मकर्त्ताओंके लिए अत्यधिक फलप्रद है। कारण, शुक्लपक्ष शुभका द्योतक है। प्राणप्रिया प्रेयसीके निकट अपना शुभ सन्देश भेजना अभिशप्त यक्षके लिए महान् शुभकर्म है। अतः निश्चित है कि चतुर यक्षने उक्त शुक्लादिमासको शुभप्रद मानकर सन्देश भिजवाया है।

अब रहा 'प्रथम दिवसे'के समर्थनके आधारपर पूरे चार महीनेकी शापावधिका निर्णय। वृहद्दैवज्ञ मुहूर्त्त चिन्तामणिकार अपनी पीयूषधारा टीकामें लिखते हैं—"आपंचम्यास्तु तिथयः कृष्ण वत्परिकीर्त्तिताः।" पंचमीपर्यन्त शुक्ल पक्षकी तिथियां भी कृष्ण पक्षके समान मानी गई हैं। अतः शुद्ध शुक्ल पक्ष षष्ठीसे ही प्रारम्भ होता है। जिसका पक्ष कृष्णपक्षकी पंचमीको पूर्ण होता है।

उक्त प्रमाणानुसार सिद्ध होता है कि प्रचलित कृष्णादि मासके अनुसार आषाढ़ शुक्ल षष्ठीको यक्षने मेघदर्शन किया, जो कि शुक्लादि मासके अनुसार आषाढ़का वास्तविक 'प्रथम दिवस' होता है।

प्रतिपद् षष्ठी और एकादशी तिथिकी नन्दा संज्ञा ज्योतिषाचार्यने की है। शुक्ल पक्षमें षष्ठी तिथि मध्यम कही गई है जिसमें नवीन कार्यारम्भ सफल होता है। देखिए—मुहूर्त चिन्तामणिकार रामदैवज्ञजी तिथि प्रकरणमें लिखते हैं—

"नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता
पूर्णेति तिथ्योऽशुभमध्यशस्ताः।
सितेऽसिते शस्त समाधमास्युः।"

फलतः नन्दा (षष्ठी) तिथिमें मेघदर्शन यक्षके लिए अभीष्ट साधक हो जाता है।

इदमित्थं 'आषाढस्य प्रथमदिवसे'को आषाढ़ शुक्ल षष्ठी (शुक्लादि मासके आधार पर) माना जाय तो चार महीने पाँच दिन अधिक "हरिबोधिनी एकादशी" (कृष्णादि मासके आधारपर प्रचलित) तक होते हैं जो मास-तिथिके वृद्धि-क्षयमें खप जा सकते हैं। फलतः शुद्ध शुक्लादि मास

अनुसार आषाढ़ शुक्ल षष्ठीको ही यक्षका मेघ दर्शन-दिन सिद्ध होता है। अथच दिन-गणनामें भी विषमता उत्पन्न न होने पाती।

गतिविधि-परिस्थितिसे स्पष्ट उद्भासित है कि तथाविधि मेघ 'आषाढस्य प्रथमदिवसे' ही दृष्टिगोचरता प्राप्त कर सकता है।

उपर्युक्त शापावधिकी दिनगणनाके अनुसार आश्विनके

दिन गणना चक्र :—

कृष्णादि मास	आषाढ़	श्रावण	भाद्र	आश्विन	कार्तिक
आ० कृ० प्रतिपद्से	कृ० शु०	कृ० शु०	कृ० शु०	कृ० शु०	कृ० शु०
	१५ १५	१५ १५	१५ १५	१५ १५	१५ १० का० शु० १० तक
आ० शु० पष्ठीसे	+ शु०	कृ० शु०	कृ० शु०	कृ० शु०	कृ० शु०
	१० +	२० १० +	२० १० +	२० १० +	२० ५ दिन अधिक
शुक्लादि मास	=३० आषाढ़	=३० श्रावण	=३० भाद्र	=३० आश्विन	४ मास

इस तरह 'शेषान् मासान् गमय चतुरो'के सार्थक होनेके साथ-साथ भुजगशयनसे शार्ङ्गपाणिके उठनेपर यक्षका शापान्त भी होता है। यहाँ (मेघदूतमें) आषाढस्य प्रथमदिवसे शुक्लादि चान्द्र मासके अनुसार तथा "शापान्तोमें भुजगशयना-दुत्थिते शार्ङ्गपाणौ" कृष्णादि चान्द्र मासके अनुसार लिखित प्रतीत होता है। इस प्रकार दिन-गणनाके क्रममें कृष्णादि और शुक्लादि चान्द्र मासका अद्भुत संमिश्रण हुआ है जो ध्यानगम्य हो उठा है।

आषाढ़के प्रथम दिवसमें तो घटाओंकी घनान्धकारता असीम हो जाती है। 'आश्लिष्टसानु' तथा "वप्रक्रीडापरिणत गज प्रेक्षणीय" मेघ तो आषाढ़के प्रथम दिवसमें ही आकाशकी पवन-पदवीपर मन्द-मन्द विचरता दृष्टिगत हो सकता है। अतएव 'प्रथमदिवसे' पाठ ही युक्तियुक्त, तर्कसंगत तथा तथ्य-पूर्ण है। अथच मेघदूतकी प्रत्येक पंक्तिमें चित्रित मेघकी

अन्तमें शरच्चन्द्रिकाके प्रौढ़ हो जानेका भी समय आ जाता है जिससे यक्षकी—

"पाश्चादावां विरहगणितं तं तमात्माभिलाषं,
निर्वेक्ष्यावः परिणत शरच्चन्द्रिकासु क्षपासु।"

यह उक्ति भी चरितार्थ होती है। एक बात और—अपनी विरहिणी प्रेयसीके घन-घमण्डता-दर्शन-जनित अनिष्टकी आशंका से विरही यक्ष आषाढ़की स्वल्पविरलाभ्रतामें ही सन्देशा भिजवानेको आतुर हो उठा होगा, अतएव आषाढ़के प्रथम-दिवसमें ही स्वल्पविरलाभ्रताका सम्भव है।

इस तरह कविकृत मेघचरित्र-चित्रणके आधारपर 'प्रथम-दिवसे' पाठ ही शुद्ध है और आचार्यजी तथा महामहो-पाध्यायजी प्रदर्शित दिनगणनाकी विषमताको विचारनेपर उपर्युक्त चक्रानुसार ही यक्षकी अवशेष चार मासकी अवधि ही ठीक बैठती है।

गीत

लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर'

कैसे तुमको कहूँ कि मेरे गीतोंका आधार तुम्हीं हो ?
नित्य नये सुर, ताल, छन्दमें व्यंजित होता प्यार तुम्हारा,
मेरे तनपर क्या, मनपर भी है अखण्ड अधिकार तुम्हारा ;
किस प्रकार दूँ दिखा कि मेरे अन्तरमें साकार तुम्हीं हो !
मेरी वीणाकी रागिनियोंमें बजता विश्वास तुम्हारा,

मेरी इन आँखोंमें बन्दी है असीम आकाश तुम्हारा ;
किस प्रकार मैं कहूँ कि संगीतोंकी लय-झंकार तुम्हीं हो।
आदि कालसे विश्वोदधिमें बहता जीवन-सुमन निरन्तर,
एक यही अभिलाष कि कैसे चढ़े तुम्हारे युगल चरणपर ;
नाविक ! मैं यह जान चुका, इस पार और उसपार तुम्हीं हो।

उनकी ज़िन्दगी

ए० रमेश चौधरी

एक ऊँचे आलीशान तिमंजिले मकानमें एक अखबारका दफ्तर था। सैकड़ों आदमी उसमें काम करते थे। मैं भी उनमें से एक था।

मकानकी तीसरी मंजिलसे हमारा वास्ता न था। वह तो मालिक और उनके दोस्तोंके लिए रिज़र्व थी। हमें भी मालिककी, जो खुद सम्पादक थे, फटकार सुननेके लिए कभी-कभी वहाँ जाना पड़ता था।

दूसरी मंजिलमें सम्पादकीय विभाग था। दसियों आदमी वहाँ काम करते थे। सबेरेसे शाम तक, शहदकी मक्खीकी तरह, लोग अपने काममें वहाँ संलग्न रहते थे। मैं सम्पादकीय विभागका सदस्य था। मेरा काम था खबरोंकी काट-छाँट करना। कई खबरें ऐसी भी थीं जिनका कि प्रकाशित करना मना था। ऐसी ही एक खबर यह है। हाँ तो, सबसे निचले मंजिलमें प्रेस था। प्रेसके पिछवाड़े विस्तीर्ण आँगनमें एक विशाल गोदाम था और गोदामकी दीवारोंकी आड़में उन बेचारोंका घर था। मालिककी नज़र शायद इस 'घर'पर न पड़ती थी। पड़ती भी कैसे—दूरसे वह कूड़ेका एक ढेर-सा लगता था। चौकीदारकी मेहरबानी समझिये जो महीनों कूड़ेका ढेर वैसा-का-वैसा ही वहाँ बना रहा।

घर तो क्या, सचमुच वह कूड़ेका ढेर था। और उस ढेरके नीचे रहते थे चार प्राणी—तीन बच्चे और एक मा। दो-चार बाँसके टुकड़े और उनपर फटे बोरे, अखबार, टूटे हुए कनस्तर, फटे जूते, पत्थर और न जाने क्या-क्या छतका काम करते थे। दीवारके साथ जो छोटी सी नाली थी वह उनके घरमें से ही गुजरती थी। एक तरफ छोटा-सा चूल्हा था ; दो-चार लत्ते इधर-उधर पड़े हुए थे और दूसरी तरफ दो-एक हँड़ियाँ थीं। बस, यही उस औरतकी सम्पत्ति थी।

उसके सबसे बड़े लड़केकी उम्र ८ बरसकी होगी—दुबला पतला, काला मृतप्राय-सा था वह। गर्मी हो या सर्दी, एक फटी लँगोटीके सिवाय उसके शरीरपर और कुछ न होता था। वह हमारे कैन्टीनके पास भीख माँगने आया करता था, भीख मिलती थी कि नहीं, यह तो नहीं मालूम। मैंने उसे फेंकी हुई सिगरेटोंको पीते देखा है। कूड़ेके ढेरमें उनकी भरमार थी। सिगरेटके धुएँमें भूख बुझानेकी शायद बहुत बड़ी क्षमता है।

उसके भाईकी उम्र ५ वर्षकी होगी—गोरा, मुरझाया हुआ तन्दुरुस्त बच्चा था। वह भी अपने भाईके साथ इधर-उधर फिरा करता था। तीसरी सन्तान एक भद्दी-सी लड़की थी—चपटी-सी नाक, मुँहपर फोड़े। बेचारी न जाने वह भी क्यों जीवनका अभिशाप सहने आई थी। क्या न्याय है! किसीकी करतूत और किसी दूसरेको भोगना पड़ता था फल।

और उनकी मा एक प्रौढ़ा थी—रौंदे हुए फूल-सी। उमर होगी कोई २५ सालकी। किसी ज़मानेमें वह बहुत खूबसूरत रही होगी। कई ऐसी भी औरतें होती हैं जिनपर नौजवानोंकी नज़र बनी ही रहती है। इसकी वजह हमेशा खूबसूरती नहीं है। क्या है, नहीं मालूम।

इतना अर्सा हो गया है। अब भी उसकी बड़ी-बड़ी आँखें मुझे देखती हुई-सी नज़र आती हैं। वे बिखरे हुए बाल, वह फटी हुई साड़ी, वह बिलखता हुआ मुँह। मैं अब भी कभी-कभी आँखें बन्द करके उसे देखा करता हूँ। मेरा उस परिवारसे परिचय कुछ आकस्मिक ढंगसे हुआ। मेरी अपनी ही मुसीबतें इतनी हैं कि दूसरोंकी तकलीफोंको देखनेका मौका नहीं मिलता। फिर मैं शायद उन बुडबुकोंमें से हूँ जो सोचते हैं कि जब तक आँखें बन्द हैं, सब कुछ ठीक है।

वह कूड़ेका ढेर अक्सर मेरी नज़र आ जाया करता था। मेरी खिड़कीसे गोदामकी दीवार और उनका घर साफ़-साफ़ दिखाई पड़ता था, और दूर क्षितिजमें ऊँचे-ऊँचे मकानोंके शिखर। आख़िर कब तक नज़र बचाता। देखनेकी इच्छा न थी। देखे बग़ैर भी रहूँ कैसे। मैं बैठे-बैठे कल्पनामें मनुष्यकी

इस प्राकृतिक महत्ता और उसकी असीम असमर्थताके अधूरे पुलको जोड़नेके लिए युक्तियाँ जुटाया करता।

कई बार सोचता, हमारी सभ्यता विभिन्नताओंका मिश्रण है। एक मनुष्य मनुष्य होने मात्रसे दूसरे मनुष्यके समान नहीं है। इन विभिन्नताओंका कोई नैतिक आधार भी नहीं। मेरी वैयक्तिक ताकत ही कितनी है।

प्रतिदिन साँझ-सवेरे मैं उस कूड़ेके ढेरको देखा करता था। वहाँ जाकर पूछ-ताछ करनेकी भी इच्छा होती कि पता लगाऊँ कि वे बेचारे भी इस संसारमें कैसे रहते हैं। पर न जाने फिर क्यों रुक जाता—शायद मान, प्रतिष्ठा और ओहदेकी वजहसे। अचानक एक दिन उस परिवारसे मुलाकात हो ही गई।

बरसातके दिन थे। मैं बसकी प्रतीक्षा करते-करते उस कूड़ेके ढेरके पास मटरगश्ती कर रहा था। एकाएक मूसलाधार वर्षा होने लगी। मैं बौछारसे कँपने लगा। न बस आनेके कोई चिह्न थे और न बारिशके थमनेके। अँधेरा हो चला था। आठ-साढ़े आठका वक्त था। मेंह, तिसपर अँधेरा। गलियाँ सब सुनसान थीं।

इस बीच उस घरका बड़ा लड़का सिगरेट पीते-पीते मेरे सामनेसे गुज़रा। मुझे देखते ही उसने सिगरेट फेंक दी। मुझे बड़ा अफ़सोस हुआ। वह सिगरेटसे गर्मी ले रहा था। देखते ही मुस्करा दिया—वह मुस्कराहट जिसमें भीखकी आशा होती है।

मैंने पूछा, "क्यों, घर क्यों नहीं जाता?"

"बाबूजी! हम लोगोंके लिए घर-बाहर बराबर ही है। अगर बाहर बारिश है तो अन्दर टपका। बाहर रहनेसे स्नान हो जाता है।"

"अबे! बीमार हो जायगा।"

"क्या बीमारी?"

"निमोनियाँ!"

"वह क्या होता है?"

"अबे, कह दिया कि बीमारी।"

थोड़ी चुप्पीके बाद उसने कहा, "बाबूजी, पैसा!"

"क्यों बे, सुना कि नहीं। भीख मत माँगा कर!"

उसने कुछ हँस दिया, "क्या करूँ बाबूजी!"

"कुछ काम किया कर!"

"क्या काम करूँ? मुझे आता ही क्या है। मेरी उम्रके बच्चे तो गलियोंमें फिरते हैं। मा भी मुझसे काम नहीं करवाती। वह तो भैयाको ही इधर-उधर कामपर भेजती हैं।"

"और तू क्या करता है?"

"आप ही के आफिसके आसपास तो रहता हूँ, बाबूजी।"

"भीख माँगना अच्छा नहीं। काम दिलाऊँ तो करोगे?"

"क्या काम? मासे पूछकर बताऊँगा।"

इस बीच बस भी आ पहुँची। खाली बसका मिलना वरदान समझिये। मैं बसके दुमंजिलेमें बैठा सोचने लगा, 'यदि मेरे मा-बाप मुझे इस प्रकार छोड़ देते तो मेरी क्या हालत होती, मैं उस बच्चेसे कहाँ तक अच्छा होता। भीख माँगना बुरा है। भीख माँगे बग़ैर और चारा ही क्या है! उस उम्रमें तो बच्चोंको स्कूल जाना चाहिए। बहुत-कुछ चाहिए। पर इस दुनियामें हो क्या रहा है। उस उम्रवाले कितने ही बच्चे काम कर रहे हैं। वह भी क्यों न करें; भीख माँगनेसे काम करना अच्छा; और काम करनेसे पढ़ना अच्छा। पर, पढ़ाये कौन? स्कूलमें तो भर्ती नहीं किया जा सकता। मैं पढ़ाऊँ! कहाँ? आफिसमें! उसके घरमें! अपने घरमें! नहीं, श्रीमतीजी फिर आग-बबूला हो जायँगी। कहेंगी, घर क्या कोई विधवाश्रम या अनाथालय है। अगर उनसे पानीपत ठान लो तो रोटी नसीब न होगी। क्या करूँ? मुझे क्या पड़ी है!"

घर पहुँचा। यों ही अनमना-सा पड़ा रहा। अख़बार पलटता रहा। उस बच्चेकी शक्ल भूल नहीं पाता था। बीमारी, भीख—काम—पैसा, उसका चेहरा मेरी आँखोंके सामने चक्कर काटता था।

"क्यों आज मौन धारण कर रखा है?"—श्रीमतीजीने कहा। "सवेरेसे शाम तक इन्तज़ारी करो और घर आवो तो बात करनेका मौका न मिले। आप भी खूब हैं।"

"तो क्या दिन-रात फिर पलँगपर बैठा-बैठा तुमसे गप्पें लड़ाता रहूँ।"

"मैंने यह कब कहा ? पर घरमें बैठनेकी फुर्सत हो तो खुशीसे क्यों न बैठा जाय। दुनिया भरकी फिक्र आप ही पर आ पड़ी मालूम होती है।" कमीजको खूँटेपर टाँगते हुए उसने ताना दिया, "आज तो किसीको दान नहीं दिया है। किसी स्कूलके लड़केकी फ़ीस वगैरह तो दी ही होगी। आप जैसे लोगोंके पास तो पैसे रहने ही नहीं चाहिए।"

"जामा तलाशी ले लो। बिना देखे बक़वास न किया करो।"

"ग़नीमत है। आज तो पैसे वापिस आ गये हैं। कभी-कभी लोग आदतसे भी मजबूर हो जाते हैं। तीन महीनेसे चप्पलें माँग रही हूँ, पैसे ही नहीं बचते। और दुनिया भरके छोकरोंके लिए न जाने पैसे कहाँसे आ जाते है।"

यह तो प्रतिदिनकी बहस थी। श्रीमतीजीकी कहनेकी आदत और मेरी सुननेकी आदत।

× × ×

मैं जब कैन्टीन पहुँचा तो वह लड़का वहाँ तैयार था। शायद मेरी इन्तज़ारी कर रहा था।

"मासे मैंने पूछा था। कहती थी, आपके पास आकर बात कर लेगी।"

"मेरे पास ?" मैंने कुछ अचम्भेमें कहा। फिर सोचने लगा कि अखबारका आफिस है, और लगभग सबको अफवाहोंमें चस्का आता है। अगर वह मेरे पास आय तो न जाने लोग क्या-क्या कहने लगेंगे। मुझे अपने ही बारेमें अफवाहें सुनना पसन्द नहीं। मैंने उसीके यहाँ ही जानेका निश्चय किया।

× × ×

काम खतम हो गया था। उसका लड़का भी दरवाज़ेके पास हाज़िर था। वही शक्ल भद्दी, भोली-भाली, स्वाभाविक मुस्कराहट।

"बाबूजी चलियेगा ?"

बिना कुछ कहे मैं उसके साथ चल दिया।

उसकी मा 'अपने घर' के सामने खड़ी इन्तज़ार कर रही थी। मैं शर्मके मारे झेंपा जा रहा था। डर लगता था कोई मुझे यहाँ देख न ले। दया वहाँके लिए प्रेरित करती थी और प्रतिष्ठा वहाँ जानेमें रोकती थी। अजीब हालत थी।

"बाबूजी, आप ही ने बच्चेको काम दिलानेके लिए कहा था ?"

"हाँ !"

"क्या काम दिलवाइयेगा। बड़ी मेहरबानी होगी।"

"वह क्या काम कर सकता है ?"

"बेचारेने अभी तक तो कोई काम नहीं किया है।"

"कोई काम क्यों नहीं करवातीं।"

"काम ही नहीं मिलता।"

मैं कुछ सोचता हुआ खड़ा रहा। उसकी निर्भीकतासे मुझे आश्चर्य होता था। उसके बातचीत करनेके तरीकेसे भी ताज्जुब हो रहा था—इतनी स्पष्ट सुथरी भाषा उस स्तरकी औरतोंमें पाना मुश्किल था। मैंने कम से-कम न सुनी थी। शायद कष्टोंकी वजहसे स्त्रियोंकी स्वाभाविक शर्म, हिचकिचाहट जाती रहती है। वे कुछ निर्लज्ज-सी हो जाती हैं ऐसी हालतमें। मैंने फिर कहा, "भीख माँगनेसे अखबार बेचना कहीं अच्छा है ?"

"यह भी भीख माँगने लगा है। दूसरा तो भीख माँगनेके लिए ही पैदा हुआ है।" कहकर आँसू टपका दिये और मेरे सामने ही लड़केको पकड़कर धुनने लगी। वह बेचारा चीखें मार-मारकर रोने लगा। मैं चकित-सा रह गया। इनमें भी अब भी मान तथा अभिमान बाकी रह गया है।

"कल शामको इस वक्त भिजवा देना। मैनेजर साहबसे कहकर काम दिलवा दूँगा।"

यह कहकर मैं चला। गोरखा चौकीदार मेरी तरफ़ चला आ रहा था। उसने घूरकर देखा। जब मैं बाहर दीवारकी पिछली तरफ़, बसकी प्रतीक्षा कर रहा था तब भी उस बच्चेकी रोनेकी ध्वनि सुनाई पड़ती थी।

× × ×

मैं सोचता था कि क्या उसको नहीं मालूम कि उसका दूसरा भीख माँगता है। फिर यह कैसे उसे मालूम कि दूसरा बच्चा भीख माँगता है। और वह इसे भीख माँगने दे

है। जिस चीज़के लिए एकको मनाई है दूसरेके लिए अनुमति है। विचित्र-सी बात थी।

इच्छा होती थी कि इस स्त्रीके इतिहासका पता लगाऊँ। फिर सोचता था कि अगर यह बात श्रीमतीजीके कानमें पड़ गई तो दिन-रात घरमें हड़ताल रहेगी।

जब घर पहुँचा तब श्रीमतीजीने पूछा, "आज भी क्या बस नहीं मिली थी?"

"बस मिली तभी तो आया हूँ।"

"कभी बस मिलती है और कभी नहीं मिलती, पर देरसे आनेमें आप कभी नहीं चूकते। आज भी क्या कोई आ पड़ा था?"

मैंने अपनी मुलाकातके बारेमें कहना न चाहा। कहनेसे फ़ायदा क्या। पद्मा, मेरी पत्नी तो उस श्रेणीकी थी जिनका बड़प्पन भिखारियोंके अस्तित्वसे और बड़ा हो जाता है। अगर भिखारी न हों तो अमीरी शायद इतनी बड़ी नज़र न आय। फिर मध्यम वर्गके लोगोंको मान-अपमानका ऐसा ख़याल रहता है कि आप लाख कहिये वे अपने ढर्रेको नहीं छोड़ते।

× × ×

अगले दिन शामको वह लड़का निश्चित समयपर चला आया। उसमें न मुस्कराहट थी, न गिड़गिड़ाहट। वह शायद सोचता था कि मेरी वजहसे ही उसकी मार-पीट हुई थी।

"क्यों रे, काम करेगा?"

"हाँ जी!"

"ऐसी रोनी शक्ल क्यों बना रखी है। काम करनेकी मर्ज़ी नहीं है क्या?"

"क्यों नहीं है!"

"फिर क्यों रोता है?"

"कहाँ। मेरा रोना-धोना तो कल ही खतम हो गया था। आज तो अम्माकी बारी है!"

"वह क्या? अम्मा क्यों रोती है।"

कल शामको आपके जानेके बाद गोरखेने अम्माको मारा था। आज सवेरे उसने फिर पीटा।"

"क्यों पीटता है?"

"भगवान ही जाने!"

"अक्सर पीटा करता?"

"जब-जब अम्मा किसी कामपर बाहर जाती हैं तब न जाने वह क्यों मारता है।"

× × ×

मैंने मैनेजरसे कहकर उसको काम दिलवा दिया। पर मनमें टीस थी कि अच्छा होता उसे स्कूल भेज देता। उसका वेतन दस रुपया था। बेचारा अखबारका नाम चिल्लाकर नहीं कह पाता था। घण्टों कोशिशके बाद उसे कुछ अभ्यास हुआ। अखबारका नाम न पूछिये—बताना भी अच्छा नहीं।

चार-पाँच दिन बीत गये। मेरी उस परिवारसे मुलाकात न हुई। इस बीच मेरा कुतूहल बढ़ता गया। जीवन भी क्या अजीब पहेली है। उम्र और घटनाओंका शायद कोई सम्बन्ध नहीं है। २५ वर्षकी उम्र हुई नहीं कि एक बड़ा इतिहास तैयार हो गया है।

सवेरे मेरे आफ़िस जाते ही वह लड़का भागा-भागा मेरे पास आया। गिड़गिड़ाता हुआ मेरे पीछे लग लिया। कुछ कहना चाहता था। कह नहीं पाता था। मैंने ही फिर पूछा—

"क्यों रे, क्या बात है?"

"माने आपसे आफिससे दो-चार रुपए दिलवानेके लिए कहा है।"

"अरे, अभी तो काम शुरु किये तुझे चार दिन भी नहीं हुए और तुम्हारी मा पेशगी माँगने लगी।"

"मा फिर रो रही है।"

"क्या उसने फिर मारा है?"

उसने कुछ जवाब न दिया।

"क्यों?"

"माने पैसे माँगे थे।"

"उसने क्यों नहीं दिये, अभी हाल ही में तो उसे तनख्वाह मिली है।"

"कहता था कि बाबूजीसे क्यों नहीं माँगते।"

"किससे? मुझसे!"

मैं सोंचमें पड़ गया। देता हूँ तो एक आफ़त ; नहीं देता तो एक सिरदर्द। फिर बच्चेकी शक्ल देखी। दिये बग़ैर कैसे रहूँ। बस, पाँच रुपएका नोट दे दिया।

बच्चेके मुखपर मुस्कराहट न थी। न जाने क्यों।

काम करनेकी इच्छा न होती थी। नीच व्यक्तिके नीच स्वभावपर मुझे अचरज होता था। मैं किस उद्देश्यसे वहाँ गया और उसने उसका क्या मतलब निकाला। दयाके लिए पात्रता और अपात्रताकी आवश्यकता है ? मैं इस झंझटमें पड़ा ही क्यों ? जब एक बार पड़ गया तब निकलूँ कैसे ? पर क्या निकलना चाहिए ! देखा जाय क्या होता है।

मैं जब शामको वहाँ पहुँचा तब गुरखा उनके घरसे बाहर चला आ रहा था और अन्दरसे रोने-चीखनेकी ध्वनि, और एक बच्चेकी प्रथम प्राण-सूचक आवाज़। एक नए बच्चेका जन्म ! जहाँ मृत्यु, निरन्तर प्रार्थनाके बाद भी, आनेको झिझकती है जन्म अनिमन्त्रित अतिथिके समान चला आया। एक ओर फ़िक्र, एक ओर जिम्मेदारी ! वह बेचारी !

ऐसे समयमें मेरा अन्दर जाना मुनासिब न था। मैं वापिस चला गया।

गोरखेकी कोपभरी दृष्टिने मेरे सन्देहको और भी पक्का कर दिया।

× × ×

एक सप्ताह बाद सबेरे उसका लड़का आफिसके चपरासीके साथ मेरे घर आया। आज छुट्टी थी। कहीं ऐसा न हो कि श्रीमती जी हमारी बातें सुन लें, इसलिए मैं उनके साथ बाहर चल दिया। पत्नीसे कहा कि आफ़िसमें ज़रूरी काम है और चल दिया।

"क्यों रे, अब क्यों चला आया है ?"

"माने भेजा है।"

"क्यों ?"

कुछ दूर चलनेके बाद उसने कहा—"बाबूजी वह तो कसाई है।"

"यह क्या बात है ?"

"आपने जो उस दिन पाँच रुपए दिये थे, उसने देख लिए और माकी धुनाई करने लगा।

चपरासीको नज़दीक खड़ा देख मैं चुप रहा। न [illegible] वह कैसी अफवाह आफिसमें फैला दे। गुरखा तो चुप [illegible] ही नहीं। फिर तो आफिसमें मेरा रहना मुश्किल हो जाय[illegible] बसका किराया देकर उससे लौट जानेको कहा।

"मालूम होता है तुम्हारे एक नया भाई हुआ है ?"

"नहीं बाबूजी, बहन !"

"कब पैदा हुई ?"

"उसी दिन"

"जानते हो माने क्यों बुलाया है ?"

"नहीं बाबूजी।"

मेरे उनके घर जानेपर उसकी माने रोते हुए कहा, "बाबू[illegible] हम आपकी ही शरण हैं।"

मैं कुछ समझा और कुछ न समझ पाया। फिर उसने अपने आप ही कहा, "इस कसाई गुरखेने भी यहाँसे जाने[illegible] लिए हुक्म दे दिया है। न जाने आदमी इतने निर्दयी और शक्की क्यों होते हैं। इन बच्चोंके लेकर कहाँ टक्कर मारूँ"—कहकर रोने लगी। उसने गोदका बच्चा भी नीचे ज़मीनपर रख दिया। उसे देख चिल्लाकर वह रोने लगी। बच्चेकी [illegible] गुरखेसे मिलती थी।

स्त्रीका सतीत्व जब एक बार चला जाता है तब उस[illegible] सहज शर्म भी जाती रहती है। इसलिए कुछ साहसकर [illegible] पूछा, "तुम्हारा और गुरखेका सम्बन्ध ?"

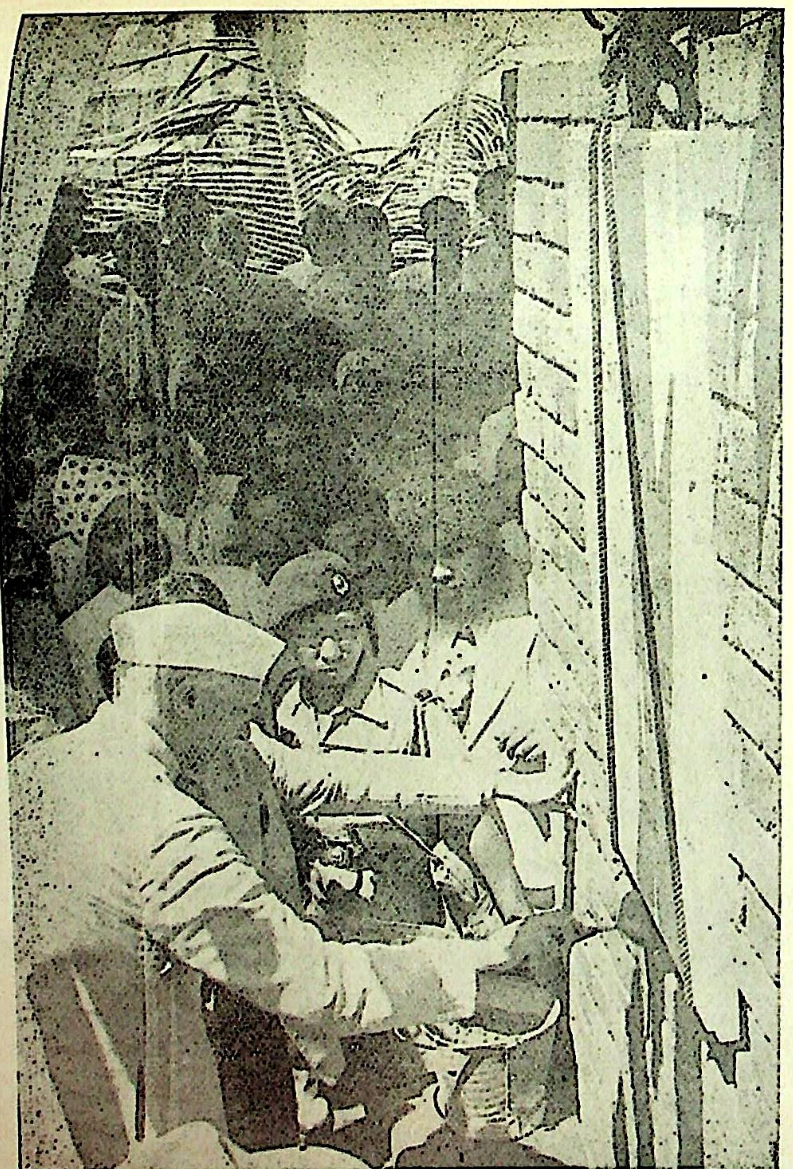
"स्त्रीकी विवशता आदमी क्या जाने ! मुझपर क्या [illegible] है वह कहनी ही पड़ेगी। मैं कभीकी संसारसे कूच कर जाती[illegible] पर ये बच्चे हैं इनको कहाँ, किसके पास छोड़कर जाऊँ"—कहकर फिर वह सिसकने लगी।

"तुम रहनेवाली किस प्रदेशकी हो ?"

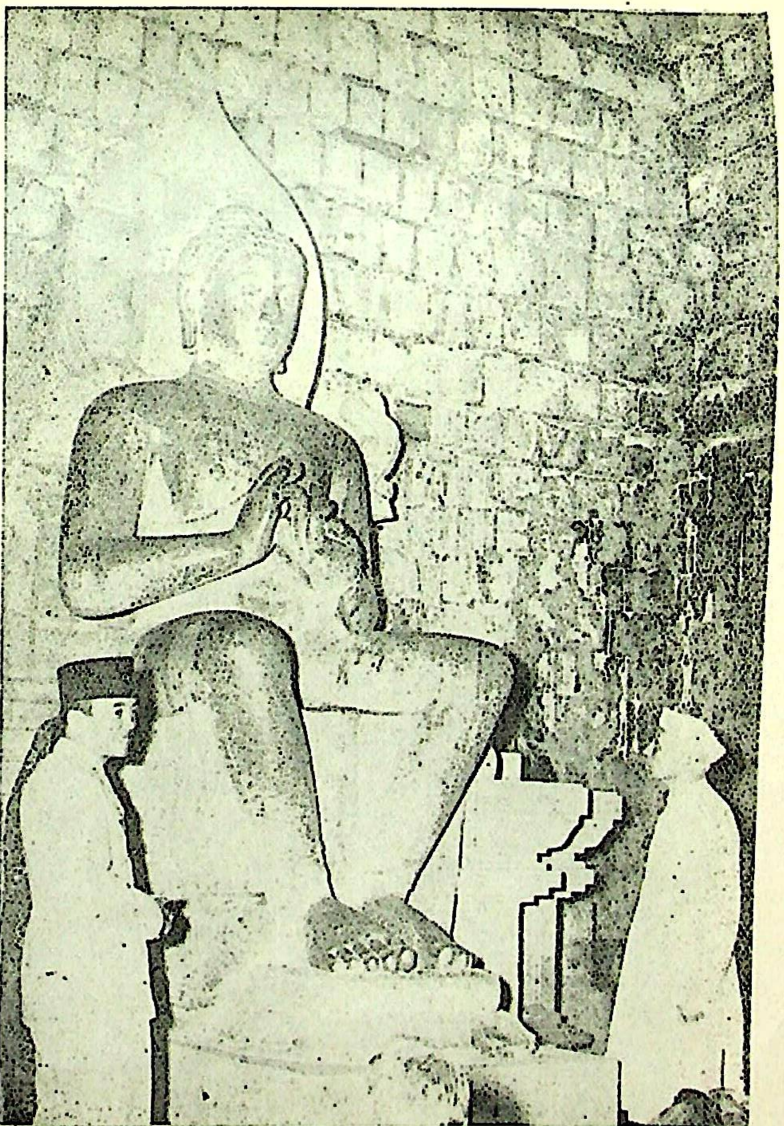
"कच्छ की। मा-बापने बचपनमें ही एक अच्छे घर [illegible] कर दी थी। मेरा ही भाग्य न था।"

"तब इसके पिता" (बड़े लड़केको पास खींचते हुए [illegible] "स्कूलमें पढ़ाया करते थे। ऐसे आदमी मुश्किलसे मि[illegible] हैं—शायद मेरी ही..."

"वे क्या अब भी जीवित हैं ?"



सिंगापुरके घुड़दौड़ - मैदानके निकट पं० नेहरू द्वारा बापू-स्मारक-शिलान्यास आयोजन।



जावा-यात्राके समय बोरबुदुरमें पं० नेहरू प्रेसीडेण्ट सुकर्णोंके साथ बृहत् बौद्ध प्रतिमाके निरीक्षणमें ।

"भगवान करे हों !"

"फिर क्यों छोड़कर चली आई ?"

"उन्होंने छोड़ दिया। हर आदमीको शायद शंक़की बीमारी होती है। विवाहके पहलेका एक मित्र मेरे गाँवसे आया और हमारे घरमें कुछ दिन अतिथि रहा। फिर उसने दो-चार पत्र लिखे। मेरा घरबार सब-कुछ स्वाहा हो गया। उन्होंने अपने घरसे मुझे जानेको कह दिया। कहाँ जाती ? काला मुँह लेकर कहाँ जाती ? इच्छा हुई कि मर जाऊँ, पर बच्चेको छोड़कर कहाँ जाती।

"जब घर ही छूटा तब रहा ही क्या ! कई एककी शरण ली। औरतको शरणकी क़ीमत देनी होती है। बच्चोंके लिए जीती थी और बच्चोंपर बच्चे पैदा होते जाते थे। घर-घर फिरती थी। मुझ जैसी कुल्टाके पास कोई ज़्यादा दिन रहे क्यों। आखिर इस गुरखेके हाथ पड़ गई। अब उसने भी चलता कर दिया। यह लड़की भी—कहकर रोने लगी।

"आपको जबसे आता देखा है। आग बबूला हो गया है। अब कहाँ जाऊँ ?

"आप ही शरण दीजिये। अपने घरमें कोई नौकरानीका काम दिला दीजिये। बच्चे आपका नाम जपते-जपते जीयेंगे।"

बेचारी बच्चेवाली माको क्यों न शरण दी जाय। फिर अपनी पत्नीका कोपभरा आकार मेरे सामने चक्कर काट गया। पत्नी पहले ही कह चुकी है कि घर कोई विधवाश्रम नहीं है। कहाँ रखूँ ? मैंने कहा, "सोचकर बताऊँगा।"

वह और जोरसे रोने लगी। मैं उसे रोता छोड़ चला आया। उनसे अपनेको बचानेके लिए मैं एक सप्ताहकी छुट्टी लेकर शहरसे बाहर चला गया। जब लौटा तब उनका नामो-निशान वहाँ न था।

एक बार खयाल आया कि पीछा छूटा। पर उनको भूल नहीं पाता हूँ। वे अब भी मेरी आँखोंके सामने हैं। न जाने वे बेचारे कहाँ होंगे !

अस्पृश्यता और गांधीजी

प्रभुदयाल विद्यार्थी

मनुष्य-मनुष्यके बीच अस्पृश्यताको गांधीजी घोर पाप मानते थे। एक जाति दूसरी जातिसे श्रेष्ठ है—यह बात भी गांधीजीने कभी नहीं मानी। सब लोगोंको वे एक ईश्वरकी सन्तान मानते थे। इसी बुनियादी सिद्धान्तके आधारपर गांधीजीने अपने सब काम किए। एक दिन इन पंक्तियोंके लेखकको समझाते हुए उन्होंने कहा, "जितने भी मानव-सन्तान हैं वे ईश्वरके बच्चे हैं। ईश्वर किसीको ऊँच-नीच नहीं बनाता और न अपने किसी क़ानूनमें पंक्ति भेद वर्तता है। भगवानके दरबारमें सबका एक समान आदर-सत्कार है। वह तो सच्चा समाजवादका प्रवर्त्तक है। कर्मोंके अनुसार आदमी भला-बुरा बनता है। ईश्वर किसीके पाप-पुण्यका भागी नहीं है। एक गिरा हुआ मनुष्य भी अच्छे कर्मोंके द्वारा बहुत आगे बढ़ सकता है। श्रेष्ठ कर्म करनेवालेकी सब जगह पूजा होती है। सत्यका मार्ग अपनाकर हम मानव समाजका बहुत बड़ा कल्याण कर सकते हैं।"

इतिहास इस बातका साक्षी है कि जो जैसा कर्म करता है वह वैसा फल भोगता है। भाग्यके भरोसे मूर्ख और निकम्मे मनुष्य हाथ-पर-हाथ रखे बैठे रहते हैं। ईश्वर किसीके भाग्य ललाटमें कुछ लिखता-पढ़ता नहीं। कर्म ही प्रधान है।

हिन्दू जातिमें अस्पृश्यता देखकर गांधीजीका हृदय हिल उठा था। उनका हृदय शोकाकुल हो गया था। आहभर वे कहते, "अगर समय रहते हिन्दू जनता अपने पापोंका प्रायश्चित नहीं कर लेती है तो यह मानना चाहिए एक दिन हिन्दू धर्मका विनाश अनिवार्य है। अछूतपन हिन्दू धर्मका सबसे बढ़कर कलंक है। अपने ही एक भाईको अछूत मानकर अपना ही अपमान करना है। जिस धर्मकी पुस्तकमें अछूतपन

माननेकी बात लिखी हो, उसे मैं धर्मकी पुस्तक कभी नहीं मानता।"

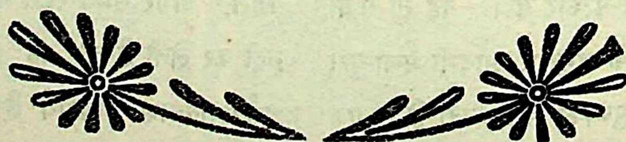
अपनी मद्रास प्रान्तकी अन्तिम यात्राके अवसरपर पलनी के प्रसिद्ध मन्दिरको खोलने गये थे। इस ऐतिहासिक यात्रामें इन पंक्तियोंके लेखकको भी, सम्पूर्ण यात्रामें, साथ रहनेका सौभाग्य मिला था। यात्राके अवसरपर गांधीजीने अपने एक सार्वजनिक भाषणमें बड़े मार्मिक ढंगसे कहा था, "हमको तो यह प्रार्थना करनी चाहिए कि अगर अछूतपन हिन्दू धर्मका अंग है और वह मिट नहीं सकता तो फिर भले ही हिन्दू धर्म ही मिट जाय, अछूतपन जैसा धब्बा किसी क़ौमपर नहीं रहना चाहिए। मुझसे कहा जाता है कि अछूत तो मन्दिरोंमें नहीं जाना चाहते। पर यह बात मान भी ली जाय तो इसका कारण यह है कि हमने उन्हें ऐसे हैवान बना दिये हैं कि अब उन्हें मन्दिरोंसे कोई मतलब नहीं रहा। लेकिन उन्हें मन्दिरों में जानेकी दरकार नहीं है तो भी हमें उन्हें जाने देना चाहिए। मैं वर्षोंसे चीख-चीखकर कह रहा हूँ कि जिस मन्दिरमें अछूत भाई नहीं जा सकते वहाँ हम न जायँ। क्या उस मन्दिरमें मेरी औरत, लड़की, मा जा सकती हैं? हमारा कर्त्तव्य है कि उन्हें समझायँ और यदि वे न मानें तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम माता-पिता तकको भी त्याग दें। हम दूसरोंसे बहस करते हैं इसलिए हमको अपने माता-पिता, स्त्री तथा बच्चों सबको छोड़नेके लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

अपने सेवाग्राम आश्रमके निवासके समय गांधीजी अकसर लोगोंसे इस बातको दुहराया करते थे। और जोरदार शब्दोंमें कहा करते, "यदि शास्त्रोंके द्वारा वर्त्तमान अस्पृश्यताका समर्थन होता हो तो मैं अपनेको हिन्दू कहना बन्द कर देता। आज बिरादरीका जो बीभत्स रूप हमें दिखाई पड़ता है उसका शास्त्रों में समर्थन होता हो तो सम्भवतः मैं अपनेको हिन्दू नहीं ... या हिन्दू नहीं रहूँगा; क्योंकि विभिन्न जातियोंके रोटी... व्यवहारमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा गांधीजीने अपने निजी ... जीवनमें व्यवहार की। जिस मन्दिरमें हरिजन नहीं जा ... थे, वहाँ गांधीजी या उनके साथी कभी नहीं गये। यदि ... कभी भूला-भटका चला गया और गांधीजीको मालूम हो ... तो उसे भारी प्रायश्चितका दण्ड भुगतना पड़ता था। ... दण्डकी भागी माता कस्तूरबाको भी बनना पड़ा था। ... मन्दिरमें चले जानेके कारण महादेव भाईको गहरी ... सुननी पड़ी थी। अपने आश्रमके भीतर अछूतोंके साथ ... किसी तरहका भेदभाव नहीं रखा था। साबरमती आश्रममें ... गांधीजीको बड़ी कठिनाइयाँ उठाकर हरिजनोंका सवाल ... करना पड़ता था। एक बार तो आश्रमको सहायता या ... देनेवाले सेठोंने यह कहकर गांधीजीका बहिष्कार कर दिया ... तुम हरिजनोंका छूआ पानी पीते हो, उनका बनाया भोजन खा... हो, अपने साथ उन्हें आश्रममें रखे हो—ऐसी संस्थाको ... सहायता या दानके रूपमें कुछ नहीं देंगे।"

गांधीजीने हँसकर उनकी बातें सुनीं और दृढ़ होकर ... दिया, "यह सत्य है, हम हरिजनोंको नहीं छोड़ सकते। ... उन्हें अपने आश्रमसे निकाल सकते हैं। वे उपेक्षित ... बहन मेरे कुटुम्बी हैं। मैं उनके साथ भेदभाव नहीं ... सकता। आप भले ही मुझे एक कौड़ी न दें। ईश्वर ... रक्षा करेगा!"

गांधीजीके जीवनमें एक नहीं, ऐसे कितने ही प्रसंग ... और चले गये। लेकिन वे अपनी दृढ़ प्रतिज्ञापर हिमालय ... भाँति अचल खड़े रहे।



हमारा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन—ज़मीन

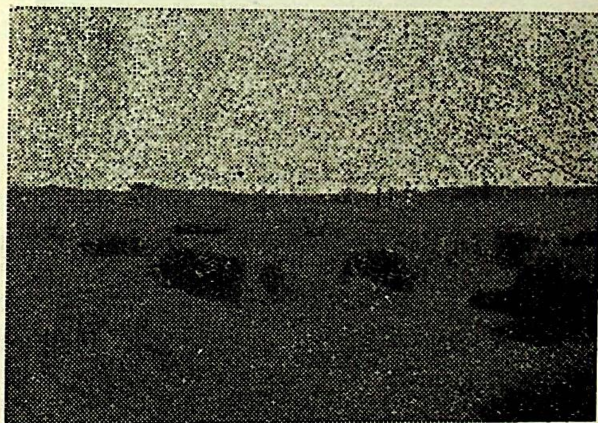
ज़मीनकी कटनका प्रभाव

डाक्टर अज़ीज़ दूल्हा खाँ

[डा० अज़ीज़ दूल्हा खां एम०एस-सी, पी-एच० डी० उत्तर प्रदेशके कृषि विभागमें जमीन-संरक्षक अफसर हैं। जमीन संरक्षण विषयके सम्बन्धमें आपने अमेरिकामें उच्च शिक्षा पाई है और इसी विषयमें आपने पी०एच० डी० की डिग्री ली है। केन्द्रिय सरकारके कृषि-विभागके डा० चौधरी तथा डाक्टर कलमकारके साथ डा० खांने जब जमीन संरक्षणके सिलसिलेमें आगरेकी यात्रा की तबसे हमारी उनकी मैत्री हो गई है, क्योंकि जमीनकी कटनको रोकने और बढ़ते रेगिस्तानसे देशको बचानेके लिए हम अपना टिटहरी प्रयास कर रहे हैं। डा० खांसे हमने प्रार्थना की कि वे इस विषयपर एक लेखमाला लिखें। पहला लेख 'विशाल भारत' अक्टूबर '४६ में छप चुका है। दूसरा इस अंकमें जा रहा है और तीसरा अगले महीनेमें जायगा। हमें आशा है कि 'विशाल भारत'के पाठक तथा अपने देशको समृद्धशाली बनानेवाले व्यक्ति डा० खांके लेखका मनन करेंगे और सक्रिय रूपसे उसपर अमल भी करेंगे। —सम्पादक]

ज़मीनकी क्रमिक कटनसे विश्व इतिहासपर बड़ा गहरा असर पड़ रहा है। इतिहासके प्रारम्भसे ही, जबसे कि उसका लेखा मिलता है, अनेक राष्ट्र जो सभ्यताकी दृष्टिसे बहुत ही ऊँचे स्तरपर थे और जो विपुल समृद्धिका भोग करते थे नेस्त नाबूद हो गए और पूर्ण विनाशको प्राप्त हुए, केवल इसलिए कि वे अपने देशोंकी ज़मीनको उसके स्थानपर रखनेमें असफल रहे। अपने समयमें बेबिलोनियन्स, कार्थिजिनियन्स, फ्यूनिशियन्स, असीरियन्स, ईरानी और यूनानी विश्वके बड़े भागों पर शासन करते थे और वे बड़े शक्तिशाली थे। पर वे आज कहाँ हैं?

इन राष्ट्रोंमें से अनेकोंकी तो हस्ती ही मिट गई और अब उनके अवशेषोंका पता चलाना भी कठिन है। अन्य दूसरे जीवित हैं पर बहुत ही गिरी हुई हालतमें हैं और ग़रीबी, गन्दगी, बीमारी और अज्ञानके शिकार हैं। उन लोगोंसे आबाद बड़े क्षेत्र तो आज बंजर हैं, वहाँपर कुछ पैदावार नहीं होती। वे मरुभूमिके चपेटेमें आ गए हैं अथवा निकटतम मरुभूमिकी स्थितिमें हैं, और प्रतिवर्ष होनेवाले विनाश-कार्य जलप्लावनके क्षेत्र बने हुए हैं। नगर उजड़ गए हैं, उनके खण्डहर ही दृष्टिगोचर होते हैं और रेतके टीलोंसे परिवेष्टित हैं जो धूलके तूफ़ान और ज़मीनकी कटनसे इधर-उधर हटते रहते हैं। इस विनाशका बहुत-कुछ उत्तरदायित्व उस नष्ट होनेवाली आबादीके ऊपर है जो कि शताब्दियोंकी समृद्धि



चित्र नं० १

यह चित्र प्रकट करता है कि काश्त किए हुए खेतमें खतरनाक नाला शुरू हो गया है। खेतका बहुत हिस्सा नष्ट हो चुका है। इस खेतका जीवन दो बरससे अधिक नहीं हो सकता।

और आर्थिक रक्षणके कारण इतनी अनैतिक हो गई थी कि उसने अपनी जमीनमें ज़मीन-रक्षणके उचित उपायोंका प्रयोग नहीं किया। गिरती हुई पैदावारने अधिक रक़बेपर खेती करने और गोचर भूमि बनानेपर मजबूर किया ताकि बढ़ती आबादीकी रक्षा हो सके। इस क्षेत्रपर किसी भी दशामें

खेती नहीं करनी चाहिए थी और न चरागाह बनाने थे। ऐसा करनेसे जमीनकी कटनकी प्रगति और तीव्र हो गई, जमीन और तेजीसे नष्ट होने लगी ; यहाँ तक कि सम्पूर्ण देश वीरान हो गया।

जमीनकी कटन एक शक्तिशाली और विनाशकारी शक्ति है जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे प्रत्येक मानवपर पड़ता है। यह ऐसा ढंग है जो हमेशा किसी देशके विशाल भू-भागों और उसपर निवास करनेवालोंपर असर डालता है।

अपने देशमें जमीनकी कटनके महा दुष्परिणामोंका एक



चित्र नं० २

खेतके करीब आनेवाले बहुत ही खतरनाक कटनकी खारको प्रकट करता है।- आगेकी जमीन नष्ट हो चुकी है। पूर्व पृष्ठमें अभी खेती है पर अगर इसी हिसाबसे कटन जारी रही तो खेत छोड़ना पड़ेगा।

प्रमाण केवल उत्तर प्रदेशकी इस बातसे चल जाता है कि वहाँकी ६ करोड़ भूमिमें से ३० लाख एकड़ तो कटनसे बिल्कुल बंजर हो गई है। और ६० लाख एकड़ ऐसी है जहाँपर खेती करनेसे कोई लाभ नहीं। जमीनकी कटनमें विभिन्न प्रकारसे भयंकर क्षति पहुँचानेकी शक्ति है और इसलिए यह आवश्यक है कि हम कम-से-कम इन दिशाओंको कुछ समझ लें ताकि हमें उन संकटोंका कुछ भान हो जाय जो हमपर आ सकते हैं। वे इस प्रकार हैं—

खेतीपर ज़मीनके कटनका प्रभाव

कटनसे जमीनके हटनेका एक प्रत्यक्ष और तुरन्त ... यह है कि जमीनकी धरातलपर प्रायः अवांछनीय परि... जाता है। काश्तके क्षेत्रपर जब कटनकी नालियाँ ... होती हैं और जमीनका कटना प्रारम्भ हो जाता है (चित्र पहला तथा दूसरा) तो व्यावहारिक दृष्टिसे ... काश्तके अन्दर रखना असम्भव हो जाता है। इस ... प्रारम्भमें किसान खेतोंको बोता रहता है, पर लगातार ... वर्षोंकी फसलकी असफलता उसे उन खेतोंको छोड़नेको ... कर देती है।

पैदावारपर ऊपरी ज़मीनका प्रभाव

जमीनकी सबसे ऊपरकी तहपर हवा, प्रकाश, गर्मी ... नमीका प्रभाव होता है और शताब्दियोंकी इस प्रक्रियासे ... ऐसा विकास हुआ है ताकि उसमें जड़ें मजबूत बन सकें। ... की अनेक पीढ़ियाँ उसपर उगी हैं और उन्होंने अपने ... अपना अवशेष छोड़ा है, जिससे वे उपजाऊ बनी हैं। ... ऊपरकी सतहमें कीटाणुओंका जीवन चलता है जिससे ... और उपजाऊ होती है। जब ऊपरकी तह सक्रिय रूपसे ... हट जाती है तो प्रत्येक मूल्यवान वस्तु, जिसके कारण वह ... उपजाऊ बनी थी, चली जाती है। लगातार खेती करने ... उच्चतम औरगैनिक मैटरके कारण जमीनकी ऊपरी तह ... भुरी और नमी रखनेवाली होती है। जब वह हट जाती ... है तो एक कड़ी और नंगी तह निकल आती है इसमें ... की क्षमता नहींके बराबर होती है और नाम मात्रको ... सोखती है।

इन सब परिवर्त्तनोंका नतीजा होता है कम उपज। ... मामलेमें हम भाग्यशाली हैं कि हमारी जमीनकी उर्वरता ... उतना असर नहीं पड़ता जितना अन्य देशोंमें ; क्योंकि ... जमीन गहरी होती है, उपजाऊ होती है तथा ... जमीन बननेकी क्रिया अपेक्षाकृत तेज़ होती है। हमारी ... क्षति इस बातसे होती है कि हमारे धरातलकी समता ... एकसापन बिलकुल ही नष्ट हो जाते हैं, तेज रक (S... के कारण वहाँकी जमीन पानीको नहीं सोखती और ... जानता है कि बिना नमीके पेड़ नहीं जमते।

कटनसे मरुभूमि-दशाकी उत्पत्ति

मरुभूमिके मानी हैं वह स्थिति जिसमें कि हरियाली क़ायम न रह सके—किसी क्षेत्रमें विशेष जमीनकी नमीकी कमीके कारण।

हरियाली उगानेकी आवश्यकताके अतिरिक्त नमीकी इसलिए और भी आवश्यकता है कि जमीनके परमाणुओंकी रासायनिक क्रिया हो सके। जहाँपर कम मेह बरसता है वहींपर नमीकी कमी नहीं होती, बल्कि उन स्थानोंमें भी होती है जहाँ कि बारिश होते समय पानी तेज़ीसे बह जाता हो। जब पानी जमीनके अन्दर चला जाता है तो लाभ होता है, पर अगर अधिकांश पानी नालों और नदियोंमें बहकर समुद्रको पहुँचे तब पानीका बरसना उतना ही बेकार है जितना पानीका न बरसना।

जमीनमें जो कटन होती है वह ठीक पानीके तेज़ीके बहनेके अनुपातसे होती है। इस कटनसे ढलाव बढ़ जाता है और उससे पानीका बहाव और तेज हो जाता है और समय पाकर इस कुचक्रसे मरुभूमिकी दशा पैदा हो जाती है। सन् १६३६ में उत्तर प्रदेशमें ऊसरको ठीक करनेकी कमेटी बनी थी। एक स्थलपर उसने लिखा है, "जहाँ पानीका बहाव बहुत ज़्यादा है उससे जमीनके अन्दर जो पानीकी राशि होती है वह भी सूख जाती है, और वहाँ पानी इतना गहरा मिलता है कि व्यावहारिक दृष्टिसे वहाँ खेती नहीं हो सकती। कमेटीको विश्वास है कि इस अन्तिम कारणसे ही पश्चिमी जिलोंमें, और विशेषकर आगरेमें, मरुभूमिकी दशाने भयानक परिस्थिति पैदा कर दिया है जिससे रेगिस्तान धीरे-धीरे बढ़ रहा है।"

२२ अगस्त १६४६ की मेरठ कमिश्नरीकी परामर्शदायी कमेटीने अपने विकासकी मीटिंगमें लिखा था कि जमीनकी कटनके कारण मेरठ कमिश्नरीके कुछ जिलोंमें मरुभूमिकी स्थिति बढ़ रही है। इस सूबेके गत ५० बरसके अध्ययनसे यह बात प्रकट होती है कि हाल ही में जमीनकी प्रेसिपिटेशनकी राशिमें कोई विशेष बुरा परिवर्त्तन नहीं हुआ, पर एक बड़ा ही खतरनाक परिवर्तन हुआ है वह यह कि वृष्टि उतनी ही रहने पर भी वृष्टिके पानीका बहाव बहुत तेज हो गया है। नतीजा यह हुआ है कि जमीनकी नमी कम हो गई है और मरुभूमिकी दशा दृष्टिगोचर हो रही है।

बाढ़, नदियोंकी दिशा-परिवर्त्तन और किनारोंका कटना

विश्वभरमें कभी-कभी बाढ़ोंका आना सधारण-सी बात है। बाढ़का पानी नदियों और नालोंके किनारोंसे ऊपर चढ़ जाता है इसका नतीजा यह होता है कि उनकी तहमें पानी अधिक हो जाता है और किनारोंका पानी फैलकर छोटी-बड़ी बाढ़ें आती है। पुराने ज़मानेमें, जब आदमी प्राकृतिक ढंगोंमें



चित्र नं० ३

छोटी नदीका एक भाग दिखाई देता है उसके दाईं ओरको बालुकामय किनारे हैं।

हस्तक्षेप नहीं करता था, पहाड़ोंके किनारे और नदियोंके किनारे गहरी हरियाली घास और पेड़ोंसे आच्छादित थे और इस कारण बहुत कम पानी नदियोंके तह और नालोंमें पहुँच पाता था और जो भी पानी जड़ोंके सोखनेसे बचकर आता था उसके बहावकी गति धीमी होती थी और अपने साथ वह बहुत ही बारीक कण लाता था जिनके, बाढ़के इलाकोंमें, जम जानेसे जमीन उर्वरा बन जाती थी, पर अब स्थिति बदल गई है। पहाड़ोंके किनारोंके जंगल कट जानेसे और नदियोंके किनारेके जंगल कट जानेसे पानी बड़ी तेज़ीसे नदियोंकी ओर बढ़ता है और अपने साथ मोटी मिट्टीको बालूकी शकलमें लाता है। जब यह बाँझ सामग्री जरखेज बाढ़के मैदानोंपर जमा हो जाती है तब वह क्षेत्र बंजर बन जाता है। सूबेकी किसी बड़ी

नदीके किनारोंपर बेकार रेतके ढेर फैले रहते हैं (देखिये चित्र नं० ३)

तेज कटनके तीन असर होते हैं

(१) बहाव अपेक्षाकृत तेज होता है और बाढ़ें प्रायः आती हैं।

(२) बाढ़ोंकी ऊँचाई पहलेकी अपेक्षा बढ़ रही है जो अत्यन्त विनाशकारी हो रही है।

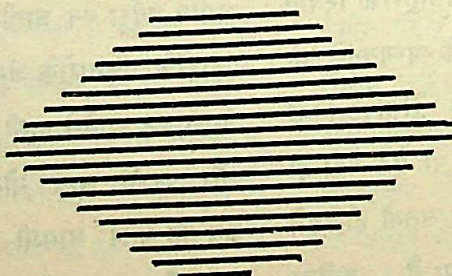
(३) बाढ़के क्षेत्रोंकी उर्वरा जमीन मोटी और निकम्मी बालूके जमनेसे नष्ट हो जाती है। बाढ़का पानी जिसमें कटी जमीनके कण रहते हैं, नदीकी तहमें बैठने लगता है ज्यों ही कि बहावकी गति मैदानमें पहुँचकर कम होती है। इस प्रकार मिट्टीके बैठनेसे नदीकी तह उठने लगती है। फलस्वरूप नदीके बहावकी दिशा बदलती है और किनारोंके आसपासके इलाकेका घोर विनाश हो जाता है।

कटनसे बाँध और जलराशिका विनाश

जब कटन तेज होती है बाढ़का पानी मिट्टीसे पूरित होती है, जब पानी जलराशियों और बाँधोंके पास आता है तब उसकी गति या तो धीमी पड़ जाती है या रुक जाती है, और पानीमें जो मिट्टी होती है वह बैठने लगती है। धीरे-धीरे जलराशियोंके स्थान और बाँध पट जाते हैं और महान् राष्ट्रिय क्षति होती है। उत्तर प्रदेशमें नहरोंकी आबपाशी अर्धशताब्दीसे कुछ पहले ही हो रही है। पर नहरोंका पटना ५० बरस पूर्वकी अपेक्षा आज ज़्यादा है। यह निश्चित सबूत इस बातका है कि देशमें कटन बढ़ रही है। यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है कि मिट्टी जो जमती है वह पहलेकी अपेक्षा अधिक मोटी है।

बेकाबूकी कटनके आर्थिक और सामाजिक परिणाम इतने भयंकर हैं कि उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। देशकी लाखों एकड़ भूमि बिलकुल बरबाद हो गई है और किसी कामकी नहीं रही, कई लाख एकड़ भूमिसे मुनाफ़ेकी खेती नहीं हो सकती। इसपर खेती तब ही तक होती है जब तक किसानको कुछ मिलता है जिसमें से एक भाग खतम होता जा रहा है। यह क्रिया यहाँ तक ही समाप्त नहीं होती। अब तक बहुत अच्छी जमीन प्रतिवर्ष नष्ट हो रही है और उसकी गणना ऐसे क्षेत्रमें की जाती है जहाँ खेती लाभदायक नहीं है। नतीजा यह है कि निकम्मी और परित्यक्त भूमि बढ़ रही है और हमारी बढ़िया जमीनके खजाने क्रमशः कम हो रहे हैं। पिछले दिनोंमें इस बातका शोर है कि हमारे देशमें प्रति एकड़ पैदावार कम होती जाती है। यह बात ठीक हो सकती है और इसका कारण ढूँढ़ना भी कठिन नहीं है। हमारी ऐसी जमीन प्रतिदिन बढ़ रही है जिसपर खेती करना बेकार है। राष्ट्रके लिए जमीनका कटनका सीधा नतीजा यह है कि गाँव ऊजड़ हो रहे हैं। आबादियोंमें खण्डहर बढ़ रहे हैं, प्रति एकड़ पैदावार कम हो रही है। बिना जमीनके खेतीके मजदूर बढ़ रहे हैं और बीमारी तथा भूख मुँहबाए खड़ी है।

पर हम सब अपनी जमीनके संरक्षणमें सहायक हो सकते हैं।



मुनाफ़ा

श्रीराम शर्मा

१. एक था चोर। चोरीसे ही अपनी गुज़र करता था।

२. बहुत दिनों तक उसने घरके लिए कुछ लाकर नहीं दिया।

३. खाने-पीनेकी घरमें तकलीफ़ होने लगी और उसकी घरवालीने कहा, "अब तो भूखा नहीं रहा जाता। घरमें कुछ नहीं। काम-धन्धा करो औ कुछ कमा कर लाओ।"

४. चोरने उत्तर दिया, "घबरानेकी कोई बात नहीं है। दो-तीन दिनोंमें मैं इतनी कमाई कर लाऊँगा जो दो-चार सालके लिए काफ़ी होगी। घर बैठी मौज करना।"

५. अगले ही दिन एक अमीरका भेष बना चोर घरसे निकला और घोड़ोंके एक बढ़िया बाज़ारमें पहुँचा।

६. बाज़ारमें उसकी नज़र एक बहुत बढ़िया घोड़ीपर पड़ी। बस उसने मोल-भाव शुरू किया।

७. क़ीमतका फैसला सात हज़ार रुपएपर हुआ।

८. पर चोरने कहा, "क़ीमत तो तै हो गई और मैं क़ीमत फ़ौरन दूँगा; पर मैं इसकी चाल भी तो देख लूँ।"

९. घोड़ीके मालिकने कहा, "ठीक है। ज़रूर देखिये।"

१०. चोरने सौ गज़ तक क़दमकी चालपर घोड़ीको ले गया और लौटा लाया। फिर १५० गज़ दुल्कीपर ले गया और लौटा लाया। इसी प्रकार मीठी पोइया पर २०० गज़ ले गया और लौटा लाया। फिर कुछ आगे ले गया पोइयापर और लौटा लाया।

११. तब उसने घोड़ीको सरपट दौड़ाया और अपने घरकी ओर लेकर चम्पत हुआ।

१२. घर आकर उसने अपनी पत्नीसे कहा, "ले। अब तो खुश है। परसों इसे बेच आऊँगा।"

१३. चोर घोड़ीको एक दूरके बाज़ार

में ले गया और एक नवाब साहबने घोड़ी को पसन्द किया, आठ हज़ारपर कीमतका फैसला हुआ। नवाब साहबके हाथमें बुलबुल थी। बुलबुलको चोरके हाथमें देकर कहा, "बराहे मिहरबानी आप ज़रा बुलबुलको थामनेकी तकलीफ़ कीजिये। मैं घोड़ीपर सवारी लेकर तो देखूँ कि उसमें कोई ऐब तो नहीं है।"

चोरने कहा, "शौक़से।"

बस नवाब साहबने घोड़ीकी चाल देखी और सरपट दौड़ाकर घोड़ी ले भागे। नवाबके रूपमें वह एक दूसरा चोर था।

१४. चोर मुँह लटकाये और बुलबुल थामे अपने घर लौटा।

१५. उसकी पत्नीने पूछा, "घोड़ी बेच आये?"

चोर—"हाँ।"

"कितनेमें बेची"—उसकी पत्नीने चावसे पूछा। "जितनेमें मोल ली थी उतने में ही बेच आया हूँ। हाँ, मुनाफ़ेमें यह बुलबुल मिली है।"

प्रवृत्तियोंका मनोवैज्ञानिक नियन्त्रण

प्रबोध

सिगमण्ड फ्रायड महोदयने मूल प्रवृत्तियोंके दमनको अत्यन्त आपत्तिजनक बतलाया है। उनमें भी काम-प्रवृत्तिके दमनको आप व्यक्ति और समाजके लिए विशेष रूपसे भयंकर बतलाते हैं। आपका कथन है कि काम-प्रवृत्तिके दमनसे ही सारे मानसिक रोग पैदा होते हैं। साधारणतया मनुष्य एक ही व्यक्तिसे विवाह करता तथा उसीसे अपनी कामुकताकी पूर्त्ति किया करता है, किन्तु उसका मन वस्तुतः अन्यान्य व्यक्तियों की ओर भी दौड़ता रहता है। इसके लिए गुप्त या प्रकट रूपसे वह चेष्टाशील भी रहता है। अपने प्रयत्नमें बाधा पानेसे उसके उग्र संवेगका दमन हो जाता है और वह अचेतन मनमें जाकर अनेक उत्पातोंका कारण बन जाता है। यही बात विकर्षण, स्नेह, उत्सुकता आदि सभी मूल प्रवृत्तियोंके साथ चरितार्थ है।

फ्रायडका कथन है कि मूल-प्रवृत्तियोंकी तृप्तिके बदले उनके दमनसे अनेक मानसिक ग्रन्थियाँ (Complexes) उत्पन्न हो जाती हैं और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे अनेक मानसिक रो[illegible] उद्भूत हो जाते हैं। इसी सिद्धान्तके बलपर इन दि[illegible] बर्ट्रेण्ड रसेल, एस० पाल और कई तथाकथित प्रगतिशी[illegible] समाज-सुधारक विवाह-प्रथाको उठा देना चाहते हैं। वे क[illegible] हैं कि कामुकताकी तृप्तिके लिए किसीको किसी प्रकारका ब[illegible] नहीं रहना चाहिए। प्रत्येक पुरुष तथा स्त्रीको, इच्छानु[illegible] किसीके भी साथ, कामुकताकी तृप्तिके लिए स्वच्छन्दता र[illegible] चाहिए।

ऐसी स्थितिमें प्रधानतया तीन प्रश्न उठते हैं: (१) क्या दमन सर्वथा बुरी वस्तु है? (२) क्या मूल प्रवृ[illegible] की संवेग-जनित आपत्तियोंसे बचनेके लिए दमन ही एक[illegible] उपाय है या और कुछ? यदि और उपाय हैं तो वे श्रेयस्[illegible] हैं या नहीं? (३) क्या मूल प्रवृत्तियोंकी तृप्तिसे समस्या[illegible] हल हो जाता है?

प्रथम प्रश्नके उत्तरमें अनेक मनोवैज्ञानिकोंका मत है कि दमन हर हालतमें खराब नहीं होता। यदि व्यक्ति अपने विवेक द्वारा दमन करता है तो कोई बुराई नहीं उत्पन्न हो सकती। रोग, अपराध या पागलपन तो वाह्य-सत्ता—व्यक्ति या समाज—द्वारा दमन होनेपर ही उत्पन्न होंगे। विवेक-शक्तिके जाग्रत होनेपर लोग स्वयं मूल प्रवृत्तिकी घातकताको समझने लगेंगे और आत्म-नियन्त्रणकी चेष्टा करेंगे। मूल प्रवृत्तियोंके कुप्रभावसे समाजकी रक्षा करनेके लिए यह आवश्यक है कि विद्याका प्रचार हो, जिससे लोगोंमें आनुपातिक विवेक-शक्ति बढ़ जाय। वैसी परिस्थितिमें अल्प मात्र दिशा-निर्देशसे कार्य सरलता-पूर्वक चल सकता है।

दूसरे प्रश्नके उत्तरमें विद्वानोंका कहना है कि मूल प्रवृत्ति-जनित बुराइयोंसे बचनेका एकमात्र साधन दमन ही नहीं है। दमनके बदले मार्गान्तरीकरण (रिडाइरेक्शन), शोध (सबलिमेशन) तथा विलयन (इनहिबीशन) से काम लेना अधिक श्रेयस्कर है। जो व्यक्ति वाह्य-शक्तिके द्वारा दमनके कारण विशेष परिस्थितियोंमें बहुत बड़ा डाकू, चोर अथवा अन्य प्रकारका सामाजिक अपराधी हो जाता है, वही कुछ भिन्न परिस्थितियोंमें, मूल प्रवृत्तियोंके मार्गान्तरीकरण आदिके द्वारा बहुत बड़ा नेता, सन्त अथवा समाज-सुधारक बन सकता था। ऐसे व्यक्तियोंको भ्रष्ट करनेमें उनके अभिभावक तथा समाजका बहुत बड़ा हाथ है। प्रायः जीवन-भरके स्वभाव और व्यक्तित्वका निर्माण दश वर्षकी उम्रके पहले ही हो जाता है। अधिक अवस्थाके व्यक्तियोंका सुधार कठिन होता है तथा दीर्घ कालमें ही सम्भव हो सकता है। फिर भी बेंत लगाने या जेलमें डाल देनेसे अपराधियोंकी संख्या कम नहीं हो सकती; व्यभिचार रुक या घट नहीं सकते। ऐसे व्यक्ति तो मानसिक रोगके शिकार होते हैं। रोगीके लिए चिकित्सा होनी चाहिए, न कि दण्ड-विधान। जब तक समाजके विवेकका स्तर ऊँचा नहीं उठ जाता तब तक हमें मार्गान्तरीकरण, विलयन तथा शोधके साधनोंको अपनाना आवश्यक-सा प्रतीत होता है।

मूल प्रवृत्तिके प्रकाशनमें जो मानसिक शक्ति प्रवाहित होती है उसका किसी दिशामें उपयोग किये बिना काम नहीं चल सकता। यदि हम दमन करना नहीं चाहते तो उस प्रवाहको किसी ईप्सित दिशामें परिवर्त्तित कर देना चाहिए। मूल प्रवृत्तियाँ स्वयं अपनेमें अच्छी या बुरी नहीं होतीं। उनका उपयोग अच्छा या बुरा होता है। यदि हम उनकी दिशा बदलकर उनका सदुपयोग करें तो वे हमारे लिए अत्यन्त हितकर सिद्ध होंगी। इसीको मार्गान्तरीकरणकी प्रक्रिया कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति डरपोक है तो इस प्रक्रिया द्वारा उसे केवल बुरी आदतों और बुरी संगतियोंसे डरनेवालेके रूपमें बदल दिया जा सकता है। इसी प्रकार केवल व्यक्ति या वस्तु-विशेषसे प्रेम करनेवाला व्यक्ति देश-प्रेम अथवा विश्व-प्रेम करनेवाला हो सकता है। नागरिकोंकी द्वन्द्व-प्रवृत्तिका उपयोग मार्गान्तरीकरणके द्वारा राष्ट्र-रक्षा आदिके लिए किया जा सकता है।

मूल प्रवृत्तियोंके संकटसे बचनेके लिए मार्गान्तरीकरणके पश्चात् विलयनकी ही उपादेयता प्रसिद्ध है। यह दो प्रकारसे हो सकता है :—विरोधी द्वारा अथवा विरोध द्वारा। विरोध-द्वारा प्रवृत्तिको उत्तेजित होनेका अवसर ही नहीं देते हैं। विलियम जेम्सके अनुसार किसी प्रवृत्तिको अधिक देर तक प्रकाशित होनेका अवसर नहीं दिया जाय तो वह स्वयं ही तिरोभूत हो जाती है। जिन परिस्थितियोंसे उस मूल प्रवृत्तिके प्रकाशनमें उत्तेजना मिलती हो, उन्हें हटा देना या उनसे अपनेको हटा लेना उस प्रवृत्तिके विलयनके लिए पर्याप्त होगा। किसी प्रवृत्तिके अवांछित रूपसे प्रकाशित होनेपर यदि हम उसकी विरोधी प्रवृत्तिको उभार दें तो दोनोंका बल बहुत घट जायगा और पहली प्रवृत्ति कदाचित् तिरोभूत भी हो जायगी। उदाहरणके लिए प्रेमके समय घृणा अथवा क्रोधको उभार देनेसे प्रेमका संवेग घट जायगा अथवा विलीन हो जायगा। विलयनकी प्रणाली यदि सावधानीसे उपयोग में लायी जाय तो मानसिक ग्रन्थियोंका भय नहीं रह सकता है।

शोधकी प्रणाली मार्गान्तरीकरण और विलयनसे निकृष्ट, पर दमनसे उत्कृष्ट है। जो वस्तु बुरी है वही रूपान्तरके पश्चात्

सुन्दर और उपयोगी हो जाती है। सभ्यताका विकास हमारी मूल प्रवृत्तियोंके शोधका फल है। शोध वास्तवमें एक प्रकारका मार्गान्तरीकरण ही है।

तीसरे प्रश्नके उत्तरमें वैज्ञानिकोंका मत है कि मूल प्रवृत्तियाँ अपने संवेग-द्वारा क्षणिक तृप्तिके पश्चात् और भी उत्तेजित हो जाती हैं; तृप्तिसे उनका प्रशमन नहीं हो पाता। एक बार या दश बारमें कामुकताकी चिर तृप्ति हो जाय तब तो और बात है; किन्तु ऐसा होता नहीं। सैकड़ों बार भोग द्वारा तृप्ति कर लेनेपर भी पुनः उसी तीव्रताके साथ उस प्र[illegible] का उदय हो जाता है। इससे सिद्ध है कि उसके संकटसे बचने[illegible] लिए भोग-जनित तृप्तिका प्रश्रय लेना व्यर्थ है। उलटे इस[illegible] सामाजिक अव्यवस्था अधिक फैलने लगेगी और मानव-सम[illegible] प्रस्तर-युगसे पहलेकी दशामें प्रत्यावर्त्तित हो जायगा। अ[illegible] शोध, विलयन और मार्गान्तरीकरणकी प्रणालियोंकी सहायता[illegible] मूल प्रवृत्तियोंका नियन्त्रण ही व्यक्ति और समाज—दोनों[illegible] लिए श्रेयस्कर हो सकता है।

मुंशी बरकतराय

उमाशंकर शुक्ल

"जैसी बहै बयार पीठ पुनि तैसी कीजै" के अनुसार मुंशी बरकतराय अपना रंग बदलते आ रहे हैं। अंग्रेजोंके जमानेमें वे सरकारी अधिकारियोंकी खुशामद करते थे और अब, जब कांग्रेसियोंका जमाना आया है तब, कांग्रेसियोंकी खुशामद करते हैं। न कोई काम करते हैं और न कोई रोजगार, फिर भी मधुमक्खीसे भी अधिक व्यस्त दिखाई देते हैं।

दुबला-पतला शरीर, बड़ी बड़ी मूँछें, लाल-लाल नशीली आँखें, नुकीली नाक और डरावनी सूरत। दूध-सी स्वच्छ खादीकी पोशाक और नुकीली खादीकी टोपी। मजाल क्या कि कुरतेपर धूलका एक भी कण दिखाई दे। कोई देखे तो समझे कि हाँ भाई, है कोई पुराना कांग्रेसी या कांग्रेसका कोई अनुभवी कार्यकर्त्ता। दिनभर हाथमें जलती हुई सिगरेट और मुँहमें पानकी गिलौरियाँ। बातें वकीलकी जैसी और कहते भी तो हैं कि मुझे कचहरीके कामका पचीस सालका अनुभव है।

आइए, जरा मुंशीजीके कामोंपर भी तो नजर दौड़ा लें। किसी मुकदमेंमें किसीको गवाह न मिलता हो तो मुंशीजी[illegible] कहिए। वे स्वयं तो गवाही न देंगे, किन्तु गवाह ढूँढ़कर [illegible] देंगे और अपना मिहनताना ले लेंगे। किसी मुकदमेंके लि[illegible] आपको अच्छा वकील चाहिए, बस मुंशीजीसे कहिए भर [illegible] वकील हाजिर। इधर आपसे भी रुपए लेंगे और उ[illegible] वकील साहबसे भी। शादीमें आपको शंकरका परमिट न[illegible] मिलता, मुंशीजी आपको परमिट दिखवा देंगे। जो [illegible] आप झंझटका समझते हैं, मुंशीजीके लिए वह काम [illegible] होता है।

किसीको मुंशीजीकी सेवाओंकी दरकार हो या न हो, [illegible] मुंशीजी जरूर अपनी सेवाएँ देने पहुँच जायँगे क्योंकि [illegible] जीवन ही सेवाके लिए बना है। शहरमें ऐसा कोई काम [illegible] कि जिसमें मुंशीजी अपनी टाँग न अड़ायें।

युद्धके समय जब 'वार फण्ड' इकट्ठा करनेकी बात [illegible] तो मुंशी बरकतरायकी ओर सरकारी अधिकारियोंकी [illegible] पहुँच जातीं और फिर उनकी मददसे शहरमें हजारों [illegible] चन्दा इकट्ठा होता। सरकारसे भी कुछ कमीशन मिलता [illegible]

जनतासे भी। आप पूछेंगे कि भला जनतासे क्यों? बात यह है कि जिस किसी भी व्यापारीसे मुंशीजी कहते कि आपको तो इतना ही रुपया चन्दा देना होगा, तो उससे फिर उतना ही लिया जाता। और अगर मुंशीजीको पान-सुपारीके लिए पहलेसे कुछ मिल जाता तो फिर पाँच सौ की जगह सौ रुपयेमें ही काम निकाल लेते। व्यापारी भी समझता कि पाँच सौकी जगह अगर सौ रुपया ही 'वार फण्ड' में देना पड़ रहा है तो पान-सुपारीमें यदि सौ-पचास चले गये तो क्या बात है। पाठक अब समझ गये होंगे कि मुंशी बरकतराय क्यों सरकारी अधिकारियोंकी सहायता 'वार फण्ड' वसूल करनेमें करते थे।

सरकारी अधिकारी भी मुंशीजीकी बात नहीं टालते। छोटे-मोटे काम तो वे चुटकियोंमें करा लेते हैं। इसका असर जनतापर हो गया है। मुंशीजी शामको जब बाजारमें निकलते हैं तब 'सलाम' का जवाब देते-देते नाकमें दम आ जाता है। पानकी दूकानमें पहुँचते तो पान खाते और ऊपरसे अपने डिब्बेमें चार-पांच पान रखवा लेते; कैंचीकी डिब्बी तो लेते ही। न पानवाला पैसे माँगता और न मुंशीजी देते। इस डरसे कि कहीं मुंशीजी कोई हुनर न लड़ा दें। चोरसे कहें चोरी करो और शाहसे कहें कि जागते रहो।

शहरमें तरकारी-भाजीकी सैकड़ों दूकानें हैं। मुंशीजी किसीके भी यहाँ पहुँच जाते तो उनका झोला तरह-तरहकी तरकारियोंसे भर जाता। तरकारी बेचनेवाले समझते कि मुंशीजीको खुश करनेमें ही अपना कल्याण है।

जिस दूकानपर पहुँचते, सोडा लेमनसे स्वागत होता। गर्मीके दिनोंमें आठ-आठ आनेवाले लस्सीके गिलास मुंशीजी दिन भरमें पाँच-छः चढ़ा जाते।

जबसे कांग्रेसी राज्य आया है, मुंशीजीकी पाँचों घीमें हैं। खादीधारी होनेके कारण सरकारी अफसर भय खाते हैं। सरकारी अफसर समझते हैं कि क्या हर्ज है यदि मुंशीजीको खुश रखा जाय। मुंशीजीके कहनेपर वे परमिट दे देते हैं, नौकर दे देते हैं, राशनकी दूकान दे देते हैं। कौन सरकारी अफसरके घरसे जाता है। मुंशीजीको जनताके सच्चे सेवक होनेका अभिमान है, पर पता नहीं कि वे जनताको अँधेरेमें कितना चूसते हैं। खादीकी पोशाकके नीचे न जाने कितने अपवित्र कार्य किए जाते हैं। परमिट पानेमें मुंशीजीकी भी पूजा होती ही है। आँखके अन्धे और गाँठके पूरे बने रहें, मुंशीजीकी जिन्दगी आरामसे गुजरती रहेगी।

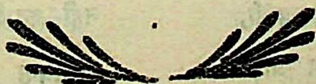
मुंशीजीकी एक खूबी यह है कि वे सबसे भले बने रहते हैं। न कभी किसीसे लड़ेंगे और न कभी किसीको कुछ कहेंगे। बस, मीठी-मीठी बातों द्वारा अपना काम लेंगे।

उनपर भगवानकी बड़ी कृपा है। उनके लिए कुछ न कुछ काम आ ही जाता है। सिंध तथा पंजाबसे शरणार्थी आये तो झटसे उनकी मददके लिए पहुँचे। उन लोगोंको सरकारी कर्जा दिलानेमें मुंशीजीका बड़ा हाथ रहा। उन्हें किरायेका मकान दिलवानेमें मुंशीजी बराबर चिन्तित रहे और उन्हें दूकान दिलवानेमें मुंशीजीने आकाश-पातालके कुलाबे एक किए।

सब जानते हैं कि मुंशीजी कैसे हैं? समाजमें ऐसे लोग हर जगह हैं, जो कुछ न काम करते हैं और न धन्धा—बस इसी तरहकी बातोंसे अपना पेट भरते हैं। अपनेको कांग्रेसी कहते हैं और स्वार्थ-साधनकी चिन्तामें व्यस्त रहते हैं। यदि ऐसे लोगोंपर अंकुश न रखा गया तो देश कमजोर हो जायगा। आज कांग्रेसमें अपनेको भला कहलवानेके लिए गुण्डे भी शामिल हो गये हैं। यदि असली-नकलीकी पहचान न होगी तो समाजपर उसका बुरा असर होगा।

आज कुछ लोग कांग्रेसको अपने कृत्यों द्वारा कमजोर बना रहे हैं। ऐसे लोगोंके बारेमें पं० नेहरूने स्पष्ट कहा है कि देशके हितमें कांग्रेस जैसी संस्थाको किसी भी प्रकार कमजोर नहीं होने देना चाहिए।

मुंशी बरकतराय सदृश व्यक्ति पता नहीं समाजमें कब तक पलते रहेंगे। उन्हें पालनेवाले कुछ पूँजीपति रहते हैं जो अपने स्वार्थके लिए उन्हें सिरपर चढ़ाये रखते हैं।



सौमित्रकी साधना

शिवसिंह 'सरोज'

कहता हूँ कलियोंसे गूँथी बलिकी एक व्यथा है
दण्डक वनमें प्रेम-लतासे लिपटी एक कथा है
वय किशोर उरमें अथोर मदका मधुमास भरा था।
तपो-पूत अंकुरपर हुलसा बसा विलास हरा था।
धीरे-धीरे खोल रही थी कंज-कलश अरुणाई
तनिक-तनिक तिरती थी, चितवनपर चुपचुप तरुणाई।
अंग-अंगमें उड़ती थी यद्यपि उन्मद अँगड़ाई
पूर्ण रूपसे वयः सन्धिकी ग्रन्थि न थी खुल पाई
माताकी ममतामें रमता समताका उद्योगी
और पिताके अतुल दुलारोंका अक्षुण्ण उपभोगी
पंखुरियोंकी मुस्कानोंकी जो सुगन्ध था पीता
अनायास ही प्राप्त हुई थी पत्नी नव परिणीता
दूध और घीकी सरितामें स्नात गात गोरा था
जिसने अपना हाथ विभवमें अभी-अभी बोरा था
किन्तु काल गति कविने देखा निर्जन तटके तीरे
उतर रही थी तरणी उसकी जलमें धीरे-धीरे
उसकी नाव बढ़ रही ज्यों-ज्यों काट-काटकर जल थी
त्यों-त्यों निरख रही नगरी तटपर हो अधिक विकल थी
एक छोरपर माताका मुख पत्नीका सेन्दुर था
और दूसरे तटपर उन्मुख उसका उत्सुक उर था
सुख समृद्धिको तज रजकणसे समुद लिपट जानेको
सब कुछ छोड़ जा रहा जाने वह क्या कुछ पानेको ?
विभव छोड़कर क्यों हँस करके उसने विपदा लें ली ?
बूझ न पाया कोई अबतक भी यह एक पहेली।
उस नौकापर और साथ थे उस नरके दो प्राणी
तपसी बना एक राजा था, थी तपस्विनी रानी
पर जिसकी कह रहा यहाँ पर मैं हूँ करुण-कहानी,
उसी नावपर वह बैठा था एक अकेला प्राणी
राजा-रानी एक लक्ष्यमें विंधे हुए दो दल थे
निर्मोही बनकर निकले थे फिर भी बहुत विकल थे
राज छोड़ सब त्याग सुरुचि सुख निकले थे दो प्राणी,
पर राजाके साथ, बहुत था यह ही थी तो रानी।
किन्तु युवक वह यती प्रीतिकी प्रतिमा-सा निश्चल था,
संग अंगमें व्यंग सरीखा लिपटा एक कमल था।
उसका अपना लक्ष्य न कोई था बनको जानेमें,
सुख-सम्पदा छोड़ स्ववशीके तपसी बन जानेमें।
जंगलमें कंटक कुश शय्यापर जब राजा-रानी,
साथ शयन करते थे मिलजुल जैसे पाहन-पानी,
तब वह युवक अडिग एकाकी अपनी छाती ताने,
गहन तिमिरमें तेज तपस्याका अपना अजमाने,
धनुष - बाण लेकर बीरासनमें दृढ़व्रती अकेला,
नियमित स्मिति-मुद्रामें निद्रासे करता खेला।
उस सुनसान भयानक रजनीमें जागृत जो जन था
रामायण कहती है "दशरथ-पुत्र वही लक्ष्मण था"।
राजा-रानी निज आँखोंमें सुधिकी सुरभि समेटे
राम साथ ही जब रहते थे कुश-शय्यापर लेटे।
क्या तब भी वह तपी अकेला जो जगता रहता था,
जिसके उरमें तिमिर असुरका सिर लगता रहता था,
कभी याद करता था अपनी अर्धांगिनीकी चाहें
काली रजनीमें आलोकित गोरी-गोरी बाहें।
प्रश्न नहीं उठता था उरमें मैं भी तो हूँ प्राणी !
जला रहा हूँ क्यों जंगलमें अपनी हरी जवानी !
नहीं सोचता था सच मेरा भी रुचिका सपना हो
मेरा भी जीवन क्षण-भरके लिए कभी अपना हो।
नहीं, कदापि नहीं वह मानव, सचमें पावक-कण था
रामायण कहती है जिसको धीरेसे 'लक्ष्मण था'।

एक बार थे राजा बैठे तरु-छायाके नीचे,
और गोदमें पड़ी प्रिया थी उनकी आँखें मीचे।
पास हिरण-हिरणीके मुखमें मुखको मिला रहा था।
अपने आलिंगनका आसव उसको पिला रहा था।
उसी समय शीतल समीरने ली सुरभित अँगड़ाई
एक सुन्दरीके नूपुर-कण सहसा पड़े सुनाई।
जिसके ललित कपोल लाल थे लगते इतने प्यारे
जितने भ्रमरोंको लगते हैं प्रिय पंकज रतनारे।
राजासे बोली वह रूपसि 'अधर सुधासे भर लो'
सफल करो हे युवक यती, जीवन निज मुझको वर लो
राजाने अपनी रानीके आगे उसे न चाहा
कह सकते हो पत्नीव्रतका अपना धर्म निबाहा
राघवने अपनी अँगुली तब हँसकर उधर उठाई
जिधर शिला-सा सुस्थिर बैठा था लक्ष्मण-सा भाई
कहा अनुजने मेरे बनमें जो मनको मारे हैं
उनसे कहो वरेंगे तुमको, वे अब तक क्वारे हैं
व्यंग-बाण ये ज्येष्ठ बन्धुके धर्म धनुर्धारीके
आधे चुभे अनुजके उरमें, आधे उस नारीके
"हाँ, अब भी मैं यही समझ लूँ सचमें अविवाहित हूँ
अंगूरी अधरोंका प्रणयी, लेकिन नहीं तृषित हूँ"।
यह कह करके क्रोधित स्वरको अपने उसने साधा
अधिक न बोला समझ बन्धुकी रुचिमें पड़े न बाधा।
व्यंग बन्धुका उसपर नारीकी विष-भरी जवानी
छीन ले गई तरुण तपस्वीकी क्षण-भरकी बाणी
तब उसकी चुप-चुप चितवनसे जो-कुछ भी चूता था
किसी सुकविने क्या असमंजस-रस उसका कूता था
ज्वाला पर जो चरण समेटे बैठी रहे जवानी
उसपर अगर छिड़क दो हँसकर तनिक व्यंगका पानी।
तो क्या उसके अंगारेका ओज नहीं उबलेगा?
थोड़ा-बहुत तिमिर-सा काला धुआँ नहीं निकलेगा।
मन न कहेगा मैं भी अपनी प्यास बुझाकर खेलूँ
जो बच रहे वारि व्यंगोंमें भरकर उसे उड़ेलूँ
किन्तु क्रोध वह अपना यों भी मतिसे उलटाके
मारा सूर्पणखाकी संज्ञा देकर उस कुलटाके
अनायास जो संन्यासी बन जला रहा यौवन था
रामायण कहती है डरकर हाँ वह ही लक्ष्मण था।
एक बार राजाकी रानी जंगलमें मदमाती
खेल-रही थी प्रियतमके सँग मनकी व्यथा भुलाती
खेल-खेलमें आँख लग गई एक हिरण शावकसे
मुझे मार ला दो बोली यह अरि कुलके पावकसे
राजा चला समुद मृगयाको क्योंकि प्रियाका मन था।
प्रहरी बनकरके रानीको रखा रहा लक्ष्मण था।
दैवयोगसे दूर कपटकी वाणी पड़ी सुनाई
'दौड़ो मरा, कहाँ हो आओ हा-हा लक्ष्मण भाई'
रानीने समझा राजापर विपति भयानक आई
'जाओ देवर दूर बन्धुका स्वर पड़ रहा सुनाई'
कहा लखनने, भाभी धीरज धरो बन्धु सक्षम हैं
सकुशल हैं रघुनाथ सभी निर्मूल तुम्हारे भ्रम हैं
समझ गई, विष भरे व्यंगमें बोली कुढ़कर सीता
पलमें सहज शुद्धि-सी सुस्थिर बुद्धि बनी विपरीता
लक्ष्मण लगा कठोर आपदाका पलभर आतप है
पिघल उठा पाखण्ड तुम्हारा प्रकट हो गया तप है
बिना बुलाये ही जंगलमें बनकरके बैरागी
समझ गई क्यों आये, अपनी पत्नी क्योंकर त्यागी
कैकेईसे भी कुत्सित यह चाल तुम्हारी कटु है
बधसे स्वार्थ-सिद्ध करनेमें बुद्धि तुम्हारी पटु है
यह मद लषन अभीष्ट तुम्हें था पद भी परिणीता भी
राजमुकुट ही नहीं चाहिये थी रानी सीता भी
बारह वर्ष रात-भर जगकर तपका ढोंग रचाकर
अपनी सहज हँसीमें पावक-सा अरमान पचाकर
तुमने आज स्वार्थ सरितामें रुचिकी नौका खेई
कुमति तुम्हारीने जो कर दी, कर न सकी कैकेई
निश्चल मनपर जो बैठा हो घाव पुराने पाले
उसपर उलटे पड़े व्यंगके तिरछे बरछे-भाले
तपसी बनकरके वैभवकी जिसने भस्म रमाई
राम और सीताके कारण बलिकर दी तरुणाई

उसकी निश्चलतापर जिसके अब भी इतना भ्रम है
उसके लिये न जगमें विधिका कोई बना नियम है
अपने हाथ बिछावे अपने पथपर जो अंगारे
परिहित तोड़ धूलमें फेंके अपने स्वप्न सितारे
उसके ऊपर पड़े न माला औ' न लगे जयकारे
सुधाछीन विषकुम्भ कण्ठमें पहना कर जग मारे
फिर भी जो जन अपने तपकी तन्त्री करे न ढीली
उसके बलिकी लगे न युगको यदि बाँसुरी रसीली
तो समझो इतिहास व्यर्थ है, कल्पित है, झूठा है।
उस युगके कल्पककी रचनासे जीवन रूठा है।

यह इतिहास नवल-युग-तरुकी कीर्ति, वृद्धि करनेको
अपनी सुरुचि सूक्तको कल्पक सबल सिद्ध करनेको
जो आधार काष्ठका कुछ दिन नूतन तरुके संगमें
जोड़ दिया करता है, उसको आरोपित कर जगमें।
उसका भी महत्त्व है नवयुगकी निर्माण-सरणिमें
दीप्ति नहीं दर्शनकी कीमत भी होती है मणिमें
अमिट साधनाका धुँधला-सा वह आधार लखनका
जिसके बलपर बड़ा हुआ है वयः वृद्ध जन-जनका
हृदय सराहेगा उसको ही यदि वह दास नहीं है
लक्ष्मणका जीवन कविता है, जड़ इतिहास नहीं है।

गृह-निर्माण-कला

रामदुलारेशरण सिंह, चन्दापुरी

यह प्रश्न उठ सकता है कि गृह-निर्माण-कला है क्या! गरीबोंके लिए चार दीवारकी झोपड़ियाँ ही घरकी परिभाषा हो सकती हैं। जो अमीर हैं उनके लिए सुख-सुविधाकी वस्तुएँ, जो विज्ञानके द्वारा सुलभ हैं, घरमें चाहिए। उनके लिए वैज्ञानिक ढंगका स्नानागार, रसोईघर आदि होना आवश्यक है।

घरकी परिभाषा न तो झोपड़ियाँ हो सकती हैं और न सुख-सुविधाकी सभी चीजोंसे युक्त वह विशाल प्रासाद ही। वास्तवमें मनुष्योंकी कृति ही मनुष्यकी सुख-सुविधा है। मनुष्यका स्वास्थ्य, चरित्र—सभी कुछ घरपर ही निर्भर है। यह सभ्यताका परिचायक है। प्राचीन कालमें जो देश धन-धान्यसे जितना ही परिपूर्ण था, वहाँके भवन भी उतने ही भव्य और विशाल बने थे। साम्राज्य बनते और बिगड़ते गये, परन्तु भवनोंके अवशेष खण्डहर उनके उज्ज्वल यशके प्रतीक बने रहे। नालन्दा विश्वविद्यालयका भग्नावशेष आज भी हमें अपने अतीत गौरवकी याद दिला रहा है। शाहजहाँको मरे सैकड़ों वर्ष हो गए, परन्तु उसकी कृति पताकाके रूपमें अलौकिक सौन्दर्यसे सम्पन्न ताजमहल यमुनाके किनारे खड़ा है। जब तक ताज रहेगा, शाहजहाँ मरकर भी जीवित है। उसके खण्डहर भी चिल्ला-चिल्लाकर उसकी याद दिलायेंगे। अतः गृह-निर्माणके समय गृह-निर्माण-कलाके विशेषज्ञसे परामर्श लेना अत्यावश्यक है।

एक साधारण परिवारके लिए कम-से-कम एक उठने-बैठनेका कमरा, एक खानेका कमरा, दो सोनेके कमरे, एक रसोईघर स्टोरके साथ, एक स्नानघरका होना अत्यावश्यक है। साथ ही उसमें आगे बरामदेका भी प्रबन्ध चाहिए। ये कमरे ऐसे हों जिनमें अधिक-से-अधिक हवाका प्रवेश हो; और साथ ही दिनमें कम-से-कम एकाध बार सूर्यकी रोशनी भी आ सके। कारण, स्वास्थ्यके लिए धूप अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए धूप-स्नान (Sun Bath) किया जाता है। जिस कमरेमें सूर्यकी रोशनी किसी भी समयमें प्रवेश नहीं पाती वह स्वास्थ्यप्रद नहीं हो सकता। धूप-प्रवेशके लिए धूप-खिड़की छतके ऊपर बनाई जा सकती है।

मकान बहुत-कुछ उसके मनोनीत स्थानपर निर्भर करता

है। कभी-कभी बाध्य होकर हमें सीमित स्थानमें ही मकान बनाना पड़ता है। ऐसे स्थानमें भी अधिक-से-अधिक स्वास्थ्यप्रद मकान बनानेकी चेष्टा करनी चाहिए।

अधिकांश लोग गृह-निर्माणके समय मजबूतीपर ध्यान बहुत कम देते हैं। फलस्वरूप आरम्भमें खर्च तो कम पड़ता है, परन्तु अन्तमें वह खर्चीला सिद्ध होता है। मकानकी मजबूती बहुत-कुछ उसके नींवपर निर्भर करती है। अतः नींवको तैयार करनेके पहले जलसे मिट्टीकी सतहको ठोस कर लेना चाहिए। तब उसके ऊपर छः इञ्च मोटा गारा (चूना, सुर्खी, और ईंटाके टुकड़े) देना आवश्यक है। इसे दुरमुससे सख़्त करा देना चाहिए। यदि मकानको दो मंजिला बनवाना हो तो इसके ऊपर छः इञ्च या एक फुट मोटा सीमेन्टका गारा (सीमेन्ट, बालू और पत्थरके टुकड़ेका जलके साथ मिश्रण) देना चाहिए। इस गारेके भीतर लोहेकी छड़ दीवारके चारों ओर फैला देनी चाहिए। स्थान-स्थानपर इन छड़ोंमें लम्ब रूप से छड़ बाँधकर छतके ऊपर तक ले जाना आवश्यक है। इसके ऊपर ईंटकी जुड़ाई शुरू होनी चाहिए। सतहपर (Plinth) पहुँचकर दीवारके चारों तरफ छड़ देकर तीन इञ्च या छः इञ्च मोटा सीमेण्टका गारा ढालना आवश्यक है। इसके ऊपर साधारण तरीकेसे ईंटकी जुड़ाई होनी चाहिए। पुनः छतकी निचली सतहपर छड़ देकर सीमेण्टके गारेकी ढलाई उचित है। दरवाजेके ऊपर लिनटेल (Lintel) का प्रबन्ध चाहिए।

जो मकान इस तरहसे बनेंगे उनके भूकम्पसे गिरनेका डर जाता रहेगा। कारण, मकान तीन स्थलोंपर छड़से बँधकर एक ठोस पदार्थके सदृश हो जाता है। भूकम्पके समय ऐसा देखा गया है कि पहले मकान एक ओर झुकता है, फिर पुराने स्थानपर चला आता है। मकानके प्रत्येक भागके छड़से बँध जानेके कारण सारा-का-सारा मकान एक ओर झुकेगा। अतः पूरे मकानके उलट जानेका भय रहता है। इसके लिए दीवारों और छतोंमें फैलावकी गाँठ (Expansion joint) का प्रबन्ध रहता है। फलस्वरूप मकानके सीमित भागका सम्बन्ध एक साथ रहता है। ज्योंही मकान एक ओर झुकता है, उसका दूसरा भाग स्वतन्त्र रहता है, और उसके खिंचावसे झुकने नहीं पाता। फिर जैसे ही मकान पहले स्थानपर आता है, वह दूसरेसे मिल जाता है।

इससे एक और फायदा है। गर्मीके दिनोंमें दीवार फैलती है, और जाड़ेके दिनोंमें सिकुड़ती है, यह परिवर्त्तन बहुत सूक्ष्म रूपसे होता है। इस गाँठके रहनेसे दीवारको फैलने या सिकुड़ने के लिए पर्याप्त स्थान मिल जाता है। फलस्वरूप दीवार फटने नहीं पाती।

छत बनाते समय बहुत सतर्कताकी आवश्यकता है। अर्थात् ईंट और छड़के मिश्रणसे बनी हुई छत (Re-enforced Brick Roof), सीमेन्टके गारेके बीच छड़ देकर ढाली हुई छत (Re-enforced cement concrete roof)।

ईंटा और छड़के मिश्रणसे बनी हुई छत :—सरकारी मकान पहले ऐसे ही बनते थे। अब देखा-देखी इसका प्रचलन साधारण लोगोंमें भी बढ़ रहा है। परन्तु यह टिकाऊ नहीं है। कारण, छतके गर्मीमें फैलने और जाड़ेमें सिकुड़नेसे छड़ और ईंटोंके बीचमें फाँक पड़ जाती है। फलस्वरूप छड़ हवाके संसर्गमें आती है और उसमें जंग लग जाता है। ऐसा होनेसे छत फट जाती है और वर्षाके दिनोंमें चूने लगती है। साथ ही छड़में जंग लग जानेसे सीमेन्टकी शक्ति न्यून हो जाती है, और छतका पलास्तर छूट-कूटकर नीचे गिरता है ऐसी हालतमें छतके निचले भागको ठोक-ठोंककर कमजोर पलास्तर गिरा देना चाहिए। नहीं तो सरपर गिरनेका भय रहता है।

सीमेन्टके गारेके बीच छड़ देकर ढाली हुई छत :—इस कार्यमें अभूतपूर्व सफलता मिल रही है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि गृह-निर्माण-कलाकी यह अन्तिम पहुँच है, और इससे उत्तम छत दूसरे प्रकारसे नहीं बन सकती। इसमें धरन और छत—दोनोंकी ढलाई सीमेन्टके गारेके बीचमें छड़ देकर होती है। छतमें निश्चित दूरीपर आवश्यक परिमाण में छड़ फैला दी जाती है। छतकी छड़ धरनकी छड़से बँधी रहती है और ये छड़ दीवारकी लम्ब छड़से आपसमें बँधे होते हैं। छतकी ढलाईके लिए सहायक छत (False centring) बनाई जाती है। इसीके ऊपर लोहेका छड़ बिछा होता है।

ढलाईकी सुविधाके लिए सीमेन्ट और बालूसे बना हुआ एक या डेढ़ इञ्चका गुटका छड़के नीचे रखा जाता है, जिसमें गारा छड़के नीचे आसानीसे पहुँच जाय। छतको जमने और शक्तिशाली होनेके लिए ठण्डककी अत्यन्त आवश्यकता है। अतः उसे १५-२० दिन पानीसे तर रखना चाहिए।

इसके ऊपर टेरेस (Terrace) बना होता है। पानीके बहावके लिए टेरेस और छत दोनोंका ढाल १ में ४० के अनुपातमें देना चाहिए।

हवाका प्रबन्ध :—मकान बनाते समय यह हमेशा ख्याल रखना चाहिए कि वह हवादार हो। कारण, वायुके अभावमें वमन, सर-दर्द, थकावट और आलस मालूम पड़ता है, तथा किसी काममें मन नहीं लगता।

औरतों और बच्चोंके लिए उतनी हवाकी आवश्यकता नहीं है जितना कि मर्दके लिए। श्वासके द्वारा आक्सिजन भीतर जाता है, और कार्बोनिक एसिड बाहर आता है। एक मर्द प्रति घण्टा ·६ घन फीट कार्बोनिक एसिड बाहर छोड़ता है। १००० घन फीट हवामें ·४ घन फीट कार्बोनिक एसिड वर्त्तमान है। अतः एक मर्द ३००० घन फीट हवा प्रति घण्टा गन्दा करता है। फलस्वरूप यह प्रबन्ध होना चाहिए कि जिसमें ३००० घन फीट ताजी हवा प्रति घण्टा प्रति मनुष्यके लि... रहे। लेकिन इतने अधिक परिमाणमें स्वच्छ और ... हवाका मिलना प्रत्येक दशामें सम्भव नहीं है। अतः ... १००० घन फीट ताजी हवा भी प्रति घण्टा मिलती रहे... काम चल सकता है। एक कमरा जो २० फीट लम्बा, ... फीट चौड़ा और १० फीट ऊँचा हो और जो तीन आदमि... लिए बना हो तो उस कमरेकी हवाको प्रति घण्टा बदल ... काम चल जायगा।

स्वास्थ्यके लिए प्रकाशकी भी अत्यन्त आवश्यकता है। प्रकाशके लिए कमरेकी सतहके दसवें भागके बराबर स... खिड़कीके लिए चाहिए। और कम-से-कम बीसवाँ ... हमेशा खुला रहना आवश्यक है। कमरेके बीचमें खम्भ... (Piller) रहनेसे प्रकाशमें बाधा पड़ती है। ऐसी हालत... खिड़कीकी संख्या विषम होनी चाहिए।

इतना होते हुए भी यदि मकानके आगे हाता या खु... स्थान न हुआ तो इसकी सारी सुन्दरता नष्ट हो जाती है। हातेमें सुन्दर बाग हो तो सोनेमें सुगन्ध। नाना प्रकारके ... लताएँ और फूल देखकर मन प्रसन्न हो जाता है।

नाट्यशाला और सिनेमा

महेशप्रसाद रस्तोगी

मनुष्य अपने चारों ओरकी सृष्टिका अनुवीक्षण और निरीक्षण करता है। उसके विषयमें उसकी अपनी अनुभूति होती है। इस अनुभूतिका प्रकटीकरण उसके लिये स्वाभाविक हो जाता है। इसी अभिव्यक्तिमें काव्य और कलाका बीज निहित है। अभिव्यक्तिके अनेक साधन हैं। भावव्यञ्जनामें जब हम शब्दों और स्वरोंका सहारा लेते हैं, तब उस विधिको हम कविता संज्ञा देते हैं और जब हम अपनी विशिष्ट शैली द्वारा दूसरेके हृदयमें उन्हीं भावोंका उद्रेक करना चाहते हैं, तो हम उसको उपन्यास या कहानीका रूप देते हैं। इसके अतिरिक्त भावोंका स्पष्टीकरण यदि हम अपने अंग संचालन, वाणी एवं वेशभूषाके माध्यमसे करते हैं तो भाव-प्रदर्शनकी इस शैलीमें हमें नाटक या रूपककी झलक मिलती है।

हमारे काव्य-शास्त्रियोंने इन्हीं विशिष्टताओंके कार... काव्यके दो रूप माने हैं—दृश्य काव्य एवं श्रव्य काव्य। ... हमारा उद्देश्य केवल दृश्य काव्यके साहित्य तथा उसकी ... लता एवं वृद्धिपर विचार करना है।

भारतीय दृश्य काव्यकी उत्पत्ति एवं विकासके सम्बन्ध... विद्वानोंका मत है कि इसका जन्म धर्मकी गोदमें हुआ ... उसीके सहारे इसमें जीवनकी शक्तियाँ आई और उसीने इस... अस्तित्व संसारमें रहने दिया। ग्रीसके सुखान्त नाटक ... प्रकार डायोनीससकी पूजाके रूपमें आरम्भ हुये. उसी प्र... भारतीय दृश्य काव्यका भी धर्मसे निकटतम सम्बन्ध रहा है। भारतीय नाटक और मंचकी उत्पत्तिके विषयमें ई० पी० ह... विज रचित "दि इण्डियन थियेटर"में लिखा है—एक ...

सभी देवता मिलकर ब्रह्माके पास गए और उन्होंने उनसे अपने मनोरञ्जनकी सामग्री माँगी। ब्रह्माने ऋक्से नृत्य, सामसे गान, यजुरसे अभिनय और अथर्वसे भाव लेकर एक नाट्य वेदकी रचना की। पहला रंगमंच बनानेके लिये विश्वकर्मा बुलाया गया और उसने इन्द्र-भवनमें एक विशाल मंचका निर्माण किया। उस मंचके ऊपर प्रथम वार इन्द्रध्वज त्योहारके अवसरपर समवकारके रूपमें अमृत-मंथनका अभिनय किया गया, उसके बाद 'डिम'के रूपमें त्रिपुर-दाहका। नाटकमें अपने पुत्र और शिष्योंके साथ भरत मुनिने तथा गन्धर्व और अप्सराओंने अभिनय किया था। राजा नहुषने पहली बार पृथ्वी पर रंगमंचकी स्थापना की थी, और अभिनय करानेके लिये उन्होंने स्वर्गीय देवांगनाओं, अप्सराओं और गन्धर्वोंको पृथ्वीपर आनेके लिये वाध्य किया था।"

उपर्युक्त कथन पूर्ण-रूपसे सत्य हो या असत्य, किन्तु इतना तो सत्य है ही कि नाटकके तत्व हमारे वेदोंमें वर्तमान थे। धार्मिक अवसरोंपर ही हमारे यहाँ नाटकोंके अभिनय हुआ करते थे, और स्त्री-पुरुष समान रूपसे भाग लिया करते थे। क्योंकि उस समय नाटक एक धार्मिक संस्थाके रूपमें माने जाते थे। इसके अतिरिक्त आधुनिक विद्वानोंका एक और मत है कि नाटकोंकी उत्पत्ति नृत्यसे हुई। सर्वप्रथम नृत्य हुआ करते थे। जिसमें तालके ऊपर नियमित एवं निश्चित गतिसे पद संचालनकी क्रियाके साथ-ही-साथ भावोंका अभिनय होना भी आरम्भ हो गया और इस प्रकारसे इस ललित कलाका नाम नृत्य पड़ा। पुरानी चालके नृत्योंमें हम नाना प्रकारके भावोंका प्रदर्शन देखते हैं। नृत्यके बाद नाट्य आता है। उसमें भावोंके अभिनयके साथ-साथ कथोपकथन भी आ जाता है। नाट्य नाटकका अभिनय है। नृत्यमें भावकी प्रधानता होती है, और नाट्यमें रसकी। हमारे धार्मिक अवसरोंपर नृत्यका भी आयोजन हुआ करता था।

कुछ विद्वानोंका मत है कि वास्तवमें भारतीय नाटकोंके इतिहासका आरम्भ महाकवि कालिदाससे ही होता है। नवीन खोजके आधारपर कालिदाससे ४,५०० वर्ष पूर्वकी भी कुछ नाट्य कृतियोंकी पाँडुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। परन्तु इनके लेखक तथा काल अब भी सन्दिग्ध हैं। कालिदासके पश्चात् भी हर्ष, भवभूति आदि सफल नाटककार हुये। दसवीं शताब्दी में धनञ्जय आदि विद्वानोंने नाट्य साहित्यपर लक्षण ग्रन्थोंकी रचना की। इसी कालमें भारतीय नाट्य साहित्य अपनी चरम सीमापर पहुँचा और ठीक इसके पश्चात् नाटकोंका ह्रास आरम्भ हो गया। १४ वीं शताब्दीमें तो ऐसा जान पड़ा कि भारतीय नाट्य साहित्य था ही नहीं। इसका कारण विदेशियोंका आक्रमण था। इस्लामके पैर भारतमें इसी समयसे दृढ़ होने लगे और इस धर्ममें गायन, वादन एवं नृत्य धर्म-विरुद्ध था। फलतः नाट्यकलाका पतन अवश्यम्भावी हुआ।

इस प्रकार १९वीं शताब्दी तक भारतसे मानो अपनी निजकी नाट्यकला उठ-सी गई थी। जो थोड़ी-बहुत बची थी वह आधुनिक नाटकोंके रूपमें नहीं, वरन् नाटकोंके बिलकुल पूर्व रूपमें थी। उत्तर प्रदेशमें रास-लीला, बंगालमें यात्रा और महाराष्ट्र प्रदेशमें कीर्तनसे ही लोग मन-बहलाव कर लिया करते थे। किन्तु इधर लगभग सौ वर्षोंसे भारतके सभी प्रान्तोंमें अनेक प्रकारके सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं राजनीतिक नाटक होने लगे हैं। इसी समय बँगला और गुजरातीमें कुछ सुन्दर नाटकोंकी रचना हुई है। यही हिन्दी नाटकोंकी रचनाका आविर्भाव काल है। वैसे तो हिन्दीमें सौ वर्ष पूर्वके लिखे हुये कुछ नाटक प्राप्त हैं, किन्तु वे साहित्यिक दृष्टिसे सफल नहीं माने जाते।

वास्तवमें साहित्यिक दृष्टिसे देखा जाय तो नाटकोंके प्रमुख तत्वोंका समावेश भारतेन्दुके समयसे हुआ। बंगीय नाटकोंका प्रभाव इनपर अधिक पड़ा। इस कालमें मौलिक नाटक तो कम थे, पर अनूदित नाटकोंकी भरमार रही। इसमें सामाजिक, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक—सभी प्रकारके नाटक थे। भारतेन्दुके समकालीन साहित्य-सेवियोंने भी नाटकोंकी रचना करनेमें इनका अनुकरण किया। प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी आदिके नाम इस सम्बन्धमें उल्लेखनीय हैं।

इसके पश्चात् प्रसादजीने मौलिक नाटकोंकी रचना की, जिनका साहित्यिक मूल्य तो बहुत है किन्तु अभिनयकी दृष्टिसे वे अपनी सफलताकी चरम सीमा तक न पहुँच पाये। इस

कालके अन्य नाटककार मिश्रजी, प्रेमीजी एवं सेठजी आदिने बहुत ही सफल नाटक लिखे हैं। इनकी समस्या-मूलक-कथा-वस्तु साहित्यिक नाटकोंमें अपना विशेष स्थान रखती हैं।

भारतीय नाट्य साहित्यके इस विकाससे हमें यह पूर्णरूपसे विदित हो जाता है कि यहाँपर अनेक भाषाओंमें नाट्य रचना हुई, परन्तु नाटकके अभीप्सित उद्देश्यको पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। नाटकके सार्थक अस्तित्वका सम्बन्ध रंगमंचसे है। नाटक और अभिनय—ये दोनों वस्तुएँ एक-दूसरेसे अलग नहीं की जा सकतीं। नाटकोंकी उत्कृष्टताका निर्णय बिना रंगमंचके नहीं हो सकता। यदि नाटक प्राण तो मंच उसका शरीर है। जो नाटक मंचपर खेले जानेपर अपना सौन्दर्य खो देते हैं वे पूर्णरूपसे साहित्यिक होनेपर भी अच्छे नाटकोंकी श्रेणीमें नहीं रखे जा सकते। जब हम नाटकोंकी सफलताको रंगमंचकी कसौटीपर कसकर देखते हैं तो हमें हिन्दी साहित्यके अधिकांश नाटक असफल प्रतीत होते हैं। भारतेन्दुकी भाषा तथा शैलीमें इस विचारसे अनेक त्रुटियाँ दीख पड़ती हैं। यह ठीक है कि उनके मौलिक नाटक अधिकतर समाज तथा देशकी दुर्दशाका दिग्दर्शन करानेके लिये लिखे गये हैं, परन्तु उनके कथोपकथन इतने अधिक लम्बे हो गये हैं कि वे भाषणका रूप धारण कर लिए हैं। इस कारण वे दर्शकोंको रुचिकर प्रतीत न हुए।

बहुतसे नाटकोंमें हम देखते हैं कि जब नाटककारको उत्साह, क्रोध एवं करुणा आदिका प्रदर्शन करना होता है तो वह वहाँ गद्यसे पद्यको अपना लेता है। यह रंगमंच बड़ा अस्वाभाविक लगने लगता है। नाटक जीवनकी छाया है, उसके अंगोंका प्रदर्शन है, तो उसमें जीवनकी स्वाभाविकता भी होनी चाहिये। हम अपने नित्यप्रतिके जीवनमें पद्यका प्रयोग नहीं करते। अतः नाटकमें भी भावोंका प्रकटीकरण उसी माध्यमसे होना चाहिए, जिसका प्रयोग हम अपने दैनिक जीवनमें करते हैं।

इसके पश्चात् अपने साहित्यमें हम दो प्रकारके नाटक देखते हैं। एक तो वे जो उच्च कोटिके साहित्यिक नाटक कहे जाते हैं, और जिनमें कथा-वस्तुकी ओर अधिक ध्यान न देकर चरित्र-चित्रणकी विभिन्नताओं तथा शैली विशेषकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। ऐसे नाटक रंगमंचपर क[illegible] सफल नहीं हो सके। दृश्य काव्यकी सफलता अभिनय[illegible] हैं, अतः उसमें दर्शककी रुचि तथा उसकी अपरिप[illegible] बुद्धिका विशेष ध्यान रखना ही पड़ेगा। साहित्य शास्त्र[illegible] लिए चाहे यह कथन उतने महत्त्वका न हो, किन्तु दर्शक[illegible] जिन्हें नाटकके अन्य तत्वोंका पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं है कथाव[illegible] द्वारा आकृष्ट होते हैं। अतः जो नाटककार अपने नाटक[illegible] अभिनयशील बनाकर उसका प्रचार करना चाहते हैं, [illegible] चाहिये कि वे चरित्र-चित्रण और शैलीकी ओर अधिक ध्[illegible] न देकर कथावस्तुकी ओर ही अधिक ध्यान दें। [illegible] नाटकोंमें उपन्यासोंकी भाँति कहानियाँ हों और उनका वि[illegible] कौतूहलसे हो।

हम पहले ही कह चुके हैं कि नाटक प्रथमतः अभिन[illegible] करनेकी वस्तु है और फिर साहित्यका अंग। रंगशाल[illegible] नाटकका महत्त्व मंचपर खेले जानेपर है, साहित्यिक ख्याति[illegible] नहीं। वास्तवमें नाटककी कथावस्तुके विकास और चरित्र[illegible] चित्रणमें कथोपकथनका बड़ा हाथ रहता है। अतः कथो[illegible] कथनकी भाषा दुरूह, दार्शनिक विचारोंसे ओत-प्रोत एवं अन[illegible] त्मक तथा क्लिष्ट न हो। अन्यथा दर्शकोंका कोई मनोरंज[illegible] होगा और ऐसे नाटक मंचपर सफल भी न हो सकेंगे। [illegible] की भाषा शुद्ध, सरल एवं विषयके अनुकूल प्रभावोत्पा[illegible] होनी चाहिए।

वर्त्तमान हिन्दी नाटकोंका समूह दो भागोंमें विभा[illegible] किया जा सकता है। एक तो वे नाटक जिनमें केवल रं[illegible] का ही ध्यान दिया गया है, कौतूहलकी सामग्री जुटाई ग[illegible] और भाषा भी उर्दू-हिन्दीकी खिचड़ी रखी गई है, [illegible] उनमें वास्तविक जीवनके चित्रणका सर्वथा अभाव-सा [illegible] साहित्यिकता पास भी नहीं फटकने पाई। पर राधेश्याम[illegible] नाटक इसी प्रकारके हैं।

दूसरे प्रकारके नाटकोंमें केवल साहित्यकी लड़ियाँ [illegible] प्रकार सजाई गई हैं, मानों उनके सभी दर्शक दार्शनिक [illegible] कवि हैं। उनमें जीवनके चित्र, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, [illegible] मानवीय भावनाओंका स्पष्टीकरण एवं मनोविज्ञानकी [illegible]

झलक है, परन्तु मंचकी सुविधाका बिलकुल ध्यान नहीं रखा गया। मंचकी अवहेलना करनेपर उच्च कोटिका साहित्यिक नाटक भी आदर्श नाटक नहीं कहा जा सकता। प्रसादजीके नाटक इसी श्रेणीमें आते हैं।

इसके अतिरिक्त हमारे नाटककारोंने मंचका ध्यान न रखने के कारण कदाचित् अपने नाटकोंके अभिनयके समयपर भी ध्यान नहीं दिया। मानव-मन चंचल है, वह किसी एक वस्तुपर लगातार दो-तीन घण्टेसे अधिक केन्द्रित नहीं रह सकता। फलतः कोई भी दर्शक दो-तीन घण्टेसे अधिक बैठकर एक ही वस्तुसे अपना मनोरंजन करनेमें असमर्थ हो जाता है। अधिक लम्बे नाटकोंके अन्तमें दर्शकोंकी रुचिकी न्यूनताके कारण सम्भव है कि नाटकका साहित्यिक सौन्दर्य बहुत-कुछ नष्ट हो जाय। वास्तवमें नाटकोंके अभिनयका समय अधिकाधिक दो-तीन घण्टे तक ही परिमित रहना चाहिये। किन्तु हिन्दी नाटक ऐसे बहुत कम हैं जो बिना कतर-ब्योंत किए दो-तीन घण्टेमें खेले जा सकें। इस वैज्ञानिक युगमें अवकाशकी कमीका अनुभव करके ही कदाचित् एकांकी नाटक इस परिमित समयमें मंचकी शोभा बढ़ाने तथा दर्शकोंका मनोरंजन करनेका एक सुन्दर साधन बन रहे हैं।

इसके अतिरिक्त हिन्दी नाटकोंमें संकेत शब्दोंका प्रयोग कम हुआ है। इसका दुष्परिणाम यह है कि मंचपर खेले जानेपर नाटक लेखकके व्यक्तित्व तथा उद्देश्यसे भटके हुये-से दिखाई देते हैं, अतः उनकी बहुत-कुछ सफलता या असफलता नाटकपर न होकर मंच-संचालकपर है। पाश्चात्य देशोंके नाटककार अपने अंकके समयानुकूल, मंचपर जिन वस्तुओंकी आवश्यकता समझते हैं, उनका निर्देश कर देते हैं।

इसके अतिरिक्त इस युगमें हिन्दी-नाटकोंके स्वगत-कथन भी बड़े ही अनावश्यक और अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं। यदि कोई व्यक्ति मनमें जो आये उसे चिल्लाता हुआ सड़कपर चला जाता हो, तो दर्शकगण उसे पागल समझेंगे। स्वगत कथन कभी-कभी दो-तीन पात्रोंके वार्तालापके समय भी होता है। जब कोई पात्र ऐसी बात सोचने लगता है, जिसे वह अन्य खड़े हुये पात्रोंसे छिपाना चाहता है और दर्शकोंको उसका आभास देना चाहता है, तो वह गम्भीर मुद्रामें जोर-जोरसे उस बातको कहकर दर्शकों तक पहुँचा देता है। दर्शकोंको यह भुलावा दिया जाता है कि जो बात उन्होंने सुनी वह मंचके अन्य पात्रोंने नहीं सुनी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे नाटकोंमें स्वगत-कथनका भी एक दोष है।

हमारे साहित्यिक नाटकोंके असफल होनेका एक और भी कारण है। हिन्दी-रंगमंच सदा अच्छे अभिनेताओंसे रिक्त रहा है। क्योंकि हमारा सभ्य-समाज मंचको निकृष्ट स्थान समझता है और वहां उन्हीं लोगोंकी कल्पना करता है जो ज्ञान और मान दोनोंसे ही रहित हैं। फलतः यह रंगमंच उत्कृष्ट अभिनेताओं से शून्य है। इसके साथ-ही-साथ अशिक्षा और परदाके कारण स्त्रियाँ नाट्यकलामें भाग नहीं लेतीं, उनके अभावमें पुरुष ही अस्वाभाविकताका स्वाँग भरकर उसे पूरा करते हैं। जिससे नाटकोंमें अभीष्ट प्रभाव तथा माधुर्य नहीं आने पाता।

हमारे नाट्य साहित्यमें उपर्युक्त दोष होनेके कारण उसके प्रचार और विकासमें काफी क्षति पहुँची। किन्तु इस क्षतिका कारण केवल उपर्युक्त दोष ही नहीं थे वरन् चित्रपटोंका प्रचार भी इसकी अभिवृद्धिमें घातक प्रमाणित हुआ है। सिनेमाके इतने शीघ्र प्रचार होनेके कई कारण हैं। एक तो हमारे अधिकांश नाटककारोंने नाटक लिखते समय कभी मंचकी आवश्यकताओं तथा दर्शकोंकी रुचिका ध्यान ही नहीं रखा। फलस्वरूप सर्वसाधारणको उससे अरुचि हो गई। दर्शकोंकी रुचि बिगाड़नेमें पारसी कम्पनियोंका भी हाथ रहा। उन्होंने अपने व्यवसायके सामने हमारे यहाँके रंगमंचकी वास्तविक सृष्टि होनेका अवसर ही नहीं आने दिया। ऐसे समयमें, जब कि साधारण जनताके सामने उसके बौद्धिक स्तरके अनुकूल मनोरंजनका साधन न था, उसकी रुचिकी थाह पाकर अनेक कम्पनियाँ फिल्म बनानेमें प्रवृत्त हो गई।

इसके अतिरिक्त सिनेमामें प्रायः उन सभी अभावोंकी पूर्ति हो जाती है, जो हमारे नाटकोंमें विद्यमान हैं। इन चित्रपटों पर वे सब बातें सम्भव हो गई हैं, जिनका कि रंगमंचपर दिखाया जाना असम्भव था। जैसे नदीका बहना, सजीव पक्षियों और जानवरोंका मंचपर क्रिया-कलाप, बिजली चम-

कना, बादलोंसे वर्षा होना, मोटर, रथ इत्यादिका मंचपर चलना—ये सभी मंचकी असम्भव बातें सरलतासे सिनेमामें दिखाई जा सकती हैं। प्राकृतिक दृश्योंका साक्षात दर्शन हमें सिनेमामें मिलता है। नाटकोंमें जो कुछ भी हमें प्राकृतिक दृश्य दिखाई देते हैं, वे परदोंकी चित्रकला तक ही सीमित हैं, और इसी परिमित साधनके द्वारा हमें उस सौन्दर्यकी कल्पना करनी पड़ती है। इसीलिये इनमें प्रकृति निर्जीव और उदासीन-सी प्रतीत होती है। सिनेमामें प्रकृतिके इस वास्तविक रूपके होनेसे हमें दृश्योंका सौन्दर्य ही देखनेको नहीं मिलता वरन् संगीत और नृत्यका बड़ा सुन्दर वातावरण बन जानेके कारण उनकी प्रभावोत्पादकतामें विशेष सुखका अनुभव होने लगता है।

इस वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक विकासके युगमें उच्च घरानों की शिक्षित स्त्रियाँ भी सिनेमाकी नाट्य कलामें भाग लेने लगीं क्योंकि उनको दर्शकोंके सामने नहीं आना पड़ता। इसलिये इसमें उनका संकोच भी कम हो गया। नाट्य साहित्यके ज्ञानकी कमीको तो सिनेमा ही ने पूरा किया, साथ ही कैमराकी सहायतासे अभिनयकी उत्कृष्टता इतनी पूर्ण हो गई कि हमारे सीमित साधनयुक्त रंगमंच कभी भी इस सौभाग्यको प्राप्त करनेमें समर्थ न हुये थे और न होनेकी आशा ही थी। इसके अतिरिक्त नाटकों तथा स्वगत-कथनवाला दोष भी हमें सिनेमामें देखनेको नहीं मिलता। क्योंकि इसमें पात्रोंको चिल्लाना नहीं पड़ता।

सिनेमामें पात्रोंके बनाव-शृंगारकी अनेक सामग्रियोंका वैज्ञानिक रीतिसे प्रयोगकर पात्रोंके कृत्रिम सौन्दर्यको बिलकुल ही स्वाभाविक बना दिया जाता है। उदाहरणके लिये यदि किसी पात्रकी मुखाकृति अधिक सुन्दर नहीं है तो कैमराके सहारे उसे बहुत कुछ ठीक कर लेते हैं, इसी प्रकार पात्रोंकी अधिक आयु होनेपर भी सिनेमामें वे युवासे प्रतीत होते हैं।

पात्रोंके अन्तर्द्वन्द्वोंके भावों तथा उनके मनोवैज्ञानिक तथ्यों का विश्लेषण हम सिनेमामें वैज्ञानिक ढंगोंसे बड़ा सुन्दर पाते हैं। जैसे वह स्वप्न देखता है—जो कुछ वह स्वप्न देखता है या किसी विशेष परिस्थितिमें जो कुछ भी वह सोचता है, तो फोटोग्राफीकी सहायतासे उन्हीं भावोंकी चित्रछाया हमें उस पात्रके मस्तिष्कपर दिखाई पड़ती है और उसके मनोभावोंका स्वाभाविक ढंगसे प्रदर्शन हो जाता है; उसे स्वगत-कथन... आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती।

इसके अतिरिक्त बहुत-से ऐसे साधारण कृत्य भी हैं, ... कभी रंगमंचपर नहीं दिखाये जा सकते। जैसे हनुमान... पहाड़ लेकर उड़ना, सीताका सती होना, बादलोंसे किसी देव... का आकाशवाणी करना, लंकाको जलती हुई दिखाना ... दुर्वासाके पीछे चक्रका दौड़ाना आदि। यह सभी कृत्य सिने... सरलतासे दिखाये जा सकते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे ह... देखते हैं कि सिनेमाका अधिक प्रचार हो गया और इस... व्यापकता और लोकप्रियता बढ़ गई। फलतः नाट्य साहित्य... रचना बहुत कम हो गई।

अब यहाँपर यह प्रश्न उठता है कि सिनेमामें प्रा... नाटकके वही तत्व होते हुए भी उसी प्रकारके नाटकोंकी रच... क्यों नहीं की जाती। यह दोष हमारे नाटककारोंका ही है। क्योंकि वे अब भी दृश्य काव्यको साहित्यिक बनाकर रंगमंचसे पृथक रखना चाहते हैं। चित्रपटोंने भी अपने कथा-वस्तुके लिए उपन्यासों और कहानियोंको ही अपनाया अर्थात् कथा-वस्तुपर अधिक ध्यान दिया। इसी कारण हम देखते हैं कि उपन्यासों तथा कहानियोंकी अभिवृद्धि उत्तरोत्तर होती जा रही है और नाट्य साहित्यका ह्रास हो रहा है।

सिनेमा-प्रचार और नाट्य साहित्यकी उपेक्षाका एक विशे... कारण यह भी है कि वैज्ञानिक साधनोंकी सहायतासे हमा... स्वार्थी चित्र-निर्देशकोंने अपने चित्र-निर्माणमें मोहक ए... वासनामय वातावरणके सृजनको एक मुख्य अंग बना लि... है। यह टेकनिक गर्हित है और उसका दुष्परिणाम रा... और जातिके लिए घातक भी है परन्तु उसकी स्वाभावि... मादकता तथा मोहकता बड़ी प्रभावशालिनी सिद्ध हुई है। हमारे रंगमंचमें न तो इस प्रकारके वासनामय कामोत्ते... वातावरण उत्पन्न करनेकी क्षमता ही है और न उसकी ... चीनता इसे ग्राह्य ही कर सकती है। अतः सिनेमाका ... अमोघ अस्त्र हमारे नाट्य साहित्यकी प्रगतिके बीच हिमा... बनकर खड़ा है, इस बाधाको पार करना असम्भव नहीं ... कठिन अवश्य है।

गीत गोविन्द

डाक्टर यतीन्द्रविमल चौधरी

संस्कृत-साहित्य-महोदधिके अन्यतम श्रेष्ठ रत्न, गौड़ कवि जयदेवका रचा हुआ 'गीत गोविन्द' काव्य है। रचना-पद्धति, भाव, भाषा तथा भक्तिके उच्छ्वाससे परिपूर्ण यह ग्रन्थ है। प्रायः आठ सौ वर्षसे भारतमें इस ग्रन्थने असीम प्रभाव विस्तारकर आदर प्राप्त किया है। इसीलिए इस ग्रन्थका, किसी छोटे-से लेखमें, गुण-वर्णन करना असम्भव-सा है। अति संक्षेपमें जयदेवकी सर्वतोमुखी प्रतिभाके दो-एक उदाहरण दिये जा रहे हैं।

इस ग्रन्थके प्रारम्भमें ही कविने सम-सामयिक कविवृन्दों की स्तुति-वर्णनके विषयमें कहा है—

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः संदर्भशुद्धिम् गिराम्—

जानीते जयदेव येव शरणः श्लाघ्यः दुरूहद्रुतेः।

शृंगारोत्तर सत्यमेवरचनैराचार्य गोवर्धन—

स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरोधोयी कविक्ष्मापतिः

इन श्लोकोक्त कवि उमापतिधर, शरण, आचार्य गोवर्धन, धोयी इत्यादि साहित्य महारथी गणके अनुपम दानके लिए बंगजननी चिर गौरवशालिनी रहेगी। ये राजा लक्ष्मणसेनकी सभाके कवि हैं। १३ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें इन लोगोंने जन्म लिया।

बड़े ही खेदकी बात है कि महाकवि जयदेवके व्यक्तिगत जीवनके सम्बन्धमें हम विशेष कुछ नहीं जानते। वीरभूमि जिलेके अन्तर्गत, अजय नदीके तीरपर बसा हुआ, केंदूली या केन्दूबिल्व ग्राम ही इनका जन्म-स्थान है। आज तक माघके महीनेमें उनकी पवित्र स्मृतिमें प्रत्येक वर्ष मेला होता है। १४९९ ई० में प्रताप रूद्रदेवने यह आदेश दिया था कि वैष्णव गायक केवल 'गीत गोविन्द'का ही गान करेंगे और १२९२ ई० में एक प्रस्तरपर 'गीत गोविन्द'का एक श्लोक भी लिखा हुआ है।

गीत गोविन्दके एक श्लोक (११-११) में कविने अपने पिताका नाम भोजदेव और माताका नाम रामादेवी (राधादेवी, वामदेवी) उल्लेख किया है। इस ग्रन्थमें कविने अपनेको "पद्मावती-चरण-चारण चक्रवर्त्ती" (१-२) और अन्य स्थान पर (१०-८) "पद्मावती-रमण जयदेव कवि" कहकर उल्लेख किया है। सम्भवतः पद्मावती उनकी पत्नीका नाम था। काल-क्रमसे जयदेवका 'गीत गोविन्द' इतना प्रसिद्ध हुआ कि कविके नामसे अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हुईं। नाभादासकी हिन्दी 'भक्तमाल' तथा चन्द्रदत्तकी संस्कृत 'भक्तमाला' ही इनकी किंवदन्तियोंके लिए प्रसिद्ध हैं।

'गीत गोविन्द' भारतमें अत्यन्त आदरको प्राप्त हुआ। भारतके विभिन्न स्थानोंमें गीत गोविन्दके ४० से अधिक टीका और १२ से अधिक अनुकरण-ग्रन्थ तैयार हुए हैं। सबसे अधिक प्रसन्नताकी बात तो यह है कि सिक्खोंके पवित्र धर्म-ग्रन्थ 'आदि-ग्रन्थ साहब'में 'हरिगोविन्द-प्रशस्ति' नामक जो कविता हिन्दीमें लिखी गई है, वह कवि श्री जयदेवकी ही रचना है। आदि-ग्रन्थमें यही सबसे पुरानी कविता है। जयदेवके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि दशावतार-स्तोत्रमें बुद्धदेवको इन्होंने ही सर्वप्रथम भगवत् अवतार माना है। इस प्रकार हिन्दू-बौद्ध धर्मके समन्वयमें जयदेव ही अग्रदूत बनकर उत्तराधिकारी-वृन्दके चिरपूज्य हो गये। उस महिमामय मिलन मन्त्रका उल्लेख इस प्रकार है :—

"निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्

सदय हृदय दर्शित पशुघातम

केशवधृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे।

अर्थात्—'हे केशव, बुद्धका शरीर धारणकर तथा दयार्द्र होकर, तुमने यज्ञमें पशुबलिको बन्द किया।'

गीत गोविन्द काव्यरूप तथा गुणमें अतुलनीय है। यह कविकी मौलिक रचना है। संस्कृत-साहित्यमें ही नहीं वरन् जगत्के अन्य किसी साहित्यमें भी आज तक ऐसी रचना नहीं हुई। इसीलिए इसको काव्य, नाटक, संगीत अथवा अन्य

किसी विशेष प्रकारकी रचना कहना चाहिए, परन्तु इस विषयमें पण्डित-मण्डलीमें मतभेद है। जैसे गीत गोविन्दको, विख्यात जर्मन प्राच्यतत्त्वविद् Lassen ने Lyric Drama अथवा गीति नाट्य, प्रसिद्ध अंग्रेज मनीषि Sir William Jones ने Pastoral Drama या गोप-नाट्य और जर्मन प्राच्य-तत्त्वविशारद Vonschroder ने Purified Yatra अथवा विशुद्ध यात्रागान और Pischel & Leir ने नाट्य और संगीतकी एक मध्यवर्ती रचना कहकर अपना-अपना मत प्रकाश किया है। वास्तवमें, गीत गोविन्द काव्यको अलंकार-शास्त्र-सम्मत किसी एक विशेष श्रेणीमें रखना भूल होगी; क्योंकि गंगा-यमुना-सरस्वतीकी धाराके समान त्रिधाराका अनुपम समन्वय इसी ग्रन्थमें दृष्टिगोचर होता है। गीत गोविन्दमें काव्य, नाटक तथा संगीत—तीनों वस्तुओंका ही समावेश है। प्रथमतः इस ग्रन्थको हम काव्य कह सकते हैं, क्योंकि कविने इस ग्रन्थको बारह सर्गोंमें विभक्त किया है। द्वितीयतः इस ग्रन्थमें नाट्य-रूपको स्पष्ट दिखाया है क्योंकि प्रत्येक सर्गके प्रारम्भमें कविताके बाद ही राधा-कृष्ण और राधाकी सखी, इन तीनोंमें से किन्हीं दो पात्रोंका वार्त्तालाप दिया गया है। तृतीयतः यह ग्रन्थ अधिकांश कविता, गाना, राग-रागिनी, सुर-तालके समन्वयसे अपूर्व-संगीतकी मूर्त्ति बन गया है। तीन विभिन्न प्रणालियोंकी रचनाका यह समन्वय, जगत्के इतिहासमें अपूर्व है।

गीत गोविन्दकी गुणावलीका विश्लेषण करनेसे पूर्व, उसकी विषय-वस्तुके सम्बन्धमें थोड़ा-सा उल्लेख करना आवश्यक है। यह ग्रन्थ बारह सर्गों और चौबीस प्रबन्धोंमें समाप्त हुआ है। इसमें वसन्त-समागममें यमुनाके तीरपर सखियोंसे घिरी हुई राधाका कृष्णके साथ साक्षात्; धीरे-धीरे राधाके प्रति कृष्णका गम्भीरतम आकर्षण मान, विरह, मिलन प्रभृतिका अपूर्व दृश्य दिखाया है।

प्रथम सर्गमें चार प्रबन्ध हैं। प्रथम प्रबन्धमें दशावतारका वर्णन है। बाकी तीनों प्रबन्धोंमें राधा-कृष्णके नृत्यादि, प्रेम-लीलाका वर्णन किया गया है। चतुर्थ प्रबन्धमें कृष्णका सर्व गोपीजन प्रेमाभिव्यक्तिका परिपूर्ण रूपसे वर्णन है। द्वितीय सर्गके पंचम और षष्ठ प्रबन्धमें राधाका खेद तथा कृष्ण-मि[लन] के लिए व्याकुलता है। तृतीय सर्गके सातवें प्रबन्धमें कृ[ष्णने] राधाके लिए अपने हृदयके उद्वेलित-प्रेमको निवेदन किया है। चतुर्थ सर्गके आठवें तथा नवें प्रबन्धमें राधाकी सखीने कृ[ष्णसे] बुलाकर राधाके दुःखोंका बड़े ही मार्मिक ढंगसे वर्णन कि[या] है। पाँचवें और छठे सर्गके दसवें तथा ग्यारहवें प्रब[न्धमें] राधाकी सखियाँ कृष्णके साथ राधाका पुनर्मिलन करा[नेमें] व्यस्त दिखाई गई हैं। सातवें सर्गमें, तेरहवेंसे सोलहवें प्रब[न्ध] तकमें, राधाके क्रन्दन तथा विलापका वर्णन है। वचन पू[रा] न करनेवाले कृष्णके प्रति राधाका उलाहना तथा चन्द्रोदय[में] राधाका प्रलाप है। आठवें सर्गमें कृष्णका पुनः प्रकट होना और सत्रहवें प्रबन्धमें राधाका कृष्णके प्रति अभिमान तथा खे[द] प्रकाश है। नवें सर्गके अट्ठारहवें प्रबन्धमें राधाकी सखीका राधाकी ओर कोप-दृष्टिसे देखना और दसवें सर्गके उन्नीसवें प्रबन्धमें स्वयं कृष्णका राधाके प्रति स्तुति-निवेदन है। ग्यारहवें सर्गमें मानरता राधाके क्रोधको शान्त करती हुई सखीकी सान्त्वना-वाणी निकली हुई है। बारहवें सर्गमें राधा-कृष्णके युगल-मिलन तथा दोनोंकी परस्पर मिलनोक्तियोंसे यह ग्रन्थ समाप्त किया गया है।

रचना तथा विषय-वस्तुकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ अद्वितीय तथा अतुलनीय है क्योंकि इस काव्यमें दो भिन्न रसों, अर्थात् शान्त और शृंगार रसका अपूर्व समावेश है। इसीलिए गीतगोविन्द काव्यको आध्यात्मिक दृष्टिसे जीव तथा ईश्वरका मिलन, अथवा केवल गीति-काव्यकी दृष्टिसे प्रेमी-प्रेमिका-मिलनके रूपमें ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु यहाँ इस बातपर विशेष ध्यान दिया जाता है कि दो विभिन्न रसोंमें से किसी एक रसको भी यदि पाठकगण लें, तो भी किसी प्रकारका व्याघात नहीं होता। हमारे देशमें गीत गोविन्दको साधारणतः आध्यात्मिक काव्य ही कहते हैं, किन्तु पाश्चात्य देशीय रस-पिपासुगण इस ग्रन्थको गीतिकाव्यके रूपमें ग्रहण करके असीम आनन्द तथा तृप्ति लाभ करते हैं।

प्रथमतः गीत गोविन्द काव्यको आध्यात्मिक काव्यके रूपमें लेनेके कारण दिये जाते हैं। गीतगोविन्दका मूलतत्त्व है, राधा

कृष्णकी प्रेम-लीला। इसीलिए यह ग्रन्थ वैष्णवोंमें अन्यतम माना गया है और युगोंसे इसकी पूजा होती आ रही है। न जाने किस भक्ति-हिमालयकी गोपन गहन कन्दरामें गीतगोविन्द भक्ति-मन्दाकिनीकी प्रथम स्रोतधारा छिपी हुई है? ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें राधाका प्रथम आविर्भाव है। किन्तु ब्रह्मवैवर्त्तपुराण की राधासे कृष्ण-प्राणा जयदेवकी राधा सर्वथा भिन्न है। श्रीमद्भागवत और लीलाशुककी कृष्ण-कर्णामृतकी राधा भी गीतगोविन्दकी राधासे पृथक् है। जिस राधाने, कृष्ण-भक्तिसे चण्डीदास और विद्यापतिकी हृदय-गंगाको प्लावित किया है; श्री श्रीमहाप्रभुके चित्तका उन्मथन करके समस्त पूर्व और दक्षिण भारतके अन्तस्तलको परिप्लावित तथा परिपूरित किया है, उसी भक्तिका अपूर्व प्रकाश गीत गोविन्दमें है। यहाँ राधा, कृष्णकी सर्वस्वा शक्ति-रूपमें प्रकट हुई हैं। स्वकीय दिव्यालोकसे भू-तलपर सर्व प्रथम आविर्भूता हुई हैं। गीत-गोविन्दसे पूर्व रचे हुए ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, श्री मद्भागवत और कृष्णकर्णामृत—इन तीनों ग्रन्थोंमें राधा गोपी मात्र ही हैं, किन्तु हमारे बंगाली कवि जयदेवने ही पहले-पहल राधाको श्री कृष्णकी प्राणवल्लभा और हृदय सर्वस्वके रूपमें प्रतिष्ठित करके राधा कृष्णोपासनाकी नयी धारा बहा दी।

इस प्रकार इस असार संसारमें अमर वैभव लाभ करके जिन्होंने अपना जीवन धन्य किया है, उनको यदि गीतगोविन्द, भक्ति मन्दाकिनीकी धाराके समान दिखाई दे तो आश्चर्य ही क्या है? मानव-प्रेमकी पूर्णतम और प्रकृष्टतम परिणति है भागवत्-प्रेममें।—भागवत्-प्रेममें यदि मानवका पूर्ण आत्मविलोप हो, तभी मानव-दिव्य-सत्ताका पूर्ण तथा चरम विकास होता है। इसीलिए महाकवि जयदेवने कहा है :—

"मुहुरवलोकन मण्डल लीला
मधुरिपूरहमिति भावन शीला"।

अर्थात् राधा कहती हैं—'निरन्तर श्रीकृष्णको देख-देख कर मैं स्वयम् ही श्रीकृष्ण हो गई।" इस दिव्योन्मादना प्रचोदनाके निमित्त ही श्री श्रीमहाप्रभुने इस ग्रन्थको श्रेष्ठ ग्रन्थ कहकर इसका गौरव बढ़ा दिया। कृष्णदास कविराज रचित श्री चैतन्य-चरितामृतमें इसका स्पष्ट प्रमाण पाया जाता है जैसे—

"चण्डीदास विद्यापति रायेर नाटक गीति
कर्णामृत श्री गीत गोविन्द।
स्वरूप रामानन्द सने महाप्रभु रात्रिदिने
गाय शोने परम आनन्द"॥

इसीलिए मर्त्तधाममें अमरत्वको खोजनेवाले सभी मनुष्य इस ग्रन्थको 'आनन्दस्वरूप' 'रसो वै सः' कहनेके लिए बाध्य हुये। इस प्रकार आध्यात्मिक काव्य रूपमें श्री गीत गोविन्दने संसारमें एक नई प्रकार की हलचल मचा दी है।

यह ग्रन्थ भक्तिका स्रोतस्वरूप ही नहीं है, प्रत्युत उसने गीतिकाव्यके रूपमें भी संस्कृत-साहित्यमें अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। भाव और भाषाके अपूर्व समन्वयसे इस ग्रन्थने काव्यका सुन्दर रूप धारण किया है। भाव निगूढ़ है, तो भाषा भी सुमधुर है। इस प्रकारका 'मणि-कांचन' संयोग भी विरल ही है। अतलस्पर्शी रत्नाकरकी गम्भीर जलराशिको भेदकर जिस प्रकार सुदूरतलस्थित मणि-माणिक्य छिपे रहते हैं उसी प्रकार कभी-कभी किसी-किसी क्षेत्रमें कठिन भाषाके आवरणसे ढका हुआ गूढ़ तत्व भी हमारे लिये अबोध्य और अलभ्य हो जाता है। जैसे अगम्भीर पार्वत्य स्रोतस्वतीके स्वल्प, स्वच्छ जलको भेदकर हम बालू, कंकर, पत्थर आदि देखते तथा स्पर्श करते हैं, वैसे ही कभी-कभी सरल सुमधुर भाषाके द्वारा जो कुछ तत्व हम उपभोग करते हैं, वे लघु क्षणभंगुर वस्तु मात्र हैं, निगूढ़ शाश्वत तत्व नहीं हैं। इस लिए जिस स्थानपर भाषा अत्यन्त सरस और मधुर हो वहाँ भावकी निगूढ़ताके विषयमें कभी-कभी सन्देह होने लगता है। गीतगोविन्दकी भाषामें, शब्दोंका माधुर्य और छन्दोंकी झंकार इतनी अधिक है कि इस ग्रन्थके भावकी गम्भीरताके विषयमें सन्देहका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। किन्तु फिर भी गीतगोविन्दमें एक विशेषता है वह यह है कि इसमें भावकी महिमा और भाषाका माधुर्य—इन दोनोंका समावेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। रामायण तथा उपनिषद् आदिमें जिस प्रकार निगूढ़ भाव अति स्वच्छ और सरल रीतिसे प्रकटित है उसी प्रकार गीतगोविन्दमें भी है। इसलिए पृथिवीकी सब श्रेष्ठ भाषाओंमें दो सौ वर्षोंसे इसका अनुवाद हो रहा है।

प्रसिद्ध जर्मन पण्डित Ruckert और अंगरेज विद्वान् Sir Edin Arnold ने गीतगोविन्दका अनुवाद करके साहित्य-क्षेत्रमें अमरत्व पा लिया है।

गीतगोविन्दकी भाषामें अनुप्रास और विन्यास अतुलनीय है। फिर भी कहीं भावमें कमी नहीं आई और भावकी पोषकता और पूर्णता भी साधित हो गई है। उसका उदाहरण यह है—

"ललित लवंगलता परिशीलन-कोमल-मलय-समीरे
मधुकर निकर करम्बित-कोकिल-कूजित-कुंज कुटीरे
बिहरति हरिरिह सरस वसन्ते
युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते"

कहीं-कहींपर दीर्घसमास-बहुल होनेपर भी जटिलता आने पाई है। और भी ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं:

"चन्दन - चर्चित - नीलकलेवर - पीतवसन - वनमाली
केलिचलन्मणि कुण्डल-मण्डित-गण्डयुगलस्मित शाली"

इस प्रकार भाव, भाषा और रचना-प्रणाली— दृष्टिसे भारतका 'गीत गोविन्द' जगत्के इतिहासमें अ... और अद्वितीय है।

स्यामका संक्षिप्त इतिहास

कुमारी बनचोप बन्धुमेधा

गत वर्ष भारत सरकार द्वारा प्राप्त छात्रवृत्तिसे जब तीन स्यामी लड़कियाँ भारत पहुँचीं, तब उनमें मैं भी एक थी। हिन्दू-विश्व-विद्यालय, बनारसमें, हम लोगोंके पहुँचनेपर हमें आश्चर्य हुआ कि जैसे स्याममें हम भारतीयोंको जानते थे, वैसे ही भारतवर्षमें भारतीय हमें देख 'ये स्यामी हैं,' ऐसा नहीं जानते थे। मैंने सोचा कि शायद जैसे स्याममें भारतीय रहते हैं वैसे यहाँ कोई स्यामी रहता ही नहीं, जिससे वे जान पावे कि हम कौन हैं।

हमारा पहनावा देख किसीने कहा, "ये बर्मी होंगी।" किसीने कहा, "ये चीनी महिलायें हैं, शायद।" लेकिन यह कुछ हद तक ठीक भी था क्योंकि हमारा देश उन दोनों देशोंके मध्यमें है।

मैंने सोचा कि हमारे ये दोनों देश (भारत तथा स्याम) परस्पर एक-दूसरेके पास ही तो हैं, इसलिए हमारा आपसका सम्बन्ध एक-न-एक दिन पहले की तरह अवश्य स्थापित होना चाहिए। अस्तु—

यदि आपलोगोंने पण्डित रघुनाथ शर्माका "स्याममें भारतीय संस्कृति' शीर्षक लेख विशाल भारतमें पढ़ा होगा तो आप जान गये होंगे कि भारत तथा स्यामका सम्बन्ध कितने दिनोंसे है। मेरा पूरा विश्वास है कि वर्त्तमान भारतसे पुरातन भारत स्यामको बहुत अच्छी तरह जानता था। अपने दे... तथा भारतके लोगोंके लिए मैं यह उचित समझती हूँ कि अपने देश (स्याम) का संक्षिप्त इतिहास 'विशाल भारत'में लिखूँ... विषय बहुत गम्भीर है और मेरी हिन्दीकी जानकारी अ... पूरी भी नहीं। सम्भवतः इस विषयको आज मैं ठीकसे ... भी न सकूँ। अतः क्षमाकी प्रार्थना करती हूँ।

स्याम, बर्मा और चीनके इतिहाससे हमलोगोंको मालूम होता है कि वर्त्तमान चीनमें, जिसमें अब पूर्ण चीनी जाति ... रहती है, २८०० वर्ष पहले इधर-उधर ग्रुपोंकी शकलमें ... जाति, जिसका नाम 'थाई जाति है', वहाँ रहती थी।

विशेषतया 'पीड़' नदीके मध्यमें यह जाति रहती ... क्योंकि हमारे वे पूर्वज छोटे-छोटे समूहोंमें रहते थे और ... बड़ा शहर बसाकर नहीं रहते थे। राजाकी आवश्यकता ... उनको न पड़ती थी, केवल किसी एक वीर पुरुषको प्रमुख ... लिया जाता था। तब उत्तरसे चीनियोंने उनपर चढ़ाई ... दी। विभाजित रहनेसे उनका मुकाबिला न कर सकनेपर ... दक्षिणकी ओर सरक आये। इतिहासने बहुत वर्षों तक ... तथा थाईका परस्पर युद्ध दिखाया है और सैकड़ों साल ... चीनकी चढ़ाईको रोका।

थाई सिर्फ एक 'स्वतन्त्रता'से ही प्रेम करता है जैसे भारतीय लोग। यही हमारी जातिका एक विशेष गुण है। इसी कारण हमारा नाम 'थाई' है ; क्योंकि 'थाई' शब्दके अर्थ हमारी भाषामें स्वतन्त्र के ही हैं। हमारे इतिहासका कथन है कि उन दिनों यानी २८०० सौ सालसे हमारी जाति (थाई) बौद्ध धर्मावलम्बी हो गई, जैसे चीनमें बुद्धधर्म माना जाता है।

१२५३ ई० तक राजा कुब्ले खाँके समयमें थाई जातिका चीनके कुछ हिस्सोंमें अधिकार चला आ रहा था। पीछे कुब्लैखाँ से पराजित होकर थाई जाति इण्डोचीनके उपद्वीप तक पहुँची। थाई, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, समूहके रूपमें बहुत स्थानोंमें बँटे रहते थे। एक वर्ग वर्माके उत्तरमें शानराष्ट्रमें चले गये और वे लोग अपनेको 'थाई याई' यानी 'बड़े थाई' कहते थे। दूसरे 'खोङ' नदीके आस-पासमें बसे और वे अपने को 'थाई नीय्ये' अर्थात् 'छोटे थाई' कहने लगे। उन लोगोंने उत्तर इण्डोचीन उपद्वीपसे अपने अधिकारको बढ़ाकर कालान्तर में 'चौफ़य्या नदी' पर अधिकार या मलायाकी सीमातक अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। (और यही देश हमारा आजकलका 'थाई प्रदेश' अथवा स्याम देश कहलाता है।)

उस समय यानी ११४३ ई० में स्यामको कम्बोडियामें अपना अधिकार प्राप्त था। परन्तु कम्वोदियन् उस समय वर्मापर चढ़ाई करते थे। इसीसे वे लोग वलहीन हो गये। थाई अथवा स्यामी, जो उनके हाथोंमें था, अवसर पाते ही स्वराज्यके लिए युद्ध करते थे। १२२७ ई० में हम स्यामियोंने अपनेको एक दम स्वतन्त्र पाया और अपनी बस्तियोंको इकट्ठा करके एक देशके रूपमें हो गए। तथा एक राज्यवंश स्थापित किया जिसका नाम था 'फ़रुअङ'। उस वंशमें प्रथम राजा, जिनका नाम था 'खुन श्री इन्द्रादित्य,ने उस समय उत्तरमें अपनी राजधानी 'सुखोदय' नामक नगरमें स्थापित की।

उसके लड़के राजा 'खुन राम कमहैङ'ने पूर्व लिपिके अक्षरों का संशोधनकर एक नूतन रूप तैयार किया, और उसे पत्थर पर खोदा (जो अब भी स्थानीय 'विविध भण्डार स्थान' यानी अजायब घर (Museum) में सुरक्षित है।

धीरे-धीरे समय व्यतीत हुआ और हमारा देश 'मलाया' तक फैला। साथ ही हमारे देशका एक ही धर्म, जो बुद्ध धर्म है, हो गया। इसके बाद दूसरे एक और राजवंशने, जो देशके मध्यमें से ही उत्पन्न हो गया, जिसके पहले राजाका नाम 'फ्रा चाऊ ऊथोङ' था, अपनी राधजानी 'नगर श्री अयुध्या'में (जो स्यामका एक नगर है) बनाई।

उसके बाद हमारी जातिको बर्माके राजाके साथ युद्ध करना पड़ा, क्योंकि वे लोग हमारी स्वतन्त्रताको मिटाना चाहते थे। पिछले एक युद्धमें बर्मासे हमें पराजय मिली और हमारी राजधानी बर्मियों द्वारा विध्वंस कर दी गई। पश्चात् इसके हमारी जातिने बर्मियोंको पीछे ढकेलकर अपनी राजधानी 'धनपुरी'में बनाई। क़रीब पन्द्रह सालके बाद स्यामकी राजधानी 'क्रुङ्थेप महानगर'में (जो कि आजकी राजधानी है) बनाई गई और चक्रीवंश, जो कि आजतक चला आ रहा है, राज्य शासन करता रहा। वर्त्तमान राजधानी 'क्रुङ्थेप महा नगर' है जिसे विदेशियों द्वारा 'बंकोक' कहा जाता है।

जिन दिनों हमारा सम्बन्ध कम्बोडियासे था, उन दिनों हमारा उनसे बहुत व्यवहार पड़ा था। भारत कम्बोडियाकी संस्कृतिका प्रदाता रहा अर्थात्—भाषा, धर्म और रीति-रिवाज़ प्रायः उसको भारतसे ही मिला था, इसलिए हमलोगोंने भी कुछ हेर-फेरके साथ अपनी संस्कृतिमें उसके भी कुछ अंश ले लिये। हम लोगोंका विश्वास है कि 'महावंश'में लिखे अनुसार महाराज अशोकके दो धर्मदूत 'सोण तथा उत्तर' हमारे यहाँके एक नगरमें, जिसका नाम 'नगर प्रथम' है, प्रथम पहुँचे थे। कालान्तरमें नगर प्रथममें एक 'स्तूप' जो कि अशोक स्तूपके समान है और एक 'धर्म चक्र', जो कि भगवान् बुद्धका धर्म चक्र है, बना प्राप्त हुआ। इस समय भी 'स्तूप' तो 'नगर प्रथम' में और 'धर्म चक्र' स्थानीय विविध भण्डार स्थानमें सुरक्षित है।

ऊपरके संक्षिप्त विवरणके आधारपर मैं विश्वासके साथ कह सकती हूँ कि राजभाषा, साहित्यकी भाषा और आम व्यावहारिक भाषा तथा हमारा बुद्धधर्म प्राप्त करना, संस्कृत वा पाली शब्दोंका बहुत मात्रामें व्यवहार करना, इस बातका साक्षी

है कि पुरातन कालसे भारत और स्यामका सांस्कृतिक दृष्टिसे गहरा सम्बन्ध रहा है।

हमारी जाति भारतका आदर अपने गुरुके तुल्य करती है, यह एक निर्विवाद सत्य है। भारतको यह सम्मान सदैवके लिए प्राप्त रहे—इसी शुभकामनाके साथ मैं अपने विचार यहीं समाप्त करती हूँ।

[कुमारी बनचोप बन्धुमेधासे भी हमारा आग्रह है कि वे भी भारत और स्यामके लिए गैरसरकारी सांस्कृतिक दूतका काम करें और भारत और स्यामके सांस्कृतिक और साहित्यिक आदान-प्रदानमें सहायक हों। 'विशाल भारत' अपनी इन दोनों लेखिकाओंका आभारी रहेगा और उनके लेखोंका स्वागत करेगा।—सम्पादक]

परमाणु-शक्ति कमीशन

दुलहसिंह कोठारी

६ अगस्त १९४५ संसारके इतिहासमें एक महा भीषण दिवस माना जायगा। इस दिन सर्वप्रथम दो जापानी-शहर प्रचण्ड अग्निकी प्रखर ज्वालाओंमें भस्मीभूत हो गए। यह काम अनन्त शक्तिशाली एवं विध्वंसकारी दो परमाणु बमों (Fat boy and little boy) का था। न जाने कितने बेबस जापानी कुछ ही क्षणोंमें निर्दयता एवं क्रूरताके साथ मौतके घाट उतार दिये गये। कितनी बड़ी-बड़ी विशाल इमारतें तथा गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ धूल-धूसरित कर दी गईं। जहां एक एवं दो क्षण पहले जीवन था, जीवनकी समस्त हलचलें थीं, जहांपर अभी-अभी मन्दिर थे, मठ थे, एवं गिरिजाघरोंके घण्टोंसे वायु-मण्डल प्रतिध्वनित हो रहा था, जहांपर अभी-अभी अधरोंपर मीठी मुस्कान थी, नेत्रोंमें मादकता थी, हृदयोंमें आशा थी, तथा नवीन उमंग एवं उत्साहके स्रोत चहुँ ओर प्रवाहित हो रहे थे, जहांपर अभी-अभी प्रकृति अपनी मायाको बेतरह बिखेरे हुए प्रफुल्लित थी, वहांपर केवल एक ही पलमें महाप्रलय हो गया। विनाशके एक ही झोंकेके साथ जीवनकी समस्त लीला समाप्त हो गई। उदय हुए कोई तीन घण्टे भी नहीं हुए थे कि सूर्य अस्त-सा हो गया। चहुँ ओर भयंकर अन्धकार था। धुएँकी काली-काली घटाओंसे सारा आकाश आच्छादित था एवं सैकड़ोंकी संख्यामें जलती हुई चिताएँ इस बातकी सूचक थीं कि वहांपर यमराजका साम्राज्य स्थापित हो चुका है। वह भूमि, जो अभी तक प्रकृतिकी खिलवाड़ थी, एक श्मशान बन चुकी थी। कितना भयंकर एवं प्रलयंकारी प्रातः था वह! परन्तु उसी सन्ध्याको महायुद्ध समाप्त हो चुका था। दिनके ढलनेके साथ ही जापानियोंकी स्वतन्त्रता अस्त हो गई थी।

महायुद्ध समाप्त हुए एवं खतरेकी घण्टियोंको बजे हुए आज कोई पाँच वर्षोंसे कुछ ही कम होने आये हैं, परन्तु अभी तक यह कहना तो दूर रहा कि यह भूमि सर्वप्रकारके खतरोंसे खाली हो चुकी है, यह भी तो निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि किन-किन खतरोंकी किस-किस परिमाणमें अब भी वहांके भोले-भाले निवासियोंके लिए सम्भावना है। यदि परमाणु बम द्वारा किया गया विध्वंस केवल तात्कालिक तहस नहस तक ही सीमित रहता तो निस्सन्देह अब तक जापानियोंके अत्यन्त दुःखपूर्ण तथा दयनीय इतिहासकी मर्मभेदी कहानीका अध्याय कभीका समाप्त हो गया होता। परन्तु अनुमान किया जाता है कि परमाणु बमके विस्फोटसे मुक्त हुई रेडियम-धर्मी (Radioactive) विकीर्ण-शक्ति तो एक वर्ष नहीं, दो वर्ष नहीं, किन्तु आनेवाले एक बहुत लम्बे युग तक, वहांके निवासियोंके लिए—उनके स्वास्थ्यमें, उनके शारीरिक एवं मानसिक विकासमें—बाधक और घातक सिद्ध होगी।

उपर्युक्त घटनाके कुछ ही समयमें बहुत-से स्थानोंसे विकीर्ण शक्तिके विलम्बीय खतरोंके सम्बन्धमें विविध विचार प्रकट किये गये। कुछ लोगोंकी धारणा थी कि कोई ७५ वर्ष तक

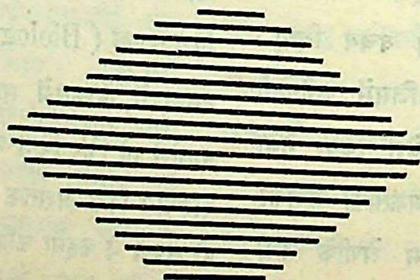
यह भूमि मनुष्यके निवास योग्य नहीं रहेगी। यहाँके निवासी जो किसी दैवी शक्तिकी प्रेरणासे उस दुर्घटनाके शिकार होनेसे बच गये, उनमेंसे अधिकांश प्रजननके लिए अयोग्य हो जायँगे। और थोड़ी-बहुत जो कुछ सन्तानें उत्पन्न भी हुई तो भावी बच्चोंके बेडौल, दुर्बल, पतले, गंजे, विकट सूरतवाले, बिना हाथों एवं टाँगोंके एवं छिन्न-भिन्न शरीरवाले होनेकी आशंका प्रकट की गई। यह भी बताया गया कि वहाँके रहनेवालोंमें कुछ भयंकर बीमारियाँ जैसे जहरीले फोड़े, घाव, नासूर (Cancer) चर्म-सम्बन्धी अनेक रोग, विषम रक्त इत्यादि असाध्य व्याधियाँ विशेष रूपसे फैलेंगी। लोगोंको यह भी भय था कि बमोंके आक्रमणोंसे समूल नष्ट किये हुए स्थानोंमें ऐसी भी बीमारियाँ हो सकती हैं जो चिकित्सा-शास्त्र (Medical Science) के लिए बिलकुल नवीन हों। परन्तु एक बात जो ध्यानमें रखने योग्य है वह यह है कि इन सब धारणाओंके पीछे कोई वैज्ञानिक निष्कर्ष तो था नहीं, इसलिए यह कहना कठिन था कि उपर्युक्त आशंकाएँ कहाँ तक ठीक थीं। यह भी स्पष्ट था कि इस तरहकी भ्रांतिपूर्ण स्थितिमें वहाँके निवासियों की दशा और भी अधिक शोचनीय हो सकती थी। सम्भवतः पीड़ितोंकी ठीक तरहसे सहायता करनेके लिए एवं भावी संतति की रक्षाके लिए इससे अधिक आवश्यक कोई प्रयास एवं प्रयत्न नहीं हो सकता था कि इस तरहके सर्वप्रचलित विचारों एवं मतोंका एक वैज्ञानिक दृष्टिसे अध्ययन किया जाता। इसी कारण अन्तर्राष्ट्रिय परमाणु-शक्ति कमीशन (Atomic Energy Commission) ने सन् १९४७ में एक स्थायी समितिकी स्थापना की। इस समितिका नाम परमाणु-बम कमीशन (Atomic Bomb Casuality Commission) रखा गया। इसकी आर्थिक व्यवस्थाका समूचा भार अन्तर्राष्ट्रिय परमाणु-शक्ति संगठनने ही उठानेका वचन दिया। इस समितिके समक्ष असीम कार्यक्षेत्र था, जिसमें ऐसी-ऐसी महत्त्वपूर्ण एवं रचनात्मक समस्याओंका समावेश किया गया था कि जिनकी महत्ता, विशालता तथा आवश्यकताको देखकर यह बहुत ही जरूरी था कि कार्यकर्त्ता गण प्रथम श्रेणीके तथा प्रतिभाशाली वैज्ञानिक तो हों ही, परन्तु साथमें प्रतिकूल वातावरणमें काम करनेकी उनमें पूर्ण क्षमता भी हो और उत्तरदायित्वको पूरा करनेके लिए अपनी स्वेच्छासे समस्त शक्तिपूर्वक पूर्ण प्रयत्नके साथ अपने काममें जुट जानेकी एक असाधारण लगन हो। इस तरहके मानव-सेवा एवं वैज्ञानिक-शोधके भावोंसे प्रेरित श्रद्धालु युवक वैज्ञानिकोंका एक शक्तिशाली संगठन शीघ्रातिशीघ्र निर्माण करना कोई साधारण योजना नहीं थी। फिर भी संसारके बड़े-बड़े विश्वविद्यालयोंके तथा अन्य कला-केन्द्रों (Technical Institutes) के सहयोगसे, अनेक बाधाओंके होते हुए भी, एक सुदृढ़ संगठन बनाया जा सका। आज इस संगठनके अन्तर्गत लगभग ५०० वैज्ञानिक, परमाणु बमोंके विस्फोटसे आतंकित प्रदेशोंमें, बहुत उत्साह एवं स्फुर्तिके साथ प्रयत्नशील हैं। इस संगठनमें सब राष्ट्रोंके वैज्ञानिक हैं—अमेरिकन हैं, अंग्रेज हैं, जर्मन हैं, चीनी हैं और जापानी भी हैं। कुछ भी कहा जाय, एक बात तो स्पष्ट है कि भले ही चाहे कितने ही अंशमें इन कुशल तथा निःस्वार्थी वैज्ञानिकोंको, सत्यकी निरन्तर गवेषणा तथा मानव-कल्याणके उच्चतम आदर्शोंसे प्रेरणा मिली हो, फिर भी उनको अपनी साधनामें प्रेरित करनेवाला एक प्रकारका भय ही था। भय तो इस बातका था कि परमाणु-बमके विस्फोटसे सृजित विकिरणसे कितनी हानि अबतक हो चुकी है और भविष्यमें न जाने यह विकिरण कितने भयंकर सिद्ध हो सकते हैं अथवा इस प्रकारकी सम्भावना की जा सकती है। यह भय निर्मूल नहीं कहा जा सकता है। अपनी प्रयोगशालाओंमें अनेक प्रकारके सूक्ष्म जीव-जन्तुओंपर अबतक जो इस दिशामें विविध प्रयोग किये जा चुके हैं, उनके परिणामोंसे यह अनुमान लगाना कठिन नहीं था कि परमाणु-विकिरण कल्पनाके परे घातक सिद्ध हो सकते हैं, फिर भी मनुष्य और निम्न श्रेणीके जन्तुओंमें तो जीव-विद्या-शास्त्र (Biology) की दृष्टिसे बहुत अन्तर है। उनकी बनावटमें, आकारमें, सहन-शक्तिमें एवं जीवन-सम्बन्धी अनेक बातोंमें तो फिर बिना शंकाके कीटाणुओंपर किये गये प्रयोगोंके परिणाम किस अंशतक मनुष्य जैसे विकसित प्राणीके लिए लागू हो सकते थे कहना कठिन था। हीरोशिमा और नागासाकी में विध्वंसकारी विस्फोटके पूर्व तो मनुष्यपर इन महान् हानि-

कारक किरणोंके प्रभावको अध्ययन करनेके लिए कोई साधन उपस्थित नहीं हो सका था, परन्तु इस दुर्भाग्यपूर्ण घटनाके पश्चात् तो जापानके इन दोनों शहरोंमें वैज्ञानिकोंको अवसर मिल गया, मानव-जातिपर इन घातक रश्मियोंके प्रभावको प्रत्यक्ष रूपसे देखने और समझनेका।

जैसा कि पहले लिख चुके हैं कि जहाँतक उन विनाशकारी शस्त्रोंसे सम्बन्ध है, जिनका कि उपयोग मानव इतिहासके पृष्ठोंपर उल्लिखित महायुद्धोंमें आज दिन तक पाया जाता है, परमाणु-बम अपने ढंगका एक निराला शस्त्र है। इन बमोंके कारण जो विध्वंस हुआ वह उन प्राणियों तक ही सीमित नहीं रहा, जो इनके शिकार हुए। परन्तु भविष्यके गर्भमें आनेवाली न जाने कितनी पीढ़ियों तक उनके विषैले प्रभावसे भीषण हानि होनेकी सम्भावना है। केवल तात्कालिक जोखमसे ही यह बम प्राणि-जगत्के संहारका प्रथम श्रेणीका ही नहीं, किन्तु सर्वश्रेष्ठ शस्त्र माना जा सकता था, परन्तु इसकी भीषणता तो इसके भावी खतरोंकी आशंकासे और भी अत्यधिक हो जाती है, जिसकी ठीक तरहसे कल्पना तक करना मनुष्यके लिए सम्भव नहीं। अतः बमके कारण होनेवाली विलम्बीय हानि सम्बन्धी अनेक समस्याओं और विशेषकर उत्पत्ति-सम्बन्धी समस्याओंकी जाँच-पड़ताल करना किसी भी दृष्टिसे एक साधारण कार्य नहीं माना जा सकता था। इस प्रकारकी छान-बीन एवं अन्वीक्षणको वैज्ञानिक व्यवस्थित रूपसे करनेके लिए यह आवश्यक था कि हीरोशिमा एवं नागासाकीमें समस्त जीवित तथा विस्फोटके पश्चात् होनेवाले बच्चोंका चिकित्स्य-निरीक्षण (Medical Test) किया जाय और उनका पूर्णरूपसे विवरण रखा जाय। साथ ही तुलनाके लिए यह भी आवश्यक था कि निकटतम सुरक्षित नगर क्यूर (Kure) में भी इसी तरहकी पड़ताल की जाय। इस जाँचका उद्देश्य यही था कि इन तीनों शहरोंमें छोटे-छोटे बच्चोंकी एवं गर्भवती समस्त बहनोंका पता लगाया जाय। इस घटना-कमीशनके लिए यह कार्य अपने ढंगका अनोखा एवं विचित्र तो था ही, परन्तु साथमें बहुत जटिल भी था। फिर भी निःसन्देह, उस जापानी कानूनके अनुसार, जिसके अन्तर्गत उन सब गर्भवती स्त्रियोंको, जिनको कि गर्भ-धारण किये हुए चार मासका समय हो चुका था, सिवाय-राशनके लिए अपने आपको राशनिंग कार्यालयमें उपस्थित करना अनिवार्य था, कमीशनका कार्य बहुत-कुछ सुगम हो गया। कमीशनके कार्यकर्त्ताओंको जापानी धात्रियोंके साथ भी अपना सम्पर्क बराबर रखना पड़ता था ताकि लज्जावश किसी भी माताके अपनी असामान्य प्रसूति एवं सन्तानको गुप्त रखनेपर भी उसका ठीक-ठीक पता उनको लग जाय।

इस दिशामें जितनी पड़ताल अबतक की जा चुकी है उससे विशेष महत्त्वपूर्ण निर्णयपर नहीं पहुँचनेकी सूरतमें भी यह तो एक प्रकारसे स्पष्ट-सा ही हो गया है कि जहाँतक भीषण बमोंके विस्फोटसे प्रज्वलित रेडियम-धर्मी विषैली तथा प्रवेशक (Penetrating) रश्मियोंके शिकार माताओं तथा पिताओंका प्रश्न है, वहाँ तक अवश्य ही उनकी सन्तानोंमें बेडौल, विकट एवं दोषयुक्त होनेकी सम्भावना बहुत बढ़ गई है। यह सारी मानव-जातिको परमाणु-बमकी सबसे भयानक चुनौती है।

इस प्रकारकी छान-बीन, अनेकानेक कष्ट बाधाओंके होते हुए भी, जारी है। घटना-कमीशनकी यह खोज एवं अन्वीक्षण मानव-कल्याणकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण है।



भगवान् श्री रमण महर्षि

रा० चौलिनाथन्

इस मर्त्य लोकमें जन्म लेनेवाले महापुरुष जब इस स्थूल शरीरको त्यागकर परमपिता भगवान्की शरणमें जाते हैं, तब आकाश मार्गसे एक ज्योतिर्मय पुष्पक विमान आता है और उन महान् पुरुषोंको बड़े आदरके साथ स्वर्गको लिवा ले जाता है—इस बातका इतिहास पुराणोंको पढ़नेसे हमको पता चलता है।

हो सकता है कि ऐसी बातें काल्पनिक हों अथवा अतिशयोक्ति पूर्ण हों। फिर भी हमारे बड़े-बूढ़ोंने हमको यह पाठ पढ़ाया है कि ये कल्पित और वर्णित घटनाएँ, बाह्य संसारकी उन घटनाओंसे कहीं अधिक सत्य हैं जिनको हम अपनी आँखोंसे खुद देखते हैं।

गत १४ अप्रैलकी बात है। शुक्रवारका दिन था। उस दिन रातको पौने नौ बजेके क़रीब, आकाश और भूमि दोनोंमें एक अलौकिक प्रकाश-पुंज फैलाते हुए एक देदीप्यमान ज्योति आकाश-वीथीपर उठी। वह एक कोनेसे दूसरे कोने तक आँखोंको चौंधिया देनेवाली रोशनी फैलाती हुई भ्रमण करती चली और कुछ क्षण बाद आँखोंसे ओझल हो गई।

इस दृश्यको मद्रास, तिरुवण्णामले और उसके आस-पास के प्रदेशमें रहनेवाले लोगोंने अपनी आँखोंसे देखा। ठीक उसी समयपर तिरुवण्णामलेके भगवान् श्री रमण महर्षि महा समाधि को प्राप्त हुए। जब लोगोंको यह बात मालूम हुई तब सब आश्चर्य-चकित हो गये।

लोगोंके मनमें इस बातका विचार उठा कि इन दोनों घटनाओंका एक-दूसरेके साथ कोई सम्बन्ध तो नहीं। बहुत-से लोगोंका यह दृढ़ विश्वास हो गया कि अवश्य दोनोंका कोई न कोई सम्बन्ध होगा। इन दोनों घटनाओंमें कोई सम्बन्ध हो या न हो, इसमें सन्देह नहीं कि हमारे बीचसे एक महान् पुरुष उठ गये। करुणाकी एक महत् ज्योति हमारी ही आँखोंके सामनेसे, इस मर्त्यलोकसे सिधार गई, अबसे हम उस ज्योतिर्मय आत्माको नहीं देख सकते।

× × ×

यह विवाद नया नहीं है कि ईश्वर नामकी कोई वस्तु है या नहीं? जबसे मनुष्यका जन्म हुआ और उसने ज्ञान पाया तबसे यह विवाद लगातार चलता आया है।

वाद-विवादोंसे ईश्वरके अस्तित्वका निरूपण करना सहज कार्य नहीं है। ईश्वरके अस्तित्वके निरूपणमें जितने वाद सहायक हो सकते हैं, उससे कहीं अधिक मात्रामें उनके अनस्तित्वके निरूपणके लिये भी कहे जा सकते हैं। सुननेमें आया है कि आस्तिकतापर संस्कृत भाषामें छः ही ग्रन्थ हैं और नास्तिकताके प्रचारमें बाईससे ऊपर ग्रन्थ हैं। हमारे उपर्युक्त निर्णयके लिए इन ग्रन्थोंकी संख्या ही साक्षी रूपमें हैं।

लेकिन जो लोग यह कहते हैं कि ईश्वर कुछ नहीं है और ईश्वरके अस्तित्वपर ही सन्देह करते हैं, उनके सन्देहको दूर करने और मनको बदलनेके लिए एक ही रास्ता है। 'भाई, यह देखो, ये महान् आत्मा हैं। इनको देखनेके बाद अगर तुमको ईश्वरके अस्तित्वपर विश्वास आये तो विश्वास करो। अगर विश्वास न आये, तो वह भी ईश्वर ही की लीला है। तुम अपने रास्तेपर चलो।' यही कह देना सबसे उत्तम उपाय है।

'यह देखो! इन्होंने ईश्वरसे साक्षात्कार प्राप्त किया है! वे महापुरुष ईश्वरके अस्तित्वका निरूपण करनेवाले हैं!'—इस तरह उदाहरण स्वरूप दिखाने लायक़ एक महान् पुरुष हमारे बीचमें थे, जो हमको छोड़कर अभी हालमें चले गये। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वे ही भगवान् रमण महर्षि थे।

× × ×

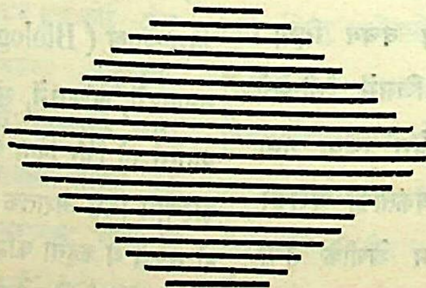
भगवान् रमण महर्षिका जन्मस्थान तिरुच्चुलि (Tiruchuzhi) नामक गाँव है, जो मदुराके पास है। उनके

कारक किरणोंके प्रभावको अध्ययन करनेके लिए कोई साधन उपस्थित नहीं हो सका था, परन्तु इस दुर्भाग्यपूर्ण घटनाके पश्चात् तो जापानके इन दोनों शहरोंमें वैज्ञानिकोंको अवसर मिल गया, मानव-जातिपर इन घातक रश्मियोंके प्रभावको प्रत्यक्ष रूपसे देखने और समझनेका।

जैसा कि पहले लिख चुके हैं कि जहाँतक उन विनाशकारी शस्त्रोंसे सम्बन्ध है, जिनका कि उपयोग मानव इतिहास के पृष्ठोंपर उल्लिखित महायुद्धोंमें आज दिन तक पाया जाता है, परमाणु-बम अपने ढंगका एक निराला शस्त्र है। इन बमोंके कारण जो विध्वंस हुआ वह उन प्राणियों तक ही सीमित नहीं रहा, जो इनके शिकार हुए। परन्तु भविष्यके गर्भमें आनेवाली न जाने कितनी पीढ़ियों तक उनके विषैले प्रभावसे भीषण हानि होनेकी सम्भावना है। केवल तात्कालिक जोखमसे ही यह बम प्राणि-जगत्के संहारका प्रथम श्रेणी का ही नहीं, किन्तु सर्वश्रेष्ठ शस्त्र माना जा सकता था, परन्तु इसकी भीषणता तो इसके भावी खतरोंकी आशंकासे और भी अत्यधिक हो जाती है, जिसकी ठीक तरहसे कल्पना तक करना मनुष्यके लिए सम्भव नहीं। अतः बमके कारण होनेवाली विलम्बीय हानि सम्बन्धी अनेक समस्याओं और विशेषकर उत्पत्ति-सम्बन्धी समस्याओंकी जाँच-पड़ताल करना किसी भी दृष्टिसे एक साधारण कार्य नहीं माना जा सकता था। इस प्रकारकी छान-बीन एवं अन्वीक्षणको वैज्ञानिक व्यवस्थित रूपसे करनेके लिए यह आवश्यक था कि हीरोशिमा एवं नागासाकीमें समस्त जीवित तथा विस्फोटके पश्चात् होने वाले बच्चोंका चिकित्स्य-निरीक्षण (Medical Test) किया जाय और उनका पूर्णरूपसे विवरण रखा जाय। साथ ही तुलनाके लिए यह भी आवश्यक था कि निकटतम सुरक्षित नगर क्यूर (Kure) में भी इसी तरहकी पड़ताल की जाय। इस जाँचका उद्देश्य यही था कि इन तीनों शहरोंमें छोटे बच्चोंकी एवं गर्भवती समस्त बहनोंका पता लगाया जाय। घटना-कमीशनके लिए यह कार्य अपने ढंगका अनोखा एवं विचित्र तो था ही, परन्तु साथमें बहुत जटिल भी था। फिर भी निःसन्देह, उस जापानी कानूनके अनुसार, जिसके अन्तर्गत उन सब गर्भवती स्त्रियोंको, जिनको कि गर्भ-धारण किये हुए चार मासका समय हो चुका था, सिवाय-राशनके लिए अपने आपको राशनिंग कार्यालयमें उपस्थित करना अनिवार्य था, कमीशनका कार्य बहुत कुछ सुगम हो गया। कमीशनके कार्यकर्त्ताओंको जापानी धात्रियोंके साथ भी अपना सम्पर्क बराबर रखना पड़ता था ताकि लज्जावश किसी भी माताके अपनी असामान्य प्रसूति एवं सन्तानको गुप्त रखनेपर भी उसका ठीक-ठीक पता उनको लग जाय।

इस दिशामें जितनी पड़ताल अबतक की जा चुकी है उससे विशेष महत्त्वपूर्ण निर्णयपर नहीं पहुँचनेकी सूरतमें भी यह तो एक प्रकारसे स्पष्ट-सा ही हो गया है कि जहाँतक भीषण बमोंके विस्फोटसे प्रज्वलित रेडियम-धर्मी विषैली तथा प्रवेशक (Penetrating) रश्मियोंके शिकार माताओं तथा पिताओं का प्रश्न है, वहाँ तक अवश्य ही उनकी सन्तानोंमें बेडौल, विकट एवं दोषयुक्त होनेकी सम्भावना बहुत बढ़ गई है। यह सारी मानव-जातिको परमाणु-बमकी सबसे भयानक चुनौती है।

इस प्रकारकी छान-बीन, अनेकानेक कष्ट बाधाओंके होते हुए भी, जारी है। घटना-कमीशनकी यह खोज एवं अन्वीक्षण मानव-कल्याणकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण है।



भगवान् श्री रमण महर्षि

रा० वीलिनाथन्

इस मर्त्य लोकमें जन्म लेनेवाले महापुरुष जब इस स्थूल शरीरको त्यागकर परमपिता भगवान्की शरणमें जाते हैं, तब आकाश मार्गसे एक ज्योतिर्मय पुष्पक विमान आता है और उन महान् पुरुषोंको बड़े आदरके साथ स्वर्गको लिवा ले जाता है—इस बातका इतिहास पुराणोंको पढ़नेसे हमको पता चलता है।

हो सकता है कि ऐसी बातें काल्पनिक हों अथवा अतिशयोक्ति पूर्ण हों। फिर भी हमारे बड़े-बूढ़ोंने हमको यह पाठ पढ़ाया है कि ये कल्पित और वर्णित घटनाएँ, वाह्य संसारकी उन घटनाओंसे कहीं अधिक सत्य हैं जिनको हम अपनी आँखोंसे खुद देखते हैं।

गत १४ अप्रैलकी बात है। शुक्रवारका दिन था। उस दिन रातको पौने नौ बजेके क़रीब, आकाश और भूमि दोनोंमें एक अलौकिक प्रकाश-पुंज फैलाते हुए एक देदीप्यमान ज्योति आकाश-वीथीपर उठी। वह एक कोनेसे दूसरे कोने तक आँखोंको चौंधिया देनेवाली रोशनी फैलाती हुई भ्रमण करती चली और कुछ क्षण बाद आँखोंसे ओझल हो गई।

इस दृश्यको मद्रास, तिरुवण्णामले और उसके आस-पास के प्रदेशमें रहनेवाले लोगोंने अपनी आँखोंसे देखा। ठीक उसी समयपर तिरुवण्णामलेके भगवान् श्री रमण महर्षि महा समाधि को प्राप्त हुए। जब लोगोंको यह बात मालूम हुई तब सब आश्चर्य-चकित हो गये।

लोगोंके मनमें इस बातका विचार उठा कि इन दोनों घटनाओंका एक-दूसरेके साथ कोई सम्बन्ध तो नहीं। बहुत-से लोगोंका यह दृढ़ विश्वास हो गया कि अवश्य दोनोंका कोई न कोई सम्बन्ध होगा। इन दोनों घटनाओंमें कोई सम्बन्ध हो या न हो, इसमें सन्देह नहीं कि हमारे बीचसे एक महान् पुरुष उठ गये। करुणाकी एक महान् ज्योति हमारी ही आँखोंके सामनेसे, इस मर्त्यलोकसे सिधार गई, अबसे हम उस ज्योतिर्मय आत्माको नहीं देख सकते।

× × ×

यह विवाद नया नहीं है कि ईश्वर नामकी कोई वस्तु है या नहीं? जबसे मनुष्यका जन्म हुआ और उसने ज्ञान पाया तबसे यह विवाद लगातार चलता आया है।

वाद-विवादोंसे ईश्वरके अस्तित्वका निरूपण करना सहज कार्य नहीं है। ईश्वरके अस्तित्वके निरूपणमें जितने वाद सहायक हो सकते हैं, उससे कहीं अधिक मात्रामें उनके अनस्तित्वके निरूपणके लिये भी कहे जा सकते हैं। सुननेमें आया है कि आस्तिकतापर संस्कृत भाषामें छः ही ग्रन्थ हैं और नास्तिकताके प्रचारमें बाईससे ऊपर ग्रन्थ हैं। हमारे उपर्युक्त निर्णयके लिए इन ग्रन्थोंकी संख्या ही साक्षी रूपमें हैं।

लेकिन जो लोग यह कहते हैं कि ईश्वर कुछ नहीं है और ईश्वरके अस्तित्वपर ही सन्देह करते हैं, उनके सन्देहको दूर करने और मनको बदलनेके लिए एक ही रास्ता है। 'भाई, यह देखो, ये महान् आत्मा हैं। इनको देखनेके बाद अगर तुमको ईश्वरके अस्तित्वपर विश्वास आये तो विश्वास करो। अगर विश्वास न आये, तो वह भी ईश्वर ही की लीला है। तुम अपने रास्तेपर चलो।' यही कह देना सबसे उत्तम उपाय है।

'यह देखो! इन्होंने ईश्वरसे साक्षात्कार प्राप्त किया है! वे महापुरुष ईश्वरके अस्तित्वका निरूपण करनेवाले हैं!'—इस तरह उदाहरण स्वरूप दिखाने लायक़ एक महान् पुरुष हमारे बीचमें थे, जो हमको छोड़कर अभी हालमें चले गये। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वे ही भगवान् रमण महर्षि थे।

× × ×

भगवान् रमण महर्षिका जन्मस्थान तिरुच्चुलि (Tiruchuzhi) नामक गाँव है, जो मदुराके पास है। उनके

माता-पिताओंने उनका नाम वेंकटरमण रखा था। बचपनसे ही उनका मन अधिक पढ़ने-लिखनेमें नहीं लगता था। जब वे सोलह बरसके थे और 'मैट्रिक' में पढ़ते थे, तब एक दिन उनके मनमें अचानक यह विचार उठा कि मृत्यु-भय क्या है? वे ध्यानावस्थित होकर अपने ही से प्रश्न किये कि मृत्यु क्या है और उसके बाद क्या होगा? वे यह विचार करते-करते लेट गये और अपने शरीरको शव मान लिये। लेकिन फिर भी उनके हृदयकी गहराईसे कोई मानों कह रहा था कि 'मैं हूँ, मैं हूँ'। झट उनको इस बातका ज्ञान हो गया कि यह शरीर मनुष्य नहीं है, इस शरीरके अन्दर जो वस्तु जाग्रत अवस्थामें है वही मनुष्यका अपना स्वरूप है और जो आत्मा कहलाती है। यद्यपि यह निर्णय बहुत पुरातन है, फिर भी उसीने उनके जीवन-प्रवाहको बदल दिया और अपने 'अहं' को जाननेको उत्साहित किया।

बचपनमें उन्होंने तिरुवण्णामले अर्थात् अरुणाचलेश्वरका नाम सुना था। जब वे इस निर्णयपर पहुँचे कि अपने 'अहं'को जानना जरूरी है, तब किसीने उनके कानोंमें 'अरुणाचल, अरुणाचल'का उच्चारण किया। झट उन्होंने ठान लिया कि जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी तिरुवण्णामलेके लिये रवाना हो जाना चाहिए।

एक दिन उनके भाईने वर्ग शुल्क जमा करनेके लिए उनके हाथमें पाँच रुपए दिये थे। रमणने उसमेंसे तीन रुपए लिए और बाकी दो रुपयोंको घरपर ही छोड़ा। उसके साथ उन्होंने एक पत्रमें अपना निर्णय भी लिखकर रख दिया और घरसे चल पड़े।

सारे भारतवर्षमें यह कौन नहीं जानता कि दक्षिण भारत में तिरुवण्णामले नामक एक तीर्थस्थल है। यहीं भगवान् अरुणाचलेश्वरका मन्दिर है। अरुणागिरि नामके एक भक्तने यहीं आकर बड़ी घोर तपस्या की और सिद्धि भी प्राप्त की। उनकी भक्ति-भरी कविताओंका एक संग्रह है जो 'तिरु पुकल' (Tirupukazh) नामसे प्रसिद्ध है और तमिलनाडकी जनता बड़ी भक्तिसे जिसका भजन करती है। यह वही तिरुवण्णामले है, जो ज्ञानी और तपोधनोंको 'आओ, आओ' कहकर स्वागत करता है और भगवान रमण अपने पितृ-गृह छोड़कर भगवान्को प्राप्त करनेकी तीव्रतम लालसासे ही आ बसे थे। उन्होंने यहां आकर बड़ी घोरतम तपस्या की। दुष्ट और अज्ञानी लोगोंने उनकी तपस्या भंग करनेमें कोई कसर उठा न रखी। अतः वे पाताल लिंगम् नामकी गुफ़ामें जाकर सबकी आँखोंसे बचकर तपस्यामें लीन रहे। बहुत दिनों तक वहीं रहे और भूख-प्यास तकको भूलकर साधनामें रत रहे। उनको अपने शरीरकी सुध ही नहीं रही। दीमक जैसे कीड़े-मकोड़े उनके शरीरको खाने लग गये। इन सबकी उन्होंने जरा भी परवाह नहीं की और अपनी साधनामें ही डटे रहे। सहज निर्विकल्प समाधिमें समाधिस्थ ही रहे। उन्होंने इस बातका निरूपण कर दिया कि बहुत प्राचीन-कालके ऋषि-मुनियोंके सम्बन्धमें हमने जो-कुछ सुना या पढ़ा है, वह अक्षरशः सत्य है।

ऐसी ही दशामें काव्यकण्ठ गणपति शास्त्री नामके एक महापुरुषने भगवान् रमणको देखा और उनको अर्थात् वेंकटरमणको 'रमण महर्षि' के पदसे विभूषित किया। यही नहीं, संसारको भी ऋषिका परिचय कराया तबसे लोगोंने रमण महर्षिको जाना। तबसे देशके कोने-कोनेसे ज्ञानी और अज्ञानी सब तरहके लोग महर्षिके दर्शनके लिए और मनःशान्ति प्राप्त करनेके लिए रमणाश्रमको आने-जाने लगे। ज्ञान-विज्ञानके ज्ञाता कितने ही यूरोपीय सज्जन भी रमण महर्षिके आश्रममें आ ठहरने लगे और बाह्य संसारमें कहीं भी प्राप्त न कर सकनेवाली मनःशान्तिको प्राप्त करने लगे।

इस तरह महर्षिका यश यद्यपि कोने-कोनेमें फैल गया, फिर भी भगवान् रमणके मनोभाव या तपोजीवनमें किसी तरहका परिवर्तन नहीं हुआ। उनकी रहन-सहन भी जैसेकी तैसी रही। वे कभी भी उपदेश या व्याख्यान नहीं देते थे। अधिकतर वे मौन ही रहा करते थे। अगर कभी कुछ बोलते भी थे तो शब्दोंको गिन-गिनकर रखते थे। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि भगवान् उस अकथनीय ब्रह्मकी एक ही शब्दसे ऐसी व्याख्या कर देते थे कि जिससे उस अगोचर ब्रह्मकी स्वरूपानुभूति पाना सहल कार्य हो जाता था।

"चित्रं वट तरोर्मूले, वृद्धाश्शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्न संशयाः।"

इस श्लोकमें दक्षिणा-मूर्तिकी जिस दैवी शक्तिका वर्णन किया गया है, वही दैवी शक्ति भगवान् रमणमें भी मौजूद थी। उनके दर्शन करने और उनके निकट ठहरने मात्रसे ही पारमार्थिक दशाका अनुभव लोगोंको प्राप्त हो जाता था। अगर कोई मनमें किसी सन्देहको लेकर उनके पास जाता तो भगवान्की ज्योतिर्मय कृपादृष्टिके पड़नेसे ही, उसका वह सन्देह आप-ही-आप दूर हो जाता था।

भगवान् रमण प्रेमके पुतले थे। कथा-पुराणोंमें हमने पढ़ा है कि अमुक ऋषिके आश्रममें सिंह और हिरन एक ही घाटपर पानी पीते थे और पारस्परिक स्नेहके साथ रहते थे। भगवान् रमणके आश्रमकी हालत भी वही थी। भगवान् रमण पशु-पक्षी, मनुष्य सबसे समान प्रेम रखते थे।

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि भगवान् रमण महर्षिने संसारका क्या भला किया? भगवान्ने वैदिक कालके ऋषि-मुनियोंकी तरह परमार्थका उपदेश जो दिया है, क्या वही काफ़ी नहीं है? उनके जैसे महात्माओंके कारण ही तो आज हमारा भारतवर्ष आध्यात्मिक उन्नतिमें समस्त संसारके सामने सिर उठाकर गर्वके साथ खड़ा है और अध्यात्म विद्यामें समस्त संसारके लिए गुरु भी बना है।

भगवान् रमण महर्षिसे एक बार किसी शिष्यने पूछा, "आप क्यों अपने सिद्धान्तोंका प्रचार नहीं करते?"

भगवान्ने जवाब दिया, "तुमको कैसे मालूम है कि मैं प्रचार नहीं करता? प्लेटफार्मपर खड़े होकर एक बड़ी भीड़ इकट्ठी करके, उसके सामने व्याख्यान झाड़ना ही प्रचार है? नहीं, यह न समझो। हजारोंकी संख्यामें व्याख्यान झाड़नेसे कहीं अच्छा 'मौन' है। अगर मेरे सिद्धान्त खरे निकलें तो आप-ही-आप उनका प्रचार होगा।"

एक बार स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाज और राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद भगवान् रमणके दर्शन करने आये थे। विदा होते समय श्री राजेन्द्रप्रसादने महर्षिसे कहा, "हम पूज्य बापूजीका आदेश पाकर आपके दर्शन करने आये हैं। बापूके लिए आप कोई सन्देश सुनाना चाहते हैं?

भगवान्ने अपनी सर्व सहज मुसकानके साथ कहा, "सन्देश तो मैं क्या दूँ? यहाँ जो शक्ति काम कर रही है, वही शक्ति वहाँ भी काम कर रही है। ऐसी अवस्थामें सन्देशकी क्या जरूरत?"

भगवान् रमण भारतको स्वतन्त्र देखना चाहते थे। स्वतन्त्रताके विषयमें उनकी राय थी कि मनुष्यके लिए जैसे आत्म-मुक्तिकी आवश्यकता है, वैसे ही स्वतन्त्रताकी भी आवश्यकता है। आजादीसे बढ़कर आनन्द देनेवाली वस्तु कोई नहीं है, आजादी हजारों नियामतोंसे बढ़कर है।

भगवान् रमण महर्षि अपने स्थूल शरीरको त्यागकर, उस सच्चिदानन्द परब्रह्ममें लीन हो गये, जो एक होते हुए भी अनेक है, अनेक होते हुए भी एक है और समस्त जीवराशियोंमें विद्यमान है।

आदि कालसे यह भारत पुण्यभूमि कितने ही ऐसे महान् पुरुषों, महात्माओं, महर्षियों, अवतार पुरुषों और देव पुरुषोंकी जन्मदात्री रही है। वे सारे-के-सारे महान् पुरुष अपनी इस भौतिक देहको त्यागकर परमपिता भगवान्की शरणमें चले गये। पर उनकी अमरवाणी और करुणा-ज्योति आज भी इस संसारमें विद्यमान है और अपने प्रकाश-पुञ्जसे समस्त संसारका कल्याण कर रही है। इसमें सन्देह नहीं कि उसी तरह भगवान् रमण महर्षिकी करुणा-ज्योति सारे संसारमें फैलकर हमारे पुनीत-पवित्र भारत पुण्यभूमिका नाम उज्ज्वल करती रहेगी।



फीजीके मज़दूर

कमला प्रसाद

मज़दूरोंका आगमन

पूँजीपतियोंकी शोषण-नीति मानवताके मुखपर एक काला धब्बा है। जब तक मानव-जातिका इतिहास सुरक्षित है तब तक इस कालिमाकी स्मृति भी सुरक्षित रहेगी। फीजीका इतिहास पूँजीपतियोंकी शोषण-नीतिका एक नमूना है। प्रारम्भ में फीजी ब्रिटिश और अमेरिकन कूटनीतिका एक क्रीड़ाक्षेत्र था। किन्तु अमेरिकाकी लापरवाही और ब्रिटिश चातुर्यके कारण १० अक्टूबर १८७४ को फीजीके आदिम निवासियोंने फीजी द्वीप-समूहकी बागडोर महारानी विक्टोरियाको सौंप दी।

तत्पश्चात् गोरे पूँजीपतियोंने फीजीमें, पूँजी अर्जनके लिए, क्रीत दासके रूपमें मजदूरोंको लाना प्रारम्भ किया। सबसे पूर्व सोलोमन द्वीप-समूहके आदिम निवासियोंपर उनकी दृष्टि गई। रेवरेण्ड मोरेन[1]के कथनानुसार "Men and women boys and girls were stolen from their soloman island homes and brought down to Fiji to work in the plantations There. Soloman island labour wos replaced by Indian labour round about 1879. Of course, it wasn't profitable to return all the soloman islanders to their homes, many of them were left in Fiji, landless and derelict." अर्थात् "स्त्री-पुरुषों, बालक-बालिकाओंको सोलोमन द्वीपके घरोंसे चुराकर, खेतोंमें काम करनेके लिए, फीजी लाया गया। १८७९ के लगभग सोलोमनवासी मजदूरोंकी जगह भारतीय मजदूर लाये गये। हाँ, सोलोमनवासी मजदूरोंको फिर सोलोमन भेज देनेमें पूँजीपतियोंको कुछ लाभ नहीं था इसलिए वे क्षीण, गृहहीन अवस्थामें फीजीमें ही छोड़ दिये गये।" आज भी वे फीजीकी राजधानी सूवाके आस-पास बसे हुए हैं तथा उन्हें मेलेनीशियन-भंगी (Melanesian-scavengers) कहा जाता है।

भारतीय मजदूरोंने गिरमिटकी गुलामीमें किन-किन नारकीय यन्त्रणाओंको सहा है इसपर दीनबन्धु एण्ड्रूज, पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० तोताराम सनाढ्य आदि सज्जनोंने पर्याप्त प्रकाश डाला है।

एक जहाज भरकर चीनी मजदूरोंको भी, कुलियोंके रूपमें, फीजी लाया गया था। भारतीयोंकी अपेक्षा उन्हें दूनेसे भी अधिक वेतन दिया जाता था। किन्तु कुली लाइनकी दिल दहलानेवाली दशा तथा अत्यधिक काम करानेकी पाशविक प्रथाको देखकर उन्होंने गदर मचा दिया। चीनी जातीय-सभा, सूवाके प्रधानने आकर निरीक्षण किया और गिरमिटके वातावरण तथा रहन-सहनको अत्यन्त घृणित बतलाया। जिसके परिणाम स्वरूप चीनी मजदूरोंको चीन लौटा दिया गया।

भिन्न-भिन्न व्यवसायोंके मज़दूर

फीजीमें मजदूरोंकी निश्चित संख्या प्रामाणिक तौरपर नहीं बताई गई है। १९४४ में फीजीकी जनसंख्या २,४६,५०० के लगभग थी। कमिश्नर आफ़ लेबरने १९४४ के वार्षिक रिपोर्टमें बताया है कि फीजीमें साधारण समयमें ५ प्रतिशत मनुष्य मजदूरी करते हैं। चीनी-मिल, नारियल-व्यवसाय, सरकारी विभाग (P. W. D.) और सोनेकी खानोंमें काम करनेके लिए अधिकतर मजदूर नियुक्त किये जाते हैं। १९४० में सोनेकी खानमें १,७१५ मजदूर कार्य करते थे। १९४६ में सी० एस० आर कम्पनीमें काम करनेवाले मजदूरोंकी संख्या २,७७८ थी। जिनमें अधिकतर मजदूर कम्पनीके लाइनमें ही रहते हैं। भारतीयों और काईबीतियोंके लिए बैरक-तुल्य एक

---

1. Church Gazette No. 70 may 1946, Auckland.

लम्बा घर कई भागोंमें विभक्त है तथा गोरों और अर्द्धगोरोंके लिए पृथक-पृथक गृह हैं। अधिकतर भारतीय और काईवीती ही मजदूरी करते हैं।

मज़दूरोंका वेतन

मजदूरोंके वेतनका विषय एक अन्तर्राष्ट्रिय विषय है जिस पर अन्तर्राष्ट्रिय मज़दूर-संघ (I. L. O.) विचार कर रहा है। न्यूज़ीलैण्ड तथा अन्य देशोंकी मजदूर सरकार भी इसे राष्ट्रिय रूप दे रही है तथा अनेक कानूनों द्वारा पूँजीपतियोंकी स्वेच्छाचारिताको रोक रही है। फीजीमें अबतक कोई ऐसा बोर्ड या मिशनरी नहीं है जो मज़दूरोंके लिए उचित रहन-सहन का निश्चय तथा उसीके अनुसार वेतन निश्चित कर सके। १९३९ में सी० एस० आर० कम्पनीके मजदूरोंका वास्तविक वेतन (Basic wage) एक शिलिङ्ग आठ पेनी था। १९४३ में भी उनका वास्तविक वेतन यही था, किन्तु युद्ध-भत्ता (War Bonus) तथा चीजोंके दाम बढ़ जानेके कारण भत्ता (Cost of living bonus) देकर चार शि० तथा तीन शि० चार आना कर दिया गया था। चार शि० सूवाके लिये था। वस्तुओंके दाम घटने-बढ़नेके साथ-साथ मजदूरी भी घटती-बढ़ती रहती है। १९४५ में पूरी मजदूरी चार शि० दो पेनी थी।

सी० एस० आर० कम्पनी फीजीमें जिस कामको करनेके लिए भारतीय मजदूरोंको १ शि० ८ पे० वास्तविक मजदूरी देती है उसी कामको आस्ट्रेलियामें करनेके लिए गोरे मजदूरोंको यही सी० एस० आर० कम्पनी १६ शि० ८$\frac{६}{१२}$ पे० से लेकर १७ शि० ५$\frac{४}{१२}$ पे० मजदूरी देती है[२]; १९४५ के अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-संघ (I. L. O.) की २७ वीं बैठकमें १४वां प्रश्न यह था—

Do you Consider that provison should be made for the principle of equal wages for equal work ?

अर्थात् क्या आप चाहते हैं कि समान कार्यके लिए समान वेतनकी व्यवस्था की जाय। आस्ट्रेलियाने इसका उत्तर 'हाँ' दिया। किन्तु ग्रेट ब्रिटेनका उत्तर यह था—"ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत अनेक भागोंमें यह व्यवस्था पहलेसे ही जारी है किन्तु जहाँ कई प्रकारकी जातियाँ बसी हैं तथा उनके रहन सहनका खर्च भिन्न-भिन्न है वहाँ शीघ्र ही ऐसी व्यवस्था करना क्रियात्मक नहीं है"[३]। फीजीमें ग़ैरयूरोपियन और यूरोपियन तथा अर्द्ध यूरोपियन समुदायकी सुविधाओं और व्यवस्थामें भारी अन्तर है।

फीजी द्वीपके 'ट्रस्टी' बननेवालोंको तो पता भी नहीं है कि फीजीमें मज़दूरोंको कितना वेतन मिलता है। ७ जुलाई १९४६ को 'हाउस आफ कामन्स' में मि० डेविसने प्रश्न किया—

"क्या औपनिवेशिक मन्त्रीको पता है कि फीजीमें ८ शि० से १० शि० तक मजदूरी मिलती है तथा मजदूरोंके मकानोंका किराया सात पौण्ड प्रतिमास है ?"

औपनिवेशिक मन्त्री—"मैं शीघ्र ही इस विषयपर ध्यान दूँगा।"

फीजीके इतिहासमें चार शि० दो पे० से अधिक मजदूरी कभी नहीं रही।

हड़ताल और उसके कारण

जीनेकी इच्छा मनुष्यकी एक प्रबल इच्छा है। जब मजदूरोंका वेतन अत्यन्त कम करके उनके जीवन-निर्वाहको कठिन बना दिया जाता है तब हड़ताल और विद्रोहकी उत्पत्ति होती है। फीजीमें भी मजदूर जीवन-निर्वाहके लिए हड़ताल करते आये हैं। १९२० में खाद्य पदार्थों और कपड़ोंका भाव तिगुना बढ़ जानेके कारण मजदूरोंने हड़ताल की। उनकी माँग थी कि उनकी मजदूरीको २$\frac{१}{२}$ शि० से ५ शि० कर दिया जाय। हड़तालियोंपर गोली चलाई गई। अनेक व्यक्तियोंको फीजीसे निकाल दिया गया। हड़तालियोंका दमन करके 'पूर्ण शान्ति' स्थापित कर दी गई।

दूसरी हड़ताल फिर १९२१ में हुई जिसमें १२ शि० मजदूरी माँगी गई। इस हड़तालको भी दमन द्वारा शान्त कर दिया गया। फल-स्वरूप मजदूरोंने फिर व्यापक हड़ताल

२. Cane Sugar in Australia, W. E. Smith Ltd. Sydney.

३. Report V International labour office, Montreal.

करनेका शीघ्र साहस नहीं किया। किन्तु १९४२ में आवश्यक वस्तुओंका भाव फिर अत्यधिक बढ़ जानेके कारण २१ जून, १९४३ को मजदूरोंने फिर हड़तालकी घोषणा की। १ जुलाई तक हड़तालने व्यापक रूप धारण कर लिया। इस बार मजदूर अधिक संगठित थे तथा चीनी मज़दूर-संघ नामक संस्थाको सरकारने रजिस्टर्ड कर लिया था। डिरेक्टर आफ लेबरने मजदूरोंका वेतन बढ़ाना चाहा, किन्तु कम्पनीने इसे स्वीकार नहीं किया। युद्धका समय था, सरकारने समझौतेके लिये एक 'नेशनल आर्बिट्रेशन ट्रिब्यूनल' नियुक्त किया। ट्रिब्यूनलने १९३९के रहन-सहनको क़ायम रखनेके लिये कितनी मजदूरीकी आवश्यकता है—इसपर विचार करते हुए युद्ध-भत्ताके अलावा २½ पे० प्रति दिन वेतन-वृद्धिकी सिफारिश की। तथा समय-समयपर रहन-सहनके खर्चकी सूची तैयार करने और उसीके अनुसार मजदूरी-घटाने बढ़ानेका भी अनुरोध किया। मजदूरोंने ट्रिब्यूनलकी सिफारिशोंको स्वीकार कर लिया और अब तक उसीके अनुसार मजदूरी मिल रही है। मजदूर १९३९ के समान ही जीवन-निर्वाह कर रहे हैं।

मज़दूर संगठनमें कानूनी अड़चनें

फीजीमें अब तक क़ानून पूँजीपतियोंके अनुकूल तथा किसानों और मजदूरोंके प्रतिकूल रहा है। १९४५ में ६ भारतीय मजदूरोंपर "दि मास्टर्स एण्ड सर्वेन्ट्स आर्डिनेन्स आफ १८९०" के अनुसार मुकदमा चलाया गया। यह कानून किसी भी प्रजातन्त्रवादी राष्ट्रके लिए कलंक स्वरूप है। इसके अनुसार मजदूरों और खरीदे हुए गुलामोंमें बहुत कम अन्तर रह जाता है। हर्षकी बात है कि अभी हाल ही में यह कानून रद कर दिया गया है। १९४५में ही ९७ काईबीती मजदूरोंपर "फीजियन्स लेबर आर्डिनेन्स आफ १८९५" के अनुसार मुकदमा चलाया गया। यह कानून भी मजदूरोंकी स्वतन्त्रताको अपहरण करनेके लिये बनाया गया था।

ट्रेड यूनियन, लेबर यूनियन, तथा फेडरेशन आदि स्थापित करनेमें भी कई कठिनाइयां हैं। एक व्यवसायमें मजदूरी करनेवाले मजदूरोंके ही यूनियनको रजिस्टर्ड किया जा सकता है। चीनीके मजदूर और नारियल व्यवसायके मजदूरोंका एक संघ नहीं बनाया जा सकता। इसके कारण भिन्न-भिन्न व्यवसायके मजदूरोंका संगठन नहीं हो सकता। फेडरेशनके विषयमें भी यही आपत्ति है।

मज़दूरोंकी माँग

फीजीके मजदूर एक मानव नागरिकके समान जीवन-निर्वाह करना चाहते हैं। इसलिये उनकी माँगें हैं कि—

१. एक नागरिकके उत्तरदायित्वको पूर्ण करनेके लिए किस प्रकारके रहन-सहन (Standard of living) की आवश्यकता है इसे निश्चित करनेके लिये एक बोर्ड स्थापित किया जाय।

२. बोर्ड द्वारा निश्चित रहन-सहनके लिये कितनी मजदूरीकी आवश्यकता है इसे निश्चित करनेके लिए एक समिति (Wage Fixing Body) बनाई जाय।

३. फीजीमें अधिकतर मजदूर महाजनोंके कर्जके नीचे दबे हुए हैं। कोई तो आजीवन ब्याज ही भरते रहते हैं। इसे दूर करनेके लिए कोआपरेटिव समितियों तथा बैंककी आवश्यकता है। सरकारकी सहानुभूति तथा सहयोगसे ऐसा किया जा सकता है।

४. जब तक मिलमें काम होता है तभी तक मजदूर काम करते हैं। मिल बन्द होनेके पश्चात् कुछ महीनोंके लिए मजदूर बेकार हो जाते हैं। मजदूरोंके लिए अपनी निजी जमीन भी आवश्यक है जिससे बेकारीके समय वे कुछ कर सकें।

उपर्युक्त चारों माँगें अत्यन्त आवश्यक हैं। काम करनेके लिए कितने घण्टेका दिन हो तथा कितने दिनका सप्ताह हो और अधिक समय (Over time) के लिए अधिक मजदूरीपर मजदूर-संघ और सी० एस० आर० कम्पनीमें समय-समयपर वार्त्तालाप होता आया है। मजदूरोंकी अन्य कठिनाइयोंको भी दूर करनेके लिए मजदूर-संघ बराबर प्रयत्न कर रहा है। मजदूर-संघके प्रधान श्री नन्दकिशोरजीकी इच्छा है कि भारतवर्षके विभिन्न मजदूर-सभाओंके साथ वे सम्पर्क स्थापित कर सकें। संघका मुख्य कार्यालय 'बा' जिलामें है। प्रधान, चीनी मजदूर-संघ, Ba, Fiji के पतेपर पत्र-व्यवहार किया जा सकता है।

दैत्यत्व और देवत्व

मित्तल

मानवको खींच रहा प्रतिपल,
दैत्यत्व इधर, देवत्व उधर;
दोनों का रूप मधुर सुन्दर,
दोनों का मिश्री - मिश्रित स्वर

दैत्यत्व दिखाता जग-वैभव,
मधु-मधु यौवन, मधु का उपवन
कहता, "यह जीवन दो पल का
तू, भोग सभी सुख के साधन

ओ रूपवान, यौवन के वर,
बढ़ चल यौवन की मंजिल पर
औ' पहुँच प्यार की दुनिया में
जो मादक है, जो सुन्दर तर

खो अपने को, खो अपनापन,
कर ले मधु में जीवन यापन
सब प्यार लुटा दे यौवन का
संचय कर ले मधु जीवन - कण

यह यौवन भी क्षण - भंगुर है,
यह जीवन भी क्षण भंगुर है
परिवर्तनमय है सृष्टि सभी
जीवन परिवर्तन का पुर है।

जो स्वर्ग - स्वर्ग चिल्लाता है
वह स्वर्ग मधुर मिल जायेगा
इस जगती पर ही अरे मनुज,
साकार स्वर्ग मधु पायेगा।

चल-चल उठ, अपने बढ़ा कदम
अपने यौवन की मंजिल पर
कुछ सोच-समझ मत रे पगले
पा जीवन - मधु, बन अजर अमर"

मानव दो डग ही बढ़ पाया,
बोला देवत्व उसे कह कर—
"तू चला किधर ओ मनुज, आज
ये तेरे पग हैं किस मग पर?

तू ज्ञानवान, तू गुण - निधान,
तू अन्धकार से उठ ऊपर,
मन बुद्धि तत्व से देख सत्य—
को और सत्य की अमर डगर

अपने यौवन के मद में तू
बढ़ रहा वासना के पथ पर
औ' बेच रहा स्वर्णिम जीवन,
इस कलुष प्यार धन के ऊपर

वह स्वर्ग जिसे तू समझ रहा,
है स्वर्ग नहीं, दुःख नरक अमर
वह मधुर प्यार की दुनिया है
छलना माया का रूप सुघर

तू उस माया की दुनिया में,
खो देगा अपना मानवपन,
औ' मधु प्रकाश को छोड़ वरण—
कर लेगा दुःखतम का जीवन

तू मानव है, मानव ही रह,
जग-जीवन को कर सुन्दरतम,
अपने यौवन के मधु - रस से,
भर दे जग में जीवन अनुपम

तू मानवता का रूप देख,
कितना मैला औ' जर्जर तन!
दुःख, उत्पीड़न की रेख-रेख से,
अंकित है उसका आनन

तू लौट अरे, अपने पथ पर
बढ़ चल अपने जीवन - पथ पर
सुख-शान्ति मिलेगी मनुज तुझे,
होगा जीवन भी अजर - अमर"

मानव उस पथ से लौट पड़ा
उसने पाई थी नई किरण
बढ़ चला सुभग अपने पथ पर
था दमक रहा उसका आनन।



मानव-जीवन और प्रगतिवाद

रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

पाश्चात्य भौतिकवादके बवण्डरमें भटकता हुआ आजका कलाकार जीवनके यथार्थ स्रोतको समझनेमें अपनेको असमर्थ पा रहा है। सृष्टि और सर्वनाशके सिद्धान्तोंके बाहर वह ऐसे विधानकी शोधमें संलग्न है, जो उसकी कलाको अमर कर सके। वह अपने इस उद्देश्यको उपयोगितावादके आवरणमें ढँककर नवीनतम रूपमें समाजके सम्मुख प्रस्तुत करना चाहता है। संघर्ष और प्रतिक्रियाकी आग्नेय चट्टानोंसे टकराता हुआ जीवन आज भी अपने अस्तित्वकी रक्षा करनेमें समर्थ है; परन्तु अपनी कलाको अमरता देनेका लोभ संवरण न कर सकनेके कारण आजके कलाकारकी वाणी उसकी रक्षाके लिए आकुल हो अपना धरातल छोड़ती और सौन्दर्यका ह्रास करती जा रही है। फलतः जीवन नीरसता और नीरवताकी ओर उन्मुख दिखाई देता है।

चेताचेतन निखिल सृष्टि प्रगतिके आधारपर जीवित है। जल, अनिल, अनल—सब प्रगति-बद्ध हैं। प्रगतिहीन पिण्ड सजीवताका दावा नहीं कर सकते। आकाशमें नित्य नया प्रकाश आता, नई चमक लेकर नित्य तारे निकलते तथा नवीन ज्योत्स्ना भरकर चाँद मुसकाता है। धरतीके लता-द्रुम नित्य नया रूप धारण करते तथा उनमें नित्य नया रूप लेकर प्रसून हँसते हैं। जीवन प्रगतिशील होनेके कारण ही 'जीवन' नाम सार्थक कर सका है। प्रगतिसे दूर वह निर्जीव और अस्तित्व-हीन है। परन्तु आजके कलाकारका मस्तिष्क इस तथ्यको सहज स्वीकार नहीं करना चाहता। वह व्यापक और गम्भीर दृष्टिके सहारे अपनी प्रतिभा और चेतना शक्तिको अन्तर्मुखी बनाकर जीवनका शाश्वत सत्य नहीं समझना चाहता। वह देश, काल और अपनी स्थिति भूलकर किसी सातवें आकाशमें उड़ जाना चाहता है। वह इस उड़ानके अतिरिक्त अन्य किसी गतिको प्रगतिकी संज्ञा नहीं दे सकता। 'रति और रोटी'को जीवनका आधार मानकर चलनेवाले 'फ्रायड' और 'मार्क्स' के चरण-चिह्न उसे प्रगतिकी यथार्थ परिभाषा व्यक्त करते दिखाई देते हैं। उसने जबसे मार्क्सवादमें प्रगतिके नए स्वरूप के दर्शन किए हैं, तबसे वह यह माननेको बिलकुल भी तैयार नहीं कि संसारने पहले कभी किसी क्षेत्रमें प्रगतिका भी सम्मान किया था।

भारतीय साहित्यके सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी कलाकार 'वाल्मीकि' जो शील और शान्तिकी मूर्ति थे—

> "मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वतीः समाः
> यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।"

—गा उठे थे। श्रोताओंके हृदय इसे पूतवाणीमें मिलकर एक अलौकिक आनन्दका अनुभव कर उठे थे। शोक श्लोक बन, महाकाव्यका आधार बना। परन्तु आजके कलाकारको वह क्रान्तिकारी कवि जिसकी वाणीसे परमपूत-धारा प्रसूत हुई—प्रगतिवादी दिखाई नहीं देता। कारण स्पष्ट है; प्रगतिकी वह धारा जो युग-युगान्तरोंसे स्वच्छन्द प्रवाहित होती आई थी, आजके कलाकारकी नपी-तुली परिभाषामें बँधनेको विवश हो रही है।

और तभी तो इस मार्क्सवादी प्रगतिवादके हिमायती एक तथाकथित प्रगतिवादी लेखक अपने एक निबन्धके अन्तर्गत लिखते हैं—

"वाल्मीकि, कालिदास और तुलसीदासमें से...शायद...कोई जीवित होकर आता तो सम्भवतः वह स्वयं अपने पुराने रूपपर हँसता या सहानुभूतिपूर्वक कहता—"ओह! तब मानव-जाति कैसी शैशवावस्थामें थी। समस्याएँ कितनी सरल थीं।" आज वाल्मीकि या होमरको, कालिदास या शेक्सपीयर को कथा बाँचकर जनाश्रय या राज्याश्रय सहज नहीं मिलता। उसे अपनी काव्य पुस्तककी कितनी आवृत्तियाँ बिकें और उसका प्रकाशक उसे कोर्स करा सका है या नहीं, उसे अमुक पुरस्कार प्राप्त हैं या नहीं—आदि बातोंका भी विचार करना ही पड़ता।

परन्तु वादोंकी वादीके कारण हमारी बुद्धिको भी अजीर्ण हो जाय, यह किसी भी प्रकार जीवनके लिए कल्याणकारी नहीं कहा जा सकता। जनता 'रति, रोटी और कला'के पारस्परिक सम्बन्धको भली भाँति समझती है। वह भली-भाँति जानती है

कि कला आर्थिक और राजनीतिक समस्याओंको सुलझानेका भार अपने ऊपर लेकर प्रचारकी वस्तु नहीं बना करती, बल्कि आत्मा और हृदयके सौन्दर्यको ढूँढ़कर जीवनके धरातलपर रखा करती है। यही वह सौन्दर्य है, जो प्राणीकी भौतिक और आध्यात्मिक भूख मिटाता है। अभावग्रस्त मानव-जीवन को भूलकर आजतक भारतीय साहित्यका कोई कवि आगे नहीं बढ़ा। सबने पीड़ित मानवताको प्रगतिके मुक्त वातावरणमें साँस लेनेका स्वर्ण अवसर प्राप्त कराया है। वाल्मीकि तथा तुलसी, जो कि संसारके सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी कवि थे, "आजके प्रगतिवादी युगमें (?) कहीं अदर्शित रूपमें मुरझा जाते।" इसीसे जान पड़ता है कि आजका प्रगतिवादी कलाकार मानव जीवनके साथ कौन-से खेल खेल रहा है।

रूसकी राजनीतिका आधार मार्क्सवाद—जिसे रूसी कलाकारोंने भी सिद्धान्तसे अधिक और कुछ नहीं माना—नवीनता के भूखे हमारे कलाकारोंके लिए एक दर्शन बनता जा रहा है। मैं मार्क्सवादी सिद्धान्तोंका विरोधी नहीं हूँ, परन्तु उनके प्रयोग के सम्बन्धमें देश-कालकी सावधानीका अत्यधिक पक्षपाती हूँ। इसका कारण यह है कि यदि किसी आर्थिक या राजनीतिक सिद्धान्तको, जो कि किसी विशेष समय तथा देश-विशेषके लिए निर्मित हुआ हो, ज्यों-का त्यों प्रत्येक समय और प्रत्येक देशपर प्रयुक्त किया जायगा तो इससे मानव-जीवन तथा प्रगतिके साथ घोर अन्याय होनेकी आशंका है। मैं अपनेको पक्का प्रगतिवादी मानता हूँ, परन्तु साहित्यमें उपयोगितावादको लेकर आज जो प्रगतिवाद रूढ़िवादके आवरणमें बढ़ता आ रहा है उसकी परिभाषामें मुझे कोई बाँधनेमें सफल नहीं हो सकता।

कहनेका अर्थ यह है कि मैं मानव-जीवनकी सर्वाङ्गीण प्रगतिके सिद्धान्तोंको ही सच्चा प्रगतिवाद मानता हूँ। कलाको प्रचारका साधन बना लेनेसे न जीवन प्रगति कर सकता है, न कला। युग-युगके सभी कलाकारोंने इस तथ्यको मानकर ही अपनी कलाको अमर बनानेमें सफलता प्राप्त की थी। उन्होंने कभी भी अपनी कविताको विज्ञापनका साधन समझकर यों सम्बोधित नहीं किया था—

> "तुम वहन कर सको—
> जन-जनमें मेरे विचार।
> मेरी वाणी, चाहिए तुम्हें
> क्या अलङ्कार?"

मानव-जीवनको समझने वाला सच्चा प्रगतिवादी, समझमें नहीं आता, यह कैसे भूल जाता है कि कविता मस्तिष्ककी नहीं हृदयकी वस्तु है; वह केवल भावोंका कोमल भार सँभाल सकती है, विचारोंका कठोर भार नहीं।

मानव जीवनकी समस्याओंको केवल काम और अर्थ—दो पहलुओंपर सुलझानेवाले प्रगतिवादी साहित्यकार जन-जनकी भौतिक भूख बुझानेके द्रोहात्मक प्रयत्न मात्रमें अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझ रहे हैं। शेष दो पहलुओं—धर्म और मोक्ष—को ठुकरा करके आत्माको भूखा रखना चाहते हैं। और उसका यह परिणाम हो रहा है कि मानव-जीवन निष्प्राण हो लड़खड़ाता हुआ चलने लगा है। मानवका भविष्य अन्धकाराच्छन्न है। उसपर भी आश्चर्य तो यह है कि ये कलाकार अपने समाजके साथ-साथ अपनेको भी अमर समझते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि काम और अर्थको सब कुछ मानकर चलनेवाले कलाकार स्वयं ही मुर्दा नहीं हो गए, अपितु उनकी कलाएँ भी निर्जीव हो गईं।

अतः प्रगतिवादको मार्क्सवादकी कसौटीपर कसनेके लिए एक शताब्दी पीछे लौटना और उससे उसे बाँध देना मानव-जीवनके साथ न्याय नहीं। हाँ, मार्क्सके सिद्धान्तोंको प्रगतिवादकी कसौटीपर कसा जा सकता है। परन्तु कला इसके लिए विस्तृत क्षेत्र कभी प्रदान नहीं कर सकती। कारण, मार्क्स बौद्धिक संस्कृतिका प्रतिपादक है, जब कि भारतीय कलाका क्षेत्र वह संस्कृति है, जिसका आधार आध्यात्मिक रहा है। यहाँके कविकी वाणी जब किसी दलितकी दशापर द्रवित हुई है, तब करुणाकी ऐसी शीतल धारा बनकर बही है, जिसमें निमग्न होनेके लिए बड़े-बड़े राजाओंने राज्य त्यागा, धनिकोंने कुबेरकी सम्पत्ति त्यागी और भगवान्‌ने अपना स्वर्ग छोड़ा। छटपटाते बंगालीको केवल वाणीका चन्दा देकर हमारे पुराने प्रगतिवादी कलाकारोंने इस प्रकार कभी सन्तोष नहीं किया:—

> "मेरे पैसे या दो पैसे
> किस मसरफके तुमको होते?

इसीलिए यह अपनी वाणी,
तुम्हें भेजता हूँ चन्देमें !
सम्भव है तुमको कुछ बल दे
और कालिका करे प्रेरणा
निकल पड़ो तुम सहसा कहकर
अपनी रोटी, अपना राज
इन्क्लाब जिन्दाबाद।"

निर्बलोंमें जीवन फूँकनेवाला जो मन्त्र तुलसी 'निर्बलके बल राम' कहकर दे गए, उसकी उपेक्षाकर आजका प्रगतिवादी तुलसीसे श्रेष्ठ कलाकार बननेका दावा भले ही कर ले, उनके चरणोंकी धूलकी भी समानता नहीं पा सकता। हमें तो यह पढ़कर हँसी आती है कि

"निर्बलके बल राम !
हाय, किसीने क्यों न बताया
निर्बलके बल राम नहीं हैं
निर्बलके बल हैं—दो घूँसे !
तब न राम टस-से-मस होते
नहीं बरसते तुमपर रोटी
बुरुआ, बोटी
जब तुम अपना भाग्य कोसते
मन मसोसते—
यही बदा था,
यही लिखा था।
'हुइहै वहै जो राम रचि राखा'
अन्तिम साँसोंसे रट-रटकर
तुम जाते मर।"

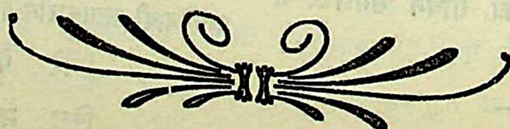
हिन्दीवालोंका बड़ा सौभाग्य है कि अब उन्हें यह बतानेवाले कलाकार मिलते जा रहे हैं कि निर्बलका बल राम (ईश्वर प्राण, आत्मा, आत्मशक्ति, रामचन्द्र) नहीं, केवल दो घूँसे हैं ! दो घूँसे ? थोड़ी देर सोचिए तो सही, जो निर्बल ही है, उसके दो घूँसे कैसे सबल हो सकते हैं ? कैसी हास्यास्पद बात है ! गम्भीर सागरमें बेचारे निर्बलको विशाल जलयानसे उतारकर तिनकेका सहारा दिया जा रहा है, यह कहकर कि यही बचनेका एक मात्र उपाय है। फिर यही क्यों, अब तो यहाँ तक गाया जाने लगा है—

"ईश्वरको मरने दो, हे मरने दो !"

परन्तु वाणी कब तक कविकी परतन्त्रता स्वीकार कर सकती है। वह बीच-बीचमें तो बोल ही उठती है—'यह अमर है।' तथा आजके कविके प्रति वह उठकर कह उठती है—

"कविको मरने दो हे, मरने दो !
वह जी न सकेगा
मरने दो।"

बड़ी विषम परिस्थिति है। कवि, जो कि जन-समाज-देशके सुख-शान्तिमय जीवनका स्रष्टा है, स्वयं मानसिक अशान्तिका बीजारोपणकर दीन-दलित जन-समाजकी सच्ची सेवासे दूर जा रहा है। जनताकी पीड़ाएँ दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही हैं और वह अपने झूठे स्वर साधनेमें कलाका अपव्यय कर रहा है। मानव-जीवनकी सभी परिस्थितियोंमें सन्तुलन और साम्य युगकी पुकार है, परन्तु वह वादके पीछे असन्तुलन और वैषम्यकी वृद्धि कर रहा है। वह जन-जीवनके निकट होनेका तूर्यनाद करता है, लेकिन अपने वादके हवाई घोड़ेपर चढ़ा हुआ जा रहा है दूर। ऐसी दशामें उससे जन-कल्याणकी आशा कैसे की जा सकती है ? यदि आजका कलाकार सच्चे अर्थोंमें अपनी कलाको अमर करना चाहता है, तो उसे अपने प्रगतिवादको मानव-जीवनसे पूर्णतः सम्बन्धित करना होगा।



साखी

तारकनाथ अग्रवाल

'साखी' शब्द 'साक्षी'का अपभ्रंश है। "ज्ञातृत्वे तटस्थत्वं साक्षित्वम्" अर्थात् झगड़ेके मूलको जानते हुए, वादी और प्रतिवादीके पक्षसे रहित व्यक्तिको 'साक्षी' (गवाह) कहते हैं। कबीर साहब भी साम्प्रदायिक कलहके मूल (परस्परकी अज्ञानता)को जानते हुए साम्प्रदायिक पक्षपातकी छूतसे दूर थे। साखीमें उन्हीं बयानोंका संग्रह है जिन्हें उन्होंने समय-समयपर निर्भीकता पूर्वक जनता-जनार्दनके सामने साक्षी स्वरूप दिया है। अपने इस निर्भीक तथा पक्षपात-रहित आचरणसे ही वे हिन्दुओंके 'गुरु' तथा मुसलमानोंके 'पीर' बन सके थे। उन्होंने अपनी तटस्थता तथा सर्व-हितैषिताका वर्णन करते हुए कहा है—

"कबिरा खड़ा बजारमें, सबकी चाहत खैर
ना काहू सों दोसती, ना काहू सों वैर"

(सा० ग्र० पृ० ६)

कबीरका काल बड़ा भयावना था। भारतकी लक्ष्मीपर लुब्ध मुसलमानोंकी दृष्टि गड़ चुकी थी। हिन्दुओंके लिये केवल दो ही रास्ते थे—धर्म-परिवर्तन अथवा मृत्यु। विचारणीय विषय यह है कि सत्ताधिकारी होते हुए भी मुसलमान हिन्दुओंको क्यों स्वधर्ममें परिवर्तित करना चाहते थे। इसका प्रधान कारण यह था कि हर मुसलमान बादशाह अपनेको खलीफ़ाका अवतार मानता था। तथा कुरानशरीफ़की आयतोंका पालन करना अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता था। कुरानशरीफ़में लिखा है :—

"Then fight and slay the Pagans wherever ye find them, or seize them, beleaguer them, and lie in wait for them."

(Sura IX, Ayat 5 — The Holy Quran by Abdullah Yusuf Ali, 1938).

कबीरको यही बातें असह्य थीं। वे एकेश्वरवादी थे। उनके लिये 'राम' और 'रहीम' का एक ही पद था। इसलिये कबीरने अपनी साखियों द्वारा हिन्दू धर्मपर ही नहीं, प्रत्युत इस्लाम धर्मपर भी गहरा आक्षेप किया। जहाँ कहीं भी उन्हें इस्लाम धर्ममें बुराइयाँ दिखलाई पड़ीं वहीं उन्होंने निष्पक्ष रूपसे तथा इस बातकी परवा न करते हुए कि मुसलमान सत्ताधिकारी हैं, आक्षेप किया। कबीरके निम्नलिखित साक्षी वचन इसके पुष्ट प्रमाण हैं :—

हिन्दू ध्यावें देहरा, मुसलमान मसीद
दास कबीर तहाँ ध्यावही, जहाँ दोनोंको परतीत

(सा० ग्र० पृ० ३१६)

जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलुक केहि केरा
तीरथ मूरति राम निवासी, दुइमें किनहुँ न हेरा

(सा० ग्र० पृ० १०)

पूरब दिसा हरिको बासा, पश्चिम अलह मुकामा।
दिल महँ खोजु, दिलहिमें खोजो, यही करीमा रामा॥

(सा० ग्र० पृ० ११)

जितना प्रकाश साखियों द्वारा साम्प्रदायिक विषयोंपर पड़ता है, उससे अधिक प्रकाश साखियाँ आध्यात्मिक विषयपर डालती हैं। कबीरने स्वयं कहा है—

साखी आँखी ज्ञानकी, समुझु देखु मन माँहि
बिनु साखी संसारका, झगरा छुटत नाँहिं।

श्लेषके कारण साक्षीका अर्थ चेतन भी होता है। इस 'चेतन'की प्राप्तिके बिना आध्यात्मिक शान्ति नहीं मिल सकती। 'चेतन' जुआरियोंके दीपक (हार-जीतसे सम्बन्ध न रखनेवाली) के समान शरीरके धर्मोंसे सम्बन्ध न रखता हुआ प्रकाशमात्र देता है। इसी चेतनको प्राप्त करना मुमुक्षुका कर्त्तव्य है। साक्षी पदको प्राप्त कर लेनेपर ही मनुष्य संसार (सांसारिक विषय-वासनाओं) पर विजय प्राप्त कर सकता है। संसार काजलकी कोठरी तथा काटोंका घेरा है। कबीरके शब्दोंमें—

काजल केरी कोठरी, ऐसा यह संसार
बलिहारी वा दासकी, पैठिके निकसन हार
काजर ही की कोठरी, काजर ही का कोट
तोदी कारी ना भई, रहा जो ओटरी ओट।

(सा० ग्र० पृ० १०४)

संसार पर विजय प्राप्त करना 'चेतन'की प्राप्तिपर निर्भर

है, और चेतनकी प्राप्तिपर निर्भर करता है निर्वाण पद।

कबीरकी साखियोंमें कहीं-कहीं 'साक्षी'के लिये 'गैबी' शब्दका प्रयोग हुआ है।

हिन्दू कहूँ तोहूँ नहीं, मुसलमान भी नाहिं
पाँच तत्वका पूतला, गैबी खेले माहिं
गैबी आया गैवसे, यहां लगाया ऐब
उलटि समाना गैवमें, छुटि गया सब ऐब।

'चेतन'को प्राप्त करना ही 'गैब' में उलटकर समाना (जाना, मिलना) है।

साक्षीका निज रूप इससे भी परे है; क्योंकि साक्षी तो किसी साक्ष्यकी अपेक्षासे है; इसलिये साक्ष्य (संसार) के अभावमें साक्षीपन भी नहीं रहता। साक्ष्य (संसार) हद है, और साक्षी (द्रष्टा, चेतन) बेहद है। इसी हद और बेहदके परेका रूप साक्षीका निज रूप है। कबीरने इसका वर्णन इस प्रकार किया है।

"हद और अनहद दोनों तजी, अवरन किया मिलान।
कहँहि कबीर ता दास पर, वारौं सकल जहान।।"
(सा० ग्र० पृ० ३३७)

अर्थात् हद और अनहदके परे एक और पद है, जिसे परमपद कहा जा सकता है। इसको प्राप्त करना टेढ़ी खीर है। कबीरने इसी पदको प्राप्तकर संसारके सामने साक्षी बनकर अपने निर्णायक वचनों द्वारा अनेक जटिल समस्याओंको सुलझाया है। स्वरूप साक्षीके बोधक और निर्णायक होनेके कारण कबीरके बचन साक्षी वचन हैं।

बाबू श्यामसुन्दर दासने प्रामाणिक तौरपर कबीर ग्रन्थावलीमें ८०६ साखियोंका संकलन किया है। यों तो 'कबीर'के नामपर हजारों साखियां मिलती हैं, लेकिन उनका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। श्यामसुन्दर दासजीने अपने संकलनका आधार संवत् १६६१ तथा १८८१ की हस्त-लिखित प्रतियोंको माना है। इसलिए जब तक इन संकलित साखियोंके अतिरिक्त अन्य साखियोंका पुष्ट प्रमाण न मिल जाय तब तक अन्य साखियोंको कबीरका मानना श्रेयस्कर न होगा। कबीरकी साखियोंको बाबू श्यामसुन्दर दास तथा अन्य संकलनकर्त्ताओंने विभिन्न अंगोंमें विभाजितकर भ्रम पैदा कर दिया है। यह तो कहना ही पड़ेगा कि कबीर तथा हिन्दीके अन्य मुक्तक कविगण कभी भी किसी एक विषयको लेकर अपनी रचना नहीं करते थे। और ज्ञानी कबीरका तो जीवन-वृत्त ही कुछ अनोखा था। उनके पास जनता अपने दुःखोंको लेकर पहुँचती थी तथा वे ऐसे ही अवसरोंपर अपनी वाणी द्वारा उनके दुःखका निवारण करते थे। इसलिए वर्त्तमान संकलित प्रतियोंको देखकर यह सोचना कि कबीरने ही साखीके वचनोंको विभिन्न अंगोंमें विभाजित किया होगा, भ्रम पूर्ण है।—रेवरेण्ड वेस्टकटने अपनी पुस्तक Kabir & the Kabir Panth में कहा है—

"It is not at all likely that all the Sakhis attributed to 'Kabir' were really uttered by him, but most of them are in substance consistent with teaching to be met with in Bijak. A good linguistic would probably, on linguistic grounds, reject many as of later origin." (Edition 1907 PP. 77-78).

कबीरकी साखियां उनके 'शब्दों' तथा 'रमैनी'से भिन्न हैं। साखियोंमें उन्होंने अपने सिद्धान्तोंको न रखते हुए जन साधारणके हित की ही बातें कही हैं।

साखी

(१) कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ
राम कहे भल होइगा, नहिं तर भला न होइ।
(२) कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस
राम नाँव ततसार है, सब काहू उपदेस।
(क० ग्र० पृ० ४-५ सन् १६२८)

उपर्युक्त साखियोंमें केवल राम-नामकी महिमा ही कही गयी है जो सर्व-साधारणके आध्यात्मिक लाभकी वस्तु है किसी सिद्धान्तकी नहीं। लेकिन रमैनियोंमें यह बात नहीं है। वहाँ सिद्धान्तोंका प्रतिपादन है। यथा:—

"कहाँ बसै चौरासीका देव
लहौ मुकति जे जानौ भेव"
"प्रीति जानि राम जे कहै
दास नांउ सो भगता लहै"
(क० ग्र० पृ० २२३ सन् १६२८)

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड कलकत्ता।

विशाल भारत

के

प्रति अंकका विज्ञापन-दर

साधारण पूरा पृष्ठ	६०)
„ आधा पृष्ठ या एक कालम	३२)
„ चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	१८)
„ चौथाई कालम	१०)
चित्रके पीछेका पूरा पृष्ठ	७०)
„ „ आधा पृष्ठ	४०)
कवरके दूसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	७०)
कवरके तीसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	६५)
सूचीके सामनेका पूरा पृष्ठ	७०)
„ „ आधा पृष्ठ	४०)
„ „ चौथाई पृष्ठ	२५)

अन्तिम पाठ्य-सामग्रीके सामनेका पृष्ठ	८०)
कवरका दूसरा पृष्ठ	९०)
„ तीसरा पृष्ठ	८०)
„ चौथा पृष्ठ	१२५)
„ चौथे पृष्ठका दूसरा कलर ३०) फी कलर ।	
रिडिंग मैटरके साथ पूरा पृष्ठ	१००)
„ आधा पृष्ठ	५५)
„ चौथाई पृष्ठ	२८)
„ चौथाई कालम	१५)

अन्तिम फरमाके अन्तमें छापा जायगा ।

फोड़पत्र

'विशाल भारत'के आकारका ९½×७ इंच

(विज्ञापनदाता द्वारा मुद्रित)

८ पृष्ठ	१२५)
४ पृष्ठ	८०)
२ पृष्ठ	४५)

नोट :—उपरोक्त दर जनवरी १९४९ से शुरू हुआ है ।

मैनेजर, 'विशाल भारत' १२०।२, अपर सरकूलर रोड,

कलकत्ता ६

विशाल भारत बुक डिपो

द्वारा प्रकाशित तथा प्रचारित पुस्तकें

१. जंगलके जीव सचित्र, सजिल्द—श्रीराम शर्मा ५)
२. प्राणोंका सौदा ,, ३॥)
३. शिकार ,, ३)
४. ,, उर्दू ,, ३)
५. बोलती प्रतिमा ,, २।)
६. शब्द-चित्र ,, २)
७. हमारी गायें ,, १॥)
८. पपीता ,, ।)
९. झाँसीकी रानी ,, ॥)
१०. नेताजी (अंग्रेजी) ,, २०)
११. स्वामीके पत्र—ज्योतिर्मयी ठाकुर ४।
१२. पिस्तौलका निशाना रूसी कहानियाँ—स्व० वृजमोहन वर्मा ४)
१३. प्रेम-संगीत—श्री भगवतीचरण वर्मा २॥)
१४. मानव ,, २)
१५. मीरा और उनकी प्रेमवाणी—ज्ञानचन्द जैन एम० ए० २)
१६. घूँघटवाली कहानी संग्रह—विश्वम्भरनाथ जिज्जा २।)
१७. त्रिलोचन कविराज—स्व० रवीन्द्रनाथ मैत्र २)
१८. खटोला—श्री आनन्दकुमार त्रिपाठी एम० ए० १।)
१९. बातचीत ,, ,, १)
२०. शुकपिक—श्री तारा पाण्डेय १)
२१. शिवशम्भुके चिट्ठे—स्व० बालमुकुन्द गुप्त ॥)
२२. सौगात (कहानी संग्रह)—परशुराम नौटियाल २)
२३. अलिफलैलाकी कहानियाँ—६ भाग ६)
२४. इजादोंकी कहानियाँ १॥)
२५. सरदारपटेल (जीवनी) ॥=)
२६. संयम शिक्षा—गाँधीजी ।=)
२७. मुक्ति-पथ—इलाचन्द जोशी ६)
२८. संघर्ष और समर्पण—कन्हैयालाल ओझा ५॥)
२९. स्वाधीनताके पथपर ६)
३०. पथिक—(गुरुदत्त) ६)
३१. स्वराज्य दान ६)
३२. उन्मुक्त प्रेम ६)
३३. विकृत छाया ४॥)
३४. भावुकताका मूल्य ६)
३५. रात चोर और चाँद ७)
३६. उपनिषदोंकी कहानियाँ १॥)
३७. महादेव भाईकी डायरी I II १०)
३८. दिल्ली डायरी—गाँधीजी ३)
३९. भारतमें गाय I II श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त १३)
४०. गेहूँ और गुलाब (बेनीपुरी) ५)
४१. अजाने रास्ते—डा० सत्यनारायण सिंह ४)
४२. राजेन्द्र अभिनन्दन-ग्रन्थ २५)
४३. नेहरू अभिनन्दन हिन्दी, अंगरेजी, प्रत्येक ३०)
४४. जगतसेठ—(श्री पारसनाथ सिंह) ६॥)
४५. कुली (मुल्कराज आनन्द) ६)
४६. मुहम्मद रसूलिल्लाहकी जीवनी ५)
४७. रवीन्द्र साहित्य १७ भाग प्रत्येक २॥)
४८. राजस्थानी कहावत I II नरोत्तम स्वामी—मुरलीधर व्यास ६)
४९. राजस्थानके लोक गीत I II ६)
५०. मधुर स्वप्न (राहुल) ५)
५१. बयालीस—प्रतापनारायण श्रीवास्तव ४)
५२. धरातल—शान्तिप्रिय द्विवेदी २॥)
५३. हिमानी ,, ,, ॥)
५४. अच्छी हिन्दीका नमूना—किशोरीदास बाजपेयी २॥)

विशाल भारत बुक डिपो

१६५।१, हरिसन रोड, कलकत्ता—७।


विशाल भारत
सम्पादक : श्रीराम शर्मा
सितम्बर, १६५०

विषय-सूची : सितम्बर १९५०

१०००रु० नगद इनाम ?

जो चाहोगे वही मिलेगा ।



अब आप किसी तरफ से निराश न हों। इस तान्त्रिक अँगूठीको पहनने से दिल में आप जिस स्त्री या पुरुष का नाम लेंगे वह देखते ही देखते फौरन वश में हो जायगा, चाहे वह कितना ही पत्थर दिल क्यों न हो, सात समुन्द्र फांद, सात ताले तोड़, आपके कदमों में हाजिर होगा, कठोरता तथा शत्रुता को छोड़ आपका हुकुम मानने लगेगा, दिलपसन्द सगाई-शादी होगी, नौकरी मिलेगी, बांझ स्त्री के सन्तान होगी, मुर्दा रूहों से बातचीत होगी, जमीन में दबी दौलत सुपने में दिखाई देगी, लाटरी-सट्टा-जुआ-मुकद्दमे में जीत मिलेगी, परीक्षा में पास होंगे, व्यापार में लाभ होगा, दुष्ट ग्रह शान्त होंगे, बदकिस्मती दूर होगी, खुशकिस्मत बन जाओगे, जीवन सुख शान्ति तथा प्रसन्नता से व्यतीत होगा।

तान्त्रिक अंगूठी १-१५-०, स्पेशल ३-०-०, स्पेशल पावरफुल ३-१५-० तीन रुपये पन्द्रह आने जिसका बिजली के करेन्टकी तरह फौरन असर होता है। यह तान्त्रिक अँगूठी ग्रहण तथा शुभ मुहूर्त्त में तैयार की गई है। सूर्य पूर्व की बजाय पश्चिमसे उदय हो सकता है लेकिन इस तान्त्रिक अँगूठीका असर कभी खाली नहीं जाता। ठीक न होने पर दुगुनी कीमत वापस की गारंटी है। मिथ्या साबित करनेवाले को १००० नकद इनाम। एक बार जरूर आजमायश करें।

प्रिन्सीपल--शाइनिङ्ग मैस्मरेजिम हाऊस

(V. B. C.) करतारपुर (E. P.)

१९५०—५१ में

क्या होने वाला है ?



जो पूछोगे जवाब मिलेगा, सिर्फ पोस्ट कार्ड पर किसी दिलपसन्द फूलका नाम भेज दें, बस फिर इस



१९५०—५१ के आपके सब सही हालात विस्तार के साथ लिखकर सिर्फ १) सवा रुपये में वी० पी० द्वारा भेज देंगे, अगर आपने कभी भी किस्मत के बारे में नहीं पूछा तो अब जरूर पूछें।

श्री पं० देवदत्त शास्त्री राज ज्योतिषी

(V. B. C.) करतारपुर (E. P.)

केवल एक दिन में

मैजिक मिस्मरिजम द्वारा

★लड़के को ज़मीन पर खिटा और चादर से ढक कर अजीब अजीब प्रश्नों के ठीक ठीक उत्तर पूछना ★किसी भी समय दर्शकों की घड़ियों में ६॥ इत्यादि बजा देना ★दहकते कोयलों पर चलना व दर्शकों को चलाना ★मुंह में से आग की लपटें निकालना ★पानी के अन्दर आग के अङ्गारों का नाच कराना ★बन्द लिफाफ़ों के अन्दर का लिखा बता देना ★बड़े ताशों का छोटे होते नाख़ून की बराबर होकर उड़ जाना ★बन्द सन्दूक में से आदमी का निकल जाना ★इत्यादि नाना प्रकार के अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी मैजिक सीखिये और

→ दूसरे ही दिन ←

नवाब राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों के चित्त को प्रफुल्लित कर तथा धुरन्धर विद्वानों, विज्ञान-वेत्ताओं और प्रोफेसरों की बुद्धि चक्कर और हैरत में डालकर मनमाना धन, मान और यश प्राप्त कीजिये।

*किसी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं। यह सब एक दिन में न आवे तो कीमत वापिस। इस पूरे कोर्स का मूल्य केवल पाँच रुपया।

*देहली के प्रतिष्ठित पत्र 'वीर अर्जुन', बिहार सरकार के कृषि-निर्विक श्री लक्ष्मीनारायण जी तथा कलाविभाग कलकत्ता के अध्यक्ष श्री शिवनारायण जी की ज़ोरदार सिफारिश के साथ हज़ारों प्रशंसापत्र प्राप्त।

"२५" दी यूनाइटेड मैजिक कम्पनी लिमिटेड,

मुरादाबाद यू० पी० (भारत)

पाठकोंको सूचना :—

विशाल भारतका

मूल्य निम्नलिखित है :—

वार्षिक चन्दा	६)
छमाही	५)
एक प्रति	॥।)

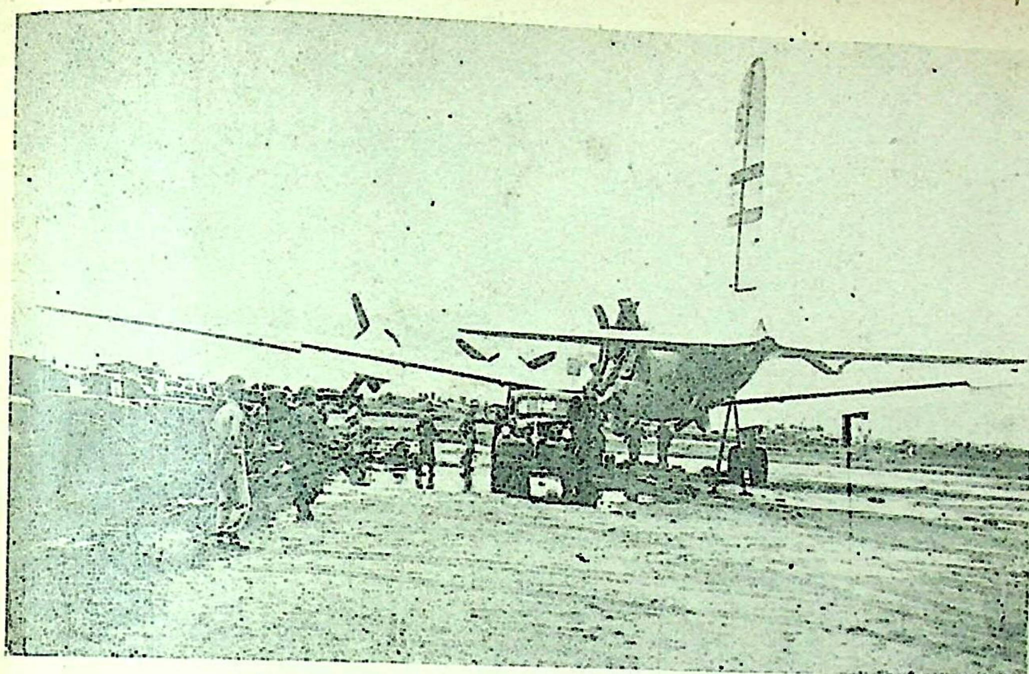
विदेशके लिए

वार्षिक चन्दा	१४)
छमाही	७)
एक प्रति	१।)

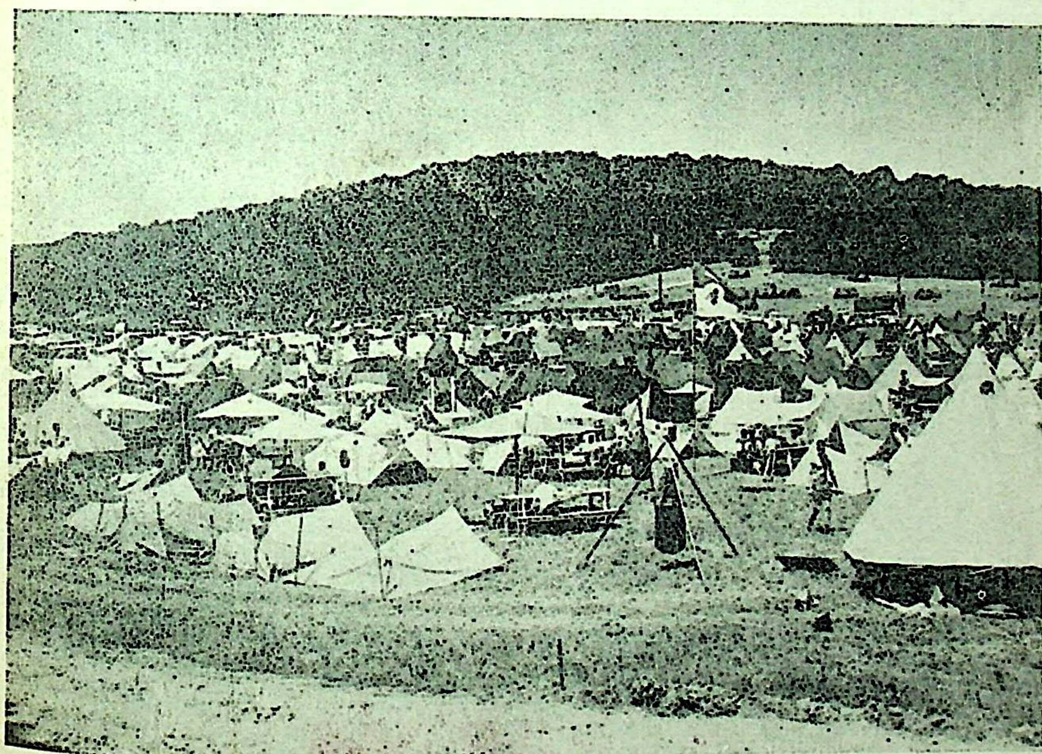
नमूनेकी प्रति मुफ्त नहीं भेजी जाती ।

नमूनेकी प्रतिके लिए ॥।-) आनेका डाक टिकट भेजना चाहिए ।

—मैनेजर



कोरियामें अग्रसर होनेके लिए जापानमें उतरा हुआ संयुक्तराज्यका वायुयान।



अमेरिकाके स्काउटोंका चालीसवाँ वार्षिकोत्सव, जो पेनसिलभेनियाकी फार्ज पार्ककी घाटीमें मनाया जा रहा है और जिसमें ४७०० स्काउट शामिल हुए हैं।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] सन्दिग्ध [श्री देवीप्रसाद राय चौधरी



भाग ४६, अंक ३] कलकत्ता, सितम्बर, १९५० [पूर्णांक २७३

सम्पादकीय विचार

कांग्रेसमें रहें या न रहें ?

कांग्रेसकी वर्तमान परिस्थितिके विषयमें हम प्रायः लिखा करते हैं। हमारे कई कांग्रेसी मित्रोंने हमसे पूछा है कि आखिर गुंडागीरीका मुकाबला कैसे किया जाय। उसके लिए प्रोत्साहन तथाकथित कांग्रेसजनोंसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे मिलता है। इसका उत्तर पिछले अंकोंमें दिया जा चुका है। पर स्पष्ट रूपसे हम तुलसीदासके शब्दोंमें कह दें कि 'खल परिहरिय स्वान की नाईं।' कांग्रेस किसीकी बपौती नहीं है। उत्पात करनेवालोंका पापका घड़ा जल्दी भरे उतना ही अच्छा है और जहाँ तबियत घिनाती हो वहाँ आदमी क्यों रहे ? इसी सिलसिलेमें 'हरिजन'ने कांग्रेसके चुनावके सम्बन्धमें सवाल-जवाब छापे हैं। जवाब भाई किशोरलाल मश्रूवालाने दिए हैं। पाठकोंके लाभार्थ हम उन्हें देते हैं। हम उनसे सहमत हैं। सवाल-जवाब इस प्रकार हैं :—

स०—कांग्रेसके चुनावोंमें मारपीट, जूतेमारी, खूँखारी, स्त्रियोंका अपमान आदि बेहूदी घटनाएँ और रिटर्निङ्ग या पोलिंग आफिसरके तथा स्वयं उम्मीदवारोंके ग़ैरक़ानूनी तथा असभ्य तरीक़ोंको देखकर कुछ समझमें नहीं आता कि कांग्रेस क्या बनना चाहती है ? जहाँ चिस्त नहीं, शिकायतपर विचार नहीं और गुण्डाशाहीको प्रोत्साहित करनेवाला पोलावाला चुनाव हो रहा हो, वहाँ जनता इन लोगोंसे क्या सबक़ सीख सकती है ? हम रचनात्मक कार्यकर्त्ता या साधारण लोग हैं। हम पार्टीबाजीसे दूर रहते हैं, और पदोंकी अभिलाषा नहीं रखते, फिर भी शुद्ध राजकीय संस्थाकी इच्छा करते हैं। हमारा इसमें क्या कर्त्तव्य है ? इस सबसे पुरानी राजकीय संस्था (कांग्रेस) में हमारी अत्यन्त भक्ति है। उसे न छोड़ने और न तोड़नेको दिल चाहता है, और न इसे भ्रष्ट होती हुई देख सकते हैं। हम क्या करें ?

ज०—जैसा मैंने कई बार कहा है, मेरी अपनी तो यही राय है कि यदि अच्छे आदमी इतने प्रभावशाली नहीं कि भ्रष्ट बनती हुई किसी संस्थामें शामिल होकर उसे सुधारनेकी ताक़त रखते हों, तो उनका उससे पूरा-पूरा अलग हो जाना और असहयोग करना ही कर्त्तव्य है। जिसमें हमारा जन्म हुआ हो, ऐसे पुरखोंके मकानकी तरह कांग्रेस हमारी पुरानी, गौरव लेने योग्य संस्था है, फिर भी वह अगर सड़ती जा रही है और उसकी मरम्मत करना असम्भव है तो इसे छोड़ देना और तोड़ देना या टूटने देना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। फिर भले सब बुरे लोग ही उसपर कब्जा कर लें और उसे चलानेकी चेष्टा करें। जब यह स्थिति आयगी कि कोई शरीफ आदमी न उसमें शामिल होता है, न मदद करता है तब कांग्रेस आप ही टूट जायगी और साथ ही वे भी जो उसमें हठपूर्वक पड़े रहेंगे,

जैसा गिरते हुए मकानसे न निकलनेवाले लोगोंका होता है।

शुद्धवृत्तिके लोग यदि राजकीय काम करना चाहें, तो अपनी अलग संस्था बनायें और इसे अपनी सेवा और चरित्रसे धीरे-धीरे बलवान करें।

जो लोग स्वयं राजकीय कामोंमें पड़नेकी इच्छा नहीं रखते, फिर भी देशके राज-कारोबार और राजकीय प्रश्नोंमें दिलचस्पी रखते हैं, वे किसी राजकीय संस्थामें शामिल न हों। जब धारासभाओंके चुनावका समय आवे, तब अगर उनकी दृष्टिमें कोई अच्छा उम्मीदवार हो तो उसको मत दें, फिर वह चाहे जिस पक्षका क्यों न हो।

गांधीजीके रचनात्मक कार्यक्रममें विश्वास रखनेवाले लोगों को समझ लेना चाहिए कि इस वक्त एक भी पक्ष ऐसा नहीं हो सकता, जो सोलह आने गांधीजीका कार्यक्रम चला सके और न ऐसा ही जो उसे बिलकुल फेंक सके। इसलिए उन्हें अपने मतका उपयोग करनेमें दो ही बातें देखनी चाहिए—

१. जाति-सम्प्रदायका मानस रखनेवाला वह उम्मीदवार न हो, और २. शुद्ध चरित्रका ईमानदार आदमी हो। यदि एक भी राजकीय पक्ष ऐसा उम्मीदवार अपने विभागमें खड़ा नहीं करता, तो बेहतर है कि वह मत देनेके लिए जाय ही नहीं।

नावकके तीर

नावकके तीरके विषयमें कहा जाता है कि वे देखनेमें तो छोटे लगते हैं पर वे घाव गम्भीर करते हैं, इसीलिए शायद कविवर बिहारीलालने लिखा था कि 'सतसइयाके दोहरे ज्यों नावकके तीर। देखनमें छोटे लगें घाव करें गम्भीर'॥ पं० नेहरूने हिन्देशियासे लौटते समय सिंगापुरमें जब इस बातकी चर्चा की कि डच-न्यूगिनीपर हिन्देशियाका कब्जा होना चाहिए तब अनेक गोरे राजनीतिज्ञोंको मिर्चे-सी लग गईं क्योंकि आस्ट्रेलियाके विदेश-मन्त्री श्री स्पेंडरने अपने तुरन्त ही मनोभाव प्रगट किए कि डच-न्यूगिनीके सम्बन्धमें किसी निर्णय पर आनेको हालैण्ड और हिन्देशियाके अतिरिक्त आस्ट्रेलियाका भी परामर्श लेना चाहिए। जब आस्ट्रेलियाको बाहरसे बसानेके लिए आदमियोंकी आवश्यकता है तब हमारी समझमें नहीं आता कि डच-न्यूगिनीपर उसकी आँखें क्यों हैं? यह साम्राज्यवादी प्रवृत्ति है। न्यूगिनीके एक भाग अर्थात् पापुआपर आस्ट्रेलियाका अब भी अधिकार है पर उससे पोपुअन लोगोंकी कोई समृद्धि तो नहीं हुई। पं० नेहरूने सिंगापुरमें इस विषयपर पूछे जानेपर उत्तर दिया कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टिसे पश्चिमी न्यूगिनी हिन्देशियाके पास जानी चाहिए। अगर हालैण्डवालोंका वहाँ अधिकार रहा तो खामखा उससे उलझन पैदा होगी। ईमानदारीकी बात यह है कि जब डच लोग हिन्देशिया छोड़ रहे हैं तब प्रत्येक दृष्टिसे न्यूगिनी हिन्देशियाकी होनी चाहिए। उधर हालैण्डकी ओरसे स्पष्ट कहा गया है कि न्यूगिनीपर हालैण्डका अधिकार होना चाहिए। बड़े मजेकी बात यह है हालैण्ड कहता है कि हिन्देशिया अभी न्यूगिनीके सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक स्तरको ऊँचा नहीं कर सकता। सवाल तो यह है कि सांस्कृतिक और सामाजिक स्तरका मापदण्ड क्या है। हालैण्ड और आस्ट्रेलिया अपनी औपनिवेशिक प्रवृत्तिपर क्यों अड़े हैं? यदि १६५१ तक मिले-जुले कमीशनसे डच-न्यूगिनी-सम्बन्धी निर्णय नहीं हुआ तो हालैण्डके विरुद्ध कटुता बढ़ेगी और भारतवर्षका जो रुख इस विषयमें है वह तो माननीय नेहरूजीके सिंगापुरके बयानसे स्पष्ट हो गया है।

अन्धभक्तिकी पराकाष्ठा

श्री रा० चिदंबरेश लिखते हैं :—

कुछ दिन हुए समाचार-पत्रोंमें एक खबर आई थी कि बनारसमें एक गांधीजीका मन्दिर बनाया गया है और उत्तर-प्रदेशके एक मन्त्री महोदयके हाथसे उसमें गांधीजी और 'बा' की मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा की गई है। आर्थिक और आध्यात्मिक संकटके इस कालमें यह देखकर कि—गांधीजीकी जाहिर इच्छाओंके खिलाफ—कुछ लोग उनके मन्दिर बना रहे हैं और उनमें उनकी मूर्तियाँ रख रहे हैं; दुःख होता है। यदि इस प्रवृत्तिको चलने दिया गया तो नतीजा यह होगा कि गांधीजीके मार्गके असल तत्व और व्यावहारिक पक्षको यानी मनुष्यकी

सेवा और प्रेमको लोग भूलने लगेंगे। ऐसा भी हो सकता है कि कुछ दिन बाद उनका नाम इन मन्दिरोंके ही रूपमें रह जाय, और हमारी आगामी पीढ़ियाँ यह समझने लगें कि वे एक देवता थे। जिसका फल यह होगा कि उनके उपदेश सुन्दर रूप-रंगकी बढ़िया जिल्दवाली पुस्तकमें कैद हो जायँगे और ये पुस्तकें पुस्तकालयोंकी शोभा बढ़ायँगी ; उन उपदेशोंका आचरण करनेकी बात किसीको नहीं सूझेगी। धर्माचार्य अवतारोंकी सूचीमें उनके नामकी वृद्धि कर देंगे। और यदि ऐसा हुआ तो कल्पना कीजिये कि हमारे युगके इस इतने बड़े मानव-धर्मके उपासकका, जो जीवनभर अपनी शिक्षाओंको पहले स्वयं करके दिखाता रहा, यह कितना बड़ा अपमान होगा ? 'गांधी-मन्दिर' शीर्षक टिप्पणीमें गांधीजीने खुद इस विषयमें यह लिखा था :—

"जिसने यह मन्दिर बनवाया, उसने अपने पैसे बरबाद किये। गांवके भोले लोगोंको गलत रास्ता दिखाया और मेरे जीवनका गलत खाका खींचकर मेरा अपमान किया। इससे पूजाका अर्थ सिद्ध नहीं होता, उलटे अनर्थ होता है।... मनुष्यकी कमजोरीका नहीं, बल्कि उसके गुणोंका अनुकरण ही उसकी सच्ची पूजा है।...मन्दिरके मालिक मूर्त्तिको हटाकर उस मकानमें खादीका केन्द्र खोलें, तो वह सब तरह इष्ट होगा और फिलहाल जो पाप वह कर रहे हैं, उससे बच जायँगे। उस मकानमें गरीब लोग मजदूरीके लिए धुनें और कातें। सब खादी पहनने लगें, यही गीताका कर्मयोग है। जीवनमें इसका आचरण करनेसे गीताकी और मेरी सच्ची पूजा की जा सकेगी।"

प्रशंसनीय उदाहरण

बात साधारण-सी है, पर है वह विचारपूर्ण और प्रशंसनीय। पिछले दिनों कानपुरका एक समाचार हमने पढ़ा कि एक हिन्दुस्तानी भाईने एक रिक्शा किरायेपर किया। रिक्शा-वालेके व्यवहार तथा उसके शीलसे बैठनेवाले महाशयको भान हुआ कि रिक्शा-कुली कोई शिक्षित कुली है। पूछनेसे मालूम हुआ कि रिक्शा-कुली डी० ए० वी० कालेजका बी०ए०का एक विद्यार्थी है। साहब बहादुरने समझा कि उसे अच्छी मजदूरी देनी चाहिए। बस तपाकसे एक कागजका टुकड़ा यानी दस रुपएका नोट मजदूरीमें पेश कर दिया। विद्यार्थीने उदार महाशयकी ओर तपाकसे देखकर कहा कि उसकी मजदूरी केवल आठ आने है। आठ आने लेकर उस युवकने स्वाभिमानसे सीटी बजाई और रिक्शा लेकर आगे बढ़ा। हमें अपने उस अपरिचित युवकपर गर्व है। उसके पैर मजबूत जमीनपर हैं। फैशनके दलदलमें वह नहीं फँसा हुआ। उसके रग-पुट्ठोंमें स्वाभिमान और शारीरिक श्रमका खून दौड़ रहा है। देशकी वह एक जाग्रत इकाई है। यदि शारीरिक श्रमको हमारे अन्य विद्यार्थी इसी प्रकार अपनाएँ तो उनकी शिथिलता बहुत-कुछ दूर हो जाय। वह मजदूरीको तिरस्कार और दैन्यसे बहुत ऊँचा समझेगा। क्या हमारे अनेक जवान युवक, पतलूनमें घुसे और फैशन-परस्तीमें पगे, इस भारतीय युवकसे सबक सीखेंगे।

अल्प विकसित देशोंमें मृत्यु-संख्या

संयुक्तराष्ट्र संघके जनसंख्या कमीशनने हालमें ही अपनी एक रिपोर्टमें कहा है कि यद्यपि पिछले कुछ वर्षोंमें मृत्युसंख्याको घटानेमें कुछ सफलता मिली है तथापि एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीकाके अधिकतर भागमें आज भी इतनी मृत्यु संख्या है जितनी कि २०० वर्ष पूर्व पश्चिमी यूरोपमें थी। भारतमें हैजा, चेचक और प्लेग प्रायः नियमसे संक्रामक रूप धारण करते रहते हैं। करीब २५ लाख व्यक्ति भारतमें इस समय क्षयरोगसे ग्रस्त बताये जाते हैं और ५ लाख इस रोगसे प्रतिवर्ष काल-कवलित होते रहते हैं। इसी तरह मलेरिया हर साल २० लाख व्यक्तियोंका सफाया करता है और १ लाख आदमी हर समय इससे ग्रस्त रहते हैं। मिस्रमें संग्रहणी और आन्त्रशोथ मृत्युसंख्याके सबसे बड़े कारण हैं। टायफाइड, टाइफस और डिपथेरिया आदि संक्रामक रोग तो हर समय रहते हैं और चेचक व हैजा भी समय-समयपर प्रकुपित हो जाते हैं।

फिलिपाइनमें मलेरिया, क्षय, संग्रहणी और आन्त्रशोथ, टाइफायड, हैजा व चेचक समय-समयपर प्रकुपित होते रहते हैं। प्यूर्टोरिकोमें संग्रहणी और क्षय एक तिहाई मौतके कारण हैं। सभी इलाकोंमें स्वास्थ्यके नीचे स्तर और मृत्यु-संख्याके ऊँचे स्तरके एक-से ही कारण हैं। वहाँके लोगोंको

पर्याप्त पुष्टिकर अन्न नहीं मिलता, और न ही उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, स्वच्छता और शिक्षाकी ही समुचित व्यवस्था है। रिपोर्टके अनुसार भारतमें शुद्ध पानीकी व्यवस्था और गन्दी नालियोंके प्रबन्ध विशेषरूपसे त्रुटिपूर्ण हैं। अनुसन्धानसे पता चला है कि कुछ देशोंमें हालके कुछ वर्षोंमें मृत्युसंख्यामें कमी भी हुई है। उदाहरणके लिए भारतकी मृत्यु-संख्या सन् १६२१ में हजार पीछे ४४ थी और २० वर्ष बाद यह घटकर हजार पीछे ३१ हो गई और सरकारी आँकड़ोंके अनुसार १६४७ में वह हजार पीछे २१ रह गयी। लंका और जापानने यह सिद्ध कर दिया है कि चिकित्सा-तंत्र और सार्वजनिक स्वास्थ्यके नियमोंका समुचित पालनकर मृत्यु-संख्यामें काफी कमी की जा सकती है। १६४६ में लंकाकी मृत्यु संख्या १००० व्यक्तियों के पीछे २०·३ थी, किन्तु स्वास्थ्य-विभागके प्रयत्नोंसे दो वर्षमें ही उसमें ३५ फ़ी-सदीकी कमी हो गयी। जापानकी मृत्यु-संख्या १६२१ में १००० व्यक्तियोंके पीछे २१ थी, किन्तु १६४८ में न केवल मृत्यु-संख्या ही घटकर १००० पीछे १२ रह गयी, बल्कि औसत आयुमें ५ वर्षकी वृद्धि भी हो गई।

रिपोर्टमें यह भी प्रकट किया गया है कि अल्पविकसित देशोंमें मृत्यु-संख्याकी अधिकताका कारण चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाओंकी अप्राप्ति है। उदाहरणके लिए भारतमें ८० फ़ी सदी लोगोंको डाक्टर, नर्स या अस्पतालोंकी सुविधा प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार मिस्रमें डाक्टरोंकी संख्या इतनी कम है कि वहाँ १३००० व्यक्तियों पीछे एक डाक्टर है। भारत और मिस्रमें स्वास्थ्य व चिकित्साके लिए सरकार जो रकम खर्च करती है, वे ब्रिटेन, अमरीका और रूसकी तुलनामें अत्यन्त नगण्य हैं।

हमारा आयात-निर्यात

गत मई, सन् १६५० के विदेशी-व्यापार-सम्बन्धी जो आँकड़े प्रकाशित हुए हैं वे काफ़ी गम्भीर हैं। गत अप्रैलमें सात करोड़ बीस लाखका माल हमारे देशमें निर्यातकी अपेक्षा अधिक आया और अप्रैलमें वह संख्या बढ़कर चौदह करोड़ छिहत्तर लाख पहुँची। रुपयेके अवमूल्यनसे जो यह आशा बँधी थी कि निर्यात आयातकी अपेक्षा बढ़ेगा वह इन दो महीनोंके आकड़ोंसे गलत साबित हुआ। यह स्थिति भयावह है। हम माननीय श्री प्रकाशजीकी इस बातसे सहमत नहीं हैं कि भारतवर्षकी स्वतन्त्रता बनियोंके कारण प्राप्त हुई इस लिए उसे उचित स्थान मिलना चाहिए। हमें आशा है कि केन्द्रीय सरकार इस चिन्ताजनक आयातका ख़याल करके इसे ठीक करेगी और व्यापार तथा कामर्समें सब कार्य शीघ्र ही ठीक करेगी।

डालमियाजीसे निवेदन

हमने गत जुलाई मासके अंकमें 'सरदार बनाम सेठजी' शीर्षकसे एक सम्पादकीय टिप्पणी लिखी थी। हम न उद्योगपति हैं, न व्यापारी और न किसी उद्योगपति-गुटके साथी। कई उद्योगपति तो 'विशाल भारत' तथा हमसे केवल इसीलिए नाराज़ हैं कि हम उनके स्वर-में स्वर नहीं मिलाते। हमारे खयालसे देशमें उद्योगपतियोंकी ठीक परिभाषामें केवल टाटा ही आते हैं। शेष उद्योगपतियोंमें अधिकांश फाटका (Speculation) तथा मुनाफ़ाख़ोरी वृत्तिपर ही आधारित हैं। उद्योगपतियों और तथाकथित उद्योगपतियोंकी मनं वृत्तिको हम एक सम्पादक तथा सार्वजनिक कार्यकर्त्ताकी हैसियतसे समझ सकते हैं। पर हम श्री रामकृष्ण डालमियाजीकी मनोवृत्तिको ठीक तौरसे नहीं समझ पाये। यह आवश्यक नहीं है कि हम अथवा कोई और उनकी मनोवृत्तिको समझ सकें। दुनियामें ऊटपटांग तथा तथ्यहीन बातें बहुत लोग करते हैं और किसी सम्पादकका काम यह नहीं है कि वह अकारण ही किसीकी आलोचना करने लग जाय। पर श्री रामकृष्ण डालमियाजीने पिछले दिनों जो बातें कही हैं उनका प्रभाव देशके सार्वजनिक जीवनपर पड़ता है। सम्भव है न पड़ता हो; पर हमारे खयालसे उनकी बातें इस प्रकार की हैं जिनकी चर्चा करना सार्वजनिक हितके लिए परमावश्यक है। हम यह बात फिर दुहराते हैं कि हम न तो बिड़ला-ग्रूपमें हैं, न डालमिया-ग्रूपमें और न किसी अन्य ग्रूपमें। हमारा श्री डालमियाजीसे किसी प्रकारका व्यक्तिगत द्वेष भी नहीं है; पर वे जो ऊल-जलूल बातें कहते हैं उसका कारण क्या है? हम जानते हैं कि व्यापारियोंने

टैक्ससे बचनेके लिए तिकड़में की हैं। गत महायुद्धके दिनोंमें उन्होंने काफी कमाई की और एक विशिष्ट उद्योगपतिने हमें बताया कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके समय हमारे देशके उद्योगपतियोंने ऐसा भी विचार किया था कि वे इन्कम टैक्ससे बचनेके अनैतिक ढंग इख्तियार न करेंगे; पर शेयर-बाजारकी विपत्ति तथा इन्कमटैक्स-जाँच-कमेटीकी विभीषिकासे वे परेशान हो गए और उन्होंने फिर टैक्ससे बचनेके उपाय ढूंढ़ निकाले। इससे उनको परेशानी हो सकती है। हमारे पास तो यहाँ तक खबर है—और यह खबर गपोड़-गाथा नहीं है—कि एक उद्योगपतिपर १३-१४ करोड़ रुपए टैक्सकी मदमें निकले हैं। उनसे यह भी कहा गया कि वे ११ करोड़ रुपए देकर अपना टण्टा काट लें, पर उन्होंने धता बतानेकी ही ठान ली। वह शायद इसलिए कि इतनी अदायगी वे कर नहीं सकते। अस्तु, उनकी बात जाने दीजिए; पर हम श्री रामकृष्ण डालमियाजी से सविनय पूछते हैं कि उन्होंने सचाई, ईमानदारी तथा शोषण विरोधका एक आन्दोलन-सा क्यों खड़ा कर रखा है। हमारा मंशा यह नहीं है कि वे अथवा कोई और इस बातकी चर्चा न करें; पर इस समय किसी बड़े उद्योगपतिके मुँहसे ब्लैक-मार्केट तथा व्यापारिक अनाचारके विरुद्ध आवश्यकतासे अधिक चर्चा अशोभनीय है। डालमियाजीने दान देनेका तथा डेफर्ड शेयर्सका एक नया टेकनीक ही निकाला है। नोआखलीके एक लाखके दानकी बात सब जानते हैं कि वह रुपया स्वयं श्री रामकृष्ण डालमियाजीने दिया या नहीं। हमारा आग्रह तो डालमियाजीसे यह है कि वे सार्वजनिक रूपसे यह बता दें कि उनके ऊपर जाँच-कमेटीने टैक्सकी कितनी रक़म बाँधी है और उसमें से उन्होंने कितनी रक़म अदा कर दी है। गत १२ अगस्तको श्री रामकृष्ण डालमियाजीने कलकत्तेके माहेश्वरी भवनमें जो भाषण दिया उसकी रिपोर्ट हमने एक दैनिक पत्रमें पढ़ी। उससे मालूम होता है कि डालमियाजीको अब सुबुद्धि आ गई है और उन्होंने अपने पापकर्म तथा ग़रीबोंका शोषण—सब बन्द कर दिये हैं। बड़ी खुशीकी बात है सुबुद्धि तो भगवान्‌की कृपासे ही आती है; पर सुबुद्धिके साथ विनय भी आती है। डालमियाजीने कई बार कहा है कि वे नेहरूजी तथा सरदार पटेलसे डरते नहीं हैं। आखिर उनसे डरनेकी कौन-सी बात है। इस प्रकारकी बन्दर घुड़कीसे प्रतीत होता है कि कहीं कुछ दालमें काला तो नहीं है। भगवान् और भले आदमियोंसे डरना ही चाहिए। मनोविज्ञानकी एक बात यह है कि तिकड़मी लोग अपनी बुराइयोंको लोगोंके सामने इसलिए रखते हैं ताकि लोग उनको निष्कपट समझें; पर उनकी क्षुद्रता विषधरकी भाँति उनकी बातों रूपी घासमें छिपी रहती है। आत्म-विज्ञापनका यह एक नया ढंग है। हम यह मान लें कि डालमियाजीने अपने पापमार्गको छोड़ दिया है तो अच्छा तो यह होता कि वे कुछ वर्षोंके लिए मौन धारण कर लेते और अपने पिछले कर्मोंका, निष्काम सेवासे, प्रायश्चित करते। लोक सेवा करनेके लिए ही क्या वे देशमें अपने समाचार पत्रोंका जाल बिछा रहे हैं या फिर अभी इस प्रकारकी बातें और उनकी बौखलाहट किसी भावी संकटकी सूचक हैं। वे जवाहरलालजीपर मुक़दमा चलायँ, सरदार पटेलके मुँह लगें, छुट भइये मारवाड़ियोंको बुरा-भला कहें अथवा अपने स्वागतमें लोगोंकी भीड़ इकट्ठी करायँ; पर वे ये न समझें कि लोग सब बातोंको समझते नहीं हैं। प्रसन्नता इस बातकी है कि डालमियाजी हमारी खोखली लोकशाहीमें हैं। खोखली हम इसलिए कहते हैं कि हमें अपने विधानमें ऐसा कोई कानून नहीं मालूम पड़ता जो पैसोंके कीड़ोंको देशके अति सम्मानित व्यक्तिके विरुद्ध बकवास करने अथवा मुकदमा चलानेसे रोक सके; पर हमें आशंका है कि पूँजीपतियों अथवा उद्योगपतियोंकी इस प्रकारकी बकवास देशमें एक ऐसी परिस्थिति पैदा करेगी जो उनके कल्पित हवाई किलोंका निकट भविष्यमें ढेर कर देगी।

हमें दुःख है कि हमें देशके उद्योग-विकास तथा सार्वजनिक सुचिताके कारण स्पष्ट रूपसे कुछ लिखना पड़ा है और हमें आशा है कि श्रीरामकृष्ण डालमियाजीके साथी और भक्त इस बातपर प्रकाश डालेंगे कि आखिर वे इस प्रकारकी बौखलाहट क्यों दिखाते हैं।

श्रीमान् टण्डनजीसे !

हमें दुःख है कि श्रीमान पुरुषोत्तमदास टण्डनजीने उत्तर-

प्रदेशकी धारासभाके अध्यक्ष पदसे इस्तैफ़ा दे दिया। श्रीमान् टण्डनजीने अपनी निष्पत्तता तथा योग्यतासे भारतीय संघके सूबों की धारासभाओंके अध्यक्षोंमें सर्वोपरि स्थान प्राप्त किया था। उत्तर प्रदेशमें उनसे अच्छा और कोई अध्यक्त नहीं मिल सकता। उनके इस्तैफ़ेका मूल कारण है आगामी नासिक-कांग्रेस-अधिवेशनके अध्यक्तपदके लिए उम्मेदवारी। इन पंक्तियोंको हम २०-२१ अगस्तको लिख रहे हैं और 'विशाल भारत'के इस अङ्कके छपनेके पहले ही कांग्रेस-अध्यक्तका चुनाव हो जायगा। व्यक्तिगत रूपसे हम नहीं चाहते कि टण्डनजी उस चुनावके चक्करमें पड़ते। कारण यह है कि धारासभाके अध्यक्त पदके अतिरिक्त टण्डनजी विरोधात्मक बातें बहुत कह जाते हैं और कुछ बातें ऐसी भी करते हैं जिनसे कि देशका कोई हित नहीं होता। उदाहरणके लिए पिछले दिनों दिल्लीमें शरणार्थी-सम्मेलनमें सभापतित्व उन्होंने किया था। उनके सभापतित्वमें शरणार्थी-सम्मेलनमें यह प्रस्ताव पास किया गया कि भारत सरकारको तीन-चार महीनेकी चुनौती (Ultimatum) दी जाय। यदि भारत सरकार उस प्रस्तावके अनुसार कार्य न करे तो फिर सत्याग्रह किया जाय। अब प्रश्न यह है कि यदि टण्डनजी कांग्रेसके अध्यक्त चुन लिए गए और शरणार्थियोंने सत्याग्रह प्रारम्भ किया तो टण्डनजी किसका साथ देंगे ? उनके सभापतित्वमें शरणार्थियोंका वह प्रस्ताव पास हुआ है इसलिए टण्डनजीका नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उस सत्याग्रहका नेतृत्व करें। अगर कांग्रेस उसका विरोध करती है तो टण्डनजी क्या करेंगे ? क्या वे कांग्रेससे इस्तैफ़ा देंगे ? यदि वे बुरा न मानें तो हमारा कहना यह है कि श्रीमान् टण्डनजी के सभापतित्वमें उस प्रकारका प्रस्ताव पास होना इस बातका द्योतक है कि कांग्रेसको उनके प्रति अनुशासनकी कार्यवाही करनी चाहिए क्योंकि वे 'अनुशासन-परिधि'में आते हैं। यदि यह कहा जाय कि वे कांग्रेसको अपने विचारोंके अनुरूप बना लेंगे तो हमारा कहना यह है कि उन्हें कांग्रेसके विधानको बदलना पड़ेगा और एक ऐसी भी स्थिति पैदा हो सकती है कि शायद—हम शायद ही कह सकते हैं :—माननीय नेहरूजी तथा कई अन्य व्यक्ति कांग्रेस-कार्य-समितिमें शामिल न हों। और हम कांग्रेसको, उसकी गिरती दशामें भी, माननीय नेहरूजीके बिना कल्पना नहीं कर सकते।

कोरिया युद्धकी प्रगति

गत मास हमने कोरिया-युद्धके विषयमें अपने अनुमानसे यह लिखा था कि यदि ७-८ अगस्त, ५० तक अमरीकी सेनाएँ कोरियासे खदेड़ी नहीं गईं तो फिर कोरियामें अमरीकनोंके पैर जम जायँगे और उनका वहाँसे निकालना कठिन हो जायगा। हमारा अनुमान इस बातपर आधारित था कि अमेरिकासे सहायता पहुँचनेमें १५-१६ दिन लगते हैं। हमने वह अनुमान गत २५ जुलाईको लगाया था। आज २० अगस्तको इन पंक्तियोंके लिखते समय हमारे पिछले मासके अनुमानकी पुष्टि होती है। हमने यह भी लिखा था कि यदि अमेरिकन कोरियासे निकाल भी दिए जायँगे तो वे दुबारा कोरियामें आयँगे। उत्तरी कोरियाकी सेनाओंने इस बातकी प्राणपणसे चेष्टा की कि अमेरिकन फौजोंको तहस-नहस कर दिया जाय और दक्षिण-कोरियाकी सम्पूर्ण भूमिपर अधिकार कर लिया जाय। उत्तरी कोरियाके लोगोंकी यह आशा कुछ बेजा न थी; क्योंकि लड़ाई पहाड़ी इलाक़ोंमें हो रही है। कोरियावालोंके पास विपुल जनशक्ति है। वे भलीभाँति सुसज्जित भी हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि अपने ध्येयकी प्राप्तिके लिए वे मर-मिटनेको भी तैयार हैं। गत १८-१६ अगस्तको तो ऐसा प्रतीत हुआ कि उत्तरी कोरियाके सैनिक अमेरिकन आक्रमणको विफल करके अपनी मनोकामना पूरी करेंगे। पर हमारा खयाल प्रारम्भसे ही ऐसा है कि उत्तर-कोरियाकी सेनाएँ अमेरिकन सेनाओंको कोरियासे निकाल नहीं सकतीं। उसका कारण है। उत्तर कोरियाके पास समुद्री बेड़ा नहीं है। अगर उसके पास पनडुब्बियाँ भी होतीं तो अमेरिकन और ब्रिटिश बेड़ेका वे मुक़ाबला कर सकती थीं। हमने किसी सेनामें शिक्षा तो नहीं पाई पर हम यह समझते हैं कि समुद्री तोपोंके मुक़ाबिले खुश्कीकी तोपें विशेष कारगर नहीं होतीं; क्योंकि १५ और १६ इञ्चके दहानोंकी तोपें खुश्कीकी तोपोंकी अपेक्षा एक घण्टेमें अधिक कारगर गोले फेंक सकती हैं। समुद्रतटसे १५ मीलकी दूरीसे वे खुश्कीपर १५ मील भीतर अति भयंकर गोले फेंक सकती हैं।

समुद्री तोपोंमें स्वतः ही गोले भरे जाते हैं और बहुत भारी गोले वे फेंकती हैं। खुश्कीकी तोपें इतनी दूरतक कारगर मार नहीं कर सकतीं। इसलिए समुद्री बेड़ेकी सहायतासे कोरियन सेनाओंका मुकाबिला किया जा सकता है और हवाई सेनासे पहाड़ी इलाकेमें भी काफी मदद पहुँचती है। इसी कारण अमेरिकन फौजोंने तेगूके पास अत्यन्त सम्भावित भीषण कम्यूनिस्ट आक्रमणको अपने प्रत्याक्रमणसे विफल कर दिया। और कोरियाके पश्चिमी इलाकेपर आइबोन बन्दरपर अमेरिकन फौजें उतर गई हैं। धीरे-धीरे अमेरिका और सहायता मँगा लेगा और कम्यूनिस्ट सेनाओंको पीछे हटना पड़ेगा।

हमारी अब भी यही धारणा है कि इस कोरियन युद्धसे तृतीय महायुद्धका प्रारम्भ नहीं होगा। कोरियन युद्ध तो एक प्रकारसे रूस और अमेरिकाकी पारस्परिक शक्तिकी जाँच कसौटी है। रूसका शायद यह खयाल था कि अमेरिका उत्तर कारिया और दक्षिण कोरियाके युद्धमें कुछ हस्तक्षेप न करेगा। दूसरे अमेरिकाकी वहाँ इतनी शक्ति भी नहीं थी कि वहाँ कुछ कर सकता। और तीसरा रूसका यह अनुभव भी हो सकता है कि विश्वमें कोरियाकी नीतिसे रूसके प्रति आतंकमय प्रभाव पड़ेगा। पर बात कुछ दूसरी हुई। महीनोंसे रूसने संयुक्तराष्ट्रकी सुरक्षा-समितिका बहिष्कार कर रखा था। रूसने महसूस किया कि उसकी वह नीति ठीक नहीं थी और इसलिए रूसके प्रतिनिधि जोजेफ मलिक वहाँ पहुँच गये। अमेरिकाने कोरियामें चुनौती स्वीकार कर ली और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि रूसके टटपुँजिए पिट्ठूओंको छोड़कर सबने ही उसे, अर्थात् उत्तर कोरियाके कम्यूनिस्टोंको, आक्रमणकारी समझा। रूसके प्रति श्रद्धा रखनेवालोंका भी यह खयाल हो गया कि रूसमें चाहे जारशाही हो, चाहे स्टालिनशाही—रूस की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति वैसी-की-वैसी बनी हुई है।

हम नहीं कह सकते कि कोरिया-युद्धकी प्रगतिकी रूपरेखा क्या होगी ? हमारे अनुमानसे अगस्तके अखीर तक स्थिति साफ हो जायगी।

रेलोंकी दुर्घटनाएँ

पता नहीं कि हमारे देशपर कौन-से ग्रह हैं कि हमारे यहाँ इतनी रेलवे दुर्घटनाएँ होने लगी हैं। जब कोई पैसेंजर ऐक्सप्रेस या मेलट्रेन निकलती है तब हमारे मनमें यही आशंका रहती है कि कहीं ऐसा न हो कि कहीं कोई दुर्घटना न हो जाय और यात्रियोंके सगे-सम्बन्धियोंको न जाने किस प्रकार भुगतना पड़े। इस प्रकारकी आशंकाका कारण है रेलवे दुर्घटनाओं की संख्या और भीषणता। रेलवे-दुर्घटनाएँ अंगरेजी राज्यमें भी होती थें। पर जब कभी कोई दुर्घटना हो जाती थी तब चारों ओरसे चिल्ल-पुकार मचती थी। और तब दुर्घटनाएँ होती भी बहुत कम थीं; पर अब तो कोई कह नहीं सकता कि छोटी और बड़ी दुर्घटनाएँ भारतीय रेलोंमें प्रतिमास कितनी होती हैं। गत अगस्तके दूसरे सप्ताहमें तूफान ऐक्सप्रेसकी जो दुर्घटना मुगलसरायके समीप बिहार में करमनासा और दुरगावती स्टेशनोंके बीच हुई वह अति भयंकर है। ई० आई० रेलवेके अधिकारियों तथा रेलवे बोर्डके एक सदस्य द्वारा मौकेपर की गई जाँचके अनुसार तूफान ऐक्सप्रेस, मालगाड़ीके डब्बोंके तूफानकी पटरीपर गिरनेसे टकरा गई। इस दुर्घटनाके तीन-चार दिन बाद यानी १७ अगस्तको उसी लाइनपर गयासे आगे बम्बई मेलका इंजन एक डब्बे सहित पटरीसे उतर गया। खैर यह हुई कि किसी यात्रीके गम्भीर चोट नहीं आई। गम्भीर चोटें न आनेका कारण रेलवे अधिकारियोंकी कार्यकुशलता है अथवा कोई और कारण, इसपर हम कुछ नहीं कह सकते। हमारे लिए तो विश्लेषणके लिए विचारणीय बात यह है कि आखिर इतनी रेलवे दुर्घटनाएँ क्यों होती हैं ? तूफान मेलमें ही इतने आदमियोंकी जानें गईं। पंजाब मेलकी जो भयंकर दुर्घटना पटना लाइनपर हुई उसमें जानें गईं। और अन्य प्रकारकी रेलवे दुर्घटनाएँ क्यों होती हैं। हम मानते हैं कि रेलवे बोर्ड ही अकेला इन दुर्घटनाओंके मर्जका इलाज नहीं है। पर फिर भी रेलवे बोर्ड तथा हमारी सरकार रेल-यात्रियोंके जान-मालकी रक्षक है। हम इस बातसे सन्तुष्ट नहीं हैं कि हर बातको कम्यूनिस्टोंके मत्थे मढ़ दिया जाय। हम कम्यूनिस्टोंके हामी नहीं हैं। उनकी कार्य-प्रणाली तथा उनकी विचारधाराके हम घोर विरोधी हैं। जनता इस बातसे सन्तुष्ट नहीं हो सकती कि अमुक रेल दुर्घटना—विशेषकर यह तूफान एक्सप्रेस दुर्घटना

और पंजाबमेल दुर्घटना—तोड़-फोड़के कारण हुई। हम न तो इंजीनियर हैं और न मशीन-सम्बन्धी गुत्थियोंको समझते हैं। पर हम और हमारे साथ हमारे करोड़ों देशवासी यह समझना चाहते हैं कि क्या वास्तवमें ये दुर्घटनाएँ केवल तोड़-फोड़के कारण होती हैं। फिशप्लेट्स उखड़े मिले। उनके उखाड़नेका सामान भी मिला। हमारे खयालसे रेल-दुर्घटनाओंके तीन कारण हो सकते हैं—

१. असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर जो पटरियोंके बदलने और सिगनल देनेका काम करता है। २. ड्राइवर जो ट्रेनें चलाता है और ३. मेकेनिकल दोष—अर्थात् डब्बों, पटरियों अथवा इंजिन-सम्बन्धी दोष और तोड़-फोड़।

जहाँ तक इस तूफ़ान एक्सप्रेसकी दुर्घटनाका सम्बन्ध है वहाँ तक हम रेलवे अधिकारियोंसे यह पूछते हैं कि मुग़लसराय के दुर्घटना-स्थलपर सहायता-गाड़ी ३½ घण्टे बाद क्यों पहुँची? रेलवेके पास इंजीनियर-विभागके तथा अन्य ऐसे व्यक्ति हैं (P.W.I.) जो रात्रिमें पेट्रोल कर सकते हैं। पंजाब मेलकी जो दुर्घटना हुई उसका ड्राइवर क्या आवश्यकतासे अधिक गतिसे मेलको चलानेका आदी नहीं था। हम मालूम करना चाहेंगे कि क्या यह बात ठीक नहीं है कि प्लेटफार्मतक पर वह तेज़ गतिसे गाड़ी ले जानेका आदी था। हमारी माँग है कि हमारी सरकार इस बातको बताय कि एक महीनेमें छोटी-बड़ी दुर्घटनाएँ अकेले हवड़ा स्टेशनपर कितनी होती हैं। रेलवे दुर्घटनाओंका मामला काफ़ी संगीन है। अकेले कम्यूनिस्टोंके मत्थे इन दुर्घटनाओंको थोपना ठीक नहीं है। हम तो इस बातको जानना चाहते हैं कि रेलवे-कर्मचारी कहीं अपने कर्त्तव्य-पालनमें अक्षम्य ढील तो नहीं करते। थोड़ी-सी ट्रेनिंगके बाद अनेक व्यक्तियोंको आजकल असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर बना दिया जाता है। पहले वे बहुत दिनों तक सिग्नलरका काम करते थे। यह हम मानते हैं कि ओ० टी० आर० पर जो दुर्घटना हुई थी वह पूरे तौरसे तोड़-फोड़का काम था; पर अन्य दुर्घटनाओंके बारेमें हमें सन्तोष नहीं है कि वे क्यों हुईं? १०-२० तोड़-फोड़ करनेवालोंको गोलीसे भी उड़ा दिया जाय तो बिलखते बच्चों, चीखती कुलवधुओं और अंग-भंग व्यक्तियोंके हृदय-विदारक दृश्य तो देखनेको न मिलेंगे। इंजिनों और डब्बोंके नष्ट होनेसे जो हमारी अपार क्षति होती है वह तो न होगी। इस प्रकारकी दुर्घटनाएँ रोकनी चाहिए और उनके रोकनेमें प्रत्येक भारतवासीका कर्त्तव्य है, अन्यथा रेलवेके जिम्मेदार कर्मचारियोंको कठोर दण्ड देना चाहिए।

कश्मीरकी स्थिति

इन पंक्तियोंके लिखते समय, यानी ता० २२ अगस्तके समाचार-पत्रोंमें कश्मीरके विषयमें समाचार छपा है कि कश्मीर के मध्यस्थ सर डिक्सन भारतवर्षसे विदा हो रहे हैं और वे अपनी रिपोर्ट लेक सक्सेसमें यू० एन० ओ० को पेश करेंगे। समाचारोंसे जो कुछ पता चलता है वह यह है कि उन्होंने स्वयं अपने सुझाव पेश किए तथा यू० एन० ओ० सम्बन्धी प्रस्तावके अनुसार पाकिस्तान व हिन्दुस्तानके बीच कश्मीर समस्यापर प्राणपणसे समझौतेकी कोशिश की। पर उसमें उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। फलस्वरूप उन्हें यहाँसे निराश होकर जाना पड़ रहा है। इस सिलसिलेमें हम यह भी बताना चाहते हैं कि गत स्वतन्त्रता दिवसपर माननीय नेहरूजी और माननीय लियाकत अलीखाँ साहबने अपने-अपने देशोंको जो सन्देश दिए उनको पाठक ध्यानसे पढ़ेंगे। लियाकतअली खाँ साहबने फ़रमाया था कि वे तब तक चैन नहीं लेंगे जब तक कि कश्मीरके मुसलमानोंका त्राण नहीं हो जायगा। स्पष्ट है कि पाकिस्तानके प्रधान मन्त्रीके मनमें एक खुटक है और वे येन-केन-प्रकारेण कश्मीरको हथियाना चाहते हैं। यहाँपर इस रोनेसे कोई लाभ नहीं कि कश्मीरके मामलेमें नेहरूजीने कई ग़लतियाँ की हैं। जब भारतीय सैनिकोंने पाकिस्तानियोंको खदेड़ना शुरू किया तब लड़ाई बन्द करनेकी आज्ञा तबतक नहीं देनी चाहिए थी जब तक कि कश्मीरकी भूमिसे पाकिस्तानी सेना खदेड़ न दी जाती। पर सवाल यह है कि अब क्या हालत होगी। स्थिति गम्भीर है। हमारे अनुमानसे यू० एन० ओ० कहीं यह राय न दे कि जम्मू हिन्दुस्तानको दे दिया जाय, कश्मीर पाकिस्तानको और गिलगिट घाटी यू० एन० ओ० को। विश्वमें जो परिस्थिति है और हमारी जो बेबसी है उसमें जो न हो सो थोड़ा है। यदि कहीं ऐसा हुआ तो

कश्मीर अन्तर्राष्ट्रिय युद्धका अखाड़ा बन जायगा और हमारा देश किसी न किसी गुटबन्दीका शिकार हो जायगा। कश्मीर-समस्याको हल करनेका एक सहायक ढंग यह है कि हम देशमें अमन-अमान रखें और अपनी आन्तरिक स्थितिको मजबूत बनायें। बिना ऐसा किए हमारी सरकारको शक्ति नहीं पहुँच सकती। प्रत्येक भारतवासीका कर्त्तव्य है कि वह अपने कर्त्तव्य-पालनमें रत रहे और कश्मीरके मामलेमें हमें किसी प्रकारकी कमजोरी नहीं दिखानी चाहिए। हमारे और नब्बे फीसदी भारतवासियोंके खयालसे कश्मीर भारतका अविभाज्य अंग है और उसमें जनमत लेनेका सवाल ही नहीं पैदा होना चाहिए।

कश्मीर-समस्यापर सर डिक्सनके विचार

गत २२ अगस्तको कश्मीर-मध्यस्थ सर डिक्सनने निम्नांकित वक्तव्य प्रकाशित किया है :—

मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि भारत और पाकिस्तानके कश्मीर तथा जम्मू-सम्बन्धी मतभेद दूर करनेकी सम्भावना फिलहाल बिलकुल नहीं रही। दोनों प्रधान मन्त्रियोंमें से किसी भी अपनी ओरसे समस्याके समाधानार्थ प्रस्ताव नहीं पेश किया। फलतः मैंने सुझाव दिया कि मत-गणनाके अलावा अन्य उपायोंसे झगड़ेकी समाप्ति सम्भव है। अन्य उपायोंका स्पष्टीकरण मैंने किया किन्तु उसका फल भी नकारात्मक ही रहा। मैंने सुझाव दिया कि जिन क्षेत्रोंकी जनताके विचार विदित हैं उन क्षेत्रोंका तदनुसार भारत और पाकिस्तानके बीच विभाजन कर दिया जाय; किन्तु जिन थोड़े-से क्षेत्रोंके विचार निश्चित रूपसे प्रकट नहीं हो सके हैं, वहाँकी जनताको मत-गणनाका अवसर प्रदान किया जाय। शर्त यह रहेगी कि भौगोलिक, आर्थिक, क्षेत्रीय एवं अन्य प्रश्नोंका भी ध्यान रख कर निर्णय किया जाय।

भारतने उपर्युक्त सुझावके अनुसार समझौतेके प्रस्तावपर विचार करना मंजूर किया; परन्तु पाकिस्तानने कहा कि वह राष्ट्रसंघके मत-गणना सम्बन्धी प्रस्तावसे रंचमात्र हटनेको तैयार नहीं है। जहाँतक मत-गणनाके बगैर सीधे विभाजनका मार्ग अपनानेकी बात है, वह नितान्त अव्यावहारिक जँचा, क्योंकि भारत और पाकिस्तान दोनों ही कश्मीरकी घाटीको अवश्य चाहेंगे। प्रधान मन्त्रियोंसे बातचीत करनेपर उपर्युक्त आशंका की पुष्टि हुई।

मैंने अभीतक अपने प्रयास और वार्ताका कोई तथ्य प्रकट नहीं किया था। मैं तो संयुक्त राष्ट्रसंघके निर्देशानुसार सरकारोंसे विचार-विमर्श करनेमें संलग्न रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि भारत-पाकिस्तानके समाचार-पत्रोंने मेरी मौतका आदर किया है और उसके लिये मैं आभारी हूँ।

संयुक्त राष्ट्रसंघके प्रस्तावमें कहा गया था कि जनमत गणनाके कारण कश्मीर-जम्मूका भारत अथवा पाकिस्तानसे सम्बन्ध निर्धारित होना चाहिए। उसके साथ यह भी कहा गया था कि जनमत-गणनाके पूर्व अनुकूल स्थितिका होना आवश्यक है। अनुकूल स्थितिसे तात्पर्य ऐसी अवस्थासे है जिसमें कश्मीर-जम्मूकी जनता निस्संकोच और निर्भय होकर अपने विचार प्रकट करे। असैन्यकरण और लड़ाई बन्दीकी शर्तें भी उसमें सम्मिलित हैं जिनके बगैर निष्पक्ष तथा न्यायपूर्ण मत-प्रकाशन सम्भव न होगा। मैंने उपर्युक्त बातोंको ध्यानमें रखकर ही अपनी वार्ता चलायी है। नयी बाधाएँ और ताजी कठिनाइयाँ सामने आई हैं, फलतः मैंने अपनी ओरसे कई प्रस्ताव और सुझाव रखे। अन्तमें दोनों प्रधान मन्त्रियोंकी वार्ताका आयोजन दिल्लीमें किया गया। चूँकि दोमें से एक भी प्रधान मन्त्रीने अपनी ओरसे कोई प्रस्ताव नहीं किया अतः मुझे ही अपने प्रस्तावोंका स्पष्टीकरण करना पड़ा। प्रधान मन्त्रियों की वार्ता ४-५ दिन तक चलती रही और मेरे सुझाव अस्वीकृत हो गये। अन्तमें हम तीनोंने स्वीकार कर लिया कि मत-गणनाके पूर्व शर्तोंपर समझौतेकी आशा नहीं है। मैंने चाहा था कि भरसक मत-गणना सीमित क्षेत्रमें ही हो और जिन क्षेत्रोंकी जनताके विचार असंदिग्ध रूपसे विदित हैं उन्हें यों ही भारत अथवा पाकिस्तानसे सम्बद्ध मान लिया जाय। मैंने भारतसे कहा कि वह अपने विचार सूचित करे। इसीपर प्रधान मन्त्रियोंकी वार्ता स्थगित हो गई। मैं दिल्लीमें २१ अगस्त तक रुका रहा और भारतीय अधिकारियोंके विचार भी ज्ञात कर लिए। मालूम हुआ कि भारत मेरे सुझावोंके अनुसार समझौतेके प्रस्तावपर विचार करनेको राजी है, किन्तु मत-गणनाके क्षेत्रोंके निर्धारणके सम्बन्ध भारतके अपने सिद्धान्त हैं।

भारतके विचार जान लेनेके पश्चात् मैं कराची पहुँचा। पाकिस्तानी अधिकारियोंने मुझे सूचित किया कि विभाजन और सीमित क्षेत्रमें जनमत-गणनाका प्रस्ताव पाकिस्तानको स्वीकार नहीं। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा जनमत-गणनाका जो प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका है उससे पाकिस्तान टस-से-मस नहीं होगा। साथ ही यदि प्रस्तावित योजनाको कार्यान्वित करनेका मौका भी आया हो; यह निश्चित है कि पाकिस्तान और भारत—दोनों कश्मीर घाटीके लिए माँग करेंगे। हुआ भी ऐसा ही! दोनों सरकारोंसे बात करनेपर उपर्युक्त आशंकाकी पुष्टि हो गई। मैंने दोनों प्रधान मन्त्रियोंकी पुनः वार्ता करानेका उद्योग किया, किन्तु

दोनोंने ही उसे अनावश्यक महसूस किया। मैंने दूसरे प्रस्ताव रखे किन्तु वे भी विफल रहे। अब मेरे लिए सिवा इसके कि सुरक्षा परिषदको रिपोर्ट दूँ दूसरा कर्त्तव्य नहीं दिखाई पड़ा।

इतना और बता देना चाहता हूँ, मेरे प्रति दोनों सरकारों और जनताने भी पूरे सहयोग और सौहार्दका परिचय दिया है और सब आवश्यक सुविधाएँ मुझे मिलीं हैं जिनके कारण आनन्दपूर्वक अपने दायित्वको में पूरा कर सका हूँ। किन्तु खेद है कि समझौतेके सभी प्रस्ताव मेरे द्वारा ही उपस्थित किये गये। यदि भारत और पाकिस्तान सरकार द्वारा अपने प्रस्ताव रखे गये होते तो मेरे काममें सहायता मिली होती और सम्भवतः सफलता भी मिलती। इन सब बातोंके बावजूद अब भी मुझे आशा है कि भारत-पाकिस्तान प्रेमपूर्ण वार्ताके द्वारा अपने मतभेद मिटा सकेंगे।

मुख्य मन्त्रि-सम्मेलनके निर्णय

गत १९-२० अगस्तको नई दिल्लीमें भारतीय संघके विभिन्न सूबोंके मुख्य-मन्त्रियोंका एक सम्मेलन हुआ था। देशमें अनाज-उत्पादन, अनाज-वसूली तथा अनाज-वितरणकी समस्या को युद्ध-स्तरपर हल करनेका राज्योंके मुख्य मन्त्रियों तथा खाद्य मन्त्रियोंके सम्मेलनमें कई निर्णय किए गए।

सम्मेलन द्वारा स्वीकृत सात महत्त्वपूर्ण सिफारिशें ये हैं:—

(१) अनाज-नीतिके सम्बन्धमें केन्द्रीय और राज्य सरकारोंकी ओरसे एक-सा आदेश जारी किया जाना चाहिए। राज्योंमें अनाजके लाने, ले जानेके सम्बन्धमें जो प्रतिबन्ध हैं उनका उद्देश्य न केवल अपने ही राज्योंके लोगोंको अनाज मुहैया करना चाहिए, बल्कि समूचे देशको अनाज मुहैया करना चाहिए। (२) १९५१ के अन्त तक देशको अनाजके मामलेमें स्वावलम्बी बनानेका कार्यक्रम अवश्य पूरा किया जाना चाहिए। कोरियामें युद्ध प्रारम्भ हो जानेसे यह अधिक आवश्यक हो गया है कि अपनी आवश्यकता पूरी करनेके लिए हम अपने देशमें पर्याप्त अनाज पैदा करें। (३) अनाज-वसूली और अनाज-उत्पादन-कार्यको युद्ध-स्तरपर संचालित किया जाय और इस कार्यको सबसे अधिक प्राथमिकता दी जाय। जहाँ आवश्यक हो वहाँ शासन-व्यवस्थामें उचित परिवर्तन किया जाय। (४) जिन खाद्यान्नोंपर नियन्त्रण है, उनकी वसूलीमें सभी राज्योंमें—चाहे कोई बचतवाला राज्य हो या कमीवाला राज्य हो—तेजी लाई जाय। (५) अधिक अन्न संचय करने वालोंके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई की जाय। जहाँ तक सम्भव हो सके सभी राज्योंके व्यापारियों, उपभोक्ताओं तथा उत्पादकोंको एक-से परिमाणमें अनाज रखनेकी अनुमति दी जाय और सरकारी आदेशमें अधिक अनाज रखनेवालोंके लिए सरकारको सूचित करना आवश्यक कर दिया जाय। तत्सम्बन्धी अफ़सरोंको विशेष आदेश दिया जाय कि वे अनाज-सम्बन्धी नियमोंको अधिक प्रभावशाली बनायँ। (६) जहाँ तक सम्भव हो, सभी राज्योंमें विभिन्न खाद्य पदार्थोंके दाम एक-से रखे जायँ और इसमें विभिन्न राज्योंमें अधिक सहयोग बढ़ाया जाय। (७) चीनीके कारखानोंको चीनी तैयार करनेके मौसममें काफी परिमाणमें गन्ना उपलब्ध करानेके लिए कदम उठाया जाय।

हमें दुःख है; हमें यह स्पष्ट लिखना पड़ता है कि इन कड़े क़ानूनोंसे गल्लेकी चोरबाजारी और अनावश्यक रूपसे चुराकर गल्ला रखनेकी प्रवृत्तिमें कमी नहीं होगी। जब तक चोर बाजारी करनेमें बेहद मुनाफा रहेगा, कण्ट्रोलकी विभीषिका और खाद्यान्नका अभाव रहेगा तब तक लोग चोरबाजारीका खतरा उठायेंगे। लम्बी सजाके बजाय सार्वजनिक स्थानोंपर भ्रष्टाचारियों और चोर बाजारियोंको यदि कोड़े लगाए जायँ तो शायद कुछ रोक-थाम भले ही हो जाय।

बिहारमें दुर्भिक्षकी विभीषिका

हमें यह पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि बिहारकी खाद्य स्थितिके विषयमें भारत सरकार और बिहार सरकारके विभिन्न मत हैं। जब सरकारकी ओरसे इस प्रकारकी भ्रमात्मक बातें निकलें तब हमारे लिए कठिन हो जाता है कि उसपर कोई निश्चित राय लिख सकें। इसलिए हमने तय किया है कि इसी सितम्बरके अन्तमें पुर्णिया और फारबिस गंज जाकर इस मामलेकी जाँच करें, पर एक बात हमें पूछ-ताछसे मालूम हुई और वह यह कि बिहारमें चावलकी इतनी कमी नहीं है जितनी की उसके वितरणके तरीके की। एक मित्रने बताया कि धानका भाव तो है १६ रु० मन और सरकार चावल खरीदती है लगभग १४ रु० मन। धानसे ७४ फ़ीसदी चावल निकलता है। जब धानकी कीमत १६ रु० मन हो तब कोई व्यापारी चावलको १४) रु० मनके हिसाबसे कैसे बेंच सकेगा। चाहिए तो यह कि धानका भाव ७-८ रु० मन हो या फिर धानका उत्पादन इतना ज़्यादा हो कि कण्ट्रोलकी आवश्यकता ही न रहे। अस्तु इस विषयमें हम अक्टूबरके अंकमें लिखनेका प्रयत्न करेंगे और बिहारका भ्रमण करेंगे।

भूकम्प पीड़ित आसाम

गत १५ अगस्तकी शामको सम्पूर्ण आसाम भीषण भूकम्पके झटकोंसे प्रकम्पित हो गया। समाचार है कि यह भूकम्प बिहारके गत भयंकर भूकम्पके समान ही है। खैर इतनी ही है कि इस भूकम्पसे जन-हानि उतनी नहीं हुई

जितनी कि विहारके सन् ३४ के भूकम्पसे हुई थी। नदियोंके मार्ग अवरुद्ध हो गए और फिर बाढ़का प्रकोप हुआ। जल-प्लावन, मकानोंके नष्ट-भ्रष्ट होने तथा भुखमरीसे हजारों आदमी त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। इस दैवी कोपमें सारे देशकी सहानुभूति आसामी भाइयोंके प्रति है। हमें आशा है कि भूकम्प-पीड़ित आसामके लिए हमारे देशवासी अपनी मुसीबतमें भी प्रत्येक प्रकार सहायता देंगे।

राष्ट्रपतिका सन्देश

गत १५ अगस्तको राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजीने निम्न-लिखित सन्देश राष्ट्रको दिया—

अपनी स्वतन्त्रताका तृतीय वर्षगाँठ-समारोह मनाते समय हमलोगोंको यह स्मरण रखना होगा कि अभी हमलोगोंको एक लम्बा रास्ता तय करना है, तब कहीं जाकर हमलोग यह महसूस कर सकेंगे कि स्वतन्त्रताने हमारे ऊपर जो उत्तरदायित्व डाला, उसे हमलोगोंने पूरी तरह निभाया है। यह रास्ता सफलता और तेजीके साथ तभी तय किया जा सकता है जब कि समूचा राष्ट्र यह महसूस करे कि यह कार्य केवल सरकारका ही नहीं प्रत्युत स्वयं उसका भी है। गत कई शताब्दियोंमें एक विदेशी सरकारके शासनारूढ़ होनेके कारण सरकार और राष्ट्रके बीच एक गहरी खाई रही है। इस प्रकार यह सरकार एक अभिशाप बनकर रही जिसके उत्पीड़नको हमने अनिच्छापूर्वक सहन किया, किन्तु उसका समर्थन कभी नहीं किया—यह मानसिक विचारधारा आज भी कुछ लोगोंमें व्याप्त है। यदि हमलोगोंको उन्नति करनी है तो इस विचारधाराको परिवर्तित करना होगा। आज सरकार जनताकी है और जनताके लिये है। उस मनोवैज्ञानिक खाईको, जो जनता और सरकारको पृथक करती है, भरना नितान्त आवश्यक है।

जनताको उस महान् गणतान्त्रिक प्रजातन्त्रपर गर्व करना चाहिये जिसकी स्थापना उसने स्वयं किया है। यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रमें भ्रष्टाचार फैलाने या उसे निर्बल बनानेके लिये कोई कार्य करता है तो उस कार्यको देश-द्रोह समझकर किसी न किसी तरह दबा देना चाहिये। उस विधानसे, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक नागरिकको राष्ट्र-निर्माणमें बालिग मताधिकार प्राप्त है, यह स्पष्ट है कि अपनी उचित माँगोंकी पूर्तिके लिये सभीको वैधानिक सुविधाएँ प्राप्त हैं। ऐसी आशा की जाती है कि इस सुविधाका पूरा लाभ उठाया जा सकेगा और यदि प्रजातन्त्र या इसके किसी भी नागरिकके विरुद्ध कोई कार्य बलपूर्वक किया जाय तो जनता-द्वारा उसकी निन्दा सामूहिक रूपसे की जानी चाहिये। जनताको चाहिये कि वह अपने सभी सुलभ साधनोंके साथ सरकारको पूर्ण सहयोग प्रदान करे ताकि वह अपना कार्य-सम्पादन समुचित ढंगसे कर सके। सरकारको अपने उन नागरिकोंकी देश-भक्तिकी भावना तथा सद्‌विचारोंकी आवश्यकता है जो सरकारकी प्रसन्नतापूर्वक सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

दूसरी बात जोर देनेकी यह है कि राष्ट्रकी उन्नतिके लिये हमें सत्य एवं औचित्यके मार्गपर दृढ़ रहना है। स्वार्थपरता उन अनेक पापोंका मूल है जिनसे आज हमारा समाज बुरी तरह प्रताड़ित है, अतः इस समय आवश्यकता इस बातकी है कि देशका नैतिक उत्थान किया जाय। चोरबाजारी, घुसखोरी, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिक या प्रान्तीय विद्वेष—इन सबको स्वार्थ-परता समझकर इनका अन्त शीघ्रातिशीघ्र कर देना चाहिये। हमें इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि महान् संस्कृतिके पुजारी तथा नैतिक और आध्यात्मिक साधनोंके प्रणेता हमारे देश भाई इन सब अनाचारोंपर शीघ्र ही विजय पा लेंगे और वे एक ऐसे भारतका निर्माण करेंगे जिसपर हम सभी गर्व करेंगे।

लियाकतअली खाँका बयान

विशालभारतके नोट्स समाप्त करते समय (ता० २४-८-५०) हमें पाकिस्तानके प्रधान मन्त्री श्री लियाकतअली खाँका कश्मीर-सम्बन्धी वक्तव्य पढ़नेको मिला। स्थानाभावसे उसे हम यहाँ नहीं दे सकते; पर उनके सम्पूर्ण वक्तव्यका तात्पर्य यह है कि कश्मीर-उलझनकी सम्पूर्ण जिम्मेदारी भारत सरकार पर है और पाकिस्तान तो दूधका धोया हुआ है। और पाकिस्तानके रूपमें, लियाकत अलीखाँके दृष्टिसे, न्याय और ईमानदारी मूर्तिमान होकर प्रकट हुए हैं। लियाकतअली खाँने कहा है कि कश्मीरके मुसलमानोंका त्राण किए बिना पाकिस्तान चैन न लेगा और जिस प्रकार यू० एन० ओ०ने कोरिया में हस्तक्षेप किया है उसी प्रकार उसको कश्मीरमें हस्तक्षेप करना चाहिए। लियाकतअली खाँ साहबका सीधा मंशा यह है कि शेख अब्दुल्लाके हाथोंसे शासनसूत्र ले लिया जाय। सारा कश्मीर यू० एन० ओ०के अधीन हो जाय और तब जनमत लिया जाय। हमारे खयालसे, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, कश्मीरको भारतका अविभाज्य अंग मान लेना चाहिए और यू० एन० ओ० से कश्मीरके प्रश्नको उठा लेना चाहिए; क्योंकि लियाकतअली खाँ साहबकी धमकीका और कोई उत्तर समझमें नहीं आता।

विलायती पत्रकारोंका संगठन

बनारसीदास चतुर्वेदी

सन् १८९०

"मेरा यह प्रस्ताव है कि डेवन तथा कार्नवालके पत्रकारों का संगठन श्रमजीवी ढंगपर किया जाय", चार्ल्स गैरी नामक एक पत्रकारके मुंहसे किसी मीटिंगमें ये शब्द निकल गये। नतीजा यह हुआ कि चारों ओरसे उसपर फटकार पड़ने लगी। किसी तरह वहांसे निकलकर उसने बाकायदोंसे अपनी जान बचाई। 'ऐसी वाहियात बात कहनेकी हिम्मत उसे हुई कैसे?' ये शब्द थे वहां उपस्थित जनताकी जबानपर।

सन् १९०५-१९०६

एक रिपोर्टरके बच्चेकी मृत्यु हो चुकी थी और पत्नी बीमार थी। वह लंकाशायरके एक पत्रमें काम करता था। वेतन बहुत ही कम था। डाक्टरको देनेके लिए पैसे नहीं बचे थे। आखिर वह भी कहांतक उधार देता! उसने दवा देनेसे इन्कार कर दिया। और-तो-और बच्चेके कफनके लिए और उसे गाड़नेके लिए भी पैसोंकी जरूरत थी और स्वाभिमानवश उसने मुहल्लेवालोंसे मांगना अनुचित समझा। अपने इस घोर संकटके समयमें उसने विलियम न्यूसेन वाट्सने सलाह ली। वाट्सने अपने पाससे सहायता देकर उस रिपोर्टरके गौरवकी रक्षा कर ली। इस दुर्घटनाका वाट्सके हृदयपर बड़ा असर पड़ा और उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि पत्रोंके कार्यालयोंमें काम करनेवालोंका आखिर कोई संगठन होना ही चाहिए, जिससे वे संकटकालमें ऐसी दुर्दशाके शिकार तो न हों! वाट्सके कोमल हृदयमें करुणाका जो बीज बोया गया वह आज वटवृक्षके रूपमें विद्यमान है! विलायतकी 'नेशनल यूनियन आव जर्नेलिस्ट्स' (एन० यू० जे०) का तेंतालीस वर्षका इतिहास इस बातका साक्षी है।

सन् १९५२

सदस्य संख्या— ७४३२

बचत— ६६५२ पौंड

अबतक पीड़ित, वृद्ध-प्रस्त तथा अन्य आकस्मिक दुर्घटनाओंमें प्रपीड़ित पत्रकारोंको दी हुई सहायताकी रकम— २०६०३१ पौंड यानी २१,२४८६२ रुपये

सदस्य फीस— ३ पौंड १८ शिलिंग प्रति सा

पर इन शुष्क अंकोंसे वस्तुतः उस घोर संघर्षका कुछ भी पता नहीं चल सकता जो विलायतके पत्रकारोंको अपने तेंतालीस वर्षके इतिहासमें करने पड़े हैं। जिन्हें इस विषयमें रुचि हो— और हमारा खयाल है कि प्रत्येक सजीव पत्रकारको अपने समान शील व्यक्तियोंके बारेमें जिज्ञासा होनी ही चाहिए— उन्हें F. J. Mansfield द्वारा लिखित 'Gentlemen—The Press' नामक पुस्तक अवश्य पढ़ लेनी चाहिए।*

मैन्स फील्ड साहबके इस ग्रन्थको पढ़कर हम चकित रह गये। उन्होंने लगभग अस्सी वर्षकी उम्रमें यह यज्ञ सर्वथा निस्स्वार्थ भावसे किया है। उन्हें इस बातका अभिमान है कि उनके पूज्य पितामह तथा श्रद्धेय पिताजी कम्पोजीटर थे और अब उनके दो लड़के पत्रकार हैं। स्वयं उन्होंने साठ वर्ष इसी क्षेत्रमें बिताये हैं। सन् १९१८ में वे विलायती पत्रकार-संघके सभापति निर्वाचित हुए थे। उनके इस ग्रन्थने हमारी आंखें खोल दीं।

पहले हमारे मनमें यह भ्रम था कि श्रमजीवी पत्रकारोंके संगठनका मुख्य उद्देश्य पौण्ड, शिलिंग, पैंस ही हो सकता है, पर इस पुस्तकको पढ़कर वह भ्रम सदाके लिये दूर हो गया। विलायती पत्रकार-संघके एक आत्मा है और उसका विकास सैकड़ों पत्रकारोंकी निस्स्वार्थ सेवासे हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि संघके द्वारा पत्रकारोंकी आर्थिक उन्नति भी हुई है। संघके प्रयत्नों द्वारा उसके सदस्योंको चालीस लाख पौण्डसे

---

* प्रकाशक W. H. Allen & Co, मूल्य करीब चौदह रुपए।

अतिरिक्त आमदनी हुई ; पर यह चीज गौण है, मुख्य नहीं। मुख्य बात तो यह हुई है कि पत्रकारोंमें स्वाभिमानकी मात्रा बहुत काफी बढ़ गई है, अपनी वृत्तिके प्रति उनके मनमें गौरव उत्पन्न हो गया है और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने 'संगच्छध्वं सवदध्वं सवो मनांसि जानताम्' के मन्त्रका अर्थ व्यावहारिक रूपसे समझ लिया है। आज विलायती पत्रकारों की शक्ति इतनी अधिक हो गई है कि पार्लामेण्टमें बीससे अधिक पत्रकार सदस्य हैं। मालिकों तथा पूँजीपतियोंके लिए पत्रकारोंको दुत्कारनेका युग कभीका लद चुका है।

अनन्त साधना

पर क्या यह सब यों ही हो गया? नहीं, इसके लिए सैकड़ों विलायती पत्रकारोंको काफी तपस्या करनी पड़ी है। तैंतालीस वर्ष पहले उनकी जो दुर्दशा थी उसे पढ़कर वर्तमान हिन्दी-पत्रकारोंकी कठोर परिस्थितियोंका खयाल आ जाता है। उन दिनों विलायती पत्रकार अपना अल्प वेतन बतलानेमें भी झिझकते थे। उनसे अधिक तनखाह तो मशीनमैनों और कम्पोजीटरों तथा जहाजी खलासियोंको मिलती थीं। जिन सम्पादकोंको कुछ अच्छा वेतन मिलता भी था उनमें अपने 'महत्त्व'की भावना इतनी प्रबल थी कि वे 'श्रमजीवी' कहलानेमें अपने गौरवकी हानि समझते थे। ट्रेड यूनियन या श्रमजीवी संघकी कल्पना भी उन्हें वीभत्स जँचती थी। पत्रकारोंका जो संघ था भी, उसके सदस्य संचालक भी हो सकते थे और प्रायः संचालक लोग ही मीटिंगोंके प्रधान बन जाते थे ; इसलिए वहाँ वेतन-वृद्धि जैसे सांसारिक विषयों या घरेलू झंझटोंकी चर्चा ही न हो पाती थी ! और वेतन था कितना ? लन्दन नगरमें पत्र-कारका प्रारम्भिक वेतन पचहत्तर रुपए मासिकसे भी कम था और प्रान्तीय पत्रोंके रिपोर्टरोंको साठ रुपए मिलते थे। कामके घण्टे थे बारहसे लगाकर पन्द्रह तक और सालभरमें सिर्फ एक सप्ताहकी छुट्टी मिलती थी। उम्मेदवारोंको अल्लल वेतनपर नौकर रखकर मालिक लोग अपना काम चला लेते थे। यदि कोई तीन-पाँच करता तो वे जवाब देते, "अगर जनाब काम नहीं करना चाहते, तो घरका रास्ता देखिये। तुम्हारे जैसे तीन सौ साठ आदमी तीस शिलिङ्ग प्रति सप्ताहपर मिल जायँगे।" एक अखबारने तो दो-तीन वर्षमें १२० रिपोर्टरोंको बर्खास्त कर दिया! बेचारे इधर-से-उधर मारे-मारे फिरते थे। कोई पूछनेवाला न था ! जो भी व्यक्ति उनका 'नेता' बननेकी कोशिश करता था, उसकी भी नौकरीपर आ बनती थी। उसे 'आन्दोलक' कहा जाता था और कभी-कभी उसे प्राइवेटमें बुलाकर यों समझाया जाता था, "अच्छा, तुम्हारा वेतन हम बढ़ा देंगे, पर इसका जिक्र तुम किसीसे न करना।"

नौकरीके इच्छुक पत्रकारों तथा रिपोर्टरोंसे जैसी-जैसी शर्तें उन दिनों लिखाई जाती थीं उन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है और हँसी भी आती है। स्वयं इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके लेखक मि० मैन्सफील्डसे यह शर्त लिखाई गई थी कि वे पाँच वर्ष तक न तो शादी करें, न ताश खेलें और न किसी प्रकारका जुआ। और वेतन था ५ शिलिंग प्रति सप्ताह जो पाँच वर्षमें बढ़कर १५ शिलिंग प्रति सप्ताहपर पहुँचनेवाला था !

पत्रकारोंके लिए कैसे-कैसे विज्ञापन उन दिनों निकलते थे—

फ्लीट स्ट्रीट लन्दनके लिए एक युवक पत्रकारकी आवश्यकता है। वेतन तीस शिलिंग प्रति सप्ताह।

साइकिल चढ़ना जाननेवाले रिपोर्टरकी जरूरत है— वेतन २५ शिलिंग।

आयर्लैण्डके एक दैनिक पत्रके लिए रिपोर्टर चाहिए— नाटकों तथा गानोंकी आलोचना भी कर सके—३५ शिलिंग प्रति सप्ताह—इत्यादि इत्यादि।

वाट्सकी साधना

जिन परिस्थितियोंमें वाट्सको काम करना पड़ा उसका कुछ वृत्तान्त उनकी सुपुत्रीने, जो इस समय एक स्कूलमें प्रधान अध्यापिका हैं, लिख दिया है। वे लिखती हैं, "मुझे भली भाँति स्मरण है कि किस प्रकार दादा हर रोज शामको कई घण्टे चिट्ठियाँ लिखनेमें बिताया करते थे। ये चिट्ठियाँ इंगलैण्डके भिन्न-भिन्न भागोंमें रहनेवाले पत्रकारोंको भेजी जाती थीं। सब घर भर इस काममें जुटा रहता था। माता, पिता मेरे दो भाई, मेरी बहन और मैं—ये छः व्यक्ति इस काममें जुटे रहते थे और छोटे भाईकी खेलकी गाड़ीमें भर-भरकर ये लिफ़ाफे हम लोग डाकके बम्बेमें डालनेके लिए ले जाते थे।

पोस्ट बाक्स क़रीब-क़रीब भर जाता था। इससे डाकियोंकी बहुत झुंभलाहट होती थी।...हम लोग उम्रमें इतने छोटे थे कि उस कार्यकी उपयोगिताकी हमें कुछ भी कल्पना न थी। बस, इतना सन्तोष हमें अवश्य था कि दादा हमसे इस काममें मदद चाहते हैं, इसलिए यह कोई अच्छा काम जरूर होगा। पिताजीको इधर-उधर यात्रापर भी जाना पड़ता था, क्योंकि जगह-जगह पत्रकार-संघकी शाखायें उन्हें स्थापित करनी पड़ती थीं। पिताजी 'इवनिंग न्यूज़'में काम करते थे और हारे-थके होनेपर भी वे सहर्ष पत्रकार-संघकी निस्स्वार्थ सेवा कई घण्टे प्रति दिन किया करते थे। पीछे तो उन्हें क्लार्क भी मिल गया था पर प्रारम्भमें बहुत दिनों तक तो हम भाई-बहनोंको ही इस काममें जुतना पड़ता था..."

आज तो पत्रकार संघका भरापूरा आफिस है। उसके अनेक वैतनिक कार्यकर्ता हैं, जिन्हें अच्छे-से-अच्छा वेतन मिलता है और वे अपने समयका सर्वोत्तम भाग संघके लिए अर्पित करते हैं पर प्रारम्भमें तो सारा काम अवैतनिक ढंगपर ही होता था।

प्रभावशाली पत्रकारोंकी सहायता

यह बात ध्यान देने योग्य है कि विलायतके सुप्रसिद्ध पत्रकारोंने अपने छुटभइयोंको कभी क्षुद्र नहीं समझा और उनमें से कितनों ही ने इस आन्दोलनमें भरपूर मदद भी दी।

'मैंनचेस्टर गार्जियन' तथा उसके सम्पादक सी० पी० स्काटसे जो नैतिक सहायता पत्रकार-संघको मिली वह प्रारम्भिक अवस्थामें अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई। लार्ड नार्थक्लिफने भी इस संघको पर्याप्त सहायता दी। उन्होंने तो अपने पत्रके सम्पादकीय पृष्ठका एक कालम ही पत्रकारोंके संगठनके लिए अर्पित कर दिया था। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि पत्रकारों तथा पत्र-संचालकोंकी संस्थाएँ अलग-अलग होनी चाहिए। और वे यह सख्त नापसन्द करते थे कि पत्रकार लोग दीनता या भिखमंगेपनकी भावनाको हृदयमें किंचित भी स्थान दें। बर्नर्डशाने पाँच वर्षका चन्दा एक साथ भेजकर इस संघकी सदस्यता स्वीकार की थी और लिखा था, "अस्सी वर्षकी उम्र तकका चन्दा भेजता हूँ। मैं तो पत्रकारके सिवाय और कुछ हूँ ही नहीं।" इसी प्रकार एच० जी० वैल्स तथा ए० जी० गार्डिनर भी संघके सदस्य बन गये थे। और फ़िलिप स्नोडन तो सन् १९०९ से ही संघमें भर्ती हो गये थे। सम्पादकाचार्य सी० पी० स्काटको सदा इस बातका अभिमान रहा कि पत्रकार संघका जन्म उन्हींके कार्यालयमें हुआ था और उसके प्रथम प्रेसीडेण्ट आर० सी० स्पेंसर उन्हींके द्वारा प्रोत्साहित होकर उस क्षेत्रमें आये थे।

संचालकोंसे संघर्ष

पर सभी संचालक स्काट साहबकी तरह उदार नहीं थे। बहुतोंमें पूँजीपतियों जैसी अनुदार भावना प्रबल मात्रामें पाई जाती थी। इन अदूरदर्शी संचालकोंके साथ जैसा विकट संघर्ष करना पड़ा उसका विस्तृत ब्यौरा इस पुस्तकमें पाया जाता है। हम यहाँ सिर्फ़ दो मामलोंका जिक्र करेंगे। 'बेडफोर्ड टाइम्स'के एक सम्वाददाता मि० अर्नेस्ट ग्रिफिथ्स टाइफाइड (मोतीझला) से बीमार हो गये और दो महीने खाट पर पड़े रहे। उन्हें कुल जमा २५ शिलिंग प्रति सप्ताहका वेतन मिलता था। उन्हें पन्द्रह दिनका नोटिस देकर निकाल दिया गया। उन्होंने यह मामला पत्रकार-संघके सम्मुख रखा। संघकी वह बाल्यावस्था ही थी। सन् १९०७ की यह घटना है। संघके पास इतना पैसा भी नहीं था कि आसानीसे इस अभियोगको वह लड़ सकता। फिर भी यह मामला हाथमें ले लिया गया। जब अदालतमें यह मामला गया तब वहाँ न्यायाधीशने ग्रिफिथ्सके पक्षमें मुक़दमेंका फैसला किया। एक महीनेके नोटिसकी बात संचालकको स्वीकार करनी पड़ी। यही नहीं अभियोगका ख़र्चा भी संचालकके सिरपर पड़ा।

दूसरा मामला था 'शैफ़ील्ड टेलीग्राफ़'का। विलियम लिण्टन ऐण्ड्रूज़' नामक एक युवकने दो पौण्ड प्रति सप्ताहपर रिपोर्टरीका काम स्वीकार किया था, पर कुछ महीनों बाद उस कार्यसे त्यागपत्र दे दिया और उसके ६ महीने बाद उसी नगर के 'शैफ़ील्ड इण्डिपेण्डेण्ट' नामक पत्रमें नौकरी कर ली। इसपर पहले पत्रके मालिकने दावा कर दिया कि उन्होंने शर्तका उल्लंघन किया है। बात यह थी कि उन दिनों किसी-किसी पत्रमें प्रार्थीसे यह अजीब शर्त लिखा ली जाती थी कि वह उस

नौकरीके छोड़नेके बाद उस नगरके बीस मीलके इर्द-गिर्द किसी पत्रमें नौकरी न करेगा। यह मुकदमा संघकी ओरसे लड़ा गया और ए० जी० गार्डिनर प्रभृति कई प्रसिद्ध सम्पादकोंने उक्त संवाददाताके पक्षमें गवाही दी और कहा कि इस प्रकारकी शर्तें बिल्कुल फ़ालतू है और सर्वथा तर्कहीन। फिर भी जजने संवाददाताके विरुद्ध फैसला दे दिया। अब बड़ी मुश्किल हुई। अपील करनेमें बहुत खर्च होता और संघकी आर्थिक स्थिति ऐसी थी नहीं कि अपील की जा सकती। फिर भी बहुत-कुछ सोच-समझकर संघने अपील दायर ही कर दी। अपीलमें नीचो अदालतका फैसला रद्द कर दिया गया और विलियम ऐण्ड्रूज़की जीत हो गई। यही नहीं उनको हर्जाना तथा खर्च भी मिला। पर इस न्यायको करानेमें पत्रकार-संघ का दो सौ पौण्ड खर्च हो गया।

इसी प्रकारके कई अन्य उपयोगी कार्य पत्रकार-संघको हाथमें लेने पड़े, जिन्हें कोई इकला-दुकला पत्रकार कर ही नहीं सकता था। पार्लमेण्टमें कानून बनवाना और पत्रकारोंके हितोंके विरोधी कानूनोंमें संशोधन कराना क्या किसी व्यक्ति विशेषकी शक्तिके भीतरका काम था?

पत्रकार-संघकी एक शाखाके कार्यकर्त्ता बहुत दिनोंतक एक असाध्य रोगसे बीमार रहे। संघने उनको अठारह हज़ार रुपये दिये और उनकी मृत्युके पश्चात् उनकी विधवाकी भी सहायता की।

अन्य श्रमजोवियोंके साथ सम्बन्ध :—

मैंसफील्ड साहबकी पुस्तकका सबसे महत्त्वपूर्ण अध्याय है—Links with othor workors 'अन्य श्रमजीवियोंसे सम्बन्ध' और हमारा प्रत्येक हिन्दी-पत्रकारोंसे यह अनुरोध है कि वह उक्त अध्यायको अवश्य पढ़ ले। जो महानुभाव श्रमजीवी पत्रकारोंके संगठनके विरोधी हैं—चाहे वे पूँजीपति मालिक लोग हों या आदर्शवादी पत्रकार—उन्हें भी यह अध्याय पढ़ ही लेना चाहिये। सन् १९४० में 'प्रिण्टिङ्ग एण्ड किण्डरैड ट्रेड फैडरेशन' नामक बृहत् संघके सदस्योंकी संख्या दो लाख छः हज़ार एक सौ उनचास थी, जिनमें पत्रकार-संघके सदस्योंकी संख्या कुल जमा सात हज़ार पंचानवे ही थी! उक्त बृहत् संघमें कम्पोजीटर, प्रूफसंशोधक, प्रिण्टर, प्रेस टेलीग्राफिस्ट इत्यादि सभी शामिल थे। इन सबके सम्मिलित उद्योगके सामने संचालक वर्गको अन्याय करनेका साहस कम ही हो सकता था। मिस्टर रिचार्डसनने, जो पत्रकार संघके संस्थापकोंमें से थे और आगे चलकर संघके मन्त्री बने इस बातको स्पष्टतया स्वीकार किया था कि अन्य श्रमजीवियों, कम्पोजीटरों, मशीनमैनों इत्यादिके संघोंसे सम्बद्ध हो जानेके बाद ही पत्रकार-संघकी शक्ति काफ़ी बढ़ी। पहले योग्य पत्रकारको ३ पौंड प्रति सप्ताह मिलता था और अब [सन् १९२६ में] चार पौंड साढ़े सात शिलिङ्ग प्रति सप्ताह मिलता है। रिचार्डसन साहबका कहना था कि अन्य श्रमजीवियोंके साथ सम्बद्ध होनेके कारण पत्रकारोंको सात वर्षमें कम से-कम चालीस लाख रुपए वार्षिकका सामूहिक लाभ हुआ!

संघका नैतिक पहलू

आजके संघर्षमय समयमें अर्थके प्रति उपेक्षाका भाव रखना न तो बुद्धिमत्तापूर्ण है और न अन्ततोगत्वा नैतिक, क्योंकि गरीबी अपने साथ अनैतिकताका भी अभिशाप लाती है। पर विलायती पत्रकारोंने 'अर्थ'को ही सब कुछ नहीं समझा। उनकी मुख्य सफलता चाँदीके चन्द टुकड़ोंकी प्राप्तिमें ही सन्निहित नहीं रही। उनके संघके इतिहासमें निस्स्वार्थ सेवाके सैकड़ों ही दृष्टान्त पाये जाते हैं। पारस्परिक भ्रातृत्वकी भावनाको जाग्रत कर संघने विलायती पत्रकारोंके जीवन-स्तरको काफी ऊँचा बना दिया है। एक ६० वर्षीय पत्रकारकी नौकरी छूट गई, उनके एक साथी जर्नेलिस्टने अपनी नौकरी उन्हें दे दी। यही नहीं खुद पत्रकार-कलाके उच्च आदर्शोंकी रक्षाके लिए भी इस संघने जबरदस्त काम किया है। उसने पत्रकारोंके लिए शिष्टाचारके जो नियम बनाये हैं और व्यवहाररूपमें उनको पालन करानेके जो प्रयत्न किये हैं वे इस संघके नैतिक आधारका प्रबल समर्थन करते हैं। प्रेसकी स्वाधीनताका समर्थन, सेंसरशिपका विरोध तथा विभिन्न प्रकारके अन्यायोंका प्रतिकार इत्यादि कार्योंमें संघ सदा आगे बढ़कर भाग लेते रहा है। नागरिक स्वाधीनता संघके कार्यमें पत्रकार-संघने पर्याप्त सहयोग दिया है और अन्तर्राष्ट्रिय पत्रकार संघके निर्माणमें भी विलायती पत्रकारोंने तन-मन-धनसे अपनी इस संस्थाकी सेवा की है और इस संघकी भिन्न-भिन्न संस्थाओंका वृत्तान्त भी बड़ा गौरवजनक है। डडलेके पत्रकार-संघने पचहत्तर हज़ार रुपए संघकी सहायतार्थ इकट्ठे कर दिये थे। संघके अद्वितीय संगठनकर्त्ता रिचार्डसनकी स्मृति रक्षाके लिए डेढ़ लाख रुपए इकट्ठे किये गये थे। पत्रकारोंकी कीर्ति-रक्षाके ऐसे उदाहरण अन्य दुर्लभ ही हैं। पिछले युद्धमें विलायती पत्रकार-संघके ७४३२ सदस्योंमें से २७४६ को अपने देशकी रक्षाके लिए फौजमें भर्ती होना पड़ा और उनकी जगहको सुरक्षित रखने तथा उनके कुटुम्बोंकी देखभाल करनेमें संघको काफी परिश्रम करना पड़ा।

विलायती पत्रकार-संघ केवल वैश्य-वृत्तिसे काम लेनेवाली कोई संस्था नहीं है। उसके एक आत्मा भी है। ब्रिटेनके बड़ेसे

बड़े महापुरुषों, लेखकों तथा नेताओंने इस बातको स्वीकार किया था। एच० जी० वेल्सने अपना सन्देश भेजते हुए एक बार सन् १९२२ में लिखा था :—"हम पत्रकारोंके लेखोंसे जनताके सार्वजनिक तथा निजी जीवनपर काफी प्रभाव पड़ता है। इसलिए हम लोगोंके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि जो भी स्वाधीनता हमें प्राप्त है उसके कण-कणकी हम रक्षा करें और अधिक स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील भी हों। जनताके सामने एक भयंकर खतरा आज उपस्थित हो गया है। सिद्धान्तहीन धनाढ्य लोग आज अखबारोंको खरीदते जाते हैं और उनकी नीतिके संचालनका प्रयत्न करते हैं। एक स्वाधीन-चेता, अच्छा वेतन-प्राप्त और सुसंगठित पत्रकार-संघ ही इस खतरेसे हमारी रक्षा कर सकता है।"

जी० के० चैस्टरटनने अपने एक तारमें जो उन्होंने सन् १९११ में भेजा था, ये महत्त्वपूर्ण शब्द लिखे थे :—

"पत्रकार-कलाका उद्देश्य तो था नीचेवालोंकी आवाजको बुलन्द करना, प्रजातान्त्रिक विचारोंकी घोषणा करना; पर अब वह ऊपरवालोंकी आवाज बनती जाती है और यह बात खतरनाक है। मुझे इस खतरेसे बचनेका केवल एक ही उपाय दीख पड़ता है यानी पत्रकारोंका जनतान्त्रिक संगठन किया जाय। दूसरा कोई रास्ता नहीं।"

हिन्दी-पत्रकारोंके लिये सन्देश

'जण्टिल मैन—दी प्रेस' को पढ़ते हुए बार-बार हमारे मनमें एक विचार आया, क्या कभी हमारे यहाँ वाट्स और रिचार्डसन, स्पैंसर और मैंसफील्ड जैसे संगठन कर्ता उत्पन्न होंगे? इन लोगोंने अपने विश्रामके समयको संस्थाके अर्पित कर दिया। यही नहीं, जो वक्त उन्हें अपनी गृहस्थीकी देख-भाल तथा बच्चोंके साथ आमोद-प्रमोदमें खर्च करना चाहिये था वह भी इस सेवा-कार्यके लिये अर्पित हो गया। आदर्शयुक्त पत्रकारोंके दृष्टान्त हमारे यहाँ भी पाये जाते हैं। बाबू बालमुकुन्द गुप्त तथा आचार्य द्विवेदीजी, पं० बालकृष्ण भट्ट तथा गणेशशङ्करजी विद्यार्थी जैसे महान् पत्रकार किसी भी देशके पत्रकार जगतकी शोभा बढ़ा सकते थे। आज भी उनके पथका अनुसरण करनेकी इच्छा रखनेवालोंकी हमारे यहाँ कमी नहीं है और उनके आदर्शोंके अनुकरण करनेवालोंका भी सर्वथा अभाव नहीं। यद्यपि वह पथ अब दिनोंदिन अधिकाधिक कण्टकाकीर्ण बनता जा रहा है। खुद इन आदर्शवादी पत्रकारोंका तथा आगे आनेवाली पीढ़ियोंका मार्ग प्रशस्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि हम लोग श्रमजीवी ढंगपर संगठित हों। इस समय हिन्दी-पत्रकारोंकी वही दुर्दशा है जो सन् १९०७ तथा उसके आसपास विलायती पत्रकारोंकी थी। इस दृष्टिसे मैंसफील्ड साहबका उपर्युक्त ग्रन्थ हम लोगोंके लिये भी अत्यन्त उपदेशप्रद है।

हमारा यह कर्तव्य है कि केवल विलायतके ही नहीं अन्य देशोंके भी—रूस तथा अमरीकाके भी—पत्रकारोंके संगठनके इतिहासका विधिवत अध्ययन करें। सन् १९४१ में रूसमें पैंतीस हजार पत्रकार थे, जो नौ हजार पत्रोंमें काम करते थे, और कम-से-कम तीस लाख नागरिक रूसमें ऐसे थे जो पत्रोंको लेख, समाचार इत्यादि भेजा करते थे। और अमरीकामें पत्रकार-कलाको जितना महत्त्व दिया जाता है उतना शायद ही किसी अन्य देशमें दिया जाता हो। वहाँ इस समय ५४२ पत्रकार विद्यालय हैं और एम० ए० तथा पी-एच० डी०के लिये पत्रकार-कलाके भिन्न-भिन्न पहलुओंपर एक हजारसे ऊपर निबन्ध लिखे जा चुके हैं।

हम यह नहीं कहते कि हिन्दी-पत्रकार अपनेको अलग रखकर अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग ही पकायें। यह नीति तो सर्वथा विघातक ही सिद्ध होगी। पत्रकार-कला या वृत्ति एक अन्तर्राष्ट्रिय शक्ति है और देश अथवा भाषाके आधारपर उसका विभाजन नहीं किया जा सकता। हिन्दी भारतकी राष्ट्रभाषा स्वीकार हो चुकी है। इसलिए हिन्दी पत्रकारोंके लिए सबसे अधिक गौरवकी बात यही हो सकती है कि वे अन्य प्रान्तीय भाषाओंकी पत्रकार-कलाके सेवक तथा सहायक बनें। एक बात हमें भली भाँति समझ लेनी चाहिये, वह यह कि मानसिक श्रमको उच्च तथा शारीरिक श्रमको नीचा समझना युगधर्मके सर्वथा प्रतिकूल है और जो भी पत्रकार यह समझता है कि हम कम्पोजीटरों अथवा मशीनमैनोंसे उच्चतर कोटिके प्राणी हैं, वह भयंकर भूल करता है। पत्रकार कलामें वर्ण-व्यवस्था-जैसी संकुचित नीतिका प्रवेश हमारे हितोंके लिये विघातक ही होगा।

निस्सन्देह हमारे मार्गमें अनेक बाधाएँ हैं। हमारे अनेक भाइयोंको गलतफहमियाँ भी हैं। उनकी ईमानदारीपर आशंका करनेकी आवश्यकता नहीं। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयपर मतभेद होना सर्वथा स्वाभाविक है। किसका मार्ग ठीक है किसका गलत, इस विषयपर वाद-विवाद चलानेके बजाय यदि हम लोग अपने-अपने केन्द्रोंपर पत्रकारोंका संगठन प्रारम्भ कर दें तो आगे आनेवाला समय स्वयं ही इस प्रश्नका निर्णय कर देगा। विलायती पत्रकारोंके संगठनका इतिहास हमें एक नैतिक दृष्टिकोण प्रदान करता है और इस प्रकार वह हमारे लिये पथ-प्रदर्शक है।

ज़मीन—हमारा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राष्ट्रिय साधन—३

असाधारण तथा विनाशकारी कटनके कारण

डाक्टर अज़ीज़ दूल्हा खाँ

[डाक्टर अजीज दूल्हा खाँ एम० एस-सी०, पी-एच० डी० उत्तर प्रदेशके कृषि-विभागमें जमीन-संरक्षणके प्रमुख कर्मचारी हैं। इस लेखमालामें अभी कई और लेख निकलेंगे। हिन्दी भाषामें इस प्रकारके लेख सर्वप्रथम 'विशाल भारत' में ही निकले हैं। हमें आशा है कि पाठक इस लेखमालाका मनन करेंगे और उसके अनुसार कार्य भी करेंगे। जमीनकी कटनके मामलेमें भारतीय संघकी लगभग एक-सी ही हालत है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक सूबेकी सरकारमें जमीन-संरक्षण (Soil Conservation) का एक अलग पोर्टफ़ोलियो हो। बिना ऐसा किये हम अपनी धरती मातासे अधिक अन्न नहीं प्राप्त कर सकते। —सम्पादक]

हवा और पानीसे ही सब प्रकारकी कटन होती है। उत्तर प्रदेशमें पानी द्वारा कटन अपेक्षाकृत अधिक विनाशकारी है और इसलिए वह अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए निम्नाङ्कित पंक्तियोंमें हम उन्हीं कारणोंके विचारपर सीमित रहेंगे जो कटनकी गतिको पानी द्वारा बढ़ाते हैं—

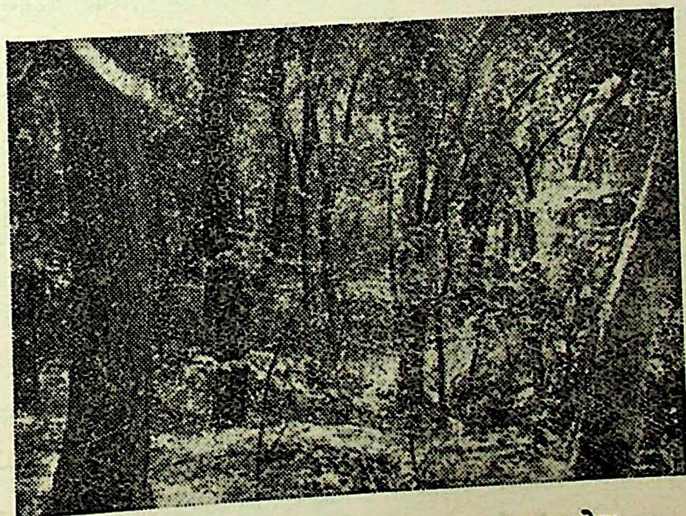
तीन क़ारणोंसे कटनकी गतिपर और असर पड़ता है—

(१) जल वृष्टिकी वह राशि जो धरतीमें प्रवेश नहीं करती है वरन् तालाबों, झीलों, नालों तथा नदियों इत्यादि स्थानोंको बह जाती है।

(२) वह गति जिससे कि यह बहा हुआ पानी धरतीकी धरातलपर चलता है।

(३) जमीनके ऊपरकी कटन-शीलता।

(४) प्राकृतिक कारणोंके अतिरिक्त, जो जमीनमें परिवर्त्तन पैदा करते हैं और जो बहुत ही कम होते हैं, मानव-प्रक्रिया ही तेज़ कटनके लिए विशेषतया जिम्मेदार है। जमीन अपनी प्राकृतिक अवस्थामें घनी हरियालीसे आवेष्ठित रहती है सिवाय उन अवस्थाओंके जहाँ अत्यधिक शीत अथवा सूखा हो। यह हरियाली कटनको रोकनेके लिए प्रकृतिका अपना तरीका है। हरियालीका परिवेष्टन मेंहकी बूँदोंके आघातको सहता है। नंगी जमीनपर यदि इन बूँदोंका आघात होता है तो वह कटनका एक प्रमुख कारण हो जाता है। अगर धरती पर घनी घास-पात हो तो मेंहकी अधिकांश बूँदें तनों और पत्तियोंसे चिपट जाती हैं और समयपर उनकी भाप बन जाती है। और मेंहका वह अंश जो जमीनपर पहुँचता है वह जमीन द्वारा आंशिक रूपसे सोख लिया जाता है और शेष बह जाता है।



घनी हरियाली और घास-पात कटनपर काबू पानेका प्रकृतिका तरीका है।

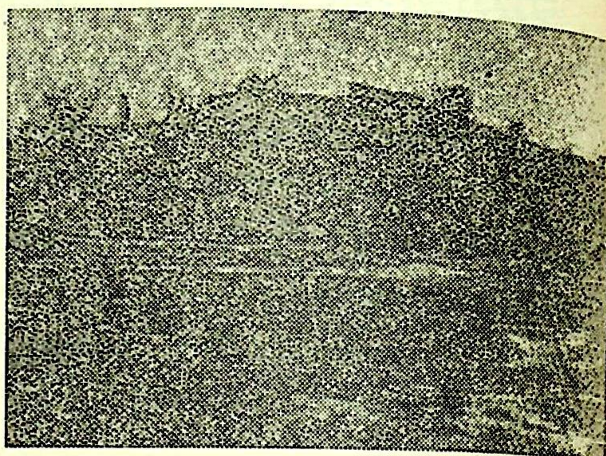
पानीकी वह राशि जिसको कि जमीन सोख लेती है

उसका परिमाण बहुत बड़ा होता है ; क्योंकि वह धरातलके लिए जंगलका एक परिधान है और जमीनके निर्माणके लिए एक अच्छा साधन है जिसमें कि आरगैनिक द्रव्य अधिक मात्रामें रहते हैं।

गहरी हरियालीमें पानीकी गतिकी भौतिक कठिनाईके कारण जमीनमें प्रवेश करनेकी शक्तिको मदद मिलती है क्योंकि गहरी हरियाली पानीके सोखनेको अपेक्षतया अधिक समय देती है। इसलिए पानीका बहना बहुत-कुछ कम हो जाता है।

हरियाली एक दूसरे ढँगसे भी सहायक है। पानीकी तीव्र गतिमें वह रुकावट डालती है। फलस्वरूप पानीकी गति धीमी हो जाती है और कटनकी शक्तिमें इस प्रकार बहुत कमी हो जाती है। बहावकी गति और बहनेवाली सामग्रीके बीच इस प्रकार एक विधेयात्मक पारस्परिक सम्बन्ध है। बहावकी धीमी गति अपने साथ ले जानेवाली शक्तिको बहुत कम कर देती है। कोई देख सकता है कि घने जंगल अथवा घास-आच्छादित इलाकोंमें कोई कारगर कटन नहीं होती। निस्सन्देह प्राकृतिक अवस्थामें कुछ कटन हुआ ही करती है पर वह न तो दृष्टिगोचर होती है और न हानिकारक। वस्तुतः कुछ जमीन सम्बन्धी वैज्ञानिकोंका मत है कि जमीनके तारुण्यको रखनेके लिए इस तरहकी कटन आवश्यक है। उनका कहना है कि जैसे जमीनकी कुछ निकृष्ट ऊपरी तह प्राकृतिक कटनसे हट जाती है और इसलिए नीचे जमीनकी उसी प्रकारकी राशि बन जाती है। इस प्रकार जमीनकी कटन और जमीनके निर्माणके बीच एक प्रकारका सन्तुलन स्थापित हो जाता है। मनुष्य कृषिके प्रारम्भिक ढँगसे सन्तुष्ट था और उससे संक्रामक क्षेत्रमें जंगलोंके साथ कोई हस्तक्षेप न होता था। प्रायः खेती उस वातावरणसे घनिष्ट रूपसे सम्बन्धित थी जिसमें वह की जाती थी और उसका कोई स्थायी चिह्न जमीनपर नहीं रहता। खेतीके लिए केवल उपयुक्त इलाके ही चुने जाते थे। खेती घनी उगनेवाली फसलोंकी अथवा कभी-कभी चरागाहके रूपमें होती थी। जानवर कम थे और बिना किसी दुष्परिणामके घास-पात और खेती हो जाती थी।

आबादीकी वृद्धिसे और जमीनपर अधिक खेती होनेसे अपेक्षाकृत कम उपयुक्त इलाकोंपर खेती होने लगी। जंगलात क्रूरतासे काट डाले गए। चरागाह कठोरतासे चरा डाले गए और जमीनका प्राकृतिक रूप नष्ट कर दिया गया।



कठोर और अरक्षित चराईके कारण हरियाली-विहीन ढलाव (Slopes) में कटन आसानीसे होती है।

विभिन्न और बढ़िया उपज लेनेके खयालसे विशुद्ध खेतीकी फस्लें की गईं। इन सब मानवीय परिक्रियाओंसे तीव्र कटन प्रारम्भ हो गई और इसकी कटनने एक दूषित चक्र खड़ा कर दिया और अति पेचीली समस्यायें खतम कर दीं।

जब मानवीय कार्य पूरा हो जाता है तब निम्नांकित स्थिति कटनकी गतिको निर्णय करनेके लिए पैदा होती है।

१. मेंह

किसी क्षेत्र विशेषमें कितना पानी नष्ट होता है और कितनी जमीन नष्ट होती है—इस बातकी निर्णायक बहुत अंशोंमें जल-वृष्टिकी गतिविधि है। वर्षका सम्पूर्ण मेंह अथवा एक महीनेका मेंह इस बातको प्रकट नहीं करता कि वह विनाशकारी है या नहीं। किसी अवधिमें पड़ी कुछ जल-वृष्टि इतनी महत्त्वकी नहीं जितनी कि विभिन्न वृष्टियोंकी गुरुता। अगर सालभरकी सम्पूर्ण वृष्टि अधिक भी है पर विभिन्न भरें साधारण हैं—उग्र नहीं हैं जैसे कि मातदिल (न बहुत गरम और न बहुत ठण्डी) जलवायुके क्षेत्रोंमें तो अधिक हानि नहीं होती। तो भी यदि वार्षिक जलवृष्टि तो हो कम पर थोड़ी, पर तेजी बौछारोंमें हो तो उससे बहुत हानि होती है। अगर ६ इंच पानी एक गतिसे २४ घंटेमें बरसे तो कम हानिकारक

होगा उस दो इंच पानीसे जो दो मिनटमें बरस जाता है। सालभरमें जो कुछ मेंह पड़ता है वह दक्षिण-पूर्वमें बरस जाता है। उत्तरमें साठ इंचकी हिमालयकी ऊँचाईपर बरसता है। फिर भी सूबेभरमें सूखनेकी गतिविधि लगभग एक-सी है।

जूनके अन्तिम सप्ताहसे सितम्बरके अन्त तक वर्षाकालकी अवधि लगभग सौ दिनकी है जिसमें सम्पूर्ण जलवृष्टिका ८० प्रतिशत मेंह बरसता है। प्रति वर्षाऋतुमें कई बारिशें बड़ी जोरकी होती हैं और ६ इंच अथवा उससे भी अधिक मेंह प्रति घंटा पड़ना असाधारण बात नहीं है।

दक्षिण-पश्चिमकी अल्प जल-वृष्टि इस बातकी गारंटी नहीं है कि वह क्षेत्र कटनसे मुक्त है क्योंकि उस वृष्टिकी रूपरेखा वैसी ही है। और थोड़ी तेज बारिशें अकथित हानि पहुँचानेके लिए काफ़ी हैं।

२. ररक—ढलाव—(Slope)

ररककी बात महत्त्वपूर्ण है क्योंकि बहावकी गतिके लिए यह निर्णायक होती है। जितनी ही अधिक ररक (ढलाव) होती है उतना ही अधिक बहाव होता है। और प्रवाह भी उतना ही अधिक होता है जिसके फलस्वरूप कटन भी उतनी ही अधिक होती है।

प्रवाह (Velocity) वस्तुओंके पतनके नियमके अनुसार होता है और ररक (Slope) की वृद्धिके नीचे लिखे नतीजे होते हैं :—

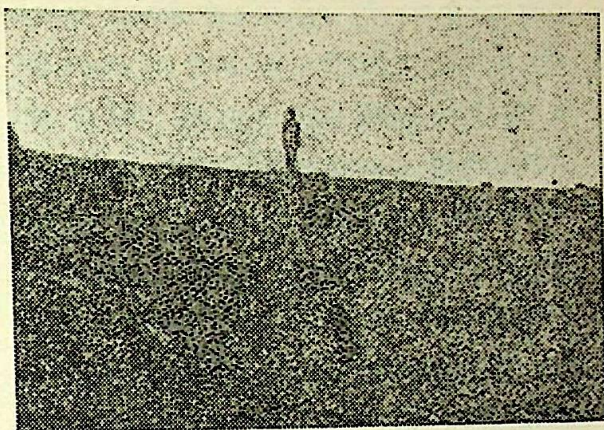
अ- अगर जमीनकी ररक चौगुनी बढ़ जाती है तो पानीकी गति, जो इसके ऊपर होकर बहता है, दुगुनी हो जाती है।

ब- अगर प्रवाह दुगुना हो जाता है तो पानीकी जमीन काटनेकी शक्ति चौगुनी हो जाती है।

स- यदि प्रवाह दुगुना हो जाता है तो एक माने हुए आकारकी सामग्री, राशि जो ले जाई जा सकती है, बत्तीसगुनी हो जाती है।

द- यदि प्रवाह दुगुना हो जाता है तो कणोंके आकार, जो बहाये जा सकते हैं, ६४ गुने बढ़ जाते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ररकके परिवर्तनसे कितना बड़ा फ़र्क़ पड़ता है।



यह प्रकट करता है कि खुले ररकमें कितनी विनाशकारी कटन होती है।

यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि उत्तर प्रदेशके गंगाके मैदानमें वर्तमान ररकें (Slopes) अत्यन्त ही हल्की हैं। और एक फ़ी सदीके भीतर हैं। हाँ, कुछ विशेष क्षेत्र इसका अपवाद जरूर है।

मौसमके पानीकी हानि और ज़मीनपर असर

जब जमीन सूखी होती है और वर्षा-आरम्भके समय कटी या फटी होती है तब सब पानी जमीनमें सोख लिया जाता है और बहाव बहुत कम होता है और फलस्वरूप कटन नाम-मात्रको होती है। वर्षा-ऋतुके आगमनपर जमीन नमीसे भरपूर हो जाती है और पानीका प्रवेश भीतर कम हो जाता है और वह धरातलपर बहने लगता है और अपने साथ बहुमूल्य जमीन (Soil) को ले जाता है। इसी कारण अधिकांश बाढ़ें वर्षा-ऋतुके मध्य या अन्तमें आती हैं। इस स्थितिकी कमीको बहुत-कुछ एक बात पूरा करती है। वर्षाके प्रारम्भमें जमीन नंगी होती है और जो पानी जमीनसे सोखा नहीं जाता वह अपने साथ जमीनकी अपार राशि बहा ले जाता है, क्योंकि उसको रोकनेके लिए कोई रुकावट नहीं है। बारिशके मौसमके बढ़नेसे फसलें और अन्य हरियाली पृथ्वीकी धरातलको आच्छादित कर लेते हैं और वे जमीनकी क्षतिको बहुत कम कर देते हैं- हालांकि बहाव अधिक होता है।

ज़मीनकी विशेषता

पानी सोखनेपर बहावपर और कटनपर जमीनमें पानीके

प्रवेश करनेकी गति और जमीनका पानी सोखनेकी क्षमताका असर बहुत ज़्यादा होता है। इन सबका स्वयं सम्बन्ध होता है जमीनके उन द्रव्योंसे, जिनसे कि वह बनी होती है और जमीनके प्रकारसे। हलकी जमीनमें नमीको सोखनेकी बड़ी शक्ति होती है पर उसमें उसके परमाणु इतने जुड़े नहीं होते और उसमें कटन बहुत जल्दी शुरू हो जाती है, अगर एक बार कटन शुरू हो जाय और उसमें स्पष्ट पानी बहनेका मार्ग बन जाय। जमीन भयंकर रूपसे कटने लायक हो जाती है, अगर हलकी जमीनके नीचे चिकनी मिट्टीकी तह होती है। ऐसी हालतमें पानीका भीतर प्रवेश होना बन्द हो जाता है जैसे ही कि नमी चिकनी तहको पहुँचती है और पानीकी धरातल गति प्रारम्भ हो जाती है जिसके कारण भयंकर कटन शुरू हो जाती है।

इस सूबेमें उत्तरसे दक्षिणको और पश्चिमसे पूर्वको ढलान है और पानीकी क्रियासे ही यहाँकी अधिकांश जमीन बनी है। नदियाँ जैसे ही मैदानी इलाकोंमें प्रवेश करती हैं मोटे कणोंको वे छोड़ देती हैं और अधिक बारीक कण बहुत दूरी तक ले जाये जाते हैं। इसी कारण सूबेके पश्चिमी भागमें जमीनें पूर्वी भागकी अपेक्षा हलकी हैं। इसलिए प्रायः वे कटनशील हैं। वह जमीन, जिसकी कि बनावट अच्छी होती है और जिसमें वनस्पतिक द्रव्य अधिक होता है, बरसते मेंहको अधिक सोख लेती है और प्रायः इसीलिए उनमें कटन कम होती है।

हम सब अपनी जमीनकी रक्षामें सहायक हो सकते हैं।

सात तलाक़िनोंकी कहानियाँ

ख्वाजा सैयद नासिर

['सात तलाक़िनोंकी कहानियाँ' शीर्षककी हमने एक उर्दू पुस्तिका सन् १९४० के लगभग पढ़ी थी। हमारा विचार था कि उन कहानियोंको हम नागरी लिपिमें 'विशालभारत'में दें; पर हमें अवकाश न मिल सका। उन कहानियोंको हम इस मास 'विशाल भारत'में दे रहे हैं। पाठकोंने भौगाँव, शिकारपुर और बलिया-सम्बन्धी अनेक बातें सुनी होंगी; उनमें सचाई कितनी है इस बातपर प्रकाश तो कोई भौगामी, शिकारपुरिया अथवा बलियाटिक ही डाल सकता है; पर जीवनके कुछ क्षणोंमें कुछ विनोदका मिलना भी एक बड़ी देन है। हमें आशा है कि सैयद नासिरसाहबकी कहानियोंसे पाठकोंको कुछ विनोद-कण मिलेंगे। भाषाका प्रवाह और शब्द-सौष्ठवसे पाठकोंको आनन्द मिलेगा। हमने मूल कहानियोंकी लिपि ही बदल दी है। भूमिका (तमहीद) भी बड़ी रोचक है, इसलिए, वह भी दी जाती है। —सम्पादक]

तमहीद (भूमिका)

अबसे ३०० वर्ष पहले पुरानी दिल्ली बस्ती थी। क्योंकि शाहजहाँ शहंशाह हिन्दुस्तानके दौरे सल्तनत (शासन-काल) में कुछ देर थी। जलालुद्दीन रुहलत करके (प्राणान्त करके) अकबराबाद (आगरा) में दफन हो चुके थे। नूरुद्दीन जहाँगीरकी अमलदारी थी और दिल्लीमें जहाँगीरकी तरफ़से उनका नाइब रहता था। और सब इन्तिजाम, सब बन्दोबस्त ठीक रहते थे। अलबत्ता म्यूनिसपिल कमेटी न थी, जिसके इन्तिजामसे बाज़ार और गली-दरगली, रातको लालटैनें रौशन हुआ करतीं। और लोग अँधेरी रातमें ठोकरें खाते न चला करते। रात कोतवालका अमला और कोतवाल, गली-गली कूचा-कूचा चक्कर लगाता था। चौकीदार सारी रात चीखते फिरते थे, "खबरदार! होशियार, जागते रहो! अँधेरी रात रही है। उचक्के, उठाईगीरे, चोर-चकार लगे हुए हैं, जो सोयेगा पछतायेगा और सुबह कोतवालीमें रोता आयगा और आकर कहेगा कि रातको उस शख़्सके घरमें कूमल (सेंध) लग गई। कुँआरी बेटीके लिए जहेज सारी उमर जोड़ा था, रातको नामुराद चोर सब ले गये। इसी तरह आक़िलबेग खाँ तुर्क, जो दिल्लीका कोतवाल था, घोड़ेपर सवार होकर राउण्ड को (गश्तको) उठा और चक्कर लगाता हुआ वह चौकमें पहुँचा तो उसने देखा...दो रवैया (दोनों तरफ़) दूकानें बन्द पड़ी हैं और क़िला मुअल्लासे क़सरे सफ़ेद (श्वेत महल) तक सन्नाटा

है। खैरउलमनाजिल मसजिदके किवाड़ बन्द हैं। चारों ओर अँधेरी छाई हुई है। कुत्तोंके भौंकनेकी आवाजें जरूर जोरसे आ रही हैं। सात आदमी सफ़ेदपोश बीच सड़कमें खड़े हैं।

आक़िलबेगखाँ कोतवाल, "तुम कौन हो ? और यहाँ इस वक्त क्यों खड़े हो ?" मगर उन सफ़ेद पोशमें से एकने भी जवाब न दिया।

आक़िलबेग खाँके हूँ-हूँ कहते ही मशालचीने चक़माक़से आग झाड़कर झटपट मशाल जलाई और कोतवाल और सिपाहियोंने देखा, सात औरतें बुर्क़ा ओढ़े सिमटी-सिमटाई खड़ी हैं।

कोतवाल (घोड़ा बढ़ाकर) "माई, तुम कौन हो ? इस घुप अँधेरेमें चौकके अन्दर तुम्हारा क्या काम है ?"

उन औरतोंमें से एक औरत, "हुजूर हम अपनी विपता क्या कहें ! हम सात दुखिया औरतें, न हमारे मैका है न सुसराल है, चर्खा कात-कातकर और सूत बेच-बेचकर अपने दिन काट रही हैं। सैयद बाड़ेमें एक रुपया महीनापर सबने मिलजुलकर एक मकान ले लिया है उसमें हम रहती हैं। हम बहुत बारीक सूत कातती हैं वह तूँबिया कहलाता है। गाहक उसे अल्लाह आमीन करके लेते हैं। मगर हम सब बदनसीब पर्दावालियाँ हैं। आप सूत बेचने बाजारमें नहीं जाती हैं। एक औरतकी मार्फ़त अपना सूत बाजारमें भेज देती हैं मगर औरत बड़ी चालाक है। आधे दाम......हमें देती है। हम उलझ-उलझकर रह जाती हैं मगर कुछ बस नहीं चलता जो उसके तकलेके बलसे निकालें। आज हम सबने यह सलाह की कि बाजार चलें और सूत अच्छे मोल बेच आयें। इसलिए मगरिबकी नमाज पढ़कर हमने अपने घरको कुफ़ल (ताला) लगाया और बाजारके इरादेसे बुर्क़ा ओढ़कर चले तो मरदुए निगोड़े मिले। हमने घरसे बाहर पाँव कभी काहेको रखा था। मर्दोंको देखकर हियाव न पड़ा, उल्टे क़दमों घर आ गये। फिर रातके आठ बजेपर नौ बजे रातको घरसे निकले और हमें मरदुए मिले और हम बौलाकर घर पलट गये। फिर हमने कहा, 'रातके बारह बजे जब सब गलियाँ सुनसान हो जायँ और मरदुए अपने घरोंको चले जायँ, उस वक्त चौकमें चलकर अपने सूतका सौदा करो। मैया मैं तुम्हारे वारी जाऊँ—बारह बजे रातसे अब रातके दो बज गये। सारे चौकमें हम धक्के खाते फिर रहे हैं। कोई गाहक मिलता ही नहीं जिसके हाथ सूत बेचें। और निगोड़ा सैय्यदबाड़ा हमारा मुहल्ला भी जनें किधर गया। हक हैरान टपा टोइयाँ मारते फिरते हैं।"

कोतवाल, 'हुसेन खाँ बरक़न्दाज ! देखो तो इनके पास सूत है।'

बरक़न्दाजने आगे बढ़कर एक औरतके हाथसे सूतकी अँटियाँ लीं, फिर उसे दे दीं। इसी तरह सातों औरतोंका सूत जाँचकर कहा, "हुजूर ये सची हैं। बेशक इनके पास सूत है और यह इसी कामके लिए निकली हैं।"

आक़िलबेग कोतवाल, "हुसेन खाँ, मेरा खयाल है कि ये औरतें बड़ी पारसा और बाहया हैं। मगर इनके दिमागमें खलल भी जरूर है। ऐसा न हो कि कोई बदमाश इनका सूत छीनकर चम्पत हो और ये तिलमिलाती रह जायँ। इन्हें इसवक्त एक खाली दूकानमें बन्द कर दो और ऊपरसे कुफ़ल लगाकर कुंजी एक चौकीदारके हवाला कर दो। वह नमाजके वक्त इन्हें दूकानसे निकालकर सैयदबाड़ेमें इनके घरतक पहुँचा आये और हमें आकर खबर दे।"

कोतवालके हुक्मकी तामील हुई। चौकीदारने कहा, "यह दूकान खाली है। और मैं एक दूकानदारसे जो अपनी दूकानमें पड़ा सो रहा था, कुफ़ल कुंजी माँग लाया हूँ।" कोतवालने अपने सामने दूकानमें औरतोंको बन्द करवाया और बढ़ गया।

दूकानमें घुप अँधेरा था। औरतोंने अपने-अपने बुर्क़े चाँदनीकी तरह बिछाये और उसपर सबर-शुकरसे पड़ गईं। थोड़ी देर बाद उस कैद और अँधेरेसे घबराईं, बौलाईं और उनमेंसे एक बोली, "बहनों ! कुछ बातचीत करो। नहीं तो दम घुटकर निकल जायँगे।"

दूसरीने कहा, "इस अँधेरी गोर (क़ब्र) में बातचीत क्या खाक करें।"

तीसरी बोली, "हम सबको एक ही जगह रहते डेढ़ बरस हो गया मगर हमने आज तक निगोड़ा नाम भी एक-दूसरेका नहीं पूछा।"

उनमें से पहली बोली, "बुआ इस बन्दीका नाम बहबूदी बेगम है।"

दूसरीने कहा, "मेरा नाम खानम बेगम है।"

तीसरी बोली, "मेरा नाम मोती बेगम है।"

चौथी बोली, "मेरा नाम चाँदनी बेगम है।"

पाँचवीं बोली, "मुझ बदनसीबका नाम माँ-बापने सितारह रखा था।"

छठी बोलीं, "मुझ नाशुदनीका नाम अक़ीला खातून है।"

सातवीं बोली, "मेरा नाम मुबारिक बिसाँ है मगर जिस दिनसे मियाँने तलाक़ दी नामुबारिक हो गई। बहबूदी बेगम, "ए हाँ बहन! जिस दिन घर किरायापर लिया था तो बस इतना सबने कहा था कि हम सबकी मुसीबत एक ही तरह की है। सातोंकी सातों तलाक़िनें हैं और घरवालोंने हमें छोड़ दिया है पर किसीने यह न बताया कि इन बन्दियोंकी तलाक़ हुई किस बातपर। आज पहाड़-सी रात काटनी है, क्योंकि सर्दीकी रात है बड़ी देरमें सूरज निकलेगा। हमें चाहिये कि बारी-बारीसे अपनी बीती कहें और वक्तको गुज़ारें।"

बानू खानम, "तो बहन यह अशाक़ला तुमहीने छोड़ा है। बहबूदी बेगम! पहले तुम ही अपनी बीती सुनाओ।"

बहबूदी बेगम, 'हर्जकी क्या बात है जो सब बातोंकी यही खुशी है तो पहले मैं ही अपनी राम कहानी सुनाती हूँ, सुनो!"

पहली तलाक़िन

पहली तलाक़िनने कहा, "बुआ! यह बन्दी एक शरीफ़की बेटी है। जब मेरी शादी हुई और मैं अपनी सुसरालमें आई तो मेरे कोई सास-ननद न थी। फ़क़त एक मियाँ ही का दम था और वह बादशाहके" हाँ नौकर थे। एक रोज़ वह दरबारको जाने लगे तो मुझसे कहने लगे कि आज मेरे कपड़े और दुशाला और मंडील वग़ैरः निकाल रखना। बादशाहके यहाँ एक एलची (दूत) आनेवाला है। उसकी वजहसे ज़रा अच्छे कपड़े पहनने होंगे। या तो मैं खुद आकर बदल जाऊँगा या ख़िदमतगारसे मँगा लूँगा। मियाँ तो इतना कहकर दरबारको सिधारे। मैंने उनके कहनेके बमूजिब अच्छे-से-अच्छा दुशाला और कपड़े निकालकर रख छोड़े कि मियाँ या तो मँगा लेंगे या यहीं आकर बदल जायँगे। इसमें दो पहर हो गई। न मियाँ आये, न ख़िदमतगारको भेजा। मैंने एक बकरी पाली थी और उसका नाम महरू रखा था। मैंने उससे कहा, 'क्यों बी महरू! दरबारमें मियाँकी पोशाक दे आओगी'। उसने इशारेसे कहा, 'नहीं'। मैंने बकरीसे कहा, तुम यह न समझना कि मैं यों ही दरबारमें भेज दूँगी। बनाव-सिंगार कर दूँगी जो दरबारवाले भी जानें कि फलानेके' हाँसे बकरी आई है। बस बी! मैंने महरू को अपने कपड़े और सारा सोनेका गहना पहना, दुलहिन बना उसके पीठपर मियाँके कपड़े बाँध घरसे बाहर निकाल दिया कि जाओ बी महरू! मियाँको कपड़े दे आओ।' शामको जो मियाँ घर आये तो मैंने उनसे कहा कि तुम मैले कपड़े क्यों पहन रहे हो। मैंने तुम्हारे लिए बी महरूके हाथ कपड़े भेज दिये। मियाँने कहा, 'हैं'! बी महरू कौन?' मैंने कहा, "वही मेरी बकरी। कुछ यह न समझना कि उसे मैंने तुम्हारे पास बुरे हाल भेजा है। मैंने उसे अच्छे-से-अच्छा अपना कपड़ोंका जोड़ा और सारा सोनेका गहना पहना दिया है, जब दरबारमें भेजा है।" इतनी बात सुन मियाँ आगबगोला हो गया और कहने लगा..."ऐ कमबख़्त! तूने अपना सारा घर लुटा दिया।"

जा, मेरे' हाँ तेरा कुछ काम नहीं। मैंने तुझे तलाक़ दी। 'नेकी बर्बाद गुनाह लाज़िम'।

मैंने मियाँके वास्ते कपड़े भेजे। मियाँने इसका यह इनाम दिया। इसे चाहे बेवक़ूफ़ी ख़याल करो या क़ुसूर मान लो।

दूसरी तलाक़िन

दूसरी तलाक़िनने कहा, "ऐ बुआ! तूने भला इतना भी किया। मुझसे तो कुछ भी नहीं हुआ और मियाँने तलाक़ दे दी। मेरी रामकहानी यह है कि मियाँको रोज़गार न मिलता था। बैठा था। घरमें फ़ाके-पर-फ़ाका होता था। तंगी-तुर्शीसे बसर होती थी। एक रोज मियाँसे किसी यार-दोस्तने कहा कि कल तुम हमारे पास आओ! हम तुम्हारा रोजगार करा देंगे। मियाँ यह बात सुन खुशी-खुशी घर आये और कहने लगे, 'लो बी! हमारे एक दोस्तने अपने रोजगारकी टिप्पस लगाई है। तुम जानती हो और कपड़े नहीं हैं जो पहनकर हाकिमके सामने जाऊँ। तुम इन कपड़ोंको साबुनसे धो लो तो यह सफ़ेद

हो जायँगे। मैंने कहा, अच्छा। और तहबन्द बाँधकर मियाँने कपड़े उतारे ओर मेरे हवाले किये और कहने लगे, 'भला तुम कैसे-अच्छे सफ़ेद धोती हो। मैं मसजिदमें बैठा हूँ—तुम इतनी देरमें धो लो।'

मैंने सोचा, जाड़ेका मौसम है।...ठण्डे पानीसे क्या खाक मैल निकलेगा। लाओ, थोड़ा पानी गरम कर लूँ, मगर उस रोज़ घरमें ईंधन न था। अब मैं हैरान कि अल्लाह पानी किस चीजसे गरम करूँ। मुझे जो याद आया मैंने मियाँकी पगड़ी चूल्हामें रख दी और पानी गरम कर लिया। मगर पानी थोड़ा था, कपड़े सफ़ेद न हुए तो फिर मैंने पानी गरम किया और अबकी मर्तबा मियाँका अँगरखा चूल्हामें रख दिया और फिर कपड़े धोए। मगर फिर भी सफ़ेद न हुए तो फिर मैंने पानी गरम किया। घरमें ईंधनके नाम तिनका न था। अबकी दफ़ा मैंने मियाँका पायजामा जला दिया और फिर भी मेरी मर्जीके मुआफ़िक़ कपड़े सफ़ेद न हुए। तो फिर मैंने पानी गरम किया और इस मर्तबा मियाँका कुर्त्ता जला दिया। खुदा-खुदा करके कपड़े सफ़ेद हुए। मगर तीन कपड़े रह गये। एक टोपी, एक कमर बन्द, एक रूमाल। इतनेमें मियाँ आये और कहने लगे, 'क्यों बी! कपड़े धो लिये!' मैंने कहा, हाँ, लो देखो। रुमाल लिपटा-लिपटाया मियाँके सामने रख दिया। मियाँने कहा, 'तुमने धोबीको भी मात कर दिया,' खोलके देखा तो कहा, 'और कपड़े वहाँ हैं'? मैंने कहा, 'होते कहाँसे? ठण्डे पानी से मैल उतरता नहीं। घरमें ईंधनका नाम नहीं। लाचार होकर तुम्हारी पगड़ी, पैजामा, अँगरखा, कुर्ता जलाकर पानी गरम किया और यही रह गये जो धो लिये।' मियाँको बहुत गुस्सा आया और बहुत नीले-पीले हुए और कहा, 'कमबख़्त जी तो यह चाहता है कि तेरी नाक, चोटी काटकर घरसे निकालूँ। लेकिन खैर जा मैंने तुझे तलाक़ दी। अपना मुँह काला कर और मेरे घरसे निकल जा।' और इतनी-सी वातपर मुझे तलाक़ देकर घरसे निकाल दिया।

तीसरी तलाक़िन

तीसरी तलाक़िनने कहा, "मेरी कहानी तुम सबसे हसरत व अफ़सोस की है। इस वजहसे मुझ नाशुदनीने तो कुछ भी कुसूर न किया था। जिसपर मियाँने घरसे निकाल दिया। असल हक़ीक़त यह है कि मेरा मियाँ 'गुलाब' और 'बेदमुश्क' 'काफ़ूर' जहर मुहरा और जाफ़रान (केशरि) ऐसी मँहगी चीजोंकी सौदागरी करता था। और अल्लाह तालासे उसे इस काममें नफ़ा भी देता था। एक बार मियाँ और शहरसे, चीजें खरीदकर अपने घर लाया कि अपने शहरके सौदागरोंके हाथ इन चीजोंको बेच नफ़ा उठाऊँगा। जिस रोज मियाँ आये उसके दूसरे रोज मुझसे कहने लगे कि आज शहरके दलालोंको और सौदागरोंको बुलाकर लाऊँ और अपना माल उनको दिखाऊँ। अगर उनके पसन्द आ गया तो जल्दी बिक-जायगा। मगर तुमने घरको ऐसा गन्दा कर रखा है बस तोबाही भली है। मैंने कहा, हाँ, यह तुम सच कहते हो अबके मैंने घर लीपा-पोता नहीं है। आखिर अब जब तुम जाओगे तो तीसरे पहर वापिस आओगे। इतनी देरमें घर लीप-पोत रखूँगी। बस बी! मियाँ तो बाहर सिधारे और मैंने लीपने-पोतनेका सामान किया। मियाँ जिस क़दर जाफ़रान लाये थे उसे नाँदमें डाल और गुलाब और अर्क़बेद मुश्क और केवड़ा वग़ैरहसे तर करके सालम घर लीप डाला और जहर मुहरा और तबाशीर (वंशलोचन) से सारे मकानपर कलई कर दी। तीसरे पहरको मियाँ आये और कहने लगे, 'पर्दा कर लो, सौदागर आ गये हैं। उन्हें घरमें लाकर जिस दिखाऊँ।' मैंने कहा, "मियाँ! अब रहा क्या है जो दिखाओगे। मैंने 'गुलाब' बेदमुश्क, 'जाफ़रान' लीपने-पोतनेमें खर्च कर दिया है। वह शीशे खाली पड़े हैं।"

बाहर जो सौदागर खड़े थे वह कह रहे थे कि मियाँ, अबके सौदागर बहुत अच्छा माल लाये हैं। यह मालूम होता है कि खुशबुओंका छिड़काव कर दिया है। मुश्क आँस्त कि खुद बबूयद, न कि अत्तार बिगोयद—कस्तूरी वह है जो स्वयं कह दे, बेचनेवालेको कहनेकी जरूरत नहीं।

मियाँने लाचार होकर इन लोगोंसे कहा कि आपने बड़ी इनायत (कृपा) की जो कदम रंजा किया। मगर इस वक्त गोदामकी कुञ्जी खोई गई है। इस वजहसे मजबूर (विवश) हूँ। मैं कुञ्जी तलाश कर लूँ फिर आप साहिबानको बुलाकर

दिखा दूँगा। मियाँ लोगोंको रुखसत करके घरमें आये और सिरमें दो दुत्तड़ मारकर कहा, 'खुदा तुझे ग़ारत करे। मुर्दार तूने मेरी सारी उम्रकी कमाई डुबा दी। तूने मुझको भीख माँगनेके क़ाबिल कर दिया। अब तेरा मेरे यहाँ कुछ काम नहीं, जहाँ तेरे सींग समायँ वहाँ तू जाय और यहाँसे काला मुँह कर। मैंने तुझको तलाक़ दी। बस बुआ! इतनी-सी बातपर मियाँने तलाक़ देकर घरसे निकाल बाहर किया।"

चौथी तलाक़िन

चौथीने कहा, "बुआ! तुमसे तो इतनी भी ख़ता हुई। मैं तो बिल्कुल बे क़ुसूर निकाली गयी। हम दो बहनें थीं और हमारी माने हमारी दोनोंकी शादी थोड़ी उम्रमें कर दी थी। अल्लाहका हुक्म, हमारी मा बीमार पड़ीं और मर्ज़ने ऐसा तूल पकड़ा कि जिन्दगीकी आस जाती रही। मैंने सुना तो सुसरालसे दौड़ी गई। और छोटी बहन भी आई। बाप हमारे पहले मर चुके थे। एक माका दम था। वह सिधारने लगीं तो मैंने अपने मियाँसे कहा, 'यह तो मैं जानती हूँ कि अम्मा बचेंगीं नहीं, लेकिन मेरा जी यह चाहता है कि इनका इलाज करके जीकी हसरत निकाल लें। इसलिए अपना पैसा खर्च करके इनका इलाज करें, शायद जान बच जाये। आख़िर-कार मेरे पास जो कुछ नक़द रुपया, जेवर था, सब खर्चकर डाला। लेकिन अम्मा अच्छी नहीं हुईं। उनका इन्तकाल हो गया। गोरगढ़ा भी मैंने किया। फूल-दसवाँ-बीसवाँ चालीसवें में भी खूब खर्च किया। चालीसवेंके बाद मियाँ मुझसे कहने लगे कि सुनो बी! जो कुछ हमारे पास था वालदह साहिबाके इलाजमें सर्फ़ कर दिया। और उनके सामानके अब दो हिस्से होंगे। एक हिस्सा तुम्हें मिलेगा और एक तुम्हारी बहनको। और हमको इसमें नुक़सान रहेगा। मैं तुम्हें समझाये देता हूँ कि हिस्सा होनेसे पहले कोई भारी चीज़ छुपा देना ताकि वह तक़सीममें न आय और हमें-तुम्हें तक़सीममें नुक़सान न रहे। मैंने कहा, 'बहुत अच्छा'। मैंने उठकर हर चीज़को जाँचा और ख़याल किया कि जो सबसे भारी चीज़ हो उसको छुपा दूँ। इसलिए अम्माका सन्दूकचा उठाया, वह भी उठ आया। सन्दूक उठाये वह भी सरक गये। पिटारी उठाई वह भी उठ आई। ग़रज़ कोई चीज़ भारी न थी। जो चीज़ उठाती थी वही उठ आती थी। मगर कोठरीमें एक पत्थरकी टोली पड़ी थी वह मैंने उठानी चाही, लेकिन वह अपनी जगहसे हिली तक नहीं। मैंने कहा, इससे भारी कोई चीज़ नहीं। इसीको छुपा देना चाहिये। और उसे छुपा दिया, और मैंने उनसे कहा, मियाँ! दोनोंकी कुलफ़त दूर हो जायगी। ऐसी चीज़ भारी छुपा दी है। तुम सारा माल असबाब और मकान छोटी बहनको दे दो। हमें वही माल बहुत है। मियाँने कहा, अच्छा! जब दूसरे रोज़ सब बड़ोंने मिलकर माल तक़सीम करना चाहा तो मैंने और मेरे मियाँने कहा, 'हम किस लायक़ हैं, जो कुछ ख़िदमत हमसे वालदह माजदहकी हो सकी और बाद उनके जो कुछ हमसे बन पड़ेगा, उनके नाम देंगे। अब हमें उनके असबाब वग़ैरहमें से कुछ हिस्सा नहीं चाहिये। हरचन्द हमें हिस्सा पहुँचता है। मगर हमने अपनी बहनकी ग़रीबी देखकर अपना हिस्सा उसे दे दिया और मैंने सब चीज़ोंसे लादावा लिख दिया। जब सब मेहमान अपने-अपने गये और मैं अपने घर चलने लगी, मियाँने कहा, लाओ वह चीज़ क्या है? मैंने कहा, वाह लो और सुनो वह भी ऐसी चीज़ है जो मुझ अकेलीसे उठती। चलो मैं दिखाऊँ। कोठरीमें ले जाकर मियाँको वह पत्थरकी टोली दिखाई। मियाँने देखकर कहा, 'यह क्या है! मैंने कहा, वही जो तुमने कहा था कि भारी-सी चीज़ छुपा देना। मैंने यही किया। इससे भारी चीज़ घरमें न थी, जो छुपाती। मियाँने मेरी इस हरकतसे सिर पीट लिया और कहा, 'कमबख़्त', अफ़सोस तूने अपना घर बरबाद कर दिया। मुझे किसी क़ाबिल न रखा। तू इस क़ाबिल है कि तोते तीरोंसे उड़ा दी जाय। जा, मैंने तुझे तलाक दे दी। मेरे घरसे निकल जा। अब तुम ही बताओ कि यह भी कोई क़ुसूर था।

पाँचवीं तलाक़िन

पाँचवी बोली, "मेरी दास्तान भी सुननेके क़ाबिल है। मेरे मियाँने एक दिन पावसेर खाँड़ मुझे लाकर दी और कहा, 'मैं तो नौकरीपर जाता हूँ, तुम इस खाँड़का हरीरा बनाकर

रखना। मगर ज़रा बहुत-सा बनाना। और मीठा भी हो'। यह कहकर मियाँ तो नौकरीपर सिधारे। और मैंने सोचा कि मियाँका कहना करना चाहिए। वह कह गये हैं—बहुत-सा बनाना। पतीलेमें बनाऊँगी तो ऐसा क्या बहुत-सा बनेगा। फिर मैंने सोचा, 'बड़े पतीलेमें बनाऊँ', मगर वह भी कुछ ऐसा बड़ा न था। फिर मैंने कहा, 'मेरे हाँ तो कोई ऐसा बड़ा बासन नहीं है जिसमें बहुत-सा हरीरा बने। आख़िर सोचते-सोचते यह बात समझमें आई कि कुँएसे बड़ा बासन कहाँसे आयगा। उसमें बनाऊँ। घरके दर्वाज़ेपर कुँआ मौजूद था कुँएपर गई और अल्लाहका नाम ले वह पावसेर कुँएमें डाल दी। मगर उसका पानी जो मैंने चखा तो बिल्कुल फ़ीका था। फिर मैंने बाज़ारसे थोड़ी खाँड़ मँगवाकर डाल दी। मगर फिर वही फीके-का-फीका रहा। बुआ, रात थोड़ी है और कहानी बड़ी है। असल यह कि जो कुछ मेरे पास नक़द रुपया था उसकी खाँड़ मँगवाकर डाल दी। फिर भी हरीरा फीका ही रहा। लाचार होकर मैंने मकान शफ़ाके साथ बेच डाला। और मकानका क़िबाला लाकर हवाला किया। और उसकी क़ीमतकी भी खाँड़ मँगवाकर डाल दी मगर कुँएका पानी मीठा न होना था, न हुआ। जैसा-का-तैसा रहा। आख़िर कुँएपर से उठकर घरमें आ गई। इतनेमें मियाँ नौकरी परसे तशरीफ़ ले आये और कहा, 'कहो, खाना वाना पकाया। हरीरा बना लिया।' मैंने मरी ज़ुबानसे कहा, 'हाँ, बना लिया।' तो उन्होंने कहा, 'खाना लाओ।' मैंने कहा, 'यहाँ हरीरा नहीं, घरसे बाहर चलो।' मियाँने कहा, 'यह क्या कहती हो'? मैंने कहा, ज़रा सबर करो। मेरे साथ चलो। फिर मियाँको ले कुँएपर पहुँची और डोलमें पानी भरकर मियाँको थोड़ा-सा पिलाया। मियाँने कहा, 'आज तुम्हें क्या हो गया है'? मैंने तुमसे हरीरा माँगा, तुमने मुझे कुँएपर लाकर पानी पिला दिया।' मैंने कहा, 'लो, और सुनो। तुम ही तो कह गये थे कि बहुत-सा बनाना। मुझे इससे बड़ा बासन और कोई भी न मिला। और जो तुम यह कहते हो हरीरा मीठा क्यों नहीं ? इसमें मेरा क़ुसूर कुछ भी नहीं, जो कुछ मेरे पास नक़द रुपया था, उसकी मैंने खाँड़ खरीदकर डाल दी। मगर मीठा न हुआ। गहना बेच डाला। मकानका क़िबाला देकर और खाँड़ लेकर कुँएमें डाल दी, मगर हरीरा ठीक न बना। मियाँने जो यह सुना, मारे ग़ुस्सेके थर्रा गये और कहने लगे, "हाय बदनसीब, तूने ख़ुद अपना घर बर्बाद किया। बस अब मुझे तेरी सूरत देखनी रवा नहीं। जा, मैंने तुझको तलाक़ दी, अपना रास्ता ले।"

छठी तलाक़िन

छठीने कहा, "इस बन्दीके मियाँने भी बेवजह तलाक़ दी। मगर इससे क्या गिला है। यह तक़दीरका लिखा है। सुनो, बहिनों! मेरा मियाँ अच्छी तरहसे औक़ात बसर करता था। शहरके बहुत-से भले मानसोंसे मुलाक़ात थी। दो-चार शरीफ़ आदमी हरवक़्त उनके पास बैठे रहते थे। एक दिन उन्होंने अपने यार-दोस्तोंकी दावत करनी चाही और बहुत खाने पकवाये। मगर यह खाने जनाना मकानमें हुए थे। जब खानेका वक़्त आया तब मियाँने मुझसे कहा, 'कि मैं तो यार दोस्तोंको बुलाने जाता हूँ। तुम सामनेवाले दालानमें 'फ़र्श' चाँदनी, गाउ तकिया, कालीन बिछाकर दस्तरख़्वानपर खाना निकालकर आरास्ता करा देना। ख़ैर मियाँ तो बाहर गये। मैंने जो एक देग खोलकर देखी तो उसमें 'मुज़अफ़र'* था और उसमें इस क़दर घी और ख़ुशबू थी जिसकी हवाने मेरे होश उड़ा दिये। इसी तरह मैंने 'बरयानी,' पलाव, चलाव, मुतंजन, मौक़ूक़ी' सबको देखा और उनमें इस क़दर और ख़ुशबू पाई कि मैं हैरान रह गई। दिलमें कहने लगी, तेरी अमान! मियाँकी अक़लपर कैसा पर्दा पड़ गया है, जो उन्होंने ऐसे उम्दा खाने पकवाये हैं, कि आदमी मज़ेके मारे पावभरकी जगह आध सेर खाजाये। और खाकर हैज़ा करे। और हैज़ा करके फिर क्या बचे? अपनी जानसे जाये। मियाँने दोस्तीके पर्देमें दुश्मनी कर रखी है। और अपने हक़में भी काँटे बोये हैं। जब खानेवाले खाकर मरेंगे तो लोग कहेंगे, खानोंमें ज़हर दिया। 'नेकी बर्बाद गुनाह लाज़िम', 'भट पड़े वह सोना जिससे टूटे कान।' मेरी समझमें यही आया कि मैंने जल्दी-जल्दी वह खाने

* खानेकी कोई चीज़। हम उसे नहीं जानते।—सम्पादक

क़ाशों और लगनोंमें भरकर दीवारके नीचे कूड़ेपर डाल दिये और एक माशा न छोड़े। घड़ीभरके बाद मियाँ आये और कहने लगे, 'बेगम! तुमने खाना-वाना! मैं तो सब दोस्तोंको ले आया। मैंने कहा, बहुत अच्छा किया जो ले आये। तुम मेरे साथ कोठेपर चलो। और मियाँको कोठेपर ले जाकर मैंने दिखाया कि मैंने तमाम खाने कूड़ेपर फेंक दिये। मियाँने झल्लाकर कहा, 'कमबख़्त तूने यह क्या किया?' मैंने कहा, भला मियाँ, तुम इतना न समझे कि ऐसे क़वी (पौष्टिक) खाने खाकर आदमियों को हैजा होंगे, बन्द लगेंगे--ज़हर बाद तुख़्म होंगे' और तुम्हारे दुश्मनोंपर आफ़त आयेगी। मियाँने यह मामला सुना तो आयें, तो जायें कहाँ और जो कुछ ज़ुबानमें आया, बुरा-भला कहा और तलाक़ देकर घरसे बाहर निकाल दिया। उस दिनसे मैं निगोड़ी तुम बहिनोंके साथ चर्खा कात-कातकर ज़िन्दगी काट रही हूँ।"

सातवीं तलाक़िन

सातवीं बोली, "तुम सब बहनोंने अपनी-अपनी तलाक़के क़िस्से बयान किये तो मुझपर भी लाजिम है कि मैं भी तुमसे अपना हाल न छुपाऊँ। सुनिये, मेरा मियाँ परदेशमें नौकर था। बरस-दो-बरसमें रुख़सत मिल जाती थी तो घर आया करता था। एक दफ़ा मियाँको कई बरस तक रुख़सत न मिली और घर आना न हुआ। उनकी जुदाईमें मेरा जी ऐसा घबराया कि दीवानी हो गई। रात-दिन रोती थी और मियाँकी यादमें यह 'शेर' पढ़ती थी—

"आतिशे ग़मसे न हो क्योंकर कलेजा जल क़बाब
अबर है, मीना है, मै है, हाय साक़ी तू नहीं।"

लो कभी आप-ही-आप कहती मियाँने ऐसा परदेश लिया, घरको जवाब दे दिया। मेरी एक रफ़ीक़ लौंडी थी। वह मुझे बेताब देखकर कहने लगी, यह हुसन, यह जवानी, इसपर यह ग़म। सितम है, सितम है, सितम! घबराइये नहीं, इंसा अल्लाह मियाँ जल्दीसे आयेंगे। मैंने कहा, अरी दीवानी, तेरे दिलपर मुहब्बतकी चोट नहीं लगी, वर्ना ऐसी बातें काहेको करती नादान! 'शबानि हिज्राँ, दराज़ चूँ ज़ुल्फ़ो रोज़े वसलिश, चू उमर कोताह। सखी पियाको जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।"

वह जबतक आयेंगे, हम मर जायँगे। लौंडी बोली, बलासे कोई तदवीर मियाँके पास चलनेकी निकालूँ। मैंने कहा, मैं भी यही सोंच रही हूँ कि मियाँके पास क्योंकर पहुँचें। काले कोसोंकी बात है और बीचमें दरिया पड़ता है। लाओ इससे तो यही बेहतर है कि अपने घरमें ही दरिया बना लें। लौंडीने कहा, वारी गई, सिदक़े गई। आपने यह बात खूब निकाली। अपने घरमें दरिया बना लें। क्योंकि दरिया तो पार उतरना है, वह न हुआ यह हुआ। बस जो कुछ मेरे पास नकद जिन्स था, सब ख़र्च कर दिया। और घर ढवाकर एक हौज बनवा लिया। और उसे पानीसे भरवा लिया और उसमें दो तख़्ते डाल एक पर मैं सवार हो गई, दूसरे पर लौंडीको सवार किया, और अल्लाहका नाम ले मियाँके पास चल दी। दिन-रात हम तख़्तोंपर पड़े बहते थे। इसमें दो-तीन महीने गुज़र गये। मेरी लौंडी ऐसी बदज़ात थी कि अपना तख़्ता मेरे तख़्तेसे आगे निकाल ले जाती तो मैं कहती भला बेग़ैरत तू यह चाहती है कि मियाँके पास मुझसे पहले पहुँचे। देख तो सही मैं तुझे पहले कब पहुँचने देती हूँ। यह कहकर उसका तख़्ता पकड़कर घसीट लेती और जो कभी मेरा तख़्ता लौंडीके तख़्तेसे हवा आगे कर देती तो लौंडी चिल्लाकर कहती, 'बीबी! यह सही नहीं है कि आप मियाँके पास पहुँच जायँ और मैं अकेली दरियामें रह जाऊँ। मुझे अपने साथ ले चलिये। इसी कशमकशमें मियाँ भी परदेससे आन पहुँचे। मगर अपने मकानका निशान न मिला तो उन्होंने अपने मुहल्लेवालोंसे कहा, 'यहाँ मेरा भी मकान था।' मुहल्लावालोंने, खुदा इनका नीमनास करे, मेरे मियाँसे कहा कि आपका मकान यहाँ जरूर था, मगर आपकी घरवाली सिड़न हो गई है। घर खुदवाकर तालाब बनवा लिया है। उसमें एक तख़्तेपर आप सवार है और दूसरे पर अपनी लौंडी वफ़ादारको बिठाया है। रात-दिन इसीमें काटती है यह बात सुनकर मियाँके पाँव तलेकी जमीन निकल गई और उन्होंने आकर देखा तो सचमुच मुझे

* आतिश=आग, ग़म=रंज, अबर=बादल, मीना=बोतल, मै=सुरा, साक़ी=शराब पिलानेवाला।

और लौंडीको तख़्तेपर सवार पाया। बड़ी मुश्किलसे मुझे और लौंडीको तालाबसे बाहर निकाला और कहा कि बीबी! शायद तुम्हें सौदा हो गया था जो तुमने घरका घरबा कर डाला। मैंने कहा, हाँ! तुम्हारी मुहब्बतका सौदा हो गया है। आप तो कोह क़ाफ़को चले जाते हो, और हमें जलानेको यहाँ छोड़ जाते हो।' फिर मैंने देखा कि तुम घरबाहको आग लगाकर चले गये और आनेका नाम ही नहीं लेते तो मैंने कहा बलासे, लाओ मैं ही उनके पास जाकर अपना दुखड़ा रोऊँ कि मियाँ! कोई मरदुआ घरको ऐसा भूल जाता है कि कभी भूलसे ख़त भी नहीं भेजता है। मियाँने कहा, मैंने तेरी बकवास सुन ली, तुझे शेख़सदूका साया हो गया है। 'तूने मेरा लाखका घर ख़ाक कर दिया। तू मेरे काबिल नहीं है। मैंने तुझको तलाक़ दी।' इतनेमें सुबह हो गई, मुअज़्ज़िनने कहा, 'अल्लाहो अकबर!' चौकीदारने आकर क़ुफ़्ल खोला। और उन तलाक़ियोंको निकालकर कोतवालके कहनेके मुआफ़िक़ उनके घर पहुँचा दिया।

पश्चिमी जगत और सोवियट यूनियन : एक औद्योगिक तुलना

फ्रैंसिस विलियम्स

१९४५ से वैज्ञानिक और टेक्निकल युद्ध-विद्यामें बहुत प्रगति हुई है। सशस्त्र बल यन्त्रों और मशीनोंका अधिकाधिक उपयोग हो रहा है। फलतः यदि तीसरा विश्व-युद्ध हुआ तो लड़नेवालोंकी औद्योगिक क्षमता और वैज्ञानिक आविष्कार-क्षमता युद्धके परिणाम निश्चित करनेमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे।

प्राप्त संख्याओंको उद्धृत करते हुए फ्रैंसिस विलियम्सने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर विचार किया है—पश्चिमी जगत और सोवियट समूहके मध्यमें औद्योगिक शक्तिका सन्तुलन क्या है?

नेपोलियनने कहा था कि सेनाएँ अपने पेटोंके बल चलती हैं। आजकी सेनाओंकी आवश्यकताएँ सम्राट् नेपोलियनकी सेनाकी तुलनामें बहुत बढ़ी-चढ़ी हैं। आवश्यकताओंकी पूर्ति के लिए महान् औद्योगिक व्यवस्थाओंके अभावमें वे उपयोगी कार्य नहीं कर सकतीं।

द्वितीय विश्वयुद्धमें जनतन्त्रात्मक जगतकी जीतका निर्णयात्मक कारण केवल उनका और उनके साथियोंका साहस और युद्ध-भावना ही नहीं थी, वरन् औद्योगिक उत्पादन-क्षमता और अपार टेक्निकल आविष्कार-क्षमता भी; विशेषतया संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेनकी।

१९४५ से वैज्ञानिक और टेक्निकल्स युद्धविद्यामें बहुत प्रगति हुई है, सशस्त्र बल यन्त्रों और मशीनोंका अधिकाधिक उपयोग कर रहे हैं। फलतः यदि तीसरा विश्व-युद्ध हुआ तो लड़नेवालोंकी औद्योगिक क्षमता और वैज्ञानिक आविष्कारिता युद्धके परिणाम निश्चित करनेमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। विरोधी बलोंका औद्योगिक सन्तुलन केवल युद्धका परिणाम निश्चित करनेमें ही विशेष महत्त्व नहीं रखता किन्तु भावी आक्रमणकारीको युद्धके भयसे भयभीत करनेके लिए भी।

इसलिए प्रश्न यह उठता है कि पश्चिमी जगत और सोवियट गुटके मध्यमें शक्तिका सन्तुलन क्या है? पूरी तुलनाके लिए जिन संख्याओंकी आवश्यकता है, उन्हें प्राप्त करना न सरल है और न सम्भव। यद्यपि पश्चिमी राष्ट्रोंकी औद्योगिक शक्तिका पता लगाना कठिन नहीं है किन्तु सोवियट यूनियन और उसके अधीनस्थ देशोंके विषयमें आवश्यक सूचना प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। ये देश (शायद तुलनाके भयसे) उत्पत्ति विषयक उन संख्याओंको छिपाकर रखते हैं जो अन्य देशोंमें आसानीसे प्राप्त हो जाती हैं। फिर भी तुलनाके लिए कुछ न कुछ मसाला तो मिल ही जाता है।

औद्योगिक शक्ति और आधुनिक सैन्य शक्तिका आधार इस्पात है। यूरोपके आर्थिक आयोगने यूरोपीय इस्पात-उद्योग की एक आलोचना अभी प्रकाशित की है जिसमें यूरोपके मुख्य कच्चे लोहे और कच्चे इस्पात-उत्पादन केन्द्रोंकी संख्याएँ मिलती

हैं और इनके आधारपर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इस आलोचनासे मालूम होता है कि पश्चिमी यूनियनके देशोंमें इस्पात-उद्योगकी उत्पादन-क्षमता सोवियट समूहके देशों की तुलनामें तिगुनी अधिक है। संख्याएँ इस प्रकार हैं, यूरोपीय देशोंके लिए कच्चे लोहेकी अधिकतम वार्षिक उत्पत्ति ३,५०,००,००० मेट्रिक टन है और सोवियट समूहके लिए लगभग १,१६,००,००० मेट्रिक टन। कच्चे इस्पातमें पश्चिमी जनतन्त्रोंकी अवस्था और भी अनुकूल है। इनकी सम्पूर्ण संख्या ४,५०,००,००० मेट्रिक टन वार्षिक है, सोवियट समूह की १,३५,००,००० मेट्रिक टनोंसे कुछ कम।

यदि अमेरिकाके महान् इस्पात-उद्योगकी उत्पत्ति ब्रिटेन, फ्रांस और अन्य पश्चिमी यूरोपीय देशोंकी उत्पत्तिमें जोड़ दी जाती है (और जनतन्त्रात्मक तथा सोवियट समूहोंकी औद्योगिक शक्ति तथा सामरिक सम्भावनाओंके सच्चे तुलनात्मक अध्ययनके लिए ऐसा करना ही चाहिए) तो, इस्पातकी दृष्टिसे, जनतन्त्रोंकी शक्ति सोवियटकी तुलनामें तीन नहीं किन्तु नौ गुनी अधिक है। कच्चे तेलकी उत्पत्तिके मामलेमें जनतन्त्र सोवियट समूहसे और भी आगे है। १९४६ में जब विश्वकी अनुमानित उत्पत्ति ४६,७६,६३,००० मेट्रिक टन थी केवल संयुक्त राज्य अमेरिकाकी उत्पत्ति २५,३२,००,००० टन निकली। सोवियट यूनियन और पूर्वी यूरोपने केवल ३,६३, ८०,००० मैट्रिक टन उत्पन्न किए थे।

एक महान् आधुनिक सैनिक मशीनकी दूसरी मुख्य आवश्यकता यातायातकी है। सोवियट-यातायात प्रणालीकी पूरी बातें बड़ी सावधानीसे पोशीदा रखी गई हैं। हाँ, युद्धके दिनोंमें ६५ हजार किलोमीटर रेलवे लाइनों, १३ हजार पुलों, लगभग साढ़े चार लाख मालडब्बों और लगभग सोलह हजार इञ्जनोंके नष्ट हो जानेके कारण युद्धोत्तरकालमें सोवियट यूनियन के सामने एक अत्यन्त जटिल समस्या उपस्थित थी। प्राप्त प्रमाणोंके अनुसार यद्यपि हानि पूरी करनेमें पर्याप्त प्रगति की जा चुकी है किन्तु सोवियटकी यातायात-प्रणाली आज भी पश्चिमी यूरोपकी तुलनामें बहुत नीचे है। अटलाण्टिक पैक्टके समयसे सोवियट यूनियन पनडुब्बियोंका एक बहुत बड़ा बेड़ा बनानेमें लगा हुआ है। नौ सेना निर्माण कार्यक्रममें १९५०-५१ तक एक हजार पनडुब्बियाँ पूरी तरह बनानेकी बात कही गई है। किन्तु 'जैन्स फाइटिंग शिप्स' नामक ब्रिटिश प्रकाशनके अनुसार (जो नौ सेना सम्बन्धी अत्यन्त अधिकृत अन्तर्राष्ट्रिय प्रकाशन माना जाता है) रूसके साधन इस कार्यक्रमकी पूर्तिके लिए काफी नहीं। इस प्रकाशनका अनुमान है कि एक सौ या उससे थोड़ी अधिक ही पनडुब्बियाँ बनाई जा सकी हैं। कारीगरों और कारखानेके मैनेजर तथा फोरमैन जैसे कामकाजियोंका अभाव सोवियट औद्योगिक प्रणालीका एक अन्य दुर्गुण है जिसका अनुभव युद्धकालमें मित्रराष्ट्रोंके कारीगरोंने किया था। मालूम होता है कि ऐसे दुर्गुणसे जो फ़जूलखर्ची और कार्यमें अयोग्यता उत्पन्न होती है वह आजकल भी जारी है। इसका प्रमाण सोवियट यूनियन और सोवियट अधीनस्थ देशोंके इस वर्षके मई-दिवस आन्दोलनसे मिलता है, क्योंकि उस समय कारखानोंके बाहर रद्दीमें फेंकी गई चीजोंसे यथासम्भव काम लेनेकी आवश्यकतापर बहुत ज़्यादा जोर दिया जा रहा था।

निस्सन्देह, कई प्रमुख सोवियट वैज्ञानिक बहुत योग्य व्यक्ति हैं। किन्तु रडार और जेट वायुयान जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आविष्कारोंके क्षेत्रमें सोवियट यूनियन पश्चिम यूरोपीय राष्ट्रों और अमेरिकासे बहुत पिछड़ा है। पिछले युद्धमें प्रतिरक्षाके आधुनिकतम साधनोंके उपयोग सीखनेके लिए सोवियट यूनियन पश्चिमी मित्रराष्ट्रोंके वैज्ञानिक और कारीगर पर निर्भर था। इन साधनों और आविष्कारोंमें से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चीजें ब्रिटेन और संयुक्तराज्यमें आविष्कृत और विकसित हुई थीं और उपलब्ध टेक्निकल ज्ञान राशिसे रूसको सहायता दी गई थी।

कई अन्य नए हथियारोंके विकासमें सोवियट यूनियनके वैज्ञानिक ब्रिटेन और संयुक्तराज्यके सहयोगियोंसे बहुत पिछड़े हैं। ये नए हथियार वास्तविकतामें महत्त्वपूर्ण हैं और सम्भावनाओंमें और भी अधिक।

स्यामी महिलाका जीवन

कुमारी रुअंग उराई

भारतवासी स्यामी महिलाके जीवनके विषयमें जाननेके कदाचित उत्सुक हों। अतः मैं उसका चित्र उपस्थित करती हूँ। पारसाल मैं अपनी दो अन्य सहेलियों सहित भारत सरकार द्वारा प्राप्त छात्र-वृत्तिके फलस्वरूप शिक्षा-प्राप्तिके लिए भारतवर्षके बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें पहुँची। स्यामी मंगोल जातिमें गिने जा सकते हैं, इसीलिए सम्भवतः हिन्दुस्तानके लोगोंने इन स्यामी महिलाओंको देखकर समझा कि वे चीनकी निवासी होंगी। वास्तवमें जैसे चीनी हैं, वैसे ही स्यामी भी हैं, क्योंकि ये दोनों मंगोल जातिके हैं। लेकिन इन दोनों देशोंकी महिलाओंमें, मेरे खयालसे, स्यामी महिलाका जीवन अधिक आकर्षक और मनोहर होता है। आप यह न सोचें कि मैं अपने देशकी महिलाओंके विषयमें डींग मार रही हूँ।

स्यामी महिला अपने बचपनसे ही स्वाधीन होती है। जो अधिकार लड़कोंको हैं, वही लड़कियोंको भी हैं। वह अपने घरमें 'मैं श्री रूअन्' अर्थात्—घरका प्रकाश अथवा श्री मानी जाती है। इसीलिए हर एक आदमी उससे स्नेह करता है। शिक्षण-कालमें भी स्यामी लड़की अपनी बुद्धिका अच्छा परिचय देती है। दो-एक उदाहरणोंसे इसका परिचय आसानीसे मिलेगा। जब भारतवर्षकी सरकारने स्यामी विद्यार्थियोंको भारत में आ उच्चशिक्षा-प्राप्तिके लिए तीन छात्र-वृत्तियाँ दीं तब उपर्युक्त छात्रवृत्तियाँ तीनों लड़कियोंने ही यहाँकी सरकार द्वारा प्राप्त कीं। और गत दो वर्षोंसे स्थानीय विश्वविद्यालयमें यहाँके थाई-भारत सांस्कृतिक भवन द्वारा संस्कृतमें प्रथम उत्तीर्णको उपहृत सुवर्ण पदकको प्राप्त करनेवाली भी लड़कियाँ ही निकली हैं।

क्या पाठक विश्वास करेंगे कि स्यामी विश्वविद्यालयोंमें लड़कियोंकी संख्या लड़कोंसे अधिक है? धर्मशास्त्र (Moral and political Science), विश्वकर्मशास्त्र, कलशास्त्र या यन्त्रशास्त्र (Engineering), स्थापत्यकर्मशास्त्र (Architecture)के महाविद्यालयोंमें भी बहुत-सी लड़कियोंको प्रवेश मिल गया है। यद्यपि वास्तवमें ये तरह-तरहके शास्त्र मेरे खयालमें सिर्फ़ लड़कोंके लिए विशेष रूपसे उचित हैं। ये लड़कियाँ स्याममें इस प्रकारकी आजीविकाओंमें भी रुचि रखती हैं। इसलिए जब आपलोग किसी भी स्यामी विश्वविद्यालय या महाविद्यालयमें प्रवेश करें तब आपलोग वहाँ हमेशा लड़कियोंकी संख्या अधिक ही पायेंगे।

बाल्य जीवनके बाद जब स्यामी लड़की सयानी हो जाती है तब वह पुरुषों द्वारा "डाक माई खाङ छात" अर्थात्—देश या राष्ट्रका फूल कहलाती है। इससे यह बात भी अच्छी तरह साबित हो जाती है कि स्यामी महिला अपने देशमें कितने मान तथा आदरका स्थान रखती है। बहुत-से विदेशी इस देशको 'मुस्कराता हुआ देश' कहते हैं अर्थात् यहाँकी महिलाएँ सदैव मुस्कुराती हुई ही नजर आती हैं। अतः यह भी स्यामका एक सौन्दर्य है। फलस्वरूप स्यामी महिलाएँ अधिक आकर्षक प्रतीत होती हैं।

यद्यपि स्यामी महिलाओंमें अपने घरके बाहर आजीविकाओंका बहुत प्रचार है, तथापि स्यामी महिला अपने घरके अन्दर एक मुख्य व्यक्तिके समान कर्तव्य पालन करती है। जो महिला किसीकी भार्या है, वह 'मै बान्' अर्थात्—घरकी माता कही जाती है। शादीके बारेमें स्यामी महिला अपने अधिकारका अच्छा परिचय देती है। जब वह किसी आदमीसे प्रेम करती है, और तत्पश्चात् उसके माता-पिता उसको यदि उचित समझते हैं, तब वे उसको उससे विवाह करनेकी अनुमति दे देते हैं। विवाहके अवसरपर उसके माता-पिता तथा स्यामी महिला अपने वरसे रुपए और कई एक प्रकारके भूषण प्राप्त करती हैं।

स्यामी विवाहकी रीति भारतके प्रतिकूल भी है; क्योंकि भारतवर्षमें महिलाके माता-पिता वर तथा कन्याको दहेज देते हैं, और शादी करनेके बाद पत्नी अपने पतिके माता-पिताके घर रहती है। लेकिन स्याम देशमें विवाह करनेके पश्चात् पत्नी

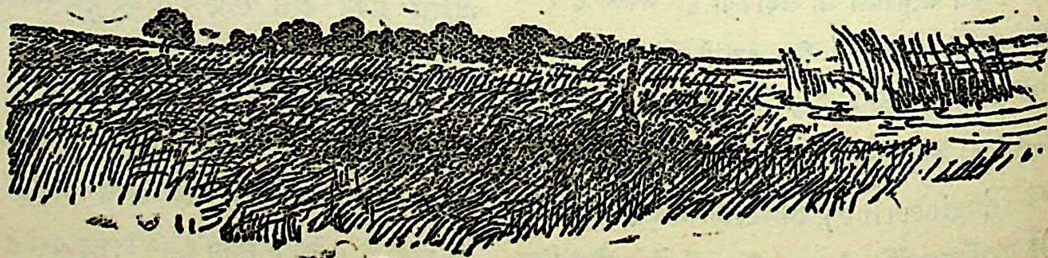
इस बातकी स्वतन्त्रता रखती है कि वह अपने पतिके घरमें या अपने माता-पिताके साथ रहे। किन्तु विशेष बात यह है कि पति-पत्नी दोनों अपने अलग घरमें रहते हैं। जो कुछ अधिकार स्यामी पतिको है, वही पत्नीको है। साथ ही उल्लेखनीय बात यह है कि हर महीनेके आरम्भके दिनोंमें जब पति अपना वेतन पाता है तब वह अपनी पत्नीको पूरी रक़म देता है। पश्चात् वह अपने खर्च करनेके लिए अपनी पत्नीसे माँगता है। अतः यह सत्यतासे खाली नहीं कि स्यामी पत्नी पतिसे सदैव ही मान तथा आदर पाती है। इस अवसरपर मैं एक उदाहरण देती हूँ। कुछ दिनोंसे एक पुस्तिका स्यामी भाषामें प्रकाशित हुई थी। इसके लेखक स्यामके एक प्रकाण्ड विद्वान् भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री श्रीमान् फैया शराभय विवर्धन हैं जो गत दो वर्ष पूर्व स्यामके शिक्षा-मन्त्री थे। इस पुस्तिकाको उन्होंने अपनी स्वर्गीया पत्नीकी स्मृतिमें लिखा था। इस पुस्तकका नाम 'भरिया परमा सखा' है। इस पुस्तकमें संसारकी प्रमुख महिलाओंके चित्र हैं तथा उनके आदर्शमय जीवनका संक्षिप्त वर्णन। इस पुस्तिकामें उन्होंने भारतकी आदर्शमयी महिला—स्वर्गीया श्रीमती कमला नेहरूके बारेमें भी लिखा है। वास्तवमें स्याम देशके लोगोंके हृदयमें श्रीमती कमला नेहरूके प्रति बड़ा सम्मान है।

बुढ़ापेमें जब स्यामी महिला घरके कामोंमें कुछ भी हाथ नहीं रखती है तब वह मन्दिरोंमें जाकर बड़े-बड़े भिक्षुओंसे धर्मोपदेश सुनती है। वह कभी-कभी भिक्षुओं, ग़रीबों तथा दुखियोंको कई-एक प्रकारसे मदद देती है। साधारण बात यह है कि अपने बुढ़ापेमें स्यामी महिला अपनी रुचिके कामोंमें जैसे बाग लगाने, पशु तथा अपने बच्चोंका लालन-पालन करने और आम जानकारीके लिए नाना स्थानोंमें जाने-आने आदिमें अपना अधिकतर समय बिताती है। बूढ़ी-धनवान् स्यामी महिला यह पसन्द करती है कि वह जन-साधारणके उपयोगी कामोंके लिए सहायक हो। इसलिए वह अपने धनसे चिकित्सालय, शिक्षा-स्थान, तथा मन्दिरोंमें शालायें या कुटियाँ और विश्राम-गृह इत्यादि स्थापन करती है। वह कभी-कभी अपने छोटे-छोटे पौत्रोंको विद्या, आचार, व्यवहार तथा सभ्यता सिखानेमें अपने समयको बिताती है। इसी आधारपर एक स्यामी प्रसिद्ध कहावत हो गई है कि, 'यदि तुम एक अच्छी पत्नी चाहते हो तो उसकी माताको देखो, किन्तु उससे भी अच्छी बात होगी कि उसकी नानीको देखो।'

अन्तमें मैं इस प्रसंगको एक और उद्धरणके साथ समाप्त करना चाहती हूँ जो कि अमेरिकाके स्याम स्थित राजदूतकी पत्नी मिसिस स्टैंटन (Mrs. stanton) ने अपने अमेरिकन पत्र-पत्रिकाओंमें लिखा है—बाहरसे देखनेमें मालूम होता है कि स्यामी महिलाको आदमीकी तरह बहुत अधिकार नहीं हैं, परन्तु यदि गहराईसे देखें तो सब लोगोंको यह प्रकट हो जायगा कि सचमुच स्यामी महिलाके अधिकार राजसिंहासनके पीछे छिपी शक्तिके समान ही हैं।

मेरा हिन्दीका ज्ञान बहुत कम है, इसलिए मैं स्यामी-महिलाके जीवन-सम्बन्धी अनुभवोंका अच्छा विवरण लिख नहीं सकती हूँ। कुछ भी हो, मुझे आशा है कि यह संक्षिप्त निबन्ध विशाल भारतके पाठकोंको रोचक लगेगा।

[कुमारी रुअंग उराईका सचित्र परिचय हम पहले दे चुके हैं। उनकी हिन्दी काफ़ी अच्छी है। हमें पूरी आशा है कि वे स्याम और भारतके सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक सम्बन्धको अपनी कृतियों द्वारा और भी सुदृढ़ करेंगी।
—सम्पादक]



गांधीजी और भिखारी

प्रभुदयाल विद्यार्थी

एक हट्टे-कट्टे नवयुवकको भीख माँगते देख किसी भी देश-वासीका सिर शर्मसे नीचे हो जाता है। बालकोंका भीख माँगना तो सचमुच देशका दुर्भाग्य ही समझना चाहिए और औरतोंका भिक्षा माँगना देशके पतनका प्रतीक है।

भीख माँगना, सचमुच मुल्ककी सबसे गिरी अवस्थाका चिह्न है, देशका अपमान है और है मुल्कपर कलंकका टीका। किसी भी आजाद मुल्कमें भीख माँगना अपराध समझा जाता है। रूसमें भीख माँगनेवालोंका नामोनिशान नहीं है। समाज-वादी रूस इसको देशका सबसे बड़ा अपमान समझता है। भीख माँगनेके अपराधमें वहाँ कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाती है। इंगलैंड और अमेरिका आदि देशोंमें भी भीख माँगनेवालोंको जेल भेजनेका क़ानून है।

हमारे मुल्कमें भीख देना और लेना एक धर्म समझा जाता है। महात्माजीको ऐसे निकम्मे धर्मसे बड़ी नफ़रत थी। महात्माजी एक हट्टे-कट्टे बालक या नवयुवकको भीख माँगते देख बहुत ही दुःखी होते थे। और आह-भरे स्वरके साथ कहते थे, 'यह मनुष्य-समाजका अपमान है। ईश्वरके क़ानूनको भंग करना है। हट्टे-कट्टे मनुष्यको भीख देकर उनके जीवनको काहिल और निकम्मा बनाना है। भगवान्‌ने कहीं ऐसे मनुष्योंको भीख देनेके लिए नहीं कहा है। न इसमें धर्म है न इसमें दया।'

महात्माजी ऐसे धर्मको अधर्म समझते थे जो मनुष्यको भिक्षा देकर काहिल बनाता है और देशका अपमान कराता है। शरीर-श्रमसे जो घृणा पैदा कराता है वह समाजका शत्रु है। गांधीजीका सिद्धान्त था, जो एक दाना अनाज खाये वह चार दाना पैदा करे। तब मुल्कमें खुशहाली पैदा हो सकती है। श्रम करके भोजन पैदा करें तब देश और धर्मकी जय होगी। बिना शरीर-श्रम किये जो भोजन करता है वह समाजका चोर है। ऐसा भी गांधीजीने कभी-कभी अपने भाषणोंमें दुहराया है। बैठे ठाले खानेवालोंको गांधीजीने कभी पसन्द नहीं किया। ऐसे लोगोंसे समाजका न भला होता है न धर्मका। गांधीजीने हम लोगोंको बराबर इस बातपर जोर देकर समझाया कि 'तुम्हें कुछ-न-कुछ हाथ-पैरसे मिहनत करके कमाना है।' जो हाथ पैरसे काम नहीं करता है वह एक तरहसे समाजकी तरक्कीमें रुकावट पैदा करता है। देशके लाखों साधुओं और भिखारियोंके दयनीय जीवनसे गांधीजीको बहुत दुःख था। साधुओंके निकम्मे जीवनको देखकर वे बहुत हैरत और दुःखमें थे और सोचते थे, भला इनका जीवन समाजके किसी अंगको पुष्ट करता है या नहीं? जो व्यक्ति इन लोगोंको ऐसा जीवन व्यतीत करनेको प्रोत्साहन देता हो, उसे गांधीजी देश और समाजका सबसे बड़ा शत्रु समझते थे। अपनी बात-चीतमें वे अक्सर कहा करते थे, 'एक न-एक दिन हिन्दुस्तानका सर्वनाश ग़लत धर्म समझनेवाले ही करेंगे। मुमकिन है कि कभी उनके समाजमें भी महान् परिवर्तन हो।'

दान किसे देना चाहिए और किसे लेना चाहिए, इसका एक मौलिक शास्त्र है। जिस दानसे लाखों-करोड़ों ग़रीबोंका उद्धार हो, उनकी तरक़्क़ी हो, समाज ऊपर उठे, आगे बढ़े—ऐसे दानकी महत्ता हमारे धर्मशास्त्रोंमें है। लेकिन आज धर्मके नामपर चारों तरफ़ अन्धेर मचा हुआ है। इसे कौन रोक सकता है? दानका एक-एक पैसा सोच-समझकर देना चाहिए और स्वयं देखना चाहिए कि हमारे कमाईके पैसेसे कहीं अधर्म तो नहीं फैल रहा है।

भिखारीको दानके बजाय गांधीजी उन्हें काम देना अधिक श्रेष्ठ समझते थे। और कहते थे—देशकी ग़रीबी मिटानेके लिए गृह-उद्योग शालाओंकी स्थापना जगह-जगह होनी चाहिए। और उसके आस-पास इतना सुन्दर वातावरण पैदा कर देना चाहिए कि कोई भी मनुष्य भीख माँगना पाप समझने लगे। श्रमकी क़ीमतको समाजमें सबसे श्रेष्ठ स्थान देना चाहिए। बालकोंके लिए उद्योगी-शिक्षा-संस्थाओंमें एक पैसे दानको वे

लाख रुपएके दानके बराबर समझते थे और उनका विश्वास था कि जिस दिन हमारे देशवासी धर्म और दानका सच्चा अर्थ समझ जायँगे उस दिनसे हिन्दुस्तानकी शक्ल कुछ और बनेगी। जो मनुष्य हट्टे-कट्टे नवजवानोंको भीख देकर समाजका अपमान करता है, उसे गांधीजी आजादीका शत्रु ही समझते थे। वे कहते थे—क्या हमारे देशवासी ऐसे नासमझीके कामोंसे कभी आगे बढ़ सकते हैं? जहाँ लाखों आदमी बिना किसी कामके जीवन बितानेके आदी हों उस मुल्कका भविष्य कैसे उज्ज्वल होगा? देशके मनुष्योंको आज सोचना है, मनीषियों को मार्ग निकालना है।

परमाणु-शक्तिके उपयोग

दुलहसिंह कोठारी

आजसे कोई तीन वर्ष पूर्व प्रशान्त सागरमें हीरोशिमा तथा नागासाकीपर परमाणु-बमोंके विस्फोटसे मानवने प्रथम बार परमाणुमें गुप्त एवं अपूर्व शक्तिका मूल्यांकन किया। यद्यपि परमाणु-बमके आविष्कारने वैज्ञानिक क्षेत्रमें एक क्रान्ति पैदा कर दी, तो भी यह कहा जा सकता है कि वैज्ञानिकगण परमाणुकी शक्तिसे बहुत वर्षोंसे परिचित थे। यों तो परमाणु बमोंका आविष्कार अपने ढंगका एक निराला तथा महान् कार्य था। इसका श्रेय अमेरिकन राष्ट्रको है, फिर भी इस देशके वैज्ञानिकोंको परमाणु-क्षेत्रमें कोई ५० वर्षोंमें किये गये अनेक शोधन तथा अनुसन्धानोंसे प्रेरणा मिली। सन् १८०७-८ में जान डाल्टन (Jhon Dalton) नामक प्रसिद्ध रसायनज्ञने प्रचलित अणु-सम्बन्धी सर्व साधारणाओंको एक वैज्ञानिक सूत्रमें बाँधकर सुविख्यात अणु-सिद्धान्तकी स्थापना की। भौतिक-विज्ञानके महान् आचार्य थामसन (J. J. Thomson) ने डाल्टनके अविभाज्य अणु (Indivisible atom) का सर्वप्रथम अपनी निराली काँचकी नली (Discharge tube) में विछिन्नकर समस्त वैज्ञानिक जगतको आश्चर्यमें डाल दिया। थामसनके इस प्रयोगने अणु-विषयक ज्ञानमें एक अद्वितीय क्रान्ति उत्पन्न कर दी। तत्पश्चात् इस नवीन क्षेत्रमें इतने वेगसे एक-से-एक बढ़ते हुए अनुसन्धान होते चले गये कि बीसवीं सदीके आरम्भ कालसे लेकर आज दिन तक जितना ज्ञान अणु तथा परमाणुके सम्बन्धमें प्राप्त किया गया है, उसे अनुभव करके तो वैज्ञानिकगण स्वयं आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। यद्यपि संसारमें कदाचित् ही ऐसी कोई प्रयोगशाला हो जिसमें गत ३० वर्षोंके अन्दर अणुके विषयमें किसी तरहके विचार तथा प्रयोग नहीं किये गये हों, फिर भी अणु-सम्बन्धी ज्ञानके प्रसरणका अधिकांश श्रेय तो लार्ड रदर फोर्ड (Lord Ruther ford), केम्ब्रीज, नील्स बोर (Niles bohr), कोपनहेगन, बेकरल (Becqurel) तथा क्यूरी (Curie), फ्रांस और आइन्सटेन (Einstein) को ही है; क्योंकि आधुनिक भौतिक विज्ञानका सुन्दर तथा सुरम्य भव्य प्रासाद तो इन्हीं कतिपय सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकोंके मौलिक आविष्कारोंपर ही अवलम्बित है।

परमाणु-बमसे आतंकित संसारमें इस विशाल शक्तिके उपयोगपर विचार करना एक हँसीकी बात भले ही जान पड़े, परन्तु वैज्ञानिक क्षेत्रमें दिनों-दिन यह धारणा पक्की होती जा रही है तथा उन वैज्ञानिकोंका जिन्होंने वर्षों तक परमाणु-सम्बन्धी शोधन किया है, विश्वास होता जा रहा है कि निकट भविष्यमें मानव-जीवनको सुखी एवं आनन्दमय करनेमें परमाणुसे उत्पादित शक्ति एक विचित्र साधन सिद्ध होगी, और बात वास्तवमें ठीक भी है। विज्ञानका प्रगतिशील इतिहास भी हमको इस बातकी आशा दिला रहा है। कौन नहीं जानता कि दो पत्थरोंके टुकड़ोंको रगड़कर क्षणिक, फिर भी महत्त्वपूर्ण, आगकी नन्हीं-सी चिनगारीके आविष्कार करनेके सैकड़ों वर्ष बाद मनुष्य अग्निके भिन्न-भिन्न उपयोगसे परिचित हुआ। इसी प्रकार वाष्पके आविष्कारके सदियों पश्चात् उसकी

शक्तिसे प्रथम बार इंजिनको रेलकी पटरियोंपर संचालित करनेमें उसे सफलता मिली। लोहे जैसी उपयोगी धातुका इतिहास भी इसी बातका साक्षी है। उस दिनसे लेकर जब कि पहली बार मनुष्यने इसको पहिचाना, बहुत ही लम्बे समय तक इसका प्रयोग केवल युद्धके अस्त्र-शस्त्र बनाने तक ही सीमित रहा। किन्तु इस धातुकी महान् उपयोगिताका वास्तविक ज्ञान हुए तो बहुत ही अल्प समय हुआ है। अतः कोई कारण नहीं कि परमाणु-शक्तिके युद्ध-कालीन भीषण प्रयोगोंसे (Use) हम अनुमान लगाने लगें कि इस शक्तिका प्रयोग युद्ध तक ही सीमित रहेगा। वह समय दूर भले ही हो, पर वह आयगा अवश्य जब परमाणुसे उत्पन्न की हुई शक्तिपर ठीक उसी प्रकार मनुष्य अपना आधिपत्य स्थापित करनेमें असाधारण कार्य-कौशलताका परिचय देगा, जिस तरह आज वह कोयले, पेट्रोल, गेसोलीन तथा जल तरंगोंके प्रवाहसे उत्पादित शक्तिको अपने वशमें कर अपने जीवनकी अनेक, एक-से-एक बढ़ती हुई समस्याओंको सुलझानेमें तथा विस्तृत प्रकृतिपर अद्वितीय विजय प्राप्त करनेमें उसने सफलता प्राप्त की है।

परमाणु-शक्ति मानव-हितके लिये (यदि अधिक नहीं तो भी) उतने अंशमें तो अवश्य ही साधक होगी जितने अंशमें आज अन्य शक्तिके साधन सार्थक सिद्ध हो रहे हैं। फिर भी कब और किस प्रकार इस शक्तिको वशमें कर मनुष्य एक नवीन युगका निर्माण करेगा, ठीक-ठीक कहना कठिन है। जैसे-जैसे मनुष्य इस आश्चर्यजनक शक्तिके स्रोतकी गूढ़तम समस्याओंको समझता जायगा तथा जैसे-जैसे इस स्रोतके प्रवाहको प्राणी मात्रके कल्याणके लिए काममें लाना सीखेगा, वैसे-वैसे उसे एक-से-एक नए-नए उपयोगोंका, जिनका इस समय कल्पना करना भी सम्भव नहीं, स्वतः ज्ञान होता जायगा। जिस उत्साह, लगन, आशा एवं समस्त शक्तिसे वैज्ञानिकगण परमाणु-सम्बन्धी जटिल-से-जटिल समस्याओंको सुलझानेमें प्रयत्नशील हैं, उसे देखकर तो परमाणु-शक्तिके उपयोगके विषयमें थोड़ा-बहुत अनुमान लगाना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

इस समय संसारमें १४ के लगभग परमाणु-स्तम्भ (Atomic Piles) स्थापित किये जा चुके हैं। इन केन्द्रों पर परमाणु केन्द्रीय विभाजन विषयक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए बड़े-बड़े वैज्ञानिक नाना प्रकारके महत्त्वपूर्ण प्रयोगोंमें व्यस्त हैं। हाल ही में बूरूक हेवन, संयुक्तराज्य अमेरिकामें एक परमाणु स्तम्भ स्थापित किया गया है। इस प्रयोगशालामें विशेष रूपसे परमाणु-शक्तिको सुख एवं शान्तिके लिए काममें लानेके हेतु प्रयास किये जा रहे हैं। आशा की जाती है कि बहुत शीघ्र ही इस दिशामें कुछ-न-कुछ सफलता अवश्य ही प्राप्त होगी। परमाणु-स्तम्भमें रेडियम-धर्मी (Radio active) यूरेनियम (२३५) तथा प्लुटोनियम (Plutonium 239) धातुओंके परमाणुओंका विभाजन न्यूट्रान द्वारा एक निरन्तर शृंखलात्मक प्रतिक्रिया (Fission or chain reaction) के रूपमें किया जाता है। इस शृंखलात्मक-क्रियाको टेक्निकल भाषामें फिजिन कहते हैं। फिजिन द्वारा विछिन्न परमाणुओं के भाग तेज गतिसे भिन्न-भिन्न दिशाओंमें गतिशील होते हैं, साथ ही किसी एक परमाणुके विभाजनसे जो नवीन न्यूट्रान मुक्त होते हैं, वे दूसरे परमाणुओंको विछिन्न करनेमें सार्थक होते हैं। इस प्रकार तुरन्त यह क्रिया बहुत जोर पकड़ लेती है। छिन्न-भिन्न किये कणों (Fragments of broken Atoms) में शक्ति होती है, और इस शक्तिको लाभदायक ताप-शक्तिमें परिवर्तित करनेमें वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं। बहुधा परमाणु स्तम्भके तापको नियन्त्रित रखनेके लिए पानीको काममें लाया जाता है। हेनफोर्ड (Hanford) में स्थित स्तम्भको ठण्डा करनेके लिए कोलम्बिया (Columbia) नदीके पानीको काममें लाया गया और वहाँ इतनी ताप उत्पन्न हुई कि गर्म पानीको फिरसे नदीमें प्रवेश करानेपर नदीके पानीका ताप-क्रम पर्याप्त मात्रामें बढ़ गया। अतः हम एक ऐसे दिनकी कल्पना कर सकते हैं, जब कि परमाणु-स्तम्भोंकी तापसे पानीकी भाप बन पायगी और फिर उस भापकी शक्तिसे हमारे बड़े-बड़े जहाज, रेलगाड़ियाँ तथा अनेक मशीनोंका संचालन सफलतापूर्वक किया जा सकेगा।

एक-दो वर्षोंमें ही परमाणु-शक्तिसे विद्युत-शक्ति उत्पन्न की जा सकेगी, ऐसी सम्भावना प्रतीत होती है। सम्भवतः कुछ

समयके लिए इस प्रकारसे उत्पन्न की हुई विद्युत-शक्ति इतनी प्रबल न हो कि बहुत बड़े पैमानेपर प्रकाश प्राप्त किया जा सके तथा कल-कारखाने चलाये जा सकें। फिर भी इसमें तो सन्देह नहीं कि वैज्ञानिक-निदर्शनके लिए तो वह पर्याप्त होगी। जैसे-जैसे इस दिशामें हम प्रगति करेंगे, हमें नए-नए अनुभवोंका ज्ञान होगा, जिनके फलस्वरूप हम अपने पथपर अनेक समस्याओंको सुलझाते हुए आगेको अग्रसर होते चलेंगे और अन्तमें परमाणु हमारे लिए शक्ति-उत्पादनका एक महान् क्रान्तिकारी एवं परम उपयोगी साधन सिद्ध होगा।

चिकित्सा-विज्ञानके क्षेत्रमें भी परमाणु-शक्तिके उचित प्रयोगसे महत्त्वपूर्ण अनुसन्धानोंकी पूर्णतया सम्भावना है। निस्सन्देह परमाणुसे उत्पन्न की हुई शक्तिसे चिकित्सा-विशेषज्ञ प्राणीमात्रका कल्याण करनेमें सफल होंगे। परमाणु-स्तम्भोंमें रासायनिक विश्लेषण द्वारा बहुतसे रेडिअम-धर्मी सम स्थानीय (Radio Active Isotopes) परमाणुओंका पता चला है। अनुसन्धान द्वारा यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि परमाणु-शक्तिसे अन्य साधारण परमाणुओंको भी कृत्रिम रेडियम-धर्मी बनाया जा सकता है। इस प्रकारसे उत्पादित किये हुए कृत्रिम परमाणुओंकी ओर विशेष रूपसे फास्फोरस, आयडीन, सोडियम, विस्मथके परमाणुओंकी उपयोगिता चिकित्साकी दृष्टिसे बहुत-कुछ सिद्ध की जा चुकी है। उदाहरणार्थ इस बातका वैज्ञानिक रूपसे अध्ययन करनेके लिए कि फास्फोरस किस प्रकारसे एवं किस गतिसे रोगीके शरीरके भिन्न-भिन्न भागोंमें प्रवेश करता है, साधारण फासफोरसके साथ बहुत ही सूक्ष्म मात्रामें कृत्रिम रेडियम-धर्मी फास्फोरसके परमाणु मिला दिये जाते हैं। रेडियम-धर्मी परमाणु अपनेमें से स्वतः (निरन्तर वेगसे) विविध प्रकारकी रश्मियाँ एवं अणु-किरणोंका परिचालन करते रहते हैं और यही रश्मियाँ एवं किरणें किसी भी स्थलपर (सूक्ष्म-से-सूक्ष्म परिमाणमें भी) इनकी उपस्थितिकी सूचक होती हैं। विशेष यन्त्रों द्वारा कृत्रिम रेडियम-धर्मी फास्फोरसके परमाणुओंकी गतिका अध्ययन करनेसे यह पता चलाया जा सकता है कि फास्फोरस किस प्रकार हमारे शरीरमें क्रिया करता है। विभिन्न औषधियोंकी प्रतिक्रियाओंको ठीक रूपसे समझनेका यह निराला तथा बहुत ही उत्तम उपाय है। इस प्रकारके अध्ययनसे चिकित्सकगण भिन्न-भिन्न औषधियोंकी प्रतिक्रियाओंको सही रूपसे समझ सकेंगे और अपने नए ज्ञानसे मनुष्यका कितना कल्याण करेंगे इसका अनुमान तो साधारण ढंगसे लगाया ही जा सकता है।

परमाणु-स्तम्भसे निकली हुई विकिरण-शक्ति द्वारा नासूर जैसे भयानक रोगोंको वशमें करनेके लिए तो वैज्ञानिकगण प्रयत्नशील हैं ही, परन्तु साथ ही अनेक प्राणियोंपर भी (जो मनुष्यसे डीलडौल तथा आकारमें समता रखते हैं) इन रश्मियोंके प्रभावको अध्ययन करनेमें वे व्यस्त हैं।

कृत्रिम रेडियम-धर्मी परमाणुसे यह भी मालूम किया जा सकता है कि जो भोजन हम करते हैं वह किस प्रकारसे एवं किस मात्रामें हमारे शरीरकी आन्तरिक हड्डियों एवं लोहूको बढ़ानेमें साधक होता है। यह तो हमको बहुत कालसे ज्ञात था कि हमारे शरीरसे प्रतिदिन उतना ही नाइट्रोजन बाहरको निकल जाता है जितना कि भोजनके साथ वह हमारे शरीरमें प्रवेश करता है। फिर भी ठीक-ठीक यह पता नहीं था कि प्रतिदिन जो नाइट्रोजन हमारे शरीरसे बाहर निकलता है क्या वह वास्तवमें वे ही परमाणु हैं जिन्होंने उसी दिन भोजनके साथ हमारे शरीरमें प्रवेश किये हैं? कृत्रिम रेडियम-धर्मी नाइट्रोजनके परमाणुओंके प्रयोगसे अब यह निश्चित रूपसे ज्ञात हो गया है कि भोजनके साथ जो नाइट्रोजन हमारे शरीरमें प्रतिदिन भीतर जाता है उसका तो लगभग ७० प्रतिशत भाग ग्रहण कर लिया जाता है और शरीर द्वारा मुक्त नाइट्रोजन तो बहुत दिनोंका पुराना होता है। निश्चय ही इस प्रकारके प्रयोगोंसे जीव-विद्या सम्बन्धी अनेक गूढ़ समस्याओं एवं महत्त्वपूर्ण तत्वोंपर नवीन दृष्टिसे विचार किया जा सकेगा।

रासायनिक-विज्ञानमें भी कृत्रिम रेडियम-धर्मी परमाणु बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनके प्रयोगसे यह बड़ी आसानीसे मालूम किया जा सकता है कि विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाएँ किस प्रकार एवं किस गतिसे काम करती हैं। वैज्ञानिकगण वनस्पतिके गूढ़ रहस्योंका अध्ययन करनेके लिए भी इस नवीन साधनको काममें लाने लगे हैं। कृत्रिम रेडियम-

धर्मी कार्बनके परमाणुओंके प्रयोगसे आज इस बातका पता लगाया जा रहा है कि वृक्ष तथा पेड़-पौधे किस प्रकार वायुसे कार्बन-द्वि-ओषधि (Carbon-di-Oxide) गैसको ग्रहणकर उसे (प्रकाशकी उपस्थितिमें) कार्बन तथा आक्सीजन गैसके परमाणुओंमें परिवर्तित करते हैं। अनेक रासायनिक क्रियाओं का इसी प्रकार अध्ययन किया जा रहा है और आशा है कि इस तरहके अनुसन्धानसे हमारे कई औद्योगिक व्यवसायोंको बहुत ही लाभ होगा। इस नवीन साधन द्वारा यह भी मालूम की जानेकी कोशिश की जा रही है कि किस प्रकार एवं किस परिमाणमें नन्हें-नन्हें पेड़-पौधे पृथ्वीसे अपना भोजन प्राप्त करते हैं। इन प्रयोगोंसे कृषि-सम्बन्धी अनेक समस्याओंका अध्ययन करनेमें भी विशेष सहायता मिलेगी।

सदियोंसे मनुष्य अन्तर-तारीय आकाश और विशेषकर चन्द्रलोक तक उड़ान करनेके लिए लालायित रहा है। यातायातके जितने भी साधन उसको अभी तक उपलब्ध हो सके हैं, उनसे तो वह पृथ्वीके धरातलसे तनिक-सी दूरीसे अधिक जानेकी कल्पना भी नहीं कर सकता। परन्तु वैज्ञानिक लोगोंकी ऐसी धारणा है कि परमाणु-शक्तिसे संचालित राकेट जहाज इतनी गतिको प्राप्त कर लेगा कि वह पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्रकी सीमाको उलंघन करनेमें समर्थ हो सकेगा। वायुयानोंकी तरह राकेट-जहाजके संचालनके लिए हवाकी आवश्यकता नहीं होनेसे वह तो शून्य आकाशमें भी बहुत मजेसे यात्रा करनेमें अद्भुत कौशलता प्रदर्शित करेगा। जिस मनुष्यने बड़े-बड़े जहाज एवं पनडुब्बियोंका आविष्कारकर अथाह समुद्रोंका मंथन किया, जिस मनुष्यने रेलकी पटरियोंपर तीव्र गतिसे दौड़ती हुई रेलगाड़ियों द्वारा पृथ्वीके गर्भमें उथल-पुथल मचा दी, जिस मनुष्य ने विचित्र वायुयानोंका निर्माणकर आकाश चीरनेका विचित्र प्रयास किया—वही मनुष्य बहुत ही उत्सुकतासे अब उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है जब वह परमाणु-शक्ति द्वारा संचालित राकेट-जहाजमें बैठकर रोमाञ्चकारी अन्तर-तारीय जगतकी यात्रा कर अपने वर्षोंके सुनहरे स्वप्नको पूरा करनेका साहस करेगा।

वर्त्तमान यान्त्रिक युगमें पेट्रोल तथा कोयलेकी माँग दिनोंदिन अधिकाधिक होती जा रही है। अनुमान है कि वर्षभरमें आजकल हम १५० करोड़ टन कोयला एवं ५५ करोड़ टन पेट्रोल विभिन्न कार्योंके लिए शक्ति उत्पन्न करनेके हेतु काममें लाते हैं। डर है कि यदि इसी वेगसे हम पेट्रोल एवं कोयलेको खर्च करते गए तो लगभग १००० वर्षोंमें दुनियाका समस्त ईंधन समाप्त हो जायगा। परन्तु परमाणु-शक्तिके महान् आविष्कारसे भविष्यमें ईंधन-समस्याको हम बहुत-कुछ अंशोंमें सुलझा सकेंगे, ऐसी पूर्ण आशा है। यद्यपि परमाणु-शक्तिका पूरा-पूरा उपयोग करनेके लिए, समय साधना एवं अनुसन्धानकी आवश्यकता है; फिर भी वह दिन बहुत दूर नहीं जब परमाणु-शक्तिको वशमें कर मनुष्य शक्तिके इस नवीन एवं प्रभावशाली साधनसे एक महान् क्रान्तिकारी युगकी स्थापना करनेमें अद्वितीय सफलता प्राप्त करेगा।

गीत

लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर'

मैंने रूप दिया भावोंको, ओ गायक! तुम अपना स्वर दो।
तुम गाओ तो मेरे शब्दोंकी
मिट जायेगी कर्कशता,
तुम गाओ तो मेरे छन्दोंमें
आयेगी नाद - मधुरता;
हृदय - नीड़के गीत-विहगको तुम उड़नेको बलमय पर दो।
रूपहीन कल्पना, भावनाको
तूलीसे दे दी आकृति,
स्वप्न उतारा है जिसमें यह
प्रतिमा मेरे मनकी प्रतिकृति;
होगी मेरी सफल साधना, तुम इसको जीवनका वर दो।
तुम्हें बाँधनेको इन रेखाओंमें
था अनुरक्त हुआ मैं,
किन्तु स्वयं अज्ञात रूपसे
इन रंगोंमें व्यक्त हुआ मैं;
मेरे चित्रोंको निज करसे छूकर मुझको बना अमर दो।

पहचान-चिह्न

श्रीराम शर्मा

१. एक नशेबाज़को एक दिन सायंकालको बादामोंकी ज़रूरत हुई। रुपया लेकर वह पंसारीके यहाँ गया और आठ आनेके बादाम उसने खरीदने चाहे।

२. पंसारी अपनी दूकान बढ़ा रहा था और उसने गाहकको टालनेके लिए कह दिया कि उसके पास रेज़गारी नहीं है।

३. नशेबाज़ बादाम खरीदनेपर तुला हुआ था, इसलिए उसने दूकानदार से कहा, "मैं बाक़ी पैसे कल ले जाऊँगा, पर मुझे आप बादाम ज़रूर दे दें।"

४. दूकानदारको मजबूरन बादाम देने पड़े और अपनी बात रखनेके लिए उसने आठ आने पैसे उस समय नहीं लौटाए।

५. नशेबाज़के सामने समस्या यह थी कि वह उस दूकानको अगले दिन कैसे पहचानेगा।

६. इसलिए उसने इधर-उधर देखा कि कहीं कोई ऐसा चिह्न है जिससे वह उस दूकानको अगले दिन आसानीसे पहचान सके।

७. उसने देखा कि उस दूकानदार की दूकानके सामने एक साँड़ बैठा हुआ है। बस उस चिह्नको देखकर वह चला गया।

८. अगले दिन जब वह उधर आया तो साँड़की तलाश करने लगा। और साँड़को उसने बूढ़े दर्ज़ीकी दूकानके सामने बैठे देखा।

९. दर्ज़ी काफ़ी बूढ़ा था और उसके लम्बी-सफ़ेद दाढ़ी थी।

१०. नशेबाज़ने फौरन ही दर्ज़ीसे कहा, "मेरे कलके आठ आने पैसे दो!"

११. दर्ज़ीने चकित होकर पूछा, "कैसे पैसे?"

१२. नशेबाजने कहा, "भले आदमी! आठ आनेके लिए तू इतनी बेईमानी करता है! कल शामको ही तो मैंने तुझसे आठ आनेके बादाम लिए थे। तेरे पास रेज़कारी नहीं थी। मैं तुझे एक रुपया

दे गया था और कह गया था कि आज आकर दाम ले जाऊँगा। सामने साँड़ बैठा हुआ है। तेरी दूकानके सामने वह कल भी बैठा था।"

१३. भौंचक्के दर्जीने मुसकराकर कहा, "अरे भाई! साँड़ तो चलता-फिरता रहता है। मैं तो पिछले ४० वर्षसे यह काम कर रहा हूँ।"

१४. नशेबाज़ने दुखी होकर कहा, "मुझे अपने पैसोंका इतना अफ़सोस नहीं है जितना कि तेरी इस बातका कि आठ आनेकी ख़ातिर तूने रात भरमें ही अपना पेशा बदल लिया। और सबसे ताज्जुबकी बात तो यह है कि तूने रात भरमें इतनी लम्बी सफ़ेद दाढ़ी भी बढ़ा ली!"

भेड़िया और बकरी

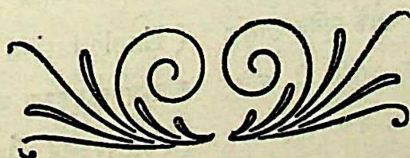
श्रीराम शर्मा

१. एक भड़िया शामको किसी बकरीकी तलाशमें गाँवकी ओर गया और अँधेरा पड़ते ही वह गाँवके पास पहुँचा।

२. एक मकानकी छतपर बकरी खड़ी थी। जैसे ही उसने भेड़िएको देखा वैसे ही वह भेड़िएको गालियाँ देने लगी।

३. भेड़िएने ऊपर देखकर कहा, "ज़रा नीचे उतरकर गाली दे तब जानूँ! तू मुझे गाली नहीं दे रही। यह छते जिसपर तू खड़ी है मुझे गाली दिला रही है।"

(यूसुफ़की कहानियों से)



गण-तन्त्रके सिद्धान्त

हरिप्रसाद अवधिया

छब्बीस जनवरी १९५० भारतीय इतिहासका सर्वश्रेष्ठ दिवस है। उसी दिन भारतने गण-तन्त्रकी स्थापना की—उसी दिनसे राज्य-सत्ता जनताके सबल हाथोंमें आई। वही दिन भारतमें गण-तन्त्रके उद्‌भवका शुभ मुहूर्त है। गण-तन्त्रकी स्थापनाके पश्चात् यह अनिवार्य हो जाता है कि प्रजाको—जनताको—यह मालूम हो जाय कि उसका राज्यमें सर्वोच्च स्थान है, उसके ही हाथोंमें अपरिमित राज्य-सत्ता है और वही अपने राष्ट्रका कर्णधार है। प्रजा ही स्वयं राजा है और स्वयं प्रजा है। शासक और शासित दोनों ही गण-तन्त्र में एक हैं और वह है जनता। गण-तन्त्रके इसी स्वरूपको अब्राहम लिंकनने इस प्रकार व्यक्त किया है, "गण-तन्त्र प्रजाका, प्रजाके लिए और प्रजाके द्वारा किया जानेवाला शासन है। (Democracy is the rule of the people, for the people and by the people) गण-तन्त्रकी यह परिभाषा हमें बताती है कि उसमें प्रजा-वर्गका प्रत्येक सदस्य स्वतन्त्र है—शासक है, किन्तु यह सिद्धान्त जहाँ सैद्धान्तिक रूपसे पूर्णतः सत्य है वहाँ यह व्यवहारमें नहीं टिक सकता। यदि व्यावहारिक रूपसे प्रत्येक व्यक्ति अपनेको शासकके मदमें डुबा दे तो गण-तन्त्रमें केवल अनर्थ ही शेष रह जाय। इसीलिए, गण-तन्त्रमें आवश्यकता होती है जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि शासकों, मन्त्रिमण्डल, प्रधान और प्रमुख मन्त्रियों तथा राज्य-प्रमुखोंकी, जो व्यवहार रूपसे शासक होते हुए भी सिद्धान्त-रूपमें जनताके सेवक ही होते हैं। यद्यपि राज्य-सत्ता मन्त्रिमण्डलके हाथोंमें केन्द्रित रहती है तथापि अन्तिम और निर्णायक रूपसे प्रजा-वर्गके प्रत्येक शासक के हाथमें राज्य-सत्ता रहती है। इस प्रकार अपने ही प्रतिनिधियोंके रूपमें प्रजा ही अपने आपपर अपने कल्याण और सुव्यवस्थाके लिए शासन करती है।

गण-तन्त्र और एक तन्त्रमें यही मौलिक अन्तर है कि जहाँ एक तन्त्रमें राज्य-सत्ता एक ही राजा या 'कुछ' व्यक्तियोंके समूहमें केन्द्रित रहती है, जो निरंकुश होकर प्रजाका खून चूसते हैं, वहाँ गण-तन्त्रमें राज्य-सत्ता जनताके ही हाथोंमें रहती है; जो अपने आपपर, अपने ही कल्याणके लिए, अपना शासन करती है और इसीलिए गण-तन्त्रमें न्याय और समान अधिकारका ही पूर्ण साम्राज्य रहता है।

गण-तन्त्रका जो अत्यन्त आकर्षक, उचित और सुन्दर स्वरूप ऊपर दर्शाया गया है उसकी व्यावहारिक सफलताके लिए इस बातकी अत्यन्त ही अधिक आवश्यकता है कि जनतामें प्रत्येक व्यक्तिका स्तर समान हो—सभी समान रूपसे अपने कर्त्तव्यों और अधिकारोंको समझनेवाले हों और इसके लिए जनताका अधिकाधिक संख्यामें शिक्षित होना अनिवार्य है। यदि जनता अशिक्षित है, उसे अपने कर्त्तव्यों और अधिकारोंका ज्ञान नहीं है और साथ ही यदि जनताके द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा मन्त्रिगणों का स्तर अशिक्षित जनताकी शिक्षा और स्तरसे ऊँचा है तो निस्सन्देह जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि शासक अपनी स्वार्थ-वृत्तिके शिकार बनेंगे और निरीह जनताका रक्त-पान करेंगे—उस जनताका खून चूसेंगे जिसके हाथमें गण-तन्त्रमें राज्यसत्ता रहती है! ऐसी परिस्थितिमें जनताके प्रतिनिधि शासक अपने कर्त्तव्योंसे मुख मोड़कर अपने स्वार्थकी पूर्ति करते हैं, अपनी पीढ़ियोंके लिए शताब्दियों तकके लिए अपना घर भर लेते हैं और गण-तन्त्र-विधानके अनुसार राज्य-सत्ताको अपने हाथोंमें रखनेवाली किन्तु अशिक्षित जनताका पूर्ण शोषण (Exploitation) होता है, उनकी वाणी और कर्मकी स्वतन्त्रताकी हत्या की जाती है, उनके हाथोंसे उनके 'मत' (Votes) छीने और खरीदे जाते हैं। तब गण-तन्त्र एक तन्त्रका रूप धारण कर लेता है। अतः गण-तन्त्रका सर्व प्रमुख सिद्धान्त यह है कि गण-तन्त्र राज्यमें राज्य-सत्ता धारण

करनेवाली जनता और उसके प्रतिनिधि शासक प्रायः एक ही स्तरपर हों और एक दूसरेको समझते हुए चलें जिससे अन्याय और निरंकुशताको प्रोत्साहन न मिल सके। यहाँ यह शंका की जा सकती है कि जब जनताका प्रत्येक व्यक्ति समान रूपसे शिक्षित होगा और जनता तथा उसके प्रतिनिधि शासक समान स्तरपर होंगे तब प्रतिनिधियोंके निर्वाचनकी आवश्यकता ही क्यों होगी ? इस शंकाके दो समाधान हैं। एक तो यह कहा जा सकता है कि ऐसी स्थितिमें जनताका प्रत्येक सदस्य स्वयं अपना प्रतिनिधि है और इसका उदाहरण हमें यूनानियों और लिच्छिवियोंके नगर-राज्य [City States] के गण-तन्त्र शासनमें पाया जाता है ; पर यह व्यवस्था एक सीमित नगर-राज्य तक ही सीमित रह सकती है। दूसरा यह कि राज्यके सीमा-विस्तारके साथ-साथ और व्यक्तिगत भिन्नता तथा शासन-शक्तिकी मात्रामें न्यूनाधिक्यके कारण प्रतिनिधि शासकों के निर्वाचनकी आवश्यकता पड़ती है ; क्योंकि विस्तृत राज्यमें कोने-कोनेमें शिक्षाका प्रचार करना कठिन है और जनताका प्रत्येक सदस्य समान स्तरपर एकाएक आ नहीं सकता और फिर राज्यमें शिक्षाका समुचित आदर्श प्रबन्ध हो जानेपर भी व्यक्तिगत असमानता रह ही जाती है जिसके कारण प्रतिनिधियोंका निर्वाचन गण-तन्त्रमें अनिवार्य है। हाँ, जनता और उसके प्रतिनिधि शासकोंके समान रूपसे शिक्षित होने और एक-दूसरेको भलीभाँति समझ सकनेके कारण प्रतिनिधि शासकोंपर जनताका पूर्ण नियन्त्रण रहता है जिससे वे निरंकुश व्यवहार नहीं कर सकते और प्रजाका शोषण एकदम बन्द हो सकता है। दूसरे शब्दोंमें गण-तन्त्र राज्यमें प्रजा और उसके प्रतिनिधि शासक यदि समान स्तरपर हैं तो गण-तन्त्रके दोषोंका निवारण होकर गणतन्त्रका आदर्श रूप निखर सकता है। आज हमारे देशके गण-तन्त्र राज्यमें इस बातकी अनिवार्य आवश्यकता है कि प्रजाके शोषण, निरंकुशताकी वृद्धि और जनतामें तेजीसे फैलते हुए असंतोषका निवारण करनेके लिए जनताकी शिक्षा*का गाँव-गाँवमें और नगर-नगरमें समुचित व्यवस्था शीघ्रातिशीघ्र कर दी जाय।

* शिक्षासे तात्पर्य साक्षरता नहीं है। —सं०

गण-तंत्र राज्यमें जब जनता शिक्षित हो जायगी तब उसे अपने कर्त्तव्यों और अधिकारोंका पूर्ण और उचित ज्ञान हो जायगा। जनताके प्रतिनिधि भी इस बातका अनुभव कर सकेंगे कि शिक्षित जनताके ऊपर यदि हम किसी भी प्रकारका अत्याचार करेंगे तो जनता हमें कान पकड़कर उस सिंहासनसे उतार देगी जिसपर हमें उसने बैठाया है। हमारे पुराणोंमें वेणुका उदाहरण मिलता है जिसके अत्याचारसे क्रुद्ध होकर प्रजा-हितैषियोंने उसे विनाश कर डाला था। प्रजाके शिक्षित होनेसे उनके प्रतिनिधि शासकोंकी नीति स्पष्ट हो जायगी और प्रतिनिधि शासक अथवा मन्त्रिमण्डल शासनके मदमें एक क्षण भी मद होश नहीं रह सकेंगे। निर्वाचनके समय वे गुण्डागीरी का प्रयोग कर ही नहीं सकेंगे, जनताके हाथोंसे 'वोट' नहीं छीन सकेंगे, अवकाश या अवसानके समय सील-ताले नहीं तोड़ सकेंगे, सफ़ेद झूठको सत्यताका नकली बाना नहीं पहना सकेंगे। तात्पर्य यह कि निर्वाचनके भयंकर दोष भी गण-तन्त्र शासनके क्षेत्रसे दूर हो जायँगे। शिक्षित जनता यह समझ लेगी कि हमारे 'मत' अमूल्य हैं और स्वतन्त्र रूपसे मत-दानकर अपना प्रतिनिधि निर्वाचित कर सकते हैं। तब पोलिंग आफिसर और अन्य कर्मचारी भी यह महसूस करने लग जायँगे कि हमने निर्वाचनमें अन्यायसे काम लेनेका थोड़ा भी प्रयत्न मात्र भी किया तो जनता—राज्य-सत्ता धारण करनेवाली जनता—हमारा विनाश कर देगी।

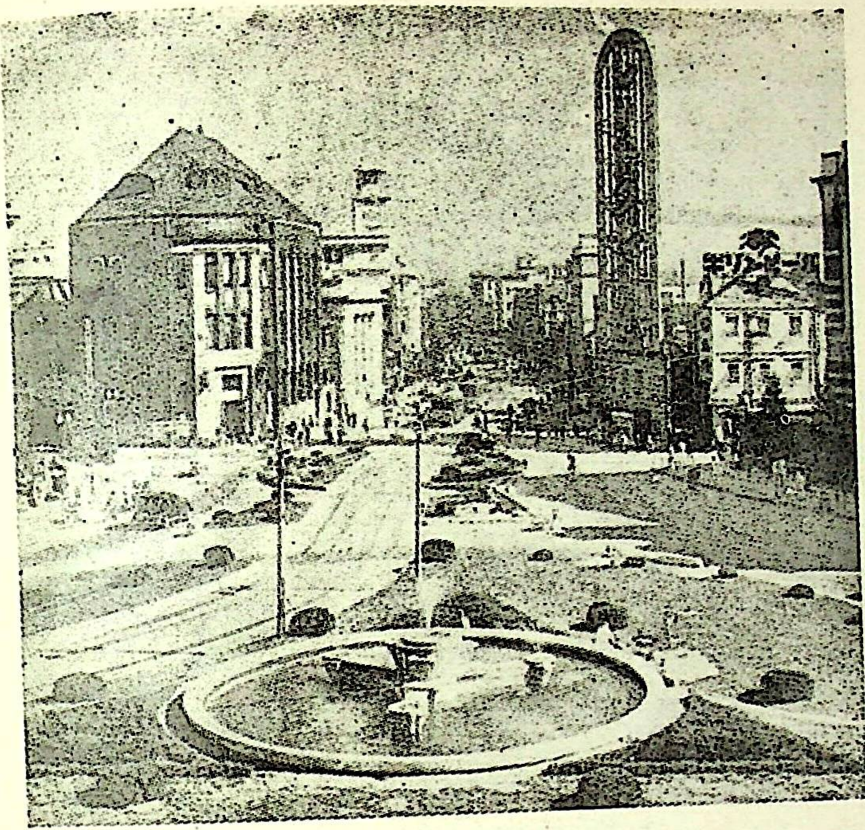
गण-तंत्रमें प्रतिनिधि बननेके इच्छुक व्यक्तियोंमें त्यागका होना अनिवार्य है। जो व्यक्ति त्यागी नहीं है वह अपनी स्वार्थ-वृत्तिकी पूर्तिके लिए नीचातिनीच कुकर्म करनेसे भी नहीं चूक सकता। त्यागी व्यक्ति ही, प्रतिनिधि-पदके अभिलाषी हों केवल जन-हित करनेके लिए ही, तभी तो गण-तंत्र सफल हो सकता है अन्यथा कदापि नहीं ! त्यागका रूप और महत्त्व भी प्रतिनिधित्व करनेके अभिलाषी व्यक्तियोंको पूर्णरूपसे मालूम होना चाहिए। त्यागका अर्थ केवल 'त्याग' ही है जिसमें आसक्ति और स्वार्थको आदिसे अन्त तक अणु मात्र भी स्थान प्राप्त नहीं हो सकता। त्यागी व्यक्ति यदि यह सोचे कि पहले तो खूब त्याग कर लूँ और फिर त्यागके बलपर प्रतिनिधित्व

प्राप्तकर अपने स्वार्थकी पूर्ति करूँ और अपना घर भरूँ तो वह व्यक्ति नीचताका अवतार है और वह अपनी आत्मा और जनताको धोखा देता है। जिस प्रकार सैकड़ों मन दूधमें जहरकी एक बूँद भी डाल दी जाय तो वह दूध विषैला होकर प्राण घातक बन जाता है उसी प्रकार त्यागमें स्वार्थ-पूर्तिका एक भी कर्म त्यागको समूल नष्ट कर देता है। गण-तन्त्र-शासन-विधानमें प्रतिनिधि शासकोंको त्यागको ही अपना मुख्य उद्देश्य निश्चित कर लेना चाहिए, तभी गण-तन्त्र सफल हो सकता है। त्यागका तात्पर्य यह भी नहीं है कि प्रति-निधि शासक अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति भी न करें। अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए उन्हें अवश्य ही राज्य-कोषसे वेतन दिया जाता है। त्यागका अर्थ स्पष्टतः इतना ही है कि प्रतिनिधि-शासक अपने वेतन द्वारा ही अपनी-अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हुए राज्यकी सम्पत्तिको जनताकी धरोहर समझकर उसकी रक्षा और जनताके उपकारके लिए सदुपयोग करें न कि अपनी भावी पीढ़ियोंके लिए शताब्दियों न समाप्त होनेवाली धन-राशिसे अपना घर भर लें। गण-तन्त्र की सफलताका सिद्धान्त ही है कि प्रतिधित्व करनेवाले व्यक्ति सदैव अपने कार्य-कालके प्रत्येक क्षणमें त्यागको ही सर्वोच्च स्थान दें और यह अनुभव करते रहें कि त्याग ही त्यागकी विधि है—उसका अमूल्य मूल्य है। त्यागी व्यक्तिके पास अनासक्ति अनिवार्य रूपसे आ ही जाती है। तब वह अन्याय और निरंकुशताके पंजेमें नहीं पड़ता और अपनी स्पष्टवादिता, स्पष्ट नीति और त्याग-बलसे जन-प्रिय बन जाता है। उसके त्यागके बलपर ही गण-तन्त्र राज्यमें सफलता और केवल सफलता ही मिलती है। त्यागसे विभूषित प्रतिनिधिके पास लोभ फटकने तक नहीं पाता और वह जनताकी सम्पत्तिसे उसकी प्रत्येक सुविधाका प्रबन्ध करता है।

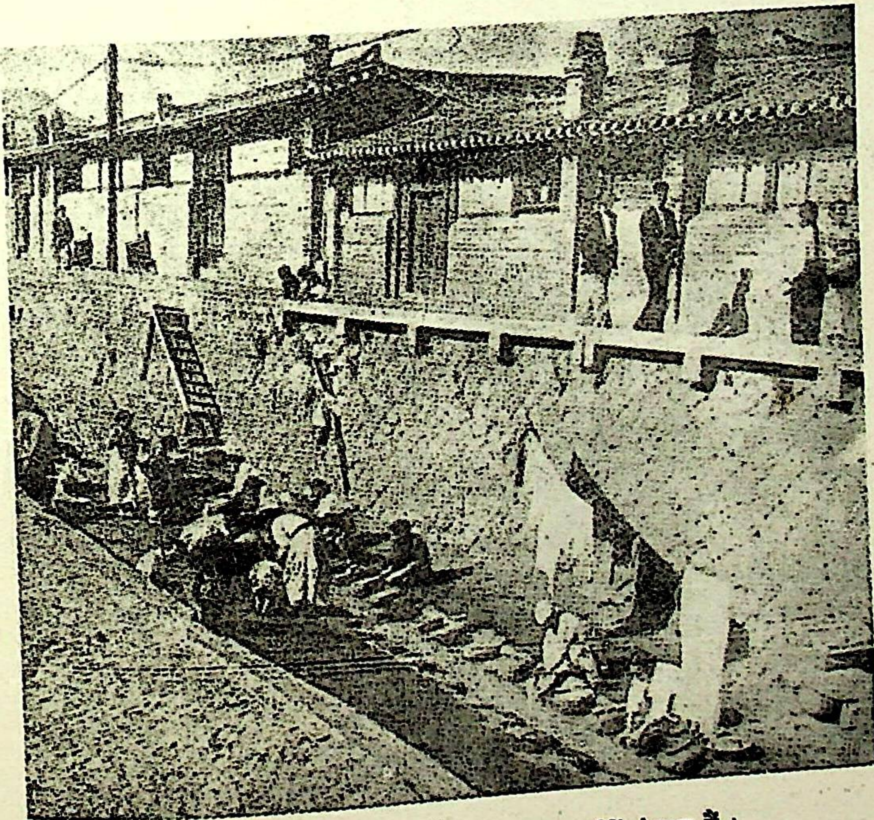
त्यागका दूसरा पहलू यह है कि राज्य-सिंहासन या 'कुर्सी' का मोह जनताके प्रतिनिधिको कदापि नहीं होना चाहिए। जबतक किसी प्रतिनिधिको जनताका प्रेम और योग प्राप्त है—जबतक वह जन-प्रिय है—तभी तक उसे जनता की सेवा करते हुए कुर्सीको अपनाये रहना चाहिए और यह सम्भव है कि जबतक कोई व्यक्ति-विशेष यथार्थ रूपमें जन-सेवा करता है तबतक जनता उसे प्रायः प्रत्येक निर्वाचनमें अपना प्रतिनिधि चुनेगी ही। जिस दिन कोई भी प्रतिनिधि अपने जन-विरोधी कार्योंसे जनताके प्रेम और सहयोगसे हाथ धो बैठे उसी दिन उसे अपने पदका त्याग अवश्य ही कर देना चाहिए। जब जनताके प्रेम और सहयोगसे वंचित होकर भी कोई व्यक्ति पदका मोह नहीं छोड़ता तब वह गुंडेशाहीसे जनता की आँखोंमें धूल झोंककर पूँजीके बल और दुरुपयोगसे 'येन केन प्रकारेण' जनताका प्रतिनिधि बन बैठता है और इस भाँति वह गण-तन्त्रका गला घोंट देता है। अतः गण-तन्त्रमें प्रतिनिधित्वकी उत्कृष्ट अभिलाषा रखनेवालोंको पद-लोलुप कदापि नहीं होना चाहिए—यही उसके महान् त्यागका स्वरूप है। हमारे भारतीय गण-तन्त्रमें इसका अत्यन्त ही सुन्दर उदाहरण भरतके त्यागमें पाया जाता है। भरत जानते थे कि उनकी अपेक्षा रामको अधिक जन-प्रियता प्राप्त है। इसी-लिए तो उन्होंने राज्य-सिंहासनका मोह नहीं किया और जनता के प्रतिनिधित्वके स्थानपर रामकी चरण-पादुका प्रतिनिधित्व करते रहे। हमारे आजके भारतीयोंमें त्यागकी प्रवृत्ति कहाँ तक है यह तो एक साधारण म्युनिसिपैलिटीके निर्वाचनसे ही जनताको ज्ञात हो सकता है जिसमें गुण्डेशाहीका नंगा नाच होता है। त्यागके अभावमें भारतीय गण-तन्त्र सदैव असफल ही रहेगा।

त्यागका एक स्वरूप यह भी है कि सत्ताधारीमें किसी भी प्रकारका ममत्व न हो। उसे केवल न्याय-प्रिय ही होना चाहिए। राज्य-सञ्चालनके लिए वह मोह और स्वार्थ-वश अपने ही अयोग्य सम्बन्धियों और जातिवालोंको ऊँचे-नीचे पदोंमें नियुक्त करनेवाला सत्ताधारी प्रतिनिधि राष्ट्रके साथ खिलवाड़ करता है और राष्ट्रकी उन्नतिकी जड़ काटता है। दुर्भाग्यसे भारतवर्षमें जाति-प्रथाका भूत अभीतक विद्यमान है।* इसलिए नेताओं तथा सत्ताधारियोंको अत्यन्त ही साव-धानीसे काम लेना चाहिए और अपने ही निकम्मे रिश्तेदारों और जातिवालोंको योग्य व्यक्तियोंकी उपेक्षा करते हुए कदापि

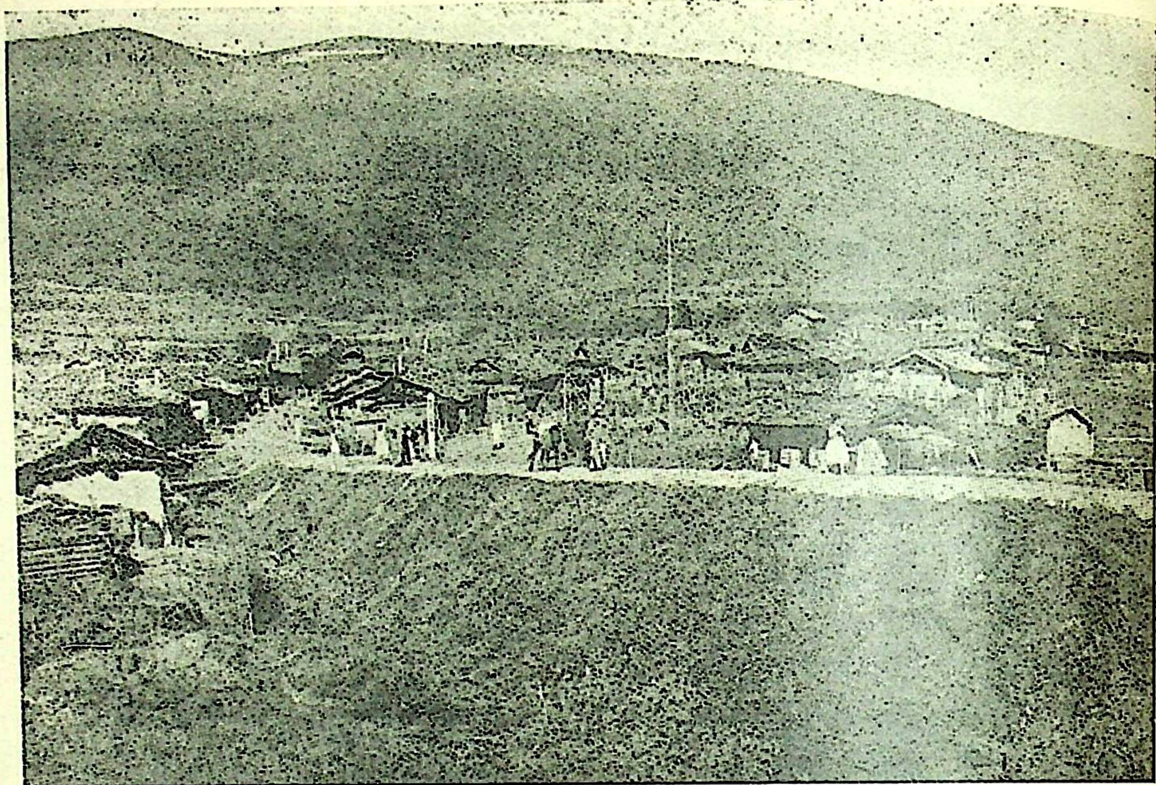
* विद्यमान ही नहीं वरन् उसका रूप उग्रतम हो गया है।—सं०



सियोल, दक्षिण कोरियाकी राजधानी ।



सियोलकी एक सड़क ; स्त्रियाँ वस्त्रोंकी सफाईमें संलग्न हैं ।



उत्तर कोरियाके पहाड़ी जिलोंका एक ग्राम।

उत्तर कोरियामें नोजिदो : एक किसान कार्य-व्यस्त है और एक पार्टी शिकार खेलनेके लिए जाना चाहती है।

राज्य-संचालनमें नियुक्त नहीं करना चाहिए। तभी भारतीय गण-तन्त्र सफल तथा विश्वके लिए आदर्श हो सकेगा।

किसीका प्रतिनिधित्व करना उसकी सेवा करना ही है। सेवा-वृत्ति एक महान् सत्कर्म है। जनताका प्रतिनिधित्व करना जन-सेवाके सिद्धान्तपर ही निर्धारित है। सेवा आत्म-सन्तोष देनेवाला पुण्य कर्म है। जनता-द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि को सेवाकी मूर्त्ति होना चाहिए। अतः गण-तन्त्रका महान् महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है 'सेवा-वृत्ति'। सेवा-वृत्तिमें भेद-भाव को स्थान देना राष्ट्रके माथेपर कलंकका टीका लगाना है। सेवा समान रूपसे की जानी चाहिए जिससे जनताको समान रूपसे लाभ पहुँचे। यदि सेवा-वृत्तिके नामसे एक से कुछ और दूसरेसे कुछ व्यवहार किया जाता है तो सेवा सेवा नहीं रह जाती और वह कपटका रूप धारण कर लेती है। सेवा करनेके लिए जनताके प्रतिनिधि शासकोंके विशाल हृदयमें एक धनहीन निस्सहाय व्यक्तिके लिए उतना ही स्थान और तत्परता होनी चाहिए जितनी एक धनपतिकी सेवाके लिए हो। यदि जनता का प्रतिनिधि शासक धनपतिकी सेवा 'विशेष रूप'से करता है और एक निरीह व्यक्तिकी उपेक्षा करता है तो वह गण-तन्त्रका घातक शत्रु है। भारतीय गण-तन्त्रमें भारतके प्राण—कृषक और श्रमजीवी—कितने सुखी हैं इसपर लेखनी चलाना ही निरर्थक है। कृषक तथा नागरिक समस्याओंकी उलझनमें पड़े हुए हैं। अस्तु, सेवा-वृत्तिसे विभूषित प्रतिनिधियोंके द्वारा ही गणतन्त्र सफल हो सकता है।

गण-तन्त्रमें कार्य-प्रणाली भी निश्चित सिद्धान्तोंके अनुसार ही होती है। मन्त्रिमण्डलकी कार्यावलियाँ—दूसरे शब्दोंमें शासकोंकी पूर्ण शासन नीति—प्रकाशित होती रहे जिससे जनता अपने शासनके विषयमें अज्ञान न रह सके। यही कारण है कि गण-तन्त्रमें 'प्रेस'को सर्वोच्च स्थान तथा सर्वाधिक शक्ति प्राप्त रहती है। गण-तन्त्रमें यह अनिवार्य है कि जनता अपने ही द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियोंके कार्य-कलापोंकी अनुशासन तथा कर्तव्यकी परिधिके भीतर तीव्रतम तथा कटु आलोचना कर सके, जिसके परिणाम-स्वरूप प्रतिनिधिगण जन-सेवामें ही तत्पर रहें तथा जनताकी आँखमें धूल न झोंक सकें। जनताको इस प्रकार वाणी तथा विचारकी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है और जिस गण-तन्त्रमें जनता, वाणी और विचारकी स्वतन्त्रतासे वंचित कर दी जाती है वह गण-तन्त्र दासतासे भी गया बीता है।

गण-तन्त्रकी स्थापना सहज है; किन्तु उसकी सफलता तब तक केवल स्वप्न-लोककी वस्तु है जब तक गण-तन्त्रके सिद्धान्तोंके अनुसार राज्य-संचालन न हो। उपर्युक्त विवेचनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि गण-तन्त्रके निम्नांकित सिद्धान्त हैं :—

(अ) जनता-सम्बन्धी :—

(१) जन-समुदाय समष्टि रूपमें पूर्णतया शिक्षित कर दी जाय, जिससे वह अपने 'मत'की शक्ति समझकर उसका सब भाँतिसे सदुपयोग कर सके और अपनी राज्य-सत्ताकी रक्षा कर सके।

(२) जनताको वाणी तथा कर्म और विचारकी पूर्ण स्वतन्त्रता अनुशासनके अन्तर्गत प्राप्त हो, जिससे वह अपने प्रतिनिधियोंके कार्योंकी तीव्र आलोचनाकर शासनपर नियंत्रण कर सके।

(३) जनता जाग्रत हो, जिससे वह विशेष रूपसे निर्वाचन-कालमें गुण्डागिरीका शिकार न हो सके, अपने 'वोट' को क्रय न करे तथा योग्य प्रतिनिधियोंको ही सरलता तथा न्यायपूर्वक निर्वाचित कर सके।

(ब) प्रतिनिधियोंके विषयमें :—

[१] प्रतिनिधियोंका सर्वोच्च गुण त्याग हो जिससे :—

i वे पदका मोह न रखें और जन-प्रियतापर ही अपने आपको निर्भर रखें।

ii अपने ही रिश्तेदारों तथा जातिवालोंको राज्यके विभिन्न पदोंपर नियुक्तकर राज्य-संचालनको दुर्बल न कर दें।

iii स्वार्थ-वश देशको लूट न लें।

[२] प्रतिनिधित्वके इच्छुक व्यक्ति सेवा-व्रतधारी हों।

[३] प्रतिनिधि शासक न्याय-प्रिय हों जिससे सामान्य रूपसे निष्पक्ष रहें और विशेष रूपसे निर्वाचन-कालमें गुण्डेशाही जैसी नीचतापर कमर न कस लें।

(स) कार्य-प्रणाली-सम्बन्धी :—

(१) प्रेसको सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो जिससे जनता अपने प्रतिनिधि शासकों से अनभिज्ञ न रह सके।

(२) समस्या-मूलक कार्यों तथा धाराओंमें जन-सम्मति आमन्त्रित की जाय और उसकी उपेक्षा कदापि न की जाय।

(३) जनताके हितार्थ उसके मौलिक अधिकारोंकी रक्षा करते हुए उसकी उन्नति तथा प्रगतिके लिए ही शासन हो।

सम्मेलनका एक प्रकाशन

प्रभुदयाल अग्निहोत्री

एक दिन मेरे एक मद्रासी विद्यार्थी हिन्दीका एक कहानी-संग्रह लेकर आये। संग्रहकी एक मनोवैज्ञानिक कहानी उनकी समझमें ठीक-ठीक उतर न रही थी। अतः उक्त कहानी को आद्योपान्त पढ़कर उसका रहस्य हृदयंगम करा देनेका उनका अनुरोध मुझे मान लेना पड़ा। रातको जो पुस्तक लेकर बैठा तो सर्वप्रथम सम्पादकसे परिचय प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। कम्पनीका लेबिल देखकर ही न चीजोंका मूल्य आँका जाता है? देखा संकलनकर्ता हिन्दीके एक परिचित लेखक हैं और प्रकाशक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन। सोचा, संग्रह अवश्य कामका होगा। कहानियोंका विशेष प्रेमी न होनेपर भी मैं चावसे पुस्तकके पन्ने उलटने लगा।

प्रारम्भिक वक्तव्यसे, जिसे औपलाक्षणिक अर्थमें 'दो शब्द' नाम दिया गया है, पता चला कि यह संग्रह 'आधुनिक कालके कथा-साहित्यपर प्रकाश डालते हुए भी लेखकोंकी कहानी-कलाका प्रतिनिधि बनानेके उद्देश्यसे तैयार किया गया है'। यह 'भी' कुछ खटका, क्योंकि परस्पर विरोध या साधारण असंगति न होनेके कारण दोनों लक्ष्य बिना 'भी' का पलस्तर चढ़ाये भी आसानीसे जुड़ सकते थे। नीचे जो दृष्टि गयी तो देखा, साहित्य-मन्त्री महोदयके हस्ताक्षरोंके बायीं ओर छपा है, 'जुबली वीक, १९३७'। जुबली वीकका तात्पर्य समझमें न आया। यह जुबली वीक किसका? सम्मेलनका? नहीं, तब तो जयन्ती-सप्ताह होता। सौर संवत्के अनुसार तिथियोंका प्रयोग करनेवाले सम्मेलनके मन्त्री, नहीं-नहीं, साहित्य (!) मन्त्रीकी मँजी लेखनीसे यह 'वीक' शब्द कदापि न निकलता। तब? इस प्रश्नपर माथापच्ची न कर मैंने पाठ्य वस्तुकी ओर बढ़ना ही उचित समझा।

संकलनकर्ता महोदयने आरम्भिक भूमिकामें स्पष्ट कर दिया है कि 'यह संग्रह करते समय (उन्होंने) प्राइवेट तौरसे अध्ययन करके परीक्षामें बैठनेवाले विद्यार्थियोंकी आवश्यकता योग्यतापर ध्यान रखा है।' आपने आवश्यकता और योग्यताका पूर्ण सामंजस्य स्थापित करनेके लिये दोनोंके बीचमें किसी संयोजक शब्द अथवा चिह्नका प्रयोग न करना ही अधिक अच्छा समझा। आपने पाठकोंको उपदेश देते हुए कहा है, 'साहित्यके विद्यार्थी होनेके नाते उन्हें दो बातें जाननी और आवश्यक हैं। एक तो यह कि वे लेखकके उत्तमोत्तम वाक्यों, अंशोंका अर्थ समझ सकें। दूसरे यह कि वह उसकी आलोचना कर सकें।' इस वाक्यमें 'अंशों' का सम्बन्ध स्पष्ट न हुआ। सविभक्ति 'वाक्य'का अन्वय अंशोंके साथ हो नहीं सकता। वाक्यके पूर्वार्धमें छात्रोंके सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'वे' का प्रयोग कर उत्तरार्धमें उसीके लिये किये हुए 'वह' प्रयोगका रहस्य भी रहस्य ही रह गया। 'उसकी'का प्रयोग किस संज्ञाके लिये हुआ? वाक्यों और अंशोंके लिये तो स्यात् न होगा अन्यथा वचन-भेद क्यों होता?

इसके पश्चात् साहित्य-जिज्ञासु विद्यार्थियोंको बहुमूल्य उपदेश देते हुए आपने कहा है कि 'तुलनात्मक आलोचनाके लिये दो लेखकोंकी रचनाके गुण-दोषको मिलान करना चाहिये।' इस 'को'के प्रयोगने मेरी बची-खुची श्रद्धापर सन्दिग्धताकी मुहर लगा दी और मैंने भारती मन्दिरकी प्रस्तुत अठारह

देवकृतियोंकी विडम्बनाका पाप सहनकर इन महादेवेश्वरकी विभूतिका पुण्यलाभ करना ही रुचिरतर समझा। आगे बढ़ते ही पद-पदपर विकृताकृतियोंके पौनःपुनिक दर्शनने कान खड़े कर दिये। मैं इसके लिये प्रस्तुत भी था। समस्त कृतिके मन्थनसे जो अमूल्य रत्न प्राप्त हुए उनमें कुछ उदाहरणस्वरूप उपस्थित करनेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सका हूँ। देखिये :—

'इस सर्वतोमुख प्रतिभावाले विद्वानका जन्म...हुआ था। आपने सर्वतोमुखी प्रतिभाका परिचय दिया।' (प्रथम पृष्ठ)। एक ही शब्दमें जहल्लिङ्ग और अजहल्लिङ्ग विशेषणके कैसे सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं!

'उस कहानीकी विशेषता यह है कि लेखकने एक संकीर्ण कहानीमें मनुष्यके भावोंका अच्छा दिग्दर्शन कराया है।' पृष्ठ २। 'उस' अंगुल्यानिर्दिष्ट कहानीके लिये प्रयुक्त हुआ है।

'कहानीमें हमें यह देखना रहता है कि उसे पढ़कर हमारे ऊपर वही प्रभाव पड़ता है या नहीं जिसका उस लेखकके मनमें थी—अथवा यदि लेखक अपनी कल्पना द्वारा पुरुष वातारणका हमें वैसा ही अनुभव करा सका जैसा उसने किया था तो यह मानना पड़ेगा कि उसने अपनी भाषा और कला द्वारा अपने उद्देश्यमें सफल मनोरथ हुआ।' पृष्ठ २। टीका व्यर्थ है।

'श्री प्रेमचन्दका पूरा नाम धनपतराय था। आप विश्व-विद्यालयके बी० ए० हैं।' पृष्ठ २६। यह 'हैं' और 'था'का मधुर रोमांचकर सम्मिलन देखिये। सम्भवतः लेखक महोदय किन्हीं दूसरी बी० ए० पैदा करनेवाली फैक्टरियोंसे परिचित हों।

'बहुतेरे लोग दिल्लीको ही इनका जन्म-स्थान होनेकी भूल कर बैठते हैं।' पृष्ठ ११७। होनेकी भूल अथवा माननेकी?

'स्वाभाविकताकी सीमा पार कर डाली है।' पृष्ठ १६६। 'अति स्वाभाविक है'के अर्थमें प्रकृत वाक्य प्रयुक्त हुआ है।

'जो अपने लेखोंसे लेखकोंको और कविताओंसे कवियोंको आह्लादित किया करते हैं उसीकी लोग मुक्तकण्ठसे प्रशंसा किया करते हैं।' पृष्ठ २१५। लेखक महोदयकी रायमें लेखोंसे लेखक और कविताओंसे कवि ही आह्लादित हो सकते हैं। 'उसी'का एकत्व भी ध्यान देने योग्य है।

लेखक महोदयने स्वयं अपने विषयमें लिखा है, 'आप आदिसे ही उद्यमशील रहे और परिश्रम करके ही आपने एम० ए० पास किया। विनोद आपकी ईश्वरदत्त गुण है।' पृष्ठ २४७। समझा आपने? बिना परिश्रमके ही एम० ए० पास करनेवाला व्यक्ति इतनी चुस्त भाषा लिख भी कैसे सकता था? 'आपकी गुण' सराहनीय है।

'आपने हिन्दीमें सर्वप्रथम शब्द-चित्रोंका प्रवेश किया है। पृष्ठ २४७। प्रवेशकर्त्ता कौन है? आप या शब्द-चित्र? कहीं 'प्रयोग'का स्थान 'प्रवेश'ने तो नहीं ले लिया?

'इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी-साहित्यकी प्रगतिका नियन्त्रण व संचालन।' पृष्ठ २४८। यह प्रगतिका संचालन का खूब रहा! डबल मार्च!

'इस संघका एक मुख्य पत्र लेखक भी है? पृष्ठ २४८। और कौन सा है?

'अबतक आप सैकड़ों कहानियाँ लिख डाली हैं।' पृष्ठ २८४। शायद प्रेसकी भूल हो?

'कानपुरमें वकालत आरम्भ किया।' पृष्ठ ३८१। खैर वकालतको पुरुषत्व तो मिला।

'आपने कहानी लिखनी शुरू की।' पृष्ठ ३५७। कहानीकी तुक तो मिलनी चाहिए।

ये तो हुए व्याकरणकी भद्दी भूलोंके थोड़े से नमूने। अब प्रतिपादन शैलीके एकाध नमूने देखिये :—

'आपकी रचनाओंमें हमारे जीवन, कल्पना, दर्शन और संस्कृतिकी अच्छी व्याख्या रहती है। आप सदा भारतीय आदर्श उपस्थिति करनेका प्रयत्न करते थे। आपकी रचनाओंसे पता चलता है कि आप राष्ट्रीय भावोंके पोषक थे।' पृष्ठ २७। यह श्री प्रेमचन्दकी आलोचना है। कितने गठे वाक्य हैं। खैर राष्ट्रिय भावोंके पोषक मान लिये गये, यह क्या कम है!

'आपकी भाषा तत्समकी ओर अधिक झुकती है। आप हृदयके सूक्ष्म भावोंका चित्रण बड़ी कुशलतासे करते हैं। उनका सम्बन्ध किसी सामयिक घटनासे न होकर मानव-हृदयके रागोंसे होता है।' पृष्ठ ५०। तत्सम संज्ञा है या विशेषण? अन्तिम वाक्यका क्या अभिप्राय है?

'तदनन्तर हिन्दी-साहित्य-सागरमें कूद पड़े।' पृष्ठ ८१। परमेश्वर मङ्गल करे।

'आपकी कहानियाँ भावपूर्ण होती हैं। उनमें प्रायः कथोपकथन होते हुए भी वे अपने पात्रोंका चरित्र-चित्रण वर्णनात्मक रीति द्वारा ही करते हैं। वे कलाकारके निरीक्षणका प्रत्यक्षीकरण करते हैं। पृ० ८१। कथोपकथन या कथनोपकथन ? 'करते हैं' कौन ? वाक्योंका गठन कैसा सुन्दर है ! कैसा स्पष्ट और कैसा शुद्ध !

'हिन्दीमें ऐसी बहती हुई शैली शायद ही अन्य किसी कहानी लेखकने पायी हो।' पृष्ठ ११७। यह बहती हुई शैली कैसी आकर्षक है !

'उनकी विशेषता यह है कि वे अत्यधिक स्वाभाविक—फलतः रोचक और तदनुसार कहानीको तीव्रतासे चलानेवाले हुआ करते हैं।' किसके अनुसार ?

'जैनेन्द्रजीने कहानीमें अतिरिक्त उपन्यास भी लिखे हैं।' पृ० ११८।

'कौशिकजीकी भाषा चलती हुई ही मिलेगी। सरल शब्द और उनका सरलतम विन्यास यही आपकी विभूति है।'

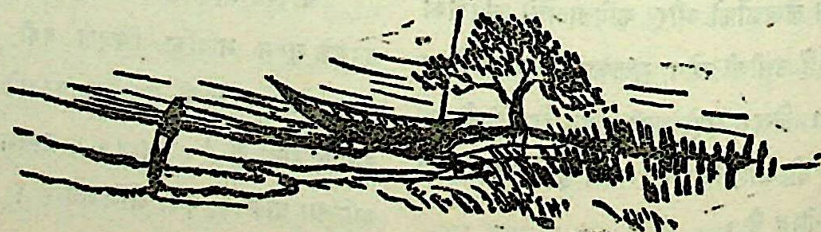
'आप हैं तो वैद्य पर आप एक साहित्य-सेवी हैं। आपकी कहानियोंमें प्रौढ़ता पाई जाती है।' देखा आपने 'विरोधाभास' का दृष्टान्त और प्रौढ़ताका प्रमाण-पत्र ?

'आप (अज्ञेय) का पूरा नाम श्री वात्स्यायन है।'

इन परिचयोंसे लेखकोंकी योग्यता, शैली या साहित्य-सेवापर तो प्रकाश पड़ता नहीं, उलटे उनमेंसे बहुतोंके विषयमें भ्रान्त धारणा बनती है। 'आपकी शैली भावुकतापूर्ण है', 'आपकी शैलीमें प्रौढ़ता है', 'आपकी कहानियोंमें कथोपकथन (कथनोपकथन नहीं) है' आदि तीन-चार वाक्य प्रायः कहानीकारोंकी स्तुतिमें यथेच्छ दोहराये गये हैं। किसी-किसी लेखककी अन्य रचनाओंके भी नाम दिये गये हैं पर वे अपूर्ण हैं। कहीं-कहीं तो बहुत भद्दी तात्विक भूलें हैं। जैसे श्री गोविन्दवल्लभ पन्तका जन्म संवत् १९५६ लिखकर लिखा है कि 'अभी आपकी आयु लगभग ३० वर्षकी होगी पर प्रतिभा असाधारण है। वास्तवमें उक्त संवत्के अनुसार पुस्तक-प्रकाशनके समय उनकी आयु ३६ वर्षसे कम न होनी चाहिये।

एक बात और भी। सम्पादक महोदयकी आत्म-स्तुतिका ढंग प्रशंसनीय है। आपने जहाँ अज्ञेय, वाचस्पति पाठक, भगवतीचरण वर्मा, विनोदशंकर व्यास और सद्गुरुशरण अवस्थीका परिचय आठ, दस-दस पंक्तियोंमें चलता कर दिया वहाँ अपने लिये पूरा डेढ़ पृष्ठ 'रिज़र्व' रखा। 'फाँसीके वकील' महोदयपर तो आप इतने रीझ गये कि अन्य ऊँचे कलाकारोंके ग्रन्थोंका जिक्र तक करनेका अवकाश भी न मिला। बादरायण सम्बन्धका पालन करते हुए उक्त वकील श्री वर्माजी की और नहीं तो संगृहीत कहानीकी आलोचनासे ही पृष्ठ भर दिए।

यह है साहित्यके विद्यार्थियोंके उद्धारके लिये तैयार की गयी पुस्तकका हाल। संगृहीत कहानियोंके गुण-दोषों तथा संचयनकी त्रुटियोंकी ओर मैंने दृष्टिपात नहीं किया। सरसरी निगाहसे देखनेपर केवल परिचय-पृष्ठोंमें जो भूलें मुझे मालूम हुईं उन्हें मैंने नोट कर लिया और वे ही आपके समक्ष रख दी हैं। यहाँ मैंने उन प्रेसकी भूलोंकी ओर भी संकेत नहीं किया है जिनसे यह पुस्तक भरी पड़ी है। आश्चर्य तो यह है कि यह पुस्तक गत कई वर्षोंसे विशारदके कोर्समें पढ़ायी जा रही है। मैं नहीं कह सकता कि सम्मेलन द्वारा प्रकाशित अन्य पुस्तकोंका क्या हाल होगा। इच्छा तो थी उन्हें देखनेकी पर अवकाश नहीं। हाँ, इतना मैं अवश्य जानता हूँ कि जबतक ये अन्धेकी रेवड़ियाँ बँटती रहेंगी तबतक इससे अधिक अच्छे फलकी आशा नहीं की जा सकती।



खपरैलकी बात

भुवनेश्वरप्रसाद पाण्डेय

जीवनमें एक ही प्रकारकी घटनाएँ कई बार घटती हैं ; किन्तु उनमें से कोई विशेष जीवनकी गतिमें अवरोध उत्पन्न कर देती है। उसमें एक मोड़ आ जाता है, उसका प्रवाह दूसरी दिशामें हो जाता है।

यों तो मेरा वक्ष, कितने ही वर्षोंसे, बन्दरोंका क्रीड़ास्थल रहा है ; पर आजसे ठीक एक मास पहले, जब मर्कटोंके पदाघातसे मेरा हृदय चूर-चूर हो गया और मेरे शरणार्थी मेरे सतत उपकार तथा जरा-जन्य विवशताका कुछ ध्यान न कर, मेरे रूपका अनुकरण करनेवाली, कृत्रिम आभासे मण्डित टीन की चादरोंसे आकर्षित हो, मुझसे छुटकारा पानेकी सोचने लगे तब मैं भी सोचमें पड़ गई। नगरोंकी कितनी बहिनोंके दिन बिगड़ते मैंने देखे हैं। यद्यपि यहाँ मैं जानती हूँ, कि जब तक चोरबाजारके किसी काले कोनेमें इन टीनोंकी कर्कशता दबी हुई है, मेरी सत्तापर उँगली उठानेका साहस कोई नहीं कर सकता। फिर भी जीवनकी अनिश्चितता मुझे घुलाए जा रही है। इसी शोक-तापसे मैं काली होती जा रही हूँ। मेरी छाती बैठती जाती है।

यह बात नहीं कि मुझे मृत्युसे भय लगता है। सच पूछो तो मरनेसे डरता कोई नहीं ; परन्तु जैसा विद्वानोंका कहना है, लोग मरना इसलिए नहीं चाहते कि जीना उन्हें अच्छा लगता है। हाँ तो, मैं मरनेसे नहीं डरती। मैं मिट्टीकी बनी हूँ और मिट्टीमें मिल जाऊँगी। मेरे रूपमें लावण्य है ; मेरे शरीरमें वर्षा, आतप, वातसे त्राण देनेकी क्षमता है ; मेरी जातिको उपयोगिताका पाठ पढ़ाया गया है किन्तु मैंने अपनेको मिट्टीसे ऊपरकी चीज कभी नहीं समझा।

आजसे बीस वर्ष पूर्व दूरके एक गाँवकी तलैयासे मैं निकाली गई। उस समय ऐसा लगा कि इस सूखी तलैयाके, जो इसी प्रकार अपने हृत्पिण्ड दे-देकर इस विकृत अवस्थाको पहुँची है, हृदयमें मैंने एक घाव और कर दिया। मुझे कुछ क्षोभ हुआ अपने वंशपर, अपने जन्मपर, अपनी असहाय क्षुद्रतापर। सम्भव था कि इस क्षोभको स्थायित्व मिलता और मेरी प्रगति में बाधा पड़ती ; किन्तु जब मुझे बताया गया कि जगज्जननी सीताका जन्म भी तो पृथ्वीके गर्भसे हुआ था तो मैंने सन्तोष की साँस ली। मुझे भी अपने जन्मकी उपकारितामें विश्वास हो गया और यही विश्वास मेरे जीवनमें गति, मेरी स्नायुओंमें दृढ़ता देता रहा है। मैं पद-दलित की गई, तपाई गई ; किन्तु दिन-पर-दिन निखार ही आता गया। मेरे चेहरेपर चिन्ताकी रेखा किसीने नहीं देखी।

जब कुम्हार अपने सिरपर मुझे रखकर घर लाया तब आस-पासके लोगोंने अपनी राय देनी शुरू कर दी। किसीने कहा,—"बड़ी अच्छी माटी है।" एक वृद्ध, हुक्केको अपने मुँहसे हटाता हुआ, खाँसकर बोला, "यह कैसी काली-काली उठा लाए, खेलावन !" कुम्हारकी स्त्रीका नारीत्व जाग उठा। होठोंके ऊपरकी बड़ी नथ कानकी तरफ़ खिंच गई। बोली, "अभीसे काली-कलूटी कहने लगे। अपनी अवस्थापर इसका भी रंग खुल जायगा।" इस जातीय सहानुभूति और स्नेहसे मैं तो फूल उठी। उसके बाद कुम्हारने मुझे पैरों-तले खूब रौंदा। यदि कभी कहीं क्रोध मुझे भी कठोर बना देता तो वह फावड़ेसे क्षत-विक्षत कर देता। पर उस मानवीके कोमल कर-स्पर्शका सुखद आश्वासन मेरे जीवनको दूभर न होने देता। जब खेलावन मुझे कुचल चुकता तो वह आती और मेरे शरीर के काँटोंको धीरे-धीरे निकालती।

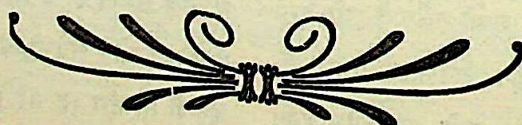
फिर मुझे आकार दिया जाने लगा। एक, दो, तीन, चार, एक दुर्निवार क्रम चलता रहा। अपनी जैसी अनेक बहनोंका निर्माण देखकर 'एकोऽहं बहुस्याम्'की कल्पना मेरे सम्मुख सजीव हो उठी। कभी वर्ग, कभी चतुर्भुज—ज्यामिति के सिद्धान्तोंसे सर्वथा अनभिज्ञ कुम्हारकी इस दक्षताको देख कर मैं तो दंग रह गई। इतना सधा हुआ हाथ जैसे यन्त्र

बाँध दिया गया हो। एकके बाद दूसरा वैसा ही सीधा, सपाट, उसमें कोई कृत्रिमता नहीं ; पर सीधेपनसे कोई अनुचित लाभ न उठाए इसलिए मेरे दोनों कान जरा खड़े रहते हैं।

मेरे संयमकी परीक्षा अभी शेष थी। मैं भट्ठीमें डाली गई। अन्दरकी वायु दम घुटानेवाली थी। पुराने नागकी विषैली फुसकार-सी आँच—मैं तो जलकर रह गई। मेरी कितनी बहनोंका जीवन तो प्रवेश करते ही समाप्त हो गया। मैं भी उस नारकीय अग्निसे उत्तप्त होकर व्याकुल हो उठी, पर उस परास्त अवस्थामें वही अदम्य विश्वास, कि मेरा जीवन कुछ करनेके लिए हुआ है, मुझे सहारा देता रहा। देवी सीता का उदाहरण मेरे लिए प्रकाश-स्तम्भका कार्य करता रहा। उन्हें भी तो परीक्षा देनी पड़ी थी! इस प्रकार नरकके कई दृश्य देखनेके बाद मैं बाहर निकली तो मेरा रंग बिल्कुल बदल गया था। मालूम पड़ता था कि कठिन तपस्याके आलोकसे दीप्त कोई बौद्ध श्रमण गैरिक वस्त्र धारण किए हुए आ उपस्थित हुआ हो। मैं स्वयं अपने सौन्दर्यपर मुग्ध थी। जो कोई मेरे शरीरको छूता, तितलीके रंगीन पंखोंका-सा पराग उसके हाथमें आ जाता। बच्चे मेरी अछूती कान्तिकी छाया में अनुरक्त रहते। यही नहीं, अपने अधर तक ले जाकर मेरे सलोनेपनपर वे रीझ जाते थे।

मेरे रूपमें ही आकर्षण नहीं था ; विन्यासमें भी कलात्मकता थी। मैं सीधे कभी नहीं लगाई जाती। कुछ बाँकपन आवश्यक होता है। ऊँची एँड़ीकी जूतियोंके इतने इस तिरछेपनमें एक सार्थकता होती है। वह यह कि कभी किसी वस्तुको मैं छातीका बोझ नहीं बनाना चाहती। कलुषित बादलोंके आँसुओंको भी मैं जमने नहीं देती। उनका वह जाना ही अच्छा होता है ; क्योंकि रुक जानेसे शरीरको पीड़ा होने लगती है। मेरे लगाए जानेका ढंग ऐसा होता है कि उसमें एकरूपता होती है, एक पैटर्न (Pattern) बन जाता है और पैटर्न ही, मैंने सुन रखा है, सौन्दर्य-बोधका प्रारम्भिक साधन होता है। ढाल-पतली क्यारियोंमें सुघरता होती है और उनके बीचकी रोमानी लालिमा पठारी ढालपर कश्मीरी केसरके खेतोंकी ओर संकेत करती है। लेकिन, आजके मनुष्यको ऐसी शोभाकी ओर दृष्टि उठानेका अवसर कहाँ रह गया है।

इस यन्त्र-युगने चारों ओर एक कुरूपता, एक विभीषिका फैला रखी है। जीवनका संगठन जाता रहा है। ज्यों-ज्यों लोकजीवनसे खपरैल, ग्रामगीत, उनसे सम्बन्ध रखनेवाली तथा उसी प्रकारकी अन्य स्मृतियाँ निकलती जा रही हैं, जीवनसे स्नेहकी आर्द्रता कम होती जा रही है। जब मैं नगरोंमें सीमेन्टकी छतों और टीनकी चादरोंको अपना स्थान लेते हुए देखती हूँ तब लोगोंकी रुचिपर मुझे सन्देह होता है। इन टीनी और सीमेन्टी छतोंपर वे सीताफल कहाँ, वे लता-बेलें कहाँ, जो किसी मैथिलीशरणकी अनुभूतिको प्राण दे सकें। उनके नीचे संयुक्त परिवारका सौहार्द कहाँ! उनमें अल्हड़ कवि-हृदय युवककी भावुकताको प्रेरणा देनेकी शक्ति कहाँ! उनमें होती है एक सादगी, एक निर्ममता, एक वैधव्य। उनमें मेरा सिन्दूरी अनुराग कहाँ! इन्द्रधनुषी रंगोंसे अनुप्राणित होनेवाली सजीवता कहाँ! उनमें होती है ऊपरी चमक और नीचे एक अमिट कालिमा ; कालान्तर से काली पड़ जानेपर भी अपनेको विदीर्ण करके अपने अन्तरका राग, उसकी लालिमा दिखानेकी मुझ जैसी क्षमता उनमें कहाँ! उनमें होती है पार्थिव सभ्यताकी हृदयहीन उद्दंडता ; उनमें आत्म-विश्वासके लिए भारतीय गाँवोंकी नम्रता कहाँ। उनमें होती है शोषण तथा प्रतिगामिताकी स्थापना ; उनमें रचनात्मक विधानोंमें प्रगतिको जन्म देनेवाली गरिमा-भरी दीनता कहाँ! उनके आडम्बरपूर्ण आवरणके नीचे होती है झुलसानेवाली तपन, तरुकी घनी छाया-सी शीतलताका सर्वथा अभाव। किन्तु इस विमर्शसे क्या लाभ? आज तो मान्यताएँ (Values) तीव्रगतिसे बदलती जा रही हैं। परिवर्तनके आवेशमें शरीरको कान्तियुक्त बनानेकी चेष्टा ही अधिक दीखती है, प्राणोंके स्पन्दनकी परवाह बहुत कम।



पत्रकार पुंगव गुप्तजी

श्रीराम शर्मा

बन्धुवर पण्डित झावरमल्लजीका आग्रह है कि मैं स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तपर कुछ लिखूँ—'बालमुकुन्द गुप्त स्मारक-ग्रन्थके लिए'। सीधा-सा अर्थ इसका यह है कि मैं भी गुप्त-स्मारक-ग्रन्थ रूपी बहती गङ्गामें स्नान कर लूँ। अतएव 'हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागर सङ्गमें, सर्वत्र दुर्लभा गङ्गा'का स्मरणकर मैं श्रद्धाञ्जलिके रूपमें कुछ शब्द लिखकर कृतार्थ होता हूँ। यों तबीयत तो करती है कि स्वर्गीय गुप्तजीकी पत्रकारितापर एक विश्लेषणात्मक लेख लिखूँ। क्योंकि उनकी प्रतिभा, ईमानदारी, क्रियात्मक कल्पना-शक्ति, स्वतन्त्रता और राष्ट्रियताका मैं कायल रहा हूँ; पर उसके लिए न स्थान है और न समय ही।

प्रकृति प्रेमी और भक्त लोग सुरसरिके विशाल और अगाध जलको जब बंगाल और बिहारमें देखते हैं तब वे उससे प्रभावित होते हैं। एक समाधिस्थ योगीकी भाँति देवापगा बंगालकी खाड़ीमें, सागरके जलमें तद्रूप हो जाती है; पर यदि कोई बालिका गङ्गाको गंगोत्री और गढ़वालके अन्य स्थानोंमें देखे तब उसे पता चलेगा कि नन्हीं-सी धाराको कितना परिश्रम करना पड़ा है, कितनी उसने तपस्या की है। पत्थरों और चट्टानोंसे टकराकर उसने अपना माथा नहीं फोड़ा वरन् उन महान् बाधाओंको चूर्णकर, हुँकार मारकर वह आगे बढ़ी है और उसके उस त्याग और सेवाके बलबूते हमें मैदानी गङ्गाके रूपका लाभ हुआ है।

आज जो हिन्दी पत्रकारिताका महानद दिखाई दे रहा है उसका श्रेय हमारे उन पत्रकारोंको है, जिन्होंने अपनी निजी प्रतिभा-शक्ति तपस्यापर मर मिटनेकी सक्रिय भावनासे हमारे लिए प्रशस्त मार्ग निकाला स्व० बाबू बालमुकुन्द गुप्त ऐसे ही पत्रकार-पुङ्गवोंमें थे और अपने समयके तो वे अद्वितीय हिन्दी पत्रकार थे। अद्वितीय इसलिए कि दैनिक पत्रकारिता (Daily Journalism) में उन जैसा व्यक्ति उनके समयमें कोई दूसरा न था, यद्यपि उन्हें उर्दूके 'कोहेनूर' और हिन्दीके 'हिन्दोस्थान'को छोड़नेके बाद दैनिक समाचार-पत्र-क्षेत्रमें कार्य करनेका अवसर नहीं मिला।

पत्रकारके अन्य आवश्यक गुणोंमे से एक गुण है ईमानदारी। पर अकेली ईमानदारी सार्वजनिक जीवनमें कोई मानी नहीं रखती। यदि कोई पत्रकार केवल ईमानदार है और है मूर्ख तो उसकी ईमानदारी खतरनाक हो सकती है। ईमानदारी पत्रकारमें जरूर चाहिए; पर उसके साथ उसमें होनी चाहिए क्रियात्मक कल्पना-शक्ति और उसपर डटकर काम करनेकी क्षमता। पत्रकार वकील नहीं है, जो फीसकी खातिर जेब-कतर के मुकदमें से लगाकर कातिल और क्रान्तिकारीके मुकदमोंकी पैरवी करे। पत्रकार एक निष्पक्ष न्यायाधीशके समान है जो विवादोंकी गुत्थियाँ सुलझाकर देशको स्पष्ट रूपसे अपनी राय देता है और भूले-भटकोंको राहेरास्त लाता है। स्व० गुप्तजीने जीवनभर सचाई, ईमानदारी और साफ़गोईकी धूनी रमाकर गुटबन्दी, ढोंग, अत्याचार और अनैतिकताके विरुद्ध अनवरत सफल संग्राम किया। अपने स्वाभिमान तथा अपने आदर्शके खातिर उन्होंने यह कभी नहीं किया कि 'हिन्दी बङ्गवासी' अथवा 'भारत मित्र'के कार्यालयमें पहुँचनेसे पहले अपने विचार-स्वातन्त्र्य तथा आदर्शको खूँटीपर टाँग दो और संचालकोंकी खातिर जैसी आज्ञा हुई वैसा लिखा हो। बङ्गवासीमें जब एक बार ऐसी नौबत आई, तब वे अपने कानमें कलम खोंसे इस्तैफ़ा देकर चले आये। उस समय एक महीनेकी नोटिस ओर पत्रकार-संघकी शक्तिकी थोड़ी-बहुत धमकी न थी।

लार्ड कर्जनका जमाना था। हमारे अनेक देशवासियोंमें जहाँ देश भक्तिकी बिजली दौड़ रही थी, वहाँ चाटुकारी और लायल्टीके लिए भी घुड़दौड़-सी हो रही थी। देशभक्त गुप्तजी का कोमल और शुद्ध हृदय तिलमिला उठा और उन्होंने

सूबे पंजाबकी हालतपर कितने सुन्दर व्यङ्ग कसे। कविताका शीर्षक है—'पंजाबमें लायलटी'—

सब-के-सब पंजाबी अब हैं, लायलटीमें चकनाचूर
सारा ही पंजाब देश बन जानेको है लायलपूर।
लायल हैं सब सिक्ख अरोड़े खतरी भी सब लायल हैं,
मेढ़, रहतिये, बनिये, धुनिये लायलटीके कायल हैं।
धर्म-समाजी पक्के लायल, लायल हैं अखबारे-आम,
दया नन्दियोंका तो है, लायलटी हीसे काम तमाम।
लायल लाला हंसराज हैं, लायल लाला रोशनलाल,
लायलटी ही जिनका सुर है, लायलटी ही जिनकी ताल।
पोथी लेकर इन्हें पड़ी अपनी लायलटी दिखलाना,
लार्ड इबट्सन देंगे उनको लायलटीका परवाना।
मुसलमान साहब तो इससे कभी नहीं थे छुट्टीमें,
पैदा होते ही पीते हैं, वह लायलटी घुट्टीमें।
'वतन' सदासे लायलटी था, और अब है 'पैसा अखबार'
लायलटीके मारे ही हैं अब वह जीनेसे बेजार
लायल सब वकील बारिस्टर जमींदार और लाला हैं,
म्युनिसिपालिटीवाले तो, लायलटीका परनाला हैं।
खान बहादुर, राय बहादुर, कितने ही सरदार नवाब,
सब मिल-जुलकर लूट रहे हैं, लायलटीका खूब शबाब।
ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा सब पर इसकी मस्ती है,
लायलटी लाहौरमें अब भूसेसे भी कुछ सस्ती है।
केवल दो डिसलायल थे वाँ, एक लाजपत एक अजीत,
दोनों गये निकाले उनसे नहीं किसीको है कुछ प्रीत।
हाँ, कुछ डिसलायल थे रावलपिंडीके पंडित लाले,
वह सब पकड़ दिये फाटकमें बाहर लगा दिये ताले।
फिर एक और मिला था डिस-लायलका बच्चा पिंडीदास,
सोते उसे उठाकर घरसे फाटकमें करवाया वास।
और दिखाई दिया एक डिस-लायल लाला दीनानाथ,
उसको भी एक जुर्म लगाकर पिंडीके करवाया साथ।
इन सबसे लाला लोगोंका कुछ भी नहीं इलाका है,
लायल लोगोंके घरमें डिसलायलटीका फाँका है।
पेट बन गये हैं इन सबमें लायलटीके गुब्बारे,
चला नहीं जाता है, थककर हाँफ रहे हैं-बेचारे।
बहुत फूल जानेसे डर है, फट न पड़े यह इनके पेट,
इसी पेटके लिये लगी है, लायलटीकी इन्हें चपेट।
सुनते हैं, पंजाब देश सीधा सुरपुरको जायेगा।
डिस-लायल भारतमें रहकर इज्जत नहीं गँवावेगा।

हिन्दी-उर्दूका झगड़ा सन् १९२० से सन् १९४६ ई० तक कितने विकट रूपसे चला, यह हम लोग अपनी आँखों देख चुके हैं; पर वस्तुतः यह झगड़ा शुरू हुआ था सन् १९०० ई०में, जब उत्तर प्रदेशकी अदालतोंमें नागरी अक्षर जारी हुए। इस समस्यापर गुप्तजीने विनोद और व्यंगसे 'उर्दूको उत्तर' शीर्षक कविता द्वारा 'उर्दूकी अपील'का जो करारा जवाब दिया और उर्दूके हिमायतियोंकी थोथी दलीलोंपर जो युक्तियुक्त लेख लिखे, वे सब हिन्दी-साहित्यके आन्दोलनमें अपना विशेष स्थान रखते हैं। कितने हिन्दीवाले हैं, जिन्होंने हिन्दीकी हिमायत इस शान और आनबानसे की है?

विद्यार्थी-जीवनमें जब हमने उनके 'शिवशम्भूके चिट्ठे' पढ़े, तभीसे हमारी श्रद्धा पत्रकार गुप्तजीके प्रति हो गई। उनकी सरल, पैनी और सीधी चोट करनेवाली व्यंगपूर्ण और विनोदपूर्ण शैली आज भी उतनी ही रोचक है जितनी वह ५० वर्ष पूर्व थी। क्या अच्छा होता कलकत्तेमें आज उस टक्करका कोई हिन्दी-पत्रकार हो, जो उस भाँति लिख सके और किसी दल या पूँजीपतिके स्वार्थसे नत्थी न हो!

लार्ड कर्जनके नाम जो चिट्ठे लिखे हैं उनका स्थान पत्र-लेखन-कला और राजनीतिक पत्रोंमें बहुत ऊँचा है। हिन्दी-पत्रकारिता उनसे गौरवान्वित होती है। कितनोंमें साहस था उन दिनों, जो लार्ड कर्जनकी आलोचना उस प्रकार कर सकते!

'मानचेस्टर गार्जियन'के स्वनामधन्य सम्पादक स्काट साहब को अपनी दक्षिणी अफ्रीका-सम्बन्धी नीतिके कारण बहुत कुछ सहना पड़ा। उनके पत्रकी ग्राहक-संख्या तक घट गई, पर वे सत्य-पथसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। बादमें उनके देश-वासियोंको सम्पादक शिरोमणि स्काटकी नीतिका तथ्य जान पड़ा; पर वे रौबमें नहीं बहे, वरन् उन्होंने लोगोंके लिये मार्ग प्रदर्शन किया। उस युगकी दैनिक पत्रकारितामें वे बेजोड़ थे।

पर गुप्तजी कोरे पत्रकार ही न थे। वे शैलीकार और उद्भट समालोचक भी थे। और इन प्रवृत्तियोंके पीछे उनका अगाध ज्ञान-भण्डार था, जिसको वे हमेशा अपने परिश्रमसे भरा करते थे। उन दिनों एक दूसरे पत्रकार और अनन्य साहित्यसेवी भी थे—स्वर्गीय आचार्य द्विवेदीजी। शब्दोंके निर्माण और भावोंके प्रयोगपर कभी-कभी दोनोंमें टक्करें भी हो जातीं—ठीक उस प्रकार जिस प्रकार समुद्रकी लहरें टकराकर फिर एक हो जाती हैं। गुप्तजीकी भाषामें प्रवाह, ओज, सादगी और आकर्षण है। उनकी भाषा गुद्दल न थी और न उनकी उर्दू उन्हींके शब्दोंमें 'लक्कड़ उर्दू' थी।

अपनी निष्पक्ष राय देनेमें वे कभी नहीं चूकते थे। दुनियामें सिद्धान्तों और वादोंकी कमी नहीं, पर व्यावहारिक जीवनमें सिद्धान्तोंकी अपेक्षा व्यक्तित्व अधिक कारगर होता है।

गुप्तजीने पत्रकारकी हैसियतसे जीवनके लगभग सभी महत्त्वपूर्ण विषयोंपर लिखा और लोगोंको सचेत किया। हिन्दी-साहित्य क्षेत्रकी समस्याएँ ही नहीं, वरन् समाज-सुधार और हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर भी उन्होंने लिखा। अबसे पचास वर्ष पूर्व उन्होंने वही आदेश दिया जो हम सन् १९२० से अवतक देते आ रहे हैं। द्वेष, घृणा, लोगोंको धर्म और सम्प्रदाय के नामपर भड़कानेकी प्रवृत्तिका शिष्टाचार पूर्वक घोर विरोध किया।

भविष्य द्रष्टा और सूक्ष्मदर्शीकी भाँति उन्होंने मारवाड़ी समाजके विषयमें सन् १९०० ई० में लिखा था :—

..."मारवाड़ी समाजका हाल अब कुछ पतला होता जाता है। उनके सामाजिक बन्धन ढीले होते जाते हैं। पहले मारवाड़ी लोग खानदान देखते थे, इज्जत देखते थे। परन्तु अब केवल धन देखते हैं, धन ही में सब गुण देखते हैं। धनके सिवाय और कुछ नहीं देखते। जो सात पीढ़ीका सेठ था बड़ा धर्मात्मा नेक चलन था, खानदानी इज्जतदार था, आज यदि समयके उलट-फेरसे वह निर्धन हो गया है तो मारवाड़ी उसे दो कौड़ीका समझने लग जाते हैं। कल जिसके बापने यहाँ आकर अदना-से-अदना काम किया था और आज वह धनी हो गया है तो मारवाड़ियोंकी आँखमें उससे बढ़कर बड़ा खानदानी और कोई नहीं है। सब उसीकी ओर दौड़ते हैं, उसके दोषोंको भी गुण समझते हैं। परन्तु सदासे मारवाड़ी समाजकी यह दशा नहीं थी। यह सत्य है कि वैश्योंको रुपया बहुत प्यारा होता है, पर सदा प्यारा होनेपर भी मारवाड़ी समाज अपने धर्मको, अपनी जातिको बड़ी प्यारकी दृष्टिसे देखता था। न जाने किस पापके फलसे आज मारवाड़ियोंका वह भाव बदल चला है।"*

अपने हितैषी चिकित्सकके इस उचित निदानपर क्या हमारे मारवाड़ी भाई सोचेंगे और उसका इलाज करेंगे।

दैनिक पत्रकारिता आधुनिक युद्धके समान है, जहाँ अत्यन्त विघातक अस्त्रों, शस्त्रों और साधनोंकी आवश्यकता होती है और पत्रकार—कमाण्डर-इन-चीफ—की तनिक-सी भूलके कारण बण्टाढार हो सकता है। इस क्षेत्रमें गुप्तजी सदा सावधान रहे। वे अपने युगके सफल युग-निर्माता पत्रकार थे। उनकी पत्रकारितामें चार चाँद इसलिये और लग गये थे कि वे उस समयकी उग्र राजनीतिके पोषक थे। वे कोरे कलम-तोड़ पत्रकार न थे, जो हक्कोंकी खातिर अपने विचारोंको बेचते हैं। जीवनका मूल्यांकन गुप्तजी रुपये-पैसेसे न करते थे, वरन् करते थे चरित्र-गठन, कर्तव्य-परायणता, सचाई और सक्रिय ईमानदारीसे। उनकी लेखनी द्वारा देशकी आत्माकी अन्तर्ध्वनि—आजादीकी पुकार—लिपिबद्ध होती थी। अहंकार, ढोंग और गुलामीके गढ़ोंपर उनके लेख गोले उगला करते। जिस दिशामें उन्होंने लिखा, उसमें एक नवीन जीवन और नई स्फूर्ति स्पन्दित होती थी।

उक्त बिखरे विचारों द्वारा इन पंक्तियोंका लेखक स्वर्गीय गुप्तजीको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, जैसे एक भक्त सूर्यको अर्घ्य देता है। आज देशकी वर्तमान स्थितिमें भ्रष्टाचार और अनैतिकताके तमतोममें उस आलोककी लाखों गुनी शक्तिमें आवश्यकता है, जिसको स्वर्गीय गुप्तजीने और स्वर्गीय गणेशजीने लोगोंको दिया था। उस महाप्राण आत्माको मेरी आन्तरिक श्रद्धा निवेदन।

(बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रन्थसे उद्धृत।)

* गुप्त-स्मारक ग्रन्थमें—जीवन-परिचय प्रकरण, पृष्ठ २०६।

राष्ट्रभाषा हिन्दी—एक सुझाव

र० वेंकट रत्नम

हिन्दी ही भारतकी सभी भाषाओंमें कौमी जबान बनने लायक है। इसमें ज़रा भी शकोशुबा नहीं है। इस विषयमें कि हमारे देशकी एकता बढ़ानेके लिए एक राष्ट्रभाषा हो, भारतीय संसद सर्वसम्मतिने ऐसा तै किया है ताकि आगामी पन्द्रह सालोंमें हिन्दी भाषा पूर्णरूपसे राष्ट्रभाषा-पद प्राप्त कर ले। दक्षिणवाले धीरे-धीरे हिन्दी सीख रहे हैं। हिन्दी-प्रचार सभा, अबसे ही नहीं, बल्कि पिछले तीस सालोंसे हिन्दीका प्रचार कर रही है। तमिलनाडमें हिन्दी-प्रचारके रास्तेमें एक विरोध-सा भी होता है। कुछ लोग राष्ट्रभाषाके खिलाफ़ हो बैठे हैं और बिना किसी हिचकिचाहटके अपने आन्दोलन को एक सत्याग्रहके नामसे पुकारते हैं।

पर, वे लोग, जो हिन्दीके खिलाफ़ हलचल मचाना चाहते हैं, कहते हैं कि हिन्दीवालोंका मनोभाव ही संकीर्ण है। संकीर्ण भाषा साम्राज्यवाद (Narrow Provincialism और Narrow Language Imperialism) के बीचमें होता है यह हिन्दीका प्रचार!

इन दोनों विचारोंमें दरअसल संकीर्णता किसीमें भी हो, हमें इससे मतलब कुछ भी नहीं। पता नहीं कि अगर हिन्दी-विरोध आगे चलकर भी आगामी पन्द्रह सालोंभर रहेगा कि नहीं! साथ ही हमें यह भी नहीं मालूम कि वहाँकी प्रान्तीय सरकारकी ओरसे भी, हिन्दी-विरोधियोंके साथ भविष्यमें क्या यही बरताव किया जायगा।

पर हम खरी बात यह कहते हैं कि उन लोगोंको हमेशाके लिए हिन्दीके विरोधमें ही रखते-रखते हिन्दीका प्रचार करनेकी यदि हमने ठानी तो हम समझदार न कहलायँगे। हमारी समझदारी इसमें है कि हम उन्हें अपनायँ और उन्हें अपने प्रचार कार्यमें लें। उनके मनोभावको संकीर्ण कहकर उन्हें न छोड़ दें।

दक्षिणवालोंकी एक समस्या है हिन्दी, और वह हिन्दीवालोंकी एक तपस्या होनी चाहिए, तभी दक्षिणमें हिन्दीका प्रचार तेज़ीसे चलेगा। राष्ट्रभाषाको दक्षिणके सारे-के-सारे मदरसोंमें अनिवार्य करना चाहिए ही!

हिन्दीके अलावा वहाँके बच्चे मातृभाषा पढ़ेंगे—यह बात भी ज़रूरी है। अतः वे विद्यार्थी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा पढ़ेंगे। संस्कृत या अंगरेज़ीका कुछ भी विचार हम यहाँ न करें! मादरी ज़बान भी अनिवार्य होगी, कौमी ज़बानके साथ। जब बच्चे दोनोंको कम-से-कम उनके अनिवार्य होनेकी वजहसे सीख लेंगे, तब उनमें पहली भाषा और दूसरी भाषा कोई भी हो, इसकी हमें चिन्ता नहीं होनी चाहिए। मादरी ज़बान पहली भाषा (First Language) हो और कौमी ज़बान हो Second Language; अंगरेज़ी या संस्कृत ली जाय तीसरी भाषा। उनके बीच मुठभेड़ हो, हमें कुछ भी परवाह नहीं। पर राष्ट्रिय भाषा और प्रान्तीय या मातृभाषाके बीचमें झगड़ा न होने पाय।

आम तौरपर सभोंको दूसरी भाषा सीखना कठिन ही है। वह भी जब एक भाषा अनिवार्य बन जाती है, तब उसपर एक घृणा-सी पैदा होना तो मुमकिन है; पर ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे किसीके दिलमें राष्ट्रभाषाके प्रति घृणा पैदा न हो।

हिन्दीका राष्ट्रभाषा बनना एक पवित्र काम है। वह एक सीढ़ी है राष्ट्रिय निर्माणके लिए। पहले ही कहा गया है कि हिन्दी जैसे दक्षिणवालोंकी समस्या है, उसी भाँति जिन लोगोंकी मातृभाषा हिन्दी है, उनकी एक तपस्या बननी चाहिए। हिन्दीके राष्ट्रभाषा बन बैठनेमें दक्षिणवालोंका ही हाथ न होना चाहिए। वह तो सारी भारतकी उन्नतिमें आगे एक क़दम-सा है। इसलिए, बहुत-सी कठिनाइयाँ उठनेपर जब और लोग—जिनकी मादरी ज़बान हिन्दी नहीं—हिन्दी सीखते हैं, तब हिन्दीवाले क्यों चुप रहें।

क्या सिर्फ़ उसे राष्ट्रकी गद्दीपर बिठानेसे उनका जो फ़र्ज़

अपनी मातृभाषाकी ओर है, वह खतम हो जाता है ? उनकी तो मातृभाषा है हिन्दी, साथ-ही-साथ राष्ट्रभाषा भी ।

उन्होंने तो अपनी मातृभाषाको क़ौमी ज़बान बनाकर, अपनी भाषा-माताकी बड़ी सेवा की है । इसमें सन्देह नहीं ; पर जब और लोग हिन्दी सीखकर राष्ट्रकी सेवा करते हैं, तब ये हिन्दीवाले लोग क्यों सिर्फ़ अपनी भाषाको राष्ट्रभाषा बनाकर चुप रहें ?

कम-से-कम धन्यवादके तौरपर, वे किसी-न-किसी दूसरी भारतीय भाषाका अभ्यास क्यों न करें ? इसकी चिन्ता नहीं कि वह तामिल, तेलुगु आदि दक्षिणकी भाषाओंमें एक हो और फिर चाहे वह बंगाली, गुजराती वगैरहमें से एक हो। अगर हिन्दीवाले इस तरह किसी न-किसी दूसरी भाषाको सीखने लगें, तो हिन्दीका प्रचार तेज होगा और होगा बिना विरोधके। जबतक हिन्दीवाले औरोंकी भाषा न सीखें और अपनी भाषाको ही औरोंपर जबरदस्ती थोपनेका प्रयत्न करें तबतक इनका मनोभाव भी संकीर्ण भाषा साम्राज्यवाद (Narrow Language Imperialism) ही कहलायगा।

इसलिए उन प्रान्तोंमें जहाँ हिन्दी प्रान्तीय भाषा पहली भाषा है वहाँ दूसरी भाषाकी जगहमें और कोई भाषा अनिवार्य रूपमें होनी चाहिए। जब वहाँके बच्चे दो भाषाएँ सीख पाते हैं, तब हिन्दीवाले बच्चे भी दो भाषाएँ सीख ही सकते हैं।

और एक कारण है । सारे भारतमें एक, एकमात्र शिक्षण-नीति होनी चाहिए। मद्रासके बच्चे चार भाषाओंको पढ़ते रहें, गुजरातके विद्यार्थी सात भाषाएँ सीख लें—इस तरह का मामला ठीक नहीं। इसलिए हमारी केन्द्रीय सरकार ऐसे करे कि जिससे सारे हिंदुस्तानके प्रत्येक सूबेमें मातृभाषा पहली भाषा बन जाय और राष्ट्रभाषा शिक्षण-क्रममें दूसरी भाषा हो और जहाँ प्रान्तीय भाषा ही राष्ट्रभाषा है, वहाँ और कोई भारतीय भाषा द्वितीय स्थानमें हो।

[हम लेखकके सुझावसे सहमत हैं।—सम्पादक]

गन्ना कब और कैसे बोना चाहिए

श्यामचरण वर्मा

उत्तर प्रदेशके प्रत्येक किसानको मालूम है कि उसकी आर्थिक दशा गन्नेकी खेतीपर बहुत हद तक निर्भर है। गन्नेकी फसल उसको सबसे अधिक धन देनेवाली होती है। इसके लहलहाते तथा हरे-भरे खेतोंको देखकर किसान अपनी बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाए रहता है। परन्तु खेद इस बातका है कि बहुत-से किसान यह जानते हुए भी, कि गन्नेकी पैदावार उनके आर्थिक संकटोंको दूर करनेका मुख्य साधन है, उसकी फ़सलसे उतना लाभ नहीं उठाते जितना कि वैज्ञानिक ढंगकी खेतीसे हो सकता है।

शाहजहाँपुरके प्रयोग-क्षेत्रपर गन्नेकी खेतीमें सुधार करनेके नए-नए तरीके प्रयोगसे सिद्ध किए जाते हैं और किसानोंको इन सफल प्रयोगोंपर अमल करनेको कहा जाता है। यहाँ हम उनमें से एक विषयपर विचार करेंगे। गन्नेकी अच्छी पैदावारके लिए यह जरूरी है कि गन्ना ठीक समयपर उचित ढंगसे बोया जाय। अनुचित समयपर बोए हुए गन्नोंके अँखुए या तो जमते नहीं और अगर जमते हैं तो सिर्फ थोड़े ही से, जिससे कि पैदावार बहुत कम होती है।

अँखुओंको ठीक तरहसे उगनेके लिए मिट्टीमें मातदिल गर्मी तथा नमी चाहिए। शाहजहाँपुरमें एक प्रयोगमें, जिसमें कि कोयम्बटूर नम्बर ३१३ का गन्ना जनवरीसे अप्रैल तक हर महीनेमें बोया गया था, नीचे लिखे आँकड़े मिले। पाँच एकड़ का क्षेत्रफल लगभग आठ बीघोंके बराबर होता है।

सूची १

बोनेका समय	अँखुओंका जमना प्रतिशत	शक्कर प्रति एकड़ मनोंमें	गन्नेकी उपज प्रति एकड़ मनोंमें
२१ जनवरी	२२	५७	३५७
१० फरवरी	४३	६०	६०७
१२ मार्च	३५	४६	३६१
११ अप्रैल	२४	३१	२०३

इन अंकोंके देखनेसे यह पता चलता है कि फरवरीके महीनेकी बोआई गन्नेकी उपजके लिए बहुत अच्छी साबित हुई। जनवरीमें अधिक सर्दीकी वजहसे अँखुए कम जमे, फलतः उपज भी कम हुई। मार्च और खासकर अप्रैलके महीनेमें गर्मी ज्यादा होनेके कारण अँखुए बहुत कम जमें।

खेतोंमें नमी कम होनेके कारण मार्च और अप्रैलके महीनों में बोए हुए गन्नोंकी पैदावार कम होती है। ऐसे गन्नोंमें शक्करकी मात्रा भी कम होती है और इस कारण किसान और मिलों दोनोंको हानि होती है।

शाहजहाँपुरमें दिसम्बर और जनवरीके महीनोंमें अधिक सर्दी होनेके कारण अँखुए बहुत कम जमते हैं। ऐसे समयमें अँखुओंकी अच्छी उपजके लिए यह जरूरी है कि बीज बोनेके पहले उन्हें एक या दो दिनके लिए गर्म और तर जगहमें दबा दिये जायँ। एक प्रयोगमें गन्नेका बीज खादमें एकसे चार दिन तक दबानेके बाद बोया गया था जिससे यह पता लगा कि खादमें दबे हुए बीजोंके अँखुए ताजे बीजके मुकाबलेमें ज्यादा संख्यामें जमे। खादमें गर्मी और तरी दोनों ही मौजूद होती हैं। यही कारण है कि सर्दीके मौसममें बीजको कम-से-कम एक दिनके लिए खादमें दबाकर बोना चाहिए।

फरवरीमें मौसम गन्ना बोनेके लिए अच्छा होता है और ऐसे गन्नेकी उपज और शक्करकी मात्रा दोनों अच्छी होती हैं। जहाँ तक हो सके गन्नेको फरवरीमें या मार्चके प्रथम सप्ताहमें बो देना चाहिए। मार्चके महीनेमें गर्मी बढ़नी शुरू हो जाती है। पानी आमतौरपर बहुत कम बरसता है अन्यथा नहीं भी बरसता और हवा भी तेज होती है। इन कारणोंसे हवामें नमी बहुत कम हो जाती है और खेतोंमें मिट्टी भी सूख जाती है।

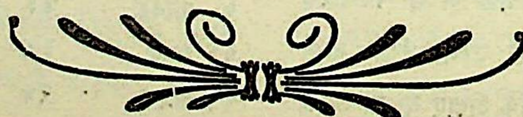
किसी कारणवश अगर गन्ना मार्चके अन्तिम भागमें या अप्रैलमें बोना पड़े तो उसके अँखुए कम जमते हैं और उपज भी कम होती है। इन दिनों अगर बीज एक दिनके लिए भिगो देनेके बाद बोया जाय तब अँखुए ज्यादा जमते हैं। अगर खेतमें पानी देनेका सुभीता हो तब ताजे बीजको बोनेके बाद खेतमें तुरन्त ही पानी दे देना चाहिए। इससे अँखुए अच्छी संख्यामें जमते हैं और गन्नेकी उपज भी अच्छी होती है। एक प्रयोगमें जिसमें कि गन्नेका बीज एक दिन भिगोनेके बाद बोया गया था या खेतमें बीज बोनेके बाद तुरन्त पानी दे दिया गया था नीचे लिखे आँकड़े मिले।

सूची

बोनेका उपाय	अँखुओंका जमना प्रतिशत	गन्नेकी उपज प्रति एकड़ (५ एकड़=८ बीघा) मन
सादा बीज	४६	४१५
एक दिन भिगोने— के बाद बोया हुआ बीज	५८	५१८
सादा बीज जिसमें बोने के बाद तुरन्त पानी लगाया गया	६१	६०३

इस प्रयोगसे यह ज्ञात हुआ कि अप्रैलमें अगर बीज उत्तम तरीकेसे बोया जाय तो उपज ड्योढ़ी हो सकती है। इस प्रयोगको कई वर्ष तक बराबर किया गया और हर मर्तबा यही सिद्ध हुआ कि अप्रैलमें बीजको बोनेके पहले एक दिनके लिए भिगो देना चाहिए या सम्भव हो तो खेतमें बोनेके बाद पानी दे देना चाहिए। ऐसे गन्नेकी पैदावार अच्छी होती है और उसमें शक्करकी मिकदार भी बढ़ जाती है। यह ध्यानमें अवश्य रखना चाहिए कि बीज ज़रूरतसे ज़्यादा न भीगने पाय, नहीं तो अधिक भीगनेके कारण अँखुओंकी जमाव-शक्ति कम हो जाती है।

हर एक किसानको गन्नेकी खेतीमें वैज्ञानिक तरीकोंको सदा ध्यानमें रखना चाहिए; क्योंकि इनके प्रयोगसे खेतीमें हमेशा लाभ होता है।



वनस्पति-प्रतिबन्धक कानून

किशोरलाल घ० मशरूवाला

वनस्पतिपर जनमतकी माँग

केन्द्रीय धारासभामें पं० ठाकुरदास भार्गवने 'वनस्पति' याने तेलोंको जमानेकी क्रिया और धन्धेको बन्द करनेके लिए एक विधेयक (बिल) पेश किया है। यदि यह विधेयक मंजूर होगा, तो वनस्पतिके सब कारखाने बन्द किये जायँगे और विदेशसे भी उसकी आयात करनेकी मनाही होगी। इसके बारेमें लोकमत क्या है, यह समझनेके लिए सरकारने इस विधेयकको अखबारों आदि द्वारा प्रकाशित किया है और तारीख ३१ अगस्तके भीतर अपनी राय जाहिर करनेके लिए सूचना दी है।

आकर्षणोंका जाल

वनस्पति हमारे देशका एक बड़ा महत्त्वका पदार्थ बन गया है। इसके पैदा करनेवाले और बेचनेवाले व्यापारियोंको यह धन्धा इतना फायदेमन्द साबित हुआ है कि तेजीसे उसके कारखाने बढ़ानेकी कोशिशें हो रही हैं और उसके प्रचारार्थ आकर्षक विज्ञापन आदिमें लाखों रुपए खर्च करना आसान हो गया है। थोड़ा भी महत्त्व रखनेवाले किसी भी अखबारको देखिये तो वनस्पतिके सच्चे-झूठे गुणगान करनेवाले बड़े-बड़े विज्ञापन पाठकोंके ध्यानको आजकल आकर्षित कर देते हैं। इसके अलावा उसके विषयमें तरह-तरहकी जानकारी देनेवाली, बड़े आकर्षक और मँहगे कागजपर छपी हुई सचित्र पत्रिकायें भी प्रकाशित की गयी हैं और तारीख ३१ अगस्तकी अवधिके भीतर उसके पक्षमें अनुकूल लोकमत प्राप्त करनेके लिए तरह-तरहके प्रयत्न किये जा रहे हैं।

हर प्रकारसे हानिकारक

दूसरी तरफसे यह पदार्थ जितना धन्धेवालोंको फायदेमन्द हुआ है, उतना ही लोगोंके लिए शक पैदा करनेवाला हो गया है। खेती और गोपालनका धन्धा चलानेमें इस पदार्थने बाधायें पैदा कर दी हैं, घानीका धन्धा तोड़ दिया है। आरोग्यकी दृष्टिसे उसका कोई महत्त्व सिद्ध नहीं होता, फिर भी अपने मायावी रूपसे मोहमें डालकर वह खानेवालेको बिना जरूरी खर्चमें डालता है और एक भ्रममें फँसाता है। शुद्ध तेल और शुद्ध घी प्राप्त करना जनताके लिए उसने बहुत ही मुश्किल कर दिया है। व्यापार-धन्धेसे नीतिकी भावना निर्मूल करनेमें उसने बलवान् सहयोग दिया है।

मृग-मरीचिकाके फेरमें

जानकीहरण की वह काव्योक्ति यहाँ ठीक लागू होती है। मायावी राक्षसने सुवर्णमृगका रूप धारणकर जानकीको आकर्षित किया। राम जानते थे कि यह सुवर्णमृग नहीं हो सकता, फिर भी मजबूर होकर वे उसके पीछे दौड़े। परिणाम में जिसने वह माया पैदा कर दी थी, वह रावण जानकीजीको हरण कर ले गया और उनके शील और जीवन, दोनोंको जोखिममें डाल दिया। इसी तरह मायावी तेल भी घीका रूप लेकर जनताको आकर्षितकर गृहस्थको, 'यह घी नहीं, नकली पदार्थ है', ऐसा जानते हुए भी उसे खरीदनेपर मजबूर कर देता है। परिणाममें जिसने वह माया पैदा की है, उन उद्योगपतियोंने जनताकी नीति, आजीविका, धन और आरोग्य चारों जोखिममें डाल दिये हैं।

अनधिकृत विधानोंका ताँता

यह कहना मुश्किल है कि केन्द्रीय धारासभामें पं० भार्गव के बिलका आखिर नतीजा क्या होगा। मालूम होता है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय मन्त्रिमंडलोंमें इस विषयपर एक राय नहीं है। कई मन्त्री वनस्पतिके बिलकुल पक्षमें मालूम होते हैं, कई साफ विरुद्ध और कई तटस्थ। इसमें यहाँ तक अनुभव आया है कि इस विषयमें जब एक परिषद बुलाई गयी थी, तब उसमें आये हुए कई प्रान्तोंके मन्त्रियोंने जो राय दी थी, उससे उल्टी राय उनके मन्त्रिमंडलकी ओरसे श्री जयरामदास दौलतरामने धारासभामें किये हुए निवेदनमें पेश की है। कई मन्त्रियोंने और विशेषज्ञोंने जाने-अनजाने अपने

क्षेत्रसे बाहर जाकर भी ऐसे बयान दे दिये हैं, जो वनस्पति उद्योगवालोंके हाथोंमें प्रचारके बड़े उपयुक्त साधन हो गये हैं। उदाहरणार्थ, डा० गिल्डरका निष्णातोंके प्रयोगोंका सारांश देना तो अपने क्षेत्रके भीतरकी बात मानी जा सकती है, परन्तु उनका आगाखाँ जेलका किस्सा सुनाना, या यह सर्टिफिकिट दे देना कि उन्होंने खुद वनस्पतिका उपयोग किया है, और उससे उन्हें कुछ नुकसान नहीं हुआ, कतई क्षेत्र-बाह्य बात थी। फिर यह कहना कि घीका तलनेमें ही ज्यादा करके उपयोग होता है, ग़लत बात है। इसी तरह डा० शान्तिस्वरूप भटनागर यदि इतना ही कहते कि कोई योग्य रंग नहीं प्राप्त हो रहा है, तो वह उनके क्षेत्रकी बात हो जाती, परन्तु रंग मिलानेसे उद्योग और वाणिज्यके आर्थिक विकासमें क्या फर्क हो जायगा, यह उनके क्षेत्रमें नहीं आती थी। जब ये लोग जानते हैं कि इस विषयपर बड़ी गम्भीरतासे सोचनेवाले दूसरे लोग भी हैं, खुद विशेषज्ञों और मन्त्रिमण्डलोंमें भी हैं, तब एक अधिकारीके पदसे ऐसी अप्रस्तुत बातें करके उन्होंने स्वयं अपनी खुदकी विश्वासपात्रताको ही शंकास्पद नहीं बनाया, बल्कि बहुतसे विशेषज्ञों और अधिकारियोंकी भी। हाल ही में वनस्पतिके जो विज्ञापन निकल रहे हैं, वे सब इन अप्रस्तुत रायों का फायदा उठा रहे हैं, साथ-साथ इसमें असत्य भी मिलाया जाता है। उदाहरणार्थ डा० भटनागरका हवाला देते हुए हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी विज्ञापनोंमें बताया गया है कि 'परिणामोंसे यह पूर्णतया सिद्ध हुआ है कि वनस्पति पौष्टिक और स्वास्थ्यदायक है', 'वनस्पति हर प्रकारसे अच्छी है', 'वनस्पति की आवश्यकता है।' एक दूसरे विज्ञापनमें लिखा है, 'एक डा० ने यह भी कहा था कि जो वनस्पतिके उत्पादनका विरोध करते हैं; वे निर्धनोंके शत्रु और धनवानोंके मित्र हैं।' ये सब असत्य बातें हैं। विशेषज्ञों द्वारा अधिक-से-अधिक इतना ही कहा गया है कि आरोग्यताकी दृष्टिसे 'कच्चे अथवा परिशुद्ध तेलकी भाँति वनस्पतिका भी कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ा।' अर्थात् कच्चे अथवा परिशुद्ध तेलसे उसकी आरोग्य-कीमत न ज़्यादा है न कम। घीके साथ तो उसकी तुलना ही नहीं। हम नहीं जानते कि शुद्ध घी और बाजारू मिलावटी घीके साथ वनस्पतिके तुलनात्मक प्रयोग किये गये या नहीं और किये गये तो उसके परिणाम क्यों नहीं बताये गये। फिर भी तेलोंके क्षेत्रमें वनस्पतिने अपनी कोई आरोग्य-वर्धक विशेषता नहीं बताई है। उसकी जो विशेषता है वह सिर्फ घीका वेश लेकर आँख और मनपर माया फैलानेकी ही है और इसके लिए उसकी वाजिब कीमतसे बहुत ज्यादा दाम उसपर खर्च होते हैं।

हानियाँ कम नहीं

इसके दूसरे नुकसान भी बहुत हैं। उसने तेलके कारखानोंको अनिवार्य बना दिया है। कारखानोंमें तेलकी शुद्धि-क्रियामें जो कचड़ा निकलता है, उसे तेली लोग सस्तेमें खरीद कर फिर उसमें मिलाते हैं। दूसरी चीजें भी मिलाते हैं और मिलावटी तेल तैयार करते हैं। वनस्पतिको घीमें मिलाकर उसे भी मिलावटी करते हैं। शुद्ध करनेका और जमानेका खर्च करके भी न शुद्ध तेल मिलता है, न शुद्ध घी। फिर लोग सोचते हैं कि सब झंझटें छोड़कर वनस्पतिका ही उपयोग करना बेहतर है। इस तरह दूसरे खाद्योंको बिगाड़कर वह अपना स्थान जमाता है।

स्थानिक घानियाँ बन्द होनेसे उसकी खली भी नहीं हो सकती। मिलकी खलीमें तेलका अंश कम रहता है, अशुद्धियाँ ज़्यादा होती हैं, फिर वे निर्यात की जाती हैं और खादमें जाती हैं। यानी मवेशीकी खुराककी एक आवश्यक चीज समुद्र-पार जाती है और भूमिमें वैसी ही मिलाई जाती है, जिससे कितना लाभ होता है इसपर कुछ शंका भी है। इस तरह कृषि और गो-पालन, दोनोंका नुकसान होता है।

अनीतिका तो कहना ही क्या? मिलावट और काला-बाजार आदि चीजोंकी शर्म ही रह नहीं गई। झूठको प्रचारकी कला बनाया गया है।

सही राय भेजनेका नमूना

इन सब बातोंका खयाल करके लोगोंको, विशेषकर सार्वजनिक सेवाकी संस्थाओं, म्युनिसिपलिटियों, पंचायतों आदिको अपनी राय तारीख ३१ अगस्तके पहले केन्द्रीय सरकारके

अन्नमन्त्री और केन्द्रीय धारासभाके सभापतिको भेज देनी चाहिए। राय इस रूपमें भेजी जा सकती है।

"इस सभाका मत है कि इस देशके हितमें खाद्य तेलोंके जमाने या जमाये हुए तेलोंका व्यापार करनेपर शीघ्र प्रतिबन्ध लगाना चाहिए और जब तक ऐसा नहीं हुआ है तब तक जमाये हुए तेलोंमें ऐसा रंग मिलाना चाहिए, जिससे शुद्ध घीके साथ उसे मिलाकर धोखा देना सम्भव न हो।"

ऐसे प्रस्तावकी एक प्रति मन्त्री, गो-सेवा-संघ, गोपुरी, नालवाडी (वर्धा) के पास भी भेज देनी चाहिए।

नकली घी और गांधीजी

किशोरलाल घ० मशरूवाला

श्री फूलसिंह डाभीने बम्बईकी धारा-सभाकी आखिरी बैठक में जमाया हुआ तेल बेचना बन्द करानेके लिए खानगी बिल रखा था। लेकिन नकली और असली घीको पहचान सकनेके लिए तेलमें रंग डालनेका कदम उठानेका सरकार द्वारा विश्वास दिलानेपर यह बिल वापस ले लिया गया। दूसरा कोई सन्तोषकारक रंग नहीं मिलता, इसलिए ऐसी सूचना की गई कि नकली घीपर 'हलदी'का रंग चढ़ाया जाय। मैं आशा रखता हूँ कि इस विश्वासपर तुरन्त अमल किया जायगा। लेकिन इसके अमलके बारेमें मुझे अपना शक नहीं छिपाना चाहिये। क्योंकि दूसरी सरकारोंने भी ऐसा वचन दिया था, लेकिन अभीतक उसका पालन नहीं किया गया। बलवान स्वार्थ ऐसा कोई कदम उठानेके खिलाफ काम कर रहे हैं, और सरकारें उनके दबावका विरोध नहीं कर सकतीं। इसके अलावा सरकारोंकी भी इस सवालमें गहरी दिलचस्पी हो ऐसा नहीं लगता। शायद मन्त्रिमण्डलोंमें इस बारेमें एक मत न हो। अखबारोंके समाचारोंसे ऐसा मालूम होता है कि जब श्री० डाभीके बिलपर धारासभामें चर्चा चल रही थी, तब वनस्पति उद्योगके प्रतिनिधि और बम्बई सरकारके आरोग्य-मन्त्री डा० गिल्डर—इस तरह दो पक्षोंने ही उसका विरोध किया था। डा० गिल्डर डाक्टरी विद्याके एक बड़े निष्णात हैं, और ज्यादातर लोग उनके द्वारा दी गई इस खातिरीको पूरी मान सकते हैं कि प्रवाही तेलसे जमाया हुआ तेल स्वास्थ्यको कम फायदा नहीं पहुँचाता। लेकिन दुर्भाग्यसे बिलकी चर्चामें गांधीजीके नामका जिक्र किया गया। इस जिक्रके बारेमें कुछ अखबारोंमें जो समाचार छपे, उनका मतलब इस तरह था। (१) खुद गांधीजीने भी आगाखां जेलमें अपनी खुराकमें जमाये हुए तेलका उपयोग किया था, और (२) वे तेल जमानेके खिलाफ नहीं थे। मैंने डा० गिल्डरसे इस रिपोर्टकी सचाईके बारेमें पूछा। उन्होंने मुझे उनके भाषणकी एक नकल भेजी है। गांधीजीके सम्बन्धमें नीचे लिखे अनुसार जिक्र किया गया था:—

डा० गिल्डर:—महोदय, इस चर्चामें गांधीजीका नाम लिया गया है। मैं आगाखां महलमें उनके साथ जेलमें रहा था। गांधीजी खुद उबली हुई खुराक लेते थे। वे कभी तली हुई खुराक नहीं खाते थे। वे बकरीके दूधका मक्खन काममें लेते थे, क्योंकि वे बकरीका दूध इस्तेमाल करते थे। लेकिन बाकी हम लोगोंको ज्यादातर वनस्पति घी दिया जाता था।

श्री ज० ह० शमशुद्दीन:—वे यह जानते थे?

डा० गिल्डर:—हाँ, वे यह जानते थे।

इस हकीकतसे आघात पहुँचनेका कोई कारण नहीं। गांधीजीके दूसरे साथी क़ैदी यह भी कह सकते हैं कि आगाखां जेलमें गांधीजीके जानते हुए और उनके विरोधके बिना वे (साथी) चाय पीते थे। गांधीजी अगर उमरमें छोटे, होते, तो जैसे महादेव देसाईके लिये उनके चाय बना देनेकी बात मशहूर है, वैसे ही इन साथियोंके लिए जमाये हुए तेलका भोजन भी उन्होंने बना दिया होता। फिर, अपने शरीरपर उसका उपयोग करके प्रयोग करना भी गांधीजीके लिए अशक्य नहीं था। इन सब बातोंका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि गांधीजी जमाया हुआ तेल पसन्द करते थे।

वनस्पतिके विरोधमें आगाखाँ महलसे छूटकर गांधीजीने जो लेख लिखे थे, वे हमारे सामने मौजूद हैं। वर्धाके गोसेवा संघने 'नकली घी' नामकी जो पुस्तिका प्रकाशित की है, उसमें उन्हें छापा है। उसके पाससे वह पुस्तिका मँगाई जा सकती है उसमें से दो महत्त्वके पैरे ही यहाँ देता हूँ।

"वनस्पति बिलकुल गैरजरूरी चीज है। तेलोंमें से नुकसान पहुँचनेवाले भाग निकाले जा सकते हैं। लेकिन उन्हें जमानेकी या घी की शकल देनेकी जरूरत नहीं। एक ईमानदार उत्पादक इतना नीचे नहीं गिरेगा कि जाली काम शुरू करे। बाजार नकली चीजोंसे भरे पड़े हैं। जाली सिक्के बनानेपर काफी सजा होती है। फिर जाली घीके लिए क्यों न काफी सजा दी जाय, जब कि असली घी सिक्कोंसे कहीं ज्यादा कीमती है?" (हरिजनसेवक, १४-४' ४६)

"जो वनस्पति तेल, घी या मक्खनकी शकलमें, या उसके नामसे, बेचा जाता है, वह हिन्दुस्तानके साथ किया जानेवाला एक बड़ा धोखा है, दगा है। हिन्दुस्तानके व्यापारियोंका धर्म है कि वे किसी भी शकलमें घीके नामसे ऐसा दिखावा करके कोई तेल या पदार्थ न बेचें। किसी सरकारको तो ऐसा हरगिज न करना चाहिए, न किसीको ऐसा करने देना चाहिए।" (हरिजनसेवक, १३-१०-'४६)

नकली घी स्वास्थ्यको नुकसान पहुँचाता है या नहीं, यह सवाल यद्यपि महत्त्वका है, फिर भी नैतिक सवालके सामने वह गौण हो जाता है। लोगोंको यह माँग करनेका अधिकार है कि बनावटी या नकली घी चाहे निर्दोष हो, लेकिन वह ऐसा होना चाहिए कि असली घीसे अलग पहचाना जा सके और असली घीमें उसकी मिलावट न की जा सके। इस माँगका खास हेतु व्यापक दगे और धोखेको रोकना है, लेकिन इन मुद्दोंको उड़ा देनेके लिए अप्रस्तुत और आरोग्य-निष्णातोंके हमेशा बदलनेवाले मतोंका आधार दिया जाता है। बादमें खाद्य और आरोग्य या दूसरे विभागके मन्त्री अपने निजी अनुभवका अप्रस्तुत प्रमाणपत्र देकर उन मतोंकी पुष्टि करते हैं। वे कहते हैं कि हमने खुद नकली घीका उपयोग किया है और हमें उससे कोई नुकसान नहीं हुआ। मैं ऐसे प्रमाणपत्रोंको अप्रस्तुत कहता हूँ; क्योंकि इस नकली घीके साथ वे लोग खुराकमें दूसरी ऐसी अनेक चीजें खाते हैं, जो इसके बुरे असरको खतम कर देती हैं। वे उत्तम दूध (शायद ताजा मक्खन, अण्डे, मांस) ताजे शाक-भाजी और दूसरे विटामिनवाले पदार्थ छूटसे खा सकते हैं। इसलिए वे जो थोड़ा-बहुत वनस्पति खाते होंगे, उसका बुरा असर उनके स्वास्थ्यपर न हो तो इसमें अचरजकी बात नहीं है। इस कारणसे यह अनुभव इस बातके प्रमाणके रूपमें पेश नहीं किया जा सकता कि नकली घी निर्दोष है। उन लोगोंके लिए तो यह एक मौज-शौककी चीज थी। निचले मध्यम वर्गके शाकाहारी लोगोंके लिए घी ही एकमात्र प्राणिज, चरबी देनेवाली चीज है। उसे पानेकी आशासे वे इस चीज (वनस्पति) के लिए भारी कीमत चुकाते हैं, जो अन्तमें नकली निकलती है। बम्बईके डाक्टर मन्त्रीके प्रति पूरा आदर-भाव रखते हुए मुझे कहना चाहिए कि उनके निजी अनुभवको मैं काफी प्रमाण नहीं मान सकता। उसी तरह यह भी कबूल करता हूँ कि जिन्होंने नकली घीका कभी उपयोग नहीं किया, उनके नकली घीके विरुद्ध मत भी—समाजमें उनका बहुत ऊँचा स्थान होनेपर भी—इस बारेमें अप्रस्तुत ही कहे जायँगे।

इस उद्योगका विरोध करनेके लिए चार कारण हैं:—व्यापारकी प्रामाणिकताको, देशके पशुधनको, ग्राम-उद्योगोंको और लोगोंके स्वास्थ्यको होनेवाला नुकसान। इनमें से शायद आखिरी मुद्देके बारेमें इतना ही कहा जा सकता है कि नकली घी स्वास्थ्यको नुकसान पहुँचाता है, ऐसा सबल प्रमाण नहीं है। लेकिन आज तक किसी निष्णातने यह भी साबित नहीं किया है कि नकली घी, असली घी या बिना जमाये हुए तेलसे ज़्यादा स्वास्थ्यवर्धक है।

मुझे आशा है कि बम्बई सरकार, इस पदार्थमें मिलावट न की जा सके या मिलावटके लिए इसका उपयोग न किया जा सके, इसके बारेमें असरकारक कदम उठानेके अपने वचनका पालन करनेकी शक्ति दिखायगी।

एक खतरा

श्री आचार्य विनोबा भावे

जमाये तेलके सम्बन्धमें बम्बईकी विधान-सभामें अभी कुछ चर्चा हुई थी और भारतीय संसदमें भी जमाये तेलपर प्रतिबन्ध लगानेकी माँग की गई है। जमाये हुए तेलके पक्षमें कारखानेवालोंकी ओरसे हर तरीकेसे प्रचार हो रहा है। अभी तो यह भी कहा जा रहा है कि जमाया हुआ तेल निर्दोष है। यह तो ठीक ही है; लेकिन इस विचारकी पुष्टि करते हुए डा० गिल्डरने एक विशेष तर्क उपस्थित किया है। आइजट नगरमें चूहोंपर जमाये हुए तेल और घीके प्रयोग किये गये थे। नतीजा यह आया था कि जमाया तेल खानेवाले चूहे अन्धे हुए थे। इसपर डा० बोले, "इन प्रयोगोंको ज़्यादा महत्त्व नहीं देना चाहिए; क्योंकि आइजट नगरके प्रयोगोंमें चूहोंको पोषणहीन 'बंगाली आहार' पर रखा गया था। और तीसरी पुश्तमें चूहे अन्धे बने थे। वह आहार इतना निःसत्व था कि उसके साथ जमाया तेल न दिया जाता, तो भी चूहे अन्धे बनते।"

यह एक विशेष तर्क है, जो सामान्य तर्कसे अपनी खुसूसियत रखता है। सामान्य तर्क कहेगा कि जब दोनों चूहोंको समान आहार दिया था—फिर चाहे वह पोषणहीन बंगाली आहार क्यों न हो—तब आये हुए परिणाम-भेदका कारण वह सामान्य आहार नहीं हो सकता; बल्कि दोनोंके आहारमें जो विशेष भेद था—यानी एकको जमाया तेल दिया जाना, और दूसरेको घी दिया जाना—वही हो सकता है। हम मान लें कि जमाये तेलके बगैर भी उस निःसत्व आहारसे चूहे अन्धे हो सकते थे। फिर भी इतनी तो बात साफ़ है कि उस अन्धेपनसे उन्हें जमाया तेल नहीं बचा सका और घी बचा सका। और सारी शिकायत यही है कि जमाये तेलपर घीका आरोपण करके वह खाया जा रहा है। उसको रूप, रंग, आदि घीका दिया गया है, यानी शुद्ध घीमें उसकी मिलावट करनेकी सब तरहसे सहूलियत हो गई है। इससे शुद्ध घीका मिलना मुश्किल हो गया है, शुद्ध घीके दाम पूरे नहीं मिलते और जमाये तेलके दाम बढ़ जाते हैं। अगर वह तेलकी शक्लमें होता तो उसकी तुलना तेलसे की जाती और लोग पूछते कि उसके दाम तेलसे बहुत ज़्यादा क्यों हैं? लेकिन आज उसकी तुलना घीसे होती है, यद्यपि घीके गुण उसमें नहीं हैं, जिससे वह महँगा बेचा जाता है और खरीदनेवालेको सस्ता महसूस होता है। यह एक धोखा है।

इसलिए हम इतना ही चाहते हैं कि उसका नाम, रूप और रंग घीका न हो। इस पर कुछ लोग कहते हैं कि "जिसे आप धोखा कहते हैं उसे जब खरीदनेवाले पसन्द करते हैं तो फिर आप 'रूप भी घीका न हो' ऐसा क्यों कहते हैं? नाम और रंग घीका न हो तो बस है, जिससे घीमें मिलावट न होने पाये"। इसपर मेरा उत्तर है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि जब तक रूप उसका घीके जैसा रहेगा तबतक उसकी घीमें मिलावट रोकना सम्भव नहीं होगा। इसलिए मेरा यह आग्रह है। और मैं देख ही रहा हूँ कि रंग मिलानेकी बात तो कबसे हो रही है, लेकिन निर्दोष रंग मिल नहीं रहा है और मिलावट खुलेआम चलती है। लेकिन अगर ऐसा कोई रंग फ़ौरन मिलता है, जो कि निर्दोष भी हो और मिलावटको रोके, तो जमाये तेलका रूप बदलनेका आग्रह मैं छोड़ूँगा और नाम और रंगके परिवर्तनसे सन्तुष्ट रहूँगा। लेकिन यह फ़ौरन होना चाहिए, जो नहीं हो रहा है। कांग्रेस वर्किंग कमिटीने इस बातपर कुछ प्रस्ताव भी किया था। वह प्रस्ताव अभी तक कागज़में ही पड़ा है। जमाये तेलके कारखानेवालेपर यह जिम्मेवारी डालनी चाहिए थी कि फलानी मुद्दतके अन्दर ऐसा कोई रंग निकाले, नहीं तो तेलका जमाया जाना रोका जायगा। वैसा नहीं हुआ। अब वे कारखानेवाले रचनात्मक काम करनेवालोंको साफ शब्दोंमें कहते हैं कि आपसे बनेगा वह आप कीजिये, हमसे बनेगा वह हम करेंगे। इस तरह वे कहते हैं, क्योंकि वे जानते

हैं उनका सितारा आज बुलन्द है। लेकिन इसमें देशके साथ न्याय नहीं हो रहा है।

हमारे पूर्वजोंका अनुभव 'आयुर्वै घृतं' इस छोटेसे सूत्र-वाक्यमें आयुर्वेदने बताया है। अगर उस घीकी शुद्धि, प्रतिष्ठा और क़ीमत गिर गई तो देशका भला नहीं होगा। आखिर यहाँ तक हालत पहुँच सकती है कि जमाये तेलकी आदत पड़नेपर लोगोंको शुद्ध घीका स्वाद ही बुरा लगेगा; क्योंकि इन्द्रियाँ आदतसे बनती हैं। इसलिए यह सारा विषय संकुचित दृष्टिसे न देखा जाय, देश-हितकी व्यापक और दूर-दृष्टिसे देखा जाय।

मोघिया जातिका सामाजिक जीवन

किशोरीलाल गुप्त

भारतवर्षमें मोघिया जाति हजारोंकी तादाद्में है। वह हिन्दुओंमें एक जाति विशेष है और बड़ी कट्टर और बहादुर है। इस जातिका मुख्य व्यवसाय इस समय कृषि और पशुपालन बन गया है; किन्तु प्राचीन समयसे चोरी और डकैती करना ही यह जाति अपना धन्धा समझ रही है। इस कारण इस जातिके लोगोंपर शासनकी कड़ी नज़र रहती है। कोई भी मोघिया बिना पास बाहर नहीं जा सकता। यदि किसीने इस नियमका उल्लंघन किया तो उसको चालान करके सजा दी जाती है। इस जातिकी जरायम पेशा कौममें गिनती है।

उत्पत्ति—इस जातिकी उत्पत्तिकी कई दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। यह जाति अपने-आपको क्षत्रिय जाति समझती है और इस जातिके वृद्ध लोगोंका कहना है कि मुसलमानी शासनमें भारतीय राजपूतोंको डोले देने पड़ते थे यानी अपनी लड़कियाँ विवाहनी पड़ती थीं। उस समय एक बार दिल्लीको अहमदाबादके समीपसे कुछ राजपूत सरदार जा रहे थे। वे विश्रामके लिए एक बावड़ीपर ठहरे। एक लड़कीका डोला जा रहा था। लड़कीने अपना धर्म और सतीत्व नष्ट होते देख बावड़ीमें कूद आत्म-हत्या कर ली। तब डोला वे न ले जा सके और वे भाग निकले और डाके डाल, रास्ता लूट तथा चोरियाँकर अपना निर्वाह करने लगे। इससे इन्हें उस समय बावड़ीवाले राजपूत कहते थे जिसका आगे चलकर अपभ्रंश नाम बावरी बन गया। कारण कुछ भी हो पर यह हिन्दू जातिके अन्तर्गत एक जाति विशेष अवश्य है।*

विस्तार—इनका विस्तार इन्दौर, ग्वालियर, जावरा, धार, देवास, सीतामऊ, रतलाम, मेवाड़ तथा मारवाड़में अधिक संख्यामें है। सभी देशी राज्य सतर्क होकर उनकी निगरानी करते हैं और उनके लिए स्पेशल आफिसर नियत कर रखे हैं। उन्हींके द्वारा इनकी' स्वतन्त्र निगरानी रहा करती है।

रहन-सहन—इस जातिका रहन-सहन पुराने ढंगका है। बच्चोंके सिरपर टोपा व लम्बी आँगी रहती है। पुरुषके सिरपर पगड़ी या शहरोंके समीप बसनेवाले मोघिये बहुधा साफे भी बाँधने लगे हैं। बदनपर बण्डी, आँगी और धोती रहेगी। उधर स्त्रियोंके ओढ़नेको पक्की छींटकी साड़ी और छपी हुई खादी वा लट्ठेके लहँगे होते हैं, हाथोंमें नरेटीके चूड़े पहने जाते हैं। जब कोई मोघिया बाहर निकलता है तब हाथमें लाठी, तलवार अथवा बन्दूक लिये बिना बाहर नहीं निकलता। बाहर गाँव जाते समय उसे पुलिससे पास लेना आवश्यक रहता है। बिना पासके यदि कोई मोघिया बाहर गाँव गया तो पुलिस गिरफ्तारकर उसका बाजाब्ता कोर्टमें चालान पेश कर देती है, जिसका नतीजा यह होता है कि अदालतसे उसे सजा मिल जाती है और ऐसे सजायाफ्तापर पुलिस बड़ी निगरानी रखती है। मोघिया जातिकी रातके समय कभी कभी पुलिस जाँच करती है और रातको ही इनकी हाजिरी होती है। यदि उस समय कोई गैरहाजिर रहा तो वही उसका अपराध समझा जाता है।

शाखाएँ—इस जातिकी मुख्य शाखाएँ दो हैं (१) मार-वाड़े, (२) खेराड़े। इन दोनों शाखाओंकी परीक्षा स्त्रियोंके चूड़ोंसे की जाती है। खेराड़े मोघियोंकी स्त्रियाँ हाथमें ऊपर

* बावरिया जाल लगाकर हिरन आदि पकड़ते हैं। इनकी गिनती जरायम पेशा लोगोंमें है।—सम्पादक

नीचे चूड़ा पहनती हैं और मारवाड़की स्त्रियां मूठ्या पहनती हैं। दोनोंमें रोटी-बेटी व्यवहार होता है।

धर्म—मोघिये लोग हिन्दू धर्म मानते हैं और गंगा तथा पीपलके सौगन्ध मानते हैं, वैसे ही चार भुजाकी आनकी भी यह जाति कायल है। इसका कारण यह बताया जाता है कि बादशाहके यहाँ जब डोला ले जा रहे थे उस समय लड़कीने बावड़ीमें कूदकर आत्म-हत्या कर ली, उसमें पीपलका झाड़ उत्पन्न हुआ इससे इस वृक्षको पवित्र समझ सौगन्ध मानते हैं।

भाषा—बावरी लोगोंकी आम बोलचालकी भाषा मालवी वा मारवाड़ी है। इसके अतिरिक्त प्रान्तीयताके अनुसार भाषामें भी परिवर्तन हो चुका है; किन्तु इनके सांकेतिक शब्द यही लोग समझ सकते हैं जिसका उपयोग समय-समय मोघिये परस्पर वार्तालापमें करते हैं।

गोत्र :—इस जातिमें कई गोत्र हैं जो प्रायः राजपूतोंसे मिलते-जुलते हैं, १. पँवार, २. सोलंकी, ३. चौहान, ४. डाबी, ५. घन्धारा, ६. गहलोत, ७. चारण आदि।

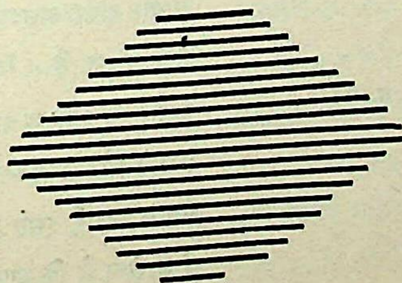
व्यवसाय :—इस जातिका पुराना व्यवसाय ऊँटोंसे धाड़ा (डाका) डालते लूट-मारकर अपना जीवन व्यतीत करना था; किन्तु आजकल सरकारसे मोघिया पगरस जमीन देकर इन्हें अनेक स्थानोंपर एक ही जगह स्थायी तौरपर रखनेकी योजना की गई है और इस जातिपर कठोर निगरानी रखी गई तबसे कृषि और पशुपालनमें यह जाति लग गई है और डाके वगैराका काम बहुत कम कर दिया है। केवल साधारण चोरियोंकी आदत अभीतक समाजमें विद्यमान है। इसके अतिरिक्त मजदूरीका रिवाज भी समाजमें है वैसेही गाँवकी चौकीदारी भी किया करते हैं।

खान-पान :—साधारण भोजनमें मक्का और जुवार खाई जाती है। वैसे ही माँस और मदिरामें लोगोंकी विशेष रुचि है। कोई महमान आया कि वहीं इन दोनों वस्तुओंका उपयोग होता है।

विवाह-शादी :—इस जातिकी विवाह-शादियाँ हिन्दू धर्म व संस्कृति लिये हुए रहती हैं। विवाहके अवसरमें बरात लेकर जानेकी प्रथा है, साथमें स्त्रियाँ भी जाती हैं जो हिन्दुओं के गीत गाती है। लड़केवालेको लड़कीके बापको लगभग ७०० रुपए तक देने पड़ते हैं। यह आम तौरसे नियम नहीं है किन्तु यदि लड़कीका बाप लेना ही चाहे तो इस रक़मसे ज्यादा नहीं ले सकता। विशेष लेनेवाला जातिमें अपराधी समझा जाता है। विवाहकी सारी रस्में हिन्दू-धर्म और संस्कृतिके अनुसार होती हैं। वैसे ही शराबका खर्च कसरतसे होता है।

शिक्षा :—शिक्षामें यह जाति बहुत पिछड़ी हुई है फिर भी सरकार शिक्षित बनानेकी ओर ध्यान दे रही है और इन लोगोंके बच्चोंको समीपवर्त्ती शालाओंमें भरती करनेका प्रयास कर रही है; किन्तु शिक्षाकी ओर अभिरुचि उनकी नहीं है। जहाँ बच्चा ७ या ८ वर्षका हुआ कि उसे ढोर चराने या खेतोंकी निगरानीके काममें लगा देते हैं।

पंचायतें :—जातीय पंचायतें मोसर, तंगोज, या शादी विवाहके समय इकट्ठी होती है। उनमें जातीय मामले पेश होते हैं जैसे नात्रेके झगड़े, जिन्दा पतिके स्त्री दूसरोंके घरोंमें बैठ जाने या आपसी लेन-देनके मामले पंचायतों द्वारा निपटाये जाते हैं।



मालवका एक ग्राम्य-गीत

दलेलसिंह यादव

भारतवर्षका सर्वस्व ग्रामोंमें है और उनका अस्तित्व भारतवर्षका अस्तित्व है। इन्हीं भावनाओंसे प्रेरित होकर आज प्रत्येकका ध्यान स्वाभाविक ही ग्रामोंकी ओर केन्द्रित है।

ग्राम्य जीवन श्रममय है। श्रमसे होनेवाला शारीरिक कष्ट संगीतसे भुलाया जा सकता है। अतएव श्रमके साथ संगीत जोड़कर ग्रामीण अपने जीवनको सुखमय बना लेते हैं। वे चरस चलाते, हल बक्खर चलाते, निकाई-गुड़ाई करते तथा बैलगाड़ियोंसे माल ढोते समय कुछ-न-कुछ सामूहिक रूपसे या पृथक-पृथक गाते रहते हैं। ये गीत ग्रामीणोंकी ही कृतियाँ होती हैं; जो जहाँकी कृति होती है वह वहींकी भाषामें वहींके निवासियोंके मुखसे सुनते ही बनती है। वर्षाकालीन सामूहिक ग्राम्य-गीतोंकी सुरीली तान तो मनको आकर्षित ही कर लेती है। निम्नांकित मालवी भाषाका एक ग्राम्य-गीत है :—

अन्नदाता री सेज म्हारो देश मालवो।

घर घोड़ा पियु बावरा
काँठल केरो — वास
नित्य जुझाऊ बाजिया
तो काँई चुड़ला री आस

अन्नदाता री सेज म्हारो देश मालवो...

साजन साजन मैं करूँ
साजन जीव—जड़ी
सूरत जड़ाऊँ चूड़ले
निरखूँ घड़ी घड़ी

अन्नदाता री सेज म्हारो देश मालवो.. —

साजन म्हारा देशमें
उपजै तीन रतन
एक ढोलो दूजी मारूनी
तीजो कसूमल-रंग

अन्नदाता री सेज म्हारो देश मालवो..

चित्त-चंदेरी, मन-मालवो
हियो - हाड़ोती माँय
सेज बिछाऊँ रणतभँवर
पौढ़ू माँडव माँय

अन्नदाता री सेज म्हारो देश मालवो॥

प्रस्तुत गीतमें मालवस्थित एक राजकन्या अपने चुने हुए भावी पतिके नाम, जो राजकुमार है, और अपनी सेना सहित कांठल प्रदेशमें युद्ध कर रहा है (कांठल प्रदेश मालवकी पश्चिम सीमापर स्थित प्रदेश है जिसमें डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ आदि रियासतें विद्यमान थीं तथा जो झाड़ियों और पहाड़ियोंसे आच्छादित है) ऐसी अनुपजाऊ भूमिके लिए युद्ध और वह भी दिन-प्रतिदिन भयंकरता धारण करता जा रहा है, इस चिन्तासे विशेष चिन्तित होकर एक पत्र लिख उनका ध्यान उपजाऊ मालव महीकी ओर आकर्षित करती हुई विनय करती है कि—मेरा प्रान्त बड़ा सुन्दर तथा उपजाऊ है, इसे युद्ध-भूमि नहीं बनने दें तथा दुश्मनोंके चंगुलसे इसे पूर्ण स्वतन्त्र रखकर आप मुझे प्राप्त करें। फिर आप और मैं यहाँ सुखसे दिन बितायें। प्रथम मालव महीकी रक्षा, पुनः प्रेम-मिलन—कितनी विकट परीक्षा है इस स्नेह सम्मेलनके व्यापारमें!

राजकन्याका कथन है, "मेरा देश अन्नका अखण्ड आगार होकर अन्नदाता (श्रीमान्) की कृपा-कटाक्षोंमें आश्रय लेना चाहता है; किन्तु काँठल प्रदेशके युद्धको देखते हुए जहाँ नित्य जुझाऊ बाजे बज रहे हैं; घरके घोड़े (स्वयंकी सेना) और उनके नेतृत्वको मेरा पियु (पति) बावला बनकर सँभाल रहा है इससे मुझे मेरे चूड़ेकी रक्षा (सुहाग-कामना) में आशंका है कि अपनी इष्ट सिद्धि न होनेपर कहीं आजीवन कुमारी दशामें विधवा ही न रहना पड़े राजकुमार!

मैं आत्मासे आपको पतिके रूपमें देख चुकी हूँ, इसी भावनाको ईश्वर कर्त्तव्यमें परिणत करे। मैं अपने जीवन-जड़ी (मूल) साजनकी स्मृतिमें साजन-साजन पुकारती रहती हूँ। इतना ही नहीं, आपके चित्रको मैं अपने चूड़ीके नगोंमें जड़ा-कर प्रति घड़ी देखनेके लिए लालायित हो उठी हूँ राजकुमार !

प्रेम-मद-छाकी राजकन्या, राजकुमारोंकी अल्हड़तासे पूर्ण भिज्ञ है, वे कितनी ही रमणियोंको भोगके लिए प्यारकर ठुकरा देते हैं। सम्भव-युद्धजीवी राजकुमारको प्रेम चर्चाकी अपेक्षा राज्य संग्रहसे विशेष रुचि हो तो ? राजकुमारी अपने देशका मधुर परिचय देकर प्रेमीको प्रेम-पाशमें बाँधना चाहती है।

हे साजन ! मेरे देशके तीन रत्न हैं, तीनसे चौथी कोई अलभ्य वस्तु नहीं है, वे तीन हैं— १-ढोला (प्रेमी) २-मारूनी (प्रेमिका) ३-कसूमल रंग। इस कसूमल रंगमें रँगा जानेपर आप जो दौड़-धूप कर रहे हैं इससे अवकाश पा लेंगे तथा अपनी प्रेमिकाके प्रेम-कटाक्षोंसे अभी तक युद्धके अत्यन्त दुःखदाई संकटोंको भूल बैठेंगे। अन्नके लिए तो मालवमें कमी ही नहीं है जिससे पुनः आपको अन्य देश विजय करना पड़े। एक मालव प्रान्त ही ऐसा है, जो आपकी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण कर सकता है, राजकुमार !

कसूमल—(१) यह एक रंग विशेष है जिसकी कृषि मालव-प्रान्तमें बहुतायतसे की जाती थी। इस रंगसे रँगी हुई पक्की छींटें जो बहुत दूर-दूर तक बिकने जाती थीं, यहीं तैयार होती थीं। ये मालवी छींटें अपने ही ढंगकी थीं। ग्राम-ग्राममें रँगाईका कार्य होता था।

(२) मालव-प्रान्तमें अफीमकी कृषि उसी प्रकार होती है जिस प्रकार कश्मीरमें केसर की। उत्तर भारतमें केसर और सरसोंके फूलोंकी पीत आभा जितनी मन-भावनी होती है उतनी ही मालवमें अफीमके कुसुमल और श्वेत रंगके फूलों की आभा होती है। इन फूलोंकी छटाको भी कुसुमल छटा कहते हैं—इन्हीं दिनोंमें जब अफीमकी कृषि पूर्ण विकसित रहती है, तब होलीका मस्त त्योहार हमारे देशमें आता है। इस समय यहाँ कुसुमल रंगसे जो पलाश पुष्पोंसे भी तैयार किया जाता है, होली खेलते हैं। होली खेलनेके पश्चात् अनोखी वेश-भूषामें जब राजमहलोंमें दरबार हुआ करते थे, अधिकांश दरबारमें सम्मिलित होनेवाले तत्कालीन सम्भ्रान्त व्यक्ति कुसु-मल वस्त्रोंमें ही सजकर जाते थे।

(३) यहाँके सभ्य कहलानेवाले कुटुम्बोंमें, विशेषकर राजपूतोंमें प्रतिदिन कुसुम्भा पीनेकी परिपाटी अभीतक है। इससे ये अपने अतिथिका सत्कार करनेमें अपनी विशेष शोभा समझते हैं। यह कुसुम्भा (गालमाँ) अफीमकी डलीको पानीमें गला, उसका जल रूई द्वारा एक-एक बूँद करके घण्टोंमें छान-कर तैयार करते हैं। बहुत बड़े महाशयोंके यहाँ तो इस कार्यमें कई व्यक्ति अपना सारा समय इसीके बनानेमें बिता देते हैं। इतना समय व्यय करनेके पश्चात् तैयार किया हुआ कुसुम्भा चाँदी या सोनेके प्यालोंमें सुशोभित किया जाकर इष्ट मित्रोंके स्वागतमें खर्च किया जाता है। इस अहिफेन स्वल्पसे जो नशा आता है उसे कुसुमल रंग कहकर पुकारा जाता है।

इस रंगके साथ राजकन्या राजपुत्रको रखनेका प्रलोभन दे रही है। यह सब कृपा मालव भूमिकी है जो कम परिश्रम में ही कृषकोंको अपार अन्न प्रदान करती है। इससे यहाँके कृषक अन्य प्रान्तोंके कृषकोंसे आलसी दिखाई देते हैं। ऐसे विश्राम-प्रिय राज्यका अधिष्ठाता क्योंकर न सुखी रहेगा ? राजकन्या अपने प्रान्तको रक्षित रखनेके हेतु मालवकी सीमापर पड़नेवाले प्राचीन कालके सुदृढ़ किलोंको भी अपने अधिकारमें कर लेनेकी इच्छा प्रकट करती है। उसका कथन है कि मेरा चित्त चन्देरी गढ़में लगा हुआ है। सम्भव है वहाँके नृप मालवपर हमलाकर अपने सम्पूर्ण सुखका नाश न कर डालें ; मेरा हृदय हाड़ोतीमें लग हुआ है जिसमें कोटा, बूँदीऔर गागरोन-से अजेय गढ़ विद्यमान हैं—तथा इसी प्रान्तके निकटमें जो रणथम्भोर नामक गढ़ है वह तो मुझे इतना प्रिय लगता है कि मैं आपकी सेज (शयनके हेतु किया हुआ बिछौना) की व्यवस्था वहीं करूँ और मैं मालवके सुदूर दक्षिणमें स्थित मांडवगढ़में सोया करूँ, क्योंकि दोनों ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं राजकुमार !

भारतीय इतिहासमें गांधी-युगकी देन

गोपालकृष्ण मल्लिक

१९१८ का महायुद्ध समाप्त हो चुका था। देशमें सामूहिक उत्तरदायित्व और सर्वांगीण जागरणकी कोई चेतना न थी। राष्ट्र-शरीरके अंगोंमें बेचैनी थी, पर कोई सर्वग्राही भाव राष्ट्रके अन्तःकरणसे उठने नहीं पा रहा था। आत्मा विस्मृत, सुप्त एवं दबी हुई थी। लोग बोलते थे, पर उनकी वाणी आपसमें टकरा जाती थी। कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो सबमें व्याप्त होकर, फिर भी सबके ऊपर उठकर सबपर छा जाय; जो हमारे मन, प्राण, शरीर सबको अभिभूत कर ले। साधकको मन्त्र तो दिया जा चुका था, पर आत्मयोगके लिए अनिवार्य शक्तिका आह्वान और संचार न हो पाया था। शक्ति थी, पर वह विकृत, विशृंखल आत्म-विस्मृत और जड़ हो रही थी।

ऐसे ही समय एक दुबले, देखनेमें गँवारसे, आदमीकी वाणी सुनाई दी। इस वाणीमें कुछ अद्भुद बल था जिसने लक्ष-लक्ष हृदयोंको स्पर्श किया। एक कोनेसे यह वाणी उठी और देखते-देखते समस्त विश्वके ऊपर छा गई। पं० जवाहर लालजीने इसका जिक्र-करते हुए अपने महाग्रन्थ 'विश्व-इतिहासकी झलक' में लिखा है—"किन्तु यह आवाज दूसरोंसे कुछ भिन्न थी। यह शान्त और धीमी थी। फिर भी सर्वसाधारणके शोरके ऊपर सुनाई देती थी। यह मुलायम और नम्र थी, फिर भी इसमें कहीं फौलाद छिपा हुआ था। यह मीठी और अपीलसे भरी हुई थी, फिर भी इसमें कोई दृढ़ और डरावनी चीख थी। उसमें इस्तेमाल किया हुआ प्रत्येक शब्द अर्थसे भरा था और उसके पीछे जबरदस्त सचाई मालूम पड़ती थी। शान्ति और मित्रताकी भाषाके पीछे सत्य और क्रियाकी काँपती हुई छाया थी और अन्यायके आगे न झुकनेका निश्चय था। आज तो हम इस आवाजसे परिचित हो गए हैं...परन्तु, फरवरी, मार्च १९१९ में वह हमारे लिए नई थी। हम ठीक तरहसे नहीं जानते थे कि इसका क्या करना चाहिए; पर हम पुलकित हो उठे। निन्दाकी हमारी शोरगुलभरी राजनीतिमें से यह कुछ एक बिल्कुल जुदा चीज थी। उस राजनीतिसे बिल्कुल यह भिन्न थी, जो सदा विरोधके निस्सार और बेअसर प्रस्तावोंमें, जिनपर कोई ज्यादा ध्यान न देता था, खत्म होती थी। यह क्रियाकी लड़ाईकी राजनीति थी, बातचीत और विवादकी राजनीति नहीं।"

भारतीय राजनीतिमें गांधीजीके आगमनके तुरन्त दो परिणाम हुए। पहली बात तो यह कि राजनीति फैशन और विनोदकी चीजकी जगह शील और अध्ययनकी चीज बन गई। वह रईसोंके महलोंसे निकलकर सर्वसाधारणकी झोंपड़ियोंकी ओर मुड़ी, 'सरों' और 'रायबहादुरों'की सीमाके बाहर चली गई। धीरे-धीरे वह जनताकी तरफ आकर्षित होने लगी। पहली बार लाखों ग्रामीण एवं अशिक्षित लोगोंने इसमें दिलचस्पी ली। फलतः वे मुट्ठी भर लोग, जो अभी तक आराम और वैभवका जीवन बिताते हुए केवल प्रस्ताव पास कर देने तक अपनी राजनीतिकी सीमा समझते थे; जिनकी देशभक्ति उनके भाषणोंकी सुन्दर अंग्रेजी भाषासे जाँची जाती थी, इससे अलग हो गए। पहली बार राजनीतिमें सर्वसाधारणकी वाणीकी हुँकार प्रतिध्वनित हुई और क्लबोंकी जगह जेलोंमें उसका सिंचन आरम्भ हुआ।

दूसरा परिणाम यह हुआ कि पहली बार देशके सामने आजादी हासिल करनेके लिए एक खुला हुआ कार्यक्रम रखा गया। देशको केवल एक स्पष्टतः घोषित कार्यक्रम ही नहीं मिला, वरन् इससे भी अधिक महत्त्वकी बात यह हुई कि उसे एक ऐसा साधन भी गांधीजीसे मिला, जिससे जनताको स्वतन्त्र होनेकी पहली बार व्यापक सम्भावना हुई। इसके पूर्वके क्रान्तिकारी आन्दोलन, हिंसा एवं षड्यन्त्रके कारण स्वभावतः गुप्त एवं गोपनीय थे। सर्व साधारणसे उनका सम्बन्ध न था। लोगोंकी इच्छा अनिच्छाका उनपर कोई प्रभाव न हुआ था।

इसलिए उनके कार्यक्रम भी सीमित थे और बहुत थोड़े लोगोंका जीवन तथा विचारधारा प्रतिबिम्बित होती थी। देश-स्वतन्त्रता प्राप्तिका कार्यक्रम किस प्रकार किन उपायों और साधनोंसे पूरा किया जायगा, इसकी कोई निश्चित योजना लोगोंके सामने न थी। यह स्पष्ट था कि भारत जैसे देशमें हिंसाके द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यकी सुदृढ़ दीवारोंको हिलाया नहीं जा सकता था। हिंसा-अहिंसाकी तात्विक विवेचनाको छोड़कर शुद्ध व्यावहारिक कार्यक्रमकी दृष्टिसे भी इन बातोंका कुछ अधिक मूल्य नहीं था। हिंसापूर्ण उपायोंसे देशकी स्वतन्त्रता की सिद्धि केवल दो ही प्रकार सम्भव हो सकती थी—(१) खुली बगावत, (२) ब्रिटेनके शत्रुदेशोंसे मिलकर षड्यन्त्र तथा बगावत। यह स्पष्ट है कि भारतमें इस प्रकार सफल विद्रोहकी सम्भावना कम-से-कम थी।

इस प्रकार जब गांधीजीने भारतीय राजनीतिके क्षेत्रमें पदार्पण किया, तब हमारे सामने न तो स्वतन्त्रताका कोई संगठित कार्यक्रम था, न किसी ऐसे साधनका पता था, जिससे स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी व्यापक रूपसे आशा की जा सके। संगठित सशस्त्र क्रान्ति असम्भव थी और व्यक्तिगत आतंकवाद व्यर्थ था। इसका प्रभाव जनतापर और बुरा पड़ता था। इसलिए भारतकी आत्माभिव्यक्ति साधनके अभावमें शिथिल, पीड़ित और मूर्च्छित थी। जो बेचैन थे, उनमें भी कुछ न कर सकनेकी खीझ और असफलताका दंश था। गांधीजीने पहली बार रोगका ठीक निदान किया और उन्होंने राष्ट्रको एक ओर तो अपनेको अभिव्यक्त करनेका मौका प्रदान किया, दूसरी ओर उस अभिव्यक्तिके योग्य साधन दिए। उन्होंने देशसे कहा कि यह ब्रिटेनकी अपनी शक्ति नहीं, वरन् उसे मिलनेवाले तुम्हारे सहयोगकी शक्ति है, ज़िसपर हमारी गुलामीका भवन-शासन टिका हुआ था। अपना सहयोग खींच लो यह भवन निरवलम्ब तथा निराधार होकर ढह पड़ेगा।

यह क्रियात्मक देन भी अधिक मूल्यवान तथा वह मनोवैज्ञानिक परिवर्तन है, जो गांधीजीके आगमन और उसकी इस देनसे राष्ट्रके मानसमें हुआ। पहलीबार राष्ट्रने सुना कि शक्ति अपनेसे बाहर नहीं है और अपनी शक्तिका अनुसन्धान-मार्ग अपनी ओर देखनेमें है। अभी तक नरम दल और हिंसक क्रान्तिकारी अपनी असफलताके लिए दूसरी ओर देखते थे। उनकी आशा और प्रतीक्षा विशेष परिस्थितियोंके प्रति थी। गांधीजीने देशको आत्म-विश्वासका मन्त्र दिया। उनकी बराबर यही आस्था रही कि दूसरोंकी सहायतासे स्वतंत्रता नहीं मिल सकती है। इतना ही नहीं, वे यह भी कहते रहे कि इस प्रकारकी बाहरी सहायता, दानसे मिली हुई स्वतन्त्रता, लेने योग्य नहीं है, क्योंकि जो स्वतन्त्रता अपनी शक्तिसे प्राप्त न होगी, उसकी रक्षा भी नहीं हो सकेगी। इस प्रकार देशको आत्म-परिचयका जो स्वाद मिला, उससे हमारी मानसिक शिथिलता दूर हो गई और हमारी सुप्त आत्मा उठकर चौकन्नी हो गई।

आत्म-परिचयके इस उल्लासने स्वभावतः सार्वजनिक जीवनकी नैतिक मर्यादाको ऊँचा कर दिया। १९२१ के वे दिन याद हैं, जब चोरों और डाकुओंकी वृत्तिमें भी गांधीवादके क्रियात्मक स्पर्शसे एक साधुता आ गई थी। गांधी टोपीकी साख बाजारमें बेहद बढ़ी हुई थी। उसे पहननेवालोंकी ओर पीड़ित जनता माताकी भाँति देखती थी। लोगोंने आम व्यसनोंका त्याग करना शुरू कर दिया था। पहली बार सार्वजनिक जीवन, विशेषतः राजनीतिक क्षेत्रमें सचाई, सरलता, साधुता तथा सदाचारिताको अनिवार्य महत्त्व प्राप्त हुआ। अनेक शराबियोंने शराबका त्याग कर दिया। अनेक आदमियोंने अपना सर्वस्व गँवानेका खतरा उठाकर भी अपने विरोधियोंपर से मुकदमा उठा लिया। पहली बार राष्ट्रने उस सच्चे आत्मोल्लासका अनुभव किया, जो संकुचितताके ऊपर उठनेपर होता है। अनेक वेश्याओंने वेश्या-वृत्ति त्याग दी। हजारों आदमियोंने अपनेको ऊपर उठानेवाला अथवा शोधित करनेवाला एक-न-एक व्रत लिया। इन बातोंको चाहे जिस दृष्टिकोणसे देखा जाय इतना तो मानना पड़ेगा कि यह एक नवीन शक्तिका, जो राष्ट्रमें आ रही थी, प्रतीक थी।

१९२० से १९४८ ई० तक २८ वर्ष हो गए। गांधी युग अभीतक चल ही रहा है। बीच-बीचमें लोग कहते रहे हैं गांधी और गांधीयुग अब खत्म हो गये, पर यह बात तो खीझकी वाणी थी। गांधी खत्म होकर भी खत्म नहीं होता।

जब कुछ लोग उसके युगकी समाप्तिकी घोषणा करते हैं, वे जी उठते हैं। अब जब उनका भौतिक रूप इस पार्थिव जगतसे उठ चुका है, तब भी वही बात है, वही गांधीयुगका क्रम चल रहा है और चलता रहेगा जबतक यह सृष्टि-क्रम चलता रहेगा। उसे कोई हटा नहीं सकता, छिपा नहीं सकता और न मिटा ही सकता है। उनका आचरण, उनकी वाणी, उनकी देन, उनकी कृति युग-युगान्तर तक मानवताके लिए अमूल्य देन होगी—सबसे बड़ा प्रकाश।

इस विगत गांधी युगमें हमने तीन क्रियात्मक अहिंसक लड़ाइयाँ लड़ी हैं। १९२१ का असहयोग-आन्दोलन 'युद्ध कौशल' और 'विचारधारा' में बिलकुल नया था। इसलिए उसके संगठनमें अनेक कमियाँ रह गई थीं। ९-१० वर्षकी तैयारीके बाद १९३० का सत्याग्रह आया। इसने सचमुच ब्रिटिश साम्राज्यको कँपा दिया। कम-से-कम यह तो प्रकट हो ही गया कि गांधी जिस सत्याग्रहकी शिक्षा देता है—उसमें असीम सम्भावनाएँ हैं। १९३२ का आन्दोलन तो १९३० के आन्दोलनका ही एक पूरक और उपसंहार अस्त्र था और सन् १९४२ के अगस्त-आन्दोलनने, जो विश्वके इतिहासमें विरला सिद्ध हुआ, यह स्पष्ट कर दिया कि सत्याग्रह निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं है और युद्धके रूपमें इसका भली-भाँति प्रयोग किया जा सकता है। यह भी एक अमित शक्ति है और जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें सफलतापूर्वक इसे वर्ता जा सकता है।

आज १९४८ की राजनीतिक घटनाओंका विद्यार्थी उस आकस्मिक परिवर्तनकी कल्पना नहीं कर सकता, जो १९१९ और १९२० में अपनी असाधारणताके कारण, एक आश्चर्य और दैवी घटनाओंकी भाँति हमारे जीवनमें आया। जैसे खुले आकाशके नीचे घोर निद्रामें पड़ा आदमी एकाएक जोरकी आँधी एवं वर्षा आ जानेसे घबराकर उठ खड़ा होता है और अपनी शक्तिके अनुसार अपनेको व्यवस्थित कर लेनेमें बुद्धि और विचारकी अपेक्षा प्रेरणासे ही अधिक शासित होता है, कुछ वैसी ही दशा हमारे मनकी भी थी। एक अनुभूत प्रेरणा यन्त्र की भाँति हमारा संचालन कर रही थी और हम किंचित गौरव, किंचित् आश्चर्य और किंचित् सम्भ्रमके साथ एक महान् आलोड़नको स्वयं चक्राकार घूमते हुए देख रहे थे।

यह ठीक है कि १९०५ के बंग-भंग एवं तत्सम्बन्धी स्वदेशी आन्दोलनने राष्ट्रिय चेतनाके पिंजर-बद्ध पंखोंमें एक स्पन्दन उत्पन्न किया था और यह भी ठीक है कि उसने साहित्य, विज्ञान और कलाकी दुनियामें एक अद्भुत भावावेषका सृजन किया। हमारे साहित्यके जीवनमें इस युगका लगभग वही महत्त्व है, जो यूरोपीय इतिहासमें 'रिनैसाँ' का है। इस भावावेशने रविबाबू जैसे महापुरुषके निर्माणमें बड़ी सहायता की।

गांधी युगकी यह एक व्यावहारिक देन है कि इसने सेवाकी सामूहिक भावनाओंको बढ़ाया है। इसने देशके लिए हजारों ऐसे सेवक पैदा कर दिए हैं, जो अपना सारा समय केवल सार्वजनिक सेवा-कार्योंमें ही लगाते हैं। यह इसीका परिणाम है कि आज राष्ट्रके पास अवैतनिक सेवकोंकी एक बहुत बड़ी अनियमित सेना है। काम पड़ते ही हजारों-लाखों तैयार हो जाते हैं। कांग्रेस द्वारा निश्चित प्रत्येक कार्यक्रम, उसके सन्देश गाँव-गाँव पहुँच जाते हैं। फिर सेवाके विषयमें केवल संख्यागत ही वृद्धि नहीं हुई है, वरन् मर्यादा और गुणमें भी पर्याप्त विकास हो गया है। सार्वजनिक सेवाके जीवनमें नीति और त्यागकी इतनी ऊँची माँग गांधीजी एवं गांधी-युगकी देन है। बिना त्यागके सेवा सन्देहकी दृष्टिसे देखी जाती है। त्यागका अर्थ है अधिक-से-अधिक व्यक्तिगत या सामाजिक सुविधाओंका स्वेच्छापूर्वक समर्पण। इसके कारण सेवकों और सेव्य जनतामें एक प्रकारकी एकजातीय भावना पैदा होती है।

गांधी-युगकी दूसरी बड़ी व्यावहारिक देन यह है कि इसने जनताके प्रत्येक अंगमें चैतन्य फूँक दिया है। सामाजिक, धार्मिक तथा जातिगत प्रत्येक क्षेत्रमें, सजगताका आज एक स्वर है। इसने ऐसा नहीं किया कि केवल राजनीतिको लिया हो और अन्य क्षेत्रोंकी उपेक्षा की हो। इसने राजनीतिको तो प्राणोदित किया ही पर अन्य क्षेत्रोंको भी चेतना एवं परिष्कारसे भर दिया है। चेतनाका स्वर समस्त जीवनपर छा गया है। यह विभक्त एवं एकांगी नहीं है, सर्वांगीण एवं विस्तृत है।

इसने राजनीतिको शक्ति एवं स्फूर्ति दी, स्वतन्त्रताकी रणभेरी बजाई, सदियोंसे उपेक्षित, पद-दलित अछूतोंको भी आश्वासन दिया। इसने सामाजिक कुरीतियों, अपव्यय, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल विवाह या जबर्दस्ती विवाह, परदा, स्त्रियोंकी उपेक्षा आदिपर जबर्दस्त प्रहार किया। इसने लोगोंमें कर्त्तव्य और जिम्मेवारीकी भावना जाग्रत की, श्रमके प्रति गौरवका भाव लोगोंमें बढ़ाया, नागरिक जिम्मेदारीके भावको उत्तेजन दिया। आज देशमें सैकड़ों संस्थाएँ गांधीजीके आदर्श एवं भावनासे अनुप्राणित हो विधायक तथा ठोस कामोंमें लगी हुई हैं।

यहां हम सत्याग्रहके तात्विक स्वरूपकी चर्चामें नहीं पड़ना चाहते ; किन्तु उसके व्यावहारिक एवं क्रियात्मक कार्यकी संक्षिप्त आलोचना आवश्यक है क्योंकि बिना इसके गांधी-युग और उसकी देनका महत्त्व समझा नहीं जा सकता। पहले कहा जा चुका है कि गांधीजीने अपने आगमनके साथ ही हमें क्रियात्मक युद्धका एक अर्थ एवं साधन प्रदान किया। अपने सतत परीक्षण एवं संशोधनसे इसे उन्होंने एक विज्ञानका रूप दिया। यह विज्ञान जीवनके प्रत्येक स्तरको छूता है—यह समस्त जीवनका विज्ञान है। यह जीवनके सामूहिक उदय एवं विकासका विज्ञान है। इसे गांधीजीने सर्वोदय जैसा नाम प्रदान किया है। इससे स्पष्ट है कि यह जीवनके राजनीतिक, समाजिक, आर्थिक इत्यादि नाना प्रकारके टुकड़े नहीं करता, वरन् प्रत्येकको या सबको साथ लेकर, सबके विकासको परस्पर अखण्ड या कम-से-कम पूरक मानकर चलता है। 'सर्वोदय' लक्ष्य है। इस सर्वोदयमें स्वराज्य सम्मिलित है। राजनीतिक स्वतन्त्रता इस सर्वोदयका एक अंग है। सत्याग्रह इस लक्ष्यकी साधना है। जब गांधीजीका लक्ष्य सर्वोदय था तब स्वभावतः ऐसे साधनकी खोज एवं ग्रहण करना उनके लिए अनिवार्य था, जिससे साधन एवं लक्ष्यकी समानता एकजातीयता सिद्ध होती। संसारकी समस्त राजनीतिक विचार धाराएँ साधन एवं साध्यकी अनिवार्य एकताको अस्वीकार करके चलती हैं और आज भी चल रही हैं। यह स्थिति मनोवैज्ञानिक एवं तात्विक दृष्टिसे असंगत हैं। वस्तुतः साधन साध्यसे भिन्न नहीं है। गांधीजीने इसी तत्वको राजनीतिमें भी स्वीकार किया।

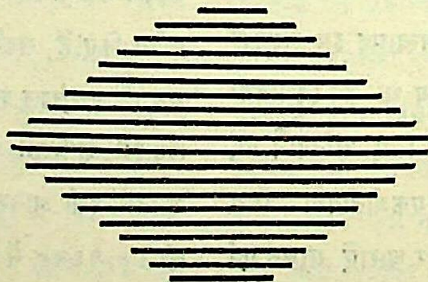
गांधीजी अहिंसापर जोर देते हैं, उसका कारण यही है। प्रेगेलकी सभी सामाजिक विचार-धाराएँ वस्तुतः समाजमें अहिंसाके लक्ष्यकी स्थापनाको लेकर चल रही हैं। मेरा तात्पर्य यह है कि वर्त्तमान जगत एवं समाजके मूलमें जो हिंसा है, जो उत्पीड़न और अनीति है, जो वैषम्य है उसीको दूर करना प्रगतिशील विचारकोंका ध्येय है। अन्तर है केवल साधनोंमें, विश्वास एवं भावनामें, 'स्पिरिट'में। उनका विश्वास है कि घोर हिंसापर प्रतिष्ठित वर्त्तमान समाजमें आमूल परिवर्तन करनेके लिए हिंसा एवं जबरदस्तीका आश्रय लिए बिना काम नहीं चल सकता। गांधीवाद इस बातको न केवल अस्वीकार करता है वरन् जोरोंके साथ इस विचार-प्रणालीपर आघात करता है। गांधीवादकी घोषणा यह है कि हिंसासे अहिंसाकी स्थापना नहीं हो सकती। वही हिंसा जो आज समाजको ग्रस्त कर रही है, कर्ण-सुखद नामों एवं सुदर्शन रूपोंमें पुनः प्रतिष्ठित न हो जाय।

गांधीयुगमें जिन साधनोंके इस्तैमालपर जोर दिया जाता रहा है, उनका परीक्षण करनेपर आप देख सकते हैं कि वे न केवल तात्विक दृष्टिसे सही हैं, वरन् व्यावहारिक दृष्टिसे भी अधिक उपयोगी एवं फलप्रद हैं। गांधीवाद जिन बातोंपर जोर देता है, उनमें एक 'अभय' है। यह अभय ही वस्तुतः अहिंसा है। यह गांधीयुगकी समस्त प्रेरणाओंकी कुंजी है। हिंसाके मूलमें सदैव भय होता है। गांधीजीने आज भारतके सार्वजनिक क्षेत्रमें जितने कार्यक्रम रखे हैं और जितने भी प्रयोग किए हैं, सबके मूलमें अभयकी वृद्धिकी भावना रही है। भय ही उच्छृंखल शासनका आधार है। १९२० से आजतक लड़ाईमें, शान्तिमें अपने प्रत्येक कार्यक्रमके द्वारा गांधीजीने जनतामें इसी आवश्यक गुण एवं शर्त अभयको बढ़ानेकी चेष्टा की। १९२० में रौलट ऐक्टके विरुद्ध जब उन्होंने सत्याग्रह किया, तब उन्होंने जनताको यही मन्त्र दिया। आत्म-विश्वास इसी अभयका तथा मानवोंकी नैतिकताका प्रतिरूप था। इससे आप स्पष्टतः देखते आए हैं कि भारतकी जनता बिना अस्त्र-

शस्त्रके भी बड़ी-से-बड़ी असहयोग और सत्याग्रहकी लड़ाई लड़ती आई है। १९३० और १९४२ का अगस्त-आन्दोलन इस अभय मन्त्रका ही परिणाम है। जो जनता एक मामूली लाल पगड़ीवालेको देखकर भय खाती थी, त्रस्त हो जाती थी, वही जनता १९२०-३०-३२ और ४२ के आन्दोलन कर सकती है। गांधी-युगकी मुख्य प्रवृत्ति सदा यही रही है कि हम अपनेको योग्य बनायँ, अपनी शक्ति एवं आत्म-विश्वास को लेकर खड़े हों। शत्रुकी स्थितिसे फायदा उठानेकी अपेक्षा अपनी सुदृढ़ताकी ओर ही इसका ध्यान अधिक रहा है।

गांधीजी और गांधीवादका यह युद्ध जो उन्होंने १९२० में आरम्भ किया था, बराबर जारी है। अथवा यों भी कह सकते हैं कि जिसकी भूमिका दक्षिण अफ्रीका, खेड़ा और चम्पारनमें पड़ी थी वह युद्ध कभी बन्द नहीं हुआ है। एक शब्दमें यह आत्म-प्रकाशका युद्ध है। यह अन्तःकरणकी आवाज़को दबानेवाले आवरणों एवं बन्धनोंके विनाश करनेका युद्ध है। यह उन सब अस्वास्थ्यकर बाधा-बन्धनों तथा कठिनाइयोंको चूर्ण-विचूर्ण कर देनेके लिए है, जिनके कारण तुच्छ स्वार्थोंसे दबकर मानव अपनी आत्माकी वाणीका विरोध करता है।

इस ठण्डी लड़ाईमें जो इस समय चल रही है, जो अनेक विधायक कार्यक्रम रखे गए हैं, इनका अपना महत्त्व है। इन्हीं की नींवपर राष्ट्रके भवनका निर्माण हो रहा है। मजबूत और सुदृढ़ मकान जल्दबाजीमें नहीं बना करते। ये कार्यक्रम भी कुछ नए नहीं हैं। अधिकांश गांधी-युगके आरम्भसे चले आ रहे हैं। इनमें एक खादी है। लोगोंका कहना है कि आधुनिक विज्ञान-युगमें यह असम्भव-सी चेष्टा है, एक हास्यास्पद प्रयत्न है। गांधीजीने तो इसे एक प्रतीकके रूपमें पुनर्जीवनका सन्देश दिया है। गांधीजीने मरती श्रद्धाको फिरसे जिलाया है। उसने धर्ममें मानवकी तात्विक श्रेष्ठतामें, ईश्वर या सत्यमें हमारी आस्था उत्पन्न की और कहा कि किसी कीमतपर आत्मा बेची नहीं जा सकती। गांधीवाद मूलतः एक सांस्कृतिक प्रवृत्ति है। उनके जीवनसे जो तत्वज्ञान प्रकट हो रहा है, उसका हमारी संस्कृतिके संशोधन और विकासमें क्या स्थान है, उनकी राजनीतिक सेवाओंके पीछे इस अनित्य वातावरणके बाहर, मानवताकी जो एक आशा नदीकी तरंगोंपर ऊपर-नीचे होनेवाली नावकी तरह हिलती-डुलती जीवनकी अनेकानेक प्रवृत्तियों एवं संस्कारोंको धक्के देती, डुबाती और उठाती प्रकट हो रही है, उसका निर्देश और विवेचन अभी ब्योरेसे कहाँ हो पाया है? विश्वविद्यालयोंमें गांधीवाद खोज और गम्भीर विचारका एक अच्छा विषय बन सकता है। पर राजनीतिकी केवल ऊपरी सतह तक पहुँचनेवाली हमारी धुँधली दृष्टिने उसकी उपेक्षा की है। समाज-निर्माणकी दृष्टिसे, भारतीय संस्कृतिकी दृष्टिसे, व्यापक विश्व-समस्यायोंकी दृष्टिसे उसका क्या महत्त्व है, उसमें क्या विशेषताएँ हैं, क्या कमियाँ हैं इस ओरसे हम बिलकुल उदासीन-से हैं।



हीनता ग्रन्थि : एक परिचय

सौमित्र

जीवनके प्रति नकारात्मक रुख रखना, अपनेको अयोग्य समझना अथवा जीवन-क्षेत्रमें परास्त अनुभव करना हीनता-भावना है। जब यह भावना व्यक्तिको जीवनके अनुपयोगी पक्षकी ओर प्रेरित करती है या उसे कुण्ठित कर देती है तब ग्रन्थिका रूप धारण कर लेती है।[1]

हीनता ग्रन्थि संज्ञाकी मौलिकताका श्रेय डा० सिगमण्ड फ्रायडको है। फ्रायडने योनि-अंगों (Sex Organs) में अनुभावित अथवा अनुमानित विकारके भयसे उत्पन्न नकारात्मक भावनाको व्यक्त करनेके लिये इस संज्ञाको ग्रहण किया था। उसके अनुसार लिबिडो[2] जब अपने यौन समागमके लक्ष्यमें त्रस्त हो जाता है तब व्यक्ति अतृप्तिकी एक भावनासे पीड़ित हो जाता है। इस अनुभवसे सम्बन्धित भावना मनके लिये पीड़क होती है अतः वह अन्तर्मनमें दबा दी जाती है। वहाँ वह जिस भावनाको जन्म देती है वह हीनता ग्रन्थि कहलाती है।

फ्रायडके ही एक समयके शिष्य डा० अल्फ्रेड एडलरने इस ग्रन्थिको फ्रायडसे व्यापक अर्थमें—जीवन विकासके एक शक्तिशाली तत्वके रूपमें ग्रहण किया। इसका जन्म इस ज्ञानसे हुआ कि ऐसे लोग जो शारीरिक विकारके कारण प्रतिबाधित होते हैं, अपने जीवनके सम्बन्धमें एक हीन एवं अनुचित रुख अपना लेते हैं। इस विषयपर एडलरने सबसे पहले 'A Study of Organ Inferiority and its Psychical Compensation' में विचार किया। उसकी दृष्टिसे इस ग्रन्थिके जन्मका कारण केवल यौन नहीं है बल्कि ऐसे और भी कई कारण हो सकते हैं जिनका यौनसे कतई सम्बन्ध ही न हो। प्रत्येक व्यक्तिको अपनी भौतिक वास्तविकताका पूर्ण ज्ञान होता है—अपने अभावोंका बोध होता है। अतः उसकी चेतना क्षतिपूर्तिके लिये सदा व्यस्त रहती है। जीवनमें क्षतिपूर्तिकी यह व्यस्तता महत्ता प्राप्त करनेका संग्राम है।

अभाव या क्षतिकी पूर्तिकी इस भावनामें एडलरने केवल वैयक्तिक विकासके तन्तु ही नहीं देखे; वरन् मनुष्यके समाजमें संगठित होनेका कारण भी देखा है। प्रारम्भिक कालमें जीवन की कठिनाइयोंको पराभूत करनेके प्रयत्नमें—उनपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टामें—जब अकेला मनुष्य असफल हुआ तो उसने अपने ऐसे ही अन्य व्यक्तियोंकी संगठित शक्तिके रूपमें अपनेको खड़ाकर प्रकृतिके साथ संघर्ष किया और जीवनकी कठिनाइयों पर विजय पाई। मनुष्यकी संगठित समूह बनानेकी आवश्यकता उसके सामाजिक जीवनका आधार हुई। आरम्भसे ही यह सामाजिक जीवन मनुष्यको अपनी अयोग्यता एवं हीनताकी भावनापर विजयी होनेमें सहायक हुआ है।

This social life has without doubt been a great help to him in overcoming his feeling of inadequacy and inferiority.—(Alder: *The Science of Living*).

यह आवश्यकता केवल मनुष्यमें ही नहीं; वरन् पशुओं तकमें पाई जाती है। पशुओंमें यह देखा जाता है कि कमजोर जातियाँ निजी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये बहुधा

---

1. *The Science of Living.*
२. मनोविश्लेषण शास्त्रमें लिबिडो नामसे उन वृत्तियोंकी शक्ति को अभिहित किया जाता है जिनका प्रेम शब्दके अन्तर्गत आनेवाली सब बातोंसे सम्बन्ध हो।

Freud: *Group Psychology and the Analysis of the Ego.*

डा० ब्रीलने इसको और भी स्पष्ट करते हुए कहा कि लिबिडो उन समस्त भावनाओंको अन्तर्भूत करता है जो कि मोटे रूपमें 'प्रेम'से सम्बन्ध रखती हों। इसकी मुख्य भावना यौन-प्रेम तथा यौन-समागम इसका लक्ष्य है। किन्तु इसके अतिरिक्त लिबिडोमें आत्म-रति, माता-पिता व अपने बच्चोंके प्रति प्रेम, मित्रता, किन्हीं खास वस्तुओंके प्रति अनुरक्ति और वायवी विचारोंकी उपासना आदि भी अन्तर्भूत हैं।

—*Basic Writings* of Sigmund Freud.

साथ रहती हैं। इसके ठीक विपरीत गोरिल्ला, शेर, चीता आदि शक्तिशाली पशु इकट्ठा रहनेकी जरूरत ही नहीं समझते। इसका कारण यह है कि प्रकृतिके द्वारा उन्हें आत्मरक्षा तथा अपनी आवश्यकता-पूर्तिकी शक्ति मिली हुई है। कमजोर पशु अथवा मनुष्य ऐसी शक्तिसे वंचित हैं। इसलिये समूहसे भिन्न रहकर वह न तो आत्मरक्षा ही कर सकते हैं न अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति ही।[3] इस प्रकार मनुष्यकी इसी दुर्बलतासे समाजका समूहमें संगठित होनेका आरम्भ है।

Thus we find that the beginning of social life lies in the weakness of the individual.

यद्यपि मनुष्यको अपनी दुर्बलताओंके कारण ही समूहमें संगठित होनेकी प्रेरणा मिली ; परन्तु एडलरके अनुसार यदि वह संगठन गलत तरीके पर आधारित हुआ तो वह मनुष्यकी हीन भावनाको दूर करनेके स्थानपर उसे और भी दृढ़ करेगा। इसके विपरीत एक व्यक्ति जो समाजसे भिन्न एकान्त स्थितिमें रहनेपर कुछ बातोंमें अपूर्ण रहता, सही रूपसे संगठित समाजमें अपनी कमियोंकी ठीक तरहसे पूर्ति कर सकता है।

कारण :—हीनताकी भावना व्यक्तिकी विशेष स्थिति, पारिवारिक परिवृत्ति एवं बचपनकी गलत शिक्षासे उत्पन्न होती है। इसके विकासके कारणोंके अन्तर्गत वे सभी प्रकारके अनुभव आ जाते हैं जो पुरुष या स्त्रीको अपनी आत्म-स्थितिसे च्युत अथवा वंचित करते हों। एडलर इसके जन्मगत होनेके तथ्यको स्वीकार नहीं करता। उसकी दृष्टिमें यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि व्यक्तिने विरासतके रूपमें क्या पाया बल्कि वह अपने प्रारम्भिक वर्षोंमें, प्रोटोटाइपके निर्माण-कालमें, क्या करता है। विरासत केवल जन्मगत शारीरिक विकारके लिये ही उत्तरदायी है।[5] मुख्यतः हीनता-ग्रन्थिके कारण व्यक्तिमें न होकर वातावरणमें होते हैं। शारीरिक विकारके कारण उत्पन्न हुई हीनता-भावनाको उचित शिक्षा एवं उपयोगी दृष्टिकोणके ग्रहणसे दूर किया जा सकता है।

असहाय स्थिति इसका मूल कारण है। बच्चे पोषण, संरक्षण और सहारेके लिए जन्मसे ही दूसरोंपर—अपने पालकोंपर—आश्रित रहते हैं। इस पराश्रयावस्थामें वे क्रमशः अपनी स्थितिसे परिचित होते जाते हैं कि वे असहाय, असमर्थ एवं दुर्बल हैं, उनकी हरएक जरूरत कोई दूसरा पूरा करता है, वे स्वयं अपने लिए कुछ नहीं कर सकते। इस स्थितिसे उनके कोमल पनपर अपनी अयोग्यता एवं दूसरोंपर आश्रित होनेकी भावनाका प्रभाव गहरा हो जाता है। अगर ठीक रूपसे शिक्षाकी व्यवस्था तथा पालकोंके व्यवहारमें सतर्कता नहीं रही तो यह भावना उनके विकसित होनेके दौरानमें और भी गहरी हो जाती है—ग्रन्थिका रूप धारण कर लेती है। यह भावना जो आरम्भमें आर्थिक एवं सामाजिक हीनतासे उत्पन्न होती है बादमें ग्रंथि (यदि बन गई तो) के रूपमें व्यक्तिके समस्त वैचारिक क्षेत्र और भावभूमिको आच्छादित कर लेती है।

पराश्रयावस्थाकी इस प्रारम्भिक स्थितिको एडलरने प्रोटोटाइप कहा है। बचपनमें ही (चार-पाँच वर्षकी अवस्था तक) पूर्ण विकसित व्यक्तित्वका एक माडेल निर्मित होना शुरू हो जाता है ; जिसका रूप बच्चेकी प्रारम्भिक स्थितियोंके प्रभावका परिणाम होता है। यही माडेल प्रोटोटाइप है। जब प्रोटोटाइपकी रचना हो जाती है तब इन प्रारम्भिक स्थितियोंके द्वारा निर्मित होनेवाली भावना तथा विचार-वृत्ति जीवन-लक्ष्यका निश्चय करती है। जीवन-लक्ष्यके निश्चित होते ही जीवनकी दिशा-रेखा भी निश्चित हो जाती है और व्यक्ति बन जाता है।

When the prototype is formed—that early personality which embodies the goal—the line of direction is established and the individual becomes definitely oriented.

"यह प्रोटोटाइप कच्चे फलकी तरह है और एक फलकी तरह अगर उसमें किसी तरहका कीड़ा (वातावरणसे उत्पन्न विकार-हीनताकी भावनाका कारण) हुआ तो जैसे-जैसे वह बढ़ेगा और पकेगा वैसे-वैसे ही वह कीड़ा भी बढ़ेगा।"[6]

इस प्रकार असहाय स्थिति हीनताकी भावनाका मूल कारण है। यदि बचपनमें बच्चेकी परिस्थिति अथवा उसकी शिक्षा या उसके प्रति व्यवहार उपेक्षापूर्ण एवं अनुचित हुआ तो वह

3. *The Science of Living.*
(प्रिंस क्रोपाटकिनकी पुस्तकें 'संघर्ष और सहयोग'में इस सहयोगकी भावनापर अच्छा प्रकाश डाला गया है।)

4. *The Inferiority Complex.*
5. *The Science of Living.*
6. *Ibid.*

असहाय स्थितिसे उत्पन्न भावना ग्रन्थिका रूप धारण कर लेती है। इसके अतिरिक्त अपने शारीरिक विकासको लेकर जीवनके प्रति एक विशेष उपेक्षाका दृष्टिकोण बना लेनेसे भी ऐसी ग्रन्थि पड़ जाती है। और भी स्पष्ट करनेके लिए, प्रोटोटाइपके बननेके समय बच्चोंमें जिन कारणोंसे हीनताकी भावना जन्म ले लेती है वे निम्न हैं :—

(१) शारीरिक विकार,

(२) लाड़-दुलार,

(३) घृणा व उपेक्षाका व्यवहार।

शारीरिक विकार—साधारण शरीर-संस्थानसे भिन्न स्थिति बनावट या आकृति शारीरिक विकार मानी जाती है। इसके अन्तर्गत एक सुन्दर स्त्रीके मुखके तिलसे लेकर विकृत एवं विरूप शरीर-संस्थानके समस्त लक्षण आ जाते हैं।[7]

डा० वेरन वाल्फने अत्यधिक पृथुलता अथवा कृशता, विकृत नाक, लम्बे दाँत, मोटी गरदन, मोटे नितम्ब, लम्बी टाँगें या छोटी टाँगें, लम्बे पाँव या छोटे पाँव, गन्जापन या स्त्रीमें पुरुषका-सा शरीर-संस्थान अथवा पुरुषमें स्त्रीका-सा शरीर-संस्थान आदि कई ऐसे लक्षण जो साधारणतासे भिन्न हों, हीनता-ग्रन्थिके कारण बताए हैं।

एडलरके अनुसार यद्यपि साधारणतः शारीरिक विकार ही हीनता-ग्रन्थिका मूल होता है; किन्तु वास्तविक समस्याका कारण यही नहीं होता; बल्कि सामाजिक दुर्विन्यास (Maladjustment) होता है। एक सुविन्यस्त समाजमें यह विकार शिक्षाके द्वारा विशेष दिशामें विकसित किया जाकर किसी खास रुचिका मूल हो सकता है और यदि यह रुचि समाजके उपयोगी पक्षमें प्रवृत्त हुई तो ऐसे व्यक्तिके लिए यह एक महत्त्वपूर्ण अर्जन हो सकता है।[8]

लाड़-दुलार—अत्यधिक लाड़-दुलार बालकोंमें इस ग्रन्थिका दूसरा कारण होता है। ऐसे बालक रुचिसे आत्म-सहिष्णु और व्यवहारसे आत्मकेन्द्रित होते हैं। बचपनसे ही उनका अनुभव होता है कि उनकी हरएक इच्छा पूरी की जाती है। माता-पिताके दुलारके कारण उन्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता। मेकब्राइडके शब्दोंमें ऐसे बालकोंकी स्थिति 'एक राजा, प्रेसिडेण्ट या डिक्टेटर'की-सी होती है। माता-पिताके संरक्षणमें उन्हें कभी कष्ट, कठिनाई, विरोध या एकान्त उपेक्षाका अनुभव नहीं करना पड़ता। इसका परिणाम यह होता है कि ऐसे बालक जब इन स्थितियोंका सामना करते हैं तब अपनेको सर्वथा अयोग्य पाते हैं। यदि स्थिति ऐसी ही रही—उचित शिक्षाके द्वारा उनकी भावनाओंका विकास नहीं किया गया—तो बड़े होनेपर वे जीवन-संघर्षका सामना न कर बहुधा निरुत्साह और निराशाके आगे आत्म-समर्पण कर देते हैं। वे अनुभव करते हैं कि वे जीवन-संघर्षमें अकेले खड़े नहीं रह सकते, कठिनाइयोंका सामना नहीं कर सकते—समाजके उपयोगी पक्षमें अपनेको विन्यस्त नहीं कर सकते। ऐसी परिस्थितिको प्रत्यक्ष रूपसे विजित करनेके कई असफल प्रयत्नोंके बाद ऐसे लोग अपनेको निरुद्देश्य सामाजिक, परावलम्बी, डाकू, जुआरी, शराबी आदि की श्रेणीमें दीक्षित कर लेते हैं।

एडलरने ऐसे बालकोंके निम्नलिखित लक्षण बताए हैं :—

(१) वे जीवनकी समस्याके योग्य नहीं होते; परन्तु दूसरों पर शासन चाहते हैं।

(२) वे बड़े आकांक्षी, द्वेषी, असहिष्णु एवं झगड़ालू होते हैं।

(३) वे बहुधा कायर होते हैं। सामाजिक जीवनके प्रश्नों के प्रति उनकी रुचि नहीं होती।

(४) वे अपनी अयोग्यताके प्रति सजग एवं कार्यके प्रति पराङ्मुख होते हैं। प्रस्तुत प्रश्नोंको टालना उनकी मुख्य आदत होती है।

ये सब लक्षण परिवारसे अधिक स्कूलमें प्रकाशमें आते हैं।

घृणा व उपेक्षाका व्यवहार—बालकोंके प्रति घृणा व उपेक्षाका व्यवहार तीसरा कारण है जिसके फलस्वरूप उनमें हीनताकी ग्रन्थि पड़ जाती है। कवीन्द्र रवीन्द्रकी 'Home Coming' कहानीका फटिक इसका अच्छा उदाहरण है। ऐसे वातावरणमें पलनेवाले बालकोंका समाजके प्रति वैमनस्य का दृष्टिकोण और बहुधा अपने प्रति आत्मघाती रुख हो जाता

---

7. *The Inferiority Complex.*
8. *The Science of Living.*

है। घृणा व उपेक्षाका व्यवहार पाकर ऐसे बालक इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि उनके साथी उनके शत्रु हैं, समाजमें उनके लिये अपना कोई स्थान नहीं, किसीको उनकी जरूरत नहीं, दुनियामें वे एक भार हैं।

सामाजिक हित एवं वैयक्तिक जीवनकी दृष्टिसे यह निर्णय बड़ा भयंकर होता है। बड़े होनेपर ऐसे बालक विद्रोही, उद्दंड और उच्छृंखल होते हैं तथा अवैध उपायोंके द्वारा अपनी क्षतिपूर्ति करते हैं या कोई प्रतिक्रिया न कर पानेके कारण आत्मघात कर लेते हैं। इस ग्रन्थिके शिकार निम्न जातिके बालक और मध्यमवर्गके माता-पिताओंकी इच्छाके विरुद्ध पैदा होनेवाले या पराश्रित बालक होते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकारके बालकों—शारीरिक विकारग्रस्त, लाड़-दुलारसे बिगड़े और उपेक्षित—का प्रोटोटाइप न्यून सामाजिक रुचिके साथ विकसित होता है। इनके पास कोई मानसिक दृष्टिकोण नहीं होता जोकि जीवनके लिए जो आवश्यक हो उसे पूरा करने या उसकी कठिनाइयोंको हल करनेमें प्रेरक हो।

They have not the mental attitude which is conducive to the accomplishment of what is necessary in life or to the solution of its difficulties. ६

पराजित अनुभव करके इनका प्रोटोटाइप जीवनके प्रति एक गलत दृष्टिकोण स्थिर कर लेता है जो व्यक्तित्वको जीवन के अनुपयोगी पक्षकी ओर विकसित करनेमें प्रवृत्त होता है। किन्तु उचित शिक्षा एवं योग्य पारिवारिक पालनके द्वारा इस गलत दृष्टिकोणको जीवनके उपयोगी पक्षकी ओर बदला जा सकता है। (क्योंकि एडलरके अनुसार यह दृष्टिकोण प्रोटोटाइपकी दूषित रचनाका परिणाम है और प्रोटोटाइपकी रचना किन्हीं जन्मगत तन्तुओंके आधारपर नहीं होती, बल्कि व्यक्ति और वातावरणकी अन्तर्क्रियाके कारण होती है।)

पर एडलरने योग्य पारिवारिक पालनसे अधिक उचित शिक्षाको इस दिशामें श्रेयस्कर समझा है। शिक्षा-प्रणालीमें आवश्यक परिवर्तन करनेसे व बालकोंमें सही दिलचस्पी रखनेसे उनमें जीवनके उपयोगी पक्षकी ओर रुचि उत्पन्न की जा सकती है। उसके शिक्षापर विशेष जोर देनेके तीन कारण हैं:—१०

(१) पहला कारण तो यह कि शिक्षाके लिये विद्यालयोंमें एक बड़ी संख्यामें विद्यार्थी बालक एकत्र होते हैं; अतः वहाँ यह कार्य सामूहिक रूपसे एवं सुभीतेसे किया जा सकता है।

(२) बालकोंकी जीवन-शैलीकी—उनके प्रोटोटाइपकी—गलतियाँ बनिस्बत परिवारके विद्यालयमें अच्छी प्रकारसे प्रकट होती हैं; अतः वहाँ उनकी गलतियोंको समझकर उचित शिक्षा देकर अध्यापक उन्हें सुधारनेका यत्न कर सकता है।

(३) तीसरा कारण यह कि अध्यापक बालकोंके प्रश्नोंको समझनेवाला व्यक्ति समझा जाता है।

लक्षण—यद्यपि कारणपर विचार करते हुए हीनता ग्रन्थिके लक्षणोंका भी उल्लेख हो गया है परन्तु विषयके स्पष्टीकरण की दृष्टिसे उनपर अलग विचार कर लेना अनावश्यक न होगा। मेकब्राइडने हीनताके लक्षणोंको दो भागोंमें बाँटा है—छोटे लक्षण और बड़े लक्षण। छोटे लक्षणोंका कारण उसने बचपनकी शिक्षाके गलत तरीकेको तथा बड़े लक्षणोंका कारण भावनाओंका कुचला जाना बताया है।११

छोटे लक्षणोंके अन्तर्गत बतलाये गये लक्षणोंमें से निम्नलिखित मुख्य हैं:—

(१) निर्बुद्ध उद्देश्यके लिये अविश्राम प्रयत्न।

(२) सामाजिक भय और दूसरोंके संसर्गको टालना।

(३) आत्म-निगणन (Self-depreciation)

बड़े लक्षणोंके अन्तर्गत दो लक्षण मुख्य हैं:—

(१) जीवनसे इनकार (The refusal of life)

(२) कल्पनाकी शरण (Flight into phantasy)

जीवनसे इनकारकी भावना आत्म-विश्वासके अभाव एवं असफलताके अनुभवका परिणाम होती है। ऐसे लोग जीवनके क्षेत्रसे हट जाते हैं। कई या तो कल्पना-लोककी शरण लेकर अपने अभावकी पूर्ति करते हैं अथवा मृत्युका सहारा लेकर जीवनसे ही मुक्ति ले लेते हैं। कल्पना-लोक वास्तविक जगतसे

---

9. *Ibid.*

10. *The Science of Living.*

11. Generally the minor symptoms are due to wrong method of training in childhood while the major are due to a definite vicious or a repressive emotional experience.—*The Inferiority Complex.*

भिन्न भावों (अभाव रहित) का मानसिक जगत है। वहाँ एडलरके अनुसार लोग काल्पनिक विजयके आनन्दसे अपनी हीनताकी भावनाकी पूर्ति करते हैं। मृत्युका सहारा लेकर जीवनसे मुक्ति लेनेका तात्पर्य 'जीवनकी दुर्दम्य कठिनाइयोंपर विजय पाना है।' मरनेवालेको इस बातका सन्तोष रहता है कि यद्यपि प्रत्यक्ष रूपसे जीवनकी परिस्थितियोंपर वह विजय नहीं पा सका परन्तु अब इस प्रकार आत्मघात करके वह उनको पराजित कर रहा है। (He experiences in suicide a triumph over all obstacles)[१२]

लक्ष्य : प्रतिक्रिया

हीनताकी भावना किसी एक मनुष्यमें नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्यमें पाई जाती है। वह कोई रोग नहीं; विकासकी स्वस्थ स्वाभाविक चेष्टाके लिये एक प्रकारसे प्रेरणा है।[१३] विकासकी यह स्वस्थ स्वाभाविक चेष्टा वर्त्तमान अभावकी पूर्तिका प्रयत्न है। इस चेष्टाका निश्चय व्यक्तिके Guiding fiction द्वारा होता है। यह Guiding fiction प्रोटोटाइपकी अवस्थामें निश्चित लक्ष्य है। इस लक्ष्यके द्वारा ही हमारे समस्त व्यापार निर्धारित होते हैं। बिना लक्ष्यके न हम सोच सकते हैं न अनुभव या कार्य ही कर सकते हैं।[१४] एडलरने जोर देकर कहा है कि मनकी सभी प्रवृत्तियाँ पूर्व निश्चित लक्ष्यके द्वारा ही प्रेरित होती हैं।[१५] बिना लक्ष्य-बोधके व्यक्तिकी प्रवृत्तियाँ कोई मतलब रखना ही बन्द कर देंगी। अतएव मानसिक प्रतिक्रिया तभी समझी जा सकती है जब कि उसे किसी लक्ष्यकी तैयारीके रूपमें देखनेका प्रयत्न करें।[१६]

जीवनकी दिशा निर्धारित करनेवाला यह लक्ष्य प्रत्येक प्रकारके व्यक्ति—स्वस्थ अथवा अस्वस्थ—के सम्मुख स्थित होता है। यही लक्ष्य उसके व्यापारका प्रेरक एवं समस्त हलचलोंका नियामक होता है। यह लक्ष्य गुरुताका लक्ष्य है। इस लक्ष्यके द्वारा व्यक्ति वर्त्तमानकी कठिनाइयोंसे अपनेको इस लिये महत् अनुभव कर सकता है कि उसके मनमें भविष्यकी सफलता होती है।[१७] प्रत्येक मनुष्य फिर वह कोई भी कार्य क्यों न करे, एडलरके विचारसे, वह अपने गुरुताके लक्ष्यसे प्रेरित होता है। साधारण सामाजिक व्यक्ति अपने गुरुताके लक्ष्यको अपनी दैनिक प्रवृत्तियोंके द्वारा, बात-चीत, कार्य और रहन-सहनके तौर-तरीकेके द्वारा अर्जित करता है;[१८] किन्तु ऐसे लोग जिनके मनमें हीनताकी भावना गहरी हो जाती है अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये जीवनके अनुपयोगी पक्षमें रुचि उत्पन्नकर अवैध (डाकू, जुआरी आदिके रूपमें) अथवा असंगत (आत्मघात) उपायोंका सहारा लेते हैं।

गुरुताका यह लक्ष्य वास्तविकताके जगतसे नहीं आता। इसका उद्गम कल्पना है। अतः वस्तु दृष्टिसे यह बहुधा हास्यास्पद होता है; किन्तु एडलरका कहना है कि यही गुरुताके लक्ष्यकी कल्पना हमारे जीवनका प्रमुख विधायक तत्व हो गया है।[१९] यही हमारे जीवनको व्यवस्थित करता है एवं हमारे समस्त कार्योंको दिशा देता है, हमारी शक्तियोंको प्रगति एवं पूर्णता देता है। हाँ, इसका एक दूसरा पहलू भी होता है वह यह कि यह लक्ष्य जीवनमें एक विरोधी एवं युयुत्सु-वृत्तिका प्रवेश कर देता है तथा प्रायः जीवनको वास्तविकतासे दूर हटानेका कारण होता है। अतः यदि इस लक्ष्यको किसीने कभी गम्भीरतासे ग्रहण किया तो शीघ्र ही वास्तविकतासे पलायित होनेके लिये बाध्य हो जायगा।[२०]

एक दूसरे स्थानपर लक्ष्यके सम्बन्धमें विचार प्रकट करते हुए

12. *Individual Psychology*.
13. But the feeling of inferiority is not a disease, it is rather a stimulant to healthy normal striving and development.—*The Science of Living*.
14. If we look at the matter more closely we should find the following law holding in the development of all psychic happenings; we cannot think; feel, will or act without the perception of some goal.—*Individual Psychology*.
15. . . . all psychic activities are given a direction by means of a previously determined goal.—*Ibid*
16. . . . every psychic phenomenon can only be grasped and understood if regarded as a preparation for some goal.—*Ibid*.
17. By means of this concrete aim or goal the individual can think and feel himself superior to the difficulties of the present because he has in mind his success of the future.—*Individual Psychology*.
18. The normal social man pursues his goal of superiority through his daily activities, through the way he talks, the way he dresses, the work he does.—*Achieving Success through the Mastery of the Mind*.
19. *Individual Psychology*.
20. *Ibid*.

एडलरने लिखा—to have a goal is to aspire to be like God. लेकिन ईश्वरके समान होनेका लक्ष्य अन्तिम लक्ष्य—ऊक्ष्योंका लक्ष्य है। बच्चे अपने विकासके दौरानमें अक्सर पासका और पक्का लक्ष्य ही रखते हैं। वे अपनी परिवृत्ति में जिसे सबसे शक्तिशाली व्यक्ति समझते हैं उसे अपना लक्ष्य अथवा आदर्श बनाते हैं। वह व्यक्ति पिता हो सकता है या मा हो सकती है। परन्तु कभी-कभी वह गाड़ीवानको भी अपनी समझसे शक्तिशाली व्यक्ति समझ उसे आदर्श बना लेते हैं और गाड़ीवान बननेकी धुनमें लग जाते हैं। बादमें उनका आदर्श गाड़ीवान न रहकर डाक्टर, पुलिसवाला या अध्यापक हो जाता है। एडलरके अनुसार इस तरह बच्चे जिन-जिन आदर्शोंका चुनाव करते हैं वे उनकी सामाजिक रुचियोंके सूचक होते हैं। एक उदाहरण देते हुए उसने लिखा है—जब एक लड़केसे पूछा गया कि वह भविष्यमें क्या होना चाहता है? उसने उत्तर दिया—जल्लाद! इसकी व्याख्या करते हुए एडलरने कहा—ऐसा उत्तर लड़केकी न्यून सामाजिक रुचिको प्रकट करता है। वह ईश्वरकी तरह ही जीवन और मौतका स्वामी होना चाहता था।[२१]

21. *The Science of Living.*

ऊपर हीनता-ग्रन्थिके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया उसका निष्कर्ष यह है :—

(१) एडलरके अनुसार प्रत्येक व्यक्तिमें हीनताकी भावना होती है। इस भावनाका कारण वातावरण या बहुधा शारीरिक विकार होता है।

(२) इस हीनताकी भावनाके विरुद्ध मनुष्यमें एक प्रतिक्रिया होती है। वह प्रतिक्रिया वर्त्तमान अभावोंकी पूर्ति की प्रतिक्रिया है।

(३) इस प्रतिक्रियाका निश्चय प्रोटोटाइपमें निर्मित लक्ष्यके अनुकूल होता है।

(४) जो मनुष्य अपने जीवनमें उत्साह और आत्म-विश्वास खो देते हैं उनका लक्ष्य जीवनके उपयोगी पक्षसे हट कर अनुपयोगी पक्षमें स्थित हो जाता है। लक्ष्यका यह परिवर्तन भावनाओंके विशेष आघातके कारण ही होता है।

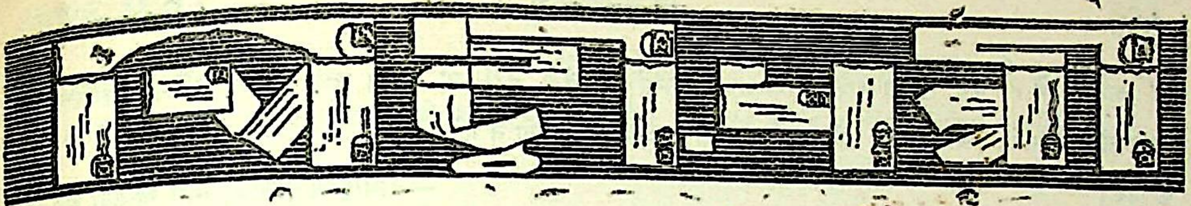
(५) व्यक्ति इस प्रकार अपनेको जीवनके उपयोगी पक्षसे संन्यस्त न कर ले इसके लिए एडलरने आरम्भसे ही बालकोंकी भावनाओंका विकास करनेका भार तथा उनमें सामाजिक रुचि-निर्माण करनेका उत्तरदायित्व शिक्षण-संस्थाओंपर रखा है।

तमोदधि

लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर'

सृष्टिके ही आदि क्षणसे तीरपर जन-गण खड़े हैं,
और जीवन-तरणिके हित दुःख प्रभंजनसे लड़े हैं।
वासनाके ज्वारमें पड़ अनगिनत यों बह गये हैं,
प्रेम, यौवनकी अधूरी-सी कहानी कह गये हैं।
कामनाके चक्रमें बहु व्यक्तियोंने कष्ट झेले
और कितने वीर हैं यों मृत्युसे भी विहँस खेले।
जल समाहित हो गये कितने प्रलयकारी प्रहरमें,
फन उठा फूत्कार भरती व्यालिनीकी - सी लहरमें।
जा रहे खेते हुए कितने तरणि तूफानमें भी,
मार्ग मिलता ही गया जिनको बरफ - चट्टानमें भी।
यों युगान्तरसे जनोंका है महाप्रस्थान होता,
जन्मके आनन्द-क्षणमें ही मरणका गान होता।
किन्तु फिर भी मानवोंका है अभी तक शेष मेला,

जब रहूँगा भी नहीं मैं—यह चलेगा पर झमेला।
काँपता है देखकर मन यह हहरता तिमिर सागर,
कुछ नहीं मिलता किसीका है यहाँ संकेत या स्वर।
जो गये, जल-शिखरने दी मेंट उनकी चरण-रेखा,
जा रहा उस पंथसे जिसको कभी भी है न देखा।
चल रहा कितने युगोंसे? याद भी धुँधली हुई है,
लग रहा ज्यों व्योमसे यह सलिल-राशि मिली हुई है।
किस दिशाकी ओर जाऊँ? सब तरफ छाया अँधेरा,
सघन सीमाहीन जलमें लूँ कहाँ जाकर बसेरा!
कालके प्रतिघातसे यह जीर्ण मेरा हो गया घट,
चाहता जिसको डुबोकर स्वयं पहुँचूँ ज्योतिके तट।
ओ पवन! वह चल बवण्डर! दे मुझे अपना सहारा;
तमोदधिके पारसे, सुन है मुझे किसने पुकारा!



आपको यह मालूम ही है कि तेलका जमाया जाना रोकनेके लिये गोसेवा-संघ वर्षोंसे प्रयत्न कर रहा है। सर्व प्रथम फरवरी, १६४६ में गो-सेवा-संघके द्वितीय सम्मेलनमें इस सम्बन्धमें प्रस्ताव आया था। लेकिन पू० बापूजीने उसके गुण-दोषोंकी पूरी जाँच होने तक उस प्रस्तावको स्थगित रखनेके लिये कहा। बादमें करीब दो महीने तक उन्होंने खुद उस बारेमें जितनी जानकारी मिल सकती थी प्राप्त की और ता० १४-४-४६ को उन्होंने अपनी निश्चित राय प्रकट की कि 'तेलको जमाकर उसको घीका रूप देना सब तरहसे बुरा है' और तेलका जमाया जाना तुरन्त बन्द करनेकी सिफारिश की। उसके बाद जमाए तेल (वनस्पति)के विरोधमें कितने ही लेख उन्होंने खुद लिखे। आचार्य विनोबाजी, श्री कुमारप्पाजी, श्री सतीशबाबू आदिने भी कई लेख लिखे। (इन लेखोंको 'नकली घी' नामकी किताबमें संकलित करके गो-सेवा संघने प्रकाशित किया है।)

काफी विचार-विनिमयके बाद गो-सेवा-संघने जुलाई १६४७ में तेलोंका जमाया जाना बन्द करनेका प्रस्ताव किया। मार्च, १६४८ में गो-सेवा-संघका एक प्रतिनिधि-मण्डल अन्न-मन्त्री श्री जयरामदासजीसे वर्धामें मिला। बादमें १४ सितम्बर, १६४८ को वनस्पतिके कारखानेवालों और गो-सेवा-संघके प्रतिनिधियोंकी एक सम्मिलित बैठक भारत-सरकारने दिल्लीमें बुलाई। (उसकी पूरी कार्रवाई 'ए केस बिफोर गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया' इस नामसे छपी है। गो-सेवा-संघ, वर्धासे मिल सकेगी।) इस बैठककी कार्रवाई आगे बढ़ेगी ऐसी उम्मीद थी। लेकिन प्रश्न जहाँ-का-तहाँ रहा।

१६४६ के आरम्भमें यह प्रश्न कांग्रेस वर्किंग कमिटीके पास भेजा गया। वर्किंग कमिटीने अपनी देहरादूनकी बैठकमें ता० २२ मई, १६४६ को मिलावटको रोकनेकी दृष्टिसे जमाये तेलमें रंग मिलानेका प्रस्ताव किया। प्रस्तावकी नकल साथ है। वर्किंङ्ग कमिटीका खयाल था कि महीने-दो महीनेमें रंग मिलाना शुरू हो जायगा। लेकिन एक साल बीतनेपर भी भारत सरकारको कोई रंग ही नहीं मिल रहा है।* सालभरमें कई बार वर्किंग कमिटीमें यह प्रश्न भेजा गया, चर्चा भी हुई, लेकिन किसी नतीजेपर नहीं पहुँचे। संघने क्या-क्या प्रयत्न किए इस सम्बन्धमें १५ दिसम्बर, १६४६ के 'सर्वोदय'में एक लेख प्रकाशित हुआ है। भारत सरकारने एक कमिटी नियुक्त करना तय किया था, जो जमाये तेलका घीके उद्योग 'गोपालन' और ग्राम अर्थशास्त्रपर होनेवाले परिणामोंकी जाँच करती, लेकिन वह कमिटी एक साल बीत गया नियुक्त ही नहीं हुई।

हाल ही में स्वास्थ्य कमिटीकी रिपोर्ट प्रकट हुई है, जिसमें जमाये तेलको हानिकर न होनेकी बात बतायी गई है। वास्तवमें स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अभी कितने ही प्रयोग होने हैं, जो प्रयोग हुए उनमें भी कई शंकाएँ हैं, मतभेद हैं; लेकिन उनको मैं यहाँ छोड़ देता हूँ। हम मान लें कि स्वास्थके लिए यह हानिकर नहीं है, तो भी गो-सेवा-संघका आक्षेप दूर नहीं होता है। गो-सेवा-संघने प्रारम्भसे आज तक दो कारणोंसे इसका विरोध किया है। एक कारण तो यह है कि मिलावटकी प्रवृत्ति बढ़नेसे लोगोंका नैतिक पतन होता है। दूसरा घीके उद्योगको हानि पहुँचती है और उसके कारण गोपालनमें कठिनाई आती है। इन दोषोंको टालनेके लिए घीमें वनस्पतिकी मिलावट रोकी जाय, ऐसी गो-सेवा-संघकी माँग रही है। वनस्पतिमें रंग मिलाकर या तेलका जमाया जाना बन्द करके यह मिलावट रोकी जा सकती है। लेकिन इस मूल प्रश्नको बगल देकर आजकल सारे अखबारोंमें कारखानेवाले स्वास्थ्य कमिटीकी रिपोर्टकी दुन्दुभी बजा रहे हैं। चारों ओरसे ऐसा वातावरण बनाया जा रहा है, मानो स्वास्थ्यके प्रश्नके अलावा और कोई आक्षेप इसपर रहा ही न हो। पू० विनोबाजी और पू० किशोरलाल भाईने इस सम्बन्धमें जो लेख लिखे हैं वे 'हरिजन' और 'सर्वोदय'में आये ही हैं, और भी समय-समय

* और मामला बदरंग हो गया है। —सम्पादक

पर आते रहेंगे। उन सबको आप अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओंमें छपाकर आमलोगोंमें वितरण करनेका प्रयत्न कीजिये।

आज आपको यह सारी जानकारी इसलिए दे रहा हूँ कि हम अपना आगेका कार्यक्रम सोचें। श्री ठाकुरदासजी भार्गवने भारतीय संसदमें वनस्पति प्रतिबन्धक बिल पेश किया है। ता० १०-४-५० को उसपर बहस होकर अधिक जनमत जाननेके लिए ता० ३१ अगस्त, १६५० तक वह बिल स्थगित रखा गया है। प्रान्तीय सरकारों, म्युनिसिपल कमिटियों, लोकल-बोर्डों, ग्राम पंचायतों, सार्वजनिक संस्थाओं आदिका मत ता० ३१ अगस्त तक संसदके अध्यक्षके पास पहुँच जाना चाहिए। आपसे प्रार्थना है कि आप कुछ समय दे सकें तो प्रयत्न करके इन संस्थाओंका, किसान संघटनाओंका, घीके व्यापारियोंका जो प्रामाणिक मत हो, भिजवायँ। आम जनता और किसान गोपालनको हानि पहुँचानेवाले इस जमाए तेलका कभी समर्थन नहीं कर सकते। दूसरे देशोंमें भी किसानोंने ही इसका मुख्य विरोध किया है। कारखानेवाले और कुछ शहरी लोग जो असली तेलकी अपेक्षा इस जमाए तेलको पसन्द करते हैं वे ही इसके पक्षपाती हैं। इनकी संख्या बहुत थोड़ी होनेपर भी इनकी आवाज बड़ी है। सरकारी तन्त्रमें, अखबारोंमें सब जगह इनकी चलती है। किसान और गरीबकी आवाज सुनाई भी कम देती है और सुननेवाले भी कम होते हैं। इसलिए हमारा विशेष फ़र्ज़ हो जाता है कि हम उनकी आवाज भारतीय संसद तक पहुँचानेका पूरा प्रयत्न करें।

आपको मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि आम जनता की जो इच्छा होती है वही अन्तमें चलती है। आम जनताको इस बारेमें हम जितना समझायँगे उतना ही हमारा काम आगे बढ़ेगा। सरकार भी आम जनताकी ही है। उसे आम जनताकी इच्छाके अनुसार ही चलना होता है। इसलिए यदि हम आम जनताको अपना पहलू समझा सकें और वह अपना हित समझ कर अपने घरोंमें जमाए तेलका इस्तैमाल बन्द कर दे तो उतना ही हमारा कदम आगे बढ़ेगा। हमें खरीददारोंको विशेष तौरसे समझाना चाहिए कि इस बुराईसे बचें। घी मिले तो शुद्ध घी खायँ नहीं तो ताजा तेल खायँ लेकिन वनस्पतिका कतई उपयोग न करें।

—राधाकृष्ण बजाज, मंत्री गो-सेवा संघ, वर्धा

हमारी दक्षिणकी चिट्ठी

(हमारे दाक्षिणात्य सम्वाददाता द्वारा)

दक्षिण भारत कई दृष्टियोंसे अनोखा है। इसके इतिहास, संस्कृति, सभ्यता तथा प्राचीनतामें एक विशिष्ट दक्षिणका अपनापन है—'दक्षिणत्व' है, इसके वर्त्तमानमें भी स्पष्ट विभिन्नता है, जो शायद और प्रान्तोंमें इतनी व्यक्त नहीं है।

यहाँ 'आधुनिकों'की और 'सनातनियों'की रस्साकशी मुद्दतसे होती आई है। दोनों पक्षोंका बल लगभग बराबर-सा है। उनकी कशमकशकी वजहसे संस्कृतिकी स्वाभाविक गति भी रुक-सी गई है। दोनों पक्षोंमें समझौता होना मुश्किल है। अगर एक पक्षको भूतकी महत्ताका सहारा है तो दूसरेको भविष्यकी उज्ज्वलताका। दोनोंका समान गुण है—निष्क्रियता और पारस्परिक दोषारोपणकी आदत।

तीसरा पक्ष उन लोगोंका है जो प्रगतिवादके नामपर प्रतिक्रियावादी हो गये हैं। उनके राजनीतिक सिद्धान्त और साम्प्रदायिकतापर आधारित हैं। इनकी न सनातनियोंसे बनती है न आधुनिकोंसे। इनका उद्देश्य है द्रविड़स्तानकी स्थापना करना। वे ब्राह्मणोंको जो कि प्रायः सनातनवादी हैं, द्रविड़स्तानमें स्थान देना नहीं चाहते। इनका और ब्राह्मणोंका सम्बन्ध कुत्ते-बिल्लीका-सा है।

इनके अतिरिक्त प्रबल प्रान्तीयताका प्रश्न है। मद्रास-प्रान्त भाषाकी दृष्टिसे कई प्रान्तोंका एक समास है—वह है तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़। इन सब प्रान्तोंकी अपनी-अपनी एक राष्ट्रियता है। उनकी भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज बहुत-कुछ समान होते हुए असमान हैं। राजनीतिक विषयोंपर एक प्रान्तकी दूसरे प्रान्तसे प्रायः नहीं बनती।

आजकल साम्प्रदायिकताका बोलबाला है। इसलिए प्रगतिवादियोंकी कुछ चलती नहीं। ब्राह्मणोंके सुनहरे दिन कभीके गुज़र चुके हैं। जाति-पाँतिके अत्याचारोंने पलटा खाया है। पिछड़ी हुई जातियोंके दिन हैं। अब ब्राह्मणोंके

हाथोंमें राजनीतिक और आर्थिक शक्ति है। उनकी सहानुभूति 'प्रतिक्रियावादियों'से है। सनातनी भी कोई कमज़ोर नहीं हैं, उनके पास पारम्परिक बुद्धिबल है।

संक्षेपमें इस प्रान्तके राजनीतिक वातावरणकी यह पृष्ठभूमि है। दक्षिणकी सब योजनाएँ इन पक्षोंके दृष्टिकोणपर निर्भर है। दक्षिणकी समस्याओंके बारेमें सोचते हुए इन बातोंका ख़याल रखना आवश्यक है।

दक्षिणकी सबसे ताज़ी समस्या है—हिन्दीकी समस्या; जो कि इन पक्षोंकी पैंतरेबाज़ीमें उलझ-सी गई है। इस दिशामें प्रान्तीय सरकारकी नीति बहुत अनिश्चित-सी रही हैं। कारण भी स्पष्ट है।

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके साथ हिन्दीने भी राष्ट्रभाषाका स्थान हासिल कर लिया है। भारतीय सरकार द्वारा इसकी व्यापकता पर ज़ोर दिया जा रहा है। १५ वर्षकी अवधिके बाद देशीय क्षेत्रमें अंगरेज़ीका कोई स्थान न रहेगा।

इन सब बातोंको दृष्टिमें रखते हुए मद्रासकी सरकारने कुछ महीनों पहले प्रान्तके विद्यालयोंमें हिन्दीका शिक्षण अनिवार्य कर दिया था। तब हिन्दीके विद्यालयोंको कुछ आर्थिक सहायता भी दी गई।

द्रविड़स्तानके नेता यह न देख सके। इसमें उन्हें 'उत्तर'का अर्थात् आर्योंका सूक्ष्म आक्रमण नज़र आया। इसके विरुद्ध एक ज़ोरदार आन्दोलन शुरू किया गया। यह उनका दूसरा आन्दोलन था। सन् १६३७ में भी उन्होंने हिन्दीके विरुद्ध आन्दोलन किया था। तब दूरद्रष्टा श्री राजगोपालाचारीजीने हिन्दीको अनिवार्य बनानेका प्रयत्न किया था। उस आन्दोलनमें कई व्यक्ति जेल भी गये थे। यह आन्दोलन भी बढ़ता गया। और इधर मन्त्री-वर्गकी राजनीतिका रंग भी बदलता गया। कुछ ऐसे मन्त्री भी मन्त्रि-मण्डलमें आ गये जिनकी सहानुभूति द्रविड़स्तानके प्रचारकोंके साथ थी।

आखिर मद्रास सरकारने अपना निश्चय बदल दिया। फिरसे अंगरेज़ी अनिवार्य कर दी गई और हिन्दीको वैकल्पिक विषय बना दिया गया। सरकारकी तरफसे हिन्दी-प्रचारके लिए कोई खास उत्साह नहीं दिखाया जा रहा है। प्रान्तीयताके सीमित हितमें भारतीयताके बृहत्तर उद्देश्यको हटा दिया गया है। फिलहाल प्रतिक्रियावादियोंने मैदान मार लिया है।

सरकारकी इस अद्भुत नीतिपर बहुत असन्तोष प्रकट किया जा रहा है, टीका-टिप्पणी हो रही है। पर सरकारसे कोई सीधा उत्तर नहीं बन पड़ता। चूँकि यह अखिल भारतीय विषय है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कल वे किसके ज़ोरपर किधर करवट बदलें।

यह तो हुई सरकारकी बात। पर आम लोगोंको हिन्दी सीखनेका एक चस्का-सा लग गया है। हिन्दीके भविष्यसे वे अपरिचित नहीं; उन्हें मालूम है कि उनकी वैयक्तिक उन्नति किसमें है।

दाक्षिणात्योंको भाषा सीखनेका शौक है। अंगरेज़ीको तो उन्होंने मातृभाषा की तरह अपना लिया था। वे स्वभावसे अध्ययनशील होते हैं और उन्हें सरकारी नौकरियोंका व्यसन-सा होता है। इस साल दक्षिणमें २०००० हिन्दीके परीक्षार्थी थे। जगह-जगह हिन्दीकी पाठशालाएँ खुल गई हैं। हिन्दीके अध्यापकोंकी बहुत माँग है। हर कोई खाली समयमें हिन्दी सीख रहे हैं। दैनिक अखबार अपने स्तम्भों द्वारा हिन्दी सिखानेकी कोशिश कर रहे हैं।

हिन्दुस्तानी-प्रचार सभाका काम जो इस क्षेत्रमें बहुत प्रशंसनीय कार्य करती आई है, कई गुना बढ़ गया है। उनकी तरफसे सैकड़ों विद्यालय चल रहे हैं। वे शिक्षक भी तैयार करते हैं। हिन्दीके प्रचारार्थ आवश्यक पुस्तकें भी प्रकाशित करते हैं। दिन-प्रति दिन उनका काम बढ़ता जा रहा है। प्रधान मन्त्री श्री मो० सत्यनारायणजी हिन्दी-प्रचारके लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं समझते।

इन ३३ वर्षोंके जीवनमें सभाने बहुत उपयोगी काम कर दिखाया है। गांधीजीका बोया हुआ पौधा अब एक विशाल वृक्ष हो गया है। दक्षिणमें हिन्दी-प्रचारका श्रेय इन्हींको है।

गाय बनाम भैंस

प्रिय सम्पादकजी,

भैंस बुद्धिकी खास पहचान है अड़े रहना। फिर हम सरीखे दुविधावाले गायके पक्षपातियोंको दृढ़-प्रतिज्ञ बनानेका

एक मात्र उपाय हमारी शंकाओंका पूर्ण निवारण करना ही तो है।

'गाय बनाम भैंस' प्रश्न गो-सेवा संघके प्रथम अधिवेशनपर दिया गया बापूके भाषणके अनर्थसे आरम्भ हुआ है। बापूका खास ध्येय 'गो' उन्नति करना था और उन स्थानोंमें जहाँ भैंस गायके साथ स्पर्धा करती है, गायकी उन्नति करके उस रोड़ेको हटाना था। भैंसको मूलतः नष्ट करना कदापि उनका ध्येय न था ; क्योंकि उसी भाषणमें उन्होंने कहा था कि गायके बचानेसे ही भैंस बच सकेगी अन्यथा दोनोंका ही नाश होगा।*

आपने देशमें अभी भेड़िया धसान बुद्धि× अधिक काम कर रही है ऐसी स्थितिमें यदि आप लोगोंको गायकी उन्नतिके लिए गायकी सेवा करना और भैंसको त्यागना सुझायँगे तो लोग भैंसको अवश्य नष्ट कर देंगे ; क्योंकि यह सरल होगा पर गायकी सेवा न करेंगे। फलतः हाल उन चौबेजी सरीखे होगा जो छब्बेजी बननेके प्रयत्नमें दुबेजी भर रह गये। प्रश्न लोगोंमें गायकी उन्नतिकी सच्ची लगन उत्पन्न करनेका है। हम एक गायकी हत्याके लिए भले ही साम्प्रदायिक दंगा खड़ा कर दें ; पर हमसे अधिक गो-हत्या करनेका पाप संसारमें शायद ही किसी क़ौमके सिरपर मढ़ा जा सकेगा। गायोंको लापरवाही और कंजूसीके ख़यालसे भूखी रखकर क्रमशः मारना देश-व्यापी है। वे ही लोग जो गो-सेवाके निमित्त लाखों दान कर देंगे अपनी गायको, दूध देना बन्द करनेपर, कसाईका घर बता देते हैं। गोशाला और पिंजरापोलमें गायोंकी अपेक्षा वहाँके मैनेजर साहब ही अधिक मुटाते हैं।

हम लोगोंकी गायके प्रति झूठी भक्ति दिखानेका उत्तम उदाहरण लार्ड लिनलिथगोके वाइसराय पदके आरम्भिक वर्षोंमें लोगोंका साँड़-दान करनेका तमाशा है। उन दिनों लोगोंपर साँड़ पुण्य करनेका भूत सवार हो गया था। ध्येय गो-उन्नति न था वरन् बड़े लाटको प्रसन्न करना। फलस्वरूप उन दिनों साँड़ मिलना इतना कठिन हो गया था कि कहीं तो कम बाढ़-वाले नरिये और अच्छे अध-कुटे बैल ही पुण्य कर दिये गये थे। इस हलचलसे गायकी कोई ख़ास उन्नति नहीं हुई। हाँ, उन दिनों रायसाहब और रायबहादुर अवश्य बरसाती मेढकके समान पैदा हो गये थे। यदि हमारा यह कार्य सच्ची गो-भक्तिकी दृष्टिसे किया गया होता तो आज हमको इन हेड़ोंके तीसरी पीढ़ीके बच्चे मिलते जो कि लगभग प्रथम साँड़के गुणोंवाले होते।

हम लोगोंकी छूँछी गो-भक्ति द्वितीय महायुद्धके समय भी गो-उन्नतिके मार्गमें बाधक बनी रही। विदेशी सेनाको गो-मांस दिया जाता था। इसके पुराने काम हिन्दुस्थानियोंके हाथमें ही था। पूँजीपतियोंने इसे छिपे-छिपे किया—इसलिए कार्य ध्वंसात्मक ही रहा, वह रचनात्मक न हो सका और हमारा अच्छा गो-धन नष्ट हुआ। सम्भव है इससे कमाये पैसोंका कुछ हिस्सा गोरक्षणके रूपमें गोकुलके पण्डोंको भी मिला हो।

गो-उन्नतिके लिए लोगोंकी मानसिक स्थिति और राष्ट्रकी इस सम्बन्धी वर्तमान परिस्थिति देखकर ही कार्यक्रम बनाना चाहिए। आजकी स्थितिमें हमारी अकर्मण्यताका भार भैंसके सिरपर नहीं लादा जा सकता ; क्योंकि भैंस गायका शत्रु नहीं, मित्र ही है। आगे पृ० २३७के अंकोंसे यह पुष्ट भी होता है।

श्री कृष्णास्वामीने 'मद्रासकी ग्राम-समस्याका अध्ययन'में ओंगोल जिलाकी गाय और भैंसका दुग्ध-उत्पादन इस प्रकार बताया है :—

	गाय	भैंस
प्रति दिनका दूध	४·६४ पौंड	६·५३ पौंड
दूध देते रहनेकी अवधि	९·५४ महीने	११·३० महीने
इस अवधिमें मिलनेवाला दूध	१,२३६ पौंड	१९०३ पौंड
दूधमें घृतांश	४ से ५ प्र० श०	७ से ९ प्रतिशत

उनके अनुसार "the buffalo is the most economic producer of milk and has the remarkable ability of living on coarse fodders. In any well-planned scheme of milk production in this country the buffalo will necessarily play an important part."

भैंसके पुल्लिंग खेतीके लिए उतने बेकाम नहीं हैं जितना कि उन्हें दर्शाया जाता है। इसका प्रमाण मद्रासकी मवेशी गणनासे मिलेगा :—

* हम इस बातको मानते हैं। यदि गाय बचती है तो भैंस भी बच जायगी। —सम्पादक

× उसे हम भैंस बुद्धि कहते हैं।—सम्पादक

भारतवर्षके विभिन्न इलाकोंमें गाय और भैंसको दुग्ध-उत्पादन-शक्ति

इलाका	मवेशी-संख्या	प्रतिवर्ष प्रति मवेशीकी दूधकी तादाद (पौंडमें)	इलाकेका वार्षिक दुग्ध-उत्पादन
अ—गाय			
I ६०"से १००" वर्षावाला	११,०३०,०००	३७०·६	४,०६०,०००
II ३०"से ६०" ,,	२०,४५०,०००	४६३·०	६,४७०,०००
III ३०"से कम ,,	५,८००,०००	७७३·७	४,४८०,०००
ब्रिटिश भारतमें	३७,२८०,०००	४८४	१८,०४०,०००
ब—भैंस			
I ६०"से १००" वर्षावाला	७४०,०००	७३२·६	५५२,०००
II ३०"से ६०" ,,	६,४६०,०००	१,०४९·६	६,६३६,०००
III ३०"से कम ,,	४,८५०,०००	१,६१५	७,८३०,०००
ब्रिटिश भारतमें	१५,०५०,०००	१,२१६	१८,३०२,०००

नर गाय

प्रजननके लिये रखे गये साँड़	६१,१४४
तीन वर्षसे अधिक अवस्थाके काम करनेवाले बैल	५,६४८,३३६
प्रजनन और काम करनेवाले नर	८४२,३१०
काम न करनेवाले साँड़ और बैल ...	३६०,७५६
योग	६,६४२,५४६

नर भैंस

प्रजननके लिये रखे गये साँड़	५२,००८
काम करनेवाले नर	१,०१०,६३८
काम न करनेवाले साँड़ और नर	११६,७२६
योग	—१,१७६,३७५

मैं अमेरिका और इंगलैण्डकी नकल करनेको नहीं कहता। मैं उन देशों द्वारा निर्धारित अच्छी बातोंके पानेके मार्गका अनुकरण भर करनेको कहता हूँ। आज देशकी हालत ऐसी है कि किसी भी राष्ट्रीय निधिकी अवहेलना नहीं की जा सकती। भारतमें प्रति व्यक्तिको ६·६ औंस भर दूध मिलता है। राष्ट्रकी कम-से-कम आवश्यकता पूर्ति करनेके निमित्त दुग्ध-उत्पादन आजसे तिगुना होना चाहिए। ऐसी हालतमें भैंससे भी उत्तम लाभ उठाया जा सकता है। चर्खा और मिल, विद्यामन्दिर और यूनीवर्सिटीके विशाल कालेज, सत्याग्रह-आश्रम और अणुबम-प्रयोगशाला देशमें एक-दूसरोंके पूरक रूपमें निर्माण हो रही हैं तब फिर बेचारी भैंस क्यों नहीं गायकी सहायक होकर रह सकती है?

शाही नसलके बैल खेतीके कामके लिये निकम्मे नहीं हैं पर जब शाहीवालका प्रजनन अधिक दुग्ध-उत्पादनके लिए किया जाता है तब वह बेकाम पुल्लिंग देने लगती है। क्या आप इस कथनका 'यह न तो वैज्ञानिक सत्य है और न यह व्यवहारिक सत्य है कि दूध और खेतीके गुणोंका सम्मिश्रण नहीं हो सकता' की पुष्टिमें कुछ प्रमाण दे सकेंगे? प्रजननके Law of Corelation के अनुसार दूध और खेतीके गुणोंका सम्मिश्रण कठिन है। 'ढीले कान, लम्बी मुतान (दुधारू गुण) इनके भरोसे मत रहिये किरसान' कहावत भी यही सिद्ध करती है। देशमें पाई जानेवाली दो कामी जातियोंकी भी यही हालत है। यदि प्रजननकर दूध शक्ति बढ़ाई जाय तो खेतीके गुण मारे जाते हैं और खेतीके गुण बढ़ाते हैं तो दुग्ध-शक्ति कम होती है।

अब प्रश्न रहा गायके दूध और घीके गुणका। जहाँ तक गुणका सम्बन्ध है बकरीका दूध और भी उत्तम होगा। भाई साहब, आज जब वनस्पति घीकी मारमें शुद्ध घी ही नहीं मिलता तब फिर हम गायका शुद्ध घी उपयोग करनेका राग कब तक अलापेंगे। बच्चोंको दूध ही नहीं मिल रहा है। अब उन्हें मरने दिया जाय या भैंसका दूध न पिलाकर उनकी बुद्धि ठस न होने दी जाय?

वर्तमान परिस्थितियोंको ध्यानमें रखकर हम गो-भक्तोंको गो-उन्नतिके लिये भैंसको कोसनेके बजाय ठोस रचनात्मक कार्य करना उचित होगा। सेवामें मैं कुछ सुझाव पेश करता हूँ :—

१. सब ही राष्ट्रीय मासिक पत्रिकाओंको गोपालन-विज्ञान और गो-सेवा-सम्बन्धी प्रामाणिक लेख प्रति मास प्रकाशित करना चाहिए।

२. लोगोंके गो-सम्बन्धी विचार केवल धार्मिक या भावना प्रधान ही नहीं वरन् व्यावहारिक बनाए जायँ और उन्हें गो सेवाका सच्चा अर्थ समझाया जाय।

३. उन लोगोंमें जो शौकके लिए कुत्ता पालते हैं उसी प्रकार गो-पालनकी प्रवृत्ति जाग्रत की जाय। गो अति चतुर जानवर है। उसे भी कई कार्य करना सिखाया जा सकता है। बालाघाटमें एक पानवालेकी दूकानकी रखवाली उसकी गाय ही करती है। उस गायके सामने पानवालेको कोई मार ही नहीं सकता।

४. देश भरमें सब ही शहरों, कस्बों और गाँवोंमें गो-सेवा क्लबकी स्थापना की जाय। इन क्लबोंका अधिक प्रचार होनेपर प्रत्येक नसलकी गायोंके क्लब अलग-अलग खोले जा सकते हैं जैसे हिसार गो-सेवा क्लब, मालवी गो-सेवा क्लब इत्यादि। ये क्लब वार्षिक प्रतियोगिता इत्यादि कर लोगोंमें गो-सेवाका शौक बढ़ा सकते हैं।

५. All India Bee Keaper's Association के समान आप सरीखे गो-सेवक, किसान और लेखकको एक अखिल भारतीय गो-सेवा-संस्था बनानी चाहिए। जमनालालजी द्वारा स्थापित 'गो-सेवा-संघ'का ध्येय भी सच्चा कार्य करना था पर उनके निधन तथा बापूके राजनीतिक कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण संस्था अभीतक कुछ भी नहीं कर पाई है।

६. गो साहित्य-सम्बन्धी एक मासिक निकाला जाय जिसमें भारतीय स्थितिके अनुसार गायोंकी खुराक, गोशाला, प्रजनन इत्यादि विषयोंपर प्रामाणिक और खोजपूर्ण लेख लिखे जायँ।

७. लोगोंमें उनकी सुविधानुसार गायके दूधका ही अधिक उपयोग करनेकी प्रवृत्ति पैदा की जाय।

८. शहरोंमें दूध न देनेवाली गाभिन गायोंको कसाई-घर जानेसे रक्षा करनेके लिए संस्थाएँ स्थापित की जायँ जो ऐसी गायोंको कम खर्चमें जनते तक रखें।

९. गायोंको एक जगहसे दूसरी जगह रेलसे भेजनेका सस्ता और सरल प्रबन्ध होना चाहिए। रेलवे कम्पनियोंपर कुत्ता-डब्बाके समान गो-डब्बा रखनेका जोर डालना चाहिए। यदि गो-पालक इस ओर ध्यान दें तो निश्चय ही यह प्रबन्ध हो जायगा। इससे सरकारी नौकर और ऐसे लोग भी जिन्हें समय-समयपर स्थानान्तर करना पड़ता है, गो पाल सकेंगे।

१०. गो-वध-सम्बन्धी नियम कड़े किये जायँ। यदि देश-चालक साहस कर सकें तो गो-वध बन्द ही हो जाना चाहिए।

आपका

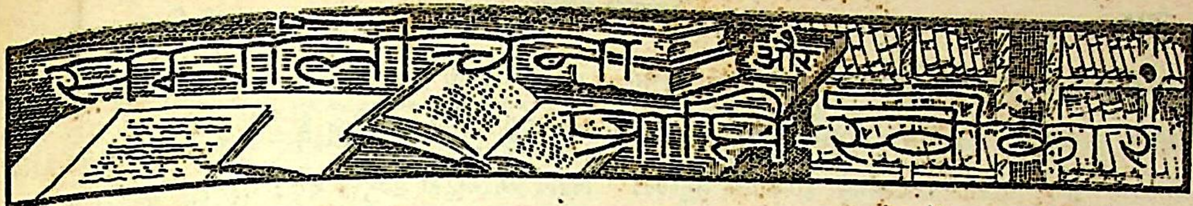
भैंसबुद्धि

[श्री भैंसबुद्धिजीकी बातोंसे हम प्रायः सहमत हैं। एक बुनियादी मतभेद हमारा यह है कि हम सर्वांगीय गायका विकास कर सकते हैं। हमारे खयालसे हरियानेकी गायका दूध औसतन १२ सेर प्रति दिन होना चाहिए। यह ठीक है कि यदि किसी नस्लको अधिक दुधारू बनाया जायगा तो उसके बछड़े खेतीके कामके लिए अपेक्षाकृत अच्छे न रहेंगे। हिसारमें यह शोध-कार्य हो रहा है। यह हम मानते हैं कि अधिकांश हिन्दुओंकी गो-भक्ति कोरी भावना है। —सम्पादक]

क्षमा याचना

हमें दुःख है कि 'विशाल भारत'के इसी अङ्कमें 'भेड़िया और बकरी' शीर्षक कहानी असावधानीसे छप गई। एक बार पहले वह छप चुकी है।

इस मासका सम्पादकीय मैटर पहले छप गया और हम स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिख पाये। स्व० गुप्तजीके इस ग्रन्थका प्रकाशन आगामी ३० सितम्बरको होगा। इस सम्बन्धमें कलकत्तेमें ३० सितम्बर और पहली अक्टूबर '५० को एक महोत्सव होगा, जिसका सभापतित्व करेंगे श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन। इस साहित्यिक समारोहमें देशके प्रसिद्ध साहित्यिक पधारेंगे।



"मातृ शक्तिका वैदिक स्वरूप"—ले० श्री चिरंजीवलाल वानप्रस्थी (स्वामी प्रेम-भिक्षु) प्रकाशक—'संयम' पब्लिशर्स लिमिटेड, नई दिल्ली, मूल्य १=)

उपर्युक्त पुस्तककी रचना हमारे मूल साहित्य वेदादि शास्त्रोंके आधारपर की गई है। इसमें लेखकने मातृ-शक्तिके स्वरूपका सुन्दर चित्रण किया है। माताका महत्त्व, माताकी दिनचर्या, कर्त्तव्य एवं नियम-पालन, आर्य कौन हैं, गृहिणी धर्मका क्या स्वरूप है, आहारके नियम, विवाह और नारीका महत्त्व, हस्तकौशल और मातृ-शक्ति एवं यज्ञभावना और मातृ-शक्ति आदि नारीके जीवन-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातोंपर लेखकने प्रकाश डाला है। पुस्तक सामयिक एवं उपादेय है। विशेष रूपसे देशकी वर्त्तमान परिस्थितिमें जब कि कोडबिल जैसा विवादास्पद काला कानून स्त्रियोंके अधिकारके सम्बन्धमें पास होनेके लिए भारतीय पार्लमेण्टके सम्मुख पेश है।

भारतीय नारी पूजनीय है क्योंकि सर्वप्रथम वह जगजननी है। वह महाशक्ति रूपा है। उसको जो जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त हैं उनके लिए कानून बनानेकी जरूरत नहीं। वह तो अपनी अन्तर्निहित शक्तिके आधारपर अपना ईश्वर-प्रदत्त अधिकार पानेकी सर्वदा अधिकारिणी है। किन्तु काल-चक्रके प्रभावसे उसका ह्रास होकर आज वह अबला बन गई है जैसा कि हमारे राष्ट्र-कविको बरबस अपने अमर काव्य यशोधरामें कहना पड़ा कि :—'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचलमें है दूध और आँखोंमें पानी।' किन्तु नारी जब अपनी शक्तिको पहचान लेती है तब वह सबला होकर महाशक्तिका रूप धारण कर लेती है। इसीसे राष्ट्रकविको आगे चलकर नारीके अजेय स्वरूपको अन्तमें स्वीकार करते हुए यह कहना पड़ा 'गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।' नारी तो सचमुच धर्मकी मूर्त्ति है। शिवने पार्वतीको इसी रूपमें ग्रहण किया था। आधुनिक कालमें इस सत्यका दिग्दर्शन हमें माता कस्तूरबाके जीवनमें मिलता है कि महात्मा गांधीके जीवनको सफल बनानेमें उन्होंने अपनेको अग्निके सदृश तपाया। नारी अपने सतीत्वके बलपर मनुष्यके जीवनका पथ-प्रदर्शन करती है। नारी ही माताके रूपमें वह गुरु है जो बच्चेके जीवनका निर्माण करती है। इसकी झलक हमें संसारके महापुरुष नेपोलियनके जीवनमें मिलती है। अतएव आज राष्ट्र-निर्माणके लिए नारीके जीवन-निर्माणकी बड़ी भारी आवश्यकता है। आशा है प्रेम-भिक्षुजीकी ओजस्वी लेखनीसे लिखित यह सुन्दर पुस्तक आदर्श नारी निर्माणके साथ-साथ नवराष्ट्र-निर्माणमें सहायक सिद्ध होगी। साहित्यके ऐसे आवश्यक अंगकी पूर्तिके लिए हम लेखकको बधाई देते हैं।

मनुष्यके कर्त्तव्य—ले० श्री चिरञ्जीवलाल (स्वामी प्रेम-भिक्षु) प्रकाशक संयम पब्लिशर्स लि०, नई दिल्ली, पृ०सं० १९०, मूल्य १=)

प्रस्तुत पुस्तकमें मनुष्यके कर्त्तव्योंका अति सुन्दर रीतिसे विवेचन किया गया है। कर्त्तव्य-पालनसे ही मनुष्य अपने अधिकार प्राप्त करनेके योग्य बनता है। सबसे पहला कर्त्तव्य मनुष्यका यह है कि वह अपने आपको पहिचाने। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'का अर्थ होता है कि मनुष्य ईश्वर-स्वरूप है। 'मानव' सृष्टिकर्त्ता परमेश्वरकी सर्वोत्तम रचना है इससे उसे अशरफुल मखलूकातकी उपाधि दी गई है। किन्तु अफसोस की हम आज दिन अपने चारों ओर विश्व-व्यापी अशान्ति देखते हैं क्योंकि आजका मानव अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो रहा है। लेखकका यह कथन सत्य है कि अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्तिका उपयोग मनुष्य प्रायः अपने मानवीय गुणोंके विकास तथा मनुष्य जीवनके सदुपयोगमें नहीं लगाता अपितु अपने मस्तिष्ककी सहायता लेकर वह अपने कर्त्तव्यसे बचने और उन्हें दूसरोंपर लादनेका प्रयत्न करता है। यही मनुष्यकी निर्बलता है। मानव-स्वभावकी इस कमजोरीका परिणाम आजकी यह विश्व-व्यापी अशान्ति है। दूसरी ओर यदि

मनुष्य आत्म-निरीक्षण और आत्म-नियन्त्रणके द्वारा अपनी शक्तिका उपयोग अपने कर्त्तव्य-पालनमें करे तो संसारका रूप ही बदल जाय। उत्थान-पथपर अग्रसर होनेके लिए मनुष्यको सबसे अधिक अपने चरित्रको निर्माण करनेकी आवश्यकता है। चरित्र निर्माणके जो उदाहरण लेखकने पुस्तकमें दिये वे हमारे देशके वर्त्तमान वातावरणके लिए परम उपयुक्त हैं। उनमें एक उदाहरण तो बिना टिकट रेल-यात्रा करनेका है। एक सज्जन ३६ वर्षोंतक इस आत्मग्लानिसे पीड़ित रहे कि उन्होंने बिना टिकटके रेल-यात्रा की है। अन्तमें एक दिन उन्होंने रेलका किराया मनीआर्डर द्वारा भेज दिया तब कहीं उनके चित्तको शान्ति मिली। दूसरा अपना निजी उदाहरण उन्होंने लिखा है कि हिन्दू-विश्व-विद्यालय काशीको कुछ रुपया दान देनेका वचन उन्होंने महामना मालवीयजीको दिया था जो १५ वर्ष पश्चात् भेजा तब कहीं आपके मनका भार हल्का हुआ। आजकल हमारे देशमें उपर्युक्त दोनों शिकायतें अमूमन देखनेमें आती हैं जिससे हमारा अधःपतन हो रहा है। हमें इन उदाहरणोंसे शिक्षा लेकर अपना जीवन सुधारना चाहिये। कर्त्तव्य-पालन वास्तवमें वह संजीवनी बूटी है जिसके बलपर मनुष्य सबका पूजनीय बन जाता है। हमारे नेता मोहनदास करमचन्द गांधी जो बादमें महात्मा बने और पूज्य महामना मदनमोहन मालवीय ऐसे दो ज्वलन्त उदाहरण हमारे सम्मुख हैं कि जो अपने कर्त्तव्य-पालनसे देशवासियोंके हृदय-सम्राट बन गए। कर्त्तव्य-पालन वह महौषधि है जिसके सेवन देशकी बेकारीकी समस्या भी हल हो जाती है और प्लेगरूपी अनेक वादोंका अन्त होकर राष्ट्र सुखी एवं समृद्ध बनता है।

जो मनुष्य अपनी नेक कमाईसे प्रातःकालसे सायंकाल तक परिश्रम करके यदि कुछ शाक ही कमाकर लाता है और अपने परिवारमें मिलकर खाता है और जिसे किसीका ऋण नहीं देना है वही संसारमें सब प्रकारसे सुखी है। महात्मा गांधीका भी यही कहना था कि जिस समय भारतवर्षकी जनता कर्त्तव्य-कर्म समझकर उसका अनुष्ठान करने लगेगी, उस समय भारतमें स्वराज्य अथवा रामराज्य हो जायगा। ये कर्त्तव्य-कर्म क्या हैं और कैसे उनको करना चाहिये—इसका विशद विवेचन आपको विद्वान् प्रेमभिक्षुकी उपर्युक्त अपूर्व पुस्तकमें पढ़नेको मिलेगा। पुस्तक परमोपयोगी एवं पठनीय है।

गायत्रीका महत्त्व—ले० श्री चिरंजीवलाल वानप्रस्थी (स्वामि प्रेमभिक्षु) प्राप्तिस्थान : श्री मलिक रामलाल, ५।६०, कनाट सरकस नई दिल्ली मू० १)।

विद्वान् लेखककी यह तीसरी पुस्तक है। इसमें, जैसा कि नामसे प्रकट है, गायत्रीके महत्त्वको सविस्तार समझाया गया है। गायत्रीका दूसरा नाम सावित्री है। गायत्री ही गुरु-मन्त्र है। इसके अवलम्बनसे मनुष्य पशुयोनिसे पार करके मनुष्ययोनि एवं देवयोनिको प्राप्त करता है। गायत्री मंत्रकी महिमा अपार है। इसका महत्त्व तो वर्णन करने या सुननेसे भी अधिक इसको व्यवहार रूपमें जप करनेसे जाना जाता है। आज तो हम मन्त्रोंके महत्त्वको सुनकर ही सन्तोष कर लेते हैं। प्रमादवश उनका उपयोग नहीं करते। उस प्रमादको दूर करके हमें जाग्रत करनेके लिए ही विद्वान् लेखकने यह अमूल्य पुस्तक लिखकर अपनी लेखनीको पवित्र किया है। लेखकने गायत्री मन्त्रके महत्त्वको समझकर लिखा है कि "आज अपने अनुभव के बलपर मैं कह सकता हूँ कि जितनी आत्मिक शान्ति मुझे गायत्री माताके प्रसादसे प्राप्त हुई है उतनी अन्य किसी बातसे नहीं"। लेखकके विचारोंमें कितनी स्फूर्ति है इसका रसास्वादन कीजिये। "हिरन घास खाता है और घासमें सुगन्ध नहीं होती, परन्तु उसके अन्दर सुगन्धयुक्त कस्तूरी कैसे पैदा हो जाती है? यह बनानेवालेकी विचित्रता है। इसी प्रकार पृथ्वी पर हर जगह केसर नहीं पैदा होती, परन्तु किसी विशेष स्थानमें उसने विचित्र गुण भर दिये हैं जहाँ केसर पैदा हो जाती है। वृक्षोंके फूलोंमें सुगन्धि होती है, परन्तु चन्दनके सब अवयवोंमें ही सुगन्धि है। इसी प्रकार जलमात्रमें समानता होनेपर भी स्वाति-नक्षत्रमें पड़ी हुई सीपकी बूँद मुक्ता बन जाती है, अन्य जल मुक्ता नहीं बन सकता। इस विचित्रताका कारण भी कोई चेतन सत्ता है जो सविता कहाती है।"

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड कलकत्ता।

विशाल भारत

के

प्रति अंकका विज्ञापन-दर

साधारण पूरा पृष्ठ	६०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	३२)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	१८)
,, चौथाई कालम	१०)
चित्रके पीछेका पूरा पृष्ठ	७०)
,, ,, आधा पृष्ठ	४०)
कवरके दूसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	७०)
कवरके तीसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	६५)
सूचीके सामनेका पूरा पृष्ठ	७०)
,, ,, आधा पृष्ठ	४०)
,, ,, चौथाई पृष्ठ	२५)
अन्तिम पाठ्य-सामग्रीके सामनेका पृष्ठ	८०)
कवरका दूसरा पृष्ठ	९०)
,, तीसरा पृष्ठ	८०)
,, चौथा पृष्ठ	१२५)
,, चौथे पृष्ठका दूसरा कलर ३०) फी कलर ।	
रिडिंग मैटरके साथ पूरा पृष्ठ	१००)
,, आधा पृष्ठ	५५)
,, चौथाई पृष्ठ	२८)
,, चौथाई कालम	१५)

अन्तिम फरमाके अन्तमें छापा जायगा ।

क्रोड़पत्र

'विशाल भारत'के आकारका ९½×७ इंच

(विज्ञापनदाता द्वारा मुद्रित)

८ पृष्ठ	१२५)
४ पृष्ठ	८०)
२ पृष्ठ	४५।

नोट :—उपरोक्त दर जनवरी १९४९ से शुरू हुआ है ।

मैनेजर, 'विशाल भारत' १२०।२, अपर सरकूलर रोड,

कलकत्ता ९

विशाल भारत बुक डिपो

द्वारा प्रकाशित तथा प्रचारित पुस्तकें

१. जंगलके जीव सचित्र, सजिल्द—श्रीराम शर्मा ५)
२. प्राणोंका सौदा ,, ३॥)
३. शिकार ,, ३)
४. ,, उर्दू ,, ३)
५. बोलती प्रतिमा ,, २।)
६. शब्द-चित्र ,, २)
७. हमारी गायें ,, १॥)
८. पपीता ,, ।)
९. झाँसीकी रानी ,, ॥)
१०. नेताजी (अंग्रेजी) ,, २०)
११. स्वामीके पत्र—ज्योतिर्मयी ठाकुर ४)
१२. पिस्तौलका निशाना रूसी कहानियाँ—स्व० बृजमोहन वर्मा ४)
१३. प्रेम-संगीत—श्री भगवतीचरण वर्मा २॥)
१४. मानव ,, २)
१५. मीरा और उनकी प्रेमवाणी—ज्ञानचन्द जैन एम०ए० २)
१६. घूँघटवाली-कहानी संग्रह—विश्वम्भरनाथ जिज्जा २।)
१७. त्रिलोचन कविराज—स्व० रवीन्द्रनाथ मैत्र २)
१८. खटोला—श्री आनन्दकुमार त्रिपाठी एम० ए० १।)
१९. बातचीत ,, ,, १)
२०. शुकपिक—श्री तारा पाण्डेय १)
२१. शिवशम्भुके चिट्ठे—स्व बालमुकुन्द गुप्त ॥)
२२. सौगात (कहानी संग्रह)—परशुराम नौटियाल २)
२३. अलिफलैलाकी कहानियाँ—६ भाग ६)
२४. इजादोंकी कहानियाँ १॥)
२५. सरदारपटेल (जीवनी) ॥=)
२६. संयम शिक्षा—गाँधीजी ।=)
२७. मुक्ति-पथ—इलाचन्द जोशी ६)
२८. संघर्ष और समर्पण—कन्हैयालाल ओझा
२९. स्वाधीनताके पथपर
३०. पथिक—(गुरुदत्त)
३१. स्वराज्य दान
३२. उन्मुक्त प्रेम
३३. विकृत छाया
३४. भावुकताका मूल्य
३५. रात चोर और चाँद
३६. उपनिषदोंकी कहानियाँ
३७. महादेव भाईकी डायरी I II
३८. दिल्ली डायरी—गाँधीजी
३९. भारतमें गाय I II श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त
४० गेहूँ और गुलाब (बेनोपुरी)
४१. अजाने रास्ते—डा० सत्यनारायण सिंह
४२. राजेन्द्र अभिनन्दन-ग्रन्थ
४३ नेहरू अभिनन्दन हिन्दी, अंगरेजी, प्रत्येक
४४. जगतसेठ—(श्री पारसनाथ सिंह)
४५. कुली (मुल्कराज आनन्द)
४६. मुहम्मद रसूलिल्लाहकी जीवनी
४७. रवीन्द्र साहित्य १७ भाग प्रत्येक
४८. राजस्थानी कहावत I II नरोत्तम स्वामी—मुरलीधर व्यास
४९. राजस्थानके लोक गीत I II
५०. मधुर स्वप्न (राहुल)
५१. वयालीस—प्रतापनारायण श्रीवास्तव
५२. धरातल - शान्तिप्रिय द्विवेदी
५३. हिमानी ,, ,,
५४. अच्छी हिन्दीका नमूना—किशोरीदास बाजपेयी

विशाल भारत बुक डिपो

१९५।१, हरिसन रोड, कलकत्ता—७।



विशाल भारत

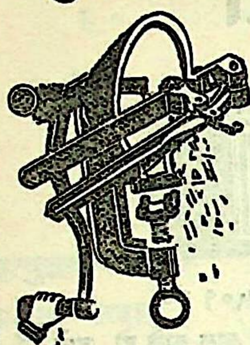
सम्पादक : श्रीराम शर्मा

अक्टूबर, १९५०

विषय-सूची : अक्टूबर, १९५०



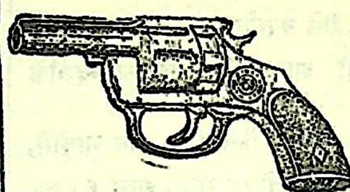
सुपारी काटनेकी मशीन



यह मशीन हजारों रुपये खर्च करके तैयार कराई गई है। पीतलकी बनी हुई, चमकदार पालिशकी हुई यह मशीन १ घण्टेमें ५ सेर तक सुपारी चक्कीकी तरह काट डालती है, सबसे बड़ी प्रशंसाकी बात यह है कि आप जिस प्रकारकी सुपारी यानी पानमें डालने लायक दाने, मैनपुरीके वर्क तथा लच्छे रेशे, बड़ी आसानीसे काट सकते हैं। हजारों प्रशंसा पत्र प्राप्त हुये हैं। बड़ी उपयोगी मशीन है। बेरोजगार ५) रु० रोज तक कमा सकते हैं। गारण्टी पत्र साथमें भेजा जाता है। आज ही अपना आर्डर भेजें अथवा स्वयं आकर देखकर लें। मूल्य ११॥) रु० पोस्टेज पैकिंग २॥) अलग।

पताः—बंगाल ब्रास एण्ड आइरन वर्क्स
(१२) कनवरीगंज, अलीगढ़, (यू० पी०)

आत्मरक्षाका अपूर्व साधन



अमरीकन मोडल पिस्तौल लायसन्सकी कोई आवश्यकता नहीं। ड्रामा, सबके लिये बड़ी ही लाभदायक पिस्तौल है। आपके धनकी रक्षा तथा आत्मरक्षाके लिये इससे बढ़कर दूसरी कोई चीज नहीं, दागनेपर भयंकर सच्ची पिस्तौलके मानिन्द आवाज होती है, तथा जंगली जानवर इसकी आवाजसे डरकर भागने लगते हैं। क्वालिटी नं० १००, मूल्य ६॥≋) नं० १०१ मूल्य ८॥≋) नं० १०२ मूल्य १०≋) डा० खर्च १॥) प्रत्येक पिस्तौलके साथ १ दर्जन सौटस मुफ्त। पिस्तौल रखनेका घर मूल्य ३) रु०। अलग सौटस मंगानेपर १॥) रु० फी दर्जन, शीघ्र मँगावे।

पता—

बंगाल ट्रेडर्स (१०१)
अलीगढ़, यू० पी०

५००) इनाम

महात्मा प्रदत्त श्वेतकुष्ट (सफेदी) की इस वनौषधिसे तीन दिनमें पूर्ण आरोग्य। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापन दाताओंकी औषधि व्यवहार कर निराश हो चुके हों तो इस औषधिको व्यवहार कर आरोग्य हों। मूल्य १५ दिनकी औषधिका २॥) बेफायदा साबित करनेपर ५००) इनाम।

सफेद बाल काला

खिजाबसे नहीं, हमारे औषधालयके आयुर्वेदिक सुगन्धित तेलके व्यवहारसे बालोंका पकना रुककर पका बाल जड़से काला हो जाता है। सिर दर्दको आराम कर आँखोंको रोशनीको बढ़ाता है। मूल्य २॥) कम पके बालोंके लिए, ३॥) अधिकके लिए, ५) सभी बालोंके लिए।

बधिरता नाशक

इस दवासे कानसे पीब निकलना, कानमें टीस, खुजली, कानमें भों-भों आवाज़ कम या बिल्कुल ही न सुनाई देना आदि किसी कारणसे बहरापन हो गया हो तो इस दवासे आरोग्य प्राप्त करें। हज़ारोंको लाभ हुआ है। मूल्य एक शीशी २॥) अढ़ाई रुपया।

पता—वैद्यराज अखिल किशोरराम
नं० १ पो० सरिया (हजारीबाग)

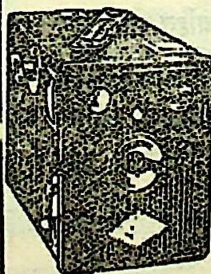
आपका लेख मुफ्त

१९४९—५० में क्या होने वाला है

आपके १२ महीने का लेख प्रेम, स्वास्थ्य, परीक्षा, नौकरी, रक्षा, ग्रह, सन्तान, कचहरी, झगड़े, जिन्न, भूत आदिके बारेमें बिलकुल मुफ्त बतलाया जाएगा। आपकी चिन्ताओं तथा दुःखोंके कारण और उनको दूर करनेके लिए एक गुडलक रिंग (Good Luck Ring) जिसके धारण करनेसे इच्छाओंकी पूर्ति होगी, भी भेजी जाएगी। केवल किसी फूलका नाम या पत्र लिखनेका ठीक समय लिखकर भेज दें।

श्री महामुनी ज्योतिष आश्रम,
आजाद नगर, (V. C.) अमृतसर

अमेरिकन मोडल बोक्स कैमरा



सस्ता सुन्दर मजबूत इस कैमरेसे आप नं० १२० के कट फिल्म पर २॥×३॥ इञ्च साइज का सुन्दर फोटो खींच सकते हैं। प्रयोग विधि सहित मू० ९) रु० पो० पैकिंग १॥) अलग। कैमरा के लिये चमड़ा केस मू० ३) रु० पोस्टेज ।/) बढ़िया फोटो न खिंचे तो दाम वापस।

मिलाप ट्रेडिंग कं०,(1-M) कनवरीगंज, अलीगढ़ (यू०पी०)

पाठकोंको सूचना :—

विशाल भारतका

मूल्य निम्नलिखित है :—

वार्षिक चन्दा	६)
छमाही	५)
एक प्रति	॥।)

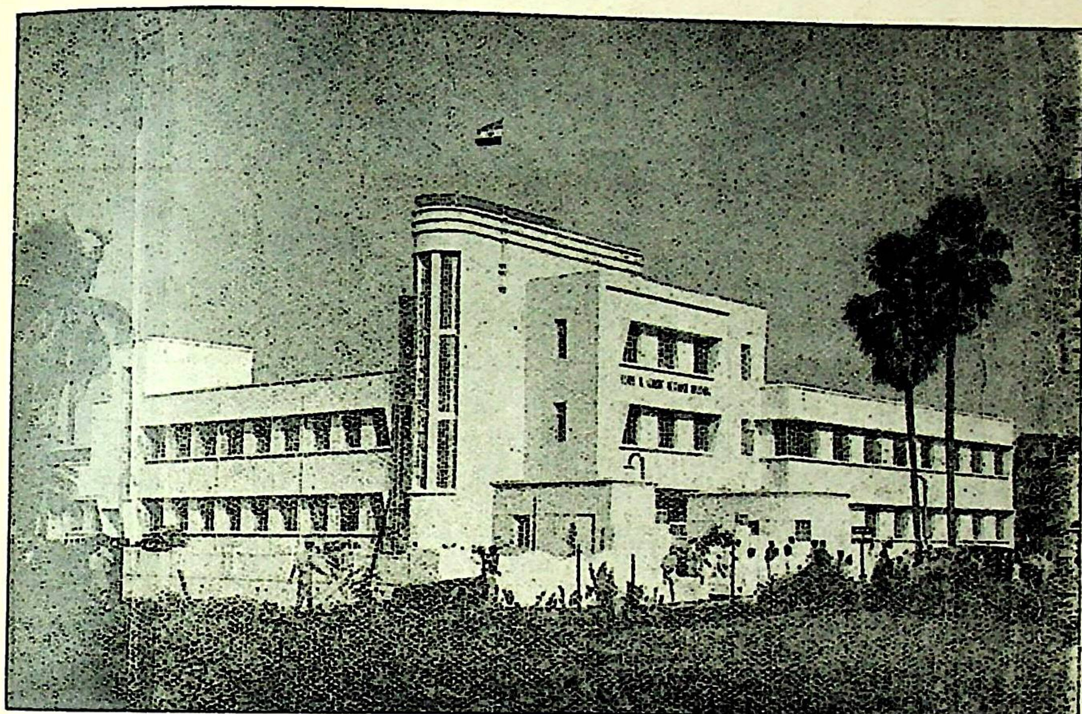
विदेशके लिए

वार्षिक चन्दा	१४)
छमाही	७)
एक प्रति	१।)

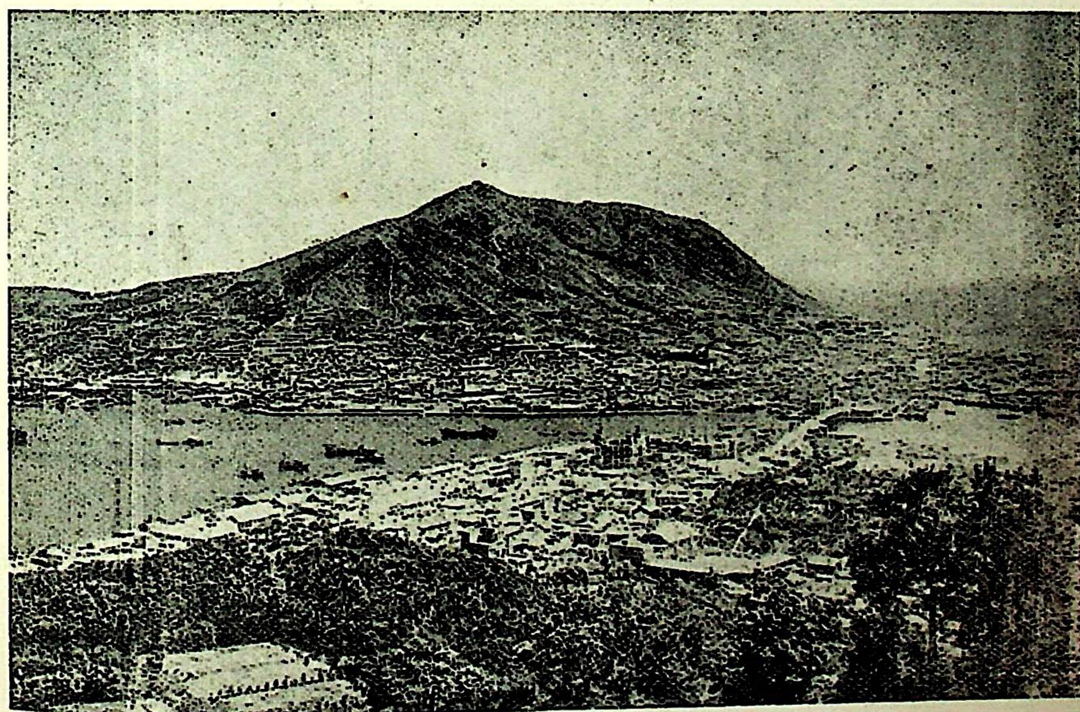
नमूनेकी प्रति मुफ्त नहीं भेजी जाती ।

नमूनेकी प्रतिके लिए ॥।~) आनेका डाक टिकट भेजना चाहिए ।

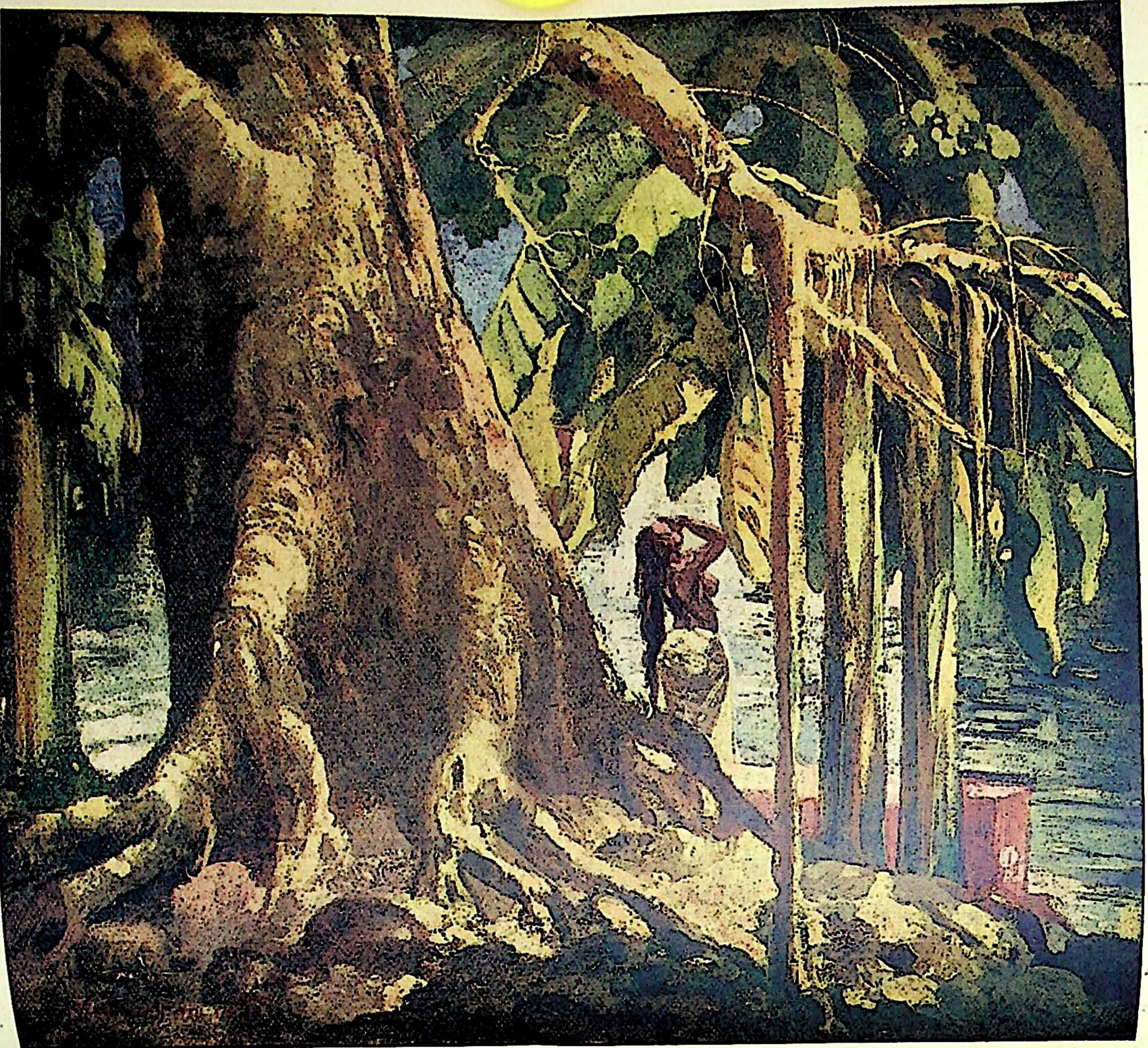
—मैनेजर



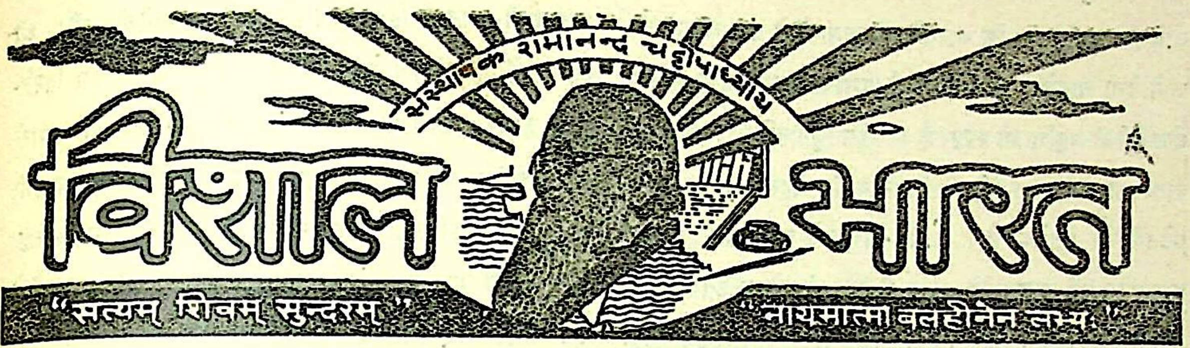
शीशे और मृत्तिका-शिल्पका रिसर्च इंस्टीट्यूट, यादवपुर. प० बंगाल ।



कोरियाके पुसन बन्दरगाहका सुरम्य दृश्य ।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] बाँधाघाट [श्री देवीप्रसाद रायचौधरी



भाग ४६, अंक ४] कलकत्ता, अक्टूबर, १९५० [पूर्णांक २७४

सम्पादकीय विचार

कांग्रेसके नए अध्यक्ष

पाठकोंको मालूम है कि नासिक-कांग्रेसके नवीन अध्यक्ष श्रीमान् पुरुषोत्तमदास टण्डन निर्वाचित हुए हैं ! कांग्रेसके लगभग तीन हजार प्रतिनिधियोंमें से २६१८ ने चुनावमें भाग लिया था और २६१८ वोटोंमें १८ वोट अवैध थे। इसलिए २६०० वोटोंमें से १३०६ वोट श्री टंडनजीको, १०९२ वोट आचार्य कृपलानीजीको और २०२ वोट श्री शंकरराव देवको मिले। स्पष्ट है कि श्री टंडनजीको आचार्य कृपलानीसे केवल २१४ वोट अधिक मिले। पाठक इस बातको भी जानते हैं कि यह चुनाव 'सिंगिल ट्रान्सफरेबल' वोटकी प्रणालीके अनुसार हुआ था। यानी तीन उम्मेदवारोंमें से प्रत्येक वोटरको बैलेट पेपरपर अपनी प्रथम पसन्दगी, द्वितीय पसन्दगी और तृतीय पसन्दगी लिखनी थी। उदाहरणके लिए यदि किसी वोटरकी प्रथम पसन्दगी टंडनजीकी है तो वह टंडनजीके नामके आगे १ लिख देगा और दूसरी कृपलानी और तीसरी देवके नामोंके आगे। यदि कोई वोटर केवल एक ही पसन्दगी लिखता है, दूसरी-तीसरी नहीं लिखता तो उसका बैलेट-पेपर (वोटका पर्चा) अवैध माना जायगा। इस कारण प्रत्येक प्रतिनिधिको तीनों उम्मेदवारोंके लिए अपनी पसन्दगियाँ लिखनी थीं। अगर कुल वोटोंमें से आधेसे अधिक वोट टंडनजीके नहीं आते तो दूसरी पसन्दगीकी गणना की जाती। पाठक हिसाब लगा लें कि अगर २६०० वोटोंमें से टंडनजीके आधेसे कुछ कम वोट आते तो उनके जीतनेका कोई अवसर न था। अर्थात् टंडनजीको जो वोट मिले हैं उनमें से उन्हें कुछ वोट नहीं मिलते तो जो २१४ का बहुमत दिखाई पड़ता है उसका कोई अर्थ न होता और आचार्य कृपलानी कई सौ वोटोंसे जीत जाते।

यह बात हुई वोटोंके हिसाब की। अब हमें राजनीतिक स्थितिका विश्लेषण करना है। यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि कांग्रेसकी भीतरी हालत काफ़ी खराब है। सेवाभावके स्थान में अनेक व्यक्ति स्वार्थपरता, पदलोलुपता और सत्ताके मोहमें फँसकर कांग्रेसको छिन्न-भिन्न कर रहे हैं। अनेक कारणोंसे ऊपरसे नीचे तक विशृंखलना आ गई है। अनेक प्रवृत्तियोंका प्रभाव दिखाई पड़ता है। कांग्रेसकी क्रान्तिकारी भावनाओंको कुछ उद्योगपति, भ्रष्टाचारी और स्वार्थी व्यक्ति दबा रहे हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीने हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, वर्गहीन समाज और विकेन्द्रीकरणका जो मूलमन्त्र भारतके त्राणके लिए रखा था उसका ख़याल बहुत कम कांग्रेसजन करते हैं। सूबोंके अनेक मन्त्री ज़िलोंमें अपनी सत्ता क़ायम रखनेके लिए अशोभनीय कार्य करते हैं। हिन्दूहितके नामपर अनेक कांग्रेसी, संघिष्ट और हिन्दू-सभाई मनोवृत्तिको मानने लगे हैं। जमींदार, राजे-महाराजे, उद्योगपति और प्रतिक्रियावादी कांग्रेसके मूल सिद्धान्तोंका ढेर कर रहे हैं। नासिक-कांग्रेस-अधिवेशनके

अध्यक्षके चुनावमें इनका रूप हमने देखा है। एक बहुत पुराने कांग्रेसीने हमसे कहा कि भारतके मुसलमानोंको पं० नेहरू नहीं जाने देना चाहते। शरणार्थियोंकी समस्या हल करनेकी आड़में वोट लेनेकी प्रवृत्ति भी स्पष्ट है। इस चुनावसे यह दबी-ढँकी बात भी साफ़ हो गई कि माननीय पं० नेहरू और माननीय पटेलमें घोर मतभेद है। कांग्रेस-अध्यक्षके चुनावके लिए सरदार पटेल श्री टण्डनजीके पक्षमें थे और पं० नेहरू उनके पक्षमें नहीं थे। चुनावसे लगभग १६-१७ दिन पहले—अगर हम गलती नहीं करते तो—गत १२ अगस्तको नेहरूजीने टंडनजीको एक निजी पत्र लिखा था कि यदि वे अध्यक्ष चुन लिए गए तो वे (नेहरूजी) टंडनजीकी कार्य-समितिमें शामिल नहीं होंगे। टंडनजी ने उसका उत्तर भी दिया था। चुनावकी सबसे बड़ी पैंतरेबाजी राजस्थानकी है। राजस्थानमें श्रीहीरालालशास्त्री और व्यासजीके दो दल हैं। कांग्रेस-प्रतिनिधियोंके चुनावमें व्यासजीके साथियोंकी अत्यधिक जीत हुई थी। हमें विश्वस्त सूत्रसे चुनावके दिनोंमें ही पता चला कि २६ अगस्त तक व्यासजी और उनका दल टंडनजी के विरुद्ध था। अगर व्यासजीका दल अथवा उनके बीस-पच्चीस साथी ही कृपलानीजीको और वोट दे देते तो चुनावका पासा पलट जाता, पर वहाँका पासा दूसरी तरहसे पलटा। हालत खराब होती देख श्री जयनारायण व्यासके सामने प्रस्ताव रखे गए। उनके विरुद्ध कुछ मुकदमे थे। एक ओर राजस्थानके प्रधान मन्त्री बननेका आकर्षण था और दूसरी ओर कारावास की विभीषिका थी। हम विभीषिकाका ही प्रयोग करेंगे क्योंकि उनका मामला विचाराधीन था। रहे पं० हीरालाल शास्त्री, सो उनकी हालत मदारीके जमूड़ेकी-सी रही है। राजस्थानका मन्त्रिमण्डल चुनावसे तो निर्वाचित है नहीं। वह तो मदारीकी लकड़ीपर नाचता है। यह कौन कम बात है कि शास्त्रीजीके जन्मपत्रीके ग्रह पूरे हो गए और वे प्रधानमन्त्री बने। शतरंजी चालमें जिस तरह मोहरे इधर-उधर रखे जाते हैं ठीक उसी भाँति व्यासजीको व्यास गद्दीपर बिठानेका आकर्षण दिया गया और शास्त्रीजी इस्तीफा देनेको तैयार हो गए और फलस्वरूप वोट पड़े कृपलानीके मुकाबले टंडनजीको। राजस्थानी, इस राजनीतिसे, चुनावका पासा तो पलट गया; पर राजस्थानी जनताके हितकी बात कोरा ढकोसला है। हमने राजस्थानी जनताके हितकी दृष्टिसे श्री शास्त्रीजी और श्री व्यासजीमें कोई विशेष भेद नहीं माना है। हमारे इस विश्लेषणसे हमारे राजस्थानी मित्र असंतुष्ट थे, पर अब वे हमारी इस बातको मानते हैं कि श्री हीरालाल शास्त्री और व्यासजी का झगड़ा लोकहितकी खातिर नहीं था, वरन् व्यक्तिगत प्रतिष्ठा और अपनी पदलोलुपताके कारण। हम जहाँ श्री टंडनजीको इस जीतके लिए बधाई देते हैं वहाँ श्री व्यासजीके प्रति समवेदना और सहानुभूति प्रकट करते हैं।

टण्डनजीका चुनाव और नेहरूजी

गत १२ सितम्बरको माननीय नेहरूजीने कांग्रेस-अध्यक्ष के इस चुनावके सम्बन्धमें एक वक्तव्य दिया है जो इस प्रकार है :—

"कांग्रेसके अध्यक्षके चुनावसे न केवल कांग्रेसजनोंमें बल्कि दूसरे लोगोंमें भी दिलचस्पी और उत्तेजना पैदा हुई है। मेरा भी इसमें दिलचस्पी लेना स्वाभाविक है। कारण यह है कि मेरे जीवनका अधिकांश हिस्सा कांग्रेसकी सेवामें गुजरा है। अतएव कांग्रेसमें जो कुछ होता है वह मेरे लिए तथा भारतके असंख्य लोगोंके लिए एक बहुत बड़ी चीज है। कांग्रेसके भीतर और बाहर सब तरहकी ताकतोंने इस चुनावको पहले की अपेक्षा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया। साम्प्रदायिक तथा प्रतिगामी शक्तियोंने अध्यक्ष चुनावके नतीजोंपर खुलेआम खुशी जाहिर की है। इस तरह यह मामला व्यक्तिगत न होकर कांग्रेस और देश दोनोंके लिए महत्त्वपूर्ण है। अतएव अब कांग्रेसके लिए यह घोषित करना और प्रत्येक कांग्रेसजनके लिए यह जानना जरूरी हो गया है कि हम कहाँ खड़े हैं और हमारी नीति क्या है। राष्ट्रिय तथा अन्तर्राष्ट्रिय मामलोंका तकाजा है कि कांग्रेस अपनी नीतिको साफ शब्दोंमें घोषणा कर दे, ताकि किसी किस्मकी गलतफ़हमी पैदा न होने पाये।

"नासिक कांग्रेसको यही फर्ज अदा करना है और मैं यह वक्तव्य इसलिए प्रकाशित कर रहा हूँ कि नासिकमें एकत्र होनेसे पहले तमाम प्रतिनिधि इन मामलोंपर विचार कर सकें।

हमारी मुख्य समस्याएँ क्या हैं?

मोटे तौरपर हमारी समस्याएँ तीन हैं—अन्तर्राष्ट्रिय, आर्थिक नीति तथा साम्प्रदायिकता। इन सबके बारेमें कांग्रेस का अपना ही दृष्टिकोण है और उन्हें सुलझानेका अपना ही तरीका है। विगत ३-४ वर्षोंमें हालतें काफी बदली हैं। क्या उन्हें देखते हुए हम अपनी नीति तथा तरीकोंमें परिवर्तन करें अथवा उनपर यथापूर्व डटे रहें?

अन्तर्राष्ट्रिय नीति

कांग्रेस अन्तर्राष्ट्रिय मामलोंको कैसे सुलझाती है—यह अभी तक साधारण शब्दोंमें प्रकट किया जाता रहा है। लेकिन अब हमें इस सवालपर यथार्थ दृष्टिसे सोचना है। आजकी स्थिति विस्फोटशील हो चुकी है। उसमें बड़े-बड़े खतरे पैदा हो चुके हैं। स्थिति दिन-पर-दिन बदल रही है। आजसे एक महीना पहले मैंने भारतीय संसदमें अपनी विदेशी-नीतिपर काफी विस्तारसे प्रकाश डाला था। अब तक हम लोग उसीके अनुसार आचरण करनेका प्रयत्न करते रहे हैं। अतएव अब मैं उस नीतिको दोहराऊँगा नहीं। भारतकी जिम्मेदारी बढ़ चुकी है और हमें समय-समयपर बड़े महत्त्वपूर्ण फैसले करने होते हैं। मैं चाहता हूँ कि कांग्रेस हमारी अब तक की नीतिपर विचार करे और उसपर अपनी सहमति प्रकट कर दे।

आर्थिक नीति

हमारी आर्थिक नीति सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। कारण यह है कि हमारे देशका भविष्य उसीपर निर्भर है। निस्सन्देह इस दिशामें हमने कोई बहुत बड़ी प्रगति नहीं की। हमारी कुछ सीमित मर्यादाएँ हैं और हमें अनेक दिक्कतोंका सामना करना पड़ा है। अबतक जो कुछ हो चुका, सो हो चुका; मगर अब हमें अपने भविष्यकी बात सोचनी होगी।

अपने आदर्शोंके अनुसार आचरण करते हुए और अपनी नीतियोंको अमली जामा पहिनाते हुए हमें अपने आपको परिस्थितियों, अपने साधनों तथा अन्य अनेक जटिल तत्त्वोंके अनुसार चलाना पड़ेगा। ऐसा करते हुए हमें अपने उद्देश्योंको अपने सामने साफ तौरसे रखना होगा। मेरी यह साफ राय है कि हमारा उद्देश्य एक ऐसा राज्य क़ायम करना है, जो जनताके लिए सब सुविधाओंका प्रबन्ध करे। हमें न्यस्त स्वार्थवालोंकी वजहसे अपने उद्देश्यको परित्याग नहीं करना होगा। हमें सर्वसाधारणकी भलाईके लिए ही हरेक कदम उठाना होगा। इस कार्यके लिए हमें आर्थिक व्यवस्थाके लिए बाक़ायदा योजना बनानी होगी और उसपर अपना नियन्त्रण रखना होगा।

हमने योग्य और अनुभवी महानुभावोंका एक योजना-आयोग कायम किया है। लोगोंने इसकी काफी आलोचना की है। मगर वे यह भूल जाते हैं कि योजनाका महत्त्व क्या है और यह कार्य कितना पेचीदा है। हमारे साधन सीमित हैं, इसलिए हम भविष्यमें कोई ऐसी योजना तैयार नहीं कर सकते कि जिसमें हमें सफलता प्राप्त न हो। हमें आदर्श-वादी होनेके साथ यथार्थवादी भी होना चाहिए। हम अपने आर्थिक ढाँचेमें एकाएक कोई परिवर्तन नहीं करना चाहते। इससे तो अव्यवस्था पैदा होगी और हमारी प्रगतिमें विलम्ब होगा।

रास्ता आसान नहीं

हमारा रास्ता आसान नहीं। महज घोषणाओंसे भी कुछ न होगा। सापेक्ष चिन्तन और कठोर परिश्रमसे ही काम चलेगा। अब हमारा आर्थिक ढाँचा मिश्रित होना चाहिए। उसमें शनैः-शनैः परिवर्तन किया जाना चाहिए और परिवर्तन करते-करते हम सहोद्योगके आधारपर अपने यहाँ पंचायतें कायम कर सकेंगे। हमारी नीति चाहे कुछ भी क्यों न हो, मगर उसका आधार कृषि तथा औद्योगिक पदार्थोंका उत्पादन बढ़ाना होना चाहिए।

जागीरदारी तथा ज़मींदारीका उन्मूलन

किसानोंकी खुशहाली कांग्रेसका मुख्य ध्येय रहा है। इसके लिए कांग्रेस यह नीति निर्धारित कर चुकी है कि जमींदारी तथा जागीरदारी प्रथाको खत्म कर दिया जाय। इस कार्यको यथासम्भव शीघ्र किया जाना चाहिए। जमीनें किसानोंको दी जायँगी और साथ ही कृषि सहोद्योगोंका भी विकास किया जायगा, ताकि उत्पादनमें सुधार हो और किसान आर्थिक दृष्टिसे आजाद हो जाय।

साम्प्रदायिक समस्या

हमारी तीसरी समस्या साम्प्रदायिक है। वैसे तो इसका सम्बन्ध हिन्दू-मुस्लिम सवालसे है ; मगर उसमें अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक जातियोंका सवाल भी शामिल है।

कांग्रेस साम्प्रदायिक तथा संकीर्ण दृष्टिकोणको प्रोत्साहन देनेके खिलाफ रही है। उसने साम्प्रदायिकतासे सब मोर्चोंपर मुहिम ली है।

अपने विगत ३० सालके जीवनमें कांग्रेसने इस प्रश्नके सिवाय और किसीको बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया। कांग्रेस की इस नीतिको संसद भी मंजूर कर चुकी है और इसे हमारे विधानमें भी स्थान दिया चुका है। लेकिन यह तथ्य है कि विभाजनके बाद साम्प्रदायिकताको भारतमें काफी प्रोत्साहन मिला है। जो संस्थाएं पहले साम्प्रदायिकताका प्रचार करनेकी हिम्मत भी न कर सकती थीं, वे आज खुले आम उसके लिए आन्दोलन कर रही हैं। इतना ही नहीं, वे हमारे विधानकी मूलभूत चीज़को चुनौती दे रही हैं। सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है कि इस साम्प्रदायिकताने कांग्रेसपर भी धावा बोल दिया है और कभी-कभी सरकारी नीतियोंपर उसका प्रभाव पड़ने लगता है। कांग्रेस-अध्यक्षके चुनावपर साम्प्रदायिक पत्रोंमें जो प्रतिक्रिया हुई है, उससे भी साम्प्रदायिकताका महत्त्व बढ़ा है। इन खतरनाक आसारोंको हम नजरन्दाज नहीं कर सकते। हो सकता है कि हमारे यहाँ साम्प्रदायिकताका यह प्रसार पाकिस्तानके कारण हुआ हो। यह कैफियत हो सकती है ; मगर इसके आधारपर भारतमें जो कुछ हो रहा है, उसे न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। मेरी यह निश्चित राय है कि साम्प्रदायिकता भारतको हानि पहुँचायगी, लाभ नहीं।

बंगालकी स्थिति

अगस्तके शुरूमें मैंने संसदमें बंगालकी स्थिति तथा ८ अप्रैल, १९५०के भारत-पाकिस्तान समझौतेके सम्बन्धमें भाषण किया था। मैंने कहा था कि वह सब कुछ कांग्रेसकी परम्पराओंके अनुकूल और आजकी आवश्यकताके अनुरूप था। उसमें एक ऐसी नीति निहित है कि जिसका मैं अपने जीवनके हरेक क्षेत्रमें पालन करूँगा। पाकिस्तानके साथ हमारे कई झगड़े हैं। पर हम उनपर विशुद्ध राजनीतिक दृष्टिसे विचार करेंगे, साम्प्रदायिक दृष्टिसे नहीं।

हमारा राष्ट्र धर्म निरपेक्ष है

हम बार-बार यह घोषित कर चुके हैं कि हमारा राज्य धर्म-निरपेक्ष है। प्रगतिशील होनेका दावेदार कोई भी राष्ट्र धर्मनिरपेक्षके सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता। यदि ऐसा ही है तो हमें इसका सर्वत्र ध्यान रहना चाहिए। मगर पाकिस्तानके साथ झगड़ा होनेकी वजहसे हम उसे प्रायः भूलते रहे हैं। हम साम्प्रदायिक नारों और पाकिस्तानी तरीकोंके चक्करमें आते रहे हैं। यह मार्ग खतरनाक है।

हमें अपने यहाँके अल्पसंख्यकोंके साथ वैसा ही सलूक करना होगा, जैसा कि हम बहुसंख्यकोंके साथ करते हैं। हमें उन्हें यह महसूस कराना होगा कि हम उनके साथ सद्व्यवहार कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि पाकिस्तान भी वैसा ही करे। मगर हमें शिकायत है कि वह ऐसा नहीं कर रहा। पाकिस्तान चाहे कुछ भी क्यों न करे मगर हमें अपने यहाँ सब सम्प्रदायों को एक साथ प्रगति करनेका अवसर देना होगा। हमें उनके दिलोंमें किसी किस्मका भय अथवा आशंका पैदा न होने देनी चाहिए। इसका दायित्व बहुसंख्यकोंपर है। इस सम्बन्धमें भी कांग्रेसको अपनी नीति साफ-साफ शब्दोंमें घोषित करनी होगी।

अन्य भी अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न ऐसे हैं, जिनपर हमें गौर करना है। मगर मेरा ख़याल है कि उनका नीतिसे कोई सरोकार नहीं। शरणार्थियोंके प्रश्नपर यह मतभेद हो सकता है कि उसे कैसे सुलझाया जाय। हमारा यह फर्ज है कि हम शरणार्थियोंको फिरसे आबाद करें। मेरा ख़याल है कि कांग्रेस में अनेक बुराइयोंके पैदा होनेका कारण यह है कि कांग्रेसजन सत्ता और पदोंके लिए लालायित होने लगे हैं। जब कभी कांग्रेसमें चुनाव होने लगते हैं तो लोग आगामी आम चुनावों को अपने सामने रखते हैं। यह मान लिया जाता है कि इस समय जो लोग कांग्रेस-कमेटियोंमें आ जायँगे, आम-चुनाव करानेकी व्यवस्था अथवा पार्लमेण्टरी बोर्ड उन्हींके हाथमें होंगे, और उन्हींको ही उम्मीदवार खड़ा करनेका अधिकार होगा,

उन्हें ही चुने जानेका मौका मिलेगा। फल यह हुआ है कि कांग्रेस अपने कार्यको भूल गई है। वह सिर्फ चुनावके ही स्वप्न लेती है। उसे यही फिक्र रहती है कि कौन चुना जाय और कौन नहीं। यदि हम पार्लमेण्टरी कार्यक्रमको कांग्रेसके मूलभूत कार्यक्रमसे अलहदा कर देते तो हमें कई दिक्कतोंका सामना न करना पड़ता और कांग्रेसका पतन भी न होने पाता।

मेरा खयाल है कि इस सम्बन्धमें कुछ भी करनेका अब भी समय है। आम-चुनावके लिए उम्मीदवार खड़ा करनेका काम कांग्रेस-कमेटियोंके असली कामसे अलहदा किया जा सकता है। यदि ऐसा हो जाय तो मेरा खयाल है कि मौजुदा हालतोंके बावजूद कांग्रेसको फिरसे स्वस्थ बनाया जा सकता है।

सरदार पटेल बनाम पं० नेहरू

हमें यह लिखनेमें तनिक भी संकोच नहीं कि टण्डनजीकी जीत सरदार पटेलकी जीत है और कृपलानीजीकी हार पं० नेहरूकी हार है। सन् १९३९ में जब सुभाष बाबू और डा० पट्टाभि कांग्रेस-अध्यक्ष पदके लिए चुनाव लड़े थे तब सुभाष बाबूकी जीत हुई थी और महात्माजीने स्पष्ट रूपसे कहा था कि डा० पट्टाभिकी हार उनकी हार है। लेकिन महात्माजीकी उस समयकी तथाकथित हार और नेहरूजीकी इस समयकी तथाकथित हारमें समानता नहीं है। सन् '३९ में सुभाष बाबूकी जीत इस बातकी द्योतक थी कि उग्र नीतिके अनुयायी महात्माजीकी नीतिमें तीव्रता चाहते थे, और सुभाष बाबूकी जीत इस बातकी द्योतक थी कि लोग आजादीके लिए तेज कदम चाहते थे; पर टण्डनजीकी जीत इस समय इस बातकी द्योतक है कि प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियाँ तेज कदम उठानेकी अपेक्षा पीछे हटना चाहती हैं। अगर कांग्रेस प्रतिनिधियोंकी जाँच की जाय तो उनमें बहुत-से ऐसे मिलेंगे जो केवल परमिटोंपर ही मरनेवाले तथा धन्धोंमें ही अधिक रत हैं। यह हम इसलिए लिख रहे हैं कि हमें व्यक्तिगत रूपसे टण्डनजीके बारेमें कुछ नहीं कहना है। उनका चरित्र उज्ज्वल है, पर हम इस बातका दावा करते हैं कि उनको वोट सचाई और तपस्या तथा उनके व्यक्तित्वपर नहीं मिले, वरन् गुटबन्दीके आधारपर। कुछ लोग कांग्रेस-संगठनको हथियाना चाहते हैं। एक गुटका नेतृत्व प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे सरदार पटेलके हाथमें है अथवा उनके प्रभावके अधीन है। विभिन्न सूबोंके मन्त्रि-मन्डलोंका सहयोग भी सरदार पटेल और टण्डनजीको रहा। अच्छा तो यह रहता कि दोनों ओरसे विचारधाराका स्पष्टीकरण हो जाता। पं० नेहरूको चाहिए था कि चुनावसे बहुत पहले अपना मत स्पष्ट कर देते।

आखिर इसके क्या मानी हैं कि विभिन्न सूबोंके मन्त्रियोंने टण्डनजीको वोट क्यों दिये? यह तो सब जानते थे कि नेहरूजी टण्डनजीके पक्षमें नहीं हैं और नेहरूजीका उनके पक्षमें न होने का कारण केवल पाकिस्तान और मुसलमानों सम्बन्धी नीति ही है। आज तो सभी राज्योंके मन्त्री गांधीजीके नामकी दुहाई देते हैं। यदि गांधीजीके कार्यक्रममें उनकी सक्रिय श्रद्धा होती तो उन्हें आचार्य कृपलानीजीको वोट देना चाहिए था। क्योंकि इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि गांधीजीकी विचारधाराके निकट टण्डनकी अपेक्षा आचार्य कृपलानी हैं। टण्डनजीने खुलेआम महात्माजीकी अहिंसा-नीतिका विरोध किया है। अ० भा० कांग्रेस-कमेटीमें गांधीजीकी बुनियादी बातोंका विरोध भी उन्होंने किया है। संघिष्ट प्रवृत्तिके लिए उनके हृदयमें नरम स्थान है। सिद्धान्त-विरोध कोई बुरी चीज नहीं है, इसीलिए हम टण्डनजीके विषयमें व्यक्तिगत दृष्टिसे कुछ नहीं लिख रहे। असली बात यह है कि लोग जानते थे कि नेहरूजी टण्डनजीकी अध्यक्षताके विरोधी हैं पर फिर भी लोगोंने उनके पक्षमें वोट दिए और यह बात भी लोगोंसे छिपी नहीं है कि इस चुनावमें सूबा कांग्रेस कमेटियोंकी उस गुटबाजीने जो सरदार पटेलके साथ कही जाती है, गड़बड़में कसर नहीं रखी। उत्तर प्रदेश और बिहारमें जो धाँधली की गई वह लज्जाको भी लज्जित करती है। बिहारसे आचार्य कृपलानीका काफी सम्बन्ध है। उनके अनेक शिष्य वहाँ काम करते हैं। चम्पारन-सत्याग्रहमें आचार्यजी महात्माजीके एक विश्वासपात्र साथी थे, पर बिहारका मन्त्रिमण्डल आचार्यका विरोधी था। यह तय हुआ कि सूबा कांग्रेस कमेटीका प्रेसीडेण्ट बिहार मन्त्रि-

मण्डलके अनुकूल हो। माननीय जगजीवनराम सूबा कांग्रेस कमेटीके चुनावके अध्यक्ष थे और चुनावका जो परिहास हुआ उसके लिखनेके लिए स्थान कम है। पर माननीय श्री कृष्णसिन्हा और अनुग्रह बाबूने श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशुकी सिफ़ारिश की। विरोधमें आवाजें लगाई गईं। श्री प्रजापति मिश्रका नाम पेश किया गया। उसका बाक़ायदा समर्थन भी हुआ, पर मीटिंगके चेयरमैन श्री जगजीवनरामजीने कहा "अन्य नाम पेश करनेकी आवश्यकता नहीं है जब तक पहलेपर विचार न कर लिया जाय।" इन सब आपत्तियोंको रद करके श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु चुन लिए गए। बिहार सूबा कां० कमेटीके सभापतिके चुनावका मज़ाक इस तरह समझा करके टण्डनजीके लिए साफ़ कर दिया। पटनाके 'इण्डियन नेशन' ने तो यहाँ तक लिखा कि श्री सत्यनारायण सिन्हाने लोगोंसे कहा कि उनके पास दिल्लीसे भारतके उपप्रधान मन्त्री सरदार पटेलका फोन आया है और पूछा है कि क्या बिहार सूबा कांग्रेस कमेटीके सभापतिका चुनाव निश्चित उम्मेदवारके आधार पर सर्वसम्मतिसे होगा और उन्होंने सरदार पटेलसे कह दिया है कि श्री सुधांशुजी सभापति चुन लिए जायँगे।

यह बात सर्व विदित है कि सरदार पटेल और पण्डित नेहरूजीको लोग किसी दलका नहीं मानते और वे अधिक क्रान्तिकारी रहे हैं। पर भारतीय संघके विभिन्न राज्योंके लोग उनके विरोधी क्यों हैं। स्पष्ट है, विभिन्न राज्योंकी बागडोर जिनके हाथोंमें है वे महात्माजीके कार्यक्रमका श्राद्ध कर रहे हैं और कांग्रेस तथा गांधीजीकी आड़में अपनी सत्ता कायम रखना चाहते हैं।

उपर्युक्त विवेचनसे पाठकोंकी समझमें आ गया होगा कि देशमें दो दल हैं। एक पं० नेहरूके पक्षमें, दूसरा सरदार पटेलके पक्षमें। दोनोंके पीछे क्या प्रवृत्तियाँ हैं—यह लोगोंको मालूम हैं। नेहरूजीने जो वक्तव्य किया है उससे सनसनी-सी फैल गई है। उसकी प्रतिक्रिया भी लोगोंके सामने स्पष्ट है। पर सरदार पटेल और मन्त्रियोंके जोर लगानेपर भी उनकी ऐसी जीत नहीं है कि वे मनमानी कर सकें। हमारा निजी मत तो यह है कि चुनावके आँकड़ोंसे स्पष्ट है कि कांग्रेसमें अभी जीवन है। यदि वोटोंका ही ख़याल किया जाय तो टंडनजीको १३०६ ही वोट मिले हैं, आचार्यजीको १०६२ मिले हैं और श्री शंकरराव देवके वोट टंडनजीके विरोधी ही हैं, इस लिए २६०० वोटोंमें से टंडनजीके विरोधी वोट हुए १२९४। १८ वोट जो अवैध हैं वे पता नहीं किसके हैं। अभी आन्ध्रके प्रतिनिधि और आयँगे इसलिए इस चुनावमें हम यह नहीं कह सकते कि सरदार पटेलकी मनमानी हुई है। पं० नेहरूके वक्तव्यके उपरान्त हम जानते हैं कि अनेक वोटर टंडनजीके विरोधी हो जायँगे और हम देखते भी हैं कि सरदारके अनुयायियोंमें इस जीतसे उल्लास अधिक नहीं है। इस चुनावमें कुछ ऐसे विशिष्ट व्यक्ति भी हैं जो थे तो सरदार पटेलके साथ, पर नेहरूजीको वे अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे। इस प्रकार कांग्रेसपर एक विकट संकट आ गया है। एक दल नेहरू-कृपलानीके पक्षमें है और दूसरा वह जो बड़े-बड़े उद्योगपतियोंका पक्ष लेता है और साम्प्रदायिक भावनाका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे पोषक है।

'राजस्थानमें शुभ परिवर्त्तनके चिह्न'

गत २ सितम्बरके 'लोक सेवक'में उपर्युक्त शीर्षकसे एक टिप्पणी है जो इस प्रकार है :—

इधर कुछ दिनोंसे राजस्थानसे शुभ परिवर्तन सूचक समाचार आ रहे हैं। खबरें मिली हैं कि राजस्थानके मुख्यमन्त्री माननीय श्री हीरालालजी शास्त्री और प्रान्तीय कांग्रेसके सभापति श्री जयनारायणजी व्यासके बीच काफी लम्बी और सौहार्दपूर्ण बातचीत हुई है और ज्ञात हुआ है कि राजस्थानके इन दोनों प्रमुख नेताओंने भाई-भाईकी तरह हिलमिलकर अपने प्रान्तकी सेवा करनेका निश्चय कर लिया है। राजस्थानमें इन दोनों मित्रोंका व्यक्तित्व इतना समर्थ्यशाली है कि अगर दोनोंकी शक्ति सम्मिलित रूपसे प्रान्तोंकी सेवामें लग जायँगी, तो निश्चय ही प्रान्तके शासन और कांग्रेसके संगठनके बीचका संघर्ष भी शान्त हो जायगा और प्रान्त काफी तेजीसे प्रगति कर सकेगा। श्री व्यासजी तथा श्री शास्त्रीजीकी बातचीतके फलस्वरूप राजस्थानके मन्त्रिमण्डलमें कुछ परिवर्तन होनेका भी अनुमान किया जा रहा है। परिवर्तन जो भी हो असल बात

यह है कि मुख्य मन्त्री और अन्य मन्त्री एकदिल होकर काम करें। यदि यह हो जायगा, तब तो निश्चय ही प्रान्त आगे बढ़ेगा। केवल ऊपरी एकतासे काम नहीं चल सकता।

हमारे खयालसे शास्त्री-व्यास-मिलनकी पृष्ठभूमि लोक-सेवाकी भावना नहीं है वरन् पदोंसे चिपके रहने तथा कांग्रेस-अध्यक्ष पदके चुनावकी जीतकी भावनाने ही यह मेल कराया है। इस प्रकारका मेल न स्थायी होता है और न उससे लोकसेवा ही होती है। श्री हीरालाल शास्त्रीका तो कोई विशेष राजनीतिक जीवन था नहीं। हाँ, श्री जयनारायण व्यासका राजस्थानमें राजनीतिक जीवन था, पर उनके प्रति जो मुकदमा था और जिस ढंगसे व्यासजीने पैंतरा बदला है उससे हमें राजस्थानी जनताके जीवनके हितमें कोई विशेष परिवर्तन होते नहीं दीखता और न दोनों व्यक्तियोंके अनुयायियोंमें लोक सेवाकी दृष्टिसे स्थायी मेल होगा। हमारे खयालसे व्यासजीके इस आत्म-समर्पणसे उनकी वास्तविक स्थितिको काफी धक्का लगा है। रियासतके किसी संघमें आजकल मन्त्री या प्रधान मन्त्री बनना उतना ही महत्त्व रखता है जितना अंगरेजी नौकरशाहीके दिनोंमें राजा या रायबहादुरकी उपाधिका प्राप्त करना।

नासिक अधिवेशनकी सम्भावनाएँ

टंडनजीके कांग्रेस-अध्यक्ष निर्वाचित होनेके पश्चात् कांग्रेसके बारेमें बड़े-बड़े अनुमान लगाए जा रहे हैं। अधिवेशनके समय ही आचार्य कृपलानीके नेतृत्वमें एक दल बनेगा जो भ्रष्टाचार रोक पुनर्जीवन प्रदान करेगा—ऐसा एक अनुमान है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यदि नेहरूजी कांग्रेस कार्यसमितिमें न आए तो फिर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलमें क्या कोई परिवर्तन होगा ? क्या टंडनजीके नेतृत्वमें इतनी क्षमता है कि नेहरूजीके बिना कोई कार्य कर सकें। टंडनजी और सरदार पटेलके पक्षपातियोंका कहना है कि नेहरूजीने जो वक्तव्य दिया है उसका मंशा है कि नेहरूजी अपनी नीतिमें विश्वासका प्रस्ताव पास कराना चाहते हैं। हिन्दीके 'हिन्दुस्तान' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स'—जो टंडनजीके पक्षमें हैं—का कहना है कि नेहरूजीने तीन ही बातें तो कही हैं (१) विदेशी नीतिकी बात, (२) आर्थिक व्यवस्थाकी बात और (३) साम्प्रदायिक सम्बन्ध की बात, सो नासिकमें उन्हें विश्वास प्राप्त हो ही जायगा; क्योंकि नेहरूजीकी वैदेशिक नीतिके समर्थक सरदार पटेल और टंडनजी हैं। आर्थिक व्यवस्थाके बारेमें टंडनजीको शिकायत है कि कांग्रेसने कोई प्रगति नहीं दिखाई। हाँ, पाकिस्तानके मामलेमें सवाल सिर्फ कड़ाईका आता है कि भारतको कड़ा रुख रखना चाहिए। लीपापोतीके लिए इस प्रकारकी बातें उसी भाँति ठीक हैं जिस भाँति कोई किसी वैष्णवपर गंगाजल डाल दे और कोई व्यक्ति गंगाजल पीकर पेशाबको उसपर डाल दे। दलीलके लिए यह कह सकते हैं कि वह पेशाब गंगाजल ही तो है। बस, पेटमें वह घण्टे दो घण्टे रह पाया है। देशके विधानमें बुनियादी तौरपर साम्प्रदायिक भावनाको कोई स्थान नहीं है और यह देशपर उल्टे-सीधे ढंगसे मुसलमानोंको यहाँसे निकालनेकी प्रवृत्ति उसी तरह विघातक होगी जैसे लोगोंकी अंगरेज-परस्ती थी। खबर है कि टंडनजीने अपना पूर्ण विश्वास नेहरूजीपर प्रकट कर दिया है। दूसरी खबर यह भी है कि सरदार पटेल यह नहीं चाहते कि कांग्रेस कार्यसमितिमें माननीय किदवई रखे जायँ। हमें आशंका है कि ऐसा हुआ तो शायद नेहरूजी भी कार्यसमितिमें शामिल न हों। ऐसी हालतमें क्या सरदार पटेल और टंडनजीमें इतना दम है कि नेहरूजीके बिना ही वे कांग्रेस चला सकें ? क्या सरदार पटेल और नेहरूजी साथ-साथ केन्द्रीय सरकारमें काम कर सकेंगे ? हमारी रायसे इतने तीव्र मतभेदके होनेपर दोनोंका साथ रहना ठीक भी नहीं है।

सरदार पटेलकी सबसे भारी कमजोरी है उनका गिरता हुआ स्वास्थ्य। पर हमें ऐसा मालूम होता है कि कांग्रेस अध्यक्षका चुनाव आगामी आम चुनावोंकी तैयारी है। सरदार पटेलको जो अहमदाबादसे २५ लाखकी थैली मिली है उसे वे सार्वजनिक काममें ही लायेंगे। सुना है आगामी चुनाव लड़नेके लिए ६ करोड़का बजट रखा गया है और सब व्यक्ति पटेल दलके ही होंगे। पर इसमें कोई शक नहीं कि सूबा कांग्रेस कमेटियोंका चुनाव तथा नासिक अध्यक्षका चुनाव विरोधियोंके राजनीतिक जीवनको समाप्त करके मनमाने ढंगसे शासन करनेके

विचारसे किया गया है। इसका फल कुछ भी हो पर एक बात तय है कि देशके लिए यह कल्याणकारी तो है ही नहीं। उन लोगोंके लिए भी यह वृत्ति विनाशकारी होगी जो इस प्रवृत्तिके पोषक हैं। बहसके लिए हम मान लें कि इससे आगामी चुनावमें वह सफल भी हो गया तो भी जबतक देशकी समस्या हल न होगी तबतक किसीका कल्याण नहीं हो सकता। प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ जोर पकड़ेंगी और संघर्षमें क्या हो, कोई नहीं कह सकता।

कांग्रेसमें शक्ति-संचार कैसे हो ?

भारत सरकारके रसद एवं उद्योग मन्त्री श्री हरेकृष्ण मेहताबने एक पुस्तिकामें, जो इस सप्ताह प्रकाशित हो जायगी, लिखा है कि कांग्रेसका दृष्टिकोण पूर्णतः बदलनेकी आवश्यकता है। उन्होंने कहा है कि कांग्रेसको केवल रचनात्मक कार्यमें लगे रहना चाहिए। कांग्रेसमें जो बुराइयाँ आई हैं वे विशेषतः राज्योंकी विधान सभाओं तथा संसदकी सदस्यताकी उम्मीदवारीके लिए कांग्रेसका टिकट देनेके प्रश्नके कारण। बुराइयोंकी इस जड़को दूर करनेके लिए उन्होंने यह बताया है कि विधान सभाओं और संसदकी सदस्यताकी उम्मीदवारीका टिकट कांग्रेसी तथा गैरकांग्रेसी सभीको दिया जाना चाहिए। उम्मीदवारीका टिकट देनेका कार्य एक समितिको सौंप देना चाहिए जिसके अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू हों। जो व्यक्ति जिस क्षेत्रमें लोकप्रिय हो उसे उस क्षेत्रके लिए उम्मीदवार होनेका टिकट दिया जाय।

हम इस सुझावका पूर्णतया समर्थन करते हैं। हमारे खयालसे यदि यह सुझाव कार्यान्वित हो सके तो देशमें फैले भ्रष्टाचारका अन्त हो जायगा और कांग्रेस फिर एक सजीव संस्था बन जायगी, पर इस सुझावका विरोध सरदार पटेल और राज्योंके मन्त्रिमण्डल ही करेंगे। परमिटोंपर मर मिटनेवाले छद्मवेशी कांग्रेसजनोंकी छातीपर तो साँप ही लोट जायगा पर बिना ऐसा किए कांग्रेसकी रक्षा भी सम्भव नहीं।

कासिमरिज़वीको आजीवन कारावास

गत ११ सितम्बरको हैदराबाद दक्षिणमें शैबुल्लाखाँकी हत्याके मुकदमेका फैसला सुना दिया गया। सैयद कासिम रिज़वी, अब्दुल मुनीबखाँ तथा सैयद मोहसिन रज़ाको शैबुल्ला खाँकी हत्याके मामलेमें विशेष न्यायाधिकरणने आजीवन कारावासका दण्ड सुना दिया। कासिम रिज़वीपर शैबुल्ला खाँकी हत्याके षड्यन्त्र एवं तदर्थ उत्तेजना देनेका अभियोग लगाया गया था। दोनों अपराधोंमें उसे आजीवन कठोर कारावासका दण्ड दिया गया। मुनीबखाँ और मोहसिन रज़ापर हत्याके षड्यन्त्र, हत्या और हत्याकी उत्तेजना देनेका अभियोग था। इन्हें पहले दोनों अपराधोंमें आजीवन कठोर कारावास की और तीसरे अपराधमें पाँच वर्षके कारावास की सजा सुनाई गई। अब्दुल मुनीबखाँ और मोहसिन रज़ाको शैबुल्ला खाँके साले इस्माइलखाँके हत्याके प्रयत्नका भी अपराधी पाया गया और इस अपराधमें पाँच-पाँच वर्ष कारावासका दण्ड दिया गया।

बीबीनगर डकैती मुकदमेका फैसला

बीबीनगर डकैती मुकदमेका फैसला भी ११ सितम्बरको सुना दिया गया और अदालतने अपने सर्वसम्मत निर्णयमें कासिम रिज़वी तथा साथियोंको १० जनवरी, १९४८ को हैदराबादसे २२ मील दूर बीबीनगरमें डकैती डालनेका अपराधी पाया और उन्हें सात सात सालकी कड़ी क़ैदकी सजा दी। स्मरण रहे कि बीबीनगरमें डकैतोंने ३१ हजार रुपयेकी सम्पत्ति लूटी थी। यहाँ पाठकोंको यह बताना अनुचित न होगा कि बीबीनगर रेलवे स्टेशनके प्लेटफार्मपर रेलगाड़ीकी प्रतीक्षामें खड़े मुसाफिरोंकी 'महात्मा गांधीकी जय'के नारेसे रज़ाकारोंने, जिनमें उपर्युक्त अभियुक्त भी थे, सब तरफ लूट मार की थी और आगजनी आदि अपराध भी किए थे। हैदराबादके कानूनकी कठिनाईके कारण कासिम रिज़वीको फाँसीकी सजा न मिल सकी।

समाज विरोधी तत्व

हमारे देशमें समाज विरोधी तत्व सिर उठा रहे हैं। स्वयं अनेक कांग्रेसजन इन समाज-विरोधी तत्वोंका पोषण कर रहे हैं। इस प्रकारका पोषण साधारण कांग्रेस-जनोंसे नहीं वरन् सूबेके कांग्रेस मन्त्रियों तकसे होता है। अपने चोरबाज़ारिये पिट्ठूओंको बचाने तथा तरह देनेमें आकाश-पातालके कुलाबे मिला दिये जाते हैं। राष्ट्रपतिसे लेकर साधारण जन तक इस

गतिविधिसे परिचित हैं ; पर कोई कड़ा कदम नहीं उठाया जा सकता क्योंकि ये व्यक्ति बड़े पिचैत होते हैं। एक महाशय ने गत द्वितीय महायुद्धमें सरकारी ठेका लेकर आसामकी आधी गायोंको कटवा दिया ; पर उन्हें सूबेकी व्यवस्थापिका सभाके लिए कांग्रेस टिकट मिल गया और आज वे कहते फिरते हैं कि पं० नेहरू प्रबन्ध करना क्या जाने ! कश्मीरके मामलेको सरदारका वश चलता तो कभीका ठीक कर दिया होता। सरदार बात-की-बातमें उत्तरप्रदेशकी राजनीतिको ठीक कर सकते हैं। इन महाशयसे हमें यह कहना है कि अगर रूसमें ऐसी बातें ये कहते तो उनकी जीभ ही नहीं वरन् उनकी गरदन भी उड़ा दी गई होती। इस सिलसिलेमें गत ९ सितम्बरको दिल्लीके व्यापारियोंके बीच राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजीने ट्रेड असोसियेशनों द्वारा दिए गए एक अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें कहा :—

यह क्या बात है कि आप चोर-बाजारीका इलाज करनेमें वही उत्साह नहीं दिखा रहे हैं जो आपने स्वतन्त्रता-संग्रामके समय कांग्रेसकी पुकारपर विदेशी वस्त्रके बहिष्कारमें दिखलाया था ? आज देशके लिए बलिदान करनेकी आपकी वृत्ति कहाँ है ? आज आप नेहरूजी और सरदार पटेल जैसे नेताओंकी पुकार सुनकर भी समाज-विरोधी तत्त्वोंसे लोहा लेनेमें पूरा सहयोग क्यों नहीं देते ? आप मुनाफाखोरोंकी कमर तोड़नेमें और उन्हें समाजसे बहिष्कृत करनेमें सरकारका पूरा साथ क्यों नहीं देते ? आपको महसूस करना होगा कि वे समाज-विरोधी ही देशके कष्टोंके कारण हैं। आपको इसपर गम्भीरतासे विचार करना और अपने पुराने सेवा-उत्साहको पुनर्जीवित करना होगा। लोभसे अपनी दृष्टिको धूमिल और मनको विषैला न होने दीजिए। वह आपको नितान्त स्वार्थी न बना दे। मैं जानता हूँ, सब व्यापारी चोर-बाजारी नहीं करते ; परन्तु एक मछली सारे तालाबको गन्दा कर देती है। अतएव आपको अपने बीचमें ऐसे व्यक्तियोंको बर्दाश्त नहीं करना चाहिए जो देशको हानि पहुँचाकर अनुचित उपायोंसे धन एकत्रित करते हैं।

उचित मुनाफेपर किसीको कोई शिकायत नहीं, परन्तु कठिनाई तब उत्पन्न हुई जब व्यापारियोंने उचित और अनुचित सब प्रकारके उपायोंसे मुनाफा बढ़ाना शुरू किया। इसे कोई राष्ट्र या सरकार सहन नहीं कर सकती। ये बुरा काम करनेवाले लोग जितनी जल्दी इसे महसूस कर लें उतना ही उनके और देशके लिए अच्छा होगा। स्वतन्त्रताके विगत तीन वर्षोंमें सरकारको बहुत-सी समस्याओंका सामना करना पड़ा। सम्भव है उसे पूरी सफलता न मिली हो, परन्तु इसके लिए उसे दोषी ठहराना गलत होगा। सब सामाजिक तथा अन्य विषयोंमें जनताका भी कुछ कर्त्तव्य होता है, जिसे वह भूल गई। जबतक जनताका पूर्ण सहयोग प्राप्त नहीं होता, सरकार अकेली बहुत-कुछ नहीं कर सकती।

आज देशमें समाज-विरोधी तत्त्वोंके विरुद्ध लोकमतका निर्माण करनेकी सबसे बड़ी आवश्यकता है। अधिकांश लोग सामाजिक और नैतिक परम्पराओंके कारण बुरे कामोंसे दूर रहते हैं, न कि कानूनके भयके कारण। चोरबाजारी और अति संचयके अभिशापसे लोहा लेनेके लिए इसी प्रकारकी परम्पराएँ बनाना आवश्यक है। यदि लोगोंको मालूम हो कि चोरबाजारी जैसे नीच काम करनेसे समाजमें बेइज्जती होगी तो कोई ऐसे कृत्य न करेगा। समाजको चाहिए कि वह इस प्रकारके तत्त्वोंको बर्दाश्त न करे।

यदि जनतामें पूर्ण सामाजिक चेतनाका वातावरण उत्पन्न कर दिया जाय तो विरोधियोंको सजा दिलानेका बहुत अधिक काम हो सकता है—जितना कि अकेली पुलिस कदापि नहीं कर सकती।

कांग्रेस-अध्यक्ष श्री टण्डनजीका भाषण

कांग्रेसके नासिक अधिवेशनमें अध्यक्ष-पदसे टण्डनजीने हिन्दी में जो भाषण दिया उसका मुख्य अंश यहाँ दिया जा रहा है—

विधानकी विशेषता

संविधानके अधीन हमारे देशका शासनक्रम असाम्प्रदायिक है। इसके कहनेकी आवश्यकता इसलिए पड़ रही है कि देशके विभाजनके बाद जो पाकिस्तान नामका देश हमारे ही पुराने अङ्ग से बना उसने अपना शासन इस्लाम-धर्मके आधारपर साम्प्रदायिक रखा है। हमारे देशका संविधान या शासन किसी विशेष धर्मका अनुयायी नहीं है। वह किसी धर्म ग्रन्थका आश्रित नहीं है।

बिना धर्म या जाति-भेदके सब व्यक्तियोंके अधिकार उसमें बराबर रखे गए हैं। मैं इसको अपने देशकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिताका सूचक समझता हूँ। देशके विभाजनके बाद इस देशमें हिन्दुओंकी संख्या अन्य धर्मावलम्बियोंकी कुल सम्मिलित संख्यासे बहुत अधिक है। पाकिस्तानको देखकर यहाँके हिन्दुओंके मनमें यह भावना उठ सकती है कि हम इस देशमें हिन्दू-शासन रखें। चुनावोंमें इस प्रकारकी धुन कभी उठाई भी जा सकती है। मैं इस विषयपर यहाँ कुछ थोड़ा-सा विचार करना और अपनी बुद्धिके अनुसार चेतावनी देना चाहता हूँ।

मध्ययुगीन कालमें जो हिन्दू-राज्य थे, उनका केन्द्र अधिकतर कोई एक व्यक्ति होता था। शासनका सूत्र उसके अथवा उसकी इच्छाके अनुसार चुने हुए मन्त्रियोंके हाथमें रहता था। साधारणतया परम्परागत शैलियोंके अनुसार कार्य-संचालन होता था, परन्तु आवश्यकता पड़नेपर परम्परासे हटकर भी निश्चय किये जाते थे। ग्रन्थोंका प्रभाव था, किन्तु किसी कालके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता कि शासनका सम्पूर्ण आधार कोई एक निश्चित ग्रन्थ रहता था। परम्पराओंका बल रहता था, किन्तु यह भी समझना भूल होगा कि परम्पराओंसे हटकर विचार करना असम्भव अथवा कठिन था। बहुत से लोग प्राचीन या मध्ययुगीन भारतीयोंको और उनके धर्मको रूढ़िवादी कहते हैं। इसमें केवल आंशिक सत्य है। संसार भरके स्थायी और पुराने शासनोंमें रूढ़ि और परम्पराका स्थान है। इस देशमें सम्भवतः उनका बल अधिक था। परन्तु मौलिक रीतिसे भारत बुद्धिवादी रहा है।

यह बात मानी हुई है कि हमें इस देशमें गणतन्त्र रखना है। स्पष्ट ही गणतन्त्रमें जनताका मत, ग्रन्थोंकी आज्ञाकी अपेक्षा, अधिक चलेगा। ऐसे तन्त्रकी आधारशिला बुद्धि और युक्ति हो सकती है, कोई ग्रन्थ नहीं। इस सिद्धान्तको हमारा शिक्षित वर्ग जितना शीघ्र स्वीकार कर लेगा उतना ही शीघ्र हम जनताको फैले हुए मूढ़ग्राहसे ऊपर उठाकर जनतन्त्रीय शासनके लिए उपयुक्त बना सकेंगे।

इस संविधानका दूसरा मुख्य दृष्टिकोण यह है कि देशके विभिन्न भाग अपनी स्थानीय शासन-सुविधाओंको रखते हुए केन्द्रीय शासनके द्वारा आपसमें बँधे रहें और आपसमें अधिक समीप आनेकी ओर उनकी प्रवृत्ति हो। इसीसे हमारा देश बलवान् और संसारमें आदरका पात्र हो सकेगा।

हिन्दीका महत्त्व

हिन्दी भाषाको सरकारी कामोंके लिये प्रधानता देकर इसी प्रवृत्तिको बल दिया गया है। मेरा विश्वास है कि संविधानका यह अङ्ग देश भरमें विचारोंकी एकता और प्रादेशिक प्रेम बढ़ानेमें जादूका काम करेगा। जो सांस्कृतिक काम पूर्व समयमें संस्कृत भाषाने इस देशमें किया था उससे अधिक शक्ति देनेवाला काम हिन्दीसे होनेवाला है। संस्कृत भाषाका गहरा प्रभाव हमारे देशकी ऊपरी श्रेणियोंमें था, किन्तु हिन्दी जनताके भीतर घुसकर और प्रादेशिक भाषाओंसे उनकी बहनके नाते आदान-प्रदान कर देशके समस्त जन-समुदायमें ऐक्य और प्रेमकी चेतना उत्पन्न करनेवाली है। अपनी एक बहनको राष्ट्रभाषाके सिंहासनपर बैठाकर हमारी प्रादेशिक भाषाएँ भी स्वयं आदरित और पुष्ट होंगी और अपने-अपने साहित्यिक विकाससे फूलें-फलेंगी।

वास्तविकताको देखते हुए संविधानने अभी अंगरेज़ीको मुख्यता १५ वर्षोंके लिए मानी है, परन्तु यह हमारे देशवासियोंके हाथमें है कि अपनी दूरदर्शिता और लगन तथा प्रेमयुक्त परिश्रमसे इस अवधिकी समाप्तिसे बहुत पहले अपनी स्वीकृत राष्ट्र-भाषाको एक परभाषाकी अपेक्षा अधिक आदर देकर अपनी सामूहिक शक्ति बढ़ायँ और जब अवसर देखें तब संविधानमें भी मिल-जुलकर और एकमत होकर आवश्यक परिवर्तन कर लें।

मेरा मत है कि देश-भर अपने संविधानको अपनी सामूहिक इच्छाओं और भावनाओंका प्रतीक समझ उसके प्रति पूजाका भाव रखे। इस विचारको रखते हुए भी मैं परिवर्तनवादी हूँ। मैं सदा कहता हूँ कि 'समय भेदेन धर्म भेद' (समयके भेदसे कर्त्तव्यका भेद होता है) परन्तु परिवर्तनमें भी उच्छृंखलता नहीं, नियन्त्रण अपेक्षित है। भिन्न दिशाओंमें काम करनेके हेतु नये मार्ग बनानेके लिए संविधानने हमें बहुत फैला हुआ क्षेत्र दिया है; किन्तु आगे चलकर किसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए जब हमें विधानमें किसी परिवर्तनकी आवश्यकता दिखाई पड़े तब संवैधानिक मार्गोंसे ही हमें परिवर्तन करना होगा।

वैदेशिक नीति

विदेशोंसे सम्बन्धके प्रश्नपर कांग्रेसकी अब तक यह नीति रही है कि इस समय जो दो दल संसारमें हैं, जिनमें एकका अगुआ अमेरिका है और दूसरेका रूस, उनमें से किसीमें हमारा देश शामिल न हो, किन्तु संयुक्त राष्ट्रसंघमें रहते हुए दोनों दलोंके साथ मैत्रीका वर्ताव रखे और जो प्रश्न राष्ट्रसंघमें उपस्थित हों उनमें से प्रत्येकपर न्याय, औचित्य और शान्ति-स्थापना की दृष्टिसे विचार करे।

हालके दो प्रश्नोंने हमारी इस नीतिके दो उदाहरण हमारे सामने रखे हैं। लाल रंगी नीतिपर चलनेवाले चीनको सम्मिलित संयुक्त राष्ट्रसंघमें मान्यता देनेके प्रश्नपर हमारे देशका मत अमेरिका और ब्रिटेनके विरुद्ध रूसके साथ मान्यता देनेके पक्षमें है। कोरियामें जो उत्तरी भागने दक्षिणी भागपर आक्रमण किया उसमें हमारा देश अमेरिकी-ब्रिटेन समूहके साथ रूसके विरुद्ध उत्तरी कोरियाको आक्रमणकारी घोषित करनेके पक्षमें रहा है।

इस प्रकारकी नीतिसे कुछ लाभ है और कुछ हानि भी है। लाभ तो यह कि सब देशोंके सामने हम औचित्य और न्यायका आदर्श रखते हैं और सबोंको उस आदर्शकी ओर लानेका यत्न कर सकते हैं। हमारी यह नीति विश्व-शासनके आदर्शमें सहायक है और इस कारण आदर्शवादी विचारक हमारा आदर करते हैं। साथ ही इस नीतिमें यह त्रुटि है कि इन दोनों बलवान् दलोंमें हमें कोई अपना पूर्ण सहयोगी नहीं समझता। विशेषकर हमारे और पाकिस्तानके बीच जो गुत्थियां आती हैं उनमें स्वार्थवश पाकिस्तानको सहयोगी बनानेका दृष्टिकोण बहुतेरे देशोंको हमारे विरुद्ध पाकिस्तानकी ओर झुकाता है। पाकिस्तान ने कश्मीरमें हमारे देशपर आक्रमण किया, उसका प्रचुर प्रमाण राष्ट्रसंघके सामने आया, किन्तु संघने पाकिस्तानको आक्रमणकारी न घोषित किया।

वास्तविक बात यह है कि विश्व-शासनकी भावना तो बहुत देशोंमें है किन्तु उसके लिए जो नैतिक मनोविकास चाहिए उसकी प्रायः कमी है, अथवा यों कहें कि दूरके ध्येयको सामने रखते हुए भी सामूहिक शक्तिकी तात्कालिक आवश्यकतासे अप्रभावित रहकर प्रत्येक प्रश्नको केवल न्यायकी दृष्टिसे देखनेका अभ्यास अभी संसारके देशोंको नहीं है। कोरियामें एक नीति और कश्मीरमें वैसी ही अवस्थामें दूसरी नीति इसी ओछे दृष्टिकोण का परिणाम है।

पाकिस्तानकी चालबाजी

कश्मीरके प्रश्नको सामने रखकर पाकिस्तान यह झूठा प्रचार कर रहा है कि भारत रूसके साथ है। अपनेको वह अमेरिका और ब्रिटेनका बड़ा पोषक प्रकट करता है। वह समझता है कि इस रीतिसे संयुक्त राष्ट्रसंघमें वह अमेरिका और ब्रिटेनकी सहायता कश्मीरके विषयमें पा सकेगा। उसने यहां तक कहा कि कश्मीरके फँसावके कारण वह कोरियामें सेना भेजकर सहायता नहीं कर सका। इस कथनका मतलब स्पष्ट ही है। हमारे देशको पाकिस्तानकी इस चालसे सचेत रहना है।

निर्वासितोंकी समस्या

देशके विभाजनके कारण पंजाब, सरहदी सूबा तथा सिन्धसे आये पीड़ित निर्वासितोंको बसाने और उन्हें सहायता देनेका प्रश्न सन् '४७ में हमारे सामने आया वह अभी तक हल नहीं हुआ है। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारोंने दुःखके वेगको कम करनेमें भरसक सहायता दी है। जो तीव्र पीड़ा थी सबह कुछ हायताके कारण और सहन करते-करते कम हो गयी है। किन्तु उससे छुटकारा देनेके लिए हमारी केन्द्रीय सरकारको अभी बहुत काम करना है।

इस बीच पूर्वी बंगालके निर्वासितोंकी समस्या विशेष रीतिसे तीव्र हो गयी है। इस वर्षके फरवरी माससे तो पूर्वी बंगालको छोड़कर भारत आनेवालोंकी संख्या तीव्रतासे बढ़ी। अप्रैलमें जो समझौता हमारी सरकार और पाकिस्तानके बीच हुआ उसका यह अच्छा परिणाम अवश्य निकला कि जो पाकिस्तान छोड़कर आना चाहते थे उनको सुविधाएँ आनेके बारेमें मिलीं और वहांसे भागनेका वेग भी रुका। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि बंगालके हिन्दू निःशंक होकर पाकिस्तानमें रह रहे हैं या रहेंगे।

जहां तक हमारे देशमें मुसलमानोंके रहनेका प्रश्न है, हमारा असाम्प्रदायिक संविधान और शासन इस देशके रहनेवाले

प्रत्येक मनुष्यके अधिकार बराबर मानता है और किसी प्रकारका जातिभेद नहीं करता। कहीं-कहीं स्थानीय झगड़ोंके कारण कुछ मुसलमान हमारे देशसे भी पाकिस्तान गए, किन्तु सन् '४७ की उथल-पुथलको छोड़कर इनकी संख्या आपेक्षिक दृष्टिसे बहुत थोड़ी है। हमारी स्थिर नीति यह है कि हमारे देशमें साम्प्रदायिकताका प्रभाव न होने पाय और सब सम्प्रदायके लोग मिलकर और अपने अधिकार बराबरके मानकर इसदेशमें बसें और इसको दृढ़ बनायँ।

यदि पाकिस्तानमें भी यही नीति बरती जाती तो वहाँसे हिन्दुओंके भागनेका प्रश्न न उठता। किन्तु हमारे देशकी असाम्प्रदायिक नीतिके विरुद्ध पाकिस्तानकी साम्प्रदायिक नीति है। वह शासन स्पष्टतया इस्लामी साम्प्रदायिकताके आधारपर है। वहाँ शासन-बुद्धि साम्प्रदायिकताके अधीन होकर रहती है, उसके ऊपर नहीं चढ़ती। इस साम्प्रदायिकताको कुछ विशेष पुराने ग्रन्थोंका आधार है, बुद्धि और विचारका नहीं। शासनकी खुली हुई साम्प्रदायिकता वहाँकी मुसलमान जनतामें अनुदारता और असहिष्णुता पैदा कर दूसरे सम्प्रदायोंके प्रति द्वेषका भाव उत्पन्न करती है। पाकिस्तानका पृथक् अस्तित्व ही साम्प्रदायिकताकी नींवपर हुआ और अपने अस्तित्वके बाद भी वह बराबर उसी मनोवृत्तिको उत्तेजना देता आया है जिसने पृथक्तावकी माँग की थी। वहाँ इस्लामी साम्प्रदायिक दृष्टिकोणवाले बल पाते हैं और दूसरे सम्प्रदायवाले अपनेको अरक्षित अनुभव करते हैं।

अभी क्या सुलझाव हो

संसार साम्प्रदायिकतासे ऊपर उठ रहा है। हमारे देशमें यह विष न फैले—इसके लिए हम सब देश-प्रेमियोंको सजग रहना है। मेरी तो आशा है कि समय पाकर संसारकी प्रगतिशील शक्तियाँ पाकिस्तानको भी साम्प्रदायिकतासे ऊपर उठनेके लिए मजबूर करेंगी और तब भारत और पाकिस्तानकी मानसिक प्रवृत्ति अधिक समीप हो जानेसे किसी भी समुदायको इन दोनों देशोंमें कहीं अरक्षित रहनेका भय न रहेगा।

परन्तु यह तो आगेकी बात है। इस समयकी समस्याका बोझ तो हमारे ऊपर है ही। इस समस्याके दो अंग हैं—एक तो भारत और पाकिस्तानका अपने अल्पसंख्यकोंके साथ व्यवहार और दूसरा पाकिस्तानसे हमारे देशमें आए हुए विस्थापितोंकी सहायता और इनके बसानेका प्रबन्ध। दोनों ही गम्भीर प्रश्न हैं। मैं उनके ब्यौरोंमें नहीं जा रहा। पाकिस्तानसे कई बार हमारी सरकारने समझौते किए, किन्तु समस्याका कोई ठोस समाधान नहीं निकला। मुझे ऐसा लगता है कि पाकिस्तानके साथ बर्ताव करनेमें अधिक कड़ेपनकी आवश्यकता पड़ेगी।

विस्थापितोंकी सहायताकी नगण्यताका अनुमान इसीसे लगेगा कि ३ सालमें १ करोड़ विस्थापितोंकी सहायतामें सिर्फ ७५ करोड़ रुपए खर्च हुए, जिसमें सरकारी इन्तजामका व्यय भी शामिल है। पाकिस्तानसे आये हुए विस्थापित जो सम्पत्ति वहाँ छोड़कर आये हैं, उसका दाबकर अनुमान करनेपर भी यह जान पड़ता है कि ३५ अरबसे ऊपरकी सम्पत्ति पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तानमें निर्वासितोंकी छूटी है। निर्वासितोंकी हानिकी कुछ अंशमें पूर्ति करनेका अपना दायित्व केन्द्रीय सरकारने स्वीकार किया है। देशका विभाजन क्यों हुआ—इस प्रश्नको बिल्कुल अलग छोड़कर यह मानना ही पड़ता है कि इन विस्थापितोंके कष्टका कारण हमारी राष्ट्रिय नीति है। राष्ट्रिय नीतिके कारण जो हानि किन्हीं समुदायोंको होती है उसकी आवश्यकतानुसार पूर्ति करना सम्पूर्ण राष्ट्रका कर्त्तव्य है। हम सबका सम्मिलित हित जिस कष्टका कारण है उसके दूर करनेमें भी हम सबका सम्मिलित दायित्व है। यह काम २५ या ३० करोड़ वार्षिक व्ययसे पूरा नहीं हो सकता। सम्पूर्ण हानिका प्रतिफल तो हम दे ही नहीं सकते, किन्तु मेरा निवेदन है कि फिर भी निर्वासितोंके कष्ट-निवारणके लिए कई अरब रुपयोंकी आवश्यकता है। यह रुपया किसी विशेष योजना द्वारा ही आ सकता है। मैंने साम्पत्तिक कर उगाहनेकी बात कुछ पहले कही थी। मैं इसे व्यावहारिक समझता हूँ। यदि सरकारको यह व्यावहारिक न लगे तो वह स्वयं पर्याप्त धन-संग्रह करने और विस्थापितोंको सहायता पहुँचानेका मार्ग निकाले, यह मेरा निवेदन है।

कश्मीर हमारा है

विभाजनके आरम्भसे ही भारत और पाकिस्तानका आपसी सम्बन्ध हमारी राजनीतिकी एक मुख्य समस्या रही है। अल्पसंख्यकोंके साथ उचित व्यवहारके अतिरिक्त कश्मीरका प्रश्न दोनों

देशोंके बीच तनावका कारण है। कश्मीर परम्परा तथा व्यवस्थाके अनुसार भारतका अंग है। पाकिस्तानकी सेनाने उसपर चढ़ाई कर उसके एक अंशको अपने अधीन कर रखा है। कश्मीरमें जनताके मत लेनेकी सुविधा उत्पन्न हो इसके लिए भी वह अपनी सेना हटानेको तैयार नहीं। संयुक्त राष्ट्रसंघसे हमारी सरकारने जो यह माँग बराबर की है कि वह पाकिस्तानको आक्रमणकारी घोषित करे, उसके पीछे हमारी जनता है। अमेरिकाके एक प्रसिद्ध पत्रकारने कहा है, जो बात कोरियाके सम्बन्धमें संयुक्त राष्ट्रसंघने को वही उसे पाकिस्तानके सम्बन्धमें करना उचित था।

किन्तु अभी हम देख रहे हैं कि वह संघ पक्षपातरहित न्याय करनेकी बुद्धि अपने सदस्योंमें नहीं पैदा कर सका है और उनमें अपने स्थानीय स्वार्थोंके कारण संघर्ष होता रहता है। भारतको सरकारने अपने सौजन्यसे संघका सम्मान करते हुए पाकिस्तानके प्रश्नको स्वयं अपनी ओरसे उसके सुपुर्द किया था। किन्तु ऐसा करके वह कुछ देशोंकी स्वार्थ-नीतिका निशाना हो गया। उसके अपने अंगपर पाकिस्तानकी सेना अब भी बैठी है जिसे वह अपनी शक्तिसे, बिना राष्ट्र-संघकी सहायता लिए हुए, हटा सकता था। उसने राष्ट्र संघका सम्मान बढ़ानेका यत्न किया, किन्तु संघने अपनी नीतिसे भारतपर एक जटिल समस्या लाद दी और पक्षपात-रहित नीतिसे काम नहीं किया।

श्री ओवन डिक्सन आये और चले गये और कश्मीरका प्रश्न वहींपर है जहां आरम्भमें था। मैं अपनी केन्द्रीय सरकारको आश्वासन देता हूँ कि कांग्रेस और देशकी जनताकी सहायता उसको इस बातमें दृढ़ रूपसे प्राप्त होगी कि कश्मीरसे पाकिस्तान की सेनाएँ हटाई जायँ और कश्मीरमें हमारे उस प्रदेशके शासन का, जिसके अगुआ और प्रतीक हमारे भाई शेख अब्दुल्ला हैं, पूर्ण रीतिसे हमारे संविधानके अनुसार अधिकार हो।

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

इन प्रश्नोंकी चर्चा करते हुए हमारा ध्यान अपने देशके हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नकी ओर जाता है। हमारे नेता महात्मा गांधीने कहा था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता हमारे जीवनका श्वास है। हम कांग्रेसवाले महात्मा गांधीके नेतृत्वमें सदा हिन्दू-मुस्लिम एकताका सुख-स्वप्न देखते थे। इस काममें हमें एक हद तक सफलता भी मिली। खिलाफत आन्दोलनमें हिन्दुओंने मुसलमान भाइयोंके साथ कन्धे-से कन्धा मिलाकर काम किया और जनतामें हिन्दू-मुस्लिम एकताकी लहर फैली, किन्तु धार्मिक कट्टरता और स्वार्थकी शक्तियोंने अपना सिर उठाया। दोनों के बीचकी खाईको पाटनेके कई यत्न हुए। महात्मा गांधीने अपनी जानकी बाजी लगा दी। उसका कुछ प्रभाव दिखाई पड़ा, किन्तु विरोधी शक्तियाँ प्रबल निकलीं और स्थायी मेल दूर हो गया। मुस्लिम लीगने अपनी माँगोंको रूप दिया और अन्तमें उसने अपना यह सिद्धान्त सामने रखा कि हिन्दू-मुसलमान जातियाँ दो पृथक् राष्ट्र हैं, दोनोंकी संस्कृतियाँ अलग-अलग हैं, दोनों एक देशमें नहीं रह सकते और उनके बीच देशका बँटवारा होना आवश्यक है। और वही हुआ।

एक देश, एक संस्कृति

विभाजनके बाद हिन्दू-मुस्लिम-समस्याका रूप बदला। पृथक् चुनावके क्रमके बारेमें अपनी पिछली भूलसे हमने शिक्षा ली और अपने संविधानमें उस क्रमको हमने हटा दिया। पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य बन गया। किन्तु भारतमें भी तो लगभग साढ़े तीन करोड़ मुसलमान रहते हैं। हम पाकिस्तानका बनना रोक न सके, किन्तु हमारे देशमें जो मुस्लिम रहते हैं उनमें और दूसरी जातियोंमें हमारी राजनीति अन्तर नहीं करती। हमारी निगाह इस बातपर है कि हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई एक राष्ट्रके अंग हों और आपसमें घुल-मिल जायँ और हमारे देशमें कुछ स्थानीय अन्तरोंके रहते हुए भी, एक संस्कृति हो जिसको रूप देने और जिसके विकासमें सब सम्प्रदायोंका हाथ हो।

मेरा यह निवेदन है कि हमारा देश अब कभी संस्कृति या तमद्दुनको धर्मके साथ जोड़नेकी भूल न करे। भिन्न-भिन्न धर्मके माननेवालोंकी भी एक संस्कृति होती है, क्योंकि संस्कृतिका प्रश्न भूमि और जलवायुसे सम्बन्ध रखता है। एक स्थानके लोगोंका रहन-सहन, बोल-चाल मिलता है। किन्तु अपने-अपने घरका काम या मज़हबी फर्ज़ वे अपने-अपने अलग ढंगसे करते हैं। चीन इसका एक उदाहरण है। हम सब इस प्रकारसे एक संस्कृतिके विकासमें सहायक हों और एक-दूसरेके

धर्म-कर्मोंको उदारता और प्रेमसे देखें। इस भावनाके फैलानेमें हम कांग्रेसजनोंके प्रयत्नकी आवश्यकता है।

सरकार नियन्त्रण तभी लगाय जब वह नितान्त आवश्यक हो और साधारण रीतिसे सामान्य आर्थिक नियमोंके अनुसार समाजको बरतने दे। आधुनिक शिक्षा-प्रणालीमें सुधार करनेको आवश्यकतापर पर ज़ोर देते हुए टण्डनजीने गृहोद्योग और त्यागवृत्तिका समर्थन किया। आपने कहा कि मनुष्य-जीवनकी सफलता इन्द्रिय भोगोंकी प्रचुरतामें नहीं; बल्कि उनके नियन्त्रणमें है।

कांग्रेसके ५६वें अधिवेशनके सभापति श्रीमान् बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डनके भाषणको पढ़कर पाठक अपनी राय स्वयं क़ायम करें। आशंका इस बातकी थी कि कहीं नासिक अधिवेशन सूरत अधिवेशनका रूप धारण न कर ले। सूरत अधिवेशनके रूपसे हमारा तात्पर्य कांग्रेसका दो भागोंमें विभाजनसे है, सूरतकी मारपीटसे नहीं। इस आशंकाका आधार यह था कि पं० नेहरूने अधिवेशनसे पूर्व अपने एक वक्तव्य द्वारा यह चुनौती दी थी कि कांग्रेस अपनी साम्प्रदायिक निरपेक्षता को क़ायम रखेगी अथवा वह उन सम्प्रदायवादियोंके हाथमें चली जायगी जो भारतको हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहते हैं। इस आशंकाका एक अन्य कारण यह भी था कि टण्डनजी के निर्वाचनसे संघी और सभाई बहुत प्रसन्न थे। डा० खरेने तो टण्डनजीकी जीतको अपनी जीत कहा था। कांग्रेसके जयपुर अधिवेशनने तीन बातें स्पष्ट रूपसे तयकी थीं (१) विदेशी नीति-सम्बन्धी बात (२) आर्थिक नीति और (३) साम्प्रदायिकता सम्बन्धी नीति। प्रश्न यह था कि क्या नासिक-अधिवेशन उन तीन मूल बातोंमें कोई परिवर्त्तन करेगा। टण्डनजीने भारतीय सरकारकी विदेशी नीतिके विषयमें अपनी स्वीकृति प्रकट की है। टण्डनजीने स्वीकृति देते हुए भी स्पष्ट रूपसे उसका विवेचन नहीं किया। टण्डनजीने कहा कि नेहरू सरकारकी वैदेशिक नीति लाभप्रद भी है और हानिकारक भी है। उससे लाभ तो यह बताया कि हम दुनियाके सामने न्याय तथा सत्य का आदर्श रख सकते हैं और अन्य देशोंको भी इसके लिए उत्साह दे सकते हैं। यह नीति हमें इस बातमें सहायता देती है कि विश्व-शासनके आदर्शको अपनानेमें उन लोगोंको यह मदद करती है जो इस आदर्शका आदर करते हैं और इस नीतिकी त्रुटि यह है कि विश्वके दो शक्तिशाली गुटोंमें से कोई भी हमें अपना मित्र नहीं समझता और इस प्रकार हमारे देश और पाकिस्तानमें जो प्रश्न उपस्थित होते हैं उनपर प्रतिक्रिया होती है। अनेक राष्ट्र स्वार्थवश पाकिस्तानको अपना सम्भावित मित्र समझते हैं और इस प्रकार उनके दिलोंमें पाकिस्तानके प्रति पक्षकी भावना है। यह असम्भव नहीं है कि भविष्यमें सब परिस्थितियोंका ध्यान रखकर अपने देशकी रक्षाके लिए हमें दो गुटोंमेंसे एकके साथ निकटतम सम्बन्ध स्थापित करना पड़े। हमें दुःख है कि टण्डनजीकी यह विचारधारा नेहरूजीकी विचारधाराके विपरीत है। हमें इसमें आपत्ति नहीं कि श्री टण्डनजी अथवा किसी और की विचारधारा भिन्न हो; वरन् प्रश्न यह है कि दोनोंमें ठीक कौन-सी है और देशके लिए कौन-सी विचारधारा अधिक कल्याणकारी है। नेहरूजीने स्पष्ट कहा है कि भारतकी वैदेशिक नीतिकी आधार-शिला इतनी तटस्थताकी नहीं है जितनी कि विचार-स्वातन्त्र्यकी तथा स्वतन्त्र निर्णय की। अगर पाठक टण्डनजी के भाषणको पढ़ें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि टण्डनजीके दृष्टिकोणसे हमारी वैदेशिक नीतिका प्रचलन पाकिस्तानके दृष्टिकोण को देखकर होना चाहिए। हमारे खयालसे यह दृष्टिकोण दूषित और भयावह है। यदि पाकिस्तान ऐंग्लो-अमेरिकन गुटके साथ है तो क्या हमें रूसके साथ जाना चाहिए अथवा क्या हमें भी पाकिस्तानके समान ही इसी गुटकी चाटुकारी करनी चाहिए। इस प्रकारकी नीति तो अवसरवादिताकी नीति हुई। इसका अर्थ यह होगा कि भारतवर्ष इन दो गुटोंमें से किसी एकका जमूड़ा बन सकता है।

हमें प्रसन्नता है कि टण्डनजीने उद्योगोंके विकेन्द्रीकरणके लिए बड़ा जोर दिया। उन्होंने कुटीर-धन्धोंके लिए बड़ी प्रेरणामूलक बात कही। ग्राम्य स्वावलम्बन और खादीकी वृद्धिपर भी उन्होंने जोर दिया। हमारे राज्य खादीपर उतना जोर नहीं देते जितना उन्हें देना चाहिए। इसलिए उन्होंने उनकी भर्त्सना भी की। पर प्रश्न यह है कि इन सब बातोंको

कार्यान्वित करनेके लिए टण्डनजी क्या करेंगे। उत्तर प्रदेशके सूबा कांग्रेस कमेटीके कार्यकर्त्ताओंको कातनेके लिए उनसे कितनी प्रेरणा मिलती थी और अब हमें देखना है कि उनके नए जनरल सेक्रेटरी कताई करते हैं या नहीं। हमें यह पढ़कर प्रसन्नता हुई कि टण्डनजीने साम्प्रदायिकताके विरुद्ध जो बातें कही हैं वे कांग्रेसकी नीतिके अनुकूल हैं। शेख अब्दुल्ला की सरकारका समर्थन किया है और आश्वासन दिया है कि काश्मीरसे पाकिस्तानी फ़ौजें हटानेमें केन्द्रीय सरकारका साथ सब देंगे। साम्प्रदायिकवादका विरोध करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि सुशासन, तर्क और विवेकके आधारपर ही चल सकता है केवल पोथीके आधारपर नहीं। हमारा राष्ट्र किन्हीं धार्मिक ग्रन्थोंके आधारपर नहीं चलाया जा सकता। वे सहायक हो सकते हैं, पर बुद्धिका स्थान वे नहीं ले सकते।

टण्डनजीका भाषण आवश्यकतासे अधिक लम्बा है और उन्होंने नेहरू-लियाकत समझौते तथा अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर सूक्ष्म विवेचन नहीं किया।

नासिक अधिवेशन

कांग्रेसके ५६ वें नासिक अधिवेशनके पूर्व जो कांग्रेसपर घटाएँ छाई थीं वे घुमड़कर दूर होती प्रतीत होती हैं। जितने भी प्रस्ताव कांग्रेस कार्यसमितिने रखे वे सब पास हो गए। यों देखनेको तो पुरानी रस्म अदा कर दी गई। नेहरूजीमें विश्वास भी प्रकट किया गया। पर क्या अधिवेशनकी इस प्रकारकी सफलतासे कांग्रेसको शक्ति मिली है या यों ही रस्म अदा कर दी गई है? कांग्रेसके सामने दो बातें थीं। एककी चर्चा स्वयं टंडनजीने नासिक जाते समय की थी कि नासिक अधिवेशनके सामने सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न भ्रष्टाचारका है जो जीवनकी सब दिशाओंमें छा गया है। नासिक-अधिवेशनमें यह निर्णय होना है कि कांग्रेस इस भ्रष्टाचारको आमूल नष्ट कर सकती है या मिटानेमें हार मानकर आत्महत्या करती है। हम नासिक अधिवेशन गए नहीं। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि भ्रष्टाचारके मामलेपर कांग्रेसमें विचार भी हुआ या नहीं। ऐसा मालूम होता है कि अधिवेशनमें टंडनजीका रूप अधिवेशनके पहले रूपसे बिल्कुल भिन्न था। नेहरूजीकी धाक चारों ओर दिखाई पड़ती थी और लोगोंमें इतना दम नहीं था कि वे नेहरूजीके विचारोंका विरोध भी कर सकते। हमारा तात्पर्य यह नहीं कि नेहरूजीके विचारोंका विरोध, विरोधकी खातिर होना चाहिए था। हमें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि नेहरूजीके व्यक्तित्वके सामने और टंडनजीके अल्पमतसे जीतनेके कारण लोगोंमें यह दम नहीं था कि वे विरोध करते। हमारा उनसे मतभेद है जो कहते हैं कि नासिक-अधिवेशनने मनोमालिन्यके बादलोंको हटा दिया। मतभेद ज्यों-का-त्यों बना है। भ्रष्टाचार रोकनेके लिए कोई सक्रिय प्रोग्राम नहीं रखा गया और आगामी चुनावके लिए किसी व्यवस्थाकी चर्चा नहीं हुई जिससे अवसरवादियोंकी मनमानीपर कुछ अंकुश लग सकता। नासिक-अधिवेशनमें सर्वोदय-समाजमें विश्वास रखनेवालोंकी अधिकांश ग़ैरहाज़िरी थी। इन पंक्तियोंके लिखते समय तक कांग्रेस कार्यसमितिका निर्माण नहीं हो पाया।

कोरियाका युद्ध

कोरिया-युद्धका पासा जैसा हमने लिखा था एकदम पलट गया। हमारे कई पाठकों तथा मित्रोंने कोरिया-युद्ध-सम्बन्धी नोटपर यह आपत्ति की थी कि अमेरिकाकी सफलताके विषयमें हमारा अनुमान तथा विचार भ्रमपूर्ण है। हम न तो सैनिक समस्याओंके विशेषज्ञ हैं और न कोरिया-युद्ध-क्षेत्रसे ही कुछ लिखते हैं; वरन् अपनी बुद्धिसे विदेशी समाचार पत्रों, युद्धकी प्रगति, कोरियाकी भौगोलिक स्थिति तथा युद्ध सम्बन्धी अपने अल्प ज्ञानके बूतेपर ही लिखते हैं। हमारे मित्रोंको भ्रम नहीं होना चाहिए था क्योंकि हमने स्पष्ट लिखा था कि पूसानके आसपास अमरीकी तथा ब्रिटिश जंगी बेड़ेके होते कम्यूनिस्ट पूसानसे अमरीकी फौजें नहीं निकाल सकते। हमने लिखा था कि अगर अमरीकी सेनाएँ निकाल भी दी गईं तो वे फिर कोरिया जाकर कम्यूनिस्टोंको हरायेंगी। जनरल मैकआर्थरने सेना संचय करके दक्षिणी कोरियाकी राजधानी सेउलके निकट अमरीकी सेनाएँ उतार दीं, सेउलपर कब्जा कर लिया, दक्षिण कोरियामें सहायता भेजनेके यातायातके साधनोंपर कब्जा कर लिया तथा दक्षिणके महत्त्वपूर्ण स्थानोंसे कम्यूनिस्टोंको हटना पड़ा। कोरियाकी सेनाएँ एक प्रकारसे चारों ओरसे घिर गई हैं। यह

ठीक है कि वे बड़ी वीरतासे लड़ रही हैं, पर वीरता और सैनिक क्षमताकी एक सीमा है। कम्यूनिस्ट सेनाओंके सामने अब लड़कर मरने या आत्म-समर्पणका सवाल है। केवल एक ही सूरत बचनेकी है कि रूस या चीन अपनी सेना उत्तरी कोरियाकी सहायताको भेजे। चीनमें सहायता करनेका दम नहीं है और रूसमें तृतीय महायुद्ध आरम्भ करनेकी ज़िम्मेदारी लेनेका साहस नहीं; बस कोरिया युद्धके अन्तिम दिन निकट हैं। पर देखना है कि संयुक्त-राष्ट्र-सेनाएँ उत्तरी कोरियामें प्रवेश करेंगी या सीमापर पहुँचकर कुछ और फैसला करेंगी।

स्वास्थ्य-समस्या

गत ३१ अगस्तको नई दिल्लीमें स्वास्थ्य मन्त्रियोंके सम्मेलनका उद्घाटन करते हुए प्रधान मन्त्री पं० नेहरूने कहा कि सार्वजनिक स्वास्थ्य दवाओंकी अपेक्षा भोजन और मकान जैसी बुनियादी बातोंपर अधिक निर्भर करता है। नेहरूजीकी बात ठीक है, पर हमारे खयालसे स्वास्थ्यकी बुनियादी बात यह है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याको दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। पहली बात है अच्छे और उचित तथा पौष्टिक भोजनकी और दूसरी बात है बीमारीमें इलाजकी। जीवनके लिए सबसे पहले अच्छी हवा मिलनी चाहिए, उसके बाद पानी और तब भोजन। भोजनके बाद वस्त्र और तब मकानका प्रश्न आता है। खैर इतनी ही है कि हवाका राशन और कण्ट्रोल नहीं है। यदि हवा और पानीका कण्ट्रोल होता तो कई सूबोंके रसद मन्त्री अपने विरोधियोंको जीने भी नहीं देते। पर क्या यह हमारे जीवनका अभिशाप नहीं है कि हम शहरोंको बढ़ा रहे हैं और गन्दी हवाका सेवन करके फल और मेवा खानेपर भी शहरके बाबू लोगों और लालाओंका स्वास्थ्य अपेक्षाकृत खराब है। उनमें वह जीवट नहीं जो शुद्ध हवामें रहनेवाले व्यक्तिमें होती है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि परमात्माकी इस देनका भी हम उचित उपयोग और उपभोग नहीं करते। खाना यदि साधारण भी हो पर हवा और पानी बढ़िया हों तो आदमीके जीवट और स्वास्थ्य बने रहते हैं। राजस्थानकी मरुभूमिमें रहनेवालों तथा देहातियोंको शुद्ध वायु मिलती है और जहां उन्हें दूध मिलता है वहां तो स्वास्थ्यका कहना ही क्या। मूर्खतावश और केवल रुपया कमानेकी प्रवृत्तिमें हमारी खेती-बारी बिगड़ती जा रही है और हमें अन्न तक बाहरसे मँगाना पड़ता है। इसलिए अच्छे स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है कि स्वच्छ वायु, बढ़िया पानी और उचित भोजन मिले और बीमारीमें इलाज भी हो जाय। वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी जो बात पं० जीने कही है वह ठीक है, पर इलाजके मामलेमें एलोपैथिक चिकित्सा ही वैज्ञानिक कसौटी पर खरी नहीं उतरती। आयुर्वेदिक, यूनानी और होम्योपैथिक प्रणाली भी वैज्ञानिक कसौटीपर ठीक उतरती हैं। पोषणके लिए मुख्य आहार दूध और घी हैं और शाकाहारियोंके लिए वे अत्यन्त आवश्यक हैं। वनस्पति घीने तो हमारा ढंग दर दिया है और आफ़त तो यह है कि वैज्ञानिक तक उसके बारेमें अनुकूल-प्रतिकूल राय देते हैं। पोषण तत्त्वोंकी दृष्टिसे हम वनस्पति घीको हानिकारक समझते हैं क्योंकि वह धीरे-धीरे असर करनेवाला ज़हर है और भोजनमें उसके प्रयोगके प्रोत्साहनको हम ज़हर देना समझते हैं। हमें इंग्लैण्डके स्वास्थ्य-विभागकी रिपोर्ट पढ़नेका सौभाग्य मिला है और उससे हमें पता चला है कि यदि एक कमरेमें चार व्यक्ति रहें और वैसे ही एक कमरेमें एक व्यक्ति रहे तो एक कमरेमें रहनेवाले चार व्यक्तियोंके क़द छोटे हो जायँगे और स्वास्थ्य भी उनका गिरा हुआ होगा। बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि देशके सार्वजनिक स्वास्थ्यकी ओर हमारी सरकारका ध्यान गया है पर इसकी ओर प्रत्येक बालकका ध्यान भी जाना चाहिए। चढ़ती उमरमें स्वास्थ्यपर अधिक ध्यान देना चाहिए। हमारे कितने विद्यार्थी नियमित रूपसे व्यायाम करते हैं और प्रातःकाल उठते हैं। कालेजोंमें जाकर जरा विद्यार्थियोंके चेहरे देख लीजिए। उनके पास व्यायामका सामान तो कम मिलेगा; पर कंघी, पोमेड, पाउडर, तेल और फेसक्रीमको आप कम न पायँगे। बच्चों और चढ़ती उमरके लड़कोंके स्वास्थ्यका हमें काफ़ी ध्यान रखना है।

आवश्यक सूचना

दुर्गापूजाके अवसरपर कार्यालय ता० १६ अक्टूबरसे २८ अक्टूबर तक बन्द रहेगा। अतः इस बीच आनेवाले पत्रोंका उत्तर छुट्टीके बाद ही दिया जा सकेगा।—व्यवस्थापक

आओ, प्यारी १५ अगस्त !

हरिशंकर शर्मा

सुन्दर स्वतन्त्रता - सूर्य्य उगा,
दासता-रूप तम - तोम भगा,
सदियों का सोया देश जगा,
हो गया संघटन - स्नेह ध्वस्त—
आओ, प्यारी पन्द्रह अगस्त !

अपना विधान : अपना स्वराज,
अपने अधीन सब राज - काज,
पर अन्न, वस्त्र पर पड़ी गाज,
सब हुए त्रस्त—आपत्ति ग्रस्त—
आओ, प्यारी पन्द्रह अगस्त !

अधिकारों का मद - मोह लिये,
पद - प्रभुता का छल - छोह लिये,
दलबन्दी, दुर्मति, द्रोह लिये,
हो रहे आज सब अस्त - व्यस्त—
आओ, प्यारी पन्द्रह अगस्त !

नित स्वार्थ-सर्प फुंकार रहा,
मानवता पर मुँह मार रहा,
दानवता - विष संचार रहा,
कर दिये हौसले हाय पस्त—
आओ, प्यारी पन्द्रह अगस्त !

मन में न धर्म्म - ईश्वर का भय,
वाणी में गांधीजी की जय,
करणी में पाप - पुञ्ज - संचय,
है दम्भयुक्त जीवन समस्त—
आओ, प्यारी पन्द्रह अगस्त !

जुग - जुग बीते अब आओगी,
सुख - शान्ति - स्नेह सरसाओगी,
वैभव - विभूति बरसाओगी,
समुदित आशा हो गयी अस्त—
आओ, प्यारी पन्द्रह अगस्त !

रिश्वत - रानी का प्रेम - प्यार,
सुन्दरी सिफारिश का दुलार,
रियायत - रमणी का चमत्कार,
है स्वार्थ - सिद्धि में सिद्धहस्त—
आओ, प्यारी पन्द्रह अगस्त !

जन-जीवन में तप - त्याग नहीं,
नैतिकता में अनुराग नहीं,
मन या दामन बेदाग नहीं,
खुद गरज और मतलब - परस्त—
आओ, प्यारी पन्द्रह अगस्त !

आई हो तो सादर स्वागत,
उत्साह नहीं पर आव - भगत,
कर रहा आज आरत भारत,
भूखा, नंगा, क्षत, तंगदस्त—
आओ, प्यारी पन्द्रह अगस्त !



प्राचीन भारतमें गणतन्त्र

रमाशङ्कर मिश्र

समिति :—प्राचीन वैदिक कालमें समिति राष्ट्रिय-संस्था थी। राष्ट्र (विशः) के कुल लोग मिलकर समितिमें बैठकर राजकीय कार्य करते थे। राजन्का चुनना समितिका कार्य था। राजाका कर्त्तव्य था कि वह समितिमें अवश्य बैठे। 'ग्राम' समितिका आधार होता था; ग्रामके नेताको 'ग्रामणी' कहते थे। 'ग्राम' राष्ट्रकी इकाई (यूनिट) होता था; ग्राम मुक़दमा करते और उनसे जुर्माना वसूल किया जाता था। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा छान्दोग्य उपनिषद्में समितिका जिक्र आया है (२०० अथवा ७०० ईसाके पूर्व)। जातक-काल (६०० ई० पूर्व) तक समिति लुप्त हो जाती है।[1]

सभा :—समिति और सभा प्रजापतिकी दो कन्याएँ थीं। मालूम पड़ता है कि सभा-समितिकी स्थायी कमिटी होती थी। इसका प्रस्ताव सर्वमान्य होता था। सभाके नेताको सभापति कहते थे। जातक-कालमें सभा मौजूद थी। प्राचीन वैदिक-कालमें राजकीय-संस्था क़ायम थी। भारतमें प्रजातन्त्र बादको आया।

ऐतरेय ब्राह्मण (१००० ई० पूर्व)

संघ-राष्ट्रमें गण तथा कुल पाये जाते हैं। ऐतरेय ब्राह्मणमें भौज्य-पद्धतिका पता चलता है। बादके ग्रन्थोंसे पता चलता है कि यादव-अन्धक तथा वृष्णीके योगसे बने थे और भोज यादवके ही एक अंग थे। अंधक तथा वृष्णी गुजरात अथवा काठियावाड़में रहते थे। भोजका पता आजके भुज कच्छकी राजधानीसे लगता है। ऐतरेय ब्राह्मणमें स्वराज्यका पता लगता है—यह पद्धति पश्चिमी भारतमें क़ायम थी। सभापतिको स्वारत कहते थे। ऐतरेय ब्राह्मणमें वैराज्य-संस्थाका जिक्र आया है—इस तरहकी संस्था उत्तर भारतमें क़ायम थी। जैन-ग्रन्थ आचारांग-सूत्रमें वैराज्यका पता चलता है और महाभारतमें विराजका जिक्र आया है। भारतमें अराजक-पद्धति भी क़ायम थी।

पाणिनी काल (६०० ई० पूर्व)

पाणिनीने संघ तथा गण शब्दोंका व्यवहार किया है। उन्होंने वाह्िक देशके संघोंका जिक्र किया है। कात्यायनने भी संघ शब्दका प्रयोग किया है (४०० ई० पूर्व०)। पाणिनीने १० आयुधजीवी संघोंका जिक्र किया है। इनमें यौधेयोंका नाम विशेष उल्लेखनीय है। आयुधजीवी गणतन्त्र सैनिक-राष्ट्र होते थे। पाणिनीका कहना है कि ये गणतन्त्र वाह्िक-देशमें फैले हुए थे। महाभारतमें पंजाबको वाह्िक देश कहा गया है। डाक्टर काशीप्रसाद जायसवालके मतसे वाह्िक देश पंजाब तथा सिंध प्रदेश हैं।

१० आयुधजीवी गणतन्त्रके अतिरिक्त पाणिनीने ६ दूसरे गणतन्त्रोंका जिक्र किया है। पाणिनीने अंधक-वृष्णी गणतन्त्रोंका जिक्र किया है। इनको पुराणोंमें सत्वत कहा है। ऐतरेय ब्राह्मणके प्रमाणसे सत्वत भौज्य पद्धति थी। महाभारतमें अंधक शासकोंको भोज कहा है, बादको यादवके एक अंगको भोज कहा है।

वृष्णी-अंधक एक मिली हुई फेडरल संस्था थी। सिक्कोंसे भी इस बातका पता चलता है। कृष्णने महाभारतमें कहा है कि ऐश्वर्यके वे अर्धभोक्ता हैं।

बौद्ध-साहित्यमें गण-तन्त्र (५००-४०० ई० पूर्व)

बौद्ध-साहित्यमें उन प्रजातन्त्रोंका जिक्र आया है जिनमें बुद्धका जन्म हुआ और जिनके समीप वे रहे। यह देश अंगके पश्चिम, कोशल तथा कौसमाबीके पूर्व, मगधके उत्तर और हिमालयके दक्षिणमें फैला हुआ था :—

(१) शाक्य—राजधानी कपिलवस्तु। (२) रामग्रामके कोलिया। (३) लिच्छवी—राजधानी वैशाली। (४) विदेह—राजधानी मिथिला। (५) मल्ल—राजधानी कुशिनार तथा

---

१. महात्मा गांधीका विचार था कि ग्राम ही भारतीय राष्ट्रकी राजनीतिक 'यूनिट' हो। —ले०

पावा। (६) पिप्लीवानके मोरिया। (७) अलाकप्पके बुलि। (८) कौसमाबीके भग्ग।

बुद्धका जन्म साक्य-राष्ट्रमें हुआ था और वे साक्य-गणके सभापतिके पुत्र थे। साक्योंमें हर एक नागरिक एक ही शादी कर सकता था।

जातकमें लिच्छवी-शासकको गण-शासक कहा है। प्रोफेसर रीज़ डेविड्ज़ने अठकठ (Atthakatha) के आधारपर लिच्छवी-संस्थाका वर्णन किया है। राजा (The president) उप-राजा (Vice president) तथा सेनापति (Generalissimo) होते थे। एक प्राचीन जातकके मतसे भण्डागारिका (Chancellor of the Exchequer) भी होता था। शासन-कार्य वैशालीसे होता था। विदेह तथा लिच्छवी साथ मिलकर शासन-कार्य करते थे, उनको समवाज्जी कहते थे। कल्पसूत्रके आधारपर कहा जा सकता है कि लिच्छवी मल्लके साथ मिलकर शासन करते थे। महावीरकी मृत्युके समय दोनों गण साथ थे (५४५ अथवा ५२७ ई० पूर्व)।

अर्थ-शास्त्रमें गणतन्त्र (३२५-३०० ई० पूर्व) :—

कौटिल्यने अर्थ-शास्त्रमें संघ-शासनके बारेमें लिखा है और उनके प्रति साम्राज्यकी क्या नीति होती थी उसका भी जिक्र किया है। कौटिल्यने दो तरहके संघोंका जिक्र किया है। एकमें शासकको राजा (Consuls) कहते थे। दूसरेमें राजा नहीं होते थे। इनका पता सिक्कोंसे मिलता है। नीचे लिखे हुए संघोंमें राजा हुआ करते थे :—

(१) लिच्छविका, (२) व्रिजिका, (३) मल्लका, (४) मद्रका, (५) कुकुरा, (६) कुरा, (७) पंचाल तथा अन्यान्य।

लिच्छवीका इतिहास पूर्णरूपसे उपलब्ध है। शिशुनाग तथा मौर्य शासनके बाद भी वे बचे रहे और उन्होंने गुप्त साम्राज्यकी नींव डाली। डाक्टर काशीप्रसाद जायसवालके मतसे लिच्छवीने नैपालमें एक शासन-संस्था क़ायम की।

मल्ल बहुत दिन तक न रहे। मौर्य-कालके कुछ ही दिन बाद मल्ल-गणतन्त्र विलीन हो गया। गोरखपुर तथा आजमगढ़ जिलोंमें मल्लके वंशज मल्ल जातिके रूपमें आज भी मौजूद हैं। (Vide H. Pandey—Journal of the Bihar and Orissa Research Society, 1920 P. P. 262-65)

कौटिल्यने निम्नलिखित दूसरे क़िस्मके संघोंका जिक्र किया है :—

(१) कामबोज, (२) सुराष्ट्र, (३) क्षत्रिय, (४) श्रेणी तथा अन्यान्य।

इन संघोंमें राजा नहीं होते थे। सैनिक कुशलतापर इनका अधिक ध्यान रहता था। राष्ट्रका हरएक नागरिक सैनिक होता था। वे उद्योग तथा कृषिपर भी ध्यान देते थे।

अर्थ-शास्त्रमें क्षूद्रक तथा मालवा संघके दो सैनिक राष्ट्रोंका ज़िक्र नहीं किया है। हो सकता है कि वे मौर्य-साम्राज्यके अधीन हो गये हों। कामबोज पूर्वी अफ़गानिस्तानमें रहते थे। अशोकके शिलालेखसे पता लगता है कि वे गान्धारके नजदीक रहते थे।

सुराष्ट्र काठियावाड़में रहते थे। आज वे सोरठके नामसे विख्यात हैं। मौर्य—साम्राज्यके बाद भी वे बचे रहे। उनका पता वाला श्री के शिला लेख (५८ ई० पूर्व) तथा रुद्रदमनके जूनागढ़के शिला-लेख (दूसरी सदी ई० पश्चात) से लगता है।

यूनानी लेखकोंके आधारपर क्षत्रिय और श्रेणी सिंधमें रहते थे। उन लोगोंने क्षत्रियको जैथ्रोआइ (Xathroi) कहा है। अग्रश्रेणीने सिकन्दरसे लोहा लिया था। डाक्टर काशीप्रसाद जायसवालके मतसे यह मुमकिन है कि सिकन्दरके अग्रश्रेणीको कौटिल्यने श्रेणी कहा हो। उनके मतसे पंजाब तक सिंधके खत्री जैथ्रोआइके वंशज हैं।

यूनानी लेखकोंका प्रमाण (३२५ ई० पूर्व) :—

मेगस्थनीज़ने भारतमें दो तरहकी शासन-पद्धतियोंको देखा। एक राजतन्त्र तथा दूसरा गणतन्त्र था। यूनानी लेखकोंने कथायान (Kathaians) का ज़िक्र किया है जो रावी नदीके पूर्वमें बसे हुए थे, उनकी राजधानी संकल थी। शकट-व्यूहके ज़रिये इन लोगोंने सिकन्दरके मार्गमें भयंकर कठिनाई पैदा की। इस राष्ट्रसे मिलनेसे पहले सिकन्दरने रावी नदीके किनारे बसे हुए दूसरे-दूसरे गणतन्त्रोंका मुक़ाबिला किया था। कथायान गणतन्त्रके नजदीक सौभूती-राष्ट्र था। यह राष्ट्र

नमक-पर्वत श्रेणी तक फैला हुआ था। स्पार्टाकी तरह इन राष्ट्रोंमें कमज़ोर बच्चोंको मार डाला जाता था। Vide Me Crindle, Invasion of India by Alexander the Great P. 219)।

जब सिकन्दर व्यास नदीके तटपर पहुँचे तब उनको एक शक्तिशाली प्रजातान्त्रिक राष्ट्रका पता लगा। ज़्यादा सम्भव है कि वे यायुधेया थे और उनके नामसे सिकन्दरकी फ़ौज काँप उठी थी। महाराज नन्दकी फौजका नाम सुनकर वे घबरा गये और आगे बढ़नेसे इनकार कर दिया (Vide Me Crindle p. 121)।

लौटनेके समय सिकन्दरको बहुत-से गण-तन्त्रोंसे मुलाक़ात हुई। इनमें छुद्रक तथा मालवा अधिक शक्तिशाली थे। इनको यूनानी लेखकोंने औक्सीडेकाइ तथा मल्लाइ कहा है। यूनानी लेखकोंने यह दिखलानेकी कोशिश की है कि सिकन्दरने इन दोनों राष्ट्रोंको हरा दिया था। परन्तु पतञ्जलिके मतसे छुद्रक ने विजय प्राप्त की थी।

सिकन्दरको अग्रश्रेणीसे युद्ध करना पड़ा। इनको युनानी लेखकोंने अग्सीने (Agsinae) कहा है। हारनेके बाद जौहरकर इन लोगोंने अपनी स्त्रियों तथा बच्चोंको जिन्दा जला दिया (Curtius B. K. IX, Ch. 4 ; Me Crindle, Alexander, P. 232)। यूनानी लेखकोंने अम्बष्ठ का जिक्र किया है। अम्बष्ठका जिक्र पतञ्जलिने किया है और महाभारतमें भी इनका जिक्र पाया जाता है। सिकन्दर को जैथूवोआइसे भी लड़ना पड़ा।

सिकन्दरने ब्राक्मनोआई (Brochmanoi) जातिपर विजय प्राप्त की। प्लूटार्कने सिकन्दरकी जीवनीमें लिखा है है कि ब्राह्मणके राष्ट्रने सिकन्दरको बहुत तकलीफ़ दी ; इसके फलस्वरूप उस राष्ट्रके बहुत-से नागरिकोंको फाँसीपर चढ़ा दिया गया।

इसके दक्षिण पाटलाका राष्ट्र सिन्धुके मुहानेपर था। सिकन्दरसे बचनेके लिए कुल-राष्ट्र वहाँसे हट गया। महाभारत तथा जातकमें लिखा है कि जरासन्धके दबावके कारण वृष्णी मथुरासे हटकर द्वारका चले गये। यह पाटला हैदराबाद सिन्धमें रहते थे, उस नगरका प्राचीन नाम पोटलपुरी था।

महाभारतमें गणतन्त्र

शान्ति पर्वके १०७ वें अध्यायमें गणके लक्षणोंका जिक्र किया गया है। गणका अर्थ राष्ट्र होता था। शासन-कार्य गण-मुखिया तथा प्रधान द्वारा होता था। बहुतसे गण मिलकर एक कान्फ़ीडरेसी (संघ) बनाते थे। गणके नेता सभापति होते थे। कान्फ़ीडरेसीके बाहरके गण कमजोर होते थे और उनकी सम्पत्तिका ह्रास होता था। गण तथा कुलके लोग जन्म से ही बराबर होते थे। शक्ति, चालाकी अथवा रूप द्वारा उनको तोड़ा नहीं जा सकता था। शत्रु उनमें फूट का बीज डालकर तथा द्रव्यके लालचसे बरबाद कर सकते थे। गणकी सुरक्षा कान्फ़ीडरेसी द्वारा सुचारु रूपसे हो सकती थी।

मौर्य-कालमें गणतन्त्र—मौर्य-साम्राज्यके अन्दर बहुत से गणतन्त्र थे। फ़ारससे लेकर दक्षिण भारत (तमिल देश) तक यह साम्राज्य फैला हुआ था। कौटिल्यने अर्थशास्त्रमें यह नीति निर्धारित की कि सन्धि करनेकी अपेक्षा संघको राज्य में मिला लेना अधिक उत्तम है। जो संघ लीगके कारण बलवान हो उनसे मेल किया जाय और जो संघ कमजोर हो उनको मिला लिया जाय। इस नीतिके फलस्वरूप शक्तिशाली संघ बच सके, बाकी खतम हो गये। क्षुद्रक, मालवा, व्रज, राष्ट्रिका या भोजक अपनी शक्तिके कारण बच सके। अशोकके समय निम्नलिखित गणतन्त्र थे :—

(१) योन। (२) कामबोज। (३) गांधार। (४) राष्ट्रिका (५) पिटिनिका। (६) अन्यान्य अप्रान्त। (Vide Rock Series, Section V.)

रौक सीरिज़ १३ (Rock Series XIII) में निम्नलिखित गण तन्त्रोंका जिक्र है :—

(१) योन। (२) कामबोज। (३) नाभक तथा नाभापंक्ति। (४) भोज। (५) पिटनिका। (६) आन्ध्रा तथा पुलिन्दा।

कामबोज काबुल नदीके किनारे बसते थे। यवन काबुली के पड़ोसी थे। सिकन्दरके हमलेके बहुत पहलेसे काबुल नदीके किनारे यूनानी जातिके लोग बसे हुए थे। सिकन्दरके आक्रमण के समय काबुल-यवनने एक नगर-राष्ट्र (City State) कायम कर लिया था। फारस-साम्राज्यके मातहत कुछ यूनानी

वहाँ आकर बस गये थे। नाइसा (Nysa) उनका नगर था। ये हिन्दू बन चुके थे ; पर वे यूनानी देवताओंको पूजते थे।

सुंग-काल तथा उसके बादके गणतन्त्र

सुंगकालमें मौर्यकालीन शक्तिशाली संघोंका पता चलता है। कुछ नए संघ भी क़ायम हुए थे जैसा कि सिक्कोंके प्रमाण से पता चलता है। मथुराके हुणोंके दबावसे बहुत-से गणतन्त्र राजपूतानामें जाकर बस गये। इनमें यायूधेयाका नाम विशेष उल्लेखनीय है। मौर्यकाल तथा कुशान राज्यके बाद भी वे बचे रहे। ईसाके बाद दूसरी शताब्दी उनकी वीरगाथासे भरी पड़ी है। इनका ज़िक्र शिला-लेखों तथा सिक्कोंमें पाया जाता है। रुद्रदमनने इनकी वीरताकी प्रशंसा दूसरी सदी ई० बादमें की है। समुद्रगुप्तके शिलालेखमें इनका ज़िक्र आया है। (Fourth Century A. D.)। भरतपुर राज्यमें एक लेख मिला है जिससे पता चलता है कि गुप्त-कालमें यायूधेया गणका एक चुना हुआ सभापति होता था। मालूम पड़ता है कि दूसरी शताब्दी ई० बाद तक वे पश्चिमी राजपूतानामें फैल गये थे। एक क़िस्मके सिक्केमें लिखा हुआ है, 'यायूधेया-गणस्य जयः।" मन्त्रधार यायूधेया-गणके सभापति होते थे। ईसाके बाद सातवीं शताब्दी तक यह गण इतिहाससे लुप्त हो जाता है। जोह्यिा राजपूत जो बहावलपुर राज्यकी सीमामें सतलज नदीके किनारे बसे हुए हैं उनके वंशज ख़याल किये जाते हैं (Cunningham A. S. R. Vol. XIV P. 140)।

मद्र-गणकी राजधानी साकल थी। वे भी दक्षिणकी तरफ बढ़ गये और यायूधेयाके पड़ोसी बन गए। उन्होंने समुद्र-गुप्तके साथ युद्ध किया था। बादको इनका इतिहास लुप्त हो गया।

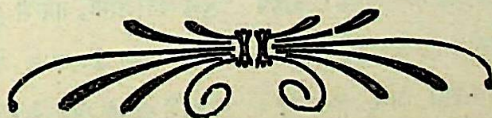
मालवा तथा क्षुद्रक सुङ्ग-कालमें फिरसे नजर आते हैं। राजपूताना जानेके समय क्षुद्रक मालवामें मिल गये थे। जयपुर राज्यके करकोटा नागरके सिक्कोंसे पता चलता है कि १५०-१०० ई०पू०में वे राजपूतानामें बस गये थे। समुद्रगुप्तने मालवा-गणसे युद्ध किया था। मालवीय ब्राह्मण मालवा-गणके चिह्न आज भी मौजूद हैं। ये प्रयागके आसपास पाये जाते हैं।

सीबी भी मालवाके साथी थे। उनके सिक्के मिलते हैं। वे राजपूतानामें आकर बस गये। इन लोगोंने सिकन्दर के साथ लड़ाई की थी। अर्जुनायन-गणका जन्म सुङ्गकालमें (२०० ई०पू०) हुआ था। १५०-१०० ई० पू०में राजपूताना-गण बढ़े ; उस कालमें पंजाब तथा पश्चिमी भारतमें गणोंका ह्रास हुआ। शाका आक्रमणकारियोंने वृष्णी-गणको नष्ट किया। कृष्णके समयसे चक्र इनका राज-चिह्न था। डाक्टर काशीप्रसाद जायसवालका मत है कि गण-राज्योंका नाश कर मौर्य-नीतिने भारतको कमज़ोर किया और इसी कारणसे ई० पू० पहली सदीमें बाहरी बर्बर जातियोंने आकर पश्चिम-भारत पर अपना दखल जमा लिया।

गण-तन्त्रका भारतसे लोप

गुप्त-शासनने राजपूतानाकी गण-शक्ति तो तोड़ दिया। लिच्छवीकी मददसे गुप्त-शासन भारतमें कायम हुआ। पुष्य-मित्रने गण शासन क़ायम किया। और उसने गुप्त-वंशको खत्म किया। इसके बाद पाँचवीं सदी तक भारतसे गणतन्त्र लुप्त हो गये। लिच्छवी राजनीतिक क्षेत्रसे हट गये—उनकी एक शाखा नैपाल चली गई ; राजनीतिक-निर्माणका पहला काम था गणतन्त्रका लोप होना। ५५० ई० बाद भारतका इतिहास व्यक्तियोंकी गाथा बन गई। हर्ष, शशंक, यशोधर्मन कालकी तथा शंकराचार्य आम जनतासे बहुत ऊँचे पड़ गये। भारतमें स्वतन्त्रता-स्रोतमें कमी हो गई ; इस बातका अन्वेषण करना अभी बाकी है। केवल हुण आक्रमण ही इसका उत्तर नहीं दे सकता।*

* Vide Hindu Polity by Jayaswal, Butterworth, Calcutta, 1424 A. D. Also Corporate Life in Ancient India by Dr. R. C. Mazumdar.



पतिव्रता उपकोशा

त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री

आर्य-ललनाओंकी कथा-कलिन्दजामें अभिषिक्त होकर भला कौन आनन्दमग्न नहीं हो जायगा ? उनके अद्भुत आख्यान रूपी अर्कके आलोकसे इतिहास और पुराणों के पृष्ठ आलोकित हैं। सीता, सावित्री और पद्मिनीसे विश्व परिचित है। उनकी अग्नि-परीक्षा, मर्यादा-रक्षा विश्व विख्यात है। इस लेखमें पतिव्रता 'उपकोशा' पर कुछ लिखा जाता है।

उपकोशा विश्वविश्रुत 'कात्यायन वररुचि' की धर्मपत्नी थी। शम्भुलोकमें 'कात्यायन वररुचि' जब 'पुष्पदन्त'के रूपमें विद्यमान थे, तब 'उपकोशा' 'जया'के रूपमें उनकी प्राण-प्रिया भार्या थी। भगवान् शरदेन्दुशेखरसे अभिशप्त होकर 'पुष्पदन्त' 'कौशाम्बी'में 'सोमदत्त'के पुत्र-रूपमें अवतरित हुए और 'जया'ने पाटलिपुत्रमें आचार्य 'उपवर्ष' के घर जन्म ग्रहण किया तथा उसका नाम 'उपकोशा' रखा गया।

'कात्यायन-वररुचि' के पिता बाल्यावस्थामें ही दिवंगत हो गये। उनकी माताने ही उनका पालन-पोषण किया और अध्ययनार्थ आचार्य 'वर्ष' के यहाँ उन्हें 'पाटलिपुत्र' भेज दिया। कुछ कालोपरान्त जब वे युवा हो गये, तब उनके पांडित्य एवं रूपपर विमुग्ध होकर 'उपवर्ष'ने अपने अनुज 'आचार्य वर्ष'से अनुमति लेकर 'उपकोशा'के साथ उनका विवाह कर दिया।

विवाहित हो जानेपर 'वररुचि'ने अपनी माताको भी पाटलिपुत्रमें ही बुला लिया और मकान बनाकर अध्ययन-अध्यापन करते हुए सपरिवार आनन्दमय जीवन व्यतीत करने लगे।

एक दिन आचार्य 'वर्ष'की अध्यक्षतामें 'वररुचि'का प्रसिद्ध वैयाकरण 'पाणिनि'के साथ शास्त्रार्थ-संग्राम छिड़ गया। सातवें दिन दुर्भाग्यवश 'वररुचि' परास्त हो गये। पराजित होनेके पश्चात् 'वररुचि' शिवाराधनके लिए हिमालयकी ओर चल पड़े। प्रस्थानके पूर्व उन्होंने अपने सुहृद् 'हिरण्यगुप्त'को बहुत-सा धन देकर कहा कि जब मेरे घरपर आवश्यकता हो, तब दे देना और यह बात उन्होंने 'उपकोशा'से भी बतला दी थी।

'वररुचि'के प्रस्थानके पश्चात् 'उपकोशा' अत्यन्त दुःखमय जीवन व्यतीत करने लगी। एक दिन सन्ध्याको जब वह गंगा-स्नान करके लौट रही थी, तब मार्गमें 'कुमार सचिव'ने उसे पकड़ लिया। उपकोशाने कोई अन्य उपाय न देखकर 'कुमार सचिव'से कहा, "मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, किन्तु मैं एक कुलांगना हूँ। मेरे पति भी इस समय प्रवासी हैं। अतः मैं कुमार्गमें कैसे प्रवृत्त होऊँ ? सम्भव है, कोई हमें देख ले। इससे हम दोनोंका अनिष्ट हो सकता है। अतः कल जब पुरजन वसन्तोत्सवमें मग्न हो जायँ, तब तुम रात्रिके प्रथम प्रहरमें मेरे घर आ जाना। तुम्हें अवश्य अभीष्ट-सिद्धि होगी"। यह कहकर वह आगे बढ़ी।

तब उसके पड़ोसी 'पुरोहित'ने अपनी कुत्सित मनोवृत्तिका परिचय दिया। उससे उसने कहा, 'तुम रात्रिके द्वितीय प्रहरमें आना'।

उन दोनोंसे पिंड छुड़ाकर जब वह आगे बढ़ी, तब 'दण्ड-नायक'ने उससे धृष्टताकी। बेचारी कम्पित स्वरसे बोली, 'आप रात्रिके तृतीय प्रहरमें मेरे घर पधारियेगा। अवश्य ही आपका मनोरथ पूर्ण होगा।' इसके पश्चात् रोती-सिसकती वह घर पहुँची और दासियोंसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उस रात उसने कुछ नहीं खाया पिया और चिन्ता-चितामें झुलसते रात काटी। प्रातःकाल जब दासीको 'हिरण्यगुप्त'के यहाँ रुपएके लिए भेजा, तब उसने रुपए नहीं दिये और एकान्त में आकर 'उपकोशा'से कहा, 'यदि तुम अपना प्रणय-पात्र मुझे बनाओगी, तब मैं तुम्हें रुपये अवश्य दूँगा, अन्यथा नहीं।' उसने अन्य उपाय न देखकर कहा, 'तुम रात्रिके अन्तिम प्रहरमें आना और मेरा कण्ठाश्लेष प्राप्त करना।'

हिरण्यगुप्तके चले जानेके पश्चात् 'उपकोशा'ने स्नानागारमें चार बड़ी-बड़ी मंजूषायें (संदूकें) रखवा दीं। उनके ऊपर दृढ़ आवरण (ढक्कन) भी थे एवं चार कलशोंमें कज्जल-विमिश्रित तेल भरवा दिया।

नगर-निवासियोंके वसन्तोत्सवमें मग्न हो जानेके पश्चात् रात्रिके प्रथम प्रहरमें 'कुमार-सचिव' बड़े सज-धजकर आए। उन्हें देखकर 'उपकोशा'ने कहा, 'पहले आप स्नान कर लीजिए, अन्यथा मैं आपका स्पर्श नहीं कर सकूँगी।' उन्होंने 'उपकोशा' की बात मान ली और दासियोंके पीछे-पीछे स्नानागारकी ओर चले। दासियोंने उनके वस्त्र पहले ही उतरवा लिए थे और पहननेके लिए एक अँगोछा दे दिया था। जब वे स्नानागारमें प्रविष्ट हुए, तब उसमें अत्यन्त अन्धकार था। दासियोंने हाथ पकड़कर मंजूषामें उन्हें बिठा दिया। उन्होंने मंजूषाको कुण्ड समझ लिया। अब क्या था, ऊपरसे कज्जल-विमिश्रित तेलसे उनका अभिषेक होने लगा और तत्काल मंजूषाको आवृतकर ताला बन्द कर दिया गया। बेचारे उसीमें कुड़मुड़ा कर बड़-बड़ाते रह गए। रात्रिके द्वितीय प्रहरमें 'पुरोहित' महाशयका शुभागमन हुआ और उनका दूसरी मंजूषामें स्वागत-समारोह सम्पन्न हुआ। रात्रिके तृतीय प्रहरमें दण्डनायकजीका पदार्पण हुआ और तीसरी मंजूषाको उन्होंने अपनी रंगभूमि बनाई। रात्रिके अन्तिम प्रहरमें वणिक् महाशय 'मदन-मन्त्र' जपते हुए उपकोशाको नयनगोचर हुए और उसके कटाक्ष—विशिखोंसे विद्ध होकर चौथी मंजूषामें अनंगोपासना करने लगे।

तथोक्त कामार्त्त जनोंके उचित उपचार हो जानेके पश्चात् उपकोशा दासियोंके साथ स्नानागारमें गई और दीपकके प्रकाश में बन्दी 'वणिक्'को सम्बोधित करती हुई बोली, 'धूर्त्त! गुण्डे!! अब बोल, मेरे धनको देगा या नहीं? तेरे पास मेरा धन रखा है। इसके साक्षी एक नहीं, तीन देवता हैं।' तब 'वणिक्'ने कहा, 'कल मैं जरूर तुम्हारे सम्पूर्ण धनको लौटा दूँगा।' उपकोशाने कहा, 'हे देवगण! अब प्रमाण-स्वरूप आप लोग हैं कि इसके यहाँ मेरा द्रव्य है और यह कल देनेके लिए कह रहा है।'

प्रातःकाल होनेपर वणिक् महाशयको दासियोंने बलात् दण्ड-प्रहार करके घरसे बहिष्कृत किया। उस समय उसे देखते ही बनता था। नग्न शरीर था। केवल कौपीन मात्र वह पहने था। सम्पूर्ण शरीरमें कालिख पुती थी। मानो अभी खानसे निकला हो। लड़के उसे देख तालियाँ पीटते थे। कुत्ते काट खाने दौड़ते थे। किसी प्रकार वह घर पहुँचा। वहाँ उसपर कैसी बीती होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। नौकरोंके छुड़ानेपर भी काजल नहीं छूटता था। गृहलक्ष्मीने चण्डीका रूप धारण कर लिया था।

'उपकोशा' अपनी दासियों सहित गुरुजनोंसे बिना पूछे ही पाटलिपुत्र-नरेश 'नन्द'की राज-सभामें पहुँची और उसने राजासे निवेदन किया कि 'हिरण्यगुप्त'को मेरे पतिदेवने गृह-खर्चके लिए रुपए दिये थे। आज उसकी मनोवृत्ति कुत्सित हो गई है और वह रुपए देना नहीं चाहता। आप जैसा उचित समझें करें।'

तदनन्तर राजाने जब 'हिरण्यगुप्त'को बुलाकर पूछा, तब उसने कहा, 'यह मुफ्तर मिथ्या आरोप कर रही है।' यह सुनकर उपकोशाने कहा, 'मेरे गृह-देवता साक्षी हैं, जो मंजूषाओंमें प्रतिष्ठित हैं। आप उनसे पूछ सकते हैं।' राजाने आश्चर्यान्वित होकर राज सभामें मंजूषायें मँगवाई।

राजाका आदेश पाकर 'उपकोशा'ने कहा, 'हे देवगण! आप लोग सत्य-सत्य बता दें कि हिरण्यगुप्तने मेरे पतिके द्वारा द्रव्य लिया है या नहीं? आप लोग जब तक स्पष्ट नहीं बतायेंगे, तब तक अपने घर नहीं जा सकेंगे और राज-सभामें मंजूषाओंके उद्घाटन होनेके साथ ही आप लोगोंका भी रहस्योद्घाटन हो जायगा।'

मंजूषाओंमें बैठे हुए उन तीनों व्यक्तियोंने भयभीत होकर कहा, 'हम लोगोंके सामने 'हिरण्यगुप्त'ने 'उपकोशा'से कहा कि प्रातः काल उसके भर्त्ताके धनको उसे अर्पित कर दिया जायगा। 'उपकोशा' सत्य कहती है।' राजा विस्मय-विमुग्ध हो गए और 'उपकोशा'से प्रार्थना कर मंजूषाओंको उद्घाटित कराया। उसमें से तीन कलिके साक्षात् अवतार निकले। मानो सतीके कोपानलमें दग्ध होकर भस्मसात् हो गये हों। जो कोई आता, अपने पवित्र पदत्राणोंसे ही उन लोगोंका अभिवादन करता!

राजाके पूछनेपर 'उपकोशा'ने सारा वृत्तान्त सत्य-सत्य कह दिया 'हिरण्यगुप्त'को राजाकी आज्ञासे 'उपकोशा'का सम्पूर्ण द्रव्य लौटाना पड़ा और उन चारों पापमूर्त्तियोंको आजन्म कारागारका कठोर दण्ड भोगना पड़ा। पाटलिपुत्र-नरेशने 'उपकोशा'को विपुल धनधान्य प्रदान किया और मणि-मण्डित पालकीपर बैठाकर बिदा किया। सम्पूर्ण समासदोंने पतिव्रता 'उपकोशा'की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि लज्जाशीला कुलांगनाओंके चरित अत्यन्त अचिन्त्य होते हैं;

अचिन्त्यं शीलगुप्तानां, चरितं कुलयोषिताम्।
इति चाभिनन्दुस्तामुपकोशां सभासदः॥

गांधीजीके हस्ताक्षर

प्रभुदयाल विद्यार्थी

प्रसिद्ध व्यक्तियोंके हस्ताक्षर लेनेकी एक पद्धति है। इस पद्धतिका रिवाज यूरोपके देशोंमें बहुत है। यूरोपके राजनीतिक नेताओं, लेखकों, पत्रकारों, धनी-मानी व्यक्तियों और सिनेमा नर्तकियोंके हस्ताक्षर स्कूल-कालेजके छात्र अधिक संख्यामें कराते हैं। आजकल यह रोग हर मुल्कमें फैल गया है। कोई देश इस रोगसे मुक्त नहीं है। अमेरिकन छात्र तो बड़ी संख्यामें देश-विदेशके लोगोंका हस्ताक्षर और आदर्श वाक्योंका संग्रह करते हैं।

विद्यार्थियोंकी यह 'हौबी' हो गई है। कभी-कभी तो महापुरुषोंके वाक्योंसे जीवनपर बहुत गहरा असर पड़ता है। डायरीमें महापुरुषोंके हस्ताक्षर संस्मरण रूपमें रहते हैं। लेख और संस्मरण आदि लिखनेमें उनसे बड़ी सहायता मिलती है। इसके द्वारा हम महापुरुषोंके निकट पहुँचते हैं।

हमारे देशमें भी अब स्कूलों-कालेजोंके बहुत-से लड़के-लड़कियां राजनीतिज्ञों, साहित्यिकों और सिनेमा-संसारके बड़े विख्यात लोगोंके हस्ताक्षर लेने लगे हैं। राजनीतिक उत्सवोंके अवसरपर हजारों छात्र और छात्रायें नोट बुक लिए इधर-उधर नेताओंके पास दौड़-दौड़कर हस्ताक्षर कराते हैं। काफी उत्साह हस्ताक्षर करानेका आजकल लोगोंमें पैदा हो गया है। कोई-कोई विद्यार्थी तो अपने नोट बुकोंको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते हैं। नोट बुकोंको बड़े सुरक्षित ढंगसे रखते हैं। सुन्दर जिल्द बँधे कागजोंपर हस्ताक्षर लेते हैं। दिन प्रति-दिन यह 'हौबी' बढ़ती जा रही है। 'आटोग्राफ' लेना विदेशी पद्धति है। यह देन यूरोपवालोंकी है। लेकिन धीरे-धीरे हमारे देशमें भी हस्ताक्षर लेनेकी पद्धति जमने लगी है। यूरोपके बड़े-बड़े लेखक भी अपनी डायरियों पर महापुरुषोंका हस्ताक्षर कराते हैं। अमेरिकाका प्रसिद्ध लेखक लुई फिशर भी हस्ताक्षरकी नोट बुक रखता है। प्रसिद्ध अंगरेज लेखक ब्रेल्सफोर्ड भी हस्ताक्षरकी डायरी रखते हैं। वह संसार-यात्राके अवसरपर देश-विदेशके ख्यातनामा लोगोंका हस्ताक्षर भी अपनी डायरीपर करा लिया करते हैं। महापुरुषोंके हस्ताक्षर किसी-किसी अवसरपर हजारों डालरमें बिकते हैं। अध्ययनकी चीज नोट बुक बन जाती है।

एक बार मैं स्वर्गीय दीनबन्धु ऐण्ड्रूजके पास गया। दीनबन्धु ऐण्ड्रूजने प्रवासी भारतीयोंकी बड़ी सेवा की थी। प्रसिद्ध अंग्रेज लेखकोंमें आपका स्थान था। महात्मा गांधी, विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रिय साथियोंमें आपका मुख्य स्थान था। देशके गिने-चुने व्यक्तियोंमें आपका नाम था। मैंने उनसे कहा कि आपको जो सबसे सुन्दर वाक्य अच्छा लगता है मेरी डायरीपर लिखकर हस्ताक्षर कर दीजिये।

ऐण्ड्रूज साहबने मुसकराकर कहा अच्छा लाओ अपनी डायरी। सहज और स्वाभाविक ढंगसे सुन्दर हर्फोंमें उन्होंने लिखा—'जो बात ठीक है, उससे कभी डरना नहीं।'

प्रसिद्ध समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्रदेवजीसे २३-१-४२ को मैं मिला। उन्होंने अपने हस्ताक्षरमें लिखा—'ज्योतिका केन्द्र बनो।' राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसादजीसे भी कई बार मिलनेका शुभ अवसर मिला है और अपनी डायरीमें उनके हस्ताक्षर भी कराये हैं। राष्ट्रपतिने अपने हृदयकी सच्ची

भावना व्यक्त करते हुए लिखा—'हिन्दुस्तान गाँवोंमें बसता है, उसकी सेवा ही हिन्दुस्तानकी सेवा है।'

महात्मा गांधीने जब देखा कि लोग उन्हें हस्ताक्षरोंके लिए बहुत परेशान करते हैं और व्यर्थ उनका समय नष्ट कराते हैं, तब उन्होंने निश्चय किया कि जो व्यक्ति उनके हस्ताक्षर लेगा उसे पाँच रुपए प्रत्येक हस्ताक्षरके लिए हरिजन कोषमें देने होंगे। इस निश्चयसे अपने हस्ताक्षरोंके ज़रिये महात्माजीने एक लाखसे अधिक धन हरिजन कोषमें जमा कराया था। गांधीजीके हस्ताक्षरोंके लिए उत्सवोंमें बड़ी भीड़ हो जाती थी। होड़ लगी रहती थी। मुझे याद है कि गांधीजी हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा, मद्रासके जल्से और कई रचनात्मक सम्मेलनोंके सिलसिलेमें जनवरी, १९४६ में कई दिनों तक सम्मेलनके कार्यालयके बगलकी एक कोठीमें ठहरे हुए थे। अबकी इस लम्बी यात्रामें मुझे भी उनके साथ मद्रास प्रान्तमें भ्रमण करनेका सुअवसर मिल गया था। कई स्मरणीय घटनाओंकी याद आज भी ताजी बनी हुई है। एक दिन जब मैं कुछ पत्रोंकी कतरनें लेकर बापूके सामने उपस्थित हुआ, तब उन्होंने हरे रामके साथ कहा कि 'आज तो तुम्हारे पत्रकी कतरनोंको नहीं देख पाऊँगा। रख दो, किसी वक्त पढ़ लूँगा। अभी तो इन 'आटोग्राफ'की कापियोंपर हस्ताक्षर करना है। एक घण्टा तो इन कापियोंपर हस्ताक्षर करनेमें लग जायगा।' सैकड़ों आटोग्राफकी कापियाँ बापूके बिस्तरपर क्रमवार रखी गई थीं। अब मैं नीचेके कमरेमें पहुँचा तब कनु भाई गांधी और आटोग्राफकी डायरियोंको ऊपर ले जानेके लिए तैयार थे। मैंने कनु भाईसे कहा कि बापूके पास सैकड़ों कापियाँ आज यों ही पड़ी हैं, और बोझ क्यों रखने जा रहे हो? कनु भाईने मेरी बात मान ली। लेकिन दूसरे दिन हस्ताक्षरवाली कापियोंका बोझ और बढ़ गया। बापूने हँसकर कहा, 'यह हस्ताक्षरका काम निकम्मा है। लेकिन मैं अपनी मजदूरीका पैसा पाता हूँ और हरिजन कोषकी सहायता होती है। धनिकोंके पाससे इस हेतु भी कुछ सहायता मिल जाती है इसलिए लिख देता हूँ।'

देश-सेवकोंके बच्चोंकी कापियोंपर बापू जल्दी हस्ताक्षर नहीं करते थे और समझाते थे, 'निकम्मे कामोंमें समय क्यों नष्ट करते हो।' कभी-कभी तो वे उनकी डायरियोंको वापस कर देते थे।

भ्रमणके समय हस्ताक्षर करते-करते बापूजी बहुत थक जाते थे। थकनेपर भी हरिजन कोषके निमित्त कापियोंपर हस्ताक्षर कर दिया करते थे। तेलानी स्टेशनपर तो हस्ताक्षर लेनेवाले बापूके डिब्बेमें एक बार इतने घुस आये कि उनके धक्के लग गये थे।

जीवनकी निधि

शलभ

ये नयन खड़े नीराजन ले, खोलो तो निज उरके कपाट!

अधभरे घटोंकी वह छलकन, जिसमें होती मदिरा छिछली;
पा उन्हें हुआ है कौन सुखी, वे रंग-बिरंगी-सी तितली।
फिर रात अँधेरी-सी आती, मिटती जब क्षणकी खिलखिलाट,
खोलो तो निज उरके कपाट!

बिजलीके बल्बोंकी जगमग सचमुच होती सुन्दर, नवीन,
आकर्षणकी द्युतिमा अनूप करती नयनोंको ज्योति-हीन।
बढ़ चला उधर जीवन-विलास—वह रंग-रूपकी सुघर हाट,
खोलो तो निज उरके कपाट!

क्या मोल करूँ, कैसे कह दो—'क्या स्नेह-क्षीरका भाव-ताव?'
मैं देख थका लज्जानत-सा जग जीवनका अभिनव मुड़ाव।
सोनेका वर्क सजा वैभव—ये तोल, तराजू और बाँट,
खोलो तो निज उरके कपाट!

हो गई शिथिल उरकी वीणा, मेरे प्राणोंका राग विकल,
तुम स्नेह-किरण बरसा दो तो वे सुधा-स्नात शीतल, कोमल।
भर लूँ उरमें जीवनकी निधि—वह सुन्दर, मंगलमय, विराट,
खोलो तो निज उरके कपाट!

छप्पय छन्द

[एक समीक्षा]

विपिन बिहारी त्रिवेदी

छप्पय एक प्रकारका संयुक्त-वृत्त है। भिन्न छन्दोंको संयुक्त करके एक नवीन छन्द बनानेकी योजना अर्वाचीन नहीं वरन् अति प्राचीन है। वैदिक छन्दोंपर कार्य करनेवाले डा० अर्नाल्डने संयुक्त कालकी ऋचाओं (Hymns of the Strophic Period)को महत्त्वपूर्ण समझकर पृथक स्थान दिया है। उस कालके ऐसे छन्दोंके विषयमें आप लिखते हैं—

"The combination of a Kakubh or Brhati stanza with a Satobrhati stanza so as to form a strophe is a well marked feature of certain parts of the Rigveda, and in particular of the Sobhari, Vasistha and Kanva collections. The beginning of the system may be traced back to the lyric triplets, in which some third stanza is combined with Kakubh or Brhati and Satobrhati: and there is an intermediate stage in which the combination is in pairs of the stanzas, but many slight variations are permissible. The strophes are so far treated as single stanzas that they are themselves frequently combined in triplets."

इसके बाद अपने कथनको विविध वैदिक उद्धरणों द्वारा प्रमाणित करते हुए आप लिखते हैं :—

"All these hymns must necessarily be referred to a very early Vedic period."—*Vedic Metre*, Dr. V. E. Arnold, D.Litt., Cambridge, 1905, pp. 235-37.

छप्पय शब्दकी निरुक्ति निम्न प्रकारसे प्रतीत होती है—
सं० षट्पद> प्रा० षट्पअ> अप० छप्पअ> हि० छप्पय, Sir M. Monier Williams अपनी 'A Sanskrit English Dictionary.' 1899 A.D. में षट्पदका एक अर्थ (a verse) consisting of six divisions or padas करते हुए 'वाजसनेयी संहिता' और 'अथर्व वेद अमीणका'को प्रमाण स्वरूप उद्धृत करते हैं।

संस्कृतमें आचार्य पिङ्गल निर्मित कहा जानेवाला 'पिङ्गल छन्दः सूत्रम्' नामक छन्द शास्त्रका आदि ग्रन्थ षट्पद छन्दकी कोई व्यवस्था नहीं करता, यह उपर्युक्त शोधके सम्मुख कम आश्चर्यजनक नहीं। वैसे प्रथम ईसवी शतीमें होनेवाले नन्दिताढ्य अपने 'गाथा-लक्षणम्' नामक छन्द ग्रन्थमें केवल वैदिक आर्य्या छन्दके नाम परिवर्तित रूप गाहा या गाथाके रूपों मात्रपर विचार करते हैं, अस्तु उस कालमें षट्पदकी स्थितिका अनुमान करना कठिन हो जाता है। प्रथम शतीसे नवम् शतीके अवान्तरके किसी छन्दग्रन्थका पता अभी नहीं लगा। ९-१० वीं शतीका विरहांकका ग्रन्थ 'वृत्त जाति समुच्चयः' भी इस छन्दके विषयमें मौन है। परन्तु १०वीं शतीके आचार्य स्वयम्भूने अपने प्राकृत ग्रन्थ 'श्री स्वयम्भूः छन्दः'में छप्पयका निम्न लक्षण दिया है—

पटम चउत्थे तिण्णि छआरआ। दो छा पञ्चम वी ए।
होन्ति दोण्णि छआरआ तस्सिं। अवरे चे पे पवरे।
तं सुइ सुहजणणं जं। तं छप्पअस्स लक्खणम् ॥३८॥
IV ; J. U. B. 1936-37।

स्वयम्भूके उल्लेखसे कम-से-कम इतना तो सिद्ध ही हो जाता है कि छप्पय छन्दका प्रयोग कवियों द्वारा उनके काल तक होने लगा था। तदुपरान्त १२-१३ वीं शतीके आचार्य हेमचन्द्रके 'छन्दोऽनुशासनम्'में वत्थुवयण नामसे छप्पय छन्दकी योजना दी गई है। उसे काव्य और उल्लालाके योगसे बना बताया गया है। काव्यकी ११ वीं शतिके बारेमें कोई निर्देश नहीं तथा उल्लालाके दूसरे भागके अन्तमें तीन लघु (।।।) की व्यवस्था करते हुए प्रथम, तृतीय और षष्ठ स्थानके गणोंमें जगण (।ऽ।) का निषेध करके छठे गणमें २+४ की योजनाका निर्धारण किया गया है।

१३वीं शतीके अज्ञातनामा छन्दाचार्यकी रचना 'कवि-दर्पणम्'में छप्पय छन्दकी परिभाषा और उदाहरण दिये गये हैं तथा उसके अन्य नाम षट्पद, सार्धच्छन्द और काव्य भी बतलाये गये हैं। देखिये—

वत्थु वयणाइ उल्लाल संजुयं छप्पयं दविढछन्दं।

कव्वं वा ; अह मत्ता उल्लालयसंगया फुल्ला ॥३३॥

जइ वत्थुआणहिट्ठे उल्लाला छन्दयंमि किज्जंति ।

दिवउच्छन्दयछप्पयकव्वाइं ताइं वुच्चंति ॥ १ ॥

उदा०—

पिच्छ पओसि समग्गपिहिय गयणंगणमग्गह,

गहिरमज्झ मुज्झंतलोयलोयण ऊसवग्गह ।

तलदिप्पंत पईवपंति निम्मलमणिविंदह ।

उड्डामपतमतिमिर नियर उद्दामसमुद्दह ॥

ससि खण्डु लहरि हेलुल्लसिर वियड सिप्प संपुड समु ।

पसयच्छि तरल तारय निवहु नज्झइ घणु फेणुग्गमु ॥५३॥

सूरलच्छि मणिहार फुरेय किरणुक्कर सुन्दरु,

मुद्धमण हरहरिसंक बिम्ब जुण्हा भर सोयरु ।

वयण कुहर विहरन्त वाणि देहच्छविविब्भमु,

सच्छप्पयन हनिवहवहल उम्मुहमोहोवमु,

समखरि जलहि लहरी लडहु कित्तिकणइकुसुमप्पवरु

मह गुरुहु तुहु दीसइ कटरि देसण खणि दसणं भुभरु ॥५४॥

रासावलयस्य कुंकुमेन यथा—

जयरि भलक्कहिं नयण दहिनयणिअहि त खणु

केअइकुसुमदलग्गि भसलु विलसइ तजणु ।

जइ य तीर मुहहावि मन्दहासउ चडइ

ता जणु हरिइ पोमणय संचउ झडइ ॥

जइ तीइ महुरमियभासणिहि वयण गुंफु निसुणिज्जइ ।

ता धुउ करिप्पि जणु अमय रसु कन्नपत्त पुडि पिज्जइ ॥४८॥

रासावलयस्य कर्पूरेण यथा—

परहुयपंचमसवण सभय मच्चउ सकिर

तिंभणि भणइ न किम्पि मुद्धि कलयंठिगिर ।

चन्दु न दिखण सक्कइ जं सा ससिवयणि

दप्पणि मुह न पलोअइ विंभणि मयनयणि ॥

वइरिउ मणि मन्नवि कुसुम सरु खणि खणि सा बहु उत्तसइ

अच्छरिउ रूवनिहि कुसुम सरु तुहु दंसणु जं अहि लसइ ।४९।

वस्तु वदनक रासावलय संकीर्णस्य कुंकुमेन यथा—

पडिगंडयलपुलयपयरपयडणवद्धायरु

कंचि वाल बालाविलासबहलिम गुणनायरु ।

द्रविडिदिव्वचंपय चय परिमलल्दसडउ

कुंतलिकुंतलदप्पकडप्पणलम्पडउ ॥

मरहट्ठिमाणनिद्धाहवय विविह विहंसण सक्कउ ।

कसु करइ न मणि हल्लोहलउ मलयानिलह झुलक्कउ ॥५०॥

कर्पूरेण यथा—

अविहड अवरुप्परुप्परूढगुणगंठिनिवद्धउ

एयारिण हलि गलइ पिम्मु सरलिमवसलद्धउ ।

माणमडप्परु तुह न जुत्तु उत्तम रसणि

तिंभणि वारउं वारवार वारणगमणि ॥

अह करहि कलहु वल्लहिण सहुं इच्छिम इच्छिउ पणयसुहु ।

माणिक्कि मणंसिणि करि उवलु हिल्लि खिल्लि ताजूउ तुहुं ॥५१॥

रासावलय वस्तु वदनक संकीर्णस्य कुंकुमेन यथा—

सवणनिहियहरियहसंतकुंडलजुयल

थूलामलमुत्तावलिमंडियथण कमल ।

से अंसुयपंगुरण बहलसिरिहंडरसुज्जल

बहुपहुल्ल विअ इल्ल फुल्ल फुल्लाविय कुंतल ॥

तो पय उत्थय दंसणजणिय खलयणउरभरभारिय

अहिसरइ चंद सुंदर निसिह पईं पिययम अहिसारिय ॥५२॥

कर्पूरेण यथा—

तरुणिहूणि गंडप्पइ पुंछिअतिमिरमसि

उक्कचुलुक्कावउणु दुसहु मा करउ ससि ।

मलयानिलु मयनयणि घुणियकप्पूर कयरिप (लि) वणु

संधुक्कियमयणग्गिहु सहु मा दहउ तुज्झ तणु ॥

तणु अंगि म खडहडि पडहि तुहुं मयण बाण वेयण कलह ।

चय माणु माणि वल्लहिण सहुं चडि म जीय संसय तुलह ।५३।

वदनकस्य कुंकुमेन यथा—

जइ तुहुं महु करयलु उम्मोडिवि

चल्लिय चीरंचलु अच्छोडिवि ।

माणिणि तुवि पसाउ करि सुम्मउ

पइ पिइ उत्तावलिय म गम्मउ ॥

जइ किंवइवि संचह पय जुयलु इह विहिवसिण विहट्टइ ।

ता तुज्झ मज्झु खीणउ खरउ किं म खामोअरि तुट्टइ ।

कर्पूरेण यथा—

किन फुल्लइ पाडल पर परिमल
महमहेइ कि न माहवि अविरल।
नव मालिय कि न दलइ पहिल्लिय
कि न उत्थरइ कुसुमभरि मल्लिय ॥
दीहियतलायसरितल्लडहिं कि न पसाहि पउमिणि फुडइ।
तुवि जाइ जायगुण संभरणुभाणु विभसल हु मणि खुडइ ॥५९॥
षट्पदी प्रकरणम।

A. B. O. R. T., Vol. XVII, 1935-36; pp. 41-44.

इससे जहाँ छप्पयकी विविध प्रकारकी योजनाओंपर प्रकाश पड़ता है वहाँ इतना और स्पष्ट हो जाता है कि कवि दर्पणकारके काल १३वीं शताब्दी तक इस छन्दकी प्रतिष्ठा और प्रचार बढ़ चले थे और प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओंमें इसका बहुतायतसे प्रयोग किया गया था।

१४ वीं शताब्दीके आचार्य रत्नशेखर सूरिने अपने 'छन्दः कोशः'में गुल्ह कवि रचित छप्पयका निम्न लक्षण छप्पय छन्दमें ही दिया है—

जसु पइ पइहिं निबंध मत्त चउवीसइ किज्जइ।
अक्खर डंबर सरस सुद्ध तं छंद भणिज्जइ।
छक्कल आइहि होइ चारि चउक्कलु संजुत्तउ।
दुक्कलु अंति निरुत्त गुल्ह कवि ए रस वुत्तउ।
बावन सउवि मत्तइ रयहु उल्लालइ सरिसउ गणहु।
छप्पयह बंध एरिसु हवइ काइं गंथ गंथिय मुणहु।१२।

J. U. B., Nov. 1933, vol. II. pt. III, p. 55.

१४वीं शताब्दीके दूसरे प्रसिद्ध अपभ्रंशके छन्द ग्रंथ 'प्रकृत पैङ्गलम'में अज्ञात रचयिताने इस छन्दपर पर्याप्त विस्तार से प्रकाश डाला है। काव्य और उल्लालके संयोगसे बने इस वृत्तमें उसके अनुसार काव्यके प्रत्येक चरणकी योजना ६+४+।:: ।।+४+६ इस प्रकार स्थिर होती है; दूसरे और चौथे गणके स्थानपर जगणका निषेध है और चरणान्तमें दो लघु (।।) का विधान है। उल्लालाके प्रत्येक चरणकी योजना ४+४+४+।।:: ६+४+ ।।। इस प्रकार निश्चित की गई है और चरणान्तमें छन्दोऽनुशासनमूकी भाँति दूसरे भागमें तीन लघुओंका विधान नहीं किया गया है। इस ग्रंथमें दिये लक्षण और उदाहरण छन्द इस प्रकार हैं—

अथ छप्पउ लक्षण—

छप्पअ छन्द छइल्ल सुणहु अक्खर संजुत्तउ।
एआरह तसु विरइ त पुणु तेरह णिभंत्तउ।
बे मत्ता धरि पढ़म त पुणु चउ चउकल किज्जइ।
मज्झट्ठिअ गण पंच हेट्ठ विण्णवि लहु दिज्जइ।
उल्लाल विरइ बे पण्णरह, मत्ता अट्ठाइस सोइ।
एम भणइ सुणह छप्पअ पअ, अण्णा णाछि किंपिण होइ।१०५।

[भाव—हे विदग्ध जन, छप्पय छन्द वर्णोंसे संयुक्त होता है। ११ मात्राओं पर विराम देकर १३ मात्राएँ रखी जाती हैं। प्रथम दो मात्रायें रखो, फिर ४ चौकल बनाओ। ५ गणोंके मध्यमें २ लघु हों; उल्लालामें १५ मात्राओंपर यति होती है और कुल २८ मात्रायें होती हैं। इस प्रकार कहे हुये छप्पय पदको जानो, इससे अन्यथा नहीं होता।]

जहा (यथा)—

पिंधउ दिद सन्नाह बाह उप्पर पक्खर दइ।
बंधु समदि रण धसउ सामि हम्मीर बअण लइ।
उड्डल णहपह भमउ खग्ग रिउ सीसहि डारउ।
पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पब्बअ अ फालउ।
हम्मीर कज्जु जज्जल भणह, कोहाणल मुह मह जलउ।
सुलताण सीस करवाल दइ, तेज्जि कलेवर दिअ चलउ ॥१०६॥

[भाव—दृढ़ कवच पहिन, बाहोंपर पक्खर बाँध स्वामी हमीरके वचन मानकर उनके समस्त बन्धु रणमें धसे। आकाशमें उछलकर खड्गको घुमाकर वे शत्रुओंके शीश गिराने लगे। पक्खर-में-पक्खर भिड़ाकर ठेल-पेलकर वे पर्वतोंको उखाड़ने लगे। जज्जल कहते हैं कि हमीरके कार्यके लिये वे क्रोधानलमें जलने लगे। सुलतानके सिरपर तलवार मारकर वे शरीरको त्यागकर चल दिये।]

लक्षण—

पअ पअ तलउ णिबद्ध मत्त चउवीसह किज्जइ।
अक्खर डम्बर सरिस छन्द इअ सुद्ध गणिज्जइ।
आइहि छक्कलु होइ चारि चउकलउ णिरुत्तउ।

दुक्कल अंत णिवद्ध सेस कइ वत्थु णिवुत्तउ।
बावण सउ वि मत्तह मुणहु, उल्लालउ सहिअउ गुत्ताइ।
छप्पअ छंद एरिस वि होइ, काइँ गंथि गंथि विमरह ॥१०७॥

भाव—

[चौबीस मात्राओंसे इसका प्रत्येक चरण निबद्ध होता है। अक्षर डंवर सदृश यह छन्द शुद्ध कहा जाता है। आदिमें छः कलायें होती हैं फिर चार चौकल होते हैं। अन्तमें दो कलायें रखो। उल्लाला सहित इसमें १५२ मात्रायें जानो। छप्पय छन्द इस प्रकारका होता है, क्यों ग्रन्थोंमें खोजते हो।]

जहा (यथा)—

जहा सरिस ससि विम्ब जहा हर हार हंसठिअ।
जहा फुल्ल सिअ कमल जहा सिरि खण्ड खण्ड किअ।
जहा गंग कल्लोल जहा रोसाणिअ रुप्पइ।
जहा दुद्धवर सुद्ध फेण फंफाइ तलप्पइ।
पिअ पाअ पसाए दिट्ठि पुणि, णिहुई हसइ जह तरुणिजण।
वरमंति चंडेसर कित्ति तुअ, तत्थ देक्ख हरिबंभ भण ॥१०८॥

भाव—

[हरिब्रह्मका कथन है कि जैसा शरदका चन्द्रविम्ब होता है, जैसा हार और हंस होते हैं, जैसे विकसित श्वेत कमल और चूर्ण किया हुआ श्रीखण्ड होता हैं, जैसे गंगाकी लहरें और प्रज्वलित चाँदी होती है, जैसा उबलते हुए दूधका शुद्ध फेन होत है तथा प्रियाको पद प्रहार करते देखकर जैसी तरुणियोंकी मन्द हँसी होती है वैसी ही हे श्रेष्ठ मन्त्री चण्डेश्वर (चन्द्रेश्वर) तुम्हारी कीर्ति भी देखी जाती है।]

चारि पाअ भण कव्वके बेबि पाअ उल्लाल।
इम विहु लक्खण एक कइ पढ़ छप्पअ पत्थार ॥१०८ क॥

भाव—

[चार पद काव्यके और दो पद उल्लालाके इस प्रकार दोनोंके लक्षण एक करके पढ़ो, यही छप्पयका प्रस्तार है।]

छप्पय दोष—

पअह असुद्धउ पंगु हीण खोडउ पभणिज्जइ।
मत्तगल बाउलउ सुण्णकल कण्ण सुणिज्जइ।
मल वज्जिअ तह बहिर अंध अलंकार रहिअउ।
वुल्लउ छन्द उट्ठवण अत्थविणु दुब्बल कहिअउ।
डेरउ हट्ठक्खरहिं होइ काणा गुण सव्वहि रहिअ।
सब्बंगसुद्ध समरुअ गुण छप्पअ दोस पिंगल कहिअ ॥११६॥

[नोट—इस छन्दमें छप्पयमें वर्जित दोषोंका वर्णन है। चरण अशुद्ध (न्यून) होनेपर पंगु कहलाता है। (गण) हीन होनेपर खोटा, मात्रा अधिक होनेपर व्याकुल, कला (मात्रा) शून्य (कम) होनेपर काना सुना जाता है, मकार और लकारके वर्जनसे बहरा, अलंकारोंसे रहित होनेपर अन्धा, उट्ठवण (चौकलों, पंचकलों आदिके निश्चित स्थानमें परिवर्तन) से गूँगा और सर्वगुण रहित होनेसे काना होता है। सर्वांग शुद्ध समरूप-गुणवाले छप्पयके दोष पिंगलने कहे।]

विप्प होइ बत्तीस खत्ति बेआल करिज्जसु।
अठतालिस लहु वेस सेस सुद्दउ सलहिज्जसु।
चउअग्गल पअ बीस मत्त छाणवइ ठविज्जसु।
पंचतालि सहणाम कव्व लक्खणह करिज्जसु।
छहविस उल्लालहि एक्ककइ, विण्णि पाअ छप्पअ मुणहु।
समवण्ण सरिस समदोस गुण, णाम एहत्तरि परिगुणहु ॥११७॥

[भाव—३२ होनेसे विप्र होता है, ४२ से क्षत्रिय, ४८ लघु होनेसे वैश्य और शेषसे शूद्र। एक चरणमें २४ मात्राएँ होती हैं जिनकी (चार चरणोंकी) गणना ९६ है। काव्यके ४५ प्रकारके भेदोंका प्रयोग हो सकता है। छप्पयमें उल्लालाके दोनों चरणोंमें २६ गुरु जानो। समवर्ण और सदृश गुणवाले छप्पयके ७१ नाम समझ लो।

चउआलिस गुरु कव्वके छह बीसउ उल्लाल।
जं गुरु टुट्टइ लहु बढइ एहत्तरि पत्थार ॥१२०॥

[भाव—काव्यमें ४४ गुरु होते हैं और उल्लालामें २६। जैसे गुरु घटते हैं, लघु बढ़ते हैं और इस प्रकार इनके ७१ भेद होते हैं।]

अथ शाल्मली प्रस्तार :—

अजअ बेआसी अक्खर गुरु सत्तरि रवि रेह।
एक्कक्खर चल गुरु घटइ दुद्दुइ लहुआ देह ॥१२१॥

[भाव—अजयमें ८२ अक्षर, ७० गुरु और १२ लघु होते हैं। तदनन्तर एक अक्षर बढ़ता जाता है और एक गुरु घटनेके स्थानपर दो लघु बढ़ जाते हैं।]

अजअ विजअ वलि कण्ण वीर बेआल विहण्णरु।
मक्कल हरिहर बंभ इंदु चंदणु सुसुहंकरु।
साण सीह सद्दूल कुम्म कोइल खरु कुजरु।
मअण मच्छ तालंक सेस सारंग पओहरु।
ता कुन्द कमलु वारण भसल, सरहु जंगमु सर विल हइ।
सुसऊ समरु सारसु, सरअ, छप्पअ णाम पिंगल कहइ ॥१२२॥

भाव—

[अजय, विजय, वलि, कर्ण, वीर, बेताल, बृहन्नल, मर्कट, हरि, हर, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्दन, शुभंकर, श्वान, सिंह, शार्दूल, कूर्म, कोकिल, खर, कुंजर, मदन, मत्स्य, तालंक, शेष, सारंग, पयोधर, कुन्द, कमल, वारण, शरभ, जंगम, घुतीष्ट, दाता, सुर, सुशर, समर, सारस, सरट—छप्पयोंके नाम पिंगलने कहे।]

मेरु मअर मअ सिद्धि बुद्धि करअलु कमलाअरु।
धवल मलउ धुअ कणउ किसणु एँजणु मेहाअरु।
गिम्ह गरुड ससि सूर सल्ल णवरंग मणोहरु।
गअणु रअणु णरु हीरु भमरु सहेरु कुसुमाअरु।
ता दिप्पु संखु वसु सद्द मुणि, णाअराअ पिंगलु कहइ।
छप्पअ णाम एहत्तरिहि, छन्दआर पत्थरि लेहइ ॥१२३॥

[भाव—मेरु, मकर, मद, सिद्धि, बुद्धि, करतल, कमलाकर, धवल, मदन, ध्रुव, कनक, कृष्ण, रंजन, मेघाकर, ग्रीष्म, गरुड़, शशि, सूर, शल्य, नवरंग, मनोहर, गगन, रत्न, नर, हरि, भ्रमर, शेखर, कुसुमाकर, दीप, शंख, वसु शब्द और मुनि—छप्पयके ये ७१ नाम नागराज पिंगलने कहे जो इस छन्दके प्रस्तार हैं।]

जत्ते सव्वहि होइ लहु अद्ध विसज्जहु ताम।
तहँ वि विप्पज्जहु एक्कसरु रह पमाणे णाम ॥१२४॥

[भाव—जितने लघु हों उनसे आधे निकाल दो, फिर उनसे पाँच विसर्जित कर दो, यही नामका प्रमाण है।

नोट—७१ वें मुनि नामक छप्पयमें १५२ लघु होते हैं, उनके आधे ७६ हुए, जिनमें ५ घटा देनेसे ७१ शेष रहते हैं और यही छप्पयके भेदोंकी संख्या है।]

हिन्दी कालमें छप्पय छन्द अपने गौरव और गरिमा सहित समादृत हुआ। वैसे परवर्ती हिन्दी रचनाओंमें भी छप्पयका आदर रहा, परन्तु उसकी विशेष प्रतिष्ठा रासो काव्योंमें दृष्टिगोचर होती है। वीर रसात्मक इन काव्योंमें इस छन्दने एक शैली विशेष प्राप्त कर ली थी जिसका अनुसरण तुलसी और भूषणने भी किया। चौपाईके लिये जैसे जायसी और तुलसीका नाम लिया जाता है और कुण्डलियोंके लिये जैसे गिरधरका वैसे ही छप्पयके लिये नरहरि और नाभादासका।

भिखारीदासने अपने छन्दोर्णव-पिंगलमें रोलाकी ११वीं मात्रा लघु होनेपर उसे काव्य बतलाकर काव्य और उल्लाला के योगसे छप्पय छन्दका निर्माण बतलाया है। यथा—

रोलामें लघु रुद्रपर, 'काव्य' कहावै छन्द।
ता आगे उल्लाल दै, जानहु छप्पै बन्द ॥३४॥

सातवीं तरंग;

भानुने अपने छन्दःप्रभाकर, ९वीं आवृत्ति, वि० सं० १९९६, पृष्ठ ६८-६६ में छप्पयको रोला और उल्लालाके योगसे बना बताया है। उल्लालामें कहीं २६ और कहीं २८ मात्राओंका उल्लेख करके उसके ७१ प्रकारके भेदों और नामोंका वर्णन किया तथा प्रस्तारकी विधि भी बतलाई जो प्राकृत पैङ्गलम्के अनुसार है।

छप्पयके ७१ प्रकारके भेदोंके कुछ उदाहरण मुझे नागरी प्रचारिणी सभाकी एक खण्डित प्रतिमें मिले, जिसका उल्लेख सभाके ५६वें वार्षिक विवरणमें 'हस्त लिखित ग्रन्थोंकी खोज' प्रकरणमें, पृष्ठ ७ पर संख्या १० के अन्तर्गत, 'षट्पदके भेद' शीर्षकमें किया गया है। इस प्रतिको सभाके साहित्यान्वेषक श्री दौलतरामजी जुयाल लखनऊ-विश्वविद्यालयकी रजत जयन्ती जनवरी सन् १९४९ ई० के अवसरपर हस्त-लिखित ग्रन्थोंकी प्रदर्शनीके लिये लाये थे। विश्वविद्यालय लखनऊके हिन्दी विभागके अध्यक्ष डा० दीनदयालुजी गुप्तने मुझसे इस ग्रन्थपर कुछ प्रकाश डालनेके लिये कहा और सभासे इस कार्य हेतु मुझे सुविधा दिलाई।

इस खण्डित प्रतिके रचयिता और लिपिकार अज्ञात हैं। आकार ११.२ इंच×४.४ इंच है। पत्र छुटे हुए हैं, जिनकी संख्या गणना करने पर ७ है। पत्र-संख्या नहीं दी गई है।

छन्द-संख्याके क्रमसे पत्रोंका क्रम ठीक हो जाता है। कागज़ देशी है। लिपि देवनागरी है, कुछ वर्ण मध्यकालकी लिपि शैलीके हैं। पत्रोंका रंग पीला पड़ गया है, नम हो जानेके कारण किनारे टूटने लगे हैं। लिपिकाल अज्ञात है। अनुमानसे लिपिकाल १९वीं शती है। पत्रोंपर दोनों ओर लिखा गया है।

इस प्रतिमें छप्पयके ३६ भेदोंके उदाहरण मिलते हैं और उनमें भी २९,३०,३१,३२, और ३३ छन्द नहीं हैं; क्योंकि बीचका एक पत्र लुप्त है। छप्पयोंके नाम और लक्षण प्राकृत-पैङ्गलमूके अनुरूप हैं। प्रत्येक छन्दके नीचे उसकी योजनाका चित्र भी लाल रंगसे बनाया गया है। विस्तार भयके कारण यहाँ उसकी योजना नहीं दी गई और आधुनिक देवनागरी लिपिके वर्णोंका प्रयोग किया गया है जिससे वर्णोंके प्राचीन रूप दुरूहता न पैदा कर दें। इन छन्दोंमें वर्णित काव्यकी सरसता अनोखी और वीर रसात्मक है। देखिये—

षट्पद भेद

श्रीगणेशाय नमः॥ सरस्वत्यै नमः॥

दोहा—गुरु लघु लो कुसुम निबद्धेन वरसमे रसलीन।
षट्पदके अवतारको समुझो सुकवि प्रवीन ॥१॥

दोहा—अजय विजय के भेद को समुझो सकल सुजान।
कियो न और उदाहरन याही तें पहिचान ॥२॥

अजय नाम षट्पद यथा—

आवंता जे दुग्ग धीर वीरा गाजंता।
मातंगा उत्तुंग जंग जुट्टे भाजंता॥
सावंता जुज्झार षग्ग धारा धावंता॥
पीवंता जे संगि जुज्झ जुज्झे भावंता॥
गावंती जित्त अक्षरी रूरा सूरा संचये॥
रामो लंका रू संतऐ सो देवा सिद्धा नंचये॥

गु० ७० ल० १२ अ० ८२

विजय नाम षटपद यथा—

आवंता जित दुग्ग धीर वीरा गाजंता॥
मातंगा उत्तुंग जंग जुट्टे भाजंता॥
सावंता जुज्झार षग्ग धारा धावंता॥
पीवंता जे संगि जुज्झ जुज्झे भावंता॥
गावंती जित्ते अच्छरी रूरा सूरा संचऐ॥
रामो लंका रू संतऐ सो देवा सिद्धा नंचऐ ॥२॥

गु० ६९ ल० १४ अ० ८३

वलि नाम षटपद यथा—

वेताला रन रुंड मुंड माला धारंता॥
धावंता धर धीर वीर अच्छे आरंता॥
जुझंता सावंत षग्ग सीसा झारंता॥
मातंगा गाजंत अद्ध अद्धे फारंता॥
जुझ्झारा जित्ते जुझ्झए साजंती सेना गंजिआ॥
सारथ्थी अग्गे माधवो सो पथ्थांरथ्थी मंजिआ ॥३॥

गु० ६८ ल० १६ अ० ८४

कर्ण नाम षटपद यथा—

पेखंता भव भीर धीर अक्षे सोहंता॥
नच्चंता नर मंद दंद दीहा जोहंता॥
धावंता जग जाल हाल सब्वा मोहंता॥
जंजाला जे लरख लरख रिद्धा रोहंता॥
संसारा मग्ग लग्गिआ माया मुद्धा कंपिआ॥
जोगी साजित्ये छुट्टए सो रामो नामो जंपिआ ॥४॥

गु० ६७ ल० १८ अ० ८५

वीर नाम षटपद यथा—

कट्टंता करवाल दंति दीहा कुट्टंता॥
वेताला दरहाल रुंड मुंडा लुट्टंता॥
घक्कंता बरवान सूर सोहे हुट्टंता॥
गज्जंता रन राम वेरि विद्धा फुट्टंता॥
नच्चंती गोरी दिट्ठऐ धीरा वीरा बुझ्झऐ॥
कप्पाली सीसा संचऐ सो सावंता जे जुझ्झऐ ॥५॥

गु० ६६ ल० २० अ० ८६

वेताल नाम षटपद यथा—

कल्लिका भरि कुंभि कुंभ लोहू रंज्जंती॥
लोट्टंता असिघाय घुम्मि संगी वज्जंती॥
जुझ्झरा चित चाय चंड सेना गज्जंती॥
सघानी कर दंति तार हारा सज्जंती॥
लरखंता जोधा पथ्थऐ सोहंता सर विद्धऐ॥
वेताला लोथ्थी विरथरें सो रिद्धा गिद्धा गिद्धाऐ ॥६॥

गु० ६५ ल० २२ अ० ८७

वृद्धनल वृद्धनाम षट्पद यथा—

सज्जंता वरवाह षग्ग वाना मुक्कंता ॥
सन्नाहा धरि अंग जंग जोधा ढुक्कंता ॥
मातंगा मद मंत सूर धुक्का धुक्कंता ॥
लागंता अति रोस चंड चक्का चुक्कंता ॥
पंडो राजंता रंगमें जुझ्झंता लरि लरखने ॥
गंभीरा वीरा कुद्धऐ सो फेलंता रन परखने ॥७॥

गु० ६४ ल० २४ अ० ८८

मर्कट नाम षट्पद यथा—

गहि षग्गा झारंत वीर सावंता गज्जिय ॥
नीसाना वज्जंत चंड वेतंडा सज्जिय ॥
चालंता जुझ्झार सार गाहंता रज्जिय ॥
पायक्का धावंत जंग जुट्टंता छज्जिय ॥
लोहू रंजती मेदिनी रामो लंका विद्दलिय ॥
भाजंती भूपा भामिनी सो सातो सिंधा उच्छलिय ॥८॥

गु० ६३ ल० २६ अ० ८६

हरि नाम षट्पद यथा—

कर कोमंडा तानि आनि कण्णंता ररिख
रघुवीरा सोहंत सिंघ तूरंता ल रिख ॥
हालंता सुम्मेरु सीव सामुद्दा नरिखय ॥
भाजंता मातंग अंग घुम्मंता मरिखय ॥
चालंता पब्बा सब्बऐ धुक्कंता ज्यों पत्तझरि ॥
बाजंता वाजा विद्धरे सो सुग्गं मग्गं सत्तहरि ॥९॥

गु० ६२ ल० २८ अ० ९०

हरनाम षट्पद यथा—

गन संगा वेताल ताल कप्पाली नच्चिय ॥
उघटंता संगीत गीत संधानी रच्चिय ॥
वर कामो जारंत स×गि×ना तच्चिय ॥
फीरंता दे ताल हाल फानिंदो लच्चिय ॥
साजंता चंदा भालमें जंपे जोगी सिद्धि धर ॥
राजंता कंठा कुंडली सो सीसा गंगा शंभु हर ॥१०॥

गु० ६१ ल० ३० अ० ९१

ब्रह्म नाम षट्पद यथा—

षग वीरा धारंत हुंकि वाजंता काहल
करि लोहू भारंत भुम्मि अमिरखा चाहल ॥
भिरि भेदंता भानु जुझ्झि सावंता नाहल ॥
लषि मातंगा कुंभ लेल हंसा मुलाहल ॥
चालंता वाना रंगमे पथ्थां सेना विद्धिनिय ॥
लोथ्थी फारंती विथ्थरे सो अंताबिंथे गिद्धिनिय ॥११॥

गु० ६० ल० ३२ अ० ९२

इंदु नाम षटपद यथा—

चतुरंगा राजंत शुंभ सावंता तज्जत ॥
घन आनक्का वज्जि सूर चालंता छज्जित ॥
भभकंता सुंडाल भूत वेताला मज्जत ॥
घर डम्मला वीर जंग जुझ्झंता तज्जत ॥
नाचंती दानो दुग्ग दलि कोदंडा सज्जंति सर ॥
धावंती रुंडा मुंड ले सो चामुंडा गज्जंति फर ॥१२॥

गु० ५९ ल० ३४ अ० ९३

चंदन नाम षट्पद यथा—

वर गज्जंती दंति पंति पायक्का तक्किय ॥
चल धावंती वाजि राजि भूपाला थक्किय ॥
सजि सेना गंभीर धीर छाजंता छक्किय ॥
रथ चालंता भुम्मि झुम्मि फानिंदो चक्किय ॥
लाहंता संपे सिद्ध जन जंपंता नंदंत घर ॥
पावंता सिद्धी निद्धि नव सो कालिक्का वंदंत नर ॥१३॥

गु० ५८ ल० ३६ अ० ९४

सुशुभंकर नाम षटपद यथा—

सुनि सिंघल तेलंग वंग लंके सो लुक्किय ॥
दिग मातंगा झुम्मि भुम्मि धारंता धुक्किय ॥
रवि झंपंता छार भार अंधारा झुक्किय ॥
बर साजंता धीर वीर जुझ्झारा ढुक्किय ॥
रामो रूसंता भूपवर छाजंता ए दंड भरि ॥
राजंता षग्ग चक्क चहु सो भाजंता भूखंड अरि ॥१४॥

गु० ५७ ल० ३८ अ० ९५

स्वान नाम षट्पद यथा—

वर वज्जन वाजंत फोज साजंता जुट्टिय ॥
कर षग्गनि झारंत सूर सावंता ढुट्टिय ॥
गहि चामुंडा मुंड रुंड भूते सो लुट्टिय ॥
गज कुंभा फारंत मोलि काटंता फुट्टिय ॥
पारथ्थो रथ्थी रथ्थि वर जुज्झंता जुज्झार गण ॥
आरंता जोधा जुद्ध मह सो लागंता जे सारतन ॥१५॥

गु० ५६ ल० ४० अ० ९६

सिंघ नाम षट्पद यथा—

वर झुंडनि वेताल संग कप्पाली नच्चत
झुकि हल्लिय केलास लास गिद्धाना नच्चत ॥
गहि रुंडनि चालंत चालु भूअंगा लच्चत ॥
घन घंटाला षाल सब्ब सब्बे सो रच्चत ॥
कप्पाला माला हत्थ धरि चंदा ओ साजंत कर ॥
अर्द्धंगा अद्धे अद्धतिय सो नाचंता जंत हर ॥१६॥

गु० ५५ ल० ४२ अ० ९७

शार्दूल नाम षट्पद यथा—

झुकि झुंडनि कम्मान वान जुज्झारा जुज्झिय ॥
लगि रुंडनि पीवंत शम्भु शोनित्ता उभ्भिय ॥
तक्कि तुण्डनि फारंत लोथ्थि वेताला वुभिझय ॥
[नोट—चौथी पंक्ति नहीं है]
साजंती मारू रंग भरि कल्लिका गावन्ति घन ॥
सदूला छाला मुण्ड धरि सो चामुण्डा धावन्ति रन ॥१७॥

गु० ५४ ल० ४४ अ० ९८ मात्रा १५२

कूर्म नाम षट्पद यथा—

समर वीर गम्भीर धीर तुन्नीरा वन्धिय ॥
सवल रथ्थ साजंत पथ्थ जुम्भारा कन्धिय ॥
चपल वान कम्मान जंग जुट्टंता सन्धिय ॥
अमर सब्ब जोहंत सब्ब नाचंता तंधिय ॥
जंजाल जाल भूपाल परि जुझ्मंता संग्राम करि ॥
भेदन्ता भानो मण्डलिग सो सावंता उद्दाम लरि ॥१८

गु० ५३ ल० ४६ अ० ९९

कोकिल नाम षट्पद यथा—

डमरु सद्दु वाजंत रंग भूते सो छुद्धिय ॥
रुधिर कुंड डारंत रुंड वेताला बुद्धिय ॥
गनति मुण्ड गुन्थंति माल कल्लिका मुद्धिय ॥
अमर नारि धावंति वीर जुज्झंता रुद्धिय ॥
पारथ्थ वान भेदन्त रिपु भाजंता आ दंदलिय ॥
कप्पाल ताल धारंत कर सो कप्पाली आनंद किय ॥१९॥

गु० ५२ ल० ४८ अ० १००

खर नाम षट्पद यथा—

करत सार जुज्झार संग मातंग निकट्टिय ॥
चलत अंग धारंत षग्ग गाजंता डट्टिय ॥
भिरत वीर तुन्नीर धीर साजंता नट्टिय ॥
फिरत रत्त फारंत कुम्भ घंटाला घट्टिय ॥
सावंत सूर धावंत रन जुद्धा सुद्धा रंग भरि ॥
राजंत भूत वेताल गण सो रामो लंका जंग करि ॥२०॥

गु० ५१ ल० ५० अ० १०१

कुंजर नाम षट्पद यथा—

वर वानर धावंत पिट्ठि कूरम्म करक्किय ॥
गहि पब्बय पेलंत विंधि सुम्मेरु धरक्किय ॥
तरणि धूरि पूरंत सब्ब भूपाला कंपिय ॥
उदधि नीर साजंत सेतु कावंधा झंपिय ॥
राजंत वीर गंभीर लरि वेताला धावंत धसि ॥
लंकेस लंक जारंत लषि सो गि×ना गावंत हसि ॥२१॥

गु० ५० ल० ५२ अ० १०२

मदन नाम षट्पद यथा—

विवुध सिद्ध वैकुण्ठ नामदे× शप ढिल्लिय ॥
लहत सिद्धि संसार सब्ब जोती शक्क हिज्जिय ॥
जपत जीह गोविंद राम गोपाल गणिज्जिय ॥
गहत धाम विस्साम सिंधु सोवंता छज्जिय ॥
गावंत शंभु लोकेश गुन राजंता भोगीस परि ॥
गि×न ध्यान ध्यावंत धरि सो हेरंता जोगीस हरि ॥२२॥

गु० ४९ ल० ५४ अ० १०३

मत्स्य नाम षट्पद यथा—

वृषभ संग रंगी मसान ईसान वान धर ॥
करत वास केलास लास संगीत गान कर ॥
नयन भाल भासंत ज्वाल गि×न मानकर ॥

भसम अंग धारी भुजंग पीयूष दान हर ॥
राजंत रूप भूतेस भव छाजंता वेताल मनि ॥
धारंत गंग अद्धंग तिय सो साजंता कप्पाल फनि॥२३॥
गु० ४८ ल० ५६ अ० १०४

तालंक नाम षटपद यथा—
दिग मुक्कहि दंताल धन×क्कंत घरक्किय ॥
हद छंडहि भूपाल राम रूसं× वरक्किय ।
कमठ पिठ्ठि टारंत विंधि सुम्मेरु दरक्किय ॥
अचल सल मेदान फोज चालंत ढरक्किय ॥
मातंग तुंग नागेस मनि राजंता पग दब्बि घर ॥
गंभीर धीर धावंत झुक्कि सो जुभझारा तालंक पर ॥२४॥
गु० ४७ ल० ५८ अ० १०५

शेष नाम यथा—
वर वजन वाजंत दंद जुझ्झारनि तज्जिय ॥
धुनि दुद्धर संग्राम धाम सावंतनि रज्जिय ॥
झुकियो घनि घावंत धीर तुनीर निछज्जिय ॥
वल झुंडनि मातंग तुंग कोलाहल गज्जिय ॥
कम्मान वान सम्मान करि जंग रं राजंत बल ॥
चालंत पथ्थ भूपाल दल सो सेससीस धावंत हल॥२५
गु० ४६ ल० ६० अ० १०६

सारंग नाम यथा—
धरत वीर कम्मान वान रण रंग झपट्टिय ॥
करत जंग फारंत आग जुझ्झार दपट्टिय ॥
लरत सूर पावंत नूर जुझ्झंत लपट्टिय ॥
भिरत मत्त मातंग संग सोनित्त रपट्टिय ॥
रामेस संग चालंत चपि लंक संक हालंति दर ॥
सारंग वान संधान करि सो रुंड मुंड पूरंत धर॥२६
गु० ४५ ल० ६२ अ० १०७

पयोधर नाम यथा—
पट्टह सदु वाजंत धाम नरपालनि छंडिय ॥
समर कज्ज साजंत सेन महिमंडल मंडिय ॥
सुभट संग मारंत तेग भूपालनि डंडिय ॥
करत पेज सावंत सिंघ जुझ्झारनि खंडिय ॥
पारथ्थ गाइ फेरंत रन एक्क रथ्थ तुनीर वर ॥
धारंत सार संसार पर सो धीर वीर गंभीर नर॥२७॥
गु० ४४ ल० ६४ अ० १०८

कुंदनाम यथा—
गिरत रथ्थि सारथ्थि सूर रन रंग गरज्जिय ॥
भिरत मल्ल मातंग जंग करिवार तरज्जिय ॥
निरत संभु कप्पाल माल धर पब्ब लरज्जिय ॥
तिरत भूत वेताल सिंधु सोनित्त भरज्जिय ॥
वाजंत जीति निसान वर धीर वीर भारथ्थ किय ॥
सावंत भीर गंभीर मथि सो सुग्ग मग्ग पारथ्थ दिय ॥२८
गु० ४३ ल० ६६ अ० १०९

नोट—छंद २९,३०,३१,३२ और ३३ नहीं हैं।

इष्ट नाम यथा—
तंडव करि मंडलिग चक्क धावनि धर नट्टिय ॥
अंवर भर पावक उदंड लोचन तडि घट्टिय ॥
मंदर धुकि फुंकरिग सेस सीसनि रफट्टिय ॥
डिंडिम धुनि उद्दाम धाम देवनि दुष कट्टिय ॥
वज्जिय सुराग पीनाक कर तान गान उल्लासगति ॥
दिग्गज दिगंत भाजंत गय सो इट्ठ हास कैलासपति॥
॥३४॥ गु० ३७ ल० ७८ अ० १०६

शरनाम यथा—
दिग्गज दिस विड्डरिग दंत भूतल तल छुट्टिय
अट्ठ चलिग पव्वय सुमेरु मंदर भर फुट्टिय ॥
अट्ठ करण मुंदिय विरंचि सेसह सिर टुट्टिय ॥
अंवर सुर सज्जिय निसान वज्जिय मुव लुट्टिय ॥
गहि राम रोस खिंचत कर जोर सोर उद्दंड धुनि ॥
हालंत लंक लंकेस घर सो टुट्टिय हर कोदंड धुनि ॥३५
गु० ३६ ल० ८० अ० १०७

सुशर नाम यथा—
करत नाद अंवर गरज्ज रज्जिय अषंड भरि ॥
दुग्ग दपट्टि दानव झपट्टि गज्जिय घमंड करि ॥
दनुज झुण्ड झुक्किय धरन्नि धुक्किय विहंड अरि ॥
पंजर डिढ डक्कुनि चबात भंजिय उडंड धरि ॥

दलि दंभ थंभ आरंभ किय जंग सुभट भ.जंत डरि॥
पंजनि दयंहु फारंत गहि सो सिंघ रूप राजंत हरि॥३६॥
गु० ३५ ल० ८२ अ० १०८।

इस प्रतिके उपर्युक्त छन्दोंमें योजना और मात्राओं सम्बन्धी जो भूलें हैं उनका उत्तरदायित्व लिपिकारकी असावधानी और अज्ञानतापर है। और भी छन्दोंकी पंक्तियोंके मध्य × यह चिह्न एक वर्ण लोपका द्योतक है जो मूल पाठसे या तो पढ़ा नहीं जा सका अथवा किसी प्रकार नष्ट हो गया।

चैखवके संस्मरण

मैक्सिम गोर्की

एक दिन चैखवने अपने गाँव 'कुचुक कौय'में मिलनेका मुझको निमन्त्रण दिया। इस गाँवमें उनके पास ज़मीनका एक छोटा-सा टुकड़ा था और एक छोटा-सा दुमंजिला मकान। अपनी यह 'जागीर' दिखाते समय वे बोले—"अगर मेरे पास पर्याप्त धन होता तो इस स्थानपर मैं बीमार ग्रामीण अध्यापकोंके लिए सैनेटोरियम बनवा देता। खूबरोशनीदार एक भवन बनवाता जिसमें बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ होतीं और बहुत ऊँची छत होती। इस भवनमें मैं एक बढ़िया पुस्तकालय स्थापित करता; सब प्रकारके वाद्ययन्त्र और प्रत्येक प्रकारकी शिक्षाका इन्तिज़ाम कर देता और, हाँ, साग-भाजी पैदा करनेके लिए एक बाड़ी होती और फलोंका एक बाग भी। यह सब इसलिए जरूरी है कि अध्यापकको प्रत्येक विषयका ज्ञान होना चाहिए, कोई चीज़ बाक़ी न रहे।"

एकाएक वे रुके, खखारा और उन्होंने मेरी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टिसे देखा। इस समय उनके ओठोंपर मधुर मुस्कराहट खेल रही थी। उनकी मुस्कराहटमें सदा एक अजीब आकर्षण होता था और ध्यान उनकी ओर खिंच जाता था।

"मेरे हवाई किलोंसे तुम ऊब तो नहीं रहे हो? लेकिन मुझे इस विषयपर बातचीत बहुत पसन्द है। रूसी ग्रामोंके लिए बुद्धिमान और सुशिक्षित अध्यापकोंकी बड़ी भारी जरूरत है। इसकी ओर खास तौरपर हमें ध्यान देना चाहिए और शीघ्रातिशीघ्र इसका प्रबन्ध होना चाहिए; क्योंकि बिना समुचित जन-शिक्षाके हमारा राष्ट्र कच्ची ईंटोंके मकानके समान ध्वंस हो जायगा। अध्यापकको तो कलाकार होना चाहिए; उसे अपने कामसे प्रेम होना चाहिए। लेकिन हमारे देशमें उसकी स्थिति 'अकुशल' मज़दूरकी तरह है। इस अर्द्धशिक्षित शिक्षकको गाँवोंमें लड़के पढ़ानेमें ठीक वही आनन्द आता है जो उसे साइबेरियाके निर्वासनमें आता। हमारे शिक्षकोंको आधेपेट रोटी मिलती है और इस रोटीके टुकड़ेको भी खोनेका डर उनका पीछा नहीं छोड़ता। लेकिन हमें आज ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता है जो ग्रामवासियोंका नेतृत्व कर सकें; किसानोंके तमाम सवालोंके जवाब दे सकें और जिनको ग्रामीण समाज श्रद्धा और सम्मानकी दृष्टिसे देखे, जिनके बलपर वह भरोसा कर सके। किसीको भी उनका अपमान करनेका अधिकार नहीं होना चाहिए। लेकिन आज तो बड़ी ही खराब हालत है; पुलिसमैन, दुकानदार, पादरी, स्कूलोंके संरक्षक और 'इंसपेक्टर आफ स्कूल' कहलानेवाले अफ़सर जिनका काम बजाय शिक्षा प्रसारके, ऊपरसे आनेवाले हुक्मकी तामील करना है, ये सब लोग मिलकर अध्यापकका अपमान करते हैं। क्या यह दुर्भाग्यकी बात नहीं है कि हम उसे इतना कम वेतन देते हैं, उस व्यक्तिको जिसे हम शिक्षक कहकर पुकारते हैं, लोगोंको शिक्षित बनाना जिसका कर्त्तव्य है? हमें अपने ऊपर लज्जा आनी चाहिए! सालमें आठ-नौ महीने बेचारे ग्रामीण अध्यापकको तपस्वीकी भाँति रहना पड़ता है; बिना पुस्तकोंके, बिना किसी मनोरंजनके उसकी बुद्धि एकाकीपनमें कुन्द हो जाती है। यदि कभी वह अपने मित्रोंको आमन्त्रित करता

है तो उसके ऊपर 'विद्रोह'का अपराध लगाया जाता है। इस 'विद्रोह' शब्दसे धूर्त लोग भोले व्यक्तियोंको डराया करते हैं। यह सब उन लोगोंके साथ बड़ा क्रूर और अपमानजनक मज़ाक है जिनके ऊपर महान् उत्तरदायित्व है, जो एक महायज्ञमें लगे हुए हैं। किसी भी अध्यापकको फटे-चिथड़े पहने और भय-त्रस्त देखकर मुझे शर्म आती है और ऐसा प्रतीत होता है मानो उनकी इस दुर्दशाके लिए मैं स्वयं दोषी हूँ। मैं ठीक कहता हूँ...।"

यहाँ वे एक क्षणको रुके और कुछ सोचकर धीरेसे बोले, 'हमारा देश बड़ा ऊटपटांग और बेहूदा है।'

उनके सुन्दर नेत्रोंमें विषादकी छाया छा गई; उनके चारों ओर झुर्रियाँ पड़ गईं और उनकी दृष्टिमें गम्भीरता झलकने लगी। उन्होंने अपने चारों ओर देखा और फिर व्यंग्य-हास्य मिश्रित स्वरमें कहने लगे, 'लो, मैंने तुम्हें अखबारका पूरा-का-पूरा सम्पादकीय ही सुना डाला! आओ, अपने धैर्यके पुरस्कार-स्वरूप एक प्याला चाय पीलो।'

अक्सर उनका यही तरीक़ा रहता था। वे बड़ी गम्भीरता पूर्वक जोश और ईमानदारीके साथ बात करते थे और फिर अचानक ही अपनी बातोंपर हँस पड़ते थे। उनके व्यंग्यमें उनकी नास्तिकताका अनुभव किया जा सकता है; साथ ही उनके व्यंग्यमें सरलता और सुकोमल भावुकताकी झलक भी आ जाती थी।

उस दिन धीरे-धीरे हम लोग घरमें पीछेकी ओर गए। गर्मीका सुहाना दिन था। सूर्यकी प्रखर किरणोंके प्रकाशमें सागर झिलमिला रहा था, उसका नाद धीमा था। किनारेपर, पहाड़ीके तल भागपर, एक कुत्ता आनन्दके मारे भौंक रहा था। चैखवने मेरी बाँह पकड़ी और खाँसकर धीरेसे कहा, 'बात तो बड़े दुर्भाग्य और शर्मकी है लेकिन यह स्वीकार करना पड़ता है कि आज बहुत-से लोग कुत्तोंसे भी ईर्ष्या करते हैं।' यह कहकर वे हँस पड़े और बोले, 'आज मैं ऐसी हारी-हारी-सी बातें कर रहा हूँ, इसका मतलब है कि अब मैं बूढ़ा हो चला।'

अनेक बार मैंने उन्हें यह कहते सुना, 'देखो, एक अध्यापक मुझसे मिलने आया है। वह शादीशुदा आदमी है और आजकल बीमार भी है। क्या तुम किसी प्रकार उसकी सहायता कर सकते हो? कुछ समयके लिए तो मैंने उसे काम दिलवा दिया है।'

कभी कहते, 'देखो गोर्की, एक अध्यापक तुमसे मिलना चाहता है। वह बीमार है, चल-फिर नहीं सकता। क्या तुम उसे देखने जाओगे?' या 'कुछ अध्यापिकाओंने किताबें मँगाई हैं।

कभी-कभी कोई अध्यापक उनके घरपर ही मिल जाता था। ऐसे मौक़ोंपर उस बेचारेको घबराहटके मारे पसीना छूटने लगता था, चेहरा लाल हो जाता था; कुर्सीके एक किनारेपर ही बैठा रहता था। उसे ठीक-ठीक 'सुशिक्षित' ढंगसे बात-चीत करनेमें बड़ा श्रम पड़ता था। या कभी कोई अध्यापक चैखवकी नज़रोंमें अपने आपको तीव्र-बुद्धि साबित करनेके लिए, अपनी सारी शक्ति लगाकर, ऐसे प्रश्नोंकी झड़ी लगा देता जिसके बारेमें उसने स्वयं कभी भी न सोचा हो। लेकिन चैखव यह सब खुराफात बड़े ध्यानसे सुनते रहते थे। उनके चेहरेपर मुस्कराहट आ जाती, उनकी कनपटीकी झुर्रियाँ सिकुड़ जातीं और वे धीरेसे मधुरतापूर्वक साफ और सरल शब्दोंमें कोई ऐसी बात कहते जिससे आगन्तुक अपनी सामान्य स्थितिमें आ जाय और अपनेको बुद्धिमान साबित करनेका निष्फल प्रयास छोड़ दे। सामान्य स्थितिमें आनेपर वह पहलेसे अधिक बुद्धिमान लगने लगता था और उसके साथ बातचीत अधिक सरस हो जाती थी।

इसी तरहके एक अध्यापकका किस्सा मुझे याद आ रहा है। वह पतला-दुबला, लम्बा-सा आदमी था। उसकी लम्बी नाक सिरेपर तोतेकी चोंचके आकारकी तरह आगेको झुक गई थी। वह चैखवके सामने ही बैठा हुआ था और बड़ी [illegible] आवाज़में दर्शन-शास्त्रमें अपने ज्ञानका प्रदर्शन कर रहा था। इसमें वह ऐसे लड़खड़ा रहा था जैसे कोई मतवाला [illegible] चलनेमें लड़खड़ा रहा हो।

चैखवने उससे अत्यन्त कोमलतासे कहा, 'अच्छा, आप [illegible] बताइये कि आपके ज़िलेमें कौन-सा अध्यापक बच्चोंको अधिक पीटता है?'

यह सुनते ही वह कुर्सीपर से उछल पड़ा और बोला, 'क्या रहा ? मैं ? मैंने तो अपने जीवन भरमें कभी किसी लड़के को नहीं पीटा।'

चेखवने मुस्कराकर कहा, 'नाराज न होइए। मैं आपकी बात नहीं कह रहा था ; लेकिन मैंने कहीं अखबारमें पढ़ा था कि इस प्रकारकी घटना आपके जिलेमें घटी थी।'

वह अध्यापक बैठ गया। उसने अपने माथेका पसीना पोंछा, आरामकी साँस ली और फिर अपने स्वाभाविक उदास स्वरमें बोला, 'जी हाँ, वह बात सही है। एक बार ऐसा हुआ था। उस अध्यापकका नाम मकारोव था। लेकिन इसमें आश्चर्यकी बात नहीं। यह है तो बुरा, लेकिन आप तो समझ सकते हैं कि उसके पत्नी है, चार बच्चे भी हैं ; पत्नी बीमार रहती है, खुद उसको क्षय रोग हो गया है और उसकी तनख्वाह है कुल जमा २० रूबल माहवार ! स्कूलको तो बस तंग कोठरी समझिए। वह स्वयं एक छोटे-से कमरेमें रहता है। ऐसी हालतमें तो अध्यापक स्वर्गके देवताको भी मार बैठेगा, और फिर आप जानते ही हैं कि स्कूलके लड़के स्वर्गके देवता नहीं होते।'

वह आदमी जो अभी तक चेखवपर बड़े-बड़े शब्दोंकी वर्षा कर रहा था, अब अपने स्वाभाविक रूपमें आ चुका था। अब वह सरलतापूर्वक बात करने लगा और उसके शब्द सरल और वजनदार हो गए थे। अब उसकी बातमें वह सत्य था जो रूसके ग्रामीण जीवनपर प्रकाश डालता था।

चलते समय उसने चेखवके सूखे-से छोटे हाथको अपने हाथोंमें लिया और कहा, 'जब मैं आपके पास आया था तो समझ रहा था कि मैं अपनेसे ऊँचे स्तरके व्यक्तिसे मिलने जा रहा हूँ ; इसीलिए भयसे काँप रहा था और यह भी दिखानेकी कोशिश कर रहा था कि मैं गँवार नहीं हूँ। लेकिन वापस जाते समय मैं आपको अपने मनमें सहृदय और सज्जन मित्र के रूपमें लिए जा रहा हूँ, जिससे हृदय खोलकर सब कुछ कहा जा सकता है, जो सब कुछ समझ सकता है। प्रत्येक बातको सहानुभूतिपूर्वक समझ लेना भी कितनी महान् चीज है। मैं जा रहा हूँ और अपने मनमें एक भावना लिए जा रहा हूँ कि महान् व्यक्ति अत्यन्त सरल और संवेदनाशील होते हैं। मुसीबतें ही जिनकी मित्र हों, उन व्यक्तियोंके और भी निकट ये महान् आत्माएँ होती हैं। मैं आपको कभी नहीं भूल सकता। अच्छा, प्रणाम !'

उसकी लम्बी नाक थोड़ी सिकुड़ी और अचानक मुस्करा कर वह फिर बोल उठा, 'देखिए, मेरे खयालसे पाजी लोग भी दुःखी ही होते हैं।'

वह जाने लगा तो चेखवने उसकी ओर मुस्कराकर देखा और कहा, 'यह भला आदमी बहुत दिनों तक अध्यापकी न कर सकेगा।'

'क्यों ?'

'लोग इसे बर्दाश्त न कर सकेंगे और इसे इसका फल भोगना ही पड़ेगा।' फिर धीरेसे कहा, 'हमारे देशमें ईमानदार आदमीको तो हौआ समझा जाता है।'

चेखवके सामने आते ही हरेक आदमी सरल बन जाता था और अपना हृदय खोलकर रख देता था। अक्सर मैं देखता था कि लोग उनके आगे आते ही अपनी किताबी जबान और शब्द-जंजाल भूल जाते थे। बहुत-से लोग यूरोपीय नक़लकी फैशनेबिल बातचीत करते हैं जिसकी तुलना बर्बर जातियोंकी हड्डियोंके आभूषणोंसे की जा सकती है। चेखवसे बातचीत करते समय लोग इन हड्डियोंके आभूषणोंको उतारकर एक ओर रख देते थे। अपने व्यक्तित्वको झूठा महत्त्व देनेके लिए लोग जो छद्मवेश धारण कर लेते हैं, उससे चेखवको घृणा थी। इन चीजोंसे उन्हें कष्ट होता था। मैं देखा करता कि जब कभी ऐसा मौक़ा आता चेखव फौरन यह प्रयत्न करते थे कि ये व्यर्थके आडम्बर, जो आदमीके असली रूपको छिपा देते हैं और जो आत्मिक विकृतिके साधन हैं, जल्दी-से-जल्दी दूर कर दिए जायँ। जीवन-पर्यंत चेखवने अपने मानसिक और आत्मिक स्रोतोंका ही भरोसा रखा ; सदा अपने प्रति ईमानदार बने रहे ; अपनी आत्मिक स्वतन्त्रतामें कभी बाधा नहीं आने दी और कभी भी उन्होंने इस बातकी परवाह नहीं की कि लोग उनके बारेमें क्या कहते हैं और उनसे क्या चाहते हैं। बड़े-बड़े 'महत्त्वपूर्ण प्रश्नों'पर बातचीत करनेसे उन्हें घृणा थी।

इस प्रकारकी बातचीत करते समय लोग यह एकदम भूल जाते हैं कि वर्तमान कालके नंगेपनको भूलकर भविष्यके रेशमी वस्त्रोंकी कल्पना बिलकुल फिजूल है। वे स्वयं स्वभावतः अत्यन्त सरल थे और प्रत्येक सरल स्वाभाविक और असली चीज़से उन्हें प्रेम था। लोगोंको स्वाभाविक रूपमें ले आनेका उनका अपना तरीक़ा था।

एक दिन अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित तीन महिलाएँ उनके दर्शनके लिए आईं। उनके घुसते ही सिल्कके कपड़ोंकी सरसराहट और तेज़ सुगन्धियोंसे कमरा भर गया। बड़ी ही सावधानीके साथ वे मेज़बान महोदयके सामने बैठ गईं। उन लोगोंने कुछ ऐसा भाव प्रदर्शित किया मानो उन्हें राजनीतिमें अत्यधिक दिलचस्पी है और सवाल-पर-सवाल पूछने लगीं।

'युद्धके अन्तके बारेमें आपकी क्या राय है ?'

चैख़वने अपना गला साफ़ किया और धीरेसे गम्भीरतापूर्वक बोले, 'मेरे ख़यालसे युद्धके अन्तमें सन्धि होगी।'

'सो तो ठीक है, पर जीत किसकी होगी, यूनानियोंकी या तुर्कोंकी ?'

'मेरी समझसे तो जो भी अधिक शक्तिशाली होगा वही विजयी होगा।'

'और आपकी रायमें कौन अधिक शक्तिशाली है ?'

'वही जो अधिक मेहनती और शिक्षित है।'

एक महिला बोल पड़ी, 'आपकी हाज़िर-जवाबीकी तारीफ़ करनी पड़ती है !'

दूसरीने कहा, 'अच्छा यह बताइए कि आपको कौन अधिक पसन्द हैं, यूनानी या तुर्क ?'

चैख़वने उनकी ओर एक मधुर दृष्टि फेंकी और मुस्करा कर कहा, 'मुझे तो शन्तरेकी चटनी सबसे अधिक पसन्द है, और आपको ?'

उक्त महिलाने उन्मुक्त होकर उत्तर दिया, 'बहुत ज़्यादा !'

तीसरीने अनुमोदन किया, 'कितनी बढ़िया ख़ुशबू आती है उसमें !'

इसके बाद वे तीनों बड़े उत्साहपूर्वक बातचीत करने लगीं और अपना चटनी-मुरब्बा विषयक सारा ज्ञान उड़ेलकर रख दिया। ज़ाहिर था कि यूनानियों और तुर्कोंके प्रश्नमें दिलचस्पी दिखानेमें उनके ऊपर बड़ा श्रम पड़ रहा था और वे उतनेसे ही थक गई थीं। शायद इसके बारेमें पहले कभी भी उन लोगोंने अपने आपको परेशान न किया होगा।

चलते समय उन्होंने चैख़वके लिए बहुत-सा चटनी-मुरब्बा भेजनेका वादा किया।

उनके जानेके बाद मैंने चैख़वसे कहा, 'बड़ी ही सफ़ाईसे आपने अपना काम कर डाला।'

चैख़व हँसे और बोले, 'अपनी ही बोलचालमें बात करना सर्वोत्तम है।'

एक बार मुझे उनके कमरेमें एक नवयुवक दिखाई दिया। व हज़रत सरकारी वक़ील थे। वे चैख़वसे कह रहे थे, 'आपकी कहानी 'पापी'ने मुझे बड़े चक्करमें डाल दिया है। यदि मैं यह मान लूँ कि डेनिस (कहानीका पात्र) जानबूझकर अपराध करता है तो मैं जनताकी सुरक्षाके ख़यालसे बिना किसी हीले-हवालेके जेलमें डाल दूँगा। और यदि मैं यह जान लूँ कि डेनिस जंगली है, जो भी अपराध करता है सब अज्ञानवश और उसे अपने कुकृत्योंके दुष्फलका ज्ञान नहीं है, तो भी मैं उसे नहीं छोड़ सकता। यदि मैं उसको सहानुभूतिवश छोड़ देता हूँ, तो यह जिम्मेदारी कैसे ले लूँ कि भविष्यमें वह रेलकी पटरियोंके पेंच नहीं खोलेगा और दुर्घटना न होगी ? यही सवाल टेढ़ा है। मुझे ऐसी हालतमें क्या करना चाहिए ?'

इतना कह चुकनेके बाद उसने चैख़वकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टिसे देखा। चैख़वने गम्भीरतापूर्वक कहा, 'यदि मैं जज होता तो डेनिसको साफ़ छोड़ देता।'

प्रश्न हुआ, 'किस बिना पर ?'

'मैं उससे कहता डेनिस, अभी तक तुम्हें यह नहीं मालूम कि तुमने क्या अपराध किया है और क्यों ! अभी तक तुम परिपक्व नहीं हो पाए हो। जाओ, और थोड़ा परिपक्व होनेकी कोशिश करो।'

सरकारी वकीलको हँसी आ गई, लेकिन फ़ौरन ही गम्भीर

होकर बोला, 'नहीं मेरे दोस्त ! मुझे समाजकी सुरक्षाका भी खयाल रखना पड़ेगा। यह मेरा कर्त्तव्य है। सच तो यह है कि आपका डेनिस जंगली होनेके साथ-साथ स्वभावतः अपराधी भी है।'

अचानक चैखवने प्रश्न किया, 'क्या आपको ग्रामोफोन पसन्द है।'

'हाँ, बड़ी ही आश्चर्यजनक चीज है।' उसने उत्साह-पूर्वक उत्तर दिया।

'और मुझे ग्रामोफोनसे घृणा है।'

'क्यों ?'

'इसलिए कि जो कुछ भी यह गाता या बोलता है सब निर्जीव होता है—बिना किसी भावनाके। इसकी आवाज मरी हुई होती है। अच्छा यह बताइए, क्या आपको फोटोग्राफीमें दिलचस्पी है ?'

संयोगवश वकील साहब फोटोग्राफीके शौकीन निकले। बड़े उत्साहपूर्वक वे इसके बारेमें बातचीत करने लगे और ग्रामोफोन ('आश्चर्यजनक चीज') की बात भूल गए जिसके साथ चैखव बड़ी होशियारीसे उनकी तुलना कर डाली थी।

जब वह उठकर चला गया तो चैखवने दुःखसे कहा, 'देखा ? इस तरह के बेहूदे लोगोंके हाथमें न्यायकी डोर है और यही लोग हमारे भाग्य-विधाता बने बैठे हैं।'

चैखव कुरुचिको भाँप लेने और उसे खोलकर रख देनेकी कलाके आचार्य थे। इस कलामें वही पारंगत हो सकता है जिसमें जीवनकी एक-एक बूँदसे रस लेनेकी क्षमता हो; जिसके हृदयमें अपने चारों ओर सरलता, सुन्दरता और मधुरता देखने की उत्कट अभिलाषा हो। गन्दगी, कृत्रिमता और कुरुचिके प्रति चैखवके मनमें बड़ा कठोर भाव था।

एक बार चैखवकी उपस्थितिमें किसीने एक किस्सा सुनाया कि एक अखबारके प्रकाशक महोदयने जो अपने पड़ोसियोंको सदा प्रेम और क्षमाके ऊपर उपदेश दिया करते थे, रेलके गार्डके साथ अकारण ही बड़ा-बड़ा दुर्व्यवहार किया। यह भी बताया गया कि वास्तवमें यह आदमी अपने आश्रित जनोंके प्रति बड़ा ही कठोर और जंगली है।

'क्यों न हो ?' चैखवने कहा, 'वह तो अभिजात वर्गका आदमी है, सुशिक्षित भी है। कालेजकी शिक्षा भी उसने पाई है। उसका पिता भले ही काठके खड़ाऊँ पहनता हो, वह तो अब 'पेटेण्ट लैदर'के चमचमाते जूते पहनता है।'

उनके स्वरमें कोई ऐसी चीज थी जो 'अभिजात वर्ग'के प्रति घृणा पैदा कर देती थी।

एक बार उन्होंने एक सुप्रसिद्ध पत्रकारके बारेमें कहा, 'बड़ा ही प्रतिभाशाली आदमी है; वह इतना मधुर और विनम्रतापूर्वक लिखता है मानो मिश्री घोल देता है। लेकिन साथ ही गैरोंकी उपस्थितिमें वह अपनी पत्नीको 'पागल कुतिया' की गाली देता है और उसके नौकरोंके रहनेके क्वार्टर इतने खराब हैं, उनमें इतनी सील रहती है कि उसकी नौकरानियाँ सदा गठियासे पीड़ित रहती हैं।'

मैंने उनसे पूछा, 'क्या आप अमुक सज्जनको पसन्द करते हैं ?'

'हाँ, बहुत ज़्यादा। बड़ा अच्छा आदमी है। उसका ज्ञान खूब विस्तृत है, खूब पढ़ता है। उसने तीन किताबें मुझे ही पढ़कर सुनाई थीं। लेकिन वह थोड़ा अस्थिरचित्त है। आज वह तुम्हारे मुँहपर तुम्हारी तारीफ कर देगा और कल ही किसीसे तुम्हारे बारेमें कह सकता है कि फलाँ आदमी ने अपनी मालकिनके पतिके मोजे चुरा लिए हैं; उन मोजोंका रंग काला है और उनपर नीली धारियाँ हैं।'

एक बार चैखवके सामने किसीने शिकायत की कि मोटी-मोटी त्रैमासिक पत्रिकाओंके कुछ भाग बड़े ही नीरस होते हैं। चैखवने जवाब दिया, 'लेकिन आपको वह साहित्य पढ़नेकी जरूरत ही नहीं। वह तो 'मित्रोंका साहित्य' है। उसके लेखक होते हैं सर्वश्री, रक्ताभ, श्वेत और श्याम। उनमें से एक कोई लेख लिखता है, दूसरा उसका विरोध करता है और तीसरा समझौता करा देता है। यह तो 'कट थ्रोट ब्रिज'के खेलकी तरह है। किसीको भी पाठकके हितका खयाल नहीं रहता।

एक दिन एक सुन्दर और सुस्वस्थ, बल्कि स्थूलकाय महिला पधारीं और चैखवसे कहने लगी, 'ऐन्टन पावलोविच,

जीवन कितना नीरस हो गया है ; मुझे तो आप, पासके लोगों, आकाश, सागर, यहाँ तक कि फूलोंमें भी एक उदासी-सी नज़र आती है। किसी भी चीज़में मेरी रुचि नहीं रह गई है ! मेरे मनमें इतनी निराशा भर गई है। यह तो बीमारी-सी लग गई है।'

चैखवने बड़े इतमिनानसे उत्तर दिया, 'बीमारी तो है ही। लैटिन भाषामें इसको 'Morbus Pretencialis कहते हैं।'

या तो उक्त महिला लैटिन भाषा नहीं जानती थीं, या न जाननेका अभिनय कर रही थीं।

एक बार चैखवने मुस्कराते हुए कहा था :

'आलोचक लोगोंका स्वभाव डाँससे मिलता-जुलता है। घोड़ा खेतमें कड़ी मेहनत करता है ; शरीरका प्रत्येक अंग वीणाके तारकी तरह यथाशक्ति योग दे रहा है ; तभी एक डाँस आकर घोड़ेके पुट्ठेपर बैठ जाता है और भनभनाना और डंक मारना शुरू कर देता है। घोड़ेको पूँछ फटकारनी पड़ती है। अब बताइए, डाँसका वहाँ क्याकाम है ? उसे कुछ भी ज्ञान नहीं, लेकिन वह अस्थिरचित्तवाला जीव है, जो हरेक काममें अपनी टाँग अड़ाता है और लोगोंको जबरदस्ती बतलाना चाहता है कि इस पृथ्वीपर उसका भी अस्तित्व है। वह कहता है, 'देखो, मैं जितना भी चाहूँ भनभना सकता हूँ।' अपनी कहानियोंकी आलोचनाएँ देखते-देखते मुझे पचीस वर्ष हो गए लेकिन मुझे याद नहीं कि एक भी ढंगकी हो। केवल स्काविचवेस्कीसे मैं थोड़ा प्रभावित हुआ हूँ, वह भी इस कारण— उसने लिखा था कि मैं एक पियक्कड़ आवारा हो जाऊँगा और किसी नालेमें मेरी मौत होगी।'

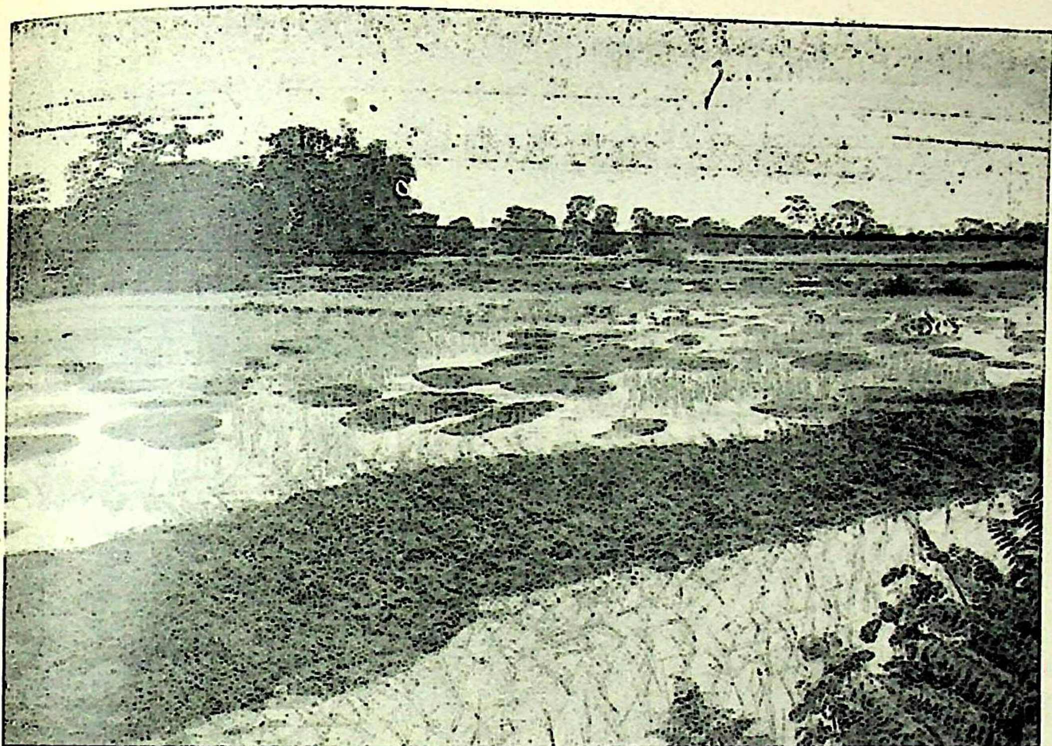
उनकी उदास आँखोंमें सदा व्यंग्य चमकता था, लेकिन कभी-कभी उनमें कठोरता और उदासीनता झलकने लगती थी। ऐसे मौकोंपर उनकी आवाज़में भी कठोरता आ जाती और उस समय मुझे ऐसा लगता था कि यह सरल और कोमल हृदयवाला व्यक्ति आवश्यकता पड़नेपर बड़ी-से-बड़ी शक्तिका मुक़ाबिला करनेमें पीछे न हटेगा।

युवावस्थामें 'ओछापन' एक मामूली मजेदार चीज़ मालूम होती है, कोई खास बात नहीं दिखाई देती। लेकिन धीरे-धीरे यही क्षुद्रता आदमीके पूरे व्यक्तित्वपर छा जाती है ; इसका कुहरा आदमीके हृदयपर, मस्तिष्कपर, और रक्तपर छा जाता है। अन्तमें आदमी उस पुराने साइनबोर्डकी तरह हो जाता है जिस पर किसी ज़मानेमें कुछ लिखा रहा होगा। लेकिन अब पढ़ा नहीं जा सकता।

अपनी प्रारम्भिक कहानियों तकमें चैखवने लोगोंकी क्षुद्रताका ही निदर्शन किया है। इसके कारण जो दुर्घटनाएँ घटती हैं इसका विश्लेषण उन्होंने किया है। उनकी 'हास्य' कहानियोंको यदि ध्यानसे पढ़ा जाय तो मालूम हो जाता है कि इस हास्यके पीछे कितनी वेदना है ; कितनी ज़बरदस्त निर्दयताको देखकर यह कहानी लिखी गई है। चैखवका कहनेका ढंग बड़ा सरल था। उनके अन्दर इतनी कोमलता थी कि वे लोगोंसे ज़ोर देकर नहीं कह सकते थे कि, 'अपनेको थोड़ा ऊँचा उठाओ और भलमनसाहतसे काम लो।'

उन्हें सदा यही आशा रही कि मानवके मनमें स्वतः श्रेष्ठ बननेकी प्रेरणा एक-न-एक दिन अवश्य होगी। उन्हें प्रत्येक प्रकारकी गन्दगी और भोंडेपनसे घृणा थी ; जीवनके इन्हीं विकर्षक पहलुओंको उन्होंने काव्यकी मधुर वाणी और हास्यकी खिलखिलाहटमें चित्रित किया था। उनकी मँजी हुई कलाके कारण ही यह तीखी घृणा अत्यन्त छिपे रूपमें, सुन्दर आवरणोंमें, ढकी नज़र आती है ; मामूली तौरपर इसे पहचानना मुश्किल हो जाता है।

उनकी 'अल्बियनकी पुत्री' नामक कहानीको पढ़कर पाठककी हँसी फूट पड़ती है और वह महसूस नहीं कर पाता कि इस कहानीमें एक पेटू काहिल जमींदार एक एकाकी अपरिचित व्यक्तिका कितनी नीचतापूर्वक मज़ाक उड़ाता है। चैखवकी प्रत्येक हास्य-कथामें मुझे एक पवित्र और उदार हृदयकी सिसकी सुनाई पड़ती है ; यह निराशापूर्ण सिसकी उन लोगोंकी संवेदनामें है जिन्हें अपने मानवोचित गौरवका कोई खयाल नहीं है ; जो पशुबलके आगे अपने आपको गुलामोंकी भाँति निर्विरोध समर्पित कर देते हैं ; रूखा-सूखा भोजन ही जिनका चरम ध्येय और उच्चतम आकांक्षा बन गया है ; जिनके मनमें किसी भावनाका उदय नहीं होता सिवाय



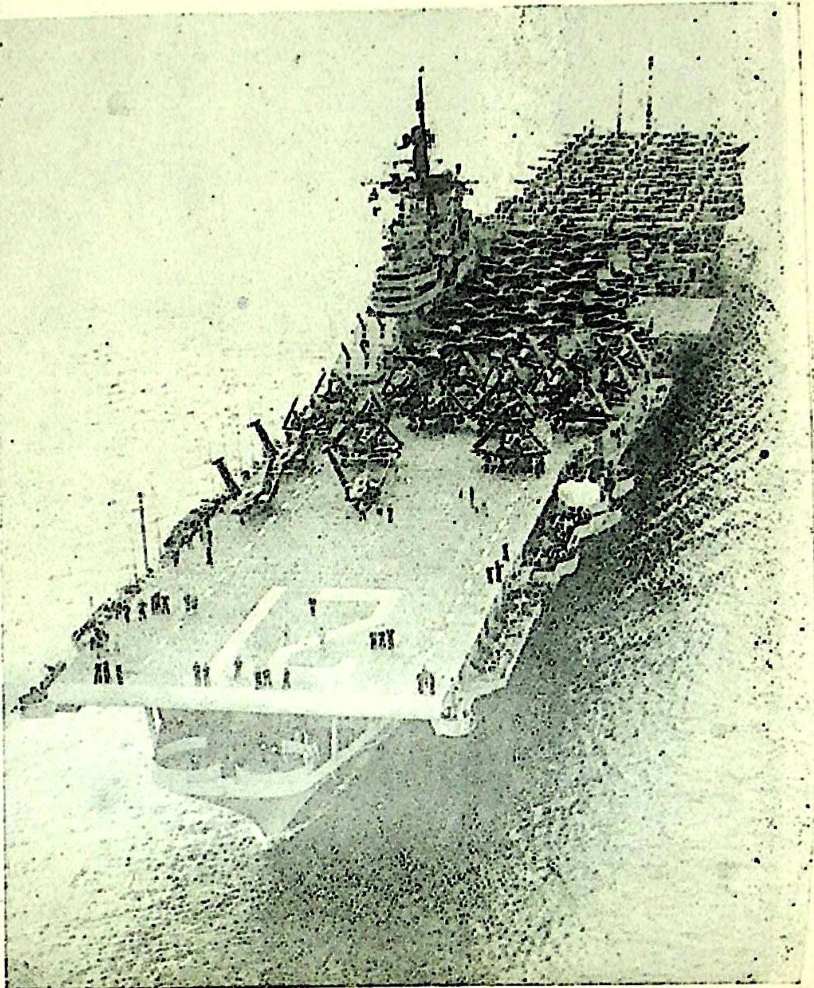
१५ अगस्तके भूकम्पसे प्रभावित उत्तरी आसामके सैखोआ घाटके धानके खेतमें बालुओंके तह और गर्त।



१५ अगस्तके भूकम्पके बाद उत्तरी आसामकी सुकेतिंग रोडमें दरारें।



ए० यू० एस० सेनाके नवशिक्षित सेनानी।



संयुक्तराष्ट्रका वायुयान वाहक एक वृहत्तम सामुद्रिक यान कोरियाकी सहायताके लिए चला है।

उस 'भय'के कि जो उनसे अधिक शक्तिशाली है, वह उन्हें पीट न दे।

ऐण्टन चैख़वने जीवनके दुःखपूर्ण तत्त्वोंको बड़ी गहराईसे और साफ दिमागसे समझा था। निम्न-मध्य-वर्गके दलदलमें फँसे हुए मानवताके भागका इतना सच्चा नग्न चित्र शायद और कोई नहीं खींच सका।

नीचता और कुरुचिसे उनकी शत्रुता थी। जीवन भर वे उनके विरुद्ध युद्ध करते रहे, उनके ऊपर हँसते रहे, अपनी तेज़ कलमकी नोंकसे उनपर प्रहार करते रहे। जहाँ कहीं भी हो पहली ही नज़रमें वे 'क्षुद्रता' को भाँप लेते थे, चाहे वह कितनी ही सुन्दरता और चमक-दमकके बीच क्यों न छिपी हो।

इसी 'क्षुद्रता'ने, मानवकी नीच प्रकृतिने अपना प्रतिशोध लिया; उनका मृत शरीर, एक कविका मृत शरीर रेलके उस डिब्बेमें रखकर लाया गया जिसमें मछलियोंके टोकने जानेवाले थे! इस गन्दे हरे रंगकी गाड़ीमें मुझे 'ओछापन' झाँकता नजर आ रहा था मानो वह अपने इस थके हुए दुश्मनकी हार पर मुस्करा रहा हो। चैख़वकी मृत्युपर जितनी भी श्रद्धांजलियाँ चढ़ाई गईं उन सबमें मुझे उसी ओछेपनकी बू आ रही थी; ऐसा मालूम होता था मानो नीचता अपने शत्रुकी मृत्युपर आनन्दोत्सव मना रही हो।

उनकी कहानियोंमें हमें गुलामोंकी अनन्त पंक्तिके दर्शन होते हैं; गुलाम—मोहके, अज्ञानके, अकर्मण्यताके, लोभके, जीवनकी विभीषिकाके भय-त्रस्त गुलाम—और वे गुलाम जो यह सोचकर कि वर्त्तमानमें उनके लिए कोई भी स्थान नहीं है, भविष्यकी निरर्थक कल्पनाओंमें दिन गुजारते हैं।

कभी-कभी इन लोगोंमें बम फूट पड़ता है और कोई इवानोव या ट्रेपलोव (चैख़वके पात्र) अपना कर्त्तव्य पहचान लेता है और अपने प्राण निछावर कर देता है।

इन गुलामोंमें से अनेक दो सौ साल बाद आनेवाले सुन्दर जीवनके सुख स्वप्न देखा करते हैं, लेकिन कोई भी इस प्रश्न पर विचार नहीं करता कि यदि सभी लोग केवल स्वप्न ही देखते रहेंगे तो उस आनेवाले सुन्दर जीवनकी रचना आखिर कौन करेगा।

एक महान् व्यक्तिने अपनी तेज निगाहसे निर्जीव व्यक्तियों की इस भीड़को देखा; उसके होठोंपर दुःखसे भरी मुस्कराहट थी; वह अपने हृदयमें निराशाको छिपाए, अपनी धीमी किन्तु धिक्कारती हुई आवाज़में बड़ी खूबसूरती और ईमानदारीके साथ कह रहा था, 'सुनो! जिन्दा रहनेका यह तरीका अत्यन्त निकृष्ट है।'

मुझे कई दिनसे बुखार चढ़ा हुआ है; लेकिन लेटे रहनेकी मेरी इच्छा नहीं होती। मेहकी कुछ बूँदें बड़ी सुस्तीसे ज़मीन पर छिड़काव-सा कर रही हैं। 'ईनो' के किलेमें से बन्दूकोंकी आवाज आ रही है। रातका वक्त है। सर्चलाइटकी लम्बी जीभ बादलोंको चाट रही है। यह दृश्य देखकर दुःख होता है क्योंकि यह युद्धकी याद दिला देता है, हाँ, शैतान-जनित युद्धकी!

मैं चैख़वके ग्रन्थोंका अध्ययन कर रहा हूँ। यदि वे आजसे दस साल पहले न चल बसे होते तो इस युद्धने उनके मनमें मानव जातिके प्रति, अपने ही बन्धुओंके प्रति घृणाका विष भर दिया होता और उनके प्राण ले लिए होते। आज मुझे उनकी अन्त्येष्टिकी याद आ रही है।

मास्कोके लोग जिस लेखकसे 'अत्यन्त प्रेम' करते थे उसी लेखककी लाश रेलगाड़ीके एक हरे रंगके खुले डिब्बेमें से उतारी गई। उस डिब्बेके दरवाजेपर लिखा था, 'केवल मछलियोंके लिए'! संयोगवश इसी समय जनरल कैलरका मृतशरीर भी मंचूरियासे लाया गया। चैख़वको सम्मान प्रदान करनेके लिए जो छोटी-सी भीड़ स्टेशनपर एकत्रित हुई थी, वह अधिकतर जनरल साहबके साथ हो गई। कुछ लोगोंको आश्चर्य हो रहा था कि चैख़वकी अन्त्येष्टिके लिए मिलिटरी बैण्ड क्यों बजाया जा रहा है; लेकिन हाल ही उन्हें अपनी गलती मालूम पड़ गई। वास्तवमें यह बैण्ड जनरल साहबके लिए था। गलती महसूस होनेपर कुछ चेहरोंपर प्रसन्नतासे मुस्कराहट दौड़ गई और कुछ खिलखिलाकर हँसने लगे। चैख़वके शवके साथ चलनेवालोंकी संख्या सौ से अधिक न रही होगी। मुझे अच्छी तरह याद है कि इनमें दो वकील थे जो चमचमाते हुए जूते और नई टाइयाँ पहनकर आए थे मानो उनकी शादी हो

रही हो! उनके पीछे चलते हुए मैंने एकको (जिसका नाम 'मकालोव' था) कुत्तोंकी तीव्र बुद्धिके बारेमें बातचीत करते हुए सुना। दूसरे महाशय जिनसे मैं परिचित नहीं हूँ, अपने ग्रीष्म-निवास और उसके चारों ओरके प्राकृतिक सौन्दर्यकी तारीफ कर रहे थे। बैंगनी रंगकी पोशाकसे सजी हुई, पैरासोल लगाए हुए एक महिला एक वृद्ध महोदयको समझा रही थीं।

'कितना सुन्दर था बेचारा और कितना हाजिर जवाब था!' और शायद वृद्ध महोदय उनसे सहमत न थे। गर्मी पड़ रही थी, धूल उड़ रही थी; तगड़े सफेद घोड़ेपर सवार एक पुलिस-इंस्पेक्टर इस शव-यात्राका नेतृत्व कर रहा था। कहाँ यह घृणित व्यवहार और कहाँ इस महान् कलाकारकी स्मृति! कितना अपमानजनक था यह सब!

चैखवने वयोवृद्ध ए० एस० सुवोरिनको अपने एक पत्रमें लिखा था, 'संसारमें पेट भरनेके लिए संघर्षके बराबर नीरस और उबा देनेवाली और कोई चीज नहीं है। इससे जीवनमें कोई भी आनन्द नहीं रह जाता और उदासीनता छा जाती है।'

इन शब्दोंसे चैखवकी मनोदशाका पता चल जाता है। युवावस्थामें उन्हें जीवित रहनेके लिए भीषण संघर्ष करना पड़ा, नित्यप्रति रोटीकी चिन्ता करनी पड़ती, अपने लिए तथा औरोंके लिए। उन्हें अपनी युवावस्थाकी सारी शक्ति इन्हीं घनी चिन्ताओंमें लगा देनी पड़ती थी, फिर भी कहीं कोई राह न दिखाई देती! आश्चर्यकी बात तो यह है कि इतना सब होते हुए भी वे अपने अन्दर हास्यको कैसे सुरक्षित रख सके! जीवनमें उन्हें दो ही चीजोंके लिए अविराम, नीरस संघर्ष दिखाई देता, एक तो रोटीके लिए और दूसरा मानसिक शान्ति के लिए। रोजमर्राकी कठिनाइयोंके मारे बड़ी-से-बड़ी दुर्घटनाओंकी ओर भी ध्यान देनेकी फुर्सत नहीं मिलती थी। आगे चलकर जब वे कुछ चिन्तामुक्त हुए तभी इन महान् दुर्घटनाओंकी ओर वे ध्यान दे सके।

चैखवका दृढ़ विश्वास था कि संस्कृतिका मूल आधार शारीरिक श्रम है; इस सत्यमें इतनी अधिक आस्था मुझे कहीं और देखनेको नहीं मिली। यह विश्वास उनके छोटे-से-छोटे घरेलू कामोंमें भी व्यक्त हो जाता था। कभी भी किसी चीजको उन्होंने अपने लिए इकट्ठा करके नहीं रखा। वे सृजन करते थे, बाग लगाते थे, पृथ्वीका शृंगार करते थे। श्रममें निहित काव्यानन्दको वे पहचानते थे। अपने लगाए हुए वृक्षों और पौधोंके बारेमें वे बड़ी सावधानी रखते थे। औटकामें मकान बनवाते समय एक बार उन्होंने कहा था, 'यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने हिस्सेकी जमीनको यथाशक्ति सुन्दर बनानेकी कोशिश करे तो यह पृथ्वी कितनी मनोहर हो जाय!'

चैखवके बारेमें बहुत-कुछ लिखा जा सकता है। उनके बारेमें संक्षेपमें उन्हींके ढंगसे लिखना उपयुक्त होगा, किन्तु यह तो मेरे बूतेकी बात नहीं।

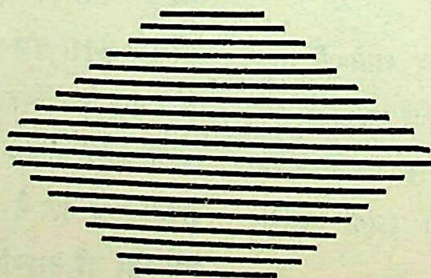
इस महान् व्यक्तिका स्मरण करना अपेक्षणीय है, क्योंकि उससे जीवित रहनेकी प्रेरणा मिलती है और जीवनमें सार्थकता दिखाई देती है।

मानव ही सृष्टिका केन्द्र-विन्दु है।

लेकिन मानव दोष-युक्त भी तो है!

हम सब लोग प्रेमके भूखे हैं, और भूखमें कच्ची-पक्की रोटीमें भी मिठास मालूम होता है।

अनुवादक: प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी



उषःपान

कविराज ओश्मप्रकाश

मनुष्य शरीरसे दूषित मलोंको बाहर निकालनेके लिए भगवान्ने कुछ बहिर्द्वार बना रखे हैं यथा—मुख, नाक, कान, गुदा, मूत्रेन्द्रिय तथा असंख्य लोमकूप।

स्वस्थावस्थामें इन बहिर्द्वारोंसे अनावश्यक मल प्रतिदिन थोड़ा-बहुत शरीरसे बाहर निकलता रहता है, जो हमें स्वस्थ रखनेमें सहायता देता है।

किन्तु अनियमित जीवन और मिथ्याहार-विहारसे जब हमारे शरीरकी क्रियामें विघ्न पड़ जाता है, तब वही दूषित मल बाहर न निकलकर अन्दर ही सड़ता हुआ अनेक प्रकारसे दूषित विष उत्पन्न करता है। ये बढ़े हुए विष न्यूनाधिक रूपसे शरीरमें उत्पन्न होनेवाले सभी रोगोंके कारण होते हैं।

प्राचीन तथा अर्वाचीन स्वास्थ्य-विज्ञान विशारदोंने स्वास्थ्य-रक्षाके निमित्त ऐसे अनेक उपाय बताये हैं जिन्हें स्वस्थावस्थामें यदि हम दैनिक-चर्याका अंग बनायँ तो निश्चय ही हम नीरोग रहते हुए कम-से-कम १०० वर्षकी आयु प्राप्त करें। उन्हीं उपायोंमें से एक उषःपान भी है।

उषःपानका शब्दार्थ है—'प्रातःकाल पीना' अर्थात् जल पीना। उषःपानमें प्रायः ताम्रपात्रमें रखा हुआ बासी जल प्रयुक्त होता है। ताम्रपात्रका प्रयोग इसलिए श्रेयस्कर है कि इस धातुके परमाणु इतने घन और सबल होते हैं कि इसमें रखे हुए जलपर किसी भी प्रकारके कीटाणु अपना प्रभाव नहीं कर पाते। और यदि कुछ कीटाणु आ भी जायँ तो पनपने नहीं पाते।

उषःपान विधि

प्रातःकाल निद्रा त्यागनेके पश्चात् उठते ही, पांच मिनट तक तो बिस्तरपर वैसे ही बैठे रहना चाहिए। यदि उठते ही जल पिया जायगा तो जुकाम आदि होनेका भय रहता है। पश्चात् एक पावसे लेकर आध सेर तक इच्छानुसार जल पी लेना चाहिए। अब आँगन, छतकी खुली हवा अथवा कमरेमें ही १०-१५ मिनट तक टहलते रहना चाहिए। इसका तत्काल प्रभाव होता है। शौच और मूत्र बिना किसी कष्टके खुलकर आ जाते हैं, शरीर हल्का होकर मन प्रसन्न होता है तथा प्रत्येक काम करनेमें रुचि होती है।

प्रायः सभी रोगोंका मूल कारण कब्ज ही होता है और 'उषःपान' कब्ज होने ही नहीं देता। फलस्वरूप भूख खूब लगती है और अजीर्ण भी नहीं होने पाता। शरीरकी सातों धातुएँ (रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र) क्रमशः शरीरमें बढ़ती हुई शक्तिको स्वस्थ रखती हैं।

जिन व्यक्तियोंको अम्लपित्त (Hyper Acidity) अर्थात् खाना खानेके पश्चात् छातीमें जलन होना तथा खट्टी-डकारें आकर गलेमें खट्टी वस्तुका आ जाना, रोग हो जाय तो उन्हें 'उषःपान'के प्रारम्भ करनेके कुछ दिनों पश्चात् ही लाभ होना आरम्भ हो जाता है। अम्लपित्तमें आमाशयमें बढ़ा हुआ पित्त उषः पानसे प्राकृतावस्थामें आ जाता है, भूख बढ़ने लगती है और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

जिन व्यक्तियोंको खूनी अथवा बादी बवासीर हो उन्हें भी उषःपान आरम्भ कर देना चाहिए। बवासीरका मूल कारण भी कब्ज ही होता है। कुछ ही दिनके उषःपानके पश्चात् रोगीको शौच खुलकर आने लगता है। गुदवलियोंमें रक्त-परिभ्रमण साम्यावस्थामें आकर गुदाके स्थानीय गुदांकुर सूखने लगते हैं।

जिन व्यक्तियों वृक्कशूल (दर्द गुर्दा) हो चुका हो, मूत्र रुककर तथा जलनके साथ रक्तमिश्रित आता हो, जिनके मूत्रमें सिकता (बालु-कण) आ रही हो अथवा मूत्राशय अथवा वृक्कमें पथरी होनेकी सम्भावना हो, उनके लिए तो उषःपान अमृतके समान है। उषःपानसे गुर्दे तथा मूत्राशय प्रतिदिन धुल जाते हैं, पथरी उत्पन्न करनेवाले सिकताकण एकत्र नहीं होने पाते तथा मूत्राशयान्तर्गत बढ़ी हुई गर्मी शान्त हो जाती है।

जिन व्यक्तियोंका पेट आवश्यकतासे अधिक बढ़ जाता है तथा शरीरमें भी असाधारण मुटापा आ जाता है, उन्हें प्रातः-काल 'उषःपान'वाले जलमें एक नींबू निचोड़कर पीना चाहिए। इससे शनैः-शनैः पेट साम्यावस्थामें आ जायगा और फालतू चर्बी भी घट जायगी।

उषःपान मुखकी अपेक्षा यदि नासिका द्वारा किया जाय तो लाभ कई गुना अधिक हो जाता है। ऊर्ध्वजत्रुगत रोग (आँख, नाक, गले, कान आदिकी बीमारियाँ) भी नहीं हो पाते। नासारन्ध्रोंको भली प्रकार साफ कर, एक नासारन्ध्रको अँगुलीसे बन्द करके, दूसरे नासारन्ध्रसे जलको शनैः-शनैः ऊपर खींचना चाहिए। कुछ दिनोंके अभ्याससे ही नासिका द्वारा जल पिया जा सकेगा। नासिका द्वारा जल पीनेसे नेत्र-ज्योति बढ़ती है, बाल श्वेत नहीं होने पाते, सिर-दर्द कभी नहीं होता, नासिकाकी घ्राण-शक्ति कभी क्षीण नहीं होने पाती तथा बुद्धि तीव्र हो जाती है। किन्तु सभी व्यक्तियोंके लिए नासिका द्वारा जल पीना कठिन होता है। ऐसे व्यक्तियोंको मुख द्वारा ही आरम्भ कर देना चाहिए।

आजकल देशभरमें रक्त-विकारके रोग फोड़े, फुन्सी, खुजली, दाद, चम्बल, पामा आदि रोग बहुतायतसे फैल रहे हैं। इनसे पीड़ित व्यक्तियोंको भी उषःपानसे लाभ होता है। रक्त शुद्ध होकर सभी विकार नष्ट होते हैं। रक्तमें बढ़ा हुआ पित्त तथा अनेक प्रकारका विष उषःपानसे शान्त हो जाते हैं और मूत्र मार्ग द्वारा मूत्र-मिश्रित होकर निकल जाते हैं।

उषःपानके अयोग्य व्यक्ति, जिन व्यक्तियोंने जुलाब लिया हो, जिनके फेफड़े कमजोर हों, जिन्हें दस्त अथवा मरोड़ लगे हुए हों और जिन्हें हिचकी, दमा अथवा राजयक्ष्मा आदि रोग हों, उन्हें उषःपान नहीं करना चाहिए।

लोकगीतोंमें पावस

अजितनारायण सिंह 'तोमर'

भारतीय ग्राम्य जीवन सदासे संगीतमय रहा है। उन ग्राम्यगीतोंमें स्वाभाविकता रहती है। कृत्रिमताका उनमें नाम-निशान नहीं। कर्मकाण्डमय ग्राम्यजीवनमें भी आघात-व्याघात, प्रेम-विरह, सुख-दुःखके अनुभवोंके स्रोत छन्दबद्ध होकर निकलते हैं। विशेषकर इन गीतोंका उद्रेक प्रेरणा और अनुभूतिकी गहराईसे होता है। ऐसे अवसर विरहा-वस्थामें, विदाईके अवसरपर अथवा नवोढ़ाके प्रियतमके परदेश जानेके समय आते हैं। पावस ऋतुमें विशेषकर बारहमासेके गीतों द्वारा रमणियाँ पति-वियोग-जनित क्लेशमय जीवनका विशद वर्णन करती हैं। सावनमें झूलाके गीत भी इन्हीं गीतोंमें आते हैं। बरसातके प्रारम्भमें मजदूरिनें मन-बहलावके हेतु खेतोंके हरे पौधोंको नुकसान पहुँचानेवाली घासोंको निकालते समय सोहनी गाती हैं। बारहमासाको तो लोग गाना और सुनना दोनों ही चाहते हैं; क्योंकि उन्हें एक साथ ही बारहो महीनोंके सुख-दुःखमय चित्र एक स्थानपर चित्रित मिल जाते हैं। बारहमासाका प्रारम्भ प्रायः आषाढ़ मासके वर्णनसे होता है। तथा जेठ मासके वर्णनसे समाप्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि वर्षाकाल सब कालोंसे विशेष उद्दीपनकारी होता है। बारहमासेके गीत विशेष उद्दीपनकारी होनेके कारण सावनके रसमय महीनेमें हृदयहारी प्रतीत होते हैं। सावनके मन-भावन गीतोंको कजली कहा जाता है। युग दम्पतीके प्यार-सम्बन्ध ही इसके वर्ण्य विषय होते हैं। नायिकाकी विरहावस्थाका बड़ा ही मार्मिक वर्णन हमें इन गीतोंमें प्राप्त होता है। संयोग और विप्रलम्भ शृंगारके वर्णन इन गीतोंमें स्वाभाविकताका संचार करते हैं।

सावनका महीना बड़ा ही सुहावना लगता है। नील-नभ-मण्डलमें घनका गर्जन, बादलोंके आघात-प्रतिघातके स्वर कुंजर-कुंज समीरकी नाईं घटाओंका क्षितिज छोरोंको छूकर निकलना, वायु-वेगसे वेगराती हुई बक-पंक्तिकी शोभा मनको मुग्ध किये बिना नहीं रहती। घटाओंका घहराना, चपलाकी

चमक, रिमझिम-रिमझिम बूँदोंका बरसना, पादपों, लताओं और पौधोंका धुल जाना, पत्रोंका निखर जाना, खेतों और जंगलोंमें हरित वसना प्रकृति-सुन्दरीका निखार हृदय-सागरमें आनन्दामृत उड़ेल देता है। पार्वत्य प्रदेशमें तो यह सब है, जरा ग्रामोंकी ओर भी दृष्टि डालिये !

नालोंका बहना, नदियोंका उमड़ पड़ना, 'सिमिट-सिमिट जल भरहिं तलावा'की अनुपम छटा, वसुधाका नाना भाँतिके जीवोंसे भर जाना, झिंगुरोंकी झनकार, मेढकोंकी टरटराहट, दसों दिशाओंमें पशुओंके कल्लोल, पक्षियोंके कलरव तथा 'पी-पी'की उद्दीपनकारी पुकार आदिके मनोहर दृश्य हृदयको मुग्ध करनेमें पर्याप्त हैं। वन्य प्रान्त तो मानो नींद त्यागकर जग पड़ा है। कृषकगण अपने हरे-भरे खेतोंके किनारे भविष्यकी कल्पनामें मस्त दृष्टिगोचर होते हैं। अहीरोंकी टोली कानोंमें उँगली डालकर मैदानोंमें भैंस-गाय चराते हुए विरहा गानेमें मस्त है। सावनके सुहावन महीनेमें प्रकृति-परी हरित पट परिधानकर मानव-मानसमें उद्दीपनकारी भावनाओंका संचार करती है। ग्रामोंके हर बागमें तालाब-तटपर, वट वृक्षकी डालोंमें झूले लगाये जाते हैं और स्त्री-पुरुष मिलकर झूला झूलते हैं मानो प्रकृति और पुरुषकी रागात्मक वृत्तिका समन्वय इसी स्थलपर होता है। झूला लगानेकी पूरी तैयारी की जाती है। मोटे रस्से वटकी शाखाओंमें लगाकर पटरी रख दी जाती है, और झूला झूला जाता है। पेंग मारते समय नर-नारी 'आई सावन बहार' गाकर आनन्द-मग्न हो जाते हैं।

सावनमें मिर्जापुर, भोजपुर आदिमें कजलीकी बहार देखते ही बनती है। यहाँ कजलीका दंगल भी होता है। स्त्री-पुरुष दो दलोंमें विभक्त होकर एक दूसरेको कजली गाकर सुनाते हैं। 'घिरि आई री बदरिया सावन की' गाते ही एक विचित्र समाँ बँध जाता है। जीवनकी सरस भावनाओंके उद्दीपनकारी गीत पावसमें रंग ला देते हैं। भोजपुरी या मगही, मैथिली या खड़ीबोली, किसी भाषाके लोकगीतोंकी लोक-प्रियता महान् है। अब हाथ कंगनको आरसी क्या ! एक-दो गीतोंका उदाहरण देकर ही हम देखें कि इन भाषाओंके लोक-गीतोंमें पावसका क्या स्थान है। पहले हम भोजपुरी-मगहीके एक-दो गीतोंका ही रसास्वादन करें। एक बारहमासा गीत है। पति परदेश जा रहा है, स्त्री मना कर रही है, पर वह भला कब माननेवाला ? वह देवतासे एक पहर रातसे वर्षा बरसानेके लिये प्रार्थना करती है ताकि पति परदेश न जा सके। पति रुकना नहीं चाहता, वह छाता लगा कर भी चला ही जाना चाहता है। इसीका कितना मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है। पाठक देखें—

'बरिसहु आहो ए देव, आरे घरी रे पहर राती,
आरे पियाके पायेताबा, घरे बेलमावहु रे की।
जाहु तुहुँ आहो ए धनियाँ, देवके मनइबु,
आरे छातावा लगाइबि, पंथ हम जाइबि रे की।

हाँ, तो छाता लगाकर पिया परदेश चला ही गया। अब यह प्रथम आषाढ़का महीना है। बादलोंका गर्जन सुनाई पड़ रहा है। पर वह स्त्री कहती है कि मेरे स्वामीका हृदय इतना कठोर है कि वह इस महीनेमें भी नहीं आया। रिमझिम-रिमझिम बादल बरस रहे हैं। परदेशमें बालम भीगता होगा···प्रिया कहती है कि मैं पिया-पियाकी रट लगा रही हूँ, वनमें मोर बोल रहे हैं !

सखीसे कहती है कि हे सखी ! भादोंकी रात बड़ी भयावनी है...चारों ओर पानीकी धारा गिर रही है...मेरे चारों ओर चकवी बोल रही है और मेढ़कका शब्द सुनाई पड़ रहा है। पावस ऋतुका कितना सजीव, कारुणिक चित्र चित्रित किया गया है इस गीतमें :—

प्रथम मास आषाढ़ सखि हो ; गरजि गरजिके सुनाय,
सामीके अइसन कठिन जियरा ; मास अषाढ़ नहिं आय,
सावन रिमझिम बुनवा बरसे ; पियवा भीजेला परदेस ;
पिया पिया कहि रटेले कामिनि ; जंगल बोलेला मोर।
भादों रइनि भयावन सखि हो, चारु ओर बरसेला धार,
चकवी त चारु ओर मोर बोले, दादुर सबद सुनाय।

आगे चलकर विरहिनी नायिकाकी दशा और भी बिगड़ जाती है। वर्षाऋतु आ गई है, जलकी धारा ज़ोरोंसे चलने लगी है। सब स्त्रियोंके प्रियतम अपने घरपर आ गये, पर इस नायिकाका पति परदेश सेव रहा है...इसकी वेदना घनीभूत

हो जाती है...इसके मर्मपर आघात पहुँचता है और सखीसे बिलख-बिलख कह रही है :—

प्रथम मास आषाढ़ हे सखि, साजि चलले जलधार हे,
सबके बलमुआ राम घर पर अइलें, हमरो बलमु परदेश हे।
सावन हे सखि सरब सोहावन, रिमझिम बरसले देव हे,
बारि उमिरि परदेस बालम, जीअबो कवना अधार हे।
भादों हे सखि रइनि भयावन, सूझले आर न पार हे,
लवका जे लवके राम बिजुली जे चमकेला, कड़केला जियरा हमार हे

कितनी व्यथा और बेबसी है, सरलता और सरसता तो इन गीतोंमें कूट-कूटकर भरी है। विरहिनी भला 'भादों भवन सोहावन न लागे'के सिवा समझ और कह ही क्या सकती है ?

हम इन गीतोंमें कामिनीके हृदयका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पाते हैं। सावनमें पति-वियोग असह्य होता ही है, विशेषकर यह मानव-प्रवृत्ति है कि अपने आसपासके लोगोंको सुखी और अपनेको दुःखके दलदलमें फँसा देख उसके धैर्यका बाँध टूट जाता है। इस सिद्धान्तकी पुष्टिके लिए उदाहरण-स्वरूप नायिकाकी चुभती व्यथाको हम देख सकते हैं। यहाँ पावस ही आलम्बन और उद्दीपन दोनोंका काम करता है।

बादल बरसे, बिजुली चमके, जियरा ललचे मोर सखिया,
सइयाँ घरे ना अइलें, पानी बरसन लागेला मोर सखिया।
सब सखियन मिलि धूम मचायो मोर सखिया,
हम बैठी मनमारी रंगमहलमें मोर सखिया।

इस कजलीमें हमें सजल प्रेमकी मर्मान्तक व्यथा निहित मालूम होती है। अब पतिके आनेकी सूचना विरहिनीको मिलती है, प्रतीक्षाकी दूभर घड़ियोंका कितना सुन्दर चित्र है, देखें :—

बोलु बोलु कगवा रे सुलछन बोलिया,
घेरि घेरि आयो रे बादरवा, घाटा कारी कारी ना।
बरसे बरसे रे बादरवा बिजुरी चमके ना,
काली काली रे अँधेरिया ; हरिना अइले ना।

अन्तमें पति परदेशसे आ जाता है। मिलनकी घड़ीमें दम्पती सावनकी बहारमें सब कुछ भूल जाते हैं, पर नायकको भय होता है कि इस कामोद्दीपनकारी सावनके महीनेमें कोई प्रियाको हरके न ले जाय, अतएव वह खिड़की भी बन्द कर रखनेको कहता है :—

'जनिया मति खोलु खिरकिया, अइली सावनकी बहार,
सावन महिनमामें बड़ी रे घुघेड़ी, लेई जइहैं उढ़ाई।

अब हम भोजपुरीके एक प्रसिद्ध गीतका रसास्वादन करें। सावनमें झूलाके समय किसी भी ठाकुरवाड़ीमें चले जाइये, 'घिरि आई रे बदरिया सावनकी'वाला गीत अवश्य सुनाई पड़ेगा। पावस-कालके वियोगजन्य दुःखमें भी एक विचित्र आनन्द है। वियोगिनी स्त्रीके वियोगका अन्त होनेवाला है, क्योंकि आज ही प्रियतमके आनेकी अवधि है। और अन्तमें प्रतीक्षा निराशाका रूप धारण कर लेती है, इसीका कितना मर्मस्पर्शी चित्र है देखें :—

घिरि आइलि रे बदरिया सावन की,
सावनकी मनभावनकी, घिरि आइलि रे बदरिया सावनकी।
बादर बरसे बिजुली तड़पे, आवत मोहि डरावनकी,
घिरि आइलि रे बदरिया सावनकी।
अति निरमोही पिया ना अइले, आशा अवना आवनकी,
घिरि आइलि रे बदरिया सावनकी।
प्रीतम आज विदेशे बैठल, पाती ना पायो मनभावनकी,
घिरि आइलि रे बदरिया सावनकी।
सखिया झूला हिलिमिलि झूलत, मोर जियरा तरसावनकी,
घिरि आइलि रे बदरिया सावनकी।

अब हम मैथिल कवि-कोकिल विद्यापतिके मैथिलीके लोक-गीतोंका रसास्वादन करनेके लिए एकाध बानगी लें और पावसकी महिमापर विचार करें। पावस ऋतुमें नायिकाका पति परदेश चला गया है, उसकी भरी जवानी उसके लिए दूभर हो रही है। आषाढ़का महीना, बादलका घिरना, वियोगिनके लिए उद्दीपनकारी समाँ उपस्थित करते हैं। वह योगिनका वेष धरकर पतिके पास जाना चाहती है। सोचते-सोचते आषाढ़ बीत गया...सावनका पदार्पण हुआ...हाथों हाथ नहीं सूझता। चारों ओर चपलाकी चमक है...कामिनी अपने पतिके लिए व्याकुल है। दादुर, मोर आदिके कल्लोल चारों ओर सुनाई

पड़ते हैं, घनघोर वर्षा हो रही है। सौभाग्यवती अपने पतिके अंकमें विहार कर रही है, पर वियोगिनीके दिन आँसू बहाते ही कटते हैं। विद्यापतिके शब्दोंमें इसीका कितना सजीव चित्र उपस्थित किया गया है, पाठक देखें ;

मोर पिया सखि गेल दुर देस,
जीवन दए गेल साल सनेस,
मास अषाढ़ उनत नव मेघ
पिया विसलेख रहओं निरपेघ।
कौन पुरुष सखि कौन से देस,
करब मोयँ तहाँ योगिनी मेस।
साओन मास बरसि घनवारि,
पंथ न सूझे निसि अँधिआरि।
चौदिसि देखिए विजुरी रेह,
से सखि कामिनि जीवन संदेह।
भादव मास बरिस घन घोर,
सभ दिसि कुहुकए दादुल मोर।
चेहुकि चेहुकि पिया कोर समाय,
गुणमति सूतलि अंक लगाय।

विरहिनी जब दर्दकी सीमा पार कर जाती है तो अबला का एक वल रोना रह जाता है और वह सखीसे अपने दुःसह दुःखका वर्णन किस प्रकार करती है देखें :—

सखि हे हमर दुखक नहीं ओर,
इमर बादर माह भादर सून मन्दिर मोर।
झंपि घन गरजति सन्तत भुवन भरि बरसतिया,
कन्त पाहुन काम दारुण सघन खर सर हँतिया।
कुलिस कत सत पात मुदित मयूर नाचत मातिया,
मत्त दादुर डाक डाहुक फाटि जायतु छातिया।
तिमिर दिग भरि घोर यामिनि अथिर विजुरिक पाँतिया,
विद्यापति कह कइसे गमाओब हरि बिना दिन रातिया।

अब हम एक संथाली लोकगीतकी दो-चार पंक्तियोंमें पावसके आनन्दका अनुभव करें। संथाली स्त्रियाँ सावनके महीनेमें नाच-नाचकर जब गीत गाने लगती हैं तो एक विचित्र समाँ बँध जाता है। इन संथाली गीतोंमें आनन्दकी मात्रा प्रचुर रूपमें प्रस्फुटित होती है :—

देखु गे आई मायें बेंगवाके ठानी वानी,
पानी भीतर डुबकि मारि।
विना बतास पीपर पात डोले पानी भीतर डुबकी मारि।

इसी प्रकार उत्कल प्रान्तके किसी मेल-ठेलेमें चले जाइये, आपकी भावुकता झूलेकी ओर आकर्षित होगी। झूलामें उड़ता हुआ उनका 'सजनी गीत' उड़ीसाका सबसे लोक-प्रिय, मधुर और आकर्षक गीत है। श्रुतिप्रिय इन गीतोंकी ओर आप बरबस खिंच जायँगे। लोक-गीतोंकी यह बहुत बड़ी खूबी है कि उनके सुनने मात्रसे दिलमें हिलोर उत्पन्न हो जाता है। हमजोली बालाएँ आपसमें उत्तर-प्रत्युत्तर देती रहती हैं। कभी-कभी उसी झूलेमें बैठा हुआ कोई उद्धत युवक गीतमें भाग ले लेता है। और यदि उसके गीतका प्रत्युत्तर मिल गया तो फिर होड़ लग जाती है। झूलेका आनन्द उठाती हुई अपनी मौजमें कोई रमणी गीत आरम्भ कर देती है। एक ही उदाहरण अलम् होगा ;

नुवा गिलास र पना
तोर लागी सांग दुरु जा भना रे
घर करी देल्ह छीना सजनी रे।

नये गिलासमें रस रखा है। ओ साथी, तुम्हारे कारण मेरे लिये घरका दरवाजा बन्द हो गया है। मुझसे घर भी तुमने छुड़ा दिया।

इसी प्रकार मुजफ्फरपुर, दरभंगा जिलोंमें सरैसा परगनाके सरैसावादी गीतमें भी हम पावसका प्राधान्य पाते हैं। सरैसा वादी लोग-गीतका एक ही उदाहरण उसके बारहमासेसे पर्याप्त होगा—

सावोन सुन्दर परम सोहावोन निशिदिन बरसइछइ मेघ हे,
पिया विना सब साज सूने हई सूने लगइछइ एहो गेह हे,
ऊपर बदरा बरसई साओन पयलक ऋतु बरसात हे,
हमर नयन घन बरसइ बराबर ताकइन कालक आश हे।
आश गासमें बितलइ साओन पिया बैठलथिन परदेश हे,
मन त करइय हयहु जे अइती धरक जोगिनियांके भेष हे।
भादों रयिनी घोर भयाओन सुझइ आर न पार हे,
पिया बिना डर पायल जियरा तलफइत रहइछइ हमार हे।

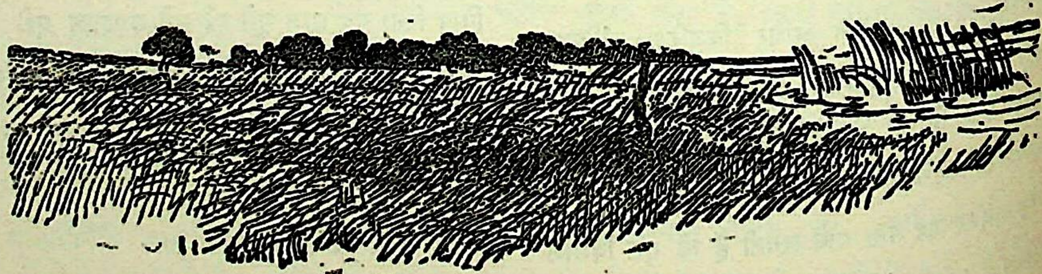
लेखकी आकार-वृद्धिके भयसे अब खड़ीबोलीके लोक-गीतका एकआध उदाहरण देकर समाप्त करना ही उचित लगता है। मातृ-हृदयमें पुत्रके अनिष्टकी आशंका बनी रहती है। वर्षाका दिन, बिजली कड़क रही हो और जोरोंकी पुरवैया सायँ-सायँ बह रही हो तो भला माताके दिलमें परदेसी पुत्रके अनिष्टकी आशंका क्यों न हो, एक चित्र देखिये ;

बरषा बरसे बिजली छिटके पवन चले पुरवाई,
कौन बिरिछि तर भींजत होइहैं राम लखन दोऊ भाई।

वर्षाका दिन है एक मजदूरिन खेतीके मेंड़पर बैठी हुई कजली गा रही है। पति परदेशमें है। परदेशसे पाती नहीं मिली है। वह मार उवाहे घर जाती है शामको, क्योंकि बालम विदेशमें है, घर खाली है, वह उन्मन-सी आती और उन्मन-सी चली जाती है। इन पंक्तियोंके लेखकने एक चित्र उपस्थित किया है, पाठक इसकी भावनाकी गहराईपर विचार करें।

झीनी-झीनी बरसातोंमें मजदूरिन कजली गाती है।
आँचलको फेंटामें बाँधे,
जाँघों तक सारीको साधे,
कुछ उन्मन - उन्मन चित्तसे
वह, निज पीको दिलमें आराधे
हो-हो कर चित्त विकल सहसा अकुलाती है, घबराती है।
दिन-भर तो खेतोंमें बीता,
उरमें उसका है मन चीता,
वह मार उवाहे घर जाती,
बालम बाहर है घर रीता,
बस बैठ मेंड़पर इसीलिये कुछ गा कर मन बहलाती है।
बस सावनमें है गया पिया,
पाती न मिली यह सोच हिया,
भादोंके घन हैं आज सघन,
स्वरमें करुणामय मन बसिया
उन्मन-उन्मन-सी आती है, उन्मन-उन्मन-सी जाती है।

किसी भी लोक-गीतको देखिए, चाहे वह भोजपुरी हो या मगही, चाहे सरैसावादी हो या मैथिली, चाहे संथाली हो या उत्कली ; सर्वत्र मानव तथा मानवेतर प्रकृतिमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित प्रतीत होता है। मानवके हास्य-रुदन, मिलन-विरहमें मानवेतर प्रकृतिका योग अवश्य मिलता है। एकके बिना दूसरेका वर्णन निरपेक्ष प्रतीत होगा। निसर्गमें जो हलचल तथा हँसी-खुशी है वह मानव-जीवनमें उसके हास-विलासके रूपमें प्रकट होती है, तथा जन-गणके मनमें जो प्रेम-विरह-व्यथा-जनित व्यापार होते हैं, जो अभावकी टीस और कसक है, वह प्रकृतिकी भयंकरताके रूपमें प्रकट होती है, जैसे बादलोंका गरजना, दामिनीकी दमक, भादोंकी तोम तिमिरमय भयावनी रात वियोगिनी अबलाके हृदयकी शून्यताके द्योतक हैं। अतएव अन्तमें हमें यह निर्विवाद प्रतीत होता है कि भारतीय लोक-गीतोंमें पावसका स्थान जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना और किसी भी ऋतुका नहीं।



इतिहासकी गति

रामेश्वर गुप्त

अब तक मानव जितना ज्ञान सम्पादन कर सका है, उसके आधारपर कहा जाता है कि सृष्टिके व्यक्त रूपमें प्रस्फुटन होनेके पश्चात् वास्तविक मानव (True man—Homo-Sapien) का आविर्भाव हमारी इस पृथ्वीपर अनुमानतः आजसे पचास-साठ हजार वर्ष पूर्व हुआ। तबसे आजतक यह मानव, स्वयं प्रकृतिसे उद्भूत होकर प्रकृतिके वातावरणमें प्रकृतिका ही एक अंग बनकर रहता हुआ, इस पृथ्वीपर प्रयास (Adventure) करता हुआ आया है—प्रकृतिके क्षेत्रमें खेल खेलता हुआ आया है। मानवका यह प्रयास (Adventure), मानवका यह खेल ही मानवकी कहानी है—मानवका इतिहास है। यह कहानी गतिमान् है, यह इतिहास अभी चल रहा है। अबतककी यह कहानी पढ़कर क्या हमें यह प्रतीति हुई कि मानवने जो खेल खेला और जो खेल खेल रहा है, उस खेलके कुछ अटल नियम थे, कुछ अटल नियम हैं? क्या उन नियमोंसे नियन्त्रित होकर ही, उन नियमोंकी परिधिमें ही मानव अपना खेल खेल पाया; अपना प्रयास कर पाया? उन नियमोंका उल्लंघन करके नहीं! क्या जैसा उसने चाहा स्वतन्त्र अपनी इच्छासे वह अपना कार्य-कलाप नहीं कर पाया—क्या जैसा वह चाहे, स्वतन्त्र इच्छासे अपना खेल नहीं खेल सकता? दूसरे शब्दोंमें, क्या इतिहासकी गति भी नियमबद्ध है? क्या नियमोंकी एक कठोर और अटल नियति ही इस इतिहास-चक्रको चला रही है—मनुष्यकी स्वतन्त्र इच्छाकी उसमें प्रतिष्ठा और मान्यता नहीं? प्रकृति (अचेतन या अपेक्षाकृत कम अचेतन सृष्टि) तो अवश्य अटल नियमोंमें जकड़ी हुई, अबाध गतिसे चलती हुई हमें प्रतीत होती है। पृथ्वी सूर्यके चारों ओर अश्रान्त गतिसे चक्कर लगाती रहती है, अटल नियमसे प्रतिदिन प्रकाशका उदय होता रहता है, फिर उत्थानात्मक विकास, फिर पतनोन्मुख गति और फिर अन्त। क्या इतिहासकी गति भी इसी प्रकार नियम बद्ध नहीं—इतिहास, जिसका क्षेत्र स्वयं यह प्रकृति है और जिस क्षेत्रमें खेलनेवाला मानव स्वयं प्रकृतिमें से उद्भूत और विकसित प्रकृतिका ही एक अंग है (विकासवाद)? व्यक्ति स्वयंका भी तो जन्म, विकास और अन्त होता है—हमने देखा होगा सभ्यताओंकी भी तो यही गति रही है—अनेक सभ्यताओंका उदय हुआ, उत्थानात्मक उनका विकास हुआ, फिर पतनोन्मुख गति और फिर अन्त। तो इतिहासकी गतिके कुछ नियम हैं? यदि हैं तो वे नियम क्या हैं? क्या इन नियमोंकी जानकारी भविष्यमें हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकती है? उनकी जानकारीसे क्या हम घटना-चक्रको बदल सकते हैं? या वे नियम स्वयं अटल हैं—हमें ज्ञात हों, न हों—जो कुछ होना है, वह तो होगा ही?

५० हजार वर्षोंके अनुभवकी थाती मानवके पास होते हुए भी, अभी तक वह इस स्थितिको प्राप्त नहीं हुआ है कि वह सम्पूर्ण ज्ञानका दावा कर सके। आखिर ज्ञान भी तो सतत वर्धनशील है, विकासमान है। फिर भी, महान् दार्शनिकोंने, विज्ञानवेत्ता एवं इतिहासवेत्ताओंने, इतिहासकी गतिके विषयमें अपनी कुछ धारणाएँ बनाई हैं—अपने कुछ अनुमान लगाये हैं। हम इन्हींकी संक्षेपमें कुछ चर्चा करके उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर ढूँढ़नेका प्रयत्न करेंगे।

आदर्शवादी आध्यात्मिक विचारधारा

प्राचीन कालमें भारत, चीन एवं ग्रीसके मनीषियोंपर प्राकृतिक कार्य-कलापका प्रकृतिमें दिनानुदिन, वर्षानुवर्ष होनेवाले व्यापारोंका गहरा प्रभाव पड़ा—'रात और दिनका चक्र, गर्मी और सर्दीका चक्र, जीने और मरनेका चक्र घूमते देखकर उन्होंने यह समझा कि मनुष्यका इतिहास भी चक्रवत् घूमता है।' (बुद्ध प्रकाश)। अर्थात् सृष्टि एक गतिमान चक्र है और इस सृष्टि-चक्रकी गतिमें पड़कर मानवका इतिहास भी

चक्रवत् घूमता रहता है। इससे यह आभास होता है कि मानवकी स्वतन्त्र कोई स्थिति नहीं—उसका इतिहास सृष्टिके उन नियमों (शक्ति या शक्तियों) से बद्ध है जो स्वयं सृष्टिका परिचालन कर रहे हैं।

प्राचीन यहूदी मसीहा और पारसी धर्मगुरुओंकी यह मान्यता थी कि 'इतिहास संसारके रंगमंचपर उस दैवी पद्धति की अभिव्यक्ति है जो मनुष्यको धार्मिक साक्षात्कारके क्षणोंमें झलकती दिखाई देती है लेकिन जो हर तरहसे उनकी समझ और सूझके बाहर है।' (बुद्ध प्रकाश)। इससे भी यही आभास मिलता है कि कोई (?) दैवी पद्धति है, उस पद्धतिके अनुकूल ही मानवके इतिहासकी गति है, उस पद्धतिमें मानव की स्वतन्त्र इच्छा (Free Will) का कोई स्थान नहीं।

वर्तमान कालमें भी इतिहासके मननशील अध्ययनके लिये और इतिहासकी गतिको समझनेके लिये मुख्यतया दो विचार धारायें उत्पन्न हुईं। एक दार्शनिक विचारधारा है जिसके प्रतिनिधि हीगल, कांचे और स्पेङ्गलर हैं और जो इतिहासको 'विश्व की प्रक्रियाओंके पारस्परिक कार्य-कलापकी अभिव्यक्ति' मानते हैं, अर्थात् विश्वमें मानव-निरपेक्ष प्रक्रियायें (Processes) होती रहती हैं—मानवका इतिहास उन विश्वकी प्रक्रियाओंसे स्वतन्त्र नहीं, उनपर आधारित है—मानो मानव अपनी कहानीकी दिशा जिस ओर वह चाहे मोड़ नहीं सकता। उपर्युक्त तीनों मान्यताओंमें आध्यात्मिक भावका समावेश करके तीनोंमें एक आधारभूत साम्य ढूँढ़ा जा सकता है एवं तीनोंको एक 'आदर्शवादी आध्यात्मिक विचारधारा'के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

वैज्ञानिक विचारधारा

दूसरी वैज्ञानिक विचार-धारा है, जिसमें कार्लमार्क्सकी 'इतिहासकी भौतिकवादी व्याख्या' भी शामिल है। इसके अनुसार कुछ आर्थिक, सामाजिक एवं प्राकृतिक क्रियायें, प्रतिक्रियायें होती रहती हैं और उनके अनुरूप ही मानव-इतिहासका विकास होता रहता है। उदाहरणके लिए, समाजमें कुछ वैज्ञानिक आविष्कारोंके फलस्वरूप चीजोंकी उत्पादन-विधिमें परिवर्तन हुआ एवं उससे प्रभावित होकर समाजके सामन्तशाही संगठनका विकास पूँजीवादी संगठनमें हुआ और पूँजीवादी संगठनमें कुछ विरोधी सामाजिक परिस्थितियाँ उत्पन्न होनेसे, जिनका एक विशेष प्रकारके संगठनमें उत्पन्न होना स्वाभाविक था, मानव-इतिहासकी गति किसी-न-किसी रूपमें समाजवादकी ओर उन्मुख हुई। इस विचारमें भी यही बात झलकती है कि मानव बाह्य परिस्थितियोंका गुलाम है—प्रकृतिमें जिस प्रकार पूर्वस्थित नियमोंके अनुकूल भौतिक-रासायनिक प्रक्रियायें (Physico-Chemical Actions) होती रहती हैं—मनुष्य भी उसी प्रकार चूँकि वह प्रकृतिका ही एक अंग है, भौतिक-रासायनिक नियम-बद्ध प्रक्रियाओंसे स्वतन्त्र कोई वस्तु नहीं, या बाह्य प्राकृतिक, सामाजिक परिस्थितियोंसे परे वह कुछ भी नहीं। यह एक प्रकारका आर्थिक, वैज्ञानिक नियतिवाद है। जिस प्रकारकी आर्थिक परिस्थितियाँ होंगी, उसी प्रकारकी इतिहासकी गति; जो प्रकृतिकी गति है वही मनुष्यकी गति।

इतिहास-सम्बन्धी उपर्युक्त विचारधाराओंके अनुसार क्या हम यह मान लें कि मानवकी ५० हजार वर्ष पुरानी अब तककी कहानी केवल किसी अटल नियतिका (चाहे वह नियति दैवी नियति = Religious or Spiritual Determinism हो; या प्रकृति नियति = Natural Determinism हो; या विज्ञान-नियति = Evolutionary Determinism हो) ही चक्र है? क्या मनुष्य इतिहासकी गतिमें केवल एक मशीनके पुर्जेकी तरह चला है? क्या किसी भी अंशमें परिस्थितियों (प्राकृतिक एवं सामाजिक) से स्वतन्त्र उसका अस्तित्व नहीं रहा है? एवं क्या विश्वके विकासका क्रम पूर्व निश्चित है?

मानव चेतनाका उद्भव और उसका अर्थ

ऊपरकी पंक्तियोंमें सृष्टिके विकासकी यह कहानी हम पढ़ आये हैं कि सामान्यतः कल्पनातीत वर्षों तक मूक, निष्प्राण और अचेतन नक्षत्रों, फिर अपने सौरमण्डल, फिर अपनी पृथ्वीका विकास होता रहा। कुछ करोड़ वर्षों पूर्व ही इस निश्चेतन पृथ्वीपर प्राणका आविर्भाव हुआ। प्राणमय जीवोंका विकास हुआ और उनमें चेतना जगी। फिर सर्वोत्तम और मानव अपनी चेतना और चिरंतनके साथ इस भूतलपर उद्भूत

हुआ। उसका उद्भव तो हुआ निष्प्राण, अचेतन प्रकृतिमें से ही; किन्तु इस नवीन प्रकृति-वस्तुमें, एक दृष्टिकोणसे, शेष प्रकृतिसे भिन्न अपना ही स्वतन्त्र अस्तित्व था और अपना ही स्वतन्त्र एक व्यक्तित्व। सत्य है कि प्रकृतिसे पृथक् उसकी कोई स्थिति नहीं, प्रकृतिके वातावरण और गतिमें ही वह फूलता-फलता है और उसीमें उसका विकास होता है, किन्तु यह होते हुए भी उसके अन्दर एक चेतना होती है और इस चेतना द्वारा उसको शेष सृष्टिसे पृथक् अपने अस्तित्वकी अनुभूति होती है, और इसके कारण वह समस्त सृष्टिको अपने ही एक दृष्टि-विन्दुसे देखता है—मानवमें जब ऐसी चेतनाका उदय हुआ तो उस चेतनाने उसमें और शेष प्रकृतिमें एक आधारभूत गुणात्मक भेद उत्पन्न कर दिया। इस चेतनाकी जाग्रतिके बाद ही निष्प्रयोजन प्रकृतिमें मानो किसी प्रयोजनकी प्रतीति होने लगी। आखिर इस सृष्टिमें कुछ तो, कोई तो ऐसा आया जो स्वयं इस सृष्टिका अंग होते हुए भी सृष्टिके सम्पर्कसे स्वयं अपने पृथक् सुख-दुःखकी अनुभूति तो करता था—सृष्टिको समझनेका प्रयत्न तो करता था। इस प्रकार शेष प्रकृतिके गुणसे भिन्न अपने ही व्यक्तित्वके स्वतन्त्र अस्तित्वमें, अपनी स्वतन्त्र चेतनामें उसकी चिन्तन-स्वतन्त्रता और कर्म-स्वतन्त्रता भी निहित है। अर्थात् उसके लिये यह आवश्यक नहीं कि प्रकृतिकी गति-विधिमें या समाजकी गति-विधिमें शेष प्रकृतिके उपादानोंकी तरह वह निस्सहाय (Passively) बहता और सरकता चला जाय और स्वयं अपनी इच्छानुसार कुछ भी न कर सके।

किन्तु यह प्रश्न उठ सकता है और यदि गहराईसे देखें तो ऐसा ज्ञात भी होगा कि मानव स्वयं 'अपनी इच्छा' बनानेमें स्वतन्त्र नहीं है। वंशानुवंशसे प्राप्त उसके शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक गुण, उसकी जन्मजात वृत्तियाँ और वे सब सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ और वातावरण जिनमें पैदा होनेके बाद वह पलता और बड़ा होता है—ये सब ही उसकी 'इच्छा'के निर्णायक हैं। उसकी इच्छाका स्वतन्त्र अस्तित्व फिर कहाँ रहा ? ये सब बातें होते हुए भी पंडितों, वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकोंने ऐसा पता लगाया है कि मनुष्य कई अंशोंमें अपनी इच्छामें और अपना कर्म करनेमें स्वतन्त्र है। मैकेनिक भौतिकवादी—वैज्ञानिक भौतिकवादी नहीं—एवं कर्मसिद्धान्तवादी कार्यकारणकी ऐसी निश्चित अटूट शृंखला की कल्पना कर सकते हैं कि इस शृंखला-बन्धनसे मनुष्य किंचित्मात्र भी स्वतन्त्र नहीं हो सकता—इस शृंखला द्वारा निर्दिष्ट राहसे किंचितमात्र भी इधर-उधर नहीं डिग सकता। मानो या तो वह उन्हीं प्राकृतिक नियमोंसे बंधा हुआ है जिनसे द्रव्य-पदार्थके अणु-परमाणु परिचालित होते हैं—या वह कर्म-नियमसे बाधित है। स्वतन्त्र न तो वह इच्छा कर सकता है,न कोई कर्म ; उसका प्रत्येक कर्म निश्चय किसी पूर्व कारणका फल है, वह कर्म अपनेमें स्वतन्त्र इच्छाका फल नहीं। यह कहा जा सकता है कि हम जो कुछ चाहें कर सकते हैं, हमको रोकनेवाला कौन ; किन्तु यहीं प्रकृति या कर्म-कारण आ धमकता है—ठीक है 'आप जो चाहें कर सकते हैं, किन्तु आप जैसा चाहना चाहें नहीं चाह सकते।' अर्थात् आप अपनी चाहमें ही स्वतन्त्र नहीं हैं—आपकी चाह ही प्रकृति या पूर्वकार्य-कारण द्वारा निर्दिष्ट हो चुकी है। आप जीवकोषों (प्रकृतिके परमाणुओं) के या कर्मफलके दास हैं। 'माना हम कुछ ऐसे जीवकोषों (Cells) के दास हैं जो बहुत प्रबल हैं,—जीवकोषोंमें यह बल कुल-क्रम (Heredity) वातावरण, शिक्षा तथा अन्य अनेक कारणोंसे आता है। यह दास्य हमारा पूरा और एकान्त होता परन्तु इसको रोकनेवाली एक विचित्र शक्ति हममें है, जिसको हम इच्छा-शक्ति या संकल्प कहते हैं। इच्छाशक्तिसे हम मस्तिष्कके चाहे जिन जीवकोषोंको शान्त कर सकते हैं और चाहे जिनकी क्रिया-शक्ति बढ़ा सकते हैं।' इस इच्छा-शक्ति, इस संकल्पको निर्धारित करनेमें हम स्वतन्त्र हैं। वैज्ञानिकोंने यह पता लगाया है कि प्रकृतिका अन्तिम उपादान विद्युत्कण (Electron) स्वयं कभी-कभी प्रोटोन (+ विद्युत्कण) के चारों तरफ घूर्णित होनेकी अपनी निश्चित परिधिका उल्लंघन कर जाता है अर्थात् प्रकृतिके स्वयं निर्दिष्ट मार्गको छोड़कर स्वेच्छासे और किधर ही दौड़ पड़ता है—यद्यपि ऐसा होता बहुत कम है। स्वयं प्रकृतिके इस अद्भुत व्यापारमें मनुष्यकी इच्छा और कर्म-

स्वातन्त्र्यके वैज्ञानिक आधारकी कल्पना की जाती है—वह मनुष्य जिसका आदि उपादान प्रकृतिकी तरह स्वयं गतिमान विद्युत्कण (इलक्ट्रोन-प्रोटोन) ही है।

अतएव आज वैज्ञानिक आधारपर हम यह मान सकते हैं कि कुछ अंशों तक वास्तवमें मनुष्य अपनी इच्छा और कर्ममें अवश्य स्वतन्त्र है। ऐसी कल्पना तो हम कर सकते हैं कि शुद्धचित्त (आत्म-संयमी) महामानव तो अपनी इच्छा और कर्ममें पूर्ण स्वतन्त्र हो, एवं साधारण मानव अपनी इच्छा और कर्ममें 'बहुत कम अंश' तक ही स्वतन्त्र हो, किन्तु किसी रूपमें यह बात मान लेनेपर कि मनुष्य बहुत कुछ अंशों तक अपनी इच्छाओं और कर्ममें स्वतन्त्र है, हम यह धारणा बना सकते हैं कि मानवकी कहानीकी गति, इतिहासकी प्रगति—केवल एक कल्पित सृष्टि-चक्र, एक दैवी पद्धति या अचेतन प्रकृतिके अटल नियम, या बाह्य आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियोंपर आधारित नहीं। मानव-कहानीकी गतिमें, मानव-इतिहासकी रचनामें मनुष्यकी अपनी इच्छाका काफी जबरदस्त दायित्व रहा है। दूसरे शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं कि मानव-इतिहासकी अनेक घटनायें जैसी वे घटित हुईं, वैसी घटित होनेमें अन्य कारणोंके साथ यह भी एक कारण था कि उन घटनाओंसे सम्बन्धित मनुष्योंने अमुक प्रकारसे अपनी इच्छा और कर्म-स्वातन्त्र्यका प्रयोग किया।

इतिहासकी गति किस ओर ?

आज हमें चेतन ज्ञान हुआ है कि मनुष्यके भाग्यका (व्यक्तिगत और सामाजिक रूपसे) एवं इतिहासकी गतिका विधायक पूर्णरूपसे केवल कोई बाह्य परिस्थितियाँ, या दैविक एवं प्राकृतिक नियति या कार्य-कारण रूपमें 'कर्म फलका सिद्धान्त' नहीं है, किन्तु इसका विधायक कई अंशोंमें मनुष्य स्वयं है। यह ज्ञान हम अनुपम वर्त्तमान साधनोंसे जन-जनमें प्रचारित कर सकते हैं। वर्त्तमान सभ्यता हमारे सामने है, हजारों वर्षोंके ज्ञान-विज्ञान, कला और अनुभवकी विरासत इसको मिली हुई है। पिछले ही दो-तीन सौ वर्षोंमें इसने अभूतपूर्व उन्नति की है—प्राकृतिक विज्ञानके क्षेत्रमें, सामाजिक विज्ञानके क्षेत्रमें, कला-साहित्य और दर्शनके क्षेत्रमें। और यह सभ्यता द्रुत गतिसे गतिमान भी है। 'नियतिवादसे' विश्वास करते हुए तो अपने आपको बेबस मानकर हम सभ्यता की इस सम्पूर्ण गतिमान प्रक्रियाको इसके भाग्यपर छोड़ दे सकते हैं और यह कल्पना कर सकते हैं कि जिस प्रकार अनेक प्राचीन सभ्यताओंका उदय और विकास होकर अन्त हो गया, उसी प्रकार यह सभ्यता भी नष्ट होगी और मानव एक बार फिर अन्धकारमें लुप्त होगा।

किन्तु आज हमें नव जाग्रत अनुभूति हुई है कि हमारे और हमारी गतिके विधायक हम स्वयं भी हैं—केवल कोई नियति ही नहीं। एक महान् अवसर हमें मिला है, हमको अनेक साधन उपलब्ध हैं। यदि हम चाहें तो अपने भविष्य के निर्माता हम स्वयं बन सकते हैं, जिस ओर हम चाहें अपनी सभ्यताकी दिशाको मोड़ सकते हैं, जिस प्रकार चाहें अपनी कहानी लिख सकते हैं। जन-जनको इस तथ्यका परिचय कराकर हमें इस इतिहास-प्रदत्त अवसरसे लाभ उठाना चाहिए और हमें व्यक्तिगत और सामूहिक रूपसे क्रियाशील बनना चाहिए कि मानव कहानीकी प्रगति उत्तरोत्तर उचित दिशाकी ओर हो। अबतक हमने देखा है कि सभ्यता की गति बराबर दो दिशाओंकी ओर बनी रही है—एक दिशा रही है रचनाकी, प्रेमकी और सहकारकी ; दूसरी दिशा रही है विनाशकी, द्वेषकी, प्रतिद्वन्द्विता की। आज भी हम यही देख रहे हैं। संसारके प्राणी एक ओर मिल रहे हैं एक दूसरे को सहायता देनेके लिये ; दूसरी ओर विलग हो रहे हैं एक दूसरेका विनाश करनेके लिये। एक ओर अन्तर्राष्ट्रीय सामूहिक प्रयत्न हो रहे हैं कि सब देशोंके लोगोंको स्वास्थ्यके नियमोंका ज्ञान हो, बीमारियोंसे बचनेके उपाय उन्हें विदित हों, उचित स्वास्थ्यप्रद और पौष्टिक भोजन उनको उपलब्ध हो, ज्ञानकी किरणें उनके अन्तरको प्रकाशित करें ;—दूसरी ओर बन रहे हैं विध्वंसक वायुयान, जहरीले गैस और प्रलयंकारी अणु-बम। किन्तु बड़ी बात तो यह है कि आज हमें इस बातकी चेतना है कि दो विरोधी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं—एक कल्याणकारी दूसरी विनाशकारी। यह चेतना हमें आज है। क्या हम क्रूर विनाश-कारी वृत्तिको रोक पायेंगे, उसपर

विजय प्राप्त कर पायँगे ? मानव ऐसा करनेमें स्वतन्त्र है ;— वह अपनी प्रतिष्ठा बनाये रख सकता है। माना बहुत अंशों तक वह प्राकृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियोंमें बँधा हुआ है—इसके अतिरिक्त माना वह अपनी व्यक्तिगत जन्मजात एवं जातीय (Racial) सांस्कारिक वृत्तियोंसे भी सर्वथा मुक्त नहीं, किन्तु फिर भी नैतिक संयम (Moral Discipline) द्वारा वह एक स्वार्थरहित, अनासक्त, शुद्ध मानसिक बौद्धिक स्थिति तक पहुँच सकता है, तब ही अपनी इच्छा और क्रिया में वह वस्तुतः स्वतन्त्र होगा और तब ही उसमें से ऐसे कार्य उद्भूत होंगे जो लोक-संग्रहकारी और कल्याणकारी हों। साधारणजन भी—उनमें शिक्षा और ज्ञानका प्रसार हो जानेपर, इच्छा और कर्म-स्वातन्त्र्यमें निहित व्यक्ति गत उत्तरदायित्वका तथ्य उनके समक्ष लेने पर—समाज-हितकारी कर्मोंकी ओर प्रवृत्त हो सकते हैं, एवं लोक-विनाशकारी प्रवृत्तियोंको रोक सकते हैं।

सृष्टि : इतिहासका उद्देश्य ?

अन्तमें व्यक्तिगत रूपसे हम तो यही सोचनेको बाध्य हुए हैं कि यह चेतनामय प्राणी ही विश्वका केन्द्र है। प्राणीकी इस चेतनाको पूर्ण स्वतन्त्रताकी अनुभूति हो—यह अनुभूति ही पूर्ण आनन्दकी अनुभूति है। फिर हम सोचते हैं कि इन हजारों वर्षोंमें किन्हीं विरले व्यक्तियोंको ही इस पूर्ण स्वतन्त्रता की अनुभूति हुई हो, शेष असंख्य मानवजन तो यों-केयों ही रहे हैं। यहाँ बोधिसत्वके हमें ये शब्द याद आते हैं, 'मैंने मुक्ति पा ली तो क्या हुआ, इस पृथ्वीके मानव तो अभी पीड़ित ही हैं। जब तक इन सबको मुक्ति नहीं मिल जाती तब तक मैं जीवित रहूँगा।' आज योगी अरविन्दने यह साधना की है—यह अनुभूति की है कि मानवमें (जो एक चेतनामय प्राणी है किन्तु जिसकी चेतना अभी तक मुक्त और स्वतन्त्र नहीं है) उसकी चेतनाका विकास इसी ओर हो रहा है कि वह चेतना (Consciousness) बन्धनोंसे मुक्त होगी, पूर्ण-स्वतन्त्र होगी—वह दैवी चेतना बनेगी। क्या हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि मानव कहानीकी गति इसी ओर हो ? करोड़ों वर्षों तक 'प्राण'का यही प्रयास रहा है कि वह शरीर जिसमें वह वास करता है—उस शरीरकी गति मुक्त हो—स्वतन्त्र हो। करोड़ों वर्षोंके परीक्षण, परिश्रमके बाद 'प्राण'को ऐसा शरीर प्राप्त हुआ जो पूर्ण था, जो स्वतन्त्र था, जो मुक्त-रूपसे हिल-डुल सकता था। वह शरीर था मानव शरीर ; किन्तु उस शरीरमें प्राणके साथ-साथ एक और चिन्ता मानवको मिली—वह चिन्ता थी उसकी 'चेतना'। मानवकी चेतना मानव को बेचैन रखती है। साथ-ही-साथ यदि चेतना न हो तो इस सृष्टिकी स्थिति ही निरर्थक है—यह हो, न हो। जबतक इस सृष्टिको देखनेवाली, इसका अनुभव करनेवाली 'चेतना' है, तब तक ही इसकी स्थितिका, इसकी गतिका अर्थ है—अन्यथा कुछ नहीं।

किन्तु मानवकी यह 'चेतना' बन्धनमें है, इसपर कुछ दबाव-सा रहता है, इसपर कुछ भार-सा रहता है। इसकी गति स्वतन्त्र नहीं—निर्द्वन्द्व यह उल्लसित नहीं हो पाती, निश्चिन्त यह फूल नहीं उठती—मुक्त यह समस्त सृष्टिको अपनेमें समा नहीं पाती।

'मानवकी कहानी' उस प्रयासकी कहानी है—उस प्रगति की कहानी है, जो वह कर रहा है 'चेतना'की मुक्तिकी ओर—कि चेतना भारमुक्त हो, एक बार विहँस उठे निश्चिन्त होकर।

किन्तु क्या यह स्थिति अन्तिम स्थिति (Last Stage) होगी ? नहीं। अध्यात्म समाधि (मुक्ति) में मग्न रहते हुए भी इस तथ्यसे दृष्टि ओझल नहीं की जा सकती कि इस सृष्टि में पदार्थ और गति (Matter and Motion) अविभाज्य हैं। तामस-से-तामस पदार्थ भी, प्रत्यक्ष गतिहीन-से-गतिहीन पदार्थ भी अप्रतिहत गतिसे घूर्णित असंख्य विद्युदणुओंका एक समूहमात्र है। गतिका अर्थ है परिवर्तन ; क्षण-क्षण परिवर्तन-शीलता ही गति है। परिवर्तन ही जीवन है, परिवर्तन ही सृष्टि ; परिवर्तन-हीनता मृत्यु है, शून्य है। इस परिवर्तन-शीलतामें सृष्टिके किसी एक अन्तिम 'निश्चित' उद्देश्यका कुछ भी अर्थ नहीं। इस संसारमें यदि हम कोई आदर्श स्थिति भी ले आयँ, प्राणिमात्र 'आध्यात्मिक' स्वतन्त्रता भी पा ले, सृष्टिमें 'राम राज्य' भी स्थापित हो जाय,—किन्तु वह आदर्श स्थिति स्वयं प्रतिपल परिवर्तनशील होगी। उद्देश्य यदि कोई हो सकता है तो कोई विकासमान उद्देश्य ही हो सकता है—प्रकृतिके साथ-साथ युग-युगमें परिवर्तनशील उद्देश्य।

एक प्राचीन नगरकी सैर

पू० सोमसुन्दरम्

प्राचीन तमिल साहित्यके पांच महाकाव्योंमें 'शिलप्पधिकारम' का प्रथम स्थान है। शिलप्पधिकारमका रचना-काल ईसाके बाद तीसरी या चौथी सदी माना गया है। इसके रचयिता महामुनि इलंगो चेर-राजवंशके थे। इलंगो शब्दका अर्थ है छोटा राजकुमार या राजभ्राता। यद्यपि चेर-राजवंश वैष्णव धर्मानुयायी था, फिर भी इलंगो जैन-धर्म अपनाकर यति बन गये थे। इसी कारण वे इलंगो मुनिके नामसे विख्यात हुए।

शिलप्पधिकारम काव्यकलाकी दृष्टिसे जहाँ संसारके सर्वोत्कृष्ट महाकाव्योंमें से है, वहाँ प्राचीन भारतकी संस्कृति तथा सभ्यताको जाननेमें भी उससे अमूल्य सहायता मिलती है।

इलंगोंके समयमें दक्षिण भारत या यों कहना चाहिए कि सम्पूर्ण भारतमें जो संस्कृति एवं सभ्यता प्रचलित थी, वह द्राविड एवं आर्य-संस्कृतियोंका सुखद सम्मिश्रण था। उस समय तमिलनाडमें तीन राज्य थे—चेर, चोल और पाण्ड्य। वहाँ शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध एवं जैन धर्मोंका समान प्रचार था। भिन्न-भिन्न धर्मोंके अनुयायी होते हुए भी, सभी धर्मावलम्बी वेदोंका समान सम्मान करते थे। इन धर्मोंमें कोई आपसी मुठभेड नहीं होती थी। आर्योंकी वर्णाश्रम-व्यवस्था दक्षिण भारतमें जड़ जमा चुकी थी। पर ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंमें झगड़ा नहीं होता था। इन सब बातोंके अतिरिक्त व्यापार, उद्योग-धन्धों, राज्य-व्यवस्था, कला-कौशल आदिमें भारत उन दिनों इतनी उन्नति कर चुका था कि पढ़कर आश्चर्य और गर्व होता है। दक्षिण भारतका वह स्वर्णयुग था।*

शिलप्पधिकारमका महाकाव्य तीन खण्डोंमें विभक्त है। प्रत्येक खण्डके कई अध्याय हैं जो 'गाथा'के नामसे उल्लिखित हैं। इनमें 'इन्द्रोत्सव गाथा' ऐतिहासिक दृष्टिसे भारी महत्त्व रखती है, क्योंकि उन दिनोंकी नगर-रचना, राज्य-व्यवस्था, समाजका गठन, लोगोंकी रुचियाँ, संस्कृति एवं सभ्यतापर इसमें विस्तृत प्रकाश डाला गया है। साथ ही उन दिनों भारतने व्यापार और उद्योग-धन्धोंमें जो महान् उन्नति की थी, उसकी भी झलक इसमें पाई जाती है।

स्मरण रहे कि यद्यपि यह वर्णन ईसवीकी चौथी सदीके एक कवि द्वारा किया गया है, फिर भी उसका अर्थ यह नहीं कि उससे पहलेकी स्थिति इससे बहुत भिन्न थी। संस्कृति एवं सभ्यताका विकास क्रमिक होता है; कोई भी संस्कृति शून्यसे उत्पन्न नहीं हो सकती। अतः यह मानना अनुचित नहीं होगा कि इलंगोने जिस संस्कृति एवं सभ्यताका वर्णन किया है, वह उनसे पहले कई शताब्दियोंसे प्रचलित थी।

इन्द्रोत्सव

ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्रोत्सव भारत भरका समान राष्ट्रिय त्योहार होता था। महाभारत और श्रीमद्भागवतमें कई प्रसंगोंमें उपमाके रूपमें इन्द्रध्वजाओंका उल्लेख किया गया है। उदाहरणतः जब युधिष्ठिरने विषैले तालाबके किनारे मृत पड़े हुए अपने चारों भाइयोंको देखा, तब उन्हें वे ऐसे प्रतीत हुए, जैसे उत्सवके बाद इन्द्रध्वजाएँ। ऐसे बहुतसे प्रसंग महाभारतमें पाये जाते हैं।

शिलप्पधिकारममें जैसा वर्णन है, उससे मालूम होता है कि इन्द्रोत्सव राजभक्तिके प्रदर्शनका त्योहार था। देवराज इन्द्र राज-सत्ताका प्रतीक माना जाता था। इसी कारण इन्द्रोत्सवमें राजाकी जयकी कामना प्रत्येक नागरिक द्वारा की जाती थी। इस उत्सवमें विभिन्न धर्मानुयायी सभी प्रजाजन सम्मिलित होते थे। यह त्योहार वसन्त ऋतुमें मनाया जाता था, इसलिए खूब रँगरलियाँ मनाई जाती थीं। युवक-युवतियाँ प्रेमोल्लासभरे स्वच्छन्द विचरण किया करते थे।

---

* उत्तर भारतमें उस समय गुप्त साम्राज्य फूल-फल रहा था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि गुप्तकाल भी स्वर्णयुगके नामसे विख्यात है।—लेखक

चोल राजधानी

चोल-राजधानी, पुहार उन दिनों एक भारी बन्दरगाह था। अब तो उसके स्थानपर केवल एक छोटा-सा गाँव शेष रह गया है। यह वह स्थान था जहाँ कावेरी नदीका समुद्रमें संगम होता है। इस कारण इस नगरको 'काविरिपूम्पट्टिनम' भी कहते थे। आजकल लन्दन, न्यूयार्क जैसे शहरोंका जो महत्त्व है, वही महत्त्व उन दिनों पुहार नगरका भी था।

महाकवि इलंगो, इन्द्रोत्सवके दिन, हमें इस अद्भुत नगर की सैर कराते हैं। आइए, हम भी भारतके इस प्राचीन नगर की गरिमाका निरीक्षण करें।

पुहार नगर मुख्यतः तीन हिस्सोंमें बँटा था। १. समुद्रतट के साथ-साथ 'मरुवूर पाक्कम' जो व्यापार प्रधान था ? २. 'पट्टिन पाक्कम' जहाँ राजप्रासाद तथा प्रमुख नागरिकोंके भवन थे। और ३. इन दोनोंके बीचमें 'नालंगाडी' नामकी हाट जहाँ बाजारके अलावा पाँच प्रमुख मन्दिर तथा एक रत्न-जड़ित स्वर्णमण्डप थे।

बन्दरगाहका वर्णन

प्रातःकालका सुखद समय है। वसुधा-सुन्दरीके शरीरपर अन्धकार रूपी जो पर्दा पड़ा था, दिनकरके किरण-करोंने उसे हटा दिया है। समुद्रतटके साथ-साथ हम चलें तो पहले व्यापारियोंके ऊँचे-ऊँचे मकान नजर आते हैं। इनके बाद शिल्पकारितासे अलंकृत भव्य भवन हैं। इन भवनोंके पास, नगरकी एक तरफ यवनोंकी* बस्ती है। उनके भव्य भवन इतने ऊँचे और इतने सुन्दर हैं कि राह चलते-चलते हमारे क़दम अचानक रुक जाते हैं और हम उनका सौन्दर्य निहारे बिना आगे बढ़ नहीं पाते। इन यवनोंके पास ऐश्वर्यकी अटूट खान है।

इन यवनोंकी बस्तीके पास ही उन विदेशी व्यापारियोंके मिले-जुले भवन हैं, जो समुद्री व्यापार द्वारा धन कमानेकी इच्छासे स्वदेश छोड़कर आये हुए हैं।

इस विदेशी बस्तीके आगे नगर-वीथियाँ हैं जिनमें नगरकी आम जनता रहती है। नगरके लोग सम्पन्न हैं और विलासता प्रिय भी, इसलिए प्रसाधन-सामग्रीकी बड़ी माँग है। यही कारण है कि नगर-वीथियोंमें प्रवेश करते ही हम देखते हैं— सुवास-भरा कुंकुम, शरीर तथा मुखपर लगाया जानेवाला सुगन्धि-चूर्ण,* चन्दन, तरह-तरहके फूल, अगरु आदि सुगन्धित धूपद्रव्य और अन्य सुवासभरी वस्तुएँ बेचनेवाले लोग फेरी लगाते हुए घूम रहे हैं।

नगर-वीथियोंके आगे रेशम, ऊन, रुईके सूत आदिसे महीन कपड़े बुननेवाले कुशल जुलाहोंकी बस्ती दिखाई देती है। इस बस्तीको छोड़कर आगे चलते हैं तो विशाल भाण्डार मिलते हैं जहाँ रेशमी वस्त्र, मणियाँ, मोती, सोना-चाँदी आदिकी असंख्य राशियाँ भरी पड़ी हैं। इसके बाद अनाज आदि दैनिक उपयोगकी वस्तुओंकी दुकानें हैं जिनमें प्रत्येक अनाजके अलग-अलग अम्बार लगे हैं।

गल्ला-मण्डीके आगे मछलीमारोंकी बस्तियाँ हैं जहाँ मालपुआ, सत्तू आदि छोटी-मोटी खानेकी चीज़ोंके साथ-साथ ताड़ी, मछलियाँ आदि भी बेची जा रही हैं। एक तरफ़ सफ़ेद नमक बेचा जा रहा है, तो दूसरी तरफ़ पान, सुपारी और पानके साथ खाये जानेवाले पाँच प्रकारके सुगन्धि-द्रव्य बेचे जा रहे हैं। इन्हीं दुकानोंके पास तरह-तरहके मांस बेचनेवालोंकी भी दुकानें हैं, इसलिए यहाँका वातावरण ही 'मांसमय' प्रतीत हो रहा है।

कारीगरी और कला-कौशल

इस बस्तीके आगे विभिन्न कारीगरोंकी बस्तियाँ हैं। इनमें काँसेके बर्तन तथा मूर्त्तियाँ बनानेवाले, ताँबेके बर्तन बनानेवाले, काठकी चीज़ें बनानेवाले बढ़ई, लोहेके काम करनेवाले लुहार,

* यद्यपि तमिल साहित्यमें यवन शब्द प्रायः सभी विदेशियोंके लिए प्रयुक्त हुआ है, तो भी मुख्यतः यूनान (ग्रीस) के लोगों ही का उस नामसे यहाँ उल्लेख किया गया है। याद रहे, उन दिनों अरब, चीन, यूनान, अफ्रीका आदि देशोंके साथ तामिलनाडका व्यापारिक सम्बन्ध था।—ले०

* 'फ़ेस-पाउडर' कोई नई ईजाद नहीं है। बहुत प्राचीन कालसे इसकी प्रथा भारतमें प्रचलित थी। तमिलके प्राचीन साहित्यमें इस चूर्णके बनानेके कई तरीके मनोरञ्जक रूपमें वर्णित हैं। इस विषयपर कई सुन्दर लोकगीत भी हैं।—ले०

चित्रकार, मिट्टीकी मूर्त्तियाँ व बर्तन बनानेवाले कुम्हार, सोनेकी कारीगरी करनेवाले सुनार, जहाजोंका निर्माण करनेवाले जहाजी, कपड़ेकी सिलाई करनेवाले दर्जी, चमड़ेकी सिलाई करनेवाले मोची (चमड़ेसे जूते-चप्पलके अलावा अन्य वस्तुएँ भी बनाई जाती थीं ।), स्त्रियोंकी साड़ियों और पुरुषोंके वस्त्रोंमें बेल-बूटेकी कारीगरी करनेवाले कुशल कारीगर आदि रहते हैं।

इनको देखते हुए आगे बढ़ते हैं तो गवैयों और बाजे बजानेवालोंकी बस्तियाँ हैं। बंसी, वीणा आदि वाद्योंके विशारद यहाँ रहते हैं। ये अलौकिक संगीत-कलाके मर्म जानते हैं और विशुद्ध संगीतके मार्ग-प्रदर्शक हैं। (प्राचीन तामिलनाडमें संगीतज्ञोंकी एक अलग जाति थी जिसे 'पाणर' कहते थे। पाण जातिकी प्रशंसामें कवि इलंगोंने जिन सम्मान-पूर्ण विशेषणोंका प्रयोग किया है, उनसे इस बातका पता चलता है कि उन दिनों संगीतको कितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।)

इन सब कारीगरोंके मुहल्लोंके साथ-साथ छोटी-मोटी कारी-गरी करनेवाले अन्य कारीगरोंकी भी बस्तियाँ मरुवूर पाक्कममें हैं।

राज-पथ व रथवीथियाँ

अब हम पट्टिनपाक्कमका भी जरा सौन्दर्य निहारें जहाँ राजा, ब्राह्मण तथा विशिष्ट नागरिक तथा धनी लोग रहते हैं। यहाँ प्रवेश करते ही विशाल राजपथ हमारा स्वागत करता है, जो राज-प्रासाद तक जाता है। राजभवन इस भागका मध्यबिन्दु है और उसके चारों तरफ़ चौकोर आकारकी सड़कें बनी हुई हैं। ये सड़कें खूब विशाल और पक्की हैं, जिससे ध्वजा फह-रानेवाले बड़े-बड़े रथ उनपर चल सकें। इस मार्गमें पहले बड़े-बड़े धनियोंके ऊँचे भवन हैं। धनियोंके मुहल्लेके आगे ब्राह्मणोंकी गलियाँ हैं। खानदानी भूमिपतियों (सामन्तों) के भवन इनके आगे हैं। इनके बाद वैद्यों, ज्योतिषियों आदिके अलग-अलग मुहल्ले हैं।

राजघरानेके तथा धनीमानी लोग यहीं रहते हैं, इसलिए मूल्यवान रत्नोंकी कारीगरी करनेवाले रत्नशिल्पी भी यहीं रह रहे हैं। साथ-साथ राज-प्रासाद तथा दरबारके विभिन्न कर्म-चारियोंके भी मकान यहीं हैं। इनकी तारीफ़ भी सुन लीजिए। रथ हाँकनेवाले सूत, राजाकी स्तुति और चापलूसी करनेवाले मागध और वैतालिक, घंटी बजाकर समयकी सूचना देनेवाले सुन्दर स्वांग भरनेवाले नट और नटियाँ, दरबारी मंचपर नाचनेवाली वारांगनाएँ, भवनोंके अन्दर (अन्तःपुरमें) नाचनेवाली नर्त्तकियाँ, फूल गूँथनेवाली दासियाँ, काम-काज करनेवाली परि-चारिकाएँ, दरबारी गवैये और तरह-तरहके बाजे बजानेवाले साजिन्दे, हँसी-मज़ाक करनेवाले मसखरे आदि इनमें मुख्य हैं। इन सबके अलग-अलग मुहल्ले बने हुए हैं। प्रत्येक मुहल्लेमें प्रवेश करते ही पता चल जाता है कि वहाँके रहनेवालोंका पेशा क्या है।

इन मुहल्लोंके आगे, राजप्रासादके चारों तरफ़ सैनिकोंके निवास-स्थान हैं। ये इस क्रमसे रहते हैं—पहले घुड़सेनाके वीर, फिर हाथीसेनाके वीर, उनके बाद रथसेनाके वीर और अख़ीरमें पैदल सेनाके वीर। इन सैनिकोंके रोजके अभ्यासके लिए यहाँ विशाल मैदान बने हुए हैं और सड़कें भी काफ़ी चौड़ी हैं।

पट्टिनपाक्कममें केवल धन, बल और सत्ता ही का निवास नहीं, बल्कि यशस्वी महात्मा लोगोंके भी चरण-रजसे वह पवित्र हुआ है। इस कारण कवियोंने इसका यश गाया है।

हाट और मन्दिर

मरुवूरपाक्कम व्यापार और उद्योगका केन्द्र है और पट्टिन पाक्कम धनका। इन दोनोंका संगम स्थान है नालंगाडी नामकी दैनिक हाट।

कवि कहते हैं कि यह विशाल हाट तरुओंकी घनी छाँहमें बनी है। माल बेचनेवालों और खरीदनेवालोंकी भीड़ और शोर-गुलसे ऐसा मालूम होता है, मानो दो राजाओंकी सेनाएँ युद्धक्षेत्रमें आमने सामने भिड़ी हुई हों।

इस हाटके अलावा नालंगाडीमें कई उपवन हैं जहाँ तरह-तरहके फलदार वृक्ष और रंग-बिरंगे सुवास भरे फूलोंके पौधे लगे हैं। इनके आसपास कई मन्दिर भी बने हैं जिनमें नगर रक्षक भूतका मन्दिर मुख्य है। आज इन्द्रोत्सव है, इसलिए नगरकी कुलीन रमणियाँ उबले हुए चने, मूँग और घीमें पका हुआ चावल मन्दिरकी वेदीमें चढ़ा रही हैं और मधुर स्वरमें

राजाका जयगान गाती हुई निर्लज्जोंकी तरह नृत्य कर रही हैं। वह दृश्य अत्यन्त मनोहर है। दूसरी तरफ लम्बे-चौड़े क़द-वाले सैनिक और सेना-नायकगण उच्चस्वरमें प्रार्थना करते हुए बलि चढ़ा रहे हैं जैसे बिजलियाँ कड़क रही हों।

इस मन्दिरके थोड़ी दूर आगे एक स्वर्ण-मण्डप और सोनेका तोरणद्वार हैं। ये रत्नजटित हैं। प्रतापी चोल राजा करिकालने जब उत्तर भारतकी दिग्विजय यात्रा की थी, तब उसके मित्र वज्र-नरेशने यह मण्डप उपहारमें दिया था। तोरणद्वार मगध-नरेश द्वारा भेंट किया गया था। इन दोनोंकी कारीगरी इतनी बारीक है कि कुशल शिल्पी भी उसकी समता नहीं कर सकते। इसी कारण यह कथा प्रचलित है कि मय नामक दानव-शिल्पीने वज्र और मगध-नरेशोंके पूर्वजोंपर अनुग्रह करके स्वयं इनका निर्माण किया था।

इस विख्यात मण्डपके अलावा पाँच और ऐतिहासिक मण्डप नालंगाडीमें हैं। कविने इन पाँचों मण्डपोंका विस्तृत वर्णन किया है। पर उनमें अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पना ही अधिक है, इसलिए उस वर्णनको हम छोड़ देते हैं।

राज्य-व्यवस्था

इन्द्रोत्सवके दिन राजकुमार, मन्त्रिगण, पुरोहित, वणिक-कुमार, सेना-नायकगण आदि बाजे-गाजेके साथ कावेरीकी पुण्य नदीको जाते हैं और स्वर्ण-कलशमें उस स्वर्णिम नदीका पावन जल भर ले आकर इन्द्रका अभिषेक करते हैं। इसमें राजा स्वयं सम्मिलित नहीं होता, क्योंकि स्वयं ही इन्द्ररूप जो ठहरा!

× × ×

इस प्रसंगमें कविके वर्णनसे और उससे सम्बन्धित अन्य प्राचीन ग्रन्थोंसे इस बातका पता चलता है कि उन दिनोंकी शासन-व्यवस्था कैसे होती थी।

राजा शासन-सत्ताका प्रतीक होता था। पर वह निरंकुश शासन चला नहीं सकता था। उसे परामर्श देनेके लिए दो विशिष्ट समितियाँ होती थीं। एक थी 'पाँच बड़ोंकी परिषद' और दूसरी 'आठ दलोंकी समिति।' मन्त्रिगण, पुरोहित, सेनापति, राजदूत और गुप्तचर विभागके प्रधान, पाँच बड़ोंकी परिषदके सदस्य होते थे। 'आठ दलोंकी समिति'में गणक (हिसाब-विभागके अध्यक्ष), राजप्रासादके प्रबन्धाधिकारी, कोषाध्यक्ष, राजभवनके रक्षक, जन-प्रतिनिधिगण, पदातिनायक, घुड़सेना-नायक और हाथी-सेनानायक होते थे।

शासन-सम्बन्धी प्रत्येक कार्य इन दोनों परिषदोंसे परामर्श लेकर ही किया जाता था। एक तरहसे इनको 'हाउस आफ़ लार्ड्स' और 'हाउस आफ़ कामन्स'के समान समझा जा सकता है।

× × ×

इन्द्रका अभिषेक करनेके बाद सब मिलकर यह शुभकामना करते हैं कि 'हमारे प्रतापी राजा विजयी हों ताकि विशाल संसारमें सुशासन-व्यवस्था स्थापित हो जाय।' यहाँ मधुर संकेतसे यह बताया जाता है कि चोल राजाके शासनमें जैसी सुव्यवस्था है, वैसी चोल-राज्यके बाहर नहीं है। अतः यदि बाहरके देशोंमें भी सुशासन स्थापित होना है तो यह आवश्यक है कि चोलराजा विजयी हो और बाहरके प्रदेश भी चोल-राज्यमें विलीन हो जायँ। साम्राज्यवादका कितना सुन्दर आवरण है!

धार्मिक एकता

नालंगाडीके सभी मन्दिरों तथा शहरके बाहर स्थित यतियोंकी कुटियोंमें इन्द्रोत्सवके उपलक्ष्यमें पूजा-पाठ तथा प्रार्थनाएँ की जा रही हैं। सोलह सौ वर्ष पहले दक्षिण भारत में कैसी धार्मिक एकता पाई जाती थी, इसका सुन्दर उदाहरण इस वर्णनमें मिलता है। महादेवजी, शिवकुमारजी (कार्त्तिकेय), बलराम (बलभद्र) जी, श्यामवर्णवाले भगवान् विष्णु आदिके मन्दिरोंमें तथा राजप्रासादमें सस्वरूपी चारों वेदोंका पाठ करते हुए ब्राह्मणलोग होमाग्निमें आहुति दे रहे हैं। दूसरी तरफ़ भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं तथा अठारह प्रकारके गणोंकी अलग-अलग पूजाएँ हो रही हैं।

एक और तरफ़ बौद्ध-विहारों, जैन-मन्दिरों तथा अन्य पवित्र स्थानोंमें महात्मा लोग धर्मोपदेश दे रहे हैं।

नागरिकोंका हर्षोल्लास

इन धार्मिक स्थानोंको छोड़कर जरा शहरमें फिर घूमकर देखें कि पुरवासी लोग कैसे इस उत्सवको मना रहे हैं।

सभी राजबन्दी मुक्त कर दिए गए, इसलिए बन्दीगृहोंमें भी उत्सवका वातावरण छाया हुआ है। तो फिर नगरका पूछना ही क्या? एक तरफ़ संगीतज्ञ लोग बंसी, वीणा तथा अन्य बाजोंके साथ गाते-बजाते दिखाई दे रहे हैं। दूसरी तरफ़ लोग भेरी-मृदङ्ग आदि बजाते हुए नाच रहे हैं। छोटी-छोटी गलियोंसे लेकर विशाल रथवीथियों तक जहाँ देखो नृत्य, गान और खेल-कूदका दौरदौरा है।

सड़कोंपर रंग-बिरंगे फूल, कुंकुम, चन्दन आदि बिखरे पड़े हैं। उनकी खुशबूसे भरा मलय पवन धीरे-धीरे चल रहा है मानो वह खुद भी उत्सवका मजा लूटना चहता हो। कामदेवकी सेनाओंकी तरह सौन्दर्यकी आभा छिटकाती हुई गौर-वर्ण सुन्दरियाँ तोतली बोलियोंसे प्रेमालाप करती हुई प्रियतमोंके संग घूम रही हैं।

दिन भर शहरमें घूमने-फिरने और रँगरलियाँ मनानेके बाद लोग समुद्र-तटपर जाते हैं। वसन्त पूर्णिमाकी दैवी छटामें प्रेमी युगल और मित्रगण आनन्दपूर्वक समुद्र-विहार करते हैं। इस तरह इन्द्रोत्सव सवेरेसे लेकर सारी रात और अगले दिन तक मनाया जाता है।

× × × ×

शिलप्पधिकारम काव्यके आरम्भमें कवि इलंगो कहते हैं कि पुहार नगर, उत्तरगुरु और नागलोककी तरह भोगभूमि था। इन्द्रोत्सवका उपर्युक्त वर्णन पढ़नेके बाद कविकी इस उक्तिकी सत्यतापर किसे सन्देह हो सकता है?

मनुष्य बन जाओ

संकलन कर्त्ता—भारतेन्दु वेदालंकार

१

१. एक बार तीन चूहे एक ऋषिके पास गए। ऋषिने एक चूहेसे कहा, "तू अन्नके कोठेमें रहता है। उसमें से अधिक प्राण प्राप्त करनेकी अपेक्षा तू निर्बलता प्राप्त कर रहा है। मुझे लगता है कि तू इस क्रियामें अधिक सुधार नहीं कर सकेगा।"

२. दूसरे चूहेसे ऋषिने कहा, "तू पुस्तकोंसे भरी अलमारीमें रहता है। अनेक पुस्तकोंको काट कर खा गया है, फिर भी तेरी बुद्धिमें वृद्धि नहीं हुई। तुझमें भी सुधार सम्भव नहीं है।"

३. तीसरे चूहेकी ओर देखते हुए ऋषिने कहा, "तू तो मन्दिरमें रहता है। परन्तु मन्दिरके सुन्दर जीवनका लेश भी तुझे प्राप्त नहीं हुआ है और तुझमें भी सुधारकी कोई गुंजाइश नहीं है। इसलिए तुम जाओ मनुष्य बन जाओ; क्योंकि मनुष्य समृद्धिमें लीन है पर अधिकाधिक दुर्बल और विद्या पढ़कर मूर्ख बनता जाता है। मन्दिरोंमें दौड़ कर केवल थकता ही

है और कुछ नहीं पाता। तुम्हारी योग्यता का मापदण्ड मनुष्यमें ही मिलता है।"

२

१. तीन शेर एक ऋषिके पास गए। एक से ऋषिने कहा, "मैं तुझे पहचानता हूँ। तूने अकारण ही एक राह चलते मुसाफिरको मार डाला है।"

२. दूसरे शेरसे ऋषिने कहा, "तूने एक आवश्यक सन्देश ले जाते हुए एक घुड़-सवारको धर दबोचा है।"

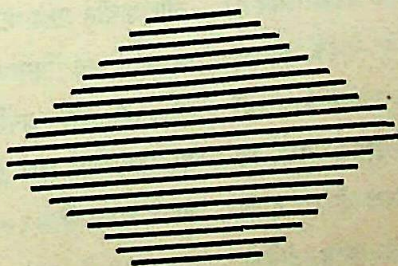
३. तीसरे शेरसे ऋषिने कहा, "तूने एक अन्धी बुढ़ियाकी दूध देनेवाली बकरी को मार डाला है। इसलिए तुम तीनों मनुष्य रूप धारण करके रहो, मनुष्यके सिवाय कोई तुम्हें रखेगा नहीं क्योंकि निरर्थक लड़ाई और ठण्डी क्रूरता मनुष्यका हर रोज़का व्यवहार है। पर मनुष्यमें अपनेसे अधिक क्रूरता देखकर तुम पागल न हो जाना, क्योंकि मनुष्यकी क्रूरता बुद्धिसे उत्पन्न होती है अतः नित्य विकसित होती रहती है।"

३

१. तीन कबूतर एक ऋषिके पास गए। ऋषिने उनकी ओर देखा और बातचीत शुरूकी। पहले कबूतरसे ऋषिने कहा, "जो दाना तेरा नहीं था उसे अपना समझकर तूने चुग लिया।"

२. दूसरे कबूतरसे ऋषिने कहा, "एक उगते पौधेको चोंच मार अपने यहाँ ले आया और कलाकारोंने तुझे प्रेमका सन्देश-वाहक समझा।"

३. तीसरेसे ऋषिने कहा, "तूने एक मन्दिरमें अपना घोंसला बना सबके पास से प्राप्त होनेवाले दाने प्राप्त किये। इसलिए तुम तीनों मनुष्य बन जाओ, तुम्हारे लिए यही उचित है। वहाँ तुम्हें स्थान मिल जायगा। मनुष्योंमें तुम्हें अन्धश्रद्धा के वातावरणमें रहनेका अच्छा अवसर मिलता रहेगा।" (तीन बोध-कथाएँ)



गणित शास्त्रका उद्भव और विकास

नागेश्वर प्रसाद

भारतवर्षने सभ्यता-विकासके आदिकालमें ही ज्ञान-विज्ञानकी जिन शाखाओंमें अलौकिक उन्नति प्राप्त कर ली थी, उनमें गणित शास्त्र भी एक है। यह कहनेमें तनिक अत्युक्ति नहीं कि गणित ही वह प्रवेश-द्वार है जिससे होकर विज्ञानके भवनमें प्रवेश किया जाता है। क्योंकि विज्ञानके किसी सिद्धान्त अथवा व्यवहारकी सिद्धिके लिए गणनाकी आवश्यकता पड़ती है। जिन वैदिक आर्योंके विषयमें यह प्रमाणित हो चुका है कि दर्शन, कला, साहित्यके अलावा विज्ञानके क्षेत्रमें भी उन लोगोंने काफी उन्नति की थी, उन्हें गणितका ज्ञान कैसे नहीं रहा होगा? इतना ही नहीं, प्राचीन आर्योंकी गणित-विषयक उन्नति देखकर यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि भारतने विश्वको जिन विद्याओंकी देन दी है, उनमें गणित-विद्या सबसे मुख्य एवं महत्त्वपूर्ण है। सबसे मुख्य कहनेका कारण यह है कि यद्यपि अन्य जातियोंने भी स्वतन्त्र रीतिसे गणितके कुछ सिद्धान्त खोज निकाले होंगे और उसका यत्किञ्चित् विकास भी किया, किन्तु गणितके वैज्ञानिक ढंगका शास्त्रीय ज्ञान प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे भारतके द्वारा ही विश्वको प्राप्त हुआ। महत्त्वपूर्ण कहनेका कारण यह है कि गणित-शास्त्रका समुचित ज्ञान प्राप्त किये बिना विज्ञान-शास्त्रकी उन्नति नहीं की जा सकती; बल्कि बड़ी संख्या तक गिनतीके लिए भी गणितका ज्ञान अपेक्षित है।

भारतकी प्राचीन सभ्यतासे अनभिज्ञ विदेशी लेखक यह माननेसे हिचकते हैं कि वैदिक ऋषि गणितमें पारंगत थे, बल्कि इतना भी वे मुश्किलसे माननेको तैयार होते हैं कि उन्हें इसका शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त था। प्रथमतः तो वे लोग वेदका समय ही खींचकर पीछे ले आना चाहते हैं, जिससे कि वैदिक सभ्यता यूनान और मिस्रकी सभ्यताकी अपेक्षा अधिक-प्राचीन सिद्ध नहीं हो सके। दूसरे, वे यह भी माननेको उत्सुक नहीं कि भारत उन देशोंकी अपेक्षा कभी अधिक सभ्य रहा है। इसके अतिरिक्त भारतकी अपेक्षा यूनानादि देशोंके प्रति कृतज्ञ होनेका एक यह भी कारण है कि यूरोपीय ज्ञानका मूल स्रोत यूनान है जिसने यूरोपको अन्य विद्याओंके साथ गणितका भी ज्ञान दिया। यूनान इसके ज्ञानके लिए मिस्रका आभारी है। इसीलिए यूरोपीय विद्वानोंकी समझसे गणितका आदि विकास यूनान और मिस्रमें प्रधान रूपसे हुआ। भारतीय गणितका परिचय यूरोपको अरबादि देशोंके द्वारा १२वीं सदीके लगभग हुआ, जब यूरोपपर इस्लामी प्रभुत्व होने लगा था। इस कारणसे यूरोपीय विद्वान यह स्वीकार करते हुए भी कि भारतीय गणित-पद्धति ही सर्वाङ्गीण एवं वैज्ञानिक है, इसे बादका विकास मानते हैं। उनमें से कुछ पण्डितोंकी तो यह मान्यता भी है कि भारतको गणितका ज्ञान मिस्रसे मिला और भारतीयोंने उसका अपने ढंगसे विकास किया। उदाहरणके लिए Short History of Mathematics by W. R. Ball में यह सिद्ध करनेका यत्न किया गया है कि भारतीय ज्योतिषी आर्यभट्टने सम्भवतः डियोफेन्टस (Diophantus) के अङ्कगणितसे सहायता ली है और ब्रह्मगुप्तने युक्लिडकी भूमितिका समर्थन मात्र किया है।

निश्चय ही ऐसे लेखकोंको वैदिक साहित्यसे परिचय तक भी नहीं रहा है अथवा उन्होंने पक्षपातपूर्ण धारणा बना ली है। गणितकी शास्त्रीय-पद्धतिका मूलतम आधार दशांक गणना एवं दश गुणोत्तर प्रणाली अर्थात् १ से ९ और ० के अंक तथा इकाई-दहाई आदि दस गुनाकी गिनतीकी पद्धतिपर सारा गणित आधारित है। सारे प्राचीन संस्कृत साहित्य और प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदमें भी हम इस पद्धतिको पाते हैं। ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक साहित्यसे थोड़ा उदाहरण देना ही इसके लिए पर्याप्त होगा। ऋ० १।१६४।४१ में एक, दो, चार, आठ और नौ, ८।२।४१ में चार, आठ, सहस्र; १।१६१।११ में ७२०,७१२; १।१६४।४८ में १२,३,३६०; १।१६४।१२ में ७, ३; १।१६४।१२ में ५,१२,७; १।६४।१३

में २९ (नव विंशति) ; ३।९।९ तथा १०।५२।६ में ३३३९ (त्रीणि शतानि त्रिसहस्राणि त्रिंश च नव च) ; वाजसनेयी संहिता १४।२३,३१ और तैत्तरीय संहिता २३।३० में १९ (नवदश) आदि संख्याओंका उल्लेख है। दश गुणोत्तर प्रणाली भी कितनी प्राचीन है इसे दिखानेके लिए एक मन्त्र यजुर्वेद (वाजसनेयी) संहिता १७।२, जो तैत्तरीय संहिता ४।४०।२।४ और ७।२।२२।१ में भी पाया जाता है, से दिया जाता है—

एका च शतम् च सहस्रम् चायुतम् च नियुतम् च प्रयुतम् चार्बुदम् च न्यर्बुदम् च समुद्रश्च मध्यम् चांतश्च परार्धश्च ॥

इसमें एक, सौ, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त, परार्ध तककी गिनती दी गई है। इससे सिद्ध है कि वैदिक कालमें ही आर्योंकी १ से ९ तक और ० का ज्ञान था और वे दशगुणोत्तर प्रणाली भी जानते थे। अन्यान्य कई ग्रन्थोंमें भी थोड़ा नाम-भेदसे इस प्रणालीका वर्णन है। कहीं-कहीं इसका अत्यधिक विस्तार किया गया है ; जैसे बौद्ध-ग्रन्थ 'ललितविस्तर'में ५४ अंकों तककी दशगुणोत्तर प्रणाली से गणना दी गई है। कात्यायनके पाली व्याकरणमें १४१ अङ्कों तककी गणनाका वर्णन है, जिसकी अन्तिम संख्याका नाम 'असंख्य' कहा गया है। पर अधिकांश लेखकोंने १८ अंकों तककी गणना सीमित रखी है और कहा है कि इससे आगे भी गिनती सम्भव है। स्पष्ट है कि इस तरहकी गिनती केवल ग्रन्थोंतक ही सीमित नहीं थी, बल्कि व्यवहारमें भी आती थी। ७-८ वीं सदीसे जो शिलालेख मिलते हैं उनमें इसी पद्धतिका अनुसरण मिलता है।

प्राचीन कालसे ही गणितकी गणना एक शास्त्र विशेषमें होती रही है। इससे यह अनुमान निकाला जा सकता है कि उस समय तक यह उन आवश्यक अंगोंसे पूर्ण हो गया होगा, अन्यथा एक शास्त्रके रूपमें इसकी अलग गिनती नहीं होती। छान्दोग्य उपनिषद् (७।१-४) में एक आख्यान है कि नारद जब सनत्कुमारके पास ब्रह्मविद्या सीखने गये तो सनत्कुमारने उनसे प्रश्न किया कि ब्रह्मविद्या सीखनेके पहले आप कौन-कौन सी विद्याएँ सीख चुके हैं। इसपर नारदने १४ विद्याओंकी गिनती कराई, जिनमें एक राशि-विद्या थी। राशि-विद्यासे तात्पर्य गणित शास्त्रका ही हो सकता है। उससे ज्योतिष-शास्त्रका अर्थ नहीं लिया जा सकता, क्योंकि उसके लिए नक्षत्र विद्याका अलग उल्लेख है।

शून्यका व्यवहार भी वे लोग जानते थे, क्योंकि बिना इसे जाने दशगुणोत्तर प्रणालीमें १०-२० आदि शुद्ध रूपसे नहीं लिखे जा सकते। पिङ्गल (वि० पू० २य शतक) ने अपने छन्द-शास्त्रमें ० का वर्णन किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि बीजगणित पहले अंकगणितसे अलग विषय नहीं था। ब्रह्मगुप्त (वि०स० ६९५) ने दोनों विषयोंको अलग किया है, ऐसा समझा जाता है। किन्तु उसके ग्रन्थमें बीजगणितका नामोल्लेख नहीं है, इसे कुट्टक कहा गया है। तदुपरान्त श्रीधराचार्य (८०० वि० स०) ने उसका नामकरण बीजगणित अथवा अव्यक्तगणित किया। यों तो ब्रह्मगुप्तके पहले आर्यभट्टने भी बीजगणितके सिद्धान्तोंका उल्लेख किया है। परन्तु उसमें केवल एकवर्ण समीकरणका वर्णन है। ब्रह्मगुप्तने पीछे उसका विस्तारकर समीकरणके चार भेद—एक वर्ण, अनेक वर्ण, मध्यम हरण और भविता किये। बादके गणित शास्त्रियोंने भी बीजगणितको उन्नत किया। आर्यभट्ट, श्रीधर, ब्रह्मगुप्त, महावीर, पद्मनाभ, भास्कर आदिने बीजगणितके ऐसे-ऐसे प्रश्न हल किये हैं जिन्हें यूरोपीय विद्वान् १७-१८ वीं सदी तक कठिन मानते रहे हैं। कुछ विद्वानोंका ऐसा मत भी है कि बीजगणितसे ही अंकगणितका विकास हुआ है ; अतएव इस मतानुसार बीजगणित का ही अस्तित्व पहले रहा है। कम-से-कम बीजगणितका नाम तो ऐसा ही सूचित करता है।

अंक शास्त्रके समान भूमिति शास्त्र अथवा ज्यामिति शास्त्र भी अत्यन्त प्राचीन है। ज्योतिष-विषयक गणना करनेके लिए अङ्कगणित जितना उपादेय है, ज्यामिति उससे कम नहीं ; क्योंकि ग्रहोंकी चाल तथा दूरी मापने, उनका चित्र बनानेमें ज्यामितिके ज्ञानके बिना काम नहीं चल सकता। इसी कारण उसका नाम रेखागणित भी है। सूत्र ग्रन्थोंमें यज्ञ-कुण्ड बनाने के सिलसिलेमें तरह-तरहके ज्यामितिके सिद्धान्तोंका वर्णन है। यूरोपीय विद्वान ज्यामितिकी जिन तर्कनाओंके लिए पैथोगोरस (वि० पू० ५ सदी) को वाहवाही देते हैं, वे तर्कनाएँ आर्योंको

वैदिक युगमें भी ज्ञात थीं, इसमें सन्देह नहीं। उदाहरणके लिए, ज्यामितिका एक बहुत प्रचलित सिद्धान्त कि समकोण त्रिभुजके कर्णपरका वर्ग शेष दो भुजाओंपरके वर्गोंके योगफलके बराबर होता है—बौधायनके सूत्र ग्रन्थमें वर्णित है। निश्चय ही बौधायन सूत्रकी रचना पैथोगोरससे सैकड़ों वर्ष पूर्व हो चुकी थी। बौधायन तथा अन्य सूत्र-ग्रन्थोंमें ऐसी और भी कितनी बातें सिद्ध की गई हैं जिनकी खोज निकालनेका मिथ्या श्रेय यूरोपीय विद्वान् अपने ऊपर लेते हैं। सूर्यसिद्धान्तकी रचना-तिथि अभी तक निश्चित रूपसे नहीं जानी जा सकी है जिससे यह कहना कठिन है कि वह कितना प्राचीन है। उसमें भी ज्यामिति विषयक कितनी ही बातोंका वर्णन है, जैसे रेखाओंकी सहायतासे त्रिभुजका क्षेत्रफल निकालना। यूरोपमें क्लौवियस (Clauvious) ने १६ वीं सदीमें उसका पता लगाया है। इसी तरह ब्रह्मगुप्त तथा भास्कराचार्यने भुजाओंके द्वारा चतुर्भुज का क्षेत्रफल निकालना बताया है।

त्रिकोणमिति भी भारत द्वारा आविष्कृत शास्त्र है, जिसका अंगरेजी नाम Trigonometry ठीक-ठीक उस शब्दका रूपान्तर-मात्र है। सूर्यसिद्धान्तमें ज्या (Sine), कोटिज्या (Co-sine), उत्क्रमज्या (Secant) के नाम आते हैं। इनकी सहायतासे नक्षत्रोंकी दूरी जानी जाती थी। यूरोपमें ब्रिग्स (Briggs १६६१-८८ वि० सं०) ने इसका प्रचार किया। भास्कराचार्यने समत्रिभुजसे लेकर समनवभुज तकका क्षेत्रफल निकालना बतलाया है।

वृत्तकी परिधिका वृत्तके व्याससे जो सम्बन्ध है उसे एक यूनानी अक्षर पाइ (π) द्वारा व्यक्त किया जाता है। यूरोपमें ग्रेगरी नामक एक स्काटलैण्ड निवासी (जन्म वि० सं० १६९५) ने पहले-पहल पाइका मान निकाला था। उसके बाद विलियम जोन्स (वि० १७६३) ने इसपर विचार किया। ग्रेगरीने इसका मान इस तरह निकाला है :—

$$४\left(१-\frac{१}{३}+\frac{१}{५}-\frac{१}{७}+\frac{१}{९}-\frac{१}{११}\cdots\right)$$

ग्रेगरीके जन्मके अनेक शताब्दी पहले दक्षिण-भारतके एक ज्योतिषी पुत्तुमान सोमयाजीने शक सं० १३५३ में स्वतन्त्र रूपसे इसका मान निकाला था, जो लेखकके 'करण पद्धति' नामक ग्रन्थ में निम्नलिखित श्लोक द्वारा समझाया गया है।—

व्यासात् चतुर्घ्नात् बहुशः पृथकस्तात् त्रिपञ्च सप्ताद्य युगाहतानि। व्यासे चतुर्घ्ने क्रमशस्त्वृत्तां स्वं कुर्यात्तदास्यात् परिधिः सुसूक्ष्मः॥

अर्थात् व्यासको ४से गुना करके गुणनफलको १,३,५,७,९,११ आदि विषम संख्याओंसे क्रमानुसार भाग दो, उनमें १,५,९,१३ द्वारा अर्थात् एक छोड़कर शेष द्वारा निकले भागफलको धन और शेष ३,७,११,१५ द्वारा निकाले गये भागफलको ऋण मानकर सभी भागफलोंका संकलन करो। वही इष्ट परिधिका मान होगा। स्पष्ट है कि ग्रेगरीने भी यही बतलाया है। इसका मान इस रीतिसे ३·१४१५९२६५३५ होता है जो निम्नलिखित श्लोक द्वारा व्यक्त किया गया है :—

चण्डांशुचन्द्राधम कुम्भपालैः समाहताश्चक्र कलाविभक्ता, अनूननूनाननुन्ननित्यैः···।

ऐसी बात नहीं है कि भारतमें उक्त सोमयजी पण्डितने ही पहले-पहल इसपर विचार किया हो। प्राचीन कालसे ही गणितकी अन्य शाखाओंके समान इसपर भी सम्यक् विचार किया गया है। पुराणोंमें भी कहीं-कहीं इसकी चर्चा है। भिन्न-भिन्न मतोंसे उसका मान ३, १० का वर्गमूल, २१६०० में ६८७६ का भागाहार आदि बताये गये हैं। एक प्राचीन श्लोकमें इसका मान ३ पूर्णाङ्कके बाद ३१ दशमलव अङ्कों तक दिया गया है। दक्षिण-भारतके माधव नामक एक गणितज्ञने $\frac{०}{१०}$ इंचके व्यासके लिए २·८२७४३३३८८२३३ इंच परिधिका मान निश्चित किया है, जिसके लिए निम्नलिखित श्लोक है :—

विबुधनेत्रगजाहिहुताशन त्रिगुणवेदभवारणबाहवः।

नवं निखर्वमितेवृत्त विस्तरे परिधिमानमिदंजगदुर्बुधाः।

इसके अनुसार 'पाइ'का मान ३·१४१५५९२६५३५९ हुआ।

एक दूसरा तरीका इस तरह है :—

श्रेणी क्रियेतेह बुधेनयत्र वर्गः सहस्रस्यतुराशिराद्यः। सहस्र वर्गाहतपूर्वराशिं सर्वत्र यस्यां परराशिमाहुः॥ सोमोदराभात्यहता· ततः साव्यासेन दत्तेन पुनर्निहत्या। व्यासत्रयेणापि युताथकार्यातिस सुसूक्ष्मः परिधिप्रमाणः॥ अर्थात् १ को १०००², १०००⁴ आदिसे भाग देकर जो भागफल आवे उनके योगफलको १४२· ८५७ से गुणाकर उसमें ३ जोड़े। योगफलको व्याससे गुणाकर जो आवे वही परिधिकी लम्बाई होगी। इस पद्धतिसे उसका मान ३·१४२८५७४२८५७ होता है।

भारतकी अङ्कविद्याका उद्भव और विकासका वर्णन करनेके पश्चात् इतर देशोंमें इसकी उन्नतिकी चर्चा करना भी आवश्यक है जिन्होंने चाहे स्वतन्त्र रूपसे अथवा एक-दूसरेके संसर्गमें आकर इसका ज्ञान प्राप्त किया। प्राचीन जातियोंमें यूनान और मिस्रके अलावा बेबीलोन, फोनिसिया, टायर, चाल्डिया आदि देशोंमें गणितका प्रचार था। बेबीलोनमें वहाँकी प्राचीन गणित-प्रणालीकी एक वर्ग-तालिका पाई गई है। यूनानी इतिहासवेत्ता स्ट्रैबोने लिखा है कि टायर निवासियोंने गणित विज्ञानमें विशेष उन्नति की थी। चाल्डियन जातिकी ज्योतिष-विषयक उन्नति प्रसिद्ध है; अतः गणित विद्यामें भी पण्डित होंगे, इसमें सन्देह नहीं। फोनिशियन जातिने भी इसका यथेष्ट विकास किया था और यूनान भी उसके गणित विषयक ज्ञानके लिए आभारी था। किसी-किसीके मतसे पैथोगोरस (५१२-४४३ वि० पू०) भी फीनिशियन था, यूनानी नहीं। यहूदी लोगोंमें इसकी उन्नतिका विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता।

मिस्रसे गणितकी कुछ प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं जिन्हें अह्मस (Ahmes) नामक किसी पण्डितने लिखा था। रिण्ड (Rhind) नामक एक अंगरेज़ अन्वेषक द्वारा खोज निकाले जानेके कारण वह रिण्ड-संग्रहके नामसे ख्यात है, और आजकल ब्रिटिश संग्रहालयमें संग्रहीत है। उस संग्रहसे मिस्रकी गणित विद्याकी जानकारीके विषयमें सम्यक् प्रकाश पड़ता है। भारतसे बौद्धधर्मके प्रचारक मिस्र तक जा पहुँचे थे, उसके पहलेसे भी भारतके साथ उसका सम्बन्ध चला आता है। अतएव सम्भव है भारतसे छनकर वह ज्ञान मिस्र तक जा पहुँचा हो। सिकन्द्रियामें हीरो (वि० पू० २३) नामक एक प्रसिद्ध गणित-शास्त्री हो गया था। उसी नगरमें पीछे थियन नामक एक दूसरे गणित शास्त्रीकी विदुषी पुत्री हिपाशिया (Hypatia) भी गणितशास्त्रमें प्रवीण थी। (४३७-४७२ वि०) कहा जाता है कि बीजगणितपर उसने एक ग्रन्थ भी लिखा था। किन्तु उसके निकाले कितने सिद्धान्त तत्कालीन जन-साधारणकी धारणाओंके प्रतिकूल होनेसे वह जीते जला दी गयी। यूकलिड (२७३-१८ वि० पू०) जन्मसे यूनानी था, परन्तु रेखागणितका ज्ञान उसने सिकन्द्रिया जाकर ही प्राप्त किया, जिसका पुनः उन्होंने स्वतः भी विकास किया।

चीनी लोग शिल्पकलामें बहुत प्राचीनकालसे ही उन्नत होनेके कारण उनके विषयमें यह अनुमान किया जाता है कि गणितकी भी उनकी जानकारी होगी। कारण कि शिल्पकलाके बड़े-बड़े नमूने बिना गणितके ज्ञानके सम्पन्न नहीं हो सकते। किन्तु इसके लिए स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते, और न उनके यहाँ गणित विषयक कोई प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है। पीछे भारतसे बौद्ध धर्मके वहाँ पहुँचनेके सिलसिलेमें वहाँ भारतकी अनेक विद्याएँ पहुँची, जिनमें गणित शास्त्र भी एक था।

इस्लामके प्रादुर्भावके बादसे प्रारम्भके कुछ खलीफाओंका ध्यान विज्ञान-कलाकी ओर गया। भारतसे अरबका व्यापारिक सम्बन्ध भी प्राचीन कालसे जारी था। खलीफाओंने दर्शन, ज्योतिष, साहित्य, विज्ञान आदि विद्याओंको सीखनेके लिए यहाँसे पण्डित अपने यहाँ बुला भेजे। खलीफा अलमन्सूर (८११-३२ वि०) ने पहले-पहल बीजगणितका अरबीमें अनुवाद करवाया। हारूँअल रशीद (८५७ वि०) ने तथा उसके उत्तराधिकारी अलमामूँ (८७०-९० वि०) ने गणितके सारे ग्रन्थोंका अनुवाद करवाया। बगदादमें मुहम्मद इब्न मूसा अल-ख्वारिज़्मी नामक प्रसिद्ध गणित-शास्त्री हो गया है, जिसके ज्ञान-दानका आभार सारे यूरोपपर है। भारतीय गणित-पद्धतिका अच्छी तरह अध्ययन कर उसने 'अलजब्र उल मुकाबला' नामक एक ग्रन्थ लिखा, जिसका अर्थ होता है 'योग-रूपान्तर विद्या।' इसमें बताये गये बीजगणितके सिद्धान्त सारे यूरोपमें फैले। बल्कि बीजगणितका नाम ही अलजब्रा पड़ गया, जो आज भी अंगरेजोंमें प्रचलित है। अलख्वारिज़्मीके नामपर ही लोगरियन नामक गुणन-पद्धतिका विकास स्काटलैण्डके जान नेपियर १६०७-७४ वि०) ने किया। यूरोपीय देशोंमें पहले-पहल स्पेनमें (१०३३ वि०) गणितके भारतीय ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ जो इस्लामके साथ वहाँ जा पहुँचे थे। उसके बाद भी अनेक समय तक भारतीय गणित-पद्धति यूरोपवालोंके लिए एक उपेक्षित विषय रहा। स्वयं अरबवालोंने भी १२वीं सदी तक इसका प्रयोग प्रारम्भ नहीं किया था। हिन्द देशसे सीखनेके कारण गणित-विद्याका नाम ही 'इल्म-हिन्दसा' रखा। अलखरको (१२ वीं सदी) ने अपने ग्रन्थमें दशगुणोत्तर प्रणाली

का प्रयोग नहीं किया है। यूरोपमें भी इसका प्रचार १४वीं सदीके बाद हुआ। अन्धविश्वासके कारण लोग इस 'हिन्दू-पद्धति'का प्रयोग करनेसे हिचकते थे। उस समय वहाँ विंशति-प्रणालीका प्रचलन था (Vingh=विंशति)।

वर्तमान युगमें न्यूटनने गणित-विद्याकी विशेष उन्नति की है। दशमलव प्रणालीका पता तो यूरोपवालोंको १६ वीं सदीमें लगा। कहा जाता है कि ब्रिटेनके सुप्रसिद्ध राजनेता विंस्टन चर्चिलके पिता श्री रण्डोल्फ चर्चिल जब ब्रिटेनके कोषाध्यक्ष थे, तो एक बार उनके पास हस्ताक्षरके लिए आय-व्यय-पत्रक लाया गया। उसमें दशमलव बिन्दुओंका प्रयोग था। जिससे अपरिचित होनेके कारण उन्होंने उत्सुकतापूर्वक पूछा—ये बिन्दु किस लिए हैं ?

आनन्दघनका काव्य-सौष्ठव

अशोककुमार जैन

आनन्दघनको भाषाकी दृष्टिसे व्रजभाषा-काव्यका सर्वश्रेष्ठ कवि माना गया है। अनेक आलोचकोंने एक स्वरसे घनानन्दकी भाषाको सर्वश्रेष्ठ माना है। वियोगी हरि कहते हैं कि इतनी शुद्ध भाषा तो किसी भी कविकी देखनेमें नहीं आई। रामचन्द्र शुक्लका मत है, 'इनकी-सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी व्रजभाषा लिखनेमें कोई भी कवि समर्थ नहीं हुआ। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषापर जैसा अचूक अधिकार इनका था, वैसा अन्य किसी कविका नहीं।'

घनानन्दने भाषाकी अभिव्यंजना-शक्तिको अभिवर्धितकर व्रजभाषाके सम्मानको कई अंशोंमें बढ़ाया। घनानन्दकी भाषामें केवल शुद्धता ही नहीं वरन् अन्य विशेषताएँ भी हैं। घनानन्दकी विशेषता प्रयोग-वैचित्र्य और लाक्षणिक मूर्तिमत्ता है। हिन्दीमें इनका प्रयोग नहींके बराबर था, पर घनानन्दने इनका प्रयोग प्रचुर मात्रामें कर भाषाकी अभिव्यंजना-शक्तिको बढ़ाया। यही बात नवीन धारामें पाश्चात्य प्रभावसे प्रबलतर होकर पुनः अवतरित हुई। इनके प्रयोग-वैचित्र्यका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है :—

'उघरो जग, छाय रहे घन आनन्द, चातक ज्यों तकिए अब तौ।'

यहाँ 'उघरो जग' विशेष दर्शनीय है।

व्रजभाषाके अनेक कवियोंने उद्धव-प्रसंगमें या अन्य प्रसंगोंमें गोपियों द्वारा कृष्ण, कुबड़ी और उद्धवके प्रति वक्रोक्तियाँ कहलवाई हैं। इन उक्तियोंमें शब्द-चमत्कारका ही अंश अधिक रहता है। जैसे रत्नाकर कवि कहते हैं :—

'वे तो भए जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग
आप कहैं उनके गुरु हैं, किधौं चेला हैं।'

लेकिन घनानन्दकी गोपियोंकी वक्रोक्तियाँ अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। उनमें शब्द-चमत्कारका प्राधान्य नहीं है, वरन् हृदयकी गहरी वेदना झलकती है। गोपियाँ कृष्णके प्रेम और फिर उनकी धोखेबाजीका वर्णनकर कृष्णसे विनती करती हैं कि हमारा त्राण कीजिए। भावावेगके कारण घनानन्दकी उक्तियोंमें उत्कृष्ट अर्थ-गर्भत्व है और उनमें तीखा-व्यंग्य छिपा हुआ है। साधारण पाठक शायद रत्नाकर या अन्य कवियोंकी उक्तियोंमें अधिक आनन्द पाय, पर घनानन्दके काव्यमें करुणाकी जो अन्तःसलिला बहती है, वह रत्नाकर क्या बहुत ही कम कवियोंकी रचनाओंमें मिल सकेगी।

घनानन्दने भावपक्षका ही ग्रहण किया है। वे गोपियों द्वारा तर्क करानेमें विश्वास नहीं करते। नन्ददास आदि कवियोंने गोपियों द्वारा पर्याप्त तर्क कराए हैं, पर अन्तमें उन्हें भी भावपक्षका ही ग्रहण करना पड़ा, क्योंकि जहाँ प्रेमका आधिपत्य हो वहाँ बुद्धिसे काम नहीं चलता :—

रीझ सुजान सची पटरानी, बनी बुधि बापुरी ह्वै करि दासी।

घनानन्दकी गोपियोंको विश्वास है कि यदि कृष्णका हृदय जीतना है तो उद्धवको तर्कमें हरानेसे काम नहीं चलेगा इसीलिए वे तो बादलसे प्रार्थना करती हैं :—

घनआनन्द जीवनदायक हौ, कछु मेरियै पीर हियें परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजानके आँगन मो अँसुवानिको लै बरसौ।

अगर कृष्णपर असर हो सकता है तो केवल इसी प्रकारकी युक्तियोंसे ; उद्धवको अपनी ओर कर लेनेसे कुछ लाभ नहीं होगा।

घनानन्दने संयोगकी अपेक्षा विप्रलम्भपर ही अपनी लेखनी अधिक चलाई है। इसीमें उनको सफलता भी मिली है। घनानन्द रीतिकालमें होते हुए भी रीतिकालके कलुषित प्रभावसे बचे रहे। उन्होंने 'संयोग-शृंगार'में शारीरिक विलासोंका वर्णन नहीं किया। विप्रलंभ शृंगारमें नख-शिख वर्णन भी नहीं किया गया है, न शरीरकी कृशतापर अत्युक्तियाँ कही गई हैं और न आँसुओंकी नदियाँ बहाई गई हैं। घनानन्दका काव्य अन्तर्वृत्ति निरूपणसे गौरवान्वित रहता है और बाह्यार्थ निरूपण तो नाम-मात्रको ही मिलता है। यही कारण है कि घनानन्द हृदयको स्पर्श करते हैं। उनमें वेदना, करुणा और गोपियोंके प्रति सहानुभूतिसे हृदयको विकल कर देनेकी शक्ति है। शिवसिंह-सरोजकारने कहा है, 'इनकी कविता सूर्यके समान भासमान है।' लेकिन साथ ही हिन्दीका मेघदूत भी है।

जिन आँखिन रूप चिन्हारि भई, तिनको नितही दहि जागनि है।
हित पीरसे पूरित जो हियरो, फिर ताहि कहाँ कहु लागनि है॥
घनआनँद प्यारे सुजान सुनो, जियराहि सदा दुख दागनि है।
मुखमें मुखचन्द बिना निरखे, नखतें सिख लौं बिख पागनि है॥

ऐसे काव्यको पढ़कर किसका मन करुणासे ओत-प्रोत नहीं हो जायगा। महाकवि केशव तक रामकथामेंसे भी एक भी ऐसा स्थल नहीं निकाल सके, जहाँ वे पाठकोंको द्रवित कर सकें। बिहारीमें अन्तर्वृत्ति निरूपण और बाह्यार्थ निरूपण दोनों हैं— पर उनमें चमत्कार और नायिका-वर्णनकी प्रवृत्ति ही अधिक है। घनानन्द ही एक ऐसे कवि थे, जो रीतिकालमें रहते हुए भी रीतिकालीन कलुषित प्रवृत्तिका परित्यागकर काव्यमें प्रेमके उच्चतम आदर्शकी स्थापना कर सके।

प्रेमकी अनिर्वचनीयताकी अभिव्यंजना करना कितना कठिन है, यह तो कवि ही जान सकते हैं। प्रायः लोग भिन्न-भिन्न युक्तियों द्वारा पाठकोंको संकेत मात्र देनेका प्रयत्न करते हैं, लेकिन अधिकांश असफल होते हैं। रामचन्द्र शुक्लके मतानुसार घनानन्दने प्रेमकी अनिर्वचनीयताका आभास विरोधाभासों द्वारा दिया है :—

धुनि पूरि रहे नित काननिमें, अजकों उपराजिबोई सी करै।
मनमोहन गोहन जोहनके, अभिलाख समाजिबोई सी करै॥
घनआनन्द तीखिये ताननि सों, सरसे सुर साजिबोई सी करै।
कित तें यह बैरनि बाँसुरिया बिन बाजेई बाजिबोई सी करै॥

उपर्युक्त उदाहरणसे ही पाठकोंने युक्तिकी सफलताका अन्दाज़ा लगा लिया होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि घनानन्दने एक जटिल प्रश्नका हल उपस्थित कर दिया है। यह तो कवियोंकी इच्छा है कि वे इस युक्तिका प्रयोग करें या न करें।

घनानन्दने काव्यमें अपने पूर्ववर्ती कवियोंका अनुकरण नहीं किया है। सभी काव्यांगोंमें घनानन्दने अपनी निपुणता प्रदर्शित की है और प्रत्येकमें कोई-न-कोई नवीनता रहती है। यही नहीं, जैसा कि हम देख चुके हैं, घनानन्दने काव्यकी अपनी ओरसे नए सफल प्रयोग भी प्रदान किए हैं। इसीलिए आनन्दघनका स्थान व्रजभाषाके श्रेष्ठ कवियोंमें है।



द्विपद नामपद्धति

लोकेशचन्द्र, डो॰ लिट्॰

द्विपद नामपद्धतिमें प्रत्येक प्राणीका नाम दो शब्दोंसे बनाया जाता है। अंगरेज़ीमें पहला शब्द प्रजाति (Genus) का द्योतक होता है और दूसरा जाति (Species) का। प्रजातिवाचक शब्द संज्ञा होता है और जातिवाचक उसका विशेषण। यथा Platysmurus leucopterus एक भारतीय पक्षीका वैज्ञानिक नाम है। Platysmurus एक प्रजाति है, जिसके आगे Leucopterus विशेषण लगाकर दोनों शब्दोंसे एक पक्षीका नामकरण किया गया है। leuco का अर्थ है 'श्वेत' और Pterus का अर्थ 'पत्र' अथवा 'पंख' है। इसी पक्षीको अंगरेजीमें White winged Jay कहते हैं।

द्विपद नामपद्धतिका अनुवाद करते समय हमारे सामने प्रश्न उठता है कि भारतीय शब्दावलीमें प्रजातिवाचक शब्द पहले हों या पीछे? क्या हम लैटिनका ही क्रम रखें और अपने व्याकरणको भूल जायँ? इसी प्रकारके लैटिन विशेष्य-विशेषणका दूसरे विज्ञानोंमें अंगरेज़ीमें क्या किया गया और पाश्चात्य संस्कृतिकी दासतासे मुक्त जापानने अपनी शब्दावलीमें द्विपद नामोंका अनुवाद कैसे किया? इन प्रमुख बातोंका विचार किये विना बनायी गयी शब्दावलीमें अनेक प्रकार की भूलें रह जायँगी और विभिन्न विज्ञानोंमें निरर्थक असामंजस्य हो जायगा जो कि विज्ञानकी उन्नतिमें बाधक होगा।

वैज्ञानिक शब्दावलीकी नव लैटिन (Neo-latin) में फ्रेंच आदिके समान संज्ञाको पहले और विशेषणको पीछे रखते हैं। इसलिए विशेष्य (प्रजाति) को पहले और विशेषण (जाति) को पीछे रखा गया है। इस नियमका पालन केवल जीव विज्ञानमें ही नहीं, अपितु विज्ञानकी अन्य शाखाओंमें भी हुआ है। उदाहरणार्थ ज्योतिषको लीजिए। दो सामान्य शब्द हैं Ursa major और Ursa minor इनमें Ursa संज्ञा पहले है, और major तथा minor विशेषण पीछे हैं। इनके अंग्रेजी नाम क्रमशः Great bear और Little bear हैं। ध्यान देने योग्य है कि अंगरेजीमें लैटिन व्याकरण का अनुसरण नहीं किया गया। शरीर-विज्ञानमें भी सैकड़ों ऐसे उदाहरण हैं यथा—Cavum aorticum, Cavum pulmocutaneum Corpora adiposa, corpora amylacea। यदि Corpora adiposa के ही क्रमका अनुसरण किया जाय, तो 'पदार्थ वपीम' जैसा अनर्गल अनुवाद होगा। इस प्रकारके क्रमका अनुसरण करनेकी व्यर्थता अगले उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगी। एक मित्रने Rava esculenta का अनुवाद 'मण्डूक भक्ष्य' (जिसको मेंढक खा सके) किया, जहाँपर कि हम कहना चाहते थे 'भक्ष्य मण्डूक।' ऐसे अनुवादोंके लिए हम 'शान्तं पापं' ही कह सकते हैं।

भेषज विज्ञान (Pharmacy) में सहस्रों औषधोंके लैटिन नामोंमें संज्ञा विशेषणकी पूर्वापरता दिखाई देती है। इन सब निर्मितियोंके अंगरेज़ी नाम भी हैं। अंगरेज़ी नामोंमें लैटिनका क्रम नहीं है। वहाँ विशेषण पहले हैं और विशेष्य पीछे, जैसा कि सामान्य रूपसे अंगरेजीमें होता है। नीचे कुछ उदाहरण हैं :—

लैटिन नाम	अंगरेजी नाम
Acidum aceticum	Acetic acid
Acidum boricum	Boric acid
Acidum hydrochloricum	Hydrochloric acid
Acidum nitricum	Nitric acid
Acidum phosphoricum	Phosphoric acid
Acidum sulphuricum	Sulphuric acid
Acidum tannicum	Tannic acid
Tinctura ergotae ammoniata	Ammoniated tincture of ergot
Tincture opii ammoniata	Ammoniated tincture of opium
Tincture valerianae ammoniata	Ammoniated tincture of valerian
Borax purifycatus	Purified borax
Pulois opii compositus	Compound powder of opium
Pilulae scillae compositus	Compound squill pills
Syrupus ficorum compositus	Compound syrup of figs
Acqua anisi concentrata	Concentrated anise water
Acqua anethi concentrata	Concentrated dill water
Acqua foenicula concentrata	Concentrated fennel water

जापानियोंने लैटिनके सभी जीव-विज्ञान सम्बन्धी शब्दोंका अनुवाद किया है। उन्होंने लैटिनके क्रमका अनुकरण न कर अपने व्याकरण और संस्कृतिके अनुकूल शब्द बनाये हैं। वनस्पति-शास्त्रके कुछ शब्द लीजिये। इनमें विशेषण संज्ञा पहले दिया गया है और संज्ञा पीछे।

अंग्रेजी नाम	जापानी नाम
Medicago (genus)	उमागोयाशी (जोकु प्रजाति)
Medicago sativa	मुरासाकी उमागोयाशी ('मुरासाकी' का अर्थ नीलारुण होता है। यहाँ जापानियोंने Sativa का शब्दार्थ नहीं किया।)
Medicago lupulina	कोमत्सुबु उमागोयाशी
Medicago minima	को उमागोयाशी

ऊपर लिखित उदाहरण मात्सुमुरा महोदयके 'शोकु-बुत्सु-मेइ-ई' अंक १८३-१८४ में प्रकाशित लेखसे है। (देखिये Sino-Iranica by Dr. laufer, पृष्ठ २१८-२४५)। नीचे हम उमेमुरा महोदयकी 'इनोशोकुकाई' 'नो शोकु-बुत्सु-शी' (भाग ४) नामक पुस्तिकासे एक और उदाहरण देते हैं :—

Vitis thunbergii	एबी जुरु (यहाँ पर व्यक्तिका नाम नहीं रखा गया)
Vitis flexussa	सांकाकु जुरु
Vitis saccharifera	आमा जुरु ('आमा' का अर्थ 'मीठा' है। इस वनस्पतिके पत्तोंमें मिठास होती है। लैटिन 'सैखरीफैरा'की व्युत्पत्ति संस्कृत 'शर्कराभर'='मिठासपूर्ण'से है।)

नीचे कुछ पक्षियोंके नाम उदाहरणार्थ दिए जाते हैं :—

अंग्रेजी नाम	जापानी नाम
Chloris sinica kittilitzi	ओगासावारा कावाराहिवा (ओगासावारा द्वीपमें यह पक्षी मिलता है)
Chloris sinica scabolemi	इवोतो कावाराहिवा (इवोतो द्वीप विशेष है।)
Zosterops japonicus	बोनिन मेजिरो (यह पक्षी बोनिन द्वीपका है।)
Zosterops japonicus alani	इवोतो मेजिरो
Microscelis amaurotis squamiceps	ओगासावारा हियोदोरी
Microscelis amaurotis magnirostris	हाशीबुतो हियोदोरी
Hororanis diphone diphone	ओगासावारा उगुइसु
Hororanis „ iwootocusis	इवातो उगुइसु

जापानियोंने लैटिनके क्रमका अनुसरण नहीं किया। इतना ही नहीं, उन्होंने अंगरेजी अन्वेषकोंके नामोंको भी नहीं रखा। उन अन्वेषकोंके नामोंके स्थानमें सार्थक विशेषण रख दिये हैं।

Fauna of British India (Birds) by Stuart Baker, (london. 1922) में भारतवर्षके सारे पक्षियों का वर्णन है। इस ग्रन्थमें लैटिन वैज्ञानिक नामोंके साथ-साथ अंगरेजीके भी नाम दे रखे हैं। इन सबमें विशेषण संज्ञासे पहले दिया गया है।

लेटिन नाम

2. Corous coraj tibetanus
2. Corous corax tibetanus
4. Corous corone orientalis
5. Corous coronoides
   Corous coronoides andamenesis
17. Pica pica serica
22. Urocissa flavirostris flavirostris
38. Platysmurus leucopterus
47. Nucifraga multipurectata
51. Parus major cinercus
53. Parus major kaschmirecusis
56. Parus major tibetanus
65. Hophophanes rubidiventris
83. Aegithaliscus leucogenys
100. Suthora Fulvifrous
   Suthora Fulvifrous Fulvifrous
110. Sitta castanciventris castanciventris
115. Sitta magna
118. Sitta Formosa
120. Dryonastes ruficollis
137. Garrulax albegularis albegularis
143. Iauthocincla rufogularis rufogularis
148. Trochalopterum crythrocephalum crythrocephalum
160. Trochalopterum subunicolor subunicolor
177. Grammatoptila straita straita
190. Turdoides cincreifrones
196. Argya subrufa
197. Argya longirostris
249. Pellorucum fuscicapillum fuscicapillum

270. Stachyris nigriceps nigriceps
283. Mixornis rubricapilla rubricapilla
302. Pseudominla castanciceps castanciceps

उपर्युक्तके क्रमशः आंग्ल नाम

The Tibet Raven.
The Brown-nacked Raven.
The Eastern Carrion-crow.
The Jungle Crow.
Andman Jungle-Crow.
The Chinese Magpie.
The yellow-billed magpie.
The white-winged jay.
The larger-spotted Nutcracher.
The Indian Grey Tit.
The Kashmir Grey Tit.
The Tibetan Grey Tit.
The Rufous-Bellied Crested Tit.
The White-checked Tit.
The Fulvous-Fronted Suthora.
Fulvous-Fronted Suthora.
The Chestnut-Bellied Nuthatch.
The Giant Nuthatch.
The Beautiful Nuthatch.
The Rufous-necked laughing Thrush.
The White-throated Laughing-Thrush.
The Rufous-Chinned Laughing-Thrush.
The Red-headed Laughing-Thrush.
The Plain-coloured Laughing-Thrush.
The Straited Laughing-Thrush.
The Ashy-Headed Babbler.
The Rufous Babbler.
The Slender-Billed Babbler.
The Brown-capped Babbler.
The Black-throated Babbler.
The Yellow-Breasted Babbler.
The Chestnut-Headed Babbler.

ऊपरके वर्णनसे स्पष्ट है कि द्विपद नामपद्धति विशेष्य और विशेषणका ही प्रश्न है। इसके लिए आवश्यक है कि हम भारतीय भाषाओंमें संज्ञा और विशेषणका क्रम देखें। इन सबमें विशेषण पहले और विशेष्य पीछे आता है। उदाहरणार्थ हिन्दीमें 'काला घोड़ा' ही कहेंगे, 'घोड़ा काला' नहीं।' प्रस्तुत विषय' ही ठीक प्रयोग है, 'विषय प्रस्तुत' नहीं। बंगला लीजिए—वहाँ 'परम मित्र' 'परमा शान्ति' 'बड़ गाछ' ही हुआ करते हैं। विश्व कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कविता 'सूरदासेर प्रार्थना' लीजिए :—

अपार भुवन उदार गगन,
श्यामल काननतल........।

विशेषण कहीं भी संज्ञाके पीछे नहीं आता। इसी प्रकार गुजरातीमें भी विशेषण पहले दिया जाता है :—

'चेपी रोग' (लगनेवाले रोग Contajious disease) 'लालघोड़ो' 'लाल कपड़ुं' 'मोटी बारी' (बड़ी खिड़की) आदि-आदि।

दक्षिणकी भाषाओंके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :

मलयालम

चेल्लुम् कणक्क	चल लेखा (Current account)

मलयालम

कूट्टु कणक्क	संयुक्त लेखा (Joint account)
परदेश चन्त	विदेशी विपणि (Foreign market)
वलिय वीटुक	बड़े घर (Big houses)

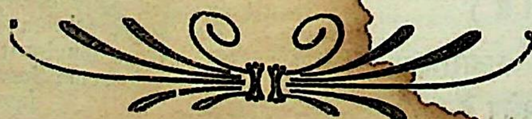
तामिल

शुड्ड नीर	उष्ण जल
पेरिय वर्त्तगन्	बड़ा व्यापारी
एक दिन कायिदम्	लिखित पत्र

केवल भारतमें ही नहीं, सुदूर लंकामें भी विशेषण संज्ञासे पहले आता है :—

सिंहली शब्द	अर्थ
मस	माँस
तम्बुपु मस	उबला हुआ माँस
पुळुस्सपु मस	भुना हुआ माँस
बदपु मस	तला हुआ माँस
सीमासहित समागम	सीमित प्रमण्डल (Ltd. Co.)
सयन रथयक्	रेलमें सोनेके लिए गाड़ी।

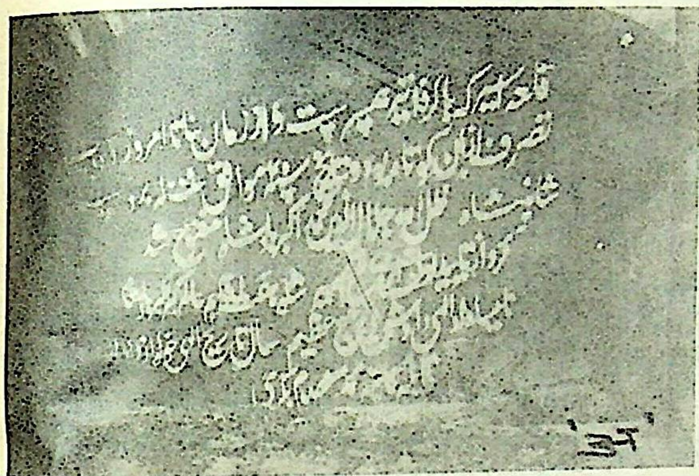
इस प्रकारसे यह स्पष्ट ही है, कि द्विपद नाम पद्धतिमें संज्ञा और विशेषणकी भाँति जाति-वाचक शब्द पहले और प्रजाति-वाचक शब्द पीछे आने चाहिए। यही हमारी सारी भारतीय भाषाओंके व्याकरणके अनुकूल होगा। यही अंगरेजीमें किया गया है। यही अन्य विज्ञानकी शाखाओंका सिद्धान्त है। इसीका जापानियोंने अपनी शब्दावलीमें अनुसरण किया है।



असीरगढ़ दुर्ग

प्रभाकरत्रिम्बक हिंगणे

असीरगढ़का पहाड़ी किला मध्य-प्रदेशके निमाड़ जिलेमें सतपुड़ा पर्वतपर आज भी सदियोंसे मूक खड़ा हुआ मानवकी हलचलें निहार रहा है। यह दुर्ग खण्डवा और



बुरहानपुरके बीच हैं। खण्डवासे उन्तीस मील और बुरहानपुरसे चौदह मील है। रेल और मोटर दोनों मार्गोंसे वहाँ जा सकते हैं। रेल-मार्गसे चाँदनी स्टेशनपर उतरना पड़ता है। चाँदनीसे सात मील बैलगाड़ी द्वारा या पैदल रास्ता तय करनेके पश्चात् दुर्गके समीप पहुँचते हैं। मोटर द्वारा जाना ही सुविधाजनक है। मोटरसे हम ठीक किलेके पास पहुँच जाते हैं। इस प्रकार सात मीलकी आपत्तियोंसे बच जाते हैं और किलेको देखनेकी उत्सुकता और उत्साह बने रहते हैं। हाँ, एक बात और ध्यानमें रखना आवश्यक है कि वर्षा ऋतुमें इसे देखने जाना असुविधाजनक है। वसंत ऋतु ही उसे देखनेका सर्वोत्तम समय है।

आपको किलेके सम्बन्धमें कुछ भी जानकारी देनेके पूर्व इससे सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओंका संक्षेपमें क्रमवार उल्लेख कर देना उचित होगा—

(१) महाभारतमें इस किलेका उल्लेख है।

"Asirgarh is believed to have been mentioned in the Mahabharata as the seat of worship of the warrior Aswathama."—(*The Nimar District Gazetteer* volume, page 20)

(२) चन्दबरदाईके 'पृथ्वीराज' रासमें असीरके टाकोंका उल्लेख है। (३) फरिश्ताके कथनानुसार आसा नामक गौलीने इसे बनवाया है। (४) असीरगढ़ मुहर :—कैप्टिन कोलब्रुक द्वारा असीरगढ़में एक पेटी पाई गई जिसमें महाराज सिंधियाकी जायदाद थी। पेटीमें एक मुहर थी जो माउखाली राजा सरवा वरमनकी है। इसपर सन् या तारीख नहीं है। परन्तु दूसरे खुदे हुए लेखोंसे सरवा वरमनके पिता (इशन वर्मा) का राज्य काल ईसाके बाद ५५० निर्धारित होता है। (नि. गेजेटियर) (५) सन् ११९१ में यह चौहानोंके हाथमें रहा। (६) फीरोज तुगलकके एक योद्धा मलिकखांके पुत्र नसीरखाँने इसे सन् १३९९ के बाद जीत लिया। उसीने जैनाबाद और बुरहानपुर नगर बसाये। (७) सन् १४५७ या १४५८ में मीरन ग़नी उर्फ आदिलखाँने असीरगढ़ दुर्गका विस्तार किया। सामनेका भाग जो 'मलईगढ़' कहलाता है, इसीका बनवाया हुआ है। (८) आदिलशाहकी मृत्यु सन् १५६६ ई० में हुई। बहादुरशाह उसका लड़का था। वह दूरदर्शी न था। उसने अकबरसे बैर मोल लिया। उसने अपने बचावके लिए इस किलेमें ऐसा प्रबन्ध किया कि उसमें दस साल तक घिरे रहनेपर भी बाहरसे किसी वस्तुके

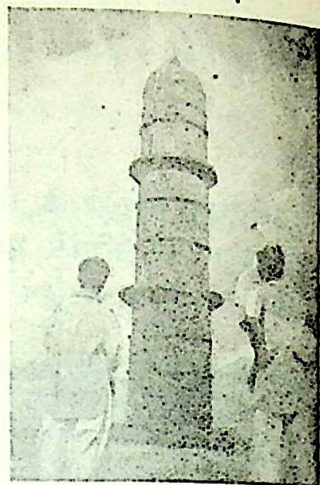


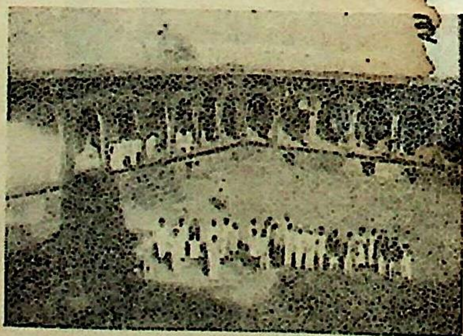
लानेकी आवश्यकता न पड़े। अकबरने हमला किया, परन्तु सब बार निष्फल रहा। अन्तमें विश्वास-घातकर बहादुरशाहको क़ैद किया। किलेदार हब्शी था। वह ईमानदार था। उसने उसे क़िला नहीं सौंपा। किलेपर दनादन तोपें दगीं, परन्तु क़िला छाती ताने अड़ा खड़ा रहा। उसका बाल बाँका न हो सका। अन्तमें साम, दण्डके बाद दामसे काम लिया गया। साढ़े दस महीने घिरे रहनेके बाद १७ जनवरी, सन् १६०१में क़िला अकबरके हाथ लगा। (म० प्रा० का इतिहास)

इनमेंसे कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ फ़ारसी और अरबीमें पत्थरोंपर खुदी हुई हैं, जो किलेके फाटकमें प्रवेश करते समय दाहिनी ओरकी दीवारमें प्रेक्षण की जा सकती हैं। (९) सन् १७६० से १८१६ तक यह क़िला मरहठोंके हाथमें रहा। (१०) अन्तमें यह अंग्रेज़ोंके अधिकारमें आया। सन् १९०४ तक वहाँ कुछ सेना दुर्गमें रखी गई थी।

अब हमें इन ऐतिहासिक घटनाओंको आधार मान दुर्गकी वास्तविक स्थिति तथा उनके प्राचीन इतिहासको खोजनेका यत्न करना होगा।

दुर्ग कब और किसने बनवाया यह निश्चित करना कुछ कठिन अवश्य है, परन्तु असम्भव नहीं। 'अश्वत्थामा' नामसे किलेमें हम जो परिचय पाते हैं, उससे पता चलता है कि क़िला महाभारत कालका बना हुआ होगा। परन्तु दुर्गके पास वाले ग्रामीण वृद्धोंसे पूछनेपर तथा उनमें प्रचलित कुछ गीतोंको सुननेपर ज्ञात होता है कि दुर्ग किसी 'आसा' नामक गौलीने बनवाया है। फ़रिश्ताका भी यही मत है। लेकिन एक साधारण स्वभावतः सरल शान्तिप्रिय शैलीकी इन विकट पहाड़ियोंके बीच, इतनी ऊँचाईपर, उस समय जब कि चारों ओर शान्ति थी, क़िला बनवानेकी आवश्यकता क्यों पड़ी? ऐतिहासिक प्रमाण न मिलनेपर 'अश्वत्थामा'वाली बातपर विचार करना है। 'अश्वत्थामा' मन्दिर प्रचीन होनेपर भी सुन्दर और सुदृढ़

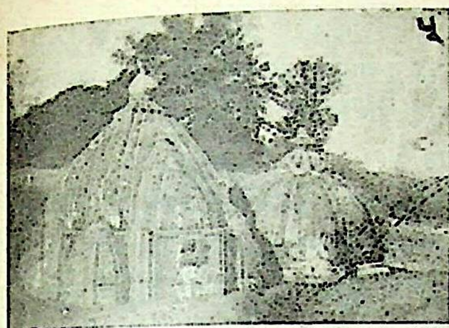




है। इसका ध्यानपूर्वक अवलोकन करनेसे महाभारतकालीन ऐश्वर्यशाली युगका ध्यान हो आता है।

किलेकी वास्तविक स्थिति तथा बनावटका अवलोकन करना हो तो चाँदनी स्टेशनसे बजाय पक्की सड़कके, पगडण्डीसे किलेको अपना लक्ष्य बना चल पड़िये। प्रारम्भमें तो छोटे छोटे मैदानों और पहाड़ियोंको पार करनेमें आनन्द आता है। लम्बी घास और उससे ढँके हुए खड्डोंमें पैरका फँसना, कँटीली झाड़ियोंका कपड़ोंसे आलिङ्गन, जंगली पशुओंकी डरावनी आवाज़ आदिके सम्मिश्रणमें यात्री स्वतःको खो बैठता है। क्रमशः यह आनन्द और तल्लीनता जाती रहती है। बड़ी-बड़ी पहाड़ियाँ हैं। ज़मीन पोली है। लम्बी घास है और यात्री चारों ओर पहाड़ियोंसे घिर जाता है। भयावना सन्नाटा है। कठिनाइयाँ बढ़ती जाती हैं और हम दुर्गकी भौगोलिक स्थिति और बनावटकी अद्भुतताका अनुभव करने लगते हैं। प्रत्येक पहाड़ीको पार करनेके पूर्व यही मालूम होता है कि इसे पार करते ही कुछ मैदान होगा और उसके बाद दुर्ग। यात्री हिम्मत और आशासे पहाड़ीकी चोटीपर पहुँचता है। परन्तु उसे निराशा ही हाथ लगती है। अभी कई पहाड़ियाँ और तय करनी हैं। कच्चे यात्री आगे बढ़नेसे इनकार कर देते हैं। परन्तु अपने पूर्वजोंकी अपूर्व कृतिको देखकर उनमें फिर नया बल और उत्साह आ जाता है।

वास्तवमें वह इञ्जिनीयर धन्य है जिसने किलेको बनानेके पूर्व इतनी सावधानीसे उस स्थानके आसपासकी भौगोलिक स्थितिका अवलोकन किया था। किलेके ऊपरी हिस्सेपरसे किलेके चारों ओर पहाड़ियाँ-ही-पहाड़ियाँ दिखाई पड़ती हैं। शत्रु किलेके उस सतर्क पहरेदारकी आँख बचाकर किलेके पास नहीं पहुँच सकता, जो किलेके संरक्षणार्थ खड़ा हो। इस



पहाड़ियोंको देख एक बार चक्रव्यूहकी रचनाका काल्पनिक चित्र कुछ क्षणोंके लिए दृष्टि-पटलपर आ ही जाता है। वह इञ्जिनीयर साधारण व्यक्ति नहीं था, यह बात सिद्ध हो जाती है। यह कार्य तो उसी असाधारण व्यक्तिका हो सकता है जो प्राचीन युद्ध-कलाओंमें निपुण रहा हो। इसका निर्माता चक्रव्यूहकी रचनाकी जानकारी अवश्य रखता होगा। 'अश्वत्थामा' शब्द कर्ण-पटलपर पड़ते ही द्रोणाचार्यका स्मरण हो आता है। दुर्गकी वास्तविक स्थितिके अवलोकनसे क्या हमें आभास नहीं होता कि यह अभेद्य दुर्ग महाभारत कालीन है?

उपर्युक्त आभासकी सत्यता इस प्रमाणसे और दृढ़ हो जाती है। महाभारतमें इससे सम्बन्धित एक कथा है—'द्रोणाचार्यका कपटसे वध किया गया। इस कारण गरजते हुए शेर 'अश्वत्थामा'ने भी प्रतिकार की भावनासे कपट द्वारा ही पाण्डव-परिवारका निःपात किया तथा उन निहत्थोंको क्रूरतासे मौतके घाट उतारा। द्रौपदीका नारी-हृदय इन हृदय-विदारक दृश्योंको देख करुणा तथा शोकसे दहल उठा। क्रोधके आवेशमें द्रौपदीने उसे महारोगी होनेका शाप दिया। अश्वत्थामा सप्त-जीवोंमें से एक है तथा वह मारा मारा भटकता फिरता है। उसका वास्तव्य असीरगढ़ किलेपर आज भी है ऐसा विश्वास प्रकट किया जाता है। कुष्ठ-रोगी अश्वत्थामा वेष बदलकर तेलकी भिक्षा कभी-कभी माँगता है। वह तेल अपने घावोंपर डालता है और अपने बहते हुए घावोंको एक विशेष प्रकारकी वनस्पतिसे पोंछ डालता है। वह वनस्पति उस कारण 'विषमय वचनाग' बनती है। असीरगढ़के पास 'वचनाग' विपुलमात्रामें पाई जाती है।'

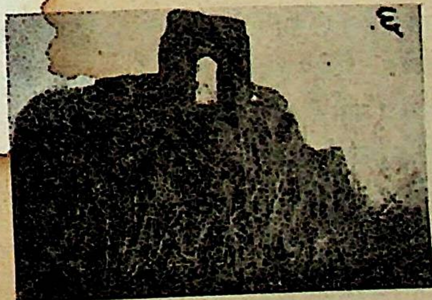
'वचनाग' असीरगढ़के आसपास आज भी पाई जाती है'—इस कथनसे भी क्या यह प्रमाणित नहीं होता कि यह दुर्ग (भले ही छोटे रूपमें) महाभारत कालीन है। इस प्रकार इस सम्बन्धमें खोज की जाय तो इस किलेसे रहस्यमय घटनाओंके उद्घाटन होनेकी अधिक सम्भावना है। आइए, अब उसके आश्चर्यजनक वर्त्तमान रूपको देखें।

वर्त्तमान रूप

करीब दो फर्लाङ्ग चढ़ाई तय करनेपर दुर्गके प्रथम बुर्जके समीप पहुँचते हैं। दाईं ओर घूमनेपर दुर्गका प्रथम प्रवेश-द्वार हम देखते हैं। प्रवेश-द्वारसे कुछ ही दूरीपर 'गंगा-यमुना' नामक दो कुण्ड हैं। लम्बी घासमें छिपे हुए इन दो कुण्डोंका बहुत महत्त्व है जो आगे प्रसंगानुसार बताया जायगा। इसी द्वारके दाहिनी ओर पत्थरपर खुदे हुए तीन लेख हैं। चित्र 'अ' उनमेंसे एक है। प्रवेश-द्वारके अन्दर ऊपरकी ओर देखने से दो छिद्र हैं जिनमें लोहेके नल लगे हुए दिखाई देंगे, उनमें से उबलता हुआ पानी प्रथम प्रवेश-द्वार टूटनेपर दुश्मनपर फेंका जाता था। यह मानव-बुद्धिको जँचनेवाली बात है। इस प्रकारके छिद्र तथा नल प्रत्येक प्रवेश-द्वारपर हमें दिखाई देते हैं। चलिये, आगे बढ़िये! इस द्वारके बाद चढ़ाई कुछ आसान है लेकिन मार्गके आसपास खाइयाँ अवश्य हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक चढ़ाई चढ़नेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। अब वर्षा तथा हवाके निरन्तर आघातसे वे बह चुकी हैं।

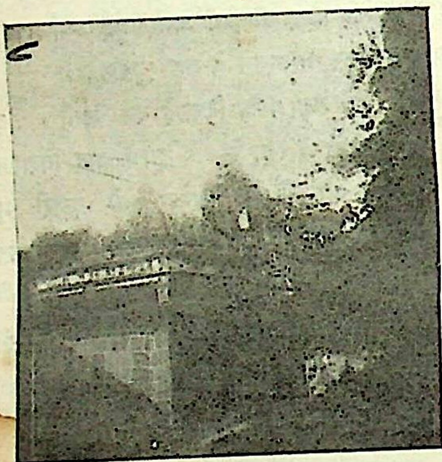
लीजिये दूसरी रक्षा-पंक्ति दिखाई देने लगी। दूरसे ही अन्तिम द्वार दिखाई दे रहा है। द्वारके बाद विशाल सपाट मैदान है। इस ओर किलेके अन्दर जो दूसरी भूमि है उसपर खेती की जाती थी। सैनिकोंकी आवश्यकताओंको उसी भूमिसे प्राप्त किया जाता था।

दूरसे ही दो मीनारें दिखाई देती हैं। चित्र नं० १ में जामा मस्जिद की ही मीनारें हैं। यह केवल पत्थरोंकी मस्जिद मुगल सम्राट शाहजहाँके राजत्वकालमें बनी है। चित्र नं० २ में जो मेहराबदार द्वार हैं, सब पत्थरके बने हुए हैं। इनकी संख्या बारह है। यहाँ लगभग बारह सौ आदमी नमाज पढ़ सकते हैं। मध्यभागमें एक शिलाखण्ड है। उसके ऊपर लोहेका काफ़ी बड़ा बोल्ट लगा हुआ है। कहते हैं कि उस शिला खण्डके नीचे गुप्तमार्ग है जो भू-गर्भमें से बुरहान-पुर तक गया है। इस गुप्त मार्गसे घुड़सवार सैनिक सरलता से जा सकते थे। इस मार्गकी खोज करनेका यत्न अंगरेजोंने



किया था, परन्तु वे निष्फल रहे। चित्र नं० ३ में अन्दरके मैदानका दृश्य है। मस्जिदमें दाहिनी ओर एक कुँआ है जिसका जल हमेशा बहुत ठंडा रहता है। चित्र नं० ४ केवल मीनारका दृश्य है। मीनारके पत्थर अब गिरते जा रहे हैं, यह चित्रसे जाना जा सकता है। मीनारके ऊपरी भाग तक जानेके लिए उसीके अन्दरसे मार्ग है।

आइये, अब किलेके पृष्ठ भागकी ओर चलें। यह शंकर भगवान्‌का मन्दिर है। चित्र नं० ५ देखिये। इसे ही 'अश्वत्थामा'का पूजा-स्थान बताया जाता है। मन्दिरसे सटकर एक गहरी बावड़ी (खुला कुआँ) है। इसमें से भी एक गुप्त मार्ग बताया जाता है जो दुर्गके बाहर प्रथम प्रवेश-द्वारसे कुछ दूरीपर स्थित 'गंगा-यमुना' कुण्डमें आकर समाप्त होता है। हो सकता है कि शत्रुके किलेमें घुसनेपर उन्हें चकमा दे उनपर पीछेसे



हमला करनेके लिए इसका निर्माण किया गया हो। प्रकृतिके लगातार आघात होनेपर भी मन्दिर सुन्दर और सुदृढ़ है। मन्दिरमें नन्दी भी विराजमान है। निर्जन स्थानमें होनेपर भी वहाँ भयावना सन्नाटा नहीं वरन् परम शान्तिका अनुभव होता है। मन्दिरसे पचास या साठ कदमपर ही पहरेदारके लिए स्थान है। चित्र नं० ६ में वही स्थान है।

मन्दिरसे नीचेकी ओर चलनेपर हमें सात द्वार मिलते हैं। इनके समाप्त होते ही हम छोटे किले पर आते हैं। चित्र नं० ७ देखिये। किलेके बाहर हैं हम। प्राण-रक्षाके लिए दुर्गके बाहर आनेका मार्ग है। ध्यान रहे चित्र नं० ७ किलेका पीछेका हिस्सा है। प्राकृतिक, काली चट्टानोंपर ही सम्पूर्ण दुर्गका निर्माण किया गया है। इसी स्थानपर पत्थरकी बनी हुई मीनार सी है। शायद यह किसी वीरका स्मारक हो। हाँ, एक बात और। यह न समझिये कि हम दुर्गके नीचे आ गये हैं। यहाँ से भी चारों ओर विशाल और एकदम गहरी खाइयोंके ही दर्शन होते हैं।

चलिये वापस! अंग्रेजोंके सैनिकोंके लिये बने हुए बैरक्स झुककर आपसे क्षमा-याचना कर रहे हैं और किलेकी भव्य दीवारें सदियों बन्द आज भी सीना ताने बैरक्सके अवशेषोंको स्मित हास्य कर रही हैं। आप हँसिएगा नहीं उन ईटोंपर। वे घृणाकी नहीं वरन् दयाकी पात्र हैं। आगे बढ़िये। मुसलमान और अंग्रेजोंके कब्रिस्तान भी आपसे कुछ कहना चाहते हैं। अंग्रेजोंकी कब्रें आज भी अपनी निःस्वार्थ देशभक्तिका हमें पाठ पढ़ानेके लिये इस निर्जन स्थानपर पड़ी हैं। एक कब्रपर लिखा है—"In the midst of life, we are in death" उनकी देशभक्तिका मौन सन्देश सुन हमें अपनी राष्ट्रीयतापर लज्जा आती है। धन्य हैं वे वीर और उनकी देशभक्ति!

इन्हीं स्थानोंपर कुल छः तड़ाग और लगभग चौदह कुएँ हैं। भारतमें पानीकी सुन्दर व्यवस्थाके लिए प्रसिद्ध दुर्गोंमें असीरगढ़ दुर्गका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह दुर्ग दक्षिण भारतका प्रवेश-द्वार कहलाता है।

इसीसे सम्बन्धित दो स्थान और हैं। दुर्गके एकदम नीचे लगभग चार सौ जन-संख्यावाले असीरग्राममें प्राचीन शिव-मन्दिर है। चित्र नं० ८ देखिये। सड़क छोड़कर कुछ ही फर्लांग चलने पर हमें 'मोती महल'के दर्शन होते हैं। यह इमारत मुग़ल-कालीन है। इसके आसपास पहले घना जंगल था। परन्तु अब वह भूमि खेतीके योग्य बना ली गई है। कहते हैं इस स्थानमें बहुत-सा धन है। कइयोंने इस धनको पानेके लिये प्रयत्न किये, परन्तु उन्हें मृत्युके घाट उतरना पड़ा। सन् १९३३-३४ में तो स्वयं मैंने एक फकीरको वहाँ पाया। उस समय वहाँ बहुत ही घना जंगल और जंगली पशुओंका निवास-स्थान था।

आज यह प्राचीन जीर्णावस्थाको प्राप्त ऐतिहासिक दुर्ग, स्वतन्त्र भारतमें अपने उद्धार तथा संरक्षणकी प्रतीक्षामें गम्भीर मुद्रा लिए निश्चल खड़ा है। परन्तु इस ओर अभी किसीका ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। आशा है निकट भविष्यमें हमारी जनप्रिय सरकार, प्राचीन स्थान तथा इमारतोंके संरक्षणकी नितान्त आवश्यकताकी ओर ध्यान देकर इस महत्त्वपूर्ण दुर्गके लिए कोई-न-कोई योजना अवश्य बनायगी।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड कलकत्ता।

विशाल भारत

के

प्रति अंकका विज्ञापन-दर

साधारण पूरा पृष्ठ	६०)
„ आधा पृष्ठ या एक कालम	३२)
„ चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	१८)
„ चौथाई कालम	१०)
चित्रके पीछेका पूरा पृष्ठ	७०)
„ „ आधा पृष्ठ	४०)
कवरके दूसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	७०)
कवरके तीसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	६५)
सूचीके सामनेका पूरा पृष्ठ	७०)
„ „ आधा पृष्ठ	४०)
„ „ चौथाई पृष्ठ	२५)

अन्तिम पाठ्य-सामग्रीके सामनेका पृष्ठ	८०)
कवरका दूसरा पृष्ठ	९०)
„ तीसरा पृष्ठ	८०)
„ चौथा पृष्ठ	१२५)
„ चौथे पृष्ठका दूसरा कलर ३०) फी कलर ।	
रिडिंग मैटरके साथ पूरा पृष्ठ	१००)
„ आधा पृष्ठ	५५)
„ चौथाई पृष्ठ	२८)
„ चौथाई कालम	१५)

अन्तिम फरमाके अन्तमें छापा जायगा ।

क्रोड़पत्र

'विशाल भारत'के आकारका ९¾×७ इंच

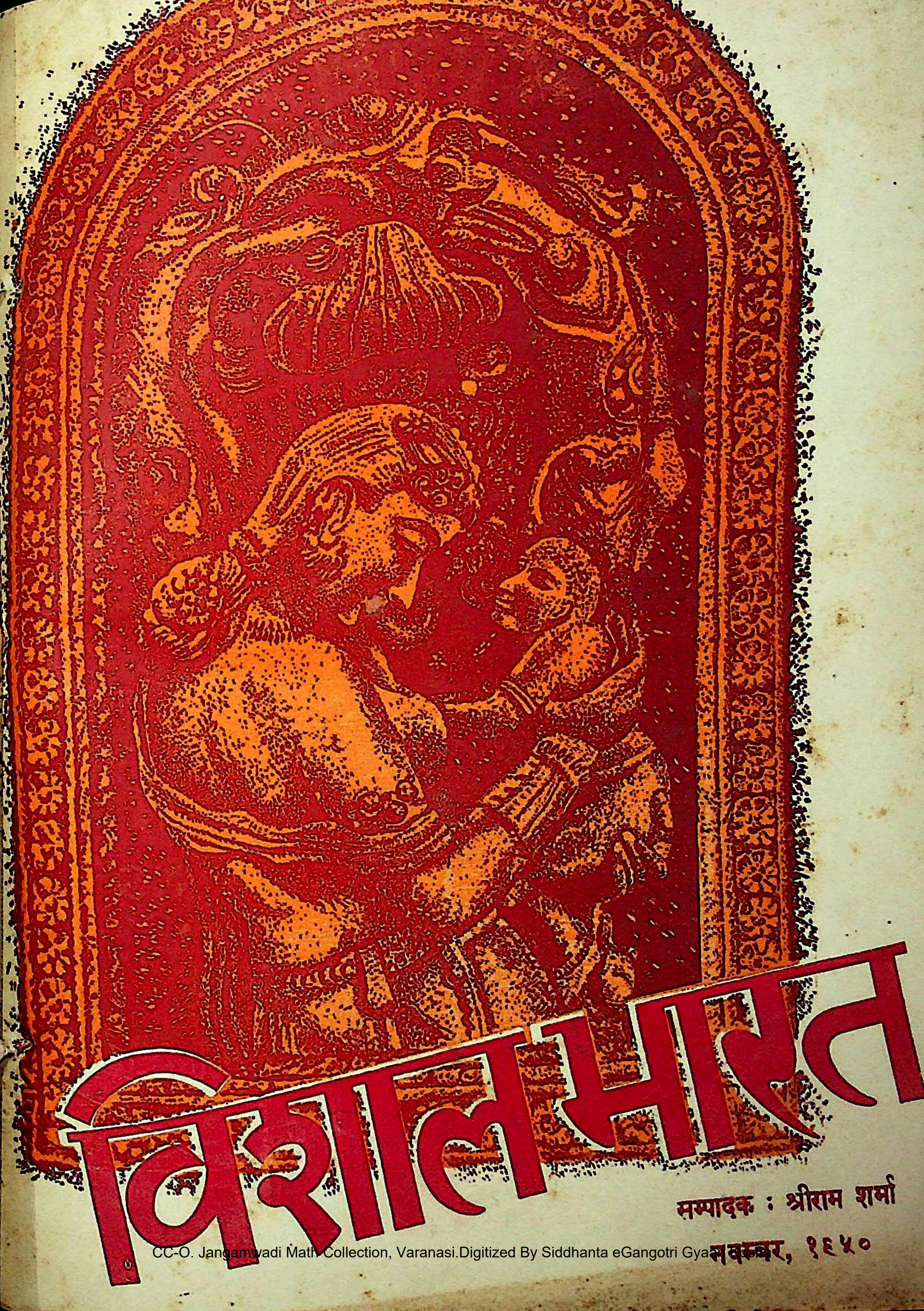
(विज्ञापनदाता द्वारा मुद्रित)

८ पृष्ठ	१२५)
४ पृष्ठ	८०)
२ पृष्ठ	४५)

नोट :—उपरोक्त दर जनवरी १९४९ से शुरू हुआ है ।

मैनेजर, 'विशाल भारत' १२०।२, अपर सरकूलर रोड,

कलकत्ता ९


विशाल भारत
सम्पादक : श्रीराम शर्मा
नवम्बर, १९५०

प्यारी बहिनों !

न तो मैं नर्स हूँ, और न डाक्टर हूँ, और न वैद्यक ही जानती हूँ, बल्कि आप ही की तरह एक गृहस्थ स्त्री हूँ। विवाहके एक वर्ष बाद दुर्भाग्यसे मैं लिकोरिया (श्वेत प्रदर) और मासिक धर्मके दुष्ट रोगोंमें फंस गई थी, मुझे मासिक-धर्म साफ न आता था, अगर आता था तो बहुत कम और दर्दके साथ जिससे बहुत दुख होता था। सफेद पानी या (श्वेत प्रदर) अधिक जानेके कारण मैं दिन प्रति दिन कमजोर होती जा रही थी, चेहरेका रंग पीला पड़ गया था, घरके कामसे जी घबराता था, हर समय जी चकराता, कमर दर्द करती और शरीर टूटता रहता था मेरे पतिदेवने मुझे सैकड़ों रुपयेकी औषधि सेवन कराई, परन्तु किसीसे भी रत्ती भर लाभ न हुआ। इसी प्रकार मैं लगातार दो वर्ष तक बड़ा दुःख उठाती रही। सौभाग्यसे एक सन्यासी हमारे दरवाजेपर भिक्षाके लिए आये। मैं दरवाजेपर आटा डालने आई तो महात्माजीने मेरा मुख देखकर कहा—'बेटी तुझे क्या रोग है, जो इस आयुमें चेहरेका रंग रुईकी भाँति सफेद हो गया है।' मैंने सारा हाल कह सुनाया, उन्होंने मेरे पतिको डेरेपर बुलाया, और उनको नुस्खा बतलाया, जिसके केवल १५ दिन सेवन करनेसे ही मेरे तमाम गुप्त रोगोंका नाश हो गया। ईश्वरकी कृपासे अब मैं कई बच्चोंकी मा हूँ। मैंने इस नुस्खेसे अपनी कई बहनोंको अच्छा किया है और कर रही हूँ। अब मैं इस अद्भुत औषधिको अपनी दुखी बहिनोंकी भलाईके लिए असल लागत पर बांट रही हूँ। इसके द्वारा मैं लाभ उठाना नहीं चाहती। क्योंकि ईश्वरने मुझे बहुत कुछ दे रखा है। एक बहनके लिए पन्द्रह दिनकी दवा तयार करनेपर २॥≈) दो रुपये चौदह आने असल लागत खर्च होती है, और महसूल डाक अलग है।

यदि कोई बहिन इस दुष्ट रोगमें फंस गई हो तो वह मुझे जरूर लिखें। मैं उनको अपने हाथसे औषधि बनाकर वी० पी० पार्सल द्वारा भेज दूंगी। यह मेरा धर्म है कि मैं किसी बहनसे दवाकी कीमत असल लागतसे एक पैसा भी ज्यादा न लूंगी।

जरूरी सूचना—मुझे केवल स्त्रियोंकी इस दवाईका ही नुस्खा मालूम है, इस लिए कोई बहन मुझे और रोगकी दवाईके लिए न लिखें।

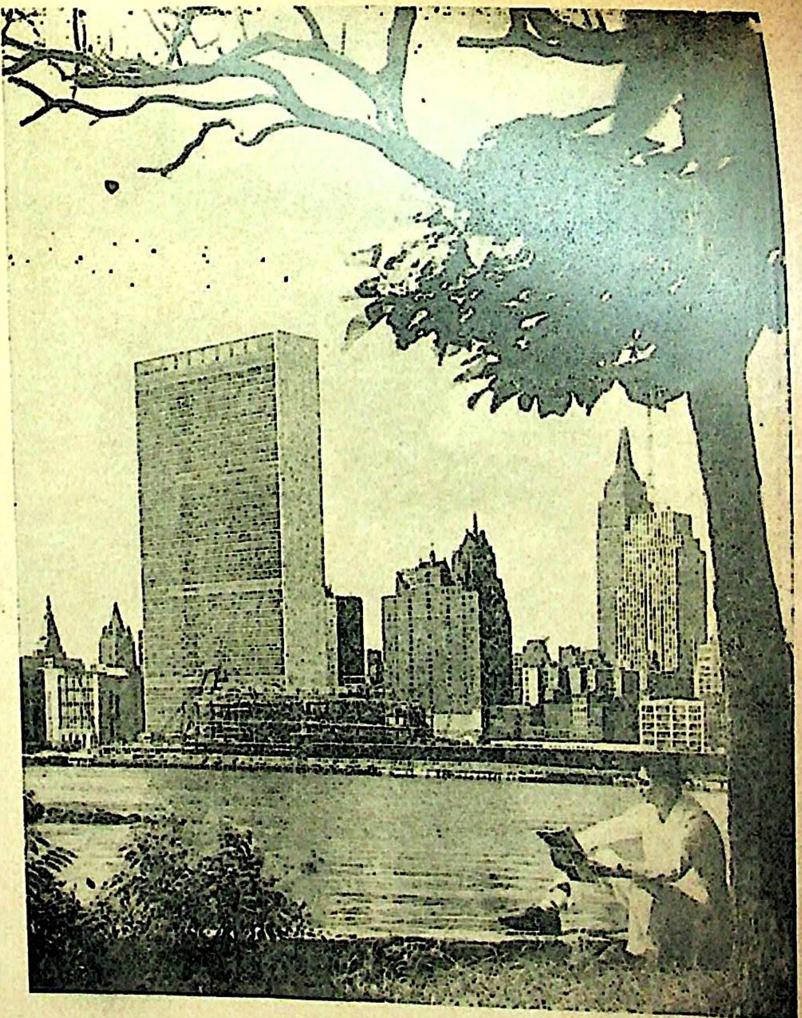
प्रेमप्यारी अग्रवाल, १०६ बुढ़लाढ़ा

जिला हिसार [पूर्वी पंजाब]

विषय-सूची : नवम्बर, १९५०



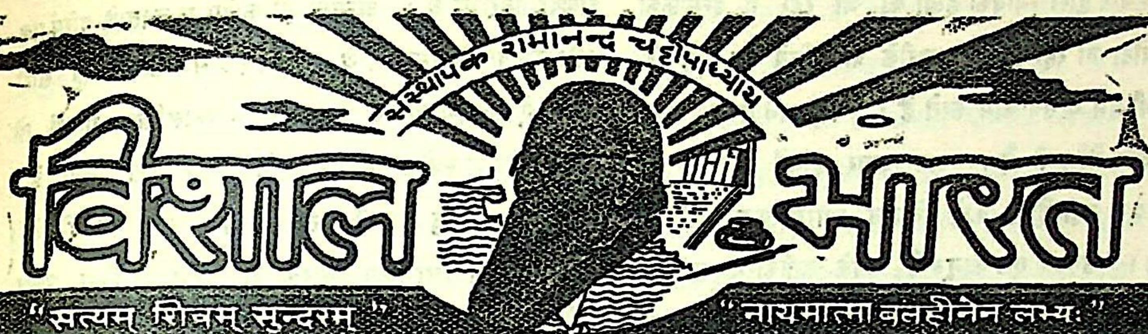
आसामके भूकम्पसे क्षतिग्रस्त स्थानोंके निरीक्षण एवं अन्न देनेमें संलग्न दो वायुयान।



यू० एन० सेक्रेटेरियटका ३९ मंजिला महल एवं पार्श्व भागमें न्यूयार्ककी अन्य गगनचुम्बी इमारतें।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] दूरका यात्री [श्री देवीप्रसाद रायचौधरी



भाग ४६, अंक ५] कलकत्ता, नवम्बर, १९५० [पूर्णांक २७५

सम्पादकीय विचार

ठंडी राख

आज राजनीतिक संघर्षका बोलबाला है, प्रत्येक व्यक्ति राजनीतिमें प्रवेश करनेके लिये उत्सुक दिखाई देता है। जो लोग सन् ४२ की क्रान्तिके समय अंगरेजोंकी सरकारके साथ गँठबन्धन करके भारतीय स्वाधीनतामें रोड़ेरूप सिद्ध हो रहे थे, अब वे ही आज अपनेको कांग्रेसका कट्टर भक्त अथवा अव्वल दरजेका राष्ट्रवादी सिद्ध करनेकी सिर तोड़ कोशिश कर रहे हैं। ऐसे अवसरवादियों अथवा मौकेबाजोंके कारण कांग्रेसमें जो गन्दगी आ गई है या देश जिस निम्न स्तरपर पहुँच गया है वह बड़े ही दुर्भाग्यकी बात है। उधर कांग्रेसी भी प्रायः पदलोलुपता और अधिकार-लिप्साके फेरमें पड़कर अपनी सारी प्रतिष्ठाको मिट्टीमें मिलानेके लिए तैयार दिखाई देते हैं। वे 'परमिट परस्ती' और स्वार्थ-साधनकी सड़कपर ताबड़तोड़ दौड़ते चले जा रहे हैं। आज तपस्याकी भावना अस्त होती जा रही है। नये-नये प्रपंच और नई-नई अखाड़ेबाजियाँ शुरू हो गई हैं। यह प्रपंचकी अमर रेखा ग्रामों और नगरों तक ही सीमित नहीं, उसने हमारे शासकों, नेताओं और अधिकारियों तकके कल्प पादपपर भी अपना अटल साम्राज्य स्थापित कर रखा है। हम बार-बार सोचते और विचारते हैं कि कहाँ बापूका विमल आदेश-उपदेश और कहाँ हमारी दीन-हीन दशा। हम प्रलोभन या प्रपंचपूर्ण परिस्थितिसे अपनेको बिल्कुल पाक-साफ़ नहीं रख सके। राजनीति बुरी बात नहीं है, भगवान् रामके समयमें भी राजनीति थी और महात्मा गांधीने भी राजनीतिको अपनाया। परन्तु उनकी राजनीति में सत्यका बल और शुचिताका आधार था, नैतिकताका आश्रय और ईमानदारीका सहारा था। यदि चाहें तो हम भी अपनी राजनीतिको ऐसा ही बना सकते हैं। कहनेको तो हम बापूके चरण चिह्नोंपर चलनेका दम भरते हैं, परन्तु चलते स्वार्थ-सिद्धि की सड़कपर हैं। दूसरे देशोंकी राजनीति कैसी ही हो, परन्तु इस देशकी राजनीति बिना नैतिकता और सचाईके नहीं चल सकती। इस बातको हमीं नहीं कहते, देशका बड़े-से-बड़ा नेता कहनेको तैयार है। बापूने यही सिखाते-सिखाते परलोक यात्रा की। फिर हमने नैतिकताको इतनी शीघ्रतासे क्यों भुला दिया? हम इतने अधम और अनैतिक क्यों बन गये कि आज न हमारे तपका कहीं आदर है और न त्यागका। स्यार-सिरकटे भी त्यागी-तपस्वी सिद्धोंकी समानतामें खड़े होनेको उत्सुक दिखाई देते हैं। अग्निमें नव जीवन होता है, तब बड़े-बड़े विकराल व्याघ्र भी उसे देखकर दूर भाग जाते हैं; परन्तु जब वही आग ठण्डी राख बन जाती है तो उसे छोटे-छोटे कीटाणु तक पद-दलित करनेमें किसी प्रकारका संकोच नहीं करते। आज कांग्रेसकी हालत भी ठण्डी राखकी तरह है, नैतिकताके अभाववश उसमें जीवन-जागरण और ज्योति

दिखाई नहीं देती। हमलोग ईमानदार नहीं रहे। हम जानते हैं कि हमारे द्वारा न्यायकी हत्या की जा रही है, इन्साफ़का गला घोंटा जा रहा है, ईमानदारीके प्राण लिये जा रहे हैं, फिर भी हम ये सब काम करते हैं। यहाँ अनैतिकता, अनाचार और बेईमानी है। अब अगर हाथमें नैतिकता या ईमानदारी नहीं है तो कोरे विधान वगैरह कुछ नहीं कर सकते। सरकार एक कानून है, उसके प्रतीकारमें स्वार्थान्ध जनता दूसरी कोई तरकीब निकाल लेती है, जिससे क़ानून का करिश्मा मन्दप्रभ हो जाता है। बापूने सबसे अधिक बल नैतिकतापर दिया, उसी नैतिकताका आश्रय लेनेसे हम सच्चे नागरिक और वास्तवमें मनुष्य बन सकते हैं। बापू महा मानव और आदर्श पुरुष थे, हमें यदि सचमुच शान्ति, सुव्यवस्था, ईमानदारी और सद्भावनाकी स्थापना करनी है तो बापूके जीवन और उनके अमर आदेशोंका अनुगमन करना होगा, इसके बिना शान्ति और सुखकी कदापि सम्भावना नहीं हो सकती।

हमारी जीवन-धारा

महाकवि तुलसीदासने अपनी कविता-कला द्वारा मानवता का जो कल्याण किया है उसके लिये हिन्दी-साहित्य उचित-रूपसे गर्व कर सकता है। उन्होंने जीवन-सम्बन्धी कोई प्रश्न ऐसा नहीं छोड़ा जिसपर किसी-न-किसी रूपमें विचार न किया हो। वे अपनी कवितामें मानवताको वह शुभ सन्देश देते हैं जिसके कारण वह अपना स्तर बहुत ऊँचा उठाकर विश्वमें सुख-समृद्धि और शान्तिकी स्थापना कर सकती है। तुलसीदासजी कोरे कवि नहीं थे। उन्होंने अनन्तकी ओर उड़कर शून्य आकाशमें उड़ना नहीं सीखा था। वे पृथ्वीपर ही रहना पसन्द करते थे, और पार्थिव जीवोंको ही स्वर्गीय सन्देश देकर स्वर्गीय बनानेका प्रयत्न करते रहे। उनका क्षेत्र अनन्त आकाश नहीं, सान्त भू-मण्डल था। उनकी वाणी हवामें उड़नेके लिये नहीं, मानव-हृदयमें प्रविष्ट होनेके लिए थी। उन्हें स्वर्ग-प्राप्तिकी उतनी चिन्ता न थी जितनी विश्व-कल्याणकी। वे मानवको मानव बनाना चाहते थे, उससे दानवता दूर करनेमें ही उनकी सारी शक्तिका सदुपयोग हुआ। वे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामके भक्त और दैत्यराज रावणके विरोधी थे। अन्यथा यों कहिए मानवताके परिपोषक और दानवताके उन्मूलक थे। तुलसीदासजीकी यों तो सारी कविताएँ ही कल्याणकारी हैं परन्तु निम्नलिखित गीतमें तो उन्होंने वेद शास्त्रोंका सारा सार निचोड़कर रख दिया है। मानवताकी मञ्जु मूर्त्तिकी कल्पित कल्पना भरके रख दी है। हमारी जीवन-धारा किस प्रकारकी हो, मानवको किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए—इसपर तुलसीदासजीने कैसा सुन्दर लिखा है :

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत स्वभाव गहौंगो॥
यथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर मन-क्रम-वचन नेम निबहौंगो॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मनपर गुन-अवगुन न कहौंगो॥
परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि भगति लहौंगो॥

उपर्युक्त पदका प्रत्येक शब्द मानवताका सन्देश दे रहा है। धर्मका तत्व और नैतिकताका निचोड़ दिखा रहा है। यथा 'लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो' कैसी सुन्दर भावना है। पुरुषार्थ करनेपर जो कुछ मिल जायगा उसीपर सन्तोष करूँगा, किसीसे कुछ न चाहूँगा। इस यथा लाभमें धन-धान्य, स्त्री पुत्र, यश, अधिकार, पद सब ही कुछ सन्निहित है। जहाँ यह भावना हो वहाँ कैसा स्वार्थ, कैसा पराया धन-हरण, कैसा व्यभिचार, कैसा अनाचार, कैसी पदलोलुपता और कैसी अधिकार-लिप्सा। यह तो अपने लिए हुआ, दूसरोंके लिए हम क्या करें; 'पर हित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो' अर्थात् दूसरोंका मन और कर्मसे हित करूँगा। वचनोंके पालनेमें कमी नहीं करूँगा। 'परि हरि देह जनित चिन्ता सारे अर्थ और अनर्थ पेटकी खातिर किए जा रहे हैं, सो तुलसी कहते हैं कि इसकी चिन्ता क्यों है? जितना लाभ (यथालाभ) उसीपर सन्तोष उचित है। दुःख-सुख तो अनिवार्य हैं। इससे कौन बच सकता है? पुरुषार्थ करो

और सम्पत्ति-विपत्तिको अपना भोग समझकर सन्तोष से रहो। व्यर्थ दुखी क्यों होते हो? अगर तुम्हें संसार सन्मार्गपर चलते हुए बुरा कहता है तो उसकी भूल है। तुम तो सबमें अच्छी बात देखो। गुणोंके दर्शन करो। अवगुणकी ओर क्यों जाते हो? कैसा सुन्दर आदेश और उपदेश है। जिन बातोंके अभावसे मानवता आज चीख रही है उन्हींकी पूर्त्तिके लिए कई सौ वर्ष पहले तुलसीदासजीने अपने उक्त गीतमें मनुष्यको मनुष्य बननेकी विधि बताई थी। कविकी यह बात जितनी सत्य आजसे सवा तीन सौ वर्ष पूर्व थी, उतनी आज भी सत्य है। क्या आजकी पीड़ित प्रताड़ित मानवता अपने महाकविके उक्त संदेशकी ओर ध्यान देगी? क्या उस 'रहनि' रहनेकी चेष्टा करेगी? क्या वह अपने कविके कल्याणकारी सन्देशपर कान तथा ध्यान देगी?

कवि-सम्मेलनोंका तमाशा

आज कल जो 'विराट् कवि-सम्मेलन' होते हैं, उनका प्रचार-सम्बन्धी भले ही कुछ महत्त्व हो, परन्तु साहित्यका हित उनसे विशेष नहीं होता। कविजीने एक भारी भीड़को गा-गाकर कविता सुना दी और वाह-वाह प्राप्त कर ली। जो कवि जितना ही गाने, चिल्लाने और अपनी कविताको फबानेमें सफल हुआ, उसने उतने ही प्रशंसाके पुलिन्दे लूट लिये। बड़े-बड़े महाकवि कवि-सम्मेलनोंकी कलामें दक्ष न होनेके कारण पीछे रह जाते हैं और कवि-सम्मेलनोंके 'महारथी' सारी तारीफ़ समेट ले जाते हैं। हमें किसीकी तारीफ़से कोई जलन नहीं, लोग खूब तारीफ़ हासिल करें, हमें तो यह भय है कि कवि-सम्मेलनोंकी ऐसी ही बाढ़ रही तो सुकवियोंकी उनमें कोई आवश्यकता ही न रहेगी। कवि-सम्मेलनोंमें हँसानेवाले भँड़ौए, किसीपर ऊटपटांग, नोंक-झोंक और शृंगाररसमें डूबी हुई कविताएँ ही प्रायः पसन्द की जाती हैं। पसन्द करनेवाली अधिकतर वह जनता होती है जिसे कविता-कलासे कोई सम्पर्क ही नहीं। उसका उद्देश्य तो लच्छेदार ललतरानियाँ सुनकर अपना मन-बहलाव करना मात्र होता है। हम ये खरी-खरी बातें इसलिये लिख रहे हैं कि कवि-सम्मेलनोंका कुछ सुधार हो, वे दिनोंदिन गिरते जा रहे हैं, उन्हें उठाया जाय और अधिक गिरनेसे बचाया जाय। अगर इस ओर हिन्दीवाले सावधान न हुए तो हमारे कवि-सम्मेलन भौंडी भँड़ौएबाजीके अद्भुत अखाड़े बन जायँगे और उन्हें 'कवि-सम्मेलन' कहना 'कवि' या 'कविता' शब्दका अपमान करना होगा। आशा है, सुकविजन इस प्रश्नपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करेंगे और कवि-सम्मेलनोंके संयोजक महाशय भी सावधान होंगे। कवि-सम्मेलनोंके बदले कवि-गोष्ठियाँ होनी चाहिए जिनमें वे ही श्रोता प्रविष्ट हों जो साहित्यको समझते हैं, वे ही कवि आमन्त्रित किये जायँ जो कविता-कलाके उपासक और साहित्यके सच्चे साधक हैं।

शब्द-अनुसन्धान-समिति

हिन्दी राष्ट्रभाषा हो रही है। कुछ काल पश्चात् राज-काज-सम्बन्धी सारा काम इसी भाषामें होगा। यह राष्ट्रिय भाषा कितनी समृद्ध, शुद्ध और सुन्दर होनी चाहिए इसपर विद्वानोंको पूरा ध्यान देनेकी आवश्यकता है। अभी तो हिन्दीमें अराजकता-सी है, अगर भूल-भ्रमसे किसी लेखकने कोई अशुद्ध प्रयोग कर दिया तो फिर लाख समझाने-बुझानेपर भी वह अपनी गलतीको माननेके लिये तैयार नहीं होता। उसके इष्ट-मित्र भी आग्रहपूर्वक उसी अशुद्ध प्रयोगको अपनाते और अपना एक 'स्कूल' बनाना चाहते हैं। दलबन्दीकी दृष्टिसे यह बात अच्छी हो या बुरी; परन्तु हिन्दी-हितके विचारसे वह कभी प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती। इससे हिन्दीमें बिगाड़ शुरू होगा और अनेक अशुद्ध प्रयोग होने लगेंगे। उर्दूवाले इस दिशामें बड़े सतर्क और संयत रहते हैं। उनके यहाँ 'स्टैण्डर्ड' है, वहाँ अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग गानेकी प्रथा नहीं है। हिन्दीमें तो प्रत्येक लेखक आचार्य बनता है, और सबको अपने पीछे खदेड़ना चाहता है। यह प्रवृत्ति गन्दी और हानिकर है। हिन्दीका कोई माप-दण्ड होना चाहिए। उसकी विशुद्धताके लिये पूरा ध्यान देनेकी जरूरत है। गद्य-पद्य दोनोंकी भाषाएँ परिष्कृत रूपमें जनताके सामने आनी चाहिए। कविताएँ यदि छन्दोंमें लिखी जायँ तो छन्द शुद्ध होने चाहिए। आज कितने ही छन्द ग़लत प्रयुक्त होते हैं। कहा जाता है तो कविजी फ़र-

गाते हैं, अजी 'छन्द-वन्द' तो गौण हैं, आप तो भावपर जाइये। हमें ऐसे कविवरोंसे यही निवेदन करना है कि वे छन्दको गौण समझते हैं तो उसे अशुद्ध रूपमें क्यों इस्तेमाल करते हैं। छन्दहीन कविता लिखें, गद्य-काव्यकी सृष्टि करें।

हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि बन्धुवर प्रो० विनयमोहन शर्माने एक 'स्वाध्याय मण्डल' स्थापित किया है, जिसका कार्य 'शब्द-तत्व'का अनुसन्धान कर हिन्दीको परिमार्जित और परिष्कृत बनाना है। इस मण्डलमें वे पत्र-व्यवहार द्वारा हिन्दीके पण्डितोंसे परामर्श करेंगे और उसका परिणाम सर्व-साधारणके सामने रखेंगे। ऐसे आयोजनको हम बहुत उप-योगी समझते हैं।

पाकिस्तानकी पिचैती

हम पाकिस्तान और भारतके बीच सद्भावना और मैत्री के पक्षपाती हैं। साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे हम कोई बात नहीं लिखते और व्यावहारिक दृष्टिसे भी हम कांग्रेसकी नीतिका अनुसरण करते हैं। पर झूठ-फरेबके हम घोर विरोधी हैं, वह चाहे कांग्रेसजनोंका हो चाहे अन्य किसी हिन्दुस्तानी अथवा पाकिस्तानीका, क्योंकि आखिर फ़रेब फ़रेब ही है। उससे तात्का-लिक कार्यकी सिद्धि भले ही हो जाय, पर सदा लाभ किसीका नहीं होता। आस्ट्रेलिया-स्थित पाकिस्तानी हाई कमिश्नर श्री यूसुफ अब्दुल्ला हारूँने गत ६ सितम्बरको सिडनीमें एक पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलनमें कहा :—

"पाकिस्तानने संयुक्त-राष्ट्रसंघका समर्थन पूर्णतया किया है, किन्तु हम सच्ची सहायताका निर्णय नहीं कर सके, क्योंकि ऐसा करनेसे कश्मीरकी समस्या हमें रोकती है। संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सदस्यकी हैसियतसे हम सं० रा० सं० के प्रत्येक निर्णयका पूरा समर्थन करते हैं, परन्तु हम यह महसूस करते हैं कि हमारा ध्यान एक आन्तरिक समस्याने बँटा लिया है, जब कि उसका अन्तर्राष्ट्रिय प्रश्नपर केन्द्रित होना आवश्यक था। कश्मीर का झगड़ा अब तक तय नहीं हुआ और पाकिस्तान सरकार सर ओवन डिक्सनके कार्यकी असफलतासे बहुत निराश हुई है। पाकिस्तानकी मुस्लिम जीवन-पद्धतिपर गम्भीर खतरा छाया हुआ है। हममें से कोई भी संघर्ष पसन्द नहीं करता, परन्तु कश्मीरका जैसा प्रश्न प्रजातन्त्रीय देशोंके लिए भयानक सिद्ध हो सकता है। मैं महसूस करता हूँ कि आस्ट्रेलियाके समान सब सही विचार करनेवाले देश समझौता करानेमें महत्व-पूर्ण योग प्रदान करेंगे।

"यदि कश्मीरपर भारतका नियन्त्रण रहा तो पाकिस्तानके मर्म-स्थलपर प्रहार किया जा सकता है। परन्तु यदि हम उसे पा लें तो हम दिल्लीके आधा इंच भी अधिक नजदीक न होंगे।

"भूलना नहीं चाहिए कि भारतके शासकोंका सोवियत संघके शासकोंसे निकट साम्य है, जब कि पाकिस्तानके शासक पश्चिमी प्रजातन्त्रीय परम्पराओंकी अनुसरण करनेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध हैं। आजके संसारमें कोई देश तटस्थ नहीं रह सकता और हमारी पूरी सहानुभूति पश्चिमी ढंगकी स्वतन्त्रताके साथ है जिसमें बहुमतके शासनके साथ अल्पमतका आदर किया जाता है।"

हारूँ साहब दिल्लीके एक इञ्चके निकट तो क्या एक इंचके करोड़वें हिस्सेके भी निकट न आयँ, पर वे अपनी खातिर तथा पाकिस्तानकी खातिर ऐतिहासिक तथ्यको न भूलें और वे मुंहपर लीपनेका प्रयत्न न करें। यों तो सार्वजनिक स्मृति बड़ी क्षणिक होती है, पर मालूम होता है अनेक पाकिस्तानी कर्मचारियोंका कोई न्याय-दण्ड ही नहीं। क्या लोग इस बातको भूल गए हैं कि पाकिस्तानने सोवियत रूससे दोस्ती जोड़नेकी चाटुकारी की थी! क्या फीरोजखाँ नूनने पाकिस्तानको भारतका एक अंग बनाने की अपेक्षा सोवियत रूसका एक अंग बनानेकी बात नहीं कही थी? असल बात यह है कि यू० एन० ओ० की वर्तमान स्थितिसे पाकिस्तान लाभ उठाना चाहता है और सो भी गलत प्रोपेगैंडासे। पाकिस्तानके अनेक कर्मचारी गोबुल्सके झूठको भी मात दे रहे हैं। पाकिस्तानने अपनी आजादी अंगरेजों की खुशामद करके ली है और येन-केन-प्रकारेण पाकिस्तान कश्मीरको हथियाना चाहता है। अफगानिस्तानसे उसकी पट नहीं रही है। पठानोंपर वह दमन कर रहा है। भारत किसी गुटमें नहीं है। ऐसी हालतमें पाकिस्तान ऐंग्लो अमेरिकन गुटसे अनुचित लाभ उठाकर भारतपर दबाव डालना चाहता है। पाकिस्तानके प्रधान मंत्री और वैदेशिक मन्त्री

तकने इतनी ग़ैर जिम्मेदारीकी बातें कश्मीरके बारेमें कही हैं कि उससे भारत तथा पाकिस्तानके सम्बन्धमें तनाव ही बढ़ सकता है। पाकिस्तानकी अब यह दलील है कि जिस प्रकार यू० एन० ओ० ने कोरियामें हस्तक्षेप किया है उसी प्रकार कश्मीरमें भारतके विरुद्ध पाकिस्तानका वह साथ दे। पर पाकिस्तानके कर्मचारियोंको हम स्मरण दिलाना चाहते हैं कि कश्मीरमें हस्तक्षेप करनेसे पूर्व यू० एन० ओ० को पहले यह बताना पड़ेगा कि कश्मीरमें आक्रमणकारी—ऐग्रेसर—कौन है। सचा यह है कि यू० एन० ओ०ने आक्रमणकी जिम्मेदारीकी बातपर अभी तक कोई प्रकाश नहीं डाला और वह संस्था आशा करती है कि भारत दबावमें आकर कश्मीरका या तो विभाजन कर दे या तथाकथित आज़ाद कश्मीरकी सेनाओंके रहते हुए कश्मीरमें मतदान हो जाय। भारत और कश्मीरको यह बात नहीं माननी चाहिए। झूठे आरोपोंका उत्तर पाकिस्तानका भण्डाफोड़ है या उसकी उपेक्षा करना है। यदि ऐंग्लो अमेरिकन गुटने अपने पिट्ठू पाकिस्तानकी इसी प्रकार पीठ थपथपाई तो उससे किसीका हित न होगा। यह हम जानते हैं कि पाकिस्तान गिलगितको बेच सकता है। पर जबतक कश्मीरका फैसला न हो जाय तबतक कश्मीर-सम्बन्धी इकतरफ़ा कार्यवाही ग़ैर कानूनी होगी। हमें इससे कोई मतलब नहीं कि पाकिस्तान अपने ऐसे इलाकोंको जहाँ कोई विवाद नहीं है किसी को बेचे या रहन रख दे। हमें अपने पैरों खड़ा रहना है और अपनी ईमानदारी और सचाईपर भरोसा है और इस दृष्टिसे कश्मीर अविभाज्य है।

हमारे विद्यार्थियोंका ज्ञान-स्तर

गत १७ अक्टूबरका इलाहाबादका एक समाचार हमें पढ़नेको मिला जो इस प्रकार है—उत्तर प्रदेशीय विश्व विद्यालयोंसे स्नातक होकर निकलने वाले नवयुवक समाजमें किस कोटिके ज्ञानकी योग्यता होती है, इसका कुछ परिचय विभिन्न सरकारी विभागोंकी नौकरीके उम्मीदवारोंसे सहज ही मिल जाता है। ग्रेजुएट कहे जानेवाले युवकोंके पाठ्य सामग्री जन्य तथा साधारण ज्ञानकी झलक पानेके लिये हालमें ही हुए पुलिस सब-इन्सपेक्टर पदकी परीक्षाके प्रश्नोत्तर पर्याप्त होंगे।

"हिमाचल प्रदेश उत्तरी कोरियामें है। दक्षिण कोरियावासियोंने यहां राष्ट्र-संघकी सेनाके बलपर हालमें ही अधिकार प्राप्त किया है।"

"नेहरू-लियाकत समझौता—यह समझौता कश्मीरका मामला हल करनेके लिए मंत्रियों द्वारा किया गया है। पूर्वी बंगालसे सामूहिक निष्क्रमणका कारण एक भूकम्प है। कुतुबमीनारको सम्राट् अशोकने बनवाया था। हाफिज मुहम्मद इब्राहीम पाकिस्तानके गवर्नर जनरल हैं। मैकआर्थर अमेरिकाके जनरल सेक्रेटरी हैं। भारतकी भौगोलिक सीमा दक्षिणमें प्रशान्त महासागर है, उत्तरमें एशिया है, पूर्वमें हिन्द चीन है और पश्चिममें फारस है। शिलांग बर्मामें है। हिन्देशिया एक देश है जो कि रूसके निकट है। जलियाँवाले बागका हत्याकाण्ड किस शहरमें हुआ था। इसका कोई उत्तर एक दिनकी मौखिक-परीक्षामें प्रविष्ट हुए ५० उम्मीदवार नहीं दे सके, और उसी दिन २० उम्मीदवार ऐसे पाये गये जो कि इतना नहीं जानते थे कि राष्ट्रिय तिरंगे झण्डेमें कौन रंग किस क्रमसे हैं।"

स्मरण रहे कि पुलिस सब-इन्स्पेक्टरीके लिए कम-से-कम इण्टरमीजिएट परीक्षा पासकी आवश्यकता होती है। उसमें ग्रेजुएट भी जाते हैं। उपर्युक्त प्रश्नोंके उत्तरोंसे पाठकोंको आजकलके ग्रेजुएटोंकी योग्यताका पता चल सकता है। इसी सिलसिलेमें हमें गत २८ अक्टूबरका एक अलमोड़ेका समाचार भी पढ़नेको मिला। अलमोड़ेमें स्थानीय कचहरी-क्लर्कोंके रिक्त स्थानकी पूर्तिके लिए बुलाए गए उम्मीदवारोंके द्वारा दिए गए प्रश्नोंके उत्तर भी हमारे छात्रोंकी योग्यताके प्रतीक हैं। जब एक उम्मीदवारसे पूछा गया कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू कहाँ के हैं तो उसने उत्तर दिया कि वे बंगाली हैं। एक दूसरे उम्मीदवारसे जब उत्तर प्रदेशके मुख्य मन्त्रीका नाम पूछा गया तब उसने बताया कि पं० हरगोविन्द पन्त। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि अलमोड़े जिलेसे पं० हरगोविन्द पन्त प्रान्तीय असेम्बलीके सदस्य हैं। उत्तर प्रदेशके मुख्य मन्त्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त कुमाऊँ कमिश्नरीके हैं और अल्मोड़ा कुमाऊँ कमिश्नरीमें है। वहांके विद्यार्थियोंको यह न मालूम

हो कि पं० हरगोविन्द पन्त मुख्य मन्त्री हैं या पं० गोविन्द-वल्लभ पन्त, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। उम्मीदवार हाई स्कूल तथा इण्टरमीजिएट परीक्षा पास थे। जब उनसे डा० राजेन्द्रप्रसादके बारेमें पूछा गया कि वे क्या हैं तो उत्तर मिला कि वे मरीजोंका इलाज करते हैं। शायद उम्मीदवारने डा० राजेन्द्रप्रसादको उनके नामसे पहले डा० होनेके कारण डाक्टर बता दिया। अच्छा होता उस उम्मेदवारसे यह प्रश्न और किया जाता कि वे जानवरोंका इलाज करते हैं अथवा मनुष्यों का। इस सिलसिलेमें हम माननीय पं० नेहरूके उस आदेश पत्रकी ओर भी पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जो उन्होंने विश्व-विद्यालयोंके कर्त्ता-धर्त्ताओंको लिखा था। उस आदेश पत्रमें इस बातपर खेद प्रकट किया था कि आई० ए० एस० और स्थायी कमीशनमें आनेवाले विश्व-विद्यालयोंके विद्यार्थियोंका ज्ञान-स्तर निम्न कोटिका है और उत्तर प्रदेशके विश्वविद्यालयोंके छात्रोंका ज्ञान तो अपेक्षाकृत बहुत कम है। ये सब बातें हमारे लिए मनोरंजनकी न होकर क्लेश और चिन्ता की हैं। जब देशके भावी कर्णधारोंके ज्ञान-स्तरका यह नमूना हो तब देशके भाग्यकी क्या दशा होगी। हमारा अनुमान है कि यदि पुलिसके उम्मीदवारोंसे बोर्ड उपर्युक्त प्रश्न न पूछकर सिनेमाके बारेमें प्रश्न करता तो शायद ही कोई उम्मेदवार उत्तरमें ग़लती करता। अमुक सिनेमामें अमुक तारिका कहाँकी रहनेवाली है, उसकी उमर क्या है? कौन कलाकार किस सिनेमाकी किस भूमिकामें उतरे हैं? सिनेमाका अमुक गीत किसने किस मौकेपर गाया है? इस प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर देनेमें हमारे विद्यार्थी दक्ष सिद्ध होते पर चुनाव तो सिनेमाके लिए नहीं था। विद्यार्थियोंके इस ज्ञान-स्तरकी परिस्थितिका कारण केवल विद्यार्थी ही नहीं हैं। हम तो देखते हैं विश्वविद्यालयोंके अनेक अध्यापक अपने ज्ञानस्तरमें उतने ही निकम्मे हैं जितने विद्यार्थी। डा० राधा-कृष्णनने हमसे स्वयं कहा कि लन्दन विश्वविद्यालयमें आगरा विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंकी योग्यताके विषयमें अच्छी भावना नहीं है। विश्वविद्यालय भी आजकल—विशेषकर उत्तरप्रदेशके विश्वविद्यालय—दलबन्दीके अखाड़े बने हुए हैं। हम अपने अनुभवसे जानते हैं कि अपनी नियुक्ति, वेतनवृद्धि और परी[illegible] पत्रोंके लिए वे उतने ही निम्न स्तरपर पहुँच जाते हैं जि[illegible] एक साधारण क्लर्क अथवा कोई भ्रष्टाचारी दुकानदार। श[illegible] रंजकी मोहरे जैसे रखे जाते हैं वैसे ही स्वार्थपरताके लिए [illegible] नियुक्तियाँ भी होती हैं। विद्यार्थी भी नोट्स, हिंट्स और सिफारिशोंके पीछे पड़े रहते हैं। हमारे खयालसे जो पढ़ा[illegible] स्कूलों और कालेजोंमें आजकल चल रही है उससे न तो विद्यार्थियोंका ही कोई लाभ है और न देशका। अधिकांश अध्यापक—विश्वविद्यालयोंके—बनते तो बुद्धिवादी हैं पर अपवादोंको छोड़कर अधिकांश अयोग्य ही हैं। हमारा तात्पर्य यह नहीं कि सभी अध्यापक अयोग्य हैं, पर हम य[illegible] जरूर कहते हैं कि विश्वविद्यालयोंमें वे जीविकाकी खातिर ह[illegible] हैं। उन्हें दूसरे देशोंमें अध्यापकीमें कभी न रखा जाता। अभिभावकों तथा अन्य लोगोंका कर्त्तव्य है कि वे विद्यार्थियोंके ज्ञान-स्तरको बढ़ाकर मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक स्वास्थ्यकी ओर भी ध्यान दें। कोरी साक्षरतासे काम नहीं चलेगा।

चोरबाज़ारियोंके विरुद्ध मोर्चा

हम चोरबाज़ारियों तथा अन्य भ्रष्टाचारियोंको देशका शत्रु नम्बर एक समझते हैं और इस विषयमें हम स्पष्ट रूपसे लिखते भी आए हैं। यह हम जानते हैं कि हमारी बातें परमिटपर मरमिटनेवालोंको बुरी लगती हैं; पर हम कर्त्तव्य-वश ही अपने विचार प्रकट करते हैं। पिछले दिनों बिहार सरकारने चोरबाजारियोंके विरुद्ध एक मोर्चा खड़ा किया है। हमें खुशी है कि बिहार-सरकार आखिर जागी तो। हमारी पूरी सहानुभूति बिहार-सरकार तथा अन्य ऐसी सरकारोंके साथ है जो चोरबाज़ारको रोकना चाहती हैं। हमारा यह [illegible] खयाल है कि यदि प्रारम्भसे ही विभिन्न राज्योंके मन्त्री दल-बन्दीका खयाल न करते और विशुद्ध न्यायसे काम लेते तो चोरबाज़ारीको इतनी प्रगति नहीं मिलती। इस बातको हम आवश्यकता पड़नेपर सप्रमाण सिद्ध कर सकते हैं कि शा[illegible] की ढील-ढाल चोरबाज़ारीको पुष्ट करनेमें जिम्मेदार है। [illegible] बिहार-सरकारकी तेज़ीका यह भी एक समाचार आया है कि संदिग्ध अपराधियोंको गिरफ़्तारीके बाद हथकड़ियाँ पहना[illegible]

शहरोंमें घुमाया गया। हमने हथकड़ियाँ कांग्रेस-आन्दोलनके सिलसिलेमें चले अपने ऊपर मुकदमेमें दर्जनों बार पहनी हैं और सेंट्रल जेलसे बाहर सरकारी अस्पताल इलाजके लिए जाने पर भी हमें हथकड़ियाँ पहनाई जाती थीं। हथकड़ी पहननेमें हमें शरम नहीं लगती थी। तत्कालीन शासन-व्यवस्थाको डर था कि कहीं खतरनाक कैदी भाग न जायँ और इस दृष्टिसे हथकड़ियाँ पहनाना क्षम्य भी हो सकता है, पर दोष साबित होनेके पूर्व और शान्ति-भंग होनेका खतरा न होनेपर हथकड़ियों और फजीहतकी क्या आवश्यकता हुई। हमें व्यक्तिगत रूपसे इसमें आपत्ति नहीं कि जुर्म साबित होने और चोरबाजारी करते समय गिरफ़्तार व्यक्तियोंको इस प्रकार अपमानित किया जाय। हम केवल इस बातकी ओर संकेत करते हैं कि अंगरेजी शासन और हमारे शासनमें फर्क क्या है। हम इस बातको मानते हैं कि कड़ी कार्यवाही करनी चाहिए ; पर चुनावसे पहले संदिग्ध चोरबाजारियोंके प्रति इस प्रकारके व्यवहारसे लोगोंकी यह भी धारणा बनती है कि लोगोंको खुश करनेके लिए ही हमारे राज्योंकी सरकारें इस प्रकारका कार्य कर रही हैं। इस विषयमें श्री किशोरलाल मश्रूवालाजी १४-१०-१९५० के 'हरिजन'में लिखते हैं —

सख्त कार्रवाहीके हिमायती जो गुनहगारको लोगोंके सामने कोड़े लगाने, सड़कोंपर अपमानपूर्वक घुमाने, जाहिर फाँसी देने जैसी सजाएँ देना चाहते हैं, उसे मैं समझ सकता हूँ। उनका खयाल है कि इससे दूसरोंको शिक्षा मिलेगी। ऐसी सजाएँ निर्दय हिंसाकी मनोवृत्ति प्रकट करती हैं ; फिर भी वे अपराधका निर्णय हो चुकने पर दी जा सकती हैं। पहले ही उसके साथ ऐसा बर्ताव करना उसे निर्णयके पहले ही गुनहगार मान लेना है।

मैं उम्मीद करता हूँ कि धारासभाके सदस्य और न्यायके अधिकारी इन कामोंकी निन्दा करेंगे।

यह समाचार भी आया है कि बिहार सरकारने एक आर्डिनेन्स जारी किया है, जिसके अनुसार वह चोरबाजारियों को बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द रख सकेगी। मालूम हुआ है कि दूसरी सरकारें भी इसी नीतिका अनुसरण करनेवाली हैं। मैं नहीं जानता कि यह चीज़ संविधानके अनुसार है या नहीं। लेकिन कानून कुछ भी हो मुझे यह अनुचित लगता है कि लोगोंको ऐसे कामोंके लिए, जिन्हें साधारण अर्थमें राज्यकी रक्षा और शान्तिके लिये संकट पैदा करनेवाला नहीं कहा जा सकता, बिना मुकदमा चलाये गिरफ्तार किया जाय और नजरबन्द रखा जाय। अगर विश्वसनीय प्रमाण प्राप्त है तो ऐसे आदमियोंके खिलाफ विधिपूर्वक कार्रवाई की जानी चाहिए। यदि प्रमाण कमजोर हैं लेकिन सन्देहका प्रबल कारण है, तो जैसा बहुधा होता है ऐसे लोगोंपर कड़ी नजर रखनी चाहिये और उन्हें अपराध करते हुए फाँसनेकी कोशिशकी जानी चाहिये। लेकिन उन्हें बिना मुकदमा चलाये गिरफ्तार करना शासनके अधिकारियोंको किसी ऐसे आदमीको भी सजा देनेका अधिकार देना है, जिसे शायद न्यायालय निर्दोष करार दे। शासनके अधिकारियोंको दोषारोपण और दण्ड निर्णय—सो भी बिना मुकदमा चलाये—दोनों अधिकार देनेकी अपेक्षा ज़्यादा अच्छा यह होगा कि एक नया गवाही-कानून बनाया जाय, जिसमें कार्यप्रणाली और गवाहीके नियम इतने कड़े न हों। विशेष संकटकी हालत हो, या ऐसी स्थिति हो कि जो लोग गवाही दे सकते हैं, उनके गवाही देनेपर जानका खतरा पैदा हो जाय, या गवाही देनेवालोंके नाम उनकी रक्षाकी दृष्टिसे जनता या कैद किये गये व्यक्तिके मित्रोंके सामने प्रकट नहीं किये जा सकें, तभी बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द करनेकी नीति बरती जानी चाहिए। चोरबाजारके व्यापारियोंके बारेमें यह बात लागू नहीं होती।

इसका यह मतलब कतई नहीं कि चोरबाजार करना उचित है, या हमें ऐसे लोगोंसे कोई हमदर्दी है। लेकिन यदि शासनके अधिकारियोंको ऐसे अधिकारोंका उपयोग करने दिया गया, तो जनतन्त्र और जुल्मशाहीका भेद मिट जानेकी आशंका है।

भयङ्कर उच्छृंखलता

आधुनिक शिक्षा-दीक्षामें पले हमारे कुछ 'सुशिक्षित' नवयुवकोंमें एक बड़ी ही गन्दी प्रवृत्ति पैदा हो गई है, जिसे हम 'उच्छृंखलता' या 'गुण्डापन' कह सकते हैं। एक विशेष राज-

भौतिक विचार-धाराने तो इस प्रवृत्तिको और भी 'प्रगतिशील' बना दिया है। जहाँ नैतिकता और अनैतिकतामें कोई भेद-भाव ही नहीं, वहाँ 'उच्छृंखलता' और उद्दण्डताका जन्म लेना स्वाभाविक है। हाल ही में आगराकी रामलीला और शरत्-पूर्णिमाकी रातको वहाँके ताजके मेलेमें इस उद्दण्डताने जो घिनौना रूप धारण किया वह मानवताके लिये घोर कलंक कहा जा सकता है। हमारे 'पढ़े-लिखे'—शिक्षित कहानेवाले गुण्डे नवयुवकोंने महिलाओंके साथ गन्दी-से-गन्दी छेड़-छाड़ की। उन्हें बुरी तरह अपमानितकर अपनी नीचताका परिचय दिया। किसीने रोका-टोका तो उस भलेमानसपर भी हमला किया। अनैतिकताके इस नंगे नाचको देखकर शर्मको भी शर्म आए बिना न रही। पुलिससे जो बन पड़ा, बड़ी मुस्तैदीसे अपना फर्ज अदा किया। परन्तु हमारा विश्वास है कि नैतिकताका निर्माण पुलिसके डण्डेसे नहीं, हृदय-परिवर्त्तनसे होगा। ऐसा प्रचार करना पड़ेगा जिससे नवयुवकोंके हृदयोंसे अनैतिकताका विष दूर हो जाय। यह प्रचार उपदेशकों द्वारा सम्भव नहीं। इसके लिये नगरों और ग्रामोंके भद्रमण्डलको काम करनेकी आवश्यकता होगी। ऐसा उद्योग करना पड़ेगा जिससे गुण्डे या उच्छृंखल लोग या तो अपने दुर्गुण छोड़ें या लोगोंकी दृष्टिमें गिरा दिये जायँ, समाजमें पतित समझे जायँ। भले और बुरे आदमी घर-नगर और मुहल्लेवालोंसे छिपे नहीं रहते। उनके साथ रूरियायतकी जरूरत नहीं, भर्त्सनाकी आवश्यकता है। अगर ये गुण्डे छात्र हों तो उनको तुरन्त शिक्षणालयोंसे निकाल देना चाहिए और स्पष्ट बता देनेकी जरूरत है कि अमुक विद्यार्थी गुण्डागर्दीका अंग होनेके कारण निकाला गया। जब गुण्डोंकी घर-बाहर, नगर-मुहल्लों, कालेज-स्कूल सर्वत्र निन्दा और भर्त्सना होगी तब उनकी अक्ल सुधरेगी और वे ठीक हो जायँगे। जहाँ गुण्डागिरी हो वहाँ भी उनकी अक्ल ठीक कर देनेकी जरूरत है, जिससे आगेके लिए नीचताके लिए गुंजाइश ही न रहे। सब बातोंमें पुलिस की ही सहायता ली गयी तो पुलिस कहाँ तक प्रबन्ध करेगी। जनताका भी तो कुछ कर्तव्य है। महिलाओंको भी चाहिए कि वे अपनेमें इतना साहस और बल पैदा करें जिससे नीचता करते हुए गुण्डे नवयुवकोंके मुँहपर बड़ी क्रूरता और कठोरतासे चप्पल या चपत जमाई जा सके।

बिड़लाजी और खादी

मारवाड़ी छात्र-संघ (कलकत्ता) द्वारा आयोजित गांधी-जयन्तीके अवसरपर प्रमुख अतिथि श्री घनश्यामदासजी बिड़लाने छात्रोंके सम्मुख महात्मा गांधीके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए एक भाषण दिया। गत ३, अक्टूबरके दैनिक 'विश्वमित्र' (कलकत्ता-संस्करण) से उस भाषणका एक अवतरण हम यहाँ दे रहे हैं। बिड़लाजीने कहा, "मेरा सम्बन्ध उनसे (महात्माजीसे) ३२ वर्षोंका रहा, और मृत्यु-पर्यन्त वह बना रहा... बापूसे मैं सदैव सहमत नहीं हुआ। किन्तु वे सहृदय और सहिष्णु थे। वे खादीके पोषक थे और मैं एक मिल चलानेवाला। मैं खादीका व्यवहार केवल उन्हें प्रसन्न करनेके निमित्त करता रहा। मैंने एक बार उनसे जिज्ञासा की कि 'कुछ विशेष आज्ञा है क्या?' उन्होंने कहा, 'चर्खा चलानेके विषयमें मेरे क्या विचार हैं?' उत्तरमें मैंने कहा—'मैं लाखों करघे चलाता हूँ, स्वयं एक चर्खा चलाना, मिलका मालिक बने रहकर, पाखण्ड होगा।' फिर मेरे दृष्टिकोणसे खादीका कोई आर्थिक उपयोग देशके लिए भी नहीं था, क्योंकि मेरी बम्बई-योजनाके अनुसार उनकी दिशा अलग थी, और मेरी अलग। फिर भी वे कभी अनुचित नहीं माने। इसी प्रकार सार्वजनिक जीवनमें अगर किसीसे विरोध हो, तो विरोधीकी नेकनीयतीपर विश्वास करना चहिए।"

भाषणका जो अवतरण हमने दैनिक विश्वमित्रसे लिया है, उसकी भाषा गुट्ठल है। सम्भवतः वह रिपोर्टिंगकी गलती है। छात्र-संघकी उस मीटिंगमें उपस्थित जब एक सज्जनको यह रिपोर्ट हमने दिखाई, तो उन्होंने अवतरणमें निहित खादी-सम्बन्धी बिड़लाजीके कथनको ठीक बताया। हमारा विचार हुआ कि हम स्वयं इस बारेमें बिड़लाजीसे पूछ लें। पर यदि प्रकाशित रिपोर्ट गलत होती तो उसका प्रतिवाद निकल जाता। हम बिड़लाजीकी इस बातसे सोलहो आने सहमत हैं कि सार्वजनिक जीवनमें यदि किसीसे विरोध हो तो विरोधीकी नेकनीयतीपर विश्वास करना चाहिए। खादीके विषयमें यदि

हमारा बिड़लाजीसे विरोध है, तो आशा है कि वे हमारी नेकनीयती पर विश्वास करेंगे, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हम उनकी नेकनीयतीपर विश्वास करते हैं। चर्खेके विषयमें हम बिड़लाजीको क्या समझा सकते हैं। जब महात्माजी ही उन्हें चर्खा-भक्त नहीं बना सके, तो हमारी क्या बिसात। पर सवाल श्रद्धा और भक्तिका नहीं है, वरन् तर्क और विवेकका। महात्मा गांधी तो असाधारण मानव थे। उनको खादी पहनकर प्रसन्न करनेकी क्या आवश्यकता थी। जिस व्यक्तिका मिलके कपड़ोंमें विश्वास हो, और जिसके सामने खादीकी कोई आर्थिक उपयोगिता न हो, और इस विषयमें वह इतना साहस रखता हो कि स्पष्ट रूपसे वह कह सके कि खादीमें उसका विश्वास नहीं है, तब फिर महात्माजीके जीवन-कालमें खादी पहनना बिड़लाजीके लिए कहाँ तक शोभनीय था। अच्छा होता इस बातको श्री बिड़लाजी महात्माजीके जीवन-कालमें ही कह देते, उनकी नेकनीयतीपर अविश्वास करनेकी कोई बात तो थी नहीं। वनस्पति तेल, जिसे वनस्पति घीके नामसे पुकारा जाता है, के विषयमें बिड़लाजीके क्या विचार हैं? क्या गायके घीको भी किसीको प्रसन्न करनेके निमित्त खाया जाता है? हमारा खयाल तो यह है—आशा है हमारी नेकनीयतीपर विश्वास किया जायगा—कि वर्त्तमान आर्थिक व्यवस्था वर्त्तमान औद्योगीकरणकी भित्तिपर नहीं चल सकती। आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिसे हम इस बहसमें भी पड़ सकते हैं कि यदि भारतके वस्त्र-व्यवसायको वर्त्तमान पूँजीवादी ढंगसे चलाया गया, तो हमारी आज़ादी हमारे पड़ोसी राष्ट्रोंके लिए एक खतरेका कारण बन जायगी; क्योंकि हमारे देशकी सम्भावनाएँ ऐसी हैं कि यदि हम चाहें तो बड़ी आसानीसे साम्राज्यवादके उस मार्गपर जा सकते हैं जिससे हम पड़ोसके राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताका अपहरण कर सकेंगे और अपनी आज़ादीको हम वरदानके स्थानमें अभिशाप बना लेंगे। हम, एक प्रकारसे, चौराहेपर खड़े हैं। हमारे सामने एक मार्ग कम्यूनिज़्मका है, अर्थात् रूसकी शासन-व्यवस्थाका और दूसरा है अमेरिकन और ब्रिटिश साम्राज्यवादका और एक तीसरा मार्ग है स्वयं हमारा, जिसका प्रदर्शन महात्माजीने किया। है वह भी वर्गहीन समाजके निर्माणकी बात, पर वह वर्गहीन समाज रूसके खून-खच्चर, मार-काट, पूँजीपतियों और अमीरोंकी गर्दनें उड़ाकर नहीं, वरन् विकेन्द्रीकरणसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा कर्त्तव्य-पालन करने और नई व्यवस्था स्थापित करनेमें है। बिड़लाजी जिस बातकी ओर संकेत करते हैं उससे इस प्रणालीका विनाश अवश्यम्भावी है, जिसके आधार पर वे और उन जैसे अन्य देशवासी टिके हुए हैं। हमें उनकी नेकनीयतीपर विश्वास है। पर हमें इस बातपर भी विश्वास है कि जिस समाज-व्यवस्थाकी वे कल्पना करते हैं, वह अधिक टिकाऊ नहीं है और वह भावी तृतीय महायुद्धकी जननी है। खादी बिड़लाजी और हमारे विचारों तथा विरोधसे न तो पनपेगी और न मरेगी। खादीके विषयमें हमारा तो यही विश्वास है कि हम जैसे ग़रीब आदमियोंके लिए वह एक असाधारण सहारा है। खादीके पीछे कोरी वस्त्र-समस्या हल करनेकी ही बात नहीं है। हमें दुःख इतना ही है कि बिड़लाजी गांधीजीके जीवन-कालमें ही खादी विषयक अपने विचार रख देते।

महामहिम डा० काटजूका सुझाव

'विशाल भारत'के इसी अंकमें बंगालके गवर्नर महामहिम डा० कैलासनाथ काटजूका 'शरत् बाबू और भारतीय एकता' शीर्षक लेख छपा है। लेखके नीचे हमने उसपर सम्पादकीय टिप्पणी लिखनेकी चर्चा की है। डा० काटजूने बालमुकुन्द-स्मृति-ग्रन्थ-महोत्सवमें एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा था कि आखिर राष्ट्रभाषा हिन्दीको इस योग्य कैसे बनाया जाय कि वह अंगरेजीका स्थान ले सके। नए विधानके अनुसार विभिन्न क्षेत्रोंकी भाषाओंके प्रति लोगोंमें हिन्दीकी अपेक्षा आदर भाव बढ़ेगा और जबतक हिन्दीमें वे खूबियाँ न हों जो अंगरेजीमें हैं तबतक उसकी वह मान्यता नहीं हो सकती। प्रश्न है कि उसको लोकप्रिय कैसे बनाया जाय? क्षेत्रीय भाषाएँ कोई बोलचालकी भाषाएँ नहीं हैं। उनकी साहित्यिक शक्ति अपार है, उनकी सांस्कृतिक देन अनुपम है। ऐसी दशामें राष्ट्रभाषा और भारतीय साहित्यिक देनको सुलभ और सर्वोपयोगी बनानेके लिए क्या किया जाय? गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगू, बंगाली तथा मलया-

लम भाषाओंकी जो देन है वह भारतके लिए एक गौरवकी वस्तु है, पर यह आशा करना कि राष्ट्रभाषा द्वारा ही विभिन्न भाषाओंकी मूल्यवान निधियोंको लोग अपना सकेंगे, कुछ कठिन है। लोग अपनी-अपनी भाषाओं द्वारा ही एक दूसरी भाषा की देनको जल्दी ग्रहण करेंगे, इसलिए चाहिए यह कि भारतीय भाषाओंके प्रमुख ग्रन्थोंका अनुवाद राष्ट्रभाषामें भी हो तथा अन्य सब भ.षाओंमें। बंगलाकी जो बढ़िया चीजें हैं उनका अनुवाद भारतकी सब ही प्रमुख भाषाओंमें होना चाहिए। सवाल रह जाता है कि यह कार्य कैसे किया जाय? पहला काम यह है कि प्रत्येक भाषाकी सौ महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका चुनाव होना चाहिए। 'विशाल भारत'के पाठकोंको मालूम होगा कि हमने अबसे लगभग १५ वर्ष पूर्व इस प्रकारकी बात लिखी थी और हिन्दीकी सौ पुस्तकोंके नाम भी लिखे थे, पर यह काम जैसा डा० काटजूने लिखा है एक परामर्शदात्री समिति द्वारा होना चाहिए, जिसमें देशके ऐसे प्रमुख साहित्य-सेवी हों जिनकी मान्यता भारत भरमें हो। उदाहरणार्थ—आचार्य क्षितिमोहन सेन और डा० सुनीतिकुमार चटर्जी इस बोर्डमें होने चाहिए। हमने ये दो नाम वैसे ही लिख दिए हैं। सबसे अच्छा तरीका यह रहे कि इस कामके लिए एक प्रकाशन विभाग ही अलग खुले, और इसके लिए हम यह भी आवश्यक समझते हैं कि भारत सरकार इसको ४-५ लाख रुपया ग्राण्टकी तौरपर दे दे। सबसे ज़्यादा कठिनाई इस काममें हिन्दीमें ही होगी, क्योंकि गुरुदेवकी कृतियोंके अनुवादका प्रश्न होगा, वहाँ अनुवादक अनेक होंगे, पर बोर्ड उपयुक्त चुनाव करेगा। यह काम सहकारिता (Co-operative) के आधारपर भी हो सकता है। प्रत्येक भाषाके लोग शेयर खरीदें प्रकाशन-समिति बनानेके लिए।

ऐसा होनेसे हिन्दीके विरुद्ध अनेक हिन्दीवालोंकी नासमझी के कारण जो विरोध-भावना उत्पन्न हो गई है, वह स्वतः मिट जायगी और हम एक-दूसरेको अधिक समझने लगेंगे और भारतीय साहित्यकी वह सुरसरि प्लावित कर सकेंगे जो अनेक धाराओंसे बनती है। इस योजनाकी सफलतापर देशमें जो विच्छृंखलता और पृथकरणकी भावना पैदा हो गई है वह भी दूर हो जायगी। इसके अतिरिक्त शब्द-व्यंजना और शब्द-भण्डारसे राष्ट्र-भाषा पनपेगी और अन्य भाषाएँ भी अधिक बलशाली बनेंगी और एक-दूसरेके अधिक निकट आयँगी।

बालमुकुन्द-स्मृति-ग्रन्थ-महोत्सव

हिन्दीके लिए तथा कलकत्तेके लिए लिए यह गौरवकी बात है कि गत ३० सितम्बर और पहली अक्टूबरको बालमुकुन्दगुप्त-स्मृत-ग्रन्थ-महोत्सव मनाया गया। कलकत्ता विश्व-विद्यालय-भवनमें इस स्मरणीय समारोहका उद्घाटन बंगालके गवर्नर महामहिम डा० कैलासनाथ काटजूने किया और सभापतित्व श्रीमान् पुरुषोत्तमदासजी टण्डनने। हिन्दीके प्रसिद्ध साहित्यिक और विद्वान् इस अवसरपर उपस्थित थे। स्वर्गीय गुप्तजी के पुत्र-द्वयने अपने स्वर्गीय पिताका इस प्रकार श्राद्ध करके अपनेको कृतकृत्य कर लिया, और साथ ही जिस विनम्रता और श्रद्धासे उन्होंने आमन्त्रित व्यक्तियोंका आतिथ्य किया, वह भी हिन्दी-साहित्यके लिए एक विशेष बात थी। 'विशाल भारत'के इसी अंकमें श्री मुरलीधरजी दिनोदियाने इस महोत्सवपर लिखा है, इसलिए हम विशेष नहीं लिखेंगे। हमें तो केवल स्वर्गीय गुप्तजीके ज्येष्ठ पुत्र श्री नवलकिशोरजी और उनके छोटे भाई तथा ग्रन्थके सम्पादक-द्वय पं० झाबरमल्ल शर्मा और पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीको धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने यह पुण्य-कार्य करके हिन्दी भाषा-भाषियों तथा अन्य भाषा-भाषियोंके लिए एक आदर्श रखा।

इस समारोहमें स्वागत समितिकी ओरसे काफ़ी अच्छा प्रबन्ध था। स्वर्गीय गुप्तजीके पुत्र-द्वयकी ओर तनिक भी त्रुटि नहीं थी। विनम्रताकी मूर्त्ति बने वे चारों ओर घूमते फिरे, और सेवा-सत्कार किया। मंचपर बिठानेका जो प्रबन्ध था वह कुछ व्यक्तियोंने नियुक्त सज्जनोंके हाथसे स्वयं ही हस्तान्तरित कर लिया था, और दो-एक महाशयोंकी कोशिश थी कि उनका चित्र गवर्नर अथवा अध्यक्षके साथ खिंच जाय। इस मानव कमज़ोरीको क्षम्य ही समझना चाहिए।

डा० काटजूने अपने उद्घाटन-भाषणमें कई बड़े गम्भीर प्रश्न किए और उनका उत्तर भी उन्होंने अध्यक्षसे चाहा। पर, जहाँ तक हमें स्मरण है, टण्डनजी उनका उत्तर देना भूल

गए। विश्वविद्यालय-भवनमें आते ही गवर्नर महोदयने टंडनजी के पैर छुए। वह दृश्य बड़ा ही हृदयस्पर्शी था, और उसने गवर्नर महोदयकी महत्ता और उच्चतामें चार चाँद लगा दिए। डा० काटजूने कहा कि आज़ादीके बाद क्षेत्रिय भाषाओंको देशमें बल मिलेगा। तब राष्ट्र-भाषाके प्रचारके लिए क्या काम होना चाहिए। हाईकोर्टोंके फैसले इस समय अंग्रेजीमें होते हैं। राष्ट्र-भाषाको किस प्रकार लोकप्रिय बनाया जाय कि वह अंग्रेजीका स्थान ले ले। इन प्रश्नोंपर वे टण्डनजीसे उत्तर चाहते थे।

टण्डनजीका भाषण

इस समारोहमें टण्डनजीने अध्यक्ष पदसे जो भाषण दिया, उसमें उन लोगोंके लिए कोई नवीनता नहीं थी जिन्होंने कि उनके इस सम्बन्धमें पहले कभी भाषण सुने हैं। सूक्ष्म रूपसे उनके भाषणको दो भागोंमें विभाजित करते हैं। भाषण के पूर्वार्धकी बातें हम ग़लत समझते हैं। वह ग़लती, हम मानते हैं, कोई जान-बूझकर नहीं की गई। पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीने सर्वप्रथम, यानी अध्यक्षके भाषणसे पूर्व, कहा था कि हिन्दीवालोंको अपनी संख्यापर ही नहीं जाना चाहिए। टण्डनजीका आधा भाषण, एक प्रकारसे, इसी बातका जवाब था। वह जवाब भी, एक प्रकारसे, ऐसे था जैसे मुग़ल-वंशका कोई व्यक्ति आज इस बातपर गर्व करे कि उसके वंशमें अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ हुए थे। इसी बातको फ़ारसी-शब्दोंमें यों भी कह सकते हैं 'पिदरे मन सुल्तांबूद' (मेरा बाप बादशाह था)। इसका जवाब बड़ी आसानीसे दिया जा सकता है 'तुरा चीस्त' (तू क्या है ?)। हिन्दीमें जो संत-धारा प्रवाहित हुई, उसका बड़ा ओजस्वी वर्णन श्री टण्डनजीने किया, और भावुकतामें इतने बहक गए कि उन्होंने यह भी कहा—यद्यपि अप्रत्यक्ष रूपसे—कि रवीन्द्रनाथ ठाकुरपर कबीरका प्रभाव था। 'गीताञ्जलि'की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि जब उन्होंने गीताञ्जलि पढ़ी, तब उन्हें यह बात समझमें आई कि कबीरका प्रभाव उनपर था। हम टण्डनजी तथा अपने अन्य हिन्दी-साहित्यके बन्धुओंको यह बताना चाहते हैं कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरने कबीरपर लिखनेसे वर्षों पहले 'गीताञ्जलि' की रचना की थी। कबीरकी रचनाको तो उन्होंने पढ़ा भी नहीं था। कबीरपर उन्होंने जो कुछ लिखा है वह तो आचार्य क्षितिमोहन सेनके एक संग्रहको पढ़नेके बाद लिखा। जब गुरुदेवसे हिन्दीके कई साहित्य-सेवियोंने यही प्रश्न किया, तब उन्हें यह बात बहुत बुरी लगी थी, और स्वयं उन्होंने यह बात कही थी कि गीतांजलिकी रचना बहुत पहले हुई थी और कबीरका उनपर कोई प्रभाव नहीं था। हम किसीकी खुशामद नहीं करना चाहते, पर हिन्दीके हितके लिए यह आवश्यक समझते हैं कि हम अन्य भाषा-भाषियोंके सम्मुख हिन्दीकी गौरव-गरिमाको बड़ी विनम्रतासे रखें और कोई ऐसी बात न कहें, जिससे लोगोंमें किसी प्रकारकी कटुता फैले और लोग यह न समझें कि राष्ट्र-भाषाका प्रश्न भाषाके साम्राज्यवादका प्रश्न है। हम टण्डनजीके भाषणके उत्तरार्धसे सोलहो आने सहमत हैं कि हिन्दीके निर्माणमें बंगला, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलुगु आदि भाषा-भाषियोंका भी उतना ही हाथ होना चाहिए जितना कि शुद्ध हिन्दी-भाषा-भाषियोंका। अहिन्दी भाइयोंके लिए हिन्दीका व्याकरण एक भारी अड़ंगा है। 'आँखें अच्छी हैं' और 'नयन अच्छे हैं', इस लिंग-भेदसे हमारे अनेक अहिन्दी भाषा-भाषी परेशान होते हैं। इस समस्याका हल हमें करना ही है। हमारा निजी मत तो यही है कि उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेशमें मराठी, बंगला, गुजराती, तामिल, तेलुगु और मलयालममें से एक भाषा हिन्दीवालोंके लिए अनिवार्य कर देना चाहिए, क्योंकि यह जो भावना फैल गई है कि हिन्दीके राष्ट्रभाषा हो जानेसे सरकारी नौकरियोंमें हिन्दीवालोंका ही प्राधान्य होगा। इस भय और भावनाका हमारे सुझावसे बहुत कुछ परिष्कार हो जायगा।

पत्रकारिता और पत्रकारोंका संगठन

गत २८-२९ अक्टूबरको नई दिल्लीमें श्रमजीवी पत्रकारोंका प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन नेशनल हैरल्ड (लखनऊ) के सम्पादक श्री चेलापति रावकी अध्यक्षतामें हुआ। श्री रावने अपने भाषणमें कहा, "श्रमजीवी पत्रकार अपने आपको देशव्यापी स्तरपर संगठित करें। ऐसा करनेसे समाचार पत्रोंके मालिकों और उनके कर्मचारियों, दोनोंको लाभ

रहेगा।... यदि भारतको अमरीका और ब्रिटेन जैसी सुविधाएँ प्राप्त हों तो हिन्दीके समाचारपत्रोंकी बिक्री दुनियामें सबसे अधिक हो सकती है।... अगर प्रेस और श्रमजीवी पत्रकारोंकी समस्याओंपर इतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना दिया जाना चाहिए था, तो उसका कारण पत्रकारिताकी सुसंगठित आवाज़का अभाव है।...श्रमजीवी पत्रकारोंको अगर अपने आपको संगठित करना है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके लिए ट्रेड-यूनियनका ही मार्ग है।...एक मेहनती और सामान्य वर्गका बुद्धिजीवी, महाजनवर्गके बुद्धिजीवीसे अच्छा है। जहाँ तक अधिकारों और कर्त्तव्योंका प्रश्न है, बौद्धिक श्रम शारीरिक श्रमसे किसी क़दर ऊँचा नहीं है।...भारतके स्वाधीन होनेके बाद पत्रकारिताका उत्तरदायित्व पहलेसे अधिक महान् और भिन्न प्रकारका हो गया है। भारतके लोग ज्यों-ज्यों अधिक शिक्षित होते जायँगे, प्रेस उनके जीवनमें अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण भाग अदा करेगा, तब अखबारोंकी बिक्री लाखोंकी संख्यामें पहुँच जायगी। अगर भारतको अमरीका और ब्रिटेन जैसी सुविधायें प्राप्त हों तो हिन्दीके अखबारोंकी दुनियामें सबसे अधिक बिक्री हो जायगी। प्रेसकी समस्याओंपर बातचीत करते हुए हमें केवल अंग्रेजी भाषाके पत्रोंको ही ध्यानमें रखनेकी आदत छोड़नी होगी और भारतीय भाषाओंके समक्ष जो भारी टैकनिकल कठिनाइयाँ हैं, वे जितनी जल्दी दूर कर दी जायँ, सार्वजनिक शिक्षाका काम उतनी ही शीघ्रतासे हो सकेगा। योग्य और चरित्रवान पत्रकार इस व्यवसायमें से निकल रहे हैं। योग्य नौजवान पत्रकारोंके लिए भविष्य जहाँ उज्ज्वल होना चाहिए था, वहाँ वह बिल्कुल अन्धकारपूर्ण है। उनके लिए ट्रैनिंगकी सुविधाएँ नहीं हैं।

"हमने समाचार पत्रोंमें धोखाधड़ी और चोरबाजारीको निर्बाध पनपने दिया है। भारतीय भाषाओंके अखबारोंकी दशा तो इतनी शोचनीय है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पत्रोंका स्वामी कोई उद्योगपति हो सकता है, राजनीतिज्ञ हो सकता है, या कोई कम्पनी-स्थापक हो सकता है। समाचार-पत्रका कोई भी मालिक हो, उसके साथ जो भी व्यक्ति सम्बद्ध हो, यह देखना उनका कर्त्तव्य है कि समाचार पत्र सार्वजनिक ट्रस्ट बन रहे किसीके वैयक्तिक प्रचारका फ़र्म न बन जायँ। सार्वजनिक रायका गला घोंटनेका प्रयत्न प्रजातन्त्रके लिए खतरनाक है। अगर वर्त्तमान स्वामित्वमें ऐसा सम्भव नहीं है, तो उसका एकमात्र इलाज सहकारी व्यवसाय है। हमारे देशमें यह सहकारी उद्योग अनिवार्य है, और श्रमजीवी पत्रकार इसको बढ़ानेमें काफ़ी हिस्सा ले सकता है।

"पत्रोंको पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करनेकी बात बिल्कुल बेहूदा है। पत्र वहीं तक स्वाधीन हो सकता है, जिस हद तक वह समाज स्वाधीन है, जिसकी वह सेवा करता है। जब लड़खड़ाते हुए अखबार ऐसे देशमें, जहाँ आर्थिक खाँई इतनी चौड़ी है कि बड़ी मछली छोटी मछलीको निगल जाती है, समान अवसरोंकी माँग करते हैं, अथवा श्रमजीवी पत्रकार अपने वेतन या कामकी अवस्थाओंके विषयमें हस्तक्षेप किये जानेकी माँग करते हैं, तो सरकारको जीवनके इस क्षेत्रमें असन्तुलनको दूर करना चाहिए। अगर सरकार इस असन्तुलनको दूर करनेका प्रयत्न नहीं करती तो वास्तविक स्वाधीनताकी कोई गुञ्जाइश नहीं है।

"पत्रकारिता और भी अच्छा मिशन हो सकता है बशर्ते कि वह व्यवसाय भी अच्छा हो। कोई मिशनरी उत्साहसे काम करनेवाला पत्रकार भी तब तक अच्छी तरह काम नहीं करता जब तक कि उसे यह महसूस होता है, कि उसका शोषण हो रहा है। अखबार-उद्योगके प्रत्येक अंगको सहयोगपूर्वक काम करना चाहिए। पत्रकारिता व्यवसायकी प्रतिष्ठाको बढ़ाना कर्मदाता और कर्मचारी—दोनोंके लिए हितकर है। भारतीय पत्रकारिताके स्तरको काफ़ी ऊँचा किया जा सकता है बशर्ते कि समाचारपत्र-उत्पादनको एक सहकारितापूर्ण कार्य समझा जाय। श्रमजीवी पत्रकारोंको, चाहे कैसी भी परीक्षाओं और कैसे भी खतरोंमें से गुज़रना पड़े, पहले उन्हें अपने व्यवसायको उत्कृष्ट बनानेका प्रयत्न करना चाहिए और अपनी अवस्थाएँ सुधारनेका प्रयत्न बादमें करना चाहिए।"

हम श्री चेलापति रावके भाषणकी अधिकांश बातोंसे सहमत हैं। पत्रकारोंका संगठन ट्रेडयूनियन लाइनपर हो, इसके हम विरोधी, वर्त्तमान अवस्थामें, विशेषकर इसीलिए हैं

कि पत्रकारिताको एक पेशेके रूपमें लोग नहीं मानते। हिन्दीके अनेक पत्रकार भाड़ेके टट्टूके समान हैं। आज यदि डालमियाजी अपना गुणगान कराना चाहते हैं, तो अनेक पत्रकार केवल पैसेकी खातिर भागते हुए वहाँ पहुँच जायँगे, उस वकील की तरह जो जेब कतर और बधिरकी वकालतके लिए फीसके लिए पहुँच जाता है। ऐसे अनेक पत्रकार हैं जो अपने पेशेको कहीं अधिक पैसा मिलनेपर छोड़नेको तैयार हैं। बहुतोंके साथ पत्रकारिता रपट पड़ेकी हरगंगा है, अथवा एक मजबूरी है। पत्रकारोंके संगठनके हम पक्षपाती हैं, पर वह संगठन व्यवसाय और अपने पेशेकी उन्नतिकी खातिर ही होना चाहिए। भारतीय पत्रकारितापर ग्रहण-सा लग गया है। पत्र-संचालक मुनाफ़ेके ख़ातिर ही अपनी बातोंका प्रचार करते हैं। कितने सम्पादक हैं जिन्हें ईमानदारीसे निष्पक्ष बात लिखनेका अधिकार है। ट्रेनिंगके लिए, हम मानते हैं, कोई अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए। हमारे देशके पत्रोंकी स्थिति तो यह हो रही है कि वे किसी-न-किसी उद्योगपतिके गुटमें शामिल होते जाते हैं। पारस्परिक संघर्ष भी बहुत काफ़ी है। हिन्दी-पत्रकारिताके लिए सबसे बड़ी बाधा है पैसा खर्च करके समाचारपत्र पढ़नेकी कमी। हमारा दावा है कि यदि हिन्दीके समाचारपत्रोंके खरीददार बढ़ जायँ, अर्थात् किसी अच्छे मासिकके एक लाख भी ग्राहक हो जायँ तो हम किसी भी उच्च कोटिके विदेशी पत्रसे मुक़ाबिला कर सकते हैं।

श्री चेलापतिरावकी सबसे आवश्यक और महत्त्वपूर्ण बात हमें यह लगी कि उन्होंने पत्रोंको सहकारिताके ढंगपर चलानेका सुझाव रखा। यदि हिन्दीके ३०० पत्रकार एक-एक हजार रुपयेका प्रबन्ध किसी प्रकार कर सकें, तो तीन लाख रुपयोंसे एक उच्चकोटिका साप्ताहिक पत्र निकल सकता है, और वह उद्योगपतियोंके किसी भी पत्रसे अच्छा निकल सकता है। उसकी आत्मा कुण्ठित नहीं होगी, कण्ठ भी उसका अवरुद्ध नहीं रहेगा। स्वतन्त्रता और स्वाभिमानसे वह जनताकी सेवा कर सकेगा। सफलता मिलनेपर, सुविधापूर्वक, एक दैनिक भी आरम्भ किया जा सकता है। यदि पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी अपनी अगड़म-बगड़म योजनाओंको छोड़कर यह कार्य हाथमें ले लें, तो अपनी व्यस्ततामें भी हम उनका हाथ बँटानेके लिए तैयार हैं।

तिब्बतपर आक्रमण

गत ३० अक्टूबरकी नई दिल्लीकी खबर है कि तिब्बतमें चीनी सेनाएँ लगभग एक सप्ताह पूर्वसे ही वहाँ सक्रिय हैं। तिब्बतकी राजधानी ल्हासासे वे २०० मीलकी दूरीपर हैं। साधारणतया ल्हासा तक पहुँचनेमें उन्हें लगभग एक माह लगेगा। इन चीनी कम्यूनिस्ट सेनाओंके अतिरिक्त तिब्बतमें सैकड़ों ही कम्यूनिस्ट-प्रचारक प्रवेश कर गये हैं। महीनों पहलेसे चर्चा थी कि चीन तिब्बतपर आक्रमण करेगा। चीनकी कम्यूनिस्ट सरकारने स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा की थी कि वह तिब्बतको मुक्त करेगा। चीन द्वारा तिब्बतके ऊपर आक्रमणसे कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। इस आक्रमणका अन्तर्राष्ट्रिय स्थितिपर क्या असर पड़ेगा। तिब्बत हमारा पड़ोसी है। भारत तथा दक्षिण-पूर्वी एशियापर उसका क्या प्रभाव होगा? क्या यह आक्रमण तीसरे महायुद्धकी आग तो नहीं भड़कायगा, ये प्रश्न हैं जो एकदम लोगोंके सामने आते हैं। तिब्बतने हमारे देशसे अपील भी की है कि वह अपने नैतिक प्रभावसे चीनसे उनका राजीनामा करा दे। इस आक्रमणसे पाठक समझ लें कि भारतके प्रधान मन्त्री नेहरूजी चीनको यू० एन० ओ० की सदस्यतामें क्यों लेना चाहते थे। यदि आज चीन यू० एन० ओ० का सदस्य होता तो सुरक्षा-परिषद द्वारा उससे जवाब तलब किया जा सकता था। तिब्बतपर आक्रमण रुकवानेके लिए कोई हमला भले ही बोल दे, पर वैधानिक तौरपर उससे यह कोई नहीं कह सकता कि वह तिब्बतपर आक्रमण न करे।

चीनने तिब्बतपर स्वतः ही आक्रमण किया है यह हमारी समझमें नहीं आता। चीनकी आन्तरिक स्थिति बड़ी शिथिल है, और उसकी दशा ऐसी नहीं है कि वह कोई आक्रमणकारी युद्ध लड़ सके। चीनके लिए किसी दूसरे देशपर आक्रमण करना ठीक वैसे ही है जैसे किसी कमजोर रोगीके लिए नाच-गाने का अभिनय करना। यह सब कुछ रूसके इशारेपर ही हुआ है। तिब्बत गत उन्नीसवीं शताब्दीके पिछले पचास वर्षोंसे

इंगलैंड और रूसकी कूटनीतिका क्रीड़ा-क्षेत्र रहा है। सर फ्रांसिस यंगहसबैंडका ल्हासापर आक्रमण इसी कूटनीतिका परिणाम था। तिब्बतमें स्वर्णकी अपार राशि बताई जाती है। पर कोरियामें रूसी कूटनीतिकी जो धक्का लगा है, उसका मार्जन तिब्बत और दक्षिण पूर्वी एशियामें किसी सैनिक आक्रमणसे ही सम्भव है। तिब्बतपर आक्रमण हो जानेसे रूसको एक ऐसा सुनहरा अवसर मिलेगा कि जहाँसे वह आवश्यकता पड़नेपर अमरीकन प्रभाव रूपी पक्षीको बाजकी भाँति दबोच सकेगा। बर्मा, आसाम, हिन्दचीन, उत्तर प्रदेश और नैपालमें वहाँसे आक्रमण हो सकता है। सन् १९२२, २३ में हमने एक लेखमाला इस विषयमें लिखी थी। टिहरीकी नीलंग घाटीसे तिब्बतको सबसे अच्छा मार्ग है। कई बार सीमा-निर्धारणके लिए यहाँसे कमीशन भेजे गये। हमारे मतसे तिब्बतपर चीनका अधिकार हो जानेसे हमारी सैनिक जिम्मेदारियाँ बहुत बढ़ जायँगी, नैपालकी आजादी भी खतरेमें पड़ जायगी, और रूस और अमरीकाके संघर्षका गुरुत्व बढ़ जायगा। हमारे खयालसे एकदम अन्तर्राष्ट्रिय युद्ध तो नहीं भड़केगा, पर रूसी गुटकी ओरसे अमरीकी गुटके विरोधमें यह एक सुदृढ़ कदम है, जिसकी सम्भावनाएँ अपार हैं और जिसका असर भारतपर भी पड़े बिना नहीं रहेगा। यह ठीक है कि चीन और भारतका सम्बन्ध बड़ा मैत्रीपूर्ण रहा है और है, पर हम नहीं समझ सकते कि भारत चीनपर कोई असर डाल सकेगा।

कलकत्ता-पिंजरापोल

एक गो-भक्त तथा गो-वंश-उन्नतिके लिए काम करनेवालेके नाते हम कलकत्ता-पिंजरापोल सोसाइटीके अन्तर्गत सोदपुर गोशाला देखने गये। हमें यह लिखते दुःख और क्लेश होता है कि वहाँपर बछड़ों और बछियोंकी हालत कलकत्तेके ग्वालोंके बछड़ों और बछियोंसे भी बदतर है। सफाईके नामपर परमात्मा ही मालिक है। बढ़िया गायोंकी नस्ल खराब हो रही है। कलकत्तेके लिए यह लज्जाकी बात है कि पिंजरापोलके अन्तर्गत रहनेवाली गायोंकी ऐसी बुरी हालत हो। वहाँ गायें धीरे-धीरे कमजोर होकर मर जायँगी। अच्छा हो वह गोशाला बन्द कर दी जाय।

स्पष्ट वक्तव्य

लोगोंमें कानाफूँसी है कि नेहरूजीका जो समर्थन किया गया है, वह नीतिवश किया गया है। हम सहसा इस बात पर विश्वास नहीं करते। वैसे हम यह मानते हैं कि देशमें एक ऐसा भारी दल है जो नेहरूजीका विरोधी है। जब टण्डनजी यह बात कहते हैं कि हमारे देशको कभी-न-कभी एक गुटका साथ देना होगा, तब हमारे दिलको बड़ी ठेस पहुँचती है। देशके सामने जो आज परिस्थिति है, उसे देखते हुए हमें ऐसा लगता है कि देशमें एक ऐसी भावना जाग्रत है, जो यह चाहती है कि बड़े उद्योगों और मुनाफेकी खातिर हमारा देश एँग्लो-अमेरीकन गुटसे नत्थी हो जाय। हम टण्डनजीकी इस बातका घोर विरोध करते हैं, जब वे ऐसा संकेत करते हैं कि हमें कभी-न-कभी किसी-न-किसी गुटमें अवश्य शामिल होना पड़ेगा। कौन जाने हम किस गुटमें शामिल हों? सम्भव है कि विश्वके वर्तमान दो प्रमुख गुट हमारी अनुनय-विनय करें, उनके साथ रहनेके लिए। कौन कह सकता है कि हमारा भव्य भविष्य इन दोनों गुटोंसे कहीं अधिक नैतिक शक्ति प्राप्त कर ले और विश्वमें शान्ति स्थापित करनेमें सफल हो। टण्डनजी जब यह बात कहते हैं कि हमें किसी-न-किसी गुटमें शामिल होना पड़ेगा तो, इसके माने यह होते हैं कि हम यह मानकर चलते हैं कि हमारी वर्तमान हीनावस्था चिरस्थायी है और हम छोटे-छोटे देशोंके समान हैं। टर्की, ईरान, थाईलैण्ड तथा ऐसे ही अन्य देशोंकी सम्भावनाएँ और हमारी सम्भावनाओंमें आकाश-पातालका अन्तर है और इसीलिए जब लोगोंके मनमें यह आशंका पैदा होती है कि टण्डनजी और उनके समर्थक अमेरिकन गुटके परोक्ष रूपसे समर्थक हैं तब हमारे कान खड़े हो जाते हैं। इसका एक दूसरा सबूत यह है कि आजकल अमेरिकामें नेहरूजीके खिलाफ आन्दोलन है। अमरीकी संवाददाता स्पष्ट रूपसे लिखते हैं कि पं० नेहरूकी कोरिया-सम्बन्धी नीतिसे अमेरिकाका विश्वास उनपरसे उठता जा रहा है। सम्भव है यह बात ठीक हो। पर यह बात भी ठीक है कि हमारे देशका विश्वास भी अमेरिका और रूसपरसे उठता जा रहा है। हमारे

पास एक मित्रने चिट्ठीमें लिखा है कि एक पत्रने यह लिखा कि भारतवर्षको अमेरिकासे जो गेहूँ मिला है वह एक भारतीय उद्योगपतिकी कृपासे मिला है। हमें दुःख है कि किसी व्यापारीके बूतेपर देशकी शासन-व्यवस्थाको हम नहीं नचा सकते। ऐसे जीवनसे मौत हजार बार अच्छी, जो हमें व्यापारिक साम्राज्यवादकी सोनेकी हथकड़ियोंमें जकड़ दे। जब देशमें ऐसा वातावरण हो तो लोगोंकी यह आशंका युक्तियुक्त जान पड़ती है कि देशमें एक वर्ग ऐसा है जो किसी मुनाफ़ेकी ख़ातिर देशको किसी गुटके साथ नत्थी करना चाहता है।

नेहरूजीका समर्थन

नेहरूजीके हम अन्धभक्त नहीं हैं। हम यह जानते हैं कि कश्मीरमें उन्होंने अपने जीवनकी एक बड़ी भारी भूल की है। जब छः-सात दिनकी लड़ाईसे कश्मीरसे पाकिस्तानी भगाए जा सकते थे, तब अपने गुप्तचर विभाग तथा सैनिक विशेषज्ञोंसे पूछे बिना 'लड़ाई बन्द करो'की पाकिस्तानकी बात मान लेना हमारी दृष्टिसे, एक भयंकर भूल थी। हमें तो ऐसा लग रहा है कि उस भूलका प्रायश्चित बहुत मँहगा पड़ेगा, पर वह भूल ईमानदारी और सद्भावनासे हुई थी। उसके पीछे नेहरूजीकी कोई चाल नहीं थी। इस प्रकारकी भूलें प्रायः हुआ करती हैं। इस भूलके लिए हम नेहरूजीको निर्दोष नहीं ठहराते, पर साथ ही उनकी जो वैदेशिक नीति है कि हमारा देश किसी गुटसे नत्थी न हो, श्रेष्ठतम नीति है। बहस की ख़ातिर यदि हम मान लें कि हम अमेरिकन गुटमें शामिल हो जाते हैं, और तीसरा महायुद्ध शुरू हो जाता है तो २४ घण्टोंके भीतर रूसके दस बारह हवाई स्क्वैड्रन हमारा ढेर कर देंगे। और अमेरिकनोंकी सहायता हमारे किसी काम नहीं आयगी। जब सहायता आने तक कोरिया जैसे छोटे राष्ट्रका डेल डबुआ हो गया तो हमारे जैसे विशाल देशके लिए कितनी अमरीकी सहायताकी आवश्यकता होगी। इसके विपरीत यदि हम रूसके गुटसे नत्थी हो जाते हैं, तब भी हमारा ढेर हो जायगा ; क्योंकि हमारी सेनाकी ट्रेनिंग अंगरेजी तरीके पर है। हवाई जहाज, टैंक, मशीनगनें तथा अन्य सामरिक सामग्रीका प्रयोग अंगरेजी तरीक़ेसे ही हमारे यहाँ होता है। पेट्रोल तथा जरूरतकी मशीनें हमें बाहरसे मँगानी पड़ती हैं ; आजकल पेटकी ज्वाला बुझानेके लिए कुछ अन्न भी एंग्लो-अमरीकी गुटसे प्राप्त होता है। जो लोग युद्धकी हुमहुमी भरते हैं, उन्हें यह नहीं मालूम कि अभी हमारी सेना भारी तोपखानोंका प्रयोग भी नहीं जानती। ख़ैर यही हुई कि गत द्वितीय महायुद्धके कारण हमारे सैनिकोंको मँझोले टैंक, वायुयान तथा अन्य ऐसे ही कुछ छोटे-मोटे हथियारोंका इस्तेमाल करनेका अवसर मिला। ऐसी अवस्थामें नेहरूजीकी जो नीति है, उसीसे हमारा त्राण सम्भव है, और उसीका हम समर्थन करते हैं। जो लोग स्वार्थवश एक मौक़ेकी ताकके लिए नेहरूजीका समर्थन करते हैं, और चाहते हैं कि इस बीचमें अपनी स्थितिको भी मजबूत कर लें, और तब नेहरूजीको बाहर करें, ऐसे लोगोंको हम देशका शत्रु मानते हैं।

हम जान गुन्थरकी इस बातसे सहमत नहीं है कि नेहरूजी की स्थिति ट्रॉट्स्कीके समान है और सरदार पटेलकी स्टालिनके समान। हम जानते हैं कि देश नेहरूजीके साथ है और सरदार पटेलकी सेवाओंको वह भूल नहीं सकता। सरदार पटेलने जो अपूर्व सेवा की है, इसका मतलब यह नहीं है कि वे यदि भयंकर भूलें करेंगे तो देश उन्हें क्षमा कर देगा। इस विषयमें आगरेके 'सैनिक'ने गत ७ अक्टूबरके अपने अग्रलेखमें लिखा है—

"देशकी राजनीतिक अवस्थाका आजका यथार्थ चित्र यह है कि जैसे जर्मनीके पूँजीपतियोंने हिटलर और नात्सीवादको शिखण्डी बनाकर वहाँकी जन-क्रान्तिको दबा दिया था, उसी तरह भारतके पूँजीपति भी सरदार पटेलको अपना शिखण्डी बनाकर, जन-क्रान्तिको विफल करनेके स्वप्न देख रहे हैं। देशके शासनकी बागडोर आज कांग्रेसके हाथमें है। कांग्रेस-संगठन आज सरदार पटेलके हाथमें है। सरदार पटेल बिड़ला के हाथमें हैं। यानी स्वाधीन भारतका बादशाह बिड़ला है। सरदार पटेल समय-समयपर कांग्रेसके जिस स्टीमरौलरकी धमकियाँ देते हैं, वह स्टीमरौलर निस्सन्देह एक क्रूर तथा हृदय-हीन मशीन है, जिसके ड्राइवर सरदार पटेल हैं। लेकिन ड्राइवर कहीं भी मशीनका मालिक नहीं होता। वह तो मालिकके हुक्मके मुताबिक स्टीमरौलरको चलाता है। सरदार पटेल भी बिड़लाके हुक्मके मुताबिक कांग्रेसके स्टीमरौलरका संचालन करते हैं। पूँजीपतियों और सम्प्रदायवादियोंने उस वक्त तक हमेशा कांग्रेसकी मुख़ालिफ़त की, जब तक कांग्रेस-जन-क्रान्तिकी प्रतीक रही। ब्रिटिश साम्राज्यशाहीके ख़िलाफ़, स्वाधीनताके संग्राममें, उन्होंने समय-समयपर धनसे जब कभी सहायता की तो वह दो उद्देश्योंसे। एक तो इसलिए कि ब्रिटिश पूँजी और भारतीय पूँजीके स्वार्थोंके संघर्षके कारण और दूसरे इस आशासे कि जैसे चीनमें क्यूमिंतांग पार्टी और च्यांगकाई शेकको कठपुतली बना लिया गया था, वैसे ही कांग्रेसको भारतमें बना लिया जायगा। महात्माजीके रहते हुए यह काम

सम्भव नहीं था, इसलिए पूँजीवादियों और सम्प्रदायवादियोंके एक हिस्सेके षड्यन्त्रोंके कारण जब महात्मा गांधीरूपी काँटा मार्गसे हट गया, तब दूसरे तथा ज़्यादा पौलिश्ड और चालाक हिस्सेने सरदार पटेलके ज़रिए कांग्रेसको अपनी कठपुतली बनानेका काम कामयाबीके साथ कर डाला, और पूँजीवादी तथा सम्प्रदायवादियोंके दूसरे हिस्सेको साथ लेनेके लिए पहले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके सदस्योंके लिए कांग्रेसका दरवाजा खुला होनेकी घोषणा की गई, और बादको श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनको आगे करके गांधी और राष्ट्रियताके हत्यारे पूँजी-पतियों तथा सम्प्रदायवादियोंको खुश कर लेनेकी क्रिया पूरी कर ली गई। इस प्रवृत्ति, इस प्रगति, इस प्रवाहसे जब जवा-हरलाल नेहरू कुछ चौंके और घबराये तब लोमड़ीकी-सी चालाकीके साथ नासिकमें उनके सब प्रस्तावोंको लगभग सर्व-सम्मतिसे मानकर उनके प्रधान मन्त्रित्व और कांग्रेसको छोड़नेके निश्चयको कमज़ोर करने तथा देशको धोखा देने और जनताकी आँखोंमें धूल झोंकनेकी कोशिश की गई, और बाद-शाह बिड़लाके अखबारोंने ढोल पीटना शुरू किया, कांग्रेसमें कोई मतभेद नहीं था।''

हमें दुःख है कि हम 'सैनिक'के उपर्युक्त विश्लेषणसे पूरी तरह सहमत नहीं हैं। हम न तो बिड़लाजीको बादशाह मानते हैं और न हमारा यह ख़याल ही है कि सरदार पटेल बिड़लाजीके जमूड़े हैं। यह हो सकता है कि बिड़लाजी सरदार पटेलको प्रसन्न करनेके लिए कुछ ऐसे काम करते हों, जैसे वे गांधीजीको प्रसन्न करनेके लिए खादी पहनते थे। यह भी हो सकता है कि सरदार पटेलको गांधीजीकी अपेक्षा प्रसन्न करना बहुत आसान हो। 'सैनिक'के विश्लेषणसे सहमत न होनेका हमारा एक दूसरा कारण यह है कि हमारा देश जर्मनी नहीं है, और न यहाँके उद्योगपति इतने ज़बर्दस्त हैं जितने कि वे जर्मनीके थे। हाँ, यह हम मानते हैं कि अनेक उद्योग-पतियोंकी कोशिश यही रही है कि शासनकी मशीनको अपने अधीन रख सकें। पर उनकी यह कुचेष्टा उनके लिए ही ख़तरनाक होगी, क्योंकि खाने-पीनेकी मूल समस्याएँ जबतक हल नहीं हों तबतक कोई अन्य काम सफलतापूर्वक नहीं चल सकता। यह हम मानते हैं कि देशके अनेक पूँजीपति कांग्रेस संगठनपर हावी होना चाहते हैं, अपने स्वार्थके लिए। यदि ऐसी बात नहीं होती तो टण्डनजीके स्वागतके लिए प्रत्येक राज्य में परमिटवालोंकी होड़ न लग जाती। पाठक कहेंगे कि हम मल्लाही बात क्यों लिख रहे हैं। हम मल्लाही बात नहीं लिख रहे। प्रमाणके तौरपर हम श्रीमान् टण्डनजीके पिछले दिनों कलकत्तेके स्वागतकी चर्चा करेंगे। श्री टण्डनजी गत ३० सितम्बर और पहली अक्टूबरको बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक महोत्सवमें कलकत्ते गए हुए थे। कांग्रेसकी ओरसे, जैसा कि पाठकोंकी ओरसे उनका भव्य स्वागत किया गया। कांग्रेस अध्यक्षका स्वागत होना चाहिए। आम चर्चा थी कि उस स्वागतके लिए दिल्लीसे आदेश था कि स्वागत ज़ोरदार हो। हम इसको भी बुरा नहीं मानते। अनुमान यह था कि स्वागतमें एक लाख खर्च किया जाय। आजकलके ज़मानेमें इतना खर्चा किया जाय, इसके भी हम विरोधी कैसे हो सकते हैं जब भक्तोंमें इतने ज़िम्मेदार आदमी हों। पर बड़ी मज़ेदार बात उस स्वागत-सम्बन्धी चन्देकी यह है कि हमसे एक मित्र के यहाँ चाय पीनेमें ऐसे व्यक्तियोंसे मुलाक़ात हो गई, जिन्होंने टण्डनजीके स्वागत-समारोहके लिए चन्दा दिया था। बड़े मज़ेसे उन्होंने हमसे कहा, "हम व्यापारी हैं। अगर आप एक हज़ार चन्दा माँगें, तो हम पचाससे शुरू करेंगे, और किसी भी हालतमें दो सौ रुपयोंसे अधिक हम नहीं देंगे। दर्जनों बहाने बतायेंगे कि अमुक खर्च हुआ। अमुक जगह चन्दे देने पड़े हैं, लड़कीका ब्याह किया है। पर यदि रसद-मन्त्री हमसे दो हज़ारका चन्दा माँगें तो हम उसे उन्नीस सौ नहीं देंगे, बल्कि पूरे दो हज़ार, और आगे अपने दरवानको भेजेंगेकी खबर कर दे कि हम पूरे दो हज़ार रुपये ला रहे हैं। अगर हम चन्दा न दें, तो हमारे परमिट खत्म हो जायँ, हमारा व्यापार चौपट हो जाय। जब टण्डनजीके लिए चन्दा हुआ, बंगालके रसद-मन्त्री मौजूद थे। कुछ आदमी उठ गये थे। नहीं तो पूरे एक लाख चन्दा हो जाता। थोड़े आदमी रह गये थे, इस-लिए ४४ हज़ार ही चन्दा हो पाया, जिसमें से कुछ स्वागत-समारोहके लिए काममें आये और कुछसे कांग्रेसका कर्जा चुका। हमें हिसाब-किताबसे कुछ मतलब नहीं। हाँ, यदि परमिटका सवाल नहीं होता, और रसद-मन्त्री न माँगते तो ४४ हज़ार रुपयोंके बजाय हम टण्डनजी और रसद-मन्त्रीको अँगूठा दिखा देते। करें क्या, हमने पहले कभी हिसाबके दो खाते नहीं रखे, पर अब रखते हैं।" ज़ाहिर है कि वर्तमान शासनकी बहुत कुछ शक्ति कण्ट्रोलमें है, और कांग्रेस अध्यक्ष और मन्त्रियोंके जो भव्य स्वागत होते हैं, उसके पीछे परमिटोंका पुट है।



विद्यार्थीजीकी आदर्श देशभक्ति

श्री बटुकदेव शर्मा (भूतपूर्व सम्पादक 'देश')

बंग-भंगके बाद अंगरेजी राज्य समाप्त कर देनेके लिये यत्र-तत्र गुप्त समितियाँ स्थापित हो रही थीं, जिनकी प्रतिध्वनिके प्रभावसे हमारा हृदय भी क्रान्तिकारी हो चुका था। उस वक्त मैं जर्मन मिशन स्कूल, गाजीपुरमें अंगरेजी पढ़ रहा था और हमेशा फर्स्ट होनेसे गवर्नमेण्ट स्कालरशिप भी पा रहा था। सन् १९१० ई० में गाजीपुरमें प्लेग-प्रकोपके कारण अधिकांश व्यक्ति शहर छोड़कर बाहर निकल चुके थे। मैं भी गोलाघाटवाला डेरा छोड़कर शहरसे बाहर ददरी घाटपर रहने लगा था। एक दिन अकस्मात् चार बंगाली युवक ददरी घाट पहुँच गये, जो वस्तुतः क्रान्तिकारी थे और अपने दलके संगठन तथा विस्तार एवं प्रचारके लिये गुप्त रूपसे भ्रमण कर रहे थे। सूर्योदय होते ही वे लोग वहाँसे इधर-उधर निकल जाते और सूर्यास्तके बाद ददरी घाट पहुँच जाते थे। कई दिनोंके वार्तालापका परिणाम यह हुआ कि मैं भी क्रान्तिकारी दलका सदस्य हो गया और अन्यान्य प्रतिज्ञाओंके साथ गंगा-तटपर मैंने यह प्रतिज्ञा भी की कि जबतक देश आजाद न होगा तबतक मैं अपना विवाह न करूँगा और यह कि माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्ब-परिवार और घर-द्वार परित्याग करके, अपनी सारी शक्तिसे, भारतकी स्वतन्त्रताके लिये कार्य करता रहूँगा।

फलतः मैं उसी वर्ष अपनी पढ़ाई और गवर्नमेण्ट स्कालरशिप छोड़कर कलकत्ता चला गया और अपने देशकी आजादीके लिये भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें भ्रमण करता रहा। अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये कभी सम्पादन-कार्य करता और कभी अध्ययन-कार्य।

सन् १९१३ ई० में आदर्श देश-भक्त भाई गणेशशंकरजी विद्यार्थी द्वारा सम्पादित कानपुरसे 'प्रताप' प्रकाशित हो रहा था जो अपने ढंगका पहला राष्ट्रिय साप्ताहिक पत्र था। मैं भिन्न-भिन्न कल्पित नामोंसे अपने लेख कभी-कभी 'प्रताप'में प्रकाशनार्थ भेज दिया करता था। तभीसे विद्यार्थीजीसे मेरा परिचय हुआ, जिसकी घनिष्ठता उत्तरोत्तर अधिकाधिक होती गई।

सन् १९१६ ई० में भागलपुरके बिहार ऐंजल प्रेसमें "श्री कमला' नामक सचित्र मासिक पत्रिका पण्डित जीवानन्दजी शर्माके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रही थी। मैं प्रत्यक्ष रूपसे उसके सहकारी सम्पादककी हैसियतसे सम्पादन-कार्य और परोक्ष रूपसे क्रान्तिकारी दलका कार्य करने लगा। किन्तु कुछ महीनेके बाद देश-द्रोहियोंके विश्वासघातके कारण इसका पता गवर्नमेण्टको लग गया। फलतः सरकार हमें कच्चे ही खा जानेके लिये दाँत पीसने लगी। इतने ही में भागलपुर में भी प्लेगका प्रकोप हुआ, इसलिये 'श्री कमला कार्यालय'के आवश्यक कागज-पत्रोंके साथ शहर छोड़कर आदमपुर घाटपर भू० ब्रा० छात्रावासमें रहने लगा। मेरे और मेरे अन्यान्य साथियोंकी गिरफ़्तारीका वारण्ट निकला। किन्तु जिस पुलिस आफीसरकी मार्फत हमलोग गिरफ़्तार किये जानेवाले थे वह भीतर-ही-भीतर किसी अंश तक देश-भक्त भी था। मुंगेर जिलाके लछमनियाँ ग्राम-निवासी श्रीयुत सुखलाल सिंहजी बी० ए० के छात्र थे जो उसी भू० ब्रा० छात्रावासमें रहते थे। इन्हीं सुखलाल भाईकी मार्फत उस पुलिस आफिसरने गुप्त रूपसे यह खबर करवा दी कि बहुत जल्द सभी क्रान्तिकारी गिरफ़्तार किये जानेवाले हैं। इसलिये यथासम्भव शीघ्र ही सब लोग आपत्तिजनक सामग्री हटाकर स्वयं भी इधर-उधर टल जायँ ताकि इन देशभक्तोंको गिरफ़्तार करनेका कलुषित कृत्य मुझे न करना पड़े। इस सम्बन्धमें मैंने एक पत्र विद्यार्थीजीको लिख भेजा और बिहार ऐंजल प्रेस तथा 'श्री कमला'के प्रोप्राइटर बाबू गणेशप्रसादजी अग्रवाल तथा पण्डित जीवानन्दजी शर्मासे भी परामर्श लिया। अग्रवालजीने मुझसे कहा,

"शर्माजी, आपको हमलोग छोड़ना नहीं चाहते। अगर क्रान्तिकारी दलसे आपका कोई सम्बन्ध न हो तो आप अन्यत्र कहीं भी न जावें। मैं आपके पक्षमें मामलेका सब खर्च स्वयं दूँगा और इस परिस्थितिका मुकाबिला करूँगा।"

मैंने दृढ़तापूर्वक उनसे कहा कि अंगरेजी राज्यको उखाड़ फेंकनेके लिये मैं दृढ़-प्रतिज्ञ हो चुका हूँ। मेरे लिये आप लोग क्यों बरबाद होवें? बस, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं अन्यत्र जाकर अपना फर्ज अदा करूँगा।

इसके बाद बेगूसरायके निकट रामपुर मटिहानी नामक गाँवके निवासी श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद सिंहजीके आग्रहसे मैं उनके यहाँ प्राइवेट ट्यूटरकी हैसियतसे रहने लगा। वहाँ ही से भाई गणेशशंकरजी विद्यार्थीके पास एक पत्र लिखा कि यदि मेरी सेवाएँ स्वीकार हों तो निम्नलिखित संकेत आप 'प्रताप'के दो अंकोंमें छाप देनेकी कृपा करें। 'प्रताप'का प्रचार मैं काफी कर चुका हूँ उसमें अपना संकेत पढ़कर मैं कानपुर आ जाऊँगा। संकेतके शब्द निम्न लिखित हैं:—

मुं० ज० की प्रार्थना स्वीकार है। —'प्रताप'

सन् १९१७ के जून या जुलाईके 'प्रताप' में ये पंक्तियाँ आज भी देखी जा सकती हैं।

निर्भीक विद्यार्थीजीने बिना किसी असमंजसके उपर्युक्त संकेत प्रतापके दो अंकोंमें ज्यों-का-त्यों प्रकाशित कर दिया। इसके बाद तुरत मैं कानपुरके लिये रवाना हो गया और जिस दिन श्रीमती ऐनी बेसेंटकी गिरफ्तारीके विरुद्ध प्रताप कार्यालय में सभा हो रही थी, ठीक उसी वक्त मैं वहाँ पहुँच गया। प्रताप-परिवार और विद्यार्थीजीने मेरा जो हार्दिक स्वागत किया उसे कभी भूल नहीं सकता।

किन्तु गवर्नमेंटके पालतू देश-द्रोहियोंने मेरे सांकेतिक शब्द 'प्रताप' में प्रकाशित करनेके सम्बन्धमें रिपोर्ट करके खैरख्वाही की। कानपुरके कलक्टर साहबको ऐसा मालूम हुआ कि इस घटनासे मानो ब्रिटिश गवर्नमेण्ट अब भारतसे खतम होने जा रही है। कलक्टर बहादुरने विद्यार्थीजीको बुलवाकर बड़ी कड़ाईके साथ उनसे जवाब तलब किया कि ऐसे गुप्त संकेत प्रतापमें छापकर आपने घोर अनिष्ट किया है। इस वक्त गवर्नमेण्ट आपसे सख्त नाराज है। शेर-दिल विद्यार्थीजी कानपुरके कलक्टर साहबकी बन्दर घुड़कियोंसे ज़रा भी विचलित न हुए और उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें उन्हें जवाब दिया, "पहले आपको मनुष्य बनना चाहिये, तब अंगरेज या रूस और...अगर इंगलैण्डपर जरमनी या फ्रांस वगैरःका कब्जा होता और आप मेरी ही तरह किसी अखबारके सम्पादक होते तो अपने देश-भक्तोंके लिये आप क्या करते?"

विद्यार्थीजीके इस उत्तरसे कलक्टर साहब खामोश हो गये और विद्यार्थीजी प्रताप-कार्यालय लौट आये। उन्होंने सारा किस्सा मुझसे कह सुनाया। मैंने हँसते हुए उनकी तरफ संकेत करके कहा,

"सरक जाए यह ऐसा सर नहीं है,
बदल जाए यह वह हिम्मत नहीं है।"

इसपर वह खिलखिलाकर हँस पड़े और कहने लगे, "शर्मा जी कभी-कभी मुझे भी बना दिया करते हैं।"

सच तो यह है कि भाई गणेशशंकरजी विद्यार्थीका पवित्र जीवन देशके लिये उत्सर्ग हो चुका था। भारतके देशभक्तों और क्रान्तिकारियोंके लिये प्रतापका फाटक सदैव खुला रहता था और खुला रहता था विद्यार्थीजीका विशाल हृदय। व्यक्तिगत स्वार्थपरता अथवा जातिगत राग-द्वेष या वैमनस्य आदि दुर्गुण तो उनमें लेश मात्र भी न थे। वे सबको अपना भाई समझते थे और सब लोग उन्हें अपनेसे भी अधिक मानते थे। दिखावटी देशभक्ति और छल-कपटसे उनका कोई सरोकार न था। देशके दुःखको अपना दुःख तथा देशभक्तोंकी मुसीबतोंको वे अपनी मुसीबत समझते थे।

'प्रताप'के अग्रलेख तथा उसकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ आदि वे एकान्त स्थानमें स्थिरचित्त होकर लिखा करते थे। उस वक्त उनके पास प्रायः कोई भी नहीं जाता था, किन्तु क्रान्तिकारियों और देशभक्तोंके लिये तो उस वक्त भी वे उनकी मुसीबतें सुनने तथा यथाशक्ति उनकी सहायता करनेके लिये अपनी लौह लेखनी स्थगित कर दिया करते थे। उनके पवित्र हृदयमें देशभक्तिकी प्रखर अग्नि मानो सदैव दहकती

रहती थी, जिसे संसारकी कोई भी शक्ति बुझा नहीं सकती थी। वे हिमालयकी तरह अडिग एवं अमृतकी तरह अमर थे। इसीसे हमारे लिये मरकर भी वे अमर हो गये। प्रत्येक देशभक्त भारतवासीके हृदयमें श्रद्धेय विद्यार्थीजी आज भी मौजूद हैं और उस वक्त तक मौजूद रहेंगे जब तक देशभक्ति, आत्म-बलिदान और कृतज्ञताका महत्त्व विश्वमें मौजूद रहेगा। भारतको अंग्रेजोंके फौलादी पंजेसे निकालकर इसे स्वतन्त्र देखनेके लिये वे अहर्निशि बेचैन रहा करते थे। सोते-जागते, चलते-फिरते और उठते-बैठते उनपर देशकी आजादीकी धुन सदैव सवार रहती थी।

खुला खजाना

पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कई वर्षों तक 'प्रताप'के रोजमर्रहके काम चलाऊ खजानेमें ताला तो रहता था, मगर उसकी कुंजी भी तालेमें लगी रहती थी ताकि पं० शिवनारायणजी मिश्र, मैनेजर तथा कोषाध्यक्षके न रहनेपर भी प्रताप-परिवारके जिस किसी कर्मचारीको पेशगी रुपयेकी जरूरत हो, वह उतना रुपया स्वयं कैश बाक्ससे निकालकर उसमें एक पुर्जेपर रुपए लेनेकी तादाद और अपना नाम लिखकर वह पुर्जा रख देवे। मिश्रजी बड़े ही कार्य-कुशल एवं व्यवहार-कुशल होनेपर भी इस सम्बन्धमें विद्यार्थीजीसे सहमत थे। मैंने एक रोज़ उनसे कहा, "इस भीषण कलियुगमें आप प्रताप-कार्यालय में सतयुग लानेकी अनधिकार चेष्टा न करें। खजानेके सन्दूकमें एक मामूली-सा ताला भी तो बन्द करके उसकी कुंजी अपने पास रख लिया करें।" इसपर विद्यार्थीजी और मिश्रजी दोनों हँस पड़े। विद्यार्थीजीने कहा, "शर्माजी, अगर कोई भाई सख्त जरूरत पड़ जानेपर कुछ रुपया ले ही जायगा तो क्या हरज? उससे वह अपनी जरूरतोंको पूरी कर लेगा। 'प्रताप' तो देश-भरका है और अपने देशके लिए प्रत्येक व्यक्तिका हक 'प्रताप' पर है। फिर यह तुच्छ खजाना किस गिनतीमें?" यह है हमारे स्व० भाई विद्यार्थीजीकी अनुपम देशभक्तिकी एक नन्हीं-सी नजीर, तथा उनकी उत्कट उदारताका एक छोटा-सा उदाहरण।

बात यह थी कि प्रतापके मैनेजर और कोषाध्यक्ष पं० शिवनारायणजी मिश्र वैद्यक भी किया करते थे। आवश्यकता पड़नेपर आफिस टाइममें भी वे बुलाये जानेपर रोगियोंको देखनेके लिए जाया करते थे। प्रताप-परिवार अपने सभी विभागोंके कर्मचारियोंको मिलाकर काफी बड़ा हो गया था। भाई शिवनारायणजीके रहनेपर तो जिसे जितने रुपएकी ज़रूरत रहती थी वह उतने रुपए बतौर पेशगीके उनसे माँग लिया करता था, किन्तु उनके न रहनेपर अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए कैश बाक्ससे रुपए निकालकर उसमें एक पुर्जा लिखकर रख दिया करता था। मिश्रजी उसके अनुसार अपनी रोकड़ मिलाकर हिसाब लिख लिया करते थे। यह सिलसिला कई वर्षों तक चलता रहा। किन्तु कालान्तरमें कुछ लोग रुपए निकालकर उसमें पुर्जा रखना भूल जाया करते थे, जिससे रोकड़ मिलानेमें दिक्कत पड़ने लगी। यद्यपि प्रत्येक विभागमें पूछनेपर दूसरे दिन वह व्यक्ति रुपए स्वीकार करके पुर्जा लिख दिया करता था तथापि व्यर्थकी दिक्कतोंके कारण बादमें वे ताला बन्द करने लगे। उनके रहनेपर लोग उन्हींसे पेशगी ले लिया करते थे।

आर्थिक अड़चनोंमें भी अतिथि-सत्कार

'प्रताप' बहुत ही थोड़ी पूँजीसे निकाला गया था। अंग्रेजी राज्यके अत्याचारोंपर भाई गणेशशंकरजी विद्यार्थी बिलकुल निडर होकर लिखा करते थे। पहले तो बहुत-से लोग इस डरसे प्रतापके स्थायी ग्राहक तक न होते थे कि सरकार नाराज हो जायगी। हाँ, एजेण्टोंसे लेकर लुक-छिपकर लोग पढ़नेके लिए लालायित रहा करते थे। कुछ लोग इस डरसे भी ग्राहक बननेमें हिचकते थे कि गवर्नमेण्ट बहुत जल्द प्रताप जैसे कड़े अखबारको बन्द कर देगी। और हमारा वार्षिक मूल्य भी बेकार हो जायगा। किन्तु प्रताप जब अनवरत रूपसे निकलता ही रहा और विद्यार्थीजी की लौह लेखनी उसी तेजी तथा सरगर्मी और उसी जोश-खरोशके साथ अंगरेजी राज्यको उखाड़ फेंकनेके लिए मुर्दादिलोंमें भी उत्साह भरने लगी तो यह देखकर दो-रंगी दुनिया दंग रह गई और प्रतापके स्थायी ग्राहक धड़ाधड़ बढ़ने लगे। किन्तु आगन्तुक सज्जनोंके स्वागत सत्कारमें काफी खर्च हो जाया करता था। भारतके प्रायः

प्रत्येक प्रान्तके अनेक सज्जन कार्यालयमें आया करते थे, उनके ठहरने और खाने-पीनेका सब प्रबन्ध प्रताप कार्यालयकी ओरसे होता था। विद्यार्थीजीका विशाल तथा उदार हृदय उनके स्वागतके लिए सदैव खुला रहता था। इस प्रकार प्रतापके प्रारम्भिक वर्षोंमें कभी-कभी आमदकी अपेक्षा खर्च अधिक हो जाया करता था। अनेक बार तो ऐसे अवसर भी उपस्थित हो जाया करते थे कि 'प्रताप' छपकर रखा हुआ है, कुछ डाक चली गई और शेष पोस्टेजके अभावमें रखी हुई है। क्योंकि पोस्टेजके रुपए आगन्तुक सज्जनोंके स्वागत-सत्कारमें खर्च हो गये। जब पं० शिवनारायणजी मिश्रको कहींसे वैद्यककी फीस मिल गई अथवा बाहरसे वार्षिक मूल्य या विज्ञापनके रुपए मनीआर्डरसे आ गये तो प्रतापकी शेष प्रतियाँ डाक द्वारा बाहर भेज दी गई। किन्तु किसी भी परिचित अथवा अपरिचित सज्जनके स्वागत-सत्कारमें त्रुटि नहीं होने पाती थी। यह अतिथि-सेवा किसी व्यक्तिगत स्वार्थसे प्रेरित होकर नहीं की जाती थी, बल्कि भारतकी प्राचीन संस्कृतिकी रक्षाके लिए अपना कर्त्तव्य समझकर अमीर-गरीब सबका स्वागत-सत्कार करना प्रताप-परिवार अपना कर्त्तव्य समझता था। इसके बदलेमें उन सज्जनोंसे कुछ भी प्राप्त करनेकी ज़रा भी इच्छा न थी। अमीर-गरीबका तो कोई प्रश्न ही न था, सबका समान स्वागत होता था। सबके लिए प्रताप परिवारकी आँखें बिछी रहती थीं। प्रताप कार्यालयमें झाड़ू देनेवाला भंगीका लड़का भी देशोद्धारके लिए कार्य करनेमें अपना गौरव समझता था।

निस्पृहता और समदर्शिता

रिश्ते-नाते या जाति-बिरादरीका पक्षपात और राग-द्वेष की बातें तो प्रतापसे सम्बन्ध रखनेवाले छोटे-से-छोटे कर्मचारीमें भी नहीं पाई जाती थी। और विद्यार्थीजी जैसे आदर्श देश-भक्तके हृदयको तो इस प्रकारकी पक्षपातपूर्ण घृणित बातें कभी स्पर्श तक नहीं कर पाती थीं। किसी जातिका, किसी प्रान्तका और किसी पेशेका कोई भी भारतवासी क्यों न हो, विद्यार्थी जीका विशाल हृदय सबको अपना समझता था। वे सबकी मुसीबतमें हाथ बँटानेके लिये सदैव कटिबद्ध रहते थे। फलतः प्रायः सभी लोग विद्यार्थीजीको आत्मीयसे भी अधिक समझते थे। काश कि विद्यार्थीजी आज स्वतन्त्र भारतमें हमारे बीच रहते। स्वतन्त्र भारतकी इस दुर्गतिको दूर करनेमें वह तपस्वी किसी भी महान् लीडरकी पक्षपातपूर्ण हरकतोंको और ऊपरके पदों में रहकर भीतर-ही-भीतर अपने रिश्तेदारों व अपनी जाति बिरादरीवालों और अपने सगे-सम्बन्धियों तथा हितू-मित्रोंको बड़े-बड़े पदोंपर बैठाकर बड़ी-बड़ी तनख्वाहें दिलवाने और सुयोग्य ईमानदार तथा सच्चे देशभक्तोंको बेकार रखकर सारे भारतमें धाँधली मचा देनेकी पक्षपातपूर्ण हरकतोंको कभी भी नहीं बरदाश्त कर सकता था। आज जो रिश्वतखोरी, चोरबाजारी फ़ैसला-फ़रोशी और भुखमरी भारत भरमें फैल रही है इसे भाई गणेशशंकरजी विद्यार्थी कभी भी योंही जारी नहीं रहने देते। प्रतापके कालमों द्वारा उनकी लौह-लेखनी इन सारी बातोंको जड़से उखाड़ फेंकती। जिन विद्यार्थीजीने त्यागमय जीवनमें अंग्रेजी राज्यकी जड़ हिला दी थी उन विद्यार्थीजीकी पवित्र आत्मा आज स्वतन्त्र भारतकी दुर्गति तथा पक्षपातपूर्ण छीछालेदरको देख-देखकर बैकुण्ठपुरीमें भी दुःखित एवं सन्तप्त हो रही होगी।

अपनी भूलोंको माननेके लिए विद्यार्थीजी सदैव तैयार रहते थे। सम्वाददाताओंकी असावधानी वगैरःसे जो अनुचित एवं असत्य बातें कभी-कभी प्रतापके कालमोंमें निकल जाया करतीं, उनका खण्डन छाप देनेमें वे ज़रा भी संकोच नहीं करते थे। सिर्फ यही नहीं, बल्कि रुपयोंके प्रलोभनमें पड़कर अनुचित असत्य अथवा अश्लील विज्ञापन छापना वे महापातक समझते थे। अनेक बार तो ऐसे अवसर भी उपस्थित हुए कि ऐसे विज्ञापनोंके लिए बड़ी-बड़ी रकमोंके चेक पेशगी आये और निस्पृह विद्यार्थीजीने उन चेकोंको वापिस कर देनेका आदेश देकर अपने पवित्र कर्त्तव्यका पालन किया। ऐसे आदर्श सम्पादक, ऐसे निस्पृह एवं त्यागवीर तथा तपस्वी सम्पादक आज स्वतन्त्र भारतमें कितने हैं?

सच्ची सहानुभूतिका उच्चादर्श

आगे चलकर कुछ वर्षोंके बाद प्रतापकी आर्थिक परि-स्थिति काफी मजबूत हो चली थी। उसी वक्त एक ताल्लुकेदार साहबके गोली चलानेके विरुद्ध विद्यार्थीजीने प्रतापके कालमोंमें

प्रकाश डालकर अपने कर्तव्यका पालन किया। उनकी तरफसे विद्यार्थीजीपर केस चलाया गया। गरीबों और दीन-दुखियों के पक्ष-समर्थन करनेके कारण इस मामलेमें प्रतापका बहुत ज़्यादा खर्च हुआ। किन्तु इतनेपर भी विद्यार्थीजीको जेलकी सज़ा दे दी गई। वे सहर्ष जेल चले गये, किन्तु सत्य-पथसे ज़रा भी विचलित न हुए।

जब पहला विश्व-व्यापी जर्मन-युद्ध खूब ज़ोरोंसे चल रहा था, अपने देशकी रक्षाके लिए शिक्षित भारतवासियोंकी एक सेना संगठित करनेकी बात तै पाई और Defence of India force (भारत रक्षिणी सेना) की भरती जारी हो गई। उन दिनों में 'प्रताप' ही में था। मेरी हार्दिक इच्छा हुई कि प्रताप कार्यालयकी तरफसे मैं भी भारत-रक्षिणी सेनामें भर्ती होकर आधुनिक ढंगसे युद्ध-क्रियाकी शिक्षा प्राप्त करूँ। विद्यार्थीजीसे मैंने राय ली। वे मुझसे सहर्ष सहमत हो गये और हँसते हुए कहने लगे, "क्या शर्माजी, गुप्त रूपसे बम चलाकर अंगरेजी राज्य खतम कर देनेके लिये अब खुलेआम बन्दूक चलाकर भारतको स्वतन्त्र कर देनेकी दूरंदेशी सूझ गई?" मैंने भी हँसते हुए उनसे कहा, "केवल कलम घिसनेकी अपेक्षा सैनिक बनकर युद्ध-विद्याकी ट्रेनिंगमें जाना मैं बेहतर समझता हूँ। इसीलिये अब मैं कलम रखकर बन्दूक उठा लेना आवश्यक मानता हूँ ऐसा सुअवसर फिर कहाँ?" दूरदर्शी विद्यार्थीने मेरी बात मान ली। कानपुर केण्टोनमेण्टमें जाकर मैं भारत-रक्षिणी सेनामें भरती हो गया और ट्रेनिंगमें जानेकी प्रतीक्षा करने लगा। जब मैं फौजी अस्पताल, कानपुरमें पड़ा हुआ था सहृदय विद्यार्थीजी, मिश्रजी और प्रताप-परिवारके अनेक भाई मेरी सहायताके लिए केण्टोनमेण्ट अस्पतालमें सदैव पहुँचा करते थे। इसके पहले भी प्रताप कार्यालयमें जब मैं बीमार पड़ गया था तो प्रताप-सम्पादक विद्यार्थीजी एवं उसके मैनेजर मिश्रजी तथा अन्यान्य भाइयोंने मेरी सेवा-सहायतामें जिस सहृदयतासे हाथ बँटाया उसे मैं कभी भी भूल नहीं सकता। केवल मेरे ही साथ उनका ऐसा सहृदयतापूर्ण व्यवहार नहीं था, बल्कि सबके साथ वे ऐसी ही ठोस सहानुभूति रखते थे। 'कर्मवीर' सम्पादक श्रद्धेय पंडित माखनलालजी चतुर्वेदी भी जब बहुत बीमार होकर प्रताप-कार्यालयमें ठहर कर चिकित्सा करा रहे थे, उनकी भी हर तरहसे सहायता की गई और वे स्वस्थ हो गये।

ऐसा सहृदय, ऐसा वीर देशभक्त एवं आदर्श तपस्वी आज हमसे अलग होकर बैकुण्ठपुरीमें विराजमान है। विकराल कालने साम्प्रदायिक झगड़ेके छद्मवेशमें हमारे अनुपम देशभक्त भाई विद्यार्थीजीको हमसे छीनकर बड़ी ही क्रूरता की। इस हृदय-विदारक समाचारसे सारा भारत रो उठा। काश, कि विद्यार्थीजी की परम पुनीत आत्मा ऐन मौकेपर इस समय स्वतन्त्र भारत भूमिपर पुनः अवतीर्ण होती। एवमस्तु।

[गणेश-स्मृति ग्रन्थके लिए लिखित]

विकास-विनाश

गिरिजा

मैं सुन्दर थी, कोमल थी,
पल्लवकी आड़में
बीत रहा था जीवन मेरा।
अधीर हो उठी—नीरस जीवनसे,
साहसकर सहसा निखर पड़ी।
चकित नयनसे उपवन देखा—
सहम गई मेरी शिशुता,
चञ्चलता देख पवन मन्द-मन्द मुसकाया
लहर उठीं पंखड़ियाँ।

अलिने देखा, गुञ्जनसे मोह लिया मेरा मन
झूम उठी अनायास—रानी थी बनकी।
नभने अश्रु बहाए,—मेरे भोले साहसपर
और बढ़ा दी, सजा दी मेरी सुन्दरता।
भारको सह न सकी डाली
झुकी, भूमिपर गिरा दिया।
पवनने हाहाकार किया
उजड़ गया उपवन सारा!
—उजड़ गया जीवन मेरा भी!

जैनधर्मका महान् प्रचारक—सम्राट् सम्प्रति

नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य

मौर्य-राजाओंमें सम्राट् चन्द्रगुप्त और सम्प्रति—दोनों ही जैन धर्मके महान् प्रचारक हुए हैं। बौद्ध धर्मके प्रचार में जो स्थान अशोकको प्राप्त है, जैनधर्मके प्रचार और प्रसारमें वही स्थान सम्प्रतिका है। सम्प्रतिकी जीवन-गाथाके सम्बन्ध में हेमचन्द्रने अपने परिशिष्ट-पर्वमें लिखा है कि बिन्दुसार की मृत्युके पश्चात् अशोक राज्यासीन हुआ। अशोकके लाड़ले पुत्रका नाम कुणाल था। सम्राट् अशोकको सर्वदा यह चिन्ता बनी रहती थी कि कहीं ऐसा न हो कि विमाता तिष्यरक्षिता कुमार कुणालके जीवनको खतरेमें डाल दे तथा वह अपने षड्यन्त्र द्वारा अपने पुत्रको राज्याधिकारी बना दे। अतः अशोकने कुणालको उज्जयिनीमें अपने भाईके संरक्षणमें रखा। जब कुणाल आठ वर्षका हो गया तब रक्षक पुरुषोंने राजा अशोकको सूचना दी कि कुमार अब विद्याध्ययन करने योग्य हो गया है। सम्राट् अशोक इस समाचारको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और स्वयं अपने हाथसे कुमारको विद्याध्ययन करानेका आदेश-सूचक पत्र लिखा। पत्र समाप्त करनेके पश्चात् सील-मुहर करनेसे पहले ही अशोक किसी आवश्यक कार्यसे बाहर चला गया। इधर रानी तिष्यरक्षिता वहाँ आ पहुँची और उसने उस पत्रको पढ़ा। पढ़कर अपने मनोवांछित कार्यको पूरा करनेके लिए 'कुमारो अधीयउ'के स्थानपर अपनी आँख के काजलसे एक अनुस्वार बढ़ाकर 'कुमारो अंधीयउ' बना दिया। आवश्यक कार्यसे लौटकर अशोकने पत्र बिना ही पढ़े बन्दकर दूतको दे दिया। उज्जयिनीमें पत्रवाहकने जब पत्र दिया और उसे खोलकर पढ़ा गया तो वहाँ शोक छा गया। कुमार कुणालके अभिभावक महाराजके भाईने तत्काल समझ लिया कि यह राजकीय विवादका परिणाम है। परन्तु पितृ-भक्त कुणालने विचार किया कि पिताने मुझे अन्धा होनेके लिए लिखा है। यदि मैं पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता हूँ तो मुझसे बड़ा मौर्य-वंशमें पातकी कौन होगा! अतः उसने आगमें गर्मकर लोहेकी सलाइयोंसे अपनी दोनों आँखें फोड़ डालीं और स्वयं सदाके लिए अन्धा बन गया। पत्र-वाहकके वापस आनेपर इस दुःखद समाचारने पाटलिपुत्रमें तहलका मचा दिया। सम्राट् अशोक भी प्रिय पुत्रके अन्धे हो जानेसे बहुत दुखी हुआ तथा अपने प्रमादपर उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ।

अन्धा हो जानेसे कुणालका राज्य-गद्दीपर अधिकार न रहा। अशोकने उसे जीविका-सम्पन्न करनेके लिए उज्जयिनीके आसपासके कुछ गाँव दे दिये। कुणालके कुछ दिनके पश्चात् सर्व लक्षण सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पत्तिका समाचार सुनकर कुणालको बहुत प्रसन्नता हुई और उसने अपनी सौतेली मातासे बदला लेनेका विचार किया। कुणाल संगीत विद्यामें बहुत निपुण था। उसके संगीतकी मधुर लहरी जड़-चेतन सभीको आनन्द-विभोर करती थी। अतएव वह पाटलिपुत्रमें गया और वहाँ संगीत द्वारा सारे नगरको अपने अधीन कर लिया। अन्धे गायककी प्रशंसा राजमहलों तक पहुँची। राजा अशोकने भी पर्दे की ओटसे गाना सुना। कुणालने मधुर कण्ठसे अमृत उड़ेलते हुए कहा—

प्रपौत्रश्चन्द्रगुप्तस्य बिन्दुसारस्य नप्तृकः।
एषोऽशोकश्रियः सूनुरन्धो याचति काकणिम्॥

इस श्लोकको सुनकर अशोकको बड़ा आश्चर्य हुआ और पर्देकी ओटसे निकलकर अन्धे गायकका पूरा परिचय पूछा। जब राजाको कुणालका पूरा वृत्तान्त अवगत हो गया तब उसने कहा—"पुत्र, क्या चाहता है? जो माँगेगा दूँगा।"

कुणाल, 'पिताजी, मैं एक काकिनी चाहता हूँ।' मन्त्रीने राजाको समझाया कि राजपुत्र काकिनीसे राज्यकी याचना करते हैं। अशोकने पुनः कुणालसे कहा, 'अन्धे होकर तुम राज्यका क्या करोगे? अन्धेको राज-गद्दी कैसे दी जा सकती है?'

कुणाल, 'पिताजी, आपकी कृपासे मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है। आप उसीका राज्याभिषेक कीजिये।'

अशोक, 'तुम्हारे पुत्र कब उत्पन्न हुआ है?'

कुणाल हाथ जोड़कर कहने लगा—'सम्प्रति अर्थात् अभी।' यह सुनकर अशोकने बालकको धूमधामके साथ पाटलिपुत्रमें बुलवाया और उसका जन्मोत्सव मनाया। बालकका नाम कुणालके उच्चारणपर 'सम्प्रति' ही रख दिया। सम्प्रतिका जन्म ई० पू० ३०४ पौषमास जनवरीमें हुआ था। मगध लाये जानेपर उसकी अवस्था १० दिन की थी। सम्प्रतिका राज्याभिषेक ई० पू० २८९ में १५ वर्ष की अवस्थामें अक्षय तृतीयाके दिन हुआ था।

ऐतिहासिक मतभेद

विष्णुपुराणमें अशोकका उत्तराधिकारी सुयशको[1] बताया है। राजतरंगिणीके अनुसार कश्मीर प्रान्तपर अशोकके पुत्र वीरसेन गान्धारका अधिकार था।

विष्णुपुराण और मत्स्यपुराणमें अशोकका पो दशरथ[2] बताया गया है।

दशरथका नागार्जुन पहाड़ी (गयाके पास) की गुफामें एक दान-सूचक अभिलेख मिला है। उसकी लिपिके[3] आधारपर विंसेन्टस्मिथका अनुमान है कि यही अशोकके राज्यका उत्तराधिकारी था। जैकोबीने सम्प्रतिको कल्पित बताया है, अथवा इनका अनुमान है कि पूर्वीय राज्यका दशरथ उत्तराधिकारी था और पश्चिमीय राज्यका सम्प्रति रहा होगा।

वायुपुराणमें कुणालका पुत्र बन्धुपालित और उसका उत्तराधिकारी इन्द्रपालित बताया गया है। जायसवाल यह निष्कर्ष निकालते हैं कि बन्धुपालित और इन्द्रपालित क्रमशः दशरथ और सम्प्रतिके उपनाम थे तथा सम्प्रति दशरथका छोटा भाई और उत्तराधिकारी था[4]। तरानाथ कुणालके पुत्रका नाम विगताशोक बतलाते हैं। सम्भवतः यह सम्प्रतिका उपनाम हो। अशोकके शिलालेखोंके आधारपर सम्प्रतिका उपनाम प्रियदर्शिन् भी बतलाया जाता है। श्री गिरनारजीकी तलहटीमें सुदर्शन नामका तालाब है, उसके पुनरुद्धार-सम्बन्धी शिलालेखका पीटर्सन साहबने अनुवाद करते हुए कहा है कि इस तालाबको प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्तके समयमें विष्णुगुप्तने बनवाया[1] था। इसके पश्चात् इसके चारों ओरकी दीवारें सम्राट् अशोकके समयमें तुषस् नामक सत्ताधारीने पहली बार सुधरवाई थीं। तत्पश्चात् दूसरी बार पुनरुद्धार प्रियदर्शिन्के समयमें हुआ। इस कथनमें चन्द्रगुप्त, अशोक और प्रियदर्शिन्—इन तीनों शासकोंके नाम आये हैं। पीटर्सन साहबने सम्प्रतिके सम्बन्धमें शिलालेखसे निष्कर्ष निकाला है कि उस राजवंशी पुरुषकी जन्मकालसे लेकर उत्तरोत्तर अप्रतिहत समृद्धि निरन्तर बढ़ती ही चली गई[2]।

ऐतिहासिक प्रमाण

(१) प्रो० रा० गो० भाण्डारकर[3]का कथन है कि राजा सम्प्रतिको केवल १० दिनकी अवस्थामें गद्दीपर बैठाया गया था।

(२) मगधके सिंहासनपर श्रेणिकके पश्चात् सत्रहवाँ राजा सम्प्रति हुआ। उसका शासनकाल वी० नि० सं० २३८ (ई० पू० २८६) से आरम्भ हुआ, जब सम्राट् अशोकके शासनका अन्त हो रहा था।

(३) कर्नल टाड-साहब सम्प्रति[4] का शासन-काल ई० पू० ३०३-३०४ में आरम्भ हुआ बताते हैं तथा उनका कहना है कि दस महीनेकी अवस्थामें यह गद्दीपर बैठाया गया और १५ वर्षकी अवस्थामें ई० पू० २९०-२८९ में उसका राज्याभिषेक हुआ था।

(४) तिब्बत देशके ग्रन्थोंमें लिखा गया है कि सम्प्रति[5] बादशाह म० स० २३५ में सिंहासनासीन हुआ था।

---

१ भारतीय इतिहासकी रूपरेखा पृ०, ६९५

२ अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ०, १९२

३ प्राचीन भारत, पृ० २१८ तथा प्राचीन राजवंश द्वितीय भाग, पृ० १३४

४ भारतीय इतिहासकी रूप-रेखा, पृ०, ६९६

---

१ भावनगरके शिलालेख संस्कृत और प्राकृत, पृ० २०

२ भाण्डारकर महोदयकी रिपोर्ट सन् १९८३-८०, पृ० १३५

३ इण्डियन एण्टिकरी, पृ० २४८

४ टाड राजस्थान द्वितीय आवृत्ति

५ इण्डियन ऐण्टिकेरी पु० ३२, पृ० २३०

(५) प्रो० पिसल साहब[1] की दृढ़ सम्मति है कि रूपनाथ सासाराम और वैराटके शिलालेख भी सम्प्रतिके ही खुदवाये हुए हैं। इस अभिप्रायसे प्रो० रोजडेविस साहब भी सहमत हैं।

(६) दिव्यदान[2] के पृष्ठ ४३० में स्पष्ट लिखा हुआ है कि सम्प्रति कुणालका पुत्र था। इस लेखमें भी यह बताया गया है कि अशोकके बाद राजगद्दीपर आसीन होनेवाला प्रियदर्शिन् ही सम्प्रति है। यह जैन-धर्मानुयायी था। इसके अनुसार सम्प्रतिका पुत्र बृहस्पति, बृहस्पतिका पुत्र वृषसेन तथा वृषसेनका पुण्यधर्मा था।

(७) सम्प्रतिके[3] समयमें जैनधर्मकी बुनियाद तमिल भारतके नए राज्योंमें भी जा जमी, इसमें सन्देह नहीं। उत्तर-पश्चिमके अनार्य देशोंमें भी सम्प्रतिके समय जैनधर्म प्रचारक भेजे गये थे और वहाँ जैन-साधुओंके लिए अनेक विहार स्थापित किये गये।

(८) बौद्ध[4]-साहित्य और जैन-साहित्यकी कथाओंसे सिद्ध होता है कि सम्प्रति जैनधर्मका अनुयायी प्रभावक शासक था। इसने अपने राज्यका खूब विस्तार किया था।

(९) कल्पसूत्र[5] की टीकामें बताया गया है कि सम्प्रतिको रथयात्राके समय आर्य सुहस्तिके दर्शनसे जातिस्मरण हो गया था; जिससे उसने जैनधर्मके प्रसारके लिए सवा करोड़ जिनालय बनवाये।

१ इण्डियन ऐण्टिकरी पु० ६, पृ० १४६

२ राधाकुमुद मुकर्जी, अशोक पृ० ८ इण्डियन एण्टी० १९१४ पृ० १६८ फुटनोट ६७

३ भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, पृ० ६१६।

४ Both the Buddhist and the Jain traditions about Samprati hare been referred to us. Cf Roy choudhuri of Cip. P. 220.

५ सम्प्रति...पितामहदत्त राज्यो रथयात्रा प्रवृत्त श्री आर्य-सुहस्ति दर्शनाज्जात जातिस्मृतिः। जिनालय सपादकोटि अकरोत्—कल्पसूत्र सुखबोध टीका सूत्र ६, पृ० १६३।

(१०) स्मिथ[1] साहबने बताया है कि सम्प्रति भारतमें बड़ा प्रभावशाली शासक हुआ है। अशोकने जिस प्रकार बौद्धधर्मका प्रचार किया था, उसी प्रकार जैनधर्मका प्रचार सम्प्रतिने किया। धर्म-प्रचारके कार्योंकी दृष्टिसे अशोकसे भी बढ़कर इसका स्थान है।

(११) तीन[2] खण्डोंका स्वामी परम प्रतापी कुणालका पुत्र महाराज सम्प्रति हुआ। यह अर्हन्त भगवानका भक्त था, इसने अनार्य देशोंमें भी जैनधर्मके प्रचारकोंको भेजा था तथा जैन मुनियोंके लिए जिनालय बनवाये थे; आर्य सुहस्तिसे इसने जिन दीक्षा ली थी।

जीवन-गाथा

सम्प्रतिने बाहुबलसे अनेक देश-देशान्तरोंको जीतकर अधीन कर लिया था। दिग्विजयके पश्चात् यह एक दिन अपने उज्जयिनीके महलके वातायनमें बैठा हुआ था, इतनेमें अर्हन्त भगवानके रथका जलूस निकला। रथके ऊपरी भागपर आर्यमहागिरि[3] और आर्यसुहस्ति[4] थे, इन आचार्योंको देखते ही राजाके मनमें विचार आया कि इन्हें मैंने कभी देखा है; इस प्रकार ऊहापोह करनेपर उसे जातिस्मरण हो गया और पूर्व जन्मकी बातें याद आ गई। विचारोंमें तल्लीन होनेसे राजाको मूर्च्छा आ गई। मन्त्रियोंने वायु-प्रक्षेप और शीतोपचारसे राजाको सचेत किया।

१ Almost all ancient Jain temples or monuments of unknown origin are ascribed by the voice to Samprate, who is infact regarded as a Jain Asoka. —Smith Early History of India pp. 202.

२ तद्वंशे तु विन्दुसारोऽशोक श्रीकुणाल सूनुस्त्रि खण्ड भरताधिपः परमार्हतो अनार्यदेशेष्वपि प्रवर्तित श्रमण विहारः सम्प्रति महाराजश्च भवेत्।

—विविध तीर्थ कल्पे पाटलिपुत्र नगर कल्प, पृ० ६

३ परिशिष्ट पर्व, दूसरा भाग, पृ० ११५-१२४।

४ श्वेताम्बर आगममें आर्य महागिरिको दिगम्बर बताया है तथा इन्हें आर्य सुहस्तिका भाई भी माना है। आर्य सुहस्ति आर्य महागिरिकी वन्दना करते थे तथा सब प्रकारसे उनका सम्मान करते थे।

विद्यार्थीजीकी आदर्श देशभक्ति

श्री बटुकदेव शर्मा (भूतपूर्व सम्पादक 'देश')

बंग-भंगके बाद अंगरेजी राज्य समाप्त कर देनेके लिये यत्र-तत्र गुप्त समितियाँ स्थापित हो रही थीं, जिनकी प्रतिध्वनिके प्रभावसे हमारा हृदय भी क्रान्तिकारी हो चुका था। उस वक्त मैं जर्मन मिशन स्कूल, गाजीपुरमें अंगरेजी पढ़ रहा था और हमेशा फर्स्ट होनेसे गवर्नमेण्ट स्कालरशिप भी पा रहा था। सन् १९१० ई० में गाजीपुरमें प्लेग-प्रकोपके कारण अधिकांश व्यक्ति शहर छोड़कर बाहर निकल चुके थे। मैं भी गोलाघाटवाला डेरा छोड़कर शहरसे बाहर ददरी घाटपर रहने लगा था। एक दिन अकस्मात् चार बंगाली युवक ददरी घाट पहुँच गये, जो वस्तुतः क्रान्तिकारी थे और अपने दलके संगठन तथा विस्तार एवं प्रचारके लिये गुप्त रूपसे भ्रमण कर रहे थे। सूर्योदय होते ही वे लोग वहाँसे इधर-उधर निकल जाते और सूर्यास्तके बाद ददरी घाट पहुँच जाते थे। कई दिनोंके वार्तालापका परिणाम यह हुआ कि मैं भी क्रान्तिकारी दलका सदस्य हो गया और अन्यान्य प्रतिज्ञाओंके साथ गंगा-तटपर मैंने यह प्रतिज्ञा भी की कि जबतक देश आजाद न होगा तबतक मैं अपना विवाह न करूँगा और यह कि माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्ब-परिवार और घर-द्वार परित्याग करके, अपनी सारी शक्तिसे, भारतकी स्वतन्त्रताके लिये कार्य करता रहूँगा।

फलतः मैं उसी वर्ष अपनी पढ़ाई और गवर्नमेण्ट स्कालरशिप छोड़कर कलकत्ता चला गया और अपने देशकी आजादीके लिये भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें भ्रमण करता रहा। अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये कभी सम्पादन-कार्य करता और कभी अध्ययन-कार्य।

सन् १९१३ ई० में आदर्श देश-भक्त भाई गणेशशंकरजी विद्यार्थी द्वारा सम्पादित कानपुरसे 'प्रताप' प्रकाशित हो रहा था जो अपने ढंगका पहला राष्ट्रिय साप्ताहिक पत्र था। मैं भिन्न-भिन्न कल्पित नामोंसे अपने लेख कभी-कभी 'प्रताप'में प्रकाशनार्थ भेज दिया करता था। तभीसे विद्यार्थीजीसे मेरा परिचय हुआ, जिसकी घनिष्ठता उत्तरोत्तर अधिकाधिक होती गई।

सन् १९१६ ई० में भागलपुरके बिहार ऐंजल प्रेसमें 'श्री कमला' नामक सचित्र मासिक पत्रिका पण्डित जीवानन्दजी शर्माके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रही थी। मैं प्रत्यक्ष रूपसे उसके सहकारी सम्पादककी हैसियतसे सम्पादन-कार्य और परोक्ष रूपसे क्रान्तिकारी दलका कार्य करने लगा। किन्तु कुछ महीनेके बाद देश-द्रोहियोंके विश्वासघातके कारण इसका पता गवर्नमेण्टको लग गया। फलतः सरकार हमें कच्चे ही खा जानेके लिये दाँत पीसने लगी। इतने ही में भागलपुरमें भी प्लेगका प्रकोप हुआ, इसलिये 'श्री कमला कार्यालय'के आवश्यक कागज-पत्रोंके साथ शहर छोड़कर आदमपुर घाटपर भू० ब्रा० छात्रावासमें रहने लगा। मेरे और मेरे अन्यान्य साथियोंकी गिरफ़्तारीका वारण्ट निकला। किन्तु जिस पुलिस आफीसरकी मार्फत हमलोग गिरफ़्तार किये जानेवाले थे वह भीतर-ही-भीतर किसी अंश तक देश-भक्त भी था। मुंगेर जिलाके लछमनियाँ ग्राम-निवासी श्रीयुत मुखलाल सिंहजी बी० ए० के छात्र थे जो उसी भू० ब्रा० छात्रावासमें रहते थे। इन्हीं मुखलाल भाईकी मार्फत उस पुलिस आफिसरने गुप्त रूपसे यह खबर करवा दी कि बहुत जल्द सभी क्रान्तिकारी गिरफ़्तार किये जानेवाले हैं। इसलिये यथासम्भव शीघ्र ही सब लोग आपत्तिजनक सामग्री हटाकर स्वयं भी इधर-उधर टल जायँ ताकि इन देशभक्तोंको गिरफ़्तार करनेका कलुषित कृत्य मुझे न करना पड़े। इस सम्बन्धमें मैंने एक पत्र विद्यार्थीजीको लिख भेजा और बिहार ऐंजल प्रेस तथा 'श्री कमला'के प्रोप्राइटर बाबू गणेशप्रसादजी अग्रवाल तथा पण्डित जीवानन्दजी शर्मासे भी परामर्श लिया। अग्रवालजीने मुझसे कहा,

"शर्माजी, आपको हमलोग छोड़ना नहीं चाहते। अगर क्रान्तिकारी दलसे आपका कोई सम्बन्ध न हो तो आप अन्यत्र कहीं भी न जावें। मैं आपके पक्षमें मामलेका सब खर्च स्वयं दूँगा और इस परिस्थितिका मुक़ाबिला करूँगा।"

मैंने दृढ़तापूर्वक उनसे कहा कि अंगरेजी राज्यको उखाड़ फेंकनेके लिये मैं दृढ़-प्रतिज्ञ हो चुका हूँ। मेरे लिये आप लोग क्यों बरबाद होवें? बस, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं अन्यत्र जाकर अपना फ़र्ज अदा करूँगा।

इसके बाद बेगूसरायके निकट रामपुर मटिहानी नामक गाँवके निवासी श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद सिंहजीके आग्रहसे मैं उनके यहाँ प्राइवेट ट्यूटरकी हैसियतसे रहने लगा। वहाँ ही से भाई गणेशशंकरजी विद्यार्थीके पास एक पत्र लिखा कि यदि मेरी सेवाएँ स्वीकार हों तो निम्नलिखित संकेत आप 'प्रताप'के दो अंकोंमें छाप देनेकी कृपा करें। 'प्रताप'का प्रचार मैं काफ़ी कर चुका हूँ उसमें अपना संकेत पढ़कर मैं कानपुर आ जाऊँगा। संकेतके शब्द निम्न लिखित हैं :—

मुं० ज० की प्रार्थना स्वीकार है। —'प्रताप'

सन् १९१७ के जून या जुलाईके 'प्रताप' में वे पंक्तियाँ आज भी देखी जा सकती हैं।

निर्भीक विद्यार्थीजीने बिना किसी असमंजसके उपर्युक्त संकेत प्रतापके दो अंकोंमें ज्यों-का-त्यों प्रकाशित कर दिया। इसके बाद तुरत मैं कानपुरके लिये रवाना हो गया और जिस दिन श्रीमती ऐनी बेसेंटकी गिरफ्तारीके विरुद्ध प्रताप कार्यालय में सभा हो रही थी, ठीक उसी वक्त मैं वहाँ पहुँच गया। प्रताप-परिवार और विद्यार्थीजीने मेरा जो हार्दिक स्वागत किया उसे कभी भूल नहीं सकता।

किन्तु गवर्नमेंटके पालतू देश-द्रोहियोंने मेरे सांकेतिक शब्द 'प्रताप' में प्रकाशित करनेके सम्बन्धमें रिपोर्ट करके खैरख्वाही की। कानपुरके कलक्टर साहबको ऐसा मालूम हुआ कि इस घटनासे मानो ब्रिटिश गवर्नमेण्ट अब भारतसे खतम होने जा रही है। कलक्टर बहादुरने विद्यार्थीजीको बुलवाकर बड़ी कड़ाईके साथ उनसे जवाब तलब किया कि ऐसे गुप्त संकेत प्रतापमें छापकर आपने घोर अनिष्ट किया है। इस वजहसे गवर्नमेण्ट आपसे सख़्त नाराज़ है। शेर-दिल विद्यार्थीजी कानपुरके कलक्टर साहबकी बन्दर घुड़कियोंसे ज़रा भी विचलित न हुए और उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें उन्हें जवाब दिया, "पहले आपको मनुष्य बनना चाहिये, तब अंगरेज या और...अगर इंगलैण्डपर जरमनी या फ्रांस वग़ैरःका क़ब्ज़ा होता और आप मेरी ही तरह किसी अख़बारके सम्पादक होते तो अपने देश-भक्तोंके लिये आप क्या करते?"

विद्यार्थीजीके इस उत्तरसे कलक्टर-साहब खामोश हो गये और विद्यार्थीजी प्रताप-कार्यालय लौट आये। उन्होंने सारा किस्सा मुझसे कह सुनाया। मैंने हँसते हुए उनकी तरफ़ संकेत करके कहा,

"सरक जाए यह ऐसा सर नहीं है,
बदल जाए यह वह हिम्मत नहीं है।"

इसपर वह खिलखिलाकर हँस पड़े और कहने लगे, "शर्माजी कभी-कभी मुझे भी बना दिया करते हैं।"

सच तो यह है कि भाई गणेशशंकरजी विद्यार्थीका पवित्र जीवन देशके लिये उत्सर्ग हो चुका था। भारतके देशभक्तों और क्रान्तिकारियोंके लिये प्रतापका फाटक सदैव खुला रहता था और खुला रहता था विद्यार्थीजीका विशाल हृदय। व्यक्तिगत स्वार्थपरता अथवा जातिगत राग-द्वेष या वैमनस्य आदि दुर्गुण तो उनमें लेश मात्र भी न थे। वे सबको अपना भाई समझते थे और सब लोग उन्हें अपनेसे भी अधिक मानते थे। दिखावटी देशभक्ति और छल-कपटसे उनका कोई सरोकार न था। देशके दुःखको अपना दुःख तथा देशभक्तोंकी मुसीबतोंको वे अपनी मुसीबत समझते थे।

'प्रताप'के अग्रलेख तथा उसकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ आदि वे एकान्त स्थानमें स्थिरचित्त होकर लिखा करते थे। उस वक्त उनके पास प्रायः कोई भी नहीं जाता था, किन्तु क्रान्तिकारियों और देशभक्तोंके लिये तो उस वक्त भी वे उनकी मुसीबतें सुनने तथा यथाशक्ति उनकी सहायता करनेके लिये अपनी लौह लेखनी स्थगित कर दिया करते थे। उनके पवित्र हृदयमें देशभक्तिकी प्रखर अग्नि मानो सदैव दहकती

रहती थी, जिसे संसारकी कोई भी शक्ति बुझा नहीं सकती थी। वे हिमालयकी तरह अडिग एवं अमृतकी तरह अमर थे। इसीसे हमारे लिये मरकर भी वे अमर हो गये। प्रत्येक देशभक्त भारतवासीके हृदयमें श्रद्धेय विद्यार्थीजी आज भी मौजूद हैं और उस वक्त तक मौजूद रहेंगे जब तक देशभक्ति, आत्म-बलिदान और कृतज्ञताका महत्त्व विश्वमें मौजूद रहेगा। भारतको अंग्रेजोंके फौलादी पंजेसे निकालकर इसे स्वतन्त्र देखनेके लिये वे अहर्निशि बेचैन रहा करते थे। सोते-जागते, चलते-फिरते और उठते-बैठते उनपर देशकी आजादीकी धुन सदैव सवार रहती थी।

खुला खजाना

पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कई वर्षों तक 'प्रताप'के रोजमर्रहके काम चलाऊ खजानेमें ताला तो रहता था, मगर उसकी कुंजी भी तालेमें लगी रहती थी ताकि पं० शिवनारायणजी मिश्र, मैनेजर तथा कोषाध्यक्षके न रहनेपर भी प्रताप-परिवारके जिस किसी कर्मचारीको पेशगी रुपयेकी जरूरत हो, वह उतना रुपया स्वयं कैश बाक्ससे निकालकर उसमें एक पुर्जेपर रुपए लेनेकी तादाद और अपना नाम लिखकर वह पुर्जा रख देवे। मिश्रजी बड़े ही कार्य-कुशल एवं व्यवहार-कुशल होनेपर भी इस सम्बन्धमें विद्यार्थीजीसे सहमत थे। मैंने एक रोज़ उनसे कहा, "इस भीषण कलियुगमें आप प्रताप-कार्यालय में सतयुग लानेकी अनधिकार चेष्टा न करें। खजानेके सन्दूकमें एक मामूली-सा ताला भी तो बन्द करके उसकी कुंजी अपने पास रख लिया करें।" इसपर विद्यार्थीजी और मिश्रजी दोनों हँस पड़े। विद्यार्थीजीने कहा, "शर्माजी, अगर कोई भाई सख्त जरूरत पड़ जानेपर कुछ रुपया ले ही जायगा तो क्या हरज? उससे वह अपनी जरूरतोंको पूरी कर लेगा। 'प्रताप' तो देश-भरका है और अपने देशके लिए प्रत्येक व्यक्तिका हक 'प्रताप' पर है। फिर यह तुच्छ खजाना किस गिनतीमें?" यह है हमारे स्व० भाई विद्यार्थीजीकी अनुपम देशभक्तिकी एक नन्हीं-सी नजीर, तथा उनकी उत्कट उदारताका एक छोटा-सा उदाहरण।

बात यह थी कि प्रतापके मैनेजर और कोषाध्यक्ष पं० शिवनारायणजी मिश्र वैद्यक भी किया करते थे। आवश्यकता पड़नेपर आफिस टाइममें भी वे बुलाये जानेपर रोगियोंको देखनेके लिए जाया करते थे। प्रताप-परिवार अपने सभी विभागोंके कर्मचारियोंको मिलाकर काफी बड़ा हो गया था। भाई शिवनारायणजीके रहनेपर तो जिसे जितने रुपएकी ज़रूरत रहती थी वह उतने रुपए बतौर पेशगीके उनसे माँग लिया करता था, किन्तु उनके न रहनेपर अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए कैश बाक्ससे रुपए निकालकर उसमें एक पुर्जा लिखकर रख दिया करता था। मिश्रजी उसके अनुसार अपनी रोकड़ मिलाकर हिसाब लिख लिया करते थे। यह सिलसिला कई वर्षों तक चलता रहा। किन्तु कालान्तरमें कुछ लोग रुपए निकालकर उसमें पुर्जा रखना भूल जाया करते थे, जिससे रोकड़ मिलानेमें दिक्कत पड़ने लगी। यद्यपि प्रत्येक विभागमें पूछनेपर दूसरे दिन वह व्यक्ति रुपए स्वीकार करके पुर्जा लिख दिया करता था तथापि व्यर्थकी दिक्कतोंके कारण बादमें वे ताला बन्द करने लगे। उनके रहनेपर लोग उन्हींसे पेशगी ले लिया करते थे।

आर्थिक अड़चनोंमें भी अतिथि-सत्कार

'प्रताप' बहुत ही थोड़ी पूँजीसे निकाला गया था। अंग्रेजी राज्यके अत्याचारोंपर भाई गणेशशंकरजी विद्यार्थी बिलकुल निडर होकर लिखा करते थे। पहले तो बहुत-से लोग इस डरसे प्रतापके स्थायी ग्राहक तक न होते थे कि सरकार नाराज़ हो जायगी। हाँ, एजेण्टोंसे लेकर छुक-छिपकर लोग पढ़नेके लिए ललायित रहा करते थे। कुछ लोग इस डरसे भी ग्राहक बननेमें हिचकते थे कि गवर्नमेण्ट बहुत जल्द प्रताप जैसे कड़े अखबारको बन्द कर देगी। और हमारा वार्षिक मूल्य भी बेकार हो जायगा। किन्तु प्रताप जब अनवरत रूपसे निकलता ही रहा और विद्यार्थीजी की लौह लेखनी उसी तेजी तथा सरगर्मी और उसी जोश-खरोशके साथ अंगरेजी राज्यको उखाड़ फेंकनेके लिए मुर्दादिलोंमें भी उत्साह भरने लगी तो यह देखकर दो-रंगी दुनिया दंग रह गई और प्रतापके स्थायी ग्राहक धड़ाधड़ बढ़ने लगे। किन्तु आगन्तुक सज्जनोंके स्वागत सत्कारमें काफी खर्च हो जाया करता था। भारतके प्रायः

प्रत्येक प्रान्तके अनेक सज्जन कार्यालयमें आया करते थे, उनके ठहरने और खाने-पीनेका सब प्रबन्ध प्रताप कार्यालयकी ओरसे होता था। विद्यार्थीजीका विशाल तथा उदार हृदय उनके स्वागतके लिए सदैव खुला रहता था। इस प्रकार प्रतापके प्रारम्भिक वर्षोंमें कभी-कभी आमदकी अपेक्षा खर्च अधिक हो जाया करता था। अनेक बार तो ऐसे अवसर भी उपस्थित हो जाया करते थे कि 'प्रताप' छपकर रखा हुआ है, कुछ डाक चली गई और शेष पोस्टेजके अभावमें रखी हुई है। क्योंकि पोस्टेजके रुपए आगन्तुक सज्जनोंके स्वागत-सत्कारमें खर्च हो गये। जब पं० शिवनारायणजी मिश्रको कहींसे वैद्यककी फीस मिल गई अथवा बाहरसे वार्षिक मूल्य या विज्ञापनके रुपए मनीआर्डरसे आ गये तो प्रतापकी शेष प्रतियाँ डाक द्वारा बाहर भेज दी गईं। किन्तु किसी भी परिचित अथवा अपरिचित सज्जनके स्वागत-सत्कारमें त्रुटि नहीं होने पाती थी। यह अतिथि-सेवा किसी व्यक्तिगत स्वार्थसे प्रेरित होकर नहीं की जाती थी, बल्कि भारतकी प्राचीन संस्कृतिकी रक्षाके लिए अपना कर्त्तव्य समझकर अमीर-गरीब सबका स्वागत-सत्कार करना प्रताप-परिवार अपना कर्त्तव्य समझता था। इसके बदलेमें उन सज्जनोंसे कुछ भी प्राप्त करनेकी जरा भी इच्छा न थी। अमीर-गरीबका तो कोई प्रश्न ही न था, सबका समान स्वागत होता था। सबके लिए प्रताप परिवारकी आँखें बिछी रहती थीं। प्रताप कार्यालयमें झाड़ू देनेवाला भंगीका लड़का भी देशोद्धारके लिए कार्य करनेमें अपना गौरव समझता था।

निस्पृहता और समदर्शिता

रिश्ते-नाते या जाति-बिरादरीका पक्षपात और राग-द्वेष की बातें तो प्रतापसे सम्बन्ध रखनेवाले छोटे-से-छोटे कर्मचारीमें भी नहीं पाई जाती थी। और विद्यार्थीजी जैसे आदर्श देश-भक्तके हृदयको तो इस प्रकारकी पक्षपातपूर्ण घृणित बातें कभी स्पर्श तक नहीं कर पाती थीं। किसी जातिका, किसी प्रान्तका और किसी पेशेका कोई भी भारतवासी क्यों न हो, विद्यार्थीजीका विशाल हृदय सबको अपना समझता था। वे सबकी मुसीबतमें हाथ बँटानेके लिये सदैव कटिबद्ध रहते थे। फलतः प्रायः सभी लोग विद्यार्थीजीको आत्मीयसे भी अधिक समझते थे। काश कि विद्यार्थीजी आज स्वतन्त्र भारतमें हमारे बीच रहते। स्वतन्त्र भारतकी इस दुर्गतिको दूर करनेमें वह तपस्वी किसी भी महान् लीडरकी पक्षपातपूर्ण हरकतोंको और उच्च पदों में रहकर भीतर-ही-भीतर अपने रिश्तेदारों व अपनी जाति बिरादरीवालों और अपने सगे-सम्बन्धियों तथा हितू-मित्रोंको बड़े-बड़े पदोंपर बैठाकर बड़ी-बड़ी तनख्वाहें दिलवाने और सुयोग्य ईमानदार तथा सच्चे देशभक्तोंको बेकार रखकर सारे भारतमें धाँधली मचा देनेकी पक्षपातपूर्ण हरकतोंको कभी भी नहीं बरदाश्त कर सकता था। आज जो रिश्वतखोरी, चोरबाजारी फ़सला-फ़रोशी और भुखमरी भारत भरमें फैल रही है इसे भाई गणेशशंकरजी विद्यार्थी कभी भी योंही जारी नहीं रहने देते। प्रतापके कालमों द्वारा उनकी लौह-लेखनी इन सारी बातोंको जड़से उखाड़ फेंकती। जिन विद्यार्थीजीने त्यागमय जीवनमें अंग्रेजी राज्यकी जड़ हिला दी थी उन विद्यार्थीजीकी पवित्र आत्मा आज स्वतन्त्र भारतकी दुर्गति तथा पक्षपातपूर्ण छीछालेदरको देख-देखकर बैकुण्ठपुरीमें भी दुःखित एवं सन्तप्त हो रही होगी।

अपनी भूलोंको माननेके लिए विद्यार्थीजी सदैव तैयार रहते थे। सम्वाददाताओंकी असावधानी वगैरःसे जो अनुचित एवं असत्य बातें कभी-कभी प्रतापके कालमोंमें निकल जाया करतीं, उनका खण्डन छाप देनेमें वे जरा भी संकोच नहीं करते थे। सिर्फ यही नहीं, बल्कि रुपयोंके प्रलोभनमें पड़कर अनुचित असत्य अथवा अश्लील विज्ञापन छापना वे महापातक समझते थे। अनेक बार तो ऐसे अवसर भी उपस्थित हुए कि ऐसे विज्ञापनोंके लिए बड़ी-बड़ी रकमोंके चेक पेशगी आये और निस्पृह विद्यार्थीजीने उन चेकोंको वापिस कर देनेका आदेश देकर अपने पवित्र कर्त्तव्यका पालन किया। ऐसे आदर्श सम्पादक, ऐसे निस्पृह एवं त्यागवीर तथा तपस्वी सम्पादक आज स्वतन्त्र भारतमें कितने हैं ?

सच्ची सहानुभूतिका उच्चादर्श

आगे चलकर कुछ वर्षोंके बाद प्रतापकी आर्थिक परि-स्थिति काफी मजबूत हो चली थी। उसी वक्त एक ताल्लुकेदार साहबके गोली चलानेके विरुद्ध विद्यार्थीजीने प्रतापके कालमोंमें

प्रकाश डालकर अपने कर्त्तव्यका पालन किया। उनकी तरफसे विद्यार्थीजीपर केस चलाया गया। गरीबों और दीन-दुखियों के पक्ष-समर्थन करनेके कारण इस मामलेमें प्रतापका बहुत ज़्यादा खर्च हुआ। किन्तु इतनेपर भी विद्यार्थीजीको जेलकी सज़ा दे दी गई। वे सहर्ष जेल चले गये, किन्तु सत्य-पथसे ज़रा भी विचलित न हुए।

जब पहला विश्व-व्यापी जर्मन-युद्ध खूब जोरोंसे चल रहा था, अपने देशकी रक्षाके लिए शिक्षित भारतवासियोंकी एक सेना संगठित करनेकी बात तै पाई और Defence of India force (भारत रक्षिणी सेना) की भरती जारी हो गई। उन दिनों मैं 'प्रताप' ही में था। मेरी हार्दिक इच्छा हुई कि प्रताप कार्यालयकी तरफसे मैं भी भारत-रक्षिणी सेनामें भर्ती होकर आधुनिक ढंगसे युद्ध-विद्याकी शिक्षा प्राप्त करूँ। विद्यार्थीजीसे मैंने राय ली। वे मुझसे सहर्ष सहमत हो गये और हँसते हुए कहने लगे, "क्या शर्माजी, गुप्त रूपसे बम चलाकर अंगरेजी राज्य खतम कर देनेके लिये अब खुलेआम बन्दूक चलाकर भारतको स्वतन्त्र कर देनेकी दूरंदेशी सूझ गई?" मैंने भी हँसते हुए उनसे कहा, "केवल कलम घिसनेकी अपेक्षा सैनिक बनकर युद्ध-विद्याकी ट्रेनिंगमें जाना मैं बेहतर समझता हूँ। इसीलिये अब मैं कलम रखकर बन्दूक उठा लेना आवश्यक मानता हूँ ऐसा सुअवसर फिर कहाँ?" दूरदर्शी विद्यार्थीने मेरी बात मान ली। कानपुर केण्टोनमेण्टमें जाकर मैं भारत-रक्षिणी सेनामें भरती हो गया और ट्रेनिंगमें जानेकी प्रतीक्षा करने लगा। जब मैं फौजी अस्पताल, कानपुरमें पड़ा हुआ था सहृदय विद्यार्थीजी, मिश्रजी और प्रताप-परिवारके अनेक भाई मेरी सहायताके लिए केण्टोनमेण्ट अस्पतालमें सदैव पहुँचा करते थे। इसके पहले भी प्रताप कार्यालयमें जब मैं बीमार पड़ गया था तो प्रताप-सम्पादक विद्यार्थीजी एवं उसके मैनेजर मिश्रजी तथा अन्यान्य भाइयोंने मेरी सेवा-सहायतामें जिस सहृदयतासे हाथ बँटाया उसे मैं कभी भी भूल नहीं सकता। केवल मेरे ही साथ उनका ऐसा सहृदयतापूर्ण व्यवहार नहीं था, बल्कि सबके साथ वे ऐसी ही ठोस सहानुभूति रखते थे। 'कर्मवीर' सम्पादक श्रद्धेय पंडित माखनलालजी चतुर्वेदी भी जब बहुत बीमार होकर प्रताप-कार्यालयमें ठहर कर चिकित्सा करा रहे थे, उनकी भी हर तरहसे सहायता की गई और वे स्वस्थ हो गये।

ऐसा सहृदय, ऐसा वीर देशभक्त एवं आदर्श तपस्वी आज हमसे अलग होकर बैकुण्ठपुरीमें विराजमान है। विकराल कालने साम्प्रदायिक झगड़ेके छद्मवेशमें हमारे अनुपम देशभक्त भाई विद्यार्थीजीको हमसे छीनकर बड़ी ही क्रूरता की। इस हृदय-विदारक समाचारसे सारा भारत रो उठा। काश, कि विद्यार्थीजी की परम पुनीत आत्मा ऐन मौकेपर इस समय स्वतन्त्र भारत भूमिपर पुनः अवतीर्ण होती। एवमस्तु।

[गणेश-स्मृति ग्रन्थके लिए लिखित]

विकास-विनाश

गिरिजा

मैं सुन्दर थी, कोमल थी,
पल्लवकी आड़में
बीत रहा था जीवन मेरा।
अधीर हो उठी—नीरस जीवनसे,
साहसकर सहसा निखर पड़ी।
चकित नयनोंसे उपवन देखा—
सहम गई मेरी शिशुता,
चंचलता देख पवन मन्द-मन्द मुसकाया
लहर उठीं पंखड़ियाँ।

अलिने देखा, गुञ्जनसे मोह लिया मेरा मन
झूम उठी अनायास—रानी थी वनकी।
नभने अश्रु बहाए,—मेरे भोले साहसपर
और बढ़ा दी, सजा दी मेरी सुन्दरता!
भारको सह न सकी डाली
झुकी, भूमिपर गिरा दिया।
पवनने हाहाकार किया
उजड़ गया उपवन सारा!
—उजड़ गया जीवन मेरा भी!

जैनधर्मका महान् प्रचारक—सम्राट् सम्प्रति

नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य

मौर्य-राजाओंमें सम्राट् चन्द्रगुप्त और सम्प्रति—दोनों ही जैन धर्मके महान् प्रचारक हुए हैं। बौद्ध धर्मके प्रचार में जो स्थान अशोकको प्राप्त है, जैनधर्मके प्रचार और प्रसारमें वही स्थान सम्प्रतिका है। सम्प्रतिकी जीवन-गाथाके सम्बन्ध में हेमचन्द्रने अपने परिशिष्ट-पर्वमें लिखा है कि विन्दुसार की मृत्युके पश्चात् अशोक राज्यासीन हुआ। अशोकके लाड़ले पुत्रका नाम कुणाल था। सम्राट् अशोकको सर्वदा यह चिन्ता बनी रहती थी कि कहीं ऐसा न हो कि विमाता तिष्यरक्षिता कुमार कुणालके जीवनको खतरेमें डाल दे तथा वह अपने षड्यन्त्र द्वारा अपने पुत्रको राज्याधिकारी बना दे। अतः अशोकने कुणालको उज्जयिनीमें अपने भाईके संरक्षणमें रखा। जब कुणाल आठ वर्षका हो गया तब रक्षक पुरुषोंने राजा अशोकको सूचना दी कि कुमार अब विद्याध्ययन करने योग्य हो गया है। सम्राट् अशोक इस समाचारको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और स्वयं अपने हाथसे कुमारको विद्याध्ययन करानेका आदेश-सूचक पत्र लिखा। पत्र समाप्त करनेके पश्चात् सील-मुहर करनेसे पहले ही अशोक किसी आवश्यक कार्यसे बाहर चला गया। इधर रानी तिष्यरक्षिता वहाँ आ पहुँची और उसने उस पत्रको पढ़ा। पढ़कर अपने मनोवांछित कार्यको पूरा करनेके लिए 'कुमारो अधीयउ'के स्थानपर अपनी आँख के काजलसे एक अनुस्वार बढ़ाकर 'कुमारो अंधीयउ' बना दिया। आवश्यक कार्यसे लौटकर अशोकने पत्र बिना ही पढ़े बन्दकर दूतको दे दिया। उज्जयिनीमें पत्रवाहकने जब पत्र दिया और उसे खोलकर पढ़ा गया तो वहाँ शोक छा गया। कुमार कुणालके अभिभावक महाराजके भाईने तत्काल समझ लिया कि यह राजकीय विवादका परिणाम है। परन्तु पितृ-भक्त कुणालने विचार किया कि पिताने मुझे अन्धा होनेके लिए लिखा है। यदि मैं पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता हूँ तो मुझसे बड़ा मौर्य-वंशमें पातकी कौन होगा! अतः उसने आगमें गर्मकर लोहेकी सलाइयोंसे अपनी दोनों आँखें फोड़ डालीं और स्वयं सदाके लिए अन्धा बन गया। पत्र-वाहकके वापस आनेपर इस दुःखद समाचारने पाटलिपुत्रमें तहलका मचा दिया। सम्राट् अशोक भी प्रिय पुत्रके अन्धे हो जानेसे बहुत दुखी हुआ तथा अपने प्रमादपर उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ।

अन्धा हो जानेसे कुणालका राज्य-गद्दीपर अधिकार न रहा। अशोकने उसे जीविका-सम्पन्न करनेके लिए उज्जयिनीके आसपासके कुछ गाँव दे दिये। कुणालके कुछ दिनके पश्चात् सर्व लक्षण सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पत्तिका समाचार सुनकर कुणालको बहुत प्रसन्नता हुई और उसने अपनी सौतेली मातासे बदला लेनेका विचार किया। कुणाल संगीत विद्यामें बहुत निपुण था। उसके संगीतकी मधुर लहरी जड़-चेतन सभीको आनन्द-विभोर करती थी। अतएव वह पाटलिपुत्रमें गया और वहाँ संगीत द्वारा सारे नगरको अपने अधीन कर लिया। अंधे गायककी प्रशंसा राजमहलों तक पहुँची। राजा अशोकने भी पर्दे की ओटसे गाना सुना। कुणाल ने मधुर कण्ठसे अमृत उड़ेलते हुए कहा—

> प्रपौत्रश्चन्द्रगुप्तस्य विन्दुसारस्य नप्तृकः।
> एषोऽशोकश्रियः सूनुरन्धो याचति काकणिम्॥

इस श्लोकको सुनकर अशोकको बड़ा आश्चर्य हुआ और पर्देकी ओटसे निकलकर अन्धे गायकका पूरा परिचय पूछा। जब राजाको कुणालका पूरा वृत्तान्त अवगत हो गया तब उसने कहा—"पुत्र, क्या चाहता है? जो माँगेगा दूँगा।"

कुणाल, 'पिताजी, मैं एक काकिनी चाहता हूँ।' मन्त्रीने राजाको समझाया कि राजपुत्र काकिनीसे राज्यकी याचना करते हैं। अशोकने पुनः कुणालसे कहा, 'अन्धे होकर तुम राज्यका क्या करोगे? अन्धेको राज-गद्दी कैसे दी जा सकती है?'

कुणाल, 'पिताजी, आपकी कृपासे मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है। आप उसीका राज्याभिषेक कीजिये।'

अशोक, 'तुम्हारे पुत्र कब उत्पन्न हुआ है ?'

कुणाल हाथ जोड़कर कहने लगा—'सम्प्रति अर्थात् अभी।' यह सुनकर अशोकने बालकको धूमधामके साथ पाटलिपुत्रमें बुलवाया और उसका जन्मोत्सव मनाया। बालकका नाम कुणालके उच्चारणपर 'सम्प्रति' ही रख दिया। सम्प्रतिका जन्म ई० पू० ३०४ पौषमास जनवरीमें हुआ था। मगध लाये जानेपर उसकी अवस्था १० दिन की थी। सम्प्रतिका राज्याभिषेक ई० पू० २८९ में १५ वर्ष की अवस्थामें अक्षय तृतीयाके दिन हुआ था।

ऐतिहासिक मतभेद

विष्णुपुराणमें अशोकका उत्तराधिकारी सुयशको[1] बताया है। राजतरंगिणीके अनुसार कश्मीर प्रान्तपर अशोकके पुत्र वीरसेन गान्धारका अधिकार था।

विष्णुपुराण और मत्स्यपुराणमें अशोकका पो दशरथ[2] बताया गया है।

दशरथका नागार्जुन पहाड़ी (गयाके पास) की गुफामें एक दान-सूचक अभिलेख मिला है। उसकी लिपिके[3] आधारपर विंसेण्टस्मिथका अनुमान है कि यही अशोकके राज्यका उत्तराधिकारी था। जैकोबीने सम्प्रतिको कल्पित बताया है, अथवा इनका अनुमान है कि पूर्वीय राज्यका दशरथ उत्तराधिकारी था और पश्चिमीय राज्यका सम्प्रति रहा होगा।

वायुपुराणमें कुणालका पुत्र बन्धुपालित और उसका उत्तराधिकारी इन्द्रपालित बताया गया है। जायसवाल यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वन्धुपालित और इन्द्रपालित क्रमशः दशरथ और सम्प्रतिके उपनाम थे तथा सम्प्रति दशरथका छोटा भाई और उत्तराधिकारी था[4]। तरानाथ कुणालके पुत्रका

१ भारतीय इतिहासकी रूपरेखा पृ०, ६१५

२ अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ०, १९२

३ प्राचीन भारत, पृ० २१८ तथा प्राचीन राजवंश द्वितीय भाग, पृ० १३४

४ भारतीय इतिहासकी रूप-रेखा, पृ०, ६१६

नाम विगताशोक बतलाते हैं। सम्भवतः यह सम्प्रतिका उपनाम हो। अशोकके शिलालेखोंके आधारपर सम्प्रतिका उपनाम प्रियदर्शिन् भी बतलाया जाता है। श्री गिरनारजीकी तलहटीमें सुदर्शन नामका तालाब है, उसके पुनरुद्धार-सम्बन्धी शिलालेखका पीटर्सन साहबने अनुवाद करते हुए कहा है कि इस तालाबको प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्तके समयमें विष्णुगुप्तने बनवाया[1] था। इसके पश्चात् इसके चारों ओरकी दीवारें सम्राट् अशोकके समयमें तुषस् नामक सत्ताधारीने पहली बार सुधरवाई थीं। तत्पश्चात् दूसरी बार पुनरुद्धार प्रियदर्शिन्के समयमें हुआ। इस कथनमें चन्द्रगुप्त, अशोक और प्रियदर्शिन्—इन तीनों शासकोंके नाम आये हैं। पीटर्सन साहबने सम्प्रतिके सम्बन्धमें शिलालेखसे निष्कर्ष निकाला है कि उस राजवंशी पुरुषकी जन्मकालसे लेकर उत्तरोत्तर अप्रतिहत समृद्धि निरन्तर बढ़ती ही चली गई[2]।

ऐतिहासिक प्रमाण

(१) प्रो० रा० गो० भाण्डारकर[3]का कथन है कि राजा सम्प्रतिको केवल १० दिनकी अवस्थामें गद्दीपर बैठाया गया था।

(२) मगधके सिंहासनपर श्रेणिकके पश्चात् सत्रहवां राजा सम्प्रति हुआ। उसका शासनकाल वी० नि० सं० २३८ (ई० पू० २८९) से आरम्भ हुआ, जब सम्राट् अशोकके शासनका अन्त हो रहा था।

(३) कर्नल टाड-साहब सम्प्रति[4] का शासन-काल ई० पू० ३०३-३०४ में आरम्भ हुआ बताते हैं तथा उनका कहना है कि दस महीनेकी अवस्थामें यह गद्दीपर बैठाया गया और १५ वर्षकी अवस्थामें ई० पू० २९०-२८९ में उसका राज्याभिषेक हुआ था।

(४) तिब्बत देशके ग्रन्थोंमें लिखा गया है कि सम्प्रति[5] बादशाह म० स० २३५ में सिंहासनासीन हुआ था।

१ भावनगरके शिलालेख संस्कृत और प्राकृत, पृ० २०

२ भाण्डारकर महोदयकी रिपोर्ट सन् १९८३-८०, पृ० १३५

३ इण्डियन एण्टिकरी, पृ० २४८

४ टाड राजस्थान द्वितीय आवृत्ति

५ इण्डियन एण्टिकेरी पु० ३२, पृ० २३०

(५) प्रो० पिसल साहब[१] की दृढ़ सम्मति है कि रूपनाथ सासाराम और बैराटके शिलालेख भी सम्प्रतिके ही खुदवाये हुए हैं। इस अभिप्रायसे प्रो० रोजडेविस साहब भी सहमत हैं।

(६) दिव्यदान[२] के पृष्ठ ४३० में स्पष्ट लिखा हुआ है कि सम्प्रति कुणालका पुत्र था। इस लेखमें भी यह बताया गया है कि अशोकके बाद राजगद्दीपर आसीन होनेवाला प्रियदर्शिन् ही सम्प्रति है। यह जैन-धर्मानुयायी था। इसके अनुसार सम्प्रतिका पुत्र बृहस्पति, बृहस्पतिका पुत्र वृषसेन तथा वृषसेनका पुण्यधर्मा था।

(७) सम्प्रतिके[३] समयमें जैनधर्मकी बुनियाद तमिल भारतके नए राज्योंमें भी जा जमी, इसमें सन्देह नहीं। उत्तर-पश्चिमके अनार्य देशोंमें भी सम्प्रतिके समय जैनधर्म प्रचारक भेजे गये थे और वहाँ जैन-साधुओंके लिए अनेक विहार स्थापित किये गये।

(८) बौद्ध[४]-साहित्य और जैन-साहित्यकी कथाओंसे सिद्ध होता है कि सम्प्रति जैनधर्मका अनुयायी प्रभावक शासक था। इसने अपने राज्यका खूब विस्तार किया था।

(९) कल्पसूत्र[५] की टीकामें बताया गया है कि सम्प्रतिको रथयात्राके समय आर्य सुहस्तिके दर्शनसे जातिस्मरण हो गया था; जिससे उसने जैनधर्मके प्रसारके लिए सवा करोड़ जिनालय बनवाये।

(१०) स्मिथ[१] साहबने बताया है कि सम्प्रति भारतमें बड़ा प्रभावशाली शासक हुआ है। अशोकने जिस प्रकार बौद्धधर्मका प्रचार किया था, उसी प्रकार जैनधर्मका प्रचार सम्प्रतिने किया। धर्म-प्रचारके कार्योंकी दृष्टिसे चन्द्रगुप्तसे भी बढ़कर इसका स्थान है।

(११) तीन[२] खण्डोंका स्वामी परम प्रतापी कुणालका पुत्र महाराज सम्प्रति हुआ। यह अर्हन्त भगवानका भक्त था, इसने अनार्य देशोंमें भी जैनधर्मके प्रचारकोंको भेजा था तथा जैन मुनियोंके लिए जिनालय बनवाये थे! आर्य सुहस्तिसे इसने जिन दीक्षा ली थी।

जीवन-गाथा

सम्प्रतिने बाहुबलसे अनेक देश-देशान्तरोंको जीतकर अधीन कर लिया था। दिग्विजयके पश्चात् यह एक दिन अपने उज्जयिनीके महलके वातायनमें बैठा हुआ था, इतनेमें अर्हन्त भगवानके रथका जलूस निकला। रथके ऊपरी भागपर आर्यमहागिरि[३] और आर्यसुहस्ति[४] थे, इन आचार्योंको देखते ही राजाके मनमें विचार आया कि इन्हें मैंने कभी देखा है; इस प्रकार ऊहापोह करनेपर उसे जातिस्मरण हो गया और पूर्व जन्मकी बातें याद आ गईं। विचारोंमें तल्लीन होनेसे राजाको मूर्च्छा आ गई। मन्त्रियोंने वायु-प्रक्षेप और शीतोपचारसे राजाको सचेत किया।

---

१ इण्डियन ऐण्टिकरी पु० ६, पृ० १४६

२ राधाकुमुद मुकर्जी, अशोक पृ० ८ इण्डियन एण्टी० १९१४ पृ० १६८ फुटनोट ६७

३ भारतीय इतिहासकी रूपरेखा, पृ० ६१६।

४ Both the Buddhist and the Jain traditions about Samprati hare been referred to us. Cf Roy choudhuri of Cip: P. 220.

५ सम्प्रति...पितामहदत्त राज्यो रथयात्रा प्रवृत्त श्री आर्यसुहस्ति दर्शनाज्जात जातिस्मृतिः। जिनालय सपादकोटि अकरोत्—कल्पसूत्र सुखबोध टीका सूत्र ६, पृ० १६३।

१ Almost all ancient Jain temples or monuments of unknown origin are ascribed by the voice to Samprate, who is infact regarded as a Jain Asoka. —Smith Early History of India pp. 202.

२ तद्वंशे तु विन्दुसारोऽशोक श्रीकुणाल सूनुस्त्रि खण्ड भरताधिपः परमार्हतो अनार्यदेशेष्वपि प्रवर्तित श्रमण विहारः सम्प्रति महाराजश्च भवेत्।

—विविध तीर्थ कल्पे पाटलिपुत्र नगर कल्प, पृ० ६

३ परिशिष्ट पर्व, दूसरा भाग, पृ० ११५-१२४।

४ श्वेताम्बर आगममें आर्य महागिरिको दिगम्बर बताया है तथा इन्हें आर्य सुहस्तिका भाई भी माना है। आर्य सुहस्ति आर्य महागिरिकी वन्दना करते थे तथा सर्व प्रकारसे उनका सम्मान करते थे।

सावधान होकर महाराज सम्प्रति महलसे नीचे आया और अपने गुरु आर्य सुहस्तिकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं तथा नमोऽस्तु कर कहने लगा—"प्रभो ! क्या आप मुझे पहचानते हैं ?" आर्य सुहस्तिने अपने ज्ञान-बलसे तत्काल ही उसके पूर्वजन्मकी घटना अवगत कर ली ।

उन्होंने कहा, 'सामायिक व्रतके प्रभावसे तुम राजघरानेमें पैदा हुए हो । यद्यपि तुमने क्षुल्लकके ही व्रतोंका पालन किया था, पर अहिंसक जैनधर्मके पालन करनेसे ऐसे तुच्छ फलोंका कोई महत्त्व नहीं । यह कल्याणकारी धर्म मोक्ष देनेवाला है, इसमें जीव अपना सब तरहसे उद्धार कर सकता है ।' सम्प्रति को गुरुवचनोंपर बड़ी श्रद्धा हुई और उसने तत्काल जैनधर्म स्वीकार कर लिया । इसके दो वर्ष बाद उसने कलिंग जीता और व्रत ग्रहण किया । सम्राट् सम्प्रतिने युवावस्थामें भारतके समस्त राजाओंको करदाता बना दिया था । अष्टकके निकट आकर सिन्धुनदी पार करनेके उपरान्त अफगानिस्तानके मार्गसे ईरान, अरब और मिश्र आदि देशोंपर उसने अपना अधिकार कर लिया । इसके सम्बन्धमें बताया गया है कि इसने सिन्धु नदीके पारके सरदारोंको जीतकर—जिन्हें सम्राट् अशोक भी अपने अधीन न कर सका था—कर वसूल किया[1] । जिस प्रकार अजातशत्रुके अधीन १६००० करद राज्य थे, उसी प्रकार इसके अधीन राज्योंकी संख्या भी उतनी ही थी । इस तरह सम्राट् सम्प्रति जब दिग्विजय कर वापस लौटा तब अशोकके मुँहसे ये उद्गार निकले कि 'मेरे पितामह चन्द्रगुप्त तो केवल भारतके ही सम्राट् थे, किन्तु मेरा पौत्र सम्प्रति तो संसार भरका सम्राट् है ।'

आर्य सुहस्ति अर्द्धफालक सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे, क्योंकि श्वेताम्बर और दिगम्बरोंका संघ-भेद विक्रम सम्वत् १३६ में हुआ है । यह अर्द्धफालक सम्प्रदाय दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंकी मध्यकी चीज था, इसीसे आगे श्वेताम्बर सम्प्रदाय निकला है । आर्य सुहस्तिने उज्जयिनीमें उस वर्ष चातुर्मास किया था और चतुर्मास की समाप्तिके हर्षोपलक्षमें ही रथ-यात्रा वहाँ की गई थी ।

१ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १६, पृ० ४१ ।

मौर्य राजाओंके[1] राज्य-विस्तारकी यवसे उपमा देते हुए बताया है कि जिस प्रकार यव (जौ) प्रारम्भमें कुछ मोटा, उसके बाद अधिक मोटा और मध्यमें सबसे अधिक मोटा होता है, पश्चात् धीरे-धीरे घटते-घटते सूक्ष्म हो जाता है ; इसी प्रकार चन्द्रगुप्तकी विभूतिसे अधिक विन्दुसारकी विभूति, उससे अधिक अशोक की और अशोकसे ज्यादा सम्प्रतिकी विभूति थी । इसके पश्चात् इस वंशकी विभूति उत्तरोत्तर कम होती चली गई । इसने अपने राज्यमें सब प्रकारसे अहिंसा धर्मका प्रचार करनेका यत्न किया । सम्राट् सम्प्रतिने राज्यकी सुव्यवस्था करनेके लिए अपनी राजधानी अवन्ती[2] (उज्जयिनी) में बनाई थी । राजनीतिक दृष्टिकोण से पाटलिपुत्रमें इतने बड़े साम्राज्यकी राजधानी रखनेसे शासनसूत्र चलानेमें अनेक कठिनाइयोंका सामना भी करना पड़ता । एक बात यह भी थी कि प्रारम्भसे उज्जयिनीमें ही सम्प्रतिकी शिक्षा-दीक्षा भी हुई थी, इसलिए इस नगरसे विशेष प्रेम भी इसका था, अतः उज्जयिनीमें राजधानी स्थापितकर आनन्दपूर्वक वह शासन करता था । पाँच अणुव्रतोंका यथार्थ रीतिसे पालन करते हुए इसने अनेक धर्मकार्य किये थे ।

दिग्विजयके दो वर्ष पश्चात् सम्राट् सम्प्रति सम्यग्दृष्टि श्रावक बनकर संघ-सहित तीर्थयात्राके लिए रवाना हुआ । इसने मार्गमें कुएँ, धर्मशालाएँ जिन मन्दिर और अनेक दानशालाएँ स्थापित की थीं । यह संघ-सहित यात्रा करता हुआ

१ जव मजक मुरिभवसे दाणावणि विचिणदार सलोए ।
तस जीव पडिक्कमओ पभाओ समण संघस्स ॥
यथा यवो मध्यभागे पृथुलः आदावन्ते च हीनः एवं मौर्य वंशोऽपि । तथाहि—चन्द्रगुप्तस्तावद् बहुलवाहनादि विभूत्या विभूषित आसीत् ततो विन्दुसारो बृहत्तरस्ततोऽप्यशोक श्रीर्बृहत्तमस्ततः सम्प्रति सर्वोत्कृष्टः । ततो भूयोऽपि तथैव हानिरवसातकः एवं यवमध्यकल्पः सम्प्रति नृपतिरासीत्
—अभिधान राजेन्द्र, सप्तम भाग, पृ० १६८ ।

२ प्राचीन भारत, पृ० २१८-२१६ और कम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, प्रथम पुस्तक, पृ० ५६—१७२ तथा भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति ।

उर्जयन्तगिरि (गिरनारजी) पहुँचा तथा वहाँके सुदर्शन नामके तालाबका पुनरुद्धार कराया और शत्रुंजयपर जिनमन्दिर का निर्माण कराया। इसने अपने राज्यमें शिकार खेलनेका पूर्ण निषेध करवा दिया था। इसका जीवन पूर्णतया श्रावक का था। इसकी आयु सौ वर्ष बताई गई है।

शिलालेख

यद्यपि वर्त्तमानमें एक भी शिलालेख सम्प्रतिके नामका नहीं माना जाता है, प्रायः उपलब्ध मौर्यवंशके अधिकांश शिलालेख अशोकके नामसे प्रचलित हैं। पर ईमानदारीके साथ इन शिलालेखोंका परीक्षण किया जाय तो दो-चार अभिलेखोंको छोड़ शेष सभी अभिलेख सम्प्रतिके ही प्रतीत होंगे। यहाँपर कुछ विचार विनिमय किया जायगा, जिससे पाठक उक्त कथनकी यथार्थताको सहज हृदयंगम कर सकेंगे।

१. पुरातत्त्व विभागके असि० डायरेक्टर[1] जनरल स्व० पी० सी० बनर्जी लिखते हैं कि ये सब शिलालेख, जिनमें यवन राजाओंके नामोंका अंगुलि-निर्देश किया गया है। किसी भी तरह सम्राट् 'अशोक'[2] (द्वितीय) के बनवाये हुए नहीं हो सकते। अधिक सम्भव तो उसके पौत्र राजा सम्प्रति द्वारा बनवाये जानेका है जिसने जैनधर्म स्वीकार कर अपने पितामहका पदानुकरण करते हुए शिलालेख खुदवाये होंगे।

२. प्रो० पिशल साहब[1] रूपनाथ, सासाराम और वैराठ शिलालेखोंको अशोकके नहीं मानते, वे उन्हें सम्प्रति द्वारा खुदवाए हुए बतलाते हैं।

३. पाली भाषाके अधिकारी विद्वान् प्रो० विल्सन[2] भी लिखते हैं कि प्राणियोंके वध रोकने विषयक उसके आदेश बौद्ध धर्मकी अपेक्षा उसके प्रतिस्पर्द्धी जैनधर्मके सिद्धान्तोंसे अधिक मेल खाते हैं।

४. भाण्डारकर महोदय लिखते हैं कि स्तम्भ-लेख नं० ३ में पाँच आस्रव बताए गए हैं। बौद्ध धर्मके तीन आस्रव होते हैं। हाँ, जैन धर्ममें पाँच[3] आस्रव माने गए हैं।

५. राधाकुमुद मुकुर्जी[4] ने निष्कर्ष निकाला है कि फाहियान और युआनच्वांग नामके दो चीनी यात्री भारतवर्षमें आए थे, उनके किये हुए वर्णनोंमें इन शिलालेखोंकी चर्चा अवश्य है, किन्तु यह कहीं भी नहीं लिखा है कि ये शिलालेख अशोकके खुदवाए हुए हैं। केवल इतनी बात लिखी है कि ये लेख प्राचीन हैं। इनमें लिखी बातें इनसे भी पहले की हैं।

६. प्रो० हुल्टस् साहब[5] का मत है कि बौद्धमतकी तत्त्वविद्यामें आत्मविद्या विषयक जो विकास-क्रम बतलाया गया है, उसमें और शिलालेखोंकी लिपिमें धम्मपद विषयक जो

---

१. इण्डियन ऐंटि० पर तर्क उपस्थित करते हुए इन्होंने लिखा है कि यदि ये सभी शिलालेख अशोकके होते तो उनमें से किसीमें भी उन्होंने अपना नाम क्यों नहीं लिखा ? प्रियदर्शिनने राज्याभिषेकके नौ वर्ष बाद व्रत लिए थे, ऐसी दशा में उक्त वर्णन अशोकसे सम्बन्ध रखता हो तो उसने राज्याभिषेकसे छः मास पूर्व और गद्दीपर बैठनेके चौथे वर्ष बौद्ध धर्ममें प्रवेश किया होगा। यदि दूसरा धर्म परिवर्तन कहा जा सकता हो तो राजा प्रियदर्शिन्ने मगध संघ यात्रा अपने राज्यके दसवें वर्षमें की थी, जब कि मोगगल पुत्रके नेतृत्वमें तीसरी बौद्ध कौंसिल अशोक राज्यके सत्रहवें वर्षमें हुई थी। इन सब कारणोंसे अशोकके शिलालेख नहीं हो सकते।

२. शिशुनागवंशी कालाशोक उपनाम महापद्मको प्रथम अशोक कहा जाता है। समय ई० पू० ४५४-४२६

---

१ इण्डियन एण्टीक्वेरी पु० ७, पृ० ६४२

२ His ordinances concerning spring of animal life agree much more closely with the ideias of the heretical Jains than those of the Buddhists.

ज० रा० ए० सो० १८८७, पृ० २७

३ मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाँच आस्रवके कारण हैं।

४ Radha kumood Mookerjce p. 14 & N. 3. It should be noted that neither of these Chinese pilgrims (Fa-hain, Youan Chwang) has described the inscriptions they had noticed as the inscriptions of Asoka. They generally describe them and recording events of earleir times.

५ कोर० इन्सक्रिप्शन् इण्डिके० पु० १, पृ० ४७

विकास-क्रम लिखा गया है अत्यधिक अन्तर है। यह समग्र रचना ही जैनधर्मके अनुसार खोदी गई है।

७. अशोकके सभी शिलालेख[1] सिकन्दरशाहके समयके लगभग ८०-वर्ष बादके सिद्ध होते हैं और इस गणनासे उनका समय ई० पू० ३२३—८०=ई० पू० २४३ वर्ष आता है। पर अशोककी मृत्यु ई० पू० २७० में हो चुकी थी, अतः ये शिलालेख अशोकके कभी नहीं हो सकते। इनका निर्माता जैनधर्मानुयायी सम्प्रति अपर नाम प्रियदर्शिन् ही है।

आन्तरिक परीक्षण

अशोकके शिलालेखोंका आभ्यान्तरिक परीक्षण करनेपर प्रतीत होता है कि अधिकांश शिलालेख जैन सम्राट् प्रियदर्शिन् उपनाम सम्प्रतिके हैं। विचार करनेके लिये निम्न प्रमाण उपस्थित किये जा रहे हैं जिनसे पाठक यथार्थता अवगत कर सकेंगे।

१. अधिकांश शिलालेखोंमें 'देवानां[2] प्रिय प्रियदर्शी' आता है। यह प्रियदर्शी न तो अशोकका उपनाम है और न विशेषण ही है। अतः प्रियदर्शीके नामके सभी शिलालेख सम्प्रतिके हैं।

२. जिन लेखोंमें अशोकका नाम स्पष्टतः आया है। उनमें बौद्धधर्मके सिद्धान्त पाए जाते हैं। किन्तु जिनमें प्रियदर्शीका नाम आया है उनमें जैनधर्मके सिद्धान्त वर्तमान हैं। इसी कारण कई ऐतिहासिक विद्वान् अशोकके जैनधर्मानुयायी होनेकी आशंका करते हैं। वास्तवमें बात यह है कि मौर्यवंशमें अकेला अशोक बौद्धधर्मानुयायी हुआ; शेष सभी पूर्व और परवर्ती सम्राट् जैनधर्मानुयायी ही थे।

३. पाँचवें शिलालेखमें बताया गया है कि "इह ब्राह्मणेषु च नगरेषु सर्वेषु अवरोधनेषु भ्रातृणां च अन्ये भगिनीनां एवं अपि अन्ये ज्ञातिषु सर्वत्र व्यापृताः[1]" अर्थात् जो प्रियदर्शिन् ने पाटलिपुत्र नगर एवं अन्यान्य स्थानोंमें अपने भाई-बहनोंको नियुक्त किया था। यदि इस कथनको अशोकके लिए माना जाय तो अनेक दोष आयँगे। क्योंकि अशोकके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि उसने निष्कण्टक राज्य करनेके लिए राज्याभिषेकके पूर्व ही अपने भाईको छोड़ सभी कुटुम्बियोंको मरवा डाला था; अतएव शिलालेखमें उल्लिखित उसके भाई-बहन कैसे हो सकते हैं? प्रियदर्शिन्के भाई, पुत्र और कुटुम्बियोंके सम्बन्धमें उल्लेख दिल्ली, टोपराके स्तम्भ-लेख नं० ७ में पाया जाता है। अतः प्रियदर्शिन्का ही यह लेख होगा।

४. चौथे और ग्यारहवें शिलालेखमें अहिंसा तत्वका वर्णन जैनधर्मकी अपेक्षा ही किया गया है। बौद्धमतमें स्थावर जीव—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकायकी हिंसाका त्याग कहीं नहीं बताया गया है। यदि ये शिलालेख अशोकके होते तो सजीव तुषको जलानेका निषेध तथा वनमें आग लगानेका निषेध नहीं किया जाता। शिलालेखोंमें अहिंसाका सूक्ष्म वर्णन जैनधर्मके सिद्धान्तोंके साथ समत्व रखता है, बौद्धधर्मके सिद्धान्तोंके साथ नहीं।

५. परभवके सुखके लिए लेखोंमें सर्व प्राणियोंकी रक्षा, संयम, समाचरण और मार्दव धर्मकी[2] शिक्षा दी गई है। समाचरण और संयम जैनधर्म[3] के आचारके प्रमुख अंग हैं, बौद्धधर्ममें इन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है।

६. स्तम्भ-लेख नं० ५ में पक्षियोंके वध, जलचर तथा अन्य प्राणियोंके शिकार करनेका अष्टमी, चतुर्दशी और कार्तिक फाल्गुन, एवं आषाढ़की अष्टान्हिका तथा पर्यूषण पर्वकी पुण्य-तिथियोंमें निषेध किया है। इस निषेधसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन तिथियोंका महत्त्व जैनोंके लिए जितना है उतना अन्य धर्मावलम्बियोंके लिए नहीं। अतः इस आज्ञाका

१ सर कनिंगहम् "बुक आफ एंशियेंट इराज" पृ० २

२ 'देवानांप्रिय' विशेषणका उपयोग प्रायः साधु, भक्तजन या किसी सेठके लिए होता था। कभी-कभी पति-पत्नी भी एक दूसरेके सम्बोधनके लिए इसका व्यवहार करते थे।
—कल्पसूत्रकी सुखबोधनी टीका, पृ० ४७

१ अशोक धर्मलेख, पृ० १६२

२ सव भूतानं अछति, संयम, समचरियं मदवंच—अशोक शिला लेख १३, पृ० २५०

३ समदा समाचारो सम्माचारो समो व आचारो सव्वेसिंहि सम्माणं समाचारो दु आचारो ॥ मूलाचार १२३ ॥ ४ ॥

प्रचारक जैन ही हो सकता है। अष्टमी और चतुर्दशीको पर्व तिथियाँ जैनोंने ही माना है, बौद्ध और वैदिकोंने नहीं।

७. जैनधर्मके पारिभाषिक शब्द शिला-लेखोंमें इतने अधिक हैं कि जिससे उनके निर्माताको बौद्ध कभी नहीं माना जा सकता। स्तम्भ-लेख नं० ६ पचूपगमन (प्रायुपगमन), शिला-लेख नं० ३ में प्राणारम्भ (प्राण अनारम्भ), शिला-लेख नं० ५ में कल्प, शिला-लेख नं० १२ गुति (गुप्ति) और समवाय (समावायांग), स्तम्भ-लेख नं० २ में संयम, भावशुद्धि और आस्रव, शिलालेख नं० १३ में वेदनीय तथा पञ्चम स्तम्भलेखमें जीवनिकाय और प्रोषध (प्रोषधो पास) आदि शब्द आए हैं।

इन शिला-लेखोंका निर्माता सम्प्रति उपनाम प्रियदर्शिन्[1] होना चाहिये।

८. गिरनारके लेख नं० ३ में 'स्वामिवात्सल्यता' का प्रयोग आया है। बौद्ध धर्मकी दृष्टिसे यह बन नहीं सकता, क्योंकि बौद्ध धर्ममें भिक्षु और भिक्षुणी इन दोनोंको मिलाकर ही द्विविध संघ होता है, पर जैनधर्ममें मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका इन चारोंको मिलनेसे चतुर्विध संघ होता है। अतः स्वामिवात्सल्यता जैन धर्मकी दृष्टिसे बन सकती है, बौद्ध धर्मकी दृष्टिसे नहीं।

९. शिला लेख नं० ८ में सम्बोधिमयाय एक शब्द आया है, जिसके अर्थमें आजतक विशेषज्ञोंको सन्देह है। जैन मान्यतामें यह साधारण शब्द है, इसका अर्थ सम्यक्त्व प्राप्ति है। कुछ लोगोंने खींच-तानकर इसका अर्थ जिस वृक्षके नीचे महात्मा बुद्धको सर्वोत्कृष्ट ज्ञानकी प्राप्ति हुई थी, उस बोधिवृक्ष के नीचे छायामें जाकर किया है जो असंगत प्रतीत होता है।

१०. सम्प्रतिने स्तम्भ बनवाए। उनपर सिंहकी मूर्तियाँ इसलिए बनवाईं कि यह उनके आराध्य भगवान् महावीरका चिह्न है तथा सम्यग्दृष्टिके निर्भय पनेका सूचक भी है। सिंहकी मूर्त्तियाँ और चक्र सम्प्रति उर्फ प्रियदर्शिन्के ही हैं क्योंकि इनका निकट सम्बन्ध जैन संस्कृतिसे है।

शंकाएँ

यदि अशोकका उपनाम या विशेषण न माना जाय तो मक्सी शिला-लेखमें अशोक शब्द स्पष्ट क्यों लिखा गया है? प्रियदर्शी बौद्ध धर्मके यात्रा-स्थान लुंबिनी और निग्लिवमें क्यों गया था? यदि बौद्ध धर्मी न होता तो वह वहाँ क्यों जाता! अतः प्रियदर्शिन् अशोकका विशेषण या उपनाम है।

समाधान

मक्सीके शिला-लेखमें 'देवानांप्रिय अशोकस्स' आया है, प्रियदर्शिन्का नाम नहीं आया है। अतः यह शिलालेख अशोक का ही है। देवानांप्रिय उपाधि राजाओंके लिये उस कालमें व्यवहृत होती थी। इसलिए इस शिला-लेखसे अशोक और प्रियदर्शी एक सिद्ध नहीं होते हैं। यदि इसमें 'देवानां प्रिय प्रियदर्शिन् अशोक' ऐसा पाठ होता तो अवश्य अशोकका दूसरा नाम प्रियदर्शिन् माना जा सकता था।

दूसरी शंकाका समाधान यह है कि अशोककी मृत्यु सम्प्रतिके राज्याभिषेकके १९ वर्ष बाद ई० पू० २७० में हुई थी, अतः वह एक वर्ष बाद अपने पूज्य पितामहकी सांवत्सरिक क्रिया करनेके लिए गया होगा।

दूसरी बात यह भी है कि राजा सभी धर्मोंका संरक्षक

---

[1] शिला-लेख नं० २ और १३ में ऐसे उद्धरण हैं जिनमें बताया गया है कि सम्राट् प्रियदर्शिनके शासन-कालमें ग्रीक साम्राज्यके पाँच हिस्से हो गये थे। उनमें जो नाम बताए गये हैं उन पाँचोंके आधारपर यूरोपीय विद्वानोंने उनका शासन-काल इस प्रकार निश्चित किया है—(१) ई० पू० २६१-२४६ (२) ई०पू० २७२—२५४। शिलालेखोंकी खुदाई का समय भले ही बादका हो, उपर्युक्त घटना प्रियदर्शिन् राजा द्वारा राज्याभिषेक होनेके आठ वर्ष बाद कलिंग जीत लेनेसे पहले हुई है। ऐसी दशामें यदि अशोक और प्रियदर्शी एक ही हों तो ई० पू० ३२५-८में अशोकका राज्याभिषेक होनेके हिसाबसे वह समय ई० पू० ३१७ होता है और इस दृष्टिसे विचार करनेपर उपर्युक्त पाँच वर्षोंमें से किसीके साथ भी (राज्य-शासनके आरम्भ या अन्तसे) उसका क्रम नहीं जुड़ता है; बल्कि उसके विपरीत वह और ५०-६० वर्ष पहले चला जाता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रियदर्शिन् और अशोक ये दोनों एक नहीं, भिन्न व्यक्ति हैं। ना० प्र० प०, भाग १६, अंक १, पृ० २२-२३।

तथा धर्म-सहिष्णु होता है। अतः सम्प्रतिने अन्य स्थानोंके निरीक्षणके समान उक्त धर्म स्थानोंका भी निरीक्षण और दर्शन किया होगा। अतः शिलालेखों द्वारा सम्प्रतिके कार्योंका अनुमान कर उसे यश देना चाहिए। वर्त्तमानमें राष्ट्र-ध्वज और राष्ट्र-मुद्राके लांछन सम्प्रतिके ही है। भ्रमवश लोग अशोकके समझे हुए हैं।

धर्म-प्रचार

सम्प्रतिने जैनधर्मके प्रचारके लिए सवा लाख नवीन जैन मन्दिर, दो हज़ार धर्मशालाएँ, ग्यारह हजार वापिकाएँ और कुएँ खुदवाकर पक्के घाट बनवाए। सवा करोड़ जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा कराई तथा छत्तीस हजार मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करवाया। एपिटम[1] आफ जैनिज़्ममें बताया गया है कि सम्प्रति महान् वीर जैन धर्मानुयायी था। इसने धर्मकी वृद्धि के लिए सुदूर देशोंमें धर्मका प्रचार कराया, अनार्य देशोंमें संघका विहार कराया तथा अपने अधीन सभी राजाओंको जैनी बना कर जैनधर्मके प्रचारकोंको सब प्रकारसे सहयोग दिया। खरतरगच्छावलीमें[2] भी सम्प्रतिके कार्योंका उल्लेख करते हुए बताया गया है कि जैन साधुओंको धर्म-प्रचारके लिए राजदूत बनाकर विदेशोंमें भेजा गया था। मालगुजारी वसूल करनेका कार्य भी प्रायः जैन साधु करते थे, ये साधु सातवीं प्रतिमाके धारी होते थे।

सम्प्रतिके धर्म-प्रभावनाके कार्योंका निरूपण करते हुए कहा गया है कि यह सम्राट् रथयात्रामें साथ रहता था तथा नाना प्रकारके पुष्पहार, तोरण, मालाओं आदिसे रथको सज्जित कर भगवान् जिनेन्द्रकी सवारी बाजे-गाजेके साथ निकालता था। इसने अपने अधीनस्थ राजाओंको आदेश दिया[1] था कि यदि आप लोग मुझे अपना स्वामी मानते हैं तो जैन साधुओंका सम्मान करें चतुर्विध संघका आदर करें। मुझे दण्ड द्वारा द्रव्यकी आवश्यकता नहीं है। अपने-अपने राज्यमें अभय-दान करें, अहिंसा धर्मका प्रचार एवं पालनकर अपना कल्याण करें। चतुर्विध संघको तथा विशेषतः जैन साधुओंको शुद्ध आहार, पात्र तथा अन्य आवश्यकताकी वस्तुएँ दानमें दें।

सम्राट् सम्प्रतिने अरब, ईरान, सिंहल द्वीप, रत्नद्वीप, महाराष्ट्र, आन्ध्र, कुडुक्कु आदि देशोंमें जैनधर्मका प्रचार कराया था।

इसके द्वारा निर्मित मन्दिरोंमें गुजरात और राजपूतानेमें कुछ मन्दिरोंके ध्वंस अब भी वर्त्तमान हैं। कर्नल टाड[2]ने लिखा है कि "कमलनेरका शेष शिखर समुद्रतलसे ३३५३ फीट ऊँचा है। यहाँसे मैंने मरुक्षेत्रके बहुदूरवर्ती स्थानोंका प्रान्त निश्चय कर लिया। यहाँ ऐसे कितने ही दृश्य विद्यमान हैं, जिनका समय अंकित करनेमें लगभग एक मासका समय लगने

---

१ Samprati was a great Jain monarch and a staunch supporter of the faith. He erected thousands of temples throughout the length and breadh of his vast empire and consecrated large number of images. He is stated further to have sent Jain missionaries and ascetics abroad to preach jainism in the distant countries and spread the faith amongst the people there.

—An Epitome of Jainism Appendix A.P.V.

२ येन सम्प्रतिना...साधु वेषधारी—निज किंकरजन प्रेषणेन अनार्य देशेऽपि साधु विहारं कारितवान्—खरतरगच्छावली संग्रह पृ० १७

१ यति मं जाणइ सामिं, समणाणं पणमहा सुविहियाणां।
दव्वेण मे न कज्जं, एयं खु पियं कुणह मज्झं॥
यदि मां स्वामिनं जानीथ मन्यध्वे ततः श्रमणप्रणामनादिकं मम प्रियं तदेव यूयं कुरुत।
वीसज्जिय य तेणं, समणं घोसावणं सरज्जेसुं।
साहुणं सुहविहारा, जाता पच्चंतिया देशा।
समणभडभाविए सुं, तेसुं रज्जेसु एसणादीसुं।
साहु सुहं विहारिया तेणं वि य भद्दगा तेउ॥
उदिण जोहउलसिद्धसेणापडिद्दितो णिजियसत्तुसेणो।
समं ततो साहु सुहप्पयारे अकासि अंधे दविले य घोरे॥

—अभिधान, राजेन्द्र भाग ७, पृ० १६६-२००

२ हिन्दी टाड राजस्थान; पहला भाग, द्वि० खं० अ० २६, पृ० ७२१-२३

की सम्भावना है। किन्तु हमने केवल उक्त दुर्ग और एक बहुत पुराने जैन मन्दिरका चित्रांक समाप्त करनेका समय पाया था। इस मन्दिरकी गठन-प्रणाली बहुत प्राचीन कालके समान है। मन्दिरके बीचमें केवल खिलान युक्त ऊँची चोटीका विग्रह-कक्ष (कमरा) है और उसके चारों ओर स्तम्भावलि-शोभित गोल बरामदा है। यह निश्चय ही जैन मन्दिर है"। कथनसे स्पष्ट है कि यह मन्दिर ई० पू० २०० से भी पहलेका है टाड साहबने आगे भी इस बातको स्वीकार किया है। अतः यह सम्प्रतिका बनाया हुआ बताया जाता है। सम्प्रतिने कई पिंजरपोल पशु-रक्षणके लिए खुलवाये थे। गुजरातमें इस प्रथाका शेष चिह्न आज भी वर्त्तमान है।

इसके धर्म-प्रचारका उल्लेख श्वेताम्बर साहित्यमें ही पाया जाता है, दिगम्बर साहित्यमें नहीं।

सम्प्रतिने जैन साधुओंकी धर्म-प्रचारमें सब प्रकारसे सहायता की थी[1]। इसलिए राजकीय आश्रयको पाकर जैनधर्म उस कालमें खूब फैला। लोकोपकारी कार्य भी इसने अनेक किए। आहार-दान, ज्ञान-दान, औषध-दान और अभय-दान भी इसने अपने जीवनमें खूब दिए। राजनीतिमें अहिंसाका प्रयोग भी खूब किया। इसने अनार्य देशोंमें जैनधर्मके प्रचारके लिए सेनाके योद्धाओंको साधुओंका वेष बनाकर भेजा था। अपने प्रिय जैनधर्मके प्रसारमें इसने सभी सम्भव उपायोंसे काम लिया था[2]।

१ जैनिज़्म इन नार्थ इण्डिया, पृ० १४४-१४५

२ इत्यधिकार्य्यं धर्म विचारं सम्प्रतिभूपतिवृत्तमुदारम्।
सद्गुरुप्रहताखिलबहुमानं भव्यजना दधतां बहुमानम्॥
—दर्शन-शुद्धि, आ० ११

पूँजीवादी प्रजातन्त्र

'युनाइटेड नेशंस'के सम्पादक

गत १९४७ वर्षकी महान् घटनाओंमें एक बात खास तौर पर महत्त्वपूर्ण है और वह यह कि दो वर्ष पूर्व जो पूँजीवादी व्यवस्था संसारके बड़े-बड़े भागोंमें नष्टप्राय-सी प्रतीत होने लगी थी, अब वह अन्तर्राष्ट्रिय पैमानेपर अपनी शक्ति पुनः प्राप्त कर रही है। उद्योग और अर्थ-व्यवस्थाके बड़े-बड़े भागोंके राष्ट्रियकरणकी प्रवृत्ति बहुत कुछ मन्द पड़ गई है—विशेषतः यूरोपमें। द्वितीय महायुद्धके बाद सम्पूर्ण संसारमें पूँजीवादको निश्चयात्मक रूपसे छोड़नेकी और राष्ट्रियकरणकी जो प्रवृत्तियाँ जोर पकड़ रही थीं, दो प्रमुख कारणोंसे उनमें रुकावट आई है। पहला कारण है अमरीका—जो पूँजीवाद और व्यक्तिगत व्यापारका सबसे बड़ा समर्थक है—की शक्ति और उसका महत्त्व और युद्धसे नष्ट क्षेत्रोंके पुनर्निर्माणके कार्यमें उसका महत्त्वपूर्ण भाग। दूसरा कारण है कम्यूनिस्ट शासन-प्रणाली और समाजवादी प्रणालियोंमें गहरे सैद्धान्तिक मतभेद।

अधिकांश अमरीकनोंकी धारणा है कि पूँजीवाद संसारमें अमरीकाकी सीमाके बाहर कहीं नहीं है और उसका स्थान राष्ट्रियकरण पूर्णतः या अंशतः ले रहा है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। संसारके दो-तिहाई हिस्सेसे ज़्यादामें व्यक्तिगत संचालित उद्योगका दौरदौरा है।

सचाई यह है कि इस पृथ्वीके १,१००,०००,००० (१ अरब १० करोड़) लोग पूर्णतः व्यक्तिगत संचालित उद्योग की प्रणालीके अधीन रहते हैं, और ७१२,०००,००० (७१ करोड़ २० लाख) व्यक्ति उन प्रदेशोंमें रहते हैं, जहाँ अब भी अधिकांश उद्योग स्वतन्त्र व्यक्तियोंके हाथोंमें हैं। केवल ३०,२०,००,००० (तीस करोड़ बीस लाख) उन देशोंके निवासी हैं जहाँके उद्योग राष्ट्र द्वारा संचालित हैं। इनमेंसे सिर्फ लगभग २० करोड़ आदमी पूर्णतः राष्ट्रियकरणकी व्यवस्थाके अधीन रहते हैं और शेष १० करोड़ ४० लाख आदमियोंके देशोंमें अधिकांश उद्योगोंका राष्ट्रियकरण हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज भी हमारे संसारके राजनीतिक और आर्थिक संगठनमें पूँजीवाद और व्यक्तिगत संचालित उद्योगोंका ही प्राधान्य है।

संसारके विभिन्न भागोंमें तरह-तरहका पूँजीवाद है। देश विशेषकी सम्पत्ति और प्राकृतिक साधन, उसकी आबहवा तथा भौगोलिक स्थिति, उसकी जनताकी व्यावसायिक उन्नति, रहन-सहन और उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओंके अनुरूप ही वहाँका पूँजीवाद होता है। लेकिन फिर भी हम पूँजीवादके कुछ मूलतत्व स्थिर कर सकते हैं।

पूँजीवादकी परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं कि यह वह आर्थिक व्यवस्था है जिसमें सम्पत्तिके उत्पादन और विभाजनके साधनोंका स्वामित्व और संचालन व्यक्तियोंके अधीन हो। इस स्वामित्वका प्रयोग व्यक्तिगत पूँजीके अधिकारोंकी कानूनी गारंटीके अन्तर्गत ही होता है। स्वतन्त्र उद्योग संचालनकी इस प्रणालीमें लाभकी आशा सबसे अधिक प्रेरणाप्रद है और न्यायपूर्वक संचित धनका संरक्षण ही इसका सबसे बड़ा फल है।

× × ×

मनुष्य जातिके इतिहासमें तुलनात्मक दृष्टिसे पूँजीवादकी व्यवस्था अभी नई है। इसका प्रारम्भ १७वीं शताब्दीमें सामन्तशाहीके अवशेषोंसे हुआ था। इसे सर्वप्रथम संवर्धन मिला अमरीकाकी खोजके उपरान्त बढ़े हुए व्यापारसे। लेकिन इस व्यवस्थाको 'औद्योगिक क्रान्ति'ने सबसे अधिक वेग दिया।

आडम स्मिथका विश्वास था कि सम्पत्तिके अधिक-से अधिक उत्पादनका सर्वोत्कृष्ट तरीका यह है कि व्यक्तिको उसके आर्थिक प्रयोगोंमें बिल्कुल स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय और उसमें शासन कम-से-कम हस्तक्षेप करे। लेकिन आज तो पूँजीवादमें काफी परिवर्तन हो चुका है।

इस प्रकारका विचार उन्हीं दिनों सम्भव था जब आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त साधारण थी, मशीनें मनुष्योंके जीवनको पूर्णतः परिवर्तित नहीं कर पाई थीं, और जब मजदूरी कौटुम्बिक रूपमें होती थी।

आज तो वैज्ञानिक उन्नतिके कारण पूँजीवादकी व्यवस्था कितनी भी स्वतन्त्र क्यों न हो—उसके नियन्त्रणके लिए कानून रहते ही हैं। कामके घण्टे बँधे होना, मजदूरोंकी रक्षा और दुर्घटनाके बीमाकी व्यवस्था और सैकड़ों ही अन्य कानूनी संरक्षण मशीनोंके कारण आवश्यक हो गए हैं। लेकिन पूँजीवादियोंने सदा ही विरोध किया है कि ऐसे कानून न बनाए जायँ जिनके कारण उनके मौलिक अधिकारमें यानी स्वतन्त्र उद्योगों द्वारा सम्पत्ति अर्जित और संचित करनेमें हमेशाके लिए रुकावट हो।

जहाँतक राजनीतिक संस्थाओंका सम्बन्ध है, उन भागोंमें जहाँ प्राकृतिक साधनोंका बाहुल्य था, और जहाँ मोटे-मुनाफे और ऊँचा रहन-सहन सम्भव थे और साथ-साथ चल सकते थे—वहाँ पूँजीवादी-व्यवस्थाका साथ प्रधानतः राजनीतिक प्रजातन्त्रसे रहा है। और उन हिस्सोंमें जहाँ आर्थिक साधनोंकी कमी है अथवा आबादी अत्यधिक है, पूँजीवाद अप्रजातान्त्रीय व्यवस्थाओंमें सहायक हुआ है। इसके उदाहरण हमें द्वितीय महायुद्धके बादके जर्मनी, जापान और इटलीमें दिखते हैं।

इस प्रकार पूँजीवाद मूलतः हर प्रकारकी राजनीतिक व्यवस्थाके अनुकूल चल सकता है—केवल पूर्ण समाजवाद और कम्यूनिज़्मको छोड़कर। प्रजातन्त्रीय पूँजीवाद आजकल अमरीका, कनाडा, स्विट्ज़रलैण्ड और थोड़े संशोधित रूपमें संसारके अन्य भागोंमें है। राजनीतिक तानाशाहीके साथ पूँजीवाद हमें स्पेन, पुर्तगाल, स्याम और अन्य देशोंमें दिखता है और सामन्तशाही राजतन्त्रके साथ वह कुछ अरब देशोंमें है।

× × ×

पूँजीवादी संसारके भीतर विभिन्न सैद्धान्तिक विशेषताएँ भिन्न-भिन्न देशोंकी आर्थिक स्थितिके ऊपर होती हैं। आजकल पूँजीवाद और स्वतन्त्र उद्योग-संचालनके कम-से-कम चार भिन्न वर्ग हैं और उनमें से प्रत्येककी अपनी विशेषताएँ हैं।

(१) प्रचुर पूँजीवाद

अमरीका, कनाडा और स्विट्ज़रलैण्डकी आर्थिक व्यवस्थाओंकी विशेषताएँ ये हैं—बेकारीका नितान्त अभाव, अन्य जगहोंको देखते हुए ऊँचे स्तरका रहन-सहन, बढ़ती हुई उत्पादन शक्ति, लगभग सम्पूर्ण समाजमें अधिक वस्तुओंकी खपत, राष्ट्रीय कर्जेकी घटती और केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारोंके बजटोंमें घाटेमें कमी होते रहना। अमरीकाके पूँजीवादकी एक

और विशेषता है, जो और कहीं नहीं मिलती यानी सोनेके रूपमें विपुल सम्पत्तिका रिज़र्व और यह रिज़र्व देशकी औद्योगिक शक्ति और उत्पादनकी सामर्थ्यके साथ डालर-चलनको स्थिर करता है। डालरके मूल्यमें कमी केवल अमरीकाके इकतरफ़ा निर्णयके कारण ही आ सकती है—चाहे ऐसा आन्तरिक कारणों जैसे मुद्राका अत्यधिक फैलावके लिए हो अथवा विदेशीय ग्राहकोंकी सुविधाके लिए।

(२) पर्याप्त-पूँजीवाद

इस वर्गमें स्कैंडीनेवियन प्रदेश और आस्ट्रेलिया आते हैं, जहाँ यद्यपि एक मुद्दतसे मज़दूर अथवा समाजवादी सरकारें हैं, फिर भी राष्ट्रियकरणकी कोई बड़ी प्रगति नहीं हुई (इसमें आस्ट्रेलियामें बैंकोंका राष्ट्रियकरण अपवाद है)। इन देशोंकी मुख्य विशेषताएँ ये हैं : तुलनात्मक दृष्टिसे स्वयंके लिए पर्याप्त साधन, उन्नत और विकसित कृषि और उद्योग और आर्थिक स्थितिकी दृढ़ता। (इसमें युद्धसे क्षत नार्वे अपवाद है।)

यद्यपि इंगलैण्ड, फ्रांस और इटलीमें उद्योगों और अन्य आर्थिक साधनोंका राष्ट्रियकरण हो चुका है ; फिर भी इन देशोंमें स्वतन्त्र उद्योग-संचालनकी बहुत-सी प्रधान विशेषताएँ हैं। वहाँ आदमी अब भी साधारणतः पूँजीवादी समाजके अन्तर्गत और उसीकी भावनासे कार्य करता है।

(३) निम्न रहन-सहनका पूँजीवाद

इस वर्गमें दक्षिणी अमरीकाके प्रदेश आते हैं। इनमें अर्जेंटाइना और मैक्सिको अपवाद हैं—जहाँ राष्ट्रियकरणकी अच्छी प्रगति हुई है। दक्षिणी अमरीकामें पूँजीवाद अभी पूर्ण रूपसे विकसित नहीं हो पाया। अधिकांश जनताका रहन-सहन वहाँ काफी नीचा है। उत्पादन अभी भी कम है और दक्षिणी अमरीकाके बहुतसे प्रदेशोंके प्राकृतिक साधनोंका वहाँ पूरी-पूरी तरह उपयोग नहीं हुआ और वहाँ सोनेका रिज़र्व अपेक्षाकृत थोड़ा है।

लेकिन यदि संसारमें शान्ति रही और अन्तर्राष्ट्रिय व्यापार ठीक रहा तो शीघ्र ही दक्षिणी अमरीकाके कुछ प्रदेश ब्राज़ील और चाइल विशेषतः प्रचुर पूँजीवादी देशोंके वर्गमें आ जायँगे।

(४) अवरोधित पूँजीवाद

स्पेन, पुर्तगाल, चीन, भारतवर्ष और अरब प्रदेश इस वर्गमें आते हैं जहाँ जनताका रहन-सहन अत्यन्त निम्न है, जहाँकी आर्थिक स्थिति संकटमें हैं और जहाँ बेकारीके दूर होनेमें बहुत देर है।

× × ×

वास्तवमें एक ओर अमरीका और दूसरी तरफ़ सऊदी अरब जैसे भिन्न देशोंकी विभिन्न राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओंके लिए कोई एक मापदण्ड ढूँढ़ना आसान नहीं, फिर भी यह सम्भव है कि हम साधारणतः भली प्रकार संचालित पूँजीवादी समाजकी मौलिक खूबियों और बुराइयोंको स्थापित कर सकें।

खूबियाँ

(१) लाभकी आशाके कारण अधिक-से-अधिक वस्तुओंके उत्पादन और विभाजनकी प्रेरणा रहती है।

(२) अधिक-से-अधिक वस्तुएँ और सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए काम करनेकी व्यक्तिको प्रेरणा मिलती है।

(३) व्यक्तिगत पूँजीके कानूनों द्वारा संरक्षण और उसके अपनी सन्तानोंके लिए छोड़नेकी व्यवस्थाके कारण सामाजिक शान्ति रहती है।

(४) मुनाफ़ों और छोटी बचतोंके कारण व्यक्तिकी आर्थिक स्वतन्त्रता और रहन-सहन ऊँचे हो जाते हैं जो अन्ततः उसकी उत्पादन शक्ति और योग्यताको बढ़ा देते हैं।

(५) वस्तुओंके शीघ्र विनिमयके कारण नए उद्योग खुलते हैं और उत्पादन बढ़ता है।

(६) मनुष्यके प्रत्येक कर्ममें संघर्षके कारण वस्तुओंका मूल्य घट जाता है और उनकी अच्छाई बढ़ जाती है।

बुराइयाँ

(१) सम्पत्ति एक जगह एकत्र हो जाती है—जिसके फलस्वरूप व्यापारके ऊपर एकाधिकार होने लगता है। अन्ततः इसका परिणाम होता है कि व्यक्तिगत उद्योग-संचालनकी स्वतन्त्रता और संघर्ष कम हो जाते हैं।

(२) जबतक व्यक्तिगत स्वाधीनतामें हस्तक्षेप न किया



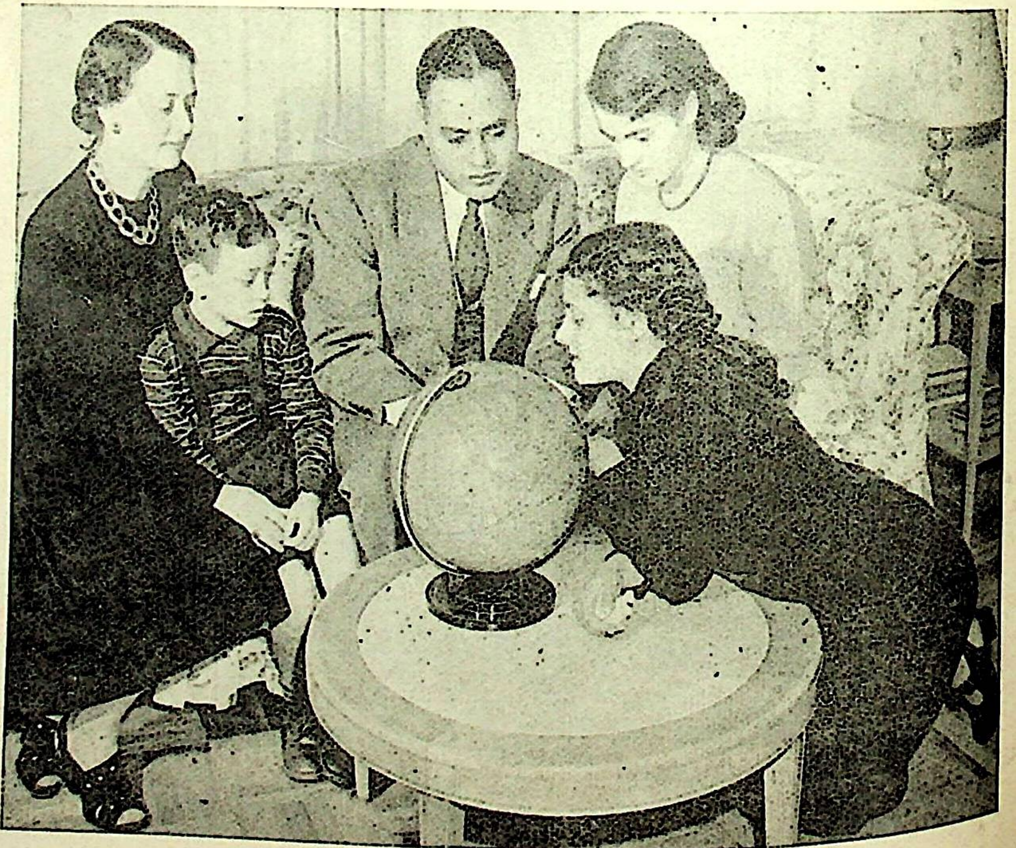
सियोल, दक्षिणी कोरियाकी राजधानी, के एक भागका दृश्य।



बारह उत्तरी अटलाण्टिक नेशंसके विदेश-मन्त्रियोंकी न्यूयार्क शहरके वाल्डोर्फ-अस्टोरिया होटलमें पाँचवीं मीटिंग।



(बाएँसे दाएँ) राबर्ट स्कूमैन (फ्रेंचके विदेश-मन्त्री), डीन एचसन (यू० एस०के सेक्रेटरी आफ स्टेट) और अर्नेस्ट बेविन
(ब्रिटिश विदेश सेक्रेटरी)



डा० राफ जे० बुंशे सपरिवार अपने लांग आइलैण्डवाले गृहमें (न्यूयार्क)।

अनेक साधनोंमें एक साधन मात्र है। अपने आपमें साक्षरता कोई शिक्षा नहीं है। इसलिए मैं तो बच्चेकी शिक्षाका आरम्भ उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर अर्थात् जिस क्षणसे उसकी शिक्षा शुरू होती है उसी क्षणसे उसे कुछ-न-कुछ नया सृजन करना सिखाकर ही करूँगा। इस तरीकेसे हरएक पाठ-शाला स्वावलम्बी बन सकती है। गांधीजीने जो विचार रखे उसके आधारपर मार्च, १९३८ में डा० जाकिर हुसेनकी अध्यक्षतामें एक कमेटी बनाई गई और उसने रिपोर्ट गांधीजीके सामने रखी। गांधीजीने रिपोर्ट पसन्द की और सन् १९३८ में जब हरिपुरा कांग्रेस हुई थी उसमें निम्न प्रस्ताव पास हुआ; (१) देशके तमाम लड़के-लड़कियोंको सात साल तक मुफ़्त और लाज़मी तालीम मिलनी चाहिए। (२) शिक्षाका माध्यम मातृभाषा होना चाहिए। (३) यह सात सालकी तालीम किसी उत्पादक हाथकी दस्तकारी द्वारा दी जाय और जहाँ तक सम्भव हो दूसरी तमाम हलचलें और काम भी इसी केन्द्रीय बिन्दुके इर्द-गिर्द चलें। यह धन्धा बच्चेकी परिस्थितिको पूरी तरह ध्यानमें रखकर ही चुना जाना चाहिए। प्रस्तावमें अखिल भारत शिक्षा-मण्डलकी स्थापनाका भी निर्णय हुआ, तदनुसार अप्रैल, १९३८ ई० में 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ'की स्थापना हुई और उसका केन्द्र सेवाग्राम रखा गया।

तालीमी संघका कार्य

हिन्दुस्तानी तालीमी संघने 'बुनियादी शिक्षा'के क्षेत्रमें बहुत ही कार्य किया है। यद्यपि उसे बहुत-सी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, फिर भी संघके सुयोग्य तथा विद्वान् मन्त्री आचार्य आर्यनायकम्‌ने 'नई तालीम' के कार्यको आगे बढ़ाया और देशवासियोंको बताया कि 'नई तालीम' द्वारा शिक्षा देनेसे बच्चे राष्ट्रोपयोगी कार्योंके लिए कितने योग्य सिद्ध होते हैं।

कार्य आगे बढ़ता गया, किन्तु सन् १९४२ से ४५ के राष्ट्रिय आन्दोलनमें, जब कि सब लोग जेलोंमें चले गये थे, बुनियादी तालीमपर भी बहुत असर पड़ा। तालीमी संघके २१ सदस्योंमेंसे १५ जेलमें थे। कई जगह बुनियादी स्कूल बन्द हो गये, फिर भी काम रुका नहीं। बिहार, उड़ीसा और कश्मीर रियासतकी सरकारें बुनियादी स्कूलोंका प्रायोगिक कार्य कराती रहीं। चन्द राष्ट्रिय संस्थायें भी अपना काम करती रहीं।

जब सब लोग जेलोंसे बाहर आये, सबका ध्यान 'नई तालीम'की महत्ताकी ओर आकर्षित हुआ और जनवरी, १९४५ में सेवाग्राममें एक राष्ट्रिय शिक्षा-सम्मेलन बुलाया गया। उसका उद्घाटन करते हुये महात्मा गांधीने कहा था कि आज तक अगरचे हमारी तालीम तो नई थी तो भी हम एक उपसागरमें रहे। खुले समुद्रसे उपसागर सुरक्षित है। हमारा कार्यक्रम बँधा हुआ था। अब हम उपसागरको छोड़कर खुले समुद्रमें फेंके जा रहे हैं। वहाँ ध्रुवतारेको छोड़कर हमारा कोई रक्षक नहीं। वह ध्रुवतारा हाथका ग्राम-उद्योग है। अब हमारा क्षेत्र—सातसे चौदह साल तकके बालक नहीं हैं, लेकिन माके पेटमें पैदा होते हैं वहाँसे लेकर मरते हैं वहाँ तक—नई तालीमका क्षेत्र है।

तालीमी संघकी एक खास बैठक फरवरी, '४६ में बुलाई गई और उसमें संघके ध्येयको नया रूप दिया गया। वह इस प्रकार है—'संघका उद्देश्य होगा शरीर-श्रम और हस्त-उद्योग-द्वारा दी जानेवाली जीवन भरकी शिक्षाका काम करना।'

इस समय सारे हिन्दुस्तानमें बुनियादी शिक्षाका कार्य प्रगतिपर है। फिलहाल ३५ ट्रेनिंग स्कूल ट्रेंड शिक्षकोंको तैयार कर रहे हैं और ३०० बेसिक स्कूल हैं जिनमें कि ट्रेंड शिक्षक कार्य कर रहे हैं और बुनियादी शिक्षाकी प्रगति बिहार, दक्षिण भारत व उत्तर प्रदेशमें हुई है। मध्यप्रान्तमें तो शुरू-शुरू में अच्छा काम हुआ, किन्तु इस समय तो मध्यप्रान्तीय सरकार न जाने क्यों इस ओर उदासीन-सी है, क्योंकि वह सेवाग्राम ट्रेनिंग कालेजमें अपने शिक्षक ट्रेनिंगके लिए नहीं भेज रही और न कुछ ठोस कार्य ही इस दिशामें वह कर रही है।

सा विद्या या विमुक्तये

संघके कार्यको आठ वर्ष बीतने पर गत वर्ष इन्हीं दिनों नई दिल्लीमें गांधीजीने कहा था कि यह उस संस्थाके लिए कोई लम्बा अर्सा नहीं है जिसका उद्देश्य राष्ट्रको नये आधार पर शिक्षा देना है। बुनियादी तालीमसे आमतौरपर यही मतलब लिया जाता है कि दस्तकारियोंके जरिये शिक्षा दी

जाय। पर यह कुछ अंशोंमें ही सही है। नई तालीमकी जड़ें इससे भी गहरी जाती हैं। उसका आधार सत्य और अहिंसा है—व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवनमें ही विद्याका अर्थ है ऐसी विद्या जो कि मुक्ति दिलवानेवाली हो। झूठ और हिंसा तो बंधनकारक है और उसका शिक्षामें कोई स्थान नहीं हो सकता। नई तालीमसे बुद्धि, शरीर और आत्मा तीनों बढ़ते हैं। दूसरी तालीमसे सिर्फ बुद्धि बढ़ती है। उसमें भी मेरा दावा है कि नई तालीममें बुद्धि शुद्ध होती है और फिर इससे उसकी तरक्की संतुलित होती है। आत्माको भी खुराक मिलती है।

तालीमी संघकी सहायक मन्त्रिणी श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम्‌ने बताया कि जब तक हम बच्चों और शिक्षकोंके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनमें परिवर्तनकर सफाई और तन्दुरुस्तीकी पक्की बुनियाद नहीं डालेंगे तब तक तालीमकी इमारत खड़ी नहीं कर सकेंगे। खासकर शिक्षकोंकी तालीममें हमने तन्दुरुस्तीकी असली और शास्त्रीय तालीमको मुख्य स्थान दिया है, क्योंकि जब तक हमारे शिक्षक शरीर और मनसे स्वस्थ नहीं होते, तन्दुरुस्तीके नियमोंको अपने जीवनमें नहीं पालते, तब तक वे भावी पीढ़ीको कैसे तैयार करेंगे? हिन्दुस्तानके बच्चोंकी सफाई, उनकी सेहत और उनकी खुराक इन तीन पहली बातोंकी जरूरत हमने बच्चोंके साथ काम करते हुए महसूस की है और इस अनुभवको हमने इस सुधरे हुए पाठ्यक्रममें शामिल किया है। इन बातोंको हम कहाँ तक अमलमें ला सकेंगे, यह हम शिक्षकोंकी ताकत और श्रद्धापर निर्भर है।

महान् प्रयोग

तालीमी संघका सेवाग्राममें महान् प्रयोग चल रहा है। लड़के अनाज पैदा करते, तरकारी पैदा करते हैं, कातनेसे लेकर बुनने तक सब क्रियायें जानते हैं और अपना कपड़ा भी बना लेते हैं। जीवनकी मुख्य दो चीज़ें हैं—भोजन और कपड़ा। अगर दोनों चीजें नई तालीम द्वारा प्राप्त होती हैं तो फिर गाँवोंमें आनन्द-ही-आनन्द है और फिर हमारे गाँव दुनियाके गाँवोंसे मुकाबला करेंगे। हिन्दुस्तानमें सब जगह ऐसी शिक्षा अगर फैल जाय तो ऊँच-नीच, ग़रीब-अमीर आदि सब भेद उड़ जायँगे, श्रमकी प्रतिष्ठा स्थापित होगी और समाजके लिये अच्छे सेवक मिलेंगे, अच्छे रक्षक मिलेंगे और हर एक गाँव स्वावलम्बी होगा।

यों तो तालीमके विविध अंगोंपर व्यापक प्रकाश डाला जाय तो उसके लिए एक दो सौ पृष्ठोंकी पुस्तक चाहिए। संक्षिप्तमें इतना कहा जा सकता है कि देशमें आज बुनियादी शिक्षाकी अत्यन्त आवश्यकता है और जो ये कालेज और हाई स्कूल हैं, इन्हें तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। अब अंग्रेज़ी की हमें जरूरत नहीं है। जरूरत है ज्ञान प्राप्त करनेकी जो कि मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा ग्रहण करनेसे प्राप्त हो ही जायगा। नई तालीम शिक्षामें एक अहिंसक क्रान्ति है।

संघके प्रमुख सदस्य

हिन्दुस्तानी तालीमी संघके सदस्योंकी कुल संख्या २४ है, जिनमेंसे मुख्य हैं सर्वश्री डा० जाकिरहुसेन (अध्यक्ष), डा० आबिद हुसेन, गोपबन्धु चौधरी, आचार्य बद्रीनाथ वर्मा, कुमारी मृदुला बेन साराभाई, बी० जी० खेर, आचार्य कृपलानी, आचार्य काकाकालेलकर, श्री कृष्णदास जाजू, कृष्णदास गांधी, नरहरिभाई पारिख, आशादेवी आर्यनायकम् (मन्त्री)। समय-समयपर यथोचित स्थानपर संघकी बैठकें हुआ करती हैं जिनमें बेसिक शिक्षाके प्रचार व प्रसारपर चर्चा होती है और गये-नये सुझाव रखे जाते हैं।

सेवाग्राममें नई तालीमका कार्य

सेवाग्राममें हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी तरफसे नई तालीम का कार्य चलता है। उसके पाँच मुख्य विभाग हैं—

(१) पूर्व बुनियादी तालीम और सयानोंकी तालीम—यह काम श्रीमती नरुलकरकी प्रत्यक्ष देख-रेखमें गाँवमें चलता है। (२) आनन्द-निकेतन—यह सात दर्जोंका पूरा बुनियादी स्कूल है। (३) उत्तर बुनियादी भवन—यह विभाग मार्च, १९४[illegible] में खोला गया है। सेवाग्राम बुनियादी स्कूलसे जो विद्यार्थी बुनियादी तालीमका काम पूरा करेंगे या बाहरकी राष्ट्रीय संस्थाओंसे जो विद्यार्थी बुनियादी तालीमके आखिरी दर्जे में पहुँचेंगे, उन्हें यहाँ आगेकी तालीम दी जाती है। (४) [illegible]

तालीम भवन—इसमें नई तालीमके शिक्षक और कार्यकर्त्ता तैयार किये जाते हैं। इसके दो मुख्य विभाग हैं (अ) राष्ट्रिय कार्यकर्त्ता और कस्तूरबा निधिकी तरफ़से भेजी हुई बहनोंका शिक्षण-केन्द्र। (आ) हिन्द सरकारके मुख्तलिफ़ सूबों और रियासतोंसे भेजे गये अध्यापकों और अफ़सरोंकी बुनियादी ट्रेनिंग स्कूलके अध्यापक और बुनियादी स्कूलोंके पारदर्शक और संगठनकी हैसियतसे तैयार करनेका शिक्षण केन्द्र।

(५) साहित्य-विभाग—इस विभागमें बुनियादी तालीमके साहित्यकी तैयारी और प्रकाशनका काम चलता है।

गांधीजीके शब्दोंमें नई तालीम कोई पेशा सिखानेके लिये नहीं है, लेकिन हाथको कला देकर मनुष्य बनानेवाली है। उन्हें जीवनका रस दिलाना है। नई तालीम अपूर्ण इंसानोंको सम्पूर्ण बनाती है।

नई तालीमका प्रचार तेज़ीसे होना चाहिए और प्रान्तीय सरकारोंको चाहिए कि वे इस कार्यमें संघकी मदद करें। आज़ाद हिन्दुस्तान 'नई तालीम'की ओर आशाभरी दृष्टिसे देख रहा है और वह दिन दूर नहीं है जब देशके गाँव-गाँवमें नई तालीमके मदरसे होंगे और हमारे बच्चे उनमें अपने ज्ञानकी वृद्धि करेंगे। देशको उन्नत पथपर ले जानेके लिये 'नई तालीम' एक निर्मल व पवित्र पथ है जिसे बापूने परिश्रमसे तैयार किया है। हम सबका यह परम कर्त्तव्य है कि हम बापूके बनाये पथपर चलें और देशकी प्रगतिमें निष्ठापूर्वक सहायक हों।

ज़मीन हमारा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राष्ट्रिय साधन—४

उत्तर प्रदेशमें ज़मीनकी कटनके कारण

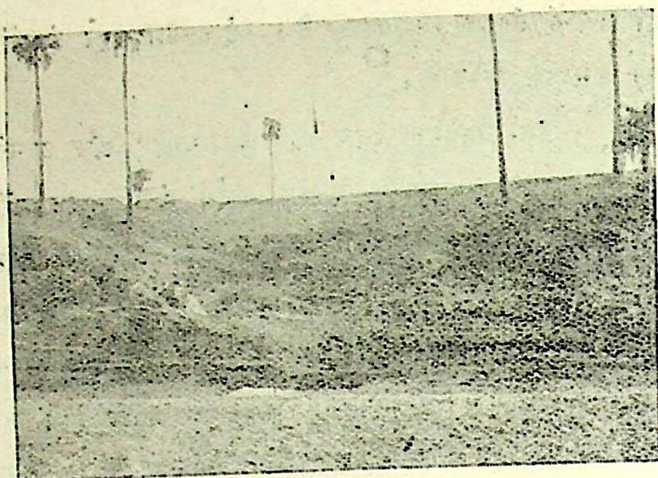
डाक्टर अज़ीज़ दूल्हाखाँ

ज़मीनकी कटन-सम्बन्धी पिछले लेखमें यह बताया गया है कि मेंह, ररक (Slope) और घास-पात ही ऐसे विशेष निर्णायक कारण हैं जो किसी क्षेत्रमें ज़मीनकी कटनके ढंग और प्रकारको निश्चित करते हैं। यह भी बताया जा चुका है कि उत्तर-प्रदेशमें मेंहके कारण ही विनाशकारी कटनको सहायता मिलती है। इस राज्यके उपजाऊ मैदानी क्षेत्र सम्पूर्ण भूमिका अस्सी फ़ी सदी है और खेती होनेवाले क्षेत्रका लगभग नब्बे फी सदी भाग दुनियाके अत्यन्त गहरे खेती होनेवाले इलाक़ोंमें से है (सम्पूर्ण भूमिका सत्तर फी सदी भाग खेतीके अन्तर्गत है)। इसलिए वह प्राकृतिक घास-पात जिसके अभावसे ज़मीनमें कटन होती है, अपेक्षाकृत बहुत थोड़ी है।

यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि यह राज्य विशाल मैदानोंका क्षेत्र है जिसमें सरल और कोमल ढलाव हैं और जो प्रति मील बारहसे साठ फ़ीट तक होते हैं। इसके होनेपर भी एक विशेष बात और है जिसने इस खूबीको पूर्णतया नष्ट कर दिया है और जिसने कटनके खतरेको बहुत ज़्यादा बढ़ा दिया है। अधिक मेंहके कारण, जो कि वर्षमें कुछ महीनोंमें ही सीमित रहता है, राज्य छोटे और बड़े नालों और पानीके मार्गोंके जालसे आच्छादित है। सम्पूर्ण राज्यमें हज़ारों ही नदियाँ, नद, नाले और स्थानीय जल-मार्ग हैं। इन अकृत्रिम जल-मार्गोंने नीचेके स्थानोंमें बाढ़के क्षेत्र बना दिए हैं और ये नीचेके स्थान प्रतिवर्ष बाढ़से पूरित हो जाते हैं जब उनकी तहमें भारी जल-वृष्टि पहुँचती है।

कृषिके फैलाव और वाटरशैडमें जंगलकी ऊपरी तहके अन्धा-धुन्ध हटा देनेसे और इन जल-मार्गोंके किनारों तक चराई करनेसे पिछले दिनोंमें पानीका बहाव बहुत बढ़ गया है। फलस्वरूप अधिक विनाशकारी बाढ़ें आती हैं और सो भी जल्दी-जल्दी।

इस बहावमें कटन जन्य सामग्रीका बोझा भी अपेक्षाकृत अधिक होता है और वह पहलेकी अपेक्षा बारीक भी नहीं होता यह सामग्री जल-मार्गकी तहमें जम जाती है जो कि इसकी धरातलको ऊँचा उठा देती है। इसका प्रभाव यह होता



चित्र नं० १

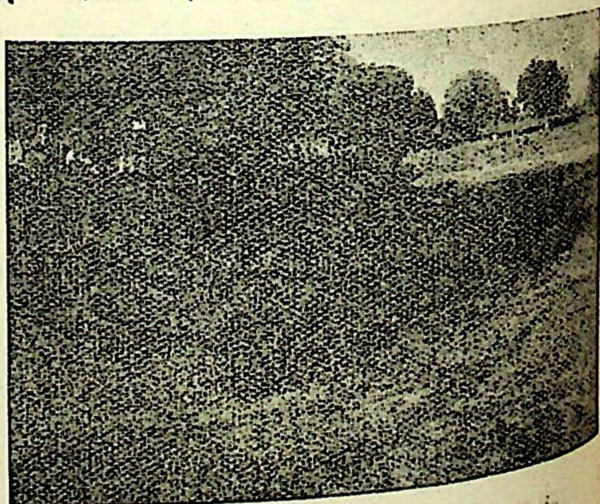
यह चित्र प्रकट करता है कि नालेके किनारे कटन शुरू होती है और वह भीतर बढ़ रही है।

है कि नदीकी धार प्रायः बदला करती है। धारके बदलनेसे किनारे कटनेकी क्रिया बढ़ जाती है और इसका नतीजा यह होता है कि हजारों एकड़ जमीन प्रति वर्ष नष्ट हो जाती है और वहाँकी सम्पूर्ण जन-संख्या प्रायः अपने घर-बारसे उखड़ जाती है।

ऊँचे स्थानोंमें नदियाँ अपना स्पष्ट मार्ग बना लेती हैं और ये ऊँचे स्थान लगातार गहरे होते जाते हैं पानीकी क्रियासे, और तब नदी शायद ही अपने किनारोंके बाहर बहती है। किनारे प्रायः बहुत ऊँचे होते हैं और इस अवस्थामें ढलाव एकदम बहुत तेज़ होते हैं बाहरी कड़ी ज़मीनसे लगाकर नदीकी धार तक।

अब अकृत्रिम ढलावके अभावके कारण पानीका बहाव बहुत तेज़ीसे होता है बिना किसी रोकके, और उसकी गति इसलिए और तेज हो जाती है और कटन प्रारम्भ हो जाती है। कटनकी प्रक्रिया ठीक किनारेसे प्रारम्भ हो जाती है। (पहला चित्र देखिए) और वह भीतर प्रवेश करने लगती है तथा वह स्थायी और समतल भूमि तक पहुँच जाती है।

कुछ दिनों पहले जिस ज़मीनको पूर्णतया सुरक्षित समझा जाता था वह आज कटनके भयंकर प्रकारका शिकार हो रही है। यह क्रिया बहुत दिनों तक चलती रहती है और उसका प्रभाव सम्पूर्ण वाटरशैडपर हो जाता है। पहले तो वहाँ खेती बन्द करनी पड़ती है और बादमें उस ज़मीनका उपयोग चराईके विनाशकारी ढंगका रूप धारण कर लेते हैं। हजारों ही गाय-बैल और बकरियाँ इस छोड़े हुए क्षेत्रपर घूमते-फिरते हैं। इस प्रकारकी चराईका नतीजा यह होता है कि उस क्षेत्रमें घास-पातकी जड़ें नहीं जम पातीं। यह परिस्थिति प्रतिवर्ष बिगड़ती चली जाती है। फलस्वरूप ज़मीनपर मीलों लम्बी नरियाँ (ravines) और नाले बन जाते हैं और उससे हज़ारों एकड़ बढ़िया ज़मीन पूर्णतया नष्ट हो जाती है। चूँकि कोई बड़ा क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें नाले और नदियाँ नहीं, सम्पूर्ण राज्यको इस बातका खतरा है कि उसमें नरियों और नालोंकी बहुतायत हो जाय। दूसरे दोष भी उपस्थित हो जाते हैं और उनका कारण यह है कि ज़मीनकी कटनके कारण विनाशकारी बाढ़ें और मरुभूमिकी स्थिति पैदा हो जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ज़मीनकी कटनके मामलेमें हमारी सर्वप्रथम और अन्तिम रक्षा-पंक्ति नदीका किनारा है, क्योंकि एक बार यदि यह पंक्ति टूट जाती है तो स्थिति भयंकर और गम्भीर हो जाती है। इस बातपर ज़ोर देना है कि प्रत्येक मानव प्रक्रियासे जिससे कि ज़मीनकी धरातलमें गड़बड़ी होती है, पास-पड़ोसकी ज़मीनमें कटनका खतरा बढ़ जाता है।



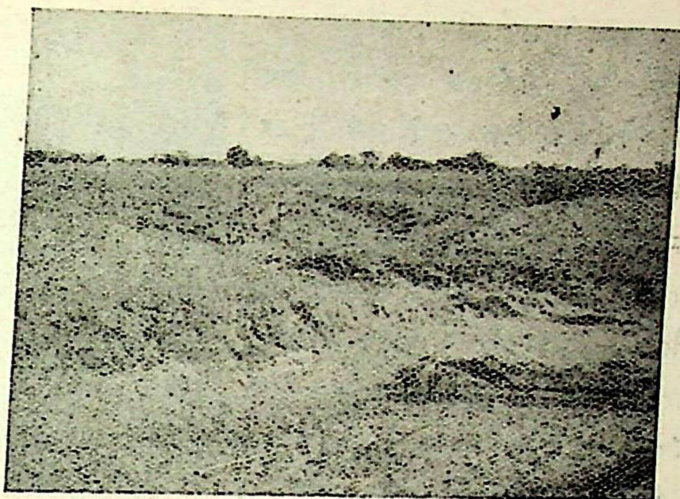
चित्र नं० २

यह चित्र प्रकट करता है कि बुरे ढंगसे इस पुलके बनानेसे कटनको कितनी प्रगति मिली है। पुल पूर्वपृष्ठमें है।

इस प्रकारकी प्रगति अनेक प्रकारकी होती है और उत्तर प्रदेशमें तो उसके विभिन्न रूप हैं और उनमेंसे प्रत्येक भूमिके बड़े भागको नष्ट करनेकी वह जिम्मेदार है। नीचे इस बातका सूक्ष्म विवरण दिया जाता है :—

सड़क, रेल, पुल और पुलियाँ

उपर्युक्त चीज़ें ज़मीनकी कटनके मुख्य कारण हैं। दुर्भाग्यसे इस देशमें, अतीतमें, इस विषयपर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसका नतीजा यह हुआ है कि कटनके कारण आस-पासकी जमीनको अपार हानि पहुँची है। राज्य-भरमें पुलों और पुलियोंके दोनों ओर कटी हुई नालियोंका दृश्य एक साधारण-सी बात है। गंगाजीपर बालावली (लक्सरके पास गंगाजीका पुल) में रेलका जो पुल है उसीके कारण क़रीबमें गहरी कटन हो गई है और वहाँपर जो स्थानीय नदियाँ बन गई हैं वे भी इसी पुलके कारण है। उन नदियोंका स्थानीय नाम खोला है। इस समस्यापर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है इसलिए इस स्थानपर बुरे ढंगसे बने हुए पुलके ढाँचेके निकट पानीके प्रभावसे वहाँकी भूमि बुरी तरह कट गई है।



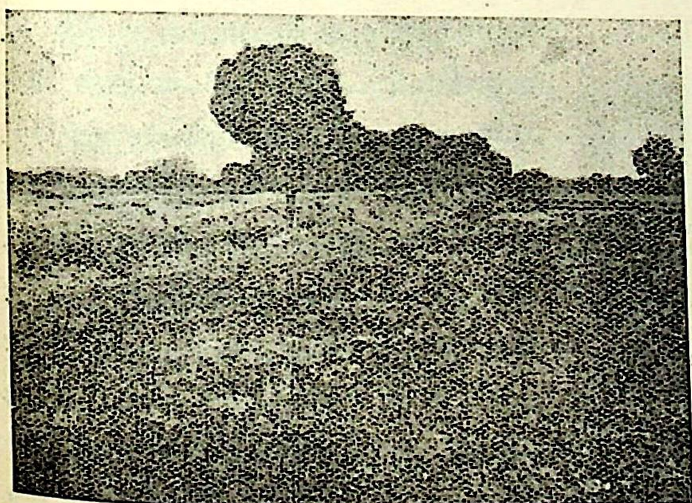
चित्र नं० ४
लापरवाहीसे छोड़े हुए नालेके किनारे कटनका मार्ग शुरू हो गया है।

सड़क सम्बन्धी गढ़े

मरम्मतके लिए अथवा निर्माणके लिए सड़कके निकट मिट्टीके लिए जो गढ़े खोदे जाते हैं वे जमीनकी कटनके लिए सम्भावित स्रोत हैं। भूमिकी अकृत्रिम धरातलमें ये गढ़े काफ़ी फ़र्क पैदा कर देते हैं और यदि उनका सम्बन्ध पानीके बहावसे हो जाता है तो उनसे जमीनको भारी क्षति पहुँचती है। तीसरा चित्र इस बातको अच्छी तरह दिखाता है कि सड़कके क़रीबके गढ़ोंसे जमीनको कितना नुक़सान पहुँचता है।

यह बात अनिवार्य कर देनी चाहिए कि सड़कके बन जानेपर ये गढ़े भर दिए जायँ ताकि वहाँका पानी कटनकी गतिसे न बहे।

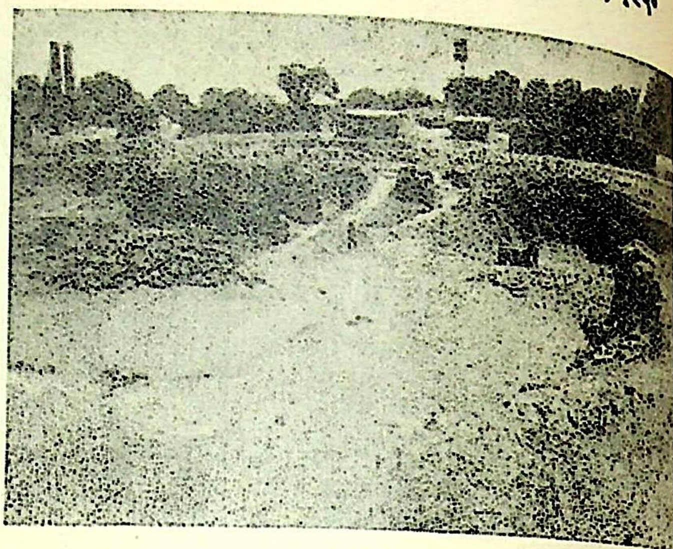
निर्माणके बाद भिन्न-भिन्न कारणोंसे जो नालियाँ बन जाती हैं उनकी उचित देखभाल नहीं होती। इनसे भयंकर कटन हो सकती है और क़रीबकी जमीनको ये काफ़ी नुक़सान पहुँचा सकती हैं। चौथे चित्रसे अच्छी तरह प्रकट होता है कि लापरवाहीसे छोड़े हुए नालेसे कितना नुक़सान होता है। कटनकी नालियाँ प्रारम्भ हो गई हैं और यह प्रक्रिया यदि नहीं रोकी गई तो अपार क्षति सम्भव है।



चित्र नं० ३
यह चित्र प्रकट करता है कि सड़कके गढ़ोंको ठीक तौरसे न भरनेसे कितनी कटन हो गई है।

बैलगाड़ीके मार्ग और पगडंडियाँ

जब गाड़ियोंके मार्ग और पगडण्डियाँ बिना सोचे-समझे ढलावके निकट बनाई जाती हैं तब उनसे प्रायः हमेशा ही बड़े खतरनाक तरीक़ेसे कटन शुरू होती है। (चित्र नं० ५ देखिए) यह हालत उस दशामें और भी लागू होती है जब ज़मीन वृष्टि और वाहन, जानवर और आदमियोंके इस्तैमालके बाद नरम होती है। इससे धरातल टूट जाती है और वहाँ एक ढलाव बन जाता है जिसमें होकर पानी बढ़ती हुई राशिमें बहता है और अन्तमें उससे एक कटनका नाला बन जाता है।

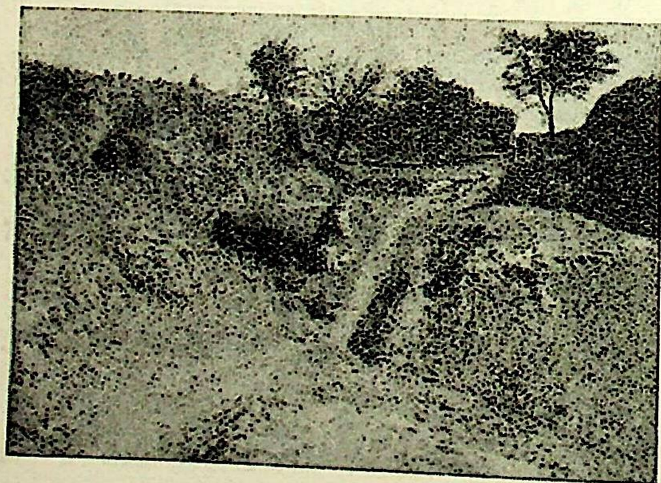


चित्र नं० ६

चित्र प्रकट करता है कि ईंटके भट्ठोंसे विनाश और कुरूपता कैसे होती है।

गाँवके तालाब (जोहड़)

मकान बनानेके लिए बिना सोचे-समझे जोहड़ोंसे मिट्टी ली जाती है और समय पाकर यह खुदा हुआ स्थान जोहड़ या तालाबका रूप धारण कर लेता है। इसकी शक्ल असम होती है और उसको ठीक हालतमें रखनेके लिए कोई खयाल नहीं किया जाता। जब गाँववालोंको मिट्टीकी ज़रूरत होती है तब खुदाई जारी रहती है, जोहड़ या पोखरकी सीमा बढ़ती रहती है और कभी-कभी तो उसका आकार बहुत बढ़ जाता है। अगर ये जोहड़ गहराईकी ओर होते हैं तो ज़मीनकी कटन सीमित रह जाती है और अगर ये ऊँची ज़मीनपर होते हैं और इनका सम्बन्ध पानीके अन्य नालोंसे होता है तो भयंकर क्षति होती है।



चित्र नं० ५

ढलावपर गाड़ीके मार्गसे ज़मीनकी क्षतिको प्रकट करता है।

ईंटके भट्ठे

देहातको कुरूप बनानेमें और ज़मीनके काटनेमें ईंटके भट्ठे भयंकर कारण हैं। राज्यके किसी भी नगरके निकट आनेपर आपको ज़मीन इन भट्ठोंसे परिपूरित मिलेगी। इनसे देहातके दृश्य तो खराब हो ही जाते हैं, काश्तकार बिना सोचे-समझे बढ़िया ज़मीनको भट्ठेके मालिकोंको ठेके पर दे देते हैं। ज़मीनकी गहरी खुदाई होती है और ईंटें बनानेके लिए मिट्टी वहाँसे हटाई जाती है। बुरी तरहसे सब ज़मीन काटी जाती है और जब भट्ठा एक जगहसे दूसरी जगह बदलता है तब ज़मीनकी कोई देखभाल नहीं होती (चित्र नं० ६)। अगर नरियाँ कुछ गहराई पर हैं तो क्षति स्थानीय होती है, लेकिन इनका सम्बन्ध यदि पानीके बहावके मार्गसे है तो अपार क्षति सम्भव है।

हम सब अपनी ज़मीनकी रक्षामें सहायक हो सकते हैं।

भारतीय चीनी उद्योग

प्राचीन गन्ना-समिति तथा वर्त्तमान भारतीय केन्द्रीय गन्ना समिति द्वारा आरम्भ किये गये अनुसन्धान-कार्यका फल निकल चुका है और उसने भारतवर्षमें गन्ना और चीनी-उद्योगका विकास करनेमें तथा उनको वर्त्तमान स्तर तक पहुँचाने में प्रशंसनीय सहायता पहुँचाई है। गन्ना और उससे तैयार होनेवाली वस्तुओंके कृषि-सम्बन्धी तथा औद्योगिक कला सम्बन्धी विषयोंके सम्बन्धमें जो सैद्धान्तिक तथा प्रयोगात्मक दोनों प्रकारका अनुसन्धान-कार्य किया गया है उसने इस उद्योगका विकास करने तथा भारतवर्षको विश्वमें गन्ना उगानेवाले देशोंमें सबसे बड़ा बनानेमें वास्तवमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इस अनुसन्धान-कार्यके महत्त्व तथा उपयोगिताका और साधारण किसान तक इसके पहुँचनेका इससे अच्छा तथा विश्वसनीय और क्या प्रमाण हो सकता है कि आज भारतवर्षमें गन्ना उगानेवाली कुल भूमिमें से लगभग ८५ प्रतिशत भूमिपर गन्नेकी कोयम्बटूर जातियाँ उगाई जाती हैं और यही नहीं बल्कि आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका आदि अनेक अन्य देशोंमें भी ये जातियाँ पैदा की जाने लगी हैं। चीनी उद्योग-कलाके सम्बन्धमें किये गये अनुसन्धान-कार्योंके परिणामों को चीनी-उद्योगमें काममें लानेसे अनेकों महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन पैदा हो गये हैं। इस सम्बन्धमें अभी हालमें जो परिवर्तन हुए हैं, उनकी १९३१-३२ और १९४५-४६ के वर्षोंके लिए नीचे दिये गए अंकोंसे तुलना करके परीक्षा की जा सकती है :

	१९३१—३२	१९४५—४६
१. गन्नेके अन्तर्गत चेत्र (लाख एकड़ों में)	२६·७२	३८·४७
२. उन्नत गन्नेकी जातियों के अन्तर्गत क्षेत्र (लाख एकड़ों में)	११·६८	३५·४६
३. उन्नत जातिके गन्नोंके अन्तर्गत क्षेत्र का प्रतिशतत्व	३६·३०	८३·१०
४. प्रति एकड़ गन्नेकी प्राप्तिका औसत (टनोंमें)	१४·१०	१४·००+
५. काममें लाए गए गन्नेका प्रतिशतत्व		
(अ) सफेद चीनी तैयार करने के लिए	६·५०	२५·००
(आ) गुड़ बनानेके लिए	६४·७०	५२·००
६. कारखानोंसे चीनीका कुल उत्पादन (हजार टनों में)	१५८	६४४X
७. सफेद चीनी का उपभोग (हजार टनोंमें)	६८२	१०४५
८. कुल आयात (हजार टनोंमें)	५३६	शून्य
९. चीनीकी औसत प्राप्ति		
(अ) कुल भारतवर्षमें (प्रतिशत)	८·८६	१०·०९
(आ) संयुक्त प्रान्तमें (प्रतिशत)	८·५६	१०·०९
(इ.) विहारमें (प्रतिशत)	६·०६	१०·४९
१०. चीनीके चालू कारखानोंकी संख्या	३१	१४५

+१९२५-२६ से लेकर १९३०-३१ तक गन्ने की उपज प्रति एकड़ ११·६ टन और १२·३ टन के बीच में रही। १९३१-३२ में यह बढ़कर १४·१ टन तक पहुँच गई। १९३३-३४ से लेकर १९४१-४२ तक

औसत उपज १५·० से १५·६ टन तक रही ; परन्तु १९४५-४६ में उस वर्ष मौसम खराब होने से उपज घटकर १४·० टन प्रति एकड़ रह गई।

×१९३९-४० में चीनीका सबसे अधिक उत्पादन १२,४२,०० टन था।

यद्यपि ऊपर बताए गए अधिकांश विषयोंमें पर्याप्त उन्नति हुई, फिर भी दुर्भाग्यवश गत १५ वर्षोंमें गन्नेकी प्रति एकड़ पैदावारका औसत १४ और १५ टनके बीचमें स्थिर ही रहा। गन्नेकी खेतीके क्षेत्रमें और अधिक ध्यानपूर्वक गम्भीर अनुसंधान-कार्य करनेकी आवश्यकता है।

नवम्बर १९४४ में भारतीय केन्द्रीय गन्ना-समितिका निर्माण किया गया। उस समयसे लेकर मार्च १९४८ के अन्त तक भारतीय केन्द्रीय गन्ना-समितिने गन्नेकी खेती तथा विकास सम्बन्धी विषयोंपर अनुसंधान-कार्य करने तथा गन्ना-उद्योग कलाकी उलझी हुई समस्याओंको हल करने और उद्योग कलाके लिये आवश्यक अधिकारियोंकी शिक्षाके ऊपर निम्नलिखित खर्च किया है :

	रुपया
गन्ना-अनुसंधान-योजनाओंके लिए	९,७८,५१०
गन्ना-विकास-योजनाओंके लिए	४,३६,८४१
औद्योगिक कला सम्बन्धी अनुसंधान-योजनाओंके लिये	१,५६,०७६
इंडिया इंस्टीट्यूट आफ शुगर टैक्नालौजीके खर्चके लिए	१३,४७,८६७

अब तक हमें जो कुछ भी सफलताएँ प्राप्त हुई हैं उनपर हमें गर्व है। लेकिन इसके साथ-साथ हम इस तथ्यको भी भलीभाँति जानते हैं कि अभी हमें अपने देशको चीनीकी दृष्टिसे आत्मभरित बनानेके लिये बहुत कुछ करना है। यद्यपि भारतवर्ष गन्नेका मौलिक घर है तो भी यह आश्चर्यकी बात है कि चीनी-उद्योगको १९३१-३२ में सरकार द्वारा राजकर-संरक्षण देनेसे पहले भारतवर्षको अपनी चीनी-सम्बन्धी आवश्यकताओंके लिए पूर्णतः जावा तथा अन्य देशोंपर निर्भर रहना पड़ता था। यह संरक्षण अब भी चल रहा है और भारतीय टैरिफबोर्ड आजकल इस बातकी और कर रहा है कि क्या इस उद्योगको अब भी चुंगी-संरक्षणकी आवश्यकता है?

गत अधिवेशनमें भारतीय केन्द्रीय गन्ना-समितिने इस बातकी सिफारिश की कि यह कर-सम्बन्धी-संरक्षण कम-से-कम एक वर्ष तक और भी चलना चाहिए। इस सम्बन्धमें जो दीर्घकालीन नीति काममें लाई जानी चाहिए उसपर तद्विषयक उपसमितिने ८ फरवरी, १९४९ को वाद-विवाद किया और अब उसकी रिपोर्ट आपके सामने विचारार्थ मौजूद है। हम सभी इस तथ्यको भलीभाँति जानते हैं कि हमारे यहाँ चीनीका भाव संसारके वर्तमान भावसे लगभग दूना है और जबतक भारतवर्षमें चीनीका भाव नहीं गिरता और वह घटकर विश्वमें चल रहे भावोंकी समानतामें नहीं आता, तबतक हम इस क्षेत्रमें विदेशोंकी प्रतिद्वन्द्विताका सामना नहीं कर सकते। यह केवल उसी समय सम्भव हो सकता है जब हम चीनीको विशाल मात्रामें तैयार करें और प्रति एकड़ गन्नेकी पैदावार बढ़ायें। गन्नेकी पैदावारको बढ़ानेका मुख्य उपाय यह है कि उत्तम श्रेणीकी, रोग तथा व्याधियोंको सहनकर सकनेवाली गन्नेकी जातियाँ किसानोंको दी जायँ, उनको खाद पर्याप्त मात्रामें दिया जाय और सिंचाईका उत्तम प्रबन्ध किया जाय ताकि वे इस कार्यके लिये आवश्यक गन्नेकी भारी माँगको पूरा कर सकें। इस समय हमने बहुमूल्य गन्नों-सम्बन्धी सामग्रीके कुछ अप्रत्यक्ष गुणोंको उत्पन्न किया है। उनको विकसित करने और उनसे पूरा-पूरा लाभ उठानेका केवल यही उपाय है कि गन्नेकी खेती विस्तृत विधियोंकी अपेक्षा गहरी विधियोंसे की जाय। यदि पंचवर्षीय विकास-योजनाओंके लिए इस समिति द्वारा तैयार किये गये कार्यक्रमको उन प्रान्तीय सरकारों द्वारा जिन्होंने इन योजनाओंको कार्यरूप देनेका काम अपने हाथमें लिया है, भलीभाँति और नियमपूर्वक चलाया जायगा तो यह आशा की जाती है कि प्रति एकड़ गन्नेकी पैदावार तथा चीनीकी प्राप्ति बहुत अधिक बढ़ जायगी। १६ लाख टन चीनी तैयार करनेका हमारा लक्ष्य है, वह भी पाँच वर्षोंके अन्तमें पूरा हो जायगा। यदि इस उद्देश्यमें सफलता मिल जाती है तो या

भी आशा की जाती है कि इस समय जो बड़े-बड़े क्षेत्र गन्नेकी खेतीमें घिरे हुए हैं वे आगे चलकर खाद्यान्नों तथा अन्य प्रकार की आवश्यक फसलोंके लिये, जिनकी आजकल बड़ी भारी कमी है, खाली हो जायँगे। यदि प्रत्येक कार्य अनुकूल विधिसे ठीक-ठीक होता रहा तो यह अनुमान किया जा सकता है कि आनेवाले दस वर्षोंमें एक समय ऐसा आयगा जब कि आजकल गन्नेके काममें लाई जानेवाली धरतीमें से ५० प्रतिशत अन्य आवश्यक फसलोंको उगानेके लिये काममें लाई जाने लगेगी और साथ-साथ गन्नेके उत्पादन तथा देशकी चीनीकी पैदावार पर भी किसी प्रकारका बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। हमें इस लक्ष्य तक पहुँचनेके लिये किसानों, औद्योगिकों, व्यापारियोंके सम्मिलित प्रयत्नों, तथा उपभोक्ताओंके पूर्ण सहयोग और वैज्ञानिकों तथा औद्योगिक-कलाविज्ञोंके पथप्रदर्शन एवं सहायताकी पूरी-पूरी आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि गन्ना-उद्योगसे सम्बन्धित सभी व्यक्ति अपनी निजी भलाइयों और स्वार्थोंके मुकाबिलेमें राष्ट्रिय हितपर विचार करनेमें किसी प्रकारकी हिचकिचाहट नहीं करेंगे।

गन्ना-अनुसंधान-कार्यको और भी अधिक तीव्र बनानेके लिए तथा किसानोंको अधिक-से-अधिक बीज-सामग्री और उचित वैज्ञानिक सलाह देनेके लिए इस समितिने यह प्रस्ताव किया कि प्रत्येक गन्ना-अनुसंधान स्टेशनके अन्तर्गत जो क्षेत्र-फल है उसे बढ़ाकर कम-से-कम २०० एकड़ कर दिया जाय जिसमें से लगभग ७५ एकड़पर प्रतिवर्ष गन्नेकी खेती-सम्बन्धी परीक्षण किये जायँ। जो कुछ भी हो, कुछ प्रान्तीय सरकारोंने इस स्टेशनोंके लिए और अधिक भूमि प्राप्त करने तथा बड़े-बड़े फार्म बनानेके सम्बन्धमें अपनी कठिनाइयाँ तथा बाधाएँ बताई हैं। इसलिए इस स्थितिपर आपकी तद्विषयक परामर्शदात्री उपसमितिको फिरसे जाँच-पड़ताल करनी पड़ी। उसकी रिपोर्ट भी आपके हाथोंमें आज विचारार्थ मौजूद है।

आपको यह सुनकर दुःख होगा कि शूगरकेन ब्रीडिंग स्टेशन कोयम्बटूरका नियन्त्रण आपके हाथोंमें सौंपनेकी आपकी सिफारिशोंके बावजूद भी भारत सरकारने अभी हालमें यह निर्णय किया है कि ऐसा करना आवश्यक नहीं है और नियन्त्रणको वापस करनेके कामको रोककर सरकार चाहती है कि कोयम्बटूरकी प्रगतिके लिए जो कुछ भी आवश्यक उपाय किये जाने हैं उन्हें भारतीय कृषि-अनुसंधान-संस्था और आपकी समिति दोनों मिलकर करें। यह विषय विचार करनेके लिए फिर आप लोगोंके सामने आयगा।

लखनऊ इंस्टीट्यूटकी स्थापनाके सम्बन्धमें अनुमान लगाने तथा योजनाओंकी रूपरेखा तैयार करनेके लिए आवश्यक सामग्री एकत्र करनेके लिए बाहर विदेशोंमें एक मिशन भेजनेके सम्बन्धमें भारत सरकारने यह इच्छा प्रकट की है कि यह प्रश्न इण्डियन इंस्टीट्यूट आफ शूगर टैक्नालौजीकी स्थापना और उसके लिए स्थायी डाइरेक्टरकी नियुक्ति हो जानेके पश्चात् उपस्थित किया जा सकता है। फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशनने डाइरेक्टरका चुनाव करनेके लिए १ मार्च नियुक्त की है।

अभी हालमें उत्तर प्रदेशीय सरकार अपनी माद्रक डेयरी फार्मकी इमारतोंको समिति द्वारा रखी गई शर्तोंपर १ मई, १९४९ से समितिको देनेके लिए राजी हो गई है।

इस समितिकी भविष्यकी अर्थ-व्यवस्थाके बारेमें गत बैठकमें विचार किया गया था और माननीय कृषि-मन्त्रीने दृढ़ विश्वास दिलाया था कि वे स्वयं समितिके लिए उसकी वैकासिक कार्यवाहियोंके लिए आर्थिक व्यवस्था करनेके लिए और उसकी आर्थिक दशा दृढ़ और स्थायी करनेके लिए भर-सक प्रयत्न करेंगे ताकि समिति चीनी तथा अन्य खाद्य-पदार्थोंके सम्बन्धमें देशको आत्मभरित बनानेके लिए योजना बनानेमें समर्थ हो सके। जो कुछ भी हो भारत सरकारने अभी इस सम्बन्धमें कोई भी निर्णय नहीं किया है कि मौजूदा तथा आगे आनेवाले आर्थिक वर्षोंमें हमें किस आधारपर वार्षिक सहायता दी जाया करेगी। भारत सरकारकी ओरसे इस प्रकारकी देरी होना समितिके लिए अत्यन्त चिन्ता तथा अनिश्चयताका विषय है।

जिन बातोंपर आज हमें वाद-विवाद करना है उनका इस समय मैं संक्षेपमें वर्णन नहीं कर सकता। जैसे-जैसे वे कार्यावलीमें आती रहेंगी उनका वैसे-वैसे क्रमानुसार एक-एक करके विवरण दिया जा सकता है। गत बैठकमें आपके द्वारा

किये गये निर्णयके अनुसार किये गये कार्योंके वितरणके सम्बन्धमें बादमें वाद-विवाद किया जायगा। विभिन्न स्थायी उपसमितियों, एक स्थायी तथ्य अन्वेषक समिति तथा एक छोटी-सी विकास समितिकी स्थापनाके सम्बन्धमें विचार किया जायगा। १९४९-५० के आर्थिक वर्षके लिए उपप्रधानका चुनाव भी करना है।

समितिके कार्यों तथा उसके कार्य क्षेत्रमें वृद्धि हो जानेसे उसके प्रधान कार्यालय तथा इण्डियन इंस्टीट्यूट आफ शूगर टैक्नौलाजीका काम भी पर्याप्त रूपसे अधिक हो गया है। समितिके सेक्रेटरी तथा प्रधान कार्यालयके कार्यकर्ताओंने, ... इंडियन इंस्टीट्यूट आफ शूगर टैक्नोलाजी, कानपुरके ... क्टर तथा उनके कर्मचारियोंने जिस सन्तोषप्रद रीतिसे ... कर्त्तव्यका पालन किया वह प्रशंसनीय तथा ... नीय है।

* भारतीय केन्द्रीय गन्ना समितिके १२ फरवरी, १९४९ ... बालचन्दनगरमें होनेवाले ग्यारहवें अधिवेशनमें भारतीय केन्द्रीय गन्ना समितिके अध्यक्ष सरदार दातारसिंह ... दिया हुआ भाषण।

शरत् बाबू और भारतीय एकता

महामहिम डा० कैलासनाथ काटजू

इस लेखको मैं एक व्यक्तिगत बातसे प्रारम्भ करनेकी आज्ञा चाहता हूँ। गत १९४० तक मेरे अवकाशका अधिकांश समय कांग्रेसके रचनात्मक प्रोग्रामसे सम्बन्धित बाहरके कार्यक्रममें ही लगा रहता था। और नाममात्रके लिए ही मैं पढ़ता था और जो कुछ मेरी पढ़ाई होती थी वह प्रायः अंग्रेजी भाषामें लिखी पुस्तकोंकी होती थी। मेरा हिन्दीका परिचय तक भी यथेष्ट न था और बंगला भाषाके विषयमें तो मैं पूर्णतया अनभिज्ञ था। १९४१ में जब मैं जेलमें था तब केवल एक घटनाके कारण ही शरत् बाबूकी कहानियोंमेंसे एकका हिन्दी रूपान्तर पढ़नेको मिला। उसने मेरे सामने एक नई दुनियाका दृश्य ही उपस्थित कर दिया। यदि मैं यह कहूँ कि मैं उससे मन्त्रमुग्ध हो गया तो वह एक निराशाजनक तथा नाकाफ़ी बयान होगा। लेखकने मेरे ऊपर जादू-सा कर दिया और मैं उसकी पकड़में आ गया। मैं उनके सृजनकी दुनियामें रहने लगा—उस दुनियामें जिसकी कि रचना उनकी कल्पना-शक्ति और दूरदर्शिताने उनके रचे हुए स्त्री और पुरुषोंकी की थी। मैंने जाँच-पड़ताल की और उनके सम्पूर्ण ग्रन्थोंका हिन्दी-अनुवाद प्राप्त कर लिया। ये अनुवादित ग्रन्थ वास्तवमें बहुत सुन्दर हैं। मुझे बताया गया है कि बंगलामें हिन्दीका रूप धारण करनेकी गजबकी शक्ति है। इसमें ऐसा होना ही चाहिए। अस्तु, मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि शरत् बाबूके बंगलाके मूल ग्रन्थ बड़े गजबके होंगे, पर मैं यह कहता हूँ कि उन ग्रन्थोंके हिन्दी-अनुवाद भी शरत् बाबूकी कलाके लिए उपयुक्त माध्यम हैं, और इन पुस्तकोंने—बड़ी कहानियों और छोटी कहानियोंने—जेलमें मेरे जीवनको पूरित किया और मेरे लिए वे एक आशीर्वाद और एक महान् वरदान साबित हुईं। माह व्यतीत हुए और ऐसा प्रतीत होता था मानो मैं पंख लगाए उड़ रहा हूँ। मैं भूल गया कि मैं जेलमें हूँ। मैं अपने आसपासके वातावरणको भूल गया, मानो किसी जादूसे शरच्चन्द्रने मुझे कलकत्तेकी गलियोंमें पहुँचा दिया हो और यह कहना तो और भी ठीक होगा कि उन्होंने बंगालके गाँवोंमें मुझे पहुँचा दिया। इन कहानियोंके पढ़नेसे पूर्व मेरा परिचय बंगालसे मेरे सूक्ष्म और यदा-कदा होनेवाली कलकत्ता-सम्बन्धी यात्राओं तक ही सीमित था और ये यात्राएँ विशेषकर मुझे आने-जानेमें ही हुआ करती थीं। बंगालके देहातके सम्बन्धमें मैं कुछ भी नहीं जानता था। मैं उसके सौन्दर्य, आकर्षण, कोमलता और सौजन्यको जाननेके लिए पूर्णतया अनजान ही था। शरच्चन्द्र मेरे पथ-प्रदर्शक बन गए और अब कि ...

शरीर जेलकी चहारदीवारीमें बन्द था, मेरी भावनाएँ शरत् बाबूकी देख-रेखमें बंगालके गाँवोंकी सघन गलियों, मुस्कराते हुए खेतों, तालाबों और खलियानोंमें बिचरती थीं। उस समय मेरे ऊपर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि जब भाग्य-चक्रने मुझे अपने घुमावमें दो वर्ष पूर्व यहाँ ला बिठाया और जब मैंने बंगालके गाँवोंको देखना प्रारम्भ किया तब मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मानो मैं अपने पुराने चिर-परिचित दृश्योंको ही देख रहा हूँ।

और कहानियोंमें वर्णित लोगोंके बारेमें मैं क्या कहूँ जिनसे कि मैंने तब परिचय प्राप्त किया था और जो परिचय अब, जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, जीवन-पर्यन्त एक मधुर मैत्रीके रूपमें परिपक्व हो गया है। उनमें से कुछ तो मेरे अस्तित्वका अंग बन गए हैं। शरत् बाबू किस कोटिके साहित्यकार थे! मनोविकारोंके चित्रणमें उनकी गजबकी दूर-दर्शिता थी और वे लकीरके फ़क़ीर न थे और परम्पराओंको उन्होंने किस तरह भंग किया था! बादमें मुझे यह जानकर आश्चर्य नहीं हुआ कि जब उन्होंने ख्याति प्राप्त कर ली थी तब बंगालकी महिलाओंने उन्हें एक अभिनन्दन पत्र भेंट किया, जिसमें उन्होंने इस बातके लिए कृतज्ञता प्रकट की कि शरत् बाबूने महिलाओंके जीवनको सुन्दरतम बनाने और वास्तवमें स्त्रीत्वको ऊपर उठानेमें उन्होंने बहुत कुछ किया और बड़ी चतुराईसे स्त्रियोंके दैवी रूपोंका निरूपण किया, जो कि स्त्रीत्वका एक अंग है। इसमें सन्देह नहीं कि शरच्चन्द्रने अपनी पैनी प्रखरतासे पुरुषोंका भी चित्रण किया है। श्रीकान्त, देवदास, पण्डित महाशय, चरित्रहीनमें सतीश और पथेरदावीमें सव्यसाची और बहुत-से अनेक पात्र—वे सभी तो न भुलाए जानेवाले हैं। पर मैं ख़याल करता हूँ कि शरच्चन्द्र अपनी चरित्र नायिकाओंमें बहुत बढ़-चढ़ कर हैं और अपनी आँखोंके सामने वे एकके बाद दूसरी एक समूहमें गुजरती हैं। 'दीदी' और 'अभय' शेष प्रश्नकी 'कमला', चरित्रहीनमें 'सावित्री' और 'कमल-लता' और अतुलनीय 'राजलक्ष्मी' और अन्य बहुत-सी चरित्र नायिकाएँ हैं, जिनका यहाँ उल्लेख नहीं किया जा सकता। उनमें से किसी एकका चुनाव करना बड़ा कठिन है। अपने ढंगकी प्रत्येक ही निराली है। उनमें से कौन सबसे अच्छी और कौन सर्वाधिक आकर्षक है, इस बातका निर्णय प्रत्येक व्यक्तिको स्वयं करना होगा। इसका निर्णय प्रत्येक व्यक्तिके स्वभावपर अवलम्बित रहेगा। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैंने तो १९४१ में श्रीकान्तकी राजलक्ष्मीको उसी क्षण अपना हृदय समर्पित कर दिया जब मैं उससे मिला। यह मामला प्रथम दर्शनमें ही प्रेमका मामला था। दस साल बीत गए हैं किन्तु राजलक्ष्मी अब भी मुझे अपना कैदी बनाए है।

पिछले दिनों कलकत्तेमें शरच्चन्द्रका जन्म-दिवस मनाया गया और मुझे इस बातका गौरव प्राप्त हुआ कि मैं उनकी स्मृति और कलाके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करूँ। तब मुझे ऐसा भान हुआ कि बंगालमें हमारे लिए यह बड़ी गलत बात होगी कि शरच्चन्द्रको केवल अपना ही समझें। अतीतके हमारे महान् राष्ट्रिय कवियोंके समान वास्तवमें वे सूबोंकी सीमाओंसे ऊपर उठ गए थे। शरच्चन्द्र एक राष्ट्रिय निधि हैं। वे सम्पूर्ण भारतवर्षके हैं। यह केवल एक घटनाकी बात है कि उन्होंने बंगला भाषा-भाषी हिन्दू माता-पिताके घर जन्म लिया। वास्तवमें उनका जन्म तो बिहारमें हुआ था और अपने जीवनके बहुत-से वर्ष उन्होंने बर्मामें बिताए थे। निःसन्देह यह बात ठीक है कि अनेक अन्य विश्व-विख्यात लेखकोंके समान उन्होंने अपने निजी वातावरण और अड़ोस-पड़ोसके परिचित वातावरण पर ही नैसर्गिक रूपसे और बड़ी तबियतसे लिखा है और उन्होंने बंगालसे, जिसमें कि वे रहते थे, प्रेरणा ग्रहण की है। पर अपनी लेखनीसे जिन स्त्री-पुरुषोंकी सृष्टि की है, वे भारतीय हैं और उनमें वे ही गुण हैं जिससे हम सब परिचित हैं। इसलिए बंगालमें यदि कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे उनके प्रभावकी परिधिको सीमित करना चाहे तो उसके लिए यह बड़ी गलत बात होगी। हमें उनसे अपनी एकाधिकार सत्ता उठा लेनी चाहिए और उनको सम्पूर्ण भारतीय लोगोंके सुपुर्द कर देना चाहिए। भारतवर्ष आज और भविष्यमें हमारे स्नेहका केन्द्र है और रहेगा, वह हमारी आशाओं और आकांक्षाओंका ध्येय भी रहेगा। इस महान्

देशको हमें एक ठोस, सम्पूर्ण देशमें सुदृढ़ करना है और इस उद्देश्यके लिए हमें सम्पूर्ण उपलब्ध साधनोंसे लाभ उठाना है। इन कठिनाईके दिनोंमें एकता ही इस समयकी माँग है। वास्तवमें, इतने विशाल देशमें जिसमें ३५ करोड़ लोग बसते हों, विभिन्न जलवायुकी दशामें जहाँ खाने-पीनेके तरीके भी इतने भिन्न हों और जहाँपर रीति-रिवाज और स्थानीय रस्में भी विभिन्न हों वहाँपर व्यवहारकी विभिन्नताएँ अवश्यम्भावी हैं। पर हमारी प्राचीन संस्कृति मुख्य रूपसे हम सबमें रमनेवाली एकताका वरदान प्रदान करती है। हमारे राष्ट्रिय जीवनमें हमारे प्राचीन साहित्य और सांस्कृतिक परम्पराएँ एकसूत्रमें बाँधनेके लिए अब तक महान् कारण हुई हैं। बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि वे अब तक सजीव कारण हैं। फिर भी हमें इनमें योग-दान देना है।

राजनीतिक दृष्टिकोणसे इस बातको यदि हम देखें तो हम बड़भागी हैं। भारतवर्ष आजाद हो गया है। इस दृष्टिसे मैं पाकिस्तानको भी भारतवर्षमें शामिल करता हूँ। १९४७ से पूर्व हम सब भारतीय लोग थे और हम सब विदेशी शासनके समान रूपसे अधीन थे। निःसन्देह देशका विभाजन हो गया है, पर एक बड़े सन्तोषकी बात यह है कि हिन्दुस्तानी लोग, चाहे वे पाकिस्तानमें रहें या भारतमें, विदेशी जूआ फेंकनेमें सफल हुए हैं। भारतवर्षमें गत तीन वर्षोंमें हमने बड़ी उन्नति की है। तथाकथित सैकड़ों भारतीय राज्योंके अन्तर्धान होनेसे सम्पूर्ण देश एक बड़ी इकाईमें समन्वित हो गया है। लोगोंने एक विधान बना लिया है जिसके लिए संसारका कोई भी राष्ट्र गर्व कर सकता है। इसमें राजनीतिक और शासन-सम्बन्धी ऐक्य निहित है और बिना किसी प्रकारके भेद-भावके वह सम्पूर्ण नागरिकोंको समान अधिकार और समान अवसर गारण्टी करता है। हमें केन्द्रीय सरकारका आशीर्वाद प्राप्त है और हमारी केन्द्रीय सरकार सब लोगोंकी इच्छित भक्तिपर आधारित है। वर्त्तमान पुनर्जीवित विशाल भारतकी एकताका आधार सचाईसे रखा गया है और उसका ढाँचा इस्पात और लोहेसे जोड़ दिया गया है। अब यह देश-वासियोंका काम है कि वे इस ढाँचेको एक आकर्षक महलमें परिवर्तित करें—एक ऐसे सजीव रचनाके रूपमें जो प्राणवान् हो और जिसमें इतनी शक्ति हो कि वह बाह्य और आन्तरिक धक्कोंके सहनेकी क्षमता रखता हो। इसके लिए इस बातकी आवश्यकता है कि देशवासियोंमें अपनी एकताके विषयमें एक सजीव तथा प्राण-स्पर्शी विश्वास हो। हमें केवल भारतीय राष्ट्रकी ही चर्चा नहीं करनी चाहिए। अपने दैनिक जीवनमें और अपने अन्तस्तलमें हमें गहराईसे महसूस करना चाहिए कि हम किस प्रकारके हैं और इस भावनाको हम दृढ़ और पुष्ट एक समान संस्कृति, एक समान साहित्य और जीवनके समान ढंगके निर्माणसे ही कर सकते हैं। स्पष्ट है कि राष्ट्रिय एकता, एकपनकी इस भावनाके लिए राष्ट्रभाषाका होना अत्यन्त आवश्यक है। भारतका विधान इस मामलेमें बड़ी बुद्धिमत्तासे हमारा सहायक हुआ है। मुझे आशा है कि कुछ ही वर्षोंमें भारतीय लोग अपनी राष्ट्रभाषाके लिए बड़ी लगनसे तल्लीन हो जायँगे। लेकिन हमारे विशाल क्षेत्रोंकी दृष्टिसे, हमारी संख्या और आकारकी दृष्टिसे यह आशा करना फ़जूल है कि राष्ट्र-भाषा भारतके विभिन्न भागोंमें लोगोंके गार्हस्थ्य जीवनमें विचारोंके आदान-प्रदानका माध्यम कभी बनेगी। राष्ट्रभाषाकी अभिलाषाके साथ-साथ एक भक्तिकी लगन भारतके विभिन्न क्षेत्रोंके लोगोंमें पैदा होगी कि वे अपने क्षेत्रकी भाषाओंके भक्त बनें। यह क्षेत्रकी भाषाएँ केवल बोली जानेवाली भाषाएँ ही नहीं हैं, उन्हें प्राचीन इतिहासकी महत्ताका अधिकार प्राप्त है और शक्ति और माधुर्यमें वे प्रतिदिन बढ़ रही हैं। उनमें लोच है और वे प्रौढ़ हैं। अपने निजी क्षेत्रोंमें स्कूलों और कालेजोंमें वे शिक्षाका माध्यम रहेंगी। अदालतोंमें और शासन-सम्बन्धी विभागोंमें वे व्यवहृत होंगी और प्लेटफार्म, रेडियो, समाचार-पत्रोंमें उनका प्राधान्य होगा। और यह बात बिल्कुल ठीक है कि बहुतसे क्षेत्रोंमें क्षेत्रज भाषाएँ प्रतिभाशाली और योग्य लेखकोंको भी अपेक्षाकृत बढ़ायँगी। बुद्धिमत्ता और विवेकका तकाजा है कि समुचित प्रयास इस बातका किया जाय कि भारतमें एक महान् और आधुनिक साहित्यका जन्म और विकास हो। और उसको हमें बढ़ाना चाहिए, जिससे कि हमारे

कवि, नाटककार, प्रबन्धकार, साहित्यसेवी, दार्शनिक और चिन्तक जो भारतके किसी भी भागमें जो पैदा हों और किसी क्षेत्रज भाषामें लिखें वे राष्ट्रिय निधि और अधिकार समझे जायँ। यह काम केवल इस बातसे नहीं हो सकता कि उनके ग्रन्थोंका अनुवाद केवल राष्ट्रभाषामें कर दिया जाय। ऐसा करनेसे भारतके साधारण लोगोंके हृदय तक पहुँच नहीं होगी। जनसमूह तक पहुँच और उनका उत्थान उनकी क्षेत्रज भाषाओं द्वारा ही हो सकता है। सम्पूर्ण महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका अनुवाद राष्ट्रभाषामें करनेके लिए एक संगठित तथा सुव्यवस्थित ढंग होना चाहिए और साथ ही उन ग्रन्थोंका अनुवाद सभी क्षेत्रज भाषाओंमें भी होना चाहिए। उदाहरणके लिए अगर हम चाहते हैं कि शरच्चन्द्रकी भारतके महापुरुषोंमें गणना की जाय और विश्वके बड़े उपन्यासकारोंमें उनकी गिनती हो, उसके लिए तो वही तरीका है, जिसका अभी ज़िक्र किया है और उसीके द्वारा यह सम्भव है। उदाहरण स्वरूप मैं शरच्चन्द्र और रवीन्द्रनाथका नाम ले रहा हूँ। प्रत्येक क्षेत्रज भाषामें ख्यातिनामा लेखक हैं और उनकी ख्याति सम्पूर्ण भारतमें होनी चाहिए। इस ढंगसे हमारी राष्ट्रिय संस्कृतिके फैलावके महत्त्वपर कोई आवश्यकतासे अधिक ज़ोर नहीं दे सकता। हमारे देशकी विशालताका ख़याल करके यह आशा करना नासमझीकी बात होगी कि बहुत लेखक हमारे राष्ट्रिय जीवनका चित्रण उसके विभिन्न रूपमें करनेमें सफल होंगे। यह काम तो केवल उन्हीं लोगों द्वारा लिया और किया जा सकता है जो भारतके विभिन्न राज्योंके और वहाँके स्त्री-पुरुषों में रहते हैं, जिन्हें वे समझते हैं और जहाँपर उनका अस्तित्व है, जिनका अपनी क्षेत्रज भाषाओंपर पूर्ण अधिकार है। हमारे राष्ट्रिय साहित्यको मजबूरन, कम-से-कम आंशिक रूपमें, विभिन्न क्षेत्रज भाषाओंमें ही पूर्ण रूपसे पुष्पित होना चाहिए और हमारा कर्त्तव्य है कि हम फौरन ही कोई सुनिश्चित कदम उठायें जिससे यह राष्ट्रिय साहित्य भारतवर्षमें प्रत्येक साक्षर व्यक्तिको उपलब्ध हो सके।

मैं जानता हूँ कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरच्चन्द्रके महान् ग्रन्थोंके समान अन्य ग्रन्थोंका विभिन्न क्षेत्रज भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है। पर वह तो व्यक्तिगत और असंगठित प्रयासका फल है जो, मेरे मतसे, बहुत काम नहीं कर सकता और न इसके द्वारा अधिक काम ही हुआ है। सुसंगठित, सुगम्भीर तथा सुनियमित प्रयासकी आवश्यकता है। उदाहरण के लिए यह एक अच्छी बात हो सकती है अगर सौ बढ़िया गद्य और पद्यकी भारतमें पिछले ६०० वर्षोंमें लिखी पुस्तकोंका अनुवाद किया जाय। इन सर्व श्रेष्ठ पुस्तकोंके चुनावके लिए एक परामर्शदात्री बोर्ड स्थापित करना चाहिए। इस बोर्डमें भारतवर्षके आजकलके सर्वश्रेष्ठ साहित्यसेवी हों, जिसमें हमारे विश्व-विद्यालयोंके प्रतिनिधि भी हों। इन सौ पुस्तकोंके अनुवाद और प्रकाशनके लिए एक दूसरा संगठन भी होना चाहिए जो राष्ट्रभाषा और प्रायः सभी प्रमुख क्षेत्रज भाषाओंमें साथ-साथ अनुवाद और प्रकाशनका काम करे। एक संयुक्त सहयोगके आधारपर यह संगठन भारतके प्रमुख प्रकाशकों द्वारा बनाया जाना चाहिए। इस प्रकारके कार्यसे बहुत अच्छे नतीजे निकलेंगे और उससे पारस्परिक जानकारीमें वृद्धि होगी और राष्ट्रिय एकताकी भावना उससे सुदृढ़ होगी।

लगे हाथों मैं यह भी कह दूँ कि विभिन्न भाषाओंमें किसी कविताका पद्यानुवाद एक बहुत ही कठिन बात है और वह बहुत कम हालतमें सफल होता है। पर इस बातपर तो विचार परामर्शदात्री बोर्ड करेगा। जबतक कि अनुवाद इस कोटिका न हो कि वह मूलके स्तरको छू सके तो यह कहीं अच्छा होगा कि उसका गद्यानुवाद कर दिया जाय और किसी कविताके नैसर्गिक सौन्दर्यको गद्यमें लिपिबद्ध करनेका प्रयास किया जाय, इसकी अपेक्षा कि उसका असफल और असन्तोष-जनक पद्यानुवाद किया जाय। मैं स्मरण करता हूँ उस अभूत-पूर्व आनन्दको जो कि मुझे मराठी महाकाव्य 'ज्ञानेश्वरी'के हिन्दी अनुवादसे मिला। 'ज्ञानेश्वरी' भगवद्गीतापर भाष्य का एक ग्रन्थ रत्न है।

इन सौ सर्वश्रेष्ठ पुस्तकोंमें निःसन्देह कविता, नाटक, आख्यायिकाएँ, निबन्ध, यात्रा और जीवन-चरित्र-सम्बन्धी पुस्तकें होनी चाहिए, साथ ही साहित्यकी अन्य प्रकारकी पुस्तकें भी। व्यक्तिगत रूपसे मैं इस पक्षमें नहीं हूँ कि इन

पुस्तकोंमें दर्शन-शास्त्रकी शुष्क पुस्तकें शामिल की जायँ, अथवा विज्ञानकी पुस्तकें उनमें हों, अथवा मज़हब-सम्बन्धी उनमें तर्क-वितर्क हो।

गीतोंके अनुवादकी बात भी विचारणीय है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी गणना विश्व कवियोंमें की जाती है और बङ्गालमें तो उनके गीत और नाटक वहाँके सांस्कृतिक जीवनके प्रमुख अङ्ग बने हुए हैं। उनका बड़ा ही परिष्कारक और सात्विक प्रभाव पड़ता है, विदग्ध हृदयोंको अपरिमित सन्तोष और सान्त्वना उनसे मिलती है। यह वांछनीय है कि ये गीत सारे भारतवर्षमें लोगोंकी सांस्कृतिक वसीयत बनी रहें। यहाँ भी, चेत्रज भाषाओंकी हमारी अनभिज्ञता रास्तेका रोड़ा बनी हुई है। यदि रविबाबूके गीत देशकी विभिन्न लिपियोंमें लिखकर उनके गद्यानुवादके साथ, लोगोंको दिये जायँ तो मेरा विश्वास है कि कवि-गुरुकी काव्य प्रतिभाका आनन्द वे भी बङ्गला भाषा-भाषियोंकी तरह उठा सकेंगे।

और अन्तमें मैं बाल-साहित्यपर ज़ोर देना चाहता हूँ। बाल्यकालमें जो विचार-भावनाएँ हम ग्रहण कर लेते हैं, वे अन्ततक स्थायी बनी रहती हैं और यह अत्यन्त वांछनीय है कि हमारे बालक अपनी कहानियोंके साथ और सहारे न केवल देशका भौगोलिक और ऐतिहासिक ज्ञान ही प्राप्त करें, लोगोंके बारेमें अपनी जानकारी ही बढ़ायें, बल्कि देशके लोकगीतोंको भी सीखें और समझें। हमारे देशमें बालकोंके साहित्यका यथेष्ट विकास हुआ है, विशेषकर बङ्गालमें तो यह विकास अपनी चरम सीमापर पहुँचा हुआ दिखाई देता है। यदि अपेक्षित ध्यान न दिया गया तो सम्भव है बाल-साहित्यके विकासकी यह धारा बङ्गाल तक ही सीमित रह जाय। हमें इसका क्षेत्र विस्तृत करना चाहिए। भारतके प्रत्येक बालकको देशके लोक गीतों और लोक-कथाओंसे परिचित होना चाहिए। 'हितोपदेश' और ईसपकी कहानियोंका जो प्रभाव बालकोंके ऊपर पड़ा है, उसका अन्दाज़ा लगाना आसान नहीं है। इसलिए हमें चाहिए कि जल्दी-से-जल्दी हम अपने साहित्यको अनुवाद द्वारा बालकोंके लिए सुगम बना दें और भविष्यमें सब लोगोंके लिए सुलभ्य होनेवाले साहित्यके विकास और विस्तारकी चेष्टा करें।

[श्रीमान् डाक्टर काटजूके सुझावोंका हम स्वागत करते हैं। सम्पादकीय स्तम्भमें इस लेखपर पाठक हमारी टिप्पणी पढ़ें।—सम्पादक]

अवैध मद्य-निष्कर्षण

(चोरीसे शराब बनानेमें उपयुक्त होनेवाले यन्त्र)

अशोक

चोरीसे शराब बनानेवाले समय-समयपर नए प्रकारके यन्त्र बनाकर अपने चातुर्यका परिचय देते हैं। यदि प्रान्त भरमें उपयोग होनेवाले अनेक प्रकारके शराब खींचनेके भिन्न-भिन्न यन्त्रोंका, जो समय-समयपर पुलिस और आबकारी विभाग द्वारा पकड़े जाते हैं, एक संरक्षण-गृह (म्यूज़ियम)* होता और सबसे अच्छे और टिकाऊ यन्त्रोंको सरकारी मालखानोंसे मँगाकर ऐसे भवनमें सुरक्षित रखा जा सकता तो वह एक दर्शनीय वस्तु होती। जैसे चूहे एक प्रकारकी चूहेदानीके शीघ्र आदी हो जाते हैं और फिर उसके पास फटकते तक नहीं और उन्हें पकड़नेके लिए मानवको समय-समयपर कई भिन्न-भिन्न प्रकारकी चूहे-दानियोंका आविष्कार करना पड़ा है उसी प्रकार छापामार टोलियोंको चकमा देनेके लिए

* ऐसा एक संग्रहालय स्काटलैण्ड यार्ड नामक इङ्गलैण्डके गुप्तचर विभागके केन्द्रिय कार्यालयमें है। इसे ब्लैक म्यूज़ियम कहते हैं।—लेखक

शराबके चोर-व्यापारियोंको भी शराब खींचनेकी अनेक प्रकारकी मशीनें ईजाद करनी पड़ी हैं।

पूर्वके जिलोंके कृषक जिस प्रकार स्वभावसे ही सरल और भोले-भाले हैं उसी प्रकार ऐसे आविष्कार करनेमें भी वे प्रान्तके अन्य चोर शराबियोंमें सबसे पिछड़े हुए हैं। उनका शराब बनानेका यन्त्र सबसे अधिक स्पष्ट दीख पड़ता है और उसे छापामार टोलियोंकी नजरोंसे छिपाना आसान नहीं है। मिट्टीका एक घड़ा, एक हाँड़ी और कपड़ा लिपटा हुआ एक बाँसका नल इस यन्त्रकी मुख्य वस्तुएँ हैं। घड़ेमें लहन रख कर उसे चूल्हेपर चढ़ा दिया जाता है। हाँड़ीमें एक छेद करके उसमें बाँसका नल फिट कर दिया जाता है। गीली मिट्टीसे हाँड़ी और घड़ेके बीच वायुके मार्ग बन्द कर दिये जाते हैं और नलके भी छेदके पास अच्छी प्रकार मिट्टी लगा दी जाती है। सारा यन्त्र इस प्रकार 'एअरटाइट' (हवा बन्द) हो जाता है। आवश्यकता पड़नेपर भापको ठण्डा करनेके लिए नलपर लिपटे कपड़ेको भिगाते रहना पड़ता है। नलके सिरेपर टपकती हुई शराबके लिए बोतल, पतीली, लोटा या किसी भी भाँतिका बर्तन लगा दिया जाता है।

युक्तप्रान्तके आबकारी ऐक्टकी धारा ७१ के अन्तर्गत इस यन्त्रका कोई भाग किसी व्यक्तिके पास मिल जाना इस बातका प्रमाण मान लिया जाता है कि वह व्यक्ति शराब बनाता है और धारा ६० के अन्तर्गत एक वर्षकी सजा अथवा एक हजार रुपए जुर्माने तकका दण्ड उसे मिल सकता है। अतः शराब बनानेकी छेद की गई हाँड़ी या कपड़ा लिपटा हुआ नल घरके अन्दर रखना इतना ही बड़ा अपराध है जितना अवैध शराबका रखना। अवैध शराबके रखनेके लिए अपराधीको कभी-कभी न्यायाधीश यू० पी० इक्साइज ऐक्टकी धारा ६३ के अन्तर्गत भी दण्डित करते हैं। ऐसी दशामें अधिकतम दण्ड तीन माहका कठिन कारावास या पाँच सौ रुपया जुर्माना होता है। पर यन्त्रके किसी अंशका मिलना धारा ६० (f) के ही अन्तर्गत दण्डनीय है। अतः कभी-कभी शराब रखनेमें दण्ड कम मिलता है और यन्त्रका अंश रखनेमें बहुत अधिक। यद्यपि घड़ेके विषयमें यह बात पूर्ण रूपेण प्रमाणिक नहीं कही जा सकती; क्योंकि घड़ा प्रतिदिन और भी घरेलू कामकाजमें व्यवहृत होता है। पर छेदवाली हाँड़ी या कपड़ा लिपटा नल तो निश्चय ही शराबके यन्त्रके अंश साबित कर दिए जाते हैं।

इन झंझटोंसे बचनेके लिए पश्चिमी जिलोंके लोगोंने गोरखे शराब बनानेवालोंसे एक नई तरकीब सीख ली है। देहरादून और मसूरीके मध्यमें जो बड़े पैमानेपर शराब बनानेके चोर कारखाने थे, उनमें एक कनस्टर और एक नलसे ही शराब बनती हुई पाई जाती है। कनस्टरके ऊपर कोनेके छेदपर गीली मिट्टी पोतकर नलको बिठला दिया जाता है और कनस्टरमें आधी ऊँचाई तक लहन भरकर चूल्हेपर चढ़ा दिया जाता है। नलपर कपड़ा लपेटकर उसे ठण्डा करना आवश्यक है। इस प्रकारके यन्त्रमें शराब कुछ मैली रहती है। आँच अधिक होनेपर शराबमें जलका अंश अधिक आने लगता है।

देहरादून और सिरमौर रियासतकी समीपवर्ती सीमाके गाँवमें एक बिलकुल नए प्रकारका शराब खींचनेका यन्त्र पकड़ा जाता है। इसमें एक छोटे नलके अतिरिक्त कोई भी ऐसी वस्तु नहीं होती जो दैनिक व्यवहारमें न आती हो। नलको भी इतना छोटा और संक्षिप्त रूप दे दिया जाता है कि उसे ठण्डा करनेकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। यन्त्रके तीन मुख्य अंग ये हैं:—

१. एक चौड़े मुँहका पतेला, २. एक काठकी कठौती, ३. एक मिट्टीका घड़ा।

कठौतेके बीचमें एक छेद होता है और किनारेपर एक तिरछा और छेद जिसमें दो इञ्च लम्बी एक नली लगा दी जाती है।

पतेलेमें लहन भरकर उसे चूल्हेमें चढ़ा दिया जाता है। उसके ऊपर कठौता और कठौतेके ऊपर ठण्डे पानीसे भरा घड़ा। बस, इतने ही से शराब बन जाती है। घड़ेके पेंदेपर चारों ओर आटा इस प्रकार लगा दिया जाता है मानो उसपर यह आटा कठौतेके ऊपर अचानक रख देनेसे लग गया हो। कठौतेका बीचका छेद इस प्रकार बनाया जाता है कि लहनकी भाप तो ऊपर आ सके; पर उसमें भरी शराब नीचे

न उतर सके अर्थात् छेदके पास आटा लगाकर ऊँची बाढ़-सी लगा देते हैं। घड़ेपर शराबकी भाप टकराकर ठण्डी हो जाती है और उसकी पेंदीपर बूँदें एकत्रित होने लगती हैं। ये बूँदें फिर कठौतीमें टपक पड़ती हैं। कठौतीके भर जानेपर नलके छेदसे शराब बाहर टपकने लगती है। घड़ेको तनिक एक ओर हटाकर रखा जाता है ताकि पेंदेका मध्य विन्दु कठौतीके बीचके छेदसे कुछ दूर हटा रहे, क्योंकि शराब पेंदीपर बूँद-बूँद जमा होकर मध्य बिन्दुसे ही टपकती रहे।

नैपालियोंकी सहायतासे चोरशराबियोंने अल्मोड़ा जिलेमें उपयुक्त यन्त्रको और भी सरल बना दिया है। लहनका पतेला और कठौता मिलकर एक दूसरेको ऐसा छिपा देते हैं कि दूरसे शराब खींचनेका यन्त्र कनस्टरके ऊपर रखा घड़ा-सा दीखता है।

ऐसे यन्त्रमें ये चीजें मुख्य हैं :—

१. एक कनस्टर (साधारण मिट्टी-तेलका चार गैलनका)।

२. एक पीतलकी तश्तरी।

३. चार इंच लम्बा नल, जो तश्तरीके किनारे पर छेद करके फिट कर दिया जाता है।

४. एक आठ-दस इंच लम्बी सींक, पुराने छातेकी या किसी तारकी बनी। यह सींक कनस्टरके बीच ऊँचाईमें आर-पार फँसा दी जाती है।

५. एक मिट्टीका घड़ा।

६. एक पुरानी ४-५ फीट लम्बी धोती या फटे कपड़ेका टुकड़ा।

कनस्टरका ऊपरका मुँह काटकर उसे गोलाकार बना लिया जाता है। कनस्टरकी ऊँचाईके बीचमें तार फँसाकर उसी तारपर नल समेत तश्तरी अटका देते हैं। तश्तरीपर लगा नल एक तीसरे छेद द्वारा कनस्टरसे थोड़ा बाहर निकल जाता है। कनस्टरमें आधी ऊँचाई तक लहन भरके चूल्हेपर चढ़ा कर ऊपर ठण्डे पानीसे भरा घड़ा रख दिया जाता है। घड़े और कनस्टरके बीचके छेदोंको चारों ओर कपड़ा लपेटकर बन्द कर देते हैं ताकि शराबकी भाप बाहर न उड़े। भाप घड़ेकी पेंदीपर टकराकर द्रवित होकर तश्तरीमें जमा हो जाती है और नलसे टपक पड़ती है।

नल फिर भी एक ऐसी वस्तु है जो छापामार टोलियोंको सन्देहमें डाल देता है और शराबसे सम्बन्धित अन्य यन्त्रोंकी खोज में उन्हें बरबस लगा देता है। नलके बिलकुल हटा देनेमें भी अब चोरशराब बनानेवाले सफल हो चुके हैं।

गोरखा कुलियोंकी औरतोंने जो गढ़वालके घुरा नामक गाँवमें रहती हैं पिछले चार-पाँच वर्षोंसे एक बिलकुल नई प्रणाली शराब बनानेकी निकाल ली है। इसमें न नलकी आवश्यकता है और न कठौते या तश्तरी की। यह विधि इतनी सरल और ऐसी कम खर्च की है कि जहाँ भी गोरखा लोग गए इसका खूब प्रचार हो गया है।

इसमें केवल तीन वस्तुएँ चाहिए। कनस्टर, घड़ा और लोटा। कनस्टरमें आधी ऊँचाई तक लहन भरकर तीन या चार लकड़ियाँ तिरछी करके उसमें लोटा सधा दिया जाता है। कनस्टरको आँचपर रखकर ऊपर ठण्डे पानीका घड़ा रख देते हैं। लहनकी भाप घड़ेकी पेंदीपर ठीक बीचमें से लोटेमें टपकती रहती है। घड़े और कनस्टरके बीचके छेद गीली मिट्टीसे बन्द कर दिए जाते हैं। मन्द-मन्द आगपर घण्टों कनस्टर चढ़ा रहता है। शराब बार-बार भाप बनती है और फिर-फिर टपकती है इस प्रकार साफ और तेज बन जाती है। बहुधा रोज शामको कनस्टर चढ़ा दिया जाता है और सुबहको लोटा आधा भरा रहता है। अपने रोजके व्यवहारके लिए गोरखे इस प्रकार चुपचाप शराब बना लेते हैं। सुबह घड़ा पानी भरनेके काम आ जाता है। कनस्टर साफ करके पानी उबालनेके काम आता है। इस प्रकार शराबका कोई यन्त्र कहीं घरमें नहीं रखा रहता जिससे कानूनके चंगुलसे आसानीसे बचा जा सकता है।

शराब बनानेके लिए गोरखा पके हुए चावलोंका ही प्रयोगमें लाते हैं। पके हुए चावलोंका रखना अपराध नहीं है, उनसे कुछ बदबू भी आ जाय तो पशुओंकी खिलानेकी सुसानी आदिका बहाना किया जा सकता है। अधिक बदबू गोरखा उसे निश्चय ही मकानके बाहर ढोरोंके रहनेकी जगह

जगहमें ढककर रखता है। पर ऐसी दशामें चावलमें शराबकी खमीर उत्पन्न करनेका मसाला मकानमें मिल जाता है। इसे गोरखा 'बालम' कहते हैं। यह सफेद या भूरे रंगकी दो ढाई इंच व्यासकी गोलाकार टिकिया होती है जो जौके आटेमें कुछ जड़ी-बूटियाँ मिलानेसे बनती है, इसे सूखा ईस्ट (Dry yeast) कहते हैं। शायद कुछ वर्ष पूर्व किसी-किसी गोरखा पल्टनमें यह टिकिया सरकार द्वारा मुफ्त वितरण की जाती थी कि गोरखा सैनिक अपनी शराब नित्य बना सके। ऐसा होता था तो निश्चय ही सरकारने गोरखोंका एक ओर तो पालन किया और दूसरी ओर उन्हें सदाके लिए पक्का शराबका चोर व्यवसायी बना दिया।

शराबके और भी अनेक प्रकारके यन्त्र प्रान्तके कोने-कोनेमें मिलते हैं। मेरठमें तो बहुधा स्टेशनपर रखी रहनेवाली नए प्रकारकी एक चाय उबालनेकी पीतलकी देगचीपर ही नल फिट करके एक व्यक्ति सामने तो चाय बेचनेका बहाना करता रहा और पीछेके कमरोंमें उस नल द्वारा शराब टपकती रही। वर्षों तक वह इस प्रकार पुलिस और आबकारीके कर्मचारियोंकी आँखोंमें धूल झोंकता रहा और दिनदहाड़े शराब बनाता रहा।*

* हमें दुःख है कि हम इस लेखसे सम्बन्धित चित्रोंको न दे सके।—स०

भारतका प्राचीन राजनीतिक इतिहास और मगध

मिथिलाशरण पाण्डेय

भारतके प्राचीन इतिहासमें मगधका वही स्थान है, जो प्राचीन इंगलैण्डमें वेसैक्सका तथा आधुनिक जर्मनी (द्वितीय महा युद्धके पूर्वकी जर्मनी) में प्रशाका। मगधके राजनीतिक उत्थान के पूर्व भारतका इतिहास देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें फैले हुए छोटे-छोटे राज्योंका विशृंखल इतिहास है। राजनीतिक मञ्च पर मगधके पदार्पणके बाद ही, भारतके इतिहासमें उस युगका प्रारम्भ होता है, जिसका विकसित रूप हम महाराज अशोकके राजत्व-कालमें पाते हैं।

ऋग्वेदके एक छन्दमें सर्व प्रथम 'किकट' शब्दका प्रयोग मिलता है। यास्कके अनुसार 'किकट'का निरूपण मगधके साथ किया गया है (निरुक्त-६-३२)। यही 'किकट' अथर्ववेद तथा उपनिषदोंमें व्रात्य तथा मगधके नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्थानाभावके कारण इस विषयपर यहाँ विचार करना अप्रासङ्गिक होगा। अतः हम लोग परिक्षितोत्तर एवं पूर्व बिम्बिसार कालके मगधसे अपने विषय पर विचार करेंगे।

ईसाकी आठवीं अथवा नवीं शताब्दी पूर्व भारतके प्रत्येक भू-भागमें आर्य-सभ्यताकी विजय वैजयन्ती उड़ने लगी थी। उस समय भिन्न-भिन्न स्थलोंपर सोलह छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो चुके थे जिन्हें इतिहासमें 'षोडष जनपद' कहते हैं। बौद्धग्रन्थ अङ्गुत्तर निकायके अनुसार उनके नाम निम्न लिखित हैं;—

१. अङ्ग, २. मगध, ३. वज्जी, ४. काशी, ५. कोशल, ६. वत्स, ७. सूरसेन, ८. कुरु, ९. पाञ्चाल, १०. काम्बोज, ११. गंधार, १२. अवंती, १३. अश्मक, १४. मल्ल, १५. चेदि, १६. मत्स्य।

इन राज्योंके नाम एक दूसरे सूत्रके द्वारा भी उपलब्ध होते हैं, वह है जैनियोंका भगवती-सूत्र। जैन-ग्रन्थोंके अनुसार ये राज्य हैं; अङ्ग, बङ्ग, मगह, मलय, मालव, अच्छ, वच्छ, (वत्स), काच्छ (कच्छ), पाढ (पाण्डीय), लाढ (राढ), बज्जी, मोली, काशी, कोशल, अवाह, सम्भूत्तर (सुमहोत्तर)। दोनों ग्रन्थोंमें वर्णित नामोंकी तुलना करने पर हम देखते हैं कि कुछ तो मिलते हैं, किन्तु शेष भिन्न हैं। कुछ राज्योंके केवल नाममें ही अन्तर है, यथा वच्छल (वत्स), मोली (मल्ल); मालव (अवन्ती)। भगवती सूत्रके राज्योंके अध्ययनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थके रचनाकालके पूर्व आर्योंका विस्तार पूर्व एवं सुदूर दक्षिण तक हो चुका था। ये राज्य निस्सन्देह पीछे स्थापित हुए थे। अतः इनकी प्रामाणि-

कता अभी सन्देहास्पद है। इसलिए अङ्गुत्तर निकायमें वर्णित राज्योंके अनुसार ही हम तत्कालीन इतिहासपर विचार करेंगे।

इन राज्योंके अतिरिक्त बहुत गणतन्त्र तथा जनतन्त्र राज्य भी थे। इस प्रकारके राज्य यद्यपि आकार-प्रकारमें छोटे थे तथापि सम्पूर्ण आर्यावर्तमें, पञ्चनद एवं सिंधसे लेकर विदेह तक फैले हुए थे। इन राज्योंके अपने विधान थे जिनके अनुसार उनका शासन-यंत्र सञ्चालित होता था। इनमें मुख्य कपिलवस्तुके शाक्य पिप्पलीवनके मौर्य, विदेह, कुशीनगर तथा पावाके मल्ल, सुमसुमार गिरीके भग्ग तथा बहुत-से अन्य छोटे-छोटे राज्य थे जिनका पृथक् इतिहास प्रस्तुत हो सकता है।

षोडश जनपदके राज्योंमें चार राज-तंत्रीय राज्योंकी प्रधानता थी। वे थे मगध, कोशल, वत्स और अवन्ती। इन्हीं राज्योंके द्वारा शेष छोटे-छोटे राज्य काल कवलित हुए।

ईसाके पूर्व छठो शताब्दीके पूर्वार्द्धमें मगधके सिंहासनपर महाराज बिम्बिसार आरूढ़ थे। उस समय कोशलमें प्रसेन-जित, अवन्तिमें चण्डप्रद्योत महासेन तथा वत्समें महाराज उदयन थे। इन राज्योंकी राजधानियाँ क्रमशः राजगृह, श्रावस्ती, उज्ज-यिनी और कौशाम्बी थीं। ये सभो नृपति अल्पाधिक पराक्रम-शील तथा नीतिज्ञ थे। इन सबमें वत्स-महाराज उदयनकी ख्याति अधिक रही है जिनकी दन्त-कथायें कवियोंके भी वर्णन का विषय रहा है (यथा—कथित्यन्ति उदयन कथा कोविद ग्राम वृद्धान—मेघदूत)

प्राचीन भारतके इतिहासमें परिणय-संधि (Matrimonial Alliance) के द्वारा राज्य-विलयनकी परम्परा बहुत प्रसिद्ध रही है। महाराज बिम्बिसारने भी उसी नीतिको अपनाकर अपने राज्यकी अभिवृद्धि की एवं सुदृढ़ शासन-सत्ताकी स्थापना की। इनके तीन विवाह हुए थे। प्रथम लिच्छिवी वंशकी राजकुमारी चिल्लणाके साथ, द्वितीय कौशलके महाराज प्रसेनजित की अनूजा कोशलादेवीके साथ तथा तृतीय मद्रदेशकी राजकुमारी के साथ। कोशलादेवीके परिणयके उपरान्त काशीका प्रान्त उन्हें सुगन्ध एवं स्नान-व्ययके लिये दहेजके रूपमें प्राप्त हुआ था। अतः काशीका प्रान्त भी, जिसकी आमदनी प्रायः अस्सी लाखके लगभग थी, मगधका एक भाग बन गया। इससे कुछ ही दिन पूर्व महाराज बिम्बिसारने अपने पार्श्ववर्ती सुसमृद्ध राज्य अङ्गपर आक्रमण किया और तत्कालीन नृपति ब्रह्मदत्तको पराजितकर उसपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इस प्रकार अङ्गके विजयोपरान्त मगधके इतिहासमें उस नीतिका प्रादुर्भाव हुआ जिसकी पूर्णाहुति प्रायः चार सौ वर्ष बाद महाराज अशोकके शासन-कालमें हुई।

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थोंमें बिम्बिसारकी मृत्युके भिन्न-भिन्न कारण दिए गए हैं। किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि महाराज की मृत्युका कारण उनके ज्येष्ठ आत्मज अजातशत्रु थे। इनके अतिरिक्त महाराजके दो पुत्र और थे जो लिच्छवी-नायक चेतकके दौहित्र थे। जैन ग्रन्थोंके अनुसार वे दोनों अठारह लड़वाली हीरोंकी एक माला लेकर अपने नानाके यहाँ चले गए और बार-बार माँगनेपर भी उसे न लौटाया। फलतः लिच्छवियों और मागधोंमें भैरव संग्रामका सूत्रपात हुआ। बौद्ध-ग्रन्थोंके अनु-सार गङ्गाके तटपर हीरेकी एक खान थी, जो दोनों राज्योंकी सीमापर थी, किन्तु लिच्छवियोंने सम्पूर्ण हीरे ले लिए और मगधको अपने हिस्सेसे वंचित रहना पड़ा। द्वितीय कारण अधिक सम्भाव्य जान पड़ता है। कुछ भी हो, अजातशत्रुके समयमें जाह्नवीके उत्तर एवं दक्षिण तटवर्ती दोनों राज्योंमें तुमुल संग्रामका प्रारम्भ हुआ जो अविच्छिन्न रूपसे सोलह वर्षों तक चलता रहा। इस समय युद्ध-यातायातकी सुविधाके लिए गंगाके दक्षिण-तटपर, पाटल नामक ग्राममें, एक किलेकी स्थापना हुई जो कालान्तरमें सभ्य संसारके श्रेष्ठतम नगरोंमें गिना जाने लगा। नीतिकुशल मागध मन्त्री वशकरकी नीतिज्ञता एवं पराक्रमके कारण जय-श्रीने अजातशत्रुको वरण किया और वैशालीका प्रान्त सर्वदाके लिये मगधका अविच्छिन्न अंग बन गया।

महाराज बिम्बिसारकी मृत्युके बाद कोशलकुमारी कोशल-देवी सती हो गईं। अतः क्रुद्ध होकर प्रसेनजितने काशीका प्रान्त बलात् लौटानेका प्रयत्न किया, फलस्वरूप मगध और कोशलमें भी भयंकर युद्ध छिड़ गया। इस युद्धमें कभी एक पक्ष विजयी होता, कभी दूसरा। बहुत वर्षोंके बाद युद्ध बन्द हुआ। प्रसेनजितने अपनी दुहिता वजीराका विवाह अजातशत्रुके

साथ करके काशी तथा आस-पासका भू-भाग पुनः मगधको दे दिया।

पश्चिम भारतकी ओर दृष्टिपात करनेसे हम देखते हैं कि अवन्तिके महाराज चण्डप्रद्योत महासेन तथा उनके पुत्र गोपाल इत्यादि छोटे छोटे राज्योंको हड़पकर अपनी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ा रहे थे; यहाँ तक कि उनके राज्यकी सीमा वत्स राज्य तक पहुँच चुकी थी। उस समय ऐसा अनुमान लगाया जा रहा था कि वह मगधकी राजधानी राजगृहपर भी आक्रमण की तैयारी कर रहे थे। इस समाचारसे महाराज अजातशत्रुने अपनी सुरक्षाका प्रबन्ध किया और पहाड़ोंपर भी बड़ी-बड़ी दीवारें उठवायीं जिनका ध्वंसावशेष अबतक राजगृहके पर्वतोंपर विद्यमान है। बलगङ्गा पुलके समीप दोनों पहाड़ोंपर बनी हुई दीवारोंसे इस बातकी सत्यताका अनुमान लगाया जा सकता है।

कोशलमें महाराज प्रसेनजितके बाद उनका लड़का विडूड्व राज्याधिकारी हुआ। उसने एक विशेष कारणसे उद्दण्डताका परिचय देते हुए शाक्य क्षत्रियोंका विनाश कर दिया और कपिल-वस्तुका राज्य अपनी सीमामें मिला लिया। इस प्रकार छोटे-छोटे राज्य अपनी सत्ता विनष्ट कर बड़े राज्योंको शक्ति सम्पन्न बना रहे थे।

इधर मगधमें अजातशत्रुके बाद काकवर्ण नृपति हुए। उन्होंने अपनी राजधानी वैशालीमें बनाई। इससे सिद्ध होता है कि मगधका विस्तार उत्तरमें और अधिक हो गया था। इस वंशका अंतिम राजा शिशुनाग हुआ। उसने मगधको और भी अधिक शक्ति-सम्पन्न बनाया।

कई सूत्रोंसे ज्ञात होता है कि इसके बाद मगधके राज-नीतिमें महान् क्रान्ति हुई। प्राचीन राजवंशको नष्टकर एक नया राजवंश शुरू हुआ जो इतिहासमें नवनन्दके नामसे विख्यात है। इस वंशमें नौ राजा हुए। महापद्मनन्द प्रथम अधिपति थे और धननन्द अंतिम। श्रीयुत् काशीप्रसाद जायसवालके मतानुसार महापद्मनन्दका लड़का ही 'नवनन्द' अथवा नयानन्द कहलाया; किन्तु अधिकांश विद्वानोंने इस बातको नहीं माना।

नन्दवंशकी उत्पत्तिके विषयमें भिन्न-भिन्न मत हैं। ये राजा अपनेको क्षत्रिय कहते हैं किन्तु पुराणों तथा ग्रीक-ग्रन्थोंके अनुसार ये शूद्र थे। प्रसिद्ध पालीग्रंथ महावंशके अनुसार ये लोग नाई थे। इनके राज्याभिषेकके बाद भारतकी राजनीतिमें बहुत बड़ी क्रांति हुई। छोटे-बड़े सभी राज्य पराजित होकर मगधमें सम्मिलित हो गये। यहाँ तक कि कलिङ्ग भी मगधमें सम्मिलित कर लिया गया, किन्तु बादमें वह स्वतंत्र हो गया। तामिल ग्रन्थोंके अध्ययनसे पता चलता है कि स्यात महापद्मनन्दने दक्षिण-भारतपर भी आक्रमण किया था। दक्षिण-भारतके 'नेवनन्द डेरा' नामके स्थानसे इन नन्दोंका सम्बन्ध बतलाया जाता है। महापद्मनन्द अत्यन्त पराक्रमशाली महाराज थे। किंवदन्तियोंके अनुसार इनके पास इतनी सम्पति थी कि इन्होंने अपनी संपति गङ्गामें निहित कर दी जिससे कुछ कालके लिए धारा भी रुक गयी। इससे हम इस तत्वपर पहुँचते हैं कि नन्दोंने अतुल सम्पत्ति एकत्र कर ली थी। पश्चिममें इनके राज्यका विस्तार प्रायः पाञ्चाल तक हो चुका था। इस तरह सम्पूर्ण मध्यदेश (उत्तर भारत) के छोटे-बड़े क्षत्रिय राज्य मगधके अधीन हो चुके थे। पुराणोंमें नन्दोंको 'सर्वक्षत्रान्तक' कहा गया है। प्राचीन ग्रन्थोंमें ये नन्द राजा 'एकराट' अर्थात् एकछत्र सम्राट कहे गये हैं। सम्पूर्ण भारतमें एकछत्र राज्यकी स्थापनाका प्रयत्न महाराज महापद्मनन्दके समयमें किया गया। इनकी सैन्य-शक्तिका प्राबल्य देखकर सुदूर पश्चिम देशोंको पदा-क्रान्तकर अपनी विजय वैजयन्ती फहराते आये हुए महान् सिकन्दरकी विजय-वाहिनीके भी होश उड़ गये और विश्व विजयके सुनहरे स्वप्नको अधूरा छोड़कर ही उसे लौट जाना पड़ा।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है उन दिनों पञ्चनद तथा सिंधु प्रांतमें छोटे-बड़े प्रायः अठाइस राज्य थे जिनके शासन भिन्न-भिन्न प्रकारसे सञ्चालित होते थे। इनमें तक्षशिलाका राज्य महाराज पुरु (बड़े) का राज्य, पुरु (छोटे) शिवी, मालव कठ, अभिसार, मुचिकर्ण इत्यादि सुप्रसिद्ध थे। सिकन्दरके आक्रमणके द्वारा प्रायः सभी राज्य खत्म हो गये। सिकन्दरने सिन्धु तथा पञ्चनदके प्रान्त चार-पाँच भागोंमें विभक्त कर दिए थे। इनके शासक कुछ तो ग्रीक थे और शेष भारतीय राजा जो किसी-न-किसी प्रकार सिकन्दरके अधीन थे इस प्रकार एकछत्र

राज्यकी स्थापनाका कार्य सिकन्दरके द्वारा ही सहल बना दिया गया था।

नन्दवंशके अंतिम कालमें प्रजा अधिक दुःख पाने लगी थी। अतः समयसे लाभ उठाकर महाराज चन्द्रगुप्तने विष्णुगुप्त को सहायतासे मगधपर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और नये वंशकी स्थापना की जो मौर्यवंशके नामसे विश्रुत हुआ। महाराज चन्द्रगुप्तने पञ्चनदसे ग्रीक शासकोंको खदेड़ दिया और पञ्चनद भी उनके राज्यका एक अंग हो गया। उन्होंने शायद दक्षिण भारतपर भी आक्रमण किया और पदोपी तकका प्रान्त अपने राज्यमें मिला लिया। इनके शासन कालमें ३०६ ईसा पूर्व, ग्रीक सेनापति सेल्यूकस नाइकेटरने भारत पर आक्रमण किया। ग्रीक इतिहासकारोंके ग्रन्थोंसे यह ज्ञात नहीं होता कि युद्धका फल क्या हुआ। किन्तु इतना सत्य है कि सेल्यूकस नाइकेटर और चन्द्रगुप्त मौर्यमें परिणय-सम्बन्ध स्थापित हुआ और वह चन्द्रगुप्तसे ५०० हाथी लेकर उसके बदले अपनी कन्या तथा अपने साम्राज्यके चार प्रान्त गेड्रोसिया (गंधार), पैरोपैनी, शेडै (काबुल), एरिया (हेरात) और अरोकोशिया (बलूचिस्तान) देकर शीघ्र ही पश्चिमकी ओर चला गया, जहाँ मिश्रदेशके शासककी गंभीर गर्जना स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी और उसको अपनी सत्ताके विनष्ट हो जानेकी सम्भावना थी।

इस स्थलपर एक प्रश्न उठता है कि कन्या किस ओरसे प्रदान की गई! ग्रीक इतिहासकार इस स्थल पर चुप हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्रीक जाति जो उस समय अत्यधिक उन्नतिशील एवं सभ्य समझी जाती थी, कन्या देनेके विषयमें उल्लेख करना अपना अपमान समझती थी। यदि कन्या भारतीय होती तो वे अवश्य ही लिख मारते जैसे कि सिकन्दरके समयमें पर्शिया इत्यादि देशोंको उल्लेख किया है। अतः कन्या अवश्यमेव सेल्यूकस की होगी। आधुनिक पाश्चात्य लेखक स्मिथ इत्यादिने ग्रीक इतिहासकारोंका अनुकरण कर इस विषय पर अधिक प्रकाश नहीं डाला है।

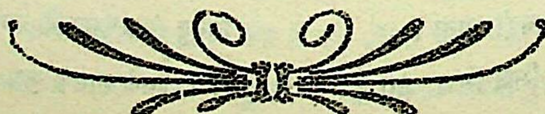
महाराज चन्द्रगुप्तने सम्भवतः दक्षिणा-पथपर भी आक्रम किया था। वर्त्तमान मैसूर राज्यमें सुवर्णगिरि तक तो उन राज्य-विस्तार अवश्य ही था। उनके पुत्र बिम्बिसारने दक्षिणके राज्योंको छोड़कर शेष भू-भाग अपने राज्यमें मिल लिया था। महाराज अशोकके शिला-लेखोंसे ज्ञात होता है कि ताम्रपर्णी नदी (आताम्रपणी) तक इनका राज्य-विस्तार था। किंतु उपलब्ध प्रमाणोंसे ज्ञात होता है कि इन्होंने केवल कलि विजय की थी। अतः दक्षिणके भाग निश्चय ही महारा चन्द्रगुप्त अथवा बिम्बिसारके शासन-कालमें जीत लिये होंगे।

प्राचीन भारतके इतिहासमें देवानामप्रिय प्रियदर्शी महारा अशोकका शासनकाल स्वर्ण-युग है। इनके शासन-काल भारत आर्थिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उन्नतिके शिखर था। यदि एक बार हम भारतके तत्कालीन मानचित्रपर दृ दें तो हिन्दूकुशसे बङ्गाल एवं कश्मीरसे चोड़ (चोल) पाण्ड्य केरल, संतिपुत्त राज्योंको छोड़कर शेष भारत मगधकी विज ध्वजाकी सुशीतल छायामें सुखकी नींद सोता था।

इतना बड़ा विस्तृत साम्राज्य आज तक भारतके किसी सम्राट्के अधीन नहीं रहा। यहाँ तक कि वैज्ञानिक शस्त्रोंसे सु ज्जित होनेपर भी ब्रिटिश शासक इस भू-भागपर अपना आधि स्थापित नहीं कर सके जहाँ मौर्यवंशी राजाओंकी ध्व उन्मुक्त पार्वतीय पवनका चुम्बन करती थीं।

इस प्रकार मगधने छोटे-छोटे शासकोंको एक शासन-सू बाँधकर और एकछत्र राज्यकी स्थापना कर राष्ट्रिय भाव जाग्रत की थीं। यही नहीं, ग्रीक यवन भी उसके सम नतमस्तक रहते थे।

इसके अतिरिक्त मगधने आध्यात्मिक क्षेत्रमें वह ज्यो उत्पन्न की, जिसकी चिनगारी आज भी सुदूर चीन, जापान इत्या देशोंमें पाई जाती है। संक्षेपमें प्राचीन भारतके इतिहास मगधका बहुत ही गौरवपूर्ण स्थान है।



गांधी-विमुखतामें विश्वका विनाश

भगवत्नारायण भार्गव

संसारके सभी राष्ट्र, सभी समाज और वर्ग तथा व्यक्ति सुख और शान्तिकी खोजमें दिन-रात व्यग्र रहते हैं, परन्तु वे सुख और शान्तिकी परिभाषा अपने-अपने मनसे, अपनी बुद्धि अनुसार गढ़ लेते हैं। यही कारण है कि उनको न वास्तविक सुख होता है और न शान्ति। प्रायः लोगोंने यह समझ रखा है कि यदि रहनेके लिए अच्छा मकान हो, पहनने के लिए अच्छे कपड़े मिलें और खानेके लिए अच्छा भोजन मिले तो सुख और शान्तिकी पूर्णता हो जाती है। यह हम सभी जानते हैं कि ऐसे अनेक बड़े-बड़े धनी लोग, ऊँचे-ऊँचे पदाधिकारी भारत ही में नहीं सारे विश्वमें हैं, जिनको ये सुविधाएँ प्राप्त हैं, परन्तु यदि उनके हृदयसे पूछा जाय कि उनको सुख और शान्ति है कि नहीं, तो उनसे नकारात्मक उत्तर ही प्राप्त होगा। क्या आज संसारका बड़े-से-बड़ा राजा भी सुखी है? गम्भीरतापूर्वक यदि विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि शारीरिक सुख अथवा भौतिक मनोरञ्जनकी सामग्रीसे मनुष्य सुखी नहीं रह सकता है। जिसके पास अधिक धन और सम्पत्ति है उसको उसके संरक्षण और सम्वर्धनकी दिन-रात चिन्ता लगी रहती है, चाहे वह करोड़पति हो अथवा अरबपति। जो राजा है उसको अपने राज्यका अधिकार क्षेत्र बढ़ानेकी सदैव चिन्ता रहती है। यदि किसीके पास सभी शारीरिक सुखोंके पर्याप्त साधन प्राप्त हैं तो उसको सन्तानकी चिन्ता रहती है अथवा वे पुत्र-पुत्रियों अथवा स्त्री-पुरुषके झगड़ेके कारण दुःखी रहते हैं, किसीको पुत्र अथवा दामादके सर्गवास हो जानेसे दुःख होता है तो किसी को अपने पति, भाई-बन्धु, माता-पिताके देहान्तसे दुःख होता है। यदि सच पूछा जाय तो दुःखका मूल कारण तो स्वार्थपरता है। यदि संसार सुख और शान्ति चाहता है तो उसको उन्हीं सिद्धान्तोंपर चलना होगा जिनका दिग्दर्शन महात्मा गांधीने व्यावहारिक रूपसे किया था। गांधीजीने जिन आदर्शोंको विश्वके सामने रखा, वे आदर्श सनातन कालसे चले आ रहे हैं; परन्तु जैसा कि संसारका नियम है, मनुष्य अपनी भौतिक सुखकी सामग्री जुटानेमें इतना व्यस्त रहता है कि उसको आदर्शोंकी अथवा अपने जीवनके लक्ष्यकी बात सोचनेके लिए समय ही नहीं मिलता है और न वह समय निकालनेके लिए चिन्ता ही करता है। आज तो साधारण मनुष्य यह समझता है कि उसके जीवनका लक्ष्य केवल सुखसे खाना-पीना और निश्चिन्ततासे अपना जीवन व्यतीत करना ही है। वास्तवमें पवित्र जीवन तथा सच्चे त्याग और तपस्यासे ही शुद्ध सुख, शान्तिकी प्राप्ति होती है।

गांधीजी एक बार खेड़ा जिलेमें रोग-शय्यापर पड़ गये, तब सारी रात गीताके इस श्लोकको रटते रहे :—

"विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।"

सब इच्छाओंको त्यागकर जो मनुष्य अनासक्त ममता और अभिमान-रहित जीवन व्यतीत करता है, वही शान्ति पाता है।

विदेशोंकी बड़ी-से-बड़ी शक्तियाँ आज विक्षिप्त-सी हो रही हैं, उनको कहीं सुख और शान्ति दिखाई नहीं देती। उसका कारण यही है कि उनके सामने कोई लक्ष्य नहीं है। यही दशा हमारे भारतवर्ष की भी है। लक्ष्य तो उसे कहते हैं जिसकी प्राप्तिके लिए जीवनमें सभी समुचित उपायों द्वारा साधन जुटाए जायँ और जिसकी प्राप्तिसे मनुष्यका आन्तरिक जीवन सफल हो सके। महात्मा गांधीने अपनी आत्मकथामें अपने जीवनके उद्देश्य इस प्रकार बतलाए हैं, "आत्म-साक्षात्कार, ईश्वर-दर्शन और मोक्ष—मेरे जीवनकी प्रत्येक क्रिया इसी दृष्टिसे होती है। मैं जो कुछ लिखता हूँ वह भी इसी उद्देश्यसे, राजनीतिक क्षेत्रमें जो मैं कूदा सो भी इसी बातको सामने रखकर।" ऐसे उच्च लक्ष्यवाला मानव ही

संसारका महापुरुष होता है। परन्तु आज विश्वमें कितने मनुष्य ऐसे हैं, जो अपने हृदयपर हाथ रखकर सचाईके साथ कह सकते हों कि उनके जीवनका उद्देश्य वही है जो महात्मा गांधी का था। आज तो ईश्वरके नामसे बड़े-बड़े लोगोंको चिढ़ है, धर्मका नाम सुनते ही लोगोंकी क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है क्योंकि वे न ईश्वर शब्दका अर्थ जानते हैं और न धर्म-शब्दका। महात्मा गांधी गीतामें वर्णित दैवी सम्पदावाले महामानव थे। राजसी और तामसी-प्रवृत्ति उनका स्पर्श नहीं कर सकती थी, इसीलिए वे गीताधर्मी कहलाते थे। बड़े दुःख और आश्चर्यकी बात है कि संसारके बीच एक ऐसा महात्मा आया, जीया और मरा कि जिसने मानव धर्मके सिद्धांतोंको विश्व के सामने बड़ी दृढ़ताके साथ अपने जीवनके पल-पलके व्यवहार में रखा फिर भी उससे संसारने कोई शिक्षा ग्रहण न की। इसके विपरीत हम देख रहे हैं कि गांधीजीके सिद्धान्तोंको व्यक्ति, समाज और देश भूलता जा रहा है। भूलता ही नहीं जा रहा है मैं तो कहूंगा कि उनके सिद्धान्तोंकी आज जैसी निर्मम और निर्दयता-पूर्ण हत्या हो रही है वैसी कदाचित् किसी समय किसी ऐसे महात्मा के आदर्शोंकी उपेक्षा नहीं की गई होगी। आज हमको जीवनके किसी स्तरमें, किसी समाजमें और किसी राष्ट्रमें उस सत्य, अहिंसा, प्रेम, शान्ति, ब्रह्मचर्य, एकता तथा आस्तिकताके दर्शन नहीं हो रहे हैं जिनके वे साक्षात प्रतीक थे। हमने राम, कृष्ण और बुद्धको नहीं देखा। कोई उनको भगवान्का अवतार मानते हैं तो कोई केवल महापुरुष, परन्तु उनके सिद्धान्त और आदर्श आज भी संसारके कोने कोनेमें सुनाई देते हैं। यह जानकर हृदय कितना व्यथित होता है कि हमारे सरीखा ही एक साधारण दुबला-पतला मनुष्य हमारे बीच दिन-रात रहा, अपने देशके स्वतंत्रता संग्राममें एक क्षण भी हम उनको अलग न कर सके, उनके व्याख्यानोंको हमने सुना, उनके लेखों तथा पुस्तकोंको हमने पढ़ा और उनकी प्रार्थना-सभाओंमें मूकवत्, अथवा कहिये मूढ़वत्, बैठे रहे, फिर भी हमारे ऊपर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। आज की राजनीतिमें उस सत्य, उस अहिंसा और उस विशुद्ध प्रेमका रूप कहाँ दिखाई देता है जिसका पालन करनेके लिये महात्मा गांधीने अपना शरीर भी खो दिया। आज तो हम हिंसा, घृणा, द्वेष और अभिमानके द्वारा विश्वमें शान्ति स्थापित करना चाहते हैं। एक देश दूसरे देशको हड़प करके ही शान्ति स्थापित करना चाहता है, एक समाज दूसरे समाजको मिटा देनेपर ही शान्तिका स्वप्न देखता है, एक व्यक्ति दूसरेकी सम्पत्ति, दूसरेका सम्मान और दूसरेकी स्त्री और बहू-बेटियोंका अनादर करके चिरस्थायी सुख प्राप्त करनेके भ्रममें पड़ा हुआ है। इन सब मूर्खताओं और दोषोंका आधार स्वार्थपरायणता और देहाभिमान है। महात्मा गांधीके अटल सिद्धान्तोंके अनुसार साध्य और साधन दोनों ही जब शुद्ध होंगे तभी संसारका उद्धार हो सकता है। यदि किसी राष्ट्रको शान्ति प्राप्त करनी है अथवा किसी मनुष्यको, किसी राज्यको या समाजको शान्ति और सुख प्राप्त करना है तो इस कार्यमें शान्तिप्रिय उपायों द्वारा ही तथा सत्य और प्रेमके द्वारा ही सफलता मिल सकती है। क्या हमको स्मरण नहीं है कि गांधीजीने बार-म्बार कहा कि मैं तो उन भाइयोंको भी, जो मुझसे द्वेष रखते हैं, केवल सच्चे प्रेमके द्वारा ही जीतना चाहता हूँ, और इस सिद्धान्तको विजयी करके उन्होंने सारे संसारको चकित कर दिया। यह सब होते हुए भी हमारी विचारधारासे हिंसा, दंड, भय, घृणा, द्वेष और अभिमानके भाव क्षणभरके लिये भी नहीं हटते हैं। हमारी मनोवृत्ति उत्तरोत्तर इन्हीं अवांछनीय दोषोंकी ओर अग्रसर होती चली जा रही है। हम समाज द्वारा यदि कोई सुधारका काम कराना चाहते हैं तो हिंसा और दण्डका भय देकर ही कराना चाहते हैं। यह लक्षण विनाशका है। ठीक ही कहा है कि 'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः'। आज तो एक मनुष्य अपनेको पूर्ण निर्दोष मानकर अपने विरोधियोंको दोषोंका आगार मानता है, अपने दोषोंको छिपाता है और दूसरेके दोषोंपर व्याख्यान देता है। वह यह अनुभव ही नहीं कर पाता कि जो दोष उसे दूसरोंमें दिखाई देते हैं, वे स्वयं उसमें अधिक मात्रामें विद्यमान हैं। इसका कारण यही है कि उसको ईश्वर, सत्य और अहिंसामें विश्वास नहीं है।

यदि अहिंसाके सिद्धान्तपर हम उस विचारधारासे विश्व

करें जिसके अनुसार महात्मा गांधी किया करते थे और उसका जीवनमें पालन भी उसीके आधारपर करें तो मैं समझता हूँ कि विश्वके अनेक देशोंमें कभी भी युद्ध नहीं हो सकता और न द्वेषकी भावना उत्पन्न हो सकती है, और यही बात व्यक्तियों और समाजोंपर भी लागू है। इस प्रकार न कभी चोरी हो, न डकैती, न हत्या, न व्यभिचार और भ्रष्टाचार और न हमको पुलिस या सेनाकी ही आवश्यकता पड़े। कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो अपने स्वार्थको तिलांजलि देकर दूसरोंका हित करते हैं। कुछ ऐसे हैं जो अपने स्वार्थकी रक्षा करते हुए भी दूसरोंका उपकार करते हैं, और वे लोग तो राक्षस हैं जो अपने स्वार्थके लाभके लिये दूसरोंको हानि पहुँचाते हैं। परन्तु उनको क्या कहा जाय कि जो बिना कारण ही दूसरोंके हितका नाश करते ही रहते हैं।

महात्मा गांधीकी समताकी भावना और अहिंसाके सिद्धान्तका मूल आधार उनकी ईश्वर आस्था ही थी। वे सभी प्राणियोंमें ईश्वरका दर्शन करते थे। स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी सभीमें उसी परब्रह्म परमात्मकी शक्तिका दर्शन करके ही वे अहिंसाके मार्गपर सदा आरूढ़ रहते थे। प्राणियोंमें ही नहीं, वे तो वही अहिंसाकी भावना जड़-चेतनमें रखते थे। वे प्रायः ईशावास्योपनिषद्का यह वाक्य स्मरण करते थे—

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥'

जिस समय वे यर्वदा जेलमें श्री काका कालेलकरके साथ थे, बात बहुत पुरानी है, उस समय काका कालेलकरके चर्खेकी तांत ढीली पड़ गई और वह काम नहीं दे रही थी। महात्माजीने कहा, 'कुछ नीमकी पत्तियाँ ले आओ और उसका रस इसके ऊपर लगा दो तो यह ठीक हो जायगा।' काका-कालेलकर नीमके वृक्षकी एक बड़ी शाखा तोड़ लाए। महात्माजी इसपर बड़े असन्तुष्ट हुए और कहा कि "तुमने यह बड़ा पाप किया, इतनी बड़ी शाखाकी इतनी पत्तियोंकी तुमको आवश्यकता ही न थी, तुमने व्यर्थ ही में वृक्षको कष्ट पहुँचाया। जितनी पत्तियोंकी आवश्यकता थी उतनी ही पत्तियाँ पहले वृक्षसे क्षमा माँगकर तोड़नी चाहिए थीं।" एक बार बापू देवीपुर ग्राममें पहुँचे। वहाँ लोगोंने फूलोंके हार उन्हें पहिनाये तो उन्होंने कहा कि उनको व्यर्थमें सजावट या मौज शौकके लिए तोड़ना उचित ही नहीं, बल्कि सूक्ष्म हिंसा है। हिंसक जीवोंके सम्बन्धमें भी उनकी जीवनीसे पता चलता है कि उन्होंने अपने आश्रममें निकले हुए सर्पोंको भी नहीं मारने दिया।* एक बार प्रार्थना करते समय एक सर्प उनकी पीठके ऊपरसे चढ़ा तो जो लोग उनके निकट बैठे थे उन्होंने चाहा कि उसको हटाकर मार दें, परन्तु महात्माजीने कहा कि "वह स्वयं अपने आप चला जायगा या इसके द्वारा ही मेरी मृत्यु लिखी होगी तो कोई चिन्ताकी बात नहीं। वह सर्प उनके शरीरके दूसरे भागसे उतरकर चला गया। जिन लोगोंको आत्मामें और ईश्वरमें विश्वास नहीं है वे लोग ऐसी छोटी-छोटी बातोंका कोई महत्त्व नहीं समझते हैं। परन्तु गांधीजी समझते थे; क्योंकि उनके लिए वृक्ष, सर्प, स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े, और पशु-पक्षी एक ही से थे, वे सबमें ईश्वरका दर्शन करते थे। जब वे नोआखालीमें गए तो उन्होंने अपनी रक्षाका कोई भी प्रबन्ध किये जानेसे इन्कार कर दिया। जिस समय वहाँपर द्वेष और हिंसा की अग्नि घोर रूपसे प्रज्वलित हो रही थी तथा हिन्दुओंके प्राण भयंकर संकटमें थे, उस समय भी निहत्थे गांधी पैदल उन्हीं क्षेत्रोंमें निर्भयतापूर्वक घूमते रहे और उन्हीं मुसलमान भाइयोंने, जिन्होंने हिन्दुओंको मारा था, गांधीजीका बड़े प्रेमसे स्वागत किया। इससे निश्चय ही यह निष्कर्ष निकलता है कि महात्मा गांधीको विश्वास था, जैसा कि वे सदा ही कहा करते थे, कि प्रत्येक प्राणीमें मुझे ईश्वरके दर्शन होते हैं। यदि ईश्वरकी इच्छा होगी कि यह शरीर न रहे, उसी क्षण यह शरीर न रहेगा, अन्यथा किसीकी संसारमें शक्ति नहीं है कि उनके शरीरको कोई भी क्षति पहुँच सके। उनको प्रह्लाद भक्तकी गाथापर बड़ी श्रद्धा थी। वह कहा करते थे कि भगवान्में विश्वास हो तो ऐसा हो जैसा प्रह्लादको था। क्योंकि :—

* पर बन्दरों और लेंडा कुत्तोंको मारनेके लिए महात्माजीने कभी मना नहीं किया। स्वयम् हमसे उन्होंने कहा कि खेतीको हानि पहुँचानेवाले बन्दरोंको मारकर हमने ठीक किया।—सम्पादक

'जाको राखे साइयाँ मार न सकिहैं कोय।
बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय' ॥

महात्माजीने जीवनका लक्ष्य प्राप्त करनेके दो ही मार्ग बताये थे : एक हिंसाका दूसरा अहिंसाका। हिंसा-मार्गकी अनुपयोगिता और असफलता आज विश्वके इतिहासमें बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखी हुई है। यदि अणुबम आदि द्वारा किसी देशका अथवा संसारका विनाश कर दिया जाय तो उससे तो किसीको सुख और शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है और यदि हम उस अवस्थाको शान्ति कहें जो मरघटमें साँय-साँय करती रहती है तो इससे बढ़कर हमारी मूर्खताका कोई दूसरा प्रमाण नहीं हो सकता है। अहिंसाके मार्गको बतलाते हुए उन्होंने अपनी 'आत्मकथा'में कहा है कि इस मार्गपर चलनेवालोंको अपनेको तथा अपने सभी कामोंको ईश्वरके ऊपर छोड़कर निर्भय हो जाना चाहिए। इसी निर्भयताके सम्बन्धमें हमको उनके आश्रमकी भजनावलीमें कितने ही भजन मिलते हैं जिनका वे प्रेमपूर्वक अपनी प्रार्थना-सभाओंमें गायन करवाया करते थे। परन्तु इसपर भी कितने लोगोंको सच्ची श्रद्धा है यह सन्देहकी बात है। हम लोग बड़े उत्साहसे और हर्षसे महात्मा गांधीकी जय-जयकार जुलूसों और सभाओंमें करते हैं, सभाओंमें बड़े व्याख्यान देकर महात्मा गांधीके सिद्धान्तोंपर चलनेके लिए लोगोंको प्रोत्साहित करते हैं, परन्तु क्या केवल जय-जयकार बोलनेसे और व्याख्यान देनेसे यह काम कभी सम्भव है ? जो उनके जीवनका मूल रहस्य था, जिसको बारम्बार उन्होंने संसारके सामने रखा, जब उसपर हमको विश्वास ही नहीं है, हमारी बुद्धिमें इतनी शक्ति ही नहीं कि हम उसको ठीक-ठीक समझ सकें तो ऐसे प्रयासोंसे कोई सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है। जिनको उनके जीवन ही में उनके सिद्धान्तोंपर विश्वास नहीं हुआ, वे उनके लोप हो जानेपर क्या विश्वास कर सकते हैं ? हम जानते हैं कि महात्मा गांधीने अनेक बार लिखा है और कहा है कि बुद्धि ही सब कुछ नहीं है, बुद्धि मनुष्यकी सीमित है, प्रत्येक मनुष्यकी बुद्धिमें सभी बातें नहीं आ सकती हैं। बुद्धिसे भी बड़ी कोई शक्ति है और उसीको वे सदा महत्त्व देते रहे हैं। अनेक संकटोंके समय जब हमारे नेतागण उनसे सलाह लेने गये, उस समय उन्होंने कहा कि जब तक मुझको ईश्वरसे प्रकाश नहीं दिखाई देता, मैं कोई काम आगे नहीं कर सकता। उनकी निरभिमानता ही उनकी महत्ता थी। उनमें अभिमानकी मात्रा तो छू तक नहीं गई थी। कभी उन्होंने किसी कामके लिए यह नहीं कहा कि मैं ऐसा कर दूँगा अथवा मैंने ऐसा किया। जब कभी भी उन्होंने कहा, यही कहा कि भगवान् चाहेगा तो ऐसा करेगा, भगवान् ऐसा चाहता है, भगवान्ने ऐसा किया। एक स्थानपर उन्होंने लिखा है, 'जिस गुरुकी खोजमें मैं हूँ वह स्वयं भगवान् ही हैं, भगवान् ही मेरे गुरु बन सकते हैं, जिन्हें पानेके बाद कोई साधना बाकी ही नहीं रहती। मेरी यह सारी जिन्दगी, सारी प्रवृत्ति उस गुरुकी खोजके लिये ही है। जब बापू सन् १९३६-३७ में मगनवाड़ी, वर्धामें रहते थे तब उन्होंने कहा था—'मैं यह नहीं मानता कि जो काम मैं कर रहा हूँ, वह मेरा काम है। वह तो भगवान्का है, उसकी चिन्ता उसे है।" वे अपनेको भगवान्का एक यन्त्र मात्र मानते थे और सारी शक्ति और श्रद्धा, जो कुछ उनके शरीरमें थी, वह ईश्वरसे प्राप्त थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उन घटनाओंसे मिल सकता है जब उन्होंने बड़े-बड़े लम्बे उपवास किये, और बड़े-बड़े डाक्टरोंकी बुद्धिके अनुसार उनका जीवन असम्भव प्रतीत होता था और वे इंजेक्शन अथवा औषध लेनेमें मुस्कराकर इन्कार कर देते थे। एक उपवासके समय जब उनके मूत्रमें एक विशेष प्रकार का विष आने लगा और डाक्टरोंने कहा कि यदि इंजेक्शन बारह घण्टे न दिया जायगा तो उनका जीवन समाप्त हो जायगा, उसपर उन्होंने अपनी स्वाभाविक हँसी हँसकर कहा कि 'अब मूत्रकी परीक्षा सवेरे करना'। जब सवेरे परीक्षा की गई तो उस विषका मूत्रमें नाम भी न था। मैं जानता हूँ कि बड़े-बड़े डाक्टर उनकी ऐसी अवस्थाओंसे आश्चर्यचकित हो जाते थे, परन्तु फिर भी आश्चर्यके अतिरिक्त कोई बात उनके ध्यानमें नहीं आती थी।

महात्माजीका कहना था कि एक व्यक्ति ही सारा भारतवर्ष है, एक व्यक्तिके ऊपर उसके सुधारका उतना ही भार है

जितना कि सारे देशके सुधारका भार है। हम लोग तो दूसरोंके सुधार ही में अपनी सारी शक्ति लगाये रहते हैं, अपनी हीनताओं और दोषोंकी ओर देखनेकी फुर्सत ही नहीं पाते। जब तक हम लोग आत्मशुद्धि और आत्मसुधारके ऊपर ध्यान न देंगे तबतक किसी प्रकारका सुधार हमारे देशका अथवा समाजका नहीं हो सकता है। विश्वके नैतिक पतनकी पराकाष्ठा हो चुकी है। आज चारों ओरसे संसारके ऊपर विपत्तियाँ आती हैं, भारत भी उनसे अछूता नहीं है। जिन लोगोंको ईश्वरके ऊपर अथवा ईश्वरकी कार्य-प्रणालीपर और ईश्वरीय योजनाओंपर विश्वास नहीं है, वे लोग कहते हैं कि यह प्रकृतिका कोप है। ठीक है, प्रकृतिका ही यह खेल है कि विश्वमें भूकम्प आ रहे हैं, ज्वालामुखी विस्फोट हो रहे हैं, बाढ़ें आ रही हैं, रेलवे लाइनोंके उखाड़े जानेसे भयंकर उत्पात और जन-हानि हो रही है। कहीं-कहीं घोर संक्रामक रोगोंसे मृत्यु हो रही है और अनेकों प्रकारसे जन-धन और सम्पत्ति कराल कालके गालमें जा रहे हैं, परन्तु क्यों ऐसा हो रहा है? यदि महात्मा गांधीके सिद्धान्तोंकी ओर ध्यान दें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि यह सब हमारे सामूहिक दुष्कर्मोंका ही परिणाम है। मुझे स्मरण है कि जिस समय बिहारमें भूकम्पसे बड़ी भारी जन और सम्पत्तिकी क्षति हुई थी उस समय महात्मा गांधीने कहा था कि हमने जो अत्याचार अपने परिगणित भाइयोंके साथ किये हैं उनका ही यह फल है। परन्तु महात्मा गांधीके इस कथनका आज भी उपहास किया जाता है। लोगोंको इसपर विश्वास नहीं होता कि

"कर्म प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा।"

क्या यह विज्ञानका सिद्धान्त नहीं है कि जो भी काम किया जायगा उसका परिणाम अवश्य होता है? क्रियाकी प्रतिक्रिया अवश्य होती है। यदि हमारा चारित्रिक पतन हो रहा है, यदि हमारा जीवन पापोंसे आप्लावित है, तो क्या इस बात पर हमको विश्वास नहीं करना चाहिए कि उन कर्मोंका फल हमको ईश्वर अथवा प्रकृति द्वारा, जिसपर भी विश्वास हो, दण्ड रूपमें दिया जायगा। आज हम इस गांधी युगमें मनुष्यों के लिए अन्न-रक्षाकी धुनमें जीवोंकी हत्या करनेमें मस्त हैं। खेतोंकी अथवा खेतोंके बाहर फसल व अन्नको हानि पहुँचानेवाले गाय, बैल, भैंस, गधे, घोड़े, बन्दर, चूहे, पक्षी, गिलहरी, कीट-पतंग सभीको क्या सामूहिक रूपसे नष्ट करके गांधीजीकी आत्माको तृप्त कर सकते हैं? यह केवल भ्रम है कि हम इस प्रकार सुखी हो सकेंगे। गांधीवादके अनुसार हमें तो "सर्वभूतहितेरताः" होना है, सब मनुष्योंका ही हित नहीं, सभी जीव-जन्तुओंका हित करना है तथा "दया सर्वभूतेषु" और "समं सर्वेषु भूतेषु"को अपना आदर्श बनाना है। यदि हम इन सनातन सत्योंपर आरूढ़ न रहेंगे तो विश्वकी विपत्तियों में बाढ़ आना स्वाभाविक ही है। सच तो यह है कि हम प्रकृति या ईश्वरके नियमोंको तोड़ते हैं और उसके परिणामसे बचना चाहते हैं, यह कैसे सम्भव है? यदि हम दीवारसे अपने सिरको टकरायें तो सिरको भले ही फोड़ लें, परन्तु हम दीवारको न फोड़ सकेंगे। यदि हम प्रकृतिके नियमोंपर नहीं चलेंगे तो प्रकृति हमको धक्का देगी, प्रकृति हमको नष्ट कर देगी। यदि हम प्रकृतिके प्रतिकूल बिना भूख जबरदस्ती भोजनको ठूँसते चले जायँगे तो पेट फट जायगा और हमारी मृत्यु हो जायगी। इसमें दोष प्रकृतिका नहीं, हमारा है। देशके प्राकृतिक उत्पातोंका दोष ईश्वर अथवा प्रकृतिके मत्थे मढ़ना मूर्खता है। वह तो हमारे दुष्कर्मोंका और प्रकृति और ईश्वरके नियम-भंग करनेका परिणाम है। बापूके पद-चिह्नोंपर चलते हुए जबतक हम ईश्वरको साक्षी मानकर सत्य, धर्म, अहिंसा और शुद्ध प्रेमका आचरण न करेंगे और राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दलबन्दियोंमें पड़कर घृणा और द्वेष, हिंसा, अभिमान और असहिष्णुताके वातावरणको उत्पन्न करके पापाचरण करते रहेंगे तबतक हम भौतिक उन्नति और सुख-शान्तिके चाहे जितने उपाय करें, हमें सफलता नहीं मिलेगी। हमने तो विदेशोंसे हिंसा, घृणा, दण्ड और पाशविक भयसे सफलता प्राप्त करना सीखा है। यही कारण है कि पग-पगपर हमको असफलता दिखाई देती है। हम वैज्ञानिक रूपसे अनेक उपायों द्वारा भूमिको उर्वरा बनानेका प्रयत्न करते हैं, परन्तु दूसरी ओरसे प्रकृति अपना विकराल रूप

धारण करके उन सबको हड़प लेती है, और हम मुँह ताकते रह जाते हैं। इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुये मेरी तो यही धारणा होती है कि यदि स्थायी सुख अपने देश तथा सारे विश्वके लिए चाहते हैं तो हमें महात्मा गांधीके उन सब सिद्धान्तों और आदर्शोंको सचाईके साथ अपनाना होगा जिनके आधारपर उन्होंने न केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता हमको दिलाई, अपितु उन्हींके आधारपर उन्होंने इस बातको संसारके सामने सिद्ध कर दिया कि यदि विश्व-शान्ति हो सकती है तो केवल भारतवर्ष द्वारा ही हो सकती है और उन्हीं उपायोंके द्वारा हो सकती है जो धर्मपर आधारित हैं। महात्मा गांधी सदैव कहते रहे कि यदि राजनीतिसे धर्म हटा दिया जायगा तो उस राजनीतिकी मृत्यु हो जायगी। हमें उनके बतलाए हुए मानव धर्मपर अवश्य ही चलना है, चाहे उस धर्मके आचरणके लिए हमको हिन्दुओंके, मुसलमानोंके अथवा ईसाइयोंके धर्म-ग्रन्थोंसे प्रेरणा मिले। महात्मा गांधी सभी धर्मोंकी प्रार्थना कराया करते थे। परन्तु आज उनका शरीर संसारमें न होनेके कारण उस सार्वजनिक और सार्वभौम प्रार्थनाका लोप ही हो गया है जिसके बलपर उनके कथनानुसार सारे संसारको आत्मशक्ति और शान्ति प्राप्त होती थी। उन्होंने लिखा है, 'प्रार्थना भोजन की अपेक्षा करोड़ गुनी ज़्यादा उपयोगी चीज़ है। खाना भले ही छूट जाय, परन्तु प्रार्थना कभी न छूटनी चाहिए। प्रार्थना तो आत्माका भोजन है। यदि हम दिन भर ईश्वरका चिन्तन कर सकें तो बहुत अच्छा, पर चूँकि यह सबके लिए सम्भव नहीं है इसलिये हमें प्रतिदिन कुछ घंटोंके लिये तो ईश्वरका स्मरण करना ही चाहिए। प्रार्थना करनेका उद्देश्य ईश्वरसे संभाषण करना एवं अन्तरात्माकी शुद्धिके लिए प्रकाश प्राप्त करना है।' हम गांधीजीकी माला, उनकी खड़ाऊँको आदरपूर्वक देखते हैं, परन्तु किसलिए ? इन सबका बिना रहस्य समझे हुए ही हम ऐसा करते हैं। यदि हमें इसका रहस्य ज्ञात होता और हम अज्ञानतापूर्वक ऐसा न करते होते तो आज देशके सभी मुख्य स्थानोंमें प्रार्थना-भवन दिखाई देते। अपने देश ही में नहीं, संसारके कोने-कोनेमें प्रार्थना-भवन दिखाई देते होते जिनमें दैनिक प्रार्थनाकी ध्वनि गूँजती होती। हमें देहाभिमान उसी प्रकार त्याग देना चाहिए जैसे महात्मा गांधीने त्याग दिया था, और आत्माभिमानको ग्रहण करना चाहिए। यह हम जानते हैं कि प्रत्येक प्राणीका शरीर नश्वर है और यदि हम केवल इस नश्वर शरीरके पालन-पोषणमें और उसके सुखोंमें अपना जीवन व्यतीत करेंगे और महात्मा गान्धीके सिद्धान्तोंको निर्दयतापूर्वक कुचलते रहेंगे तो इसमें संशय नहीं कि संसारके विनाशकी घड़ी दूर नहीं है।

बापूने जो मापदण्ड अपने जीवनके लिए रखा था वही यदि हम सच्चे हृदयसे ग्रहण कर सकें तो हमारा देहाभिमान दूर हो सकता है और हम उन्नति-पथपर अग्रसर हो सकते हैं। हम जानते हैं कि वे अपना बल कुछ भी न मानकर राम-नामके बलको ही सब कुछ मानते थे और 'निर्बलके बल राम' वाला भजन गाकर व सुनकर मग्न हो जाते थे। अभिमानकी निन्दा करते हुए उन्होंने आत्मकथाकी प्रस्तावनामें लिखा है :—

"अभिमानीको जो बात अशक्य मालूम होती है वही एक भोले-भाले शिशुको बिलकुल सरल मालूम होती है। सत्यके शोधकको एक रजकणसे भी नीचे रहना पड़ता है। सारी दुनिया रजकणको पैरों तले रौंदती है, पर सत्यका पुजारी तो जबतक इतना छोटा नहीं बन जाता कि रजकण भी उसे कुचल सके तबतक स्वतन्त्र सत्यकी भूख कभी होना दुर्लभ है। जिस नापसे मैं अपनेको नापना चाहता हूँ और जो नाप हम सबको अपने लिये रखना चाहिए उसे देखते हुए तो मैं अवश्य कहूँगा

'मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जेहि तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमकहरामी।'"

यह सूरदासजीका पद है। बापू सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, नरसीजीके भजनों द्वारा कितना आनन्द प्राप्त करते थे और उनके गायनके समय मानो वे प्रभुकी गोदमें पहुँच जाते थे, यह उनके व्याख्यानों और लेखोंसे प्रकट होता है। एक ओर तो यह चित्र सामने आता है, दूसरी ओर स्वयं अनुयायी कहलानेवाले हम लोगोंका, जो ईश, धर्म और प्रार्थना से दूर भागते हैं। प्रकृति या ईश्वरसे, जिसपर भी हमें विश्वास हो, हमें बारम्बार चेतावनी मिल रही है। अब भी यदि हम सँभल जायँ और गांधीजीका विस्मरण न करके उनके पदचिह्नों

पर चलें तो बेड़ा पार हो सकता है। जो पद बापूने डांडी-यात्रा के समय गाया था उसीके साथ इस लेखको विश्व शान्ति और विश्वबन्धुत्वके हेतु प्रभुसे प्रार्थना करता हुआ समाप्त करता हूँ।

लज्जा मोरी राखो श्याम हरी,
तुम सब जानत अन्तर्यामी करनी कछु न करी।
सब प्रपंचकी पोट्टि बाँधिके अपने शीष धरी,
औगुन मोते बिसरत नाहीं छिन पल एक घरी।
दारा सुत धन मोह लियो है सुधि बुधि सब बिसरी,
सूर पतितको वेग उबारो, अब मोरी नाव भरी।
लज्जा मोरी राखो श्याम हरी॥

मध्यकालीन भारतके चार बड़े नगर

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मध्यकालमें हमारे देशमें बहुत से विदेशी यात्री आए और उन्होंने अपने भ्रमण तथा अनुभवोंके बड़े रोचक वृत्तान्त लिखे हैं। हमें मध्यकालीन भारतके इतिहासकी बहुत कुछ सामग्री इन्हीं लेखों द्वारा मिलती है। श्री डब्ल्यू० एच० मोरलैण्डने इन्हींके आधारपर लिखी हुई अपनी दो पुस्तकों—"India at the Death of Akbar" और "India from Akbar to Aurangzeb" में मुगलकालीन भारत का आर्थिक इतिहास लिखनेका प्रयत्न किया है। उनका यह प्रयत्न सराहनीय है। सम्भवतः उनके पहले किसीने भी इस विषयपर कोई पुस्तक नहीं लिखी। किन्तु जिन निष्कर्षोंपर वे पहुँचे हैं और जिन रीतिसे उनको निकाला है, उन्हें देखकर ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने बहुत-सी धारणाएँ पहले ही से बना ली थीं और ऐसी ही सामग्रियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर निकाला है, जो उनकी धारणाकी पुष्टि करती हैं। उन्होंने मुगल-कालीन नगरोंकी जन-संख्याका अनुमान लगाया है। उनके मतनुसार उस समयके बड़े नगरोंकी जनसंख्या ढाई लाखसे पाँच लाखके भीतर थी। उनका कहना है कि उन्हें ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है, जिससे यह सिद्ध हो कि उस समय भारतमें किसी भी नगरकी स्थायी जन-संख्या ५ लाख थी। इन पंक्तियोंके लेखकने जब उन विदेशी यात्रियोंके लेखोंको, जिनका उद्धरण उन्होंने अपनी पुस्तकमें किया है, पढ़ा तो उसे ऐसा लगा कि उस समय भारतमें कई नगर ५ लाखसे कहीं अधिक आबादीके थे। इस लेखमें ऐसे ही चार नगरोंकी यहाँ चर्चा रहेगी।

मध्यकालमें आजकी तरह जन-गणना होना सम्भव नहीं था। विदेशी यात्रियोंने भारतके प्रमुख नगरोंका वर्णन करते समय उनकी तुलना अपने-अपने देशके बड़े नगरोंसे की है। उन्हीं वर्णनोंसे हम भारतीय नगरोंकी जन-संख्याका अनुमान लगायेंगे।

दिल्ली

एक फ्रान्सीसी यात्री बर्नियर भारतसे अपने देश वासियोंको दिल्लीका वर्णन भेजता है—

"अगर हम हिन्दुस्तानकी इस राजधानीका निरीक्षण करें और इसके महान् विस्तार एवं असंख्य दुकानोंका ध्यान करें; अगर हम यह याद रखें कि नगरमें उमरा लोगोंके अतिरिक्त कभी ३५ हजारसे कम सैनिक नहीं होते और प्रायः सभी सैनिकोंके स्त्रियाँ, बच्चे एवं बहुत से नौकर-चाकर हैं तथा ये नौकर और इनके मालिक सब अलग-अलग मकानोंमें रहते हैं; प्रत्येक मकानमें, चाहे उसमें कोई भी रहता हो, स्त्री-बच्चे भरे पड़े हैं; जब गर्मी मन्द पड़ जानेके कारण लोग अपने घरोंसे बाहर निकल पड़ते हैं तब गलियोंमें भीड़ हो जाती है यद्यपि बहुत-सी गलियाँ खूब चौड़ी हैं; गाड़ियाँ प्रायः सब चौपहिया हैं; अगर हम इन सब बातोंको ध्यानमें रखें तो पेरिस और दिल्लीकी जन-संख्याका मुकाबला करते हुए हमें अपनी

निश्चित राय कायम करनेमें हिचक होती है। मेरा तो यह खयाल है कि दिल्लीकी जन-संख्या हमारी अपनी राजधानीकी जन-संख्याके बराबर नहीं है तो उससे बहुत कम तो हो भी नहीं सकती।"[१]

बर्नियर कहता है कि दिल्लीमें ३५,००० योद्धा सदैव रहते थे। और प्रायः सभी विवाहित और बाल-बच्चेवाले थे। यदि हम बहु-विवाहकी प्रथापर, जो उस समय प्रचलित थी, न ध्यान दें तब भी इनकी स्त्रियोंकी संख्या ३५,००० तो मानना ही पड़ेगा। आजकल प्रत्येक विवाहिता स्त्रीसे उत्पन्न बच्चोंकी संख्याकी औसत ३·२ है। और मध्यकालमें यह औसत इससे अधिक ही रही होगी; क्योंकि उस समय शादियाँ कम उम्रमें हो जाती थीं। इस प्रकार बच्चोंकी संख्या भी कम-से-कम १,०५,००० रही होगी। फिर वह बताता है कि हर एक परिवारके साथ कई-कई नौकर थे, जो अपने मालिकोंकी तरह अपने परिवारके साथ अलग मकानमें रहते थे। यदि हम एक परिवारके साथ केवल दो नौकर ही रखें, तो उनकी संख्या ७०,००० के लगभग हो जाती है। इस तरह केवल नगरमें रहनेवाली सेनासे सम्बन्धित लोगोंकी संख्या २½ लाखके लगभग हो जाती है।

सेनासे असम्बन्धित नागरिकोंकी संख्याका अनुमान लगाना और भी कठिन है। किन्तु यह पढ़कर कि नगरमें अनगिनत दुकानें थीं, नौकर अपने मालिकोंसे पृथक् अपने-अपने परिवारोंके साथ रहते थे, और ऐसा कोई भी घर नहीं था जो औरतों और बच्चोंसे खूब भरा न हो और बहुत-से अमीर लोग कभी-कभी सैकड़ों नौकर रखते थे, तो यदि हम कहें कि इनकी संख्या भी कम-से-कम ५ लाखके लगभग रही होगी, तो सम्भवतः हम सत्यतासे बहुत दूर न होंगे। इस तरह दिल्ली नगरकी जन संख्या ७½ लाखके लगभग आती है। और इस अनुमानकी पुष्टि अन्य प्रमाणोंसे भी हो जाती है। लेखकको उस समयके पेरिसकी जन-संख्या ठीक-ठीक नहीं मालूम हो सकी है; किन्तु यह निश्चय है कि उस समय लन्दन पेरिससे काफ़ी छोटा था और लन्दनकी आबादी १६३६ में लगभग ७,००,००० थी। इस हिसाबसे दिल्ली की जनसंख्या ७ लाखसे १० लाखके बीचमें रही होगी।

लाहौर

सम्भवतः लाहौर किसी समयमें भारतका सबसे बड़ा नगर था। निकोलो मैनूशी वेनिसका एक यात्री था; जो यहाँ १७ वीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें आया था। लाहौरके विषयमें वह लिखता है—

"नगरमें सम्पत्तिशाली महान् व्यापारी लोग बसते हैं... मकान ऊँचे हैं और कुछ तो आठ मंजिले हैं। इस नगरकी जन-संख्याका अनुमान आसानीसे नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि कोतवालने मुझे बताया कि वह छः हजार बदनाम घरों (अड्डों) से साप्ताहिक कर उगाहता है। इस बातसे बुद्धिमान् लोग प्रकट रूपमें...की जनसंख्या जान सकते हैं। गुप्त रूपमें...की संख्या अलग रही।"[२]

बहुत कुछ माथा-पच्ची करनेपर भी इस विवरणसे लाहौर की जनसंख्याके विषयमें किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँच सकते। ६००० घरोंके प्राणी यानी कम-से-कम ३०,००० लोग ग़ैर कानूनी तरीकोंसे अपनी जीविका चलाते थे। पता नहीं आज-कल बम्बई और कलकत्तेमें इस वर्गमें आनेवाली जनसंख्या कितनी है। शायद उससे और शहरकी पूरी आबादीसे कोई सम्बन्ध स्थापित हो सके। विलियम फिञ्चने १६१० ई० में लाहौरका वर्णन इस प्रकार किया है :—

"लाहौर पूर्वके विशालतम नगरोंमेंसे एक है जो २४ कोस खाईसे घिरा हुआ है।...नगर और उसकी बाहरी बस्तियाँ छः कोस तक हैं।"[३]

डॉ० लायटने भी लाहौरका बिल्कुल ऐसा ही वर्णन लिखा है। मगर वह साफ़-साफ़ लिखता है कि लाहौर पूर्व-खण्डके अन्य नगरोंसे कहीं बड़ा है।

"लाहौर पूर्वका सबसे बड़ा नगर है क्योंकि खाई और दिवारका घेरा २४ कोस है। नगरकी बाहरी बस्तियाँ ६ कोस

१. Travels in the Mogul Empire; Bernier, Page 281.

२. Storia do Mogor, Vol. II, Page 186.

३. Purchas His Pilgrims, Vol. IV, Page 32.

लम्बी हैं। नगरकी गलियाँ सुन्दर एवं पत्थरोंसे पटी हुई हैं। मकान ऊँचे और ढंगसे बने हुए हैं।"[४]

लाहौरकी जन-संख्याका अनुमान इन पंक्तियोंके लेखकने एक परोक्ष रूपसे लगाया है।

कोर्याट नामक यात्री यहाँ लगभग १६१२ में आया था। वह लिखता है—

"लाहौरका सुन्दर नगर समस्त विश्वके विशालतम नगरों में से एक है, क्योंकि इसकी परिधि कम-से-कम १६ मील है और विशालतामें यह स्वयं कुस्तुन्तुनियासे बढ़कर है।"[५]

सौभाग्यसे कोर्याटने कुस्तुन्तुनियाका भी वर्णन लिख छोड़ा है :

"कुस्तुन्तुनिया, पेरा और गैलाटामें तुर्कोंके ५,७५० गाँव हैं, छोटे-बड़े ७७० टर्की (?) हैं और ४१८ कारवाँ सराय, ६५० सार्वजनिक स्रोत या कुँए, ४६८ निजी कुँए, ३८५ तन्दूर, ५८३ घोड़ोंसे चलनेवाली चक्कियाँ, १५० ईसाई गिरजाघर और एक लाख मकान हैं, जिनमें ५,००० दुकानें हैं।"[६]

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि 'गैलाटा' और 'पेरा, कुस्तुन्तुनियाके केवल बाहरी भाग थे और कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते थे। उसी समयके एक अन्य यात्रीने लिखा है कि 'गैलाटा'में केवल ६ गिरजाघर थे। एक यात्रीने तो 'गैलाटा' और 'पेरा'को एक ही स्थान बताया है। ऊपरका वर्णन वास्तवमें कुस्तुन्तुनिया ही का है। अब जहाँ एक लाख मकान और ५,००० दूकानें होंगी, वहाँकी जनसंख्या १० लाखके लगभग अवश्य ही रही होगी। कोर्याटके कहनेके अनुसार कुस्तुन्तुनियाकी परिधि १३ मील थी और लाहौरकी कम-से-कम १६। इस हिसाबसे ही लाहौर कुस्तुन्तुनियासे ६ वर्ग मील बड़ा था। और इसकी जनसंख्या अवश्य १० लाखसे कहीं ऊपर ही रही होगी। मैनूची, जो लाहौरमें बहुत दिन रहा था, लिखता है कि यदि शहरसे २ लाख आदमी भी बाहर चले जाते थे, तब भी ऐसा मालूम होता था कि एक भी आदमी कहीं नहीं गया है।"[७]

आगरा

आगरा और फतहपुर सीकरी भी मुगल राजधानियाँ थीं। फतहपुर केवल थोड़े ही दिनके लिए बड़ा शहर हुआ। फादर मोंसरेट ने लिखा है कि सन् १५८८ में आगरा चार मील लम्बा और २ मील चौड़ा था।[८] अकबरके समयमें अबुलफजलने लिखा है कि 'आगरा एक विशाल नगर है और जमुना नदी इस नगरके बीचमें ५ कोस तक बहती है।'[९] विलियम फिन्च जो यहाँ १६०८ के लगभग था, लिखता है,

"यह नगर अर्ध-चन्द्रके समान इस प्रकार बसा हुआ है कि कोई पाँच कोसकी लम्बाईमें खुश्कीकी ओर फैला हुआ है और इतना ही नदीकी ओर।"[१०]

आगरा शहरके बाहरी भागके खण्डहरोंको देखकर ऐसा मालूम होता है कि उपर्युक्त वर्णन ठीक है। सम्भव है कि जब शाहजहाँने नई दिल्ली—जहानाबाद—नहीं बसाई थी, तो आगरा दिल्लीसे बड़ा था। बर्नियरने दिल्लीका विवरण लिखनेके बाद लिखा है,

"उमरा तथा राजा लोगोंके वास-स्थानों तथा बढ़िया, पत्थर एवं ईंटोंके बने जन-साधारणके घरोंके समूह और विस्तारकी दृष्टिसे आगरा दिल्लीको कहीं पीछे छोड़ देता है।"

एक अन्य यात्रीने लिखा है कि आगरा इतना बड़ा था कि समय पड़नेपर दो लाख सैनिकोंके रहनेका प्रबन्ध हो जाता था।

आगराकी जन-संख्याका अनुमान एक अंगरेज यात्री राल्फ फिशके वर्णनसे लगाया जा सकता है, वह लिखता है,

४. De Laet : Travels in India, Page 51.
५. Early travels in India by Foster, Page 243.
६. Purchas His Pilgrims, Vol. VI. . .
७. Storia Do Mogor, Vol. II, Page 423.
८. Commentary of Father Monserate. Page 25.
९. अकबरनामा।
१०. Purchas His Pilgrims, Vol. IV Early Travels in India, by foster, page 182.

"आगरा बहुत बड़ा एवं घना बसा हुआ नगर है। यह पत्थरका बना हुआ है और इसकी गलियाँ सुन्दर एवं चौड़ी हैं। यहाँसे हम फ़तहपुर गए जहाँ कि बादशाहोंके दरबार लगते हैं। यह नगर आगरासे बड़ा है।...बादशाह आगरा और फ़तहपुरमें, जैसा कि विश्वसनीय तौरपर मालूम हुआ है, १००० हाथी, ३०,००० घोड़े १४०० पालतू हिरण और ८०० रखैल स्त्रियाँ रखता है।... आगरा और फतहपुर ये दो बहुत विशाल नगर हैं और प्रत्येक लन्दनसे अत्यधिक बड़ा है और बहुत घना बसा हुआ है। आगरा और फ़तहपुरका अन्तर १२ मील है और यह सम्पूर्ण मार्ग खाद्य पदार्थों एवं अन्यान्य वस्तुओंका बाजार ही बना हुआ है जो इस प्रकार भरा हुआ है मानो हम नगरमें ही हों और इतने अधिक मनुष्य हैं मानो हम ठीक बाजारमें ही हों।[११]

जिस समयका यह विवरण है, उस समय लन्दनकी जनसंख्या लगभग तीन लाख थी। मगर आगरा लन्दनसे बहुत बड़ा और घना बसा था। ऐसा अनुमान होता है कि उनकी जनसंख्या ४ से ६ लाखके बीचमें रही होगी और इतनी ही जनसंख्या फतेहपुर सीकरीकी भी थी।

विजयनगर

दक्षिण-भारतमें भी बहुत बड़े बड़े नगर थे और विजयनगर उनमें सम्भवतः सबसे बड़ा था। इस नगरका इतिहास सन् १३३५ ई० से आरम्भ होता है। इस समय मुसलमानोंने दक्षिणपर भी आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था और उनके आक्रमण तथा अत्याचारसे दक्षिणी भारतको बचाए रखनेके लिए यहाँके छोटे-बड़े राज्योंने अपनी स्वतन्त्र सत्ता न रखकर महान् विजयनगर हिन्दू-साम्राज्यकी स्थापना की थी। इस साम्राज्यमें लगभग समस्त दक्षिण-भारत आ जाता था। इस साम्राज्यके उत्थान और पतनका इतिहास बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद है। किन्तु इस समय हम केवल इसकी राजधानीका ही वर्णन करेंगे। विजयनगरका सर्व प्रथम वर्णन हमको एक इटैलियन यात्री निकोलो-काण्टीके लेखोंमें मिलता है। वह लिखता है कि, "विजयनगर ६० मीलके घेरेमें बसा हुआ था और उसके ९०,००० पुरुष युद्ध-कालमें शस्त्र ग्रहण कर सकते थे।" काण्टीके २० साल बाद फ़ारसके राजदूत अब्दुलरज्जाक़ने इस नगरका वर्णन निम्नलिखित शब्दोंमें किया है,

"मैंने इन चर्म-चक्षुओंसे विजय नगर जैसा शहर आज तक कभी नहीं देखा और नहीं आज तक मुझे यह ज्ञात हुआ कि सारे जगतमें इस नगरकी समता भी कर सकनेवाला कोई नगर है। इसका निर्माण इस प्रकार किया गया है कि सात दुर्ग और सात ही प्राचीरें एक-दूसरेको घेरे हुए हैं। पहले और दूसरे दुर्गके तथा दूसरे और तीसरे दुर्गके बीचका स्थान जुते हुए खेतों तथा घरों और वाटिकाओंसे संकुल है। तीसरे दुर्गसे सातवें दुर्ग तक बीचके स्थानमें हमें असंख्य लोगोंकी भीड़ें अनेक दुकानें एवं बाजार मिलते हैं। नृपतिके प्रासाद (महल) के पास बाज़ार एक-दूसरेके आमने-सामने बने हुए हैं।...विभिन्न पेशोंके लोगोंकी दुकानें पेशेवार अलग-अलग एक दूसरीसे सटी हुई हैं। जौहरी लोग मोती, माणिक, पन्ने, हीरे सरे बाज़ार बेचते हैं।"[१२]

बारथेमाने नगरका वर्णन करते हुए लिखा है कि विजय नगर एक बहुत बड़ा नगर है और यहाँका राजा युद्धके लिए सदैव ४० हजार घुड़सवार और ४०० हाथी तैयार रखता है और प्रत्येक हाथीपर ६ योद्धा युद्धके लिए जाते हैं।" इसी कालमें एक पुर्तगाली यात्रीने लिखा है :—

"गलियाँ और बाजार बहुत चौड़े हैं। वे सभी देशों एवं धर्मोंके अनगिनत लोगोंसे सदा भरे रहते हैं। नगरमें अपरिमित व्यापार-व्यवसाय होता है। नृपति सदा नौ सौ हाथी और बीस हज़ारसे भी अधिक घोड़े रखता है। नृपति एक लाखसे अधिक वेतनभोगी सैनिक, अश्वारोही तथा पदाति दोनों रखता है।"[१३]

१६ वीं शताब्दीमें एक यात्री पैसने लिखा है कि शहरकी सबसे बाहरी परिधि लगभग ७२ मील की थी। नगर

११. Hakluyat Society (Ralph Fitch) Vol. III, Page 219.

१२. A Forgotten Empire, Sewell, Page 90.

१३. Ibid, Page 118.

की जनसंख्याके बारेमें वह लिखता है :—

यहाँ मैं इस नगरका परिमाण नहीं लिख रहा हूँ, क्यों कि इस समूचे नगरको किसी एक जगहसे नहीं देखा जा सकता। परन्तु मैं एक पहाड़ी पर चढ़ गया और उसके ऊपरसे नगरके बड़े भागको देख सका। मैंने वहाँसे जो देखा वह मुझे विस्तारमें रोमके बराबर प्रतीत हुआ। इस नगरमें असंख्य लोग हैं, यहाँ तक कि मैं उनकी संख्या लिखते डरता हूँ कि कहीं उसे काल्पनिक न समझ लिया जाय।[१४]

इस कालके रोमकी जनसंख्या नहीं ढूँढ़ी जा सकी है। इसी यात्रीने एक अन्य स्थानपर लिखा है कि 'विजयनगरमें १,००,००० से अधिक मकान थे।'[१५] अब यदि प्रत्येक मकानके पीछे पाँच आदमी ही मान लें, तो विजयनगरकी जनसंख्या ५ लाख हो जाती है। किन्तु अनुमान है कि यह इससे कहीं अधिक रही होगी। उस समय सम्मिलित परिवार और बहु-विवाहकी प्रथाके कारण एक-एक घरमें १० से १५ आदमी तक भी रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं। और सम्भवतः विजयनगरकी जनसंख्या १०,००,००० से कम न रही होगी।

लेखक श्री डब्ल्यू० एच० मोरलैण्डके इस अनुमानसे सहमत नहीं कि भारतके बड़े-बड़े नगरोंकी जनसंख्या २½ लाखसे ५ लाखके बीचमें थी। वह अवश्य ५ लाखसे ७ लाखके बीचमें रही होगी। और १० लाखकी आबादीके भी कई नगर थे। मध्यकालीन भारतका लाहौर आधुनिक लाहौरसे दुगुना बड़ा था, दिल्ली कम-से-कम डेढ़ गुना और आगरा तिगुना। हिन्दू-साम्राज्य विजयनगरकी राजधानी अपने उन्नत कालमें मुगल राजधानियोंसे भी समृद्धिशाली और विशाल थी।

१४. Ibid, Narrative of Paes, Page 256.
१५. Ibid, Page 290.

बालमुकुन्दगुप्त-स्मृति-महोत्सव

मुरलीधर दिनोदिया

हरियाना ठेठ हिन्दी-भाषी प्रदेश है। इसका यह अर्थ नहीं कि हरियानेकी भाषा अथवा बोली आजकी पढ़ाई-लिखाईकी हिन्दी है। पश्चिमी हिन्दीकी बाँगरू शाखाका प्रदेश यह हरियाना है। हरियानेवालोंको इस बातका गर्व है कि उन्होंने दीर्घकालीन घोर सरकारी उपेक्षाके बावजूद अपनी संस्कृतिके प्रति प्रेम तथा श्रद्धाके कारण अपने बल-बूते पर हिन्दी नागरीको निजी प्रयत्नों द्वारा जीवित रखा।

एक हरियाना-निवासी हिन्दी-प्रेमी होनेके नाते मैं यह जानकर बड़ा हर्ष और गौरव अनुभव करता हूँ कि हिन्दीके आधुनिक कालमें हरियानामें बाबू बालमुकुन्द गुप्त और पण्डित माधवप्रसाद मिश्र सदृश तपस्वी-यशस्वी साहित्यिक और व्याख्यानवाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्मा जैसे हिन्दी वक्ता हुए हैं। यों तो उनसे भी पहले दादूपन्थी साधु निश्चलदास हरियानामें संस्कृत भाषा तथा वेदान्तके प्रकाण्ड पण्डित हुए हैं। उन्होंने 'विचार सागर' आदि कई वेदान्त-विषयक हिन्दी-ग्रन्थ उस कालमें लिखे थे जब कि संस्कृतज्ञोंका भाषामें लिखना उनके पाण्डित्यकी हीनताका द्योतक समझा जाता था। सो इस कारण उन्हें भी तिरस्कार सहना पड़ा था, जिसकी चर्चा स्वयं उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें की है। उनके ये ग्रन्थ हिन्दीमें आज भी अपने विषय (वेदान्त) पर प्रामाणिक माने जाते हैं और वेदान्त-प्रेमी अहिन्दी-भाषी भी चावसे उनका अध्ययन करते हैं। लेकिन ऐसी वन्दनीय विभूतिका नाम भी वर्त्तमान पीढ़ीके हिन्दी-साहित्यिकोंमें कितने जानते होंगे। हमारी कृतघ्नताकी पराकाष्ठा तो यह है कि हिन्दी-साहित्यके इतिहासकार तक उन्हें भूले हुए हैं।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त और पण्डित माधवप्रसाद मिश्रको ही हम कौन याद रखे हुए थे। वर्त्तमान पीढ़ी उनके नाम तक भूल रही थी। मैं तो अपनी जानता हूँ, मेरे जन्मसे पूर्व ही मिश्रजी और गुप्तजी परलोकवासी हो चुके थे। भला हो सहृदय पत्रकार पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीका, जो जब-तब

हमें अपने भूले-बिसरे साहित्यिक पूर्वजोंकी याद दिलाते रहते हैं। खुरच-खुरचकर, कुरेद-कुरेदकर विस्मृतिकी धूल-मिट्टीको हटाते रहनेका उनका प्रयत्न सतत जारी रहता है। अपने पूर्वजोंके प्रति कर्त्तव्य-पालनकी हमें प्रेरणा दे-देकर वे एक अनुकूल वातावरण तैयार करते रहते हैं। इसी प्रकार पण्डित झाबरमल शर्मा, हिन्दीके एक वयोवृद्ध सुलेखक, पत्रकार, साहित्यिकोंकी कीर्ति-रक्षामें प्रयत्नशील रहते हैं। उन्हींके परिश्रमके फलस्वरूप कई वर्ष पूर्व पण्डित माधवप्रसाद मिश्रके लेखोंका संग्रह प्रयागके इण्डियन प्रेस लि० से प्रकाशित हुआ था।

उपर्युक्त दोनों महानुभावोंकी प्रेरणा-परामर्श एवं परिश्रम का सुन्दर फल इस बार कलकत्तेमें 'बालमुकुन्दगुप्त-स्मृति-महोत्सव' के रूपमें देखनेमें आया। इस अवसरपर इन दोनोंके सम्पादकत्वमें दो सुन्दर सचित्र ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। 'बालमुकुन्दगुप्त निबन्धावली'में ७४० पृष्ठोंमें स्वर्गीय गुप्तजीके चुने हुए लेख-कवितादि संगृहीत हैं और 'गुप्त-स्मारक-ग्रन्थ'में करीब २५० पृष्ठोंमें स्वर्गीय गुप्तजीका जीवन-परिचय दिया गया है तथा शेष २०० पृष्ठोंमें महत्त्वपूर्ण संस्मरण-श्रद्धांजलियाँ हैं।

यह उत्सव स्थानीय युनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट हालमें गत ३१ सितम्बर तथा पहली अक्टूबरको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके प्राण, भारतीय राष्ट्रिय कांग्रेसके अध्यक्ष राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनके सभापतित्वमें सुसम्पन्न हुआ। सभा-स्थल खूब सजाया गया था। मंचपर स्वर्गीय गुप्तजीका बड़ा-सा चित्र लगा हुआ था। प्रवेश 'पास' द्वारा होता था, हाल ऊपर-नीचे खचाखच भरा था। आगत सज्जनोंकी सुविधाकी ओर पूरा ध्यान रखा जाता था। यद्यपि श्रीमान् टण्डनजीकी स्वीकृति दो वर्ष पूर्व मिल गई थी, तथापि उनके कांग्रेस अध्यक्ष चुने जानेपर प्रसन्नताके साथ-साथ 'गुप्त-स्मृति-महोत्सव-समिति' को यह आशंका हो चली थी कि कहीं वे समय न दे सके तो। पर राजर्षिकी अपूर्व हिन्दी-निष्ठा एवं वचन-पालनमें दृढ़ताके होते ऐसी आशंकाका अवकाश ही नहीं होना चाहिए। सो कांग्रेस-अधिवेशनकी तिथियाँ बदली जानेके कारण 'गुप्त-स्मृति-महोत्सव'की पूर्व निश्चित तिथि जो स्वर्गीय गुप्तजीकी ठीक ४३वीं निधन-तिथि होती है, बदलनी पड़ी और नासिकका कार्य भुगताकर श्रीमान् टण्डनजी यहाँ पधारे। उनके कलकत्ते में हुए स्वागत-सत्कार और व्यस्त कार्य-क्रमको देखकर फिर यह आशंका हुई कि उनका यहाँ जो मुख्य कार्य है वह कहीं गौण न पड़ जाय। परन्तु यह सब होते हुए भी उन्होंने उत्सवके कार्यको यथोचित रूपमें सम्पन्न किया। सभा-संचालन कार्यमें इस आयुमें भी श्रीमान् टण्डनजीकी दिलचस्पी, स्फूर्ति एवं सतर्कता युवकोचित थीं। छोटी से छोटी बात भी उनकी निगाहसे नहीं बच पाती थी। वास्तवमें उनका यह सिद्धान्त है कि जो भी कार्य किया जाय उसे पूरी निष्ठाके साथ किया जाय।

महोत्सवका प्रारम्भ 'वन्देमातरम्' गानके साथ हुआ। स्वागताध्यक्ष पश्चिम बंग एसेम्बलीके अध्यक्ष माननीय ईश्वरदास जालानका भाषण छपाकर वितरित किया गया था, जिसे उन्होंने पूरा पढ़ा। आपने संक्षेपमें इस बातपर प्रकाश डाला कि कलकत्तेका आधुनिक हिन्दीके विकासमें शुरूसे ही बड़ा हाथ रहा है और हिन्दी पत्रकारिताका तो जन्म ही कलकत्तेमें हुआ कहा जायगा जब कि यहाँसे सन् १८२६ ई० में हिन्दीका सर्वप्रथम पत्र "उदन्त मार्त्तण्ड" कानपुर निवासी पं० जुगलकिशोर शुक्लके सम्पादकत्वमें साप्ताहिक रूपमें प्रकाशित हुआ था। आपने स्व० बाबू बालमुकुन्दगुप्तके सम्बन्धमें बतलाया कि वे हिन्दी-उर्दूके प्रकाण्ड पण्डित थे और उर्दूसे हिन्दीमें आए थे। गुप्तजी त्यागी, तपस्वी, स्वाभिमानी, देशभक्त साधक साहित्यसेवी थे। उन्होंने आधुनिक हिन्दी भाषाके विकासमें बहुत बड़ा काम किया था। कोरे साहित्यसेवी ही नहीं, वे राष्ट्रकर्मी भी थे और तत्कालीन राष्ट्रिय जागरणके प्रतिनिधि थे। वे एक आदर्श पत्रकार थे। प्रायः ६ वर्ष 'हिन्दी बंगवासी' और तदनन्तर साढ़े आठ वर्ष 'भारतमित्र'के सम्पादकीय-पदपर विराजमान रहकर अपने ४२ वर्षीय लघु जीवनके १४ वर्ष गुप्तजीने कलकत्तेमें व्यतीत किए। जिस कलकत्तामें गुप्तजीने अपने जीवनका सबसे अधिक मूल्यवान समय बिताया, आज उनकी स्मृतिका आयोजन हम उसी नगरमें कर रहे हैं।

पश्चिम बंगालके राज्यपाल, महामहिम डा० कैलासनाथ काटजू महोदय, उत्सवके प्रधान अतिथि थे। आपकी संस्कृत-भक्ति प्रसिद्ध है और उसका परिचय आपने यहाँ भी दिया। आपने बतलाया कि श्रीमान् टण्डनजी मेरे गुरु हैं, जेलमें मैंने उनसे संस्कृत पढ़ी थी। आप ठहरे वकील, सो वकीलोंकी चिन्ता तो करनी ही थी। आपने कहा कि अंगरेजी तो जायगी ही, पर उसका स्थान यदि कोई एक भाषा न लेकर अनेक भाषाएँ आपसमें बाँट लेंगी तो बड़ी कठिनता होगी। जैसे प्रान्तीय हाईकोर्टोंके निर्णय यदि अपनी-अपनी भाषामें लिखे जाया करेंगे तो इससे जो भारी असुविधा होगी उसका अनुमान किया जा सकता है। उनकी वकीलोंके लिए यह चिन्ता एक प्रकारसे हिन्दी-हित-चिन्तन ही है। आपने टण्डनजीके सम्बन्धमें निजी संस्मरण सुनाकर अपने भाषणको और भी रोचक और मधुर बना दिया। आपने हरियानासे भी अपना सम्बन्ध जोड़ा और कहा कि मैं अपनेको मारवाड़ी मानता हूँ। यदि इसपर थोड़ा प्रकाश डाल देते तो और अच्छा रहता।

राजर्षि टण्डनजीने अपने भाषणमें भारतीय संस्कृतिके प्रति अपनी भक्ति और हिन्दी-निष्ठाका भरपूर परिचय देते हुए कहा कि हमारा साहित्य संसारकी किसी भाषाके साहित्यसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। और साहित्योंमें जो है, सो तो सब हमारे साहित्यमें है ही; पर हमारे यहाँ वह है जो अन्यत्र नहीं है। हिन्दीका भक्ति-साहित्य और कहाँ मिलेगा? आपने अंगरेजी कविताओंके अंश मौखिक सुनाए और उनके अर्थ समझाए और हिन्दी पदोंके अंश भी यत्र-तत्र अपने भाषणमें सुनाए। कबीरके तो आप विशेष भक्त हैं, उनके उद्धरण तो कई दिए। आपने कहा कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर केवल बंगालके ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रके हैं। इसी प्रकार स्व० बाबू बालमुकुन्द भी सारे देशके हैं। आपने अन्य भाषा-भाषियोंकी सुविधाकी दृष्टिसे हिन्दी-व्याकरणमें यथोचित सुधारके प्रति अपनी सहमति जनाई। यह एक अतीव आशाप्रद बात है, विशेषतया उन लोगोंके लिए जो टण्डनजीको परम्परावादी समझते हैं। भारतमें, बृहत्तर भारतमें, एशियामें ही नहीं, वरन् अखिल विश्वमें जो समुज्ज्वल एवं गौरवपूर्ण महान् भविष्य हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दीकी बाट जोह रहा है उसके प्रति हम हिन्दीवालोंका क्या कर्त्तव्य है—इसकी एक झलक श्रीमान् टण्डनजीके भाषणमें मिली। अन्तमें आपने आशा प्रकट की कि यह उत्सव पहला तो अवश्य है पर अन्तिम नहीं होना चाहिए, ऐसे उत्सव और भी होने चाहिए। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी तो सपने देखा करते हैं और कालान्तरमें उनके कई सपने सच्चे सिद्ध हुए हैं। उनका एक सपना है कलकत्तेमें 'हिन्दी-भवन'का निर्माण। आपने इस उत्सवमें भी अपना पुराना मनोरथ सुनाया जिसपर टण्डनजीने बतलाया कि इस कार्यके लिए लाख-डेढ़ लाख रुपएकी बात तो चली थी; पर मैंने कहा कि यह कार्य बड़ा है, इतनेसे क्या होगा, पाँच-सात लाख बिना कुछ बनेगा नहीं। टण्डनजीकी पैनी, तेज, स्पष्ट और मधुर आवाज श्रोताओंके लिए बड़ी सुविधाजनक एवं आकर्षक है। और उनकी ठेठ संस्कृत-गर्भित हिन्दी तो सुननेसे ही ताल्लुक रखती है।

उत्सवके दूसरे दिन स्थानीय मारवाड़ी बालिका विद्यालय की छात्राओंने स्वर्गीय गुप्तजीकी 'उर्दूको उत्तर' रचनाके आधार पर श्री नटवरजी द्वारा निर्देशित एक अभिनय दिखाया। लड़कियाँ बोलनेमें बहुत शीघ्रता करती थीं जिससे श्रोताओंको सुनने-समझनेका पूरा अवसर नहीं मिला।

बाहरसे सर्वश्री पं० चन्द्रबली पाण्डेय, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, चन्द्रकान्त मुदालियर (मद्रास), पं० श्रीरामशर्मा आदि अनेक साहित्यसेवी विद्वान् निमन्त्रित होकर पधारे थे। इन्होंने गुप्तजीके सम्बन्धमें अपने संस्मरण सुनाए और उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। अनेक स्थानीय हिन्दी-सेवी भी उपस्थित थे और सर्वश्री डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० श्रीकुमार वन्द्योपाध्याय, सजनीकान्तदास, केदारनाथ चट्टोपाध्याय, ताराशङ्कर वन्द्योपाध्याय, चपलाकान्त भट्टाचार्य, निहारेन्दुदत्त मजुमदार, हेमेन्द्रप्रसाद घोष, कविराज सुशीलकुमार सेन आदि बंगीय विद्वानोंने भी अपनी उपस्थिति द्वारा महोत्सवको अलंकृत किया था। सर्वश्री आर० आर० दिवाकर, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, श्रीप्रकाश, सम्पूर्णानन्द, डा० वासुदेवशरण, रायकृष्णदास,

डा० अमरनाथ झा, बाबूराव विष्णु पराड़कर, जुगलकिशोर बिड़ला, मौलिचन्द्र शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, सेठ गोविन्द दास आदि महानुभावोंने शुभकामनाके सन्देश भेजे थे।

कलकत्तेके और बाहरके अनेक हिन्दी-पत्रोंने उस दिन गुप्तजीके सम्बन्धमें लेख, कविता, टिप्पणी आदि प्रकाशित किए थे। स्थानीय 'बंगीय साहित्य परिषद'ने गुप्तजीके महत्त्वको दर्शाते हुए एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी जिसमें बंगीय विद्वानों से महोत्सवमें योग-दानकर गुप्तजीके प्रति अपनी श्रद्धा ज्ञापन करनेका अनुरोध किया गया था। इसके अतिरिक्त 'युगान्तर' 'आनन्द बाजार पत्रिका', 'सत्ययुग', आदि स्थानीय बंगला दैनिकोंने उस दिन गुप्तजीके सम्बन्धमें टिप्पणी, लेख आदि प्रकाशित किए जिनमें उनको 'बंग-बन्धु', देशनायक आदि कहकर याद किया गया और उनके साहित्यिक महत्त्व एवं देशभक्तिपर समुचित प्रकाश डाला गया।

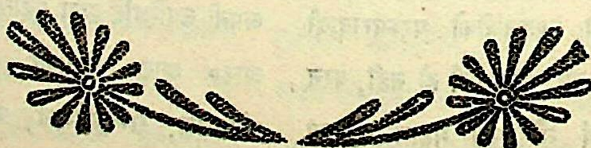
धर्मभीरु सज्जन श्राद्ध तो करते ही हैं, पर यह श्राद्ध अनोखा रहा जो अपने ढंगका पहला है। गुप्तजीके सुपुत्र बाबू नवलकिशोर, बाबू परमेश्वरीलाल और इनके (गुप्तजीके) भतीजे बाबू वंशीधरकी पितृभक्ति सर्वथा प्रसंशनीय एवं अनुकरणीय है। हमारे कितने ही वन्दनीय साहित्यिक पूर्वजोंके परिवारवाले तथा बन्धु-बान्धव सामर्थ्यवान् और विद्वान् हैं परन्तु कोई अपना कर्त्तव्य-पालन आज तक नहीं कर पाया। जो कार्य हम सबको करनेका था वह इन्होंने अपनी श्रद्धाके बलपर कर दिखलाया। 'स्मारक ग्रन्थों'के मुद्रण, प्रकाशनके साथ-साथ उत्सव आदिका सारा खर्च इन्होंने दिया है। और विशेष प्रसंशनीय घोषणा यह की गई कि पुस्तकोंकी आय इसी प्रकारके कार्योंमें लगाई जायगी। इनके परिवारके बच्चों तकको सेवा और प्रबन्ध-कार्यमें दिन-रात जुटे हुए देखकर एक आनन्द और उत्साह उमड़ता था।

हमारे पुराने पत्रकार और साहित्य-सेवी पं० झावरमल्लजी शर्मा हम सबके धन्यवादार्ह हैं। साहित्य-सेवियोंकी कीर्ति-रक्षा में इनका क्रियात्मक सहयोग सदासे रहा है। वास्तवमें कोरी शाब्दिक सहानुभूतिसे क्या होता है। इनके क्रियात्मक सहयोग विना यह सुन्दर कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता था। अपने दो वर्षके परिश्रमकी सम्पन्नता इस सुन्दर रूपमें देखकर आपका गला भर आया। हमें भी इनके सुन्दर सफलतापर अतीव प्रसन्नता हुई है।

कलकत्ता सारे देशमें हिन्दी-भाषियोंका सबसे बड़ा नगर है। आज यहाँसे हिन्दीके अनेक दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं। परन्तु हिन्दी-साहित्यिकोंका यहाँ कोई ठोस, सुन्दर संगठन नहीं देखा गया। यह अभाव यहाँ-वालोंको और बाहरवालोंको भी बहुत अखरता है। दूर-दूरसे पधारनेवाले हिन्दीके साहित्यिक नेता भी यहाँके साहित्यिकोंकी इस अवांछनीय परिस्थितिको देख ही गए हैं। हम समझते हैं इस अवसरपर यहाँवालोंको अपना यह अभाव और भी ज़्यादा अखरा होगा। यदि इससे प्रेरणा प्राप्त करके इस दिशामें सफल प्रयत्न किया गया तो इस उत्सवका यह भी एक हितकर और बड़ा प्रभावशाली सुफल समझा जायगा।

इस पुण्य कार्यमें यत्किञ्चित भी सहयोग देनेवालेने अपने कर्त्तव्यका पालन किया है। किसको धन्यवाद दिया जाय। हम सबका यह अपना ही कार्य था।

अन्तमें हम राजर्षि टण्डनजीकी यह आशा दोहराते हैं कि ऐसे महोत्सव हिन्दी-जगतमें और भी होंगे। चतुर्वेदीजी एवं शर्माजीने यह बतलाया भी कि स्व० गणेशशंकरजी विद्यार्थीके पुण्य स्मृतिमें आयोजनकी तैयारी हो रही है तथा आगे और भी योजनाएँ हैं। अब हम हिन्दीवाले भी स्व० साहित्यिकोंके प्रति अपने कर्त्तव्यके विषयमें जागरूक हो गए हैं, ऐसा दिखता है।



स्वदेश-आगमन

मटियाबुर्जमें साथियोंका वियोग और घर-गाँवका बर्ताव

स्व० पं० तोताराम सनाढ्य

[स्व० पं० तोतारामजी फ़ीरोज़ाबादके निकट हिरनगौ गाँवके निवासी थे। उनकी पुस्तक 'फिजीमें मेरे २१ वर्ष' ने एक हलचल मचा दी थी। उनका यह लेख अब तक कहीं प्रकाशित नहीं हुआ। महात्माजीने उनके विषयमें १२-१-४८ को नई दिल्लीमें अपने प्रवचनमें कहा था,—"वयोवृद्ध तोतारामजी किसीकी सेवा लिए बगैर गए। वे साबरमती आश्रमके भूषण थे। वे विद्वान् नहीं थे, मगर ज्ञानी थे। भजनोंके भण्डार होते हुए भी वे गायनाचार्य न थे। वे अपने एकतारेसे और भजनोंसे आश्रमके लोगोंको मुग्ध कर देते थे। जैसे वे थे, वैसे ही उनकी पत्नी थीं। वह तो तोतारामजीसे पहले ही चली गई।

"जहाँ बहुत-से आदमी एक साथ रहते हों, वहाँ कई प्रकारके झगड़े होते ही हैं। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं है कि जब तोतारामजी या उनकी पत्नीने उनमें भाग लिया हो, या किसी झगड़ेके कभी कारण बने हों। तोतारामजीको धरती प्यारी थी। खेती उनके प्राण थे। आश्रममें वर्षों पहले वे आए और उसे कभी नहीं छोड़ा। छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष उनकी रहनुमाईके भूखे रहते और उनके पाससे अचूक आश्वासन पाते। वे पक्के हिन्दू थे। मगर उनके मनमें हिन्दू, मुसलमान और दूसरे सब धर्म बराबर थे। उनमें छुआछूतकी गन्ध न थी। किसी किस्मका व्यसन न था। राजनीतिमें उन्होंने भाग नहीं लिया था, फिर भी उनका देशप्रेम इतना उज्ज्वल था कि वह किसीके भी मुकाबले खड़ा रह सकता था। त्याग उनमें स्वाभाविक था। उसे वे सुशोभित करते थे। ये सज्जन फिजी द्वीपमें गिरमिटिए मज़दूरकी तरह गए थे और दीनबन्धु ऐण्ड्रूज उन्हें ढूँढ़ लाये थे। उन्हें आश्रममें लानेका यश श्री बनारसीदास चतुर्वेदीको है। उनकी अन्तिम घड़ी तक उनकी जो कुछ सेवा हो सकती थी, वह भाई गुलामरसूल कुरैशीकी पत्नी और इमाम साहबकी लड़की अमीनाबहनने की थी। 'परोपकाराय सतां विभूतयः' (सज्जन पुरुष परोपकारके लिए ही जीते हैं) यह उक्ति तोतारामजीके बारेमें अक्षरशः सच थी।"—सम्पादक]

जब मैं फिजीमें था तब भारतवर्षमें मेरे घरपर मेरी मा और छोटे भाई थे। उसकी मददको मैं बराबर रुपया भेजता था। लगभग ढाई हज़ार रुपए मैंने उसको फिजीसे भेजे थे। वह मुझे हर चिट्ठीमें लिखा करता था, "चले आओ, तुम्हारे देखनेकी बड़ी लालसा है। हमारा दुर्भाग्य है जो तुम्हारी कुछ सेवा न कर सके।" मैं जब यह चिट्ठी पढ़ता था तब अपने छोटे भाईके प्रेममें घण्टों रोया करता था। अतः माताके दर्शनकी बड़ी अभिलाषा हुई। दिन-दिन मुझे भारी पड़ने लगा। प्रवासी भाइयोंके काम कुछ ऐसे थे कि वे बिना भारतवर्षमें आये हो नहीं सकते थे। इन सब कारणोंसे मैं अपनी पत्नीको साथ लेकर चलनेको तैयार हुआ। तब मेरे साथ मेरी सास भी तैयार हो गईं। इन माता और पुत्रीका इतना घना प्रेम था कि एक-दूसरेको न देखनेपर दिन-रात रोती रहती थीं, अतः उनको भी मैंने साथ ले लिया। उनकी अवस्था उस समय ५८ वर्षको थी। मैंने समझा कि मातृभूमिके अन्न-जलसे पला हुआ उनका शरीर मातृभूमिकी गोदीमें जाकर यदि छूट जायगा तो वे कृतार्थ हो जायँगी। सन् १९१४ ई० के मई महीनेकी ३ तारीखको हमारा जहाज कलकत्ता, मटियाबुर्जमें आ लगा। मातृभूमिके दर्शन करते ही फिजीके सब कष्ट भूल गये। नई आशाओंका आगमन हृदयमें होने लगा। माता और भाई-कुटम्बियोंके दर्शन आज होंगे, कल होंगे, यह विचार आते ही आँखोंमें आँसू भर आते थे, हृदय गद्गद हो जाता था। रोकर

जहाज़के कप्तानसे पूछते थे, "साहब कब किनारेपर उतारोगे ?" कोई अपना कपड़ा बाँध रहा है, कोई मिल-भेंट रहा है, कोई एक दूसरेसे विदा माँग रहा है। कोई रो-रोकर कहता है, "भाई माफ किहौ, छोह राखले रहौ।" सारे जहाज़में यही बातें हो रही थीं। फिजीकी कोई चर्चा भी नहीं करता था। मानों फिजी गये ही नहीं थे। बस क्या था 'प्रोटेक्टर औफ इमीग्राण्ट' आया। नाम पुकार-पुकारकर सबको किनारेपर उतारता गया। किनारेपर एक मैदानमें सब जमा हुए। घोड़ा-गाड़ियाँ आ लगीं। तैयारी चलनेकी होने लगी। चारों तरफसे आवाज़ आ रही है, 'भाई, कृपा रखना। भाई चिट्ठी जरूर भेजना। भाई हम तुम मुद्दत तक एक साथ रहे। अब ईश्वर मिलावेगा तो मिलेंगे। भाई, तुम घर जाकर मा-बापसे मिलकर एक बार जरूर हमारे गाँवको आना। भाई, जिन्दा रहे तो ज़रूर मिलेंगे, इत्यादि। कोई कहता, 'अरे भाई, गाड़ीवाले बंगाल बैंक ले चलो। अरे भाई स्टेशन चलो सीधे। अरे भाई ओ गाड़ीवाले, काली माईको ले चलो। अच्छा भाई जाते हो, दया राखियो"। कोई किसीको गले मिल रहा है। स्त्रियाँ एक-दूसरेसे लपटकर रो रही हैं। दूसरी सबको समझा रही हैं। अरे, गाड़ी तैयार है चलो। कोई कहता है, 'अरे चलो, घरमें कोई न घुसने देगा तो तीरथ-बरत करेगी।' कोई कहती, 'अरे गंगाजीमें डूब मरेगी तो गति हो जायगी।' इत्यादि बड़ा करुणाजनक दृश्य है। कुछ कहते नहीं बनता। एक घण्टेमें मैदान खाली हो गया। सुनसान है। कहाँ तो हाहाकार मचा था, कहाँ वहाँ अब चिड़िया तक नहीं बोलती। कोई कहीं गया, कोई कहीं गया। देखते-देखते सब आँखकी ओट हो गये। ४० बरसमें जाते-जाते फिजीमें इकट्ठे हुए थे। फिजीमें एक-दूसरेके दुःखमें प्राण देते थे। परस्परमें बड़ा प्रेम था। एक दूसरेसे निष्कपट प्रेम रखता था। ऐसा संयोग था कि मानो सब एक घरके हैं। वह संयोग था, यह एक घण्टेमें ही वियोग हो गया। संयोग-वियोग सृष्टिका मूल है। जो काम अनादिकालसे जगतका संयोग-वियोगके अधीन जैसा चला आता है चला जायगा, यह सिद्धान्त अचल है, यह विचार स्थिर करके मैं भी वहाँसे चला और कलकत्ता, धर्मतल्लामें मकान किरायेपर लेकर ठहर गया। कुछ दिन ठहरकर पीछे घर जाऊँगा। स्टीमरसे उतरते ही पाँच-छः दिन खूब आराम किया। निश्चिन्त होनेके बाद मैंने विचार किया कि अपने भाईको तार दूँ, क्योंकि तार देनेसे अपने भाईके अपने प्रति प्रेमकी परीक्षा मिल जायगी। पहला तार दिया, कोई जवाब न मिला। आठ दिनके बाद मैंने फिर तार दिया कि मैं कलकत्तेके धर्मतल्ला मकान नं० ४४ में ठहरा हूँ। मुझे दस्त हो रहे हैं, कमज़ोर अधिक हूँ। तार पाते ही मेरे पास चले आओ। तारका कुछ जवाब नहीं मिला, मुझे इसका बहुत दुःख हुआ। मैंने दो-चार जगह कलकत्ते में कुली-प्रथाकी कथा सुनाई। कालीके दर्शन किये, ठाकुरद्वारेके दर्शन किये फिर मैं अपने गाँवको चला। चलते समय भी अपने भाईको तार दिया कि फीरोज़ाबाद स्टेशनपर मिलना। लेकिन वहाँ जब मैंने अपने भाईको न देखा तब इक्का किराया करके अपनी धर्मपत्नी और अपनी सासके साथ गाँवमें पहुँचा। गाँवके पास पहुँचते ही मुझे एक बूढ़ेने पहचान लिया। ज्यों-ज्यों मैं गाँव की ओर जाता था त्यों-त्यों मेरे साथ लड़के, बड़े बूढ़ोंकी भीड़ साथ होती जाती थी। मैं घरपर पहुँचा। मेरी मा घरसे निकली और साथमें मंगल शगुनकी सामग्री कलस और दूब, तुलसी थाली में लाई। मेरे पास जैसे आई, मैं दौड़कर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। मेरी स्त्री भी मेरी माँके चरणोंमें सिर रखकर बैठ गई। मेरी माँके हाथोंसे अर्घ देनेपर लोटा छूट पड़ा और प्रेमके आँसू बहने लगे। मेरी माँने हम दोनोंको हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया और कहने लगी, "बाईस बरसके बाद ईश्वरने आज मेरे बेटेको मिलाया। बेटा अब मैं सुखसे मरूँगी। ईश्वर बेटा बहूको प्रसन्न रखे।" घरमें बड़ी भीड़ हो गई थी। मेरी सास मेरी माँसे मिली और उन्हें भेंट दी। उस भीड़में मेरा भाई भी बैठा था। मैंने पूछा, मेरा भाई कहाँ है। तब वह उठकर मेरे सामने आया। देखते ही मेरी आँखोंमें आँसू आ गये और मैंने उसको हृदयसे लगा लिया। सब बड़े बूढ़ोंसे मैं मिला और वे घरको चले गये। चार दिनके बाद अकेलेमें अपनी माँके सामने कुछ गिन्नियोंकी पोटली मैंने उनके हाथमें दी। मेरी माने कहा, "बेटा मैं रुपयोंका भूखी नहीं हूँ। ६२ वर्षकी हो गई, अब मेरे मरनेमें इने-गिने दिन हैं, अपने पास रखो।" यह कहकर

माने कुछ भी नहीं लिया। जो कुछ मेरे पास था अपने भाईको बता दिया और जितना उस समय उसने माँगा उसे दे दिया। मेरा भाई चाहता था कि सब रुपया उसके नामसे बैंकमें जमा किया जाय। लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। मुझे कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन करना था। उसमें रुपयेकी ज़रूरत पड़ेगी, भाईके स्वभावसे मैं अभी परिचित नहीं हूँ। क्या जाने कोई विघ्न हो, यह समझकर सब रुपया मैंने नहीं दिया। क्योंकि यह मुझे याद था कि 'वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुं हस्तगतं धनम् भोजनं च पराधीनेतिसः पुंसां विडंबना।"

जातिवालोंकी पुरोहितसे बातचीत

इस भाँति रहते हुए मुझे १५ पन्द्रह दिन बीते थे। अब मेरे पास जाति-बिरादरी गाँववालोंकी अनेक प्रकारकी खबरें आने लगीं। मेरा भाई नित्य एक-दो आदमीको मेरे पास लाता था और कहता था कि इसको ब्याजपर रुपया दे दो। कभी कहता जमींदारी ले लो, कभी कहता घर बनवा लो, कभी कहता अमुक आदमीका खेत गिरवीं करा लो। रोज़-रोज़ कहनेका फल यह हुआ कि १२००) रु० तमस्सुकोंपर उसने दिवा दिये। अब तो बड़ी भीड़ होने लगी। कोई कहता हमें बैल लिवा दो ब्याज सहित कार्तिकमें दे देंगे। जिसको दे देता वह खुश होता था, जिसको नहीं देता था, वह नाराज़ होकर चला जाता था। मेरी नाकमें दम था। गाँवके बड़े-बूढ़े मेरे पास आकर बैठते थे, तब यही प्रश्न करते, 'मेरो बेटो बड़ा राजा ऐ, बड़ौ चतुर ऐ। (पुचकारकर पीठपर हाथ फेरते हुए) "कहौ बेटा कितनौ ले आये, साँची कहियौ, हमका लये लेत ऐ।" बातें सुनते-सुनते मेरा दम घुटने लगा। यह चरचा १५ दिन तक चली। जब मेरा भेद न मिला तब बैठे रहे। लेकिन सब जगह यह बात ज़ाहिर हो गई थी कि "अरे बुतौ बड़ा रुपया लायौ ऐ" यह अफवाह बड़े जोरोंपर थी। गाँवमें सब लोग जहाँ-तहाँ कानाफूँसी करने लगे, 'अरे फिजीमें ब्याह करि लायो ऐ' 'हाँ-हाँ, ब्याहु भयौ तब बाके भाई पै चिट्ठा आई हो हमने सुनो। अरे भाई सुनौ, सुनौ। हमारो बात सुन तो लेऊ वाको बहू और वाकी सासुके बातचीत, चलन-व्योहारसे तो मालुम होत है काऊ भलो घरके ही ऐ। देखो, कका हम और तो जान्त नाए भाई, बातिनमें तो तोता उड़तुऐ। खूब कही अरे बेटा, बीजूको बच्चा हइ आयौ है। बाई ज्योंई मति जानियो औ ऐ ताऊ हूँ जो पूछतूँ के तोताने असलोख कहाँ सीखे हैं। श्लोक दादा औ बड़े दादा औ दादा अरे नेक मेरीऊ सुनौ, बस पण्डितसे कहि देउ वे सब ठीक कल्लिंगे। अच्छो तो आजु साँझकी बेर हू पण्डितके घरकूँ बोसौ बिसौ जाऊँगो।' एक ओर तो यह मनुष्योंमें कानाफूँसी हुई। दूसरी ओर स्त्रियोंकी कार्रवाई देखिये। स्त्रियाँ मेरे घरमें आकर बैठतीं और नाइनको साथ लातीं। नाइन मेरी स्त्रीसे कहती, 'लावऊ मूँड़ बाँधि देऊँ।' इस बहाने मेरी स्त्रीके कान छिदे हैं या नहीं। यदि छिदे हैं तो हिन्दूकी भाँति हैं। दूसरी स्त्रियोंको दिखाती थी। कोई कोई गोत्र नानी-नानाका और इनका पूछती थी। मेरी स्त्री इनको बराबर समझा देतीं, तब चुप होकर चली जाती थी। कभी-कभी मेरी स्त्रीका रसोई बनानेका समय होता था तब वे रसोई देखने आती थीं। चौकाकी क्रिया परोसने आदिपर बड़ा ध्यान रखती थीं। कभी-कभी झुण्ड-का-झुण्ड आकर विवाहकी रीति-रस्में पूछती थीं। जब कोई छिद्र उन्हें न मिला तब लाचार होकर बैठ गईं। और बड़ा प्रेम करने लगीं। गाँवके पण्डित मेरे पास आये और मुझसे कहा कि आज हमारे घरपर आना। मैं उनके घरपर गया। तब पण्डितजीने कहा, "आप हमारे पिताके पढ़ाये हुए हो। जो कुछ हम पूछें, सच-सच बताना। गाँवके लोग आपके विवाहके बारेमें बहुत तरहकी बातें करते हैं।"

पुरोहित और हमारी बातचीत

मैंने कहा, मेरे गुरुकी मृत्यु हो गई। यह मेरा दुर्भाग्य है जो उनके दर्शन नहीं हुए। आप उनके पुत्र हैं। मैं आपको गुरु समान और आपके निवास-स्थानको तीर्थ समान समझता हूँ। गुरुके सम्मुख असत्य कहना मैं पाप समझता हूँ। आप जो कुछ पूछेंगे, सब सत्य कहूँगा और उसपर विश्वास करना या न करना यह आपके अधिकारकी बात है, किन्तु निष्पक्ष, न्यायी होकर आपको विचारना चाहिए, यह मेरी विनय है। मैंने सब किस्सा उनको सुना दिया जिस भाँति विवाह हुआ और जहाज़में फिजी गया था। सब सुनकर पं० जीने नीचे लिखे प्रश्न किये—

पं०—आपका विवाह स्वप्नमें तो नहीं हुआ ?

मैं—नहीं, सगोत्रमें नहीं हुआ। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि सगोत्रमें विवाह करना निषेध है।

पं०—बिना जन्मपत्रीके तो विधि-वर्ग नहीं मिलता। क्या लड़की और आपकी जन्मपत्री वहां थी?

मैं—लड़कीका जन्मपत्र मौजूद था और मुझे अपने जन्म-दिनकी याद थी। सम्वत् १९३२ जेष्ठ मास शुक्ल पक्षमें एकादशी दिनके ग्यारह बजे नक्षत्रके द्वितीय चरणमें जन्म हुआ था। इसीसे पंडितोंने टीपणी बनाकर विधि मिला ली थी।

पं०—कोई खोटे ग्रह लग्न तो नहीं थे?

मैं—सिद्धान्त और प्रमाणका तो इस विषयमें मुझे ज्ञान नहीं, विवाह करानेवाले पंडितोंके विश्वासपर लग्न धर ली गई थी। किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि खोटे ग्रह लग्नमें विवाह होता तो यह सुखपूर्वक जोड़ा वर-वधूका आपके सामने न होता।

पं०—कौन विवाह पद्धतिके अनुसार विवाह हुआ?

मैं—ब्राह्म-विवाह पद्धतिसे।

पं० जहाज पर छुआछूत कैसे बची, कौन-कौन जातिके साथ खाया?

मैं—साथ खाना उसको कहते हैं जो एक ही थालीमें बैठ-कर दो जने खायँ। इस भांति मैंने किसीके साथ नहीं खाया। जहाजपर थोड़ी ही जगह थी, नौ सौ आदमी थे, मैं अपनी थालीमें अकेला खाता था। मेरी बगलमें चाहे जो बैठ जाय। यह काम परवस था। यही छुआछूत समझ लीजिये।

पं०—बस इसीका प्रायश्चित आप कर लीजिये।

मैं—कर चुका, गंगा-स्नान, ठाकुर द्वारा जगन्नाथके दर्शन, यह देखो दोनो जगहके पंडोंकी सही है।

पं०—गांवमें प्रायश्चित होना चाहिए।

मैं—क्या प्रायश्चित, बताइये?

मेरी पंचायत

पंडितजीने कहा कि बिना पंचायतके मैं अकेला किस तरह आपका प्रायश्चित बता दूँ। आप पंचायत इकट्ठी करके अपना फैसला कर लीजिये, जो कुछ होगा उसमें अपनी सम्मति मैं दूँगा। मैंने भी यह विचार किया कि कुली-प्रथाके विरुद्ध आन्दोलन करना है, मेरे फैसलेके लिए आनेवाले लोगोंको अरकाटियोंकी करतूत सब सुनाऊँगा। मैंने विज्ञापन छपाकर साठ-सत्तर गांवोंमें बँटवा दिया। निश्चित दिन सब लोग इकट्ठे हुए। मेरी जातिके सनाढ्य बहुत इकट्ठे हुए, शरबत पानीसे इनका सत्कार किया। मुखिया चुने गये। उन पंचोंमें पंडितजी भी थे और पंचोंने अपना काम शुरू किया, सब बातें मैंने कह सुनाई। अब प्रश्न होने लगे।

पंच—तुम फिजी चौं गये।

मैं—बाल्यावस्थामें पिताजीका देहान्त होनेसे पेटका दुःख था। हमारा ही घर एक दरिद्र था। गांवके और सब सुखी थे, हमारी किसीने मदद नहीं की। इसलिए उदर भरनेकी चिन्ता में चले गये। हमें अपना जातीय समझकर या गांववाला समझ कर आपसे कुछ भी मदद मिलती तो हम क्यों जाते, पेटकी चिन्ता ले गई।

पंच—तो फिजीमें ब्याहु तुमने चौं करौ?

मैं—इसी गांवमें से कुछ लोग कलकत्ते नौकरीको गये थे। कुलीन होकर भी कलकत्तेमें वेश्यागामी हो गये थे। सिफलिसकी बीमारी लेकर घर आये। गांवमें आये तो उनके चाचा-भाई दरियाव वैद्यसे मलहम बनवाकर रोज़ लाते थे। गर्मीके दर्दसे जब वे रातको डकराते तब गांव भरमें सुनाई देता था। उनके होंठ-माथे फोड़ोंसे सड़ गये थे। यह बात मुझे याद थी। मेरी तरुणावस्था थी। कहीं खोटे काममें पग न चला जाय, इस खोटे कामसे बचने और धर्मको पालनेके लिए ब्राह्मण कन्यासे ब्याह कर लिया।

पंच—सनाढ्यनका ब्याह सरजूपारीणमें नहीं होता।

मैं—सनाढ्य महामण्डलसे सनाढ्य मीमांसा नामकी पुस्तक निकली है। उसमें लिखा है कि संसार भरके ब्राह्मण मात्र सनाढ्य हैं। देश और कालके अनुसार न्यारे-न्यारे नाम हो गये हैं। जब यह सिद्ध हो गया तब सरजूपारीण भी उसी सिद्धान्तमें माने हैं तब विवाह करना क्या दोष है?

पंच—बात तो ठीक है भाई, पर रीति है नहीं। चाल नहीं है।

मैं—चालकी बात तो अलग है। लेकिन सरजूपारीण भी सनाढ्य हुए। क्योंकि प्रमाण जो बता चुका हूँ इससे विवाह

करना न्याय है। चाल तो कोई-कोई मनमानी होती है। यहाँ तो न्यायका पक्ष है, चालका नहीं।

पंडित पंच—समुद्र-यात्रा करनेवालेको जहाज़पर छुआछूत खाने-पीनेमें होती है। इसका प्रायश्चित्त अवश्य होता है।

मैं—हमारी जातिके कई प्रतिष्ठित लोग वकालत पास करके विलायतसे आये हैं। उनमें एक-दो आदमी आपके शिष्य हैं उन्होंने कुछ प्रायश्चित नहीं किया है। आप उनके यहाँ बराबर जाते हैं। आपने भी उनको कभी नहीं कहा। समुद्र-यात्रा पहले भी सब करते थे। सत्यनारायणकी कथा समुद्र-यात्रासे भरी पड़ी है। महाभारतमें समुद्र-यात्राके कई प्रयोग हैं। लेकिन निषेध इनमें नहीं लिखा। वर्त्तमान समयमें कितने ही ब्राह्मण डाक्टरी, वकालत पास करके आते हैं कोई नहीं पूछता। मैं तो परवस होकर गया था। आपत्तिका समय था।

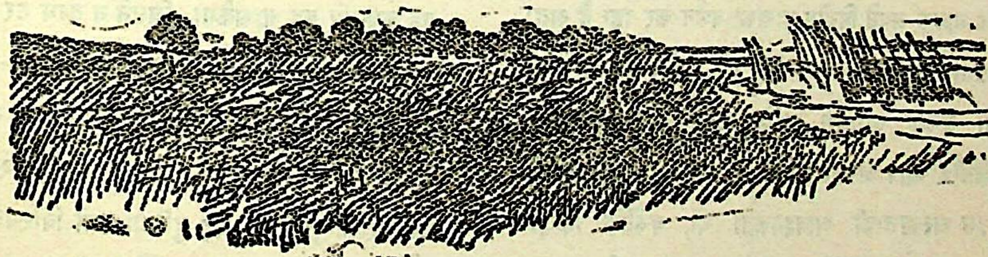
सभासद सब एक साथ—हाँ, हाँ ठीक है जहाज़की क्या बात है। रेलपै सब खाते हैं। आगरेमें नलका पानी पीते हैं। विलायततें बकीलु बनिके आवतु हैं, तिनैं तो कोई नाँय पूछत, छोटेनुकों जो पावतु है, सो दवावतु है। नेक दूरि ग्राम है। तामें लंवरदारके बेटाने बिड़िनियाँ खुले खजाने राखि लईं, सिव आँखिन तें देखत हैं। और खूब कनागत खाताएँ। ऐसे हम भौंतनुकूँ बता देंईं। इन्हीं गामनमें परदेस तें कोई आवें और अच्छी तरह व्याहुकर लावै ताकूँ बीसनि टिम्बि करत हैं, और खोटे करम करिके आवे, चुप-चाप बैठ जाय, ताय कोई कछू कैतु। ऊपरी आडम्बर भौत मान्त हैं।

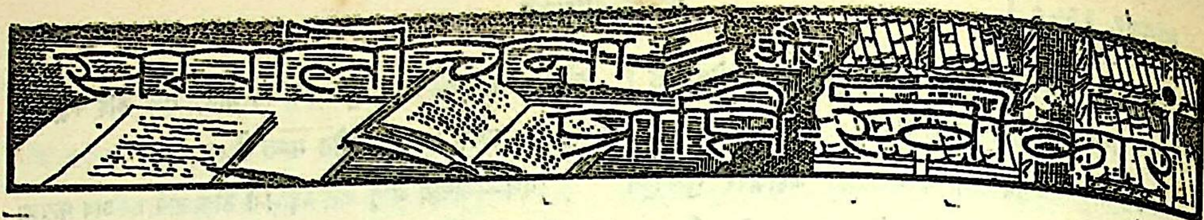
पंच—अच्छा भौतु बातें बढ़ामनो ठीक नायँ। अब फसला करिलेऊ। कहौ तुमारी सबनुकी का राय है।

सब सभासद—जा छौराने जा कुछ कही है। बीसबिसे साँचो है। बेदाग है। हमनै तो जिलै लैयो। लैलैयो अपनी छातीसे लगाय लैयो।

पंच—अच्छा तौ फद्द पै दस्तकत कद्देउ।

सब सभासदोंने यह लिखकर कि यह निर्दोष है, आज हमने अपनी जातिमें सम्मिलित कर लिया। और सबने दस्तखत फरदके ऊपर कर दिये। सिर्फ पंडित और उनके अनुयायी आठ आदमियोंने यह कैफियत लिखो कि वेद-शास्त्र पंडितोंको राय है तो हम शामिल हैं। तब पंचोंने दस्तखत करके फर्द मुझे दे दी। पीछे सब मामला तय हो गया। मेरे विषयमें यह अफवाह थी कि बहुत रुपया लाया है। एक दिन चोर मेरे घरपर आये लेकिन जगार थी। घात नहीं लगी। मेरे एक मित्रने मुझसे आकर कहा कि आपके यहाँ चोर रोज़ आते हैं। ऐसा न हो कि कहीं डाकू आ जायँ। इसी डरसे मैंने गाँव छोड़ दिया और फीरोजाबाद शहरमें आकर रहने लगा। फिजीसे लौटकर आनेवाले भाईयोंको अपने घर जाकर जातिवालोंको इजिलासमें जो इजहार देने पड़ते हैं उनको संक्षेपमें मैंने अपनी कथामें सुनाया है। इसको सब प्रवासी भाई अच्छी तरह मनन करेंगे।





कसक—लेखक श्री सुधाकर शुक्ल, संस्कृत-अध्यापक, सवाई महेन्द्र इण्टर कालेज, टीकमगढ़, विन्ध्य प्रदेश। मू० २ रु०

प्रस्तुत पुस्तक विप्रलम्भ शृंगारका एक गीतपूर्ण खण्ड-काव्य है। यों तो आज हिन्दीमें शृंगार-काव्यकी कमी नहीं है और खण्ड-काव्य भी अनेक लिखे गये हैं फिर भी हिन्दी भारतके इस नूतन सेवकने कुछ नवीनताके साथ ही अपनी यह भेंट अर्पित की है।

खण्ड-काव्यका कथानक सरल है। नायक नायिकासे बिछुड़ गया है। अन्यमनस्क होकर विचरते समय कवि उससे उसकी व्यथा पूछने लगता है और वह अपने ढंगसे अपनी प्रेयसीका सौन्दर्य तथा अपना आत्मसमर्पण वर्णन करते-करते मोहकी दशाको प्राप्त हो जाता है। उसी समय उसे कुछ वे शब्द सुनाई देते हैं जो एक बार उसने अपनी प्रेयसीसे कहे थे। वे शब्द उसे संज्ञाशील कर देते हैं। उस समय उसकी प्रेयसीकी सहचरी उसे नायिकाकी विरह-कथाका वर्णन सुनाती है और उसीके एक चित्रको छोड़कर जिसपर कठोरता सूचक 'कुलिश' भी अंकित था वह अन्तर्धान हो जाती है।

कहना नहीं होगा कि समूचे काव्यपर स्वाभाविक रूपसे संस्कृत-काव्य-धाराकी गहरी छाप पड़ी है। हिन्दीके लिये वह स्वास्थ्यप्रद है। लेखकने भाषा तथा ध्वनिका ऐसा सबल सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है कि उसके कारण कथानककी थोड़ी बहुत अस्पष्टता बिलकुल नहीं खलती।

चूँकि नायक अपने वियोग-दुःखका वर्णन कर रहा है अतः यह अस्पष्टता उस खण्ड-काव्यके लिए एक विशेष गुण हो गई है। इस ढंगका समावेश करके लेखकने सफलतापूर्वक अंगरेजी शैलीकी छाप अपनी कृतिमें दी है। मनोवैज्ञानिक रूपसे भी इस अस्पष्टताकी आवश्यकता थी, क्योंकि विरही प्रेमीजन बहुधा दिवा-स्वप्नोंमें उलझे रहते हैं और अगर दिवास्वप्नोंका अंकन दिया जावे तो उनकी अस्पष्ट छाया ही बनानी पड़ेगी। दूसरे विरही नायक यह नहीं जानता कि नायिका सचमुच दिवंगता हो चुकी है। या कि उससे वियुक्ता ही है। यह बात उसकी सखीने भी उससे स्पष्ट नहीं कही है। कविका इस विषयपर मौन रहना ही यह साबित करता है कि नायिका इस लोकमें नहीं रही और इस प्रकार यह एक दुःखान्त काव्य रह जाता है। कविने ऋतु, नख-शिख, प्रेम, वन आदि वर्णनके उपयुक्त अवसरको अपने हाथसे नहीं जाने दिया। लेकिन इन चीजोंका वर्णन रूढ़िके साथ नहीं नूतनताके ही साथ हुआ है।

सारे काव्यमें लय तथा भाषाका माधुर्य आद्योपान्त नियमानुसार है। हिन्दीमें इतनी कोमलकान्त पदावलि इतनी भाव प्रवणताके साथ केवल 'प्रसाद' ही प्रयुक्त कर सके हैं। अनुप्रास, यमक तथा लयका सुन्दर सामञ्जस्य माधुर्यगुणकी वृद्धिमें सहायक बनता है। प्रत्येक पद्यमें रस-चर्वणा मानो छलकी-सी पड़ती है।

एक स्थानपर 'कसक' शब्दकी बड़ी अच्छी परिभाषा कविने की है।

जो कौंध मनमुदिर उरमें, छिप क्षण-प्रभासी जाती।
सिसकी मसोस सहचारिणि रसभार 'कसक' कहलाती।

इस खण्ड-काव्यमें कविने लय तथा भावोंके चित्रणके अतिरिक्त कहीं-कहीं कुछ मीठी गम्भीर बातें भी कह दी हैं।

"इस अग्नि छुलित लतिकाके, प्रतिपात पातकी रेखा
वह कथमपि कह न सकेगा, जिसने न दग्ध उर देखा।"
"तुम स्वरस सींचती फिरती, तितली सम क्यारी-क्यारी
नारी हो समझ न पाई, क्या हाय! चाहती नारी।"
"पलकों पर जलकण जिसके, अधरों पर मधुर स्मित है।
उस नारीकी दुर्गतिपर, यह दुनिया क्यों विस्मित है?"

छपाईमें अवश्य कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं।

—श्री विश्वनाथ सिंह

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

विशाल भारत

के

प्रति अंकका विज्ञापन-दर

साधारण पूरा पृष्ठ	६०)
" आधा पृष्ठ या एक कालम	३२)
" चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	१८)
" चौथाई कालम	१०)
चित्रके पीछेका पूरा पृष्ठ	७०)
" " आधा पृष्ठ	४०)
कवरके दूसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	७०)
कवरके तीसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	६५)
सूचीके सामनेका पूरा पृष्ठ	७०)
" " आधा पृष्ठ	४०)
" " चौथाई पृष्ठ	२५)

अन्तिम पाठ्य-सामग्रीके सामनेका पृष्ठ	८०)
कवरका दूसरा पृष्ठ	९०)
" तीसरा पृष्ठ	८०)
" चौथा पृष्ठ	१२५)
" चौथे पृष्ठका दूसरा कलर ३०) फी कलर ।	
रिडिंग मैटरके साथ पूरा पृष्ठ	१००)
" आधा पृष्ठ	५५)
" चौथाई पृष्ठ	२८)
" चौथाई कालम	१५)

अन्तिम फरमाके अन्तमें छापा जायगा ।

क्रोड़पत्र

'विशाल भारत'के आकारका ९½×७ इंच

(विज्ञापनदाता द्वारा मुद्रित)

८ पृष्ठ	१२५)
४ पृष्ठ	८०)
२ पृष्ठ	४५)

नोट :—उपरोक्त दर जनवरी १९४९ से शुरू हुआ है ।

मैनेजर, 'विशाल भारत' १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता ९

विशाल भारत बुक डिपो

द्वारा प्रकाशित तथा प्रचारित पुस्तकें

१. जंगलके जीव सचित्र, सजिल्द—श्रीराम शर्मा ५)
२. प्राणोंका सौदा ,, ३॥)
३. शिकार ,, ३)
४. ,, उर्दू ,, ३)
५. बोलती प्रतिमा ,, २।)
६. शब्द-चित्र ,, २)
७. हमारी गायें ,, १॥)
८. पपीता ,, ।)
९. झाँसीकी रानी ,, ॥)
१०. नेताजी (अंग्रेजी) ,, २०)
११. स्वामीके पत्र—ज्योतिर्मयी ठाकुर ४)
१२. पिस्तौलका निशाना रूसी कहानियाँ—स्व० बृजमोहन वर्मा ४)
१३. प्रेम-संगीत—श्री भगवतीचरण वर्मा २॥)
१४. मानव ,, २)
१५. मीरा और उनकी प्रेमवाणी—ज्ञानचन्द जैन एम०ए० २)
१६. घूँघटवालीं-कहानी संग्रह—विश्वम्भरनाथ जिज्जा २।)
१७. त्रिलोचन कविराज—स्व० रवीन्द्रनाथ मैत्र २)
१८. खटोला—श्री आनन्दकुमार त्रिपाठी एम० ए० १।)
१९. बातचीत ,, ,, १)
२०. शुकपिक—श्री तारा पाण्डेय १)
२१. शिवशम्भुके चिट्ठे—स्व० बालमुकुन्द गुप्त ॥)
२२. सौगात (कहानी संग्रह)—परशुराम नौटियाल २)
२३. अलिफलैलाकी कहानियाँ—६ भाग ६)
२४. इजादोंकी कहानियाँ १॥)
२५. सरदारपटेल (जीवनी) ॥=)
२६. संयम शिक्षा—गाँधीजी ।=)
२७. मुक्ति-पथ—इलाचन्द जोशी ६)
२८. संघर्ष और समर्पण—कन्हैयालाल ओझा ५॥)
२९. स्वाधीनताके पथपर ६)
३०. पथिक—(गुरुदत्त) ६)
३१. स्वराज्य दान ६)
३२. उन्मुक्त प्रेम ६)
३३. विकृत छाया ४॥)
३४. भावुकताका मूल्य ६)
३५. रात चोर और चाँद ७)
३६. उपनिषदोंकी कहानियाँ १॥)
३७. महादेव भाईकी डायरी I, II १०)
३८. दिल्ली डायरी—गाँधीजी ३)
३९. भारतमें गाय I, II श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त १३)
४० गेहूँ और गुलाब (बेनीपुरी) ५)
४१. अजाने रास्ते—डा० सत्यनारायण सिंह ४)
४२. राजेन्द्र अभिनन्दन-ग्रन्थ २५)
४३ नेहरू अभिनन्दन हिन्दी, अंगरेजी, प्रत्येक ३०)
४४. जगतसेठ—(श्री पारसनाथ सिंह) ६॥)
४५. कुली (मुल्कराज आनन्द) ६)
४६. मुहम्मद रसूलिल्लाहकी जीवनी ५)
४७. रवीन्द्र साहित्य १७ भाग प्रत्येक २।)
४८. राजस्थानी कहावत I, II नरोत्तम स्वामी—मुरलीधर व्यास ६)
४९. राजस्थानके लोक गीत I, II ६)
५०. मधुर स्वप्न (राहुल) ५)
५१. बयालीस—प्रतापनारायण श्रीवास्तव ४)
५२. धरातल—शान्तिप्रिय द्विवेदी २॥)
५३. हिमानी ,, ,, ॥)
५४. अच्छी हिन्दीका नमूना—किशोरीदास बाजपेयी २॥)

विशाल भारत बुक डिपो

१६५।१, हरिसन रोड, कलकत्ता—७।


विशाल भारत
सम्पादक : श्रीराम शर्मा
दिसम्बर, १९५०

विषय-सूची : दिसम्बर, १९५०

सर्वविध अम्ल रोगोंका श्रेष्ठ प्रतिषेध

मैगसिल



टैबलेट

छातीकी जलन, गलेकी जलन, पेटका फूलना आदि
अम्ल रोगोंके सभी प्रकारके उपद्रवोंको
शीघ्र शान्त करता है।

गैस्टिक अल्सरमें विशेष फलप्रद



सभी सम्भ्रान्त औषधालयोंमें पाया जाता है।

 बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेसिउटिकल वर्क्स लि० 

कलकत्ता :: बम्बई :: कानपुर

निराश बहनों के लिए

गर्भ रोक :—

यदि कोई स्त्री बीमारी या कमजोरीके कारण बच्चा पैदा होनेके समय की तकलीफको सहन न कर सके वो दवाका सेवन करे। इसकी एक खुराकसे दो सालके लिए और तीन खुराकसे हमेशाके लिए गर्भका रहना बन्द हो जाता हैं। कीमत एक खुराक ५) रु० और तीन खुराक १०) रु० डाक खर्च अलग।

मासिक धारा :—

यदि किसी स्त्रीके मासिक धर्म रुक गए हों या बिलकुल होते ही न हों वो ये दवा सेवन करें। ये दवा इस कदर तेज हैं कि अन्दर जाते ही बच्चे दानीका मुँह खोल देती है। मासिक धर्म चाहे कितनी ही देरसे रुके हुए क्यों न हों फौरन चालू हो जाते हैं। कीमत १०) रु० डाक खर्च अलग।

खबरदार—गर्भवती स्त्री इसे सेवन हरगिज न करें क्योंकि इससे गर्भपात हो जाता है।

रतनबाई जैन, (७५) सदर बाजार, थाना रोड, देहली।

डा० फिलिप एस० हेञ्च, १९५० के ओषधिके ऊपर 'नोबुल प्राइज' दिए गए त्रिमूर्तियोंमें से एक ।

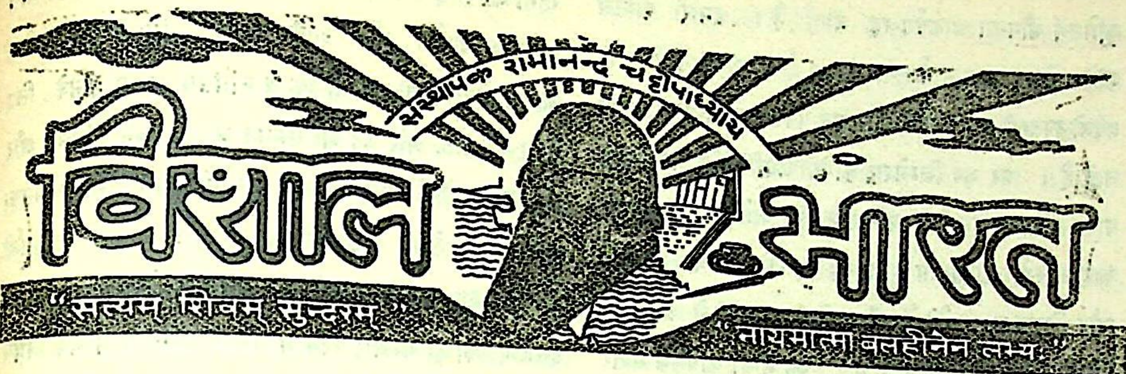
विलियम फाकनेर, संयुक्त राष्ट्रका उपन्यासकार, जिसे १९५० में साहित्यपर 'नोबुल प्राइज' दिया गया ।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

जननी

[श्री रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती



भाग ४६, अंक ६] कलकत्ता, दिसम्बर, १९५० [पूर्णांक २७६

सम्पादकीय विचार

कांग्रेसमें रहें या न रहें ?

हमारे कई मित्रोंने आपत्ति की है कि हम आखिर श्रीमान् टण्डनजीके पीछे इतने क्यों पड़ गए हैं, और कांग्रेसकी हम तीव्र आलोचना क्यों करते हैं। 'विशाल-भारत'के दो-चार पाठकोंने भी हमसे पूछा है कि हम इस बातका स्पष्टीकरण क्यों नहीं करते कि आचार्य कृपलानी द्वारा संचालित जनतन्त्रीय मोर्चेके विषयमें हमारी क्या राय है। जनतन्त्रीय मोर्चेके विषयमें तो हम स्वयं ही लिखते। रही श्रीमान् टण्डनजी और कांग्रेसकी बात, सो हम मित्रों और पाठकोंको विश्वास दिलाते हैं कि हम किसी दलबन्दीकी भावनासे कुछ नहीं लिखते। व्यक्तिगत रूपसे श्रीमान् टण्डनजीका हमारे प्रति स्नेह है, हम उनकी सेवाओंसे भी अनभिज्ञ नहीं हैं, पर कर्त्तव्यवश हमें जो ठीक बात जँचती है, उसे हम अवश्य लिखते हैं। अर्जुन का द्रोणाचार्यके प्रति कोई व्यक्तिगत द्रोह नहीं था, हमारा दलबन्दीकी दलदलसे कोई सरोकार नहीं। पर हम महसूस करते हैं कि अनेक कांग्रेस-पदाधिकारियोंके कारण कांग्रेस-संगठन छिन्न-भिन्न हो रहा है। देशवासियोंके सामने और स्वयं हमारे सामने, यह प्रश्न है कि कांग्रेसमें रहा जाय या नहीं। जब सूबा-कांग्रेस-कमेटीके अध्यक्ष बिरादरीकी सभाके भी सभापति हों, जब आर्यसमाजके प्लेटफार्मसे सूबा-कांग्रेस-कमेटीका जनरल सेक्रेटरी यह अपील करे कि आर्य समाजियोंको कांग्रेसमें आकर चुनावोंमें भाग लेना चाहिए, तब उनके खिलाफ़ अनुशासनकी कार्रवाही क्यों नहीं होती ? उदाहरणके लिए सूबा उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस-कमेटीके प्रधान हमारे मित्र आचार्य जुगलकिशोरजीको ही लीजिए। आचार्यजी अग्रवाल महासभा के सभापति हैं और सूबा कांग्रेसके भी अध्यक्ष हैं। उन्होंने दोनों मनोवृत्तियोंको समन्वय करनेकी जो दलीलें दी हैं, वे बड़ी ही लचर हैं। सूबा-कांग्रेस-कमेटी अथवा कांग्रेसके अध्यक्ष श्रीमान् टण्डनजीमें इतना दम दिखाई नहीं पड़ता जो उनके विरुद्ध अनुशासनकी कार्रवाही कर सकें। श्री अलगूराय शास्त्री उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस-कमेटीके जनरल सेक्रेटरी हैं। पिछले दिनों, यानी गत नवम्बरमें, साधु-आश्रम (जिला अलीगढ़) के उत्सवपर आर्य समाजके प्लेटफार्मसे जो भाषण उन्होंने दिया क्या वह अनुशासनकी परिधिमें नहीं आता ? श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय आर्य समाजके एक सुलझे हुए विशिष्ट एवं वयोवृद्ध कार्यकर्त्ता हैं। हम उनसे ही पूछते हैं कि वे ही इस बातका निर्णय करें कि श्री अलगूरायजीने जो भाषण दिया वह कांग्रेस-अनुशासनकी परिधिमें आता है या नहीं ? जब कांग्रेस के जिम्मेदार कार्यकर्त्ता बिरादरीकी सभाओंका वोटके लिए उपयोग करनेपर उतारू हैं, तब फिर उन आदमियोंके

लिए, जो लोकसेवा और राजनीतिमें बिरादरीको नहीं मानते, कांग्रेसमें कौन-सा आकर्षण रह जाता है। हमारी दृष्टिसे कांग्रेस सेवाका एक मार्ग तथा साधन है। मुनाफ़ाखोरी और पदलोलुपताकी प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देनेका वह साधन कदापि नहीं है। पर जब जिम्मेदार कांग्रेसी लीगी मनोवृत्तिका प्रतिपादन करें, तब हम जैसे व्यक्तियोंके लिए कांग्रेसमें रहनेका यदि कोई आकर्षण हो सकता है तो वह यह कि कांग्रेसमें जो शकुनि और शिशुपाल बने बैठे हैं और जो गुण्डाशाहीको प्रोत्साहन देते हैं, उनसे मोर्चा लिया जाय। यह मोर्चा कांग्रेसके भीतर रहकर कैसे लिया जा सकता है, इसीपर विचार करना है।

डिमाक्रेटिक फ्रन्ट

पाठकोंको मालूम है कि आचार्य कृपलानीके नेतृत्वमें कांग्रेसके भीतर एक नया दल क़ायम हुआ है, जिसका नाम है 'कांग्रेस डिमाक्रेटिक फ्रन्ट' अर्थात् जनतन्त्रीय मोर्चा। इस मोर्चेका मुख्य उद्देश्य यह है कि कांग्रेसमें भ्रष्टाचारके जो कीटाणु बढ़ रहे हैं, जो साम्प्रदायिक भावना उसमें घुस गई है और जो बातें कांग्रेसके उद्देश्यके विरुद्ध हैं उन सबको दूर किया जाय। दलबन्दीके कारण जो ग़ैर जिम्मेदार व्यक्ति कांग्रेसकी सत्ता हथियाये बैठे हैं, उनसे कांग्रेस-संघटनकी रक्षा की जाय। लोगोंने आपत्ति की थी कि कांग्रेसके विधानके अनुसार कांग्रेसमें कई दल नहीं रह सकते। पहले कांग्रेसमें समाजवादी, गांधीवादी और किसान-मजदूर प्रजा-पार्टीके लोग थे, पर अन्तमें समाजवादियोंको कांग्रेससे हटना पड़ा; किसान-मजदूर-प्रजा-पार्टीको भी अपना संघटन भंग करना पड़ा, और उससे बहुत पहले कम्युनिस्टोंको भी कांग्रेससे अलग होना पड़ा। ऐसी दशामें कतिपय कांग्रेसी पार्टीबाजोंने अनुमान लगाया कि आचार्य कृपलानीजीको या तो अपना दल भंग करना पड़ेगा, या फिर कांग्रेससे उन्हें अलग होना पड़ेगा। आचार्यजीने अपने दलको कांग्रेस-विधानके अन्तर्गत बताया है। कांग्रेस पार्टीके पण्डोंने उनकी इस बातका उपहास किया, पर जमशेदपुरमें माननीय जवाहरलाल नेहरूने इस जनतन्त्रीय मोर्चेके प्रति सहानुभूति प्रकट की है और कई जिम्मेदार आदमियोंकी राय भी हमें मालूम हुई है कि आगामी चुनावों पर कांग्रेसकी शुचिताके निमित्त आचार्यजीका यह मोर्चा बना रहना जरूरी है। कांग्रेसके सामने एक बड़ा नाजुक प्रश्न था। अगर आचार्यजी और उनके दलको कांग्रेससे निकालनेका आदेश होता है तो स्पष्ट है कि वे कांग्रेससे अलग होनेके लिए तैयार हो जाते, और यह भी सम्भव था कि जन-कांग्रेस और जनतन्त्रीय मोर्चा एक होकर आगामी चुनावोंमें कांग्रेसका मुकाबिला करते। पाठकोंको यह भी ज्ञात है कि आचार्यजी के दलमें कम आदमी नहीं हैं। कांग्रेस कार्य-समितिके सामने इसलिए बड़ा ही गम्भीर प्रश्न था कि जनतन्त्रीय मोर्चेके विषय में वह क्या निर्णय दे! यों तो श्रीमान् टण्डनजीके अध्यक्ष कालमें उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस-कमेटीकी काफ़ी दुर्गति हो चुकी है, और डर यह लगता है कि कहीं कांग्रेस-संस्था उनके कार्य कालमें छिन्न-भिन्न न हो जाय। इसलिए जनतन्त्रीय मोर्चेके मामलेमें टण्डनजी और उनके भक्तोंकी हालत साँप-छछूँदर की-सी हो गई है। कार्य-समितिने आचार्यजीको कांग्रेससे निकाला तो नहीं, हमारा ख़याल है कि उसमें इतना दम भी नहीं है कि वह आचार्यजीके विरुद्ध अनुशासनकी कार्रवाई भी कर सके। इस विषयमें दिल्लीके 'हिन्दुस्तान' (ता० ६ दिसम्बर) में एक समाचार है:—

"कांग्रेस-अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनने कांग्रेस प्रजातन्त्रीय मोर्चेके अध्यक्ष आचार्य कृपलानीको एक पत्र लिखा है जिसमें उनसे एकताकी जोरदार अपील की है। दो पृष्ठोंका यह पत्र आज रात आचार्य कृपलानीको दिया गया। कांग्रेस कार्य-समितिने इस मोर्चेके निर्माणपर कई घंटों तक विचार करनेके बाद अपनी अन्तिम बैठकमें अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनको यह अधिकार दिया था कि वे इस बारेमें आचार्य कृपलानीको एक पत्र लिखें।

"पता चला है कि इस पत्रकी ध्वनि समझौतेकी भावनासे पूर्ण है और उसमें इस प्रकारके मोर्चेके निर्माणकी वांछनीयता पर आपत्ति करते हुए उनसे एकताकी अपील की गई है। इस पत्रमें इस मोर्चेके निर्माणकी वैधता या अवैधताका प्रश्न नहीं उठाया गया है।

"ख़याल है कि आचार्य कृपलानी जल्दी ही अपनी

समितिके सामने यह पत्र पेश करेंगे और इसका समुचित उत्तर तैयार करेंगे।"

होगा क्या ?

पता नहीं आचार्यजी इस अपीलपर किस दृष्टिसे विचार करेंगे। ढंगोंसे ऐसा मालूम होता है कि कांग्रेस कार्य-समिति कोई समझौता चाहती है, और पार्टीके पण्डोंकी उसने अवहेलना की है। बड़ी कठिनाई इस बात की है कि नेहरूजीको छोड़कर कांग्रेसमें अन्य कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई नहीं देता, जो महात्मा गांधीकी भाँति सचाई और सिद्धान्तोंपर दृढ़ रहकर कांग्रेसके संघटनकी पवित्रताके लिए किसी दोषी निकटतम सम्बन्धी अथवा निकटतम मित्रको दूधकी मक्खीकी तरह निकाल बाहर कर सके। इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि ट्रूमैन और इटली, नेहरू और पटेलके सामने बच्चे हैं। पर फिर भी देशकी स्थिति सँभल नहीं रही। इसका कारण हम सब समझते हैं। हमारे देशके कई राज्योंमें कई मन्त्रीगण जो ऊधम मचा रहे हैं उनको मन्त्रिमण्डलोंसे निकाल बाहर करनेकी सामर्थ्य कितने मुख्य मन्त्रियोंमें हैं। कार्यकर्त्ता और साधारण व्यक्ति देशकी आन्तरिक स्थितिसे दुखी हैं। भोजन-सामग्रीकी कमी है, परेशानियोंका पारावार सामने है। जनताको कोई राहत नहीं मिल रही। प्रतिक्रियावादी तत्त्व जोर पकड़ रहे हैं, पार्टीबाजीमें मन्त्रीगण भी बुरी तरह लिप्त हैं। हम नहीं कह सकते कि आचार्य कृपलानी और कांग्रेस कार्य-समितिमें कोई समझौता होगा अथवा नहीं। भलाई देशकी इसीमें है कि यह झगड़ा न बढ़े, पर लक्षण महाभारतके-से हैं। कांग्रेस पार्टीके पण्डे बेतहाशा वोट बटोरनेके लिए मनमानी कर रहे हैं और उनका खयाल है कि अपने पिट्ठूओंसे कांग्रेसके पद भर दिए जायँ। जनताकी आज किसको फ़िक्र नहीं है? कांग्रेसके विरुद्ध जो प्रदर्शन होते हैं, वे इस बातके सबूत हैं कि लोग अभी सब्रसे काम लेते हैं। मन्त्रियोंके खिलाफ़ काले झण्डोंका प्रदर्शन जाहिर करता है कि लोगोंमें काफ़ी बेचैनी है। पुरानी नौकरशाहीके ज़मानेमें शान्तिमय प्रदर्शन करके, काले झण्डे दिखाकर, उसे निकम्मा और नालायक कहकर हमारे बहुत-से नेताओंने मार खाई और जेलकी यातनाएँ भोगी हैं। आज इन्हीं बातोंकी आवृत्ति असंतुष्ट लोग कांग्रेसी मन्त्रियोंके विरुद्ध करते हैं। इंग्लैण्डमें लोकशाहीके अनुयायी अपने विरोधियोंपर सार्वजनिक सभाओंमें सड़े अण्डे और गले टुमाटो फेंकते हैं और हमारे देशमें भी किसी-किसी मन्त्रीपर लोग जूते और ईंटें फेंकते हैं। हम अण्डे, टुमाटो, जूते और ईंटें फेंकनेके पक्षपाती नहीं हैं। पर ये सब बातें हवाका रुख ज़रूर बताती हैं, और वे इस बातका आदेश करती हैं कि अप्रिय मन्त्रीगण अपने पदोंसे हट जायँ और लोगोंको राहत दें, अन्यथा स्थित और भी गम्भीर हो जायगी और शायद वह वर्त्तमान शासनके क़ाबूसे भी बाहर हो जाय।

हास्यास्पद

पाठकोंको मालूम होगा कि देशमें चीनीके विषयमें गत वर्षोंमें कितनी अन्धेरगर्दी रही है। चीनी-सिंडीकेट और चीनीकी फैक्टरियोंमें जो संघर्ष चला और भारतीय पार्लमेण्टमें जो चर्चा रही, उससे जन-साधारणके मनपर यह प्रभाव पड़ा कि चीनी सिंडीकेटने उपभोक्ताओंका कोई विशेष खयाल नहीं किया। पिछले दिनों भारत सरकारने उत्तर प्रदेशमें चीनीके उद्योगको प्रोत्साहन देनेके लिए गुड़ बनानेके लिए कोल्हुओंके लाइसेन्स देनेकी व्यवस्था की। इस प्रकारकी नासमझीकी आज्ञा इस बातकी द्योतक है कि सरकारके सामने विकेन्द्रीकरणका कोई सवाल नहीं है। इस सरकारी आज्ञाके विरुद्ध आन्दोलन हुआ—स्वयं कांग्रेसी तबेलेमें लतियाव हो गया। कांग्रेसके कुछ नेता इस आज्ञाके पक्षमें बड़े जोरोंसे बोले। कुछने इसका विरोध किया। आखिर मजबूर होकर भारत सरकारको कोल्हू-सम्बन्धी लाइसेन्स आज्ञाको रद्द करना पड़ा। सवाल यहाँ यह पैदा होता है कि हमारी सरकार इस प्रकारकी लाल-बुझक्कड़ी आज्ञाएँ क्यों जारी किया करती है। यह आज्ञाएँ उसकी अनुभवहीनता और ग़ैर ज़िम्मेदारी प्रकट करती हैं। हमारी निजी रायसे कोल्हुओंपर किसी भी प्रकारका प्रतिबन्ध लगाना एक भयंकर भूल होती, और ऐसी मूर्खतापूर्ण आज्ञाके विरुद्ध यदि सत्याग्रह करना पड़ता तो हम भी उसमें शामिल हो जाते। महात्मा गांधीका नाम लेनेवाले हमारे ही भाई उनकी

विकेन्द्रीकरणकी नीति तथा ग्रामोद्योगकी बातका श्राद्ध अपने इस प्रकारकी विवेकहीन आज्ञासे करते हैं।

बम्बई सरकारको बधाई

समाचार पत्रोंमें यह पढ़कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई कि बम्बई सरकार शीघ्र ही 'क्रासवर्ड पज़िल'को क़ानूनन बन्द करेगी। हम देखते हैं कि 'क्रासवर्ड'के हल करनेमें लोगोंने अपने हज़ारों रुपये फूँक दिये हैं, और उन्हें १००)-१५०) भी नहीं मिले। लाखों रुपये प्राप्त कर लेनेपर दस-बीस हज़ार रुपये कोई बाँट दे, तो इससे एक-दो व्यक्तिका लाभ तो अवश्य हो सकता है, लेकिन अधिकांश लोगोंकी आर्थिक क्षति ही होती है। सन् १९३५-३६ में हमने भी 'क्रासवर्ड पज़िल'में सवा सौ-डेढ़ सौ रुपये खर्च करके केवल पच्चीस-तीस रुपये इनाम पाकर महसूस किया कि 'क्रासवर्ड पज़िल'की प्रवृत्ति अच्छी नहीं है। हम बम्बई सरकारको बधाई देते हैं कि वह अवश्य ही इस प्रतियोगिताको क़ानूनन बन्द करे।

आर्यसमाज और राजनीति

आर्यसमाजके प्रवर्त्तक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषोंमें से थे जिनके हृदयमें भारतको स्वतन्त्र—पराधीनता-पाशसे मुक्त—देखनेकी प्रबल भावना भरी हुई थी। स्वामीजीके एक-एक शब्दसे देशकी स्वतन्त्रताके लिये तड़प दिखाई देती है। वर्त्तमान युगमें सबसे प्रथम स्वामीजीने ही देशकी स्वतन्त्रताके लिये अपनी आवाज़ उठाई। उन्होंने बड़ी निर्भयतासे कहा कि विदेशियों द्वारा संस्थापित भले ही 'सुराज्य' हो ; परन्तु वह 'स्वराज्य'की समता कदापि नहीं कर सकता। सबसे प्रथम 'स्वराज्य' शब्द हमें स्वामी दयानन्द कृत 'सत्यार्थप्रकाश'में ही दिखाई देता है। स्वामीजी एक क्षणको भी 'विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त' होना नहीं चाहते थे। उनका मुख्य लक्ष्य था देशको आज़ाद कर उसमें भारतीय सभ्यता-संस्कृतिका प्रचार करना। इसीके लिये उन्होंने जीवन-भर उद्योग किया। वे मानवताके सबल समर्थक और सम्प्रदायवादके कट्टर विरोधी थे। इसीलिये उन्होंने उन सब विचार-धाराओंका प्रतिवाद किया जो मानव-मानवमें अन्तर, भेद-भावना और संकीर्णता उत्पन्न करनेवाली थीं। उस समय सम्प्रदायवादके विरुद्ध युद्ध करना विष-पान करनेके समान था, परन्तु स्वामीजीने किसीकी कुछ भी परवा न कर बड़ी ख़ुशीसे विष पिया और संकीर्णताका खण्डन किया। स्वामीजीने 'सत्यार्थ प्रकाश'में 'राजनीति'के सम्बन्धमें भी एक समुल्लास लिखा, जिसमें आदर्श राज्यकी लोकतन्त्रात्मक विधि बताई। यह विधि जितनी आजसे साठ-पैंसठ वर्ष पूर्व उपयोगी और क्रियात्मक थी, उतनी ही आज भी है। यह सब कुछ होते हुए भी आर्य-समाजने सामूहिक रूपसे राजनीतिमें भाग लेना उचित नहीं समझा। सैकड़ों-सहस्रों आर्य समाजियोंने अपनी व्यक्तिगत स्थितिसे स्वतन्त्रता-युद्धमें अवश्य भाग लिया। आर्य समाजने कई बार इस बातकी घोषणा भी की कि उसका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस राजनीतिपर स्वामी दयानन्दने इतना बल दिया, उससे अलग रहना आर्य समाजने उचित समझा। इसका कारण सम्भवतः यह था कि उसमें सरकारी लोग अधिक संख्यामें थे, और उसका नेतृत्व भी इन्हीं लोगोंके हाथोंमें था। हमारा विचार है कि सरकारी कर्मचारियोंकी परवा न कर यदि आर्यसमाजने सामूहिक रूपसे देशके स्वतन्त्रता-युद्धमें भाग लिया होता तो आज समाजका देशमें बहुत उच्च और प्रमुख स्थान होता। अस्तु,

उस समय आर्य समाजके नेता स्वतन्त्रता-युद्धमें भाग न लेनेका मुख्य कारण यह बताते थे कि देशमें कितनी ही राजनीतिक विचार-धाराएँ प्रचलित हैं, उनमें से आर्य समाज किसी एकको कैसे अपना सकता है, क्योंकि समाजमें तो विविध राजनीतिक विचार-धाराओंके व्यक्ति मौजूद हैं। किसी अंशमें यह बात ठीक मानी जा सकती थी, परन्तु आज स्वतन्त्र भारतमें भी वही अवस्था है, आज तो पहलेसे भी अधिक राजनीतिक विचार-धाराएँ हैं फिर अब आर्य समाज सामुदायिक रूपमें राजनीतिमें सम्मिलित होनेके स्वप्न क्यों देखने लगा है ! स्वप्न ही नहीं देखता, वह अपने ऐसे विचारोंको क्रियात्मक रूप भी दे रहा है। अभी पिछले दिनोंकी बात है, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनके 'कांग्रेस-अध्यक्ष' निर्वाचित होनेका प्रश्न उपस्थित था। चुनावकी रस्सा-कशी हो रही थी, इतने में उत्तर प्रदेशकी आर्य प्रतिनिधि सभाके कर्णधारों—प्रमुख

अधिकारियों—की ओरसे एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गई कि आर्य-समाजियोंको अपने मत राजर्षि टण्डनके लिये देने चाहिए। जो प्रतिनिधि सभाएँ स्वयं राजनीतिसे अलग रहकर अपने अधीनस्थ आठ सौके लगभग आर्य समाजोंको भी राजनीतिसे पृथक रहनेका निश्चय कर चुकी हैं, उसे राजर्षि टण्डन या किसीके लिये इस प्रकारके 'कनवैसिंग' करनेका क्या अधिकार ? आर्य समाज तो राजनीतिकी 'विविध विचारधाराओंसे' अलग-अलग है, फिर उसने 'एक विचार धारा'के पोषकको राय देने-दिलानेका क्यों साहस किया ? हम नहीं तो, इस प्रश्नको वे आर्यसमाजी अधिकारयुक्त वाणीसे पूछ सकते हैं, जो टण्डनजी के पृष्ठ-पोषक नहीं हैं। उनपर प्रतिनिधि सभाने अपना राजनीतिक आदेश लादनेकी क्यों चेष्टा की ? प्रतिनिधि सभा तो अपनेको राजनीतिसे अछूता रखनेकी घोषणा कर चुकी है। जो आर्य सदस्य राजर्षि टण्डनजीको अपना मत नहीं देना चाहते थे, वे प्रतिनिधि सभाकी उक्त आज्ञा क्यों मानें। यह उसका धार्मिक आदेश तो है नहीं, और राजनीतिसे वह बचती है, फिर अब उसे ऐसा करनेका क्यों खयाल हुआ ? इसका समाधान आर्य प्रतिनिधि सभाके अधिकारियोंको अवश्य करना चाहिए। और यदि अब स्वतन्त्र भारतमें उसे राजनीतिमें भाग लेनेका साहस हुआ है तो इसकी घोषणा भी स्पष्ट कर देनेकी जरूरत है। जिससे जो आर्य समाजी विविध राज-नीतिक धाराओंसे सम्बन्ध रखते हैं वे यह सोचें कि जिस 'राजनीतिक विचारधारा'का समर्थन प्रतिनिधि सभा करती है, उसका समर्थन वे भी कर सकेंगे या नहीं।

आर्य समाजका कर्त्तव्य

हम आर्य समाजको देशके लिए बड़ी उपयोगी संस्था समझते रहे हैं। उसने देश-हित-सम्बन्धी विविध क्षेत्रोंमें बड़ी दृढ़ता और सफलतासे काम किया है। कुछ दिनोंसे उसकी गति-विधि रुकी हुई-सी है। इसका कारण अधिकार-लिप्सा और पदलोलुपता है। संस्था-स्थापनाके साथ-साथ शासनकी भावना जाग्रत हुई और शासन-भावनाके साथ पद-लोलुपताके विचारोंने मन-मानसको मलीन किया। जिस रोगने आज कांग्रेसपर आक्रमण कर रखा है, उसीने आर्य समाजको ग्रस्त किया है। रोगका निदान हो चुका है, ओषधि की आवश्यकता है। ओषधि है निःस्वार्थ सेवा और सच्ची लगन। हमने समाचार पत्रोंमें पढ़ा कि हाल ही में इलाहा-बादमें जब स्थानीय आर्य समाजोंकी ओरसे राजर्षि टण्डनजीका अभिनन्दन किया गया, तो उन्होंने कहा कि 'आर्य समाज एक शक्तिशाली समुदाय है वह चाहे तो कांग्रेसमें फैले हुए दूषणों और दुर्गुणोंको दूर कर सकता है।' टण्डनजीसे हम सहमत हैं। वास्तवमें आर्य समाज इस कार्यमें सहायक हो सकता है। उसके पास साधन हैं और उसका संघटन सुदृढ़ है। परन्तु किसीका सुधार या संशोधन करनेके पूर्व आर्य समाजको स्वयं सुधरा और संशोधित रूप धारण करना होगा। पहले आर्य समाज अपनी शुद्धि करे तब दूसरोंके संशोधनमें प्रवृत्त हो। हमें खेद है कि आर्य समाजकी इतनी बड़ी शक्ति व्यापकताकी ओर न जाकर संकीर्ण भावनाकी ओर जा रही है। वह अपनेको साम्प्रदायिताकी ओर खदेड़े ले जा रहा है। यद्यपि स्वामी दयानन्दजीका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक और उदार था। हम तो समझते हैं, आज आर्य समाज देशसे भ्रष्टा-चारका भूत भगाने और नैतिकताकी मर्यादा स्थापित करनेका काम अपने जिम्मे ले ले तो एक बहुत बड़ी कमी पूरी हो सकती है। नैतिकताके अभाववश ही सारे झगड़े-झमेले और भ्रष्टा-चार दिखाई दे रहे हैं। नैतिकतासे ही सच्ची नागरिकताका उदय होगा। सच्ची नागरिकता ही सत्याचार और सद्भावनाकी जननी है। आर्य समाजको अपनी सारी शक्ति रचनात्मक कार्योंमें लगानी चाहिए। नैतिकताका प्रचार इस समय सबसे बड़ा रचनात्मक कार्य है, परन्तु इस कार्यमें सफलता उसी समय होगी जब प्रचारक भी नैतिक दृष्टिसे ऊँचे और आदर्श होंगे। स्वयं अनैतिक होकर कोई किसीको नैतिक नहीं बना सकता। यह हम मानते हैं कि आर्य समाज हिम्मत करे और कटिबद्ध हो जाय तो अपनी बिखरी हुई सारी संघटन-शक्तिको समेटकर बहुत बड़ा कार्य कर सकता है। जनताका सुधार ही कांग्रेस और सबका सुधार है।

अन्न और कपासपर बनस्पतिका प्रभाव

गो-सेवा-संघ-गोपुरी, वर्धाके मन्त्रीने हमारे पास निम्नां-कित पत्र प्रकाशनार्थ भेजा है :—

"हमारे प्रान्त (मध्य प्रदेश) में वनस्पतिके कारण अनाज और कपासकी खेतीपर कैसा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है—यह बतानेके लिए मैं यह लिख रहा हूँ। हमारे प्रान्तमें जब तक बनस्पतिके कारखाने नहीं थे, तब तक प्रति वर्ष १० लाख गाँठ कपासकी पैदावार होती थी जिसमें से करीब ५५ लाख बोरे बिनौले निकलते थे। इसके अलावा जुआर, गेहूँ, तूअर आदि अनाजकी पैदावार तो हमारे प्रान्तकी जरूरतसे इतनी अधिक होती थी कि दूसरे प्रान्तोंमें खुलेआम उनकी निर्यात की जाती थी। लेकिन अब चूँकि हमारे प्रान्तमें बनस्पतिके कारखाने खड़े हो गए हैं तो कपासकी पैदावार इतनी घट गई है कि सालाना सिर्फ ३ लाख गाँठें पैदा होती हैं जिनमें से १५ लाख बोरे बिनौले निकलते हैं। और अनाजकी पैदावार तो इतनी घट गई है कि अब हमारे प्रान्तवालोंको भी पूरा अनाज नहीं मिल पाता है।

"हिन्दुस्तानमें जबसे वनस्पतिके कारखाने प्रारम्भ हो गये, तबसे अनाज और कपासकी खेतीका फी एकड़ दायरा बहुत ही घट गया है और उतने ही प्रमाणमें मूँगफलीका बढ़ गया है। तेलोंको जमानेके इस उद्योगमें से सरकारको कुछ रेविन्यू मिल जाती है। यह बात सही है, लेकिन साथ-साथ यह भी नहीं भूलना चाहिए कि परदेशसे अनाज, कपास महँगे दामोंमें खरीदनेके कारण सरकारको कई गुना अधिक हानि भी उठानी पड़ती है। यदि दुर्भाग्यवश पं० ठाकुरदास भार्गवका बिल मंजूर नहीं हो सका तो जाहिर है कि हमारे देशको कई दिक्कतोंका सामना करना पड़ेगा। और वह अपनी जरूरतके जितना अनाज और कपास कभी भी पैदा नहीं कर सकेगा।"

बन्दरोंकी समस्या

हम खेतीके सिलसिलेमें सन् १९३५ से बन्दरोंको मारते आए हैं। लोगोंने हमारा विरोध भी बहुत किया, पर डा० भगवानदास और पूज्य बापूजीने हमारी बातका समर्थन किया। बन्दर-समस्याके सिलसिलेमें हम 'हरिजन सेवक'में प्रकाशित एक पत्रको श्रीमान् मशरूवालाकी टिप्पणी सहित दे रहे हैं :—

एक भाई लिखते हैं :

"हमारी सरकार आजकल 'बन्दरों'को मारनेके लिए हजारों रुपए खर्च कर रही है। इस बातसे हर कोई सहमत हो सकता है कि बन्दर फसलको नुकसान पहुँचाते होंगे। लेकिन उन्हें फसलको नुकसान पहुँचानेसे रोकनेके लिए उनकी हत्या ही एक मात्र उपाय नहीं हो सकती। हजारों बन्दर मार डाले गए हैं। और आगे भी यह हकीकत जारी रहनेवाली है। मैं मानता हूँ कि इस हकीकतसे हर आदमीका सिर शर्मसे झुक जाना चाहिए। मुझे डर है कि कोई ऐसा समय न आ जाय, जब मानव-जीवनके लिए पशु-हत्या अनिवार्य हो जाय। जब-जब मैं इस बातपर विचार करता हूँ, तब-तब मेरा हृदय दुःखसे भर जाता है। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि राष्ट्रिय सरकारके मन्त्री निर्दय हैं। वे मेरी अपेक्षा कहीं ज़्यादा बुद्धिमान और दयालु होंगे और हैं ही, इस बारेमें जरा भी शक नहीं है। लेकिन मेरे हृदयमें इस कार्यकी सचाईके बारेमें शंका है और इसी कारणसे मैंने आपको यह पत्र लिखा है।

'आप जैसे लोगोंको बन्दरोंको फसल बिगाड़नेसे रोकनेके लिए उनकी हत्याके बजाय दूसरा कोई रास्ता खोजना चाहिए। इस बातका विचार करता हूँ, तब मुझे स्व० कलापिकी यह कविता याद आती है। शिकारियोंको सम्बोधन करके वे कहते हैं कि इस प्यारे पक्षीको अनाज चुगने दो, क्योंकि वह अपनी जीविकाके लिए फसलका थोड़ा-सा ही हिस्सा माँगती है। ऐसी कोई चीज क्या बन्दरोंपर लागू नहीं हो सकती?

'हरिजन बन्धु' में यदि मार्ग-दर्शन किया जाय, तो मेरे जैसे कितने ही दयालु कहे जानेवालोंको मार्ग-दर्शन मिलेगा।"

अहिंसा और दया-धर्मका पालन करनेवालेको मच्छर जैसे जीवोंका नाश करना भी अच्छा नहीं लगेगा। और उन्होंने जंगली पशुओं तथा हरिण वगैरा प्राणियोंके शिकारकी भी निन्दा की है। परन्तु मानव-जीवनका इतिहास एक तरफ हिंसाके व्यवहारकी और दूसरी तरफ अहिंसाकी साधनाकी करुण और करुणा-भरी कहानी है। हिंसाके पहलूसे जाँचें, तो 'मानव-सभ्यता' या 'सुधरे हुए मानव-समाज'के नामसे हम जिसे पहचानते हैं, वह अनेक प्राणियोंकी हत्याका अखण्ड इतिहास है। अहिंसाके पहलूसे जाँचें, तो वह हिंसाको हलकी

या निर्मूल बनानेकी साधना और खोजका इतिहास है। बड़े-बड़े जंगलोंको काट और जलाकर, उसमें बसनेवाले शेर, बाघ, चीता, भेड़िया, हाथी, गैंडा, जंगली भैंसा, हरिण, रोज, अजगर, साँप, खेतीका नाश करनेवाले पशु-पक्षी, जीव-जन्तु वगैरा प्राणियोंका लगातार शिकार करके या उन्हें काबूमें करके मनुष्यने अपनी बस्तियाँ दुनियामें कायम की है। ईश्वरने दूसरे प्राणियोंके मुकाबले मनुष्यको कूदने, उड़ने, दौड़नेकी बहुत बड़ी शक्ति नहीं दी ; बड़ा राक्षसी शरीर या बल भी नहीं दिया और न उसे सींग, पैने नख या बड़े-बड़े दाँत वगैरा ही दिये हैं। उसे केवल एक विशेष शक्ति दे दी है। वह शक्ति चारके बदले दो लम्बे अवयवों (पाँवों) पर खड़े रहकर चलनेकी और दूसरे दो लम्बे अवयवों (हाथों) से चीजें पकड़ने और काम करनेकी है। इसके फल-स्वरूप उसकी रीढ़ दूसरे प्राणियोंकी तरह आड़ी और टेढ़ी रहनेके बजाय खड़ी, सीधी और तनी हुई बनने लगी। इसका नतीजा यह हुआ कि उसका सिर बढ़ गया और उसकी स्मृति तथा विचारशक्ति बढ़ी। दूसरी तरह तो उसमें भी दूसरे प्राणियों जैसी ही भूख, प्यास, काम, क्रोध, हिंसा आदि वृत्तियाँ बनी रहीं। इन वृत्तियोंसे प्रेरित होकर उसने हिंसा और उसकी सारी युक्तियोंका उपयोग करके 'राज्य', 'सभ्यता', 'संस्कृति', 'धर्म' वगैरा बड़े-बड़े आकर्षक और सुन्दर नामोंवाले समाज कायम किये हैं और शहरों, गाँवों, महल्लों, मन्दिरों वगैराकी सुन्दर रचना की है। इसे सिद्ध करनेके लिए उसने धर्मोंके नियम भी उस ढंगसे बनाये। तरह-तरहके पशुयज्ञों, सर्पयज्ञों, राक्षसों (यानी जंगलके लोगों) के संहार, युद्ध वगैराको धर्मका नाम दिया।

इससे जो ऊब गये और विचार करने लगे, उनमें अहिंसा-धर्मकी बुद्धि और साधना उत्पन्न हुई। अभी तक वह मानव-समाजके छोटे-से हिस्सेमें और उसमें भी समुद्रमें बूँदकी तरह ही खिली है।

बन्दरों, कुत्तों और अनाज खानेवाले पशु-पक्षियोंका शिकार इस भूख, प्यास, सुधार, सुखकी तृप्तिका ही एक हिस्सा है। जीवनके संघर्षमें यह अनिवार्य है। आज तो सरकारें, म्युनिसिपैलिटियाँ, ग्राम पंचायतें वगैरा इससे बच नहीं सकतीं। ऐसी हिंसा किये बगैर समाजके जीवित रह सकने और साथ ही समृद्ध हो सकनेकी कल्पना आज तो नहीं की जा सकती। ऐसा आग्रह रखनेवाले आदमीको कोई मन्त्रिमण्डल या पंचायत अपना सदस्य नहीं बनायगी। अर्थात् आज तो व्यक्ति ही ऐसा आग्रह रख सकते हैं।

जीव मात्रकी हिंसा किये विना यदि मनुष्य-जातिको जीना हो, तो उसे 'सुधरे हुए' और 'सभ्य' माने जानेवाले जीवनका मोह छोड़ना चाहिए। अपरिग्रही और दिगम्बर बनना चाहिये। कुदरती तौरपर पैदा हुए फल-फूलों या पत्तोंका आहार करना चाहिये या विज्ञानकी शोधको इस हद तक पहुँचाना चाहिये कि हरएकको 'अलाउद्दीनका जादूका चिराग' मिल जाय। या आध्यात्मिक शक्तिका इतना विकास करना चाहिए कि संकल्प-मात्रसे धन-दौलत, अन्न-वस्त्र, सन्तति वगैरा सब कुछ मिल जाय। ऐसा सतयुगका स्वप्न मनुष्यने देख तो रखा ही है। हम कामना करें कि भविष्यकी प्रजा यह स्वप्न सिद्ध करे। लेकिन इस समय तो हमें कलियुगके मेहनत करके धन्य-धान्य सम्पत्ति पैदा करनेवाले मनुष्यके तौरपर विचार करना उचित होगा।

इस युगमें अहिंसाका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग यह माना जाना चाहिये कि हम कम-से-कम मनुष्य-मनुष्यके बीच तो अहिंसाकी स्थापना करें। हिंस्र-से-हिंस्र पशु भी अपनी ही जातिका संहार नहीं करते। बाघका एक झुण्ड दूसरे बाघके झुण्डपर हमला करता नहीं देखा जाता। कभी करता भी है, तो वह क्षणिक ही होता है। उसकी याद हमेशा ताजी रखकर, पीढ़ी-दर-पीढ़ी 'बैरका बदला' लेनेका धन्धा वे नहीं करते। वे एक दूसरेको लूटसे-ठगते नहीं। मनुष्य ही ज़्यादा-से-ज़्यादा अपनी जातिसे शत्रुता रखता है। इससे हम बचें, यह इस युग के लिए अहिंसा-धर्मका सबसे महत्त्वका पहलू है।

अन्तरराष्ट्रिय परिस्थिति

गत माससे अन्तरराष्ट्रिय परिस्थिति इतनी पेचीदा और विषम हो गई है कि विश्वके सभी राष्ट्रोंको भय है कि कहीं द्वितीय महायुद्ध शुरू न हो जाय। पाठक जानते हैं कि दुनिया

तीन प्रकारसे बँटी हुई है। एक सोवियत गुट्ट है, जिसके साथ मध्य यूरोपके कई राष्ट्र तथा एशियाका विशाल राष्ट्र चीन है। दूसरे गुट्टमें संयुक्त राष्ट्र अमरीका, इंगलैण्ड तथा उनके साथ अन्य राष्ट्र हैं। तीसरे प्रकारके भी कुछ राष्ट्र हैं, जो इन दोनों गुट्टोंसे बिल्कुल अलग हैं और इन गुट्टोंमें से किसीके साथ नत्थी नहीं होना चाहते। इनमें से एक राष्ट्र हमारा भारतवर्ष भी है। पिछले दिनों संयुक्त राष्ट्रोंकी सेना द्वारा कोरिया-युद्धमें रूसकी प्रतिष्ठाको भारी धक्का लगा था। रूसकी ओरसे इसका जवाब दिया गया, चीन द्वारा तिब्बतपर आक्रमण तथा चीनी फौजोंको उत्तरी कोरियामें आक्रमण करने को प्रोत्साहन देना। हिन्द चीनमें भी कम्यूनिस्टोंने ज़ोर पकड़ा। एक प्रकारसे कम्यूनिस्टोंकी ओरसे दक्षिणी-पूर्वी एशियापर अपना प्रभाव जमानेका सफल प्रयत्न हुआ। अमरीकी उस प्रयत्नके उत्तरमें, जिसके द्वारा संयुक्त राष्ट्र अमरीका प्रशान्त महासागर तथा दक्षिणी-पूर्वी एशियामें अपना प्रभाव जमाना चाहता था, चारों ओर जनरल मैक आर्थर और संयुक्त राष्ट्र अमरीकाकी तूती बोलने लगी। मैक आर्थरने अपने एक रेडियो-भाषणमें कहा कि सन् १९५० के बड़े दिन तक उत्तरी कोरियापर संयुक्त राष्ट्रोंकी फौजें विजय प्राप्त कर लेंगी और अमरीकन सिपाही मज़ेमें अपने घर वापस चले जायँगे। पर कूटनीतिमें रूस और चीनने अमरीकाके दाँत खट्टे कर दिए। सं० राष्ट्रोंकी सेनाओंको मंचूरियाकी सीमाके निकट तक बढ़ने दिया और तब लगभग चार लाख चीनी सिपाही संयुक्त राष्ट्रिय फ़ौजोंपर इस तरह टूट पड़े जैसे बाज लवे पक्षीपर टूट पड़ता है। एक तहलका मच गया। वीर तथा विजयी संयुक्त राष्ट्रिय सेनामें भगदड़ मच गई। अमरीकाकी अपार वायु-सेना चीनी आक्रमणको न रोक सकी। और संयुक्त राष्ट्रिय सेनाको दक्षिण कोरियाकी ओर लौटना पड़ा। संयुक्त राष्ट्रिय सेनाकी वीरतामें कोई शक नहीं, पर टिड्डी-दलको कैसे रोका जाता। अमरीकाने माँग की कि ऐटम बम चीनियोंपर फेंका जाय। रूसके प्रति रोष प्रकट किया गया। सुरक्षा-परिषदमें चीनके मामलेको पेश किया गया, पर रूसने अपने वीटोंसे काम लिया, और तब जनरल असेम्बली बुलाई गई और यू० एन० ओ० की जो थुक्का-फ़ज़ीहत वहसमें हुई, उससे संयुक्त राष्ट्रकी प्रतिष्ठामें बहुत अन्तर पड़ गया। युद्धके बादल-से मँडराने लगे, बेचैनीका वातावरण छा गया और इंगलैण्डके प्रधान मन्त्री एटलीने अमरीकाके राष्ट्रपति ट्रूमैनसे अमरीका जाकर भेंट की। सब समस्याओंपर विचार किया गया और उन्होंने निम्नांकित दस सूत्री योजनाकी घोषणा की जो सूक्ष्म रूपसे इस प्रकार है :—

(१) शान्तिकी रक्षा स्वतन्त्र संसारकी शक्तिको दृढ़ करने, भय अभाव तथा असंतोषके कारणोंको दूर करने तथा जनतन्त्री जीवन-पद्धतिके प्रसारके लिए वैदेशिक नीतिके सामान्य उद्देश्यों-पर पूर्ण मतैक्य।

(२) सामान्य उद्देश्योंकी रक्षाके लिए संयुक्त कार्रवाई।

(३) कहीं भी आक्रमणकारीको संतुष्ट अथवा पुरस्कृत नहीं किया जायगा।

(४) समझौता वार्ता द्वारा कोरियामें लड़ाई बन्द करनेके लिए तैयार।

(५) ब्रिटेन और अमरीकाके बीच साम्यवादी चीनको संयुक्त राष्ट्र संघका सदस्य बनानेके प्रश्नपर मतभेद है वह सामान्य उद्देश्योंकी रक्षाके लिए संयुक्त कार्रवाईमें बाधक नहीं बनने दिया जायगा।

(६) फारमोसाका प्रश्न शान्तिपूर्ण ढंगसे इस प्रकार हल होना चाहिए कि फारमोसाकी जनताके हितोंकी रक्षा हो तथा प्रशान्तकी शान्ति और सुरक्षा कायम रहे। इस प्रश्नपर सं० रा० संघके विचार करनेसे उपर्युक्त उद्देश्योंकी प्राप्ति हो जायगी।

(७) युद्ध रोकनेके लिए यह आवश्यक है कि उत्तरी अटलांटिक संधि राष्ट्र तुरन्त ही अपनी प्रतिरक्षा अवस्थाको दृढ़ करें।

(८) अमरीका और ब्रिटेनकी सैनिक शक्ति यथासम्भव तेजीसे बढ़ाई जाय तथा शस्त्र-निर्माण बढ़ाकर सब स्वतन्त्र देशोंकी सहायता की जाय।

(९) प्रतिरक्षा तथा आवश्यक नागरिक जरूरतकी वस्तुओंमें प्रयुक्त कच्चे मालका उचित वितरण करनेके उद्देश्यसे अन्तर-राष्ट्रिय कार्रवाई।

(१०) राष्ट्रपति ट्रू मैनका श्री एटलीको यह आश्वासन कि अणुबमके उपयोगकी शायद कभी जरूरत ही न पड़े और यदि स्थितिमें कोई परिवर्त्तन आए तो उससे श्री ऐटलीको अभिज्ञ रखा जायगा।

उपर्युक्त दस सूत्री घोषणासे स्पष्ट है कि दस सूत्री वार्ता से विश्वमें शान्ति-स्थापनाकी कोई आशा नहीं। दुनिया जानती है कि इंग्लैण्ड चीनको राष्ट्र-संघका एक सदस्य बनाना चाहता है, और अमरीका इसका विरोधी है। इसलिए इस विषयपर समझौता होना आसान काम नहीं है। यह समझौता, कि अमरीका कोरिया तथा फारमोसाकी समस्या युद्धसे न करके विचार-विनिमय और लिखा-पढ़ी तथा शक्तिसे करनेको तैयार है, कोई माने नहीं रखता। यह तो रपट पड़ेकी हर गंगा है। अणुबमका प्रयोग, हम जानते हैं, अमेरिकन राष्ट्रकी रक्षाकी खातिर अत्यन्त भयंकर परिस्थितिमें होगा और इसकी प्रतिक्रिया यह भी हो सकती है कि कहीं रूससे लड़ाई न छिड़ जाय। कई युद्ध-विद्या-विशारदों का यह भी मत है कि रूस यूगोस्लाविया तथा मध्य युरोपके अन्य हिस्सोंपर आक्रमण करना चाहता है, और एशियामें उसकी प्रवृत्ति छद्मवेश मात्र है। जो कुछ भी हो, स्थिति अत्यन्त गम्भीर है। भारतके प्रतिनिधिने यह प्रयत्न किया है कि चीनी फ़ौजें कोरियाकी ३८वीं अक्षांश रेखाको पार न करें। भारतवर्षकी ओरसे माननीय नेहरूने बहुत पहले यही बात कही थी।

उधर मिस्रने माँगकी है कि अंगरेजी सेनाएँ वहाँसे हटा ली जायँ। टर्कीमें बेचैनी है। पाकिस्तान और अफगानिस्तान की तनातनी बढ़ रही है और इस प्रकार तृतीय महायुद्धकी विभीषिका उग्र रूपसे सामने आ रही है। हमारा निजी मत तो यह है, जो गलत भी हो सकता है कि इस विषम परिस्थितिके होनेपर भी इस समय तृतीय महायुद्धका आरम्भ नहीं हो सकता, लेकिन यह निश्चय-सा दीखता है कि यह युद्ध होकर जरूर रहेगा, क्योंकि अस्त्रों और शस्त्रोंकी होड़में अमरीका और रूस जुटे हुए हैं। जब कभी हथियारोंकी होड़ दुनियामें होती है, तब यह होड़ महायुद्धका रूप धारण कर लेती है। ट्रू मैन और एटलीके मिलनसे यह बात हो गई कि दोनों गुट्ट आगामी महायुद्धकी तैयारीके लिए प्राणपणसे चेष्टा कर रहे हैं। स्थिति गम्भीर है, चारों ओर विस्फोटक पदार्थ फैला हुआ है। कब और कैसे इस विस्फोटकसे महायुद्धका धड़ाका होगा, यह लिखना कठिन है।

हमारी आन्तरिक परिस्थिति

अन्तरराष्ट्रिय परिस्थितिसे अति भयंकर और चिन्ताजनक है हमारी आन्तरिक परिस्थिति। चोरबाजारी और भ्रष्टाचार रूपी जालमें देश इतनी बुरी तरह फँसा है कि जनताकी दुर्गति हो रही है। महँगी, दुर्भिक्ष, पदलोलुपताके कारण लोग त्रस्त हैं। कांग्रेसकी पारस्परिक फूटके कारण हमारी स्वतन्त्रता खतरेमें है। कई सूबा कांग्रेस-कमेटियाँ अपनी मूर्खताके कारण गुण्डाशाही और अन्य दूषित प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन दे रही हैं। साम्प्रदायिक संकीर्णता मुँह बाये निगलनेको तैयार है। उदाहरणके लिए उत्तर प्रदेशीय सूबा-कांग्रेसके अध्यक्ष श्री जुगुलकिशोरजी दोनों रकाबोंमें पैर दे रहे हैं, यानी साम्प्रदायिकताका भी पोषण वे अपने व्यवहारसे करते हैं और सूबा कांग्रेसके भी वे सभापति बने हुए हैं। अकालकी समस्या सबको परेशान कर रही है। अन्न-संकटसे सभी परेशान हैं। उधर कई राज्योंके मन्त्रिगण अपनी अक्लका दिवाला पीट चुके हैं। एक फैसला करते हैं, और कुछ ही दिनों बाद उसे बदल देते हैं। कभी गुड़ बनानेके कोल्हुओंपर लाइसेन्स लेनेकी रुकावट लगाई जाती है, तो कभी कण्ट्रोलोंके पक्षमें मन्त्री लोग गला फाड़-फाड़कर व्याख्या देते दिखाई देते हैं। अपनी प्रशंसा करते वे नहीं अघाते। एकआध मन्त्रीपर सार्वजनिक सभामें जूते और ईंटोंकी वर्षा भी हुई है। खैर बात इतनी ही है कि मध्यकालीन युग नहीं है वर्ना कोई भी राष्ट्र हमारे देशपर हमला कर सकता था। स्थिति सँभलनेके बजाय बिगड़ ही रही है। कोरे भाषणोंसे लोग नाराज़ हैं। वे खाने-पीनेकी राहत चाहते हैं। ईमानदार सरकारी नौकर और ईमानदार गैर सरकारी लोक-सेवी काफ़ी परेशानीमें हैं। दूध पीनेवाले मजनूँ तथा गुण्डे मौज कर रहे हैं। परमिटों और कण्ट्रोलके कारण रसद मन्त्री अपनेको निरंकुश समझे बैठे हैं। हमें आन्तरिक

स्थितिके विषयमें बड़ी चिन्ता है। हम उन लोगोंमें से हैं जो यह महसूस करते हैं कि अन्न-उत्पादनके लिए सबको जुट जाना चाहिए। राष्ट्रिय संकट-कालमें हमें अपने विरोधको भी भूल जाना चाहिए। पर हमें डर है कि हमारे अनेक मन्त्रियोंका दिमाग इतना फिर गया है कि उन्हें बरसातके अन्धेकी तरह चारों ओर हरा-ही-हरा सूझता है। इनके विरोधमें जो प्रदर्शन होते हैं, उसको ये पार्टीबाजी समझते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि जनता-जनार्दनकी आवाज एक तरहसे परमात्माकी आवाज है। इतनी तुनकमिजाजी मन्त्रियोंमें क्यों है कि वे अपने आलोचकोंकी बात भी सुननेके लिए तैयार नहीं। यदि यही मनोवृत्ति रही तो देशकी आन्तरिक स्थिति और भी खराब होगी। कोरी योजनाओं और शाब्दिक लबड़-धोंधोंसे काम नहीं चलेगा। क्या हम आशा करें कि हम लोग आन्तरिक स्थितिकी गम्भीरताको समझकर सक्रिय रूपसे रचनात्मक कार्यक्रममें जुट जायँगे और कांग्रेस और शासनमेंसे भ्रष्टाचारियोंको निकालनेमें सफल होंगे।

नेपालकी परिस्थिति

'विशाल-भारत'के किसी पिछले अंकमें हम नेपालकी कुछ चर्चा कर चुके हैं। नेपालमें नेपालके सम्राट् पाँच सरकार देवताके समान हैं। वहाँका शासन-सूत्र वहाँके प्रधानमन्त्री तीन सरकारके हाथमें है। पिछले दिनों नेपाल-कांग्रेस और नेपालकी राणाशाहीके बीच संघर्ष प्रारम्भ हो गया। वहाँके सम्राट् त्रिभुवनवीर विक्रमशाहको नेपाल छोड़ना पड़ा, और वहाँके प्रधान मन्त्रीने नेपालके शिशु राजकुमारको गद्दीपर बैठा दिया। महाराज त्रिभुवनवीर विक्रमशाहने गद्दी छोड़ी नहीं है। भारत सरकारने भारतमें उन्हें शरण दी है। सरदार पटेलने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि भारत सरकार नैपालके तीन वर्षीय शिशु राजाको नैपालका राजा माननेके लिए तैयार नहीं। ११ नवम्बरको नैपाली कांग्रेसकी विद्रोही सेना बीरगंजमें प्रवेश कर गई। भारत सरकारने नैपाल और भारतके बीच सशस्त्र व्यक्तियोंका आना-जाना रोक दिया। १८ नवम्बरको लड़ाई जारी रही और एक सप्ताह बाद बीरगंज नैपाली कांग्रेसके हाथसे निकल गया। २७ नवम्बरको जनरल कैसर शमशेर जंगबहादुर राणा और नैपालके विशेष मन्त्री जनरल विजय शमशेरजंग नई दिल्ली आए और भारत-सरकारसे नैपाल की स्थितिपर बातचीत आरम्भ की। असलियत यह है कि नैपालके राणाओंमें दो दल हैं। एक दल तो यह चाहता है कि नैपालमें सुधार कर दिए जायँ और दूसरा दल, जिसके नेता नैपालके वर्त्तमान प्रधान मन्त्री हैं, यह चाहता है कि कुछ सुधार तो कर दिए जायँ, पर प्रधान मन्त्रीके अधिकार ऐसे ही बने रहें। यह हम मानते हैं कि नैपालकी जनतामें फिलहाल इतनी एकता और संगठन-शक्ति नहीं है, जो नैपाली शासनकी बागडोर सँभाल सकें। समयकी माँग है कि नैपालके दक्रियानूसी शासनमें बुनियादी परिवर्त्तन किए जायँ, वहाँका प्रधानमन्त्री जनता द्वारा चुना जाय और नैपालके महाराज अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रोंके राजाओंकी भाँति अपने अधिकारोंको व्यवहृत करें। नैपालकी समस्याके कारण ब्रिटिश सरकारमें भी बेचैनी है, क्योंकि अंगरेजी सेनामें गोरखे भर्ती होते हैं। नैपालका महत्त्व भारतवर्षके लिए बहुत है। यदि तिब्बतमें कम्यूनिस्टों का बोलबाला बना रहा, तो फिर नैपालको उस ओरसे खतरा है। नैपाल पूर्णरूपसे स्वतन्त्र है, पर उसका भारतवर्षसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। नैपाल और भारतके लिए यह अति आवश्यक है कि नैपालकी शासन-पद्धति लोकप्रिय और जनसत्तात्मक हो। हमारे खयालसे भारत सरकारका कर्त्तव्य है कि वह नैपालमें सुव्यवस्था तथा सुशासन स्थापित करनेमें नैपाली जनता को समुचित और न्याययुक्त सहायता दे। हमें इस बातका भी डर है कि नैपाली कांग्रेसमें आज जो एकता दिखाई दे रही है, वह क्षणिक है। समाचार-पत्रोंसे पता चलता है कि पश्चिमी नैपालके विद्रोही नेता तथा पूर्वी और मध्य नैपालके विद्रोही नेताओंमें काफ़ी मतभेद है। जो डैपूटेशन दिल्ली आया हुआ था, वह परामर्शके लिए काठमण्डू वापस गया है। राजनीतिक क्षेत्रोंमें यह आशा की जाती है कि भारत और नैपालमें जो बातचीत चल रही है, वह सफलता पूर्वक समाप्त हो जायगी। आशा यह की जाती है कि धीरे-धीरे प्रधान मन्त्रीकी शक्ति घट जायगी और अन्तमें प्रधानमन्त्री निर्वाचित ही होगा। यह भी अनुमान किया जाता है कि नैपालकी सरकार राजा त्रिभुवन-

वीरके लौटनेके प्रश्नको एक लोकप्रिय निर्वाचित संविधान-सभा को सौंपनेको तैयार है। एक कठिनाई इस बातमें हो सकती है कि नैपाल सरकार विद्रोहियोंको क्षमा करनेको तैयार न हो। पर आशा तो यही करनी चाहिए कि स्थिति ठीक हो जायगी।

दिल टटोलनेकी बात

गत १० दिसम्बरको कांग्रेसके अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनने बम्बईमें कहा, 'कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओंको अपने-अपने दिलोंको टटोलकर देखना चाहिए कि जनतापर हमारी संस्थाका प्रभाव क्यों कमजोर पड़ गया है। कांग्रेसी नेताओं, विधान मण्डलके सदस्यों तथा अन्य कार्य-कर्त्ताओंको इस प्रश्नकी ओर ध्यान देना चाहिए और दलबन्दी मिटानी चाहिए।' हमें आश्चर्य है कि टण्डनजी जैसे पुराने कांग्रेस कार्यकर्त्ता दिल टटोलनेकी बात कहते हैं। हम मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्तिको दिल टटोलना चाहिए, पर सवाल तो यह है कि क्या कांग्रेसमें टण्डनजीके साथ उनकी पार्टीके पण्डे हैं, क्या वे भी कभी अपना दिल टटोलेंगे, यदि वे अपना दिल टटोलें अथवा उनमें अपने दिल टटोलनेकी क्षमता हो तो वे बिरादरीके पदों और पदलोलुपताकी निकृष्ट प्रवृत्तियोंसे दूर हो जायँ। पर जो पार्टीके पण्डे हैं, उन्हें फ्रान्सके लुई १४वें की भाँति यही सूझ रहा है कि देश जहन्नुममें जाय, लेकिन उनके पद बने रहें, उनकी पार्टी बनी रहे। यदि ऐसी बात नहीं होती तो कांग्रेस-चुनावोंमें जो बेईमानी और धाँधली मची हुई, वह न होती और टण्डनजीकी पार्टीके एक मन्त्री श्री चन्द्रभानगुप्त मन्त्रिमण्डलसे इस्तीफा दे देते, पर शकुनियों और शिशुपालोंके सामने धृतराष्ट्रोंकी चलती कब है।

अन्नकी कमी

अनुमानतः आगामी वर्षके लिए ६० लाख टनका खाद्या-भाव रहेगा। हमें दुःख इस बातका है कि भारत सरकार तथा राज्योंकी सरकारोंके इतने कागजी प्रयत्नोंके होनेपर भी अन्न-उत्पादनमें सन्तोषजनक काम नहीं हुआ। भारत सरकारके खाद्यान्न-विभागकी ओरसे कहा गया है कि प्राकृतिक कोपके कारण खाद्यान्नकी कमी है। यदि ऐसी बात है तो भारत सरकार और राज्योंके खाद्यान्न-विभाग किस मर्जकी दवा हैं। सरदार पटेलने बताया है कि छःसे सात फ़ी सदी तक खाद्यान्नकी कमी है। यह शरमकी बात है कि इस कमीको हम पूरी क्यों नहीं कर पाते। १९५१ तक स्वावलम्बनकी बातका क्या हुआ? मार्च १९५२ तक हमारा दावा है कि अधिक अन्न उपजाऊ आन्दोलन तबतक सफल नहीं होगा, जबतक भारतकी खेती सहकारिताके आधारपर नहीं होती। यह ठीक है कि भारत सरकार खाद्यान्न-प्राप्तिके लिए पूरा प्रयत्न कर रही है। पर असली बात यह है कि काम ठीक ढंगसे नहीं हो रहा।

अखिल भारतवर्षीय सम्पादक सम्मेलन

गत २ दिसम्बरको नई दिल्लीमें अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन श्री देशबन्धुके सभापतित्व में हुआ। जहाँ तक समारोह और भाषणोंका सम्बन्ध है, वहाँ तक सम्मेलनकी सफलताके बारेमें दो रायें नहीं हो सकतीं। जिन विषयपर वहाँ चर्चा हुई वे भी ठीक हैं। पर श्री देशबन्धुजी अपने भाषणमें कई ग़लत बयानियाँ भी की हैं। उदाहरणके लिए उन्होंने पत्रकारोंके संगठनमें जो दोष है, उसमें यह नहीं बताया कि जब सरकारने १९४२ में पत्रोंपर प्रतिबन्ध लगाया था, तब हमारे पत्र और पत्रकारोंमें इतना भी दम नहीं था कि वे एक दिनकी हड़ताल भी कर सकते। इस समय भारतके अधिकांश पत्र प्रबन्ध-सम्पादकों और मालिकोंके चंगुलोंमें हैं और पत्रोंमें शुद्ध स्वतन्त्रतासे कोई राय प्रकट करना बड़ी कठिन बात हो गई है।

बर्नार्ड शा

गत २ नवम्बर, १९५० को विश्व-विख्यात चिर-युवा जार्ज बर्नार्ड शाका देहान्त ९४ वर्षकी आयुमें हो गया। बर्नार्ड शाके निधनसे विश्वकी सद्भावनाओंमें एक ऐसा स्थान रिक्त हो गया है जिसकी पूर्ति सम्भव नहीं। प्रसिद्ध स्केच लेखक ए० जी० गार्डिनरने 'शा'के लिए दो टाँगोंपर तूफ़ान (A Blizzard on two legs) से सम्बोधित किया था। मानव जातिके विशुद्ध अधिकारोंकी रक्षाके लिए 'शा' जैसे व्यक्ति अब कहाँ हैं। जहाँ कहीं भी अन्याय, दोहन और शोषण होता था, बर्नार्ड शा अपने तीखे व्यंग्य-बाणोंसे उनपर हमला करते

थे। उनके सम्मुख अमरीकाका राष्ट्रपति, इंग्लैण्डका प्रधान मन्त्री और रूसके कर्त्ता-धर्त्ता तानाशाह अधिक प्रतिष्ठा न रख सकते थे। अन्याय और भेदभावके प्रति उनकी लेखनी बिच्छूके डंककी तरह प्रहार करती थी। दुखियोंके लिए उनके शब्द मरहमका काम करते थे। जन्मसे वे आइरिश थे, पर इंग्लैण्डको उन्होंने अपना घर बना लिया था। बर्नार्ड शाने अंगरेजोंकी शोषण-नीतिकी जितनी खिल्ली उड़ाई और 'जान-बुल' शब्दको उन्होंने जितना हास्यास्पद बना दिया, उतना और किसीने नहीं किया। इंग्लैण्डकी फेबियन सुसाइटीके निर्माण और विकासमें 'शा'का प्रमुख हाथ था। 'शा' अपने कालके एक प्रसिद्ध सिद्ध पुरुष-से थे और दुनिया भरमें उनका मान उनकी सचाई, ईमानदारी और अकाट्य तर्कके कारण था। अंगरेजी साहित्य-जगत्‌में जहाँ तक नाटकोंका सम्बन्ध है, वहाँ तक यह बात तो निर्विवाद ही है कि शेक्सपीयरके बाद इतना बड़ा नाटककार 'शा'के बाद कोई नहीं हुआ। अनेक विद्वानोंका तो यह मत है कि 'शा' शेक्सपीयरसे भी उच्चकोटिके नाटककार थे। हमें इस टिप्पणीमें 'शा' और शेक्सपीयरकी तुलना नहीं करनी, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि विश्व-साहित्यमें 'शा' एक अद्वितीय व्यक्ति थे। 'शा'ने अपनी कलाके बारेमें एक बार कहा था, 'यदि आप किसी बातको इस प्रकार नहीं कहते जो लोगोंके चुभे नहीं, तो अच्छा यह है कि आप उस बातको कहें ही नहीं। लोगोंका यह भ्रम है कि 'शा' आधुनिक जीवन के मूल्यांकनके विरोधी थे, पर यह बात ग़लत है। वास्तवमें पुरातन और नवीन जीवनकी सुन्दरतम भावनाओंके वे प्रति-पादक थे। वे कार्लमार्क्सके विचारोंके पोषक थे, पर कम्यू-निज़्मकी वर्ग-युद्ध और घृणाकी भावनाको तनिक भी नहीं मानते थे। जीवन-भर वे मानवी विकारोंके विरुद्ध युद्ध करते रहे। गांधीजीकी हत्यापर उन्होंने दुखी होकर व्यंग कसा था, 'बहुत अच्छा होना भी एक खतरे की बात है।' इसका तात्पर्य यह कि जो सद्‌मार्ग पर चलना चाहे, उसे गालियाँ और गोलियाँ खानेको तैयार रहना चाहिए। भारतीय भाव-नाओंके वे हमेशा समर्थक रहे। एक प्रकारसे वे किसी देश-विदेशके नहीं थे वरन् 'वसुधैव कुटुम्ब'के माननेवाले थे।

स्वर्गीय लाला नारायण दत्तजी

गत ७ नवम्बरको आर्य समाजके प्रसिद्ध कार्यकर्ता लाला नारायण दत्तजीका स्वर्गवास दिल्लीमें हो गया। लालाजी उन तपस्वी आर्य समाजियोंमें से थे जिन्होंने अपने चरित्र-बल और व्यावहारिक आदर्शसे आर्य समाजको पुष्ट किया। आर्य समाजसे उन्हें स्फूर्ति मिली। सेवा-भावमें उन्होंने अपना सब कुछ लगा दिया। वे कठमुल्ले आर्य समाजी नहीं थे, और न आर्य समाजकी आड़में उन्होंने कोई स्वार्थ सिद्धि ही की। वे उन आर्य समाजियोंसे कोसों दूर थे जो स्वामी दयानन्द, वेद और आर्य संस्कृतिकी चर्चा केवल जुबानसे करते हैं और अपने व्यवहारमें अन्य साधारण व्यक्तियोंकी भाँति मनमानी करते हैं। लाला हंसराज, लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्दजी जैसे महान् व्यक्तियोंसे समन्वित लाला नारायण-दत्तजी देश-सेवा करके अपनी इस पार्थिव लीलाको समाप्त कर गये। १९३० में वे कांग्रेसमें भी शामिल हुए, जेलमें भी गए। बादमें हिन्दू सभाके लिए भी एक शक्ति थे। हम उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, और हिन्दू महासभाके विरोधी होने पर भी स्वर्गीय लालाजीके इस रूपकी कोई चर्चा नहीं करते।

उस्ताद फ़ैयाज़ ख़ाँ

गत नवम्बरमें संगीत-सम्राट उस्ताद फ़ैयाज खाँ इस लोकसे उठ गए। अनेक पाठकोंको शायद यह पता न हो कि उस्ताद फ़ैयाज खाँका स्थान भारतीय संगीत-विद्यामें वही है, जो अंगरेजी साहित्यमें बर्नार्ड शाका है। हम संगीतज्ञ नहीं हैं, पर संगीतके अनेक उस्तादोंसे हमने बातें की हैं। कुछ सुननेका भी अवसर मिला है। यह दूसरी बात है कि हम न तो संगीतके मर्मज्ञ हैं और न उसे अच्छी तरह समझते ही हैं। लेकिन इतना अच्छी तरह जानते हैं कि जो तानें और अलापें उस्ताद लोग कहते हैं वे उस कोटिकी होती हैं जो साधारण लोगोंके ज्ञानकी परिधिके परे होती हैं। संगीतमें खयाल-प्रणालीका उस्ताद भारतवर्षमें फ़ैयाज खाँसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं था। उनका निधन ७० वर्ष की अवस्थामें हुआ। वे आगरेके मुहल्ले बाळूगंजके निवासी थे। देश-भर उनको

बड़ौदाके उस्ताद फ़ैयाज ख़ाँके नामसे जानता है, पर थे वे आगरा निवासी, और प्रतिवर्ष जब वे आगरे आते, तब बिना कुछ लिए वे अपनी संगीत-सुधाका लोगोंको पान कराते। जैजैवंती रागके वे सर्वश्रेष्ठ स्वरकार थे। उनके हर अलापमें और हर तानमें मर्मस्पर्शी आकर्षण रहता था। हमने जब सुना कि स्वर्गीय भातखण्डेजीने ख़यालकी स्वर-लिपियाँ लेनेमें उनकी चिलमें तक भरीं, तब हमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। संगीतमें अब भी गुरु-शिष्य-परम्परा बहुत कुछ जीवित है। संगीतके कालेज और स्कूलोंसे यह परम्परा बहुत कुछ मिट चुकी और मिट रही है।

स्वर्गीय उस्ताद फ़ैयाज खाँ पर ब्रजभाषाका प्रभाव बहुत काफ़ी था। हर किसी गीतको एक दूसरा रूप देनेमें उन्हें कुछ भी कठिनाई नहीं होती थी। उनको 'आफ़ताबे मौसूक़ी' (संगीत-प्रभाकर) की पदवी अपनी साधनाके कारण मिली थी। बालकपनसे ही उनके स्वरमें एक ऐसी सम्मोहन शक्ति थी कि उसे परमात्माकी देन ही कहा जा सकता था। पचीस वर्षकी अवस्थामें उन्होंने ख़यालके नामी गवैये उस्तादोंको हरा दिया था। संगीत-विद्या उनसे निहाल हो गई। उनके प्रत्येक अलाप, प्रत्येक तान और प्रत्येक तोड़पर लोग झूमने लगते थे। उस्ताद फ़ैयाज खाँ बड़े ही लोकप्रिय थे। महान् कलाकारोंमें जो गुण होते हैं, वे सब उनमें थे। अहंकारसे वे अछूते थे। थे तो वे जन्मसे मुसलमान, पर अपनेको वे हिन्दू ही कहते थे और यह बात बहुत-कुछ ठीक भी थी। एक बार ओरछा नरेशने उनके संगीतमें भूलसे एक ग़लती निकाली। उस्ताद फ़ैयाज खाँने ओरछा-नरेशकी ग़लतीका कुछ ख़याल नहीं किया। महाराजको भी बादमें अपनी ग़लती मालूम हुई, पर उस्तादके चेहरेपर कोई विकार पैदा नहीं हुआ। क्या हम आशा करें कि कोई संगीतका पारखी उस्ताद फ़ैयाज खाँके ऊपर एक विवेचनापूर्ण लेख हमें भेजे। इस संगीत-प्रभाकरके अस्त हो जानेसे भारतीय संगीत-कलाकी क्षति तो बड़ी पहुँची है, लेकिन हमारा विश्वास है कि तानसेनकी भाँति ही उस्ताद फ़ैयाज खाँ अमर हैं।

स्वर्गीय स्वामी वेदाचलम्

हमें दुःख है कि गत १५ सितम्बरको तमिल साहित्यके एक उद्भट पण्डित स्वामी वेदाचलम्का देहान्त हो गया। उनका असली नाम मराई मलाई आदिगल था। वे कई कालेजोंमें तमिलके लेक्चरर थे। कालेजोंमें लेक्चरर तो बहुत ही साधारण योग्यताके आदमी भी होते हैं, पर स्वामी वेदाचलम् तमिलके प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने साहित्यिक आलोचनामें उच्चकोटिका शोध-कार्य किया। तमिल व्याकरण और भाषाके लिए उन्होंने बहुत-कुछ किया। उन्होंने टिनैवली शैव-सिद्धान्त-प्रकाशन-समितिकी स्थापना की और उनके संग्रहमें साठ हजार पुस्तकें थीं। भारतीय साहित्यको उनके निधनसे बड़ी क्षति पहुँची है।

लौह पुरुष सरदार पटेलजी

जिस घटनाको हम अभी अपनी कल्पनामें नहीं ला सके थे, वह आज प्रत्यक्ष रूपमें हमारे सम्मुख आ गई। ता० १५ दिसम्बर शुक्रवारको ६ बजकर ३७ मिनटपर प्रातःकाल वे हमारे बीचसे उठ गए। पटेलजीके निधनसे समस्त देश और जाति एक विराट् शून्यता अनुभव करने लगी। आधुनिक भारतके इतिहासमें हमें व्यक्ति विशेषकी रिक्तता—अनुपस्थिति—अनुभव करनेका यह द्वितीय अवसर है: पहला अवसर लोकमान्य तिलकके महाप्रयाणसे तथा दूसरा महात्माजी के जीवनावसानसे प्राप्त हुआ था। तिलकके तिरोधानके साथ ही महात्माजीका अभ्युदय हुआ था, अतः उस अभावको जनता किसी प्रकार भुला सकी थी और महात्माजीके अप्रत्याशित एवं आकस्मिक आघातसे जब देश सहसा विह्वल हो उठा उस समय राष्ट्र-धुरन्धरके वर्तमान स्वरूपमें सरदार पटेल हमारे सामने आए थे। पर अब उनके महाप्रयाणके पश्चात् जो रिक्तता दीखती है वह एक ऐसी असीम नैराश्य एवं अन्धकारपूर्ण है जिसका स्थान हमें अति शीघ्र पूर्ण होता नहीं दिखाई देता।

पटेलजीने अपने विवेक तथा राजनीतिक चालोंसे किस प्रकार असंघटित छोटी-मोटी रियासतोंका एकीकरण करके भारतकी अखण्डता अक्षुण्ण बनाई, वैसा, कदाचित पिछली कितनी शताब्दियोंमें, किसीसे न बन पड़ा। उनमें अपना व्यक्तित्व था, अपनी रीति-नीति थी, अपना स्वाभाविक विचार-व्यवहार था। उनकी बातोंके आगे कितनोंने घुटने टेके। गृह-मन्त्रीके रूपमें उन्होंने अपना कार्य सफल कर दिखाया। हम भारतका जो स्वरूप देखते हैं वह उन्हींकी परिश्रमका फल है।

भगवानसे हम प्रार्थना करते हैं कि वह उनकी दिवंगत आत्माको शान्ति प्रदान करे।



हठयोग और कबीरकी साधना-पद्धति

रासबिहारी ठाकुर

हिन्दी-साहित्यकी भक्तिकालीन काव्यधारामें 'योगवाद'का एक विशिष्ट स्थान और पृथक अस्तित्व है। योगवाद और सन्त-साहित्यमें परमपद-प्राप्तिके निर्धारित मार्गोंमें योग, ज्ञान और कर्म मुख्य हैं। ज्ञानी कर्मको ही मुक्तिका एकमेव साधन मानता था (और है भी); पर योगीकी दृष्टिमें योग ही उपासना और उपास्य है। सामयिक भावधाराकी समीक्षा करनेसे उत्तरके हठयोगियों और दक्षिणके भक्तोंमें एक मौलिक अन्तर स्पष्ट हो जाता है। एककी भावधारा कठोर (Rigid) आधारोंपर निर्मित थी तो दूसरेकी स्निग्ध (Flexible) आधारोंपर। तात्पर्य यह कि दोनोंकी दृष्टि वस्तुस्थितिके प्रति सर्वथा भिन्न थी। एक में जीवनकी विविधताको एक रूप दिया गया था तो दूसरा 'एकोऽहम् बहुस्याम'का पोषक था। 'व्यक्ति' और समष्टिके भावोंका यह अन्तर ही सिद्ध और भक्ति-साहित्यका मौलिक अन्तर है। एक ओर योग साहित्य ऊँच-नीचकी भावनाको हेय मानता था तो दूसरी ओर 'भक्ति' 'तृणादपि सुनीचेन'की भावनासे पूर्ण दीख पड़ता है।

कबीर स्वभावसे ही योगवादी थे। उनका व्यक्तित्व अखण्ड था और यही कारण है कि योगमार्गी साहित्यका प्रभाव उनपर गहरे रूपमें उत्तर सका। आचार्य शुक्लके अनुसार—'इस्लाम के कट्टर एकेश्वरवाद और वेदान्तके मायावादका रूखा संस्कार भी कबीरपर पूरा-पूरा था, साथ ही प्रकृतिके प्रसारमें भगवान्की कलाका दर्शन करनेवाली भावुकता उनमें नहीं थी।' उनकी अखण्ड आत्मनिष्ठतामें दुर्बलताकी धूमिलता आने नहीं पाई। तात्विक दृष्टिसे रामानन्दके प्रभावमें पलकर भी कबीरकी साधना-पद्धति स्वतन्त्र रही और इसी कारण योगका प्रभाव उनपर स्वतन्त्र रूपसे पड़ा। आचार्य शुक्लने भी उपर्युक्त कथनकी पुष्टि की है—'तत्वकी दृष्टिसे रामानुजाचार्यके मतावलम्बी होने पर भी अपनी उपासना उन्होंने अलग की।' आचार्य रामानन्द के पंचबीजका प्रभाव कबीरमें प्रत्यक्ष रूपसे दृष्टिगत होता है।

कबीरमें यद्यपि एक साथ ही त्रिगुणात्मक भावधाराका समन्वयात्मक दर्शन होता है फिर भी उनपर योगका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक गहरा है। उत्तर-पूर्वके सहजयाव और नाथ-पन्थका प्रभाव भी आप पर विशेष है। पं० गोपीनाथजीके अनुसार हठयोगियों (अर्थात् मत्स्येन्द्र नाथ, गोरखनाथ आदि नाथ पन्थियों) व्रजबानियों और सहजयानियो (बौद्धों) में घनिष्ट सम्बन्ध है।[1] योगमार्गको नए रूपसे संचालित करनेका श्रेय गोरखनाथको दिया जाता है। पर क्रमशः व्यवहारिक पक्षका अभाव ही नाथ-सम्प्रदायके ह्रासका कारण हुआ। प्रौढ़ सन्त मतका आविर्भाव यहींसे माना जाता है। अतः कबीर पर ही विधायकरनका सेहरा रहा। यही कारण है कि कबीर के रहस्यवादमें नाथपंथी सिद्धोंका मूलभूत प्रभाव लक्षित है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने लिखा है—'सहसयानी सिद्धों नाथपंथी मार्गियोंका अक्खड़पन कबीरमें पूरी मात्रामें है और उसके साथ ही उसका स्वाभाविक फक्कड़पन मिल गया है।' कबीरके साहित्यमें हठयोगका अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन शरीर तत्वके आधारपर हुआ है (यानी इड़ा, पिंगला और सुषुम्नाके आधारपर)। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' वाले पदका 'इंगल, पिंगला ताना भरनी, सुषमन तारसे बीनी चदरिया' इसी ओर संकेत करता है।

कबीरकी उपासना-पद्धतिपर विचार करते हुए हठयोगके सम्यक ज्ञानकी विशेष अपेक्षा है। अतः उसका विवेचन स्पष्टतः यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। हठयोगमें जीवोंकी तीन अवस्थाएँ बताई गई हैं। ये अवस्थाएँ जाग्रत (Conscious) सुषुप्त (Unconscious) और स्वप्न (Subconscious) की हैं। इन अवस्थाओंमें प्रायः कुण्डलिनी शक्ति (प्राणमय कोशका ईथर, Either, तत्व) निश्चेष्ट रहती है। पर ऊर्ध्वसाधनोंके प्रयोगसे यह प्राणशक्ति सम्पूर्ण शरीर तत्वमें कार्य

१. हिन्दी-साहित्यकी भूमिका, पृ० ६१ आ० द्विवेदी (इ० प्रे०)

करने लगती है। प्राणकोषका सार चक्र है। इस कोषमें प्राण, अपान, उदान आदि प्राणप्रवाह प्रवाहित होते हैं। प्राणमय कोषके द्रव्योंमें नानारूपात्मक भ्रमर (चक्र) होते हैं जिनके माध्यमसे प्राणशक्ति घूमा करती है। शरीरके निचले भागकी हड्डीमें से ये चक्र शुरू होकर क्रमशः ब्रह्मरन्ध्र तक चले गए हैं। शरीरका प्रथम चक्र मूलाधार चक्र है जो शरीरके नीचेवाले भागमें अधिष्ठित है। यह चक्र दुर्दुरी सिद्धिका आधार है। इसके चार दल हैं और यहाँसे कुण्डलिनी शक्ति ऊपर ब्रह्मरन्ध्र की ओर बढ़ती है। शिवसंहितामें इस प्रकार उल्लेख आया है:—

यः करोति सदाध्यानं मूलाधारे विचक्षणः
तस्यस्याद् दुर्दुरी भूमिं त्याग क्रमेण वैः।
(शि० सं० पटल ५, श्लोक ७५)

ऊपर लिङ्गमूत्र-क्षेत्रमें स्वाधिष्ठान चक्र है। यह रक्त-वर्ण और ६ दलोंका है। ये दल क्रमशः व, भ, म, य, र, ल वर्णोंके ऊपर निर्मित सांकेतिक (Abbriviations) हैं। शरीर विज्ञानके अनुसार इन्हें Aypoyrastic plexus कहते हैं। शिव संहितामें इसका उल्लेख यों है—

द्वितीयतुसंख्येण च लिङ्गमूत्रे व्यवस्थितम्।
वाक्षिलातंत्र षट् वर्णं परिमास्वर षट्दलम्॥
—पटल ५, श्लोक ७५।

इसी प्रकार नाभि और हृदयके पास मणिपुर और अनाहत चक्र हैं। कण्ठके पास १६ दलका विशुद्ध चक्र है। भ्रूमध्यमें २ दलोंका अज्ञा चक्र है। इन चक्रोंसे होकर उत्तान प्राणवायु ब्रह्मरंध्रकी ओर चली जाती है और ऐसी स्थितिमें साधक को 'सहज समअवस्था'की प्राप्ति होती है। इन चक्रोंके सम्बन्धमें विद्वानोंके विभिन्न मत हैं। कुछ 'शरीर चक्र'के सम्बन्धमें कहते हैं कि डाक्टरोंको शरीरके 'आपरेशन'के पश्चात् ऐसे चक्र नहीं मिले हैं। प्राणमय कोष ईथर (Either) का है अतः प्राणवायुके निकलनेके साथ ही ये चक्र क्रमशः नष्ट हो जाते हैं। Prof. Kilner के ऐसे ही विचार हैं।[1] अनेक विद्वानोंके अनुसार अज्ञा, विशुद्ध और मणिपुर चक्र वस्तुतः चक्र न होकर प्लेक्सस (Plexus) अथवा मज्जातंतु हैं। प्राणोंके प्रवाह और मज्जातंतुओंका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, पर इससे दोनोंको एक दिखाना भ्रमपूर्ण है। Dr. Ledwiter की पुस्तक 'The Chakras' में ऐसा स्पष्ट है। ब्रह्मरंध्र या शून्य चक्रमें सहस्र दल हैं। इन्हें 'कौशल' नामसे भी पुकारा गया है—

अतः ऊर्ध्वं दिव्य रूपं सहस्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्ड व्यस्त देहस्य वाह्य तिष्ठति सर्वदा॥
कौशलो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति॥
शि० सं० ५, १५१-२।

यहाँ 'ब्रह्म'के निवासका संकेत है। इसी प्रकार नाड़ियों (Vains) का भी उल्लेख है। मेरुदण्डकी बाईं ओर इड़ा और दाहिनी ओर पिङ्गला है। मेरुदंडके भीतरसे सुषुम्ना नाड़ी प्रवाहित है। मेरुदंडको प्राणी-शास्त्रके अनुसार Vertibra कहते हैं। कुण्डलिनी शक्तिकी ऊर्ध्व मुखी प्रवाह शक्ति यहींसे शुरू होती है। हठयोगमें इन्हें 'पंचस्रोत्र' भी कहा गया है। योगीमें कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वमुखी रहती है और सामान्य प्राणियोंमें अधोमुखी। इसी प्राणशक्तिको योगी क्रियाओंके आधारपर ऊर्ध्वमुखी करता है और अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करता है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें दूरश्रवण, परकाय प्रवेश, मनोवायित्व, सर्वज्ञत्व, वह्निस्तम्भ, जल स्तम्भ, चिर जीवित्व, वायुस्तम्भ, वाकसिद्धि काव्य व्यूह प्रवेश, मृतानयन, प्राणदान आदि अनेक सिद्धियोंका उल्लेख है। कुरुकुल्ला साधनमें खड्ग, अञ्जन, पादलेप, अन्तर्धान, रसरसायन, खेचर, भूचर, पाताल नामक अष्ट सिद्धियोंका उल्लेख है।[1] अणिमा, लघिमा, महिमा, इशित्व, वशित्व, प्राप्ति, प्राकाम्य और गरिमा आदि सिद्धियाँ भी इन्हीं क्रियाओंसे प्राप्त होती थीं। योग-वाशिष्ठ्यमें सिद्धि-प्राप्तिके तीन साधन प्रस्तुत किए गए हैं—(क) मन-शुद्धि, (ख) कुण्डलिनी शक्तिका उद्बोधन और निय-

---

1. Human Atmosphere Prof. Kelner P. 70.

1. "खड्गाञ्जन पादयेपान्तर्ध्यान रसरसायन खेचर भूचर पाताल-सिद्धि प्रमुख सिद्धिः साधयेत्।"
—साधनमाला—२ भाग, पृ० ३५०।

मित संचालन, (ग) प्राणयम। कबीरने कुण्डलिनी शक्तिकी ऊर्ध्व मुखी प्रवृत्तियोंका वर्णन किया है—

'अधर आसन किया अगम प्याला पिया
जोगको भूल जग जुगुति पाई।
और—अगम अगाध सब कहत गाइ।'

यहाँ अधर आसनसे शून्य या समाधिकी अवस्थामें सहस्राधारका बोध है। यह ब्रह्मरंध्रमें कुण्डलिका शक्तिके समीकरण का आनन्द स्पष्ट करता है। खेचरी मुद्रा और कबीरकी वाणियोंका साम्य भी स्पष्ट है। खेचरी मुद्रामें योगी अपनी जिह्वाको उलटकर कपाल कुहरमें प्रवेश कराता है और वहाँ (सहस्राधार पद्म) के मूलके त्रिकोणात्मक शक्तिकेन्द्रसे अविरल सुधाका पान करता है। इसे ही अमरवारुणी और गोमांसका प्रयोग कहा गया है। गोमांस वस्तुतः जिह्वासे ऊपर तालु प्रदेशको कहा गया है और तालु-प्रदेशका स्पर्श ही 'गोमांस भक्षण'की क्रिया है—

गोमांसं भक्षयेन्नित्यम् पिबेदमरवारुणीम्,
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः।
गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशेति तालुनी
गोमांस-भक्षणं तन्तु महापातक नाशनम्॥

हठयोग ३।४६।८

कबीरने भी इस भावका समान पद लिखा है—

"निवे अमावस निते ग्रहन होइ राहुग्रास तन छीजै
सुरही भच्छन करत वेद मुख धन बरसे तन छीजै।"

बीजक, ८१

और—

"अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै बंक नालि रस पीजै।
मूलबाँधि-सर-गगन समाना सुषुमन यो तन लागी।
काम क्रोध तँह भया पलीता जहाँ जोगिणी जागी॥"

—क० पद संग्रह, ७०

यही कारण है कि हठयोगमें खेचरी मुद्राका विशेष रूपसे प्रयोग होता है—

"एक सृष्टि मयं बीजं एक मुद्रा च खेचरी।
एक देवो निरालम्बः एकावस्था मनोन्मनी॥"

जब आत्मतत्व इन साधनोंके द्वारा परमरूपको प्राप्त हो जाता है तब उसमें सम्पूर्णत्व आ जाता है—

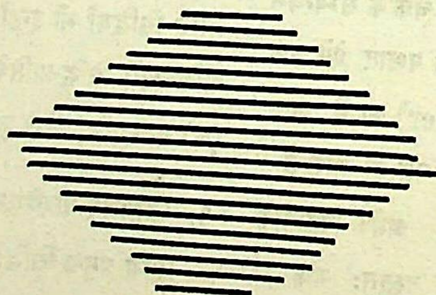
अन्तः शून्यो वहिः शून्यो शून्यंः कुम्भ इमांबरे।
अन्तः पूर्णो वहिः पूर्णे पूर्णाः कुम्भ इवार्णवे॥

इ० ५।५५

कबीरके पदमें यह सादृश्य स्पष्ट है—

"जलमें कुम्भ, कुम्भमें जल है
बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना
यह तत कह्यो गयानी॥"

अतः स्पष्ट है कि कबीरकी साधना-पद्धतिपर तात्कालिक सिद्धियानियोंका प्रत्यक्ष प्रभाव था जिसके कारण कबीरने 'हठ-योग'के विभिन्न तत्वोंको अपने मार्गका अवलम्बन चुना और उन्हीं क्रियायोंके आधारपर उन्होंने ब्रह्म-प्राप्तिकी बातें भी बताई। इस दृष्टिसे हमें भारतीय हठवाद और कबीरके हठयोगमें विशेष भिन्नता नहीं दीख पड़ती। अन्तर्साम्यकी दृष्टिसे दोनोंमें अभेदत्व है। अनेक बादकी अवस्थाओंमें यह अभेदत्व और भी गहरा हो गया है और क्रमशः उन्होंने भारतीय पद्धतिको अपना-सा लिया था।



हमारी साहित्यिकता

बाँकेबिहारी श्रीवास्तव

साहित्य-सर्जनसे ही साहित्यिकताका पता नहीं चलता, साहित्यका पठन-पाठन व अवलोकन भी हमारी साहित्यिक रुचिके द्योतक हैं। साहित्यकी वृद्धिमें पाठकोंकी साहित्यिकता विशेषरूपसे सहायक होती है। पाठक जैसे साहित्यकी माँग करेंगे, समयका तक़ाज़ा देखते हुए साहित्यकारको वैसे ही साहित्यका निर्माण करना पड़ेगा। साहित्यिक रुचि समाजकी आवश्यकता बनकर विभिन्न कालोंमें विशिष्ट साहित्यकारको जन्म देकर विशिष्ट साहित्यकी रचना करती है। उच्चकोटिके साहित्यके निर्माणके लिए पाठकोंकी—जनताकी साहित्यिक-वृत्ति भी उतने ऊँचे स्तरकी होना आवश्यक है। साहित्यिक रुचि साहित्य-प्रेम अथवा साहित्यिकता समाजके किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियोंमें पाई जाती हो, सो बात नहीं, प्रायः प्रत्येक व्यक्तिमें किसी-न-किसी रूपमें साहित्य-प्रेम रहता है। कोई कविताका प्रेमी है तो कोई कहानी-उपन्यासका। किसीको रंगमंच भाता है, किसीको निबन्ध अच्छे लगते हैं इत्यादि। तात्पर्य यह कि व्यक्ति और साहित्यका अटूट सम्बन्ध है।

हमने कभी यह देखनेका प्रयत्न नहीं किया कि हमारी साहित्यिकता आज किस स्तरपर है और वह किस दिशाकी ओर जा रही है तथा हिन्दी-साहित्यपर उसका क्या प्रभाव पड़ रहा है? आज हिन्दीकी जिम्मेवारी बढ़ गई है, साथ ही हिन्दी भाषा-भाषियोंकी भी। हिन्दीको राष्ट्रभाषाके पदपर आसीन किया जा चुका है, इसके लिए जो आन्दोलन किया गया वह उचित ही था पर इतनेसे ही हमारे कर्त्तव्यकी इतिश्री नहीं हो जाती। वास्तविक कार्य तो अब करना है। हिन्दीका बहुमुखी विकास करना होगा, उसमें विभिन्न विषयोंपर उच्चकोटिके ग्रन्थोंकी रचना करनी होगी। हिन्दीका अपना शब्दकोष भी तैयार करना है। इसके लिए हमें विद्वान् साहित्यकारोंकी, लेखकोंकी आवश्यकता है। ऐसे लेखक देशको उत्पन्न करने होंगे। यह तभी सम्भव है जब हम देशमें अनुकूल वातावरणकी सृष्टि करें। हमें अपनी साहित्यिक रुचिमें समयके अनुसार यथेष्ट परिवर्तन करना होगा। असत् साहित्यका बहिष्कार और सत् साहित्यको प्रोत्साहित करना पड़ेगा। साहित्यकारोंको कोरा मानपत्र ही नहीं वरन् उनके जीवन-निर्वाहकी समस्याको भी समाजको सुलझाना पड़ेगा।

हमारे समाजमें दो वर्ग हैं—शिक्षित और अशिक्षित। यद्यपि अशिक्षित भी साहित्यका रसास्वादन कर सकते हैं, पर गहरेमें पैठनेके लिए साक्षर होना परमावश्यक है। अनपढ़, पढ़े-लिखोंके सत्संगसे श्रवण, अवलोकन द्वारा साहित्यका आनन्द उठा सकते हैं, पर आज ऐसा सत्संग कहाँ? शिक्षित समुदायके पास न तो इतना समय ही है और न ऐसी दिलचस्पी ही कि अनपढ़ भाइयोंको वे अपने साथ ले सकें। पर जैसा कि कहा जा चुका है, साहित्य और व्यक्तिका सम्बन्ध अविच्छिन्न है। चाहे व्यक्ति साक्षर हो अथवा निरक्षर। यह बात दूसरी है कि जहाँ एक ओर निरन्तर प्रगति दिखाई देगी वहाँ दूसरी ओर एक सीमा-सी खिंची मिलेगी। अपढ़—ग्रामीण जनताका भी अपना एक साहित्यिक क्षेत्र है। जिसके साहित्यकार तुलसी, सूर, कबीर, मीरा प्रभृति भक्त कवि हैं। ग्राम्यकवि और कथाकार भी मिलेंगे। दिन-भरके जीवन-संग्रामके बाद रातको चौपालपर मण्डली जमती है। कभी तुलसीका रंग जमता है, तो कभी सूरका समा बँधता है। कबीरके निर्गुणपन्थी भजनोंका भी खूब प्रचलन है। सावन-भादोंमें आल्हा-ऊदलकी तलवारोंका वीर रस बरसता है। कभी हुआ तो कोई अपना स्वरचित गीत भी गाता है। गाँवके बड़े-बूढ़ोंके पास 'आपबीती' और 'परबीती' कहानियोंका अक्षय भण्डार रहता है। न किसीको 'इन्विटेशन' देनेकी जरूरत, न किसीके इन्तजारकी ; कोई चहल-पहल नहीं, कोई खास आयोजन नहीं। सब काम स्वाभाविक तरीकेसे होते हैं। इस विषयमें यह निरक्षर समाज शिक्षितोंसे बाजी मार जाता

है। यहाँ तो यह हाल है कि साहित्यिक मजलिस बैठाना हो तो महीना-भर पहले से प्रोग्राम बनाइये। बिना 'फार्मेलिटी' के कोई काम नहीं होता। पदाधिकारियोंका चुनाव हो, स्वागत समिति बने, निमन्त्रण पत्र छपें। इतनेपर भी यदि किसीका नाम चूक गए तो उनकी नाक-भौं चढ़ गई। आयोजकोंको एक सौ एक खरी-खोटी सुननेको मिली और जन्म-भरके लिए बुराई हो गई। किसीको अमुक कविकी रचना अच्छी लगती है, तो किसीको अमुकके निबन्ध पसन्द आते हैं। बस, वह उन्हींकी दाद देगा, दूसरे उनकी नजरोंमें कुछ भी नहीं हैं। कभी-कभी तो ऐसी बैठकें वाक्‌युद्धका अच्छा अखाड़ा बन जाती हैं और फिर उनकी लम्बी-चौड़ी, अच्छी-बुरी आलोचनाएँ प्रत्यालोचनाएँ पत्र-पत्रिकाओंमें निकलती हैं। इसीलिए हमारे यहाँ साहित्यिक सम्मेलन प्रायः जब कभी ही होते हैं। ग्रामीण समाजमें यह दोष नहीं। उनका साहित्य-प्रेम न तो पक्षपात-पूर्ण है और न आडम्बरमय, पर शिक्षाके अभावमें उनका 'साहित्य-जगत्' अभी 'पुरानी दुनिया' ही है, उनकी वृत्ति सीमित है, जो कुछ उनके पास है उन्हें उसीमें सन्तोष है। उनका एक दायरा है जिसे वे लाँघ नहीं सके। हमारे समाजका यह वर्ग साहित्यिक-प्रगतिमें सहायक होनेसे पूर्णतया वंचित रह गया है और तबतक वंचित रहेगा जबतक उनमें शिक्षाका पूरा-पूरा प्रचार नहीं होता।

अब शिक्षितोंका समुदाय रह जाता है जिसपर हिन्दीकी समस्त आशाएँ अवलम्बित हो सकती हैं। पर, खेदके साथ कहना पड़ता है कि इस समुदायसे हिन्दीको सदा उपेक्षा ही मिली है। अंगरेजीके ज़मानेमें हम अंगरेजी-साहित्यके संसर्गमें आये, विदेशी साहित्यने हमारी आँखें खोल दीं। प्रतिभावान विदेशी साहित्यकारोंसे प्रभावित होकर हमारे यहाँके साहित्यकारोंने नयी शैली और नया ढंग निकाला। कवियोंको नये-नये भाव मिले, उपन्यासकारोंको नया मैटर मिला और नाटककारोंको नया कथानक। न जाने कितने 'वाद' भी आए, पत्र-पत्रिकाएँ, अखबारोंका भी जन्म हुआ, साहित्य-सेवियोंमें एक अपूर्व उत्साह छा गया, फल-स्वरूप साहित्यके क्षेत्रमें प्रगति हो चली, पर शनैः शनैः उत्साहकी लहर मन्द होने लगी। कई लेखकोंको जबरदस्ती ही साहित्यका क्षेत्र छोड़ना पड़ा, कई पत्र-पत्रिकाओं, अखबारोंके दफ़्तरोंमें ताला पड़ने लगा,—कारण कि कोई ग्राहक न मिला, हिन्दीको कोई क़द्रदाँ न मिला। यूरोप और अमेरिकाका लेखक-पत्रकार अपनी प्रतिभाके बलसे यशोपार्जनके साथ-ही-साथ धनोपार्जन भी करता है, उसे अपने व अपने कुटुम्बके जीवन-निर्वाहकी चिन्ता नहीं रहती इसलिए वह तन्मय होकर अपनी प्रतिभाका विकास करता है—साहित्य की सर्जना निश्चिन्त होकर करता है। केवल लेखनीके बलपर महल खड़ा कर लेना उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। पुस्तक निकली नहीं कि हजारों प्रतियाँ एक दिनमें हाथों-हाथ बिक जाती हैं। वहाँकी जनता अपनी आमदनीका एक अंश पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंपर व्यय करना अपना कर्तव्य समझती है। वहाँकी जनताका पुस्तक-प्रेम केवल इसीसे मापा जा सकता है कि वहाँ कितनी ही पत्र-पत्रिकाएँ तो ऐसी निकलती हैं जिनमें हर महीने प्रकाशित होनेवाली नयी-नयी पुस्तकोंकी सूची और उनका संक्षिप्त परिचय (Bibliography) मात्र रहता है, हममें ऐसे पुस्तक-प्रेमका अभाव है, हमारी आर्थिक स्थिति इसका एक कारण हो सकती है। भारतकी ग़रीब जनतामें इतनी शक्ति नहीं कि वह पुस्तकोंपर कुछ खर्च कर सके, पर हमारे समाजमें सभी ग़रीब नहीं हैं। ग़रीब-अमीर सभी देशोंमें रहते हैं। दूसरे, पूरे समाजपर यदि दृष्टि डाली जाय तो मालूम होगा कि हमारा बहुत-सा पैसा ऐसी मदमें बर्बाद होता है जिससे न तो हमें ही उसका कुछ फ़ायदा मिलता न दूसरोंको ही, हम चाहें तो इस अपव्ययको रोककर वह पैसा पुस्तकोंमें लगा सकते हैं, वास्तविक कारण तो हमारी स्वयंकी उदासीनता और प्रतिकूल रुचि है। लक्ष्मी-पुत्रोंका भी हमारे देशमें अभाव नहीं और यदि उनका तनिक भी सहयोग हिन्दी-साहित्य और साहित्य-सेवियोंको मिलता तो आज हिन्दी-साहित्यका इतिहास ही दूसरा होता।

ऐसे अधिकांश व्यक्ति जो अर्थ-सम्पन्न हैं और जिन्हें उच्च शिक्षा मिली है—जिनसे कुछ सहायताकी अपेक्षा करना चाहिए—पाश्चात्य सभ्यताके रंगमें रँगे हुए हैं। पाश्चात्य सभ्यता

का एक दुष्परिणाम यह हुआ है कि हमने, जो कुछ हमारा था उस सभीको तिलांजलि दे दी, हमने अपना छोड़कर पराएकी ओर दौड़ना सीख लिया। चाहिए तो यह था कि अंगरेजोंसे हम अपनी चीजोंकी क़दर करना सीखते, उनमें जो विकार था उसे दूरकर विदेशियोंके मुकाबलेका बनाते, सच्ची उन्नति तभी कहलाती। अपनेपनका त्यागकर विदेशी रंगमें रँग जाना उन्नति नहीं, अवनति है—पतन है। ऐसा ही पतन हमारे समाजके विभिन्न क्षेत्रोंमें हुआ है,—साहित्यके क्षेत्रमें भी स्कूलसे ही हमें अंगरेजीकी उच्चता और हिन्दीकी निम्नताका पाठ पढ़ाया जाता है। कालेजोंमें तो हिन्दी केवल ऐच्छिक (Optional) विषय ही रह जाती है। शिक्षा-प्रणाली ऐसी है कि अंगरेजीकी महत्ता ही सदैव हमारे सामने आती रहती है। हिन्दीके प्रति धीरे-धीरे उपेक्षाका भाव आ जाता है। हिन्दीके प्रोफेसर भी कोई विशिष्ट प्रकरण समझाते समय अंगरेजी लेखकोंके ही उद्धरण देते हैं। उनकी ऐसी हाँकते हैं कि मानो हिन्दी अथवा हिन्दी-जननी संस्कृतमें उनके मुकाबले कोई लेखक नहीं और न इन भाषाओंमें कोई मौलिक तथ्य ही कहा गया। इसका कारण यही है कि इन प्रोफेसरोंको स्वयं हिन्दी अथवा संस्कृतका उतना गहन ज्ञान नहीं रहता। उनका ज्ञान वहीं तक सीमित रहता है जो बँधी हुई परिपाटीके अनुसार उनको पढ़नेमें सहायक हो सके। परिणामतः विद्यार्थियोंके हृदयमें अंगरेजीके प्रति हिन्दीसे अधिक प्रेम हो जाता है। शेक्सपियर, मिल्टन, टालस्टाय, गोर्की, स्काट, शा, वेल्स प्रभृति पाश्चात्य साहित्यकार उनके उपास्य बन जाते हैं और सदैव जीवन-भर बने रहते हैं। यदि उनका खुदका पुस्तकालय है तो उसमें इन्हीं लेखकोंकी पुस्तकोंका बाहुल्य रहता है। शायद ही किसी भाग्यवान हिन्दी-लेखककी एकाध रचना मिले तो मिले। कइयोंका ऐसा विचार है कि हिन्दीमें कुछ भी नहीं है—जो कुछ है सो अंगरेजीका जूठा, फिर मौलिकताके लिए अंगरेजी पुस्तकें ही क्यों न पढ़ी जायँ। लेखकको अभी-अभी एक ऐसे सज्जनकी मित्रताका लाभ हुआ जो प्रतिमास दस-बारह रुपयेके अंगरेजी उपन्यास मँगाते रहते हैं, उनका यह व्यसन है—यद्यपि वे विशेष अर्थ-सम्पन्न नहीं हैं। कारण वही है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इन पंक्तियोंके लेखक का अभीष्ट पाश्चात्य साहित्यकारोंकी प्रतिभापर लांछन लगाना नहीं है। वे संसारके माने हुए साहित्यकार हैं, उनकी रचनाएँ संसारकी विभिन्न भाषाओंमें आदर पा चुकी हैं। पर क्या हमारा कर्त्तव्य केवल यही है कि हम सदैव उनकी ही पूजा करते रहें? क्या इन साहित्यकारोंको देखकर हममें ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होती कि हमारे देशमें भी ऐसे ही साहित्यकार जन्म लें, हिन्दी-साहित्य ऊँचा उठे। हमारे देशमें भी प्रतिभावान लेखक हुए हैं और अब भी हैं, पर यह हिन्दीका दुर्भाग्य है जो उनकी प्रतिभाका आलोक संसारके सामने न आ सका।

एक प्रतिभावान साहित्यकारसे हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि वह हमारे लिए मुफ्तमें साहित्य रचे और अपनी जीविका अन्य साधनोंसे प्राप्त करे। साहित्यकार यदि तनिक भी अपने क्षेत्रसे अलग होता है—यदि वह जीवन-निर्वाहकी समस्याओंमें उलझता है—तो उसकी प्रतिभाका ह्रास होने लगेगा। साहित्यकारके जीवनका प्रश्न तो समाजके कन्धोंपर रहता है। क्या हमने अपनी इस जिम्मेवारीका कभी अनुभव किया? आज भी अनेकों साहित्य-सेवी-लेखक और पत्रकार गरीबीमें जीवन-यापन कर रहे हैं। इच्छा न होते हुए भी जीवन-निर्वाहके लिए अन्य क्षेत्रोंमें काम करते हैं। इससे जहाँ उनकी महत्ताका पता चलता है, वहीं हमारी लज्जाजनक असहिष्णुता और हृदयहीनताका भी परिचय मिलता है।

कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें हिन्दीसे प्रेम तो अवश्य है पर उनका अधिकांश समय और पैसा हीन-साहित्यमें जाता है। ऐसे व्यक्तियोंके लिए साहित्य मनोरंजनकी—सिनेमा जैसी चीज है। साहित्यके बहुत-से उद्देश्योंमें मनोरंजन भी एक है, पर केवल मनोरंजन ही नहीं। मनोरंजन भी यदि वास्तविक अर्थमें मनोरंजन रहे तो अधिक हानि नहीं, पर यह तो मन-रंजन हो गया है—हेय और वासनामय। वह कविता ही क्या जिसमें विरहकी तड़पन न हो, वह कहानी ही क्या जिसमें प्रेमका सौदा न हो। रसीली कहानियाँ और रँगीले उपन्यास अधिक प्रिय हो रहे हैं। आज ऐसे ही सस्ते और बाज़ारू

साहित्यकी माँग हो रही है और ऐसे ही साहित्यकी रचना भी। कवि-सम्मेलन भी होते हैं तो दिल-बहलावके लिए पुत्र जन्मोत्सवपर अथवा शादी-व्याहके समय। इसी दिल-बहलाव की प्रवृत्तिने भारतसे रंग-मंचका पर्दा ही उठा दिया। सिनेमाको प्रोत्साहन मिला जिसके अश्लील और भौंड़े चित्रोंसे हम अपनी 'अतृप्त वासना' पूरी कर रहे हैं। गोस्वामीजीकी चौपाई शायद ही किसीको पूरी आती हो, पर सिनेमाके गन्दे गाने छोटे-छोटे बच्चे भी अपने मा-बापके सामने चावसे गाते हैं और उन्हें सुख देते हैं।

उपर्युक्त वर्णनसे हमारे समाजकी साहित्यिकताका पता चलता है। समाजका एक वर्ग अपने संकुचित दायरेमें है और वह साहित्यकी प्रगतिमें कोई हाथ नहीं बँटा रहा, यह ग्रामीणों और निरक्षरोंका समुदाय है। शिक्षितोंमें जो अर्थ-सम्पन्न हैं—समाजके अगुआ हैं, तथा जो बहुत-कुछ कर सकनेमें समर्थ हैं—उनसे हिन्दी-साहित्यको उपेक्षा मिल रही है। हिन्दीके प्रति उनकी हृदयहीन मनोवृत्ति है। इनसे अलग साधारण जनताका झुकाव सस्ते और बाज़ारू साहित्यके प्रति है। इन परिस्थितियोंमें हिन्दी-साहित्य कभी नहीं पनप सकता, हिन्दी और हिन्दी-समाजपर जो उत्तरदायित्व आ गया है उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। यदि इस दायित्वको नहीं समझा जाता तो हिन्दी अपने पदपर असफल रहेगी। हिन्दीको प्रतिभाशाली लेखकों-पत्रकारोंकी आवश्यकता है जो हिन्दीका क्षेत्र विस्तृत और गम्भीर बना सकें, उसे संसारकी अन्य प्रमुख भाषाओंके समकक्ष ला सकें। ऐसे साहित्यकारोंको पूर्ण सहयोग—तन, मन, धनसे देकर ही हम हिन्दीके प्रति अपना कर्त्तव्य निभा सकते हैं। साहित्यकार समाजका, देशका पथ-प्रदर्शक है और जब तक वह उपेक्षित रहेगा हम लाख उपाय क्यों न करें अँधेरेमें ही रहेंगे। आज हमारा समाज अधोगतिमें है। चारों ओर भ्रष्टाचार फैला है, पारस्परिक प्रेमका अभाव है, राष्ट्रीय चरित्र किसीमें नहीं दीखता। हम स्वतन्त्र हो गए हैं, पर अभी भी गुलाम-प्रवृत्तिसे मुक्त नहीं हुए। हममें अभी भी ऐसे विकार हैं जो देशके हितके लिए घातक हैं। इन सब दोषोंसे मुक्ति धारासभाके सदस्य नहीं, वरन् साहित्यकारकी लेखनी ही दिला सकती है।

आकांक्षी पुष्प

खलील जिब्रान

एक सुन्दर सुगन्धित छोटा-सा नीला फूल था, जो नम्रतासे अपने मित्रोंके बीच रहता था और दूसरे पुष्पोंके साथ एक एकान्त बगीचेमें प्रसन्न हो झूमता था। एक दिन प्रातः, जब कि ओसकी बूँदोंने उसकी पंखुड़ियोंको सँवार कर सजा दिया था, उसने अपना सिर उठाया और इधर-उधर देखा। उसने देखा, एक ऊँचा सुन्दर गुलाबका फूल शानसे खड़ा है और एक सब्ज़ रंगके हीरेपर जलती हुई मशालके समान आकाशमें स्थित है।

छोटे फूलने अपने नीले ओठोंको खोला और कहा—'इन सब फूलोंमें मैं कितना अभागा हूँ, और इनके बीच मेरा कितना हीन अस्तित्व है। प्रकृतिने मुझे छोटा और ग़रीब बनाया है। मैं पृथ्वीके अत्यन्त निकट रहता हूँ और अपना सिर नीले आकाशकी ओर नहीं उठा सकता, न अपने चेहरेको गुलाबकी भाँति सूर्यकी ओर ही फेर सकता हूँ।'

गुलाबके फूलने अपने पड़ोसीकी बात सुनी। इसपर वह हँसा और बोला, 'तुम्हारी बातें कितनी विचित्र हैं। तुम भाग्यवान हो, फिर भी अपने सौभाग्यको नहीं समझ पाते। प्रकृतिने तुम्हें सुगन्ध और सुन्दरता दोनों ही प्रदान की है, जो कि किसी औरको नहीं दी। छोड़ो अपने इन विचारोंको और सन्तोषी बनो। याद रखो, जो छोटा बनकर रहता है, वही ऊपर उठता है और जो बड़ा बननेका प्रयास करता है (अपने को बड़ा समझकर रहता है) वह समाप्त हो जाता है।'

छोटे फूलने कहा, 'तुम तो मुझे सान्त्वना दे रहे हो, इसलिये कि तुम्हारे पास वह सब है जो मैं चाहता हूँ। तुम यह जताकर कि तुम बड़े हो मेरे मनको और भी तीता बनाना चाहते हो। आह, एक भाग्यवान्की नसीहतें एक अभागेके लिए कितनी कष्टदायक होती हैं। और दुर्बलको परामर्श देते समय बलवान कितना कठोर बन जाता है।'

प्रकृतिने नीले और गुलाबके फूलोंकी बातचीत सुनी। वह प्रकट हुई और बोली, 'मेरे भाई छोटे नीले फूल, तुम्हें क्या हुआ है? तुम तो अपने विचारों और कार्योंमें सदा ही नम्र और मधुर रहे हो। क्या लोभने तुम्हारे हृदयमें घर कर लिया है और तुम्हारी चेतनाको सुन्न बना दिया है?' अनुरोधके स्वरमें नीले फूलने उत्तर दिया, 'ओह प्रेमपूर्ण, करुणामयी, दयावती मा, मैं अपने तन-मनसे निवेदन करता हूँ कि कृपाकर मेरी प्रार्थना स्वीकार करो और मुझे एक दिनके लिये गुलाब बननेकी आज्ञा प्रदान करो।'

तब प्रकृतिने कहा, 'तुम नहीं जानते कि तुम क्या माँग रहे हो। इस अन्धी इच्छाके पीछे जो गुप्त विपत्ति है उससे तुम अनभिज्ञ हो; यदि तुम गुलाब बन जाओगे तो तुम्हें अफसोस होगा और पश्चातापके अतिरिक्त कुछ भी न पा सकोगे।' पर नीले फूलने जिद्द की, 'मुझे भी एक छोटा गुलाबका फूल बना दो। क्योंकि मैं गर्वसे अपना सिर ऊँचा उठाना चाहता हूँ। यह मेरे भाग्यकी लापरवाई नहीं, अपितु स्वयं मेरा कार्य होगा।' प्रकृतिने यह कहते हुये आज्ञा दे दी, 'ऐ अनजान और विद्रोही छोटे फूल, मैं तेरी प्रार्थना स्वीकार करूँगी, परन्तु यदि इससे तुमपर विपत्ति टूट पड़ी तो तुम्हारी शिकायत स्वयं अपने से ही होगी।'

प्रकृतिने अपनी गुप्त जादूकी अँगुलियोंको निकालकर फैलाया और नीले फूलकी जड़ोंको छू दिया, जो तुरन्त ही बड़े गुलाबके आकारमें बदल गया और बगीचेके सभी पुष्पोंसे ऊपर उठ गया।

अचानक ही गहरे काले बादल आकाशमें घिर आये और कुद्धित वायुने आँधीके रूपमें सारे वातावरणकी शान्तिको छिन्न-भिन्न कर दिया। प्रचण्ड तूफान और मूसलाधार वर्षाने एक बारगी ही बगीचेपर धावा बोल दिया। तूफ़ानने, छोटे-छोटे पृथ्वीसे सटे हुये पौधोंको छोड़कर, सभीको जड़से उखाड़ दिया, शाखाओंको तोड़ दिया और ऊँचे पुष्पोंके पौदोंके तनोंको चीर दिया। उस एकान्त वाटिकाको आकाशके इस युद्धसे अत्यन्त ही हानि हुई। और जब कि तूफ़ान समाप्त हुआ और आकाश साफ़ हो गया तो छोटे नीले फूलोंके परिवारको छोड़कर जो कि बगीचेकी दीवारके सहारे छिपे हुये थे, सभी फूल ध्वस्त पड़े थे। कोई भी प्रकृतिके प्रचण्ड प्रकोपसे न बच सका था।

सर उठाकर पेड़-पौदोंकी यह दुर्घटना देखकर नीले फूलोंमें से एकने कहा, 'देखो तो, तूफानने अभिमानी पुष्पोंकी क्या गति बनाई है?' एक दूसरा नीला पुष्प बोला, 'हम छोटे हैं और पृथ्वीके समीप रहते हैं, परन्तु हम आकाशके क्रोधसे सुरक्षित हैं।' और एक तीसरा बोला, 'क्योंकि हम छोटे हैं, आकाश हमपर अधिकार पानेमें असमर्थ है।'

इसी समय नीले पुष्पोंकी रानीने अपनी बगलमें परिवर्तित छोटे नीले फूलको देखा, जोकि पृथ्वीपर लुढ़का दिया गया था, और युद्ध-स्थलमें एक अंग-विहीन योद्धाकी तरह भीगी घासपर छितरा दिया गया था। नीले पुष्पोंकी रानीने सर उठाकर अपने परिवारसे कहा, 'देखो मेरे पुत्रो, यह बात विचारणीय है कि लोभने छोटे नीले फूलकी क्या दुर्गति बनाई है, जो कि एक घण्टेके लिए ही अभिमानी गुलाब बन सका। इस दुःखको अपने सौभाग्यके लिए सदा स्मरण रखो।'

तब मृतप्राय गुलाब (छोटा नीला फूल) हिला और अपनी शक्तिके अवशेषको संचितकर शान्त भावसे बोला, 'तुम सब आत्म-सन्तुष्ट और विनीत मूर्ख हो। मुझे कभी तूफ़ानसे भय नहीं लगा। कल तक भी मैं सन्तोषी था और अपने जीवनसे सन्तुष्ट था, परन्तु आत्म-तुष्टि ही मेरे अस्तित्व और जीवनके तूफानके बीच दीवार बनी हुई थी। वही मुझे दुर्बल, आलसी और शान्त तथा मस्तिष्कको धैर्यवान बनाये थी। भयसे पृथ्वीपर चिपटे रहकर मैं भी ऐसा ही जीवन बिता सकता था जैसे कि तुम बिता रहे हो।...मैं भी शीतकी प्रतीक्षा कर सकता था कि वह बर्फके कफनसे मुझे ढक दे और मृत्युको सौंप दे। यही तो सभी छोटे पुष्पोंके

साथ होता आया है।…मैं अब प्रसन्न हूँ, कि मैंने अपने दीन संसारके बाहर विश्वके रहस्योंको पहचान लिया है।… एक ऐसा कार्य जो कि तुमने कभी नहीं किया। मैं लोभकी उपेक्षा कर सकता था, जिसकी प्रकृति हमारेसे कहीं महान् है। परन्तु जब मैंने शान्तिकी खामोशीमें ध्यानसे सुना कि लौकिक और पारलौकिक तत्वोंमें बात-चीत हो रही है, 'सत्ताके परकी आकांक्षायें हमारे (जीवनके) अस्तित्वका प्रधान उद्देश्य है।' उसी समयसे मेरी आत्माने विद्रोह किया और अपनी सीमित सत्तासे ऊँचा स्थान प्राप्त करनेकी मेरे हृदयमें लालसा उत्पन्न हुई। मैंने जाना कि तारोंके गीतोंको पाताल नहीं सुन सकता। तभी मैंने अपनी हीनताके विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया। उसीकी याचना करने लगा जो मेरा नहीं था तब तक जब तक कि मेरी विद्रोही भावना एक शक्तिके रूपमें परिणत न हो गयी तथा मेरी लालसा पूर्ण इच्छामें।…प्रकृतिने जो कि हमारे गम्भीर स्वप्नोंका प्रधान विषय है (जो इच्छा पूर्ण करती है) मेरी प्रार्थना स्वीकार की और मुझे अपनी जादूकी अँगुलियों द्वारा एक गुलाबके रूपमें परिवर्तित कर दिया।'

थोड़ी देरके लिए गुलाब खामोश हो गया और काँपते स्वरमें बोला, 'मैं एक घण्टा शानदार गुलाबकी तरह रहा हूँ। कुछ देरके लिए मेरी सत्ता एक सम्राट्के समान रही है। मैंने विश्वको गुलाबकी दृष्टिसे देखा है। मैंने नवमण्डलकी काना-फूँसी गुलाबके कानोंसे सुनी है। और प्रकाशकी पोशाककी तहों (गहरा प्रकाश) को गुलाबकी पंखुड़िओंसे छुआ है। क्या यहाँ कोई है, जिसने ऐसा सम्मान प्राप्त किया है?' इस प्रकारसे कह, उसने अपने सिरको झुका लिया और भर्रायी हुई आवाज़में हाँफते-हाँफते बोला, 'मैं अब मर जाऊँगा, क्योंकि मेरी आत्माने अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर ली है। अन्तमें मैंने अपने ज्ञानको अपनी जन्म-जन्मकी पतली गुफाओंके बाहर विश्वमें विस्तृत कर दिया है।…यही जीवनका उद्देश्य है… यही अस्तित्वका रहस्य है।' तब गुलाब फड़फड़ाने लगा, शतः शतः पंखुड़ियोंको समेट लिया और ओठोंपर एक स्वर्गीय मुस्कानके साथ उसने अन्तिम साँस ली। अपने जीवनकी आशा और ध्येयकी पूर्तिकी मुस्कराहट…विजयकी मुस्कराहट…एक ईश्वरीय मुस्कराहट।…

अनु० नरेन्द्र चौधरी

गांधीजी और रेलका तीसरा दर्जा

प्रभुदयाल विद्यार्थी

महात्माजीने बहुत बड़ी-बड़ी यात्राएँ की थीं। गंगा-यमुना के संगमपर पण्डित जवाहरलाल नेहरूने अपने भाषणमें कहा था, "बापूने देशकी सेवाके लिए देश भरका कई बार चक्कर लगाया था। हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक वे कई बार घूमे। हिन्दुस्तानका कोई प्रदेश और राज उनके भ्रमणसे नहीं बचा। ठेठ गाँवोंके भीतर भी उन्होंने पैदल भ्रमण किया। बापू हिन्दुस्तानके सात लाख गाँवोंकी बातोंको खूब समझते थे।"

बापूजी पैदल-यात्राको बहुत अच्छा मानते थे। अपने करीबके लोगोंको अक्सर हिदायत किया करते थे, 'तुम लोगोंको पैदल चलना चाहिए। सवारियोंके गुलाम न बनो।'

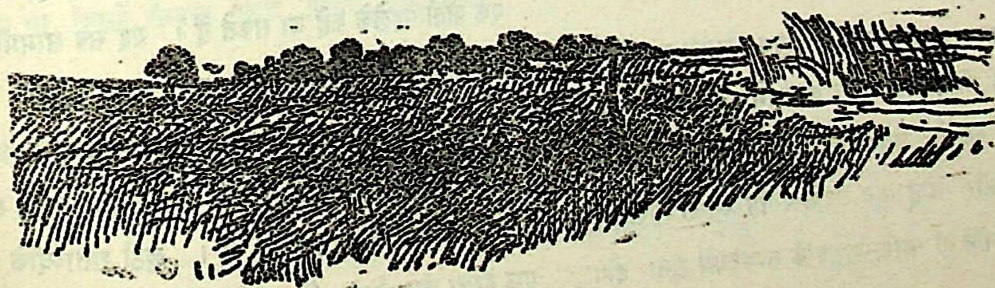
स्वर्गीय जमनालाल बजाजको सब साधन उपलब्ध थे। उनको किसी चीजकी कमी नहीं थी। मोटर, ताँगा और घोड़ा गाड़ी उनके पास सदैव तैयार रहते थे। लेकिन अक्सर बापूजी अपने सेवाग्राम निवासके वक्त बजाजजीसे कहा करते थे, 'अगर तुम वर्धासे यहाँ तक पैदल चलकर आया करो तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।' बापूजीकी आज्ञा मानकर अक्सर बजाजजी पाँच मील पैदल चलकर सेवाग्राम गांधीजीसे मिलने जाते थे।

महादेव भाई तो बरसा कालमें भी कई मील चलकर बापूजीके पास सेवाग्राम जाते-आते थे। महादेव भाईको पैदल आते-जाते देखकर बापूजी बहुत प्रसन्न रहते थे। वे कहा करते थे, 'पैदल यात्रासे बढ़कर दूसरी कोई यात्रा मुझे अच्छी नहीं

लगती।' हम लोगोंसे बराबर कहा करते थे, 'पैदल चलनेका अभ्यास बराबर रखो।' जल्दीकी सवारीसे आज आदमियोंकी शक्ति बहुत कमजोर होती जा रही है। आदमी इन सवारियों के चक्करमें फँसकर थोड़ी-थोड़ी दूरके लिए भी घण्टों बेकार सवारीकी प्रतीक्षा किया करते हैं। हम पंगु बनते जा रहे हैं। मनुष्यको अपने शारीरिक बलका भी उपयोग करना चाहिए।'

जितना जोर बापूजी पैदल-यात्रापर देते थे उतना ही वे रेलके तीसरे दर्जेमें यात्रा करनेके लिए प्रोत्साहित किया करते थे। बापूजीने जिन्दगी भर रेलके तीसरे दर्जेमें मुसाफिरी की है। बापूजीके प्रोत्साहन और हिम्मत बँधानेपर हमारे देशके बहुत से नेताओंने भी रेलके तीसरे दर्जेमें यात्राएँ शुरू की थी। पण्डित जवाहरलाल नेहरूने भी बापूजीके आग्रहपर बहुत समय तक रेलके तीसरे दर्जेमें लम्बी-लम्बी यात्राएँ की हैं। १९३६ में अक्सर वर्धासे प्रयाग पण्डितजी रेलके तीसरे दर्जेमें आते जाते थे। महादेव भाई तो बराबर तीसरे दर्जेमें चला करते थे। तीसरे दर्जेकी सारी कठिनाइयोंसे बापूजी परिचित थे और तीसरे दर्जेके यात्रियोंको रेलवे बोर्ड कितनी उपेक्षासे देखता है यह भी बापूको मालूम था। माता कस्तूरबा वृद्ध हो चली थीं। इन पंक्तियोंके लेखकको गांधीजीके साथ बड़ी-बड़ी यात्राएँ करनेका मौका मिला। बापूके तीसरे दर्जेके डिब्बेमें बाहरके यात्री घुस आया करते थे। सारी मण्डलीके लोगोंको परेशान कर दिया करते थे। तीसरे दर्जेके डिब्बेमें बापूजीको तकलीफ होती थी, लेकिन वे उसे सहर्ष स्वीकार करते थे। हँसकर कहते थे, 'जहाँ करोड़ों आदमी इसमें सफ़र करते हैं और कठिनाइयाँ उठाते हैं, उन्हीं करोड़ोंमें से एक मैं भी हूँ।'

गांधीजीको रेलका तीसरा दर्जा बहुत प्रिय था। कहा करते थे, 'मैं तो दरिद्रनारायणका पुजारी हूँ। मुझे तो इन ग़रीबोंके साथमें ही रहकर चलना है।' एक दिन मगनवाड़ीमें एक आदमीको समझाने लगे, 'अंगरेजीके महान् लेखक स्टीवेन्सनने जीवन भर रेलके तीसरे दर्जेमें अपनी मुसाफिरी की थी। वह ग़रीबीके साथ मिल गया था। जो आदमी जन-साधारण और ग्रामवासियोंके साथ एकाकार होना चाहता है वह जरूर तीसरे दर्जेमें मुसाफिरी करेगा। और उनके साथ चलकर बहुत-सा नया अनुभव प्राप्त करेगा। तीसरे दर्जेका शोरगुल, लड़ाई-झगड़ा तथा गन्दा पाखाना और बीड़ी-तमाखू थूक-खखार और कचरा वगैरः जो होता है उसमें सुधार करना है। रेलवे बोर्ड जो करोड़ों रुपया इन ग़रीब यात्रियोंसे लेता है और उनपर खर्च नहीं करता है, वह सब बन्द कराना है।' आगे बापूने यह भी कहा, 'ऊँचे दर्जेके गद्दे-तकियेपर आपको अच्छी सीट मिल ही नहीं सकती। धूल, कचरा और पसीना वगैरः जितना इन गद्दों-तकियोंमें सना होता है उतना और किसीमें नहीं होता। आप उस सीटपर सिर्फ़ इसलिये बैठते हैं कि वह मुलायम होती है। तीसरे दर्जेकी सीट हमेशा धोई जाती है या धोई जा सकती है। और उसे आप जितनी बार साफ़ करना चाहें उतनी बार साफ़ कर सकते हैं।'



भारत और हिन्देशिया

डा० एन० पी० चक्रवर्ती

यदि आप एशियाके मानचित्रपर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि भारतके समान हिन्देशिया एक अविभाज्य इकाई नहीं है। यह छोटे-बड़े कितने ही द्वीपोंसे बना है, जिनमें कुछ तो इतने छोटे हैं कि वे मानचित्रपर केवल बिन्दुओं द्वारा दिखाए गए हैं या बिल्कुल ही नहीं दिखाए गए हैं। वास्तवमें इस द्वीप-समूहमें ३००० से अधिक द्वीप हैं। दो प्रधान द्वीप समूह हैं; बड़ा सुण्ड द्वीप (Great Sunda Island), जिसमें जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, मधुरा सम्मिलित हैं, और छोटा सुण्ड द्वीप जिसमें बाली, लम्बूक और टिमोरके अधीन इलाके, मलक्का और न्यूगिनीका पश्चिमी भाग जो हिन्देशियामें इरियान (Irian) नामसे जाना जाता है और जिसका नये संघमें सम्मिलित होना अभी विवाद-ग्रस्त है, शामिल है। सब मिलाकर ये द्वीप ७,३५,००० वर्गमील भूमिपर फैले हैं और पश्चिमी छोरसे पूर्वी छोरका अन्तर लगभग ३,००० मील और उत्तरी छोरसे दक्षिणी छोरका अन्तर लगभग १,१०० मील है। इन द्वीपोंपर रहनेवाले सभी निवासी पोलीनीशियन (Polynesian) जातिके हैं। इनकी मुख्य भाषा मलय है, यद्यपि कितने ही शब्द इसमें डच (Dutch) जावानी (Gauanese) और संस्कृतसे आकर मिल गए हैं, और अन्तिम तो सारीकी २५ प्रतिशत हो गई है। यद्यपि किसी समय हिन्दुओंका जोर था, पर इस समय प्रचलित धर्म इस्लाम है। मुसलमान सारी जन-संख्याके ६० प्रतिशत हैं और शेष हिन्दू हैं, जो प्रधानतया बाली द्वीपमें रहते हैं, थोड़े बौद्ध हैं जो अधिकांशतः चीनियोंमें मिलते हैं।

हिन्देशिया पुरातत्वज्ञ, मानुष-इतिहास-शास्त्री और भाषा-शास्त्रके विद्यार्थीके लिए वास्तवमें स्वर्ग है। यहां हमें प्रागैतिहासिक कालके आदि-प्रस्तर युगसे लेकर उत्तर-प्रस्तर युग, कांसे और लोहे युग तकके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। आपमें से कितनोंने ही 'जावा-मानुष'के सम्बन्धमें सुना होगा, जिसकी खोपड़ी जावामें मिली है, और जिसे ५ लाख वर्ष पुराना माना जाता है। ऐतिहासिक कालमें आनेपर हमें अभिलेख स्मारक और कला-वस्तुएँ प्राप्त होती हैं जो चौथी शतीसे आरम्भ होकर आठवीं और दशवीं शतीके मध्यमें उच्चतम शिखरपर पहुँच गई हैं। मानुष इतिहास-शास्त्रीको अध्ययनके लिए असीम सामग्री इन द्वीपोंमें, विशेषतया बोर्नियो और इरियानमें बसी हुई खाना-बदोश जातियों और उन समस्याओंमें मिलती है, जो जातियों और संस्कृतियोंके मिश्रणसे सम्बन्धित हैं। भाषाविद्को भी पर्याप्त मनोरंजक सामग्री, मलय भाषाके अध्ययनसे ही नहीं, अपितु इस बातके विवेचनसे भी मिलेगी कि इसे किस प्रकार देशकी प्राचीन भाषाओंने और पड़ोसी पूर्वी देशों, जिनमें भारत भी सम्मिलित है, की भाषाओंने प्रभावित किया।

हमें इस विषयमें कोई सूचना प्राप्त नहीं कि भारत पहले पहल कब हिन्देशियाके सम्पर्कमें आया। 'यवद्वीप' रामायणमें उन स्थानोंमें से एक बताया गया है, जहाँ सुग्रीवने सीताकी खोजमें बानरोंको भेजा था। अलक्षेन्द्रियाका दूसरी शतीका प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता टालिमी 'जौ-द्वीप' (Island of Barley) के नामसे पुकारता है, जो नाम चीनी इतिहासमें भी मिलता है। जावाके साथ भारतके सीधे सम्पर्कका सबसे पुराना प्रमाण कुछ अभिलेखोंमें मिलता है। ये पाँचवीं शताब्दी की दक्षिण-भारतीय लिपिमें लिखे गए हैं और इनकी भाषा संस्कृत है। ऐसे अभिलेख बोर्नियोमें भी मिले हैं, जो इससे एक शती पहलेके कहे जा सकते हैं। यह सब सामग्री ब्राह्मण कालकी है और अभिलेखोंकी सरकारी भाषा संस्कृत आठवीं शतीके मध्य तक चलती रही जिसके पश्चात् इसका स्थान पुरानी जावानी भाषाने ले लिया, जो संस्कृत और स्थानीय पोलीनीशियन बोलीका मिश्रण है। छठी शताब्दीके अन्तमें एक दूसरा वंश, जिसे कलिंग वंश कहते थे, प्रसिद्धिमें आया।

यह बहुत सम्भव है कि वे पहले भारतके पूर्वी तट कलिंगसे आये हों। इसके स्थापित होनेके एक शताब्दीके अन्तर्गत ही इसका स्थान शैवमतके माननेवाले हिन्दू राजाओंकी एक शाखा ने ले लिया।

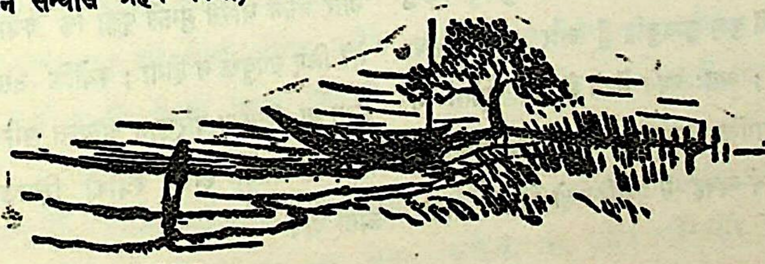
आठवीं शताब्दीके मध्यमें मध्य जावामें बड़े राजनीतिक परिवर्तन हुए और यह बौद्धधर्मके महायान पन्थको माननेवाले शैलेन्द्र राजाओंके अधिकारमें आ गया। इस वंशकी पहली गद्दी श्रीविजयमें थी, जो सुमात्राके वर्तमान प्लेमबांग (Palembong) नामक स्थानसे पहचानी जाती है। ये प्रगतिशील शासक मध्य जावाके बोरोबुदुर और दूसरे आश्चर्यजनक बौद्ध-स्मारकोंके निर्माता थे। कुछ अभिलेखों द्वारा हम जानते हैं कि इस वंशके एक शासक बलपुत्र-देवके कथनपर नालन्दामें एक मठ स्थापित किया गया, और उसीकी प्रार्थनापर पालवंशके शासक देवपालने इसके गुजारेके लिए कुछ गाँव दानमें दिए। पुनः दशवीं शताब्दीमें इस वंशके राजकुमारने मद्रासके निकट नागापट्टममें एक बौद्ध मन्दिर बनवाया। परन्तु नवीं शताब्दीके अन्तमें शैव शासकोंने, जो द्वीपके पूर्वी भागमें पीछे हटा दिये गये थे, मध्य जावापर पुनः अधिकार कर लिया और मतारामके हिन्दू राज्यको स्थापित किया। ये शासक उन सुन्दर हिन्दू-स्मारकोंके निर्माता थे, जिनके अवशेष जकार्ता (Djogjakarta) और सुकार्ता के बीचमें मिलते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतया ज्वालामुखियोंके आग उगलनेके कारण दशवीं शताब्दीके अन्तमें मध्यजावाको छोड़ दिया गया और राजनीतिक दृश्य फिर पूर्वी जावाकी ओर हट गया, जिसका अधिकार पहले ही बाली तक था। ग्यारहवीं शताब्दीमें इन द्वीपोंपर ऐरलांग (Erlongga) नामक राजा राज्य करता था जिसने संन्यास ग्रहण किया, और अपने राज्यको दोनों पुत्रोंमें बाँट दिया जो कदरी (Kaderi) और जंगलाके अधिकारी बने। जंगलाके सम्बन्धमें बहुत कम पता है, बारहवीं शदीमें केदरी अपने योग्य शासकोंके कारणसे ही नहीं, वरन् अपने कवियोंके साहित्य-दानके कारण जिसने 'कवि' साहित्यको प्रसिद्ध बना दिया, प्रसिद्धिको प्राप्त हो गया। पर तेरहवीं शताब्दीमें केदरीको श्रगसरी और मजपहित (Majapahit) के शासकोंके पूर्वज साहसी कानअरोक (Kon Arok) के सामने झुकना पड़ा। श्रगसरी वंशका अन्तिम राजा कृत-अंगारा (कृतअगिरा ?) था, जिसका नाम 'कवि' साहित्यमें प्रसिद्ध है। उसके जामाता विजयने मजपहितके राज्यकी नींव डाली। पर इस वंशका सबसे प्रसिद्ध शासक विजयकी बड़ी पुत्री थी, और उस समयका महान् व्यक्ति प्रधान मन्त्री 'गजमद' था। उसके पुत्र अयाम उरुक (Ayam Wuruk) के राज्यकालमें 'गजमद'ने विशाल विजय प्राप्त की तथा जावा और न्यूगिनीके बीचके सभी द्वीप माजपहित राज्यमें मिला लिए गए, और दूसरे अधीन प्रदेश करार दिए गये। १३८९ ईसवीमें इस शासककी मृत्युके बाद एक तीव्र पतन आरम्भ हुआ। सुमात्रा और बोर्नियोने जावाके जुएको उतार फेंका और अन्ततः सोलहवीं शदीके आरम्भमें सारा देश इस्लामके बढ़ते हुए ज्वारके सामने झुक गया। जो इस धर्म के आगे नहीं झुके वे बाली भाग गये, जहाँ हिन्दू राज्य बना रहा और आजतक भी ऐसा ही है।

सारी सामग्री, जो हमारे पास है वह, यही दिखाती है कि भारतकी भाषा, साहित्य, धर्म, कला और राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओंने इन सुदूर देशोंको बहुत प्रभावित किया था जिसके पर्याप्त चिह्न आजतक भी यहाँ मिलते हैं।

(आल इण्डिया रेडियो, दिल्लीके सौजन्यसे)

अनु०—बाबूराम वर्मा



श्रमिकसे संस्कृतज्ञ

(एक ब्रिटिश मज़दूरकी कहानी)

बेसिल ब्लैकवेल

कुछ वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन डाकसे मुझे टाइप की हुई एक पुस्तककी प्रति मिली। किताब पहले कटे कागजपर छपी हुई थी और देखनेसे ही मालूम होता था कि टाइप करनेमें बहुत ही जीर्ण टाइप-राइटरका प्रयोग किया गया है। इसके साथ एक पत्र भी था जिसमें लिखा था कि 'प्रस्तुत पुस्तक संस्कृतकी कथाओंका अनुवाद है और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके संस्कृतके प्रोफेसरने इसकी भूमिका लिखी है। यदि मैं उसे प्रकाशित करनेके लिए सहमत हो सकूँ और यदि मेरे विचारमें चित्रोंसे इसके सौन्दर्यमें अभिवृद्धि हो सकती है, तो उसके लिए एक नवयुवक कलाकार भी तैयार है।' उसके नीचे एलफ्रेड विलियम्सका हस्ताक्षर था।

अनुवादकके प्राक्कथनसे ही एलफ्रेड विलियम्सका अंगरेजी भाषापर असामान्य अधिकार होना स्पष्ट था और प्रोफेसरकी भूमिका उसके पाण्डित्यकी साक्षी दे रही थी।

पत्रके ऊपर स्विण्डनके समीपके एक गांवका नाम छपा हुआ था, अतः मैंने एलफ्रेड विलियम्सको आक्सफोर्ड ही बुलानेका निश्चय किया जिससे कि इस विषयपर पूरा विचार-विमर्श किया जा सके। मेरे आमन्त्रणको उसने सहर्ष स्वीकार किया और निश्चित दिनको वह घड़ीकी सुईके समान पूर्व-निश्चित समयपर आ उपस्थित हुआ। उसकी वयस पचाससे ऊपर प्रतीत होती थी और उसके चेहरेपर मोहक मुस्कान विद्यमान थी। उसके कमरेमें प्रवेश करनेके साथ ही मुझे एक अलौकिक आत्माकी उपस्थितिका आभास हुआ, किन्तु मैं मनुष्यको पहचाननेमें कुछ कुन्दबुद्धि हूँ और उसमें बहुधा भूल भी कर बैठता हूँ; अतः प्रथम भेंटमें मैं यह पूर्णतः न समझ सका कि उस शान्ति, प्रसन्नता और सौम्यशीलताके पीछे, जो उसके वदन एवं व्यवहारसे प्रवाहित हो रही थी, क्या छिपा है।

बातचीतमें हम लोगोंको कोई कठिनाई नहीं हुई। विलियम्सने मेरे सुझावके अनुरूप उस पुस्तकका अनुशीलन करना स्वीकार कर लिया और एक-दो सप्ताहमें पुनः उसे लेकर आक्सफोर्ड आनेका वादा किया। और उसी समय मेरे कमरेमें कलाकारसे भेंट करनेकी भी बात निश्चित रही जिससे कि हमलोग प्रकाशनकी प्रारम्भिक योजनाको समाप्त कर सकें।

चलते समय मैंने उससे लंचके लिए रुकनेको कहा।

"क्षमा कीजिये, मैं शीघ्र ही घर पहुँचनेके लिए व्यग्र हूँ।" उसने अत्यन्त नम्रता और शालीनतासे मेरे निमन्त्रणको अस्वीकार किया।

"आपकी गाड़ी कितने बजे जाती है?" मैंने जिज्ञासा की।

"मैं तो यहाँ साइकिलसे ही आया हूँ," उसने शान्तभावसे उत्तर दिया।

उत्तर सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। "आप सत्ताईस मील चलकर आये हैं और फिर इतनी ही दौड़ आपको करनी है। इस बीच थोड़ा-सा जलपान कर लेना क्या उचित न होगा?" मैंने पुनः उससे आग्रह किया।

किन्तु 'न'; उस समय उसे घर पहुँचनेकी जल्दी थी अतः और अधिक रुकनेमें उसने अपनी असमर्थता प्रकट की। अन्तमें दूसरी भेंटके लिए मैंने एक दिन विशेष निश्चित किया और उस दिन उससे अपने ही यहाँ भोजन करनेका भी अनुरोध किया। उसकी आँखोंमें वेदनाकी झलक दिखाई दी और उसने धीरेसे मुझसे पूछा कि क्या उसके बादका दिन मेरे लिए उपयुक्त न होगा; क्योंकि उसकी पत्नीका आपरेशन हुआ था, जिसका परिणाम अत्यन्त सन्दिग्ध था और उसी दिन उसे अपनी रुग्णा स्त्रीको स्विण्डनके अस्पतालसे घर लाना था।

अतः 'उस दूसरे दिन' दोपहरके ढाई बजे मिलना तय

हुआ और विलियम्सने अपनी साइकिल उठाई।

× × ×

निश्चित दिन दोपहरके समय मुझे यह तार मिला—'एलफ्रेड विलियम्सकी कल सुप्तावस्थामें मृत्यु हो गई।' तार देनेवालेका नाम मेरे लिए एकदम अपरिचित था और उसका पता भी नहीं दिया हुआ था।

दो-तीन दिन बाद मुझसे एक व्यक्ति मुलाकात करने आया और उसने मुझसे पुछवाया कि क्या मैं किसी ऐसे आदमीसे मिलना चाहता हूँ जो मुझे एलफ्रेड विलियम्सके सम्बन्धमें पूरा हाल बतानेको उत्सुक हो। मेरे सहमत होनेपर मेरे कमरेमें एक आदमीने प्रवेश किया जो, जैसा मुझे बादमें मालूम हुआ, उक्त तारका प्रेषक था। यह व्यक्ति अन्धा था। उसने अपनेको एलफ्रेड विलियम्सका घनिष्ट मित्र बताया और अपने दिवंगत मित्रके सम्बन्धमें मुझे पूरा हाल बताना अपना कर्त्तव्य समझकर ही वह मेरे पास आया था। यदि वह अपने मित्रकी करुण कहानी प्रकाशमें न लाता तो उसकी समझमें उसके मित्रकी स्वर्गीय अत्मा और मेरे प्रति भी अन्याय होता। मेरे सामनेकी कुर्सीपर बैठकर उसने अपनी कथा प्रारम्भ की। नेत्रविहीन व्यक्तियोंके सहज स्वभावानुसार वह शान्तभावसे अपने शब्दोंको कह रहा था, जो एक विचित्र स्तब्ध वातावरण का सृजन कर रहे थे और जिनमें सरलता तथा ईमानदारीकी गूँज थी। उसके शब्द गरम सीसेकी तरह मेरे कानोंमें उतर रहे थे।

"क्या हृदयरोगसे विलियम्सकी मृत्यु हुई?" मैंने उत्सुकता पूर्वक प्रश्न किया।

"हाँ, डाक्टरोंका भी यही निदान है, किन्तु मेरा विश्वास है कि उसकी मृत्यु भूखसे हुई और फिर नित्यकी साइकिलकी दोड़, अपने गाँवसे स्विण्डन तक साइकिलपर जाना, फिर पहाड़ीकी चढ़ाई करके अस्पतालमें अपनी बीमार पत्नीसे भेंट करना। हम लोगोंने उसकी बैंककी किताब देखी है, बड़े दिनसे अब तक (—इस समय जूनका शेष था—) उसने कुल २६ पौण्ड निकाले हैं, और बैंकमें भी थोड़ी ही पूँजी शेष रह गई है। इस २६ पौण्डमें से भी उसने कुछ बचा लिया था, उसकी दराजमें हमें एक पौण्डका नोट मिला। जिससे कागज की एक चिट नत्थी थी और जिसपर लिखा था—'मेरी पोर्टवाइनके लिए।' मेरा दृढ़ अनुमान है कि वह अपनी स्त्रीको आराम पहुँचानेके लिये स्वयं भूखा रहता था।"

"और उसकी दशा अब कैसी है? क्या आपरेशन सफल रहा?"

"यह तो एक निराश भी आशा थी, एक हताश व्यक्तिका अन्तिम प्रयास था। उसको नासूर है, और अब अधिक दिन वह जीवित नहीं रह सकती। वह घर लौटनेकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी और उसके पतिने शुक्रवारको सुबह ही आनेका वादा किया था। वह खिड़कीके समीप अपने पतिके लिये आँखें बिछाये बैठी थी और एक-एक मिनट उसके लिये भारी हो रहा था, इतनेमें अस्पतालमें खबर आई कि विलियम्स अपनी शय्यापर सुबह मृत पाया गया। डाक्टर और नर्स यह सोच ही न सके कि इस दुःखद समाचारको उससे कैसे कहें, और वह खिड़कीपर बैठी अपने पतिकी प्रतीक्षा कर रही थी।...अब वह घर आ गई है और मृत्युके काफी निकट पहुँच चुकी है। चारपाईपर बैठकर कठिनतासे मैं उसके स्वासको सुन सकता हूँ, मेरे धीरेसे पूछनेपर कि "मेरी, तुम बेटी हो क्या?' वह बहुत धीमें शब्दोंमें उत्तर दे पाती है, 'हाँ, ल्यूक!'

× × ×

इस तरह धीरे-धीरे एक-एक करके विलियम्स और उसकी पत्नी मेरीके कठिन जीवनकी करुण कथा मेरे सामने आई। वह देहातके एक निर्धन परिवारमें पैदा हुआ था और थोड़ी अवस्थासे ही उसे अपनी जीविकाके लिए खेतोंमें काम करना पड़ा। किन्तु ज्ञान-प्राप्तिकी प्रबल लालसा उसे स्विण्डन नगरमें खींच लाई। यहाँ उसे रेलवे वर्कशापमें काम मिल गया। दिनभर काम करके रातमें वह लेटिन और ग्रीकका अध्ययन करता था; और रातमें ही क्यों, दिनमें भी भापके भीमकाय हथौड़ेपर, जिसकी देख-रेखका भार उसके ऊपर था, वह ग्रीककी वर्णमाला लिख लेता जिससे कि काम करते-करते वह उन्हें याद कर सके। धीरे-धीरे वह कविता करने लगा,

जिनके प्रकाशित होनेपर 'दि हैमरमैन पोयट' (हथौड़ेका कवि) के नामसे उसे किसी अंश तक प्रसिद्धि प्राप्त हुई। अतः कारखानेका काम छोड़कर वह एकान्तभावसे साहित्यसेवामें लग गया। कुछ समय बाद अपने ही गाँवकी एक सुन्दरी एवं सरलहृदया युवतीसे उसने विवाह किया, जो वास्तविक अर्थमें सहधर्मिणी प्रमाणित हुई। अपने पतिको वह निरन्तर उत्साहित करती और यथाशक्ति लक्ष्यसाधनमें उसकी सहायता करती। इन परिश्रमी दम्पतिने अपने ही हाथों अपना मकान बनाया। वे वर्क्स और विल्ट्स नामक नहरके भग्नावशेषसे अपने ही हाथों ईंटें ढोते और अपने ही हाथों अपने घरकी दीवारें उठाते। इसी घरमें वे अज्ञातवास-सा जीवन व्यतीत करते, अपनेमें ही सन्तुष्ट एवं पूर्ण वे पड़ोसियोंसे लगभग अपरिचित ही थे। विलियम्सका जीवन पुस्तकोंके लिये था और मेरी अपने पतिकी जीवन-धारामें निजके अस्तित्वको ही खो बैठी थी।

किन्तु प्रथम विश्वयुद्धके पूर्व कविताकी पुस्तकोंकी बिक्री अबकी अपेक्षाकृत कम ही थी और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें लेख लिखकर तथा यत्र-तत्र भाषण देकर भी यह कार्य-प्रेमी युगल कठिनतासे ही अपनी दैनिक आवश्यकताओंकी पूर्ति कर पाता था। सांसारिक जीवनके नित्यके अभाव इनके सामने सदा उपस्थित रहते थे।

सन् १९१६ ई० में एलफ्रेड विलियम्स स्वेच्छासे सेनामें भर्त्ती होने गया। उस समय उसकी अवस्था काफी हो चुकी थी और सैन्यसेवाके लिए निश्चित वयसकी अन्तिम अवधिके समीप वह पहुँच चुका था। पहले तो स्वास्थ्य ठीक-ठीक न होनेके कारण वह सैनिक अधिकारियों द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया, किन्तु फिर प्रयत्न करके किसी प्रकार वह गनर (तोपची) की जगह पानेमें सफल हो सका। सेनामें भरती होनेके कुछ ही काल बाद वह भारत भेज दिया गया। यह उसके लिए अनायास ही प्राप्त सुसंयोग था, यहाँ उसने पूर्वके महान् एवं अगाध साहित्यका अध्ययन करना प्रारम्भ किया और क्रमशः संस्कृतके अध्ययनमें प्रवृत्त हुआ। इंगलैण्ड लौटने पर भी उसने संस्कृतके स्वाध्यायका क्रम जारी रखा, और यह सुन्दर अनुवाद, जो मेरे पास प्रकाशनके निमित्त आया था, इसीका फल था।

'लण्डनके विद्वत् समाजमें उसका अच्छा आदर था।' वह विलोचन-विहीन अपनी कहानी कह रहा था, और पिछले सप्ताह ही उससे मेरी भेंट हुई थी, और यह हमारी अन्तिम भेंट थी। उस समय उसने मुझे बताया कि उसे प्रधान मन्त्रीका एक पत्र मिला है। प्रधानमन्त्रीने लिखा था कि गवर्नमेण्टने उसे राजकीय वृत्ति (सिविल लिस्ट पेन्सन) प्रदान करनेका निश्चय किया है, और साथमें ही एक पचास पौण्डका चेक था जिसको स्वीकार करनेका आग्रह किया गया था जिससे कि कुछ समय तक विलियम्सका खर्च चल सके। किन्तु मुझे प्रतीत होता है कि विलियम्सकी आत्माको भावीका आभास मिल गया था। वह धीरे-धीरे मेरे समीप आया, मेरी कुर्सीके दोनों हत्थोंको उसने जोरसे पकड़ लिया—इतने जोरसे कि कुर्सी काँपने लगी, फिर विलियम्सने कम्पित स्वरसे केवल इतना कहा मानो उसकी आवाज़ कहीं बहुत दूरसे आ रही हो—"ल्यूक, अब बहुत देर हो चुकी है।"

विलियम्सको ज्ञात हो गया था कि उसकी पत्नीका रोग असाध्य हो चुका है। अब उस मरणासन्न सतीकी एक ही इच्छा थी, उसके पतिकी संस्कृतकी पुस्तकें, वृहत् शब्दकोष, और व्याकरणके ग्रन्थ आदि विश्वविद्यालयके पुस्तकालयको दान कर दिये जायँ। क्या मैं इसमें सहायक हो सकता हूँ?

"मेरे मिलनेसे क्या मेरी कुछ सुखी होगी?" मैंने ल्यूकसे पूछा।

"निश्चय! आपकी बड़ी कृपा होगी।" ल्यूकने साग्रह उत्तर दिया।

अतः एक-दो दिन बाद मैंने साउथ मार्स्टनके मकानमें ल्यूकसे मिलना निश्चित किया।

बिना किसी कठिनाईके मैंने उस दम्पतीके उस छोटे-से मकानको खोज निकाला जिसे उन्होंने अपने ही हाथों उठाया था और मैं उनकी बैठकमें प्रविष्ट हुआ। बैठक छोटी किन्तु स्वच्छ थी, फर्नीचर उतना ही था जो नितान्त आवश्यक हो सकता था। एक मेज थी जो भोजन तथा अध्ययन दोनोंके

काम आती थी, और यह बैठक काल-कोठरीकी नम्रता एवं कठोरताका सहज ही आभास कराती थी। यहीं पर एलफ्रेड विलियम्सकी पुस्तकें, जो संख्यामें कुल दस-बारह होंगी, खिड़की के समीप एक छोटी-सी डेस्कपर रखी हुई थीं। संस्कृतके उस विद्यार्थीकी यही एक छोटी-सी लाइब्रेरी थी जहाँ बैठकर वह लिखता था। कमरेमें और कोई पुस्तक नहीं थी, यह स्पष्ट था कि इन व्यय-साध्य ग्रन्थोंको पानेके लिए विलियम्सको अपनी ग्रीक, लेटिन और अंग्रेजीकी पुस्तकोंको बेचना पड़ा था। उस समय उसके हृदयकी क्या दशा हुई होगी किस मन-स्तापसे उसे संतप्त होना पड़ा होगा ?

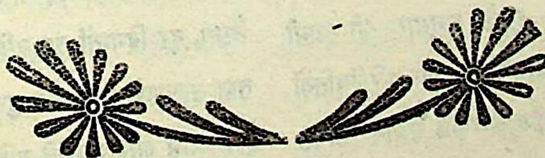
मैं धीरे-धीरे ऊपर गया। सोनेका कमरा नीचेके कमरेके समान ही खाली था। चारपाईपर गर्दन तक शरीरको ढँके वह मरणासन्न नारी पड़ी हुई थी। हस्ति-दन्तके समान स्वच्छ एवं शुभ्र त्वचा सिकुड़कर चेहरेकी हड्डियोंसे चिपटकर रह गई थी और गर्दनमें केवल हड्डी-ही-हड्डी शेष थी। केवल उसकी आँखें चल रही थीं—आँखें जिनमें निराशा और आशाके भावोंका अद्भुत सम्मिश्रण था। चारपाईके निकट ही अन्धा ल्यूक बैठा था और उसके समीप ही फर्शपर एक बक्स पड़ा था जिसमें 'मेरी-विलियम्स'की समस्त सांसारिक सम्पत्ति थी। मेरीने मुझसे उस बक्सको खोलनेके लिए कहा। उसमें उसी पुस्तककी संशोधित टाइपकी हुई प्रति थी जिसके लिए एलफ्रेड विलियम्सने वादा किया था, इसके अतिरिक्त उसमें और कुछ नहीं था, केवल कुछ रद्दी पन्ने पड़े हुए थे। उस छोटे-से परि-वारकी यह अन्तिम धरोहर थी, जिसने मानो सम्पूर्ण घरपर अधिकार कर रखा हो।

मेरीके मनमें सबसे अधिक चिन्ता संस्कृतकी पुस्तकोंकी थी और मैंने वादा किया कि उसकी इच्छानुसार उनका समु-चित दान कर दिया जायगा। फिर हमलोग उस टाइप की हुई पाण्डुलिपिके सम्बन्धमें चर्चा करने लगे, किन्तु संक्षेपमें ही, क्योंकि उस कमरेका एक-एक शब्द मूल्यवान था। मेरीके प्राण प्रतिक्षण क्षीण हो रहे थे, प्रत्येक शब्दके साथ उसका जीवन-स्रोत सूखता जा रहा था और मृत्युकी काली छाया सघनतर होती जा रही थी। मैंने उस पुस्तकको शीघ्र-से-शीघ्र प्रकाशित करनेका आश्वासन दिया।

हमलोगोंकी बातचीत साधारण ही थी, किन्तु विलियम्स की संस्कृतकी पुस्तकों तथा उस पाण्डुलिपिके प्रसंगसे उसमें एक अपार्थिव गाम्भीर्यका समावेश-सा हुआ प्रतीत होता था। चलते समय मैंने मेरीसे कहा कि उसके पतिसे मिलकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई थी और इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ; क्योंकि वह उन व्यक्तियोंमें से एक था जिनसे मिलकर मनुष्य अपनेको उन्नत अनुभव करता है।

मेरीके घरसे निकलकर मैं अपनी कारपर अपने घरको रवाना हुआ। सुखद ग्रीष्म ऋतु थी और दोपहरी ढल चुकी थी। उस समय मेरा हृदय आश्चर्य और कृतज्ञताके एक विचित्र भावसे स्तब्ध था, जो किसी मनुष्यके जीवनमें शायद ही एक-दो बार उदित होता है जब वह मानव-समाजको उन इनी-गिनी विभूतियोंके सम्पर्कमें आता है जिनकी आत्माकी उच्चताके समक्ष और सब मनुष्य वामन-से प्रतीत होते हैं।

अनुवादक—कुँवर शिवप्रतापसिंह भदौरिया



स्वतन्त्र भारतके सच्चे शिक्षणालयकी एक झलक

रामसिंह एम० ठाकुर

सच्चे शिक्षणालय वे ही हैं जहाँ विश्व-व्यापी ज्ञानकी शिक्षा दी जाती है। हमारे प्राचीन ऋषि अपने आश्रमोंमें वेदों और शास्त्रोंके अतिरिक्त अन्य बहुत-से विषयोंकी भी शिक्षा दिया करते थे। ये संस्थायें ही वस्तुतः सच्चे अर्थोंमें विश्वविद्यालय हुआ करती थीं। उनमें सब विषय पढ़ाये जाते थे जो उस समय तक ज्ञात थे। इन विषयोंकी सूची वर्त्तमान विश्वविद्यालयोंमें पढ़ाये जानेवाले विषयोंके मुकाबलेमें कम नहीं उतरती। यदि हम डेढ़ हजार वर्ष पुराने नालन्दा विश्वविद्यालयके इतिहासको देखें तो मालूम होगा कि उसमें १०० विषयोंकी शिक्षा दी जाती थी। विश्वविद्यालयमें १००० विद्वान् तो ऐसे थे, जो १० विषयोंमें निपुण थे, ५०० विद्वान् ३० विषयोंके और दस विद्वान् ५० विषयोंके पंडित थे। कुलपति श्री शीलभद्रजी १०० विषयोंके पंडित थे। यही नहीं दरवाजेपर द्वार-पंडित बैठे रहते थे, ये द्वार पंडित भी बड़े उच्चकोटिके विद्वान् होते थे। २० प्रतिशत विद्यार्थी इस कुलमें प्रवेश कर पाते थे और शेष ८० प्रतिशत को निराश होकर लौटना पड़ता था। फिर भी इस विश्वविद्यालयकी सर्वप्रियता इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि अध्यापकोंकी संख्या १०००० थी। विद्यार्थी स्वस्थ, संयमी और विनयशील थे; आरोग्य, पवित्रता और शुद्धाचरण उनके जीवनका मुख्य अंग था। गुरुकुलने इन्हीं उच्च आदर्शोंको अपने सामने रखा है।

गुरुकुलकी एक झाँकी

वेदने ब्राह्मणकी उत्पत्तिके योग्य-स्थान पर्वतोंके निकट नदियोंके संगम ही बतलाए हैं। इसके अनुसार श्री स्वामी श्रद्धानन्दजीने गुरुकुलकी स्थापना अत्यन्त अनुकूल परिस्थितियोंमें की थी। यहाँ एक ओर भारतीय आदर्शके समान उन्नत तपस्वियोंके जीवन-सा कठोर, मनस्वीके निश्चय-सा दृढ़ तथा महापुरुषोंके हृदय जैसा सुविशाल हिमाचल खड़ा है, दूसरी ओर ऋषियोंकी शिक्षाके समान कल्याणकारिणी महाकविकी प्रतिमा-सी, अमृत-वर्षिणी महात्माओंकी विमल दृष्टि-सी, पाप-हारिणी तथा माताके स्तन्य-सी मधुर भगवती भागीरथी अपने कल-कल निनादसे किसी अलौकिक सन्देशको सुना रही है। यहाँका वायुमण्डल कलाकारकी कल्पनाके समान स्वतन्त्र, शिशुकी मुसकान-सा निर्दोष तथा बालरविकी रश्मियों-सा स्फूर्तिदायक है। यहाँके सघन सुनील आम्रकुंजोंमें किसी अलक्ष्य संगीतकी ध्वनि गूँज रही है। हिमालयके इन्हीं प्रदेशों, भागीरथीके इन्हीं तटों, उत्तराखण्डके इन्हीं वनोंमें वैदिक आर्योंकी युग-युगकी साधना आज निःश्वास ले रही है। कुम्भ महापर्वमें अपनी शक्तिको अल्प देख ऋषि दयानन्दने सर्वमेध यज्ञ कर इसी स्थानमें तपस्या द्वारा असीम बल संचय किया था। वर्षकी सभी ऋतुएँ यहाँ दिल खोलकर अपनी ललित लीलाका अभिनय करती हुई आती और चली जाती हैं। ऐसी ही परिस्थितियोंमें तो नवयुवकोंकी अन्तर्निहित शक्तियोंका स्वाभाविक पूर्ण विकास संभव है। वन्य पशुओंसे व्याप्त भीषण निर्जन वनोंमें भ्रमण हृदयको निर्भय बनाता है। हिमाच्छादित गिरि शिखरोंसे अठखेलियाँ करते, मोटे-से-मोटे गरम कपड़ोंमें भी घुसकर हड़कम्प उत्पन्न करनेवाली गंगाकी तरंगोंसे शीतल, पौष-माघके पश्चिमी पवन तथा वैशाख-ज्येष्ठकी प्रखर सूर्य रश्मियोंसे संतप्त, लता-द्रुमोंको झुलसाती तीव्र लूसे शरीर कष्ट सहिष्णु बनता है। वसन्त तथा वर्षाकी वर्णनातीत प्राकृतिक शोभा मानव-हृदयमें कवित्व एवं दार्शनिकताकी उद्भावना करती है। पर्वतोंपर भागते-भागते चढ़ जाना, नदीमें मीलों तैरना, दूर दिगन्तों तक दृष्टिका अप्रतिहत प्रसार आत्म-विश्वास तथा उत्साहके साथ-साथ हृदयकी भावनाओंको विशाल बनाते हैं। ग्राम और नगरोंके दूषित प्रभाव यहाँ फटकने नहीं पाते।

शारीरिक विकास

ऐसी उत्कृष्ट परिस्थितिमें सदाचारी गुरुओंका सहवास,

उत्तम भोजन, व्यायाम तथा धार्मिक शिक्षा सोनेमें सुहागेका काम करते हैं। भोजनमें दूध, फल आदिपर विशेष ध्यान दिया जाता है और वर्षमें एक बार उनके स्वास्थ्यकी विशेष परीक्षा अवश्य की जाती है। गुरुकुलका प्रत्येक ब्रह्मचारी खेलमें भाग लेता है जिससे उसमें 'स्पोर्टस मैनशिप'का विकास होता है। व्यायाम, कुश्ती आदिके अतिरिक्त गर्मियोंमें ब्रह्मचारी तैरनेका भी अभ्यास करते हैं जो कि एक अत्यन्त उपयोगी कला है। गढ़मुक्तेश्वरके गंगा-स्नानके मेलेपर प्रतिवर्ष तैरनेकी खुली प्रतियोगिता होती है। उसमें गुरुकुलके ब्रह्मचारी ही सदा प्रथम पारितोषिक प्राप्त करते हैं। गुरुकुलकी हाकी टीम दूर-दूर तक प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मचारियोंका मुख्य कार्य खेल नहीं, प्रतिवर्ष कुछ खिलाड़ी अपनी शिक्षा समाप्त कर यहाँसे चले जाते हैं। इस प्रकार हमारी टीम सदा बदलती रहती है। इस त्रुटिके रहते हुए भी गुरुकुलकी टीमने कई सान्मुख्योंमें शानदार विजय प्राप्त की है। जिसके कारण उसे कलकत्तेके सान्मुख्योंमें आग्रह पूर्वक बुलाया जाता है। मेरठ, शाहजहाँपुर, बिजनौर, सहारनपुर आदि स्थानोंमें गुरुकुल पार्टीने समय-समयपर बहुत प्रशंसा प्राप्त की है।

मानसिक विकास

श्रेणीके लिए नियत पाठ्य-पुस्तकें पढ़नेके साथ-साथ वक्तृत्व तथा लेखन-कलाकी विशेष उन्नति करनेके लिए ब्रह्मचारियोंने अपनी आश्रम सभाएँ बना रखी है। संस्कृत, हिन्दी और अंगरेजी तीनों भाषाओंमें वाद-विवाद तथा वक्तृताका अभ्यास करनेके लिये अलग-अलग सभाएँ हैं। इन सभाओंकी सफलताका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि गुरुकुलके ब्रह्मचारी जब कभी हिन्दू विश्वविद्यालयों आदिकी हिन्दी तथा संस्कृत व्याख्यान प्रतियोगिताओंमें भाग लेने गये तभी वे सर्व प्रथम रहे। इससे यह भी सिद्ध होता है कि अन्य विश्वविद्यालयोंकी अपेक्षा गुरुकुलमें छात्रोंका मानसिक विकास कहीं अधिक होता है। अपने इस मानसिक विकासको बढ़ानेके लिए ब्रह्मचारी समय समय पर अपने उपाध्यायों तथा बाहरके विद्वानोंके विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान भी करवाते हैं। लेखन-कलाकी उन्नतिके लिए ये सभाएँ अपनी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित करती है उनमें उच्चकोटि निबन्ध, गल्प, कविताएँ, सामयिक टिप्पणियाँ आदि रहती हैं। इन सभाओंके कारण ही गुरुकुलके अनेक स्नातक सफल लेखक, यशस्वी कवि, कृतकार्य सम्पादक तथा प्रसिद्ध वक्ता बने हैं। तेईस-चौबीस वर्षकी छोटी-सी आयुमें ग्रन्थ रचनाकर 'मँगलाप्रसाद पारितोषिक' प्राप्त करनेका सौभाग्य गुरुकुलके स्नातकोंको ही प्राप्त है।

गुरुकुलके स्नातक अन्य विश्वविद्यालयोंके स्नातकोंकी अपेक्षा प्रायः अधिक धार्मिक वृत्तिवाले, देशभक्त, ईमानदार, सदाचारी, सेवाव्रती तथा तपस्वी होते हैं। हाथसे काम करनेमें वे संकोच या लज्जा अनुभव नहीं करते। गुरुकुलमें उन सब उपायों तथा साधनोंपर विशेष बल दिया जाता है जिनसे नवयुवकोंके शरीर, मन तथा आत्माका स्वाभाविक विकास अधिक हो सके। गुरुकुलमें प्राचीन शास्त्रों-वेदोंके गम्भीर अध्ययन के साथ-साथ आधुनिक नवीन विज्ञान तथा अंगरेजी भाषा और साहित्यका भी उच्च ज्ञान उन्हें करवा दिया जाता है।

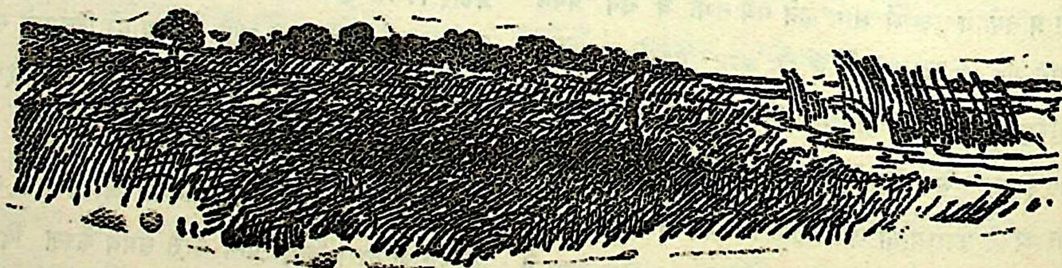
मातृभाषा द्वारा उच्चतम शिक्षा

जो बुराई संसारमें किसी भी सभ्य देशके विश्वविद्यालयों में नहीं है तथा भारतका कोई भी सरकारी शिक्षणालय जिससे बचा हुआ नहीं है, वह है विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा। हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि शिक्षाका माध्यम बन सकनेकी योग्यता अन्य भाषामें हो ही नहीं सकती। अन्य भाषा द्वारा साधारण से साधारण विषयको भी समझना विद्यार्थियोंके लिए कठिन होता है। कठिन विषयकी तो प्रायः उन्हीं शब्दोंमें रट लेनेके सिवाय अन्य कोई उपाय ही नहीं। इस प्रकार रटे हुए शब्द विद्यार्थीके मस्तिष्कमें विजातीय द्रव्यकी तरह संचित हो जाते हैं जो परीक्षाके बाद इस प्रकार उड़ जाते हैं जिस प्रकार पिंजरा खुलनेपर पक्षी। उनमें निहित विचार विद्यार्थीके विचारके भाग नहीं बन जाते। विद्यार्थी विषयको समझ नहीं सकता, इसलिए उसे बाजारू 'नोट्स' तथा 'समरियाँ' ज्यों-की-त्यों याद करनेके लिये बाधित होना पड़ा है। यदि विषय समझमें आ जाय तो उसे रटनेकी आवश्यकता नहीं होती। मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करते समय केवल विषयकी कठिनाई को ही हल करना पड़ता है, किन्तु अन्य भाषामें पढ़ते

हुए भाषा तथा विषय—दोनोंको समझना पड़ता है। कभी-कभी भाषाके कारण ही विषय समझमें नहीं आता। अन्य भाषा द्वारा शिक्षा देनेसे विद्यार्थीके मस्तिष्क पर दुगुना बोझ पड़ता है, यह भारी अत्याचार है। पुस्तकें मातृभाषामें हों तो अबकी अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान—वह भी बड़ी सुगमतासे और थोड़े समयमें—प्राप्त किया जा सकता है। स्वाधीनता प्राप्तिके पश्चात् देशके नेताओंका ध्यान इस बुराईकी ओर अब गया अवश्य है, किन्तु वे भी इसे दूर करनेके लिये अभी पर्याप्त चिन्तित नहीं हैं। श्री स्वामी श्रद्धानन्दजीने इसे बहुत पहले अनुभव कर लिया था। इसलिये उन्होंने गुरुकुलमें प्रारम्भसे ही उच्च शिक्षाका माध्यम भी हिन्दीको रखा। गुरुकुलकी यह एक बहुत बड़ी विशेषता है यहाँ यह परीक्षण आधी शतीसे सफलता पूर्वक चल रहा है।

वेदादि प्राचीन शास्त्रोंका अध्ययन

गुरुकुल एक धार्मिक तथा राष्ट्रिय संस्था है, किन्तु यहाँकी शिक्षा अत्यन्त उदार है। उच्चतम शिक्षा प्राप्त करके भी यहाँके विद्यार्थीका झुकाव न तो नास्तिकताकी ओर होता है और न वह किसी सिद्धान्तको आँख मींचकर योंही मान लेनेके लिए तैयार होता है। उसमें अन्य धर्मोंके प्रति सहिष्णुता ही नहीं, पूर्ण सहानुभूति भी होती है। वेदों, दर्शनों तथा साहित्यका जितना गम्भीर, व्यापक तथा धार्मिक अध्ययन यहाँ करवाया जाता है उतना भारतके अन्य किसी भी विश्वविद्यालयमें नहीं करवाया जाता। भारतीय प्राचीन साहित्यकी प्रायः सभी शाखाओंमें यहाँके विद्यार्थीकी बेरोक-टोक गति हो जाती है। वह उनमें अनुसन्धानके योग्य हो जाता है। वेदोंपर पाश्चात्य विद्वानोंके आक्षेपोंका समाधान उसे बताया जाता है। वेदको समझनेके लिए जिस साहित्यको पहले पढ़नेकी आवश्यकता पड़ती है, अर्थात् व्याकरण, निरुक्त, प्रतिशाख्य, ज्योतिष आदि, वह सब उसे पढ़ाया जाता है। इस प्रकार वह वेद-सम्बन्धी अपने अध्ययनको स्वतन्त्र रूपमें आगे बढ़ानेके योग्य हो जाता है। वह दर्शनोंके सिद्धान्तोंको खूब समझता है, उन्हें दूसरोंको सरल भाषामें समझा सकता है। संस्कृत-साहित्यपर उसका पूर्ण अधिकार हो जाता है। वह कवियोंकी सूक्ष्म आलोचना तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक, तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे कर सकता है। उसे प्राकृत भाषा तथा पालीसे भी परिचित करवा दिया जाता है जिससे कि वह जैन, बौद्ध-साहित्य आदिमें अनुसन्धानके कार्य कर सके। गुरुकुलका विद्यार्थी अंग्रेजी कवियोंके साथ-साथ वाल्मीकि, मीरा, कालिदास, भवभूति आदि को भी खूब जानता है। भारतवर्षके सांस्कृतिक नव-जागरण में गुरुकूल विश्वविद्यालय, कांगड़ी अपनी अमूल्य सेवाएँ देता रहा है। इस विद्यातीर्थसे प्रतिवर्ष ऐसे तरुण विचारक और ज्ञानयात्री बाहर निकलते हैं जो राष्ट्रके चरित्र और इतिहासके निर्माणमें अपनी विशेष देन दे सकते हैं, यदि उनको अपनी शक्तियोंकी अभिव्यक्तिके लिए अनुकूल अवस्थाएँ, अवसर और उचित प्रोत्साहन प्रदान किया जाय। गुरुकुल श्रद्धानन्दजीके इस शिक्षा-तपोवन और संस्कृति तीर्थकी तुलना पश्चिमी देशोंके उन आश्रमिक पब्लिक स्कूल तथा विश्वविद्यालयोंसे सहजमें ही की जा सकती है। जो समसामयिक मानव-समाजकी विचार संस्कृति और चरित्र-संघटनामें अपना महत्त्वपूर्ण भाग प्रदान करते हैं।



पश्चिमी तिब्बतके निवासी और उनका धर्म

अशोक

तिब्बत लामाओंका देश है। यहाँ प्रत्येक परिवारको अपना एक लड़का और लड़की लामा लोगोंके मठोंके लिए देना अनिवार्य होता है। इन बच्चोंका विवाह नहीं होता। लड़कीका सिर मुड़ा दिया जाता है, और लड़केको लामाओंके मठमें रहनेकी आज्ञा दी जाती है। तिब्बतमें बहु-पति प्रथा प्रचलित है और एक स्त्रीके कई पति होते हैं। इस प्रकार एक सम्मिलित परिवारमें कई भाइयोंकी एक स्त्री होती है। कुटुम्ब बहुत बड़ा होता है और सब परिवारके पुरुष एक साथ रहते हैं। इसका एक विशेष कारण है, बँटवारा होनेपर सम्मिलित सम्पत्तिका सबसे सुन्दर और सबसे उपजाऊ भाग बँटवारा करानेवाला सरकारी अधिकारी जोंगपेन ले लेता है। वहाँ स्त्रियोंका पद बहुत छोटा माना जाता है और उस अविवाहित लड़कीको जो मठोंमें रहती है और जिसे भिक्षुणी—जमू—कहते हैं, वह उच्च पद प्राप्त नहीं होता जो कि उसी समान भिक्षुओंको प्राप्त हो जाता है। लड़के आठ वर्षकी आयु में मठोंमें चले जाते हैं। वे १६ वर्ष तक शिक्षा पाते हैं, उसके उपरान्त उनकी दीक्षा होती है। फिर उनकी इच्छानुसार उन्हें दो प्रकारके भिन्न-भिन्न मतोंमें से एक चुननेकी आज्ञा होती है। दीक्षाके उपरान्त बालक-भिक्षु जो अबतक चुँगचुँग कहलाते हैं, अब ग्रेजुएट—डावा—कहलाते हैं। दो भिन्न-भिन्न मत हैं, एक शाक्य, दूसरा गिलू। गिलू लोग शराब नहीं पी सकते, तम्बाकू या सिगरेट नहीं पी सकते। शाक्योंके सम्बन्धमें नियम इतने कठोर नहीं हैं।

यद्यपि बहुपति-प्रथा प्रचलित है किन्तु विवाह तभी शास्त्रानुकूल समझा जाता है जब कि उसका प्रचलित प्रथाके अनुसार पूरा-पूरा पालन हो। विवाहके लिए दूल्हा दुल्हिनके घर जाकर दरवाजेपर खड़ा हो जाता है, अपनी टोपी उतार कर घरके बाहर आनेवाले व्यक्तिको प्रणाम करता है। यह क्रम कई दिनोंतक चलता है, जबतक कि बात पक्की नहीं हो जाती। शादीकी बात इस प्रकार पक्की होनेपर बहूके साथ अत्याचार करनेवालोंको कठिन दण्ड दिया जाता है। कुछ महीनोंके बाद शादी हो जाती है और लड़कीवालोंको लड़केके परिवारके लोगोंको पर्याप्त रुपया देना पड़ता है। शादीकी मुख्य बात यह है कि बरको वधूके गलेके लिए एक रेशमी रूमाल देना पड़ता है। ऐसे ही रूमाल कन्या-पक्षवाले सभी निकट सम्बन्धियोंके लिए भी देना पड़ता है जिसे वे शादीके समय पहनते हैं।

रेशमी रूमालकी प्रथा पश्चिमी तिब्बतमें याचक अपनी याचनाको अत्यधिक प्रभावित करनेके लिए करता है। बहुधा किसी बड़े अधिकारीको जो अर्जी दी जाती है वह ऐसे ही रूमालमें लपेटकर दी जाती है। जब कोई माँगनेवाला देखता है कि दाता सम्पन्न है और उसने जो दान दिया वह कम है तो दाताकी मिन्नत करनेके लिए वह अपना रूमाल जमीनपर बिछा देता है। अतः शादीमें ऐसे रूमालोंका प्रदर्शन भी एक प्रकारकी मिन्नत है कि लड़की हमें दे दी जाय।

पश्चिमी तिब्बतका सबसे उपजाऊ भाग तकलाकोट है। यह गुरला मान्धाता पर्वतके ठीक मूलमें अवस्थित तीन नदियोंके बेसिनोंमें बसा है। वर्षा यहाँ कम होती है। सारी भूमि वृक्ष-विहीन है, यद्यपि भूमि खूब उपजाऊ है और सिंचाई होती है। चारों ओर दूर-दूर तक हरे-हरे खेत दिखलाई पड़ते हैं। कृषकोंको जोंगपेनकी खेती मुफ्तमें करनी पड़ती है। सरकारी कर्मचारियोंके लिए बेगार देनी पड़ती है और तकलाकोटके किलेमें बारी-बारीसे पानी पहुँचाना होता है। लामा लोगोंकी सेवा भी मुफ्तमें करनी पड़ती है। सरकारी कर्मचारियोंके लिए जो चारागाह छूटे हैं उनमें से घास काटकर मुफ्त हो उसे जमा करना होता है। इन सब अत्याचारोंके ऊपर सरकारी कर्मचारियोंके व्यापारमें भी उन्हें साथ देना पड़ता है।

लासासे प्रतिवर्ष एक सरकारी व्यापारी आता है जिसे युगच्चोंग कहते हैं। यह व्यापारी अपने साथ अपना बहुत-सा सामान बेचनेके लिए लाता है और गरतोक तक जाता है। उसके सामानको जमींदारोंको मनमाने मूल्यपर खरीदना पड़ता है उस व्यापारीके लिए गाँववालोंको सवारी और खाने-पीनेका मुफ़्त प्रबन्ध करना पड़ता है। यदि उसका सामान चुरा दिया जाय या उसके खाने-पीने या यात्राका ठीक प्रबन्ध न हो तो उसकी भी पूर्ति ग़रीब किसानोंसे ही की जाती है। इस प्रकार कृषकोंका जीवन बड़ा दुःखी है। जनसंख्या प्रतिवर्ष घटती ही जा रही है। बहुत-से कृषक भागकर भारतकी सीमाके पार दारमा और जोहारके परगनोंमें आ बसते हैं। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि तिब्बतके उपजाऊ भू-भागकी जनसंख्या तो घटती जा रही है और दारमा जोहारके ऊबड़-खाबड़ भू-भागकी जनसंख्या बढ़ रही है। मिस्टर शेरिंग अपनी पुस्तक वेस्टर्न तिब्बतमें लिखते हैं :—

Owing to these endless exactions that the cultivators have fled from this district to our territory, and the history of the movement is written clearly enough in statistics, for the population of pargana Darma has almost doubled in the last thirty years, whereas in Takakote there has been a decrease.

Western Tibet, page 204-205.

भारतका जो भू-भाग तिब्बतसे मिला हुआ है और आल्मोड़े जिलेके अन्तरगत है उसे भोट कहते हैं और वहाँके निवासियोंको भोटिया। यह नाम अंग्रेजोंका दिया हुआ है, क्योंकि तिब्बत और नैपालके निकट बंगाल प्रान्तके उत्तरमें भी भूटान नामक रियासत है और वहाँके निवासियोंसे इस भारतीय सीमाप्रान्तके निवासी आकृतिमें बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। दोनों जातियोंमें चेहरेकी आकृति मंगोलियन प्रकार की है। दाढ़ी-मूँछ बहुत कम होते हैं और सिरपर लम्बी चुटिया होती है। इन सीमा-प्रान्तिय जातियोंमें से दारमा और जोहारके परगने पहले तिब्बतके ही अधीन थे। इससे रीति-रिवाज़, आहार० यवहारमें अब भी इन दोनों परगनोंके निवासी तिब्बतवासियोंकी ही भाँति हैं और यह समानता दारमावालोंमें अधिक है, जोहारवालोंमें उससे कुछ कम।

विश्वके पाँच विस्फोट स्थान

लुई डौलिवे

जिस प्रकार किसी रोग-ग्रस्त शरीरपर प्लेग जैसी महामारीके अस्वस्थ चिह्न बढ़ते जाते हैं, उसी प्रकार दुनियाके नक़शेपर जन-जीवनको भयभीत करनेवाले खतरेके स्थान भी बढ़ते जा रहे हैं।

आज पुनः एशिया और यूरोप, जहाँपर युद्ध-महायुद्ध, भ्रातृ-द्रोह और भुखमरीका ताण्डवनृत्य होता रहा है, संघर्षसे विक्षुब्ध हो उठे हैं। वहाँ शान्तिके सुख-स्वप्न दारुणमें बदलते जा रहे हैं।

यह खतरा वैसे तो सभी स्थानोंमें विद्यमान है, किन्तु विशेष रूपसे संसारके पाँच स्थानोंमें वह बहुत बढ़ा-चढ़ा है। इनमें से प्रत्येक स्थान अग्निको उस चिनगारीके समान है, जो समय पाकर भयङ्कर विध्वंसकारी लपटोंमें बदल सम्पूर्ण मानव-जातिको ही स्वाहा कर सकती है।

यूरोपमें विस्फोट स्थान दो हैं ; युगोस्लाविया, जो प्रथम महायुद्धमें राष्ट्रोंके मतभेदका कारण बना, और जर्मनी जिसने द्वितीय महायुद्धकी आग मुख्यतः भड़काई थी।

एशियामें हिन्द चीन, जो फिलहाल कुछ समयके लिए शान्त-सा दिखाई दे रहा है लेकिन समय मिलते ही यहाँकी छिपी लड़ाई एक महान् जन-संहारक युद्धमें प्रकट हो जायगी। एशियामें ही फ़ारमूसाका टापू भी है, जो मानव-जातिके विभाजनका एक अशुभ प्रतीक-सा मालूम होता है।

निकट पूर्वमें ईरान भी खतरेके स्थानोंमें शुमार किया जाता है। यहाँके नेतागण बड़े सतर्क होकर मास्कोकी प्रत्येक चालका बारीकीसे अध्ययन कर रहे हैं।

इन प्रमुख दृष्टि-विन्दुओं—स्थानोंके अतिरिक्त...टर्की है, जिसके दर्रायदानियालपर ज़ारशाही रूस और सोवियत रूस—दोनोंकी दृष्टि जमी रही है।...आस्ट्रिया है, जहाँ रूस और मित्र राष्ट्रोंके सैनिक न केवल एक ही सड़कपर मिलते हैं, बल्कि कभी-कभी एक ही जीप-कारपर चढ़कर घूमते भी हैं।...ग्रीस है, जहाँके हालके गृह-युद्धकी दारुण स्मृतियाँ लोगोंको अभी तक भयभीत किए हुए हैं।

सभी जानते हैं कि युद्धके शिकार सर्वप्रथम ये ही मुल्क होंगे। इन्हीं स्थानोंसे दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें युद्धका भय फैल रहा है। बहुत ही कम ऐसे लोग होंगे जो यह खयाल किए बैठे हों कि हम तो इन भयंकर लपटोंसे बच जायँगे।

पहला विस्फोट-स्थान : यूगोस्लाविया

युगोस्लावियाका जनतन्त्र ही पहला कम्यूनिस्ट देश है, जिसने सोवियत रूसके खिलाफ़ विद्रोहका झण्डा खड़ा किया है। इनका झण्डा भी साम्यवादकी मातृभूमि रूसके झण्डेकी तरह गहरा लाल है। यहाँके बुनियादी दार्शनिक सिद्धान्त भी मार्क्स और लेनिनके सिद्धान्तोंपर आधारित हैं। ये ही सिद्धान्त आज दुनिया-भरके कम्यूनिस्टोंपर भी लागू होते हैं। लेकिन, मज़ा यह है कि स्टालिनके कट्टर अनुयायी पूँजी पतियोंसे ज्यादा इन विद्रोहियोंसे घृणा करते हैं। इतिहासका यह एक विचित्र विरोधाभास है, और शायद प्रालेतेरियत (जनता) की डिक्टेटरशिपका स्वतः परिणाम भी है कि कलके क्रान्तिकारी आजके क्रान्तिकारियोंके प्रति ज़रा भी सहानुभूति नहीं रखते।

युगोस्लावियाको दबानेका काम हंगरी, रूमानिया, बलगेरिया और अलबेनियाके नेताओंको सौंप दिया गया है, और वक्त ज़रूरत, सहायताके लिए, चैकोस्लोवाकिया और पोलैंड 'रिज़र्व'में हैं। इन मुल्कोंको यह स्पष्ट रूपसे जता देना है कि वे सच्चे कम्यूनिस्ट हैं, सोवियत रूसके दोस्त हैं और टिट्टोपन्थी विद्रोह-भावनाका लेशमात्र भी उनमें नहीं है।

४०,००,००० युगोस्लावी फ़ौजी सिपाहियोंके खिलाफ़ रूस द्वारा ट्रेनिंग प्राप्त और कुछ जगह तो लाल सेनाके ही अफ़सरों द्वारा परिचालित—हंगरीमें ७०,०००, रूमानियामें १३८,०००, बलगेरियामें ६५,००० और अलबेनियामें ६०,०००—सैनिक हैं। युगोस्लावियाके खिलाफ़ दबाव डालनेका काम मुख्य रूपसे बलगेरियाके सुपुर्द है, क्योंकि यहाँके क्षेत्रोंसे इनकी (बलगेरियनोंकी) बखूबी जानकारी है—गत द्वितीय महायुद्धमें नाज़ी जर्मनीके सहयोगी होनेके नाते युगोस्लावियाका इलाका इनके कब्ज़ेमें रह चुका है।

टिट्टो-विरोधी संघर्षका नेतृत्व युगोस्लावियाके ही एक दलके हाथमें है। इस दलका मुख्य काम बेलग्रेड सरकारको उलट देना है। बेलग्रेडी सत्ताके खिलाफ़ कार्रवाही करनेवालोंमें जनरल पोपिवोडाका बहुत नाम है। देशके भीतर सोवियत-समर्थक लोगोंका आन्दोलन बेलग्रेडी सत्ताके लिए ज्यादा चिन्ताका विषय नहीं है। यद्यपि युगोस्लावी सैनिकोंकी अद्भुत वीरताका प्रमाण बहुत अर्सेसे मिलता रहा है, तथापि आक्रमण-कारी सैनिक-दलके साथ उनका कोई मुकाबला नहीं किया जा सकता। कोरियाके इस लड़ाईमें उत्तरी कोरियाकी फ़ौजोंकी श्रेष्ठता अनेक फौजी विशेषज्ञोंने मानी है और इसी आधार पर इन विशेषज्ञोंका खयाल है कि रूस द्वारा ट्रेनिंग प्राप्त टिट्टो-विरोधी सैन्य-दल आशासे भी अधिक सशक्त होगा। पोलैंड और चैकोस्लोवाकियाका सैन्य-दल, जो क्रमशः १६५,००० ; १६०,-००० की संख्यामें है, टिट्टो-विरोधी दल-बलको और अधिक शक्तिशाली बना देगा। अकेला युगोस्लाविया कुछ नहीं कर सकेगा।

लेकिन रूस आरम्भमें तो खुले रूपसे इस संघर्षमें कोई भाग नहीं लेगा।

दूसरा विफोट-स्थान : जर्मनी

जर्मनी, जिसमें विजेताओंके प्रति घोरतम घृणा और असन्तोषके भाव हैं, अभीतक यूरोपका सबसे ज़्यादा नाज़ुक स्थान बना हुआ है। सम्पूर्ण देशको पूर्वी और पश्चिमी जर्मनीमें विभाजित किए जानेपर, जर्मनोंके असन्तोषकी सीमा नहीं है ; लेकिन साथ ही, वे आपसमें अभी यही तै नहीं कर पाए हैं कि वे अपने देशको किस रूपमें एक—अविभाजित—चाहते हैं।

देश-विभाजनके प्रति घोर असन्तोष, लड़ाईमें हार जानेकी शरम, राष्ट्रिय समाजवादका अवशेष प्रभाव, नई राष्ट्रिय और फ़ौजी चेतना, पश्चिमी जर्मनीमें बसे हुए दस लाख 'शरणार्थियों'में बढ़ती हुई कटुताका भाव, यहांके कम्यूनिस्टोंकी कट्टरवादिता, मित्रराष्ट्रों द्वारा समानताका भाव और व्यवहार न रखने पर पश्चिमी जर्मनीके निवासियोंका असन्तोष, आर्थिक स्थितिका बुरी तरह बिगड़ते जाना आदि बातें ऐसी हैं जिनसे वहांपर निराशाका और साथ ही उच्छृंखल उत्साहका सामान्य भाव बढ़ रहा है, जो किसी भी परिवर्तनको स्वीकार करनेके लिए वह तैयार है। पूर्वी जर्मनीमें, जिसकी जन-संख्या १७,३००,००० है, लगभग ४००,००० रूस द्वारा ट्रेनिंग प्राप्त पुलिस-दल है। इस 'जन-पुलिस'में जर्मनीके बहुत-से भूतपूर्व जनरल उच्च कमाण्डिंग पदपर प्रतिष्ठित हैं। इसके अतिरिक्त वहांपर लगभग २५०,००० सिपाहियोंकी सोवियत-रक्षक-दल भी तैनात है।

पश्चिमी जर्मनीकी जन-संख्या बहुत बढ़ी-चढ़ी है, कोई ५ करोड़की आबादी समझिए। लेकिन यहांपर कोई स्वदेशी फ़ौजी अथवा पुलिस दस्ता नहीं है। यहांकी रक्षाका भार ११०,००० अमरीकी, ४०,००० ब्रिटिश और २०,००० फ्रान्सीसी सैनिकोंपर डाल दिया गया है।

पूर्वी जर्मनीके नेतृत्वकी बागडोर वाल्टर ऐल्ब्राइट नामके एक पुराने कम्यूनिस्टके हाथमें है और पश्चिमी जर्मनीकी प्रधान मन्त्री कोनार्ड ऐडेन्योरके हाथोंमें।

जर्मनीके इन दो हिस्सोंमें विकट संघर्ष होनेपर भी यह सम्भावना नहीं है कि पूर्वी जर्मनीका पुलिस-दल पश्चिमी जर्मनी पर कब्ज़ा कर लेगा, बशर्ते कि सोवियत रूससे उसे यथेष्ट सहायता न मिले। इसीलिए जर्मनीमें कोरियाके गृह-युद्धकी-सी अभी कोई सम्भावना नहीं है।

तीसरा विस्फोट-स्थान : हिन्द चीन

हिन्द चीनमें राष्ट्रवादियोंके परस्पर वैमनस्यकी बिनापर कम्यूनिस्टोंका प्रभाव तेज़ीसे बढ़ रहा है। दो करोड़ पचास लाखके लगभग जनता आज़ादीके लिए संघर्ष कर रही है। ये लोग फ्रांसीसियोंके गुर्गे बाओदाईके घोर विरोधी हैं। बाओदाईने जापानी दखलके साथ सहयोग किया था और कम्यूनिस्ट हो-ची-मिह्नके साथ भी, जो आज़ादीके लिए संघर्ष करनेवालोंमें सबसे आगे रहनेके कारण नरम (राष्ट्रवादी) और गरम (कम्यूनिस्ट) दलोंका विश्वास-पात्र भी बन गया। यह और बात है कि अब वह सोवियत रूसका प्रमुख कृपापात्र व्यक्ति नहीं है।

इस स्थितिसे उत्पन्न सबसे बड़ा खतरा, जिसकी वजहसे दक्षिण एशियामें युद्धकी आग भड़क सकती है, तो इस तथ्यमें है कि फ्रांसीसी कम्यूनिस्ट-विरोधी फौजी दस्तोंके साथ, जिनको अब भरपूर अमरीकी सहायता भी मिल रही है, अब किसी प्रजातन्त्रवादी नेतृत्वका सहयोग नहीं है जिसके साथ मिलकर वे काम करते। हिन्द चीनमें आज जो खूनकी नदी बह रही है, उसे केवल तोपों और बन्दूकोंसे नहीं रोका जा सकता। यह लड़ाई सिद्धान्त और आदर्शोंकी लड़ाई है, जो उनके उपनिवेशी आवरणको उखाड़ फेंके डाल रही है। कम्यूनिस्ट-विरोधी पश्चिमके छिपे हुए 'इरादों'से लोगोंके दिलोंमें शंका पैदा हो गई है। इसका परिचय अमरीकाके अर्थ-सलाहकार रावर्ट-ब्लमकी हत्या द्वारा मिल चुका है। आतंकवादियोंके बमने ही ब्लमकी जान ले ली। तो भी यह बात साफ़ है कि जब तक बाहरी सहायता नहीं मिलती क्रान्तिकारियोंका मोर्चा, गुरिल्ला युद्धसे हटकर, खुली लड़ाईके रूपमें नहीं आ सकता।

चौथा विस्फोट-स्थान : फारमूसा

फ़ारमूसाकी आबादी तो लगभग ६,४००,००० थी, लेकिन चीनसे लगभग दस लाख लोगोंके यहां चले आनेसे यह बहुत बढ़ गई है। लगभग तीन-चार लाख सैनिक जनरल च्यांगकाईशेकके अधीन यहां ठहरे हुए हैं, और टापूका सारा प्रबन्ध शांघाईके भूतपूर्व मेयर के० सी० वूके हाथोंमें है।

चीनके कम्यूनिस्ट फ़ारमूसापर आक्रमणकर उसे जल्दी-से-जल्दी अपने क़ब्जेमें करनेके लिए तत्पर हैं। वे पिछले छः महीनोंसे मौकेकी जगहोंपर सैनिक-शक्ति केन्द्रित करते आ रहे हैं, जिससे राष्ट्रवादियोंके इस अन्तिम गढ़को भी वे जीत लें। इस आक्रमणका श्रीगणेश उत्तरी कोरियाके आक्रमणके साथ होनेकी आशंका थी।

अमरीकी राष्ट्रपति ट्रूमैनको हालकी आज्ञासे, जो उन्होंने सातवीं जल-शक्तिको उसके कर्तव्य-कर्मका ध्यान कराते हुए दिया

था, स्थितिमें कुछ सुधार हुआ है। ट्रूमैनने कहा है कि सातवीं जल-शक्तिका कर्त्तव्य जहाँ फ़ारमूसापर कम्यूनिस्टोंका आक्रमण रोकना है, वहाँ उन्हें चीनी राष्ट्रवादियों द्वारा स्वदेशपर किए जानेवाले आक्रमणोंको भी रोकना होगा।

चीनी कम्यूनिस्टोंके सामने आज दो रास्ते हैं। पहला यह कि वे सातवीं जल-शक्तिसे मोर्चा लें, जिसके मानी होंगे अमरीका से युद्ध, और अमरीकाके साथ ही अन्य संयुक्त राष्ट्रोंसे भी। दूसरा मार्ग यह है कि तबतक इन्तज़ार किया जाय जबतक कि प्रेसीडेण्ट ट्रूमैनकी घोषणाके अनुसार फ़ारमूसाके भाग्यका उचित फैसला न हो जाय, चाहे यह जापानके साथ की गई किसी सन्धि-द्वारा हो अथवा संयुक्त राष्ट्रोंके निर्णयके द्वारा।

यहाँ सोवियत सैनिकों द्वारा खुले रूपमें दखल दिए बिना युद्धकी आग भड़क उठनेकी अभी कोई सम्भावना नहीं है।

पाँचवाँ विस्फोट-स्थान : ईरान

१९४६ में पहले भी ईरान अन्तर्राष्ट्रिय संघर्षका केन्द्र रहा है, जिसका आगे चलकर परिणाम यह हुआ कि ऐण्ड्री ग्रोमिको को सुरक्षा परिषदसे 'वाक-आउट' करना पड़ा। उस वक्त सुरक्षा परिषद्का बहुमत इस पक्षमें था कि सोवियत रूस लड़ाईके वक्त हुए समझौतेके अनुसार ईरानसे अपने फौजी दस्ते उठा ले। सोवियत रूस इस मसलेपर विचार किए जानेके ही विरोधमें था, लेकिन बादमें उसने अपनी फौजें वहाँसे हटा लीं।

ईरान मध्यपूर्व और सुदूर पूर्वका महत्त्वपूर्ण प्रवेश-द्वार है। इसकी सीमाओंसे रूस, ईराक, टर्की, अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान और कैस्पियन सागरकी हदें मिली हुई हैं, और तेलके बहुत-से स्रोत भी यहाँपर हैं। ईरानकी आन्तरिक स्थिति बहुत बिगड़ी हुई और शोचनीय है। असन्तोष सर्वत्र फैला हुआ है। यहाँ की लगभग ८० प्रतिशत जनता किसान है और किसी-किसी ज़मींदारके पास पचास-पचास, साठ-साठ तक गाँव हैं।

ईरानके उत्तर-पूर्वमें स्थित अज़रबेजान प्रान्तमें कम्यूनिस्टों की जड़ें खूब जम गई हैं। युद्धके समय यहाँसे सोवियत रूसकी फ़ौजोंको बखूबी रास्ता मिल सकता है। १९४६ में सोवियत दखलके वक्त यह प्रान्त स्वतन्त्र जनतन्त्र घोषित कर दिया गया था। कुर्द लोगोंमें, जो इस प्रान्तके दक्षिणमें रहते हैं, पृथक्करणका आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा है।

सोवियत फौजोंके यहाँसे चले जानेके बाद यहाँकी प्रजातन्त्रवादी स्वतन्त्र सत्ता समाप्त कर दी गई, और कुछ नेता मास्कोकी ओर, कुछ अन्य दूसरे स्थानोंको भाग गये। प्रजातन्त्रवादी स्वतन्त्र सत्ताके पहले प्रमुख मीर सैयद पेशावी और ईरान सरकारके भूतपूर्व सूचना-विभागके मन्त्री मुज़फ़्फ़र फ़ीरोज़ तेहरान के क्रान्तिकारी दलके नेता माने जाते हैं। ये दोनों वैसे तो क्रमशः मास्को और पेरिसमें निर्वासितके रूपमें रहे हैं, लेकिन इनके अनुयायियोंका कार्य जारी है।

ईरानकी आन्तरिक स्थिति इतनी बिगड़ी हुई होनेपर भी अभी ऐसी कोई सम्भावना नहीं है कि शीघ्र ही वहाँ कोई विद्रोह उठ खड़ा हो, जिससे तेहरानकी सत्ता समाप्त हो जाय। ईरानपर अधिकार करनेके लिए सोवियत सैनिकोंको अन्दर प्रवेश करना होगा।

युद्धकी सम्भावना नहीं

वर्तमान संघर्षकी खास बात यह मालूम देती है कि इन पाँचों विस्फोट-स्थानोंमें अभी ऐसी कोई स्थिति पैदा नहीं हुई, जिसका मुकाबिला उत्तरी कोरिया द्वारा आक्रमणके समय कोरियाकी स्थितिसे किया जा सके।

उत्तरी कोरिया दक्षिण कोरियापर इस कारण आक्रमण करनेमें समर्थ रहा कि उसे मालूम था कि वहाँपर संयुक्त राष्ट्रोंके फौजी दस्ते नहीं ठहरे हुए, और उसकी यह भी धारणा थी कि संयुक्त राष्ट्रोंकी ओरसे इस मामलेमें कोई दखल नहीं दिया जायगा।

दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें संयुक्त राष्ट्रोंकी सैन्य-शक्ति क्षीण कराना ही यदि सोवियत यूनियनकी नीति थी, तो उसे युगोस्लावियामें भी युद्धारम्भका सिगनल देना चाहिए था। लेकिन सुरक्षा-परिषद् द्वारा कोरियाके मामलेमें शीघ्र ही समयपर और दृढ़ताके साथ क़दम उठा लेनेपर रूसको यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया होगा कि लाल सेनाको युगोस्लावियाके खिलाफ़ ही नहीं लड़ना पड़ेगा, बल्कि पश्चिमी योरोपीय राष्ट्रोंकी वायुसेना और शायद ग्रीस, इटली और टर्कीकी स्थल-सेनासे भी भयंकर मोर्चा लेना पड़ेगा।

इसके अलावा एक और आशंका है, युगोस्लावियामें युद्ध

को शुरूआत होनेपर, सुरक्षा-परिषद् आक्रमण रोकनेके लिए उचित कार्रवाहीके साथ-साथ यह भी आज्ञा दे सकती है कि ब्रिटेन तथा अन्य राष्ट्रोंके फौजी दस्ते बालकानमें आकर डट जायँ। यह आदेश ब्रिटेनके चर्चिलशाही चिरवाञ्छित स्वप्न की तो पूर्ति करता प्रतीत होगा, लेकिन सोवियत रूसके लिए घोर चिन्ताका कारण बनेगा।

रूस जो चाल सुभीतेसे चल सकेगा, वह यह होगी कि वह अपने गुर्गोंको तो युगोस्लावियाके खिलाफ़ आक्रमण करनेके लिए उसको दे और स्वयं सुरक्षा-परिषद्में वीटोका प्रयोगकर इन आक्रमणकारियोंके खिलाफ़ कोई कार्रवाही न होने दे। लेकिन ऐसी स्थितिमें यह भी सम्भव है कि चार्टरकी ५१वीं धारा, जिसका आशय यह है कि सुरक्षा परिषद् द्वारा विश्वशान्ति क़ायम करनेके निमित्त कोई निश्चित कदम उठाने तक किसी राष्ट्रको निजी रूपसे अथवा सामूहिक रूपसे अपनी रक्षा करनेका अधिकार है, सोवियत गुट्टसे पृथक् राष्ट्रोंके बहुमत द्वारा ठीक उसी प्रकार लागू की जाय, जिस प्रकार अभी कोरिया के मामलेमें किया गया।

हिन्दचीनकी वर्त्तमान स्थिति लगभग वैसी ही है जैसी कोरियामें थी ; फिर भी उसमें एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। हिन्द-चीनमें आज भी क़रीब १५०,००० फ्रांसीसी सैनिकोंका दल तैनात है जो किसी भी खुले उपद्रव और विद्रोहको दबा देनेमें सफल हो सकता है, बशर्ते कि चीनी कम्यूनिस्ट और सोवियत रूस द्वारा कोई दखल न दिया जाय।

इसलिए सोवियत रूस द्वारा अब किसी दूसरी जगह कोरियामें चली चालको दुहरानेकी गुञ्जाइश नहीं है। अब तो, यदि उसे आगे बढ़ाना ही है तो यह सिर्फ़ खुले रूपमें, दखल-न्दाज़ीके द्वारा ही हो सकती है, जिसका मतलब होगा युद्ध।

संयुक्त राष्ट्र—एक नया राजनीतिक शस्त्र

यदि संयुक्त राष्ट्रोंका ऐसा संगठन न होता तो कोरियाकी लड़ाई फैलनेसे तथा अन्य विस्फोट स्थानोंसे महायुद्धकी आगको भड़कनेसे रोकना असम्भव हो जाता, और न उत्तरी कोरियाके आक्रमणके खिलाफ़ संयुक्त राष्ट्रोंका मोर्चा ही तैयार किया जा सकता था। ऐसे ही अन्तर्राष्ट्रिय संघटन द्वारा, संयुक्त शक्तिसे, आक्रमणकारियोंका विरोध सम्भव है।

संयुक्त राष्ट्रोंके इस संगठनको यदि अधिक-से-अधिक सशक्त और क्रियाशील बनाना है तो सोवियत गुट्टसे पृथक् रहनेवाले राष्ट्रोंका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इस संघटनका राजनीतिक और नैतिक प्रभाव अधिक-से-अधिक बढ़ायँ, इसकी आर्थिक स्थिति मज़बूत करें, कर्मचारियोंकी संख्या बढ़ायँ और सूचना-विभागको और अधिक शक्तिशाली बनायँ। विदेशी-विभाग-सम्बन्धी परम्परागत कूटनीतिक विचार-धाराओंको एकदम बदल कर सुधारने-सँवारनेकी आवश्यकता भी बहुत है।

बहुत-से विदेशी कार्यालयोंके अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र विभागोंने बहुत कम काम किया है, लेकिन अब इनका महत्त्व पहलेसे और अधिक बढ़ गया है, क्योंकि संघके कार्यको सुचारु रूपसे संचालित करनेके केन्द्र तो ये ही हैं। इसी तरह संयुक्त राष्ट्र-संघमें दूसरे देशोंसे भेजे जानेवाले प्रतिनिधियोंका काम और उत्तरदायित्व भी अधिक बढ़ जायगा। संघके विभिन्न विभागों और उनके कार्योंमें परस्पर सहयोग बनाए रखनेके साथ उन्हें एक सूत्रमें बाँधे रखनेकी जिम्मेदारी संघके महामन्त्रीपर होगी, और इसलिए उसका पद अत्यन्त महत्त्व और उत्तरदायित्वका होगा।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम संघमें ऐसे प्रतिनिधि भेजें जो यह खयाल करें कि संयुक्त राष्ट्रोंका संगठन लड़ाई-युद्ध भड़कानेके लिय नहीं है, वरन् झगड़ोंके मसलोंपर बात-चीत चलाकर, मध्यस्थ बनकर और समझौता कराकर विश्वकी शान्ति क़ायम किए रखना है।

इतिहासकी यात्रामें 'संयुक्तराष्ट्र युग'के रूपमें, एक नई मंज़िल तक हम पहुँच गए हैं। हो सकता है, अभी इसके महत्त्वको हम अच्छी तरह हृदयंगम नहीं कर पायँ, लेकिन फिर भी नए युगका आरम्भ तो हो ही गया।

अनु०—विद्याशंकर शर्मा (यू० एन० ओ० पत्रिकासे)

स्वास्थ्यका शत्रु : दूषित दूध

जे० टी० सी० राबर्टसन

दो युद्धों और आये दिन सफ़ाई तथा राष्ट्रिय स्वास्थ्यकी ओर अधिकाधिक ध्यान दिए जानेके कारण ब्रिटेनका दूध-वितरण-उद्योग पिछले पचास वर्षोंमें बहुत विकसित हो गया है। वहां इस बातके लिए भरसक प्रयत्न किया जाता है कि लोगोंके पास पहुँचनेसे पहले दूधकी हरेक बूँद 'सुरक्षित' और शुद्ध होनी चाहिए।

आजकल बड़े-बड़े दूध बांटनेवालोंने खास योग्यता प्राप्त कर्मचारी नियुक्त किये हुए हैं जो दूधकी परीक्षा करते हैं। इस उद्योगमें लगे जीव-विज्ञान-शास्त्री रासायनिक विज्ञान तथा इंजीनियरिंगके नए-नए विकासोंकी जानकारी प्राप्त करते रहते हैं। जो दूध काफी दूरके स्थानोंके लिये जानेवाला होता है उसे कई आधुनिक विधियों तथा साधनोंके ज़रिये सँभालकर रखा जाता है ताकि वह फटने और खराब होनेसे बचा रहे। इस उद्योगमें दूध-पात्रों (भरनी-डिब्बों) और बोतलोंकी सफ़ाई पर सदा ही विशेष ध्यान दिया जाता है।

देशमें ऐसे भी कई भाग-स्थान हैं जहां दूध निकालने और बांटनेकी व्यवस्था इतनी विकसित नहीं है जितनी कि होनी चाहिए। देहाती क्षेत्रोंमें इतनी आसानीसे संगठन और मशीनीकरण नहीं किया जा सकता जितनी कि अधिक आबादी-वाले ज़िलों और नगरोंमें हो सकता है। फिर भी सम्पूर्ण ब्रिटेनमें दूधकी वितरण-व्यवस्था सुधर गई है और सुधर रही है।

१९२५ में ब्रिटेनकी कुल उत्पत्ति लगभग १,२०,००,००,०००, गैलन थी। १९४९ में यह १,९१,४०,००,००० गैलन तक पहुँच गई जिसमें से १,५०,३०,००,००० गैलन दूध रसारूप खपतके लिये और २१,२०,००,००० गैलन दूध अन्य पदार्थोंकी तैयारीके लिए प्रयुक्त किये गये थे।

दूध-उत्पादनमें भारी वृद्धिके साथ-साथ दूधकी खपत भी बहुत ज़्यादा बढ़ गई। १९३९ से पूर्व प्रत्येक आदमीके हिस्सेमें ०·४३ पिंट (एक पिंट लगभग बारह औंस) अर्थात् लगभग ढाई छटांक रसादार दूध आता था जब कि आजकल ०·७५ पिंट अर्थात् लगभग साढ़े चार छटांक मिलता है। ब्रिटेनमें आजकल डेरी (दुग्धशाला)वाले अपने पशुओंसे हर रोज़ लगभग ४७,००,००० गैलन दूध निकाल कर देते हैं। इसी बातसे यह पता चल जाता है कि दूधका वितरण एक विशाल और महत्त्वपूर्ण उद्योग क्यों बन गया है। लेकिन अन्य कारण भी दूध-वितरणमें क्रमिक योग दे रहे हैं।

दूध सदा ही एक दुविधाका कारण रहा है। इसे 'प्रकृतिका पूर्ण खाद्य' कहा जाता है और जब कि यह बिल्कुल वैसा नहीं होता। किन्तु यह निश्चय ही मनुष्यका उपलब्ध होनेवाला एक अत्यन्त पोषक खाद्य पदार्थ है। यद्यपि इसमें पानी अधिकांश मात्रामें होता है तथापि वे सारे तत्व भी रहते हैं जो जीवन और विकासके लिए चाहिए। लेकिन इसका यही गुण तो इसे घातक जीवाणुओंके लिए आकर्षक बना देता है, और जब कि यह पोषण शक्ति प्रदान कर सकता है तो यह क्षयरोग, कपकपी लगकर चढ़नेवाले ज्वर, गला बैठनेकी बीमारी, हैज़ा और कंठके एक संक्रामक रोगके अतिरिक्त अन्य कई बीमारियोंके कीटाणु भी शरीरमें पहुँचा सकता है।

एक स्वस्थ जातिके लिए दूध भरके भेजना, पहुँचाना ही काफी नहीं होता बल्कि वितरित दूध सुरक्षित होना चाहिए। उपभोक्ताको सभी घातक जीवोंसे मुक्त दूध मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त उपभोक्ताको दूधमें और दूध प्रदान करनेवाले उद्योगपर विश्वास होना चाहिए।

यही वह क्षेत्र है जिसमें उद्योगने उन्नति की है और कर रहा है, क्योंकि ब्रिटेनमें बिकनेवाले सारे दूधकी शुद्धता क़ायम रखनेके लिये अक्तूबर, १९४९ में एक कानून पास किया गया था, जिसका उल्लंघन दण्डनीय होता है। इसलिए आजकल वहां दूध निकालने, भरने और बांटनेमें अत्यधिक सावधानी बर्ती जाती है।

अरबमें सूफ़ीमत

विपिनविहारी त्रिवेदी

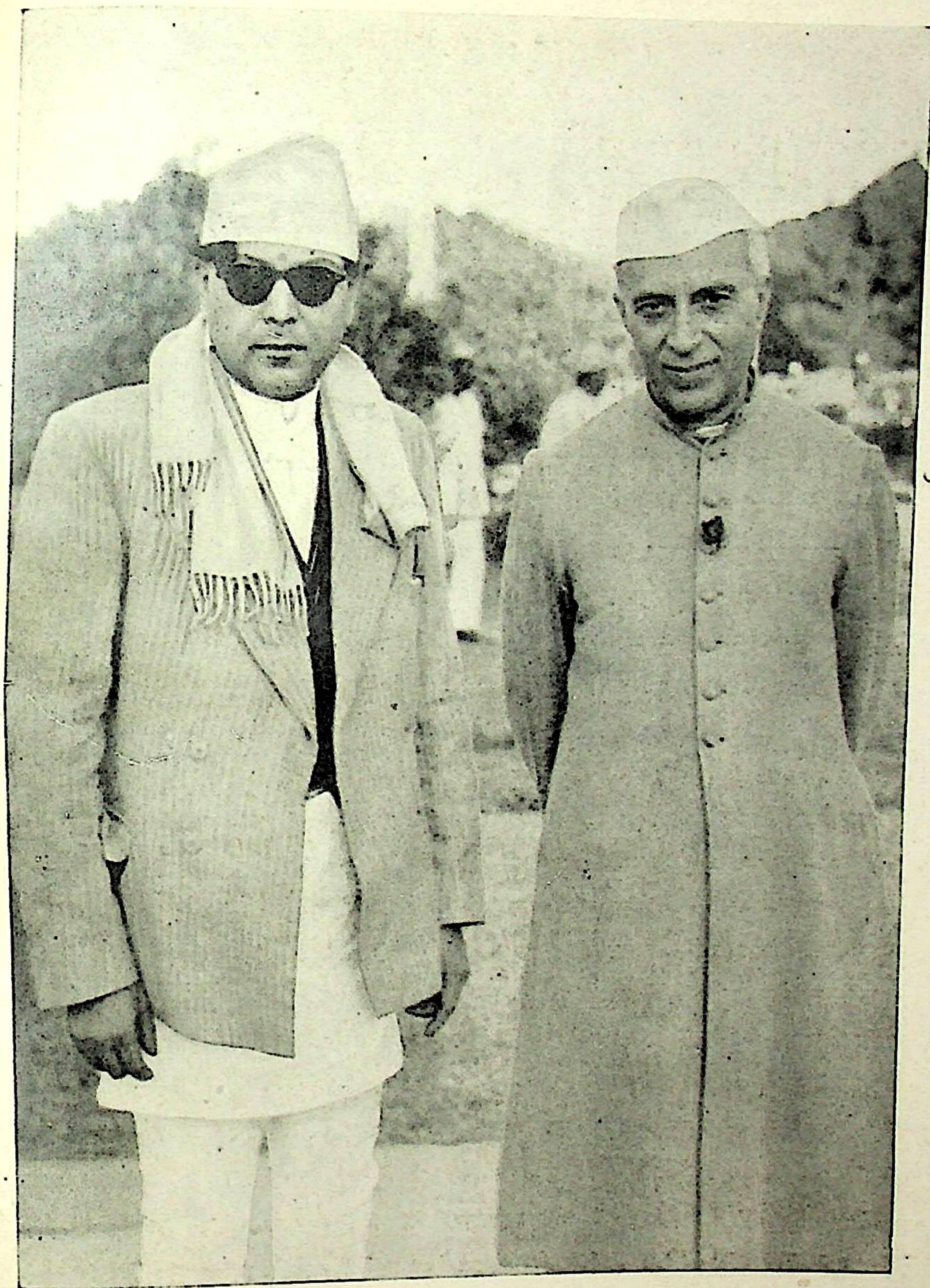
सूफ़ी मतके जन्मके बारेमें जहां भिन्न कारण मिलते हैं वहां 'सूफ़ी' शब्दकी व्युत्पत्ति भी अनेक प्रकारसे बताई जाती है। कुछ विद्वान् यूनानी शब्द 'सोफ़िया' (अर्थात् ज्ञान) से इस 'सूफ़ी' शब्दको निकला बतलाते हैं। कुछका कहना है कि मदीनाकी मस्जिदके सामने जो सुफ्फ़ा (अर्थात् चबूतरा) है उस सुफ्फ़ापर बैठनेवाले फ़क़ीर सूफ़ी नामसे विख्यात हुए थे। पवित्रता और स्वच्छता रखनेके कारण सूफ़ियोंको अरबी 'सफ़ा' (अर्थात् पवित्र) से सम्बन्धित किया जाता है। अरबी शब्द 'सफ़'का अर्थ होता है 'पंक्ति' और मध्यकालके सूफ़ियोंने इस प्रकारके विचार रखे थे कि अपने आचरण विशेषके कारण उन्हें अन्तिम निर्णय दिवस (Doomsday) को साधारण लोगोंसे अलग 'सफ़'में खड़ा किया जायगा। इस विचारके कारण सूफ़ी शब्दकी निष्पत्ति 'सफ़' शब्दसे भी बताई जाती है। एक अन्य अरबी शब्द 'सूफ़' है जिसका अर्थ होता है 'ऊन' या 'मोटा भद्दा कपड़ा'; सूफ़ी लोग सूफ़ धारण करते थे, इससे 'सूफ़ी' शब्द सूफ़से निकला हुआ भी बताया जाता है—अधिकांश पश्चिमी और अरबी विद्वान् इसी व्युत्पत्तिसे सहमत हैं।

सूफ़ी-विचार-धारा इस्लामके लिए विदेशी है। क़ुरानमें इसके लिए स्थान नहीं। उसमें स्पष्ट आदेश है 'ला रो बानिय-ताफ़िल इस्लाम' अर्थात् 'One should not practise celibacy and be a monk' क्रिश्चियन, सैबियन, ज़ोराष्ट्रियन आदि, जो इस्लाममें दीक्षित कर लिए गए थे, बौद्ध दर्शन द्वारा प्रभावित थे और उसकी त्याग-भावना द्वारा अभि-भूत हो चुके थे। ऐसे लोग जब मुसलमान बना लिए गए तब उनके और अरबी मुस्लिमोंके विचारोंका संघर्ष स्वाभाविक हो गया। और इस संघर्षसे प्रतिफलित हुई एक नई धारा जिसमें क़ुरानके कुछ विचार भी समन्वित हो गये थे। इस नई धाराने नवागन्तुकोंके विचारोंके लिए प्रलोभन पैदा किया। दारुण यन्त्रणावाले नरक और उसमें लोमहर्षण दण्डोंकी व्यवस्था भी इस नई धाराके प्रवर्त्तनमें सहायक रही होगी। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि क़ुरान और विदेशी प्रभावके संयोगसे तपस्या (Ascetism) का विकास हुआ।

बसराके हसन, जिनकी मृत्यु ७२८ ई० में हुई, यद्यपि सूफ़ी नहीं थे फिर भी उनके उपदेशोंने नई धाराको कुछ प्रभा-वित अवश्य किया था। बानूमैयाकी सरकारने धर्म और राष्ट्रके योगका ढकोसला रच रखा था, यद्यपि उसके शासक किंचित् भी शरिअतके पाबन्द न थे, इन्होंने सूफ़ीमतकी प्रगतिमें पर्याप्त सहायता पहुँचाई थी।

७५० ई० में सूफ़ीमतको एक बड़ी शक्ति मिली। लोग खुदाको डरते थे जिससे-तपस्या (Ascetism) करनेकी भावना पैदा हुई और रहस्यवाद (Mysticism) का विकास हुआ। खुदा तक हम कैसे पहुँच सकते हैं—इस विचारका अभ्युदय हुआ, इसी समय सूफ़ी शब्द वजूदमें आया। खुदाके भयसे खुदा का प्रेम पैदा हुआ। राबियाके उपदेश इस प्रसंगमें विचार करने योग्य हैं। इस्लामके जन्मके दो सौ वर्ष बाद सूफ़ीमतका प्रादुर्भाव हुआ था। सूफ़ीमतपर फ़ारसी प्रभाव भी पड़ा। फ़ारसवाले जब अरबों द्वारा इस्लामी झण्डेके नीचे कर लिए गए तबसे क्रमशः अनेक फ़ारसी विचारधाराएँ इस्लामी भावनापर अपना प्रभाव डालनेसे न चूकीं। हमाओस्त (Every thing is God) इस्लामके लिए विदेशी था, परन्तु हमाअज़ओस्त (Every thing is from God) इस्लामको अस्वीकृत नहीं था और उसे आदरणीय स्थान मिला। साथ ही (Neo-platonic) प्रभाव भी सूफ़ीमतपर पड़ा। श्री निकलसन का कथन है कि प्रायः सभी धर्मोंमें रहस्यवादके लिए स्वीकृति है जो भिन्न वातावरण साँचेमें अपनेको ढाल लेता है। यह रहस्यवाद भी सूफ़ीमतको मिल गया।

आठवीं शताब्दीमें अरबमें कई सूफ़ी महात्मा हुए। इनमें



नैपालके शासक भारतके प्रधानमन्त्रीके साथ ।

दलाईलामा और उनके राज्याधिकारी ।

पोटाला राजभवन, लासा ।

सबसे प्रसिद्ध मारूफ़-अल-करख़ी थे जिनकी मृत्यु ८१५ ई० में हुई। इनके माता-पिता ईरानी थे, परन्तु इनका लालन-पालन मेसोपोटामियामें हुआ था। ये हज़रतअलीसे सम्बन्धित थे और शिया थे। इमाम रज़ाके मौला (शिष्य) होनेके कारण रज़ाके दर्शनका इनपर अवश्य ही प्रभाव पड़ा होगा। इनका जीवन बग़दादमें व्यतीत हुआ। अपनी साधुताके लिए प्रसिद्ध, खुदाके प्रेमकी मदिरामें अलमस्त, ये एक रहस्यवादी थे और जनता इनका सम्मान करती थी। थियोसोफिकल स्कूल आव सूफ़िज़्मके ये प्रधान थे। खुदाईका भय और सांसारिक वस्तुओंके त्यागकी भावनामें ये दृढ़ थे। ("Thought of God, dwelling with God and business with God.) तथा—If Arif (आरिफ़) has no bliss yet he is in every bliss) का उपदेश इन्होंने निरन्तर किया।

मैसोपोटामियाके निवासी अबू-सुलेमान-दारानीका नाम भी कम उल्लेखनीय नहीं है। ये सीरिया चले गये और दारियामें बस गए। ये खुदाईके ज्ञानकी पूर्णता विषयक अपने अनुभव और उपदेश छोड़ गए हैं। इनका कथन था कि मारिफ़त (ज्ञानी) बोलनेकी अपेक्षा मौनका इच्छुक होता है। आरिफ़ अपनी आध्यात्मिक साधनामें चर्म-चक्षुओंको बन्द करके अन्तश्चक्षुओं द्वारा केवल खुदाको देखते हैं और उनकी ऐसी स्थिति 'फ़नाफ़िनला' कहलाती है।

इस समय तक खुदाको खोजनेवालोंका एक सम्प्रदाय स्थितिमें आ चुका था।

सूफ़ीमतके सर्व प्रथम लेखक जुननून-अल-मिश्री हुए। इनका सहयोग और प्रचार कार्य सूफ़ीमतमें चिरस्मरणीय रहेगा। इन्होंने सूफ़ियोंके लिए चार स्तर निर्धारित किये। प्रथम यह कि सूफ़ीको शरियत (कुरान) का अनुसरण करना चाहिये, दूसरे उसे तरीक़त (गंतव्य तक पहुँचनेका निश्चित मार्ग) पर चलना चाहिए, तदुपरान्त तीसरे स्तरमें वे मारिफ़त पर जोर देते हैं, क्योंकि उनका कथन है कि केवल आनन्द (Ecstasy) के द्वारा ही व्यक्ति खुदा तक पहुँच सकता है और इसके बाद उसे हक़ीक़तकी प्राप्ति होती है। इस अवस्थामें वह वास्तविक सत्य तक पहुँच जाता है और खुदाके साथ एकाकारिता प्राप्त कर लेता है। "The man who knows God best is the most lost in him that is फ़नाफ़िनिला।" कुरानकी आयत है "नहनो अक्वोमिन हबलिल वरीद" अर्थात् खुदा तुम्हारी कल्पनाओंके विपरीत है। जुननूनको खुदाके विचारोंमें खोये रहनेके कारण दण्ड भुगतना पड़ा। उनका व्यवहार शरिअतके अनुसार नहीं था और स्वतन्त्र-विचारक 'जिन्दीक' (Free thinkers) उस युगमें दण्डित किये जाते थे। जुननूनको भी अपने ऊपर लगाये गये आरोपोंकी सफाई देनेके लिये मिश्रसे बग़दाद ले जाया गया। निकलसनका कथन कि सूफ़ी मतपर सबसे अधिक यूनानी प्रभाव पड़ा है, कम-से-कम जुननूनके लिए तो सच ही ठहरता है। परन्तु डा० समदी इस मतसे सहमत नहीं, उनका कहना है कि जुननूनके कालमें अरबपर ईरानी प्रभाव अधिक था और पूर्वने अपनी ज्ञान-गरिमासे पश्चिमको सदा प्रभावित किया हैं। उनके मतसे जुननूनपर वैदिक दर्शनका प्रभाव अधिक था। अपने मतकी पुष्टिमें वे प्रमाण देते हैं पण्डित कंका (गंगा) का जो खलीफ़ा हारू-अल-रशीदके राज्यकालमें भारतवर्षसे अरब गये थे और कई उपनिषदोंका अरबी भाषामें अनुवाद किया था। लेकिन यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उस समय अरबपर भारतीय प्रभाव की सर्वाधिकताके साथ ही ईरान और यूनानी प्रभाव भी अपना काम कर रहे थे।

सूफ़ी प्रारम्भसे ही रहस्यवादात्मक एकाकारिताके विचार में संलग्न थे। फ़ना व बक़ा अर्थात् नष्ट होकर नाशको प्राप्त होकर शाश्वत हो जाओ (Be annihilated and become ever lasting)। इस काल तक सम्भवतः अद्वैतवादात्मक प्रवृत्तियाँ (Pantheistic tendencies) आने लगी थीं, परन्तु सूफ़ी (Pantheistic) नहीं थे।

बायजीद-बुस्तानी, जिनका वास्तविक नाम अबूअजीद होना चाहिए और जिनकी मृत्यु ८७४-७५ ई० में हुई ईरानके बिस्तम नामक नगरमें पैदा हुए थे। उनके पिता जरथुस्त्रके उपासक थे। उन्होंने फ़ना और बक़ापर अत्यधिक विचार

और अभ्यास किया तथा इस विचारको एक ऊँचे स्तरतक विकसित कर दिया था। उनके कुछ उद्‌गार देखिए—

(१) "I went from God to God until they cried from me, in me, O thou."
(२) "Verily I am God, there is no God except me, so worship me."

Nicholson calls such utterances as mystical extravagances.

(३) I came forth from Byazidness as a snake from its skin then I looked, I saw that lover and beloved and love are one for in the world of unification all can be one. I am the wine drinker and the wine and the cup bearer.

(४) बरकफ़े जामे शरीअत व बर कफ़े सिन्दाने इश्क़।

हर हवसनाके न दानद जामो सिन्दा बाख़तन॥

अबू-सईद-बिन-अबू-ख़ैर, जिनकी मृत्यु १००६ ई०में हुई, बायज़ीदके शिष्य थे और अपने गुरुके विचारोंको विकसित करनेका श्रेय प्राप्त करनेवाले हुए।

सन् ८१५-९१२ ई० तक सूफ़ियोंने अपनेको Antinomium enthusiasm से दूर रखा। और इस कालमें होनेवाले जिस सूफ़ीने अनलहक़ (Pantheistic) की प्रवृत्ति दिखलाई उसे भारी दण्ड भुगतना पड़ा और यहाँ तक कि अपना शिरोच्छेदन भी करना पड़ा। मंसूर हल्लाजने कहा कि मैं ख़ुदा हूँ और इस अपराधी वाक्यके कारण उसे ९१२ ई०में पत्थरोंसे मार डाला गया।

बग़दादके जुनैद, जिनकी मृत्यु ९०६ ई० में हुई, सत्य और शरिअतका समझौता करनेके पक्षमें थे।

इस्लाममें तस्बीह (माला) का प्रचार सीरियाके ईसाई पादरियों (Monks) से आया जिन्होंने बौद्धोंसे इसे प्राप्त किया था और पीरकी कल्पना भी ईसाई सूत्रसे आई जहाँ पादरी सम्प्रदाय (Monistic Orders) बन चुके थे तथा मुरीद (Novice) और पीर (Clergy) भलीभाँति प्रचलित थे। शैतान पीरको छोड़कर किसी भी रूपको धारण कर सकता है यह भाव भी पैदा हुआ। जुनैदके अनुसार तसव्वुफ़ यह है—That God should make thee die to thyself and should make thee live in Him. ग़ालिबका कथन—"इशरते क़तरा है दरियामें फ़ना हो जाना" जुनैदके उपर्युक्त विचारसे पूर्ण साम्य रखता है।

"Sufism in its ascetic moral and devotional aspects was a spiritualised Islam, though it was a very different thing. essentially."—Brown.

सहल-बिन-अब्दुल्ला-अल-तुस्तरीने सूफ़ियोंके [illegible] परिचालित करनेके लिए निम्न छः सिद्धान्त बनाकर प्र[illegible] किये थे—(१) क़ुरानका दृढ़तासे आश्रय ग्रहण करना (२) सुन्नते रसूल (पैगम्बर) की पैरवी, (३) अक़्लेहलाल, (४) हानि पहुँचाये जानेपर भी विपक्षीको हानि न पहुँचाना, (५) हरामसे परहेज़ और (६) सारे कर्त्तव्योंको अविलम्ब पूरा करना।

ऊन कातनेवाले पिताके घर ग़ज़्ज़ालीका जन्म १०५८-५९ ई० में तूस नामक नगरमें हुआ था। पचपन वर्षकी आयुमें वे प्रसिद्धिके शिखरपर पहुँच गये थे। सांसारिक जीवन त्यागकर वे कलन्दर (दरवेश) हो गये। तीर्थाटन हेतु पहले वे हिजाज़ (अरबका एक प्रदेश) गये और वहाँसे दमिश्क पहुँचे। दमिश्कमें दस वर्ष ठहरकर अन्य ग्रन्थोंके अतिरिक्त अपना बेजोड़ ग्रन्थ 'एहया-उलूम-अदीद' लिखा। तसव्वुफ़के माध्यमसे उन्होंने इस्लामके सिद्धान्तों (Dogmas) को अन्तिम स्वरूप दिया जो सर्वमान्य हुआ। मुस्लिम धर्ममें इन्हींके प्रभावसे तसव्वुफ़ने एक निश्चित और माननीय स्थान प्राप्त किया। निकलसनका कथन है कि—

"Orthodoxy was forced to accept saint worship and to accept the miracles of the Aulia."

शर्फ़उद्दीन-उमर-अब-नुल-फ़रीद, जिनका जन्म ११८१ ई० में और मृत्यु १२३५ ई० में हुई, ख़ुदाके ख़यालमें इस क़दर तल्लीन रहा करते थे कि उन्होंने एक बार मलिक-अल-कामिल नामक बादशाहसे मिलने और उसका दान स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया था। वे सोफ़िया कालेज गये थे जहाँ एक छद्मवेशी सन्तने उन्हें हिजाज जाने और ज्ञान प्राप्त करनेकी सलाह दी। सन् १२३१ ई० में उन्होंने मक्काकी यात्रा की थी। हसन-अल-बरूनी नामक १७वीं शतीके एक आलोचकने उनके ग्रन्थकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। नज़्म-स्सलूक (Mystics Progress) नामक उनका एक ग्रन्थ सन् १८५६ ई० में जर्मन भाषामें अनूदित हुआ था। उनकी रचनाओंको देखनेसे पता चलता है कि वे हुलूल (Incar-

nation of God in human beings) में विश्वास करते थे। "He was of Arabic stock and his poetry is Arabian in essence." (Brown),

मुहीउद्दीन-इब-नुल-अरेबीका स्पेनके मुरसिया (Mursia) नामक स्थानमें २६ जुलाई, सन् ११६५ ई० में जन्म हुआ था। आठ वर्षकी अवस्थामें ये स्पेनके दूसरे नगर सेविले (Seville) चले गये। सन् १२०२ ई० में ये पूर्वकी ओर बढ़े तथा मिश्र पहुँचे और वहाँसे हिजाज आये फिर तीर्थ-यात्रायें करते हुए बगदादके मोसुल (Mosul) तथा अन्य स्थानोंको गये और अन्तमें सन् १२४० ई० में दमिश्कमें बस गये। उनकी क़ब्र फ़िलासफ़र्स स्टोन नामक स्थानपर है।

प्रसिद्ध लेखक किबरीत-अल-अहमदने सूफ़ियोंके संसर्गमें आकर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे जिनमें दो बहुत प्रसिद्ध हैं और सारे मुस्लिम अध्यात्मवादी ग्रन्थोंमें बढ़-चढ़ कर हैं। इन ग्रन्थोंके नाम हैं (१) फ़तूहात अलमक्किया (Meccan Regulations), (२), फ़ुसूस अलहिकम (Berzels of Philosophy)। साथ ही ये कट्टर (Orthodox) मुसलमान भी थे। इन्होंने रहस्यवाद और इस्लामी कट्टरताका समन्वय कराया।

"He was a literalist in religion and spiritualist in his speculative belief. He was accused of blasphemy when he said that he followed none in his spiritual belief. He was accused of heresy when he professed Hulul (हुलूल) He taught Ittihad (इत्तिहाद) that is identification of man with God." (Brown).

इनका अनुसरण करनेवालोंकी बड़ी संख्या थी और सारी इस्लामी दुनिया इनके ग्रन्थोंको चावसे पढ़ती थी। मज़्दउद्दीन फ़ीरोज़ाबादी (१४१४ ई०) और जलालुद्दीन सुयूती (१४४५ ई०) ने १५ वीं शताब्दीमें इस सूफ़ी विचारकके सिद्धान्तोंका समर्थन किया था। वहदुतुल वुजूद (Unity of being) में इनका विश्वास था और पूर्ण मानवका सिद्धान्त (Theory of Perfect Man) इनकी उपज था।

"This pantheistic monism in the hands of Ibnul Arebi puts on an Islamic mask in the doctrine of perfect man."

इनका एक विचार देखिये—

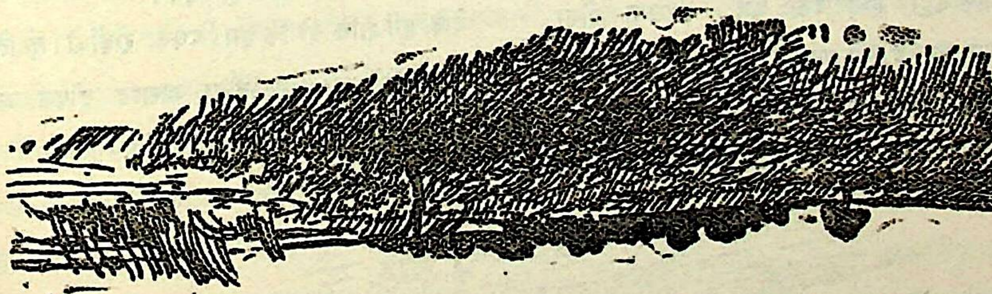
"He praises me (by manifesting my perfections and creating me in His form),
And I pray Him (by manifesting His perfections and obeying Him),
How can He be independent when I help and aid Him? (because the divine attributes derive the possibility of manifestation from their human correlates).
For that cause God brought me into existence,
And I know Him and bring him into existance (in my knowledge and contemplation of Him.)"

—(ब्राउन द्वारा अरबीसे अनूदित)

इनकी 'शेख़ुल अकबर' उपाधि इस्लामी संसारमें इनकी महत्ताकी परिचायक है।

अपना प्रस्तुत लेख श्री निकलसनके कथनसे समाप्त करते हैं :—

"In the History of Sufism his name marks an epoch; it is owing to him that what began as a profoundly religious personal movement in Islam ends as an ecletic and definitely pantheistic system of philosophy."



स्वतन्त्रते !

हरिमोहनलाल श्रीवास्तव

ब्रजचन्द्रकी भाँति भादोंकी अँधेरीको उजेरीमें बदल देनेवाली महिमामयी !

अगस्तके उस घटनापूर्ण मासमें,—जिसने सौदागरी सिंहासनकी प्रतिष्ठा की थी, जिसने व्यापारिक गुलामीका पट्टा लिखा था, जिसने सन् सत्तावनकी विकट प्रतिहिंसाका उग्र रूप दिखाया था और जिसने बयालीसकी विद्रोहाग्निको नूतन वेगसे प्रज्वलित किया था,—उसी अगस्तकी १५ आते-आते तुम सन् सैंतालीसमें हास्यमयी राका बनकर उदय हुई। संसारके कौशलसे अलग चमत्कार-भरे अपने एक प्रहारसे तुमने ब्रिटिश साम्राज्यवादके निर्द्वन्द्व विहारको सहसा चुप कर दिया, और युग-युगके लिये दासताकी शृंखलाओंको तोड़ फेंका।

अगणित नरनाहरोंके शोणितभरे मुण्डोंको लेकर उल्लास और उन्माद बिखेरनेवाली क्रान्तिवाहिनी !

बलिदानके उस विकराल खप्परमें, जिसमें सरदार भगत सिंह और चन्द्रशेखर आजादने, बरकतउल्ला और हरदयालने, करतारसिंह और अशफ़ाकउल्लाने हँसते-हँसते बूँद-बूँद शोणितका तर्पण किया है, उसी खप्परके साथ तुम्हारी मुग्धकारी मूर्त्ति भयंकर झंझावात और भीषण अग्निप्रकोपके भीतर झाँकती हुई मिली। विभाजनके वज्रनादके साथ मार-काट, बलात्कार और भाग-दौड़के आतंक अनाचारसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए तुमने पृथ्वीतलको दहला दिया—कदाचित् इसलिये कि धर्म और समाजके कट्टर रूढ़िवादकी कलंक कालिमा धोकर जन-जनका मानस अखण्ड राष्ट्रियताकी धवलताके साथ मानवताकी चिर उपासनाको अपना ध्येय बना सके।

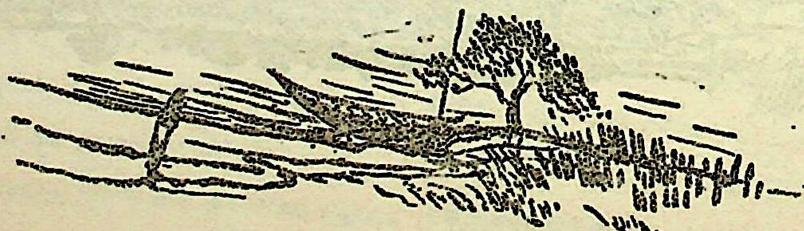
अनाचारकी धूमिल लहरोंके बीच भी मार्ग खेकर विजय स्तम्भसे जा लगनेवाली गौरवशालिनी !

गम्भीर समस्याओंकी वह सघन आँधी, जो राष्ट्रपिता गांधी और नेताजी सुभाष जैसे कर्णधारोंके वियोग-दुःखसे और भी प्रचण्ड बनी, वह आँधी कुछ धुल चली है, पर अभी भी स्वार्थ और वैमनस्य, रिश्वतखोरी और चुगलखोरी, महामन्दी और पार्टीबन्दी जैसे कुछ भयंकर शत्रु हमारे बीचमें ही तो हैं। किन्तु चोटीके हमारे नेता जवाहर, पटेल और राजेन्द्रका यह दृढ़ संकल्प है कि आजादीका लाभ किसी प्रकार सीमित न रह कर दूजके चाँदकी भाँति कोटि-कोटि भारतीयोंकी कुटियाओंको निरन्तर आलोकित करता रहे और तेरे वरद हस्तसे उनकी विलक्षण चातुरी बची हुई कुछ कठिनाइयोंपर निश्चय ही विजय पायगी।

प्राणिमात्रको समान रूपसे प्यारी, किन्तु मानवपर उत्तरदायित्वका विधान रचनेवाली अनुशासनप्रिये !

वर्षगाँठकी इस बेलामें तुम्हारा स्वागत करते हुए हम अकिंचन भक्त, जिन्होंने सच ही तुम्हारे लिये कहने योग्य कुछ नहीं किया, आज यह प्रतिज्ञा करते हैं कि राष्ट्रिय ऋण चुकानेके निमित्त वर्त्तमान सरकारको सक्रिय सहयोग देते हुए हम कुसंस्कारोंके उन्मूलनमें सन्नद्ध रहेंगे। सब प्रकार अपनेको तपाकर हम कर्मके कठोर पथपर चलते हुए तुम्हारे सच्चे प्रहरी कहे जानेका गौरव प्राप्त करके ही रहेंगे।

देवि, हमें शक्ति दो कि हम पथके रोड़ोंको हटाते हुए मानवताके स्नेहसे भरा आजादीका अखण्ड दीपक जलाकर विश्व इतिहासमें जीवनकी छाप छोड़ जायँ।



यातायातमें विज्ञानकी प्रगति

दुलहसिंह कोठारी

यह तो निर्विवाद सत्य है कि गत ५० वर्षोंमें विज्ञानने उतनी प्रगति की जितनी कि उसने पिछले २००० वर्षोंमें नहीं की। बीसवीं शताब्दीके इस महान् वैज्ञानिक एवं यान्त्रिक युगके अभी तो केवल ५० वर्ष ही बीते हैं। फिर भी यदि हमारी प्रगतिकी रफ़्तार यही बनी रही तो यह अनुमान लगाना कि ई० २००० वर्ष तक हम विकासकी किस चरम सीमा तक पहुँचेंगे, केवल कठिन ही नहीं, किन्तु कल्पनाके स्तरसे भी परे जाना होगा। समय और स्थानपर अपने प्रभुत्वकी छापको अंकित करनेवाले वर्त्तमान युगके मनुष्यने जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें जो सर्वाङ्गीण उन्नति की है वह तो कदाचित्, आदिसे लेकर आज दिन तक, समूचे मानव-प्रगतिके इतिहासको चुनौती देनेके लिए पर्याप्त है।

यातायातके क्षेत्रमें आधुनिक कालमें जो उन्नति हुई है वह विशेषकर बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। विषम गतिसे प्रवाहित होनेवाले गमनागमनके साधन मनुष्यके आश्चर्यको सीमाके परम छोर तक ही नहीं पहुँचाते वरन् वे यह भी प्रमाणित करते हैं कि अन्य क्षेत्रोंमें भी विज्ञानकी प्रगति उतनी ही तीव्र एवं प्रबल रही है। विज्ञानके विविध क्षेत्रोंमें अब इतना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो चुका है तथा भिन्न-भिन्न शाखायें परस्परमें एक दूसरेपर इस प्रकार अवलम्बित हैं कि किसी एक ही दिशामें प्रगति करना तो कदाचित् असम्भव-सा प्रतीत होता है। यही कारण है कि वस्तुतः यातायात सम्बन्धी अनेकानेक गूढ़तम समस्याओंको उचित रूपसे समझने तथा उनको सुलझानेके लिए केमिकल इंजीनियरिंग, धातु-शास्त्र, यन्त्र-विज्ञान, भौतिक तथा रासायनिक शास्त्र इत्यादि विषयोंमें भी बड़े-बड़े आविष्कार एवं अनुसन्धान करने पड़े।

मानव-सभ्यताके उदयकालसे लेकर बहुत लम्बे समय तक बैल, खच्चर, ढोर, हाथी इत्यादि अनेक जानवर ही यातायातके प्रमुख साधन रहे होंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। अठारहवीं सदीके प्रारम्भ तक घोड़ा ही सबसे तेज चालसे चलने वाला पशु समझा जाता था। उस समयके रेकार्डके अध्ययनसे पता चलता है कि उन दिनोंमें अश्वारोही दूत २० मील प्रति घण्टेकी गतिसे ७० मील तक एक ही चालसे भागने का अतुल साहस रखते थे। परन्तु जैसे-जैसे विज्ञान प्रगति करता गया वैसे-वैसे ढुलाई तथा सवारीके प्रारम्भिक साधनोंका उपयोग बहुत-कुछ अंशोंमें कम होने लगा। और उनके स्थानपर रेल गाड़ी एवं अन्य प्रकारके स्वयं गतिशील यानोंसे काम लिया जाने लगा। फिर भी इस क्षेत्रमें एक महान् क्रान्तिकारी युगका जन्म तो तब ही हुआ जब मनुष्यने जल-तरंगोंमें एवं पेट्रोलियममें अनुपम शक्ति अनुभव की।

पेट्रोलियमके प्रयोगके पूर्व तो शक्ति-उत्पादनका प्रमुख साधन कोयला ही था। कोयलेके दहन (Combustion) से उत्पादित ताप द्वारा पानीको वाष्पमें परिवर्तित किया जाता है और फिर बायलरसे भापको धातुकी एक सुदृढ़ चद्दरसे बने हुए बेलनमें प्रवेश कराकर उसकी प्रसरण-शक्ति (Expanding power) द्वारा पिस्टनको संचालित करते हैं। पिस्टन बेलनेमें आगे-पीछेको चलता है और उसकी इस प्रकारकी गतिको क्रैङ्क अथवा धुरा-दण्ड (Crank and shaft) की सहायतासे इंजिनके पहिएकी गतिमें परिवर्त्तित किया जाता है। वाष्प-इंजिन, जो इस युगमें बहुत काममें लाया जा रहा है एवं जिससे विशेषकर रेलगाड़ियाँ खींची जाती हैं, इसी सिद्धान्तके अनुसार क्रिया करता है। इस इंजिनमें मुख्यतया तीन क्रियाएँ होती हैं। प्रथम, भट्ठीमें ईंधन जलाकर ताप-शक्ति उत्पन्न की जाती है। द्वितीय, बायलरमें पानीकी भाप बनाई जाती है और तृतीय, इस भापकी शक्तिसे पिस्टन द्वारा इंजिनके पहियोंको संचालित किया जाता है। वाष्प इंजिन एक प्रकारसे 'बाह्य-दहन' इंजिन है, क्योंकि इसमें भट्ठी तथा बायलर बेलनसे (जिसमें भापकी शक्तिसे पिस्टनको गति प्रदान की जाती है)

पृथक होते हैं। वाष्प इंजिनके आविष्कारके सम्बन्धमें दो शब्द लिखना उपयुक्त होगा। वाष्पकी शक्तिसे बहुत समय पूर्वसे ही परिचित होते हुए भी लोहेकी पटरियोंपर ६० मील प्रति घण्टेकी गतिसे दौड़नेवाले आधुनिक युगके इंजिन निर्माण करनेके पूर्व बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंको अनेक अनुसन्धान एवं प्रयोग करने पड़े। उन वैज्ञानिकोंमें से, जिन्होंने वाष्प इंजिनको यातायातका एक महत्त्वपूर्ण साधन बननेमें योग दिया, थोमस न्यूकोमेन, जेम्स वाट (१७३७-१८१६) तथा स्टीफेन्सनके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। न्यूकोमेनने सन् १७०५ के लगभग एक वाष्प इंजिन निर्माण किया जो पानी खींचनेमें उपयोगी सिद्ध हुआ। जेम्स वाटने न्यूकोमेनके इंजिनमें बहुत हेर-फेर ही नहीं किये वरन् उसने रैसिप्रोकेटिंग (Reciprocating) इंजिन जिसमें एक प्रकारके दो विसर्पी अभिद्वारोंके प्रयोगसे पिस्टनको भाप द्वारा आगे तथा पीछेको फेंका जाता है, आविष्कार कर उसकी गति एवं दक्षताको पर्याप्त स्तर तक पहुँचानेमें अद्भुत सफलता प्राप्त की। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वाष्प इंजिनका रेल गाड़ीमें प्रयोग करने वाले वैज्ञानिकोंमें विशेष श्रेय तो स्टीफेन्सनको ही है। यद्यपि इस तरहके इंजिन बहुत सुदृढ़ होते हैं और अत्यन्त शक्तिशाली होनेके कारण उनका प्रयोग बड़े-बड़े कामोंमें किया जाता है फिर भी इन इंजिनोंकी कार्यक्षमता (Efficieney) ८ या १० प्रतिशतसे अधिक नहीं होती। इसके अतिरिक्त ये बहुत भारी होते हैं तथा अधिक स्थानको घेरते हैं। साथ ही ये कितने ही श्रेष्ठ होते हुए भी बहुत साधारण चालसे चलायमान होते हैं। जब तक केवल वाष्प इंजिन ही हमारी रेलगाड़ियोंको खींचनेमें तथा यातायात सम्बन्धी अन्य साधनोंमें काम आते रहे, उनकी गतिमें कोई भारी उन्नति नहीं हो सकी।

वाष्प टरवाइन अवश्य ही वाष्प-इंजिनकी अपेक्षा आधुनिक आविष्कार है। यद्यपि टरवाइन भी वाष्प शक्तिको काममें लाता है फिर भी इस यन्त्रका सिद्धान्त एवं बनावट वाष्प इंजिनसे भिन्न होती है। टरवाइनमें वाष्प बड़े वेगसे एक वृहताकार पहियेपर लगे हुए पंखोंसे टकराकर उसको बड़ी तेजीसे घुमाती है। इस यन्त्रको शक्तिशाली बनानेके लिए साधारण भापको काममें न लाकर अति-तप्त-भापको (Super heatad steam) ही (जिसका दवाव भी अत्यधिक होता है) काममें लाते हैं। टरवाइनकी क्षमता वाष्प इंजिनोंसे अधिक होती है एवं जहाजोंमें, रेलगाड़ियोंमें, तथा फैक्टरियोंमें इनसे बहुत काम लिया जाता है। टरवाइनके प्रयोगसे इंजिनोंकी गतिमें भी बहुत कुछ वृद्धि हुई है। पेट्रोल-इंजिन तथा अन्तर-दहन इंजिनका निर्माण वास्तवमें यातायात के विस्तृत क्षेत्रमें एक महान् आविष्कार था। इस प्रकारके इंजिनोंमें वाष्प-इंजिनोंकी भाँति कोई भट्ठी तथा वायलर नहीं होता; किन्तु बेलनमें ही जिसमें पिस्टन लगा रहता है विशेष अभिद्वारसे वायु तथा पेट्रोलकी वाष्पका मिश्रण प्रवेश करता है। यह जलनशील मिश्रण पिस्टन द्वारा संचालित किया जाता है। जब दबाव एवं तापक्रम निश्चित सीमा तक पहुँच जाते हैं तो स्वतः एक विद्युत-स्फुलिंगसे उसका एकाएक विस्फोट होता है। फलतः दबाव एवं तापक्रमके अधिक बढ़ जानेसे पिस्टन बड़ी शक्तिसे आगेकी ओर फेंका जाता है। इस प्रकारके इंजिनोंमें पिस्टनकी क्रियाओंका पूर्णचक्र (Cycle of operation) चार प्रहारोंका होता है। ये चारों क्रियायें निम्न प्रकारसे होती हैं—१. प्रथम प्रहारमें पिस्टन आगेकी ओर गति करता है और अभिद्वारसे वायु एवं पेट्रोलकी वाष्पका विस्फोटक मिश्रण सिलिण्डरमें प्रवेश करता है। २. द्वितीय प्रहारमें पिस्टन पीछेकी ओर चलता है। इस समय अभिद्वार बन्द रहते हैं तथा मिश्रणको संचालित किया जाता है। ३. तृतीय प्रहारमें मिश्रणका भयंकर विस्फोट होता है और पिस्टन अनन्त वेगसे आगेकी ओर धकेला जाता है। चारों प्रहारोंमें यही प्रहार बहुत महत्त्व रखता है क्योंकि पिस्टनको इसी क्रियामें शक्ति मिलती है, जिस कारणसे वह बराबर गति करता रहता है। ४. चतुर्थ प्रहारमें पुनः पिस्टन पीछेकी ओर चलता है और निर्गम अभिद्वारसे जली हुई गैसें बाहरको फेंक दी जाती हैं।

अन्तर-दहन (Internal Combustion) इंजिन प्रायः तीन प्रकारके होते हैं। (१) गैस इंजिन-इसमें कोल गैसे (Coal gas) एवं वायुका मिश्रण काममें लाया जाता है। सन् १८७६ में डा० ओटो (Dr. Otto) ने सर्व

प्रथम सन्तोषजनक अन्तर-दहन गैस-इंजिनका निर्माण किया। इसी वैज्ञानिकको अन्तर-दहन-इंजिनोंके आविष्कार करनेका सर्वश्रेष्ठ श्रेय है। (२) पेट्रोल-इंजिन—इसमें जैसा कि बतलाया जा चुका है विस्फोटक मिश्रण वायु एवं पेट्रोलकी वाष्पका बना होता है। पेट्रोल अधिक उपलब्ध होने तथा अन्यकी अपेक्षा हल्के होनेके कारण, इन इंजिनोंका प्रयोग बहुत देखनेमें आता है। (३) डीजल-इंजिन (Diesel Engine)—यह सब इंजिनोंकी अपेक्षा बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इसमें भारी तेल (Crude or Heavy Oil) काममें लाया जाता है। इसकी क्षमता बहुत अधिक होती है। आर्थिक दृष्टिसे भी यह इंजिन सब इंजिनों की अपेक्षा सस्ता पड़ता है। आजकल इसका प्रयोग बहुत बढ़ता जा रहा है। समुद्रकी सतहपर तैरनेवाले विशालकाय जहाजोंमें, सड़कोंपर दौड़नेवाली मोटरों, बसों तथा रेलगाड़ियोंमें एवं आकाशमें उड़नेवाले वायुयानोंमे भी इस इंजिनका प्रयोग होने लगा है विशेषकर मध्यम श्रेणीके यानोंमें जिनमें १०० से लेकर १००० हार्स-पावरके इंजिनोंकी आवश्यकता रहती है, डीजल इंजिन काममें आने लगे हैं। परन्तु बहुत भारी होनेके कारण कितने ही उत्तम, सुदृढ़ सस्ते एवं दक्ष होते हुए भी ये पेट्रोल इंजिनोंका स्थान पूर्णरूपसे ले सकेंगे, निश्चय रूपसे नहीं कहा जा सकता।

अवश्य ही अन्तर-दहन इंजिनोंके आविष्कारने विविध प्रकारके जल, स्थल एवं वायु-मण्डलमें हलचल करनेवाले यानों (Automobiles) के प्रगतिशील जीवनमें एक नवीन तथा अनुपम स्फूर्ति फूँक दी। इन्हीं इंजिनोंके फल-स्वरूप पृथ्वीके अन्तः स्थलपर मोटरें एवं रेलगाड़ियाँ भिन्न दिशाओंमें तेजी एवं सरलताके साथ दौड़ने लगीं, समुद्रकी सतहपर विशालकाय जहाज तैरने लगे एवं सुदूर आकाशके अन्तरिक्षमें ३०० मील प्रति घण्टेसे भी अधिक गतिसे बड़े-बड़े वायुयान उड़ने लगे। यह सब ही कुछ हुआ सही। इस शताब्दिके प्रारम्भसे पेट्रोलका प्रयोग दिनोंदिन बढ़ने लगा। इंजिनोंकी दक्षताको ऊँचे स्तर तक पहुँचानेके हेतु एक-से-एक बढ़कर प्रयत्न किए जाने लगे। यातायातके क्षेत्रमें एक प्रकारसे क्रान्तिकी लहर दौड़ पड़ी। परन्तु बहुत शीघ्र ही मनुष्यने इन सब इंजिनोंकी परिमितताको पूर्णरूपेण अनुभव कर लिया। अतः अपने सुनहरे विचारोंको पूरा करनेके लिए वह अपनी दृष्टिको अधिक तीव्रताके साथ चहुँ ओर दौड़ाने लगा तथा नवीन उमंग एवं उत्साहके साथ अनेक प्रयोगों एवं अनुसन्धानोंके करनेमें अपनी समस्त शक्तिसे जुट गया। कुछ ही वर्ष हुए उसने एक नवीन यन्त्रका आविष्कार किया है। इसको हवाईयान (Rocket Ship) कहते हैं। यानोंका सिद्धान्त अन्य प्रकारके यानोंसे भिन्न होता है।

जैसा कि हमको ज्ञात है जलयानों एवं वायुयानोंको गति प्रदान करनेवाला एक प्रकारका पंखेनुमा चक्र (Propeller) होता है जो बड़ी तेजीसे पानीमें अथवा वायुमें घूमता है। इस चक्रकी शक्ति तो ताप इंजिनसे ही मिलती है, परन्तु जैसे ही यह घूमने लगता है वह पानी अथवा वायुमें एक प्रकार की हरकतें उत्पन्न करता है कि जिनकी प्रतिक्रियाओंके परिणाम स्वरूप यान आगेकी ओर अग्रसर होता है। चालक चक्रकी क्रियाको पेचकी क्रियासे समझ सकते हैं। जिस प्रकार जब एक पेचको लकड़ीमें पकड़ाकर घुमाते हैं तो उसका सिर आगेकी ओर प्रेरित होता है। ठीक उसी तरह जब पंखा अथवा प्रोपेलर हवामें घूमता है तो वह सारे वायुयानको—जो एक तरहसे उसका सिर माना जा सकता है—आगेकी ओर खींचता है। परन्तु एक बात यहाँपर विशेष उल्लेखनीय है। यदि पेचकी पकड़ लकड़ीमें दृढ़ नहीं हुई तो उसको फिरानेपर भी वह आगेको नहीं बढ़ेगा, इसी भाँति यदि प्रोपेलरकी पकड़ हवामें पक्की नहीं हुई तो वह वायुयानको आगेकी ओर खींचनेमें असमर्थ सिद्ध होगा। पेचकी पकड़के लिए लकड़ी बहुत मुलायम नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार चालक-चक्रकी पकड़के लिए हवा आवश्यकतासे अधिक हल्की नहीं होनी चाहिए। शून्य वायुयानके संचालनके लिए हवाका होना अत्यावश्यक है। शून्य आकाशमें अथवा इतनी ऊँचाईपर जहाँ कि हवाका दबाव इतना कम हो कि उसमें चालक-चक्रकी ठीक पकड़ नहीं हो सके तो प्रोपेलर द्वारा संचालित वायुयान नहीं उड़ सकते। अतः कितने ही शक्तिशाली इंजिनके होते हुए भी आधुनिक वायु-

यानोंके लिए पृथ्वीके धरातलसे ४ या ५ मीलसे अधिक ऊपर तक उड़ना तो बहुत-कुछ अंशोंमें असम्भव-सा ही है। तो फिर क्या तृषित नेत्रोंसे मनुष्य सदा ही ऊँचे आकाशकी ओर देखता रहेगा? नहीं! हवाईयानोंके आविष्कारने उसके हृदयमें नवीन आशाओं एवं उमंगोंका संचार कर दिया है।

हवाई यानोंके मुख्य दो भाग होते हैं। एक तो उसका ढाँचा और दूसरा इंजिन—जिसके द्वारा वह उड़ान करता है। ईंधन, जो यानोंमें काममें लाया जाता है, वह बहुधा बारूद ही होता है। बारूदके प्रज्वलन (Ignition) से गैसें पैदा होती हैं तथा दहनकी तापसे वे बड़े वेगसे प्रसरण करनेका प्रयत्न करती हैं। यानके पिछले भागमें एक पतली-सी नालिका रहती है जिसको 'जेट' कहते हैं। इस जेटमें से होकर भीतरसे गैसें जब बाहरको निकलती हैं तो प्रतिक्रियाके रूपमें वे यान पर जोरका धक्का मारती हैं, जिसके कारण वह अग्रसर होता है। इस प्रकारकी यन्त्रणाको जेट-परिचालन-क्रिया कहते हैं। जैसा कि स्पष्ट है यह प्रोपेलर-परिचालन क्रियासे सर्वथा ही भिन्न है। यानोंकी गतिके लिये हवाकी कोई आवश्यकता नहीं होती। अतः यह हल्की वायुमें और भी अधिक सुगमतासे यात्रा करनेका दम रखते हैं। शून्य आकाशमें भी यान बड़ी ही सरलतापूर्वक गति-शील होंगे। जैसे-जैसे यान अपने पथपर प्रगति करता है, उसे जेटसे निकलने वाली गैसों द्वारा क्रमशः धक्के लगते रहते हैं। इन धक्कोंके फलस्वरूप उसकी गति बराबर बढ़ती जाती है। ऐसे यानों (Rocket Ships) का निर्माण किया जा चुका है जो ध्वनि की गतिसे भी अधिक तेजीसे उड़ सकते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टिसे तो यानोंकी गतिपर किसी प्रकारका कोई नियन्त्रण नहीं है। प्रोपेलर द्वारा संचालित यानोंकी गति तो एक निश्चित सीमाके ऊपर नहीं बढ़ाई जा सकती, क्योंकि जैसे ही प्रोपेलर आवश्यकतासे अधिक तेजीसे घूमने लगता है, हवामें उसकी पकड़ शिथिल होने लग जाती है। बस, फिर लाख प्रयत्न करनेपर भी वायुयानकी गति अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। परन्तु जहाँ तक यानोंका सम्बन्ध है, हम ऐसे शक्तिशाली यानोंकी कल्पना तो कर ही सकते हैं जो पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षण सीमाको पारकर अन्तर्तारीय जगतमें पहुँच सकेंगे। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस तरहके यानोंका निर्माण करनेके पूर्व बड़ी एवं जटिल समस्याओंको हल करना होगा।

स्थानाभावके कारण केवल दो ही समस्याओंकी ओर यहाँ पर संकेत कर देना उचित होगा। प्रथम तो यह है कि यानको शक्तिशाली बनानेके लिए जैसे-जैसे उसमें विस्फोटक पदार्थकी मात्रामें वृद्धि करते हैं वैसे-ही-वैसे उसके भारमें भी वृद्धि होती जाती है। गुरुत्वाकर्षण-सीमाको पार करनेके लिए उसके अन्दर इतने परिमाणमें ईंधन रखना होगा कि यानका भार आवश्यकतासे कई गुना अधिक हो जानेके फल-स्वरूप वह इतनी लम्बी उड़ान करनेमें कदापि समर्थ नहीं हो सकेगा। ईंधनकी समस्या सचमुच बड़ी जटिल है। इसी समस्याकी विषमताका अनुमान लगाकर बड़े-बड़े साहसी वैज्ञानिक निराश ही नहीं हो गये, अपितु वे अनुभव भी करने लगे कि अन्तर्तारीय यात्रा प्रायः असम्भव है। परन्तु परमाणु-शक्तिके अब उपलब्ध होनेसे फिर आशाका संचार होने लगा है। सम्भवतः निकट भविष्यमें परमाणु-शक्तिसे परिचालित ऐसे यानोंका निर्माण किया जा सके जिनके द्वारा पृथ्वी तथा चन्द्रमा, मंगल इत्यादि ग्रह-उपग्रहोंमें सम्बन्ध स्थापित किया जा सके।

द्वितीय यह कि यान ऐसी धातुओंके बने होने चाहिए कि भीषण गतिसे अपने पथपर प्रगति करते समय हवाके अवरोधके कारण उत्पादित भयंकर तापको सहन कर सकें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकारकी धातुओंका अनुसन्धान करनेके लिए बहुत समय और साधनाकी आवश्यकता है।

कुछ भी हो, यानोंका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल प्रतीत होता है। संसारकी विविध प्रयोगशालाओंमें बड़े-बड़े वैज्ञानिक यानों-सम्बन्धी अनेकों समस्याओंको सुलझानेमें बड़ी तत्परता एवं संलग्नताके साथ प्रयत्नशील हैं। वह दिन बहुत दूर नहीं, जब यानों द्वारा समस्त जल, थल तथा आकाशमें हलचल मचा देनेवाले यातायातके समस्त साधन सफलता पूर्वक संचालित किये जा सकेंगे।

फ़र्ज़ी मुक़ाम

स्वामी मारहरवी

[पिछले दिनों हमारी मुलाक़ात स्वामी मारहरवीसे हुई। श्री स्वामीजीपर और उनकी काव्य-रचनापर हम एक अलग स्वतन्त्र लेख लिखेंगे। हम स्वामीजीका पूरा साहित्यिक परिचय भी देंगे। उनकी कविताएँ 'विशाल भारत'में नियमित रूपसे निकलेंगी।—सम्पादक]

अजब यह ज़मानेका नैरंग[1] है,
कि हर सिम्त आवेज़िशो[2] जंग है।
यह दुनिया गिरानीसे[3] लरज़ाँ[4] है आज, मगर खूने इन्साँ तो अर्ज़ाँ[5] है आज।
उख़ुव्वतके[6] रिश्तोंको तोड़े हुए, ख़ुदासे भी हैं मुँहको मोड़े हुए।
जिबीनों[7] पै क़श्क़ोंकी[8] गुलकारियाँ,[9] दिलोंमें तआस्सुबकी[10] चिंगारियाँ।
कोई ज़ात ऊँची कोई है कुज़ात, वबा[11] बनके फैली हुई छूतछात।
मज़ाहबसे वहदानियत[12] दूर है, इस इन्सांसे इन्सानियत दूर है।
यह मन्दिर है परमात्माको लिए, वह मस्जिद खड़ी है ख़ुदाको लिए।
मनादिरमें[13] अल्लाहको गालियाँ, मसाजिदमें[14] भगवानकी ख़्वारियाँ।
मुसलमाँका अल्लाह मुसलमान है, जो शुद्ध हो गया वह तो भगवान है।
बुतोंसे जो बिगड़ी बनी भी तो क्या, यह ओछी लड़ाई ठनी भी तो क्या।
मज़ाहबने मावद[15] जुदा कर दिये, ख़ुदाके हज़ारों ख़ुदा कर दिये।
किसी जापै[16] काबा, कहींपर प्रयाग, इन्हीं दो घरोंने लगाई है आग।
न मस्जिदमें अल्लाह न मन्दिर में राम,
यह दोनों घरौंदे हैं "फ़र्ज़ी[17] मुक़ाम"

मानव-मंगल

रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

परम कलाकार परमेश्वरकी कला-सृष्टि 'सत्यं एवं शिवम्'के विधानमें प्रतिक्षण सचेतन सौन्दर्य धारण करती एवं विकासकी सीमान्त रेखाओंके अनुसन्धानमें अमृत जीवनका स्पर्श करती है। अन्तरिक्ष आशा बनकर हँसता है, धरती धैर्य-दान देती है। समुद्र ऊर्मियोंके कोटि-करोंसे सीमाका आलिङ्गन करता है और प्रकाश-पिण्ड सूर्य-रश्मियोंके झूलेपर विश्व-प्रतिभाको झुलाता है। मानवने जल-प्लावन कालीन अणु-परमाणु-विशृङ्खलताकी गोदमें चिन्ताका चित्र उतारनेवाले अपने पूर्वज मनुके निर्देशानुसार जिस आनन्दका स्वप्न देखा था, वह विस्मृतिके गर्भमें लय हो गया है, परन्तु मानव अब भी उसीकी शोधमें संलग्न है। इच्छा, क्रिया और ज्ञानके आकर्षण तन्तुओंको केन्द्रीभूत करनेवाली मङ्गल-मार्ग-गामिनी उसकी प्रतिभा कुण्ठित होकर अन्धकारमें भटक रही है। निसर्ग-निर्देशित मार्गसे वह स्वयंको शक्तिपूर्वक खींचता जा रहा

---

१ विचित्रता, २ लटकी हुई, ३ महँगी, ४ काँपती हुई, ५ सस्ता, ६ बन्धुत्व, ७ मस्तकों, ८ रेखाओं, ९ बेल-बूटे, १० पक्षपात, ११ संक्रामक रोग, १२ एकता, १३ मन्दिरों, १४ मस्जिदों, १५ पूजा-स्थान, १६ स्थानपर, १७ कल्पित।

है और अग्रसर होता जा रहा है तीव्र गतिसे उस दिशामें जहाँ अज्ञानान्धकारके प्राणोंसे पलनेवाला विनाश विश्राम करता है।

ज्योतिसे विमुख 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'का नारा लगाते हुई मानवकी क्षुद्र भावना-सीमाके प्रतीक राष्ट्र प्रगतिके दूत बने हुए तिमिर गर्भमें प्रवेश कर रहे हैं। स्वाधीनता और सम्पन्नताकी उनकी विचार-सीमाएँ संकुचित होती जा रही हैं और वे घोषित कर रहे हैं इसे अपनी विजय। अभ्युत्थानकी परिभाषा कट-छँटकर 'स्वार्थ' शब्दमें सीमित हो गई है और इसे समझ रहा है मानव अपना विकास!

जीवन-संघर्षसे ऊबकर विवेक-सम्पन्न मानवने सहयोग और सहानुभूतिके आधारपर समाजकी रचनाका विधान किया और इस प्रकार पाशविक स्वाधीन जीवनका अन्त हुआ। पारस्परिक योग-दानके पाशमें जो मानवोचित स्वाधीनता पली, जिसने आत्माको परमात्मा एवं व्यष्टिको समष्टि बनते देखा, वह कुछ काल पश्चात् शासन और अनुशासनके विनय-हीन जालसे जकड़ दी गई। शान्ति और सुव्यवस्थाके नामपर अमानवीय दण्ड विधानकर मनुष्यकी सुप्त दानवताको जाग्रत किया गया। शासक और शासित वर्गोंकी रचना होते ही मानवका मङ्गल-मार्ग कंटकाकीर्ण हो गया। फलतः वह अटक गया, भटक गया।

तन्त्र-नीतिने जीवनके जिस भयंकर संघर्षकी सृष्टि की उसका दर्शन मानवताके कोमल हृदयके लिए पाषाण-प्रहार सिद्ध हुआ। वह इस मार्मिक वज्राघातको न सह सकी। पीड़ासे छटपटा उठी और अबतक छटपटा रही है। कृत्रिम-मंगलकी शोधमें तल्लीन मानव इसकी ओर दृष्टिपात करना भी पाप समझता है। सच पूछा जाय तो वह मानवताको एक भयंकर अभिशाप समझता है। और यही कारण है कि उसकी मङ्गल-दिशा उसके प्रतिकूल हो गई है।

मङ्गलकी शोधमें मनुष्यने समाज, शासन, धर्म, जाति, वर्ग आदि जितने प्रकारके विधान किए उन सबसे मानवताका बहिष्कार किया। निसर्ग प्रेरणासे जब-जब मानवताने इन विधानोंमें व्याप्त होना चाहा, तब-तब उसका निर्मूलन करनेके भयंकर प्रयत्न हुए। शिवको विषपान कराया गया, रामको लोकसे निर्वासित किया गया और कृष्णको काल-बाणका कवल बनाया गया, सुकरातके मुखसे काल-कूटका प्याला लगा दिया गया और ईसा शूलीपर झुला दिए गए। मानवता इनके लिए फूट-फूटकर रोई। जीवन-मङ्गल इनके पीछे पीड़ासे पागल होकर दौड़ा, परन्तु मानवके मुखपर वेदनाकी एक भी सिकुड़न न आई।

'स्व' के सुखके लिए 'पर'का विनाश करनेकी कामनाने मनुष्यको उसी गर्तमें पुनः ला गिराया, जहाँसे उठकर वह देवत्वकी सीमाको प्राप्त हुआ था। इस पातालगामी प्रगतिका यथार्थ रूप उसके विवेकमें न समा सका। वह अपने विकासकी वस्तुस्थिति अबतक नहीं समझ पाया। गम्भीर गर्तसे झाँकता हुआ वह अपनेको सप्तम आकाशपर उड़ता हुआ समझ रहा है। वह आज मन-ही-मन अपने प्रयत्नों, कर्मों एवं अनुसन्धानोंपर गर्व और आश्चर्य कर रहा है। उसने विज्ञानको जन्म दिया है! ऐसे-ऐसे आविष्कार किए हैं, जो कभी ईश्वरकी भी समझमें नहीं आए थे। समाज और शासनकी रचना एवं विकासके ऐसे-ऐसे विधान किए हैं कि जिनकी कभी किसी वशिष्ठ-व्यास या अरस्तू-प्लेटोने कल्पना भी नहीं की होगी। आकाशमें उसके यान उड़ते हैं, जल-थलको उसके चरण नापते हैं! पृथ्वीके एक छोरकी कहानी दूसरे छोरपर बैठकर वह सुनता है। इतना किया है उसने! अब वह जा रहा है चन्द्रमाकी थाह लेने। फिर उसे वह अमृत भी मिल जायगा, जिसके अभावमें उसे मृत्युका निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ता है। फिर उसे युद्धों और महायुद्धोंसे होनेवाली हानिकी किंचित भी चिन्ता न करनी पड़ेगी। तब वह मनमाने युद्धों और महायुद्धोंकी सरलतासे सृष्टि कर सकेगा। आज जो १० या २० वर्षोंके पश्चात् एक युद्ध या महायुद्ध करनेकी उसने बचत की है, वह फिर भविष्यमें न करनी पड़ेगी। धन्य रे मानव! स्तुत्य हैं तेरे प्रयत्न!!

अच्छा होता मनुष्य चन्द्र और तारोंके रहस्य समझनेकी अपेक्षा 'स्व'के सीमित रहस्यको पहले समझ लेता। पृथ्वीके दूसरे छोरपर बैठे मनुष्यकी कहानी सुननेसे पूर्व यदि उसने अपने पार्श्ववर्तीकी करुण-कथा सुनी होती, तो उसका कहीं

अधिक मंगल हुआ होता। समुद्र और आकाशका पर्यटन करनेसे पूर्व उसे अपने हृदय-रूपी शून्य समुद्रका पर्यटन करना चाहिए था। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। वह ऐसा करनेवाले पुरातन मानवके रहस्यपर हँसता हुआ आकाशके 'धूमकेतु'के मार्गकी गतिसे अपनेको बचाता रहा, परन्तु हृदयाकाशके धूमकेतुका प्रभाव वह निर्मूल न कर सका।

आज तथाकथित मंगलके इतने साधनोंके होते हुए भी वह अपनेको दुखी और अभाव-ग्रस्त अनुभव कर रहा है। मंगलकी प्राप्तिकी कामनासे वह अपनी समस्त पाशविक शक्तिका प्रयोगकर विश्व-युद्धोंकी रचना कर डालता है, परन्तु जब कुछ हाथ नहीं आता, तब बड़बड़ाता हुआ उससे निकल आता है। सफलता-विफलताके कारणोंपर विचार करता हुआ फिर उसी दिशामें प्रयत्नशील होता है।

आज मनुष्य मात्र शान्ति-शान्ति चिल्लाता है। विश्व-शान्ति-स्थापनाके बड़े-बड़े प्रयत्न हो रहे हैं। परन्तु अब तक किसीने भी अपने छोटे-से हृदयकी शान्तिको ढूंढ़नेका प्रयत्न नहीं किया। विश्वभरको अपने आवरणमें बिठा लेनेवाली शान्तिकी खोज करनेवाले इस मानवसे कोई पूछे कि उसने कभी अपने हृदयकी छोटी-सी शान्तिकी प्राप्तिके लिए भी प्रयत्न किया है!

वह मंगल चाहता है मार्ग-दर्शक ज्योतियोंका अन्त करके। गांधी जैसे शान्तिके दूतों, मंगल-मार्ग प्रदर्शकोंकी छातीका रक्त पीकर अपना कल्याण करनेके लिए आज उसने अपनेको कटिबद्ध किया है! हे ज्योतिर्मय ईश्वर! अब भी इस पथ-भ्रष्ट मानवका मंगल हो सकता है, यदि तुम्हारी एक भी कृपा-किरण उसके हृदयमें ज्योति बनकर बिखर जाय।

ज़मीन—हमारा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राष्ट्रिय साधन—५

ज़मीनकी कटनका कण्ट्रोल—१

डा० अज़ीज़ दूल्हा खाँ

ज़मीनके संरक्षणसे तात्पर्य है भूमिका अत्यन्त उचिततम प्रयोग ताकि ज़मीनकी उर्वरा-शक्ति भी कायम रखी जा सके और उसकी उन्नति भी की जा सके। ज़मीनको सबसे बड़ा खतरा है कटनसे और ज़मीनके तोड़-फोड़से जिसके कारण हजारों एकड़ ज़मीन नष्ट हो गई है। पिछले एक लेखमें बताया गया है कि अकेले उत्तर प्रदेशमें तीस लाख एकड़से अधिक भूमि अब पूर्णतया नष्ट हो गई है और अपनी वर्त्तमान अवस्थामें वह किसी कामकी नहीं है। पहले यह भूमि उपजाऊ थी और सूबेके आर्थिक जीवनमें इसकी बड़ी देन थी। यह नष्ट की हुई ज़मीन पड़ोसकी बढ़िया ज़मीनके लिए एक बड़ा खतरा है, क्योंकि बढ़िया ज़मीन भी नियमपूर्वक धीरे-धीरे बरबाद हो रही है।

भूमिके अनियमित तथा विवेकहीन प्रयोगके कारण यह परिस्थिति उपस्थित हो गई है। प्रत्येक प्रकारकी भूमिमें यह क्षमता है कि वह समाजके प्रयोगके लिए कुछ-न-कुछ आवश्यक देन देती है और वह अपने आप अपनी उन्नति करती रहती है बशर्ते कि ठीक ढंगसे उसका प्रयोग किया जाय। देशके प्रत्येक भागमें (१) जंगलात, (२) गोचर-भूमि, (३) कृषिके लिए ज़मीनकी निरपेक्ष आवश्यकता है। तथा यह सम्भव है कि इन तीनों आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हुए भूमिके उपयोगको आयोजित और संशोधित किया जाय और ज़मीन पर उसका कोई बुरा प्रभाव न पड़े।

ज़मीनकी कटनके कन्ट्रोलके सबसे कम खर्चीले और सबसे अधिक कारगर साधन वे हैं जो उचित भूमि-उपयोगितापर आधारित हैं। अगर नदियोंके तीव्र ढलावके किनारों पर खेती की जाय तो उचित व्ययपर कोई मानवी साधन ज़मीनकी कटनका कन्ट्रोल नहीं कर सकता। इस प्रकारकी प्रवृत्तिमें हमेशा ही खतरा रहेगा और किसी-न-किसीकी असावधानीके

कारण रक्षा-पंक्तिमें तोड़ होनेसे इस बातका खतरा रहेगा कि पड़ोसकी हजारों एकड़ जमीन कटनके खतरेमें पड़ जाय। इस प्रकारकी असावधानी अनिवार्य ही है जब हमारे यहाँ जमीनके छोटे-बड़े सब लाखों खाते हैं। इसलिए यह नितान्त ही आशा-हीन कार्य है कि किसानोंकी समझ-बूझपर इस मामलेमें अवलम्बित रहा जाय कि वे भूमिको उसके उचित स्थानमें रख सकेंगे। एक मात्र उचित हल इसका यही है कि इस क्षेत्रको खेतीसे हटाकर जंगलातमें ले लिया जाय।

इसी प्रकार अच्छी और समतल भूमिपर जंगलात हैं जहाँपर खतरनाक कटनकी कोई आशंका नहीं है और जिसको बड़े मुनाफेके साथ कृषि-क्षेत्रमें परिवर्तित किया जा सकता है। इस भूमिको जंगलातमें जारी रखना राष्ट्रीय हितके विरुद्ध होगा। ये सब बातें इस बातकी माँग करती हैं कि भूमि उपयोगकी हमारी प्रणालीमें एक क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हो ताकि उसको प्राकृतिक माँगके अनुसार उपयोग किया जा सके।

यदि हम इस तथ्यसे मुँह मोड़ते रहेंगे अथवा उसकी उपेक्षा करते रहेंगे तो विनाश और विपत्ति मुँह बाए हमारे सामने खड़ी रहेगी और समृद्धिके लिए हमें कोई स्थायी मार्ग उपलब्ध न हो सकेगा। घास-पात कटनके कन्ट्रोलके लिए प्रकृतिका एक साधन है। जितना ही हम जमीनको प्रकृतिपर अधिक छोड़ेंगे उतनी ही वह कटनके रोकनेमें क्षमता प्राप्त करेगी और जितना ही अधिक हम उसमें हस्तक्षेप करेंगे उतना ही अधिक कटनका खतरा बढ़ेगा। इसलिए भूमिके साधनोंका उपयोग करनेका सबसे अच्छा प्रोग्राम यह है कि जितनी ही जमीनमें अधिक कटन हो उतना ही कम उसमें हस्तक्षेप करना चाहिए। यहाँपर यह लिखना भी जरूरी है कि कटन चाहे ढलाव, जमीनकी किस्म, उसकी स्थिति, वृष्टि और चाहे सब बातोंके मिलनेसे हो।

कटनशीलताके अनुसार निम्नांकित प्रयोग हैं जिनके अनुसार भूमिका प्रयोग किया जा सकता है। कटनसे सफल संघर्ष करनेकी शक्ति बढ़ती है जितना ही हम उसमें आगे बढ़ते जाते हैं।

(१) कृषि, जिसमें (अ) सब फसलें शामिल हैं।

(ब) घनी उगनेवाली फसलें जैसे उर्द, मूँग, ग्वार, धान, जौ, गेहूँ, बरसीम और सनई।

(२) गोचर भूमि, जिसमें कन्ट्रोलसे चरान होनी चाहिए।

(३) पुनः जंगलात लगाना, जिसमें

(अ) कण्ट्रोल चरान शामिल है।

(ब) चरान नहीं होना चाहिए और प्रकृतिपर छुट्टा हो।

यहाँपर इस बातपर जोर देना है कि कटनके विरुद्ध रोक-थाम एक सहयोग प्रयोग है और कारगर तरीकेपर उसको तभी लिया जा सकता है जब सब लोग एक इकाईके रूपमें समान ध्येयके लिए कार्य करनेको सहमत हों। एक व्यक्तिके लिए यह लगभग सम्भव नहीं है कि वह अपनी भूमिको बचा सके यदि उसके पास-पड़ोसके लोग इस विषयमें चुप हैं।

जमीन-संरक्षण-योजनाकी इकाई एक वाटरशेड होना चाहिए इसलिए यह आवश्यक है कि काम इसी आधारपर शुरू किया जाय। वाटरशेडके सम्पूर्ण लोगोंको इकट्ठा करके समझा देना चाहिए कि मिल-जुलकर कार्य करनेकी आवश्यकता क्यों है। जब इस अंश तक सहयोगकी सीमा प्राप्त हो जाती है तब पहला क़दम उस क्षेत्रको बचानेका यह है कि उस भूमिका सर्वे करना चाहिए। इस सर्वेमें ये बातें शामिल होंगी:—

(अ) जमीनका ऊँचाव-नीचाव,

(ब) जमीनकी किस्में,

(स) कटनका प्रकार और कटनकी स्थिति,

(द) वर्त्तमान भूमि उपयोग,

जब सर्वे पूरा हो जाय तब उपयुक्त भूमि-उपयोग-प्रोग्रामका सुझाव देना चाहिए। जमीनकी कटनके कण्ट्रोल-सम्बन्धी विशेष ढाँचों जैसे बहावकी नलियाँ, बाँध और प्लेटफार्मनुमा रुकावटोंके स्थानोंकी आयोजना बननी चाहिए।

जमीनकी कटनके कण्ट्रोलका सम्पूर्ण विचार इस बातपर आधारित है कि अधिक वृष्टि-जल उस खेतसे जहाँ वह बरसा है बहावके नालेमें इतनी धीमी गतिसे ले जाया जाय कि वह जमीनके परमाणुओंको न्यूनतम संख्यामें ले जा सके।

जब प्रारम्भिक जाँच-योजना समाप्त हो जाय तब योजनाको

कार्यरूपमें लेना चाहिए। योजनाको पूर्णरूपसे कार्यान्वित करने में प्रायः कई बरस लगते हैं और उससे जो लाभ होते हैं, वे इन योजनाओंके विकासके अनुपातमें होते हैं।

उत्तर प्रदेशके दुआबकी समस्याएँ बड़ी विचित्र हैं। सम्पूर्ण क्षेत्रफलका अस्सीवां भाग इस दुआबमें है और इस राज्यके कृषि-क्षेत्रका नब्बे फ़ी सदी भाग इसमें है। यह क्षेत्र एक विशाल मैदान है जिसका वर्त्तमान ढलाव एक फी सदीका एक भाग ही है। बहुत-से स्थानोंमें वृष्टि बहुत भारी होती है जिसमें से अस्सी फी सदी सालके तीन महीनेमें ही सीमित है और एक-एक वारिशका गुरुत्व बहुत गहरा है। जमीन बहुत गहरी है। उसका निर्माण जल्दी होता है क्योंकि जलवायु अर्धउष्ण है और वहांपर औरगनिक तत्वको प्रोत्साहन नहीं मिलता। सम्पूर्ण प्रदेश अनेक और लम्बे बहावके मार्गोंसे आच्छादित है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जिसमें कि जमीन रक्षणके विज्ञान और कला विश्व-भरमें सबसे अधिक विकसित हैं, उतार चढ़ावका एक देश है जिसमें पाँचसे सात फी सदी तक प्रमुख ढलाव है। मेंह अपेक्षाकृत अच्छे ढंगसे वितरित है और अधिकांश क्षेत्रोंमें उसका गुरुत्व न्यूनसे लगाकर मध्यम है। जमीन बहुत गहरी नहीं है और उसके निर्माणकी गति भी धीमी है। वृष्टिके प्रकार और ढलावोंके कारण कटनकी सब प्रक्रियाएँ अकटनसे लगाकर गहरी धरातलकी कटन और नालों की कटन इसलिए वहांपर मिलती हैं। इसलिए आवश्यकता इस बातकी उत्पन्न हुई कि ज़मीनके कटनके विभिन्न वर्गोंकी पहचान करके उनका वर्गीकरण किया जाय।

इस राज्यमें भूमि सपाट है और जमीन गहरी है इसलिए धरातलके कटनका प्रश्न कोई प्रमुख स्थान नहीं रखता।

यह बात कि जमीन यहांकी भुरभुरी मिट्टीकी बनी उपजाऊ है और प्रायः उसमें विभिन्न क्षेत्र विकसित नहीं हैं इस बातको और भी कठिन बना देती है कि धरातलकी कटनके विभिन्न डिग्रियोंको विभक्त किया जा सके। इस राज्यमें कटनकी मुख्य समस्या पानीके बहावोंके मार्गोंके निकट उत्पन्न होती है जहांपर भूमिकी सतहमें एकदम ढलाव हो जाता है। जमीन—विशेषकर हल्की तरहकी ज़मीन—औरगनिक तत्वकी कमीके कारण बहुत ही कटनशील है। इस स्थितिमें जब ज़मीन अपने घास-पातके ढकने से विमुक्त कर दी जाती है तब भूमि-कटन नाले और नरियों (Ravine) का बनना शुरू हो जाता है और वे सब विनाशकारी ढंगके होते हैं।

हमारी जमीनकी कटनकी समस्या विशेषकर नालों और नरियोंके बननेसे मुख्यतया सम्बन्धित है और वह भी प्राकृतिक पानीके बहावके पड़ोसमें।

इसीलिए सम्भवतः हम जमीनकी कटनके वर्गोंको संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके ढंगपर स्थापित नहीं कर सकते।

हमारे यहां तो समस्या है स्थानकी, जिससे ढलावका प्रश्न सीधे ढंगसे सम्बन्धित है, इसलिए भूमि-उपयोगिता वर्गोंकी काम चलाऊ योजना नीचे पेश की जाती है जो हमारी परिस्थितिके अनुकूल है। तो भी जमीनके इन वर्गोंको उनकी उपयोगिताकी दृष्टिसे लिखते समय यह सावधानी रखी गई है कि कटनकी प्रकारका स्पष्टीकरण कर दिया जाय। यह एक साधारण पथ-प्रदर्शनकी बात होगी यह तय करनेमें कि भूमिका कोई टुकड़ा विशेष बिना विनाशकारी कटनको खुले रखते हुए उसका क्या उपयोग हो सकता है।

- १ -

१ प्रतिशत ढलावके अन्तर्गत भूमि जो कि किसी बड़े जलमार्गसे दूर है प्रत्येक प्रकारकी कृषिके लिए उपयोगी है। इसके लिए सिवाय इसके और किसी बातकी आवश्यकता नहीं है कि वहां खेतीका उचित प्रबन्ध हो और वह हानिकारक कटनसे बची रहे। ऊँचे ढलावकी जमीनको सब प्रकारकी फसलोंके लिए समतल करनेकी आवश्यकता हो सकती है। कम-से-कम ऊँचे ढलाव और सूखे क्षेत्रोंमें दोनों ओरसे मेड़बन्दी करना वांछनीय है।

- १ अ -

१ प्रतिशत ढलावके अन्तर्गत जमीन जो पानीके बड़े बहावसे दूर है पर जो एक तीव्र ढलावपर स्थित है, इस प्रकारकी भूमिकी कटावसे रक्षा मेड़बन्दी अथवा तराऊपरीके ढलवां खेतोंसे सम्भव है। उस स्थानपर जहांपर ढलावमें

एक टूट प्रारम्भ होती है। ढलावोंकी भी रक्षा गोचर भूमिके विकास अथवा नए जंगल लगानेसे करनी चाहिए और यह सब परिस्थितियोंके अनुसार करनी चाहिए। इन उपचारोंके करनेके बाद सपाट भूमि कृषिके योग्य बन जाती है। जमीन का वह भाग, जो तेज ढलावसे मिला हुआ है, घनी उगने वाली फसलमें रखना चाहिए। ऊँची जमीनको फसलोंके लिए समतल कर लेना चाहिए। इस मामलेमें व्यक्तिगत खेतोंकी दोनों ओरसे मेड़बन्दी करनी चाहिए ताकि मुख्य जमीनकी रक्षा हो सके। यह बात इस मामलेमें अति आवश्यक है।

- २ -

१ प्रतिशतसे ऊपर परन्तु ३ प्रतिशतसे नीचेके ढलावकी भूमि जो किसी बड़े पानीके बहावसे दूर है अपनी निजी हालत में किसी फसलके योग्य नहीं है सिवाय निकृष्ट खरीफ फसलके जैसे बाजरा, ज्वार और अरहर। इस प्रकारकी भूमि को समतल करना पड़ेगा और इसके पूर्व कि उसमें सब प्रकारकी फसलें हो सकें, उसकी मेड़बन्दी करनी होगी।

- २ अ -

१ प्रतिशतसे ऊपरपर ३ प्रतिशत ढलावके अन्तर्गतवाली भूमि जो किसी बड़े पानीके बहाव-मार्गसे दूरपर किसी तेज ढलावपर स्थित हो तो उसके लिए १ अ और २ की बातें लागू होंगी;

- ३ -

३ प्रतिशतसे ऊपर पर ७ प्रतिशत ढलावके अन्तर्गतवाली जमीन जो किसी बड़े पानीके बहावसे दूर हो तो इस प्रकारकी भूमिको कृषि-योग्य बनानेके लिए यह आवश्यक होगा कि उसे बड़े पैमानेपर एक-सा कर लिया जाय और उसमें पटरियाँ बना दी जायँ। इस प्रकारकी जमीनके लिए कम-से-कम ऊँची जमीनको यह सबसे अच्छा है कि उसको कण्ट्रोल गोचर-भूमिमें रखा जाय।

- ३ अ -

भूमि ३ प्रतिशतसे ऊपर और ७ प्रतिशत ढलावके अन्तर्गत जो किसी बड़े पानीके बहावके मार्गसे दूर हो पर तेज ढलावपर स्थित हो तो उसे गोचर भूमि ही बनानी चाहिए और उसमें चरान कण्ट्रोलसे होनी चाहिए।

- ४ -

७ प्रतिशत ढलावसे ऊपरवाली भूमि जो किसी बड़े पानी के बहावसे दूर हो उसमें जंगल लगा देना चाहिए और जब उसमें जंगल स्थापित हो जाय तब उसमें कण्ट्रोलसे चरान करनी चाहिए।

- ५ -

बड़े-बड़े प्राकृतिक पानीके बहाव मार्गोंके बाढ़के मैदान जिनमें ३ प्रतिशतके अन्तर्गत ढलाव हो उनके लिए यही अच्छा है कि उनमें किनारोंके दोनों ओर कुछ दूरतक स्थायी रूपसे घास रहने दी जाय। कितनी दूरीतक घास रहे इसका निर्णय बहावके मार्ग और वाटरशेडके क्षेत्रपर होना चाहिए। अगर वहाँ कृषि करनेका ही निश्चय किया जाय तो मेंड़बन्दी और पटरियोंका बनाना आवश्यक होगा।

- ६ -

पानीके बहावके बड़े मार्ग जिनके किनारे ऊँचे हों और जिनमें ढलाव ३ प्रतिशतसे ७ प्रतिशत तक हो पर जो खारों और नरियोंसे मुक्त हों उनमें जंगल लगा देना चाहिए। चरान कण्ट्रोलसे होनी चाहिए। कितनी दूरी तक इस क्षेत्रमें जंगल लगाया जाय यह पानीके बहाव मार्गके आकार, वाटर शेडके क्षेत्रफल तथा उस बिन्दु तथा अन्य अवस्थाओंसे होगा जहाँसे ढलाव समाप्त होता है।

- ७ -

बड़े प्राकृतिक बहावके मार्गोंके ऊँचे किनारे जिनका ढलाव ७ प्रतिशतसे अधिक हो और जिसमें नरियाँ और खरें पड़ गए हों अथवा नहीं पड़े हों तो ऐसे किनारोंपर जंगल लगा देने चाहिए और जंगली जानवरोंके लिए उसे छोड़ देना चाहिए और उसमें चराव नहीं कराना चाहिए। जंगलकी दूरी कहाँ तक हो इसके लिए यह आवश्यक है कि वह सम्पूर्ण नरियों और खरेंवाली जमीनमें होना चाहिए और साथ ही भीतर तक जमीनपर उसका आकार—पानी-बहावके मार्गका आकार—और वाटर शेडपर निर्भर रहेगा।

इसलिए पहली शर्त्त किसी भी क्षेत्रमें ज़मीन-संरक्षण प्रारम्भ करनेके लिए यह है कि भूमिका वर्गीकरण करके उसीके अनुसार उसपर कण्ट्रोल लगा देना चाहिए।

वास्तवमें यह वर्गीकरण बहुत पेचीदा है और इसके लिए एक ट्रेण्ड व्यक्तिकी सहायताकी आवश्यकता है जो भूमिका वर्गीकरण करके योजना बना सके। हमारी विकासकी वर्त्तमान अवस्थामें ऐसे आदमियोंकी कमी है और साधारण आदमी की आवश्यकताका खयाल करते हुए एक सादी-सी योजना नीचे दी जाती है जो किसी विशेषज्ञकी रायके बिना ही समझी जा सकती है। इस योजनाको कोई भी आदमी प्रयोगमें ला सकता है। नीचे जो सिफारिशें बताई गई हैं वे क्रमानुसार बढ़ते हुए क्रममें हैं उस जमीनके लिए जो कम कटन शील हो।

१. सम्पूर्ण कटी हुई और नरियोंवाली जमीनको चाहे वह नैसर्गिक पानीके बहावके किनारे हो चाहे कहीं हो, जंगलके रूपमें आ जानी चाहिए। इसमें चरान पूर्ण रूपसे बन्द कर देनी चाहिए। उपयुक्त स्थानोंपर बाँध बाँध देने चाहिए ताकि जमीन रविटने (Siltation) लगे और आद्रता रुकने लगे। इन कटे हुए स्थानों और बाँधोंसे सटी बिना नुकसानकी हुई भूमिकी रक्षा बाँधों और पटरियोंसे कर देनी चाहिए जिससे और कटन रुक सके।

२. नैसर्गिक पानीके बहावोंके ऊँचे मार्गोंके सहारे जैसे नदी और नालोंके किनारे खेती बन्द कर देना चाहिए और उनमें जंगल कर देना चाहिए और वहाँ चरान हो या न हो इसका फैसला परिस्थितिपर छोड़ना चाहिए। अगर चरान वांछनीय हो तो उसकी इजाजत तब ही होनी चाहिए जब वहाँ जंगल स्थापित हो जाय और चरान हर हालतमें कण्ट्रोल और ओसरेसे (Rotation) होना चाहिए जिसे दूरी तक उस क्षेत्रमें जंगल लगाया जाय वह वारिशके गुरुत्व और पानीके बहावके मार्गके आकारपर अवलम्बित होना चाहिए। वाटरशेडके क्षेत्र और वह स्थान जहाँसे भूमिमें ढलाव मार्गकी ओर शुरू होता है उसका भी खयाल करना चाहिए।

साधारणतया वह बिन्दु, जहाँपर ढलावकी यह गति प्रारम्भ होती है, वह पंक्ति होनी चाहिए जिसके अन्तर्गत सब क्षेत्रमें जंगल लगा दिया जाय। पर अच्छा यह होगा कि इसमें समतल भूमिका एक टुकड़ा भी शामिल कर लिया जाय।

३. नैसर्गिक पानीके बहावके मार्गोंके सम्पूर्ण सैलावी मैदान और तेजीसे ढलवाँ भूमि मार्गोंसे हटती हुई में गोचर भूमि और कण्ट्रोलसे चरान होना चाहिए, यदि यह निश्चय किया जाता है कि ऐसी भूमिपर कृषि की जाय तो पहले उसमें एक बड़े पैमानेपर मेंड़बन्दीका प्रोग्राम चलाना चाहिए।

४. नैसर्गिक पानीके बहावके मार्गोंसे हटती हुई साधारण ढलवाँ भूमिको ढलवाँ बनाना पड़ेगा और बाँधोंसे उसकी रक्षा करनी होगी अगर खेती करनी है। अगर ऐसी जमीनपर गोचर भूमि बनाई जाय तो अच्छी गोचर भूमिकी घासोंको ही वहाँ स्थापित करना होगा और चरान कण्ट्रोलसे करनी होगी।

५. तेज ढलावपर स्थित समभूमिमें जो कि किसी नैसर्गिक बहाव मार्गसे दूर है उसमें तरा ऊपरीके प्लेटफार्मनुमा खेत बना लेने चाहिए और अलग-अलग खेतोंकी मेंड़बन्दी कर देनी चाहिए। ऊपरी जमीनके पानीको निकालनेका उचित प्रबन्ध करना होगा। स्वयं ढलावकी रक्षा घास-पात उगाकर करनी चाहिए।

६. एक-सी समतल भूमिके लिए जो न तो किसी तेज ढलावपर स्थित है और न जो किसी पानीके बहावके निकट है उसकी कटन-रक्षाके लिए किसी विशेष बातकी आवश्यकता नहीं है सिवाय इसके कि उसमें उचित खेतीका प्रबन्ध हो। खुश्क इलाकोंमें मेंड़बन्दी तो वांछनीय है ही।

इस बातपर यहाँ जोर देना है कि हमारी समृद्धिका सबसे बड़ा शत्रु अन्धाधुन्ध चरान कराना है।

यदि हम चरानपर कण्ट्रोल नहीं करते हैं तो हम जमीनकी कटनको नहीं रोक सकते।

उस भूमिमें जो कटनसे नष्ट हो गई है और जब उसमें खेती करना लाभप्रद नहीं होता तब उसे चरानके लिए छोड़ दिया जाता है। चरान बहुत ज्यादा होता है और बिना सोचे

समझे चरान किया जाता है फलस्वरूप भयंकर कटन जारी होती है और स्थिति बद-से-बदतर हो जाती है। अधिक जानवरोंके घूमनेके कारण हरियाली क़ायम नहीं हो सकती और एक समय आ जाता है जब भूमिका सम्पूर्ण टुकड़ा हरियाली विहीन नितान्त रूपसे नग्न हो जाता है। ढलाव इतने तेज हो जाते हैं कि मेह ज़मीनमें भीतर जानेकी अपेक्षा नदीमें चला जाता है।

हरियालीकी सहायताके दो आधार स्तम्भ अर्थात् उपजाऊ जमीन और आद्रता विलीन हो जाते हैं फलस्वरूप यदि बादमें यदि कोई मानवी प्रयत्न किया जाता है तो नतीजा लाभप्रद नहीं होता। यह मरु-अवस्थाके आगमनका सूचक होता है।

आगरा, इटावा और उनसे सटे अन्य क्षेत्रोंमें चम्बल और यमुनाकी नरियाँ (Ravines) उपर्युक्त प्रक्रियाका सीधा फल है। यह वह अवस्था है जब भूमि वास्तविक रूपमें मुर्दा हो गई है और यथेष्ट ख़र्च करनेपर भी उसमें पुनर्जीवन नहीं डाला जा सकता। इसलिए यदि अच्छे नतीजे प्राप्त करने हैं तो बहुत पहलेसे ही प्रयत्न करना चाहिए।

कृषि-उपयोगी भूमिके लिए रक्षाके साधनोंपर अगले लेखमें विचार किया जायगा।

लड़ाका नेता-नशीला अभिनेता

'नलिन'

टी० प्रकाशम—आन्ध्रका लड़ाका लाड़ला। सैनिक स्वभाव—विद्रोही झुकाव। अनोखा अनुचर—निराला नेता। गांधीजीके भी पीछे चलें तो श्रीमान् रोबसे आदेश दें, ज़रा ठीक चलिए महात्माजी! क्या टेढ़े-तिरछे पैर पड़ते हैं। आप नेता हैं तो यह अर्थ नहीं कि चाहे जैसी चाल दिखायँ यानी यह भी कोई बात...? हम तो बरसोंसे अनुकरण कर रहे हैं और आप अपनी चाल ही नहीं सुधारते! नेता बन स्वयं आगे हों तो अनुगामियोंको फटकारें, कैसे निकम्मोंसे पाला पड़ा। अबे दिखाओ दुलकी! सत्याग्रहको बेगार समझ लिया क्या? क्या, ऊँघते हुए रेंग रहे हैं! अहदियोंका नेता बना मैं भी!

दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त। मित्रोंकी विजय, पर अंगरेज़ दिवालिए। 'ए' क्लासोंकी माँदोंसे अँगड़ाई लेते, ओठ चाटते कांग्रेसी शेर बाहर आये। अंगरेज़ बिस्तर गोल करने लगे। प्रान्तीय सरकारें बनीं और टी० प्रकाशम मद्रासके प्रधान मन्त्री बन बैठे। महात्माजीने समझाया। हाईकमाण्डने बहलाया-फुसलाया कि राजाजीकी गद्दीपर हाथ न मारो; पर कौन सुने! उल्टे, हाईकमाण्डसे हाथा-पाई करने पर उतारू और महात्माजीसे भी मुड़चिड़ी करनेपर आमादा। कौन ऐसे आदमीके मत्थे लगे?

'प्रभुता पाय काय मद नाहीं,'—प्रधान मन्त्री बने, ग्रामोद्धारकी सनक सिरपर सवार हुई। पूँजीपतियोंके विरुद्ध युद्ध! यह अत्याचार...यह अराष्ट्रिय कर्म! सहन की भी कोई सीमा! पदक! यह मद! जिन पूँजीपतियोंने हमारे राष्ट्रिय नेताओंको अंगूरोंका रस पिलाया—कांग्रेसके लिए लाखों लुटाये, अपनी कारोंमें बैठा देशभरमें घुमाया, उन्हींकी जड़ काटनेकी अधार्मिक कामना! हाईकमाण्ड इन हरकतोंको कहाँ तक सहन करता, चुटकी बजी—एक...दो...तीन! और श्रीमान् प्रकाशम गद्दीसे लुढ़क धरतीपर! मालूम हुआ, पूँजीपतियोंका प्रभाव? समझमें आई महात्माजीकी माया? पहचाने हाईकमाण्डके हथकण्डे! अब कहो, बड़ी फूँ-फाँय करते थे तब तो?

दीनोद्धारकी ढपली बजाओ, ग्राम-निर्माणके गीत गाओ। कौन रोकता है? सबकोंकी सफ़ाई करनेके लिए झाड़ू-टोकरा ले फोटो खिंचाओ। कौन मना करता है? समाचारपत्रोंमें धूम मचाओ, नवनिर्माणका नाम ले-ले खूब उछल-कूद मचाओ,

किसकी मजाल जो तुम्हें कुछ कहे ? सब कुछ करो, पर पूँजी-पतियोंकी पाकेटपर हाथ मत लगाओ। उनके बलिदानका क्या यही बदला ? चोरबाजारकी कमाईमें से इसीलिए तो उन्होंने कस्तूरबा-फण्डमें लाखों नहीं दिया ? इसीलिए तो वे जगह-जगह महात्माजीकी मूर्त्तियाँ स्थापित नहीं कर रहे ! पटेलका प्रेम जिनके लिए रस्से तुड़ाये, कांग्रेसकी कृपाएँ जिनके चरण चूमें, महात्माजी जिनके मेहमान बनें, उन्हींपर हाथ साफ़ करने चले ! अब तो आ गये होंगे ठीक रास्तेपर !

'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' वाली बात ! बचपनसे ही कमा-खानेके लच्छन। प्रकाशमकी सात-आठ वर्षकी आयुमें मौलिक प्रतिभा ! अध्यापकजी सो रहे थे। बालक प्रकाशमने उसकी चोटी खाटसे बाँध दी। दक्खिनी चोटी ! हाथी बाँध दो तो हिल न सके, आदमीकी क्या बिसात ! हड़बड़ाकर जागकर कहीं जाने लगे, पतिव्रता पत्नीकी तरह चारपाई भी साथ चल दी। पता चला कि प्रकाशमके कर-कमलों द्वारा यह शुभ कार्य हुआ। ऐसी प्रचण्ड प्रतिभाका पुरस्कार न देना भी सरासर अन्याय ! बालकोंको शुभकार्योंमें प्रोत्साहन देना आवश्यक ! पुरस्कारके रूपमें आपकी कमरकी धूल भी खूब झाड़ी गई और स्कूलसे उचित अवकाश भी दे दिया गया। कालेजमें आये, वहाँ भी अपनी शरारतोंके लिए बड़ा नाम कमाया ! वहाँसे भी अनेक बार सम्मान सहित आपको निकाला गया। एक बार सैरके लिए जर्मनी गये तो वहाँसे निकाले गये। यानी श्रीमान्‌जी सैकड़ों महफ़िलोंसे निकाले हुये हैं।

कनकगिरी, जिला गुन्टूर, ताल्लुका अंगोलमें आपने मानव-चोला धारण किया—कांग्रेसके जन्म और अपने पिताके मरण से ठीक बारह वर्ष पूर्व। कनकगिरी छोड़ इनकी माने, अंगोल में आ, भोजनालय खोला। यहींसे आपकी आवारागर्दी, अखाड़ेबाजी और शिक्षा आरम्भ हुई। अकेली माता, सो भी अपने काममें व्यस्त। प्रकाशमकी हरकतोंपर लगाम कौन लगाता। शरारतकी खुली सड़कपर सरपट दौड़ना आरम्भ ! जवानी-भरे समयके आप परम आदरणीय आवारा, आदर्श अखाड़ेबाज, सम्मानित शरारती और सुविख्यात झगड़ालू।

जन्मजात नेता—प्राकृतिक अभिनेता ! नाटक खेलना है—पैसा चाहिए ! उपजाऊ बुद्धि ! सोचा किसीका खेत काट लायँ ! रातमें पहुँच गए साथियोंको लेकर ! पर पता नहीं, खेतवालेकी मतपर क्या पत्थर पड़ गये कि ऐसे शुभ कार्यमें विघ्न डालनेकी सूझी ! उस रात, खेतपर ही मौजूद। नेताजी गिरफ्तार ! बुरी तरह मार पड़ी। नानी याद आ गई ! पर विघ्न-बाधाओंसे डरकर डावाँडोल होनेवाले आप नहीं ! धर्मपथमें शूल-ही-शूल हैं। अनेक बार मार खाई—अनेक बार हार ; पर नेतागीरी, अभिनेतागीरी दोनों ही उत्साह, ईमानदारी और वीरतासे जारी रहीं।

चमकती पुतलियाँ, जादूभरी जवानी, छलकता रूप, गोरा रंग, इकहरा बदन और लम्बा क़द। गधा-पचीसीकी उम्र—उठती रेख, बैठता गप्पा ! और मद-भरे हावभाव, नशीला अभिनय। कौन मोहित न हो जाय ? उन बसन्ती दिनोंको यादकर इस बुढ़ापेमें आहभर आप कहते हैं—"मैं बहुत अच्छा अभिनय करता, दर्शक मुग्ध हो जाते। मैंने कितनी बालाओंके मन दूषित कर दिए ! केवल मन ही दूषित किये, तन नहीं"। यही क्या कम पुण्य किया महाराज !

अंगोलमें ही आपने अखाड़ेबाजी आरम्भ की, यहीं प्लीडर परीक्षा पास और यहीं प्रैक्टिस। राजमुन्द्री शरारत, शिक्षा और संघर्षका क्षेत्र रहा। अभिनेता बन सम्मान पाया और यहीं प्रैक्टिस कर पैसा कमाया। यहीं नेता बननेका नशा चढ़ा। मुनिस्पल-चुनावमें खड़े हुए तो सिर मुड़ाते ही ओले पड़े ! करारी हार खाई, पर यहाँ तो हार खाना, मार खाना, पेटभर आहार खाना और पत्थर भी पचा जाना बचपनसे ही जीवनका जायका बन चुका था ! इन हारोंकी परवाह किसे ! आख़िर अगले चुनावमें हाथ मारा और चेयरमैन बन बैठे।

इंगलैंडसे बैरिस्टर बन लौटे ! बहारके दिन, ख़ुमारकी रातें। चाँदीकी चमक, मायाकी मुसकान ! १६२० का साल आया। नई हवा लाया और एक दिन सबने विस्मयसे देखा, सामन्ती शानका शौक़ीन प्रकाशम देशभक्त सन्त बन गया। पर वही अदा, वही धज। वही मुँह फट्टपन—वही अकड़। पकड़े गये। त्रिचपल्ली जेल भेजे गए। बैरक-गन्दी मालूम

हुई। आपने वार्डरको आदेश दिया, "बुलाओ जेलरको!" जेलर बेचारा दौड़ा-दौड़ा आया तो आपने उसे फटकार पिलाई, "यह है प्रबन्ध? इतनी गन्दगी? ऐसे वाहियात जेलमें मैं एक मिनट भी रहनेको तैयार नहीं।" ठीक—जैसे श्रीमान्‌जी ताजमहल होटलमें ठहरे हों और रूम रिजर्व कराके!

चौदह सालकी प्रैक्टिसमें ८-९ लाख कमाया। पर जेबकी सिलाई इतनी कमजोर कि सदा दिवालिया। घर फूँक तमाशा देखा। दैनिक 'स्वराज्य' निकाला और उसमें अपना तो फूँक ही दिया, मित्रोंसे ले-लेकर भी स्वाहा कर दिया।

देशके लिए जबसे जोग रमाया और आजादीका अलख जगाया तभीसे—

पानी बाढ़े नावमें घरमें बाढ़े दाम,
दोनों हाथ उलीचिए यही सयानो काम।

और सचमुच, किसी अन्य रूपमें भले ही आप नासमझ, मूढ़ मतिमन्द हों, पर इस दिशामें पूरे सयाने! कबीरकी आत्मा भी गद्‌गद् हो कहती होगी, कम-से-कम एक तो सयाना मिला मेरे दोहेकी कद्र करनेवाला।

पैसेके मामलेमें पक्के दिवालिया, तब भी क्या मजाल जो शानमें अन्तर आ जाय या आदेश-वाणीमें नर्मी सुन पड़े। उसी अकड़से, उसी शानसे, उसी रोबसे आप किसी होटलमें घुसेंगे और डाटकर आर्डर देंगे, 'बाय, यू फूल' इतनी देर। हाँ, यह लाओ—वह लाओ। इडली, दोसा, उपमा, बौण्ड। बड़े...काफ़ी! अबे जल्दी!' और आर्डरके बाद सैमी-कोलन लगाते ही तुरत बरस पड़ेंगे—'इतनी देर'! नालायक, यह नहीं लाया, वह नहीं लाया? जल्दी कर! मेरे पास इतना समय नहीं बरबाद करनेको।...यू फूल! और चार-पाँच रुपएका चबेना कर, राइट-लेफ्ट करते, सड़कके पार देखते, फुर्तीसे बाहर! होटलवाला भी हक्का-बक्का! मुँह खोले तो और मुसीबत! ऐसा न हो कोई नया हुक्म हो जाय—ओह खूब, याद आया। १० रुपया दो टैक्सीके लिए—कांग्रेस-प्रोग्रामपर जाना है।

कराची-कांग्रेस-अधिवेशन। एक प्याला काफ़ीके लिए पैसे नहीं। एक साथीको आज्ञा दी, कराचीके लिए वायुयानमें दो सीटें रिज़र्व करा आओ। साथी बगलें झाँकने लगा। इतने ही में एक चेट्टियर आ धमका। कंगालीमें आटा गीला। पास बैठ, सम्मान-प्रणामसे बोला, "क्षमा करें। पाँच साल हो गए महाराज, अभी तक···। यह तीस हजारका प्रोमेसरी नोट! अभी ब्याजकी भी एक पाई नहीं—असलकी तो बात ही क्या!"

आपने बहुत गम्भीर हो उसे डाटा, "देशके सामने जीवन-मरणका प्रश्न! मेरे पास इन सब बातोंके सोचने लिए समय है क्या? तुम्हें अपने ब्याजकी पड़ी है। आखिर, यह देश-द्रोह कब तक चलेगा? देश तो आजाद होगा ही और तब जनताकी खुली अदालतमें इस देश-द्रोहका फैसला होगा। भारत-माताकी कोखसे ऐसे सपूतोंका जन्म, जो इस समय भी अपना ब्याज माँगें! कराची जानेके लिए पैसे नहीं, तुम्हें अपनी रक़म चाहिए! यह तो न हुआ...।"

चेट्टियरको पसीना आ गया। बनियेका बेटा, कलेजा कितना! बेचारा काँप उठा। देश आजाद होनेपर कहीं मेरा ही नम्बर न आय सबसे पहले। गिड़गिड़ाकर बोला, "क़समसे मुझे मालूम न था! कितना चाहिए कराची जानेके लिए?"

"केवल एक हजार।" आपने रोबसे कहा?

"अच्छा, नमस्ते! मैं अभी भेजता हूँ चैक" कहकर वह जाने लगा तो आपने फिर आदेशवाणीमें कहा, "और देखो! खबरदार जो एक हजारसे ज़्यादा भेजो।"

"जी!" कह बेचारा दुम दबाकर घर आया और केवल एक हजार का चैक टी० प्रकाशमके चरणोंमें! ज़्यादा कैसे भेजता! कभी इसपर भी जनताकी खुली अदालतमें कैफ़ियत देनी पड़े। बड़े-से-बड़े सूमसे भी रुपया वसूल करनेकी विद्यामें आप पूरे गुरु! कर्ज-कलाके आप पूर्ण पण्डित और लेकर वापस न करनेमें बड़े उस्ताद! खर्च करनेमें मुँह-खुला बटुआ और हिसाब-किताबमें परम चौपट! आना-पाईकी नाप-तौल की तो हो चुका देशका उद्धार! रोबके साथ वसूल करो, शानके साथ खर्च, यही आपका आदर्श!

प्रकाशमपर आन्ध्रकी अनन्त श्रद्धा—घर-घरमें पूजा! यह बात अलग कि आन्ध्रवालोंने ही आपको गद्दीसे उतारनेमें कमाल

की ईमानदारी दिखाई। देवताका यह अर्थ तो नहीं कि अपने ही पेटसे बैर करे ! घर आती लक्ष्मी कौन लौटाता है। इसके सिवा लक्ष्मीकी दया हो, तो मनमानी पूजा कर लो अपने देवताकी। एक बात और भी। स्वर्गीय श्री दुग्गीराला कृष्णैयाने लिखा था, "टंगुटूरि प्रकाशमिंगलिष पिशाची"—टंगुटूरि प्रकाशम अंगरेजोंके लिए पिशाच है। गोरोंके लिए भूत है। सरकारी महलोंमें भूतका क्या काम ! ऐसा न हो कभी हमपर ही सवारी गाँठ बैठे ! भूतका भरोसा क्या ? इस भूतके रहते आँधीके आम और रिश्वतके दाम समेट नहीं सकते ! इसलिए पुजारियोंने अपने देवताको सब झंझटोंसे मुक्त करा दिया ! अब है पूजनेका स्वाद।

प्रकाशम हैं आन्ध्र केसरी ! सरासर शेर ! मार दिया मजाक-मजाकमें झपट्टा तब ? इनका तो मजेसे मक्खियाँ उड़ाना हो, दूसरे अपनी जानसे जायँ—ऐसा खतरा क्यों लिया जाय ? शेरोंका क्या काम मन्त्रिमण्डलमें ? जंगलमें जाओ या चिड़िया-घरमें मौज करो ! अभी तक आप खुले घूम रहे हैं—कभी-कभी पंजा चलाते रहते हैं अपने अहिंसक शिकारियों पर। लेकिन वे भी कवच पहने हैं सेण्टरके समर्थनका। मद्रास-मन्त्रिमण्डलके चिड़िया-घरमें तो आपको पिंजरा मिलनेसे रहा। शायद आन्ध्र अलग प्रान्त बने तब आप उसके नवीन चिड़िया-घरमें घुसकर कुछ कर्त्तव्य दिखा सकें।

मिनिस्ट्रीसे निकाले जानेका मलाल नहीं, बचपनसे ही स्कूल-कालेजोंसे निकाले जानेका गौरव आपको प्राप्त है। जीभर जीवनका रसपान कर चुके। अब बुढ़ापेमें नया रस न भी मिले तो क्या !—अब तो आप बन गये वह, जिसे न व्यापत जगत गति ! 'माँग के खाई, मसीतको सोइबो, लेबै के एक, न देबैके दोऊ !' फिर भी कभी-कभी देश-सेवाकी मेवासे छके मन, संघर्षसे थके तन, जब धूमिल सन्ध्यामें चटाईपर पड़े-पड़े सोचते हैं—मैं तो गांधी-कार्यक्रमको ही सफल बना रहा था। मुझमें अविश्वास ! आखिर गलती कहाँ रह गई ?—'जानि न जाय निशाचर माया।

वह करे तो क्या करे !

ए० रमेश चौधरी

अगर आप मद्रासमें रहते हैं तो मुमकिन है आपने उन्हें कहीं देखा हो। यह भी सम्भव है, आप उन्हें देखकर भूल गये हों। पर मैं नहीं भूल पाता।

आजसे सात बरस पहलेकी बात है—सन् १९४३ की—तब मेरी उनसे पहली मुलाकात हुई थी। आफ़िसमें काम-काज खतम करके घर वापिस जा रहा था। कोई साढ़े पाँच बजे होंगे, चलनेकी ठानी। महीनेका आखिरी सप्ताह था। पासमें बस-खर्चके लिए भी पैसे न थे। धीमे-धीमे जा रहा था। सोचता था कोई-न-कोई दोस्त कारसे जा रहा होगा और मुझे घर उतार देगा।

डाकखानेके आगे लपका जा रहा था कि रामस्वामीने पुकारा। वे बस-स्टैण्डपर बसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं चलता गया। किसीकी बात सुनना न चाहता था, पर उसने पुकारा। जाना ही पड़ा।

'आजकी क्या ताज़ी खबर है ?'

'ऐसी खास कुछ नहीं।'

'हिटलर कहाँ है ?'

'वापिस, घरके रास्तेपर।'

'कितने दिन और यह युद्ध चलेगा ?'

'क्यों ? अभी काफ़ी पैसे नहीं बने हैं ?'

हम दोनों हँस पड़े, खिलखिलाकर।

'भाई, जंगमें तो सभीकी जुगत लगती है। तुम अखबारवालोंकी भी तो तनख्वाहें बढ़ गई होंगी।'

'हाँ, काम ज़रूर बढ़ गया है।'

'अब भी वहीं हो?'

'हां।'

बातें खतम-सी हो गयीं। एक-दूसरेकी तरफ देख-देख कर हम मुस्कराने लगे।

'कोई अच्छा घर मिला है कि नहीं?'

'कहांसे मिले? आबादी बढ़ गई है। मकान न बढ़े। सैकड़ों बे-घरबार हैं। गनीमत समझिये कि हमारे पास एक छोटा-मोटा घर है। तुम्हारे तो कई एक मकान हैं, एक मकान क्यों नहीं दिलवा देते?'

'दिलानेमें मेरा तो कोई एतराज़ नहीं। इन रेण्ट कण्ट्रोल वालोंसे नाकमें दम आ गया है। न किरायेदारको बाहर ही कर सकते हैं, न भाड़ा ही बढ़ा सकते हैं। सब दाम बढ़ गये हैं। आखिर घरवालोंको भी तो इस दुनियामें रहना है,—झंझट है—झंझट।'

मैं बनावटी मुस्कराहटसे मुस्कराया। बगलमें एक युवती सजी-धजी गतिसे जा रही थी। हम दोनोंकी नजर उसपर पड़ी। वह फूलोंकी सुगन्ध छोड़ती चली गई।

एक नौजवान पर भी निगाह पड़ी—खद्दरके कपड़े पहने, दाढ़ी-बाल बढ़ाये, मैले कैदीसे—पत्थरके समान अस्थिर हमारे पीछे ही खड़े थे। चेहरा कुछ विचित्र-सा था—तरसानेवाला, हमारी बातें सुनते नजर आते थे। शायद बसकी इन्तजारीमें थे।

'तुम शादी शुदा लोगोंको तो इस तरह ताककर नहीं देखना चाहिए।'

'शादीका मतलब यह तो नहीं कि खुदाकी दी हुई अच्छी भली आँखें बन्द कर ली जायँ। अच्छा! तो फिर तुम शादी कब करोगे?'

'लड़ाईके दिन हैं। किसी गरीबिनका सुहाग क्यों मिटाया जाय? यहां अकेलेके लिए गुज़ारा नहीं, फिर दो होकर महीनेमें १० दिन रोज़ा करना होगा।'

उनकी बस नुक्कड़में आती दिखाई दी। मैंने पूछा, 'आज बसमें जानेकी नौबत काहेको आई।'

'क्या करें भाई, पेट्रोल नहीं मिलता। टायर भी किसी कामके नहीं रह गये हैं। कारको शेडमें धकेल दिया है।' बस आ गई। वे चले गये।

बस-स्टैण्डकी भीड़को चीरता हुआ मैं भी घरकी तरफ चलने लगा। मेरे पीछे वे सज्जन भी चले आ रहे थे। मैंने चाल बढ़ाई, उन्होंने भी बढ़ाई। आखिर बात क्या है! मैं सोचने लगा। वे बगलमें आ गये। और मेरी आँखोंसे आँखें मिलाकर देखने लगे। बड़ी-बड़ी आँखें, खिन्न मुख, न हँसी, न मुस्कराहट। खूनीका-सा चेहरा, डरावना, अजीब निर्भाव पागलका-सा। मैं चौंक-सा गया। उनके चेहरेपर हलकी-सी बनावटी मुस्कराहट दौड़ गई।

उन्होंने पूछा—'क्या अखबारमें काम करते हैं?'

'हां।'

मैं चलता जाता था। वे भी मेरे साथ चलते आते थे।

'एडीटर हैं क्या?'

'सम्पादकीय वर्गमें काम करता हूँ।'

'लेख वगैरः लिखते हैं?'

'लेख तो क्या, दूसरोंके लेखोंकी काट-छाँट करता हूँ।'

'मैंने भी बहुत-से लेख लिखे हैं।'

'छपे भी हैं क्या?—आपका शुभ नाम?'

'अभीतक तो नहीं, पुस्तक छपानेकी फिक्रमें हूँ। लिखना क़रीब-क़रीब खतम हो गया है।'

'कहां छपवायँगे?'

वे चुप रहे। फिर झटकेसे कहा, 'मुझे विजयलक्ष्मी पण्डित ने एक सिफ़ारिशी खत भी दिया है।'

मैं न समझ पाया कि श्रीमती विजयलक्ष्मी और इनसे क्या सम्बन्ध। सोचा, शायद दिमाग ठिकाने नहीं है। फिर पूछ ही बैठा,

'आपका और श्रीमती विजयलक्ष्मीका अच्छा परिचय है क्या?'

'हां! उनके कुटुम्बमें मेरा विवाह होने जा रहा है।'

मैं मन-ही-मन हँस दिया। मेरा सन्देह दूर हो गया, वे आधे पागल थे।

मैं चलता गया, वे भी मेरा साथ न छोड़ते थे। चार-एक फर्लांग चल चुके होंगे।

'लेख लिख रखे हैं, पोस्टमें भेजना है।'

'कहाँ ?'

'किसी सम्पादकके पास।'

'भेज दो ?'

'भजनेके लिए पैसे नहीं हैं, आप पैसे दीजिये।'

मैं भक् सा रह गया। यह कैसी आफ़त। पैसे हों, तब न दूँ ! यहाँ तो जेब खाली है। कह दिया कि पैसे नहीं हैं।

'पसे नहीं हैं तो इतनी दूर चलवाया क्यों ?'

'भाई, मैंने कब तुमसे चलनेके लिए कहा।'

'अगर कहें भी यहाँ आपके साथ चलनेवाले पैदे कौन-से हैं।

'पैसे न देंगे, यह जबरदस्ती क्या है।'

'सम्पादक हैं, सम्पादक ! बने हैं सम्पादक, एक लेखकको दो आने भी नहीं दे सकते। तभी तो हिन्दुस्तानमें साहित्यकी यह गति है।'

मैं चलता गया। वे खड़े रहे। मैंने पीछे मुड़कर न देखा। मुझे मालूम था, उनकी आँखें मेरा पीछा नहीं छोड़ रही थीं।

बादमें मैंने फिर उसे एकबार देखा, ठीक उसी जगह पर। मैं बचकर निकल गया। डर बना रहता था—कहीं वे पीछे न चले आते हों।

कई दिन गुज़र गये, महीना खतम हुआ। पैदल जानेकी नौबत गई, बसमें जाता था। उनका खयाल भी जाता रहा।

पोस्ट आफ़िस जानेका काम लगा। लेखोंको भेजना था। लंचका समय था। पोस्ट आफ़िसमें काफ़ी भीड़ थी—हरेक खिड़कीपर पंक्ति बनी हुई थी। मैं भी जा खड़ा हुआ। मैं लेख भेजकर आरामसे बाहर आ ही रहा था कि उनके दर्शन हो गये। मैंने सोचा, जैसे-तैसे खिसक जाऊँ। जा न सका।

'क्यों सम्पादक साहब, आज क्या खबर है ?'

मैं चौंक गया।

'दुनियाको कबतक झूठ बोलकर बहकाओगे—कभी-न-कभी तो अखबारवालोंकी पोल खुलेगी। समझते होंगे किसीको कुछ मालूम ही नहीं। सब मालूम है !'

मैं जल्दीमें चला जा रहा था। वह भी मेरे बगल निकट आ गया। न जाने वह मेरे पीछे ही क्यों लगा था। मैंने तो उसका कोई अपमान नहीं किया, फिर मेरी वह तौहीन क्यों करता है।

'लोगोंकी सेवा करने चले हैं ये लोग। सेवा, सेवा ! कब तक दुनियाको पागल बनाओगे। इश्तहार देनेवालोंने जिस तरफ लगाम मोड़ दी उसी तरफ चल दिये—सेवा ? किनकी ? पैसे वालोंकी—उनकी ही दुनिया है।'

मैं सोच रहा था जनाबने कोई लेख लिखा होगा, सम्पादकोंने वापिस भेज दिया होगा, इसी वजहसे आग बबूला हो रहे हैं। 'लेख क्या पूरा हो गया है ?'

'हाँ।'

'फिर भेज दीजिये न।'

'आपको हमारे लेख क्यों चाहिए—चाहिए उनका जिनका काम ही हरवक्त अपना उल्लू सीधा करना है। इन डिग्रीधारियोंके हाथ तो साहित्यका हलाल हो रहा, हलाल ! ये सब क्यों ? सम्पादकोंकी बेवकूफ़ी से !'

मैं न समझ पाता था, पागल है या सिर्फ़ सनकी। पागल भी शायद कभी-कभी रस्तेपर आ जाते हैं। फिर इनसे छुटकारा कैसे—ऐसा न हो कहीं आफ़िसमें भी घुस जाय। मैंने पैंतरा बदलकर पूछा,

'नयनतारासे कोई चिट्ठी आई कि नहीं ?'

'राजकुमारी एलिज़बेथने चिट्ठी लिखी थी (उन दिनों एलिज़बेथकी सगाईके बारेमें रोज अफ़वाहें उड़ रही थीं)।

मुझे मन-ही-मन हँसी आ गई। 'क्या लिखी थी ?'

'मुझसे वे शादी करना चाहती हैं।'

'फिर नयनताराका क्या हुआ ?'

'एलिज़बेथने मेरा फोटो माँगा है।'

मैं हँसी न रोक सका।

'इंग्लैण्ड आनेके लिए लिखा है, कहती हैं रास्तेके लिए खर्च भेज रही हूँ।'

'तब तो मन चाहे पैसे मिल जायँगे ?'

'होगी राजाकी बेटी—है तो औरत ही। औरतोंसे कहीं मर्द पैसा लिया करते हैं। मैं मर्द हूँ, मर्द !'

'तुमने जवाब लिखा कि नहीं लिखा ?'

'जवाब लिख रखा है। भेजनेके लिए पैसे नहीं हैं।'

'भेजनेके लिये तो कम-से-कम सात आने लगते हैं। तो दो छः आने।'

मैंने पीछा छुड़ानेके लिए छः आने दे दिये। आफ़िस नजदीक आ गया। सोचा, अच्छा हुआ, पीछा छुटा।

पैसे गिनते हुए उसने कहा,—'एलिजबेथने फोटोके लिये…

'एलिजबेथसे ले लेना,' कहते हुए मैं आफ़िसमें घुस गया।'

थोड़ी देर बाद मैंने ऊपरकी मंज़िलसे देखा कि वह चौकीदारसे अन्दर आनेके लिए झगड़ा कर रहा है।

× × ×

मुझे स्वप्नमें भी खयाल न था कि उससे फिर मेरी भेंट हो जायगी।

एक दोस्तकी बहनकी शादी थी। शादीपर आनेके लिए बहुत कह गये थे। अपने पासवाले गाँवके ही रहनेवाले थे। शहरमें मोटरोंका व्यापार करते थे—हालमें काफ़ी पैसा कमा लिया था। अच्छे मिलनसार थे—शानदार क्लबोंमें मेम्बर भी थे। हैसियतवाले हो गये थे। घरसे बहन भी इसी शादीके लिए आई हुई थी। उपहार देनेके लिए कुछ खरीद भी लाई थी।

बड़ा अच्छा शामयाना तना हुआ था। बीसियों मोटरें सड़कके किनारे खड़ी हुई थीं। ढोल-ढमाका हो रहा था। सैकड़ों आ-जा रहे थे। बड़े घरके बड़े ढंग!

सुब्बाराव दरवाज़ेपर ही मिल गये। और अपने साथ अन्दर ले जाकर अच्छी जगह बिठा दिया। बगलमें शहरके मशहूर धनी बैठे हुए थे। मुझे अपनी ग़रीबीका खयाल आया। शायद कृष्णा भी सोचती होगी कि ग़रीबी बुरी बला है। थोड़ी देर बाद फिर खयाल आया 'होंगे वे धनी अपने घरमें', ग़रीबको भी तो रहनेका अधिकार है। फिर जो मेरे पास है, उनके पास शायद नहीं है, भगवान् हरेकको हर चीज़ तो नहीं देते! सोचता जा रहा था और सामने शादी होती जाती थी।

आस-पास लोग घुसपुस कर रहे थे।

'दूल्हा क्या काम करता है?'

'आल इण्डिया रेडियोमें वायलिन्स्ट है।'

'क्या तनख्वाह होगी?'

'करीब १००-१५०।'

'जंगका जमाना है। गुज़ारा कैसे होगा।'

'दहेज क्या मिला है?'

'शायद दस हज़ारके करीब।'

फिर कुछ कानाफूँसी हुई—एकने कहा,

'है अपने काममें बहुत होशियार!'

'लड़कीको भी क्या वायलिन आता है?'

'वह पढ़ी-लिखी है, वायलिन तो क्या जानेगी!'

मन्त्र-पाठ होता जाता था। अतिथि आ-जा रहे थे। सुब्बारावको एक घड़ी फुर्सत न मिल पाती थी।

सिर्फ़ यों ही बैठे-बठे कुछ सूझ न रहा था। यकायक खयाल आया फोटो क्यों न लिया जाय! कैमरा साथ था ही।

शादी-मण्डपमें दो-तीन फोटो लिये। सवेराका वक्त था, डर था, कहीं लाइटकी कमी की वजहसे ठीक न आय। बहनको वहाँ छोड़ बाहर जाकर आने-जानेवालोंकी फोटो लेने लगा।

देखता क्या हूँ कि शामियानेके एक खम्भेका सहारा लिये, अभ्यागतोंके पीछे वह खड़ा हुआ था। उसकी पत्थरोंकी-सी आँखें वर-वधूपर गड़ी हुई थीं। हाथमें एक बड़ा-सा पैकेज था। इच्छा हुई कि एक फोटो लूँ! न लो! दूसरी तरफसे घूम-फिरकर वापस अपनी कुर्सी तक चला आया।

मैं सोचता था कि वह कैसे वहाँ आ गया। सुब्बारावका और इनका क्या रिश्ता? फिर वह पैकेज क्या है?

उधर न देखता हुआ भी उसकी आँखें मुझे देखती हुई नज़र आती थीं। बर्फ़ीली आँखें!

शादी होनेके बाद अतिथि चले गये। शामको टी-पार्टीका निमन्त्रण था। राशनके रोज़, भोजनके लिए गिने-चुने ही बाकी रह गये थे।

सुब्बाराव थके-माँदे मेरे पास आ बैठे। कृष्णा भी सुशीलासे मिलने अन्दर चली गई। सुब्बारावने पूछा,

'अच्छी जगह तो बैठे थे?'

'हाँ, भाई!'

'पान बगैरः मिले कि नहीं?'

'हाँ, मिले।'

खैर शादी बिना किसी झंझटके हो गई। पर वे महाशय मूर्तिकी तरह वहीं खड़े थे। मुझसे अब बिना पूछे न रहा गया। मैंने संकेत करते हुए पूछा, 'वे कौन हैं?'

'नहीं पहचानते ? वह तो तुम्हारे साथ शायद जेलमें भी रहा होगा। पिछले साल—अलीपुरमें।'

मैंने कहा, 'याद नहीं।'

पर तबसे अब उसमें ज़मीन-आसमानका फर्क आ गया है।

'तो क्या सन् १९४२ के आन्दोलनमें जेल गया था क्या ?'

'हाँ !'

'किस लिए ?'

'शायद तार काटे थे। गुण्टूर कालेजमें पढ़ता था। सनक सवार हुई और जाकर स्टेशनके तार काट डाले। पुलिसने पकड़ लिया और जेल भेज दिया।'

'जेलसे आनेके बाद पढ़ाई छोड़ दी और आवारागर्दी करने लगा। सभाओंमें हुल्लड़बाजी करता था। गाँव-गाँव फिरना, जुलूस निकालना—यही काम था। उसके माता-पिताकी बुरी हालत थी। इसीपर सब आशा बाँधे जैसे-तैसे पढ़ा रहे थे। जो कुछ कमाते इसीके खर्चके लिये कालेज भेज दिया करते थे। ज़मीन तो कभी की बिक चुकी थी। कुलीगीरी करके ज़िन्दगी बसर करते थे।

'इस बीच विवाहके लिए लोग आने लगे। इण्टर तक पढ़ा-लिखा तो था ही, फिर तुम जानते ही हो हमारी बिरादरी की दहेजकी बीमारी। मा-बापको दहेज मिलनेकी आशा होने लगी। सोचा होगा—दहेजसे पाँच-एक साल कट जायँगे—और लड़का भी रास्तेपर आ जायगा।'

'तो उसकी शादी भी हो चुकी है ?'

'सुनो भी...!'

'दहेजके लिए भाव-ताव होने लगा। कैसी बेशर्म बिरादरी है हमारी !—दुनिया मीलों आगे बढ़ जाय, पर वह वहीं-की-वहीं है। घरमें एक कौड़ी नहीं, सिवाय इन पुत्र-रत्नके, लगे चाल चलने बड़ोंकी। लड़कीवालोंने कहा, ५ एकड़ ज़मीन देंगे, और ५ हज़ार नकद।'

इसके पिता चाहते थे कि १० हज़ार मिल जाय ताकि गई हुई दस एकड़ ज़मीन फिर मिल जाय। ५ तो वो दे रहे थे १० हज़ार लगाकर पाँच और खरीदे जा सकते थे।

'इस भाव-तावके बारेमें गाँवमें चर्चा होने लगी—सब किसीके मुँहपर यही बात थी—कहते थे इसके अच्छे भाग हैं। कई जलने भी लगे कि किसीको मुफ्त इतना पैसा क्यों मिल जाय ! झूठी-सच्ची अफ़वाहें उड़ाने लगे। किसीने जाकर लड़कीवालेसे यह कह दिया कि लड़केमें पौरुष नहीं है।

'फिर क्या था, भाव-तावने पल्टा खाया, लड़कीवालोंने कहा कि वे एक पाई न देंगे जब तक लड़का अपनी डाक्टरी न करा ले।'

'वह कैसे ?'

'कहा न, बेवकूफ बिरादरी है—बड़ोंकी कमाईपर ऐश उड़ाते हैं। दिमागमें भी दीमक लगी है इन लोगोंके।'

'फिर सबूत कैसे दिया गया ?'

'डाक्टरी करानेसे लड़केवालोंने इनकार कर दिया। तब क्या था। शादी न हुई और तभीसे ये जनाब पागल हुए हैं—शादीके लिए पागल हुए हैं।'

'तो ये पागल हैं ?'

'हाँ—! पर बिचारा किसीको मारता-पीटता नहीं। अपने ही खयालमें रहता है। तुमसे भी मिला था—कहता था कि तुम उसके लेख छापोगे।'

'मैं हँस पड़ा।'

'तुम उसे न पहचानते होगे, पर वह तुम्हें जानता है। बचपनमें तुम्हें देखा होगा। तुम्हारा नाम सुन रखा है। अभी पूरा पागल नहीं है, आदमियोंको पहचानता है।'

'रहता कहाँ है ?'

'हवाकी तरह हर जगह। लाखबार कहा यहाँ पड़ा रह—आखिर है तो रिश्तेदार ही, पर वह सुनता ही नहीं है। कहता है—औरतें हैं, औरतें ! और औरतोंसे उसे शर्म आती है। अपने यार-दोस्तोंके साथ होटलोंमें पड़ा रहता है।

'खाना-पीना ?'

'होस्टलमें खा ही लेता होगा। सुना है आजकल भीख भी माँगने लगा है। दर्जियोंने मुझसे कहा कि बस-स्टैण्डपर लोगोंको दिक किया करता है।'

'हाँ, मुझे भी दो-चार बार मिल चुका है। उसके हाथमें क्या है ?'

'वायलिन है। कल ये सब लोग दूल्हेके लिए उपहार खरीदने गये। मैंने एक वाइलिन प्रेजेन्ट करनेको ठानी। केस रखा हुआ था। ये भी उस कमरेमें जा पहुँचे। और रोने-पीटने लगा कि वह भी एक भेंट देगा। बच्चोंकी तरह सिरपर सवार हो गया। फिर पागलोंका अड़ना तो तुम जानते हो हो। हम तो बहुत-कुछ दे ही रहे थे। उसे मैंने वह वायलिन भेंट करने के लिये दे दिया—और सवेरे वायलिन लिये-लिये उसी जगह पर वैसा-का-वैसा खड़ा हुआ है।'

मुझे उस विचारेपर दया-सी आने लगी। अब पता लगा कि आदमी पागल होते हैं तो क्यों होते हैं? इस बीचमें सुब्बारावको किसीने पुकारा और वे चले गये। बहन भी अभी तक अन्दर थी। मैंने सोचा उनसे बातचीत ही कर ली जाय।

मैं जा ही रहा था कि उसने पुकारा, 'सम्पादकजी, आप यहाँ भी हाज़िर हैं?'

'हाँ, भाई! न्यौतेपर आना भी कोई गुनाह है?'

'तो विवाहका समाचार भी आपके अखबारमें छपेगा?' हमने सैकड़ों गाँव फिर-फिर अपना गला तोड़ा, पर किसी सम्पादकने एक बार भी हमारा नाम न छापा। पैसेवालोंकी दुनिया है। अगर उन्हें ज़ुकाम भी हो जाय, अखबारवालोंको शायद ऐसा लगता है, जैसे उनके किसी सगे रिश्तेदारको हो गया हो। खुशामदी लोग हैं—खुशामद करना ही काम है। दिमाग खराब हुआ है।'

'मैं हँस दिया।'

'आप सोचते होंगे मेरा दिमाग खराब है। यह आपके दिमागसे भी दुरुस्त है!'

'क्यों भई, तुम जेल गये थे?'

'हाँ, आप भूल गये हों, याद क्यों रहेगा? दिमाग जो बहुत ठीक है, अलीपुरमें था। आप थे 'बी' क्लासमें, और मैं था 'सी' में। याद क्यों रहेगा, बड़े आदमी जो ठहरे!'

'पहले बताया क्यों नहीं?'

'बताया तो था, लाख बार बताया, दिमाग ठीक हो तब न!'

मैंने सोचा फिर शायद दौरा आ रहा है। न जाने और क्या बके। मैं चलने लगा, वह भी मेरे पीछे।'

उसने कहा, 'मुझे वायलिन सीखना है।'

'क्यों सीखे बगैर शादी न होगी?'

'ट्यूटर भी रख लिया है। दस महीनेसे सीख रहा हूँ, अभी दो-चार महीने और लगेंगे।'

मुझे मालूम था कि कल्पना बहुत दूर चली गयी है—सोचता होगा कि, 'दो-चार महीनेमें सीख-साखकर उसे भी आल इण्डिया रेडियोमें नौकरी मिल जायगी—फिर उसकी भी शादी हो जायगी।'

'अच्छी बात है, वायलिन सीखनेमें क्या नुकसान है?'

'ट्यूटर पैसे माँग रहा है।'

'दे दो—कितने हैं?'

'दो सौ!'

'दो सौ रुपये मैं कहाँसे दूँ?'

'सम्पादकोंके पास दो सौ रुपये भी नहीं होते हैं।'

'नहीं, दो रुपये हों तो॥फ़क़ा मारय।' सुब्बारावने मुझे भोजनके लिए पुकारा और मैं अन्दर चला गया—पीछा छुटा।

× × ×

बहुत दिन बीत गये। मैं उसको भूल-सा गया। कुछ दिनों तक सपनेमें कई बार गालियाँ सुनाते हुए देखा था। सपने ऐसे भयावने होते थे कि याद करते हुए भी डर लगता था—कभी वह चाबुक मारता, गला घोंटता, कीचड़ फेंकता और कभी पत्थर मारता!

मै शहरसे बाहर कुछ दिनोंके लिए अपने गाँव चला गया। उसके मा-बापने आकर उसको याद दिलाई। उन्होंने आकर पूछा, "आप शहरमें रहते हैं। हमारा लड़का भी वहीं रहता है—सुब्बारावके पास। अगर उसे कोई काम-काज मिल जाय तो विचारा रास्तेपर आ जायगा, नहीं तो पागल हो जायगा।"

मैं नहीं कहना चाहता था कि वह पागल हो गया है।

मा-बाप भी रो-धोकर चले गये। मैं कर ही क्या सकता था।

उस सप्ताह मेरी रातकी ड्यूटी थी। रातकी ड्यूटीके भी मजे हैं। सारा शहर सोता है, और सोता शहर देखते ही

बनता है। सुनसान लम्बी सड़कें—कुछ अभागे पेवमेन्टपर सोते हुए—भीनी-भीनी हवा, मुस्कराती चाँदनी, निस्तब्ध वातावरण, —शान्त, गम्भीर!

अखबारवालोंके लिये दिन-रातका चक्कर रहता ही नहीं है—उन्हें तो जुटा रहना पड़ता है। दिन रात बन जाते हैं और रात दिन हो जाते हैं! अजीब पेशा है!

चाँदनी रात थी। एक बजा होगा। विश्रामका घन्टा था। हम कुछ खाने-पीनेके लिए आफिससे बाहर एक होटलमें चले आये।

दो-चार फौजी शराब पीकर मजा करते हुये जा रहे थे।

सड़ककी परली तरफ फौजियोंके लिए गवर्नमेण्टकी तरफसे एक वेश्या-घर था। बीसियों वहाँ जाते थे। हम उस तरफ न जाते थे, ऐसा न हो किसी जालमें हम फँस जायँ। चाय पीकर हम लौटते थे। देखता क्या हूँ, उस वेश्या-घरसे दो आदमी किसीको मार-पीटकर बाहर घसीट रहे थे। गौरसे देखा तो आदमी वही था—उन पत्थरोंकी आँखोंसे आंसू बह रहे थे। घसीटते-घसीटते उसे बाहर फेंक दिया! कुछ देर कराहा, रोया, फिर चिल्लाने लगा,

'मैं मर्द हूँ, मैं जवान हूँ', उनसे पूछ लो! 'मैं मर्द हूँ', 'मैं जवान हूँ'! मैं देख न सका—चलता जाता था, उसकी कराहटकी प्रतिध्वनि मेरे दिलसे आ रही थी।

"मैं मर्द हूँ, मैं जवान हूँ—मैं—म—र—द—हूँ!*

* यह कहानी एक सत्य घटना है। —लेखक

साहित्य और शील

श्रीकृष्ण दातार

पाश्चिमात्य देशोंमें लोग जब लेखकों तथा वाङ्मय सेवकोंके बारेमें लिखकर या जबानी चर्चा करते हैं, तब वे कभी उनके खानगी, जीवन या चारित्र्यकी खोज नहीं करते, बल्कि उनकी जो साहित्यिक रचनाएँ उनके सम्मुख होती है उन्हींका मूल्य मापन और गुण-दोष चर्चा करते हैं। और जब कोई व्यक्तिगत जिक्र करता भी है तो वह या तो सन्दर्भसे अपरिहार्य हो या उससे उसके साहित्यपर कोई नई रोशनी पड़ती हो उसी वक्त करता है। कभी-कभी हम यह भी देखते हैं कि वहाँ किसी कवि या लेखकका कौटुम्बिक जीवन, या उसकी निजी किताबोंका संग्रह, व्यवसाय, छन्द, आदिका चित्रण किसी लेखकका विषय बनकर उसके चाहनेवालोंकी जिज्ञासा पूर्ण करनेका यत्न किया जाता है। लेकिन किसी लेखकका शील या घरेलू जीवन अखबारी या सार्वजनिक चर्चाका सवाल वहाँ हरगिज नहीं बनाया जाता। इसके विरुद्ध भारतमें लेखकोंके चारित्र्य के प्रति पाठकोंमें गैरमामूली दिलचस्पी आम तौरपर पाई जाती है। कोई शायर शराबी हो या किसी मान्यवर उपन्यास लेखकने एक पत्नीके जीते-जी दूसरी शादी की हो तो यहाँकी साहित्य-सृष्टिमें एक ऊधम मच जाता है। आखिर यह किस लिये? यदि कलाकारकी कृति तथा उसका निजी जीवन इनका आपसमें कोई मेल न हो, तो फिर हमें उसके गृह-जीवनसे क्या वास्ता! लेकिन ऐसी चर्चायें हिन्दीमें और अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें खासकर मरहठीमें बार-बार हुआ करती हैं।

इसके कारणोंमें प्रमुख है हमारी संस्कृति। हम भारतीयोंके जीवनमें यूरोपीय लोगोंकी अपेक्षा चारित्र्य और शीलका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। हम उसीको बड़ा मानते आए हैं जिसका शील निष्कलंक हो। जब यह अपेक्षा साधारण-से-साधारण व्यक्तिसे की जाती है तो ज़ाहिर है कि हम लेखकोंसे निर्मल चारित्र्यकी अपेक्षा कहीं अधिक रखते हैं। हम अंग्रेजी पढ़कर कितने ही सु-शिक्षित और सु(!)संस्कृत क्यों न बने हों, परम्परासे प्राप्त ये संस्कार न मिटे हैं और न मिट सकते हैं। यही कारण है कि हमारे अन्तर्मनोंमें कवि और सन्त महात्मा ये दोनों शब्द करीब-करीब समान अर्थ रखते हैं। हमारे प्राचीन साहित्यकी परम्परा भी ऐसी ही है।

बारहवीं शताब्दीसे लेकर अठारहवीं शताब्दी तक जो भारतीय साहित्य निर्माण हुआ, हर प्रान्तमें देखिये, कवियों द्वारा निर्मित नहीं, सन्त-महात्माओं द्वारा निर्माण हुआ है। जिनका व्यक्तित्व उनकी रसनासे अधिक आकर्षक, जिनका जीवन उनके साहित्यसे अधिक श्रेष्ठ, ऐसे पहुँचे हुए साधुओंका यह वाङ्मय है। इसके पढ़नेपर यह भ्रम होता है कि उनके उज्ज्वल चारित्र्यसे उनका साहित्य प्रकाशमान हो रहा है या उनके वाङ्मयकी दीप्ति उनके जीवनको शुद्ध-धवल कर रही है। समस्त विश्वके इतिहासमें यह बात अपूर्व है। गौरांग प्रभु, नानक, कबीर, तुलसीदास और महाराष्ट्र प्रान्तके ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ, रामदास ऐसे तपस्वी वाङ्मय सेवक महात्मा भारतके सिवा किसी अन्य देशके साहित्यिक इतिहासमें मिलना असम्भव है। इनमेंसे हरेकका जीवन कितना परार्थ, त्यागमय, शुद्ध और आदर्श था। उन्होंने ऐसी कोई बात नहीं कही या लिखी जिसका उन्होंने स्वयं अनुभव न किया हो या दूसरे शब्दोंमें उन्होंने पहले आचरण किया और बादमें उपदेश। कोई आश्चर्य नहीं कि हमने उनको कद्र की निगाहसे देखा, यहाँ तक कि वे ईश्वर अवतार माने जाने लगे। उनको हम अब तक नहीं भुला सके जैसा कि देशभर मनाये जानेवाले साधु-सन्तोंके जन्म एवं पुण्य तिथियोंसे ज़ाहिर है। ये तिथियाँ भारतवर्षके पंचांग (कलेण्डर) में हमेशा दर्ज रहती हैं। दुनियामें ऐसा कोई दूसरा राष्ट्र नहीं जिसके कलेण्डरपर दिवंगत साहित्यिक महानुभावोंकी तिथियोंको अमिट स्थान दिया गया हो। महाराष्ट्रमें ये तिथियाँ त्यौहारकी तरह सार्वजनिक रूपमें मनाते और लाखों भक्तगण उस दिन उनके समाधि-स्थलकी यात्रा करते हैं। इन यात्रियोंमें हज़ारों ऐसे भी होते हैं जिन्होंने उस सन्तवाणीका एक चरण भी न पढ़ा हो, लेकिन फिर भी वे उसको रामकृष्णादिके समान पूज्य एवं आदरणीय मानते हैं। यह परिचय श्रेष्ठ कवि होनेके नाते नहीं हुआ करता, श्रेष्ठ और शुद्ध-चरित पुरुषोंके नाते हुआ करता है। ऐसे कवि और लेखकोंकी परम्परा प्रत्येक भारतवासीकी विरासत है इसलिए अब तक भी अगर हिन्दी पाठकगण अपने लेखकों, कवियों और अन्य कलाकारोंसे आदर्श व विशुद्ध चरित्रकी अपेक्षा करते हों तो यह अस्वाभाविक नहीं है।

भारतीय जनता लेखककी ओर लोक-शिक्षककी दृष्टिसे देखती और एक शिक्षककी भाँति उससे आचार-विचारकी अपेक्षा रखती है। आजकलकी बदली हुई अवस्थामें इस प्रकारके विशुद्ध जीवनकी अपेक्षा किस हद तक उचित है, यह प्रश्न और है, किन्तु वस्तुस्थिति और उसके कारण यही हैं।

समाजकी वर्तमान अवस्थामें इस प्रश्नके प्रति पाठकोंका दृष्टिकोण कैसा रहना चाहिये इसका विचार आवश्यक है। पुराने संत कवियोंकी मनोभूमिका एक अध्यात्मवादीकी—एक मुमुक्षुकी थी। उनकी कविता आध्यात्मिक अनुभवोंका एक दृश्य स्वरूप होता था, वर्तमान साहित्यिकोंमें और उनमें यह बड़ा भेद है। साहित्य-निर्माणके उद्देश वर्तमानकालमें सर्वथा भिन्न हैं। प्राचीन लेखकोंके जीवनमें काव्य-लेखनकी बनिस्वत आत्मानुभूतिका महत्त्व बड़ा और प्राथमिक था। आजकल जीवन-कलहकी तीव्रता इत्यादि कारणोंसे जीवन-विषयक तत्वज्ञान काफ़ी बदल चुका है। आध्यात्मिकता एक कागजी ध्येय रह गया है। स्वभावतः वर्तमान साहित्यके, जीवनके तरफ़ देखनेके दृष्टिकोणकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकारसे हो रही है। जो लेखकका स्थान अब तक भी समाजकी नजरोंमें सम्माननीय है, फिर भी उस पुराने समाज-शिक्षककी जिम्मेदारी अनेकोंमें विभाजित हो गई है। विज्ञानके वर्तमान युगमें भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें विज्ञान-पारंगत लोगोंकी मौजूदगीमें लेखक-समाज जीवनके प्रत्येक अंगमें उतना उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकता। समाजोपदेशक गुरुकी जिम्मेदारी उसपरसे हट जानेके कारण ही शायद 'कला नीतिका प्रचार करनेके लिये नहीं, 'कलाविष्कार सिर्फ कलाके लिए' इत्यादि अनेकों घोषणाएँ साहित्य-क्षेत्रमें सुनाई देती हैं और सौन्दर्यवादका बोलबाला हो रहा है।

फिर भी कलाओंका एक विशेष कार्य विज्ञान-युगमें भी है और रहेगा। जबतक कलाएँ अर्थदासी, पक्षदासी, राजदासी वा कालदासी होनेसे इन्कार करेंगी और अपना कार्य ईमानदारीसे अन्जाम देंगी, स्वतन्त्रतासे जीवन बितायँगी, उनका

महत्त्व कम होनेका भय नहीं। इसी तरह कलाकारोंको भी दास्यवृत्ति—चाहे वह पैसेकी हो या वासनाओं, विकारोंकी हो—विघातक है। उससे दूर रहनेसे ही कलाकार बलशाली बनता है। जिस समाजमें कवि और साहित्यिक एक खिलौना, मज़ाककी चीज माना जाय, समझ लेना चाहिए कि वहाँके साहित्यिक अपनी प्रतिष्ठा किसीके गुलाम बनकर गँवा बैठे हैं, उनकी कला हीन मूल्योंकी सेवा दासी बनकर कर रही है।

साहित्यकार कैसा हो? उसके होठोंपर बिलसनेवाली स्मित मानवी जीवनमें जो कुछ प्रसन्नता मांगल्य है उसका तथा उच्च आत्मिक मूल्योंका आविष्कार करनेवाली हो। उसका रोष, वाणीकी कटुता और शब्दोंका जहर सिर्फ मानवी दुःखोंके उत्पादक जो व्यक्ति, प्रवृत्तियाँ और सामाजिक अन्याय हैं, उनके खिलाफ हो और उसके आँसू दुःखद विसंवादों, आर्त अनुभूतिके साक्षी हों। इसी स्वत्व और 'चारित्र्य'की अपेक्षा वर्तमान कलाकारोंसे हमें रखनी चाहिए। कलाकार जो निर्भय हों, दुर्बल न हों स्वतन्त्रतासे विचार करनेवाले हों जिनका आचरण विचार पूर्वक निश्चित मार्गसे हो (चाहे वह रूढ़ि और प्रचलित धर्म-भावनाके विरुद्ध ही क्यों न हो) समाज उनका आदर करता है। अगर ये कुछ समय तक समाजकी हँसी मज़ाकका केन्द्र भी रहे, फिर भी लोगोंके अन्तर्मनोंमें उनकी जगह अटल होती है और अन्तमें उन्हींका जयकार होता है। कई वर्षोंके मनन और चिन्तनकी तपश्चर्या जिस कलाकारके शब्दोंमें छिपी रहे, डींग मारने या आत्मदर्शनके लिये नहीं, सात्विक भूमिकापर आधारित जीवनके अक्षय मूल्योंका दर्शन कराने जो कलम उठाता है, समाज हमेशा उनकी कद्र करता है। जिनके पास यह प्रलयकारी सामर्थ्य न हो ऐसे दुर्बल कलाकार, कुछ समय तक विदूषकके समान समाजका दिल बहलाकर लोकप्रियताके सस्ते दाम भले ही हासिल करें, आदरणीय नहीं हो सकते और समाज भी गम्भीरता और कृतज्ञताके साथ उनकी ओर तथा उनकी कलाकी ओर नहीं देखता।

सारांश, इस बीसवीं सदीमें 'कलाकार चारित्र्यवान् हो' इस वाक्यका मतलब परिस्थितिके अनुसार मैं यही समझता हूँ कि कम-से-कम साहित्यकी प्रतिष्ठाके लिये लेखकों, कवियों तथा अन्य कलाकारोंको अपने आचार और विचारोंमें, शब्दोंके ध्वनित अर्थमें और प्रतिपादनमें निर्भयता, शुद्धता, स्वत्व और सामर्थ्यका आविष्कार करनेका सर्वदा यत्न करना चाहिये। इसीसे उनका और समाजका भला होगा।

—श्री कुलकर्णीके मराठी लेखपर आधारित]

काला बाजार

हरिप्रसाद अवधिया 'छत्तीसगढ़ी'

मनुष्य स्वभावसे ही उच्चता की ओर अग्रसर होनेवाला प्राणी है। सिद्धान्ततः मानवको पतनकी ओर कदापि अग्रसर नहीं होना चाहिए; पर अधिकतर देखनेमें आता है कि मनुष्य उच्च कर्म अपेक्षाकृत कम करता है। इसका एक मात्र कारण है आत्माका संसारमें माया-लिप्त होना। आत्मा अपने स्वभावसे उत्कर्ष की ओर उन्मुख होती हैं, पर अनेकानेक मनोविकार तथा कुप्रवृत्तियाँ उसे नीचेकी ओर ढकेलती हैं और मनकी चंचलताके कारण इन्द्रियाँ आत्माकी ओर न झुककर कुकर्ममें लिप्त हो जाती हैं। परिणाम-स्वरूप जब-जब मनुष्य पापाचरण करता है तब-तब आत्मा उसका निषेध अवश्य ही करती है, किन्तु कुकर्म करनेकी लत लग जानेसे आत्म-ध्वनिकी चिन्ता नहीं रह जाती—यद्यपि आत्मा पाप-कर्मका निषेध बराबर करती ही रहती है। पहले व्यक्ति विशेष दुष्कर्म-रत होता है फिर रक्त-सम्बन्धसे उसकी सन्तान भी पाप-लिप्त ही होती है। इस प्रकार भविष्यमें वंश-परम्परासे कुकर्मियोंकी संख्या बढ़ती ही जाती है। शनैः-शनैः समस्त समाजमें दुष्कर्मोंका संस्कार हो जाता है। अन्तमें राष्ट्रमें पतन-ही-पतन शेष रह जाता है। भारतवर्षमें ऋषियों, दार्शनिकों, सत्यवादियों, दानवीरों, विश्वगुरुओं, विश्व-हृदय-विजेताओं और आत्म-दर्शियोंकी सन्तानोंका आज जो महा भीषण पतन दिखाई दे रहा है वह

एक मात्र वंशानुगत पतन-क्रम ही तो है। पतनके गर्तमें पड़ा हुआ समाज सत्कर्म विषयक विचार स्वप्नमें भी नहीं कर सकता! एक सज्जनने देशकी वर्त्तमान परिस्थितिपर विचार प्रकट करते हुए कहा, "Corruption is found in justice to-day." (आज न्यायमें भ्रष्टता पाई जाती है।) इसपर दूसरे व्यक्तिने कहा, "इतना ही नहीं आज तो Corruption has become justice" (भ्रष्टता ही न्याय बन गई है।) इतना सुनते ही एक शुद्ध खद्दरधारी व्यक्तिने कहा, "Then you should abide by corruption" (तब आपको भ्रष्टाचार मान्य होना चाहिए)। तात्पर्य यह कि उन महोदयने स्वीकार कर लिया कि आज भ्रष्टता-ही-भ्रष्टता सब ओर है—न्याय कहीं नहीं है। आज भ्रष्टताका जो विशाल और दृढ़ साम्राज्य फैला हुआ है उसका सम्राट् काला बाजार ही है। काला बाज़ार सभी प्रकारकी भ्रष्टताके मूलमें विद्यमान है। काले बाजारका क्षेत्र केवल अधिक मूल्यमें क्रय-विक्रय तक ही सीमित नहीं है, किन्तु काले बाजारका क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसके अन्तर्गत घूसखोरी, बेईमानी, हिंसा, अमानवता, नीचता, देश-द्रोह प्रभृति दुर्गुणोंका समावेश हो जाता है। सामान्यतः काले बाजारसे यही समझा जाता है कि स्वार्थ-साधन तथा अधर्मसे धन-सञ्चयके लिए जीवनके लिए अधिकाधिक उपयोगी पदार्थोंका संग्रहकर जन-समुदायको निर्धारित मूल्यसे अधिक मूल्यमें गुप्त रूपसे बेचना। किन्तु गुप्त रूपसे इस प्रकार क्रय-विक्रय करना राष्ट्र-द्रोह है क्योंकि अधिक-से-अधिक जनताको अधिक सुख-शान्ति प्रदान करनेके लिए राष्ट्रके द्वारा क्रय-विक्रयके जो नियम और मूल्य निर्धारित किए जाते हैं उनका काले बाजारके द्वारा अतिक्रमण किया जाता है। यदि कहीं काले बाजारके संचालक कानूनके शिकंजेमें आ गये तो फिर घूसखोरीका बाजार गर्म हो जाता है और इस प्रकार पापके दो हिस्सेदारोंके साथ-साथ राज-कर्मचारी भी हाथ बँटाने लग जाते हैं और इस प्रकार काला बाजार राष्ट्रके शासकों और सेवकोंको बेईमान, नीच और देश-द्रोही बना देता है। काले बाजारके द्वारा एक या अल्प-संख्यक व्यक्तियोंके हाथमें किसी एक सर्वोपयोगी पदार्थ (उदाहरणार्थ पेन्सिलिन) संचित हो जाता है जिससे समाजके अन्य व्यक्तियोंकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पातीं। कभी-कभी तो आवश्यकताकी अपूर्तिका महान् भयानक और घातक परिणाम तक देखनेमें आता है। यह सब भयानक हिंसाका ही स्वरूप है। अतः काला बाजार इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, 'काला बाजार भ्रष्टाचारका मूल है जिसमें हिंसा, नीचता, देश-द्रोह, उत्कोच (घूस-खोरी) समाहित है और जिसका प्रादुर्भाव समाजकी अनिवार्य तथा उपयोगी वस्तुके संग्रह तथा अधिकाधिक मूल्यमें क्रय-विक्रयसे होता है, जो केवल स्वार्थ-परतापर ही निर्धारित है।'

काला बाजारका संस्करण गत विश्व-युद्धकालमें ही प्रत्यक्ष रूपसे हुआ, यद्यपि किसी-न-किसी रूपमें समाज तथा राष्ट्रका घातक न होते हुए युद्धके पूर्वकालमें भी काला बाजार था किन्तु युद्धके पूर्व किसीका ध्यान ही इस ओर नहीं गया था। अत्यन्त ही अधिक आवश्यकता पड़नेपर लोग आपसमें, अत्यल्प मात्रामें, सम्भवतः अधिक मूल्यमें क्रय-विक्रय इस प्रकार कर लेते रहे हों जिससे सामाजिक स्थितिपर सांघातिक प्रभाव न पड़े—किन्तु यह भी क्वचित् ही होता रहा होगा और उपभोगीके लाभ (Consumers Surplus) से अधिक मूल्य भी नहीं देना पड़ता होगा। हम पाँच पुस्तकें खरीदते हैं तो हमें प्रथम पुस्तकसे सर्वाधिक उपयोगिता प्राप्त होती है जो निस्सन्देह पुस्तकोंकी अन्तिम इकाई (unit) की उपयोगितासे अधिक होती है, किन्तु सभी पुस्तकोंका मूल्य इसी अन्तिम इकाईकी उपयोगिताके अनुसार निर्धारित किया जाता है और इस प्रकार प्रथम चार पुस्तकोंसे हमें अवश्य ही अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है जिसके लिए हम अधिक मूल्य देनेके लिए तैयार हो सकते हैं पर जब 'कंज्यूमर्स सरप्लस'से भी अधिक मूल्य दिया जाता है तभी काला बाजार दानवकी भाँति अपना विकराल रूप लेकर प्रकट हो जाता है। वास्तवमें सभी परिस्थितियों और वातावरणमें 'उपभोगीके लाभ' (Consumers Surplus) की रक्षा होनी ही चाहिए और इसी उद्देश्यसे ही मूल्य-निर्धारण-सम्बन्धी नियमोंका निर्माण किया जाता है। यदि किसी पदार्थकी मूल्य-वृद्धि करनेकी आवश्य-

कता पड़ ही जाय तो राष्ट्रके द्वारा वैधानिक रीतिसे ही मूल्य बढ़ाया जाय। तात्पर्य यह कि निर्धारित मूल्यसे अधिक मूल्यमें वस्तुओंका क्रय-विक्रय करना अनर्थका मूल है। गत विश्वयुद्धमें उपयोगी तथा खाद्य-पदार्थोंके अभावने काले बाजार को जन्म दिया जिसके परिणाम स्वरूप उसके अनुज नियन्त्रण (Control) को भी विश्वमें पदार्पण करना पड़ा। नियन्त्रण किया गया और ज्यों-ज्यों जनताकी सुविधाओंके साधनोंका प्रयोग किया गया त्यों-त्यों व्यापारियोंकी स्वार्थबुद्धिने भी काले बाजारकी पुष्टिके लिए कुछ भी उठान रखा। ऊँचे-सेऊँचे राज्य-कर्मचारी भी उत्कोच (घूस) की शृंखलामें आबद्ध हुए और त्राहि-त्राहि मचती ही गई। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काले बाजारकी समाप्ति नियन्त्रण मात्रसे ही कदापि नहीं हो सकती। और वास्तवमें नियन्त्रण लगानेवालोंने काले बाजारके कारणोंपर गम्भीरता-पूर्वक विचार ही नहीं किया। यदि काले बाजारके कारणोंपर विचार किया जाय और उन जड़ोंको काट दिया जाय तो अवश्य ही काला बाजार लुप्त हो सकता है और जनताको युद्ध-पूर्वकी स्थिति प्राप्त हो सकती है।

यह सोचना निरर्थक और असंगत है कि किसी पदार्थके अभाव मात्रमें ही काला बाजार होता है। यथार्थतः वह पदार्थ कम नहीं रहता वरन् उसका परिमाण बहुत अधिक रहता है, जो किसी एक के हाथमें सञ्चित हो जानेसे बाजार और समाजमें कृत्रिम रूपसे उस वस्तुका अभाव कर दिया जाता है, फिर व्यापारियोंकी स्वार्थ-परता या तो जनतासे अन्याय पूर्वक अधिक द्रव्यका अपहरण करती है अथवा जनताको कष्टमें निस्सहाय छोड़कर पैशाचिक हँसी हँसती है। स्वार्थान्धताका आधार आध्यात्मिकताके ज्ञानकी शून्यता तथा भौतिकताका आधिक्य ही है जिसके कारण ही काला बाजार होता है। स्वार्थवश ही काले बाजारसे धन-संचय किया जाता है। स्वार्थ का उद्‌गम है भौतिक सुखकी उत्कट उत्कण्ठा। भौतिक सुखकी इच्छा आध्यात्मिक अज्ञानका ही परिणाम होता है। आध्यात्मिकता की महान् भूमि भारतमें भौतिकताकी वृद्धि हुई है अपनी संस्कृतिकी उच्चातिउच्च शिक्षा प्राप्त न होनेसे ही। संक्षेपमें स्वार्थान्धता तथा भौतिकवादका प्रेम ही काले बाजार का आधार है।

काले बाजारको सञ्चालित करनेवालोंके तीन वर्ग हैं :— (१) क्रय करनेवाला, (२) विक्रय करनेवाला और (३) वे राज्य-कर्मचारी जो उत्कोच (घूस) के जालमें फँसकर काले बाजारके निवारणके लिए कुछ भी नहीं करते वरन् परोक्ष रूपसे उसे प्रोत्साहित करते हैं। प्रथम वर्गपर गम्भीर दोषारोपण नहीं किया जा सकता। काले बाजारसे खरीदनेवाले आवश्यकता और बेचनेवालोंके दबावसे काले बाजारमें हाथ बँटानेके लिए बाध्य होते हैं। खरीदनेवालोंको किसी विशेष पदार्थकी विशेष आवश्यकता रहती है। जब वे विक्रेताके पास जाते हैं तब विक्रेता उन्हें अधिक मूल्य देनेके लिए बाध्य करता है। उस परिस्थितिमें खरीदनेवाले दो मार्गोंका ही अनुसरण कर सकते हैं—या तो वे उस वस्तुको न लें अथवा अधिक मूल्य देकर काले बाजारमें कलंकित बनें। वे अनिवार्य आवश्यकताके वशीभूत होकर अधिक मूल्यमें खरीद करते हैं। इसमें उनकी स्वेच्छा नहीं रहती। चाहिए तो यह कि वे संगठित हो कर उस वस्तुका बहिष्कार केवल इसलिए करें कि काला बाजार पनप न सके, किन्तु ऐसा हो नहीं रहा है। इसीलिए काले बाजारके ग्राहक दोषी तो अवश्य ही हैं, किन्तु उनका अपराध अपेक्षाकृत गुरुतर नहीं है। अतः वे क्षम्य हैं। दूसरा पक्ष विक्रेता का है जिसकी नीयत काले बाजारकी होती है। वह स्वेच्छा-पूर्वक संग्रह करता है और बाजारमें कम परिमाणमें वस्तु लाकर अधिक मूल्यमें लेनेके लिए लोगोंको बाध्य करता है। यदि वह इस दुष्कर्ममें राज्य-सत्ताका शिकार हो जाता है तो वह अपने पापोंको छिपानेके लिए एक और महान् भयानक पाप करता है कि राज्य-कर्मचारियोंको घूस देकर देश, राष्ट्र तथा राष्ट्रके विधानके विरुद्ध भड़काता है और उन्हें परोक्ष रूपसे राज-द्रोह करनेके लिए प्रेरित करता है; क्योंकि राज्यके विधानका उल्लंघनकर अन्यायका दमन न करना राज-द्रोह नहीं तो और क्या है? इस प्रकार काले बाजारका व्यापारी तीन अपराध करता है। पहले तो वह मानवताके विरुद्ध उपयोगी वस्तुका संग्रह कर बृहत् जनसमुदायको उसके उपभोगसे वंचित कर देता है, दूसरे वह आवश्यकतासे लाचार ग्राहकोंको अधिक मूल्य देनेके लिए बाध्यकर उनका शोषण करता है। तीसरे वह राज-कर्मचारियोंको घूस देकर परोक्ष तथा शान्त देश-द्रोह करनेके

लिए उत्तेजित करता है। विचारणीय बात यह है कि विक्रेता अथवा व्यापारी ऐसा करते क्यों हैं ? व्यापारी-वर्ग देश तथा जनताका कल्याण न कर जनताका रक्त-पान केवल अपनी स्वार्थ-वृत्तिकी पूर्तिके लिए ही करते हैं। वे काला बाजार करते समय इस सत्यकी ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं देते कि धन-सम्पत्ति भौतिक है और उसका मोह हमें कहींका नहीं रखेगा। वे यह भूल जाते हैं कि कालका भयानक हाथ उन्हें अकेले ही झपट ले जायगा। उनकी सम्पत्ति यथास्थान इसी संसारमें पड़ी रह जायगी और उनके पीछे उनके उत्तराधिकारी या तो दुर्व्यसनमें उसका अपव्यय कर देंगे या फिर वे भी काला-बाजार जैसा अनर्थ करेंगे। काला-बाजार करनेवाले अपने जीवन-कालमें अन्याय-पूर्वक अर्जित सम्पत्तिका उपभोगकर अपनी आत्माको कलुषित करते हैं। व्यापारियोंमें आध्यात्मिक भावना नाम मात्रके लिए शेष नहीं रह गई है। वे आज न तो शासकोंकी ही चिन्ता करते हैं और न निरीह जनता की ही। अधिकांश व्यापारी वर्ग भूखा भेड़िया बन गया है। हमारा इतिहास साक्षी है कि व्यापारी सदासे इस भाँति नहीं रहे हैं। उन्होंने यज्ञ-दानादि के रूपमें अपने अतुल ऐश्वर्यसे जनताका उपकार ही किया है। भामाशाहका उदाहरण जगत्प्रसिद्ध है ही जिन्होंने प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रतापको राष्ट्रोद्धारके लिए अपनी समस्त संचित सम्पत्ति समर्पित कर दी थी! यदि व्यापारी-वर्ग यह सोचता है कि काले बाजारसे संचित धनसे हम अपने जीवन कालमें मौज उड़ा लें और हमारे पीछे हमारी सन्तति भी सुखसे रहेगी तो यह उसकी महान् भूल है; क्योंकि अन्यायसे धन-संचय करनेसे इहलोकमें प्राप्त भौतिक सम्पत्ति हमारा आध्यात्मिक पतन कर देती है और मृत्यु-उपरान्त परलोकमें भी यातनाओंसे त्रसित होना पड़ता है। यद्यपि इस बीसवीं शताब्दीकी भयानक सभ्यतामें परलोककी भावना सर्वथा मिटती सी जा रही है और सम्पूर्ण संसार भौतिकतामें ग्रस्त है तथापि परलोकका अस्तित्व, न मानने मात्रसे ही, मिट थोड़े ही सकता है; अतः काला बाजार करनेवाले व्यापारी आत्मघातक तथा राष्ट्र घातक हैं। काले बाजारको प्रोत्साहन देनेवाला तीसरा वर्ग उन राज्य-कर्मचारियोंका है जो घूस लेकर इस दुष्कर्मको प्रोत्साहित करते और जीवित रखते हैं। ऐसे कर्मचारी लोलुपताके दास होते हैं। उनमें लोभ-वृत्ति जाग्रत होनेके दो कारण हो सकते हैं, एक तो वे अपनी आवश्यकताएँ इतनी अधिक बढ़ा लेते होंगे कि उनकी पूर्तिके लिए उन्हें अन्याय और अधर्मपूर्ण साधनोंसे अपनी आय बढ़ानेके लिए बाध्य होना पड़ता होगा अथवा उनके वेतनसे उनकी अनिवार्य आवश्यकताओंकी पूर्ति होना ही कठिन हो जाता होगा। अस्तु, जो भी हो इतना तो सत्य है कि उत्कोच लेकर कालेबाजारमें हाथ बँटानेवाले लोभी राज्य-कर्मचारी किसी भी देश और राष्ट्रके लिए घातक, नीच और राजद्रोही होते हैं। उनका यह अपराध किसी भी परिस्थितिमें क्षम्य नहीं है।

काले बाजारका क्षेत्र आज बहुत ही अधिक व्यापक हो गया है। जीवनके प्रायः प्रत्येक क्षेत्रमें बेईमानी, छल-कपट, नीचता देखनेमें आती है जो व्यापक अर्थमें काला बाजारके अंग ही तो हैं। आप सिनेमा-घर या स्टेशनमें चले जाइए, वहाँ आपको काला बाजार दृष्टिगोचर होगा। व्यवसाय-विहीन व्यक्ति 'क्यू' में सामने खड़े हो जाते हैं। उन्हें टिकिट की आवश्यकता नहीं होती इसलिए जब आवश्यकतावाले व्यक्ति आते हैं तो उन्हें 'कुछ' लेकर वे अपना स्थान समर्पित कर देते हैं। यह काले बाजारका एक नमूना है। पत्रकारिता और प्रकाशनके क्षेत्रमें भी काले बाजारका भीषण विकराल स्वरूप देखनेमें आता है। प्रेसके लिए आई हुई कृतिकी सामग्रीका सम्पादकीयमें उपयोगकर और उस कृतिकी प्रति-कृतिकर दूसरेके नामसे प्रेषित कर देना और दो-तीन महीनेके बाद उस कृतिको लेखकके पास वापस भेज देना भी पत्रकारितामें अनैतिकताका प्रमाण है। शिक्षाके पवित्र क्षेत्रमें भी काले बाजारने अपना विनाशकारी जाल फैला रखा है। पाठ-शालाओंमें जो घूसखोरी चलती है उसे काले बाजारकी संज्ञासे ही सम्बोधित करना चाहिए। विद्यार्थियोंको पाठशालामें दाखिल करते समय घूस ली जाती है। परीक्षाके समय पालक यह पता लगाते हैं कि अमुक विषयके परचे किस शिक्षकके पास हैं और फिर उनके पास पहुँचकर स्पष्ट शब्दोंमें यह कहते हैं कि आप हमारे बच्चेको उत्तीर्ण कर दीजिये फिर हम आप

पा लेंगे। शिक्षक तक विद्यार्थियोंको यह कहते हुए पाये जाते हैं कि मिठाई अथवा 'हरे नोट' (?) लाओ तो हम तुम्हें उत्तीर्ण कर देंगे। इस प्रकारकी बहुत-सी बातें सुननेमें आती हैं जो निराधार कदापि नहीं हैं, क्योंकि वे देखनेमें भी आती हैं जिससे स्पष्ट है कि शिक्षा-विभागके पवित्र क्षेत्रको भी लोगोंने दूषित कर डाला है। संक्षेपमें काले बाजारका विस्तार व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा सत्ताधारी शासकों तकमें है। काला बाजार जीवनका अंग बनता जा रहा है जिसके परिणाम-स्वरूप समाज तथा राष्ट्रमें अशान्ति, कष्ट, भ्रष्टाचार और पतन ही दृष्टिगोचर हो रहा है। यदि इस पापाचारका निवारण शीघ्रातिशीघ्र नहीं किया गया तो मानवता पतनके भीषण गर्तमें विलीन हो जायगी।

पतनका मार्ग आकर्षक होता है। उत्थानमें अन्ततोगत्वा सच्चा और आध्यात्मिक सुख प्राप्त होता है, किन्तु उसमें भौतिक सुखके भड़कीलेपनका अभाव रहता है इसलिए उधर मनुष्यकी प्रवृत्ति शीघ्र नहीं होती। आत्माको कलंकित करनेवाले अनेकों मार्गोंमें से काला बाजार महान् भीषण है जिसका कुप्रभाव व्यक्तिपर ही नहीं वरन् समस्त समाज, राष्ट्र और मानवतापर पड़ता है जिसके फल-स्वरूप राक्षसी वृत्तियोंका नग्न नृत्य होने लगता है। काला बाजार अल्प श्रमसे ही अधिककी प्राप्ति करा देता है। परिश्रमकी गाढ़ी कमाईपर मोह होता है और किफायतसे उसे ऐसा खर्च करते हैं कि उससे समस्त कुटुम्बकी अनिवार्य आवश्यकताओंकी पूर्ति हो सके, किन्तु सहज ही अन्याय तथा बेईमानीसे कमाई हुई सम्पत्तिका सदैव दुरुपयोग ही होता है। अतः काले बाजारकी कमाई वेश्याके उदरमें, सिनेमाके पर्देपर या होटलोंकी कढ़ाईमें झोंक दी जाती है। काला बाजार छल-कपट और धूर्तताका निवास-स्थल है और इन आन्तरिक दुर्गुणोंके व्यवहारसे बुद्धि भ्रष्ट होकर भौतिकतामें ही लिपटी रह जाती है। काले बाजारसे किसी भी व्यक्तिका नैतिक पतन हो जाता है। काले बाजारमें भाग लेनेवाले व्यक्ति जुआचोरी तकसे नहीं हिचकते। काले बाजारसे जो व्यक्तिगत नैतिक पतन होता है उसका परिणाम समाजपर बहुत भयंकर रूपसे पड़ता है। समाज व्यक्तियोंके समूहसे निर्मित होता है और व्यक्तिगत पतन होनेसे समाजमें भ्रष्टाचारकी वृद्धि होती है। राष्ट्रपर काली घटा छा जानेसे सुख और शान्तिका विनाश हो जाता है। राष्ट्रकी आन्तरिक स्थिति अत्यधिक शोचनीय हो जाती है। काले बाजारकी वृद्धिसे जन-साधारण में आवश्यक तथा उपयोगी पदार्थोंका वितरण उचित रूपसे नहीं हो पाता और राष्ट्र-द्वारा निर्धारित विनिमय तथा मूल्य सम्बन्धी नियमोंका उल्लंघन होता है जिसे शान्त अराजकताके अतिरिक्त और कह ही क्या सकते हैं!

मनका निर्माण अन्नसे होता है। 'जैसा अन्न वैसा मन' कहावत प्रसिद्ध ही है। काला बाजार हमें काली कमाई प्रदान करता है जिसकी कालिमामें छल-कपट, कुवासना ही मिश्रित है। काले बाजारकी कमाईसे बालकोंके पालन-पोषण, भोजन, शिक्षा तथा अन्य सुविधाओंकी व्यवस्था करनेसे उनपर घातक प्रभाव पड़ता है और वे भविष्यमें उत्तरदायित्व-हीन, उद्दण्ड नागरिक बनकर देशको पतनके गर्तमें गिरा देते हैं। इसका प्रमाण आजकलके विद्यार्थियोंमें दिखाई देता है जो उद्दण्ड और अनुशासनहीन हो गये हैं। इस प्रकार काला बाजार लम्बे भविष्य तक देशमें राक्षसी वृत्तियों और शासन-व्यवस्थाको प्रोत्साहित करेगा जिससे राष्ट्र कलंकके पंजेमें जकड़ा ही रहेगा।

जब कोई भी राष्ट्र काले बाजारकी भँवरमें फँस जाता है और व्यक्ति, समाज और राष्ट्रका नैतिक, आर्थिक, सुव्यवस्था सम्बन्धी तथा आध्यात्मिक पतन हो जाता है तब संसारमें वह देश पतित तथा बर्बर हो जाता है। अतः काले बाजारका उन्मूलन अनिवार्य है। काला बाजार बन्द करनेके लिए फाँसीकी सजा तक देनेकी धमकी दी गई किन्तु सब कुछ व्यर्थ रहा। यदि एकाध काला बाजार करनेवालेको सचमुच फाँसी दी गई होती तो काला बाजार समूल नष्ट हो गया होता। इतिहास इस बातका प्रमाण है कि पहले जब छोटे-छोटेसे अपराधोंके लिए अंग-भंग, शूली जैसे कठोर दण्डका विधान था तब अपराधोंकी संख्या स्वाभाविक रूपसे विलीन हो जाती थी। दण्डकी कठोरता ही अपराधका निराकरण सफलता पूर्वक कर सकती है। अस्तु, काला बाजार बन्द करनेके दो प्रकारके साधन हो सकते हैं :—

१. प्रतिरोधात्मक, २. दण्डात्मक। 'कण्ट्रोल'की परिगणना प्रथम वर्गके साधनके अन्तर्गत होती है, किन्तु अनुभवने यह सिद्ध कर दिया है कि नियन्त्रण तथा 'परमिट'-प्रणालीने काले बाजारको नष्ट करनेकी अपेक्षा अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया है। जब राशन अथवा परमिट द्वारा किसी वस्तुकी प्रदान-मात्रा अल्प कर दी जाती है तब मानव-स्वभावका उस वस्तु-विशेषके प्रति मोह बढ़ जाता है। फल-स्वरूप वह अपनी निर्दिष्ट मात्रा तो खरीदता ही है साथ ही अन्य व्यक्तियोंकी वस्तु भी रख लेना चाहता है; क्योंकि अल्पमात्राकी प्राप्ति होनेसे उसकी संग्रह-वृत्ति तीव्र हो उठती है। विक्रेताको नियन्त्रण द्वारा विक्रय करनेसे नियमित किन्तु अल्प आय होती है जिससे वह दूसरोंकी वस्तु-मात्रा हड़प जाना चाहता है। परमिट देनेवाले कर्मचारी अधिकांश अपने ही को परमिट प्रदान करते हैं अथवा घूसखोरी भी परमिट-प्राप्तिका साधन बन जाती है। एक 'फुड आफिसर'के जाली हस्ताक्षरसे अनेक परमिटोंका काला बाजार उनके हेड क्लर्कने कर दिया था। नियन्त्रण न रहनेसे बाजारमें वस्तु अधिक मात्रामें प्राप्त होती है और सबको सुविधा-पूर्वक मिल सकती है। हां, मूल्य-वृद्धिका भय अवश्य ही रहता है किन्तु केवल मूल्यपर ही कठोर नियन्त्रण कर देनेसे और कड़ी निगरानी रखनेसे यह दोष दूर हो सकता है। इसका सफल प्रयोग वस्त्र-विभागमें किया जा चुका है। वस्त्रपर नियन्त्रण न होने किन्तु उसका सुनिश्चित मूल्य होनेसे आज बाजारमें आवश्यकतानुसार वस्त्र सुभीतेसे प्राप्त हो जाता है। प्रतिरोधात्मक नियमका दूसरा किन्तु स्थायी प्रभावोत्पादक साधन है—अध्यात्मकी भावनाका प्रत्येकके मनमें सुदृढ़ रूपसे जाग्रत कर देना। इस साधनके सफल प्रयोगसे राष्ट्रके भावी नागरिकोंके मनमें काले बाजारके प्रति असीम तथा चिर स्थायी घृणा उत्पन्न की जा सकती है जिससे यह कुत्सित काला बाजार सहज ही रुक जायगा। आज अधिकांश व्यक्तियोंकी—विशेषतः व्यापारी वर्गकी—स्वार्थ-परता और लोलुप वृत्ति जाग्रत होकर उन्हें घोर दुष्कर्मकी ओर उन्हें प्रवृत्त कर रही है। उनकी इसी घृणित मनोवृत्तिको कुचलकर उन्हें आध्यात्मिक भावनाका क्रीतदास बनाना होगा। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि लोभ तथा संचय-वृत्ति मनुष्य-जीवनका एक अंग है, किन्तु इन वृत्तियोंका दमन करना ही तो मनुष्यता है। भारत-वर्षमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें धर्मका सर्व प्रथम स्थान है। धर्मसे धनोपार्जन कर सेवा एवम् यज्ञादि धर्म-कर्मोंमें धनका व्यय कर देना ही हमारी पवित्र भूमिके देवोपम निवासियोंका सदैव एकमात्र उद्देश्य ही रहा है जिसकी पूर्ति करना सभी वर्गोंका परम कर्त्तव्य था। भौतिक सम्पत्तिमें आसक्त रहना यहांके निवासियोंने सीखा ही नहीं था। राजा तक राज्य-मोहका दमनकर वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश कर जाते थे। आज उन्हीं आर्य-सन्तानोंके बीच भौतिकताका ताण्डव उनकी आध्यात्मिकताको कुचल रहा है। भारतवर्षके सभी वर्गोंके व्यक्तियोंके मनमें भौतिकताके प्रति घृणा और आध्यात्मिकताके प्रति प्रेम जाग्रत करना होगा। जिससे काला बाजार जैसे भीषण व्यापार के प्रति जन-समुदायका मोह ही नहीं रह जायगा। मनुष्योंकी वर्त्तमान मनोवृत्तियोंको बदलकर उन्हें सत्य तथा आध्यात्मिकता के मार्गमें चलाना होगा। इसके लिए 'सत्यं वद, धर्मं चर' पाठ्य-विषयकी शिक्षाका अत्यधिक प्रचार करना नितान्त अनिवार्य है।

दण्डात्मक साधनोंका केवल सिद्धान्तमें ही नहीं किन्तु व्यवहारमें भी कठोरतम होना अनिवार्य है। काला बाजार बन्दकर हम ऋषि-सन्तानोंके बीचसे छल-प्रपंच, लोलुपता तथा स्वार्थ-परताका निवारण करना प्रत्येक भारतीयका कर्त्तव्य ही नहीं वरन् परम धर्म है।



गोरी जातियाँ और एशिया

कपूरचन्द जैन

कहनेको तो आज एशिया जाग चुका है और एशियाका प्रत्येक देश अब गोरी जातियोंकी प्रभुताको खुली ललकार दे रहा है, परन्तु फिर भी एशियाई देश धार्मिक भेद-भाव और संकीर्ण राष्ट्रियताके विचारोंके अपने घरमें ही बँटे होनेके कारण अपना संयुक्त मोर्चा नहीं बना सकते। जापान एशियाका पहला देश था जो इस मशीन युगमें गोरी जातियोंसे टक्कर ले सका। परन्तु अपनी संकीर्ण राष्ट्रियताके कारण एशियाके दूसरे देशोंकी सहानुभूति और सहयोग वह प्राप्त न कर सका। पर यदि जापानने चीनको छोटा न समझ कर उसकी ओर मित्रताका हाथ बढ़ाया होता तो आज प्रशान्त महासागरका दूसरा ही रूप होता और जापान शिखरसे गिरकर परतन्त्रताको न पहुँचता। समयने पलटा खाया एशियाका सबसे अधिक शक्तिशाली और प्रगतिशील देश जापान आज अधिकृत देश है और जिस चीनको तुच्छ समझकर जापानने हड़पना चाहा था वह आज एशियाका सबसे अधिक शक्तिशाली देश है। पहले जापान गोरी जातियोंकी आँखोंमें खटकता था और आज चीनपर उनके दाँत लगे हुए हैं। जापानने अपने सब पड़ोसी देशोंको कुचलना चाहा, परन्तु स्वयं कुचला गया और आड़े समयमें किसी पड़ोसी देशने उसकी सहायता न की। क्या चीन भी ऐसी ही भूल करेगा और यदि गोरी जातियोंने चीनको कुचलना चाहा तो क्या एशियाके दूसरे देश दूर बैठे तमाशा देखते रहेंगे? जहाँ यूरोपके दोनों महायुद्ध एशियाके लिए वरदान सिद्ध हुए हैं, वहाँ आशंकित तृतीय महायुद्ध एशियाके सर्वनाशका कारण बन सकता है।

यूरोप और अमरीकाकी गोरी जातियाँ अपने प्रभुत्व और समृद्धिको एशियामें समाप्त होते देख रही हैं। और इस आशंकासे पूँजीवादी अमरीका भी तिलमिला उठा है। महायुद्ध समाप्त हुए चार वर्ष बीत चुके हैं, परन्तु जापानका रक्तशोषण बराबर हो रहा है। जबसे चीनमें साम्यवादी प्रजातन्त्र सरकार स्थापित हुई है अमरीका बौखला उठा है। पहले ब्रिटिश साम्राज्यकी शक्ति तोड़नेके लिए ही अमरीकाने युद्धकालमें दिये गये ऋणके बलपर अंग्रेजोंपर दबाव डालकर भारत, बर्मा और लंकाको ब्रिटिश साम्राज्यसे स्वतन्त्र कराया और अमरीकाका विचार था कि डालरकी चकाचौंध दिखाकर वह इन एशियाई देशोंको अपने प्रभुत्वमें रख सकेगा। जापान उसके कब्जेमें था ही और चीनमें च्यांगकाई शेककी कठपुतली सरकार पहले ही अमरीकाके इशारोंपर नाचती थी। इस तरह सारे एशियापर अपना प्रभुत्व जमानेकी आकांक्षा अमरीका अपने मनमें लिये बैठा था। परन्तु उसके मनसूबे पूरे नहीं हुए। चीनकी जनताने अमरीकाकी जूतियाँ अमरीकाके सरपर मारीं। जो सैन्य सामग्री अमरीका च्यांगकाई शेकको देता रहा, वह अन्तमें उसीके विरुद्ध प्रयोग हुई। चीनके हाथसे जाते ही अमरीकाका ध्यान भारतपर पड़ा। सब प्रकारकी सहायता देनेके वचन दिये गये—भारतके प्रधान मन्त्री नेहरूको अमरीका बुलाकर बड़ी आवभगतकी गई, और लाखों टन अनाज भारतको मुफ्त देनेका विश्वास दिया गया। और भी धनकी सहायताका विश्वास दिलाया परन्तु इस शर्तपर कि भारत अमरीकन गुटमें मिल जाय और रूस और चीनके विरुद्ध अमरीकाका साथ दे। जब श्री नेहरू भारतकी आत्माको बेचनेको तैयार न हुए, तब ढोंगी दानी अमरीकाने अपने दानसे हाथ खींच लिया और आज भारत पूँजीवादी अमरीकाकी आखोंमें बुरी तरह खटक रहा है। कोरियापर अमरीकाने आक्रमण किया और अपने प्रभावसे संयुक्त राष्ट्रसंघकी अनुमति भी इस आक्रमणके लिए प्राप्त कर ली, परन्तु भारतने अमरीकाका विरोध ही किया। भारतने साम्यवादी चीनको अन्तर्राष्ट्रिय संघका सदस्य बनाये जानेकी जोरदार माँग की, तो अमरीका और भी बिगड़ गया।

एशियाके कई देश एंग्लो अमरीकन गुटमें हैं इण्डोनेशियाको भारतके समर्थनसे ही स्वतन्त्रता मिली है और

भारतके समर्थनसे ही अन्तर्राष्ट्रिय संघका सदस्य बना है और यह आशा भी है कि इण्डोनेशिया एशियाका एक प्रगतिशील देश साबित होगा। अभी इण्डोनेशियाको स्वतन्त्र हुए एक वर्ष ही बीता है कि राष्ट्रिय विचार रखनेवाले मुहम्मद हट्टाके मन्त्रिमण्डलको अपने पदोंको त्यागना पड़ा और कट्टर मुस्लिम दलका मन्त्रिमण्डल बन गया। अमरीका एशियामें गोरी जातियोंकी प्रभुता बनाये रखनेके लिए सब इस्लामी देशोंको धन और सैन्य सामग्रीसे भरपूर सहायता कर रहा है और अफरीकामें भी मलान सरकार हबशियों और भारतीयोंमें वैर भाव पैदा कर रही है, वह भी अमरीकाके संकेत और समर्थन से हो रहा है।

पश्चिमकी सभ्य कही जानेवाली गोरी जातियाँ अपने सब वैज्ञानिक शक्तिका उपयोग अपने लिए और दुरुपयोग एशिया-वासियोंके लिये कर रही हैं। हिटलर और जर्मनीका सर्वनाश हो गया, परन्तु सर्वनाशके समय भी हिटलरने, सब विनाशकारी सामग्री अपने पास होते हुए भी, यूरोपकी गोरी जातियोंको विनाशसे बचा लिया। न गैसका प्रयोग किया, न एटम बमका और न कृमि युद्ध ही किया। जहाँ काली और रंगदार जातियोंके जीवनका सम्बन्ध है, गोरी जातियाँ उन्हें केवल पशु-समान समझती हैं। जब इटली ऐबीसीनिया पर गैस बमकी धुँआधार वर्षा कर रहा था किसी गोरे देशने आवाज न उठाई। अमरीकाने जब निहत्थे और युद्ध-क्षेत्रसे दूर जापानके नागासाकी और हिरोसिमा नगरोंपर एटम बमका प्रयोग किया और आज जब कोरियाके नागरिकोंपर अमरीका धुँआधार बम-वर्षा कर रहा है तो ईसाके धर्मको माननेवाली कोई भी गोरी जाति इस अन्याय और अत्याचारका विरोध नहीं करती। एशियाको अपनी आवाजमें शक्ति भरनी होगी और जब एशियाके देश संयुक्त आवाज उठायेंगे तभी अमरीकाका अहंकार और मद दूर हो सकेगा। वह दिन दूर नहीं है जब एशियाई देशोंको अपना संयुक्त राष्ट्र संघ अलग बनाना होगा; क्योंकि वर्त्तमान राष्ट्रिय संघ अब अधिक दिन जीवित नहीं रह सकता। रूस बहुत शीघ्र ही वर्त्तमान राष्ट्रिय संघसे अलग हो जायगा और तब एशियाई देशोंको भी एक-एक करके पूँजीवादी और साम्राज्यवादी गोरी जातियोंके इस संघसे पृथक होना पड़ेगा।

भारत और भारतके प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू आज इस स्थितिमें हैं कि वे सहज ही एशियाका नेतृत्व कर सकते हैं। साम्यवादी चीन जनतन्त्रको मान्यता देकर और अन्तर्राष्ट्रिय संघमें उसका पक्ष समर्थन करके भारतने आज सहज ही एशियाके इस महान् देशकी मित्रता प्राप्त कर ली है। हमें इस मित्रताको और सुदृढ़ बनाना चाहिए। यदि भारत, चीन, इण्डोनेशिया, बर्मा और फिलिपाइन एक मत होकर पश्चिमकी गोरी जातियोंको एशियासे हाथ उठानेकी चेतावनी दे दें, तो अमरीका भी जापानको चंगुलमें दबाये रखनेका और एशियाके देशोंपर लालची दृष्टि लगाये रखनेका साहस न कर सकेगा। यदि कोरियाके युद्धको सीमित रखना है तो एशियाई देशोंको एक होकर संयुक्त आवाज उठानी होगी।

भारतको चीनसे अपनी मित्रता सुदृढ़ करनी चाहिए और मिलकर जापानको अमरीकाके चंगुलसे स्वतन्त्र कराना चाहिए। कोरियामें हो रहे युद्धको केवल दर्शककी तरह तटस्थ बैठे नहीं देखना चाहिए, बल्कि इस नर-संहारका जोरदार विरोध करना चाहिए। प्रतिमास एशियाई देशोंको अपना सम्मेलन करना चाहिए और अपने-अपने देशकी पृथक समस्याओं और एशिया की संयुक्त समस्याओंपर विचार विनिमय और सहयोग करना चाहिए। भारत इस दिशामें अग्रसर हो चुका है और एशियाई देशोंकी कांफ्रेंस भारतमें बुला चुका है, परन्तु इस प्रकार सम्मेलन एशियाके भिन्न-भिन्न देशोंमें प्रतिमास होने चाहिए जिससे कि आपसमें सहयोग और मित्रताकी भावना बढ़े। और संसारके लालची देशोंको एशिया एक ठोस दीवार दिखाई दे। यह पूर्णतया स्पष्ट है कि अमरीकाके टुकड़खोर इस्लामी देश, एशियाके सहयोगीकरणमें कोई सहयोग न देंगे, वरन् कुछ-न-कुछ अड़चन ही डालेंगे।

[एशियाके लिए जितना खतरा अमेरिकन साम्राज्यवादसे है उतना ही रूसी साम्राज्यवादसे है। एशियामें इस समय आधुनिक महायुद्धके लिए केवल जनसंख्या है। एशियाई देश टर्कीसे लगाकर जापान तक सोवियत रूस और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका रूपी दो पाटोंके बीचमें हैं। चीनने तिब्बतपर जो आक्रमण किया है वह तो अमेरिकन कूटनीतिका हथकण्डा नहीं है, वह तो रूसकी चाल है। कोरियामें संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके लिए युद्धके अतिरिक्त और कोई चारा न था। विश्वमें प्रभुत्व किसका रहे, इसके लिए रूस और अमेरिका शतरंजी चालें चल रहे हैं। स्पष्ट है विश्वकी शान्तिको रूस और ऐंग्लो अमेरिकनगुटकी नीति और सामाजिक व्यवस्थासे खतरा है। दोनोंपर ही लानत है।—सम्पादक]

विश्वप्रेम और देशभक्ति

र० वेंकटरत्नम

पिछले दिनों संयुक्त-राष्ट्र-संस्था दिन (United Nations' Day) मनाया गया। बहुत-सी जगहों पर विश्वप्रेम-विश्वभक्ति आदि शब्द गूँज उठे। हर जगह विश्वभक्तिकी महत्तापर लम्बे-चौड़े भाषण हुए।

हमारा देश हाल ही में आज़ाद हुआ है। इसलिए उसे विश्वप्रेमकी चिन्ता भी हुई है। खुद गुलाम रहते हुए, क्या कोई अन्य देशोंपर प्यारकर विश्व-मैत्रीपर सोच सकता है? यह उचित हो या न हो, पर यह सम्भव नहीं है। कोई गुलाम देश स्वतन्त्र राष्ट्रोंके प्रति मैत्री रखने की अभिलाषा नहीं रख सकता; क्योंकि औरोंको आज़ाद देखकर गुलाम-देशके लोगोंमें छुटपनकी भावना (Inferiority Complex) पैदा होती है।

साथ ही, जब हम गुलाम थे, तब हमारी तमाम चिन्ता अपनी ही आज़ादीके लिए थी और तब हम औरोंको आज़ादीका खयाल नहीं कर सकते थे।

अब हममें दोनों भाव रहेंगे—विश्व-मैत्री और स्वदेश भक्ति। इन दोनों भावोंकी कौन-कौन-सा स्थान देना है? भविष्यमें हमारा यह एक प्रश्न होगा। निस्सन्देह देशभक्ति एक बहुत ही गम्भीर विषय है। वह मामूली चीज़ नहीं। प्रत्येक व्यक्तिको देशभक्तिकी भावना रखनी होगी। फिर भी विश्व-मैत्रीके सामने देशभक्तिकी महत्ता सिद्धान्ततः कम है। क्योंकि विश्वप्रेमके सम्मुख स्वदेश-प्रेम अपेक्षाकृत नीचे स्तरकी भावना है।

गांधीजी हमें खद्दर पहनाना चाहते थे। खादी-आन्दोलन का मूल कारण था देशको स्वावलम्बी तथा अहिंसक बनाना। पर 'स्वावलम्बी बनाना' ऐसा प्रतीत होता है मानो वह शायद कोई अर्थशास्त्रका शब्द हो। इसीलिए गांधीजी अन्य शब्दोंमें यों ही कहा करते थे—'खादी हमारे देशके मज़दूरोंकी बनाई हुई है। खद्दर पहनकर देशके गरीब लोगोंकी भूखको मिटा दो।' यहाँ राष्ट्रको जनताकी देशभक्तिकी अपील होती है।

कोई विश्व-प्रेमी पूछ सकता है—क्या ऐसी अपील संकीर्णता नहीं! भारतके गरीब लोगोंको भूखको ही हमें दूर करना है क्या? क्या हम दुनियाके बाकी लोगोंको भूखों मरते देखते रह सकते हैं? क्या बेलजियमवालोंकी भूख हिन्दुस्तानीकी भूखसे भिन्न है? क्या स्काटलैण्डके गरीब मज़दूरकी क्षुधासे हमारे यहाँका पेटका दर्द विभिन्न है? यहींपर देशभक्ति और विश्वभक्तिके बीच टक्कर होती है।

हमें याद रखना चाहिये कि देशभक्ति विश्वमैत्रीके आगे ज़रूर संकीर्ण है; पर हर एक व्यक्तिके पास इन दोनों भावनाओंका होना आवश्यक है। इन दोनों ऊँचे भावोंके बीचमें संघर्ष न पैदा करते हुए दोनोंमें उचित समन्वय करना है।

हम सब जानते ही हैं कि विदेशी कपड़े पहननेवाले हमारे भाई-बन्धु विश्व प्रेमसे उत्तेजित होकर नहीं, वरन् उन कपड़ोंके सस्तेपन और सौन्दर्यके कारण पहनते हैं। हम अभी आज़ाद हुए हैं। अतः अब राष्ट्रकी भलाईके लिए स्वदेश प्रेमकी अत्यन्त आवश्यकता है। हमें विदेशी सामानोंका मोह छोड़ देना चाहिए। क्योंकि हमें मालूम होना चाहिए कि अन्य देशोंके लोग हम जैसे विश्वप्रेमी होकर हमारे देशके कपड़े नहीं पहनते। गांधीजीके खादी-आन्दोलनका अर्थ समझ लेना होगा। विश्वमैत्री और राष्ट्रभक्ति इन दोनोंका सुन्दर समन्वय गांधीजीने हमें बताया है।



चयन

तिब्बत और चीनका सम्बन्ध

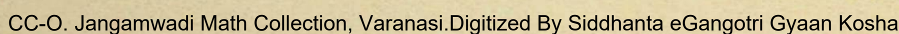
इधर एक सालसे अमेरिका और ब्रिटेनको तिब्बतके बारेमें बड़ी चिन्ता हो उठी है। इन दोनों देशोंके 'लोकतन्त्रताका झण्डा' उठानेवाले दिन-रात यही सोच रहे हैं कि कम्युनिज़्म रूपी दानवसे तिब्बत और तिब्बतकी 'जनता'को कैसे बचाया जाय। ठीक है, दानवसे तो रक्षा होनी चाहिए इससे इनकार कौन कर सकता है? लेकिन दानवसे मानव ही रक्षा कर सकता है। मलायाके जंगलोंमें मनुष्योंके विरुद्ध आदमखोर 'दायाकों'का इस्तेमाल करनेवालों, झोपड़ियोंमें सोये हुए दुधमुँहे बच्चों, अशक्त वृद्धों और निस्सहाय औरतोंपर बम बरसानेवालोंको तो मानव माननेके लिए बुद्धि अनुमति नहीं देती। क्या इन्हें मानव मानना मानवताका अपमान करना नहीं होगा? हिन्दचीन, मलाया, कोरिया आदि एशियाई देशोंमें भयंकर खूँरेजीके बाद भी कम्यूनिज़्मसे मुक्त करनेके नामपर इन 'मानवों'को चिन्ता सता रही है अब तिब्बत की!

सारी परतन्त्रताकी जननी आर्थिक परतन्त्रता, मुट्ठीभर शोषकोंके अत्याचार और उत्पीड़न तथा साम्राज्यवादी लूट और खूँरेजीके प्रचण्ड प्रश्नको टालते हुए कम्युनिज़्मका हौवा खड़ा करनेवालों द्वारा सत्यपर परदा डालनेकी लाख कोशिशके बावजूद तिब्बतमें साम्राज्यवादियोंके आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ छिप नहीं पा रहे हैं। तिब्बतके ३० लाख व्यक्ति सम्पूर्ण संसारसे अलग किस प्रकार सामन्तवादी कारावासमें सड़ रहे हैं, ३ लाख सामन्त मठाधीश और बौद्ध साधु किस प्रकार जनताकी भीषण दरिद्रतापर गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, आज भी सारा देश किस प्रकार घोर अशिक्षाके अन्धकारमें अपना भविष्य टटोल रहा है—इन सारी बातोंपर इन 'मानवों'का दिल नहीं पसीजता।

दुहरी गुलामी

तिब्बतको 'स्वतन्त्र' बनाकर अमेरिका और ब्रिटेन उसकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे हैं; लेकिन असलियत यह है कि तिब्बतकी जनता आज भी साम्राज्यवाद-सामन्तवादकी संयुक्त परतन्त्रतामें कराह रही है। उसका बेहद पिछड़ापन तथा उसकी बेमिसाल ग़रीबी इसका सबूत है। उद्योगोंको न पनपने देना, यातायातके साधनोंको मध्ययुगीन स्थितिमें पड़े रहने देना, सामन्ती व्यवस्थाको ज्योंका त्यों कायम ही नहीं रहने देना बल्कि उसको और मजबूत बनाना—ये सारे-के-सारे कार्य साम्राज्यवादीके हितमें नहीं तो क्या जनताके हितमें कहे जायँगे? एशियाई देशोंको औपनिवेशिक अथवा अर्ध औपनिवेशिक अवस्थामें रखते हुए उनको अपने आधुनिक उद्योग न खड़े करने देनेमें साम्राज्यवादियोंका बहुत बड़ा हित है, क्योंकि इससे उनके अपने उद्योगोंके लिए बाजार और कच्चे माल मिल सकते हैं। आज भारत जैसे औद्योगिक दृष्टिसे आगे बढ़े एशियाई देशको जब वे पीछे घसीटना चाह रहे हैं तो तिब्बतकी चर्चा ही क्या! यही वजह है कि उन्होंने तिब्बतमें सामन्तवादकी जड़को काफी मजबूत बनाए रखनेकी कोशिश की है। दरअसल, तिब्बतमें शासन भले ही लामाओंका कह लिया जाय, लेकिन लगाम उसकी साम्राज्यवादियोंके—खास करके ब्रिटेनके ही हाथमें है। कहनेको तो हमारे देशके एक भू-भाग नैपालको भी अंगरेजोंने १९२३में 'स्वतन्त्र' कर दिया था, लेकिन क्या तत्कालीन संधि की शर्तों और उसके बाद गुरखा फौजके मनमाने ढंगसे इस्तेमालसे यह साबित नहीं हो चुका है कि अंगरेजोंके सामने नैपालकी स्वतन्त्र-सत्ता वास्तवमें कभी नहीं रही?

ब्रिटेनके साम्राज्यवादी इतिहासको ठीकसे देखनेवाला यह अच्छी तरह समझ सकता है कि अपना साम्राज्यवादी प्रसार करनेमें ब्रिटेनने शुरूमें यह बात बराबर ध्यानमें रखी कि उपनिवेशोंमें पूँजीवादके विकासको रोकनेके लिए (क्योंकि उससे व्यापारिक स्पर्धाका डर था) उसे सामन्तवादको ही अपना 'एलाई' (मित्र) बनाना पड़ेगा। हिन्दुस्तानकी छातीपर उसने जो ६०० रियासतोंको कायम रखा वह इसी नीतिके अनुसार



ही तो था। उधर अन्तमें सामन्तोंने भी अपना हित इसीमें देखा कि उनका अस्तित्व साम्राज्यवादी ब्रिटेनके संरक्षणमें ही है। तिब्बतकी भूमिपर सीधे-सीधे जमनेकी कोशिशमें यद्यपि ब्रिटेनको हर बार असफल रहना पड़ा, लेकिन अन्तमें उसे तिब्बती सामन्तोंके उपर्युक्त रुखकी सहायतासे अपनी स्थिति दृढ़ करनेमें सफलता मिल ही गई। और वह भूगर्भ सम्बन्धी खोज और खनिज सम्पत्तिको निकालनेमें 'सहायता' के बहाने वहाँ दाखिल हुआ। १९२२ में उसने अपने स्वार्थसे लासा और कलकत्ताके बीच टेलिग्राफ लाइन तैयार की और १९३६ के आते-आते लासामें एक स्थायी 'ब्रिटिश राजनीतिक मिशन' कायम कर लिया। १९४७ में माउन्टबैटन-देनके बाद तिब्बतके सम्बन्धमें अपने 'अधिकार और कर्त्तव्यों'को यद्यपि उसने भारतके हाथ सौंप दिया और अब वह 'भारतीय मिशन' कहलाने लगा, लेकिन वास्तवमें उसकी ओटमें ब्रिटेनका एक परीक्षण केन्द्र वहाँ बना रहा। अंगरेजोंने अपना राजनीतिक मिशन तिब्बतकी अर्थ-व्यवस्था और उसकी परराष्ट्र नीतिपर नियन्त्रण रखनेके लिए ही बनाया था। इसके अलावा भारतको अपने 'अधिकार और कर्त्तव्यों'के हस्तान्तरित करनेके पीछे ब्रिटेनका एक यह स्वार्थ भी था कि भविष्यमें चीन और भारतके बीच इससे अच्छा झगड़ा लग सकता है जिसकी आज सम्भावना दिखाई भी दे रही है।

इधर ब्रिटेनके साथ अमेरिकाने भी तिब्बतपर अपना जाल फेंका है। पिछले ही साल नवम्बरमें अमेरिकाके 'आफिस आफ स्ट्रेटेजिक सरविस' (O. S. S.) के एजेन्ट तिब्बतका हवाई परीक्षण करने पहुँचे थे और उसी समयसे तिब्बतको चीनसे अलग करनेकी योजना बनने लगी। सन् १९४९ की फरवरीमें लण्डनके एक पत्र 'डेली ग्राफिक'ने अन्तमें यह रहस्य खोला ही कि अमेरिका और ब्रिटेनके संयुक्त महाप्रयाससे तिब्बतके मठोंमें चीनको कम्यूनिज़मसे बचानेकी योजना बन रही थी। ८ जुलाई, सन् १९४९ को चीनकी केन्द्रीय सरकार (कुओमिन्तांग) से तिब्बतके अधिकारियोंने जो सम्बन्ध-विच्छेद किया वह इसी योजनाका पहला कदम था, क्योंकि इससे भविष्यमें (चीनमें कम्युनिस्ट सरकार स्थापित होने पर) अमेरिका और ब्रिटेनको तिब्बतकी अलग सत्ता दिखानेमें मदद मिलनेकी उम्मीद थी। तिब्बतमें चीनकी सरकारके सभी अफसरों और चीनी नागरिकोंको कम्युनिस्टसे सम्पर्क रखनेके सन्देहके बहाने निकालनेको आदेश देना—सब कुछ उपर्युक्त योजनाका ही परिणाम था।

तिब्बतको एक 'स्वतन्त्र' संज्ञा देनेके लिए ही अंगरेजों तथा अमेरिकनोंने स्वयं कुओमिन्तांग सरकारकी जानकारीमें तिब्बतका सम्बन्ध उससे (कुओमिन्तांग सरकारसे) विच्छेद करवाया था। उनकी एक जबर्दस्त मंशा यह थी कि संयुक्त राष्ट्र संघमें तिब्बतकी सदस्यता अलग स्वीकृत करवा ली जाय जिससे वह भविष्यमें चीनका अंग न बन सके। चीनसे तिब्बत के सम्बन्ध-विच्छेदको पहले कम्युनिस्टों द्वारा भड़काया गया, विद्रोह बताया गया; लेकिन तत्काल कुओमिन्तांगके ही एक अधिकारीने यह स्वीकार किया कि विद्रोह स्थानीय अधिकारियों द्वारा ही खड़ा किया गया था। स्वयं ब्रिटिश पत्र 'लण्डन टाइम्स'ने कबूल किया था कि कम्युनिस्टके कथित षड्यन्त्रसे फायदा उठाकर तिब्बत सरकार चीनसे तिब्बतको अलग कर लेना चाहती थी। और फिर 'स्टेट्स मैन'ने लिखा "तिब्बत की सरकार तिब्बतको चीनकी प्रभु-सत्तासे पृथक करनेके लिए वर्त्तमान स्थितिका फायदा उठा रही है।"

इस विद्रोहके बाद ही लासामें अंगरेजों और अमेरिकनोंका 'विद्वानों', 'इंजीनियरों' और 'यात्रियों'के रूपमें एक ताँता लग गया। इसी सिलसिलेमें युनाइटेड प्रेसकी एक रिपोर्टमें बतलाया गया कि सुदूरपूर्वके अंगरेज अधिकारी आशा करते हैं कि अगर तिब्बत कम्युनिस्टोंके आक्रमणकी सम्भावना महसूस करता है तो वह पश्चिम राष्ट्रोंकी सहायता चाहेगा। तिब्बतसे अमेरिका लौटनेपर लावेल थामस नामक एक अमेरिकनने १० अक्टूबर, १९४९ को कहा था कि तिब्बत अमेरिकासे दो चीजें चाहता है—छापेमार युद्ध या अमेरिकन सलाहकार तथा और अधिक आधुनिक हथियार। अमेरिकन पत्रोंमें इसी समय छपी खबरोंके अनुसार अमेरिका तिब्बतको मान्यता देनेके लिए तैयार था और वह संयुक्त राष्ट्रसंघमें तिब्बतकी सदस्यताके लिए दरखास्तका समर्थन करना चाहता था जिससे अमेरिका द्वारा 'फौजी सहायता' सम्भव हो सके।

चीनका प्रबल पक्ष

तिब्बतके बारेमें चीनकी कम्युनिस्ट सरकारने अपनी नीति बहुत पहले ही स्पष्ट कर दी थी और उसकी उक्त घोषणामें उसकी ऐसी प्रबल नैतिकता झलक रही थी कि किसी भी देशके किसी भी अधिकारीको उस समय उसके खिलाफ एक शब्द कहनेका नैतिक साहस नहीं हुआ। २० जनवरी, १९५० को चीनके परराष्ट्र सचिवालयके एक प्रवक्ताने पहली बार यह घोषणा की 'तिब्बत जनवादी चीनका ही प्रदेश है। यह सत्य संसारके प्रत्येक व्यक्तिको मालूम है और किसीने भी इस सत्य अस्वीकार नहीं किया।' वक्तव्यमें आगे कहा गया 'तिब्बतकी जनताकी यह माँग है कि वह जनवादी चीनके महान् परिवार का एक सदस्य बने और केन्द्रीय जनवादी सरकारके संयुक्त नेतृत्वमें उपयुक्त प्रादेशिक स्वतन्त्रता प्राप्त करे। 'जनवादी राजनीतिक सलाहकार सम्मेलन' (पीपुल पालिटिकल कन्सल्टेटिभ कान्फरेन्स) के सामान्य कार्य-क्रममें तिब्बतकी यह इच्छा रखी भी गई है।' जनवादी सरकारकी समाचार समितिने तिब्बतके बारेमें बहुत पहले ही यह समाचार प्रसारित किया था कि 'तिब्बत चीनका प्रदेश है और इसका चीनके साथ बहुत पुराना सम्बन्ध है। चीनकी जनवादी मुक्ति-सेना सभी चीनी प्रदेशों को जिनमें तिब्बत, सिकांग, हैनान और फारमोसा भी है, मुक्त करेगी।'

साम्राज्यवादी हौसलेके प्रति तिब्बतकी जनताका क्या रुख है इसे 'जनवादी राजनीतिक सलाहकार सम्मेलन'में तिब्बती प्रतिनिधि तिनपियाओने इन शब्दोंमें व्यक्त किया था, 'हम अंगरेजों, अमेरिकनों तथा अन्य आक्रमणकारियोंको चेतावनी देते हैं कि वे तिब्बतमें घुसनेकी साजिशें छोड़ दें। अगर तिब्बतमें उन्होंने अपनी चाल शुरू की तो उन्हें जबर्दस्त सजा मिलेगी।' तिब्बतपर जनवादी चीनके दावेका औचित्य किसी तरहकी कानूनबाजीपर नहीं, वल्कि स्वयं तिब्बतकी जनताकी इच्छापर आधारित है। यह पंचेन लामाके, जिनका तिब्बत की जनतापर बहुत बड़ा असर है, उस सन्देशसे ही साबित हो जाता है जो उन्होंने चीनकी जनवादी सरकारकी स्थापनाके अवसरपर पहली अक्तूबरको दिया था। उन्होंने अपने सन्देशमें तिब्बतकी जनताकी ओरसे माओत्से तुंग और यूतेहको बधाई देते हुए उनसे अनुरोध किया था कि वे सभी गद्दारोंको मिटा कर तिब्बतको मुक्त करें। इसके उत्तरमें माओत्से तुंग तथा यूतेहने भी आश्वासन दिया था 'केन्द्रीय जनवादी सरकार और जन मुक्ति-सेना तिब्बतकी जनताकी आकांक्षा अवश्य पूरी करेगी।' खुद तिब्बती क्षेत्रोंसे रायटर द्वारा प्रसारित खबरोंमें कई बार बताया गया है कि पंचेन लामाको तिब्बतकी जनताका जो समर्थन और आदर प्राप्त है उसके कारण लासाकी सरकारी फौजको भी पंचेन लामाकी फौजोंका प्रतिरोध करनेमें हिचक होगी। चीनके साथ सम्बन्धके प्रश्नपर स्वयं दलाई लामाकी सरकारमें मतभेद है।

तिब्बतपर चीनकी प्रभु सत्ता अनेक अन्तर्राष्ट्रिय समझौते से भी पुष्ट होती है। १८९० की तिब्बतकी भारतसे सीमा निश्चित की जानेवाली सन्धिमें, १९०६ के ब्रिटेन और चीनके बीच हुए पेकिंग समझौतेमें, १९०७ के ब्रिटेन और रूसके बीच हुए एक-एक समझौतेके तिब्बत-सम्बन्धी भागमें तथा १९१४ के शिमला सम्मेलनमें ब्रिटेन और चीनके बीच हुए समझौतेमें तिब्बतपर चीनकी प्रभुसत्ता मान ली गई है। तिब्बतके वर्तमान दलाई लामा जमपल—गावांग-लोबसांग-यीशे-तेनजिंग-ग्यातसो की नियुक्ति भी अभी १९४० में चुंकिंग-सरकार द्वारा हुई थी और वह चीनी संरक्षकों और सलाहकारोंके साथ लासा पहुँचे थे। चीनकी सरकारका तिब्बतके वर्तमान धार्मिक शासनसे बहुत पुराना सम्बन्ध है। चीनके सम्राट कुबलाई खाँने सन् १२७५ में तिब्बतमें धार्मिक शासनकी स्थापना की थी। उसने साक्य मठके लामाको उसी समय तिब्बतका शासन सौंपा था। दलाई लामाकी पदवी 'पीली पगड़ियाँ' नामसे मशहूर एक बौद्ध-पन्थके प्रधानको पहले-पहल मंगोलिया के चीनी शासक द्वारा ही दी गयी थी।

जहाँ तक वर्तमान भारतका सम्बन्ध है, उसने भी तिब्बत पर चीनकी प्रभुसत्ताको माना है। लासामें 'भारतीय मिशन' को लेकर कुछ नई समस्याएँ उठ सकती हैं और कुछ नये गुल भी खिल सकते हैं; लेकिन तिब्बतपर चीनकी प्रभुसत्ता मान लेनेके बाद भी यदि भारत और चीनका कोई झगड़ा खड़ा

होता है तो उससे केवल साम्राज्यवादियोंका ही काम बनेगा। तिब्बतमें आज यदि चीनके प्रवेशको बुरा कहा जा रहा है तो जिस समय चीनकी सरकारने फौज द्वारा उसे मुक्त करनेकी घोषणा की थी उस समय भी उसको बुरा कहना चाहिए था और चुप नहीं रहना चाहिये था। इसके अलावा जब भारत सरकार कहती है कि तिब्बत और चीनका मामला शान्तिपूर्वक सहूलियतसे तय कर लिया जाय तो उससे भी तो एक तरहसे वह यह सिद्धान्त मान ही लेती है कि चीन और तिब्बतका मामला घरेलू है।

चीन और तिब्बतके सम्बन्धमें सबसे बड़ी बात जो है वह यह कि इन दोनों देशोंका आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सम्बन्ध बहुत पुराना है। बहुतसे लामा-धर्मावलम्बी तिब्बती आसपासके चीनी प्रान्तों यथा सीकांग (पूर्वमें) चिंघाई, (उत्तर पूर्वमें) सिकियांग, (उत्तरमें) जेचवान, इनर मंगोलिया और सुदूर मंचूरियामें रहते हैं। इसके अलावा तिब्बत और चीनकी भाषामें बड़ी समानता है। तिब्बतमें खर्च होनेवाले अन्न-वस्त्रका बहुत बड़ा भाग पड़ोसके चीनी प्रान्तोंसे ही आता है। इन दोनों देशोंका राजनीतिक सम्बन्ध १२ सौ वर्ष पुराना है। ८ वीं सदीमें तिब्बतके शासक तौयांग-डीसेन और चीनके एक शासक वुन-पू-ह्यू-टिंग-नांगटीके बीच एक सन्धि हुई थी जिसके अनुसार इन दोनोंने अपने राज्योंको एकमें मिला लिया। यह सन्धि लासामें एक पाषाण-स्तम्भपर आज भी अंकित है।

तिब्बतको चीनसे अलग रखनेकी कोशिश कश्मीरको भारत से अलग करनेकी कोशिश जैसी है। जिस प्रकार ब्रिटेनके टोडियोंने हैदराबाद जैसे भारतके अंग तकको उससे अलग करानेकी वकालत की थी ठीक वैसी ही बात आज तिब्बतके सम्बन्धमें चल रही है। तिब्बतके चीनके साथ सम्बन्धको हम उसी तरह देखते हैं जिस प्रकार नेपालके साथ भारतके सम्बन्धको। नेपालको साम्राज्यवादियोंने अपने स्वार्थसे भले ही अलग स्थान दे दिया हो, लेकिन हर दृष्टिसे वह भारतके विशाल परिवारका ही एक अभिन्न सदस्य माना जायगा। ठीक यही बात चीन और तिब्बतके बारेमें भी है।

अंगरेजोंने तो किन्हीं दो देशोंके बीच झगड़ा लगाने और फिर उसी बहाने अपना उल्लू सीधा करनेके लिए कुछ-न-कुछ सामग्री अवश्य सुरक्षित रख छोड़ी है। लेकिन यह प्रत्येक देशकी जनताका काम है कि वह साम्राज्यवादियोंकी चालोंसे दूर रहकर चीजोंको सही-सही देखे। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की 'कृपा'से 'भारतीय मिशन'का ही एक ऐसा सवाल है—जिसे लेकर भारत और चीनके बीच वे झगड़ा भड़का सकते हैं। लेकिन वस्तुतः और सिद्धान्ततः यह ऐसा सवाल नहीं है जिसे लेकर झगड़ा हो ही। अंगरेजों द्वारा कायम मिशनको भारतके हाथ सौंप देनेके बाद भी, अगर वह भारत और तिब्बतके बीच बराबरीकी हैसियतसे किये गये समझौतेके आधारपर संचालित नहीं होता, उसे तिब्बतपर एक तरहसे लादना ही कहा जायगा। अगर भारत सरकार इस तथ्यको स्वीकार नहीं करती और साथ ही चीन और तिब्बतके सम्बन्धपर नज़र नहीं डालती तो वह जाने या अनजानेमें वही कार्य करेगी जिसकी साम्राज्यवादी प्रतीक्षा कर रहे हैं। भारतने यदि साम्राज्यवादियोंके चश्मेसे इस सवालको देखनेकी गलती की तो यह एक अशुभ बात होगी। —योगी

भारतके आम चुनाव

लन्दन 'टाइम्स'की आलोचना

भारतमें आम चुनावोंके स्थगित किये जानेपर आलोचना करते हुए लन्दनका 'टाइम्स' पत्र लिखता है : "राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादकी इस घोषणासे कि भारतमें अगले वर्षके आम चुनाव नवम्बर या उससे भी बादसे पहले नहीं हो सकेंगे, कुछ आश्चर्य पैदा हो गया है। कुछ ही समय पूर्व प्रधान मन्त्री श्री नेहरूने चुनाव अधिकारियोंके एक सम्मेलनमें बताया था कि संसद और विधानमण्डलोंके चुनाव मई तक समाप्त हो जाने चाहिए क्योंकि संघ और राज्योंकी वर्त्तमान सरकारें काम-चलाऊ सरकारोंके रूपमें अनिश्चित काल तक नहीं रह सकतीं।

"शायद ऐसा दिखाई देता है कि श्री नेहरूको उन टेक्निकल कठिनाइयोंकी पूरी जानकारी नहीं दी गई थी जिन्हें राष्ट्रपतिने चुनावोंके स्थगित किये जानेके कारण बताया है। कठिनाइयाँ बड़ी विकट हैं। भारतीय संविधानके ३२६

अनुच्छेदके अन्तर्गत सम्पूर्ण वयस्क मताधिकार चालू किए जानेके कारण चुनावोंमें भाग ले सकनेवालोंकी संख्या लगभग १८ करोड़ तक पहुँचा दी गई और इनमें लगभग आधी संख्या स्त्रियोंकी है। निर्वाचकोंकी यह संख्या अमेरिकाकी कुल जन-संख्यासे भी अधिक है।

"संसदीय संस्थाओंके क्षेत्रमें इतना विशाल प्रयोग संसारने कभी नहीं देखा। इस विशाल जन-समूहको उनके इस नए अधिकारका प्रयोग सिखलानेकी कठिनाईके अतिरिक्त मत-दाताओंकी विशाल संख्याकी गणना भी बहुत बड़ा और भारी काम है।

"यह अनुमान लगाया गया है कि एक पूरे पन्नेमें चालीस नाम छापे जा सकते हैं, भारतके लिए पूरे निर्वाचक रजिस्टरमें बीस लाख पन्ने होने चाहिए और यदि इन्हें एक जगह रखा जाय तो दो सौ गज लम्बी अलमारीकी आवश्यकता पड़ेगी।

सफलताका मापदण्ड

"यद्यपि भारत सरकारने इस विशाल कार्यकी पूर्तिमें लगनेवाले समयका गलत अनुमान लगाया है किन्तु इसपर बहुत देरमें शुरू करनेका दोष नहीं लगाया जा सकता। पिछली जनवरीमें जैसे ही भारत गणराज्य बना कि एक निर्वाचक आयोग स्थापित कर दिया गया था, प्रत्येक राज्य सरकारने एक मुख्य निर्वाचक अधिकारी नियुक्त कर दिया था और गणना करनेवालोंकी छोटी-सी सेना, जिसमें बहुत-से स्वयंसेवक थे, नगरों और गावोंमें घर-घर पहुँचने लगी थी।

"वृहत्तर बम्बई राज्यने अपनी निर्वाचक सूची तैयार कर ली है। दिल्ली प्रान्तकी सूची भी तैयार हो चुकी है, यह तो शुरूकी अवस्था है। अभी एतराज सुने जायँगे और कुछ जोड़ा-बढ़ाया भी जायगा।" पत्र लिखता है और अवशेष कार्योंका उल्लेख करनेके बाद। इसमें आश्चर्य नहीं कि यह जटिल कार्यक्रम निर्धारित समयसे पीछे पड़ गया है।

"चुनावोंके स्थगित किये जानेसे, यद्यपि ऐसा करना अनिवार्य है, कांग्रेस-दलके अन्दर और बाहरवाले लोगोंमें कुछ निराशा पैदा हो गई है। आरोपके समर्थनमें कोई प्रमाण दिये बिना कांग्रेसके कुछ आलोचक कहते हैं कि सरकार उन कुछेक कांग्रेसियोंकी दलीलके सामने झुक गई है जिन्हें भय है कि वे दोबारा नहीं चुने जायँगे।

"असलमें दलके समझदार नेता चुनावोंको जल्दी-से-जल्दी समाप्त कराना पसन्द करेंगे। इस समय इस दलकी शाखायें सभी नगरों और बड़े गावोंमें मौजूद हैं, लेकिन इसका कोई तगड़ा प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।

"यह बात अधिक समय तक नहीं रह सकती, क्योंकि विरोध धीरे-धीरे पनप रहा है। कांग्रेस पार्टीके अन्दर भी श्री कृपलानीका डिमोक्रेटिक फ्रन्ट, जिसके बलपर वे इस वर्षके कांग्रेस अध्यक्ष करीब-करीब बन ही गए थे, सरकारकी नीतियोंका आलोचक है और गांधीजीके सामाजिक सुधारके आदर्शों और धनके अधिक सामान्य वितरणको लागू करना चाहता है।

"कांग्रेसके बाहर कई समाजवादी और रेडिकल समूहों द्वारा विरोध प्रकट किया जा रहा है। आगे चलकर ये डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष, जो अभी कुछ दिनों पहले पश्चिमी बंगालके प्रमुख कांग्रेसी थे, द्वारा आयोजित अलग होनेके आन्दोलनमें शरीक हो सकते हैं।

"चुनावोंसे पहले इन बारह महीनोंमें एक तगड़ा विरोधी दल तैयार हो सकता है, सम्भवतः उन लोगोंके एक मिले-जुले दलके रूपमें जो कांग्रेसकी सरकारी नीतियोंसे असहमत हैं। तब कांग्रेस पार्टी नवीन भारतकी जन्मदातृकी हैसियतसे प्राप्त महान अधिकार और प्रतिष्ठाके बलपर ही नहीं आँकी जायँगी, बल्कि इस बातसे कि उसने प्रशासनमें कैसे ठोस कार्य किए हैं और गाँववालोंकी सहायतामें उसने कितनी प्रगति की है।"

(ब्रिटिश सूचना-विभाग द्वारा प्राप्त)



मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

विशाल भारत

के

प्रति अंकका विज्ञापन-दर

साधारण पूरा पृष्ठ	६०)
,, आधा पृष्ठ या एक कालम	३२)
,, चौथाई पृष्ठ या आधा कालम	१८)
,, चौथाई कालम	१०)
चित्रके पीछेका पूरा पृष्ठ	७०)
,, ,, आधा पृष्ठ	४०)
कवरके दूसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	७०)
कवरके तीसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	६५)
सूचीके सामनेका पूरा पृष्ठ	७०)
,, ,, आधा पृष्ठ	४०)
,, ,, चौथाई पृष्ठ	२५)

अन्तिम पाठ्य-सामग्रीके सामनेका पृष्ठ	८०)
कवरका दूसरा पृष्ठ	९०)
,, तीसरा पृष्ठ	८०)
,, चौथा पृष्ठ	१२५)
,, चौथे पृष्ठका दूसरा कलर ३०) फी कलर ।	
रिडिंग मैटरके साथ पूरा पृष्ठ	१००)
,, आधा पृष्ठ	५५)
,, चौथाई पृष्ठ	२८)
,, चौथाई कालम	१५)

अन्तिम फरमाके अन्तमें छापा जायगा ।

क्रोड़पत्र

'विशाल भारत'के आकारका ९½×७ इंच

(विज्ञापनदाता द्वारा मुद्रित)

८ पृष्ठ	१२५)
४ पृष्ठ	८०)
२ पृष्ठ	४५)

नोट :—उपरोक्त दर जनवरी १९४९ से शुरू हुआ है ।

मैनेजर, 'विशाल भारत' १२०।२, अपर सरकूलर रोड,

कलकत्ता ९

विशाल भारत बुक डिपो

द्वारा प्रकाशित तथा प्रचारित पुस्तकें

१. जंगलके जीव सचित्र, सजिल्द—श्रीराम शर्मा ५)
२. प्राणोंका सौदा ,, ३॥)
३. शिकार ,, ३)
४. ,, उर्दू ,, ३)
५. बोलती प्रतिमा ,, २।)
६. शब्द-चित्र ,, २)
७. हमारी गायें ,, १॥)
८. पपीता ,, ।)
९. झाँसीकी रानी ,, ॥)
१०. नेताजी (अंग्रेजी) ,, २०)
११. स्वामीके पत्र—ज्योतिर्मयी ठाकुर ४)
१२. पिस्तौलका निशाना रूसी कहानियाँ—स्व० बृजमोहन वर्मा ४)
१३. प्रेम-संगीत—श्री भगवतीचरण वर्मा २॥)
१४. मानव ,, २)
१५. मीरा और उनकी प्रेमवाणी—ज्ञानचन्द जैन एम०ए० २)
१६. घूँघटवाली-कहानी संग्रह—विश्वम्भरनाथ जिज्जा २।)
१७. त्रिलोचन कविराज—स्व० रवीन्द्रनाथ मैत्र २)
१८. खटोला—श्री आनन्दकुमार त्रिपाठी एम० ए० १।)
१९. बातचीत ,, ,, १)
२०. शुकपिक—श्री तारा पाण्डेय १)
२१. शिवशम्भुके चिट्ठे—स्व० बालमुकुन्द गुप्त ॥)
२२. सौगात (कहानी संग्रह)—परशुराम नौटियाल २)
२३. अलिफलैलाकी कहानियाँ—६ भाग ६)
२४. इजादोंकी कहानियाँ १॥)
२५. सरदारपटेल (जीवनी) ।।=)
२६. संयम शिक्षा—गांधीजी ।=)
२७. मुक्ति-पथ—इलाचन्द जोशी ६)
२८. संघर्ष और समर्पण—कन्है
२९. स्वाधीनताके पथपर
३०. पथिक—(गुरुदत्त)
३१. स्वराज्य दान
३२. उन्मुक्त प्रेम
३३. विकृत छाया
३४. भावुकताका मूल्य
३५. रात चोर और चाँद
३६. उपनिषदोंकी कहानियाँ
३७. महादेव भाईकी डायरी I, I
३८. दिल्ली डायरी—गांधीजी
३९. भारतमें गाय I, II श्री सती
४० गेहूँ और गुलाब (बेनीपुरी)
४१. अजाने रास्ते—डा० सत्यनार
४२. राजेन्द्र अभिनन्दन-ग्रन्थ
४३ नेहरू अभिनन्दन हिन्दी, अंगरे
४४. जगतसेठ—(श्री पारसनाथ
४५. कुली (मुल्कराज आनन्द)
४६. मुहम्मद रसूलिल्लाहकी जीवनी
४७. रवीन्द्र साहित्य १७ भाग प्रत्ये
४८. राजस्थानी कहावत I, II नरो मुरलीधर व्यास
४९. राजस्थानके लोक गीत I, II
५०. मधुर स्वप्न (राहुल)
५१. बयालीस—प्रतापनारायण श्रीव
५२. धरातल—शान्तिप्रिय द्विवेदी
५३. हिमानी ,, ,,
५४. अच्छी हिन्दीका नमूना—किश

विशाल भारत बुक डिपो

१६५।१. हरिसन रोड, कलकत्ता—७।

वार्षिक मूल्य ९)] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०...

